जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-पूज्यश्री-घासीलालजी-महाराज-
विरचितया सुधाख्यया व्याख्यया समलङ्कृतं
हिन्दी-गुर्जर-भाषाऽनुवादसहितम्-

॥ श्री-स्थानाङ्गसूत्रम् ॥

(चतुर्थो भागः)

STHĀNĀNGA SŪTRAM

नियोजकः

संस्कृत-प्राकृतज्ञ-जैनागमनिष्णात-प्रियव्याख्यानि-
पण्डितमुनि-श्रीकन्हैयालालजी-महाराजः

प्रकाशक.

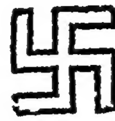
'अखण्डसौभाग्यवती श्रीमती विजयकुमारी जैन, धर्मपत्नी
श्री हजारीलालजी जौहरी दिल्ली-तत्प्रदत्त द्रव्यसाहाय्येन
अ० भा० श्वे० स्था० जैनशास्त्रोद्धारसमितिप्रमुखः
श्रेष्ठि-श्रीशान्तिलाल-मङ्गलदासभाई-महोदयः
मु० राजकोट

प्रथमा-आवृत्ति	वीर संवत्	विक्रम-संवत	ईसवीसन्
प्रति १२००	२४९२	२०२२	१९६५

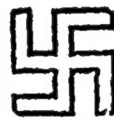
मूल्यम्-रू० २५-०-०

મળવાનું ઠેકાણું :
શ્રી અ. ભા. શ્વે. સ્થાનકવાસી
જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ,
ઠે. ગરેડિયા કૂવા રોડ,
રાજકોટ, (સૌરાષ્ટ્ર).

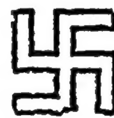
Published by :
Shri Akhil Bharat S. S
Jain Shastroddhara Samiti,
Garedia Kuva Road, RAJKOT,
(Saurashtra), W. Ry, India



ये नाम केचिदिह नः प्रथयन्त्यवज्ञां,
जानन्ति ते किमपि तान् प्रति नैष यत्नः ।
उत्पत्स्यतेऽस्ति मम कोऽपि समानधर्मा,
कालोह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी ॥ १ ॥



हरिगीतच्छन्दः



करते अवज्ञा जो हमारी यत्न ना उनके लिये ।
जो जानते हैं तत्त्व कुछ फिर यत्न ना उनके लिये ॥
जनमेगा मुझसा व्यक्ति कोई तत्त्व इससे पायगा ।
है काल निरवधि विपुलपृथ्वी ध्यान में यह लायगा ॥ १ ॥

મૂલ્યઃ રૂ. ૨૫=૦૦

પ્રથમ આવૃત્તિ પ્રત ૧૨૦૦
વીર સંવત્ ૨૪૯૨
વિક્રમ સંવત્ ૨૦૨૨
ઇસવીસન ૧૯૬૫

: મુદ્રક :
મણિલાલ છગનલાલ શાહ
નવપ્રભાત પ્રિન્ટીંગ પ્રેસ,
ઘીકાંટા રોડ, અમદાવાદ.

पंजाब संप्रदायके पू. सोहनलालजी म. सा. की आज्ञामें विचरनेवाले पू.
मयारामजी म. के शिष्यानुशिष्य परम प्रतापी श्री
व्याख्यानवाचस्पति-स्वर्गीय मदनलालजी महाराजका

अष्टक—

(मालिनी छंद)

परिधृतगुणमालं शुद्धधर्मालवालं,
विमलगतिमरालं शुद्धभावैर्विशालम् ।
सकलमनसि दुःखान्मन्यते त्वां वियुक्तं—
सुमुनिमदनलालं शुद्धभालं भजध्वम् ॥ १ ॥

हरिगीत छंद

हिन्दी

गुणगण विमल धारण किये, जो आलवाल सुधर्मके
थे हंस सम जो चाल चलते, मूल थे शुभ कर्मके ।
हम मानते हिय तापसे, दूरस्थ उन मतिमानको,
हे भव्य जन भज भावसे, मुनि मदनलाल महानको ॥१॥

अमृतसरससारां शुद्धतत्त्वैकधारां—
प्रशमरसगभीरां भव्यलोका मयूराः ।
मधु-मधुरगिरं ते पीतवन्तोऽत्यनृत्यन्,
सुमुनिमदनलालं शुद्धभालं भजध्वम् ॥ २ ॥

हिन्दी

पीयूष सम अतिशय सरस, अरु शान्त रस गभीरकी ।
तात्त्विक मधुर मधुमय विमल वाणी परममति धीरकी ।
भविजन श्रवण कर नाचते, उन दिव्य सन्त सुजानको,
हे भव्यजन भज भावसे, मुनि मदनलाल महानको ॥ २ ॥

त्वयि शशि निजगत्यां, निष्कलङ्केऽत्रलोकाः,
सुखिन इव यदाऽऽसन्, त्वं ह्यकस्मात्कथं हा ।
गत इत इति खेदै, र्दुःखिनस्ते जनास्तं—
सुमुनि मदनलालं, शुद्धभालं भजध्वम् ॥ ३ ॥

हिन्दी--

अति निष्कलङ्क सदा उदित, परिपूर्णचन्द्र समानसे,
सुखिया सकल दुनियां हुई, पीयूष वाणी पानसे।
हैं आज दुखिया दीखती वे विरहमें श्रीमानको,
हे भव्यजन भज भावसे, मुनि मदनलाल महानको ॥ ३ ॥

यदि कमपि मदीय, मन्तु मालोक्य विज्ञन—
त्यजसि सपदि हा-हा ? त्यज्यतां जीव कायाः।
षडपि निरपराधा, रक्षणीया स्त्वया तं,—
सुमुनि मदनलालं शुद्धभालं भजध्वम् ॥ ४ ॥

हिन्दी--

मुनिवर ! हमारे कोइ भी अपराधसे हा रूठकर
यदि त्याग हमको कर रहे, पर जीव षट्क निकाय पर।
करके दया रक्षा करो, करुणानिलय श्रीमानको,
हे भव्यजन भज भावसे, मुनि मदनलाल महानको ॥ ४ ॥

तरुणकरुणधारी, शुद्धता पूर्वचारी—
जिनवचनविहारी, सर्व पापापहारी।
निबिडतिमिरहारी, ज्ञानदीपात्सदा तं,
सुमुनि मदनलालं, शुद्धभालं भजध्वम् ॥ ५ ॥

हिन्दी--

जो शुद्धता पूर्वक विचरते, तरुणकरुणावान थे,
जो पापहारक सर्वदा, जिनवचनश्रद्धावान थे।
अज्ञानहारक ज्ञानसे, उन दिव्य सन्त सुजानको,
हे भव्यजन भज भावसे, मुनि मदनलाल महानको ॥ ५ ॥

सकलभुवनचिन्ता - हारि - चिन्तामणिर्यः—
पुनरपि जनवाञ्छा, पूरणे कल्पवृक्षः।
सुगतिसरणि नेता, सद्गुरु स्तत्त्ववित्तं,—
सुमुनि मदनलालं शुद्धभालं भजध्वम् ॥ ६ ॥

हिन्दी--

सबके मनोरथ पूर्ण करते, कल्पवृक्ष समानजो,
चिन्ता हरणमें थे पुनः, चिन्तामणी परमान जो।

फिर मोक्ष पथ नेता गुरू उन दिव्य सन्त सुज्ञानको,
हे भव्यजन भज भावसे, मुनि मदनलाल महानको ॥ ६ ॥

शमदम प्रशमाद्या, ये दुरापा गुणास्त्वां
श्रयितुमिह यतन्ते, नो स्थलं ते लभन्ते ।
कथय पुनरुपायं, नामतस्त्वं स्थितस्तं—
सुमुनि मदनलालं, शुद्धभालं भजध्वम् ॥ ७ ॥

हिन्दी--

दुर्लभ प्रशम शमदमगुणादिक शुद्ध अति गुणवानको
निज वास हित पाते नहीं हैं, योग्य सुखमय धामको ।
कह दो मुने ! वे क्या करें हा छोड़ के श्रीमानको,
हे भव्यजन भज भावसे, मुनि मदनलाल महानको ॥ ७ ॥

तव मुनिवर ? शुद्धं दर्शनं स्वप्नमध्ये,—
भवतु करुणदृष्टि र्जायतां सर्व संघे— ।
इति भविजन शुद्धा प्रार्थना यत्कृते तं,
सुमुनि मदनलालं शुद्धभालं भजध्वम् ॥ ८ ॥

हिन्दी—

मुनिराज ! हमको स्वप्नमें भी, आपका दर्शन सदा,
होता रहे हो करुणदृष्टी, संघके ऊपर सदा ।
है भव्य जनकी प्रार्थना, जिनके लिये विद्वानको,
हे भव्यजन भज भावसे, मुनि मदनलाल महानको ॥ ८ ॥

घासीलालकृतं त्वेतदष्टकं भावतः पठेत् ।
यो नरः सततं भक्त्या सत्वरं स सुखी भवेत् ॥ ९ ॥

हिन्दी--

इस अष्टकको जो पढे, वरने मंगलमाल
सदाकाल सुखसे रहे, कहते घासीलाल ॥ ९ ॥

सदेशके शब्द अब तक कानोंमें गूंज कर एक अनुपम रोमांच प्रस्फुटित कर देते हैं।

"धर्म पर जो अधिकार कर लेता है वह उसका जीवन भर साथ देता है। धर्मको अपनानेवाला चाहिये। धर्मको अपनानेमें कितना त्याग करना पड़ता है? पूर्व-पुरुषोंके उदाहरण समक्ष हैं। उन्होंने धर्म पर सब कुछ न्यौछावर कर डाला, उसीके लिये जिये, उसीके लिये मरे। यह छोटी बात नहीं बहुत बड़ी है। धर्म मिलना कठिन नहीं-पालन करना कठिन है। तुम समझदार हो, सुयोग्य हो, जो पाया है उसे संभाल कर रखोगे तो सब तरहसे समुन्नत बनोगे। ईमानदारीसे कदम बढ़ाते रहो तो तुम्हारा जीवन चमकेगा, तब क्याही आनंद आयेगा?"

वास्तवमें उस कल्पवृक्षकी छाया असीम थी, कभी छोटी नहीं हुई, जो आया सभीको उसमें स्थान मिला तथा मिली अद्भुत शांति!

करुणाके सागर:—

गुरुदेवके मनमें करुणाका असीम सागर हिलोरे लेता था। उनके नेत्रोंमें आर्द्रता थी, वाणीमें सान्त्वनाका स्वर तथा हृदयमें दुःख दूर करनेकी लगन। सरल तथा शुद्ध हृदय लेकर जो भी उनके निकट आया, उसे आन्तरिक स्नेहसे सराबोर कर दिया।

जीवन-चित्रण:—

गुरुदेवका जन्म पंजाब प्रान्तके रोहतक जिलेके ग्राम 'राजपुर' में विक्रम सं० १९५२ में हुआ था। पिताश्री मुरारीलालजी व माता गेन्दोबाई-बडे तपोनिष्ठ धर्मात्मा एवं सरल स्वभावके थे।

प्रकृतिने जिस पुष्पको एक कोनेमें खिलाया, किसे पता था वह अपने सौरभसे संसारको सुरभित कर डालेगा।

उस नये फूलका नाम रखा मातापिताने "मौजीराम" चूंकि उनके आंगनमें मौज-खुशी फुट पडी थी। मौजीरामजीका बचपन धार्मिक संस्कारोंमें आगे बढ़ा। ७ वर्षकी उम्रमें मां छोड़ गई। अब पिताही जीवन रक्षक थे, गांवमें कुछ पढाई शुरू की। ९ वर्षके होने पर देहली मौसीके (मासी) घर आ गये। पहाडी धीरज पर बहूत बडा प्रसिद्ध जैन घराना था, जहां मौजीरामजीकी शिक्षा सम्पन्न हुई। यौवनमें कदम रखा। मौसाजीकी दुकानका कार्य संभाल लिया। किंतु जिन्हें बहुत ऊंची आध्यात्मिक साधना करनी होती है, वे भौतिकताके रंगीन वातावरणमें घिरे नहीं रह सकते।

दीक्षाः—

देहलीमें साधू संतोंका आगमन प्रायः सदैव रहा है। चांदनी चौक, बारा दिरीमें उस समय परम पूज्य, चारित्र चूडामणी, युग प्रधान मुनिवर श्री मयारामजी महाराजके परम प्रतापी शिष्य, श्रद्धेय, गणावच्छेदक, श्री छोटेलालजी महाराज विराजमान थे। उन्हीके श्री चरणोंका आश्रय श्री मौजीरामजीको मिला। विक्रम संवत १९७१ भाद्रपद कृष्ण दशमीके दिन बामनौली, जिला मेरठ (उ० प्र०) में बड़ो धामधूमसे दीक्षा हुई। उन्हें श्री छोटेलालजी महाराजके शिष्य बहुश्रुत श्री नाथूलालजी महाराजका शिष्य बनाया गया। और उसी समय नाम परिवर्तनके साथ २ मौजीरामजीसे बदल कर आप श्री मदनलालजी महाराज बन गये।

विनय-भक्ति तथा बुद्धि-प्रतिभा—

विनय-भक्ति, तप-संयम, तथा स्वाध्याय-ध्यानमें प्राण पणसे जुटे रहते थे। बुद्धिप्रतिभा तथा धारणाशक्ति बडी प्रखर थी। ६० गाथाएँ (श्लोक) एक दिनमें याद कर लेते थे। आगमोंका ज्ञान प्राप्त करके बहुश्रुत बने। प्राकृत भाषा पर आपका प्रभुत्व था। मुखसे जो शब्दावली निकलती थी, वह बडी शुद्ध तथा प्रभावोत्पादक होती थी। उनकी वाणीमें ओज था, मनमें उत्साह तथा आत्मामें थी संयमकी लहर।

स्वाध्याय-संयमकी कुंजीः—

लगभग तीन हजार गाथाओंकी स्वाध्याय वे प्रतिदिन किया करते थे। उनका यह विचार रहता था कि प्रतिवर्ष सब आगमोंका अर्थ सहित स्वाध्याय हो। प्रायः कहा करते कि

" यदि श्रमण स्वाध्याय-रत रहे तो बहुत सी व्यर्थ बातोंसे बचा रहेगा। उसकी साधुतामें रस पैदा होगा, तप संयममें रुचि बढेगी।"

वाणीके जादूगर-व्याख्यानवाचस्पति

श्रुतसम्पन्नताके कारण वाचस्पतिजी की वाणीमें अनुभूतिकी स्निग्धता, तर्कका पैनापन और आस्थाकी गंभीरता थी। उनके व्यक्तित्वमें अद्भुत आकर्षण थे-वाणीकी सारगर्भिता, भाव-प्रवणता और भाषाका प्रबल प्रवाह। अपने श्रोताओंके तन और मन पर हुकूमत करना उन्हें खूब आता था। उनकी वाणीके वेगवान प्रवाहमें बहकर उनके श्रोता कभी करुण रसकी धारा फुटने पर बरबस रो उठते थे, और कभी हर्षकी सतह पर थिरकते थे। वाणीके इसी जादूने पंजाब संघकी ओरसे विक्रम सं० १९९२ में उन्हें 'व्याख्यानवाचस्पति' पदसे अभिनन्दित कराया था।

समाजसुधारकः—

अपने युगके समाज सुधारकोंमें वाचस्पतिजी सबके अगुआ थे। युवकों और शिथिलाचारियोंको चेतावनी देनेवाले उनके तीक्ष्ण वचन-बाण, समाज-उत्थान, धर्मप्रचार एवं संयम रक्षाके हितार्थ बजाया गया उनका तेजस्वी बिगुल, अनुशासन और साधू समाचारीके गौरवके सार-संभाल करनेवाले उनके नेत्र-युगम आज एक स्मृतिमात्र बन कर रह गये हैं।

पदकी निर्लोभताः—

गुरुदेव जिस कार्यको हाथमें लेते थे उसके लिये अपनेको अर्पित कर देते थे। साथही आत्माके विरुद्ध दुनियांकी लाख खुशामदोंके बावजूद, उक्त कामको छोडनेमें भी नहीं हिचकते थे जिसको वे उपयुक्त न समझते। श्रमण संघके निर्माणमें जो कार्य उन्होंने किया, वही उनकी कर्मशीलता एक प्रमाण है। अमृतसरसे अर्थात् हिन्दुस्तानके एक छोरसे चले। मौसम सख्त, मार्ग कठिन, तथा शरीर अस्वस्थ। सादडी (मारवाड) पहुँचे। अथक प्रयत्नोंसे साध्यसिद्धिमें जुटे। जब तक मनमें उद्देश्य पूर्ति की आशा रही कभी पीछे न हटे। पर जब ढंग खराब देखा, सुधारकी आशा न रही तो जिस लगन और शानसे जुटे थे, उसी लगन और शानसे पीछे हट गये।

उनके व्यक्तित्व, अनुशासन निष्ठता, संयमकी कड़कता और आगम ज्ञानसे प्रभावित होकर, इन्कार करने पर भी भीनासर साधूसंमेलन के अवसर पर उन्हे प्रधान मंत्री पद दिया गया। किंतु उनकी योग्य देखरेख और यथार्थ पथ प्रदर्शनका लाभ संघके भाग्यमें बंधा नहीं था। श्रमणसंघकी आन्तरिक स्थिति बिगडने लगी। आचार्य आचार्यके अधिकारों का स्पष्टीकरण न हो सका ध्वनियंत्र के मसला सुलझने की बजाय और अधिक उलझने लगा, मन्त्रीमंडलका असंतोषप्रद रुख व कार्य देखा तो उन्होंने प्रधान मंत्री पदसे फौरन त्यागपत्र दे डाला। गुरुदेवका त्यागपत्र इन कार्योंको शीघ्र हल करनेकी प्रेरणा देता, यदि उसे उपेक्षित करके अन्धकारमें फेंक न दिया जाता।

गुरुदेव भी और मंत्रियोंकी तरह कागजीकार्यवाहियोंके बल पर अपने पदको बनाये रख सकते थे, किंतु ऊपरी लापापोती करना वे आत्महननके तुल्य समझते थे।

"संतका जीवन मंगल है वहां मरण भी"

गुरुदेवका जीवन जितना महान था उतनीही मृत्यु भी। एक वर्षसे उन्हें क्रेन्सर था। सर्जिकल इलाजके लिये विनंती की गई तो बडी संजीदगीसे फर्माया—

"भाई ये चंद टके जो संयमके इकट्ठे किये हैं, इस नाशवान् शरीरके लिये नहीं लुटाऊंगा"

सचमुच धन्य थे आप जिन्होंने संयमरूपी टकोंकी संभालमें इस बहुमूल्य शरीरका बलिदान कर दिया।

जंडियाला गुरु (जिला अमृतसर) की पावन भूमि गुरुदेव विराजे थे। रोग बढता जाता था, आहार घटता गया। मूंहके जख्म बढते गये। पानी पीना और सांस लेना कठिन हो गया। अन्तिम दिनोंकी वेदना इतनी भयंकर थी कि वर्णन करने कलमका दिल भी दहल उठता है। दर्शन करके हर आदमी का दिल भर आता था। किंतु वाहरे, उनकी अद्भुत सहनशीलता, शांति और मृदु-सौम्यता! अन्तरात्मा पूर्णतया रोशन थी। उन्होंने अपनी वृत्तियों तथा प्रवृत्तियोंको संक्षिप्त कर लिया था। हर समय आत्म समाधिका ही ध्यान रहता था। अन्तरात्माकी साक्षीसे चौरासी लाख जीवयोनी और चतुर्विध श्री संघसे खमित-खमावना करके आत्मशुद्धिकी ओर अग्रसर हुए। मनि सल्लेखना और संथारे की ओर ध्यान गया। शिष्योंसे संथारा करानेको कहा। मौसमकी वडी गरमी और रोगकी भयंकरताको देख कर शिष्य साहस न कर सके। आखिरकार उस नरसिंहने अन्तिम दिन ता. २७ जून १९६३ को स्वयं संथारा धारण कर लिया और समाधि पूर्वक अपनी महायात्राको सम्पन्न किया।

गुरुदेवके स्मारकः—

गुरुदेवकी सुज्ञ-विज्ञ, सुविनीत शिष्य मंडलीमें कितना त्याग-वैराग्य, कितना आपसी स्नेह-प्रेम, कितनी गुरुभक्ति और आदर है। वास्तवमें सब मुनिराज पूर्ण समर्थ हैं। सुयोग्य हैं। गुरुदेवश्रीके स्मारक स्वरूप हैं। उनकी जीवन्त संस्थाएँ हैं। उनकी अनुपम कृति हैं। उनके दर्शन कर हृदय उल्लसित हो जाता है।

श्रद्धा सुमनः—

गुरुदेवके जीवनका जहांसे स्पर्श करें वहांसे एक मृदु तथा मधुर झंकार सी उठती हैं। शब्दोंमें किस प्रकार संजोयें? क्या अथाह सागर कभी बांधा गया है? फिर भी मनका श्रद्धाको कुछ अकिंचन शब्द सुमनोंमें गूंथनेका प्रयत्न किया है।

कोटि २ वंदनः—

ऐसी विरल विमल विभूति, ज्ञानी-ध्यानी, त्यागी और तपस्वी महान आत्माको मेरे कोठि कोटि वंदन हैं। उनके श्री चरणोंका शरणा जन्म जन्मान्तरों तक प्राप्त हो।

—महताबचंद चोरड़िया दिल्ली

આદ્યમુરબ્બીશ્રીઓ



શેઠશ્રી શાંતિલાલ મંગળદાસભાઈ
અમદાવાદ



(સ્વ.) શેઠશ્રી શામજીભાઈ વેલજીભાઈ
વીરાણી-રાજકોટ



(સ્વ) શેઠશ્રી છગનલાલ શામળદાસ ભાવસાર – અમદાવાદ.



શેઠશ્રી રામજીભાઈ શામજીભાઈ
વીરાણી-રાજકોટ.



વચ્ચે બેઠેલા
લાલાજી કિશનચંદજી સા જોહરી
ઉભેલા સુપુત્ર ચિ મહેતાબચન્દજી સા
નાના – અનિલકુમાર જૈન (દાયત્તા)

આદ્યમુરબ્બીશ્રીઓ



[illegible] શ્રી [illegible] કાલીદાસ વારિઆ
[illegible]



(સ્વ.) શેઠ રંગજીભાઈ મોહનલાલ શાહ
અમદાવાદ



[illegible]



(સ્વ.) શેઠશ્રી દિનેશભાઈ કાંતિલાલ શાહ
અમદાવાદ.

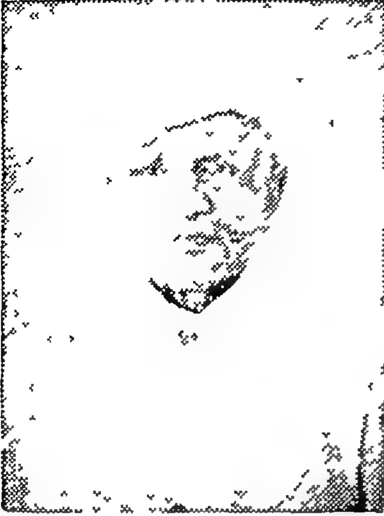


[illegible]



સ્વ. શેઠશ્રી આત્મારામ માણેકલાલ
અમદાવાદ.

આદ્યમુરબ્બીશ્રીઓ



શ્રી વૃજલાલ દુર્લભજી પારેખ
રાજકોટ.



કોઠારી હરગોવિંદ જેચંદભાઇ
રાજકોટ.

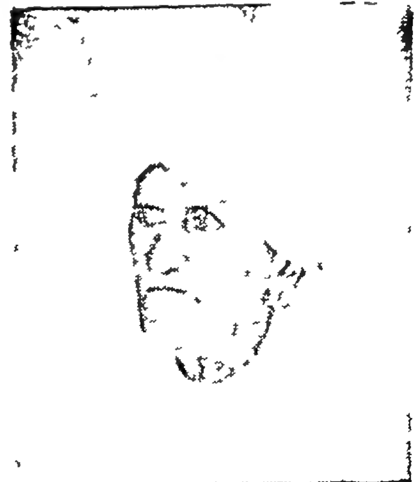




શેઠશ્રી મિશ્રીલાલજી લાલચંદજી સા. લુણિયા
તથા શેઠશ્રી જેવંતરાજજી લાલચંદજી સા.



(સ્વ) શેઠશ્રી ધારશીભાઇ જીવણલાલ
બારસી.

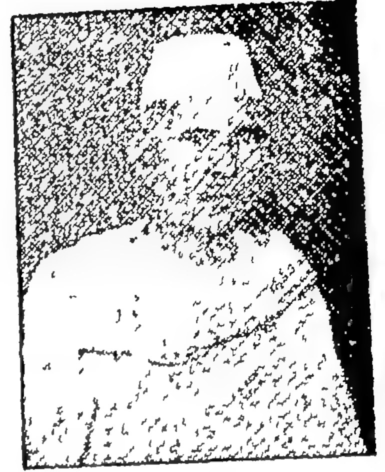


સ્વ શ્રીમાન્ શેઠશ્રી મુકનચંદજી સા.
બાલિયા પાલી મારવાડ

આદ્યમુરબ્બીશ્રીઓ



સ્વ. શેઠશ્રી હરિલાલ અનોપચંદ શાહ
ખંભાત.



स्व. शेठ ताराचंदजी साहेब गेलडा
मद्रास.



श्रीमान् शेट सा. चीमनलालजी सा.
ऋषभचंदजी सा. अजीतवाले (सपरिवार)



૧ વચ્ચે બેઠેલા મોટાભાઇ શ્રીમાન્ મૂલચંદજી
જવાહીરલાલજી બરડિયા
૨ બાજુમા બેઠેલા ભાઈ મિશ્રીલાલજી બરડિયા
૩ ઉભેલા સૌથી નાનાભાઈ પૂનમચંદ બરડિયા



श्रीमान् सेठश्री
खीमराजजी सा. चोरडिया

श्री

स्थानाङ्गसूत्र भाग चौथेकी

विषयानुक्रमणिका

समाप्त

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

श्री जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-पूज्य श्री घासीलालव्रति-
विरचितया सुधाख्यया व्याख्यया समलङ्कृतम्

श्री-स्थानाङ्गसूत्रम्

(चतुर्थो भागः)

अथ पञ्चमस्थानस्य द्वितीयोद्देशः प्रारभ्यते—

उक्तः प्रथमोद्देशकः, सम्प्रति द्वितीयः प्रारभ्यते। अस्य उद्देशकस्य अनन्तरोक्तेन उद्देशकेन सह अयमभिसम्बन्धः—अनन्तरे जीववक्तव्यता प्रोक्ता अस्मिन्नपि सैव उच्यते, इत्यनेन सम्बन्धेनायातस्यास्योद्देशकस्येदमादिमं सूत्रम्—

तथा—प्रथमोद्देशकान्त्यसूत्रेण सहास्य द्वितीयोद्देशकप्रथमसूत्रस्यायमभिसम्बन्धः, तत् सूत्रं केवलिनिर्ग्रन्थापेक्षया प्रोक्तम्, इदं तु छद्मस्थनिर्ग्रन्थापेक्षया प्रोच्यते—तत्र निर्ग्रन्थनिर्ग्रन्थीनां विहारविषये कल्प्याकल्प्यविधिमुपदर्शयति—

पांचवें स्थानका दूसरा उद्देशा

प्रथम उद्देश कहा जा चुका है, अब इस पांचवें स्थानका यह द्वितीय उद्देश प्रारम्भ होता है, इस उद्देशेका गत प्रथम उद्देशेके साथ इस प्रकारसे सम्बन्ध है, कि प्रथम उद्देशेमें जीव वक्तव्यता कही गई है, सो इस उद्देशेमें भी वही कही जावेगी तथा प्रथम उद्देशेके अन्तिम सूत्रके साथ इस द्वितीय उद्देशेके प्रथम सूत्रका सम्बन्ध ऐसा है, कि वह सूत्र केवलीकी अपेक्षासे कहा गया है, और यह छद्मस्थ निर्ग्रन्थकी अपेक्षासे कहा जा रहा है, सो इसमें निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थिनियोंके विहारके विषयमें कल्पाकल्प विधिको सूत्रकार प्रकट करते हैं—

પાંચમા સ્થાનનો બીજો ઉદ્દેશો

પહેલો ઉદ્દેશક પૂરો થયો. હવે પાંચમાં સ્થાનનો બીજો ઉદ્દેશક શરૂ થાય છે આગલા ઉદ્દેશક સાથે આ ઉદ્દેશકનો આ પ્રકારનો સંબંધ છે. પહેલા ઉદ્દેશામાં જીવવક્તવ્યતાનું કથન કરવામાં આવ્યુ છે. આ ઉદ્દેશામાં પણ એ જ વિષયનું પ્રતિપાદન કરવામાં આવશે પહેલા ઉદ્દેશાના છેલ્લા સૂત્ર સાથે આ ઉદ્દેશાનો સંબંધ આ પ્રમાણે છે—

પહેલા ઉદ્દેશાના છેલ્લા સૂત્રમાં કેવલીના અનુત્તરોનું કથન કરવામાં આવ્યું છે, ત્યારે આ સૂત્રમાં છદ્મસ્થ નિર્ગ્રંથના વિહારના વિષયમાં પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યું છે. તેમને (સાધુ અને સાધ્વીઓને) કેવો વિહાર કલ્પે છે અને કેવો વિહાર કલ્પતો નથી, તે સૂત્રકાર અહીં પ્રકટ કરે છે—

मूलम्--नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा इमाओ उद्दिट्ठाओ गणियाओ वियंजियाओ पंच महण्णवाओ महाणईओ अंतो मासस्स दुक्खुत्तो वा तिक्खुत्तो वा उत्तरित्तए वा संतरित्तए वा, तं जहा- गंगा १ जउणा २ सरऊ ३ एरावई ४ मही ५। पंचहिं ठाणेहिं कप्पइ, तं जहा--भयंसि वा १, दुब्भिक्खंसि वा २, पव्वहेज्ज वा णं कोई ३, दओघंसि वा एज्जमाणंसि महया ४ वा अणारिएहिं ५ ॥ सू० १ ॥

छाया—नो कल्पते निर्ग्रन्थानां वा निर्ग्रन्थीनां वा इमा उद्दिष्टा गणिता व्यञ्जिताः पञ्चमहार्णवा महानदीः अन्तर्मासस्य द्विकृत्वो वा त्रिकृत्वो वा उत्तरीतुं वा संतरीतुं वा, तद्यथा—गङ्गा १, यमुना २, सरयू ३, ऐरावती ४, मही ५। पञ्चभिः स्थानैः कल्पते, तद्यथा—भये वा १, दुर्भिक्षे वा २, प्रव्यथते वा खलु कोऽपि ३, दकौघे वा एजमाने महति वा ४, अनार्येषु ५ ॥ सू० १ ॥

टीका—' नो कप्पइ ' इत्यादि —

निर्ग्रन्थानां वा निर्ग्रन्थीनां वा इमाः=अग्रे वक्ष्यमाणत्वेन आसन्नतया प्रत्यक्षा उद्दिष्टाः=' महानद्यः ' इति रूपेण सामान्यतोऽभिहिताः, गणिताः=पञ्चसंख्यकत्वेन गणनाविषयीकृताः, व्यञ्जिताः=गङ्गेत्यादि नाम्ना प्रकटीकृताः, पञ्च=पञ्चसं-

---

'नो कप्पइ निग्गंथाणं वा निग्गंथीणं वा' इत्यादि सूत्र १ ॥

टीकार्थ--निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थिनियोंको ये उद्दिष्ट सामान्यतासे कही हुई गणित पांच संख्यासे गिन के कही हुई व्यञ्जित प्रगट की पांच महार्णववाली महानदियां एक मासके बीचमें दो बार या तीन बार उतरना या नाव आदिमें बैठकर पार करना कल्पित नहीं है, वे नदियां ये हैं–गंगा १ जमुना २ सरयू ३ ऐरावती ४ और मही ५।

"नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा" ઈત્યાદિ—

ટીકાર્થ–શ્રમણ નિર્ગ્રંથો અને નિર્ગ્રંથિનીઓને આ ઉદ્દિષ્ટ, ગણિત, વ્યંજિત, અને પાંચ મહાર્ણવવાળી મહા નદીઓને એક માસમાં બે વાર કે ત્રણ વાર તેમાં ચાલીને અથવા હોડી આદિમાં બેસીને પાર કરવાનું કલ્પતું નથી. તે પાંચ નદીઓનાં નામ નીચે પ્રમાણે છે—

(૧) ગંગા, (૨) યમુના, (૩) સરયૂ, (૪) ઐરાવતી અને (૫) મહી.

ष्यकाः महार्णवाः=बहूदकाः महानदीः मासस्य अन्तः=मध्ये द्वि कृत्वो=वारद्वयं, त्रिःकृत्वो=वारत्रयं वा उत्तरीतुं=बाहुजङ्घादिना लङ्घयितुं सतरीतुं=नावादिना सम्यक्तया लङ्घयितुं वा नो कल्पते। उत्तरणसन्तरणयोरकल्पनीयत्वम् आत्मसयमयोर्विघातस्य शबलचारित्रस्य च संभवात्।

उक्तं च—"अंतोमासस्य तओ दगलेवे करेमाणे सबले"

छाया—अन्तर्मासस्य त्रीन् दकलेपान् कुर्वन् शवल इति। दकलेपः=जला-

पांच कारणोंसे इन महानदियोंके पार करना कल्पित भी है, जैसे–भयके समयमें १ दुर्भिक्षके समयमें २ कोई निरन्तर कष्ट देता हो तो ऐसी स्थितिमें ३ नदियोंका प्रचुर प्रवाह उन्मार्गगामी होनेके समयमें ४ और अनार्यो द्वारा आक्रमण होनेके समयमें ५ इन महानदियोंको जो उद्दिष्ट विशेषण दिया गया है, उसका कारण यह है, कि ये "महानदियां" हैं, इस रूपसे ये कही गई हैं, तथा ये पांच संख्यामें यहां प्रकट की गई है, इसलिये "गणिताः" इस विशेषणसे इन्हे विशेषित किया गया है, तथा "गंगा जमुना" इत्यादि नामों द्वारा इन्हें अभिहित किया गया है, इसलिये "व्यञ्जिता" इस पदसे इन्हें युक्त किया गया है, महार्णव शब्दसे यह समझाया गया है, कि ये महानदियां बहुत पानीवाली होती हैं, इनमें अगाध जल रहता है, इन महानदियोंमें उतरना या इन्हें नाव आदिमें बैठकर पार करना इसलिये निषिद्ध-

નીચેના પાંચ કારણોને લીધે તેમને તે મહા નદીઓ પાર કરવાનું કલ્પે છે પણ ખરૂ—(૧) ભયના સમયમાં, (૨) દુર્ભિક્ષ (દુષ્કાળના) સમયમાં (૩) કોઈ નિરંતર કષ્ટ દેતું હોય એવી પરિસ્થિતિમાં, (૪) નદીઓનો પ્રચુર પ્રવાહ ઉન્માર્ગગામી થાય ત્યારે અને (૫) અનાર્યો દ્વારા આક્રમણ થાય ત્યારે

આ મહાનદીઓને "ઉદ્દિષ્ટ" વિશેષણ લગાડવામાં આવ્યું છે, કારણ કે તેમને ઉદ્દેશીને એમ કહેવામાં આવ્યું છે કે તે મહાનદીઓ છે. તેમને પાંચની સંખ્યામાં અહીં પ્રકટ કરવામાં આવી છે, તેથી તેમને "ગણિતા" આ વિશેષણ લગાડવામાં આવ્યું છે. તથા 'ગંગા, જમુના' આદિ નામો દ્વારા તેમને અભિહિત કરવામાં આવેલ છે, તેથી તેમને "વ્યંજિતા" વિશેષણ લગાડવામાં આવ્યું છે. "મહાર્ણવ" આ શબ્દ દ્વારા એ વાત પ્રકટ કરવામાં આવી છે કે તે મહાનદીઓ બહુ જ પાણીવાળી છે–તેમાં અગાધ જળ હોય છે. આ મહાનદીઓમાં ઉતરવાનો અને નાવ આદિ દ્વારા તેમને પાર કરવાનો, તે કારણે નિષેધ કરવામાં આવ્યો છે કે એવું કાર્ય કરવાથી

वतरणम् । ता एव महानदीः प्राह-तद्यथा-गङ्गा, यमुना इत्यादि । पञ्चस्थानकानुरोधादत्र प्रसिद्धा गङ्गादयो महानद्यः प्रोक्ताः, तेन इतोऽतिरिक्ता अपि बहूदका महानद्यो न कल्पन्ते उत्तरीतुं सन्तरीतुं वेति बोध्यम् । इत्थं निषेधमुक्त्वा सम्प्रति तदपवादमाह-' पंचहिं ठाणेहिं ' इत्यादि । पञ्चभिः स्थानैः साधूनां साध्वीनां वा इमा बहूदका महानदीः उत्तरीतुं संतरीतुं वा कल्पते । यैः स्थानैः कल्पते तानि स्थानानि प्राह-तद्यथा-भये=शत्रुभूतराजादिजनिते धर्मोपकरणापहरणविषयके

कहा गयाहै, कि ऐसे कार्यसे आत्मा और संयमका विराधना होता है, और चारित्रमें शबलता आतीहै। कहा भीहै-"अंतो मासस्स तओ" इत्यादि

दकलेप शब्दका अर्थ जलमें उतरना जलको नाव आदिके द्वारा पार करना ऐसा है, यहां पञ्चस्थानकके अनुरोधसे प्रसिद्ध गंगा आदि महानदियांही प्रकटकी गई हैं, अतः इनसे भी अतिरिक्त जो बहूदकवाली महानदियां हैं, उनमें भी उतरना और उन्हे पार करना भी साधु साध्वीके लिये कल्प्य नहीं है।

इस प्रकारसे यह कथन निषेधमुखसे किया है, अब इस विषयमें जोअपवाद है, उसे प्रकट करनेके निमित्त सूत्रकार कहते हैं-"पंचहिं ठाणेहिं" इत्यादि-हां इन पांच कारणोंके उपस्थित होने पर साधु और साध्वियोंको ये बहूदकवाली महानदियोंमें उत्तरना और उन्हें नाव आदि द्वारा पार करना पडे तो वे कर सकते हैं-वे पांच कारण इस प्रकारसे हैं-शत्रु भूत किसी राजा आदि द्वारा यदि ऐसा भय

આત્મા અને સંયમનો વિઘાત થાય છે, અને ચારિત્રમા શબલતા (કમજોરી) આવે છે. કહ્યું પણ છે કે—" अंतो मासस्स तओ " ઈત્યાદિ.

"દકલેપ" આ શબ્દનો અર્થ "જળમાં ઉતરવું અથવા જલને નાવ આદિ દ્વારા પાર કરવું' થાય છે. અહીં પાંચ સ્થાનનું પ્રકરણ હોવાથી ગંગાદિ પાંચ પ્રખ્યાત મહાનદીઓ જ પ્રકટ કરવામાં આવી છે. પણ તે સિવાયની જે ઘણા પાણીવાળી મહાનદીઓ છે, તેમાં ઉતરવાનું અને તેમને પાર કરવાનું પણ સાધુ સાધ્વીઓને કલ્પતું નથી, એમ સમજવું. આ પ્રકારે તે પાંચ નદીઓને પાર કકવાનો નિષેધ કરવામાં આવ્યો છે. છતાં પણ તેના જે અપવાદો છે, તે હવે પ્રકટ કરવામાં આવે છે—

"પંચહિં ઠાણેહિં" ઈત્યાદિ—નીચેના પાંચ કારણો ઉદ્‌ભવે તો તેઓ અગાધ જળવાળી અને ઉપર્યુક્ત વિશેષણોવાળી તે મહાનદીઓમાં ઉતરી શકે છે, અથવા તેમને નાવ આદિ વડે પાર કરી શકે છે—(૧) કોઈ શત્રુ રાજાને

भये सति २। दुर्भिक्षे वा=अथवा भिक्षाया अभावे सति ३। वा=अथवा कोऽपि शत्रुत्वमापन्नः पुरुषो निरन्तरं प्रव्यथते=अन्तर्भावितण्यर्थत्वाद् व्यथामुत्पादयति चेत्तदा; अथवा-' प्रवहेद् वा खलु कोऽपि ' इतिच्छाया, कोऽपि पुरुषो गङ्गादौ प्रवहेत्-प्रवाहयेत्=प्रक्षिपेत् तदा ३। अत्रापि अन्तर्भावितण्यर्थता। वा=अथवा दकौघे-उन्मार्गगामितया प्रचुरे गङ्गादीनाम् जलसमूहे महता वेगेन एजमाने= आगच्छति सति ४। वा=अथवा अनार्येषु=म्लेच्छेषु आक्रामत्सु सत्सु-म्लेच्छेभ्यो जीवनचारित्रादीनामपहारसंभवात् तदाक्रमणे सति ५। एभिः पञ्चभिः कारणै-र्निर्ग्रन्था निर्ग्रन्थ्यो वा गङ्गाद्या महानदीरुत्तरीतुं संतरीतुं वा शक्नुवन्ति। तदुक्तम्-

" अवाहे दुब्भिक्खे, भए दओघंसि वा महंतंसि।
परिभवतालणं वा, जया परो वा करेज्जासि ॥ १ ॥

छाया—आवाधायाम् दुर्भिक्षे भये दकौघे वा महति।
परिभवताडन वा यदा परो वा करिष्यति ॥ १ ॥ इति ॥ सू० १ ॥

उपस्थित किया गया हो कि जिसमें धर्मोपकरणके अपहरण होनेकी बात हो, अथवा दुर्भिक्ष भिक्षाकी प्राप्ति जब नहीं रही हो अथवा-शत्रुताको धारण करनेवाला कोई पुरुष निरन्तर व्यथाको-कष्टको दे रहा हो-अथवा कोई पुरुष गङ्गा आदिमें बहा देता है, अथवा-उन्मार्गगामी हो जानेसे गंगा आदिका प्रचुर जलसमूह बडे वेगसे बढ रहा हो अथवा-जब म्लेच्छ अनार्यजन आक्रमण कर रहे हों और ऐसी स्थितिमें उनसे जीवनकी या चारित्रकी अपहृति(नाश) होनेकी संभावना हो तो ऐसे इन पांच कारणोंके होने पर निर्ग्रन्थ-साधु साध्वियोंको गंगा

કારણે એવો ભય ઉપસ્થિત થયો હોય છે કે જેને લીધે ધર્મોપકરણના અપ-હરણનો ભય ઉત્પન્ન થયો હોય. (૨) દુર્ભિક્ષને કારણે જો ભિક્ષાની પ્રાપ્તિ અશક્ય બની ગઈ હોય, (૩) અથવા કોઇ શત્રુ નિરન્તર વ્યથા (કષ્ટ) પહોંચાડી રહ્યો હોય, અથવા (૪) ઉન્માર્ગગામી થવાને કારણે ગંગા આદિનો પ્રચુર જલસમૂહ ઘણા જ વેગથી વૃદ્ધિ પામી રહ્યો હોય અથવા કોઇ વ્યક્તિ પોતાને પરાણે ગંગા આદિમાં ડુબાડી દેશે એવો ભય ઉત્પન્ન થયો હોય, અથવા (૫) મ્લેચ્છોનુ જ્યારે આક્રમણ થઇ રહ્યું હોય અને તે કારણે જ્યારે જીવન નષ્ટ થવાનો સંભવ જણાતો હોય. આ પાંચ કારણો જ્યારે ઉપસ્થિત થાય, ત્યારે શ્રમણ નિર્ગ્રંથો અને નિર્ગ્રંથીઓને ગંગાદિ મહાનદીઓમાં ઉતરવાનું અને નાવ આદિ દ્વારા તેમને પાર કરવાનું કલ્પે છે પણ ખરૂ.

मूलम्–णो कप्पइ णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा पढमपाउसंसि गामाणुगामं दूइज्जित्तए । पंचहिं ठाणेहिं कप्पइ, तं जहा–भयंसि वा दुब्भिक्खंसि वा जाव महया वा अणारिएहिं । वासावासं पज्जोसवियाणं णो कप्पइ णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा गामाणुगामं दूइज्जित्तए । पंचहिं ठाणेहिं कप्पइ, तं जहा- णाणट्ठयाए १ दंसणट्ठयाए २ चरित्तट्ठयाए ३ आयरियउवज्झाया वा से विसुंभेज्जा, ४ आयरियउवज्झायाण वा बहिया वेयावच्चकरणयाए ५॥ सू० २ ॥

छाया—नो कल्पते निर्ग्रन्थानां वा निर्ग्रन्थीनां वा प्रथमप्रावृषि ग्रामानुग्रामं द्रोतुम् । पञ्चभिः स्थानैः कल्पते, तद्यथा–भये वा दुर्भिक्षे वा यावत् महता, वा अनार्येषु । वर्षावासं पर्युषितानां नो कल्पते निर्ग्रन्थानां वा निर्ग्रन्थीनां वा ग्रामानुग्राम द्रोतुम् । पञ्चभिः स्थानैः कल्पते, तद्यथा–ज्ञानार्थतया १, दर्शनार्थतया २, चारित्रार्थतया ३, आचार्योपाध्याया वा तस्य विष्वग्भवेयुः ४, आचार्योपाध्यायानां वा बहिः वैयावृत्यकरणतया ५॥ सू० २ ॥

टीका—'णो कप्पइ' इत्यादि--

प्रथमप्रावृषि–प्रावृट्=वर्षाऋतुः सा जघन्यमध्यमोत्कृष्टभेदेन त्रिविधा । तत्र–जघन्या चतुर्मासप्रमाणा–आषाढपूर्णिमायां चातुर्मासनिवासार्थं समागमनात् १,

आदि महानदियोंमें उतरना और नाव आदि द्वारा उन्हें पार करना कल्पित है । कहा भी है—"आवाहे दुब्भिक्खे" इत्यादि ।

इस गाथाका अर्थ पूर्वोक्तानुसारही है ॥सू०१॥

'णो कप्पइ णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा पढमपाउसंसि' इत्यादि २ ॥

टीकार्थ–वर्षा ऋतु जघन्य मध्यम और उत्तमके भेदसे तीन प्रकारकी कही गई है, इनमें चातुर्मास प्रमाण जो वर्षाऋतु है वह जघन्य वर्षाऋतु

કહ્યું પણ એ છે કે "आवाहे दुब्भिक्खे" ઈત્યાદિ—આ ગાથાનો અર્થ ઉપર લખ્યા અનુસાર જ સમજવો. ॥ સૂ. ૧ ॥

"णो कप्पइ णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा पढमपाउसंसि" ઈત્યાદિ—

ટીકાર્થ–વર્ષાઋતુને જઘન્ય, મધ્યમ અને ઉત્કૃષ્ટના ભેદથી ત્રણ પ્રકારની કહી છે. તેમાંથી ચતુર્માસ પ્રમાણ જે વર્ષાઋતુ છે, તેને જઘન્ય વર્ષાઋતુ કહે છે.

मध्यमा पञ्चमासिकी-वृष्टि बाहुल्यादिकारणेनाषाढकृष्णप्रतिपदायामेव समागमनात् २, उत्कृष्टा-षण्मासप्रमाणा पूर्वोक्तकारणवशादाषाढकृष्णप्रतिपदात आरभ्याधिकमाससद्भावेन कार्त्तिकीं यावद् भवति। प्रथमा चासौ प्रावृट् चेति प्रथमप्रावृट्। प्रावृड्-हेमन्त-ग्रीष्मरूपाणां त्रयाणाम् ऋतूनां मध्ये प्रावृषः प्राथम्यात् प्रावृड् ऋतुः प्रथमप्रावृट् इत्युच्यते। तस्मिन् निर्ग्रन्थानां निर्ग्रन्थीनां वा ग्रामानुग्रामम्=ग्राममनुगतो ग्रामः-ग्रामानुग्रामस्तम् नो कल्पते द्रोतुं=गन्तुं

है, वह आषाढकी पूर्णिमासे लेकर चार मास तक निवासके लिये होती है १ मध्यम वर्षाऋतु पांच महिनेकी होती है, वृष्टिकी अधिकता होने पर यह आषाढ कृष्ण प्रतिपदासेही आ जाती है, उत्कृष्ट वर्षाऋतु छह महिनेकी होती है, पूर्वोक्त कारणके वशसे आषाढ कृष्ण प्रतिपदासे लेकर अधिक मासके सद्भाव हो जानेसे कार्तिक तक होती है, प्रथम जो वर्षाऋतु है, वह प्रावृट्-वर्षाऋतु है, इसे जो प्रथम प्रावृट् वर्षाऋतु कहा गया है, उसका तात्पर्य ऐसा है कि प्रावृट् हेमन्त एवं ग्रीष्म इन तीनमें इन तीन ऋतुओंके मध्य में वर्षाऋतुको प्रथम गिना गया है, इसलिये यहां वर्षाऋतुको "प्रथम" विशेषणसे विशेषित किया गया है, तात्पर्य इसका यही है, कि जब वर्षाऋतु प्रारम्भ हो जाती है, तब निर्ग्रन्थों एवं निर्ग्रन्थिनियोंको एक गांवसे दूसरे गांवमें विचरण करना

તે અષાઢી પૂનમથી શરૂ કરીને કાર્તકી પૂનમ સુધીના ચાર માસની હોય છે. મધ્યમ વર્ષાઋતુ પાંચ માસની હોય છે વૃષ્ટિની અધિકતા હોય ત્યારે તે અષાઢી કૃષ્ણ પ્રતિપાદથી શરૂ થઈ જાય છે. (ગુજરાતમાં દરેક માસનો શુકલ પક્ષ પહેલાં અને કૃષ્ણપક્ષ પછી આવે છે જ્યારે મારવાડ વગેરેમાં કૃષ્ણપક્ષ પહેલા અને શુકલપક્ષ પછી આવે છે. આ રીતે અષાઢ વદ એકમથી વર્ષાઋતુ શરૂ થાય તો પાંચ માસની વર્ષાઋતુ થાય છે.) ઉત્કૃષ્ટ વર્ષાઋતુ છ માસની હોય છે. પૂર્વોકત કારણે અષાઢ વદી એકમથી વર્ષાઋતુ શરૂ થતી હોય અને વચ્ચે કોઇ અધિક માસ આવતો હોય ત્યારે વર્ષાઋતુ છ માસની થાય છે. પ્રથમ જે વર્ષાઋતુ છે તેને પ્રાવૃટ્ વર્ષાઋતુ કહે છે. પ્રાવૃટ્-વર્ષા, હેમન્ત અને ગ્રીષ્મ આ ત્રણે ઋતુઓમાં વર્ષાઋતુને પ્રથમ ગણવામાં આવી હોવાથી વર્ષાઋતુની આગળ "પ્રથમ" વિશેષણ વપરાયું છે. આ સૂત્રમાં એવું પ્રકટ કરવામાં આવ્યું છે કે જ્યારે વર્ષાઋતુનો પ્રારંભ થાય છે, ત્યારે નિર્ગ્રંથો અને નિર્ગ્રંથીઓને એક ગામથી બીજે ગામ વિહાર કરવાનો નિષેધ કર્યો છે. આગમમા "આ પ્રકારનો વિહાર સાધુઓને કલ્પતો નથી" એવું વિધાન

जीवैः भूमेर्व्याप्तत्वात् । इत्थं निर्गमननिषेधमुक्त्वा सम्प्रति तदपवादमाह—'पंचहिं ठाणेहिं' इत्यादि । सूत्रोक्तैः भयदुर्भिक्षादिभिः कारणैस्तु गन्तुं कल्पते एवेति । 'वासावासं' इत्यादि—वर्षावासं=वर्षाकालं पर्युषितानां स्थितानां निर्ग्रन्थानां निर्ग्रन्थीनां वा ग्रामानुग्रामं गन्तुं न कल्पते । ज्ञानार्थतादिभिः पञ्चभिः स्थानैस्तु कल्पते एव । तदेवोपदर्शयितुमाह—'पंचहिं ठाणेहिं' इत्यादि । तथाहि—

निषिद्ध है, आगमसे वर्जित हैं, क्योंकि—उस समय द्वीन्द्रियादि जीवोंसे भूमि व्याप्त हो जाती है, इस तरहसे एक ग्रामसे दूसरे ग्राममें जानेका निषेध प्रकट कर अब सूत्रकार इसमें जो अपवाद मार्ग है, उसका कथन करते हैं—"पंचहिं ठाणेहिं कप्पइ" इत्यादि । यद्यपि वर्षाऋतुमें साधु साध्वियोंको एक स्थानसे दूसरे स्थानमें आनाजाना शास्त्राज्ञानुसार निषिद्ध है, और ऐसाही यह उत्सर्ग मार्ग है, परन्तु फिर भी इस विषयमें अपवाद मार्ग ऐसा है, कि यदि सूत्रोक्त भय दुर्भिक्ष आदि कारण उपस्थित हो जाते हैं, तो ऐसी स्थितिमें वर्षाऋतुमें भी साधु आदिको एक स्थानसे दूसरे स्थान ग्राममें जाना कल्पित कहा गया है । "वासावासं पज्जोसवियाणं णो कप्पइ०" इत्यादि—वर्षाकालमें एक स्थान पर ठहरे हुए साधु आदिको एक गांवसे दूसरे ग्राम विहार करना उचित नहीं है—शास्त्राज्ञासे विरुद्ध है, परन्तु—"पंचहिं ठाणेहिं कप्पइ तं जहा णाणट्ठयाए ?" इत्यादि—इन कारणोंको लेकर वे वर्षाकालमें भी एक स्थानसे दूसरे स्थान पर जा सकते हैं, इनमें सबसे पहिला प्रयोजन रूप कारण ऐसा है, कि यदि वे ज्ञान

છે, કારણ કે તે સમયે ભૂમિ દ્વીન્દ્રિયાદિ જીવોથી વ્યાપ્ત હોય છે આ રીતે વર્ષાકાળમાં એક ગામથી બીજે ગામ વિહાર કરવાનો નિષેધ ફરમાવીને હવે સૂત્રકાર તેના જે અપવાદો છે તે પ્રકટ કરે છે

"પંચહિં ઠાણેહિં કપ્પઇ" ઇત્યાદિ—નીચેના પાંચ કારણોમાંથી કોઇ પણ કારણ ઉપસ્થિત થાય તો એવા સંયોગોમાં વર્ષાઋતુમાં પણ સાધુ સાધ્વીને એક ગામથી બીજે ગામ વિહાર કરવો કલ્પે છે "વાસાવાસં પજ્જોસવિયાણં ણો કપ્પઇ" ઇત્યાદિ—વર્ષાકાળમાં કોઈ એક ગામમાં રહેલા સાધુ સાધ્વીને તે ગામથી બીજે ગામ વિહાર કરવો તે ઉચિત નથી—એવું કરવું તે શાસ્ત્રાજ્ઞાથી વિરુદ્ધ છે પરન્તુ "પંચહિં ઠાણેહિં કપ્પઇ તંજહા ણાણટ્ઠયાએ૧" ઇત્યાદિ નીચે બતાવેલા પાંચ કારણોને લીધે તેઓ વર્ષાઋતુમાં પણ એક ગામથી બીજે ગામ વિહાર કરી શકે છે—

ज्ञानार्थतया—ज्ञानमेव अर्थः=प्रयोजन यस्य स ज्ञानार्थः, तस्य भावस्तत्ता तया—ज्ञानप्रयोजनमुद्दिश्य गन्तुं कल्पते । अयं भावः—कश्चिदाचार्योऽपूर्वश्रुतस्कन्धधारको भक्तं प्रत्याख्यातुकामो भवेत् । यदि तत्सकाशादसावपूर्वश्रुतस्कन्धो न गृह्येत तदाऽसौ विच्छिद्येत, अतस्तद्ग्रहणार्थं गन्तुं कल्पते इति १ । एवं दर्शनार्थतया=भक्तं प्रत्याख्यातुकामात् कुतश्चिदाचार्याद् दर्शनप्रभावकशास्त्राध्ययनार्थं गन्तुं कल्पते इति २। तथा—चारित्रार्थतया=यत्र क्षेत्रे वर्षावासस्थितिः कल्पिता,

प्राप्त करनेके लिये अभिलाषी है, तो इस उद्देश्यको लेकर वे उस कालमें विहार कर सकतेहैं१ । तात्पर्य इसका ऐसाहै—कि अपूर्व श्रुतस्कन्धधारक कोई आचार्य हो, और वह भक्तप्रत्याख्यान(सथारा)करनेका अभिलाषी हो रहा तो ऐसी स्थितिमें यदि उसके पास जाकर वह अपूर्व श्रुतस्कन्ध ज्ञान प्राप्त नहीं किया जाता है, तो उसका विच्छेद हो जाता है, अतः वह अपूर्व श्रुतस्कन्ध विच्छिन्न हो जाये इस अभिलाषासे प्रेरित हुआ साधु उस ज्ञानको प्राप्त करनेको वर्षाकालमें भी विहार कर सकता है, दूसरा कारण है, ऐसा है कि दर्शन प्रभावक शास्त्रका ज्ञाता यदि कोई आचार्य भक्त प्रत्याख्यान करनेवाला हो रहा हो तो उससे उस दर्शन प्रभावक शास्त्रको अध्ययन करनेके लिये साधु वर्षाकालमें भी उसके पास जानेके लिये विहार कर सकता है २। तृतीय कारण ऐसा

(૧) જ્ઞાનાર્થે—કોઇ સાધુ જ્ઞાન પ્રાપ્ત કરવાની અભિલાષાવાળો હોય, તો તે ઉદ્દેશ્યને લીધે ને વર્ષાકાળમા પણ વિહાર કરી શકે છે. આ કથનનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે—

અપૂર્વ શ્રુતસ્કન્ધ ધારક કોઇ આચાર્ય હોય, અને તે આચાર્ય ભક્તપ્રત્યાખ્યાન (ચતુર્વિધ આહારના ત્યાગપૂર્વક સંથારો) કરવાની અભિલાષા સેવતો હોય તો એવી પરિસ્થિતિમાં જો તેની પાસે જઇને કોઇ જ્ઞાનપિપાસુ સાધુ તે અપૂર્વ શ્રુતસ્કન્ધ જ્ઞાન પ્રાપ્ત કરી ન લે તો તેનો વિચ્છેદ થઇ જવાનો સંભવ રહે છે તેથી તે અપૂર્વ શ્રુતસ્કન્ધ જ્ઞાન વિછિન્ન ન થઇ જાય એવી શુભ અભિલાષાથી પ્રેરિત થયેલો સાધુ વર્ષાકાળમા પણ તે જ્ઞાનને પ્રાપ્ત કરવા માટે વિહાર કરીને તે શ્રુતસ્કન્ધ ધારક સાધુ પાસે જઇ શકે છે

હવે બીજુ કારણ પ્રકટ કરવામાં આવે છે—દર્શન પ્રભાવક, શાસ્ત્રના જ્ઞાતા એવા કોઇ આચાર્ય ભક્તપ્રત્યાખ્યાન કરવાનો વિચાર કરી રહ્યો હોય તો તે દર્શનપ્રભાવક શાસ્ત્રનો અભ્યાસ કરવા નિમિત્તે સાધુ વર્ષાકાળમાં પણ તેમની પાસે જવાને માટે વિહાર કરી શકે છે.

तत्क्षेत्रं यदि अनेषणास्त्र्यादि दोषदुष्टं भवेत्तदा चारित्ररक्षणार्थं कल्पते गन्तुमिति ३। तथा-आचार्योपाध्यायो वा 'से' इति तस्य साधोः अत्र जातावेकवचनं, तेन तेषां साधूनामित्यर्थः, विष्वग्भवेयुः=शरीरात् पृथग्भवेयुः-म्रियेरन्, तत्र गच्छे चेदन्य आचार्य उपाध्यायो वा न भवेत् तदा तेषां साधूनां कल्पते गन्तुमिति। अथवा-'विसुंभेज्जा' इत्यस्य विश्रम्भेयुरितिच्छाया। आचार्योपाध्यायाः तस्य=तं साधुं विश्रम्भेयुः-विश्वस्युः, तदाऽत्यन्तरहस्यकार्यं कर्तुं तस्य साधो गन्तुं कल्पते इति ४। तथा-आचार्योपाध्यायानां बहिः=वर्षाक्षेत्राद् बहिर्वर्त्तमानानां रोगादिग्रस्तानां वैयावृत्त्यकरणतया=वैयावृत्त्यकरणार्थं साधो गन्तु कल्पते ॥ ५ ॥ इति ॥ सू० २ ॥

है, कि जिस स्थानमें वर्षावास किया है, वह क्षेत्र यदि अनेषणा स्त्री आदिके दोषसे दूषित है, तो अपने चारित्रकी रक्षाके लिये साधु वर्षाकालमें भी अन्यत्र जा सकता है, चतुर्थ कारण ऐसा है, वर्षावास करनेवाले साधुओंका यदि कोई आचार्य अथवा उपाध्याय शरीरसे पृथक् हो गया हो-मर गया हो और उस गच्छमें अन्य आचार्य या उपाध्याय न हो तो ऐसी स्थितिमें उन साधुओंका वर्षाकालमें भी अन्यत्र विहार करना कल्पिक कहा गया है-अथवा-"विसुंभेज्जा" की संस्कृत छाया "विश्रम्भेयुः" ऐसी भी होती है, तो इस पक्षमें इसका ऐसा अर्थ होताहै, कि वे आचार्य अथवा उपाध्याय यदि उस साधु का विश्वास करते हैं, तो अत्यन्त रहस्यमय (गुप्त) उस कार्यको करनेके लिये उस साधुका वर्षाकालमें भी विहार करना कल्पित कहा गया है,

ત્રીજું કારણ આ પ્રમાણે છે—જે સ્થળે ચાતુર્માસમાં વાસ કર્યો હોય, તે ક્ષેત્ર જો અનેષણા, સ્ત્રી આદિના દોષથી દૂષિત હોય, તો પોતાના ચારિત્રની રક્ષા નિમિત્તે સાધુ ત્યાંથી અન્ય સ્થળે વિહાર કરી શકે છે.

ચોથું કારણ આ પ્રમાણે છે—કોઈ ક્ષેત્રમાં ચાતુર્માસ વર્ષાવાસ કર્યા બાદ જો તે સાધુઓના આચાર્ય અથવા ઉપાધ્યાય કાળધર્મ પામી જાય, અને તે ગચ્છમાં અન્ય આચાર્ય અથવા ઉપાધ્યાય ન હોય, તો એવી પરિસ્થિતિમાં તે સાધુઓને વર્ષાકાળ દરમિયાન પણ વિહાર કરવો કલ્પે છે અથવા "વિસુંભેજ્જા" આ પદની સંસ્કૃત છાયા "विश्रम्भेयुः" આ પ્રમાણે પણ થાય છે. તો તે સંસ્કૃત છાયાની અપેક્ષાએ આ પ્રમાણે અર્થ થાય છે--"જો તે આચાર્ય અથવા ઉપાધ્યાય તે સાધુ ઉપર ખૂબ જ વિશ્વાસ ધરાવતા હોય તો કોઈ અત્યન્ત રહસ્યમય કામ કરવાને માટે તે સાધુને વર્ષાકાળમાં પણ વિહાર કરવો કલ્પે છે. પાંચમું કારણ નીચે પ્રમાણે છે—

छद्मस्थाः केचित् अनुद्घातिका भवन्तीति अनुद्घातिकानां पञ्च स्थानानि प्राह—

मूलम्—पंच अणुग्घाइया पण्णत्ता, तं जहा--हत्थकम्मं करेमाणे १, मेहुणं पडिसेवमाणे २, राईभोयणं भुंजमाणे ३, सागारियं भुंजमाणे ४, रायपिंडं भुंजमाणे ५ ॥ सू० ३ ॥

छाया—पञ्च अनुद्घातिकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—हस्तकर्मकुर्वाणः १ मैथुनं प्रतिसेवमानः २ रात्रिभोजनं भुञ्जानः ३ सागारिकपिण्डं भुञ्जानः ४, राजपिण्डं भुञ्जानः ५ ॥ सू० ३ ॥

टीका—' पंच अणुग्घाइया ' इत्यादि—

अनुद्घातिकाः—उद्घातः=लघूकरणं, स न विद्यते यस्य प्रायश्चित्तरूपतपोविशेषस्य तत् अनुद्घातं=गुरु प्रायश्चित्तम्, तदस्ति येषां प्रतिसेवनाविशेषवशात्तेऽनुद्घातिकाः ते च पञ्चसंख्यकाः प्रज्ञप्ताः। तद्यथा—' हस्तकर्मकुर्वाणः ' इत्यादि।

पांचवां कारण ऐसा है, कि वर्षाक्षेत्रसे बाहर वर्तमान आचार्य या उपाध्याय हों और वे रोगग्रस्त हो गये हों तो ऐसी स्थितिमें उनकी वैयावृत्ति करनेके लिये साधुका बाहर जाना कल्पित कहा गया है ५ ।२।

कितनेक छद्मस्थ अनुद्घातिक होते हैं। अतः अब सूत्रकार उन अनुद्घातिकोंके पांच स्थानोंका निरूपण करते हैं—

'पंच अणुग्घाइया पण्णत्ता' इत्यादि सूत्र ३ ॥

टीकार्थ—उद्घात शब्दका अर्थ लघु करनाहै, यह लघुकरण रूप उद्घात जिस प्रायश्चित्त रूप तपविशेषका नहीं होता है, ऐसा वह गुरु प्रायश्चित्त प्रतिसेवना विशेषके वशसे जिनको होता है, वे अनुद्घातिकहैं। ये अनुद्घातिक पांच प्रकारके होतेहैं—एक हस्तकर्मको करनेवाले१ दूसरे

(૫) સાધુઓએ અમુક ક્ષેત્રમાં વર્ષાવાસ કર્યો હોય, અને તે ક્ષેત્રની બહારના કોઈ ક્ષેત્રમાં રહેલા આચાર્ય અથવા ઉપાધ્યાય બીમાર થઈ જાય, તો એવી પરિસ્થિતિમાં તેમનું વૈયાવૃત્ય (સેવા) કરવા માટે સાધુને વિહાર કરવો કલ્પ્ય ગણાય છે. ॥ સૂ. ૨ ॥

કેટલાક છદ્મસ્થ અનુદ્ઘાતિક હોય છે. હવે સૂત્રકાર તે અનુદ્ઘાતિકોના પાંચ સ્થાનોનું નિરૂપણ કરે છે—" પંચ अणुग्घाइया पण्णत्ता " ઇત્યાદિ—

ટીકાર્થ—' ઉદ્ઘાત ' એટલે 'લઘુ કરવું' આ લઘુકરણ રૂપ ઉદ્ઘાત જે પ્રાયશ્ચિત રૂપ તપવિશેષનો થતો નથી એવું તે ગુરુ પ્રાયશ્ચિત્ત પ્રતિસેવના વિશેષના પ્રભાવથી જેમને થાય છે, તેમને અનુદ્ઘાતિક કહે છે. તે અનુદ્ઘાતિક નીચે પ્રમાણે પાંચ પ્રકારના હોય છે—(૧) હસ્ત કર્મ કરનારા, (૨) મૈથુનનું સેવન

" संति मे सुहुमा पाणा, तसा अदुव थावरा ।
जाओ राओ अपासंतो, कहमेसणियं चरे ॥१॥
उदउल्लं बीयसंसत्तं, पाणा निवडिया महिं ।
दिया ताहिं विवज्जिज्जा, राओ तत्थ कहं चरे ॥२॥
एयं च दोसं दट्ठूणं, नायपुत्तेण भासियं ।
सव्वाहारं न भुंजंति, निग्गंथा राइभोयणं ॥३॥

छाया —सन्ती मे सूक्ष्माः प्राणाः त्रसा अथवा स्थावराः ।
यान् रात्रौ अपश्यन्, कथमेषणीयं चरेत् ॥१॥
उदकार्द्रां बीजसंसक्तां प्राणा निपतिता महीम् ।
दिवा तान् विवर्जयेत्, रात्रौ तत्र कथं चरेत् ॥२॥
एतं च दोषं दृष्ट्वा ज्ञातपुत्रेण भाषितम् ।
सर्वाहारं न भुञ्जते निर्ग्रन्था रात्रिभोजनम् ॥३॥ इति ।

जो भोजन रात्रिमें किया जाता है, वह भावकी अपेक्षा रात्रि भोजन है, रात्रिभोजनमें दोष इस प्रकारसे कहे गये हैं—

" संतिमें सुहुमा पाणा " इत्यादि ।

रात्रिमें सूक्ष्म त्रस जीव और स्थावर जीव दृष्टिपथ नहीं होते हैं, अतः अहिंसा व्रतकी रक्षा करनेवाले मुनिजन उसमें भिक्षावृत्ति नहीं करते हैं । पानीसे आर्द्र हुई एवं बीजसे युक्त हुई भूमिमें प्राणी बहुतसे गिरते रहते हैं, अतः दिनमें तो उनका बचाव हो जाता है, परन्तु रात्रिमें इनका बचाव नहीं हो सकता है, इस प्रकारके इस दोषको देखकर ज्ञातपुत्र महावीरने रात्रिमें भिक्षावृत्तिका और रात्रिके भोजनका त्याग करना कहा है ।

આવે છે, તેને ભાવની અપેક્ષાએ રાત્રિભોજન કહે છે રાત્રિભોજનના આ પ્રમાણે દોષો કહ્યા છે—" સતિ મે સુહુમા પાણા " ઇત્યાદિ—

રાત્રે સૂક્ષ્મ ત્રસજીવો અને સ્થાવર જીવો દૃષ્ટિગોચર થતાં નથી તેથી અહિંસા વ્રતની રક્ષા કરનારા મુનિજનો રાત્રે ભિક્ષાવૃત્તિ કરતા નથી. પાણીથી ભીની થયેલી અને બીજથી યુક્ત બનેલી ભૂમિમાં ઘણા જીવો આવી પડતાં હોય છે દિવસે તો સાવધાનીપૂર્વક ચાલવાથી તેમની રક્ષા થઈ જાય છે, પણ રાત્રે તો તેઓ નજરે જ નહીં પડતા હોવાથી તેમની વિરાધના થઈ જાય છે. આ પ્રકારની પરિસ્થિતિનો વિચાર કરીને શ્રમણ ભગવાન મહાવીરે રાત્રે ભિક્ષાવૃત્તિ માટે ફરવાનો અને રાત્રિભોજન કરવાનો નિષેધ કર્યો છે. તથા

तथा—

" जइवि हु फासुगदव्वं, कुन्थू पणगा तहावि दुप्पस्स ।
पच्चक्खं नाणी विहु, राईभत्तं परिहरंति ॥१॥
जइ वि य पिवीलिगाई, दीसंति पईवजोइउज्जोए ।
तहवि खलु आणाइण्णं मूलवयविराहणा जेण " ॥२॥

छाया—यद्यपि खलु प्रासुकद्रव्य कुन्थवः पनकास्तथापि दुर्दर्शाः ।
प्रत्यक्षं ज्ञानिनोऽपि खलु रात्रिभक्तं परिहरन्ति ॥१॥
यद्यपि च पिपीलकादयो दृश्यन्ते प्रदीप ज्योतिरुद्योते ।
तथापि खलु अनाचीर्णं मूलव्रतविराधना येन ॥२॥ इति ।२।

तथा—सागारिकपिण्डम्—अगारेण सह वर्तते सागारः, स एव सागारिकः—शय्यातरः तस्य पिण्डः=आहारः, तं भुञ्जानः । सागारिकपिण्डभोजने हि दोषा भवन्ति । तदुक्तम्—

" तित्थयरपडिक्कुट्ठो, आणा अन्नाय उग्गमे न सुज्झे ।
अविमुत्ति अलाघवया दुल्लहसेज्जा य वोच्छेओ ॥१॥"

छाया—तीर्थंकरप्रतिक्रुष्ट आज्ञा, अज्ञातं उद्गमश्च नो शुध्येत् ।
अविमुक्तिरलाघवता, दुर्लभशय्या च व्युच्छेदः ॥१॥ इति ।

अयं भावः=तीर्थंकरैः प्रतिक्रुष्टो=निषिद्धः शय्यातरपिण्डः, अतः स न

तथा—" जइविहु फासुगदव्वं " इत्यादि

इन गाथाओंका अर्थ स्पष्ट है, अगारसे जो युक्त होता है, वह सागार है, यह सागारही सागारिक है। इसे शय्यातर कहा गया है, इनके घरका आहार जो है, वह सागारिक पिण्ड है, इस सागारिक पिण्डको इसलिये वर्जित कहा है, कि यह सदोष होता है। जैसे कहा है—

" तित्थयरपडिक्कुट्ठो " इत्यादि ।

शय्यातरपिण्डका लेना तीर्थंकरोने निषिद्ध किया है, अतः जो

" जइ वि हु फासुगदव्वं " ઇત્યાદિ—

આ ગાથાઓનો અર્થ સ્પષ્ટ છે. અગાર (દોષ)થી યુક્ત જે હોય છે, તેને સાગાર કહે છે. તે સાગાર જ સાગારિક છે તેને શય્યાતર કહેવામાં આવેલ છે. જે સાધુએ જે શ્રાવકાદિના ઘરમાં આશ્રય લીધો હોય, તે ઘરના આહારને શય્યાતર પિંડ અથવા સાગારિક પિંડ કહે છે તે સાગારિક પિંડનો નિષેધ કરવાનું કારણ એ છે કે તે સદોષ હોય છે. કહ્યું પણ છે કે—

" तित्थियरपडिक्कुट्ठो ઇત્યાદિ—

શય્યાતર ગ્રહણ કરવાનો તીર્થંકરોએ નિષેધ કર્યો છે, તેથી જે સાધુ

ग्राह्यः अथ तं साधु गृह्णीयात्, तदा तीर्थकृतामाज्ञा विराधिता भवेत्। शय्यातरस्य गृहे निवासवशात्तद्भैक्षमज्ञातं न भवतीति तदज्ञातत्वं स्वरूपतया न शुध्येत्। तथा-प्रत्यासन्नतया भैक्षपानादिनिमित्तं भूयोभूयस्तद्गृहे प्रविशतः साधोरुद्गमोऽपि न शुध्येत्। तथा-साधोः अविमुक्तिः=लोभो भवेत्=स्वाध्यायश्रवणादिना आवर्जितः शय्यातरो दधिदुग्धादिकं प्रणीतं द्रव्यं साधवे दद्यात्। साधुश्च तद्ग्रहणलोलुपतया तद्गृहं न परित्यजेदिति। तथा-अलाघवता-प्रचुरविशिष्टान्नपानादि लाभेन शरीरालाघवता प्रचुरवस्त्रादिलाभेन उपकरणालाघवता च भवेत्। तथा-दुर्लभशय्या-" येन किल शय्या दीयते, तेन आहाराद्यपि देयम् "-इति भयाद् गृहिणः शय्या न प्रयच्छेयुः, ततश्च साधूनां दुर्लभा शय्या भवेत्। इत्थ

साधु इसे लेता है, वह तीर्थंकरोंकी आज्ञाका विराधक होता है१, दूसरा शय्यातरके गृहमें निवासके वशसे उसका भैक्ष अज्ञात नहीं रहता है, अतः उसकी अज्ञातता स्वरूपसे शुद्ध नहीं होतीहै२, तीसरे उसके प्रत्यासन्न (समीप)होनेसे भैक्ष पान आदिके निमित्त बार२ उसके घरमें प्रवेश करनेवाले साधुका उद्गम दोषभी शुद्ध नहीं होताहै३, चौथे साधुको ऐसा लोभ भी हो जाता है, कि स्वाध्याय श्रवण आदिसे आकृष्ट हुआ शय्यातर मेरे लिये प्रणीत पुष्टिकर दहि दुग्ध आदि द्रव्य देगा। इस प्रकारके लोभसे आकृष्ट हुआ साधु उसके घरको नहीं छोडता है, प्रचुर विशिष्ट अन्न पान आदिके लाभसे उसके शरीरमें अलाघवता एवं प्रचुर वस्त्रादिके लाभसे उपकरण सम्बन्धी अलाघवता हो सकती हैं४, तथा-दुर्लभशय्या-" जो शय्या स्थान देता है, वह आहार आदि

તેને લે છે, તે તીર્થંકરોની આજ્ઞાનો વિરાધક બને છે. વળી શય્યાતરના ઘરમાં નિવાસને લીધે તેનો ભૈક્ષ (ભોજનની સામગ્રી) અજ્ઞાત રહેતો નથી, તેથી તેની અજ્ઞાતતા સ્વરૂપની અપેક્ષાએ શુદ્ધ હોતી નથી વળી તેની સમીપમાં જ રહેલા હોવાને કારણે આહારપાણી આદિને માટે વારંવાર તેના ઘરમાં પ્રવેશ કરનાર સાધુનો ઉદ્ગમ પણ શુદ્ધ હોતો નથી વળી સાધુના મનમાં એવો લોભ થાય છે કે સ્વાધ્યાય શ્રવણ આદિ દ્વારા મારી તરફ આકર્ષિત થયેલો શય્યાતર મારે માટે ઘી, દૂધ, આદિ પુષ્ટિકર દ્રવ્યો આપશે. આ પ્રકારના લોભથી યુક્ત થયેલો સાધુ તેનું ઘર છોડતો નથી પ્રચુર અન્ન આદિના લાભથી તેના શરીરમાં અલાઘવના આવી જાય છે અને પ્રચુર વસ્ત્રાદિના લાભથી ઉપકરણ સંબંધી અલાઘવતા આવી જવાનો સભવ રહે છે તથા " દુર્લભશય્યા " " જે શય્યાસ્થાન દે છે તે આહારાદિ પણ દેશે,"

शय्यातरात् पिण्डदाने शय्याया एव व्युच्छेदो भवेदिति। तथा—शय्यातरात् तृण क्षारडगलशय्यासंस्तारपीठफलकादीनां सोपधिकस्य शैक्षस्य चादाने नास्ति दोष इति ४। तथा—राजपिण्डं—राज्ञः पिण्डो राजपिण्डस्तं भुञ्जानः। राजात्विह चक्रवर्तिबलदेववासुदेवादि गृह्यते। तदर्थं निष्पन्नं पिण्ड भुञ्जानः ५। एतैरनन्तरोक्तैः पञ्चभिः कारणैः साधवो गुरुप्रायश्चित्तार्हा भवन्तीति ॥ सू० ३ ॥

राज्ञोऽधिकारात् सम्प्रति राजान्तःपुरमाश्रित्य सूत्रमाह—

मूलम्—पंचहिं ठाणेहिं समणे णिग्गंथे रायंतेउरमणुपविसमाणे नाइक्कमइ, तं जहा—नगरे सिया सव्वओ समंता गुत्ते

भी देगा' इस भयसे गृहस्थजन शय्या भी नहीं देते अतः साधुजनोंको शय्या दुर्लभ हो सकती है, इस प्रकार शय्यातरसे पिण्डके लेनेमें शय्याहीका व्युच्छेद हो सकता है, शय्यातरसे तृण, क्षार डगल (?) शय्या संस्तार, पीठफलक एवं सोपधिक (वस्त्र पात्र आदि उपकरण सहित) शिष्य के लेने में (?) कोई दोष नहीं है१। राजपिण्डमें राजपदसे चक्रवर्ती, बलदेव और वासुदेव आदि गृहीत हुए हैं। इनके लिये निष्पन्न हुए पिण्डको जो लेता है-उसे अपने आहारके उपयोगमें लाता है, वह राजपिण्ड भोक्ता है२, इस प्रकार हस्तकर्म करनेवाला, मैथुनका प्रतिसेवन करनेवाला, रात्रिभोजन करनेवाला, सागारिक पिण्डका भोजन करनेवाला, और राजपिण्डका भोजन करनेवाला साधुजन गुरु प्रायश्चित्तके योग्य होते हैं ॥ सू० ३ ॥

આ પ્રકારની ભાવના સાધુ સેવવા માંડે, તો ગૃહસ્થ દ્વારા શય્યાસ્થાન દેવાનું પણ બંધ થઇ જાય, આ રીતે સાધુઓને માટે શય્યાસ્થાન પણ દુર્લભ થઇ જાય. આ રીતે શય્યાતરની પાસેથી પિંડ લેવામા શય્યાનો જ વ્યુચ્છેદ થવાનો ભય રહે છે શય્યાતર પાસેથી તૃણ, ક્ષાર, શય્યાસંસ્તાર, પીઠ, ફલક અને સોપધિક (વસ્ત્ર પાત્ર આદિ ઉપધિ સાથે) શિષ્ય લેવામાં કોઇ દોષ લાગતો નથી.

રાજપિંડ એટલે રાજાને માટે તૈયાર થયેલ આહાર રાજપિંડ ગ્રહણ ગ્રહણ કરવામાં પણ સાધુને દોષ લાગે છે. 'રાજા' પદથી અહીં ચક્રવર્તી બળદેવ, વાસુદેવ આદિ ગૃહીત થયેલ છે.

આ રીતે હસ્તકર્મ કરનાર, મૈથુનનું પ્રતિસેવન કરનાર, રાત્રિભોજન કરનાર સાગારિક પિંડનો આહાર કરનાર અને રાજપિંડનો આહાર કરનાર સાધુ ગુરુ પ્રાયશ્ચિત્તને પાત્ર બને છે. ॥ સૂ. ૩ ॥

गुत्तदुआरे, बहवे समणमाहणा णो संचाएंति भत्ताए वा पाणाए वा निक्खमित्तए वा पविसित्तए वा, तेसिं विन्नवणट्ठयाए रायंतेउरमणुपविसिज्जा १, पाडिहारियं वा पीढफलगसेज्जासंथारगं पच्चप्पिणमाणे रायंतेउरमणुपविसिज्जा २, हयस्स वा गयस्स वा दुट्ठस्स आगच्छमाणस्स भीए रायंतेउरमणुपविसिज्जा ३, परो व णं सहसा वा बलसा वा बाहाए गहाय अंतेउरमणुपवेसेज्जा ४, बहिया व णं आरामगयं वा उज्जाणगयं वा रायंतेउरजणो सव्वओ समंता संपरिक्खिवित्ता णं निवेसिज्जा ५। इच्चेएहिं पंचहिं ठाणेहिं समणे णिग्गंथे जाव णाइक्कमइ ॥ सू० ४ ॥

छाया—पञ्चभिः स्थानैः श्रमणो निर्ग्रन्थो राजान्तःपुरमनुप्रविशन् नातिक्रामति, तद्यथा–नगरं स्यात् सर्वतः समन्तात् गुप्तं गुप्तद्वारम्, बहवः श्रमणमाहना नो शक्नुवन्ति भक्ताय वा पानाय वा निष्क्रमितुं वा प्रवेष्टुं वा, तेषां विज्ञापनार्थाय राजान्तःपुरमनुप्रविशेत् १, प्रातिहारिकं वा पीठफलकशय्यासंस्तारकं प्रत्यर्पयन् राजान्तःपुरमनुप्रविशेत् २, हयाद् वा गजाद् वा दुष्टात् आगच्छतो भीतो राजान्तःपुरमनुप्रविशेत् ३, परो वा खलु सहसा वा बलेन वा बाहौ गृहीत्वा अन्तःपुरमनुप्रवेशयेत् ४, बहिर्वा खलु आरामगतं वा उद्यानगतं वा राजान्तःपुरजनः सर्वतः समन्तात् सम्परिक्षिप्य खलु निवेशयेत् ५. इत्येतैः पञ्चभिः स्थानैः श्रमणो निर्ग्रन्थो यावत् नातिक्रामति ॥सू० ४॥

टीका—'पंचहिं ठाणेहिं' इत्यादि—

पञ्चभिः स्थानैःकारणैः श्रमणो निर्ग्रन्थो राजान्तःपुरं अनुप्रविशन् नातिक्रामति–तीर्थकृताम् आज्ञाया उल्लङ्घको न भवति, तान्येव स्थानानि प्राह–तद्यथा–

राजाके अधिकारको लेकर अब सूत्रकार राजाके अन्तःपुरको आश्रित करके सूत्र कहतेहैं–'पंचहिं ठाणेहिं समणे णिग्गंथे' इत्यादिसूत्र४॥

टीकार्थ–पांच कारणोंको लेकर राजाके अन्तःपुरमें प्रवेश करता हुआ मुनिजन तीर्थंकरोंकी आज्ञाका उल्लङ्घन करनेवाला नहीं होताहै, वे पांच

આગલા સૂત્રમાં રાજાનો ઉલ્લેખ થયો છે આ સંબંધને લીધે સૂત્રકાર હવે રાજાના અંતઃપુર વિષેના સૂત્રનું કથન કરે છે

ટીકાર્થ–" પંચહિં ઠાણેહિં સમણે ણિગ્ગથે " ઈત્યાદિ—

નીચે દર્શાવવામાં આવેલાં પાંચ કારણોને લીધે રાજાના અન્તઃપુરમાં

नगरं सर्वतः समन्तात्=दिक्षु विदिक्षु गुप्तं=रक्षितं प्राकारपरिवेष्टितत्वात्, गुप्तद्वारम्-गुप्तानि=पिहितानि द्वाराणि यस्य तत्तथा स्यात्=भवेत्, ततश्च किम्? इत्याह-तेन हेतुना बहवः श्रमणमाहनाः श्राम्यन्ति=तपस्यन्तीति श्रमणाः,'मा हन्याः' मा मारय इत्युपदेशवन्तः माहनाः, श्रमणाश्च माहनाश्चेति कर्मधारयः, उत्तरगुणमूलगुणयुक्ताः संयता इत्यर्थः, अथवा-श्रमणाः=शाक्याः माहनाः=ब्राह्मणाः, भक्ताय वा पानाय वा निर्गन्तुं नगराद्बहिर्गन्तुं वा प्रवेष्टुं वा नो शक्नुवन्ति, तदा तेषां=श्रमणमाहनानां विज्ञापनार्थाय=अन्तःपुरस्थस्य राज्ञः प्रमाणभूतराज्ञ्या वा सन्निधौ प्रयोजनं विज्ञापयितुं राजान्तःपुरम् अनुप्रविशेत्। इति प्रथमं स्थानम् १। वा=अथवा साधुः प्रातिहारिकं प्रतिह्रियते=प्रयोजनवशादानीय पुनरर्प्यते यत्तत्प्रातिहारिकं पुनः

कारण इस प्रकारसे हैं, जैसे-कोई नगर प्राकारसे परिवेष्टित होनेसे गुप्त हो, रक्षित हो, गुप्तद्वारवाला हो-जिसके दरवाजे बन्द हो रहे हों ऐसा हो, अतः अनेक श्रमणमाहण-उत्तरगुण मूलगुण युक्त संयत अथवा-श्रमण-शाक्य और माहण दयाका उपदेश देनेवाला आहार पानके लिये नगरसे बाहर जानेके लिये या उसमें प्रवेश करनेके लिये समर्थ न हो रहे हों तो ऐसी स्थितिमें उन श्रमण माहनोंकी इस प्रकारकी खबर देनेके लिये-अन्तःपुरमें स्थित राजाके पास अथवा प्रमाणभूत रानीके पास उनके प्रयोजनको प्रकट करनेके लिये-श्रमण निर्ग्रन्थ राजाके अन्तःपुरमें प्रवेश कर सकता है १। ऐसा यह प्रथम कारण है, द्वितीय कारण ऐसा है, कि प्रातिहारिक प्रयोजनवश लाकरके देनेके

પ્રવેશ કરતો શ્રમણ નિર્ગ્રંથ તીર્થંકરોની આજ્ઞાનો વિરાધક બનતો નથી. કોઈ નગર કોટથી ઘેરાયેલું હોવાને લીધે ગુપ્ત હોય, રક્ષિત હોય, ગુપ્ત દ્વારવાળું હોય એટલે કે જેના દરવાજા બંધ કરી દેવામાં આવ્યા હોય, અને તે કારણે એવી પરિસ્થિતિ પેદા થઈ હોય કે અનેક શ્રમણ અને માહણ (ઉત્તરગુણ મૂલગુણ) યુક્ત સંયત અથવા શ્રમણ એટલે શાકય મુનિઓ અને માહણ એટલે દયાનો ઉપદેશ આપનારા સાધુઓ) આહાર પાનની પ્રાપ્તિ માટે નગરની બહાર પણ જઈ શકતા ન હોય અને બહારથી નગરની અંદર પ્રવેશ પણ કરી શકતા ન હોય, તો આ પ્રકારની પરિસ્થિતિમાં તે શ્રમણ માહણોની તે પ્રકારની સ્થિતિનું રાજા પાસે નિવેદન કરવા માટે અથવા પ્રમાણભૂત રાણીની પાસે તેમના પ્રયોજનને પ્રકટ કરવા માટે કોઈ પણ શ્રમણ નિર્ગ્રંથ રાજાના અંતઃપુરમાં પ્રવેશ કરે, તો તે જિનાજ્ઞાનો વિરાધક ગણાતો નથી.

समर्पणीयं पीठफलकशय्यासंस्तारकं-तत्र पीठं=चतुष्किकादिकम्, फलकः= पट्टादिकः, शय्या=शरीरप्रमाणा, संस्तारकः=अर्द्धतृतीयहस्तप्रमाणः, पीठादीनां द्वन्द्व एकवद्भावश्च, तत् प्रत्यर्पयन्=प्रत्यर्पयितुकामो राजान्तःपुरमनुप्रविशेत्। पीठादीनां प्रत्यर्पणं तदानयनं विना नोपपद्यते, अतस्तदानयनार्थमपि साधूना मन्तःपुरप्रवेशो न तीर्थकृदाज्ञाविराधको भवतीति बोध्यम्। इति द्वितीयम् २। तथा आगच्छतो दुष्टात्=उन्मत्ताद् हयाद् वा गजाद् वा भीतः साधू राजान्तः-पुरम् अनुप्रविशेत्-इति तृतीयं स्थानम ३। तथा-परः-स्वातिरिक्तः कश्चिज्जनः तस्करादिशङ्कया सहसा=अकस्मात् बलेन=बलपूर्वकं बाहौ गृहीत्वा राजान्तः-पुरम् अनुप्रवेशयेत् इति चतुर्थं स्थानम् ४। तथा-बहिः=नगराद् बहिः आरा-

---

योग्य ऐसे जो पीठ, फलक, शय्या, संस्तारक हैं, उन्हे वापिस करनेकी इच्छावाला मुनिजन अन्तःपुरमें प्रवेश कर सकता है २। चौकी आदिका नाम पीठ है, पट्ट आदिका नाम फलक है, शरीर प्रमाण शय्या होती है, और अढाई हाथ प्रमाण संस्तारक होताहै, पीठादिकोंका प्रत्यर्पण उन्हें लाये विना तो होता नहीं है, अतः इन्हें लेनेके लिये भी साधुका अन्तःपुरमें प्रवेश करना तीर्थंकरकी आज्ञाका विराधक नहीं होता है, इस प्रकारका यह द्वितीय स्थान है, तृतीय स्थान इस प्रकारसे है, यदि कोई दुष्ट उन्मत्त-हय-घोडा अथवा-गज आ रहा हो तो उससे डरा हुआ साधु राजाके अन्तःपुरमें प्रवेश कर सकताहै, ऐसा यह तृतीय कारण है, चौथा कारण ऐसा है, कि कोई मनुष्य तस्करादिकी शङ्कासे जब-

---

(૨) પીઠ, ફલક, શય્યા, સંસ્તારક આદિ જે ચીજો લાવ્યા હોય તે પાછી સોંપવાને માટે પણ સાધુ રાજાના અન્તપુરમાં પ્રવેશ કરી શકે છે. ચૌકી (બાજોઠ) આદિને ‘પીઠ’ કહે છે, પટ્ટ આદિને ‘ફલક’ કહે છે. શરીરપ્રમાણ શય્યા હોય છે અને અઢી હાથપ્રમાણ સંસ્તારક હોય છે પીઠ આદિ પહેલા લાવ્યા હોય તો જ પાછું આપવાનો પ્રશ્ન ઊભો થાય છે, તેથી પ્રયોજનવશ પીઠ, ફલક આદિ લેવા માટે રાજાના અંતપુરમાં પ્રવેશ કરનાર સાધુ પણ જિનાજ્ઞાનો વિરાધક ગણાતો નથી.

ત્રીજું કારણ નીચે પ્રમાણે છે—કોઈ મુનિ ભિક્ષાચર્યા આદિ કારણે નીકળ્યા હોય, ત્યારે કોઈ ઉન્મત ઘોડો હાથી આદિ માર્ગ ઉપર દોડી રહ્યા હોય, તો તેનાથી બચવા માટે તે સાધુ રાજાના અંતઃપુરમાં પ્રવેશ કરે, તો જિનાજ્ઞાનો વિરાધક ગણાતો નથી.

ચોથું કારણ—કોઇ અમલદાર અથવા માણસ તેને ચોર માની લઇને

मगतम्-आरामः-विविधपुष्पजात्युपशोभितः स्थानविशेषः, तत्र गतं=स्थितं, वा= अथवा उद्यानगतम्-उद्यानम्=पुष्पफलोपेतवृक्षयुक्तं स्थानं, तत्र गतं साधुं कौतूहला-दिवशाद् राजान्तःपुरजनः सर्वतः समन्तात्=चतुर्दिग्भ्यः सम्परिक्षिप्य=उत्थाप्य खलु राजान्तःपुरं निवेशयेत् । इति पञ्चमं स्थानम् ५। निगमयन्नाह-इत्येतैः पूर्वोक्तैः पञ्चभिः स्थानैः राजान्तःपुरमनुप्रविशन् श्रमणो निर्ग्रन्थो नातिक्रामति तीर्थकृदाज्ञाया विराधको न भवतीति ॥सू० ४॥

अन्तःपुराधिकारात् सम्प्रति स्त्रीमतं क्रियाविशेषमाह—

मूलम्-पंचहिं ठाणेहिं इत्थी पुरिसेण सद्धिं असंवसमाणीवि गब्भं धरेज्जा, तं जहा--इत्थी दुव्वियडा दुन्निसण्णा सुक्कपोग्गले अधिट्ठिज्जा १, सुक्कपोग्गलसंसिट्ठेव सेवत्थे अंतोजोणीए अणुपवि-सेज्जा २, सयं वा सा सुक्कपोग्गले अणुपवेसेज्जा ३, परोव से

दूसरी अकस्मात् हाथोंको पकड़कर राजाके अन्तःपुरमें डाल देना है, तो ऐसी स्थितिमें वह साधु तीर्थंकरकी आज्ञाका विराधक नहीं होता है, अथवा-नगरसे बाहर उद्यानमें स्थित हुए साधुको विविध पुष्पजातिसे उपशोभित स्थान विशेषमें स्थित मुनिको-अथवा उद्यानमें-पुष्पफलसे सुशोभित वृक्षोंसे युक्त स्थानमें-स्थित मुनिको योंही कौतूहल आदिके वशसे राजाके अन्तःपुरका जन ऊंचा उठाकर उसमें रख दे तो ऐसी स्थितिमें वह साधु तीर्थंकरकी आज्ञाका विराधक नहीं होता है। इस तरहके इन पांच कारणोंसे राजाके अन्तःपुरमें प्रविष्ट हुआ मुनिजन तीर्थंकरकी आज्ञाका विराधक नहीं होता है ॥ सू० ४ ॥

પરાણે પકડીને તેને અંતઃપુરમાં રાજાની સમક્ષ ખડો કરે, તો એ પરિસ્થિ-તિમાં પણ તે સાધુ જિનાજ્ઞાનો વિરાધક ગણાતો નથી.

પાંચમું કારણ—નગરની બહાર ઉદ્યાન આદિ સ્થાનમાં વિવિધ પુષ્પોથી સુશોભિત સ્થાનવિશેષમાં રહેલા કોઈ મુનિને અંતઃપુરનો કોઈ માણસ કુતૂહલથી પ્રેરાઈને અંતઃપુરમાં ઉપાડીને લઈ જાય, તો એવી પરિસ્થિતિમાં પણ તે સાધુ જિનેશ્વર ભગવાનની આજ્ઞાનો વિરાધક ગણાતો નથી. આ પ્રકારના પાંચ કારણોમાંના કોઈ પણ કારણે રાજાના અંતઃપુરમાં પ્રવેશ કરનાર મુનિ તીર્થંકરની આજ્ઞાનો વિરાધક ગણાતો નથી. ॥ સૂ. ૪ ॥

सुक्कपोग्गले अणुपवेसेज्जा ४, सीओदगवियडेण वा से आयममाणीए सुक्कपोग्गला अणुपविसेज्जा ५! इच्चेएहिं पंचहिं ठाणेहिं जाव धरेज्जा ॥ सू० ५ ॥

छाया—पञ्चभिः स्थानैः स्त्री पुरुषेण सार्द्धम् असंवसन्ती अपि गर्भं धरेत्, तद्यथा—स्त्री दुर्विवृता दुर्निषण्णा शुक्रपुद्गलान् अधितिष्ठेत् १, शुक्र पुद्गलसंसृष्टं वा तस्या वस्त्रम् अन्तर्योनौ अनुप्रविशेत् २, स्वयं वा सा शुक्रपुद्गलान् अनुप्रवेशयेत् ३, परो वा तस्याः शुक्रपुद्गलान् अनुप्रवेशयेत् ४, शीतोदकविकटेन वा तस्या आचामन्त्याः शुक्रपुद्गला अनुप्रविशेयुः ५। इत्येतैः पञ्चभिः स्थानै यावद् धरेत्॥सू०५॥

टीका—पंचहिं ठाणेहिं ' इत्यादि—

वक्ष्यमाणैः पञ्चभिः स्थानैः=कारणैः स्त्री पुरुषेण सार्द्धम् असंवसन्ती अपि=पुरुषमसंगताऽपि गर्भं धरेत्=धर्तुं शक्नुयात्। तान्येव स्थानान्याह—तद्यथा—स्त्री दुर्विवृता=विवृता=विगतावरणा, दुष्ठुविवृता, दुर्विवृता—विवृतात्वं तूत्तरीयापरिधानेनापि संभवतीति दुरिति विशेषणमुक्तं, तेन सर्वथा नग्नेत्यर्थः। एतादृशी सती दुर्निषण्णा=दुष्ठु निषण्णा=उपविष्टा=वैरूप्येणोपविष्टेत्यर्थः एवंभूता सती शुक्रपुद्गलान्=कथंचित् पुरुषनिसृष्टान् वीर्यपुद्गलान् अधितिष्ठेत्=योन्याकथंचिदाकृष्य संगृह्णीयात्। इति प्रथमं स्थानम्। तथा—शुक्रपुद्गलसंसृष्टं=कथंचिच्छुक्रपुद्गलयुक्तं

अन्तःपुरके अधिकारसेही अब सूत्रकार स्त्रीगत क्रिया विशेषका कथन करते हैं—पंचहिं ठाणेहिं इत्थी पुरिसेण सद्धिं इत्यादि सूत्र ५॥

टीकार्थ-पांच कारणोंसे पुरुषके साथ नहीं रहती हुई भी पुरुषके साथ संगम नहीं करती हुई भी स्त्री गर्भवती हो सकती है, वे पांच कारण इस प्रकारसे हैं-कोई स्त्री बिलकुल नग्नावस्थामें योनिको प्रसार कर उस स्थान पर यदि बैठ जाती है, कि जहां पर पुरुषका वीर्य पहिलेसे निकला हुआ पड़ा हो तो ऐसी स्थितिमें वह अपनी योनि द्वारा किसी तरहसे उन वीर्य पुद्गलोंको खींचकर उसके भीतर लेजाकर गर्भ धारण

અન્તઃપુરના અધિકારની સાથે સુસંગત એવા સ્ત્રીગત ક્રિયાવિશેષોનો અધિકાર આપવામાં આવે છે—" पंचहिं ठाणेहिं इत्थी पुरिसेण सद्धिं "ઈત્યાદિ—

ટીકાર્થ—પુરુષની સાથે સંભોગ ન કરવા છતાં પણ નીચેના પાંચ કારણોને લીધે સ્ત્રી ગર્ભવતી બની શકે છે—(૧) કોઈ સ્ત્રી બિલકુલ નગ્નાવસ્થામાં યોનિને પ્રસારીને એવા સ્થાનપર બેસે કે જ્યાં પુરુષનું વીર્ય પહેલેથી જ પડેલું હોય, તો એવી પરિસ્થિતિમાં તે પોતાની યોનિ દ્વારા કોઈ પણ રીતે તે વીર્યપુદ્ગલોને ખેંચીને તેની અંદર દાખલ કરી દેવાથી ગર્ભ ધારણ કરી શકે છે.

वस्त्रं तस्याः स्त्रिया अन्तर्योनौ=योनिमध्ये अनुप्रविशेत । इह वस्त्रमित्युपलक्षणं, तेन अन्यदपि तथाविधं केशादिकं बोध्यम्। यथा केशिमाता रोगविशेषनिवारणार्थं रक्तनिरोधनाद्यर्थं वा अज्ञातशुक्रपुद्गलसंयोगाः केशा योनौ बद्धास्तत एव गर्भो जातः। तस्माद् गर्भात् केशिमुनिरुत्पन्न इति। इति द्वितीयं स्थानम्। तथा-सा स्त्री स्वयं पुत्रकामनया शुक्रपुद्गलान् अन्तर्योनौ प्रवेशयेत्। अयं भावः-शीलरक्षणार्थिनीत्वात् परपुरुषसंगममनाकाङ्क्षन्ती काचित पुत्रकामा स्त्री शुक्रपुद्गलान् स्वयमेव योनिमध्ये प्रवेशयेदिति। इति तृतीयं स्थानम्। तथा-परः=स्वातिरिक्तः

कर सकती है, ऐसा यह प्रथम कारण है, द्वितीय कारण ऐसा है, कि पुरुषके वीर्यसे गीला हुआ वस्त्र यदि स्त्रीकी योनिके भीतर घोंस दिया जाता है. तो उससे भी वह गर्भ धारण कर सकती है, यहां "वस्त्र" यह उपलक्षणरूप है, इससे यह भी ग्रहण कर लेना चाहिये कि पुरुषके वीर्यसे गीले यदि लिङ्गादिके ऊपरके बाल आदि हों और वे वस्त्रादिमें बांधकर योनिके ऊपर बांध लिये जावे तो इस स्थितिमें भी स्त्रीको गर्भ रह सकता है, जैसे-केशीकी माताने रोग विशेषको दूर करनेके लिये या रक्तका निरोधन करने अदिके लिये शुक्र पुद्गल संयोगवाले केशोंको योनिके ऊपर बांध लिया था, सो उसीसे उसको गर्भ रह गया था, और उस गर्भसे केशिश्रमण उत्पन्न हुए थे, इस प्रकारका यह द्वितीय स्थान है, तृतीय कारण ऐसा है, कि कोई पुत्रकी कामनावाली स्त्री पुरुषके पतित वीर्यको योनिके भीतर धर ले तो ऐसी स्थितिसे भी

બીજું કારણ આ પ્રમાણે છે—જો પુરુષના વીર્યથી ખરડાયેલા વસ્ત્રને કોઈ સ્ત્રી પોતાની યોનિમાં પ્રવેશાવે છે, તો તેના દ્વારા પણ તે સ્ત્રી ગર્ભ ધારણ કરી શકે છે અહીં વસ્ત્ર તો ઉપલક્ષણ રૂપ છે અહીં એવું પણ ગ્રહણ કરવું જોઈએ કે પુરુષના લિંગાદિની ઉપરના અને આસપાસના વીર્યથી ખરડાયેલા બાલને કોઇ વસ્ત્રમાં બાંધીને યોનિની ઉપર બાંધી દેવામાં આવે, તો પણ સ્ત્રી ગર્ભ ધારણ કરે છે જેમકે કેશી શ્રમણની માતાએ રોગવિશેષને દૂર કરવા માટે અથવા રક્તસ્રાવ અટકાવવા માટે શુક્ર પુદ્ગલ (વીર્ય પુદ્ગલ) ના સંયોગવાળા કેશોને યોનિની ઉપર બાંધી દીધાં હતાં, અને તેના દ્વારા જ તેને ગર્ભ રહ્યો હતો, અને તે ગર્ભમાંથી કેશી શ્રમણ ઉત્પન્ન થયા હતા.

ત્રીજું કારણ નીચે પ્રમાણે છે—કોઇ પુત્રની કામનાવાળી સ્ત્રી કોઈ પુરુષના પતિત વીર્યને પોતાની યોનિમાં દાખલ કરી દે, તો એવી પરિસ્થિતિમાં પણ તે સ્ત્રીને ગર્ભ રહી શકે છે. આ કથનનો

श्वश्रादिजनः-तस्या योनौ शुक्रपुद्गलान् अनुप्रवेशयेत् । इति चतुर्थं स्थानम् । तथा= शीतोदकविकटेन-शीतोदकरूपं यद् विकटं=समयपरिभाषया जलं तेन आचामन्त्याः=शौचं कुर्वत्या, तस्याः स्त्रियो योनिमध्ये तज्जलस्थिताः शुक्रपुद्गला अनुप्रविशेयुरिति पञ्चमं स्थानम् । इत्येतैरुपरिनिर्दिष्टैः पञ्चभिः कारणैः स्त्री पुरुषासंगताऽपि गर्भं धरेदिति ॥ सू० ५ ॥

यैः स्थानैः पुरुषेण संगताऽपि स्त्री गर्भं न धरेत्, तानि स्थानानि प्राह—

मूलम्—पंचहिं ठाणेहिं इत्थी पुरिसेण सद्धिं संवसमाणावि गब्भं नो धरेज्जा, तं जहा—अप्पत्तजोव्वणा १, अइकंतजो-

---

वह गर्भवती हो सकती है, इस तृतीय कारणका भाव ऐसा है, कि कोई शीलवती स्त्री अपने शीलकी तो रक्षा करना चाहती है, और पुत्रकी अभिलाषावाली भी बनी हुई है, तो वह पर पुरुषके साथ संगम नहीं करती हुई भी यदि शुक्र पुद्गलोंको अपने हाथसेही अपनी योनिके भीतर रख लेती है, तो ऐसी हालतमें वह गर्भवती हो सकती है, चतुर्थ कारण इस प्रकारसेहै, यदि उसकी सास आदि रूप स्त्रीजन उसकी योनिमें शुक्र पुद्गलोंको रख देती है, तो इससे भी वह गर्भवती हो सकती है, पांचवां कारण ऐसा है, कि शौचको करते समय उस स्त्रीके योनिके अन्दर पानी लेते समय उस जलमें पतित शुक्र पुद्गल यदि प्रविष्ट हो जाते हैं, तो इससे भी वह गर्भवती हो सकती है, इस तरहके इन निर्दिष्ट पांच कारणोंसे स्त्री पुरुषसे अयुक्त होती हुई भी गर्भवती हो सकती है ॥ सू० ५ ॥

ભાવાર્થ એવો છે કે-કોઈ શીલવતી સ્ત્રી પુત્રની કામનાવાળી છે તે પોતાના શીલનું રક્ષણ કરવા માગતી હોવાથી પરપુરુષ સાથે અબ્રહ્મનું સેવન કરતી નથી પણ કોઈ પુરુષના પતિત વીર્ય પુદ્ગલોને પોતાના હાથમાં લઈને પોતાની યોનિમાં દાખલ કરી દે છે, આમ કરવાથી તે ગર્ભવતી થઈ શકે છે.

ચોથું કારણ નીચે પ્રમાણે છે—જો તેની સાસુ આદિ કોઈ પણ વ્યક્તિ કોઈ પુરુષના શુક્ર પુદ્ગલોને તેની યોનિમાં નાખી દે તો પણ તે ગર્ભ ધારણ કરી શકે છે.

પાંચમું કારણ—જાજરૂ ગયા બાદ પાણી લેતી વખતે જે જળનો ઉપયોગ કરવામાં આવે, તે જળમાં કોઈ પુરુષના શુક્ર પુદ્ગલો ભળેલાં હોય, તો તે શુક્ર પુદ્ગલો તે સ્ત્રીની યોનિમાં દાખલ થઈ જાય તો તે સ્ત્રી ગર્ભવતી બની શકે છે. આ પ્રકારના પાંચ કારણોને લીધે પુરુષની સાથે મૈથુનસેવન કર્યા વિના પણ સ્ત્રી ગર્ભવતી થઈ શકે છે. ॥ સૂ ૫ ॥

वणा २, जाइवंझा ३, गेळन्नपुट्ठा ४, दोमणंसिया ५। इच्चेएहिं पंचहिं ठाणेहि जाव नो धरेज्जा। पंचहिं ठाणेहिं इत्थी पुरिसेण सद्धिं संवसमाणी वि नो गब्भं धरेज्जा, तं जहा—निच्चोउया १, अणोउया २, वावन्नसोया ३, वाविद्धसोया ४, अणंगपडिसेवणी ५। इच्चेएहिं पंचहिं ठाणेहिं इत्थी पुरिसेण सद्धिं संवसमाणीवि गब्भं नो धरेज्जा, तं जहा—उउम्मि णो णिगामसेविणी यावि भवइ १, समागया वा से सुक्कपोग्गला पडिविद्धंसंति २, उदिण्णे वा से पित्तसोणिए ३, पुरा वा देवकम्मणा ४, पुत्तफले वा नो निद्दिट्ठे भवइ ५। इच्चेएहिं जाव नो धरेज्जा ॥ सू० ६ ॥

छाया—पञ्चभिः स्थानैः स्त्री पुरुषेण सार्द्धं संवसन्त्यपि गर्भं नो धरेत्, तद्यथा-अप्राप्तयौवना १, अतिक्रान्तयौवना २, जातिवन्ध्या ३, ग्लान्यस्पृष्टा ४, दौर्मनस्यिका ५। इत्येतैः पञ्चभिः स्थानैः यावद् नो धरेत्। पञ्चभिः स्थानैः स्त्री पुरुषेण सार्द्धं संवसन्त्यपि नो गर्भं धरेत्, तद्यथा-नित्यर्त्तुका १, अनृतुका २, व्यापन्नस्रोताः ३, व्याविद्धस्रोताः ४, अनङ्गप्रतिसेविनी ५। इत्येतैः पञ्चभिः स्थानैः स्त्री पुरुषेण सार्द्धं संवसन्त्यपि गर्भं नो धरेत्। पञ्चभिः स्थानैः स्त्री पुरुषेण सार्द्धं संवसन्त्यपि गर्भं नो धरेत्, तद्यथा-ऋतौ नो निकामसेविनी चापि भवति १, समागता वा तस्याः शुक्रपुद्गलाः प्रतिविध्वंसन्ते २, उदीर्णं वा तस्याः पित्तशोणितम् ३, पुरा वा देवकर्मणा ४, पुत्रफलं वा नो निर्दिष्टं भवेत् ५। इत्येतै यावद् नो धरेत् ॥ सू० ६ ॥

टीका—'पचहिं ठाणेहिं' इत्यादि—

पञ्चभिः स्थानैः=कारणैः स्त्री पुरुष संगताऽपि गर्भं नो धरेत्। येषु स्थानेषु सत्सु गर्भं न धरेत् तानि स्थानानि प्राह—तद्यथा—अप्राप्तयौवना—न प्राप्तं यौवनं

अब सूत्रकार उन पांच कारणोंको प्रकट करते हैं, कि जिनसे पुरुषसे संगत हुई भी स्त्री गर्भको धारण नहीं कर सकती है—

પુરુષની સાથે સંભોગ કરવા છતાં પણ જે પાંચ કારણોને લીધે સ્ત્રી ગર્ભ ધારણ કરી શકતી નથી, તે કારણો હવે સૂત્રકાર પ્રકટ કરે છે.

यथा सा १, अतिक्रान्तयौवना=अतिक्रान्तं यौवनं यस्याः सा-गतयौवना २, जातिवन्ध्या-जातेः=जन्मत आरभ्य वन्ध्या=निर्बीजा, ३ ग्लान्यस्पृष्टा-ग्लान्येन=रोगेण स्पृष्टा=ग्रस्ता ४, तथा-दौर्मनस्यिका-दौर्मनस्यं=शोकादिकमस्ति यस्याः सा, "दौर्मनस्यिता"-इति च्छायापक्षे तु दौर्मनस्यं संजातं यस्याः सा,-शोकादि संक्लेत्यर्थः ५, इत्येतैः पञ्चभिः स्थानैः स्त्री पुरुषसंगताऽपि गर्भं न धरेत्।

'पंचहिं ठाणेहिं इत्थी पुरिसेण सद्धिं' इत्यादि सूत्र ६।

टीकार्थ-पुरुषके साथ संगम करती हुई भी स्त्री इन पांच कारणोंसे गर्भवती नहीं हो सकती है-वे पांच कारण इस प्रकारसे हैं-यदि वह अप्राप्त यौवनवाली है, तो वह पुरुषके साथ रत होती हुई भी गर्भवती नहीं हो सकती है १। इसी तरहसे वह यदि गत यौवनवाली है, यौवनावस्थासे वह रहित हो चुकी है, तो ऐसी स्थितिमें भी वह पुरुष द्वारा भुक्त होती हुई भी गर्भवती नहीं हो सकती है २। तथा-यदि वह जातिसे जन्मसेही बन्ध्या है, निर्बीजा है, तो वह पुरुषसे रतिक्रिया करती हुई भी गर्भवती नहीं हो सकती है३, यदि वह ग्लान्य स्पृष्टा है, रोगग्रस्त है, तो भी वह पुरुषके साथ संगम करती हुई भी गर्भवती नहीं हो सकतीहै४, और यदि वह रतिक्रियामें रत होती हुई भी शोकादिसे युक्त मनवाली बनी रहती है-प्रसन्न चित्त नहीं रहती है, तब भी वह गर्भवती नहीं हो सकतीहै५, अथवा-"दोमणस्सिया" की छाया-"दौर्मनस्यिता" ऐसी भी होती है, इस पक्षमें यदि वह शोक आदिसे युक्त

ટીકાર્થ–" पचहिं ठाणेहिं इत्थी पुरिसेण सद्धिं "

પુરુષની સાથે સંભોગ કરવા છતાં પણ નીચેના પાંચ કારણોને લીધે સ્ત્રી ગર્ભ ધારણ કરી શકતી નથી. (૧) યુવાવસ્થામાં આવ્યા પહેલાં જો કોઈ કન્યા પુરુષ સાથે રતિક્રિયા કરે, તો તે ગર્ભવતી થતી નથી. (૨) જે સ્ત્રી યૌવન વ્યતીત કરી ચુકી છે, એટલે કે પ્રૌઢા અથવા વૃદ્ધા બની ચુકી છે, તે પુરુષ સાથે સંભોગ કરવા છતાં પણ ગર્ભ ધારણ કરી શકતી નથી (૩) જો કોઈ સ્ત્રી જન્મથી જ વન્ધ્યા (નિર્બીજા) હોય, તો પુરુષ સાથે રતિક્રિયા કરવા છતાં પણ ગર્ભવતી બની શકતી નથી. (૪) જો તે રોગગ્રસ્ત હોય, તો પણ પુરુષની સાથે સંભોગ કરવા છતાં ગર્ભવતી બની શકતી નથી. (૫ પુરુષની સાથે રતિક્રિયા કરવા છતાં પણ જે સ્ત્રી શોકાકુલ હોય એટલે કે પ્રસન્નચિત્ત ન હોય, તો ગર્ભવતી બની શકતી નથી. " दो मणंसिया " આ પદની સંસ્કૃત છાયા " दौर्मनस्यिता " લેવામાં

अथाग्रेऽप्यानन्तरसूत्रद्वयस्यापि उपक्रमोपसंहारवाक्यमेव व्याख्येयम्। तत्र प्रथमानन्तरसूत्रोक्तानि पञ्चस्थानान्येतानि, तथाहि-नित्यर्तुका-नित्यं=सर्वदा न तु दिनत्रयमेव ऋतु=रक्तप्रवृत्तिरूपो यस्याः सा १, तथा-अनृतुका-न विद्यते ऋतुर्यस्याः सा २ तथा-व्यापन्नस्रोताः-व्यापन्नं=रोगादिना प्रतिहतं स्रोतः=गर्भाशयच्छिद्रं यस्याः सा ३, तथा-व्याविद्धस्रोताः-व्याविद्धं=वातादिना व्याप्तत्वेन उत्पादनशक्तिरहितं स्रोतो यस्याः सा ४, तथा-अनङ्गप्रतिसेविनी-अङ्गं=मैथुनोपयोगि

है, तो भी गर्भवती नहीं हो सकती है, ऐसा अर्थ होता है, अतः इस तरहके इन पांच कारणोंसे पुरुषके साथ संगम करती हुई भी स्त्री गर्भ धारण नहीं कर सकती है यह प्रकट किया, अब और भी गर्भ धारण नहीं करनेके जो कारण हैं, सूत्रकार उन्हें प्रकट करते हैं, इनमें प्रथम कारण नित्यर्तुक है, जिसके तीन दिन तकही ऋतुधर्म नहीं रहता है-किन्तु सदाही रज प्रवाहित होता रहता है, ऐसी वह स्त्री गर्भवती नहीं हो सकती है, तथा जो अनृतुक है, ऋतुधर्मसे रहित है, यह भी गर्भवती नहीं हो सकती है, जो व्यापन्न स्रोता है, वह भी गर्भवती नहीं हो सकती है, अर्थात् रोगादिकसे जिसके गर्भाशयका छिद्र बन्द हो गया हो प्रतिहत हो गया हो ऐसी वह स्त्री भी गर्भ धारण करनेमें असमर्थ होती है। जिसका वातव्याधि आदिसे व्याप्त होनेके कारण गर्भाशयका छिद्र गर्भ धारण करनेकी शक्तिसे रहित कर दिया गया हो ऐसी वह भी स्त्री गर्भ धारण नहीं कर सकती

આવે, તો તેનો અર્થ આ પ્રમાણે પણ થાય છે-જો તે શોકાદિથી યુક્ત હોય તો પણ ગર્ભવતી બની શકતી નથી.

ગર્ભ ધારણ ન કરી શકવાના બીજાં પણ કેટલાક કારણો છે, તે સૂત્રકાર હવે પ્રકટ કરે છે-" नित्यर्तुक " જે સ્ત્રીને મહિનામાં ત્રણ દિવસ સુધી જ રજસ્રાવ થતો નથી, પણ કાયમ રજસ્રાવ ચાલુ રહે છે, તે સ્ત્રી ગર્ભવતી બની શકતી નથી. (૨) अनृतुक " જે સ્ત્રી ઋતુધર્મથી રહિત હોય છે, તેને પણ ગર્ભ રહી શકતો નથી (૩) " व्यापन्नस्रोता " રોગાદિકને કારણે જે સ્ત્રીના ગર્ભાશયનું છિદ્ર બંધ થઈ ગયું હોય છે, તે સ્ત્રી પણ ગર્ભ ધારણ કરી શકતી નથી (૪) કોઇ વ્યાધિને કારણે (વાત વ્યાધિ આદિને કારણે) જેના ગર્ભાશયના છિદ્રને ગર્ભ ધારણ કરવાને અસમર્થ કરી નાખવામાં આવ્યું હોય, તે સ્ત્રી પણ ગર્ભ ધારણ કરી શકતી નથી, (૫) જે સ્ત્રી મૈથુન સેવનના

मुख्यमङ्गं लिङ्गं भगश्च, तन्निषेधोऽनङ्गं तेन आहार्यलिङ्गादिना मैथुनं प्रतिसेवते या सा ५। एभिः पञ्चभिः कारणैः पुरुषसंगताऽपि स्त्री गर्भं न दधातीति। तथा- ऋतौ=आर्त्तवकाले निकामसेविनी-निकामं=वीर्यपातावधि मैथुनं सेवते या सा तथा नो भवति। इति प्रथमं स्थानम्। तथा-तस्या योनौ समागता वीर्यपुद्गलाः प्रतिविध्वसन्ते=योनिदोषाद् विनष्टशक्तिका भवन्ति। इति द्वितीयं स्थानम्। तथा-तस्याः पित्तशोणितं=पित्तप्रधानं शोणितम् उदीर्णम्=उद्गतं भवेत्-उदीर्णे पित्तशोणिते वीजं न प्ररोहतीति भावः, इति तृतीयं स्थानम्। पुरा=गर्भधारणात् पूर्वं देवकर्मणा-देवक्रियया देवतानुभावेन शक्त्युपघातः स्यादिति शेषः, यद्वा-

---

है, तथा-जो मैथुनसेवनके अंग योनि और लिङ्गके सिवाय अनङ्गसे लिङ्गके सिवाय अनङ्गसे-आहार्य (?) लिङ्ग आदिसे काम सेवन करती है, ऐसी वह भी स्त्री गर्भ धारण नहीं कर सकती है, तात्पर्य यही है, कि पुरुष संगत हुई भी स्त्री इन पांच कारणोंके कारण गर्भवती नहीं हो सकती है, गर्भ धारण करनेमें बाधक और भी कारणान्तर हैं, जो इस प्रकारसे हैं-इनमें प्रथम कारण वह है, जो वीर्यपात हो जानेके बाद भी मैथुन सेवा क्रियामें रत रहती है १। तथा-योनिमें पतित वीर्य पुद्गल जिसकी योनिके दोषसे विनष्ट शक्तिवाले हो जाते हैं २। तथा जिसका पित्त शोणित निकल गया होता है, तब बीज अङ्कुरित नहीं होता है ॥ ३ ॥ तथा जिसकी गर्भ धारण शक्ति किसी देवताके प्रभावसे नष्टकर दी गई है, अथवा-गर्भ निरोधक

અંગ વડે મૈથુન સેવન કરતી નથી, એટલે કે પુરુષના લિંગ વડે મૈથુન સેવન કરતી નથી, પણ લિંગ સિવાયના અનંગ વડે-આહાર્ય લિંગ આદિ વડે કામસેવન કરે છે, તે સ્ત્રી પણ એ રીતે ગર્ભ ધારણ કરી શકતી નથી.

ગર્ભ ધારણ કરવામાં સ્ત્રી નીચેના અન્ય કારણોને લીધે પણ અસમર્થ બને છે—(૧) પુરુષના વીર્યનો સ્રાવ થઈ ગયા બાદ પણ પુરુષ સાથે રતિ-ક્રિયા કરવાથી સ્ત્રીને ગર્ભ રહેતો નથી. (૨) યોનિમાં પ્રવિષ્ટ થયેલાં વીર્ય-પુદ્ગલો જે સ્ત્રીની યોનિના કોઈ દોષને લીધે વિનષ્ટ શક્તિવાળા થઈ જતાં હોય તે સ્ત્રી પણ ગર્ભ ધારણ કરી શકતી નથી. (૩) જે સ્ત્રીનું પિત્તશોણિત નીકળી ગયું હોય છે, તે સ્ત્રી પણ ગર્ભ ધારણ કરી શકતી નથી. (૪) જેની ગર્ભ ધારણ શક્તિ કોઈ દેવતાના પ્રભાવથી નષ્ટ થઈ ગઈ હોય, તે સ્ત્રી પણ ગર્ભ

'देवकार्मणात्' इतिच्छाया-तत्र देवश्च कार्मणं चेति-देवकार्मणम् इति समाहार-द्वन्द्वः, तस्मात्-देववशात् तथाविधद्रव्यसंयोगाद् वा शक्त्युपघातः स्यात्। इति चतुर्थं स्थानम्। तथा-तस्याः स्त्रिया जन्मान्तरकर्मप्रभावेण पुत्रफलं नो निर्दिष्टं भवेत् ५। इति पञ्चमं स्थानम्। इत्येतैः पञ्चभिः स्थानैः पुरुषसंगताऽपि स्त्री गर्भं नो धरेदिति ॥ सू० ६ ॥

स्त्रीविषयकोऽधिकारः प्रस्तुत एव, तदधिकारादेव सम्प्रति साध्वी वक्तव्यताप्रतिबद्धं सूत्रद्वयात्मकमेकं सूत्रमाह—

मूलम्--पंचहिं ठाणेहिं निग्गंथा निग्गंथिओ य एगयओ ठाणं वा सिज्जं वा निसीहियं वा चेएमाणा णाइक्कमंति, तं जहा--अत्थेगइया निग्गंथा निग्गंथीओ य एगं महं आगामियं छिन्नावायं दीहमद्धमडविमणुपविट्ठा, तत्थेगयओ ठाणं वा सेज्जं वा निसीहियं वा चेएमाणा णाइक्कमंति १, अत्थेगइया निग्गंथा निग्गंथीओ य गामंसि वा णयरंसि वा जाव रायहाणिंसि वा वासं उवागया एगइया जत्थ उवस्सयं लभंति एगइया णो लभंति, तत्थेगयओ ठाणं वा जाव नाइक्कमंति २, अत्थेगइया निग्गंथा निग्गंथीओ य नागकुमारावासंसि वा सुवण्णकुमारावासंसि वा वासं उवागया तत्थेगयओ जाव णाइक्कमंति ३, आमो-

औषधि आदिके द्वारा जिसकी गर्भ धारण शक्तिका निरोध कर दिया गया है ४। तथा जन्मान्तरमें पूर्वजन्ममें-कृत कर्मके प्रभावसे जिसे पुत्र-फल प्राप्त होना नहीं बदा है, ऐसी स्त्री भी गर्भवती नहीं हो सकतीहैसू०६॥

ધારણ કરી શકતી નથી. અથવા ગર્ભનિરોધક ઔષધિ દ્વારા જે સ્ત્રીની ગર્ભ ધારણ કરવાની શક્તિનો નિરોધ કરી નાખવામાં આવ્યો હોય, તે સ્ત્રી પણ ગર્ભ ધારણ કરી શકતી નથી. (૫) પૂર્વજન્મના કૃતકર્મોને લીધે જેના નસીબમાં પુત્રફલ પ્રાપ્તિ લખાઈજ ન હોય, એવી સ્ત્રી પણ ગર્ભ ધારણ કરી શકતી નથી. ॥ સૂ. ૬ ॥

सगा दीसंति ते इच्छंति निग्गंथीओ चीवरवडियाए पडिगाहित्तए तत्थेगयओ ठाणं वा जाव णाइक्कमंति ४, जुवाणा दीसंति ते इच्छंति णिग्गंथीओ मेहुणपडियाए पडिगाहित्तए तत्थेगयओ ठाणं वा जाव णाइक्कमंति ५। इच्चेएहिं पंचहिं ठाणेहिं जाव नाइक्कमंति। पंचहिं ठाणेहिं समणे निग्गंथे अचेलए सचेलियाहिं निग्गंथीहिं सद्धिं संवसमाणे नाइक्कमइ, तं जहा--खित्तचित्ते समणे णिग्गंथे णिग्गंथेहिमविज्जमाणेहिं अचेलए सचेलियाहिं निग्गंथीहिं सद्धिं संवसमाणे णाइक्कमइ १, एवमेएणं गमएणं दित्तचित्ते २, जक्खाइट्ठे ३, उम्मायपत्ते ४, निग्गंथीपव्वावियए समणे निग्गंथे णिग्गंथेहि अविज्जमाणेहिं अचेलए सचेलियाहिं निग्गंथीहि सद्धिं संवसमाणे णाइक्कमइ ५॥ सू०७॥

छाया—पञ्चभिः स्थानैः निर्ग्रन्था निर्ग्रन्थ्यश्च एकतः स्थानं वा शय्यां वा नैषेधिकीं वा चेतयन्तो नातिक्रामन्ति, तद्यथा–सन्त्येके निर्ग्रन्था निर्ग्रन्थ्यश्च एकां महतीम् अग्रामिकां छिन्नापातां दीर्घाध्वामटवीम् अनुप्रविष्टाः, तत्रैकतः स्थानं वा शय्यां वा नैषेधिकीं वा चेतयन्तो नातिक्रामन्ति १। सन्त्येके निर्ग्रन्था निर्ग्रन्थ्यश्च ग्रामे वा नगरे वा यावत् राजधान्यां वा वासम् उपागताः, एकके य उपाश्रयं लभन्ते, एकके नो लभन्ते तत्रैकतः स्थानं वा यावद् नातिक्रामन्ति २। सन्त्येके निर्ग्रन्था निर्ग्रन्थ्यश्च नागकुमारावासे वा सुपर्णकुमारावासे वा वासम् उपागताः, तत्रैकतो यावद् नातिक्रामन्ति ३। आमोषका दृश्यन्ते, ते इच्छन्ति निर्ग्रन्थिकाः चीवरप्रतिज्ञया प्रतिग्रहीतुं, तत्रैकतः स्थानं वा यावद् नातिक्रामन्ति ४। युवानो दृश्यन्ते, ते इच्छन्ति निर्ग्रन्थिकाः मैथुनप्रतिज्ञया प्रतिग्रहीतुम्, तत्रैकतः स्थानं वा यावत् नातिक्रामन्ति ५। इत्येतैः पञ्चभिः स्थानैः यावत् नातिक्रामन्ति। पञ्चभिः स्थानैः श्रमणः निर्ग्रन्थः अचेलकः सचेलिकाभिः निर्ग्रन्थीभिः सार्द्धं संवसन् नातिक्रामति तद्यथा क्षिप्तचित्तः श्रमणो निर्ग्रन्थो निर्ग्रन्थेषु अविद्यमानेषु अचेलकः सचेलिकाभिः निर्ग्रन्थीभिः सार्द्धं संवसन नातिक्रामति १। एवमेतेन गमकेन दृप्तचित्तो २ यक्षाविष्टः ३, उन्मादप्राप्तो ४, निर्ग्रन्थी प्रव्राजितः श्रमणो निर्ग्रन्थो निर्ग्रन्थेषु अविद्यमानेषु अचेलकः सचेलिकाभिः निर्ग्रन्थीभिः सार्द्धं संवसन् नातिक्रामति ५॥सू० ७॥

टीका—'पंचहिं ठाणेहिं' इत्यादि—

पञ्चभिः स्थानैः=कारणैः निर्ग्रन्था निर्ग्रन्थ्यश्च एकतः=एकस्मिन् स्थले स्थानं=कायोत्सर्गम् उपवेशनं वा शय्यां=संस्तारकं वा नैषेधिकीं=स्वाध्यायभूमिं वा चेतयन्तः=कुर्वन्तो नातिक्रामन्ति=नोल्लङ्घयन्ति जिनाज्ञाम्। तानि स्थानानि प्रादुःसन्ति=भवन्ति। एके=केचिद् निर्ग्रन्था निर्ग्रन्थ्यश्च, ते किल काञ्चित् एकां महतीं=विशालाम् अग्रामिकाम्=ग्रामरहिताम् छिन्नापाताम्—छिन्ना आपाताः—जनानामागमनानि, उपलक्षणाद् गमनानि वा यस्यां सा तां, दीर्घाध्वाम्=दीर्घः अध्वा=मार्गो यस्यां सा तां—महापथाम्, यद्वा—'दीर्घाद्धाम्' इति च्छाया, दीर्घः=महान् अद्धा=कालो-निस्तरणे यस्याः सा तां-दीर्घकाललङ्घनीयाम्-लङ्घनयोग्याम् अटवीम् अनुप

अब सूत्रकार इसी स्त्री विषयक अधिकारके सम्बन्धसे साध्वीकी वक्तव्यतासे प्रतिबद्ध सूत्रकलापात्मक एक सूत्रका कथन करते हैं—

'पंचहिं ठाणेहिं निग्गंथा निग्गंथीओ' इत्यादि सूत्र ७॥

टीकार्थ–निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थनियां–साधु और साध्वी–यदि इन पांच कारणोंको लेकर एकही जगह कायोत्सर्ग करते हैं, या बैठते हैं बिस्तर करते हैं, या स्वाध्याय करते हैं, तो वे जिनाज्ञाके विराधक नहीं होते हैं, वे पांच कारण इस प्रकारसे हैं–जैसे–कितनेक निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थनियां एक ऐसी अटवीमें पहुँच जाते हैं, कि जो बहुत विशाल है, जिसमें एक भी ग्राम नहीं है, मनुष्योंका भी आगमन आनाजाना जिसमें नहीं है, जो लम्बे रास्तावाली है, अथवा जिसे पार करना बहुत समय साध्य है, ऐसी भयंकर गहन अटवीमें पहुंच जाने पर

આગલા સૂત્રમાં સ્ત્રીવિષયક કથન કરવામાં આવ્યું છે. સાધ્વીઓ પણ સ્ત્રીઓ જ હોય છે. આ સંબંધને અનુલક્ષીને હવે સૂત્રકાર સાધ્વીઓની વક્તવ્યતાથી યુક્ત સૂત્ર કથના સમૂહરૂપ એક સૂત્રનું કથન કરે છે.

ટીકાર્થ–" पंच हिं ठाणे हिं निग्गंथी निग्गंथीओ " ઈત્યાદિ—

નિર્ગ્રંથો (સાધુઓ) અને નિર્ગ્રંથિનિઓ (સાધ્વીઓ) જો આ પાંચ કારણોને લીધે એક જ જગ્યાએ કાયોત્સર્ગ કરે, બેસે, સ્વાધ્યાય કરે, અથવા શયન કરે, તો તેઓ જિનાજ્ઞાના વિરાધક થતાં નથી.

(૧) કેટલાક નિર્ગ્રંથો અને નિર્ગ્રંથીઓ કોઈ એક એવી ગહન અને વિશાળ અટવીમા આવી પહોંચ્યાં છે કે જેમાં એક પણ ગામ નથી, મનુષ્યોનો અવરજવર પણ જ્યાં થતો નથી, જેને પાર કરીને કોઈ ગામમાં પહોંચવું ઘણું જ દુષ્કર છે, ઘણા જ લાંબા સમયે જેને પાર કરી શકાય એવી છે, તો

विधाः। तत्र=अटव्याम् एकत्र=एकस्मिन् स्थले स्थानं वा शय्यां वा नैषेधिकीं वा चेतयन्तः=कुर्वन्तो निर्ग्रन्था निर्ग्रन्थ्यश्च नातिक्रामन्ति=नोल्लङ्घयन्ति जिनाज्ञामिति प्रथमं स्थानम्। तथा-सन्ति एके निर्ग्रन्था निर्ग्रन्थ्यश्च, ये किल ग्रामे वा नगरे वा यावद् राजधान्यां वा वासं=निवासम् उपागताः=प्राप्ताः, तेषु मध्ये एके=निर्ग्रन्था वा निर्ग्रन्थ्यो वा अत्र-ग्रामादौ उपाश्रयं=गृहस्थेन निवासार्थं प्रदत्तं स्थानं लभन्ते= प्राप्नुवन्ति, एकके=अन्यतरे पुनर्नो लभन्ते, तत्र एकत्र स्थले स्थानादिकं कुर्वन्तो निर्ग्रन्था निर्ग्रन्थ्यश्च नातिक्रामन्तीति द्वितीयं स्थानम्। तथा-सन्ति एके निर्ग्रन्था

यदि साधुजन एवं साध्वियां एकही स्थान पर ठहर जाते हैं बैठ जाते हैं, कायोत्सर्ग करते हैं, आदि २ क्रियाएँ करते हैं, तो ऐसे वे निर्ग्रन्थ साधु और साध्वियां तीर्थंकर प्रभुकी आज्ञाके विराधक नहीं होते हैं, ऐसा यह प्रथम कारणहै। द्वितीय स्थान-कारण ऐसा है-कितनेक साधु साध्वियां विहार करती हुई किसी एक ग्राममें या नगरमें आदि आजाती हैं-वहां वे गृहस्थके द्वारा प्रदत्त किसी उपाश्रयमें ठहर जाती हैं, परन्तु यदि और भी साधु साध्वियां ऐसी बची रहती हो कि जिन्हें ठहरनेके लिये स्थान न मिला हो तो ऐसी स्थितिमें वे सबके सब यदि एकही स्थानमें ठहर जाते हैं, वहीं पर अपनी २ धार्मिक क्रियाएँ करते हैं, तो वे जिनाज्ञाके विराधक नहीं माने जाते हैं। तृतीय स्थान ऐसा

એવી પરિસ્થિતિમાં સાધુઓ અને સાધ્વીઓ તે ગહન અટવીમાં એક જ સ્થળે રોકાઈ જાય, બેસી જાય, અને કાયોત્સર્ગ આદિ ક્રિયાઓ કરે, તો તે પ્રમાણે કરવાથી તે સાધુઓ અને સાધ્વીઓ તીર્થંકર ભગવાનની આજ્ઞાની અવગણના કરનારા ગણાતાં નથી

બીજું કારણ નીચે પ્રમાણે છે—કેટલાક સાધુઓ અને સાધ્વીઓ ગ્રામાનુગ્રામ વિચરતાં વિચરતાં કોઈ એક ગામ, નગર આદિમાં આવી પહોંચે છે. ધારો કે કેટલાક સાધુઓ અથવા સાધ્વીઓ ત્યાં કોઈ ગૃહસ્થ દ્વારા આપવામાં આવેલા કોઈ ઉપાશ્રયમાં ઉતરે છે. કેટલાક સાધુ અથવા સાધ્વીઓને તે ગામ આદિમાં ઉતરવાને માટે કોઈ અલગ સ્થાન મળી શકતું નથી. તો એવી પરિસ્થિતિમાં તે સાધુઓ અને સાધ્વીઓ તે એક જ સ્થાનમાં ઉતરે અને કાયોત્સર્ગ આદિ ક્રિયાઓ કરે, તો તેઓ જિનેશ્વર ભગવાનની આજ્ઞાના વિરાધક ગણાતાં નથી

ત્રીજું કારણ આ પ્રમાણે છે—જો કોઈ સાધુઓ અને સાધ્વીઓ કોઈ નાગકુમારાવાસમાં અથવા સુપર્ણકુમારાવાસમાં એક સાથે જ વાસ કરે, તો

निर्ग्रन्थ्यश्च, ये क्वित्र नागकुमारावासे=नागकुमारगृहे वा सुपर्णकुमारावासे= सुपर्णकुमारगृहे वा वासम्=वसतिम् उपागताः, तस्य नागकुमारावासस्य सुपर्णकुमारावासस्य च अति शून्यत्वात्, अथवा–बहुजनाश्रयत्वात् अनायकत्वाच्च निर्ग्रन्थी शीलरक्षार्थं तत्र नागकुमारावासादौ स्थानादिकं कुर्वाणा निर्ग्रन्था निर्ग्रन्थ्यश्च नातिक्रामन्तीति तृतीयं स्थानम् । तथा–क्वचित् स्थले निर्ग्रन्था निर्ग्रन्थ्यश्च उपागताः, तत्र आमोषकाः–आमुष्णन्ति=चोरयन्तीति आमोषकाः= चौरा दृश्यन्ते, ते चौरा इच्छन्ति चीवरप्रतिज्ञया=चीवरोद्देशेन–वस्त्रापहरणेच्छये-

---

है—यदि कितनेक साधु साध्वियाँ किसी एक नागकुमारावासमें या सुपर्णकुमारावासमें आकर ठहर जाते हैं तो ऐसी स्थितिमें वे जिनाज्ञाके विराधक नहीं माने गये हैं, क्योंकि निर्ग्रन्थों के साथ निर्ग्रन्थी के ठहरने का ऐसा अभिप्राय रहता है कि इनके सहारे से मेरे शील की रक्षा हो जावेगी, क्योंकि यह आवास अतिशून्य है।

अथवा—यह बहुजनाश्रय है या इसका कोई नायक नहीं है, अतः ऐसी स्थिति में यहां दुर्व्यसनी भी आ सकते हैं, इसलिये साधु महाराज के पास ठहरने से मेरे शीलकी रक्षा हो सकती है, इस अभिप्रायसे वह यदि उनके साथ ठहर जाती है, और वे उसे ठहरा लेते हैं, तो ऐसी स्थितिमें वे जिनाज्ञा के विराधक नहीं माने जाते हैं। चतुर्थ स्थान ऐसा है—किसी स्थान पर निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियां आये हों और वहां उन्हें चोर लुटेरे दिखलाई दिये हों. और वे चोर यह चाहते हों कि हम इन निर्ग्रन्थियों को लूट लें ताकि हमें

તેઓ જિનાજ્ઞાના વિરાધક ગણાતા નથી. આવા સ્થાનોમાં સાધ્વીઓ એકલી રહે તો તેમના શીલની રક્ષા કરવાને તેઓ અસમર્થ બને છે, સાધુઓ પણ તે જગ્યાએ ઉતર્યા હોય, તો તેમના શીલની રક્ષા થઈ શકે છે, સાધુઓની હાજરીમાં ત્યાં કોઈ દુરાચારી આવવાની હિંમત કરી શકતો નથી. આવા આવાસો કાં તો નિર્જન હોય છે, કાં તો બહુજનાશ્રિત હોય છે, અથવા તો ત્યાં કોઇ રક્ષક જ હોતો નથી એવી જગ્યાએ દુરાચારીઓ પણ આવી શકે છે. આ પ્રકારની પરિસ્થિતિમાં ત્યાં કોઇ સાધુઓ ઉતર્યા હોય, તો તેમની સાથે પોતાના શીલની રક્ષાના વિચારથી પ્રેરાઇને, સાધ્વીઓ પણ આવીને ઉતરે, તો તેઓ જિનાજ્ઞાની વિરાધક ગણાતી નથી.

ચોથું કારણ—કોઈ ગામ આદિમાં સાધુઓ અને સાધ્વીઓ અલગ અલગ ઉપાશ્રયમાં ઉતર્યા હોય, અને તે ગામ આદિમાં ચોર લૂટારાનો

स्यर्थः, निर्ग्रन्थिकाः प्रतिग्रहीतुम्=अपहर्त्तुम्, तत्र सम्प्राप्येऽपि पृथक्स्थाने एकतः=एकस्मिन् आवासे स्थानादिकं कुर्वाणा निर्ग्रन्था निर्ग्रन्थ्यश्च नातिक्रामन्तीति चतुर्थं स्थानम्। तथा-क्वचित् स्थाने निर्ग्रन्था निर्ग्रन्थ्यश्च समुपागताः, तत्र युवानो दृश्यन्ते, ते इच्छन्ति मैथुनप्रतिज्ञया=मैथुनोद्देशेन निर्ग्रन्थिकाः प्रतिग्रहीतुम्, तत्र शय्यायामपि पृथक्स्थितौ एकत्र स्थले स्थानादिकं कुर्वाणा निर्ग्रन्था निर्ग्रन्थ्यश्च नातिक्रामन्तीति पञ्चमं स्थानम् ५। इत्येतैः पञ्चभिः स्थानैः निर्ग्रन्था निर्ग्रन्थ्यश्च एकस्मिन् स्थले स्थानादिकं कुर्वन्तो जिनाज्ञा विराधका नो भव-

---

इनसे कपडे मिल जावेंगे तो ऐसी स्थिति में यदि उन्हें ठहरने के लिये दूसरा स्थान भी हो, पर यदि वे जहां निर्ग्रन्थ ठहरे ए हैं वहां आकर ठहर जाती हैं और निर्ग्रन्थ उन्हें ठहरा लेते हैं, तो ऐसी स्थितिमें वे जिनाज्ञा के विराधक नहीं माने गये हैं। पांचवां क ण ऐसा है— यदि किसी स्थान पर निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थनियां आगई हो वहां जवान मनुष्य उन निर्ग्रन्थिनियों को देखकर उनके साथ मैथुनकर्म करने के लिये उतारु हो गये हों तो ऐसी स्थिति में वहां दूसरा स्थान उन्हें ठहरने योग्य भले ही हो, पर यदि वे साधुओंके साथ ठहर जाती हैं और साधुजन उन्हें अपने पास ठहरा लेते हैं, तो वे इस दशा में जिनाज्ञा के विराधक नहीं होते हैं। इस प्रकारके इन पांच कारणों के होने पर निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थनियां यदि एक ही स्थान पर ठहर जाते

ઉપદ્રવ ખૂબ જ વધી ગયો હોય. તે ચોર લૂટારા પોતાનાં કપડાં આદિ ચોરી જશે એવો ડર સાધ્વીઓને લાગતો હોય, તો એવી પરિસ્થિતિમાં તે સાધ્વીઓ પોતાનું અલગ આશ્રયસ્થાન છોડીને તે સાધુઓની પાસે આવીને ઉતારો કરે અને સાધુઓ તેમને ત્યાં ઉતરવા પણ દે, તો એવા સંયોગોમાં તેઓ જિનાજ્ઞાના વિરાધક ગણાતા નથી.

પાંચમું કારણ— અમુક સાધ્વીઓ કોઇ સ્થળે આવીને ઉતરેલી હોય, હવે એવું બને કે ત્યાં રહેતા કોઇ દુષ્ટ યુવાનો તેમની સાથે મૈથુન સેવન કરવાને કૃતનિશ્ચયી થયા હોય, તો એવી પરિસ્થિતિમાં પોતાના શીલની રક્ષા કરવા નિમિત્તે તે સાધ્વીઓ તે અલગ આશ્રયસ્થાનને છોડીને કોઇ સાધુઓની સાથે એક જ આશ્રયસ્થાનમાં જઇને રહે અને તે સાધુઓ તેમને ત્યાં રહેવા દે, તો આ પ્રકારની પરિસ્થિતિમાં તેઓ જિનાજ્ઞાના વિરાધક ગણાતાં નથી. આ પ્રકારના પાંચ કારણોમાંના કોઇ પણ કારણને લીધે સાધુઓ અને સાધ્વીઓ

[illegible] एकत्रस्थितिं कुर्वन्तो निर्ग्रन्था [illegible] । तथा–क्षिप्तचित्तत्वादिरूपैः पञ्चभिः [illegible] श्रमणो निर्ग्रन्थः सचेलिकाभिर्निर्ग्रन्थीभिः सार्द्धम् [illegible] । तानि स्थानानि प्राह तद्यथा–क्षिप्तचित्तः= [illegible] अचेलो=विगतवस्त्रः श्रमणो निर्ग्रन्थ इतरेषु [illegible] निर्ग्रन्थीभिः सह संवसन् तीर्थकराज्ञा विरा- [illegible] । तद्–अनया रीत्या एतेन गमेन–पाठेन इम-

[illegible] के विराधक नहीं माने जाते हैं। यह अपवाद सूत्र है। इन पूर्वोक्त पांच कारणों में निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थियों को एक जगह ठहरने पर [illegible] की अवहेलना करनेवाला नहीं कहा गया है, इसी प्रकार क्षिप्त चित्तता आदि इन पांच कारणों से अचेल–वस्त्ररहित साधु [illegible] निर्ग्रन्थ–सचेलिका निर्ग्रन्थियों के साथ रहता हुआ भी तीर्थंकर की आज्ञा का अतिक्रमण करनेवाला नहीं होता है। वे पांच कारण इस प्रकार से हैं–“ खित्तचित्ते समणे निग्गंथे ” इत्यादि––

शोकादि से जिसका चित्त अवस्थित है, अस्तव्यस्त हो रहा है, स्वस्थान नहीं है [illegible] जो अचेल विगतवस्त्र हो गया है, वस्त्र-रहित बन गया है, ऐसा वह श्रमण निर्ग्रन्थ इतर निर्ग्रन्थों की अविरा-

चित्तः-हर्षादिना उन्मत्तः २, यक्षाविष्टः=यक्षगृहीतः ३, उन्मादप्राप्तः=वातादि क्षोभादुन्मादभावं गतः ४, अयं त्रिविधोऽपि निर्ग्रन्थो दृप्तचित्तत्वादिवशात् अचेलकः निर्ग्रन्थीभिः सह संवसन्नपि जिनाज्ञाविराधको न भवतीति स्थानत्रयमिति चतुर्थं स्थानम् । तथा-निर्ग्रन्थी प्रव्राजितः-निर्ग्रन्थ्या-दीक्षादायक-तद्रक्षकसाध्वभाव-परमवैराग्यवत्त्वप्रवर्धमानपरिणामवत्त्वादिकारणवशात् साध्व्या प्रव्राजितः पुत्रादिः श्वशुरादि र्वा, स च बालत्वाद् अचेलः, महानपि वृद्धत्वादिना

मानता में सचेलक सवस्त्र निर्ग्रन्थनियों-साध्वियों के साथ रहता हुआ तीर्थंकर की आज्ञा का विराधक नहीं होता है, ऐसा यह प्रथम कारण है।

"एवमेतेन गमकेन दृप्तचित्तो" इत्यादि—

इसी रीति से इसी पाठ से हर्षादि आदि से उन्मत्त हुआ २ यक्ष से अवशिष्ट हुआ-ग्रहीत हुआ-३ उन्माद को प्राप्त हुआ-वात आदि के क्षोभसे उन्माद भाव को प्राप्त हुआ ४ भी श्रवण निर्ग्रन्थ यदि अचेलक वस्त्र रहित इन दृप्तचित्तता आदिके वशसे हो जाता है, और निर्ग्रन्थनियों के साथ रहता है, तो भी वह जिनाज्ञा का विराधक नहीं, इस प्रकार के यहां तक ये ४ स्थान हैं, पांचवां स्थान इस प्रकारसे हैं—किसी निर्ग्रन्थी साध्वी के द्वारा ऐसी अवस्थामें कि जब दीक्षा देनेवाला दीक्षा रक्षक साधुका अभाव हो और दीक्षा लेनेवाला परम वैराग्य से वर्धित परिणामवाला हो रहा हो, दीक्षित किया गया पुत्र

(સવસ્ત્ર) સાધ્વીઓ તેમની પાસે રહી શકે છે. આ પ્રમાણે કરવામાં તે સાધુ કે સાધ્વી જિનાજ્ઞાના વિરાધક બનતાં નથી.

"એવમેતેન ગમેન દૃ ચિત્તો" ઈત્યાદિ—

એ જ પ્રમાણે (૨) હર્ષના અતિરેકને કારણે ઉન્મત બની ગયેલા, (૩) શરીરમાં યક્ષાદિનો પ્રવેશ થવાને કારણે ઉન્માદાવસ્થા પામેલા, (૪) વાતાદિના પ્રકોપને કારણે ઉન્મત્ત થઈ ગયેલા, એવા કોઈ શ્રમણ નિર્ગ્રંથ નગ્નાવસ્થામાં રહેલા હોય અને તેમની સાથે સચેલક સાધ્વીઓ રહે, તો એવી પરિસ્થિતિમાં તે નિર્ગ્રંથ કે નિર્ગ્રંથિની જિનાજ્ઞાના વિરાધક ગણાતા નથી.

પાંચમું કારણ નીચે પ્રમાણે છે—દીક્ષાદાયક અને દીક્ષારક્ષક સાધુનો અભાવ હોય, અને દીક્ષા લેનાર પુત્ર, સસરા આદિ પરમ વૈરાગ્યથી વર્ધિત પરિણામવાળો થઈ રહ્યો હોય, એવી પરિસ્થિતિમાં તેમને કોઈ નિર્ગ્રંથી (સાધ્વી) દ્વારા દીક્ષા પ્રદાન કરવામાં આવે છે. દીક્ષા લેનાર પુત્ર ધારો કે

अचेलः, यदि अन्येषु निर्ग्रन्थेषु अविद्यमानेषु सत्सु सचेलिकाभिर्निर्ग्रन्थीभिः सह संवसन्नपि तीर्थकृदाज्ञाविराधको न भवतीति पञ्चमं स्थानम् ॥सू० ७॥

अनन्तरसूत्रे जिनाज्ञानातिक्रामति इत्युक्तं, तदतिक्रमणशीलश्च आज्ञाविराधको भवति, आज्ञाविराधना च आस्रवरूपा भवति, अतः आस्रवद्वाराणि, तत्प्रतिपक्षत्वात् संवरद्वाराणि, पुनर्दण्डलक्षणान् आस्रवविशेषांश्च प्राह—

मूलम्—पंच आसवदारा पण्णत्ता, तं जहा—मिच्छत्तं १, अविरइ २, पमाए ३, कसाया ४ जोगा ५। पंच संवरदारा पण्णत्ता, तं जहा—संमत्तं १ विरई २ अपमाओ ३, अकसाइत्तं ४, अजोगित्तं ५। पंच दंडा पण्णत्ता, तं जहा—अट्ठादंडे १ अणट्ठादंडे २ हिंसादंडे ३ अकम्हादंडे ४ दिट्ठीविप्परियासियादंडे ५॥ सू० ८ ॥

छाया—पञ्च आस्रवद्वाराणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—मिथ्यात्वम् १ अविरतिः २ प्रमादः ३ कषायाः ४ योगाः ५। पञ्च संवरद्वाराणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—सम्यक्त्वं १, विरतिः २ अप्रमादः ३ अकषायित्वम् ४ अयोगित्वम् ५। पञ्च दण्डाः प्रज्ञप्ताः तद्यथा—अर्थदण्डः १ अनर्थदण्डः २ हिंसादण्डः ३ अकस्माद्दण्डः ४ दृष्टिविपर्यासदण्डः ५ ॥सू० ८॥

आदि अथवा श्वशुर आदि यदि अचेलक हुआ—बालक होनेसे अचेलक हुआ पुत्र और बड़ा होने पर भी वृद्धता आदि के कारणसे अचेलक हुआ श्वशुर आदि—अन्य निर्ग्रन्थों के अभावमें उनकी अविद्यमानता में सचेलक निर्ग्रन्थनियों के साथ यदि रहता है, तब भी वह तीर्थंकरकी आज्ञाका विराधक नहीं होता है, ऐसा यह पांचवां स्थान है ॥ सू० ७ ॥

બાલક છે. તે અચેલક (નગ્ન) હોય તો પણ સાધ્વીજી તેની પાસે રહી શકે છે. દીક્ષા લેનાર સસરા આદિ ઘરડા કે વૃદ્ધ હોય અને વૃદ્ધાવસ્થાને કારણે અચેલક (નગ્નાવસ્થાવાળો) થઈ ગયો હોય, અને અન્ય સાધુઓ ત્યાં વિદ્યમાન ન હોય, તો એવી પરિસ્થિતિમાં સચેલક સાધ્વીઓ સાથે રહેતો શ્રમણ નિર્ગ્રંથ ભગવાનની આજ્ઞાનો વિરાધક થતો નથી. ॥ સૂ. ૭ ॥

टीका—' पंच आसवदारा ' इत्यादि—

आस्रवद्वाराणि—आस्रवणम्—आस्रवः—जीवरूपे तडागे कर्मरूपजलस्य प्रवेशः तस्य द्वाराणीव द्वाराणि=उपायाः, तानि हि पंच संख्यकानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा मिथ्यात्वम्=अतत्त्वे तत्त्वाध्यवसानरूपं विपरीतश्रद्धानमित्यर्थ इति प्रथमं स्थानम् १। अविरतिः=पापकर्मतोऽनिवृत्तिः निवृत्तेरभावः २। प्रमादः—अनवधानता—

अनन्तर सूत्रमें " जिनाज्ञा को माननेवाला जिनाज्ञाका विराधक नहीं होता है " ऐसा कहा गया है और जो जिनाज्ञा को नहीं मानता है वह जिनाज्ञाका विराधक होता है, जिनाज्ञाकी विराधना आस्रव रूप होती हैं । अतः अब सूत्रकार आस्रव द्वारों का और आस्रव द्वारों के रुकने रूप संवर द्वारों का तथा दण्ड रूप आस्रव विशेषोंका कथन करते हैं—" पंच आसवदारा पण्णत्ता " इत्यादि—

टीकार्थ—आस्रव द्वार पांच कहे गये हैं, जैसे—मिथ्यात्व १, अविरति २, प्रमाद ३, कषाय ४ और योग ५ । पांच संवर द्वार कहे गये हैं, जैसे—सम्यक्त्व १, विरति २, अप्रमाद ३, अकषायिता ४ और अयोगिता ५ दण्ड पांच कहे गये हैं, जैसे—अर्थदण्ड १, अनर्थदण्ड २, हिंसादण्ड ३, अकस्मात् दण्ड ४ और दृष्टिविपर्यास दण्ड ५.

जीवरूप तालाब में कर्मरूप जलका जो प्रवेश है वह आस्रव है, इस आस्रव के द्वार जैसे जो द्वार हैं वे आस्रवद्वार हैं । आस्रवके आनेके जो उपाय कारण हैं वे पांच हैं, जैसे—मिथ्यात्व आदि अतत्त्वमें

" જિનાજ્ઞાનું પાલન કરનારો જિનાજ્ઞાનો વિરાધક થતો નથી, " એવું આગળ કહેવામાં આવ્યું છે, જેઓ જિનાજ્ઞાને માનતા નથી તેઓ જિનાજ્ઞાના વિરાધક ગણાય છે જિનાજ્ઞાની વિરાધના આસ્રવ રૂપ હોય છે. તેથી હવે સૂત્રકાર આસ્રવદ્વારોનું અને આસ્રવોનો નિરોધ કરનારા સંવરદ્વારોનું તથા દંડ રૂપ આસ્રવવિશેષોનું કથન કરે છે.

'પચ આસવદારા પણ્ણત્તા " ઇત્યાદિ—

પાંચ આસ્રવદ્વારો કહ્યાં છે—(૧) મિથ્યાત્વ, (૨) અવિરતિ, (૩) પ્રમાદ (૪) કષાય, અને (૫) યોગ. પાંચ સંવરદ્વાર કહ્યાં છે—(૧) સમ્યકત્વ, (૨) વિરતિ, (૩) અપ્રમાદ, (૪) અકષાયિતા અને (૫) અયોગિતા. દંડ પાચ કહ્યાં છે—(૧) અર્થદંડ, (૨) અનર્થદંડ, (૩) હિંસાદંડ, (૪) અકસ્માત્ દંડ અને (૫) દૃષ્ટિ વિપર્યાસ દંડ.

જીવ રૂપ તળાવમાં કર્મ રૂપ જળનો જે પ્રવેશ થાય છે, તેનું નામ આસ્રવ છે. તે આસ્રવના દ્વાર જેવાં જે દ્વાર છે તેમને આસ્રવદ્વાર કહે છે. આસ્રવો (કર્મો) ના આગમના નીચે પ્રમાણે પાંચ કારણો છે—

कर्त्तव्या-कर्त्तव्ययोरप्रवृत्तिप्रवृत्तिरूपा ३। कषायाः-क्रोधादिलक्षणाः ४। योगाः=मनोयोगादयः ५। इत्येतानि पञ्च आस्रवद्वाराणि बोध्यानि। सम्प्रति एतत्प्रतिपक्षभूतानि संवरद्वाराणि प्राह-तथाहि संवरद्वाराणि-संवरणं संवरः= समितिगुप्ति प्रभृतिभिरात्मतडागे आगच्छत्कर्मसलीलानां निरोधनम्। तस्य द्वाराणीव द्वाराणि। तानि पञ्चविधानि प्रज्ञप्तानि। तद्यथा-सम्यक्त्वम् १, विरतिः २ अप्रमादः ३ अकषायित्वम् ४, अयोगित्वम् ५। तथा-दण्डाः-दण्डयते निःसारी क्रियते आत्मा यैस्ते दण्डाः=प्राणव्यपरोपणादिरूपाः। प्राणवियोजनादिरूपाः ते च पञ्चविधाः प्रज्ञप्ताः। पञ्चविधत्वमेवाह-तद्यथा-अर्थदण्ड.-अर्थाय-त्रसानां

तत्त्वाध्यवसानरूप जो विपरीत श्रद्धान है, वह मिथ्यात्व है, पापकर्मसे विरक्ति नहीं होना इसका नाम अविरति है, अनवधानताका नाम प्रमाद है, यह प्रमाद कर्तव्यमें अप्रवृत्तिरूप और अकर्तव्यमें प्रवृत्तिरूप होता है, क्रोधादिरूप कषाये हैं, और मनोयोग आदिरूप योग हैं, इनसे कर्मोंका आना होता है, अतः इन्हें आस्रवद्वार कहा गयाहै, आस्रवका प्रतिपक्षी संवर होता है, इस संवरके द्वार उपायभी पांच कहे गये हैं, आत्मारूपी तालावमें आनेवाले कर्मरूप जलका जो समिति गुप्ति आदिकों द्वारा निरोध कर दिया जाता है, वही संवर है, इसके भी पांच द्वार कहे गये हैं, जैसे सम्यक्त्व आदि ये पांच द्वार आस्रव द्वारोंसे विपरीत होते हैं। आत्मा अथवा अन्य जीव जिनके द्वारा प्राणव्यप-

---

મિથ્યાત્વ આદિ પાંચ કારણો અહીં ગ્રહણ કરવા જોઈએ. અતત્ત્વમાં તત્ત્વાધ્યવસાન રૂપ જે વિપરીત તત્ત્વોમાં શ્રદ્ધા છે, તેનુ નામ મિથ્યાત્વ છે. પાપકર્મથી નિવૃત્ત ન થવું તેમાં પ્રવૃત્ત જ રહેવું તેનું નામ અવિરતિ છે. અનવધાનતાનું નામ પ્રમાદ છે. કરવા યોગ્ય કાર્યોમાં પ્રવૃત્ત ન થવું અને ન કરવા યોગ્ય કાર્યોમાં પ્રવૃત્ત થવું તેનું નામ જ પ્રમાદ છે ક્રોધ, માન, માયા અને લોભરૂપ ચાર કષાય છે મનોયોગ, વાગ્યોગ અને કાયયોગ રૂપ ત્રણ યોગ છે. તેમના દ્વારા કર્મોનું આગમન થાય છે. તેથી તેમને આસ્રવદ્વાર રૂપ કહ્યા છે. આસ્રવનો પ્રતિપક્ષી સંવર છે તે સંવરના ઉપાય રૂપ જે પાંચ કારણો છે તેમને સંવરદ્વાર કહે છે. આત્મા રૂપી જળાશયમાં પ્રવેશ થતાં કર્મરૂપ જલને જે સમિતિ, ગુપ્તિ વગેરે દ્વારા રોકવામાં આવે છે, તેનું નામ જ સંવર છે. તેના સમ્યકત્વ આદિ જે પાંચ દ્વાર કહ્યાં છે, તેઓ આસ્રવદ્વારો કરતાં વિપરીત હોય છે આત્મા અથવા અન્ય જીવ જેમના

स्थावराणां वा आत्मनः परस्य वा प्रयोजनाय दण्डो वधः १। अनर्थदण्डः—अनर्थो=निरर्थको यो दण्डः सः निष्प्रयोजनो दण्ड इत्यर्थः २। हिंसादण्डः—' अयं मम पुत्रादिकं हिंसितवान् हिनस्ति हिंसिष्यति वेति बुद्ध्या यः शत्रु प्रभृतीनां दण्डः स हिंसादण्डः ३ तथा—अकस्माद् दण्डः—अन्यवधार्थं प्रहारे कृते अकस्माद् योऽन्यस्य दण्डः—प्राणव्यपरोपणं सः ४। तथा—दृष्टिविपर्यासदण्डः—दृष्टिविपर्यासेन—दृष्टिवैपरीत्येन—मित्रस्याप्यमित्रधिया यो दण्डः सः ५। इत्येते पञ्च दण्डा त्रयोदशक्रियास्थानानां मध्ये वर्त्तन्ते। अत्र तु पंचस्थानानुरोधेन पञ्चैव स्थानानि गृहीतानि। तानि त्रयोदशक्रियास्थानानि यथा—

" अट्ठा १ णट्ठा २ हिंसा ३ ऽकम्हा ४ दिट्ठी ५ य मोसदिन्ने ६ य।
अज्झत्थ ८ माणा ९ मित्ते १० माया ११ लोभे १२ रियावहिया १३ ॥१॥"

रोपणादि रूप दण्डको पाता है, वे दण्ड हैं, ये दण्डभी अर्थदण्ड आदिके भेदसे पांच प्रकारके कहे गये हैं, इनमें त्रस जीवोंका अथवा स्थावर जीवोंका तथा अपना तथा परका प्रयोजनवश वध करना वह अर्थदण्डहै, निष्प्रयोजन प्राणातिपात करना वह अनर्थदण्ड है, इसने मेरे पुत्रादिका वध किया था अथवा अब भी वध करता है, आगेभी यह ऐसाही करेगा इस अभिप्रायसे जो शत्रु आदिकोंका वध कर दिया जाता है, वह हिंसादण्ड है, अन्यको मारनेके लिये तैयार हुए व्यक्तिसे जो अकस्मात् बीचमें दूसरेकी हिंसा हो जाती है, वह अकस्मात् दण्ड है, दृष्टिके विपर्याससे जो प्राणातिपात हो जाता है, वह दृष्टि विपर्यास दण्ड है, जैसे—अमित्रकी बुद्धिसे मित्रका वध हो जाता है। ये पांच दण्ड १३

દ્વારા પ્રાણવ્યપરોપણ આદિ રૂપ દંડને પ્રાપ્ત કરે છે, તેમને દંડ કહે છે. તે દંડના પણ અર્થદંડ આદિ પાંચ પ્રકાર કહ્યા છે ત્રસ જીવોનો, સ્થાવર જીવોનો પોતાનો કે પરનો કોઈ પ્રયોજનને લીધે વધ કરવો તેનું નામ અર્થદંડ છે કોઈ પણ જાતના પ્રયોજન વિના જીવહિંસા કરવી તે અનર્થદંડ છે આ જીવે મારા પુત્ર આદિનો વધ કર્યો હતો, વધ કરે છે કે વધ કરશે, એવી માન્યતાથી પ્રેરાઈને શત્રુ આદિનો જે વધ કરવામાં આવે છે તેનું નામ હિંસાદંડ છે કોઈને મારવાને તૈયાર થયેલી વ્યક્તિ દ્વારા કોઈ અન્ય વ્યક્તિની અકસ્માત્ હત્યા થઈ જાય તો તેને અકસ્માત્ દંડ કહે છે દૃષ્ટિવિપર્યાસને કારણે જે પ્રાણાતિપાત થઈ જાય છે, તેને દૃષ્ટિવિપર્યાસ દંડ કહે છે જેમકે મિત્રને અમિત્ર માનીને તેનો વધ થઈ જાય તો તે દૃષ્ટિવિપર્યાસ દંડ કહેવાય છે આ પાંચ દંડનો ૧૩ ક્રિયાસ્થાનોમાં સમાવેશ થઈ જાય છે, પરન્તુ અહીં

छाया-अर्थो १ ऽनर्थो २ हिंसा ३ ऽकस्मात् ४ दृष्टिश्च ५ मृषा ६ अदत्तं ७ च।
अध्यात्मं ८ मानो ९ मित्रं १० माया ११ लोभः १२ ऐर्यापथिकी १३॥
इति ।। ॥ सू० ८ ॥

अथ आस्रवविशेषरूपाणि क्रियास्थानानि आह—

मूलम्-पंच किरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा-आरंभिया १, परिग्गहिया २, मायावत्तिया ३, अपच्चक्खाणवत्तिया ४, मिच्छादंसणवत्तिया ५। मिच्छादिट्ठियाणं नेरइयाणं पंच किरियाओ पण्णत्ताओ तं जहा--आरंभिया जाव मिच्छादंसणवत्तिया ५। एवं सव्वेसिं निरंतरं जाव मिच्छादिट्ठियाणं वेमाणियाणं । नवरं विगलिंदिया मिच्छादिट्ठी न भण्णंति, सेसं तहेव । १ । पंच किरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा-काइया १ आहिगरणिया २ पाओसिया ३ पारितावणिया ४ पाणाइवायकिरिया ५। णेरइयाणं पंच एवं चेव जाव वेमाणियाणं २। पंच किरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा-दिट्ठिया १ पुट्ठिया २ पाडुच्चिया ३ सामंतोवणिवाइया ४ साहत्थिया ५। एवं णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं

क्रिया स्थानोंके बीचमें हैं, परन्तु यहां पांच स्थानोंके अनुरोधसे पांचही स्थान गृहीत हुए हैं। वे १३ क्रियास्थान इस प्रकारसे हैं—

" अट्ठाणट्ठा हिंसा " इत्यादि ।

इन १३ क्रिया स्थानोंमें अर्थ अनर्थ आदि ये पांच दण्ड आये हैं। इन १३ क्रिया स्थानोंसे जीव वध होता है ॥ सू० ८ ॥

પાચ સ્થાનોનો અધિકાર ચાલતો હોવાથી પાચ જ સ્થાન ગ્રહણ કરવામાં આવ્યાં છે તે ૧૩ ક્રિયાસ્થાન નીચે પ્રમાણે છે--

" અટ્ઠાણટ્ઠા હિંસા " ઈત્યાદિ તે તેર ક્રિયાસ્થાનોમાં અર્થ, અનથ આદિ આ પાંચ દંડનો તો સમાવેશ થયેલો જ છે. તે તેર ક્રિયાસ્થાનો વડે જીવ-વધ થતો હોય છે. ॥ સૂ. ૮ ॥

३। पंच किरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा–णेसत्थिया १ आणव-णिया २ वेयारणिया ३ अणाभोगवत्तिया ४ अणवकंखवत्तिया ५, एवं जाव वेमाणियाणं ४। पंच किरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा–पेज्जवत्तिया १ दोसवत्तिया २ पओगकिरिया ३ समुदा-णकिरिया ४ इरियावहिया ५, एवं मणुस्साणवि। सेसाणं नत्थि ५ ॥ सू० ९ ॥

छाया—पञ्च क्रियाः प्रज्ञप्ताः तद्यथा–आरम्भिकी १, पारिग्रहिकी २, माया प्रत्यया ३, अप्रत्याख्यानप्रत्यया ४ मिथ्यादर्शनप्रत्यया ५। मिथ्यादृष्टिकानां नैरयिकाणां पञ्च क्रियाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा आरम्भिकी १ यावद् मिथ्यादर्शनप्रत्यया ५। एवं सर्वेषां निरन्तरं यावद् मिथ्यादृष्टिकानां वैमानिकानाम्। नवरं विकलेन्द्रिया मिथ्यादृष्टयो न भण्यन्ते, शेषं तथैव ॥ १॥ पञ्च क्रियाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–कायिकी १ आधिकरणिकी २, प्राद्वेषिकी ३ पारितापनिकी ४ प्राणा-तिपातक्रिया ५। नैरयिकाणां पञ्च, एवमेव निरन्तरं यावद् वैमानिकानाम् २। पञ्च क्रियाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–दृष्टिका १ पृष्टिका २ प्रातीत्यिका ३ सामन्तोप-निपातिकी ४ स्वाहस्तिकी ५। एवं नैरयिकाणां यावद् वैमानिकानाम् ३। पञ्च क्रियाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–नैसृष्टिकी १ आज्ञापनिका २, वैदारणिका ३ अनाभोग-प्रत्यया ४ अनवकाङ्क्षाप्रत्यया ५। एवं यावद् वैमानिकानाम् ४। पञ्च क्रियाः प्रज्ञप्ताः तद्यथा–प्रेमप्रत्यया १ द्वेषप्रत्यया २ प्रयोगक्रिया ३ समुदानक्रिया ४ ऐर्यापथीकी ५। एवं मनुष्याणामपि। शेषाणां नास्ति ५॥ सू० ९ ॥

टीका—'पंच किरियाओ' इत्यादि—

क्रियाः करणानि क्रिया–कर्मबन्धकारणीभूतचेष्टा इत्यर्थः, ताहि पञ्च प्रज्ञप्ता। पञ्च संख्यकत्वमेवाह–'आरम्भिकी' इत्यादि। तत्र–आरम्भिकी–आ-

---

अब सूत्रकार आस्रव विशेषरूप क्रिया स्थानोंकी प्ररूपणा करते हैं–

'पंच किरियाओ पण्णत्ताओ इत्यादि सूत्र ९ ॥

टीकार्थ–कर्मबन्ध कारणभूत जो चेष्टा विशेष हैं, वे क्रियाएँ हैं, ये क्रियाएँ

હવે સૂત્રકાર આસ્રવવિશેષ રૂપ ક્રિયા સ્થાનોની પ્રરૂપણા કરે છે.

ટીકાર્થ–" પંચ किरियाओ पण्णत्ताओ " ઇત્યાદિ--

કર્મબન્ધનમાં કારણભૂત જે ચેષ્ટાવિશેષો હોય છે, તેમને ક્રિયાઓ કહે

म्भः—पृथीव्याद्युपमर्दनं, स प्रयोजनं, यस्याः सा—पृथीव्याद्युपमर्दनरूपा क्रियेत्यर्थः ।१। तथा—पारिग्रहिकी—परिग्रहः=धर्मोपकरणातिरिक्तवस्तुग्रहणं धर्मोपकरणे मूर्च्छा वा, स प्रयोजनं यस्याः सा परिग्रहार्था क्रियेत्यर्थः ।२। तथा—माया प्रत्यया माया=अनार्जवम्, उपलक्षणत्वात् क्रोधादि रपि, सा प्रत्ययः=कारणं यस्याः सा, मायानिबन्धिनी क्रियेत्यर्थः ॥३॥

अप्रत्याख्यानप्रत्यया—अप्रत्याख्यानम्=अनिवृत्तिः, तत् प्रत्ययो यस्याः सा, अप्रत्याख्यानजन्या क्रियेत्यर्थः ॥४। तथा—मिथ्यादर्शनप्रत्यया—मिथ्या=विपरीतदर्शनं=श्रद्धानं, तदेव, प्रत्ययो हेतुर्यस्याः सा, मोहोदयजन्या क्रियेत्यर्थः

पांच कही गई हैं—आरम्भिकी १ पारिग्रहिकी २ मायाप्रत्यया ३ अप्रत्याख्यान प्रत्यया ४ और मिथ्यादर्शन प्रत्यया जिस क्रियाका प्रयोजन पृथिवी आदिका उपमर्दन करनेरूप होता है, वह आरम्भ क्रिया है, आरम्भ विना प्राणातिपात होता नहीं है, इसलिये आरम्भ क्रियाको पृथिवीकायिक आदिके उपमर्दनरूप कहा गया है, धर्मोपकरण से अतिरिक्त वस्तुओंका ग्रहण करना अथवा धर्मोपकरणमें मूर्च्छा रखना यह प्रयोजन जिस क्रियाका होता है, वह पारिग्रहिकी क्रिया है, जिस क्रियाका कारण माया एवं उपलक्षणसे क्रोधादिक भी होते हैं, वह मायाप्रत्यया क्रिया है, अनिवृत्ति—त्यागका अभाव अप्रत्याख्यान है, यह अप्रत्याख्यानभाव जिस क्रियाका कारण होता है, वह अप्रत्याख्यानजन्य क्रिया अप्रत्याख्यान क्रिया है, विपरीत दर्शनका नाम मिथ्यादर्शन है, यह मिथ्याश्रद्धानरूप मिथ्यादर्शन जिस क्रियाका हेतु होता

છે. એવી ક્રિયાઓ પાંચ કહી છે--(૧) આરમ્ભિકી, (૨) પારિગ્રહિકી, (૩) માયાપ્રત્યયા, (૪) અપ્રત્યાખ્યાનપ્રત્યયા અને મિથ્યાદર્શનપ્રત્યયા.

જે ક્રિયાનું પ્રયોજન પૃથ્વીકાય આદિને ઉપમર્દન કરવા રૂપ હોય છે, તે 'આરમ્ભ ક્રિયા' છે. આરમ્ભ વિના પ્રાણાતિપાત થતો નથી, તેથી આરમ્ભ ક્રિયાને પૃથ્વીકાયિક આદિના ઉપમર્દન રૂપ કહેવામાં આવેલ છે. ધર્મોપકરણ સિવાયની વધારાની વસ્તુઓને ગ્રહણ કરવી અથવા ધર્મોપકરણમાં મૂર્ચ્છાભાવ રાખવા રૂપ પ્રયોજન જે ક્રિયાનું હોય છે, તે ક્રિયાને પારિગ્રહિકી ક્રિયા કહે છે. જે ક્રિયાનું કારણ માયા હોય છે અને ઉપલક્ષણથી ક્રોધાદિક પણ હોય છે, તે ક્રિયાને માયાપ્રત્યયા ક્રિયા કહે છે. અનિવૃત્તિ (ત્યાગના અભાવ) ને અપ્રત્યાખ્યાન કહે છે. તે અપ્રત્યાખ્યાન ભાવ જે ક્રિયાનું કારણ હોય છે, તે અપ્રત્યાખ્યાનજન્ય ક્રિયાને અપ્રત્યાખ્યાન પ્રત્યયા ક્રિયા કહે છે. વિપરીત દર્શનનું નામ મિથ્યાદર્શન છે. તે મિથ્યાશ્રદ્ધાન રૂપ મિથ્યાદર્શન જે ક્રિયાનું

॥५॥ इति। एता हि पञ्च क्रिया मिथ्यादृष्टिकनैरयिकादि–मिथ्यादृष्टिकवैमानिकान्तानां चतुर्विंशतिदण्डकोक्तानां भवन्ति। चतुर्विंशति दण्डके तु ये विकलेन्द्रियाः=एकद्वित्रिचतुरिन्द्रियाः सन्ति, ते हि मिथ्यादृष्टीति विशेषणेन न विशिष्यन्ते, तेषु सदैव सम्यगूदृष्टित्वाभावेन व्यवच्छेद्याभावात्। ननु तेष्वपि सासादना भवन्ति, ततश्च तेषामपि मिथ्यादृष्टीति विशेषणं योज्यमेवेतिचेन्न, तेषामल्पत्वेनेहाविवक्षणादिति। अमुमेवार्थमाह सूत्रकारः–' मिच्छादिट्ठियाणं नेर-

है, ऐसी वह मोहके उदयसे उत्पन्न हुई क्रिया मिथ्यादर्शन क्रिया है, ये पांच क्रियाएँ मिथ्यादृष्टि नैरयिकसे लेकर मिथ्यादृष्टिक वैमानिक तकके समस्त चौवीस दण्डकमें होती हैं, चौवीस दण्डकमें जो एकेन्द्रिय दोइन्द्रिय तेइन्द्रिय और चौइन्द्रिय जीव हैं वे "मिथ्यादृष्टि" इस विशेषणसे विशेषित नहीं होते हैं, क्योंकि इनमें सम्यग्दृष्टित्वके अभावसे व्यवच्छेद्य होनेका अभाव है, अर्थात् इनमें यदि सम्यग्दृष्टि कोई जीव पाया जाता तो उस दृष्टिके अभावसे यहां मिथ्यादृष्टित्व आता है, परन्तु यहां तो ऐसी हालत है नहीं–अतः ये मिथ्यादृष्टि विशेषतावाले नहीं कहे जाते हैं। यदि यहां पर ऐसी आशंका की जावे कि इनमें भी सासादन सम्यग्दृष्टि होते हैं, अतः यह दृष्टि जिनके नहीं हैं वे मिथ्यादृष्टि हैं, इस तरह उनमें भी "मिथ्यादृष्टि" यह विशेषण लगाना चाहिये सो इसका समाधान ऐसा है, कि जिनमें सासादन सम्यग्दृष्टि

કારણ હોય છે, એવી મોહના ઉદયથી ઉત્પન્ન થયેલી ક્રિયાને મિથ્યાદર્શન ક્રિયા કહે છે. મિથ્યાદૃષ્ટિ નારકોથી લઇને વૈમાનિકો પર્યન્તના ૨૪ દંડકના સમસ્ત જીવોમાં આ પાંચે ક્રિયાઓનો સદ્ભાવ હોય છે ચોવીસ દંડકમાં જે એકેન્દ્રિય, દ્વીન્દ્રિય, ત્રીન્દ્રિય અને ચતુરિન્દ્રિય જીવો છે તેમને "મિથ્યાદૃષ્ટિ" આ વિશેષણ લગાડી શકાતું નથી, કારણ કે તેઓમાં સમ્યગ્દૃષ્ટિત્વના અભાવથી વ્યવચ્છેદ્ય હોવાનો અભાવ છે, એટલે કે તેઓમાં જો સમ્યગ્દૃષ્ટિ કોઇ જીવનો સદ્ભાવ હોય, તો તે દૃષ્ટિના અભાવથી ત્યાં મિથ્યાદૃષ્ટિત્વ આવે છે. પણ ત્યાં તો એવી હાલત નથી. તેથી તેમને મિથ્યાદૃષ્ટિ વિશેષણવાળા કહેવાતા નથી.

જો અહીં એવી આશંકા કરવામાં આવે કે તેમનામાં પણ સાસાદન સમ્યગ્દૃષ્ટિ હોય છે, તેથી આ દૃષ્ટિનો જેમનામાં અભાવ છે, તેમને મિથ્યાદૃષ્ટિ જ ગણવા જોઇએ. છતાં તેમને મિથ્યાદૃષ્ટિ વિશેષણ લગાડવાની શા કારણે ના પાડવામાં આવી છે? તો આ શંકાનું સમાધાન નીચે પ્રમાણે છે—

इयाणं' इत्यारभ्य 'सेसं तहेव' इत्यन्तेन सन्दर्भेणेति ॥१॥ पुनरपि कायिक्यादिभेदेन पञ्च क्रियाः प्राह–तथाहि–कायिकी=कायेभवा कायेन निर्वृत्ता वा, हस्तादिव्यापाररूपेत्यर्थः ॥१॥ आधिकरणिकी=अधिकरणं=खड्गादिकं तत्र भवा तेन वा निर्वृत्ता। इयं द्विविधा भवति–निर्वर्त्तनाधिकरणक्रियासंयोजनाधिकरणक्रिया च। तत्र या खड्गादीनां तन्मुष्टयादीनां च निर्वर्त्तनलक्षणा क्रिया सा प्रथमा। या तु निर्वृत्तानामेव तेषां संयोजनलक्षणा सा द्वितीयेति। २। प्राद्वेषिकी–प्रद्वेषो–मात्सर्यम्–अन्य शुभद्वेष इत्यर्थः, तेन निर्वृत्ता या क्रिया सा–'मारयाम्येनम्'

पाये जाते हैं, ऐसे वे सासादन सम्यग्दृष्टि बहुतही कम होते हैं अतः उनकी यहां अविवक्षा है, विवक्षा नहींकी गई है, इसीका पुष्टि सूत्रकारने "मिच्छादिट्ठियाणं नेरइयाणं" यहांसे लेकर "सेसं तहेव" यहां तकके संदर्भसे प्रकटकी गई है १। पुनश्च—कायिकी आदिके भेदसे क्रियाएँ पांच होती हैं–इनमें जो क्रिया शरीरमें या शरीरके द्वारा होती है, वह कायिकी क्रिया है, यह क्रिया हस्तादिके व्यापाररूप होती है १ आधिकरणिकी–खड्गादिरूप अधिकरणमें या खड्गादिरूप अधिकरणके द्वारा जो क्रिया होती है वह आधिकरणकी क्रिया है, यह क्रिया दो प्रकारकी होती है–एक निर्वर्तनाधिकरण क्रिया और दूसरी संयोजनाधिकरण क्रिया इनमें जो खड्गादिकोंका या उनकी मूंठ आदिका बनाना है, वह निर्वर्तनाधिकरण क्रिया है, तथा जो खड्गादिकोंका और उनकी मूठ आदिका परस्परमें संयोजन है, वह संयोजनाधिकरण क्रिया है २। प्रद्वेष नाम मात्सर्यका है, अन्यके शुभके प्रति द्वेषरूप परिणतिका होना इसका

તેઓમાં સાસાદન સમ્યગ્દષ્ટિ જીવો ઘણાં જ ઓછાં હોય છે. તેથી સૂત્રકારે અહીં તેમનો ઉલ્લેખ કર્યો નથી. સૂત્રકારે "मिच्छादिट्ठियाणं नेरइयाणं" થી લઈને "सेसं तहेव" આ સૂત્રપાઠ સુધીના કથન દ્વારા એ જ વાતની પુષ્ટિ કરી છે.

ક્રિયાના કાયિકી આદિ પાંચ ભેદ પણ કહ્યા છે. જે ક્રિયા શરીરમાં અથવા શરીર દ્વારા થાય છે તે ક્રિયાને કાયિકી ક્રિયા કહે છે. તે ક્રિયા હસ્તાદિની પ્રવૃત્તિ રૂપ હોય છે. (૨) આધિકરણિકી ક્રિયા–તેના બે પ્રકાર કહ્યા છે–નિર્વર્તનાધિકરણ ક્રિયા અને સંયોજનાધિકરણ ક્રિયા. તલવાર, તેની મૂઠ આદિ બનાવવાની ક્રિયાને નિર્વર્તનાધિકરણ ક્રિયા કહે છે. તલવાર આદિકોનું અને તેમની મૂઠ આદિનું પરસ્પરમાં જે સંયોજન કરવા રૂપ ક્રિયા છે તેને સંયોજનાધિકરણ ક્રિયા કહે છે. (૩) પ્રાદ્વેષિકી ક્રિયા–અન્યના લાભને જોઈને તેના પ્રત્યે દ્વેષ રૂપ પરિણતિ ઉત્પન્ન થાય છે, તેનું નામ પ્રદ્વેષ છે.

इत्यशुभमनः संकल्परूपा।३। पारितापनिकी-परितापनं नाम दुःखं तेन निर्वृत्ता-खड्गादिघातेन पीडाकरणरूपा ४। तथा प्राणातिपातक्रिया-प्राणाः=उच्छ्वासादयः तेषाम् अतिपातनं=प्राणवतःसकाशाद् वियोजनं, नाशनं, प्राणातिपातः, तद्रूपा क्रिया ५। एताः कायिक्यादयः क्रियाश्चतुर्विंशतिदण्डकोक्तनैरयिकादिवैमानिकान्तानां सर्वेषां बोध्याः ।२।

पुनरपि दृष्टिकादिभेदैः पञ्च क्रियाः प्राह-तथाहि-दृष्टिका-दृष्टं=दर्शनम्=अवलोकनं तद्विषयं वस्तु वा निमित्ततया यस्यामस्ति सा दृष्टिका-अश्वादि चित्र-

---

नाम मात्सर्य है, इस मात्सर्यरूप प्रद्वेषसे जो क्रिया होती है, वह प्राद्वेषिकी क्रिया है, यह प्राद्वेषिकी क्रिया "मैं इसे मारूं" इस प्रकारके मानसिक संकल्परूप होती है ३। परितापन नाम दुःख है, इस दुःख रूप परितापनसे जो क्रिया होती है, वह पारितापनिकी क्रिया है, यह क्रिया खड्ग आदिके घातसे पीडा करनेरूप होती है ४। तथा उच्छ्वास आदि प्राणोंका प्राणवालेसे वियोजन करना इसका नाम प्राणातिपात है, और इस रूप जो क्रिया है, वह प्राणातिपात क्रिया है ५। ये कायिकी आदि क्रियाएँ चौवीस दण्डकोक्त नैरयिकसे लेकर वैमानिक तकके समस्त जीवोंको होती हैं २।

पुनश्च-दृष्टिक आदिके भेदसे क्रियाएँ पांच प्रकारकी होतीहैं, जैसे-दृष्टिका१ आदि इनमें दर्शनका नाम दृष्टहै, अथवा-अवलोकनका-देखनेका नाम दृष्ट है, अथवा-अवलोकनकी विषयभूत जो वस्तु है, वह दृष्ट है,

---

આ પ્રદ્વેષને કારણે જે ક્રિયા થાય છે તેને પ્રાદ્વેષિકી ક્રિયા કહે છે. " હું તેને મારું " આ પ્રકારના માનસિક સંકલ્પ રૂપ આ ક્રિયા હોય છે. (૪) પરિતાપનિકી ક્રિયા--પરિતાપન એટલે દુઃખ આ દુઃખરૂપ પરિતાપન વડે જે ક્રિયા થાય છે તેને પરિતાપનિકી ક્રિયા કહે છે. લાકડી, તલવાર આદિના ઘા વડે પીડા કરવા રૂપ આ ક્રિયા હોય છે. (૫) પ્રાણાતિપાત ક્રિયા-ઉચ્છ્વાસ આદિ પ્રાણોને પ્રાણવાળા જીવોમાંથી અલગ કરવા તેનું નામ પ્રાણાતિપાત છે. તે પ્રાણાતિપાત રૂપ જે ક્રિયા હોય છે તેને પ્રાણાતિપાત ક્રિયા કહે છે. કાયિકીથી લઈને પ્રાણાતિપાત પર્યન્તની પાંચે ક્રિયાઓનો નારકોથી લઈને વૈમાનિકો પર્યન્તના ૨૪ દંડકના સમસ્ત જીવોમાં સદ્ભાવ હોય છે.

દૃષ્ટિકા આદિના ભેદથી પણ ક્રિયાઓ પાંચ પ્રકારની કહી છે-દર્શનનું નામ દૃષ્ટ છે અથવા અવલોકનનું નામ દૃષ્ટ છે. અથવા અવલોકનનાં વિષય

कर्मादिदर्शनार्थं गमनरूपेत्यर्थः । यद्वा-' दृष्टिजा ' इतिच्छाया । दृष्टेर्जाता-दृष्टिजा, दर्शनजनिता क्रियेत्यर्थः । १। पृष्टिका-पृष्टं=प्रश्नः, तदस्ति निमित्त तया यस्यां सा-जीवादीन् रागादिना पृच्छतो या क्रिया सा सावद्यप्रश्नजनिता क्रियेत्यर्थः । ' स्पृष्टिका ' इति वा च्छाया । स्पृष्टं=स्पर्शनं, तदस्ति निमित्तत्तया यस्यां सा-रागादिना स्पृशतो या क्रिया सा स्पर्शजन्या-क्रियेत्यर्थः । 'पृष्टिजा' इति वा च्छायापक्षे पूर्वोक्तएवार्थो बोध्यः २।

यह दृष्ट निमित्त रूपसे जिस क्रियामें है, वह दृष्टिका क्रिया है, यह दृष्टिका क्रिया अश्वादिके चित्र आदिको देखनेके लिये गमन करने रूप-(जाने रूप) होती है, अथवा-" दिट्ठिया "की संस्कृत छाया " दृष्टिजा " ऐसी भी हो सकती है, इस पक्षमें देखनेसे जो क्रिया होती है, वह दृष्टिजा क्रिया है, ऐसा अर्थ होता है १। पृष्टिका-पृष्ट नाम प्रश्नका है, यह प्रश्न जिस क्रियामें निमित्तरूपसे होता है, वह पृष्टिका क्रिया है, ऐसी यह पृष्टिका क्रिया जीवादिकोंके विषयमें या रागादिकोंके विषयमें पूछनेवालेको होती है, अथवा-सावद्य प्रश्नसे जो क्रिया उत्पन्न होती है, वह पृष्टिका क्रिया है, अथवा-" पुट्ठिया "की संस्कृत छाया " स्पृष्टिका " ऐसी भी होती है, इसका अर्थ ऐसा होता है, कि जिस क्रियामें स्पर्शन निमित्त होता है, वह स्पृष्टिका क्रिया है, रागादिके

રૂપ જે વસ્તુ છે તેનું નામ દૃષ્ટ છે. જે ક્રિયામાં આ દૃષ્ટ નિમિત્ત રૂપ હોય છે તે ક્રિયાને દૃષ્ટિકા ક્રિયા કહે છે. આ દૃષ્ટિકા ક્રિયા અશ્વાદિકોનાં ચિત્રને જોવાને માટે ગમન કરવા રૂપ હોય છે.

અથવા " दिट्ठिया " ની સંસ્કૃત છાયા " दृष्टिजा " લેવામાં આવે તો તેનો અર્થ આ પ્રમાણે થાય છે-" દેખવાથી જે ક્રિયા થાય છે, તેને દૃષ્ટિજા ક્રિયા કહે છે. "

(૨) પૃષ્ટિકા ક્રિયા—પૃષ્ટ એટલે જે પૂછવામાં આવે તે પ્રશ્ન જે ક્રિયામાં તે નિમિત્ત રૂપ હોય છે, તે ક્રિયાને પૃષ્ટિકા ક્રિયા કહે છે. જીવાદિકોના વિષયમાં અથવા રાગાદિકોના વિષયમાં પ્રશ્ન પૂછનારને આ ક્રિયા લાગે છે. અથવા-" સાવદ્ય પ્રશ્નથી જે ક્રિયા ઉત્પન્ન થાય છે, તેને પૃષ્ટિકા ક્રિયા કહે છે. અથવા " पुट्ठिया " ની સંસ્કૃત છાયા " स्पृष्टिका " પણ થાય તેનો અર્થ આ પ્રમાણે થાય છે-" જે ક્રિયામાં સ્પર્શ નિમિત્ત રૂપ હોય છે તે ક્રિયાને સ્પૃષ્ટિકા ક્રિયા કહે છે. " રાગાદિકને વશવર્તી થઈને સ્પર્શ કરનાર

प्रातीतिकी-बाह्यं वस्तु जीवाजीव प्रतीत्य=आश्रित्य या क्रिया भवति सा ३। सामन्तोपनिपातिकी-समन्तात्=सर्वत उपनिपातः=जनानां सम्मिलनं, तत्र-भवा क्रिया। अश्वादि रथादिकं लोकाः प्रशंसन्ति, तत्प्रशंसां श्रुत्वा प्रहृष्यतोऽश्वा-श्रिथादिपतेरियं क्रिया भवति ४। तथा-स्वाहस्तिकी-स्वहस्तेन निर्वृत्ता क्रिया। स्वहस्तगृहीतजीवादिना जीवान् मारयतः क्रिया स्वाहस्तिकीत्युच्यते ५। एताः पञ्चापि क्रिया नैरयिकादि वैमानिकान्तानां भवन्तीति ॥३॥

वशवर्ती होकर छूनेवाले व्यक्तिकी जो स्पर्शजन्य क्रिया है, वह स्पृष्टिका क्रिया है अथवा-" पृष्टिजा स्पृष्टिजा " इस पक्षमें भी यही पूर्वोक्त अर्थ है २। प्रातीतिकी जीव अजीव रूप बाह्य वस्तुको प्रतीत करके आ-श्रित करके जो क्रिया होती है वह प्रातीतिकी क्रिया है ३। सामन्तो-पनिपातिकी सब तरफसे मनुष्योंका जो सम्मिलन होता है, वह साम-न्तोपनिपात हैं, इस सामन्तोपनिपातमें जो क्रिया होती है, वह साम-न्तोपनिपातिकी क्रिया है, परस्पर सम्मेलनमें अश्वरथादिकी लोक जब प्रशंसा करते हैं तब इस प्रशंसाको सुनकर हर्षित होते हुए अश्वरथा-धिपतिके यह क्रिया होती है ४। स्वाहस्तिकी-अपने हाथसे जो क्रिया निष्पन्न होतीहै वह स्वाहस्तिकी क्रियाहै, अपने हस्तसे गृहीत जीवादिकों द्वारा जीवोंको मारनेवाले प्राणीकी क्रिया स्वाहस्तिकी क्रिया कहलातीहै ५। ये पांच क्रियाएँ नैरयिकसे लेकर वैमानिक तकके जीवोंको होतीहैं३।

વ્યક્તિની જે ક્રિયા હોય છે તેને સ્પૃષ્ટિકા ક્રિયા કહે છે. અથવા " પુષ્ટિજ્ઞા સ્પૃષ્ટિજ્ઞા " આ સંસ્કૃત છાયા લેવામાં આવે તો પણ તેનો ઉપર મુજબ જ અર્થ થાય છે.

(૩) પ્રાતીતિકી ક્રિયા—જીવ અજીવ રૂપ બાહ્ય વસ્તુને પ્રતીત કરીને આશ્રિત કરીને જે ક્રિયા થાય છે, તેને પ્રાતીતિકી ક્રિયા કહે છે.

(૫) સામન્તોપનિપાતિકી ક્રિયા—ચોમેરથી આવીને માણુસોનું જે સમ્મિ-લન થાય છે, તેને ' સામન્તોપનિપાત ' કહે છે આ સામન્તોપનિપાતમાં જે ક્રિયા થાય છે, તેને સામન્તોપનિપાતિકી ક્રિયા કહે છે આવા સમ્મેલનમાં અશ્વ, રથ આદિની જ્યારે પ્રશંસા થાય છે, ત્યારે તે પ્રશંસા સાંભળીને હર્ષિત થતા અશ્વપતિ, રથપતિ આદિ આ પ્રકારની ક્રિયાવાળા હોય છે

(૫) સ્વાહસ્તિકી ક્રિયા—પોતાના હાથથી જ જે ક્રિયા થાય છે તેને સ્વાહસ્તિકી ક્રિયા કહે છે. પોતાને હાથે પકડેલા જીવાદિકો દ્વારા જીવોને મારવાની જે ક્રિયા થાય છે તેને સ્વહસ્તિકી ક્રિયા કહે છે. આ પાંચે ક્રિયા-ઓનો નારકોથી લઇને વૈમાનિકો પર્યન્તના જીવોમાં સદ્ભાવ હોય છે. ।૩।

पुनरपि पञ्च क्रियाः प्राह-तथाहि-नैसृष्टिकी-निसृष्टं-विसर्जनं पाषाणादीनां प्रक्षेपणमिति यावत्, तत्र भवा क्रिया १। आज्ञापनिका-आज्ञापनस्य=आदेशनस्य इयम्, आज्ञापनमेव वा आज्ञापनी, सैवेयम्-आज्ञापनिकाः-आज्ञापनविषया क्रिया। जीवाजीवान् अनाययतः क्रियेत्यर्थः २। वैदारणी-विदारणमेव वैदारणी-तानेव जीवाजीवान् विदारयतः क्रिया ३। अनाभोगप्रत्यया-अनाभोगः=अज्ञानादिकं, स एव प्रत्ययः कारणं यस्याः सा-अज्ञानेन पात्रादि आददतो निक्षिपतो वा सम्भवन्ती क्रियेत्यर्थः ४। तथा-अनवकाङ्क्षाप्रत्यया-अनवकाङ्क्षा-स्वश-

पुनश्च--क्रियाएँ पांच प्रकारकी हैं-जैसे-नैसृष्टिकी १ आज्ञापनिका २ वैदारणिका ३ अनाभोगप्रत्यया ४ एवं अनवकाङ्क्षा प्रत्यया ५ इनमें-जो नैसृष्टिकी क्रिया होती है, वह पाषाण आदिके फेंकने पर होती है, आज्ञापनिका क्रिया जीवोंको एवं अजीवोंको परकी प्रेरणासे आनेवालेके होती है, जो क्रिया आदेशसे सम्बन्ध रखती है, या स्वयं आज्ञापनरूप होती है, वह आज्ञापनी क्रिया है, यह आज्ञापनी क्रियाही आज्ञापनिका क्रिया है, यह क्रिया आज्ञापन विषयवाली होती है, जीवोंको एवं अजीवोंको विदारण करनेवालेके वैदारणी क्रिया होती है, जिस क्रियाका कारण अज्ञान होताहै, वह अनाभोग प्रत्यया क्रिया है, अनाभोग नाम अज्ञान आदि का है यह अनाभोगही जिस क्रिया का कारण होता है, ऐसी वह क्रिया अनाभोग प्रत्यया क्रिया है, यह क्रिया अज्ञानसे पात्रादिको उठानेवाले के या अज्ञानसे पात्रादिकोंको धरनेवालेको होती है, अनवकाङ्क्षा प्रत्यया

નીચે પ્રમાણે પાંચ પ્રકારની ક્રિયાઓ પણ હોય છે—(૧) નૈસૃષ્ટિકી, (૨) આજ્ઞાપનિકા, (૩) વૈદારણિકા, (૪) અનાભોગ પ્રત્યયા અને (૫) અનવકાંક્ષા પ્રત્યયા. પથ્થર આદિને ફેંકવાથી નૈસૃષ્ટિકી ક્રિયા થાય છે. જે ક્રિયા આદેશ સાથે સંબંધ રાખતી હોય છે અથવા પોતે જ આજ્ઞાપન રૂપ હોય છે તેને આજ્ઞાપની અથવા આજ્ઞાપનિકા ક્રિયા કહે છે. જીવો અને અજીવોને પરની પ્રેરણાથી મારનારને કે વ્યથા પહોંચાડનારને આ ક્રિયા લાગે છે. જીવોનું અને અજીવોનું વિદારણ કરનાર વડે વૈદારણી ક્રિયા થતી હોય છે.

જે ક્રિયા અજ્ઞાનને કારણે થાય છે, તે ક્રિયાને અનાભોગ પ્રત્યયા ક્રિયા કહેછે અનાભોગ એટલે અજ્ઞાન વગેરે આ અનાભોગ જ જે ક્રિયાનું કારણ હોય છે, એવી ક્રિયાને અનાભોગ પ્રત્યયા ક્રિયા કહે છે. અજ્ઞાનથી પાત્રાદિ ઉઠાવનાર કે મૂકનારને આ ક્રિયા લાગે છે. પોતાના શરીર આદિ સંબંધી અનપેક્ષાને કારણે જે ક્રિયા થાય છે, તે ક્રિયાને અનવકાંક્ષા પ્રત્યયા ક્રિયા કહે છે.

रीराद्यनपेक्षत्वं, सैव प्रत्ययं–कारणं यस्याः सा–इहलोक परलोकापायानपेक्षस्य क्रियेत्यर्थः ५। एता नैसृष्टिक्याद्यनवकाङ्क्षप्रत्ययान्ताः पञ्चापि क्रिया नैरयिकादि वैमानिकान्तानां चतुर्विंशतिदण्डकोक्तानां बोध्याः। पुनरपि पञ्च क्रियाः प्राह–तथाहि–प्रेमप्रत्यया–प्रेम=रागः प्रत्ययोः हेतुर्यस्यां क्रियायां सा, रागजन्या क्रिया १। द्वेष प्रत्यया–द्वेषः=अप्रीतिः प्रत्ययो यस्यां सा–द्वेषजन्या क्रिया २। प्रयोग-क्रिया–वीर्यान्तरायक्षयोपशमाविर्भूतवीर्येण आत्मना प्रयुज्यते=व्यापार्यते इति प्रयोगः मनोवाक्कायलक्षणः, तस्य क्रिया=कारणं व्यापारः–मनोवाक्कायव्यापार-

---

क्रिया वह है, कि जिसका कारण स्वशरीरादिकी अनपेक्षा होती है, यह क्रिया उसको होती है कि जिसे इहलोक सम्बन्धी और परलोक सम्बन्धी उपायकी परवाहही नहीं होती है, ये पांचोंही क्रियाएँ नैरयिकसे लेकर वैमानिक तकके समस्त चौवीस दण्डकस्थ जीवोंको होती हैं।

पुनश्च––क्रियाएँ पांच प्रकारकी हैं–जैसे–प्रेम प्रत्यया १ द्वेष प्रत्यया २ प्रयोग क्रिया ३ समुदान क्रिया ४ और ऐर्यापथिकी क्रिया ५ जिस क्रियामें प्रेम–राग हेतु होता है, वह प्रेमप्रत्यया क्रिया है, तात्पर्य यह है कि जो क्रिया रागसे जन्य होती है, वह प्रेमप्रत्यया क्रिया है १ जिस क्रियामें अप्रीति कारण होती है, अर्थात् जो क्रिया द्वेषजन्य होती है, वह द्वेषप्रत्यया क्रिया है, वीर्यान्तराय कर्मके क्षयोपशमसे आविर्भूत वीर्यसे युक्त आत्माके द्वारा जो व्यापार किया जाता है, उसका नाम प्रयोग है, यह प्रयोग मन वचन कायरूप होता है, अर्थात् मन वचन

આ ક્રિયા તેના દ્વારા થાય છે કે જેને આ લોક અને પરલોક સંબંધી ઉપાયની પરવા હોતી નથી. નારકોથી લઇને વૈમાનિકો પર્યન્તના ૨૪ દંડકના સમસ્ત જીવોમાં આ પાંચે ક્રિયાઓનો સદ્ભાવ હોય છે. । ૪ ।

ક્રિયાના નીચે પ્રમાણે પાંચ પ્રકાર કહ્યા છે—(૧) પ્રેમ પ્રત્યયા, (૨) દ્વેષ પ્રત્યયા, (૩) પ્રયોગ ક્રિયા, (૪) સમુદાન ક્રિયા અને (૫) ઐર્યાપથિકી ક્રિયા. જે ક્રિયામાં પ્રેમ-રાગ કારણરૂપ હોય છે તે ક્રિયાને પ્રેમ પ્રત્યયા ક્રિયા કહે છે. એટલે કે રાગજન્ય જે ક્રિયા હોય છે તેને પ્રેમપ્રત્યયા ક્રિયા કહે છે. જે ક્રિયામાં અપ્રીતિ કારણરૂપ હોય છે, અથવા જે ક્રિયા દ્વેષજન્ય હોય છે, તેને દ્વેષપ્રત્યયા ક્રિયા કહે છે વીર્યાન્તરાય કર્મના ક્ષયોપશમથી આવિર્ભૂત વીર્યથી યુક્ત આત્મા દ્વારા જે વ્યાપાર કરાય છે, તેનુ નામ પ્રયોગ છે. તે પ્રયોગ મન, વચન અને કાયરૂપ હોય છે એટલે કે મન, વચન અને કાયની

इत्यर्थः ३। समुदानक्रिया-प्रयोगक्रियैकरूपतया गृहीतानां कर्मवर्गणानां सम्यक् प्रकृतिबन्धादिभेदेन देश सर्वोपघातिरूपतया च आदानं=स्वीकरणं समुदानं, तद्रूपा क्रिया, यद्वा-समुदानम्=जनसमूहः, तस्य क्रिया ४। तथा-ऐर्यापथिकी-ईरणं=गमनम्-ईर्या, तद्विशिष्टः पन्था ईर्यापथः तत्र भवा ऐर्यापथिकी-उपशान्त-

कायकी क्रियारूप जो आत्माका व्यापार है, वही प्रयोग है, और यही प्रयोग क्रिया है, समुदान क्रिया-प्रयोग क्रिया द्वारा एकरूपसे गृहीत हुई कर्मवर्गणाओंका जो प्रकृतिबन्ध आदिके भेदसे विभाग होना है, और उसमें भी देशघाति एवं सर्वघातिके अंशोंका पड़ना होना है, यह समुदान क्रिया है, जैसे किसी जीवने प्रयोग क्रिया द्वारा कार्मण वर्गणाओंका सामान्यरूपमें बन्ध किया, अब उनमें कितनिकवर्गणाओंका ज्ञानावरणीय आदि रूपसे प्रकृतिबन्ध हुआ उसमें भी मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधि ज्ञानावरण मनःपर्यवज्ञानावरण इस रूपसे जो उसका परिणमन हुआ है, वह देशघातिरूपसे उसका प्रकृतिबन्ध है, और जो केवल ज्ञानावरण रूपसे उसका परिणमनहै, वह सर्वघातिरूपसे प्रकृतिबन्ध है, यही इस समुदान क्रियाका तात्पर्य है, अथवा-समुदान नाम जनसमूहका है, इसकी जो क्रिया है, वह भी समुदान क्रिया है ४। ईरण नाम गमनका है, यह ईरणही ईर्या है, इस ईर्यासे विशिष्ट जो मार्ग है, वह ईर्यापथ है, अर्थात् गमनका साधक जो मार्ग है, वह ईर्या-

પ્રવૃત્તિરૂપ આત્માનો જે વ્યાપાર છે તેને પ્રયોગ કહે છે, અને એ જ પ્રયોગ ક્રિયા છે. હવે સમુદાન ક્રિયાનો અર્થ સ્પષ્ટ કરવામાં આવે છે—

પ્રયોગક્રિયા દ્વારા એક રૂપે ગ્રહણ કરાયેલ કર્મવર્ગણાઓનો જે પ્રકૃતિબન્ધ આદિ રૂપે વિભાગ થાય છે, અને તેમાં પણ દેશઘાતિ અને સર્વઘાતિ રૂપ જે વિભાગો પડે છે. તેનું નામ સમુદાન ક્રિયા કહે છે. જેમકે--કોઇ જીવે પ્રયોગક્રિયા દ્વારા કાર્માણ વર્ગણાઓનો સામાન્ય રૂપે બન્ધ કર્યો. તેમાંથી કેટલીક વર્ગણાઓનો જ્ઞાનાવરણીય આદિ રૂપે પ્રકૃતિબન્ધ થયો. હવે તેનું જે મતિજ્ઞાનાવરણ, શ્રુતજ્ઞાનાવરણ, અવધિજ્ઞાનાવરણ અને મનઃપર્યવજ્ઞાનાવરણ રૂપે જે જે પરિણમન થયું છે તે દેશઘાતિ રૂપે તેનો પ્રકૃતિબંધ છે. અને જે કેવળજ્ઞાનાવરણ રૂપે તેનું પરિણમન છે, તે સર્વઘાતિ રૂપે પ્રકૃતિબન્ધ છે. એ જ આ સમુદાન ક્રિયાનો ભાવાર્થ છે અથવા સમુદાન એટલે જનસમૂહ તે જનસમૂહની જે ક્રિયા છે તેને સમુદાન ક્રિયા કહે છે.

ઐર્યાપથિકી ક્રિયા—" ઈરણ " એટલે ગમન. તે ઇરણને જ ઇર્યા કહે છે. જે માર્ગે થઇને ગમન કરવાનું હોય તે માર્ગને 'ઇર્યાપથ' કહે છે, તે

मोहक्षीणमोहसयोगिकेवलिनां केवलयोगप्रत्ययासातावेदनीयकर्मबन्धरूपेत्यर्थः ५। प्रेमप्रत्ययाद्यैर्यापथिकयन्ताः पञ्चकत्वेनोक्ताः क्रियाश्चतुर्विंशति दण्डकेषु मनुष्याणामेव भवन्ति नत्वन्येषाम्, ऐर्यापथिकी क्रियाया उपशान्तमोहा-

पथ है, इस ईर्यापथमें जो क्रिया होती है, वह ऐर्यापथिकी क्रिया है, यह ऐर्यापथिकी क्रिया उपशान्त मोह क्षीणमोह और सयोगकेवलियोंको होती है, इसका कारण केवल योगही होता है, तात्पर्य इस कथनका ऐसा है, कि यद्यपि ईर्याका अर्थ गमन है, पर यह अर्थ केवल व्युत्पत्ति लभ्य है, क्योंकि ईर्यापथ जो क्रिया होती है, वह केवल योगसेही होती है, इसलिये ईर्याका अर्थ योग लेना चाहिये. जिस प्रकार कोरे घडे पर धूल मिट्टी नहीं जमती है, वह उस पर पड़ जाने पर भी तत्काल उससे दूर हो जाती है, वैसेही योगसे जायमान ईर्यापथ क्रिया द्वारा गृहीत कर्मपुद्गल कषायके अभावमें आत्मासे चिपकता नहीं है, आतेही वह उससे अलग हो जाता है, इसी लिये यह क्रिया ११ ग्यारहवे १२ बारहवे और १३ तेरहवे गुणस्थानवाले जीवोंको कही गईहै, ईर्यापथ क्रियासे जो कर्म होताहै, वह सातावेदनीय बंधरूप होताहै, और इसकी केवल एक समयकीही स्थिति होती है, अर्थात् पहले समय बन्ध होता है दूसरे समय इसका वेदन होता है और तीसरे समय निर्जरण हो जाता है ये पांच क्रियाएँ चौबीस

ઈર્યાપથમાં જે ક્રિયા થાય છે, તેને ઐર્યાપથિકી ક્રિયા કહે છે. આ ઐર્યાપથિકી ક્રિયા ઉપશાન્ત મોહ, ક્ષીણમોહ અને સયોગી કેવલીઓ દ્વારાજ થાય છે. તેનું કારણ માત્ર યોગ જ હોય છે. આ કથનનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે—

જો કે ઈર્યાનો અર્થ ગમન છે, પણ આ અર્થ તો માત્ર વ્યુત્પત્તિ લભ્ય અર્થ જ છે, કારણ કે ઈર્યાપથ જે ક્રિયા હોય છે તે કેવળ યોગથી જ થાય છે, તેથી અહીં ઈર્યાનો અર્થ યોગ લેવો જોઈએ જેમ કોરા ઘડા ઉપર રજ આદિ જામતું નથી, કદાચ તેના પર રજ પડી હોય તો પણ તે પવન આદિ વડે ઊડી જાય છે, એ જ પ્રમાણે યોગજન્ય ઈર્યાપથ ક્રિયા દ્વારા ગૃહીત કર્મ પુદ્ગલ કષાયને અભાવે આત્મા સાથે ચોંટી જતાં નથી, આવતાં સાથે જ તેઓ આત્માથી અલગ થઈ જાય છે. તેથી ૧૧ માં, બારમાં અને તેરમાં ગુણસ્થાનવાળા જીવો આ ક્રિયા કરે છે, એમ કહેવામાં આવ્યું છે ઈર્યાપથ ક્રિયા દ્વારા આવેલું જે કર્મ હોય છે, તે સાતાવેદનીય બન્ધરૂપ હોય છે, અને તેની માત્ર એક સમયની જ સ્થિતિ હોય છે. આ પાંચ ક્રિયાઓ ૨૪ દંડ-

दित्रयेऽप्येव सद्भावात्। अमुमेवार्थमाह–' एवं मणुस्साणवि, सेसाणं णत्थि' इति। क्रियाया विस्तृतव्याख्या अस्मिन्नेव सूत्रे द्विस्थानकस्य प्रथमोद्देशकेऽवलोकनीयेति ॥सू० ९॥

अनन्तरं कर्मबन्धकारणीभूताः क्रिया उक्ताः, सम्प्रति तस्यैव कर्मणो निर्जरोपायभूतां परिज्ञामाह—

मूलम्–पंचविहा परिन्ना पण्णत्ता, तं जहा–उवहिपरिन्ना १ उवस्सयपरिन्ना २ कसायपरिन्ना ३ जोगपरिन्ना ४ भत्तपाणपरिन्ना ५ ॥ सू० १० ॥

छाया—पञ्चविधा परिज्ञा प्रज्ञप्ता, तद्यथा–उपधिपरिज्ञा १ उपाश्रयपरिज्ञा २, कषायपरिज्ञा ३ योगपरिज्ञा ४ भक्तपानपरिज्ञा ५ ॥सू० १०॥

दण्डकमें केवल मनुष्योंकोही होतीहै, अन्य जीवोंको नहीं होतीहै, तथा ऐर्यापथिकी जो क्रिया है, उपशान्त मोहनीय क्षीणमोह और सयोग केवली इन तीनकेही होती है, यही बात–" एवं मणुस्साणवि सेसाणं णत्थि " इस सूत्रपाठ द्वारा प्रकटकी गई है, क्रियाकी विस्तृत व्याख्या इसी सूत्रके द्विस्थानकके प्रथम उद्देशकमें देख लेनी चाहिये ॥सू० ९॥

इस तरहसे कर्मबन्धकी कारणभूत क्रियाएँ कहीं अब सूत्रकार उसी कर्मकी निर्जराके उपायभूत परिज्ञाका कथन करते हैं--

'पंचविहा परिन्ना पण्णत्ता' इत्यादि सूत्र १० ॥

टीकार्थ–परिज्ञा पांच प्रकारकी कही गईहैं जैसे उपधि परिज्ञा१ उपाश्रयपरिज्ञा २ कषायपरिज्ञा ३ योगपरिज्ञा ४ और भक्तपान परिज्ञा ५ जिसके

કોના બધાં જીવો કરતાં નથી પણ માત્ર મનુષ્યો જ કરે છે. મનુષ્યોમાં પણ ૧૧, ૧૨ અને ૧૩ મા ગુણસ્થાનવાળા મનુષ્યો એટલે કે ઉપશાન્ત મોહ, ક્ષીણમોહ અને સયોગી કેવલી, એ ત્રણ જ ઐર્યાપથિકી ક્રિયા કરતા હોય છે. એ જ વાત " एवं मणुस्साण वि सेसाणं णत्थि " આ સૂત્રપાઠ દ્વારા વ્યક્ત થઈ છે ક્રિયાની વિસ્તૃત વ્યાખ્યા આ સૂત્રના દ્વિસ્થાનકના પહેલા ઉદ્દેશામાં આપવામાં આવી છે તો જિજ્ઞાસુ પાઠકે એ ત્યાંથી તે વાચી લેવી ॥ સૂ. ૯ ॥

આ રીતે કર્મબન્ધનના કારણભૂત ક્રિયાઓનું નિરૂપણ કરીને હવે સૂત્રકાર એ જ કર્મની નિર્જરાના ઉપાયરૂપ પરિજ્ઞાનું કથન કરે છે.

" पंचविहा परिन्ना पण्णत्ता " ઇત્યાદિ—

ટીકાર્થ–પરિજ્ઞા પાચ પ્રકારની કહી છે—(૧) ઉપધિ પરિજ્ઞા, (૨) ઉપાશ્રયપરિજ્ઞા (૩) કષાય પરિજ્ઞા, (૩) યોગ પરિજ્ઞા અને (૫) ભક્તપાન પરિજ્ઞા.

टीका—'पंचविहा' इत्यादि—

परिज्ञा—परिज्ञायते इति परिज्ञा—कल्पनीयाकल्पनीयवस्तुस्वरूपस्य ज्ञानं, तत्पूर्वकं प्रत्याख्यानं च । इयं द्रव्यतो भावतश्च भवति । तत्र द्रव्यतोऽनुपयुक्तस्य, भावतस्तूपयुक्तस्य भवति । तदुक्तम्—

"भावपरिण्णा जाणणं पच्चक्खाणं च भावेणं"

छाया—भावपरिज्ञाज्ञानं प्रत्याख्यानं च भावेन इति ।

तत्र द्रव्यपरिज्ञा सचित्ताचित्तमिश्रभेदेन त्रिविधा भवति, भावपरिज्ञा तु ज्ञपरिज्ञाप्रत्याख्यानपरिज्ञाभेदेन द्विविधा भवति । द्रव्यभावभेदभिन्ना एषा परिज्ञा उपध्यादिभेदेन पञ्चविधा भवति । तथाहि-उपधि-परिज्ञा-उपधेः=रजोहरणसदोरकमुखवस्त्रिकादेः परिज्ञा १। उपाश्रय-परिज्ञा-उपाश्रयस्य-उपश्रीयते

द्वारा जाना जाता है वह परिज्ञा है, यह परिज्ञा कल्पनीय अकल्पनीय वस्तुके स्वरूपके ज्ञानरूप होती है, एवं इस ज्ञानपूर्वक जो प्रत्याख्यान होता है, तद्रूप होती है, यह परिज्ञा द्रव्य और भावके भेदसे दो प्रकारसे होती है, अनुपयुक्त आत्माके जो परिज्ञा होती है, वह द्रव्यपरिज्ञा है, और उपयुक्त आत्माके जो परिज्ञा होतीहै, वह भाव परिज्ञाहै। कहाभीहै "भावपरिण्णा जाणणं" इत्यादि। क्योंकि प्रत्याख्यान भावसे होता है, इसलिये भावपरिज्ञा ज्ञानरूप होती है, द्रव्यपरिज्ञा सचित्त, अचित्त और मिश्रके भेदसे तीन प्रकारकी होती है और जो भावपरिज्ञा है, वह ज्ञपरिज्ञा और प्रत्याख्यान परिज्ञाके भेदसे दो प्रकारकी होती है, द्रव्य और भावके भेदसे भेदवाली यह परिज्ञा उपधि आदिके भेदसे

જેના દ્વારા જાણુવામા આવે છે તે પરિજ્ઞા છે. કલ્પનીય અને અકલ્પનીય વસ્તુના સ્વરૂપના જ્ઞાનરૂપ તે પરિજ્ઞા હોય છે, અને આ પ્રકારના જ્ઞાનપૂર્વક જે પ્રત્યાખ્યાન થાય છે, તે પ્રત્યાખ્યાન રૂપ તે હોય છે. તે પરિજ્ઞા દ્રવ્ય અને ભાવના ભેદથી બે પ્રકારની હોય છે. અનુપયુક્ત આત્માની જે પરિજ્ઞા હોય છે તેને દ્રવ્યપરિજ્ઞા કહે છે, અને ઉપયુક્ત આત્માની જે પરિજ્ઞા હોય છે તેને ભાવપરિજ્ઞા કહે છે. કહ્યું પણ છે કે—

"ભાવપરિણ્ણા જાણણં" ઇત્યાદિ—

પ્રત્યાખ્યાન ભાવથી થાય છે, તે કારણે ભાવપરિજ્ઞા જ્ઞાનરૂપ હોય છે. દ્રવ્યપરિજ્ઞાના સચિત્ત, અચિત્ત અને મિશ્ર એવાં ત્રણ ભેદ પડે છે, અને ભાવ પરિજ્ઞાના જ્ઞપરિજ્ઞા અને પ્રત્યાખ્યાન પરિજ્ઞા નામના બે ભેદ પડે છે. દ્રવ્ય અને ભાવરૂપ મુખ્ય બે ભેદોવાળી આ પરિજ્ઞા ઉપધિ આદિના ભેદથી

संयमयात्रानिर्वाहार्थं यः स उपाश्रयः=वसतिरूपस्तस्य परिज्ञा २। कषायपरिज्ञा-कषायाः=मोहनीयकर्मपुद्‌गलोदयसम्पाद्यजीवपरिणामाः क्रोधमानमाया लोभाः,तेषां परिज्ञा३। योगपरिज्ञा-योगाः=मनोयोगादयः, तेषां परिज्ञा४। तथा-भक्तपानपरिज्ञा-भक्तम्=अशनमोदनादि पानं=पेयं प्रासुकजलादि, तयोः परिज्ञा ५। इति ॥सू० १०॥

परिज्ञा च व्यवहारवतां भवतीति व्यवहारं प्ररूपयति—

मूलम्-पंचविहे ववहारे पण्णत्ते, तं जहा--आगमे १ सुए २ आणा ३ धारणा ४ जीए ५। जहा से तत्थ आगमे सिया आगमेणं ववहारं पट्ठवेज्जा १, णो से तत्थ आगमे सिया, जहा से तत्थ सुए सिया, सुएणं ववहारं पट्ठवेज्जा २, णो से तत्थ सुए सिया३, एवं जाव जहा से तत्थ जीए सिया४ जीएणं

पांच प्रकारकी होती है, इनमें रजोहरण एवं मुखवस्त्रिका आदिकी जो परिज्ञा है वह उपधिपरिज्ञा है १। जो संयम यात्राके निर्वाहके लिये आश्रित किया जाता है वह उपाश्रय है, इस उपाश्रयकी जो परिज्ञा है, वह उपाश्रयपरिज्ञा है २। मोहनीय कर्मके पुद्‌गलोंके उदयसे उत्पन्न हुए जो क्रोध मान माया और लोभ रूप जीवके परिणाम हैं, वे कषाय हैं, इन कषायोंकी जो परिज्ञा है, वह कषाय परिज्ञा है, मन वचन और कायरूप योगोंकी जो परिज्ञा है, वह योगपरिज्ञा है, तथा ओदनादिरूप अशनकी एवं प्रासुक जलादिरूप पेयकी जो परिज्ञा है, वह भक्तपान परिज्ञा है ॥ सू० १० ॥

પાંચ પ્રકારની હોય છે. તેમાં રજોહરણ, મુખવસ્ત્રિકા આદિની જે પરિજ્ઞા છે, તેને ઉપધિ પરિજ્ઞા કહે છે સંયમ યાત્રાના નિર્વાહને માટે જે સ્થાનનો આશ્રય લેવામાં આવે છે તે સ્થાનનું નામ ઉપાશ્રય છે. તે ઉપાશ્રયની જે પરિજ્ઞા છે તેને ઉપાશ્રય પરિજ્ઞા કહે છે. મોહનીય કર્મનાં પુદ્‌ગલોના ઉદયને લીધે ઉત્પન્ન થયેલ ક્રોધ, માન, માયા અને લોભરૂપ જીવનું જે પરિણામ છે તેને કષાય કહે છે તે કષાયોની જે પરિજ્ઞા છે તેને કષાય પરિજ્ઞા કહે છે. મન, વચન અને કાયરૂપ યોગોની જે પરિજ્ઞા છે તેને યોગ પરિજ્ઞા કહે છે તથા ભાત આદિ રૂપ અશનની અને પ્રાસુક જલાદિ રૂપ પાનની જે પરિજ્ઞા છે તેને ભક્તપાનપરિજ્ઞા કહે છે. ॥ સૂ. ૧૦ ॥

ववहारं पट्ठवेज्जा ५। इच्चेएहिं पंचहिं ववहारं पट्ठवेज्जा, आगमेणं जाव जीएणं। जहा जहा से तत्थ आगमे जाव जीए तहा तहा ववहारं पट्ठवेज्जा। से किमाहु भंते ? आगमबलिया समणा णिग्गंथा ? इच्चेयं पंचविहं ववहारं जया जया जहिं जहिं तया तया तहिं तहिं अणिस्सियोवस्सियं सम्मं ववहरमाणे समणे णिग्गंथे आणाए आराहए भवइ ॥ सू० ११॥

छाया—पञ्चविधो व्यवहारः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-आगमः १ श्रुतम् २, आज्ञा ३ धारणा ४ जीतम् ५। यथा तस्य तत्र आगमः स्यात् आगमेन व्यवहार प्रस्थापयेत् १, नो तस्य तत्र आगमः स्यात्, यथा तस्य तत्र श्रुतं स्यात्, श्रुतेन व्यवहारं प्रस्थापयेत् २, नो तस्य तत्र श्रुतं स्यात्, एवं यावत् यथा तस्य तत्र जीतं स्यात्, जीतेन व्यवहारं प्रस्थापयेत् ५' इत्येतैः पञ्चभिर्व्यवहारं प्रस्थापयेत्-आगमेन यावद् जीतेन। यथा यथा तस्य तत्र आगमो यावद् जीतं तथा तथा व्यवहारं प्रस्थापयेत्। अथ किमाहु भदन्त ! आगमबलिकाः श्रमणा निर्ग्रन्थाः ? इत्येतं पञ्चविधं व्यवहारं यदा यदा यत्र यत्र तदा तदा तत्र तत्र अनिश्रितोपाश्रितं सम्यग् व्यवहरमाणः श्रमणो निर्ग्रन्थ आज्ञाया आराधको भवति ॥सू०११॥

टीका—' पंचविहे ' इत्यादि—

व्यवहरणं-व्यवहारः-मोक्षार्थिप्रवृत्तिनिवृत्तिरूपः, तद्धेतुत्वादत्र ज्ञान विशेषोऽपि व्यवहारः। स पञ्चविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-आगम्यन्ते=परिच्छिद्यन्ते

यह परिज्ञा व्यवहारवालोंको होती है, इसलिये अब सूत्रकार व्यवहारका प्ररूपण करतेहैं-'पंचविहे ववहारे पण्णत्ते इत्यादि' सूत्र ११ ॥

टीकार्थ--व्यवहार पांच प्रकारका कहा गया है, जैसे-आगम १ श्रुत २ आज्ञा ३ धारणा ४ और जीत ५।

व्यवहार मोक्षाभिलाषियोंकी प्रवृत्ति और निवृत्तिरूप होना है;

આ પરિજ્ઞા વ્યવહારવાળામાં હોય છે. તેથી હવે સૂત્રકાર વ્યવહારની પ્રરૂપણા કરે છે. " પંચવિહે વવહારે પણ્ણત્તે " ઈત્યાદિ--

ટીકાર્થ-વ્યવહારના નીચે પ્રમાણે પાંચ પ્રકાર કહ્યાં છે--(૧) આગમ, (૨) શ્રુત (૩) આજ્ઞા. (૪) ધારણા અને (૫) જીત.

संयमयात्रानिर्वाहार्थं यः स उपाश्रयः=वसतिरूपस्तस्य परिज्ञा २। कषायपरिज्ञा–कषायाः=मोहनीयकर्मपुद्गलोदयसम्पाद्यजीवपरिणामाः क्रोधमानमाया लोभाः,तेषां परिज्ञा३। योगपरिज्ञा-योगाः=मनोयोगादयः, तेषां परिज्ञा४। तथा-भक्तपानपरिज्ञा–भक्तम्=अशनमोदनादि पानं=पेयं प्रासुकजलादि, तयोः परिज्ञा ५। इति ॥सू० १०॥

परिज्ञा च व्यवहारवतां भवतीति व्यवहारं प्ररूपयति—

मूलम्–पंचविहे ववहारे पण्णत्ते, तं जहा--आगमे १ सुए २ आणा ३ धारणा ४ जीए ५। जहा से तत्थ आगमे सिया आगमेणं ववहारं पट्ठवेज्जा १, णो से तत्थ आगमे सिया, जहा से तत्थ सुए सिया, सुएणं ववहारं पट्ठवेज्जा २, णो से तत्थ सुए सिया३, एवं जाव जहा से तत्थ जीए सिया४ जीएणं

पांच प्रकारकी होती है, इनमें रजोहरण एवं मुखवस्त्रिका आदिकी जो परिज्ञा है वह उपधिपरिज्ञा है १। जो संयम यात्राके निर्वाहके लिये आश्रित किया जाता है वह उपाश्रय है, इस उपाश्रयकी जो परिज्ञा है, वह उपाश्रयपरिज्ञा है २। मोहनीय कर्मके पुद्गलोंके उदयसे उत्पन्न हुए जो क्रोध मान माया और लोभ रूप जीवके परिणाम हैं, वे कषाय हैं, इन कषायोंकी जो परिज्ञा है, वह कषाय परिज्ञा है, मन वचन और कायरूप योगोंकी जो परिज्ञा है, वह योगपरिज्ञा है, तथा ओदनादिरूप अशनकी एवं प्रासुक जलादिरूप पेयकी जो परिज्ञा है, वह भक्तपान परिज्ञा है ॥ सू० १० ॥

પાંચ પ્રકારની હોય છે. તેમાં રજોહરણ, મુખવસ્ત્રિકા આદિની જે પરિજ્ઞા છે, તેને ઉપધિ પરિજ્ઞા કહે છે સંયમ યાત્રાના નિર્વાહને માટે જે સ્થાનનો આશ્રય લેવામાં આવે છે તે સ્થાનનું નામ ઉપાશ્રય છે. તે ઉપાશ્રયની જે પરિજ્ઞા છે તેને ઉપાશ્રય પરિજ્ઞા કહે છે. મોહનીય કર્મનાં પુદ્ગલોના ઉદયને લીધે ઉત્પન્ન થયેલ ક્રોધ, માન, માયા અને લોભરૂપ જીવનું જે પરિણામ છે તેને કષાય કહે છે તે કષાયોની જે પરિજ્ઞા છે તેને કષાય પરિજ્ઞા કહે છે. મન, વચન અને કાયરૂપ યોગોની જે પરિજ્ઞા છે તેને યોગ પરિજ્ઞા કહે છે તથા ભાત આદિ રૂપ અશનની અને પ્રાસુક જલાદિ રૂપ પાનની જે પરિજ્ઞા છે તેને ભક્તપાનપરિજ્ઞા કહે છે. ॥ સૂ. ૧૦ ॥

ववहारं पट्ठवेज्जा ५। इच्चेएहिं पंचहिं ववहारं पट्ठवेज्जा, आगमेणं जाव जीएणं। जहा जहा से तत्थ आगमे जाव जीए तहा तहा ववहारं पट्ठवेज्जा। से किमाहु भंते? आगमबलिया समणा णिग्गंथा? इच्चेयं पंचविहं ववहारं जया जया जहिं जहिं तया तया तहिं तहिं अणिस्सियोवस्सियं सम्मं ववहरमाणे समणे णिग्गंथे आणाए आराहए भवइ॥ सू० ११॥

छाया—पञ्चविधो व्यवहारः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—आगमः १ श्रुतम् २, आज्ञा ३ धारणा ४ जीतम् ५। यथा तस्य तत्र आगमः स्यात् आगमेन व्यवहार प्रस्थापयेत् १, नो तस्य तत्र आगमः स्यात्, यथा तस्य तत्र श्रुतं स्यात्, श्रुतेन व्यवहारं प्रस्थापयेत् २, नो तस्य तत्र श्रुतं स्यात्, एवं यावत् यथा तस्य तत्र जीतं स्यात्, जीतेन व्यवहारं प्रस्थापयेत् ५। इत्येतैः पञ्चभिर्व्यवहारं प्रस्थापयेत्—आगमेन यावद् जीतेन। यथा यथा तस्य तत्र आगमो यावद् जीतं तथा तथा व्यवहारं प्रस्थापयेत्। अथ किमाहु भदन्त! आगमबलिकाः श्रमणा निर्ग्रन्थाः? इत्येतं पञ्चविधं व्यवहारं यदा यदा यत्र यत्र तदा तदा तत्र तत्र अनिश्रितोपाश्रितं सम्यग् व्यवहरमाणः श्रमणो निर्ग्रन्थ आज्ञाया आराधको भवति ॥सू० ११॥

टीका—' पंचविहे ' इत्यादि—

व्यवहरणं—व्यवहारः—मोक्षार्थिप्रवृत्तिनिवृत्तिरूपः, तद्धेतुकत्वादत्र ज्ञानविशेषोऽपि व्यवहारः। स पञ्चविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—आगम्यन्ते=परिच्छिद्यन्ते

यह परिज्ञा व्यवहारवालोंको होती है, इसलिये अब सूत्रकार व्यवहारका प्ररूपण करते हैं—'पंचविहे ववहारे पण्णत्ते इत्यादि' सूत्र ११॥

टीकार्थ—व्यवहार पांच प्रकारका कहा गया है, जैसे—आगम १ श्रुत २ आज्ञा ३ धारणा ४ और जीत ५।

व्यवहार मोक्षाभिलाषियोंकी प्रवृत्ति और निवृत्तिरूप होता है;

આ પરિજ્ઞા વ્યવહારવાળામા હોય છે. તેથી હવે સૂત્રકાર વ્યવહારની પ્રરૂપણા કરે છે. " पंचविहे ववहारे पण्णत्ते " ઇત્યાદિ--

ટીકાર્થ—વ્યવહારના નીચે પ્રમાણે પાંચ પ્રકાર કહ્યાં છે—(૧) આગમ, (૨) શ્રુત (૩) આજ્ઞા. (૪) ધારણા અને (૫) જીત.

अर्था अनेनेति–आगमः, केवलज्ञान १ मनःपर्ययज्ञाना २ अवधिज्ञान ३ चतुर्दश पूर्व ४ दशपूर्व ५ नवपूर्व ६ रूपः षड्विधः ॥१॥ श्रुतम्=नवादि पूर्वेभ्योऽवशिष्टम् आचाराङ्गादिकम् । यद्यपि नवादिपूर्वाण्यपि श्रुतान्येव, तथाऽप्यतीन्द्रियार्थज्ञानहेतुत्वेन सातिशयत्वात् केवलवद् एषां आगमव्यपदेशः ।२। आज्ञा–अगीतार्थस्याग्रे गूढार्थपदैरन्यदेशस्थितं गीतार्थं निवेदयितुं यदतिचारालोचनम् गीतार्थसाधुनाऽपि तथैव शुद्धिदानं सा ॥३॥ धारणा–द्रव्याद्यपेक्षया यस्मिन्नपराधे गीतार्थ

इस व्यवहारका हेतु ज्ञान विशेष होता है, अतः यह ज्ञान विशेष भी व्यवहार रूप है यह व्यवहार आगम आदिके भेदसे पांच प्रकारका जो कहा गयाहै, सो उसका तात्पर्य ऐसाहै जिसके द्वारा पदार्थ जाने जातेहैं; वह आगमव्यवहारहै, ऐसा यह आगमव्यवहार केवलज्ञान १ मनः पर्ययज्ञान २ अवधिज्ञान ३ चतुर्दश पूर्व ४ दशापूर्व ५ और नवपूर्वके भेदसे ६ प्रकारका है १। इन नवादि पूर्वों से अवशिष्ट जो आचाराङ्ग आदि हैं वे श्रुत हैं यद्यपि नवादि पूर्व भी श्रुतही हैं परन्तु अतीन्द्रिय अर्थज्ञानके हेतु होनेके कारण सातिशय होनेसे केवलज्ञानकी तरह इनमें आगमका व्यपदेश होता है २। अगीतार्थके आगे गूढार्थ पदों द्वारा अन्य देशस्थित गीतार्थके पास निवेदनके निमित्त जो अतिचारोंका आलोचन है तथा गीतार्थ साधुके द्वारा भी उसी प्रकारसे जो शुद्धिका देना है वह आज्ञाहै ३, द्रव्यादिककी अपेक्षासे जिस अपराधमें गीतार्थ साधुद्वारा

વ્યવહાર મેક્ષ ભિક્ષાર્થીઓની પ્રવૃત્તિ અને નિવૃત્તિ રૂપ હોય છે

આ વ્યવહારનો હેતુ જ્ઞાનવિશેષ હોય છે તેથી તે જ્ઞાનવિશેષ પણ વ્યવહાર રૂપ છે. તેના આગમ વ્યવહાર આદિ જે પાંચ પ્રકાર કહેવામાં આવ્યા છે, તેમનું હવે સ્પષ્ટીકરણ કરવામાં આવે છે--

જેના દ્વારા પદાર્થોને જાણવામાં આવે છે, તે આગમ વ્યવહાર છે. તે આગમ વ્યવહારના નીચે પ્રમાણે ૬ ભેદ પડે છે--(૧) કેવલજ્ઞાન, (૨) મનઃ પર્યવજ્ઞાન, (૩) અવધિજ્ઞાન, (૪) ચૌદ પૂર્વ, (૫) દસ પૂર્વ અને (૬) નવ પૂર્વ. આ નવાદિ પૂર્વો સિવાયનાં જે આચારાંગ આદિ છે, તેઓ શ્રુતરૂપ છે જો કે નવાદિ પૂર્વ પણ શ્રુતરૂપ જ છે, પરન્તુ અતીન્દ્રિય અર્થજ્ઞાનના હેતુ હોવાને કારણે સાતિશય હોવાથી કેવળજ્ઞાનની જેમ તેઓમાં આગમનો વ્યપદેશ થાય છે. અગીતાર્થની આગળ ગૂઢાર્થ પદો દ્વારા અન્ય દેશસ્થિત ગીતાર્થની પાસે નિવેદનને નિમિત્ત જે અતિચારોનું આલોચન છે, તથા ગીતાર્થ સાધુ દ્વારા પણ એ જ પ્રકારે જે શુદ્ધિ અપાય છે તેનું નામ આજ્ઞા છે. દ્રવ્યાદિકની

साधुना यथा विशुद्धिः कृता, तां संप्रधार्य तस्मिन्नेवापराधे यदन्यः साधुस्तथैव विशुद्धिं करोति सा धारणा । अथवा-गच्छोपग्राहिणो वैयावृत्त्यकर्तुरशेषानुचितस्य प्रदर्शितानाम् उचितप्रायश्चित्तपदानां यद् धारणं सा धारणा ।४। तथा-जीतम्-द्रव्यक्षेत्रकालभावपुरुषप्रतिसेवाऽनुवृत्त्या संहननधृत्यादि परिहाणिमपेक्ष्य यत् प्रायश्चित्तदानं तत्, अथवा-यत्र गच्छे कारणवशाद् यः सूत्रातिरिक्तः प्रायश्चित्तव्यवहारः प्रवर्तितो बहुभिरन्यैश्चाप्यनुवर्तितः सः ।५। इति । आगमादिव्यवहारप्रदर्शिका गाथा अपि अन्यत्रोक्ताः । तथाहि—

जैसी विशुद्धिकी गई हो उस विशुद्धिको हृदयमें धारणकर उसी अपराधमें जो अन्य साधुभी उसी प्रकारकी विशुद्धि करता है, वह धारणा है, अथवा-जो साधु गच्छका उपकार करता है; वैयावृत्त्य करता है परन्तु यदि उससे कोई ऐसा कार्य बन जाता है, कि जो समस्त साधुओंको अनुचित लगता है तो उसके निमित्त दिखलाये गये प्रायश्चित्त पदोंकी जो धारणा है वह धारणा है तथा-द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव एवं पुरुष प्रतिसेवाकी अनुवृत्तिसे संहनन धृति आदिकी हीनताकी अपेक्षा करके जो प्रायश्चित्त दिया जाता है वह जीत व्यवहार अथवा-जिस गच्छमें कारणके वशसे जो सूत्रातिरिक्त प्रायश्चित्त व्यवहार चल रहा है तथा अनेकोंने भी उसकी सराहनाकी हो ऐसा वह व्यवहार जीत व्यवहार है, आगम आदिरूप व्यवहारको दिखलानेवाली जो गाथाएँ

અપેક્ષાએ જે અપરાધમાં ગીતાર્થ સાધુ દ્વારા જેવી વિશુદ્ધિ કરવામાં આવી હોય તે વિશુદ્ધિને હૃદયમા ધારણ કરીને એ જ પ્રકારનો અપરાધ થઇ જતાં અન્ય સાધુ પણ એજ પ્રકારે જે વિશુદ્ધિ કરે છે તેને ધારણા કહે છે.

અથવા જે સાધુ ગચ્છનો ઉપકાર કરે છે-વૈયાવૃત્ય આદિ કરે છે, પરન્તુ તેના દ્વારા કોઈ એવુ કાર્ય થઈ જાય કે જે સમસ્ત સાધુઓને અનુચિત લાગે છે, તો તેની વિશુદ્ધિ નિમિત્તે બતાવવામાં આવેલા પ્રાયશ્ચિત્ત પદોની જે ધારણા છે, તેનું નામ ધારણા સમજવું દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર, કાળ, ભાવ અને પુરુષ પ્રતિસેવાની અનુવૃત્તિની અપેક્ષાએ સંહનન, ધૃતિ આદિની હીનતાનો વિચાર કરીને જે પ્રાયશ્ચિત્ત આપવામાં આવે છે તેને જીતવ્યવહાર કહે છે અથવા જે ગચ્છમાં કોઇ કારણે સૂત્રાતિરિક્ત (સૂત્રોમાં જેનો આધાર ન મળતો હોય એવો) વ્યવહાર ચાલી રહ્યો હોય તથા અનેક સાધુ આદિ દ્વારા જે વ્યવહારની પ્રશંસા કરાઇ હોય તેવા વ્યવહારને જીતવ્યવહાર કહે છે. આગમ આદિ રૂપ વ્યવહારનું સ્વરૂપ બતાવતી કેટલીક ગાથાઓ અન્ય શાસ્ત્રોમાં આપેલી છે, તે ગાથાઓ હવે અહીં આપવામાં આવે છે—

गाथा—नो इंदियपच्चक्खो ववहारो सो समासओ तिविहो ।
ओहिमणपज्जवे य केवलनाणे य पच्चक्खो ॥३॥

छाया—नो इन्द्रियप्रत्यक्षो व्यवहारः स समासतस्त्रिविधः ।
अवधिमनःपर्यवं च केवलज्ञानं च प्रत्यक्षः ॥३॥

गाथा—पच्चक्खागमसरिसो होइ परोक्खो वि आगमो जस्स ।
चंदमुहीव उ सो वि हु आगम ववहारवं होइ ॥४॥

छाया—प्रत्यक्षागमसदृशो भवति परोक्षोऽपि आगमो यस्य ।
चन्द्रमुखीव तु सोऽपि खलु आगमव्यवहारवान् भवति ॥४॥

गाथा—परोक्खं ववहारं आगमओ सुयहरा ववहरंति ।
चोद्दसदसपुव्वधरा नवपुव्विग गंध हत्थी य ॥ ५ ॥

छाया—पारोक्षं व्यवहारम् आगमत श्रुतधराः व्यवहरन्ति ।
चतुर्दश दशपूर्वधरा नवपूर्विका गन्धहस्तिनः ॥५॥

"नोइंदियपच्चक्खो" इत्यादि ।

नो इन्द्रियजन्य प्रत्यक्ष संक्षेपसे तीन प्रकारका है-अवधिज्ञान १ मनःपर्यवज्ञान २ और केवलज्ञान ३ ॥३॥

"पच्चक्खागमसरिसो" इत्यादि

जिस प्रकार मुखमें चन्द्रमाका उपचार करके लोग स्त्री को चन्द्रमुखी कह देते हैं-इसी प्रकारसे जिस मुनिका परोक्ष भी आगम वस्तुस्वरूपका सम्यक् रूपसे निर्णायक होता है, तो वह मुनि भी उपचारसे आगम व्यवहारवाला कह दिया जाता है, क्योंकि उसका आगम भी प्रत्यक्षागमके जैसा मान लिया जाता है ॥४॥

"नो इंदिय पच्चक्खो" ઇત્યાદિ—નો ઇન્દ્રિય જન્ય પ્રત્યક્ષ સંક્ષિપ્તમાં ત્રણ પ્રકારનો કહ્યો છે-(૧) અવધિજ્ઞાન, (૨) મનઃપર્યવજ્ઞાન અને કેવળજ્ઞાન । ૩ ।

"पच्चक्खागमसरिसो" ઇત્યાદિ—જેમ મુખમાં ચન્દ્રમાનો ઉપચાર કરીને લોકો કોઈ સ્ત્રીને ચન્દ્રમુખી કહી દે છે, એ જ પ્રમાણે જે મુનિનો પરોક્ષ આગમ પણ વસ્તુ સ્વરૂપનો સામાન્ય રૂપે નિર્ણાયક હોય છે. તે મુનિને પણ ઉપચારથી આગમ વ્યવહારવાળા કહેવામાં આવે છે, કારણ કે તેમના આગમને પણ પ્રત્યક્ષ આગમ સમાન માની લેવામાં આવે છે. । ૪ ।

गाथा—जं जहमोल्लं रयणं तं जाणइ रयणवाणिओ निउणं ।
इय जाणइ पच्चक्खी जो सुज्झइ जेण दिन्नेणं ॥६॥
छाया—यद् यथामूल्यं रत्नं, तद् जानाति रत्नवाणिजो निपुणम् ।
इति जानाति प्रत्यक्षी, यः शुध्यति येन दत्तेन ॥६॥
गाथा—कप्पस्स य निज्जुत्तिं ववहारस्सेव परमनिउणस्स ।
जो अत्थओ वियाणइ सो ववहारी अणुन्नाओ ॥७॥

"पारोक्खं ववहारं" इत्यादि ।

इस परोक्ष व्यवहारको परवादियोंको भगानेके लिये गन्ध हस्तीके जैसे चतुर्दश पूर्वधर, दश पूर्वधर और नवपूर्वधर आगम रूपसे व्यवहृत करते हैं ॥ ५ ॥

"जं जहमोल्लं रयणं" इत्यादि ।

जिस रत्नका जैसा मूल्य होता है, इस बातको जिस तरह जौहरी जन अच्छी तरह जानता है, उसी तरहसे प्रत्यक्ष ज्ञानी भी इस बातको भली प्रकारसे जानता है, कि कौन अतीचारवाला किस प्रायश्चित्तसे शुद्ध होता है, अतः वे उस अतिचारवालेकी उसी प्रायश्चित्तसे शुद्धि करते हैं ॥६॥

इस प्रकार जो मुनि केवलज्ञानसे मनःपर्यवज्ञानसे अवधिज्ञानसे अतिचारोंको जानकर चौदह पूर्वधारी होनेसे अतिचारोंकी विशुद्धिके जो प्रायश्चित्त देता है, वह प्रायश्चित्तदान आगम व्यवहाररूपसे कहा

"पारोक्खववहारं" ઇત્યાદિ—પરમતવાદીઓને પરાસ્ત કરવાને માટે ગન્ધહસ્તિ સમાન ચૌદ પૂર્વધારી, દશ પૂર્વધારી અને નવ પૂર્વધારીઓ આ પરોક્ષ વ્યવહારનો આગમ રૂપે ઉપયોગ કરે છે. । ૫ ।

"जं जहमोल्लं रयणं" ઇત્યાદિ—જેમ કયા રત્નનું કેટલુ મૂલ્ય હોય છે તે ઝવેરી જ સારી રીતે જાણી શકે છે, એ જ પ્રમાણે પ્રત્યક્ષ જ્ઞાની પણ એ વાતને બરાબર જાણી શકે છે કે કયા અતિચારવાળો કયા પ્રાયશ્ચિત દ્વારા શુદ્ધ થાય છે તેથી તેઓ યોગ્ય પ્રાયશ્ચિત્ત આપીને તે અતિચારવાળાની શુદ્ધિ કરાવી શકે છે. । ૬ ।

આ રીતે જે મુનિ કેવળજ્ઞાન દ્વારા, મનઃપર્યવજ્ઞાન દ્વારા કે અવધિજ્ઞાન દ્વારા અતિચારોને જાણીને, ચૌદ પૂર્વધારી કે દસ પૂર્વધારી કે નવ પૂર્વધારી હોવાથી અતિચારોની વિશુદ્ધિને માટે જે પ્રાયશ્ચિત દે છે, તે પ્રાયશ્ચિતદાનને આગમ વ્યવહાર રૂપ માનવામાં આવે છે.

छाया—कल्पस्य च निर्युक्ति व्यवहारस्यैव परमनिपुणस्य ।
यः अर्थतो विजानाति, स व्यवहारी अनुज्ञातः ॥ ७ ॥

गाथा—तं चेवऽणुमज्जंते ववहारविहिं पउंजइ जहुत्तं ।
एसो सुयववहारो पन्नत्तो वीयरागेहिं ॥८॥

छाया—तमेव अनुमज्जन् व्यवहारविधिं प्रयुनक्ति यथोक्तम् ।
एष श्रुतव्यवहारः प्रज्ञप्तो वीतरागैः ॥ ८ ॥

गाथा—अपरक्कमो तवस्सी गंतु जो सो हिकारगसमीवे ।
न चएइ आगंतु सो सोहिकरोऽवि देसाओ ॥९॥

गया है, अब श्रुतनामक जो द्वितीय व्यवहार है, उसे सूत्रकार प्रकट करते हैं-" कप्पस्स य निज्जुत्ति " इत्यादि ।

जो मुनि बृहत्कल्प सूत्रकी तथा प्रायश्चित्तविधिमें स्फुट विचारयुक्त व्यवहार सूत्रकी तथा अपि शब्दके अर्थवाले जाव पदसे गृहीत निशीथ सूत्रकी एवं दशाश्रुत सूत्रकी निर्युक्तिको अर्थरूपसे जानता है, वह मुनि व्यवहारी कहा गया है-" तंचेवाऽणुमज्जंते ' इत्यादि ।

उस व्यवहारीकाही अनुसरण करता हुआ जो मुनिजन अतिचारके प्राप्त होने पर श्रुतोक्तिका अनुसरण करके व्यवहारविधि प्रायश्चित्तको देता है, उस मुनिका श्रुतानुसारसे यह प्रायश्चित्त प्रदानरूप व्यवहार वीतरागियोंने श्रुतव्यवहार कहा है ॥८॥

" अपरक्कमो तवस्सी " इत्यादि ।

आज्ञा नामका जो तृतीय व्यवहार है, वह इस प्रकारसे है-जो तपस्वी गमनशक्तिसे हीन हो गया है, ऐसा वह तपस्वी शोधिकारकके

હવે શ્રુત નામનો વ્યવહારનો જે બીજો ભેદ છે, તેનુ સ્વરૂપ સૂત્રકાર પ્રકટ કરે છે-" कप्पस्स य निज्जुत्ति " ઈત્યાદિ—જે મુનિ બૃહત્કલ્પ સૂત્રની તથા પ્રાયશ્ચિત્તવિધિમાં સ્પષ્ટ વિચારયુક્ત વ્યવહાર સૂત્રની તથા 'અપિ' શબ્દના અર્થવાળા " ભાવ " પદથી ગૃહીત નિશીથ સૂત્રની અને દશાશ્રુત સૂત્રની નિર્યુક્તિને અર્થરૂપે જાણે છે, તે મુનિ વ્યવહારી કહેવાય છે. । ७ ।

' तं चेवाऽणुसज्जंते " ઈત્યાદિ—તે વ્યવહારીનુ જ અનુસરણ કરીને જે મુનિજન અતિચારોની વિશુદ્ધિને માટે શ્રુતોક્તિનું અનુસરણ કરીને જે પ્રાયશ્ચિત્ત દે છે, તે પ્રાયશ્ચિત પ્રદાન રૂપ વ્યવહારને વીતરાગીએ શ્રુતવ્યવહાર કહ્યો છે. । ८ ।

" अपरक्कमो तवस्सी " ઈત્યાદિ—હવે આજ્ઞા નામના ત્રીજા વ્યવહારનું સ્પષ્ટીકરણ આવે છે-કોઈ તપસ્વી ચાલવાને અશક્ત બની ગયો છે. તેથી તે

छाया—अपराक्रमस्तपस्वी गन्तुं यः शोधिकारकसमीपे ।
न शक्नोति आगन्तुं स शोधिकरोऽपि देशात् ॥९॥

गाथा—अह पट्ठवेइ सीसं देसंतरगमणनट्ठचेट्ठाओ ।
इच्छामऽज्जो ! काउं, सोहिं तुज्झ सगासम्मि ॥१०॥

छाया—अथ प्रस्थापयति शिष्यं देशान्तरगमननष्टचेष्टः ।
इच्छाम आर्य ! कर्तुं शोधिं तव सकाशे ॥१०॥

गाथा—सो ववहारविहिण्णू, अणुसज्जित्ता सुओवएसेणं ।
सीसस्स देइ आणं, तस्स इमं देह पच्छित्तं ॥११॥

पासमें प्रायश्चित्त देनेवालेके समीप जानेके लिये असमर्थ हो रहा है, तथा शोधिकारक भी अपने आश्रित्त स्थानसे उसके पासमें आनेके लिये असमर्थ हो रहा है ॥ ९ ॥

" अह पट्ठवेइ सीसं " इत्यादि ।

ऐसी हालतमें वह तपस्वि उस शोधिकर प्रायश्चित्त प्रदानाके पास गूढार्थ पदोंसे युक्तकर अपने संदेशको देकर अपने शिष्यको भेजता है, उस संदेशमें वह शिष्यके मुखसे ऐसा कहलवाता है कि–हे आर्य ! मेरी अब देशान्तरमें आनेजानेकी शक्ति नहीं है, और आपके पास प्रायश्चित्त करना चाहता हूं ॥१०॥

" सो ववहारविहिण्णू " इत्यादि ।

तब वह संदेशवाहक शिष्यके मुखसे ऐसा सुनकर शास्त्रोक्त पद्धतिके अनुसार विचार करता है, कि इस प्रकारके अतिचार सेवीके

શોધિકારકની પાસે પ્રાયશ્ચિત લેવાને જઈ શકે તેમ નથી, તથા શોધિકારક (પ્રાયશ્ચિત દેનાર મુનિ) પણ પોતાના આશ્રય સ્થાનેથી ત્યાં જઈ શકવાને સમર્થ નથી. । ૯ ।

" अह पट्ठवेइ सीसं " ઈત્યાદિ—આ પ્રકારની પરિસ્થિતિમાં તે તપસ્વી તે શોધિકારની પાસે, ગૂઢાર્થ પદોથી યુક્ત એવો પોતાનો સંદેશ લઈને પોતાના શિષ્યને મોકલે છે તે સંદેશ દ્વારા તે શિષ્ય સાથે એવું કહેવરાવે છે કે "હે આર્ય ! હવે એક જગ્યાએથી બીજી જગ્યાએ ગમન કરી શકવાને સમર્થ નથી, તેથી હું આપની પાસે આવી શકું તેમ નથી, પણ હું આપની આજ્ઞાનુસાર પ્રાયશ્ચિત્ત લેવા માગું છું". । ૧૦ ।

" सो ववहारविहिण्णू " ઈત્યાદિ--ત્યારે તે સંદેશવાહકને મુખે એવું સાંભળીને તે શોધિકારક (ગીતાર્થ સાધુ) શાસ્ત્રોક્ત પદ્ધતિ અનુસાર વિચાર કરે છે કે આ પ્રકારના અતિચારોનું સેવન કરનારને આ પ્રકારનું પ્રાયશ્ચિત્ત

छाया--स व्यवहारविधिज्ञः, अनुषज्य श्रुतोपदेशेन ।
शिष्याय ददाति आज्ञां, तस्मै इदं देहि प्रायश्चित्तम् ॥११॥

गाथा--जेणऽन्नयाइ दिट्ठं सोहीकरणं परस्स कीरंतं ।
तारिसयं चेव पुणो, उप्पण्णं कारणं तस्स ॥१२॥

छाया--येन अन्यदा दृष्टं, शोधिकरणं परस्य क्रियमाणम् ।
तादृशकं चैव पुनः, उत्पन्नं कारणं तस्य ॥१२॥

गाथा--सो तम्मि चेव दव्वे खेत्ते काले य कारणे पुरिसे ।
तारिसयं चेव पुणो करिंतु आराहओ होइ ॥१३॥

छाया--स तस्मिन्नेव द्रव्ये क्षेत्रे काले च कारणे पुरुषे ।
तादृशकं चैव पुनः, कारयन् आराधको भवति ॥१३॥

लिये यह प्रायश्चित्त देना चाहिये अतः वह गूढार्थ पदोंसे युक्त करके प्रायश्चित्तको शिष्यसे कह देता है, और आज्ञा देता है, कि तुम जाकर मेरी ओरसे इस प्रायश्चित्तको देना ॥ ११ ॥

" जेणऽन्नयाइ दिट्ठं " इत्यादि ।

धारणाका नाम चतुर्थ व्यवहार इस प्रकारसे है-जिस साधुने किसी एक समय अतिचारवाले साधुको अपने अतिचारोंकी शुद्धि करते हुए देख लिया हो और अब उसे देखनेवाले साधुको या उसी प्रायश्चित्तको किये हुए पहिलेवाले साधुको कारण उपस्थित हो गया है ॥१२॥ तो वह मुनि उसी द्रव्यके होने पर उसी कालके होने पर उसी क्षेत्रके होने पर उसी कारणके होने पर उसी पुरुषके होने पर वैसेही प्रायश्चित्तको करवाता है, तोही आराधक होता है ॥१३॥ वैयावृत्त्य

દેવું જોઈએ. તેથી તે ગૂઢાર્થ પદોથી યુક્ત કરીને શિષ્યને પ્રાયશ્ચિત વિધિ કહી દે છે, અને તેને એવી આજ્ઞા કરે છે કે તમે જઈને મારા તરફથી તેમને આ પ્રાયશ્ચિત દેજો. । ૧૧ ।

હવે વ્યવહારના ચોથા ભેદ રૂપ 'ધારણા'નું સ્પષ્ટીકરણ કરવામાં આવે છે-" जेणऽन्नयाइ दिट्ठं " ઇત્યાદિ—કોઈ સાધુએ અતિચારથી યુક્ત એવા કોઈ સાધુને પોતાના અતિચારોની શુદ્ધિ કરતો જોયો હોય, ત્યારબાદ કયારેક તે (દેખનાર) સાધુને અથવા જેણે તે પ્રાયશ્ચિત્ત કરેલુ છે એવા સાધુને પ્રાયશ્ચિત્ત લેવું પડે એવું કારણ ઉપસ્થિત થયું હોય, તો તે મુનિ એજ દ્રવ્ય, એજ કાળ, એજ ક્ષેત્ર એજ કારણ અને એજ પુરુષ હોય ત્યારે એવું જ પ્રાયશ્ચિત્ત જો કરાવે છે, તો જ તેને આરાધક કહી શકાય છે. ૧૨-૧૩

अवधारयत। स आगमव्यवहारः प्रत्यक्षपारोक्षभेदेन द्विविधो ज्ञातव्यः ॥१॥ तत्र प्रत्यक्षः पुनरिन्द्रियज नोइन्द्रियजभेदेन द्विविधो बोध्यः। इन्द्रियज प्रत्यक्षस्तत्र पञ्चेन्द्रियार्थविषयकत्वेन पञ्चविधः ।२। नोइन्द्रियजन्यः प्रत्यक्षस्तु संक्षेपतः त्रिविधो भवति। त्रैविध्यं तस्य केवलज्ञानमनःपर्यवज्ञानावधिज्ञानभेदाद् बोध्यम् ॥३॥ यस्य मुनेः परोक्षोऽपि आगमः वस्तु स्वरूपस्य सम्यग् निर्णायकत्वात् प्रत्यक्षागमसदृशो भवति। चन्द्रमुखीव-मुखे चन्द्रत्वमुपचर्य यथा रमणी चन्द्रमुखीत्यभिधीयते तथैव उपचारात्-स मुनिरपि आगमव्यवहारवान् भवति ॥४॥ अमुं पारोक्षं व्यवहारं श्रुतधरा आगमतो व्यवहरन्ति ते श्रुतधरा के ? इत्याह-ते हि परवादिविद्रावणे गन्धहस्तिसदृशाः चतुर्दशपूर्वधरा दशपूर्वधरा नवपूर्वधराश्च बोध्याः ॥५॥ सम्प्रति आगमव्यवहारिणः प्रशंसापरां गाथामाह-' जं जहमोल्लं ' इत्यादि। यद् रत्नं यथामूल्यं भवति तत् रत्नवाणिजो निपुणं यथा स्यात्तथा जानाति, इति=अमुना प्रकारेणैव प्रत्यक्षी=प्रत्यक्षज्ञानी अपि जानाति यत्, योऽतीचारवान् येन प्रायश्चित्तेन दत्तेन शुद्धयति, स तथैव अतीचारवते प्रायश्चित्तमपि ददाति॥६॥ इत्थं यो मुनिः केवलज्ञानेन मनःपर्यव ज्ञानेन अवधिज्ञानेन चतुर्दशपूर्वधरत्वेन दशपूर्वधरत्वेन नवपूर्वधरत्वेन वाऽतीचारविशुद्धये यत् प्रायश्चित्तं ददाति, तत् प्रायश्चित्तदानम् आगमव्यवहारइत्युच्यते। अथ श्रुतनामकं द्वितीयं व्यवहारमाह-यो मुनिः कल्पस्य=बृहत्कल्पसूत्रस्य तथा-परमनिपुणस्य-प्रायश्चित्तविधौ स्फुटविचारयुक्तस्य व्यवहारसूत्रस्य च, एवकारोऽप्यर्थकः, तेन निशीथदशाश्रुतयोः संग्रहः, निशीथस्य दशाश्रुतस्य च, निर्युक्तिम् अर्थतो विजानाति स मुनिः व्यवहारी अनुज्ञातः=कथितः।७। तम्=व्यवहारिणमेव अनुपजन्=अनुबध्नन् अनुसरन् यो मुनिः अतीचारे सम्प्राप्ते यथोक्तम्=श्रुतोक्तिमनुसृत्य व्यवहारविधिं=प्रायश्चित्तं प्रयुनक्ति=ददाति, तस्य मुनेः श्रुतानुसारेण प्रायश्चित्तप्रदानरूप एष व्यवहारो वीतरागैः श्रुतव्यवहारः=श्रुतव्यवहार इति नाम्ना प्रज्ञप्तः=प्ररूपितः ॥८॥ अथ आज्ञानामकं तृतीयं व्यवहारमाह-यः अपराक्रमः=गमनशक्तिवर्जितः तपस्वी शोधिकारक समीपे=प्रायश्चित्तदातु समीपे गन्तुं न शक्नोति, शोधिकारकोऽपि देशात्=आश्रितस्थलात् आगन्तुं न शक्नोति।९॥ अथ=अनन्तरं स तपस्वी तस्य शोधिकारकस्य समीपे शिष्यं गूढार्थपदैः सन्दिश्य प्रस्थापयति=प्रेषयति, किं सन्दिश्य प्रेषयति ? इत्याह-हे आर्य ! देशान्तरगमननष्टचेष्टाः-अशक्त्या देशान्तरगमने नष्टाः चेष्टा येषां तादृशा वयम् सकाशे=त्वत्तः शोधिं=प्रायश्चित्तं कर्तुमिच्छामः, इति ॥१०॥ ततः सन्देशवाहकः शिष्यमुखात् स व्यवहारविधिज्ञः शोधिकारकः श्रुतोपदेशेन=शास्त्रेण अनुपज्य=सन्देशं यथावद् विचार्य " तस्मै

अतीचारसेविने मुनये इदं प्रायश्चित्तं देहि" इति गूढार्थपदैः तस्मै शिष्याय आज्ञां ददाति, तद् आज्ञानामकस्तृतीयो व्यवहारः ॥११॥ इति । अथ-धारणानामकं चतुर्थं व्यवहारमाह-येन साधुना अन्यदा=अन्यस्मिन् समये अतीचारवतोऽन्यस्य साधोः क्रियमाणं शोधिकरणं=प्रायश्चित्तं दृष्टं, तस्य साधोश्चापि पुनः तादृशमेव कारणं=प्रायश्चित्तकारणं समुत्पन्नम् ।१२। स मुनिः तस्मिन्नेव द्रव्ये क्षेत्रे काले कारणे पुरुषे च सति तादृशमेव प्रायश्चित्तं कारयन् आराधको भवति ॥१३॥ अथवा-वैयावृत्त्यकरो यः शिष्यो देशहिण्डको वापि यः शिष्यो भवति, स देशम् अवधारयन् यत् प्रायश्चित्तपदानां धारणं करोति, स धारणानामकश्चतुर्थो व्यवहारो भवतीति ॥ १४ ॥ अथ जीतनामकं पञ्चमं व्यवहारमाह-यश्च व्यवहारो बहुश्रुतैः साधुभिः बहुशः=अनेकवारम् वृत्तः=आचरितः, अन्यैश्च स व्यवहारो न निवारितः=न प्रतिषिद्धः । ततश्च स व्यवहारः वृत्तानुवृत्तप्रवृत्त=परम्परया प्रवृत्तिं प्राप्तो भवति । एवम् प्रायश्चित्तं जीतेन=जीतव्यवहारेण कृतं भवति । जीतनामकव्यवहारनिष्पन्नमिदं प्रायश्चित्तमिति भावः ॥ १५ ॥ इति ।

अथ आगमादीनाम् उत्सर्गापवादं प्राह—'जहा से' इत्यादिना तस्य=व्यवहर्त्तुः-प्रायश्चित्तदातुः तत्र-तेषु आगमादिव्यवहारेषु मध्ये, तस्मिन् वा प्रायश्चित्तदानादि व्यवहारकाले, तस्मिन् वा व्यवहर्त्तव्ये वस्तुनि विषये यथा=यथाप्रकारः-केवलादीनामन्यतमः आगमः स्यात्, तदा आगमेन व्यवहारं प्रस्थापयेत्=प्रवर्त्तयेत् न तु श्रुतादिभिः, आगमापेक्षया तेषामप्राधान्यात् आगमेऽपि

अब सूत्रकार आगमादिकोंके उत्सर्ग और अपवादका कथन करते हैं-" जहा से " इत्यादि-प्रायश्चित्त दाताको उन आगमादि व्यवहारोंके बीचमें अथवा-प्रायश्चित्त देने आदिके समयमें अथवा व्यवहार करने योग्य वस्तुमें जिस प्रकारका केवल आदिकोंमेसे कोई एक आगम होता है, उस समय उसी आगमसे व्यवहार चलाना चाहिये श्रुतादिसे व्यवहार नहीं चलाना चाहिये क्योंकि आगम आदिकी अपेक्षासे उनमें

હવે સૂત્રકાર આગમ આદિકોના ઉત્સર્ગ અને અપવાદનું કથન કરે છે
"जहां से" ઇત્યાદિ — પ્રાયશ્ચિતદાતાએ, આગમાદિ જે વ્યવહારો કહ્યા છે, તેમાંથી આગમનો (કેવળ આદિ આગમનો) જે વ્યવહાર સમયે શક્ય હોય તે સમયે આગમને આધારે જ વ્યવહાર ચલાવવો જોઇએ-શ્રુત આદિને આધારે વ્યવહાર ચલાવવો જોઇએ નહીં એટલે કે જ્યાં સુધી આગમને આધારે પ્રાયશ્ચિત્ત આપી શકાય તેમ હોય ત્યાં સુધી શ્રુતાદિને આધારે પ્રાયશ્ચિત્ત આપવું જોઇએ નહીં, કારણ કે શ્રુતાદિ કરતાં આગમમાં

केवलज्ञानादिपूर्वपर्यन्ते षड्विधे पूर्वस्मिन् सति परेण परेण व्यवहारो न प्रकल्पनीयः, उत्तरोत्तरापेक्षया पूर्वपूर्वस्य सातिशयत्वेन बलीयस्त्वादिति १। यदि तत्र आगमो न स्यात्, तर्हि तत्र यथाप्रकारकं श्रुतं भवेत्, तेन व्यवहारं प्रस्थापयेत् २। यदि तत्र श्रुतं नो भवेत्तदा आज्ञया व्यवहारं प्रकल्पयेत् ३। आज्ञाया अभावे धारणया ४, तदभावे तु जीतेन व्यवहारं प्रकल्पयेत्। एतन्निगमयन्नाह–आगमेन यावद् जीतेन=आगमादि जीतान्तैरित्येतैः–पञ्चभिः व्यवहारं प्रस्थापयेदिति सामान्यतो निगमनम्। विशेषतस्तु–यथा यथा तस्य तत्र आगमो यावद् जीतं

अप्रधानता है, केवलज्ञानसे लेकर पूर्व पर्यन्तके छह आगममें भी पूर्व पूर्वके होने पर आगे २ के आगमसे व्यवहार नहीं चलाना चाहिये क्योंकि उत्तर उत्तरकी अपेक्षासे पूर्व २में सातिशयता होनेसे अधिक बलवत्ता है, यदि वहां आगम न हो तो फिर जिस प्रकारका वहां श्रुत हो उससे व्यवहार चलाना चाहिये यदि वहां श्रुत न हो तो फिर वहां आज्ञासे व्यवहार चलाना चाहिये आज्ञाके अभावमें धारणासे और धारणाके अभावमें जीतसे व्यवहार चलाना चाहिये। यही बात "आगमेन यावत् जीतेन" इस सूत्र द्वारा प्रकटकी गई है, कि आगमसे लेकर जीत तकके पांच व्यवहारोंसे व्यवहार करनेवाला अपना व्यवहार चलावे। इस प्रकारका यह कथन सामान्य उत्सर्ग रूपसे कहा गया है, परन्तु विशेष रूपसे अपवाद रूपसे यह कथन इस प्रकारसे भी कहा गया है, कि व्यवहार करनेवाला जैसा

પ્રધાનતા રહેલી છે. કેવળજ્ઞાનથી લઇને પૂર્વ પર્યન્તના છ આગમોમાંથી પૂર્વ પૂર્વનો સદ્‌ભાવ હોય ત્યારે ઉત્તર ઉત્તરને આધારે વ્યવહાર ચલાવવો જોઇએ નહીં, કારણ કે પાછળના પ્રકારો કરતાં આગળના પ્રકારોમાં સાતિશયતા હોવાથી અધિક બલવત્તા છે. જો આગમનો વ્યવહાર શક્ય ન હોય તો જે પ્રકારના શ્રુતનો સદ્‌ભાવ હોય તે પ્રકારના શ્રુત દ્વારા વ્યવહાર ચલાવવો જોઇએ આજ્ઞાના અભાવમાં ધારણા વડે અને ધારણાના અભાવમાં જીત વડે વ્યવહાર ચલાવવો જોઇએ. એજ વાત "आगमेन यावत् जीतेन" આ સૂત્ર દ્વારા પ્રકટ કરવામાં આવી છે એટલે કે વ્યવહારિકે આગમથી લઇને જીત પર્યન્તના પાંચ વ્યવહારો દ્વારા પોતાનો વ્યવહાર (અતિચારોની શુદ્ધિ કરાવવા રૂપ વ્યવહાર) ચલાવવો જોઇએ આ પ્રકારનું આ કથન સામાન્ય ઉત્સર્ગ રૂપે સમજવું, પરન્તુ અપવાદ રૂપે અહીં આ પ્રમાણે કહે-

स्यात् तदा तदा व्यवहारं प्रस्थापयेन्नतु प्रवचनविरुद्धे व्यवहारं प्रस्थापयेदिति-निगमनम् ५। सम्प्रति एतैरागमादिभिः व्यवहर्तुः फलं प्रश्नद्वारेणाह-'से किमाहु' इत्यादिना, 'से' तत्=पञ्चविधं व्यवहारं किम्=किमर्थम् आहुः=कथयन्ति, एकेन आगमव्यवहारेणैवेष्टसिद्धेः, यतः श्रमणा निर्ग्रन्था आगमबलिकाः=आगमबलसम्पन्ना एव भवन्ति ? इति शिष्यप्रश्नः। उत्तरयति-इत्येवं पञ्चविधं=पञ्चप्रकारकं व्यवहारं-व्यवहरमाणइत्यग्रेण सम्बन्धः यदा-यदा=यस्मिन् यस्मिन्

जहां आगमादि हो उससे वहां अपना व्यवहार चलावे अर्थात् आगम न हो तो श्रुतसे श्रुत न हो तो आज्ञासे आज्ञा न हो तो धारणासे और धारणा न हो तो जीतसे अपना व्यवहार चलावे, परन्तु वह प्रवचनसे विरुद्ध व्यवहारोंसे अपना व्यवहार न चलावे।

अब प्रश्नकर्ता ऐसा प्रश्न पूछता है, कि इन आगमादिकोंके अनुसार व्यवहारकर्त्ताको क्या फल होता है ? यही बात-"से किमाहु इस सूत्र द्वारा प्रश्न रूपमें प्रकटकी गई हैं, अर्थात् यह जो पांच प्रकारका व्यवहार कहा गया है, सो किसलिये कहा गया है ?- क्योंकि एक आगम व्यवहारसेही इष्ट फलकी सिद्धि हो जाती है, कारण जो श्रमण जन होते हैं वे आगमरूप बलसे सम्पन्नही होते हैं, अर्थात् आगम रूप बलसे सम्पन्नही श्रमण जन होते हैं-इस शिष्यके प्रश्नके उत्तरमें प्रभु कहते हैं-" इत्येतं " इत्यादि-इस प्रकारके पांच प्रकारके व्यवहारको जब २ जहां २ तब २ वहां २ अनिश्रि-

---

વામાં આવ્યું છે-" જ્યાં આગમ આદિ જેનો સદ્‌ભાવ હોય તેના દ્વારા વ્યવહારિકે વ્યવહાર ચલાવવો જોઈએ " એટલે આગમ ન હોય તો શ્રુત વડે, શ્રુત ન હોય તો આજ્ઞા વડે, આજ્ઞા ન હોય તો ધારણા વડે, અને ધારણા ન હોય તો જીત વડે તે પોતાનો વ્યવહાર ચલાવે, પરન્તુ પ્રવચનની વિરુદ્ધનો વ્યવહાર તો તેણે ચલાવવો જોઈએ નહીં.

પ્રશ્ન—" આગમાદિકો અનુસાર વ્યવહાર કરનારને કયા ફલની પ્રાપ્તિ થાય છે ? " એ જ વાત " से किमाहु " ઈત્યાદિ સૂત્ર દ્વારા પ્રશ્ન રૂપે પ્રકટ કરવામાં આવી છે. પ્રશ્નકર્તા એ વાત પૂછવા માગે છે કે " એક આગમ વ્યવહાર વડે જ ઇષ્ટફલથી સિદ્ધિ થઈ જાય છે, તો પાંચ પ્રકારના વ્યવહારનું શું પ્રયોજન છે ? શ્રમણો તો આગમરૂપ બલથી સંપન્ન જ હોય છે, તો આગમ વ્યવહાર સિવાયના વ્યવહારોની શી આવશ્યકતા છે ?

ઉત્તર—" इत्येतं " ઈત્યાદિ—આ પાંચ પ્રકારના વ્યવહારને જ્યારે જ્યારે અને જ્યાં જ્યાં ચલાવવાની આવશ્યકતા જણાય, ત્યારે ત્યારે અને ત્યાં ત્યાં

काले यत्र यत्र=यस्मिन् यस्मिन् प्रयोजने वा क्षेत्रे वा यो य उचितः, तदा तदा=तस्मिन्काले तत्र तत्र=तस्मिन् तस्मिन् प्रयोजने वा क्षेत्रे वा अनिश्रितोपाश्रितम्-अनिश्रितैः=सर्वाशंसादोषरहितैस्तीर्थकरगणधरादिभिः उपाश्रितः=स्वीकृतस्तम्, अथवा-'अनिश्रितोपाश्रितम्' इति क्रियाविशेषणम्। तत्र-निश्रितः=शिष्यत्वमुपागतः, उपाश्रितः=शिष्यएव वैयावृत्त्यकारकः, निश्रितश्च-उपाश्रित

तोपाश्रित होकर जो श्रमण निर्ग्रन्थ अच्छी तरहसे चलाता है, वह श्रमण निर्ग्रन्थ आज्ञाका आराधक होता है, तात्पर्य इसका ऐसा है-जो शिष्यने ऐसी आशंकाकी है कि श्रमण निर्ग्रन्थको एक आगम व्यवहारकाही आश्रय करना चाहिये और उससेही अपना व्यवहार चलाना चाहिये उस व्यवहारोंकी उसे क्या आवश्यकता है, सो इसका उत्तर यहां सूत्रकारने इस प्रकारसे दिया है-कि जिस २ कालमें जिस २ प्रयोजनमें अथवा जिस २ क्षेत्रमें जो २ व्यवहार उचित हो एवं उस उस कालमें उस २ प्रयोजनमें अथवा उस २ क्षेत्रमें जो २ व्यवहार सर्व प्रकारके आशंसा दोषोंसे विहीन हुए तीर्थकरों द्वारा स्वीकृत हुआ हो उस २ व्यवहारसे अपने व्यवहारको करनेवाला चलानेवालाही श्रमण निर्ग्रन्थ आज्ञाका आराधक होता है। यहां "अनिश्रितोपाश्रितं" पदको "व्यवहारं" इस पदका विशेषण मानकर ऐसा अर्थ किया गया है, अथवा "अनिश्रितोपाश्रितं" इस पदको जब क्रिया विशेषण

અનિશ્રિતોપાશ્રિત થઇને જે શ્રમણ નિર્ગ્રંથ સારી રીતે ચલાવે છે, તે શ્રમણ નિર્ગ્રંથ જિનાજ્ઞાનો આરાધક ગણાય છે. આ કથનનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે—જે શિષ્યે એવો સંદેહ કર્યો છે કે શ્રમણ નિર્ગ્રંથે એક આગમ વ્યવહારનો જ આધાર લેવો જોઇએ અને તેની મદદથી જ પોતાનો વ્યવહાર ચલાવવો જોઇએ-અન્ય વ્યવહારોની આવશ્યકતા જ શી છે ! તો તેનો ઉત્તર સૂત્રકારે અહીં આ પ્રમાણે દીધો છે—

"જે જે કાળે, જે જે પ્રયોજનમાં અથવા જે જે ક્ષેત્રમાં જે જે વ્યવહાર ઉચિત હોય, અને તે તે કાળે, તે તે પ્રયોજનમાં અથવા તે તે ક્ષેત્રમાં જે જે વ્યવહાર સર્વ પ્રકારના આશંસા દોષોથી વિહીન બનેલા તીર્થંકરો દ્વારા સ્વીકૃત થયો હોય, તે તે વ્યવહાર પ્રમાણે પોતાનો વ્યવહાર ચલાવનાર શ્રમણ નિર્ગ્રંથ જ ભગવાનની આજ્ઞાનો આરાધક ગણાય છે અહીં "अनिश्रितोपाश्रित" આ પદને "व्यवहारं" આ પદનુ વિશેષણ માનીને આ પ્રમાણે અર્થ કરવામા આવ્યો છે. પણ "अनिश्रितोपाश्रितं" આ પદને જો ક્રિયાવિશેષણ માનવામાં આવે તો આ પ્રમાણે અર્થ થાય છે—

कृते-निश्रितोपाश्रिते, ते न विद्येते यस्मिंस्तद् यथा स्यात्तथा-अभिग्रहविशेषवशेन नवीनशिष्यान् अदीक्षयन् पुरातनशिष्यैश्च वैयावृत्त्यमकारयन्नित्यर्थः। यद्वा-निश्रितं रागः उपाश्रितं-द्वेषश्च निश्रितोपाश्रिते, ते उभे न विद्येते यस्मिंस्तद् यथा स्यात्तथा रागद्वेषरहितः सन्नित्यर्थः। अथवा-निश्रितं च-आहारादि लाभेच्छा, उपाश्रितं च शिष्यदायककुलापेक्षा, एतद्द्वयं नास्ति यस्मिंस्तद् यथा स्यात्तथा-आहारादिलाभेच्छारहितः, शिष्यदायककुलापेक्षा रहितश्च सन्नित्यर्थः। सम्यक्-यथाकल्पं व्यवहरमाणः=पूर्वोक्तव्यवहारं कुर्वाणः आज्ञायाः=जिनाज्ञाया आराधको भवति। इत्थं पञ्चविधव्यवहारेण व्यवहरणं प्रोक्तं भगवद्भिरिति।सू० ११॥

अनन्तरव्यवहारात् संयतानां तत्प्रतिपक्षभूतानामसंयतानां च सुप्तजागरस्वरूपमाह—

मूलम्—संजयमणुस्साणं सुत्ताणं पंच जागरा पण्णत्ता, तं जहा—सद्दा जाव फासा। संजयमणुस्साणं-जागराणं पंच सुत्ता पण्णत्ता, तं जहा—सद्दा जाव फासा। असंजयमणुस्साणं सुत्ताणं वा जागराणं वा पंच जागरा पण्णत्ता, तं जहा—सद्दा जाव फासा ॥ सू० १२ ॥

रखा जाता है, तब इस पक्षमें ऐसा अर्थ होता है, कि अभिग्रह विशेषकी अपेक्षा करके नवीन शिष्योंको दीक्षा न देते हुए और पुराने शिष्योंसे वैयावृत्त्य न कराते हुए अथवा रागद्वेषसे रहित होते हुए अथवा-आहारादिक लाभकी इच्छासे और उपाश्रित-शिष्यदायक कुलकी अपेक्षासे रहित होते हुए कल्पके अनुसार पूर्वोक्त व्यवहारको करनेवाला श्रमण निर्ग्रन्थ जिनाज्ञाका आराधक होता है, इस तरह पंचविध व्यवहारसे व्यवहार करना भगवान्ने कहा है ॥ सू० ११ ॥

અભિગ્રહ વિશેષની અપેક્ષાએ નવીન શિષ્યોને દીક્ષા ન દેનારા, અને પુરાણા શિષ્યો પાસે વૈયાવૃત્ય નહીં કરાવનારા એવા અથવા રાગદ્વેષથી રહિત અથવા આહારાદિક લાભની ઇચ્છાથી અને ઉપાશ્રિત-શિષ્યદાયક કુળની અપેક્ષાથી રહિત બનેલા એવા કલ્પ (નિયમ) અનુસાર પૂર્વોક્ત વ્યવહારને આચરનાર શ્રમણ નિર્ગ્રંથ જિનાજ્ઞાનો આરાધક ગણાય છે. આ રીતે પાંચ પ્રકારના વ્યવહાર વડે વ્યવહાર કરવાનું ચલાવવાનું ભગવાને કહ્યું છે ॥ સૂ. ૧૧ ॥

छाया—संयतमनुष्याणां सुप्तानां पञ्च जागराः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-शब्दा यावत् स्पर्शाः। संयतमनुष्याणां जागराणां पञ्च सुप्ताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-शब्दा यावत् स्पर्शाः। असंयतमनुष्याणां सुप्तानां वा जागराणां वा पञ्चजागराः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-शब्दा यावत् स्पर्शाः ॥ सू० १२ ॥

टीका—'संजयमणुस्साणं' इत्यादि—

सुप्तानां=निद्रावतां संयतमनुष्याणां=साधूनां पञ्च जागराः-जाग्रतीति जागराः =जागर इव जागराः-असुप्तवत् प्रज्ञप्ता'। ते के? इत्याह-तद्यथा-शब्दाः यावत् स्पर्शा इति। अयं भावः-शब्दादयो हि सुप्तानां संयतानां प्रज्वलदनलवदप्रतिहतशक्तिमन्तो भवन्ति, तस्मिन् काले तेषां कर्मबन्धकारणस्य निद्रारूपप्रमादस्य सद्भावात्, ततश्च सुप्तावस्थायां प्रतिबुद्धास्ते शब्दादयः कर्मबन्धकारणं भवन्तीति। तथा—

श्रमणके प्रस्तावसेही अब सूत्रकार संयतोंके और इनके प्रतिपक्ष असंयतोंके सुप्त एव जागर स्वरूपका कथन करते हैं—

टीकार्थ-'संजयमणुस्साणं सुत्ताणं पंच जागरा पण्णत्ता' इत्यादि सूत्र१२॥ जो संयत मनुष्य-साधुजन निद्रावालेहैं, उनके असुप्तकी तरहपांच जागरण कहे गये हैं वे इस प्रकारसेहैं-शब्द यावत् स्पर्श इसका भाव ऐसाहै-जो संयतजन सुप्तहैं, उनको शब्दादिक प्रज्वलित अग्निकी तरह अप्रतिहत शक्तिवाले होते हैं. क्योंकि उस कालमें उनके कर्मबन्धका कारणभूत निद्रारूप प्रमादका सद्भाव होता है, इसलिये सुप्त अवस्थामें प्रतिबुद्ध हुए अप्रतिहत शक्तिवाले बने हुए वे शब्दादिक कर्मबन्धके कारण होते हैं। तथा जो संयतजन अनिद्रित हैं-सचेत हैं-उनके पांच जाग-

શ્રમણોનો પ્રસ્તાવ ચાલી રહ્યો છે, તેથી હવે સૂત્રકાર સંયતો અને અસંયતોના સુપ્ત અને જાગરણ સ્વરૂપનું કથન કરે છે--

ટીકાર્થ-" सजयमणुस्साणं सुत्ताणं पच जागरा पण्णत्ता" ઇત્યાદિ--

જે સંયત મનુષ્યો (સાધુઓ) નિદ્રાવાળા (અસાવધાન) હોય છે, તેમના અસુપ્તના જેવાં પાંચ જાગરણ કહ્યાં છે--તે પાંચ જાગરણો શબ્દથી લઈને સ્પર્શ પર્યન્તના ગ્રહણ કરવા. આ કથનનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે--

જે સંયતજન સુપ્ત છે તેમને માટે શબ્દાદિક પ્રજ્વલિત અગ્નિની જેમ અપ્રતિહત શક્તિવાળાં હોય છે, કારણ તે કાળે તેમનાનાં કર્મબન્ધના કારણભૂત નિદ્રારૂપ પ્રમાદનો સદ્ભાવ હોય છે. તેથી સુપ્ત અવસ્થામાં પ્રતિબુદ્ધ થયેલા અપ્રતિહિત શક્તિવાળા બનેલા તે શબ્દાદિક કર્મબન્ધના કારણભૂત બને છે. જે સંયતજન અનિદ્રિત (સાવધાન) છે, તેમના પાંચ જાગરણ સુપ્તના

जागराणाम्=अनिद्रितानां साधूनां पञ्च सुप्ताः=सुप्ता इव-निद्रितवत्, प्रज्ञप्ताः। ते के? इत्याह-शब्दा यावत् स्पर्शाः। जागरितानां साधूनां शब्दादयः पञ्च भस्मच्छन्नाग्निवत् प्रतिहतशक्तयो भवन्ति, तस्मिन् काले कर्मबन्धकारणीभूतस्य प्रमादस्याभावात्, ततश्च जाग्रदवस्थायां ते न तेषां कर्मबन्धकारणं भवन्तीति। अथ असंयतानाश्रित्य प्राह-'असंजय' इत्यादिना। सुप्तानां वा जागराणां वा असंयतमनुष्याणाम्=असंयमिनां शब्दादयः पञ्च जागराः=अनिद्रिता भवन्ति। अयं भावः-असंयताहि प्रमादवन्तो भवन्ति, अतस्तेषां स्वप्नजाग्रदुभयावस्थायामपि शब्दादयोऽप्रतिहतशक्तिकत्वात् कर्मबन्धहेतुका भवन्तीति॥ सू० १२॥

रण सुप्तकी तरह कहे गये हैं-निद्रितकी तरह प्रकट किये गये हैं, वे पांच जागरण शब्दसे लेकर स्पर्श तक हैं, तात्पर्य ऐसा है, कि जो संयतजन जागरित होते हैं, उनके शब्दादिक पांच जागरण भस्मसे आच्छादित हुई-ढंकी हुई अग्निकी तरह प्रतिहत शक्तिवाले होते हैं, क्योंकि उस कालमें कर्मबन्धके कारणभूत प्रमादका असत्व रहता है, इसलिये वे जाग्रत अवस्थामें उनको कर्मबन्धके कारण नहीं होते हैं.

"असंजय" इत्यादि-असंयत मनुष्य चाहे सुप्त हो चाहे जागरित हो उनके तो शब्दादिक पांच जागरण सदा अनिद्रितही होते हैं, इसका भाव ऐसा है, असंयत जीव प्रमादवाले होते हैं, इसलिये उन्हें स्वप्न अवस्थामें एवं जाग्रत अवस्थामें दोनों अवस्थाओंमें भी शब्दादिक अप्रतिहत शक्तिवाले होनेसे कर्मबन्धके हेतु होते हैं ॥सू० १२॥

સમાન કહ્યા છે-નિદ્રિતના જેવા પ્રકટ કરવામાં આવ્યા છે શબ્દથી લઈને સ્પર્શ પર્યન્તના પાંચ જાગરણુ સમજવા. આ કથનનો ભાવાર્થ એ છે કે જે સંયત મનુષ્યો જાગૃત હોય છે, તેમના શબ્દાદિક પાંચ જાગરણુ જેના પર રાખ વળી ગઈ છે એવા અગ્નિના જેવા પ્રતિહત શક્તિવાળા હોય છે, કારણુ કે તે કાળે કર્મબન્ધના કારણભૂત પ્રમાદનો અભાવ રહે છે, તેથી જાગૃત અવસ્થામાં તેમને કર્મબન્ધ થવાના કારણોનો અભાવ રહે છે.

"असंजय" ઈત્યાદિ--અસંયત મનુષ્યો ભલે સુપ્ત હોય કે ભલે જાગૃત હોય, પણુ તેમને માટે તો શબ્દાદિક પાંચ જાગરણુ સદા અનિદ્રિતસમાન જ હોય છે આ કથનનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે--અસંયત મનુષ્યો પ્રમાદ વાળા હોય છે. તેથી તેમને માટે તો સુપ્ત અને જાગૃત આ બન્ને અવસ્થામાં શબ્દાદિક અપ્રતિહત શક્તિવાળા હોવાથી કર્મબન્ધમાં કારણભૂત બને છે. સૂ. ૧૨

संयतासंयताधिकारात्तदुभयसंबद्धं सूत्रमाह—

मूलम्—पंचहिं ठाणेहिं जीवा रयं आदिज्जंति तं जहा-पाणाइवाएणं जाव परिग्गहेणं। पंचहिं ठाणेहिं जीवा रयं वमंति, तं जहा-पाणाइवायवेरमणेणं जाव परिग्गहवेरमणेणं ॥सू०१३॥

छाया—पञ्चभिः स्थानैः जीवा रज आददति, तद्यथा-प्राणातिपातेन यावत् परिग्रहेण। पञ्चभिः स्थानैः जीवा रजो वमन्ति, तद्यथा-प्राणातिपातविरमणेन यावत् परिग्रहविरमणेन ॥ सू० १३ ॥

टीका—'पंचहिं ठाणेहिं' इत्यादि-

पञ्चभिः स्थानैः जीवाः रजः-रज्यते=जीवस्य शुद्धस्वरूपं मलिनं क्रियतेऽनेनेति-रजः कर्म आददति=गृह्णन्ति बध्नन्तीति यावत्। तद्यथा-प्राणातिपातेन यावत् परिग्रहेण। प्राणातिपातादिपरिग्रहान्ताः पञ्च जीवस्य कर्मबन्धकारणानि भवन्तीति भावः। तथा-जीवाः पञ्चभिः-स्थानैः रजः=कर्म वमन्ति-उद्गिलन्ति क्षपयन्तीति यावत्। तद्यथा-प्राणातिपातविरमणेन यावत् परिग्रहविरमणेनेति ॥सू०१३॥

संयत और असंयतके अधिकारसे इन दोनोंसे संबद्ध सूत्रका कथन सूत्रकार करतेहैं-'पंचहिं ठाणेहिं जीवा रयं आदिज्जंति' इत्यादि

टीकार्थ—पांच कारणोंसे जीव रजको जीवके शुद्ध स्वरूपको मलिन करनेके कारणके कारण कर्मरजको बांधते हैं, वे पांच कारण ये हैं-प्राणातिपात यावत् परिग्रहका तात्पर्य यही है, कि प्राणातिपातसे लेकर परिग्रह तकके पांचोंही पाप जीवको कर्मबन्धके कारण होते हैं। तथा जीव पांच कारणोंसे कर्मोंका क्षय करते हैं, वे पांच कारण ये हैं प्राणातिपात विरमण यावत् परिग्रह विरमण ॥ सू० १३ ॥

સંયત અને અસંયતના અધિકાર સાથે સંબદ્ધ એવા કર્મરજ વિષયક સૂત્રનું હવે સૂત્રકાર કથન કરે છે." पंच हिं ठाणेहिं जीवा रयं आदिज्जंति" ઇત્યાદિ—

ટીકાર્થ-પાંચ કારણોને લીધે જીવ પોતાના શુદ્ધ સ્વરૂપને મલિન કરનાર રજની (કર્મરજની) જમાવટ કરે છે. તે પાંચ કારણો નીચે પ્રમાણે છે—

પ્રાણાતિપાતથી લઇને પરિગ્રહ પર્યન્તના કારણો અહીં ગ્રહણ કરવા જોઇએ. આ કથનનો ભાવાર્થ એ છે કે પ્રાણાતિપાતથી લઇને પરિગ્રહ પર્યન્તના પાંચે પાપ જીવને કર્મનો બન્ધ કરાવવામાં કારણભૂત બને છે. તથા પ્રાણાતિપાત વિરમણથી લઇને પરિગ્રહ વિરમણ પર્યન્તના પાંચ કારણોને લીધે જીવ કર્મોનો ક્ષય કરે છે. ॥ સૂ. ૧૩ ॥

संयतानेवाधिकृत्य सम्प्रति सूत्रद्वयमाह—

मूलम्—पंचमासियं णं भिक्खुपडिमं पडिवन्नस्स अणगारस्स कप्पंति पंच दत्तीओ भोयणस्स पडिगाहेत्तए पंच पाणगस्स ॥ सू० १४ ॥

छाया—पञ्चमासिकीं खलु भिक्षुप्रतिमां प्रतिपन्नस्य अनगारस्य कल्पन्ते पञ्च दत्तयो भोजनस्य प्रतिग्रहीतुं पञ्च पानकस्य ॥ सू० १४ ॥

टीका—'पंचमासियं' इत्यादि—

व्याख्या स्पष्टा ॥ सू० १४ ॥

मूलम्—पंचविहे उवघाए पण्णत्ते, तं जहा-उग्गमोवघाए १, उप्पायणोवघाए २ एसणोवघाए ३ परिकम्मोवघाए ४ परिहरणोवघाए ५। पंचविहा विसोही पण्णत्ता, तं जहा--उग्गमविसोही १ उप्पायणविसोही २ एसणाविसोही ३ परिकम्मविसोही ४ परिहरणविसोही ५ ॥ सू० १५ ॥

छाया--पञ्चविधउपघातः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–उद्गमोपघातः १ उत्पादनोपघातः २ एषणोपघातः ३ परिकर्मोपघातः ४ परिहरणोपघातः ५। पञ्चविधा विशोधयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–उद्गमविशोधिः १ उत्पादनाविशोधिः २ एषणाविशोधिः ३ परिकर्मविशोधिः ४ परिहरणविशोधिः ५ ॥ सू० १५ ॥

टीका--'पंचविहे' इत्यादि—

उपघातः=अशुद्धता, स पञ्चविधः प्रज्ञप्तः। पञ्चविधत्वमेवाह–तद्यथा–उद्गमोपघातः–उद्गमैः=उद्गमदोषैराधाकर्मादिभिः षोडशविधैर्भक्तपानोपकरणवसतीनाम्

संयतोंको लेकरही सूत्रकार अब ये दो सूत्र और कहते हैं--

'पंचमासियं णं भिक्खुपडिमं पडिवन्नस्स अणगारस्स' इत्यादि १४॥

टीकार्थ–पंचमासिकी भिक्षु प्रतिमाको प्राप्त मुनिके लिये पांच दत्तियां भोजनकी और पांचही दत्तियां पानककी लेना शास्त्रविहीत हैं ॥सू. १४॥

સંયતોને અનુલક્ષીને જ હવે સૂત્રકાર નીચેના બે સૂત્રો કહે છે.

ટીકાર્થ–" પંચમાસિયં णं भिक्खुपडिम पडिवन्नस्स अणगारस्स " ઇત્યાદિ—

પાંચ માસિક ભિક્ષુ પ્રતિમાની આરાધના કરનાર મુનિને પાંચ ભોજનની દત્તિઓ અને પાંચ પાનક (પેય) ની દત્તિઓ લેવી કલ્પે છે. ॥ સૂ. ૧૪ ॥

उपघातः=अशुद्धता १। उत्पादनोपघातः–उत्पादनाभिः=धात्र्यादिभिः षोडशभिरुत्पादनादोषैर्भक्तपानादीनामशुद्धता २। एषणोपघातः–एषणया=शङ्कितादिभिर्दशभिरेषणादोषैरुपघातः ३। परिकर्मोपघातः–परिकर्म–वस्त्रपात्रादेः छेदनसीवनादि, तेन उपघातः=वस्त्रपात्रादेरकल्पनीयता। तत्र वस्त्रस्य परिकर्मोपघातो यथा—

'पंचविहे उवघाए पण्णत्ते' इत्यादि सूत्र १५॥

टीकार्थ–उपघात शब्दका अर्थ अशुद्धताहै, यह अशुद्धता पांच प्रकारकी कही गई है–उद्गमोपघात १ उत्पादनोपघात २ एषणोपघात ३ परिकर्मोपघात ४ और परिहरणोपघात ५ पांच प्रकारकी विशोधि कही गई है–जैसे–उद्गम विशोधि १ उत्पादनाविशोधि २ एषणाविशोधि ३ परिकर्मविशोधि ४ और परिहरण विशोधि ५।

आधाकर्म आदि १६ प्रकारके उद्गम दोषोंसे भक्तपान उपकरण इनके आलयोंकी-स्थानोंकी अशुद्धता यह उद्गमोपघात है १। धात्री आदि १६ प्रकारके उत्पादना दोषोंसे भक्तपान आदिकोंकी अशुद्धता यह उत्पादनोपघात है २। शङ्कित आदि १० प्रकारके एषणा दोषोंसे भक्तपान आदिकोंकी अशुद्धता एषणोपघात है ३। वस्त्रपात्र आदिकोंका छेदना सीना आदि परिकर्म है, इससे जो वस्त्रपात्र आदिकी अकल्पनीयता है, वह परिकर्मोपघात है ४। वस्त्रका परिकर्मोपघात ऐसा है–

"पंचविहे उवघाए पण्णत्ते" ઈત્યાદિ—

ટીકાર્થ–ઉપઘાત એટલે અશુદ્ધતા તે અશુદ્ધતા રૂપ ઉપઘાતના નીચે પ્રમાણે પાંચ પ્રકાર કહ્યાં છે—(૧) ઉદ્ગમોપઘાત, (૨) ઉત્પાદનોપઘાત, (૩) એષણોપઘાત, (૪) પરિકર્મોપઘાત અને (૫) પરિહરણોપઘાત.

પાંચ પ્રકારની વિશોધિ (વિશુદ્ધતા) કહી છે—(૧) ઉદ્ગમવિશોધિ, (૨) ઉત્પાદના વિશોધિ, (૩) એષણાવિશોધિ, (૪) પરિકર્મવિશોધિ અને (૫) પરિહરણ વિશોધિ.

આધાકર્મ દોષ આદિ ૧૬ પ્રકારના ઉદ્ગમ દોષો કહ્યા છે. આહાર, પાણી, અને ઉપકરણના સ્થાનોની અશુદ્ધતાનું નામ ઉદ્ગમોપઘાત છે. ધાત્રીદોષ આદિ ૧૬ પ્રકારના ઉત્પાદના દોષોથી આહાર આદિકોમાં જે અશુદ્ધતા આવી જાય છે તેનું નામ ઉત્પાદનોપઘાત છે. શંકિત આદિ ૧૦ પ્રકારના દોષોથી આહાર આદિમાં જે અશુદ્ધતા આવી જાય છે તેને એષણોપઘાત કહે છે. વસ્ત્ર પાત્ર આદિકોનું છેદન કરવું અથવા સાંધવું, તેનું નામ પરિકર્મ છે. તેને કારણે વસ્ત્રાદિમાં જે અકલ્પનીયતા આવે છે તેને પરિકર્મોપઘાત કહે છે. વસ્ત્રના પરિકર્મનું સ્વરૂપ આ પ્રકારનું હોય છે–" तिण्हुत्तारि फालियाणं " ઇત્યાદિ.

" तिण्हुवरिफालियाणं, वत्थं जो फालियं तु संसीवे ।
पंचण्हं एगतरं, सो पावइ आणमाईणि ॥ १ ॥ "

छाया---त्रयाणामुपरि पाटितानां वस्त्रं यः पाटितं तु संसीव्येत् ।
पञ्चानामेकतमत् स प्राप्नोति आज्ञादीनि ॥ १ ॥ इति ।

अयं भावः-यः पञ्चानाम्=ऊर्णादि पञ्चविधानां वस्त्राणां मध्ये एकतमत्=अन्यतमं वस्त्रं त्रयाणां पाटितानाम्=तिसृणां थिग्गलिकानाम् उपरि पाटितं तु=यदि संसीव्येत्, तदा स साधुः आज्ञादीनि=आज्ञाविराधनादि दोषान् प्राप्नोतीति । पात्रस्य परिकर्मोपघातो यथा—

" अवलक्खणेगबंधे, दुगतिग अइरेगबंधणं वावि ।
जो पायं परियट्टइ, परं दिवड्ढाओ मासाओ ॥ १ ॥ "

छाया—अपलक्षणैकबन्धं द्विकत्रिकातिरेकबन्धनं वापि ।
यः पात्रं परिवर्त्तयति परं द्व्यपार्द्धात् मासात् ॥१॥ इति ।

" तिण्हुवरि फालियाणं " इत्यादि ।

जो साधु उर्णा आदि पांच प्रकारके वस्त्रोंमेंसे किसी एक वस्त्रको फटे हुए तीन थेगलीसे अधिक थेगली लगावे वह साधु आज्ञा विराधना आदि दोषोंको प्राप्त करता है, पात्रका परिकर्मोपघात इस प्रकारसे हैं—

" अवलक्खणेगबंधे " इत्यादि ।

जो पात्र स्वरूप रहित हो एवं एक बन्धनवाला हो ऐसे उस पात्रको जो साधु १॥ डेढ माससे अधिक समय तक रखताहै, वह साधु आज्ञा-विराधना आदि दोषवाला होता है, अच्छे लक्षणवाला पात्र एक बन्धनसे युक्त हुआ भी यदि १॥ डेढ माहसे भी अधिक काममें ले लिया जाता है, तो उससे साधुको आज्ञा विराधना आदि दोष नहीं लगता है।

જે સાધુ ઉર્ણા (ઉનના બનાવેલાં) આદિ પાંચ પ્રકારના વસ્ત્રોમાંથી કોઇ પણ એક પ્રકારના ફાટેલા વસ્ત્રને ત્રણ કરતાં વધારે થીગડાં લગાવે છે, તો તે સાધુ જિનાજ્ઞાનો વિરાધક ગણાય છે. પાત્રનો પરિકર્મોપઘાત આ પ્રકારનો કહ્યો છે. " અવલક્ખણેગબંધે " ઇત્યાદિ—

જે પાત્ર સ્વરૂપ રહિત હોય અને એક બન્ધનવાળું હોય, તે પાત્રને ૧॥ માસ કરતાં અધિક સમય સુધી પોતાની પાસે રાખનાર સાધુ આજ્ઞા-વિરાધના આદિ દોષવાળો ગણાય છે. જે પાત્ર સારાં લક્ષણોવાળું અને એક બન્ધનવાળું હોય, તેને ૧॥ માસથી અધિક સમય સુધી ઉપયોગમાં લેવામાં આવે તો તેથી સાધુને આજ્ઞાવિરાધના આદિ દોષ લાગતા નથી. એ અથવા

अयं भावः–यत् पात्रम् अपलक्षणैकबन्धम्–अपगतं लक्षणं=स्वरूपं यस्य तत् एवंभूतं सत् एकबन्धम्=एकबन्धनयुक्त भवेत्, तत् पात्रं यः साधुः द्व्यपार्धात्–द्वितीयम् अपार्द्धं यस्मिंस्तद् द्व्यपार्द्धं तस्मात्–सार्द्धात् मासात् परं परिवर्त्तयति=परिभुङ्क्ते स आज्ञाविराधनादिदोषभाग् भवति। सुलक्षणं पात्रमेकबन्धनयुक्तमपि सार्धमासात्परमपि परिभुञ्जानः साधुः आज्ञादिदोषभाग् नो भवति। तथा–द्विकत्रिकातिरेकबन्धनं–द्वाभ्यां बन्धनाभ्यां, त्रिभ्यो बन्धनेभ्यश्चाधिकबन्धनयुक्तं=चतुर्बन्धनयुक्तं सुलक्षणमपि पात्रं सार्धमासात्परं परिभुञ्जानः साधुराज्ञादिदोषभाग् भवति। किंचिदूनचतुर्बन्धनयुक्तं पात्रं परिभुञ्जानः साधुस्तु आज्ञादिविराधको न भवतीति बोध्यम्। वसतेः परिकर्मोपघातस्तु—

"दूमिय धूमिय वासिय, उज्जोइय वलिकडा अवत्ता य।
सित्ता संसट्ठावि य, अकप्पणीया उ सा वसही ॥ १ ॥"

छाया—धवलिता धूमिता वासिता उद्द्योतिता बलिकृता अव्यक्ता च।
सिक्ता सम्मृष्टाऽपि च अकल्पनीया तु सा वसतिः ॥१॥ इति।

अयं भावः–या वसतिः–धवलिता=शुभ्रीकृता, धूमिता = दंशमशकादीनां विनाशाय कृतधूमा, वासिता=सुगन्धिता, उद्द्योतिता=प्रदीपादिना प्रकाशिता,

---

तथा दो बन्धनोंसे या तीन बन्धनोंसे अधिकबन्धन युक्त–चार बन्धनयुक्त पात्र यदि सुलक्षणवाला भी है, तो उसे जो साधु १॥ डेढ माससे अधिक समय तक अपने काममें लेता है, वह साधु आज्ञा भंग आदि दोषोंका पात्र माना जाता है। परन्तु कुछ कम चार बन्धनयुक्त पात्रको अपने काममें लेनेवाला साधु आज्ञादिका विराधक नहीं होता है, वसतिका परिकर्मोपघात इस प्रकारसे है—

"दूमिय धूमिय वासिय" इत्यादि।

तात्पर्य यहहै कि जो वसति (उपाश्रय) धवलित हो चूनेसे पोत कर

त्रण करतां अधिक એટલે કે ચાર, પાંચ આદિ બન્ધનોથી યુક્ત પાત્ર સુલક્ષણયુક્ત હોવા છતાં પણ તેનો ૧॥ માસથી અધિક સમય પર્યન્ત ઉપયોગ કરનાર સાધુ આજ્ઞાવિરાધના આદિ દોષોને પાત્ર ગણાય છે, પરન્તુ ચારથી ઓછા બન્ધનયુક્ત પાત્રનો ૧॥ માસથી અધિક સમય માટે ઉપયોગ કરનાર સાધુ આજ્ઞાદિનો વિરાધક ગણાતો નથી. વસતિ (રહેઠાણ) નો પરિકર્મોપઘાત આ પ્રકારનો છે. "दूमिय धूमिय वासिय" ઇત્યાદિ—

જે વસતિ (રહેઠાણ) ચૂના આદિ વડે ધોળેલી હોય, મચ્છર, ચાંચડ,

बलिकृता-कूरादिना भूतार्थं बलिः कृतो यस्यां सा, अव्यक्ता=गोमयादिना उपलिप्ता, सिक्ता=जलसेकयुक्ता, तथा-सम्मृष्टा=सम्मार्जिता चापि भवति, सा वसतिः अकल्पनीया बोध्येति ४। तथा-परिहरणोपघातः-परिहरणम्=आसेवनं, तेन उपघातः=उपध्यादेरकल्पनीयत्वम्। तत्र-उपधेः परिहरणोपघातो यथा-एकाकिहिण्डकेन साधुना यदासेवितमुपकरणं तद् ग्रहीतुं न कल्पते इति। परन्तु स गच्छनिर्गतः साधुरेकाकी सन्नपि जागर्त्ति, दुग्धादिविकृतिषु च प्रतिबद्धो न भवति, तदा चिरेणापि गच्छे समागच्छतोऽस्य साधोरुपधिः ग्रहीतुं कल्पते।

सफेद की गई हो दंशमशक आदिकोंके विनाशके लिये जिसमें धूम किया गया हो, धूप आदि जलाकर जिसे सुगंधित किया गया हो, प्रदीप आदिसे जिसे प्रकाशयुक्त किया हो, भूतके लिये जिसमें मान आदिसे बलि दी गई हो, गोबर आदिसे जो लीपी गई हो, जलका जिसमें छिडकाव किया गया हो और जिसको कूडाकचरा निकाल कर साफ कर दिया गया हो ऐसी वह वसति साधुजनोंको ठहरनेके लिये अकल्पनीय है, परिहरणोपघात इस प्रकारसे है-परिहरण नाम आसेवनका है, इससे जो उपधि आदिकी अकल्पनीयता है, वह परिहरणोपघात है, इसमें उपधिका परिहरणोपघात इस प्रकारसे है-एकाकी भ्रमण करनेवाले साधुके द्वारा आसेवित जो उपकरण हो वह लेना योग्य नहीं है, परन्तु गच्छसे निर्गत साधु अकेला होता हुआ भी यदि जागरित है-दुग्धादि विकृतियोंमें प्रतिबद्ध नहीं होता है, तो बहुत दिनोंके बाद भी गच्छमें आने पर उस साधुकी उपधि आदि लेना कल्प्य है तदुक्तम्-

આદિનો નાશ કરવા માટે ધૂમાડો કરવામાં આવ્યો હોય, ધૂપ આદિ વડે જેને સુગન્ધયુક્ત કરવામાં આવેલ હોય, પ્રદીપ વડે જેને પ્રકાશિત કરવામાં આવેલ હોય, જેમાં ભૂતને માટે અડદના બાકળા વગેરે બાળી દેવામાં આવેલ હોય, છાણ આદિ વડે જેને લીંપવામાં આવેલ હોય, જેમાં પાણી છાંટવામાં આવ્યું હોય, જેમાંથી કચરોપૂંજો સાફ કરાવવામાં આવેલ હોય, એવી વસતિ (સ્થાન) સાધુને રહેવાને માટે અકલ્પનીય ગણાય છે.

પરિહરણોપઘાતનું સ્વરૂપ આ પ્રમાણે છે—પરિહરણ એટલે આસેવન. ઉપધિ આદિની જે અકલ્પનીયતા છે, તેને પરિહરણોપઘાત કહે છે. તેમાંનો ઉપધિનો પરિહરણોપઘાત આ પ્રકારનો છે—એકલા વિહારી સાધુ દ્વારા આસેવિત જે ઉપકરણ હોય, તે લેવા યોગ્ય નથી, પરન્તુ ગચ્છમાંથી નીકળી ગયેલો સાધુ એકલવિહારી હોવા છતાં પણ જાગૃત હોય (દૂધ આદિ વિકૃતિઓમાં અપ્રતિબદ્ધ હોય) તો એવો સાધુ ઘણા દિવસો પછી પણ ગચ્છમાં પાછો

तदुक्तम्—

" जग्गण अप्पडिबज्झण, जइवि चिरेणं न उवहंमे । "

छाया—जागरणम् अप्रतिबन्धो यद्यपि चिरेण नोपहन्यते । इति ।

तथा-वसतेः परिहरणोपघातो यथा-यः कश्चित् साधुर्यत्र वसत्यां शेषकालस्य मासमेकं वर्षाकालस्य वा चातुर्मासीं स्थित्वा पुनस्तत्रैव तिष्ठति ततः सा वसतिः कालातिक्रान्तदोषदुष्टा भवति । यः साधुः यत्र वसत्यां शेषकालस्य मासमेकं तिष्ठति, वर्षाकालस्य वा चातुर्मासीं तिष्ठति, ततो विहृत्य तद्द्विगुणं कालमनतियाप्य यदि पुनस्तत्रैव वसतौ समायाति तदा सा वसतिरुपस्थानदोषदुष्टा भवति । तदुक्तम्—

" उउवासा समईया, कालातीया उ सा भवे सेज्जा ।
सा चेव उवट्ठाणा, दुगुण दुगुणं अवज्जिता ॥ १ ॥ "

" जग्गणअप्पडिबज्झण " इत्यादि ।

वसतिका (उपाश्रय) परिहरणोपघात इस प्रकारसे है-जो कोई साधु जिस वसतिमें शेषकालके एक मास तक अथवा वर्षाकालके चार मास तक ठहर कर पुनः वहीं पर ठहर जाता है, वह वसति कालातिक्रान्त दोषसे दुष्ट होती है, जो साधु जिस वसतिमें शेष कालके एक महिना तक ठहरता है, अथवा वर्षाकालके चार मास तक ठहरता है फिर इसके बाद वहांसे विहार कर यदि उससे द्विगुणित कालको समाप्त नहीं करके उसी वसतिमें आ जाता है, तो वह वसति उपस्थान दोषसे दोषयुक्त होती है-कहा भी है-" उउवासा समईया " इत्यादि ।

આવી જાય, તો તે સાધુની ઉપધિ આદિ લેવા યોગ્ય (કલ્પનીય) ગણાય છે. કહ્યું પણ છે કે " જગ્ગણ અપ્પડિબજ્ઝણ " ઇત્યાદિ—

વસતિ (રહેઠાણ) નો પરિહરણોપઘાત આ પ્રકારનો છે—સાધુઓને શેષકાળમાં એક માસ સુધી અને ચોમાસામાં ચાર માસ સુધી એક જ જગ્યાએ રહેવાનું કલ્પે છે જો એક જ જગ્યાએ તેથી વધારે સમય સુધી રહે તો તે વસતિ કાલાતિક્રાન્ત દોષથી દૂષિત થાય છે. જો કોઈ સાધુ અમુક વસતિ (સ્થાન) માં શેષકાળમાં એક માસ સુધી અને વર્ષાકાળમાં ચાર માસ સુધી રહીને ત્યાંથી વિહાર કરે છે, પણ તેના કરતાં બમણો સમય વ્યતીત થઈ ગયા પહેલાં તે વસતિમાં આવે, તો તે વસતિ ઉપસ્થાન દોષથી દૂષિત થાય છે. કહ્યું પણ છે કે—

" ઉઉવાસા સમઈયા " ઇત્યાદિ—

छाया—अनुवर्त्यः समतीता· कालातीता तु सा भवेत् शय्या ।
　　सा एव उपस्थाना द्विगुणं द्विगुणम् अवर्जयित्वा ॥१॥ इति ।
　तथा-भक्तस्य परिहरणोपघातः परिष्ठापकं प्रति भवति ।

तदुक्तम्-" विहिगहियं विहिभुत्तं, अइरेगं भत्तपाणभोत्तव्वं ।
　　　विहिगहिय विहिभुत्ते, एत्थ य चउरो भवे भंगा ॥१॥
　　　अइवावि य विहिगहियं, विहिभुत्तं तं गुरूहऽणुन्नायं ।
　　　सेसा नाणुन्नाया गहणे दिन्ने य निज्जुहणं " ॥२॥

छाया—विधिगृहीतं विधिभुक्तम् अतिरेकं भक्तपानं भोक्तव्यम् ।
　　विधिगृहीते विधिभुक्ते, अत्र च चत्वारो भवेयुर्भङ्गाः ॥१॥
　　अथवाऽपि च विधिगृहीतं विधिभुक्तं तद्गुरुभिरनुज्ञातम् ।
　　शेषा नानुज्ञाता गृहीते दत्ते च निर्यूहणा ॥ २ ॥ इति ।

निर्यूहणा=त्यागः । गुरुभिरशनादिकं परिष्ठापयितुमाज्ञप्त शिष्यं प्रति परिष्ठाप्याशनादिविषयकः परिहरणोपघातो भवतीति बोध्यम् । तथा-विशोधिः-विशोधनं विशोधिः-कल्प्यता, सा पञ्चविधा प्रज्ञप्ता । पञ्चविधत्वमाह-तद्यथा-उद्गमविशोधिरित्यादि । उद्गमादिदोषपरिहारेण भक्तानां विशोधिर्बोध्येति॥सू.१५।

भक्तका परिहरणोपघात इस प्रकारसे है-यह भक्तका परिहरणोपघात परिष्ठापकके (परिष्ठापना करनेवाले) प्रति होता है कहा भी है
　" विहिगहियं विहिभुत्तं " इत्यादि ।

निर्यूहणा शब्दका अर्थ त्याग करना है, गुरुजनों द्वारा अशनादिकको परिष्ठापना करनेके लिये आज्ञापित हुए शिष्यके परिष्ठापना करने योग्य अशनादि सम्बन्धी परिहरणोपघात होता है, ऐसा जानना चाहिये । कल्प्यताका नाम विशोधि है, यह कल्प्यतारूप विशोधि पांच

ભક્ત (આહાર) નો પરિહરણોપઘાત આ પ્રકારનો છે--આ ભક્ત (આહાર) નો પરિહરણોપઘાત પરિષ્ઠાપકને દોષયુક્ત કરે છે. કહ્યું પણ છે કે
　" વિહિગહિયં વિહિભુત્તં " ઇત્યાદિ—

નિર્યૂહણા એટલે ત્યાગ કરવો. ગુરુજનો દ્વારા અશનાદિકની પરિષ્ઠાપના કરવાનો જેને આદેશ અપાયો હોય છે એવા શિષ્યને પરિષ્ઠાપના કરવા યોગ્ય અશનાદિ સંબંધી પરિહરણોપઘાત લાગે છે, એમ સમજવું.

કલ્પ્યતાને વિશોધિ કહે છે. તે કલ્પ્યતા રૂપ વિશોધિ પાંચ પ્રકારની કહી છે-ઉદ્ગમ વિશોધિ આદિ પાંચ વિશોધિ અહીં ગ્રહણ કરવી. ઉદ્ગમ આદિ

उपघातवृत्तयो जीवा अधार्मिकत्वेन बोधेरप्राप्तिस्थानेषु प्रवर्त्तन्ते, विशुद्धि-वृत्तयो जीवास्तु धार्मिकत्वेन बोधेः प्राप्तिस्थानेषु प्रवर्त्तन्ते इत्युपदर्शयितुमाह—

मूलम्—पंचहिं ठाणेहिं जीवा दुल्लभबोहियत्ताए कम्मं पगरेंति, तं जहा--अरहंताणं अवन्नं वयमाणे १, अरहंतपन्नत्तस्स धम्मस्स अवन्नं वयमाणे २, आयरियउवज्झायाणं अवन्नं वयमाणे ३, चाउवन्नस्स संघस्स अवन्नं वयमाणे ४, विवक्क-तव बंभचेराणं देवाणं अवन्नं वयमाणे ५। पंचहिं ठाणेहिं जीवा सुलभबोहियत्ताए कम्मं पगरेंति, तं जहा--अरहंताणं वन्नं वयमाणे जाव विवक्क तव बंभचेराणं देवाणं वन्नं वय-माणे ॥ सू० १६ ॥

छाया—पञ्चभिः स्थानैः जीवा दुर्लभबोधिकतया कर्म प्रकुर्वन्ति, तद्यथा—अर्हताम् अवर्णं वदन् १, अर्हत्प्रज्ञप्तस्य धर्मस्य अवर्णं वदन् २, आचार्योपाध्यायानाम् अवर्णं वदन् ३, चातुर्वर्णस्य संघस्य अवर्णं वदन् ४, विपक्वतपोब्रह्मचर्याणां देवानाम् अवर्णं वदन् ५। पञ्चभिः स्थानैः जीवाः सुलभबोधिकतया कर्म प्रकुर्वन्ति, तद्यथा—अर्हतां वर्णं वदन् यावत् विपक्वतपोब्रह्मचर्याणां देवानां वर्णं वदन्॥सू०१६॥

प्रकारकी होती है, जैसे-उद्गम विशोधि आदि उद्गमादि दोषोंके परि-हारसेही भक्तोंकी विशोधि होती है, ऐसा जानना चाहिये ॥ सू० १५॥

सूत्रार्थ—उपघात वृत्तिवाले जो जीव होतेहैं, वे अधार्मिक होनेसे बोधिके अप्राप्ति स्थानोंमें प्रवृत्ति करते हैं—और जो विशुद्ध वृत्तिवाले जीव होते हैं, वे धार्मिक होनेसे बोधिके प्राप्ति स्थानोंमें प्रवृत्ति करते हैं सो इसी

દોષોના પરિહારથી આહારાદિમાં વિશોધિ (વિશુદ્ધિ) જળવાય છે, એમ સમજવું ॥ સૂ. ૧૫ ॥

સૂત્રાર્થ–ઉપઘાત વૃત્તિવાળા જીવો અધાર્મિક હોવાને કારણે બોધિના અપ્રાપ્તિ સ્થાનોમાં પ્રવૃત્તિશીલ રહે છે, અને જેઓ વિશુદ્ધ વૃત્તિવાળા હોય છે તેઓ ધાર્મિક હોવાથી બોધિના પ્રાપ્તિ સ્થાનોમાં પ્રવૃત્તિવાળા હોય છે, એ જ વાત સૂત્રકાર આ સૂત્ર દ્વારા પ્રકટ કરે છે.

टीका--पंचहिं ठाणेहिं ' इत्यादि--

जीवाः=प्राणिनः पञ्चभिः स्थानैः=कारणैः दुर्लभबोधिकतया दुर्लभा बोधिर्यस्य स दुर्लभबोधिकः, तस्य भावस्तत्ता तया-दुष्प्राप्यजिनधर्मकत्वेन कर्म=मोहनीयादि प्रकुर्वन्ति=बध्नन्ति। तान्येव स्थानान्याह-तद्यथा-अर्हताम् अवर्णं=निन्दां वदन्=कुर्वन् जीवो दुर्लभबोधितासम्पादकं कर्म प्रकरोति। अर्हतामवर्णवादो यथा--

" नत्थी अरहंतत्ती, जाणं वा कीस भुंजए भोए ?।

पाहुडियं उवजीवइ एमाइ जिणाण उ अवण्णो ॥१॥"

छाया-नास्ति अर्हन्निति, जानानो वा कथं भुङ्क्ते भोगान्।

प्राभृतिकां तूपजीवति, एवमादिर्जिनानां तु अवर्णः ॥१॥ इति।

अयमर्थः-' अर्हन् ' इति नास्ति। अर्हन् यदि भवेत्, तर्हि जानानोऽपि=

बातको अब सूत्रकार प्रदर्शित करते हैं--

'पंचहिं ठाणेहिं जीवा दुल्लभबोहियत्ताए' इत्यादि सूत्र १६ ॥

टीकार्थ इन पांच स्थानोंसे जीवोंको बोधिकी जिनधर्मकी प्राप्ति दुर्लभ होतीहै, अतः वे मोहनीय आदि कर्मोंका बन्ध करतेहैं। वे स्थान इस प्रकारसेहैं-जो जीव अर्हन्त प्रभुका अवर्णवाद करता है, उसे बोधिकी प्राप्ति दुर्लभ होती है १। अवर्णवादका अर्थ निन्दा करना है। तात्पर्य इस कथनका ऐसा है, कि जो प्राणी अर्हन्त प्रभुकी निन्दा करता है, ऐसा वह प्राणी दुर्लभ बोधिताके उत्पादक कर्मका बन्ध करता है। अर्हन्त प्रभुका अवर्णवाद इस प्रकारसे होता है--

"नत्थी अरहंतत्ती" इत्यादि। इसका ऐसा अर्थहै-अर्हन्त नामका कोई व्यक्तिहै ही नहीं यदि वहहै तो केवलज्ञानसे वह समस्त पदार्थोंको जानता

" पंचहिं ठाणेहिं जीवा दुल्लभबोहियत्ताए " ઇત્યાદિ—

આ પાંચ સ્થાનો (કારણો) ને લીધે જીવોને માટે બોધિની પ્રાપ્તિ દુર્લભ બની જાય છે, તેથી તેઓ મોહનીય આદિ કર્મોનો બન્ધ કરે છે. તે પાંચ કારણો નીચે પ્રમાણે છે—(૧) જે જીવ અર્હંત પ્રભુનો અવર્ણવાદ કરે છે, તેને બોધિની પ્રાપ્તિ દુર્લભ બની જાય છે. અવર્ણવાદ એટલે નિન્દા. આ કથનનો ભાવાર્થ એ છે કે જે જીવ અર્હંત પ્રભુની નિન્દા કરે છે, તે જીવ દુર્લભ બોધિતાના ઉત્પાદક કર્મનો બન્ધ કરે છે. અર્હન્ત પ્રભુનો અવર્ણવાદ આ પ્રકારે થાય છે—" नत्थी अरहंतत्ति " ઇત્યાદિ—

" અર્હંતનું અસ્તિત્વ જ નથી. જો વિદ્યમાન કેવળજ્ઞાન વડે સમસ્ત

ज्ञानयुक्तः सन्नपि स कथं भोगान् भुङ्क्ते ? तु=पुनः स प्राभृतिकां=समवसरणादिरूपाम् ऋद्धिम् उपजीवति । यदि अर्हन् भवेत् न स एवं कुर्यात् । एवमादिरर्हतामवर्णवादो बोध्य इति । अत्रेदं बोध्यम् यदुच्यते अर्हन्तो नाभूवन्निति, तन्न, तत्प्रणीतवचनानामद्याप्युपलब्धेः । यत्ते भोगान् भुक्तवन्तोऽतस्तेषामज्ञत्वं यत् साध्यते, तदप्यकिंचित्करमेव, निश्चयज्ञानित्वेन सातकर्मणस्तीर्थकरनामादि-कर्मणश्चाऽवश्यवेद्यत्वेन तदुपादानात् । यत्तूच्यते, ते प्राभृतिकामुपजीवन्तीति तदपि न समीचिनम्, वीतरागत्वेन तेषां तदतिशयवशाज्जायमानासु प्राभृतिकादिषु प्रति-

---

हुआ भी भोगोंका भोक्ता कैसे हो सकता है ? और कैसे वह समवसरणादिरूप ऋद्धिका भोक्ता हो सकता है ? यदि वास्तवमें वह अर्हन् होता तो वह ऐसा नहीं कर सकताहै, इत्यादि रूपसे ऐसा कथन करना अर्हन्त प्रभुका अवर्णवाद है । यहां ऐसा समझना चाहिये-जो लोग ऐसा कहते हैं कि अर्हन्त हुएही नहीं है, सो उनका ऐसा कहना ठीक नहीं है-क्योंकि उनके प्रणीत वचनरूप आगम अभी तकभी उपलब्ध हो रहे हैं । जो उन्होंने भोगोंको भोगा है-सो इससे उनमें अज्ञता साध्यकी जाती है, वह भी अकिञ्चितकरही है, क्योंकि वे निश्चय ज्ञानी थे सातावेदनीय कर्म और तीर्थकर नाम आदि कर्म उनके द्वारा अवश्यवेद्य थे इसलिये उन्हें भोग भी भोगना पडे हैं । रही समवसरणादि रूप ऋद्धिकी वात सो यह भी उनमें दोषावह नहीं है, क्योंकि वे तो वीतरागी होते हैं, अतः उसमें उनका किसीभी प्रकारका प्रतिबन्ध नहीं होता है, वह तो केवल उनके अतिशयके वशसे उत्पन्न होती है, इस

પદાર્થોને જાણવા છતાં પણ તે ભોગોનો ભોક્તા કેવી રીતે હોઇ શકે છે, અને સમવસરણ આદિ રૂપ ઋદ્ધિનો ભોક્તા કેવી રીતે હોઇ શકે ? જો ખરેખર તેઓ અહંત હોત તો એવું કરત જ નહીં ” આ પ્રકારના કથન દ્વારા અહંત પ્રભુનો અવર્ણવાદ થાય છે. અહંત થયા જ નથી એવી માન્યતા સાચી નથી, કારણ કે તેમના પ્રણીત વચનરૂપ આગમો અત્યારે પણ મોજૂદ છે. તેમણે સમવસરણ આદિ રૂપ ઋદ્ધિ ભોગવી હોવાથી તેમનામાં અજ્ઞતા માન્ય કરવી એ વાત પણ માની શકાય તેમ નથી. કારણ કે તેઓ અવશ્ય જ્ઞાની જ હતા. સાતાવેદનીય કર્મ અને તીર્થંકર નામ આદિ કર્મ તેમના દ્વારા અવશ્ય વેદ્ય હતા તે કારણે તેમને ભોગો પણ ભોગવવા પડયા હતા. સમવસરણ આદિ ઋદ્ધિની જે વાત કરવામાં આવી છે, તે તો તેમના અતિશયને પ્રભાવે ઉત્પન્ન થઇ હતી, તેઓ તો વીતરાગ હોવાથી તેમાં તેમની કોઈ પણ પ્રકારની આસક્તિ

बन्धाभावादिति। इति प्रथमं स्थानम् १। तथा-अर्हत्प्रज्ञप्तस्य धर्मस्य=श्रुतचारित्रात्मकस्य अवर्णं="प्राकृतभाषानिबद्धेन श्रुतेन किम्? चारित्राद् दानमेव श्रेयः, किं चारित्राराधनेने" त्यादि रूपेण निन्दां वदन् जीवो दुर्लभबोधिता सम्पादकं कर्म प्रकरोतीति। तदाक्षेपनिरासस्तु एवं बोध्यः, तथाहि-श्रुतस्य प्राकृतभाषा निबद्धत्वं स्त्रीबालकादीनामपि सुखेनावबोधार्थम्। निर्वाणं प्रति चारित्रस्य साक्षादुपकारित्वं दानस्य तु परम्परया, इत्थं च दानात् चारित्रमेवश्रेय इति। इति द्वितीयं

प्रकारका यह प्रथम स्थान है १। दूसरा स्थान ऐसा है कि अर्हन्त प्रज्ञप्त श्रुत चारित्र रूप धर्मका अवर्णवाद करना इससे भी जीव दुर्लभ बोधिताके सम्पादक कर्मका बन्ध करता है, इस प्रकारका अवर्णवाद करनेवाला जीव ऐसा कहता है, कि श्रुत तो प्राकृत भाषामें निबद्ध है, उससे हमें क्या लाभ है? चारित्रकी अपेक्षा दान देनाही श्रेयस्कर है, चारित्राराधनसे क्या लाभ होता है, इस प्रकारसे केवलि प्रज्ञप्त श्रुत चारित्र रूप धर्मका अवर्णवाद करनेवाला जीव दर्शन मोहनीय कर्मका बन्ध करता है, यह दर्शनमोहनीय कर्मबोधिकी प्राप्तिको दुर्लभ बनाता है, इसके द्वारा कृत आक्षेपका निरास इस प्रकारसे समझना चाहिये-श्रुत जो प्राकृत भाषामें निबद्ध हुए हैं, सो उसका कारण ऐसा है, कि वे स्त्री और बालकों तकको भी अच्छी तरहसे समझमें आजावे इसलिये प्राकृत भाषामें निबद्ध किये गये हैं। निर्वाणके प्रति चारित्रमें साक्षात्

ન હતી. આ રીતે અર્હંત પ્રભુ થયા જ નથી એ માન્યતા ધરાવનાર તેમનો અવર્ણવાદ કરે છે.

બીજું કારણ--અર્હંત પ્રજ્ઞપ્ત શ્રુતચારિત્ર રૂપ ધર્મનો અવર્ણવાદ કરનાર જીવ પણ દુર્લભ બોધિતાના ઉત્પાદક કર્મનો બન્ધ કરે છે. આ પ્રકારનો અવર્ણવાદ કરનાર જીવ એવું કહે છે કે શ્રુત તો પ્રાકૃત ભાષામાં નિબદ્ધ છે. એવા શ્રુતથી શો લાભ થવાનો છે? ચારિત્ર કરતાં તો દાન દેવું જ વધારે શ્રેયસ્કર છે. ચારિત્રની આરાધનાથી શો લાભ થવાનો છે? આ પ્રકારે શ્રુત-ચારિત્ર રૂપ ધર્મનો અવર્ણવાદ કરનારો જીવ દર્શન મોહનીય કર્મનો બન્ધ કરે છે. તે દર્શન મોહનીય કર્મ બોધિની પ્રાપ્તિને દુર્લભ બનાવી નાખે છે. તેમની આ દલીલનું નિરાકરણ આ પ્રમાણે કરી શકાય છે.

શ્રુતને પ્રાકૃત ભાષામાં નિબદ્ધ કરવા પાછળનો આશય એ છે કે એમ કરવાથી સ્ત્રીઓ અને બાલકો પણ તેને સારી રીતે સમજી શકે છે. નિર્વાણની

स्थानम् २। तथा-आचार्योपाध्यायानाम् अवर्णम्=' बालोऽयमित्यादिनिन्दां वदन् जीवो दुर्लभबोधितासम्पादकं कर्म प्रकरोति, अतस्तेषां बालत्वादि निमित्तीकृत्य अवर्णवादो न कार्यः। न हि पलितशीर्षादिना वृद्धो, यस्तु बुद्धयादिना वृद्धः स एव यथार्थ वृद्धः।

" डहरा वि य जे सुयबुद्धोववेया "

छाया-दहरा अपि ये श्रुतबुद्धयुपपेताः" इति। इति डहरा=बालकाः तृतीयम् ३। चातुर्वर्णस्य चत्वारो वर्णाः=श्रमणाः श्रमण्यः श्रावकाः श्राविकाश्चेति भेदा यस्मिन् स चतुर्वर्णः, स एव चातुर्वर्णस्तस्य तथाभूतस्य संघस्य=समुदायस्य अवर्णम्=

उपकारिता आती है, दानमें नहीं उसमें तो परम्परारूपसेही उपकारिता आती है, इस दानकी अपेक्षा चारित्रमेंही प्रधानताहै। इस प्रकारसे यह द्वितीय स्थान है, तृतीय स्थान ऐसा है, आचार्य उपाध्यायोंका अवर्णवाद करना यह जीव बाल है, इत्यादि रूपसे निन्दा करनेवाला जीव दुर्लभबोधिताके सम्पादक कर्मका बन्ध करता है, अर्थात् पापका उपार्जन करता है। इसलिये उनमें बालत्वादिको निमित्त बनाकर उनका अवर्णवाद नहीं करना चाहिये। अर्थात् ये आचार्य बाल हैं क्या समझते हैं इत्यादि कथन न करना। बालोंके सफेद हो जानेसेही कोई वृद्ध नहीं माना जाता है-असलीमें वृद्ध तो वही है, जो बुद्धि आदि गुणोंसे वृद्धहै "डहरा वि य जे सुयबुद्धोववेया" इस प्रकारका यह तृतीय स्थान है, चतुर्थ स्थान इस प्रकारसे है-चार वर्णरूप-मुनि, आर्यिका, श्रावक और श्राविकारूप संघकी समुदायकी-निन्दा करना यह चातुर्वर्ण संघका अवर्णवाद है, जैसे-"यह संघ कैसा है, जो

પ્રાપ્તિ માટે ચારિત્ર જ સાક્ષાત્ ઉપકારી થઇ પડે છે-દાનમાં સાક્ષાત્ ઉપકારિતાનો સદ્ભાવ નથી. તેમાં તો પરમ્પરા રૂપે જ ઉપકારિતા આવે છે. તેથી દાન કરતાં ચારિત્ર જ શ્રેયસ્કર છે.

ત્રીજું કારણ--આચાર્ય અથવા ઉપાધ્યાયનો અવર્ણવાદ કરનાર જીવ પણ દુર્લભ બોધિના ઉત્પાદક કર્મનો બન્ધ કરે છે. આચાર્યને બાલ કહીને તેમનો અવર્ણવાદ કરવો જોઇએ નહીં. વાળ સફેદ થઇ જવાથી જ માણસ વૃદ્ધ થતો નથી. ખરી રીતે તો જે જ્ઞાન આદિમાં વૃદ્ધિ પામ્યો હોય છે, એ જ વૃદ્ધ છે કહ્યું પણ છે કે-" ડહરા વિ ય જે સુયબુદ્ધોવવેયા "

ચોથું કારણ—સાધુ, સાધ્વી, શ્રાવક અને શ્રાવિકા રૂપ ચતુર્વિધ સંઘની નિન્દા કરવી તે ચાતુર્વણ્ (ચતુર્વિધ) સંઘનો અવર્ણવાદ છે. " આ સંઘ

"कीदृशोऽयं संघो, योऽमार्गमपि मार्गी करोति" इत्येवं निन्दां वदन् दुर्लभबोधितासम्पादकं कर्म प्रकरोति जीवः। वस्तुतस्तु चातुर्वर्णः सङ्घो ज्ञानादिगुणसमुदायात्मकत्वान्न कदाचिदपि अमार्गं मार्गी करोति, अपि तु स तीर्थंकरादि प्रवर्तितं मार्गत्वेनाश्रयतीति निन्दकाक्षेपो मृषैवेति चतुर्थम् ४। तथा-विपक्वतपो ब्रह्मचर्याणां-विपक्वं=परिपाकावस्थामुपगतं-प्रकृष्टतां प्राप्तं तपो ब्रह्मचर्यं भवान्तरे येषां तेषाम्, यद्वा-विपक्वम्=उदयावस्थायामागतं तपो ब्रह्मचर्यं तद्धेतुकं देवायुष्कादि कर्म-येषां तेषां देवानाम् अवर्णम्=" न सन्ति देवाः। यदि ते भवेयुस्तर्हि ते कदाचिदप्युपलभ्येरन्नपि। न च तेषां कदाचिदप्युपलब्धिर्भवति। सन्तु वा

अमार्गको भी मार्ग करता है, इस प्रकार से संघकी निन्दा करनेवाला व्यक्ति दुर्लभ बोधिताके सम्पादक कर्मका बन्ध करता है, वास्तवमें देखा जाय तो चातुर्वर्ण सङ्घ ज्ञानादि गुणोंका समुदायरूपही होता है, अतः वह कभी भी अमार्गको मार्गरूप नहीं करता है, किन्तु तीर्थंकर आदि द्वारा प्रवर्तित मार्गकोही वह मार्ग रूपसे आश्रित करताहै, अतः इस तरहसे निन्दकका आक्षेप झूठाही है ४। पांचवां कारण ऐसा है, जो व्यक्ति विपक्वतपो ब्रह्मचर्यवाले देवोंकी निन्दा करता है, वह दुर्लभबोधिता सम्पादक कर्मका बन्ध करता है-भवान्तरमें जिनका तप और ब्रह्मचर्य विपक्व विशेषरूपसे परिपाकको प्राप्त हुआ है, सर्वोत्कृष्ट हुआ है, यद्वा-परिपक्व उदय अवस्थामें आया है, तप एवं ब्रह्मचर्य हेतुक देवायुष्कादि कर्म जिन्होंके ऐसे देवोंका अवर्णवाद करना " अर्थात् देव नहीं हैं यदि वे होते तो कभी तो दिखाई देते, अतः कैसे

કેવો છે કે જે અમાર્ગને પણ માર્ગ ગણે છે!" આ પ્રકારના વચનો દ્વારા સંઘની નિન્દા કરનાર દુર્લભબોધિતાના ઉત્પાદક કર્મનો બન્ધ કરે છે ખરી રીતે તો ચતુર્વિધ સંઘ જ્ઞાનાદિ ગુણોના સમુદાય રૂપ જ હોય છે, તેથી તે કદી પણ અમાર્ગને માર્ગ રૂપે માનતો નથી. તે તો તીર્થંકર આદિ દ્વારા પ્રવર્તિત માર્ગે જ ચાલતો હોય છે. તેથી તેને અમાર્ગ ગણવો તે તેનો અવર્ણવાદ જ કરવા બરાબર છે.

પાંચમું કારણ—જે માણસ વિપકવ તપો બ્રહ્મચર્યવાળા દેવોની નિન્દા કરે છે, તે પણ દુર્લભ બોધિતાના ઉત્પાદક કર્મનો બન્ધ કરે છે ભવાન્તરમાં જેમનું તપ અને બ્રહ્મચર્ય વિપકવ થયેલું છે. વિશેષ રૂપે પરિપકવ થયેલું છે સર્વોત્કૃષ્ટ રહેલું છે અથવા જે તપ અને બ્રહ્મચર્ય હેતુક દેવાયુષ્કાદિ કર્મનો જેમને ઉદય થયો છે એવા દેવોનો

ते, तथाऽपि कामासक्तमानसैर्विरतिवर्जितैः, निर्निमेषैश्चेष्टावर्जितै म्रियमाणैरिव प्र वचनकार्यानुपयोगिभिश्च तै र्न किंचित् प्रयोजनम्" इत्येवं निन्दां वदन् जीवो दुर्लभबोधितासम्पादकं कर्म करोति। देवविषयकाक्षेपनिरासस्त्वेवम्-विद्यमान स्त्वका देवाः, तत्कृतनिग्रहानुग्रहयोः साक्षादुपलम्भात्, कामासक्तिस्तु तेषां मोहसातकर्मोदयात्।

तदुक्तम्-" एत्थ पसिद्धी मोहणीयसायवेयणीयकम्मउदयाओ।
कामपसत्ता विरई कम्मोदयओ चिय न तेसिं ॥१॥

माना जावे कि देव हैं, अथवा मान भी लिया जावे कि वे हैं-तो भी उनसे लाभही क्या है, क्योंकि रातदिन वे कामसेवनमें आसक्त रहते हैं, विरतिका वे पालन नहीं करते हैं पलकें उनकी झपकनी नहीं हैं, चेष्टावर्जित वे होते हैं, प्रवचनके किसी कार्यमें वे आते नहीं हैं, अतः मरे हुओंकी तरह उनसे कुछ भी प्रयोजन नहीं है" इस प्रकारका अवर्णवाद करनेवाला जीव दुर्लभबोधिताका उपार्जन कर्मका बन्ध करता है, देवविषयक आक्षेपका निराकरण इस प्रकारसे है, देवोंकी सत्ता विद्यमान है, क्योंकि उनके द्वारा निग्रह और अनुग्रह हुआ साक्षात् देखा जाता है, काममें आसक्ति तो उनमें मोह एवं सात कर्मके उदयसे देखी जाती है, तदुक्तम्—

" एत्थ पसिद्धी मोहणीय " इत्यादि। देवोंको चारित्र मोहनीय

અવર્ણવાદ કરનાર દુર્લભ બોધિના ઉત્પાદક કર્મનો બન્ધ કરે છે. તેમનો અવર્ણવાદ કરનાર આ પ્રમાણે કહે છે-" દેવોનું અસ્તિત્વ જ નથી. જો દેવો હોય તો કોઇ વાર પણ આપણી નજરે કેમ પડતાં નથી? કદાચ તેઓનું અસ્તિત્વ માની લેવામાં આવે, તો તેમના દ્વારા આપણને શા લાભની પ્રાપ્તિ થવાની છે? તેઓ રાતદિન કામભોગોનું સેવન કર્યા કરે છે, વિરતિનું પાલન તો કરતાં જ નથી, તેમની આંખોની પાંપણો તો અનિમિષ હોય છે (પલકારા રહિત હોય છે), તેઓ ચેષ્ટાઓથી રહિત હોય છે, પ્રવચનના કોઇ પણ કાર્યમાં તેઓ આવતા નથી, તેથી મૃત આદમીની જેમ કોઈ પણ કામના નથી." દેવવિષયક આ આક્ષેપનું હવે નિરાકરણ કરવામાં આવે છે—

દેવોની સત્તા (પ્રભાવ) વિદ્યમાન છે, કારણ કે તેમના દ્વારા નિગ્રહ અને અનુગ્રહ થતો સાક્ષાત્ જોવામાં આવે છે. તેઓ કામભોગોમાં જે આસક્તિ ધરાવે છે, તે તો મોહનીય અને સાતાવેદનીય કર્મના ઉદયથી જોવામાં આવે છે. કહ્યુ પણ છે કે: " एत्थपसिद्धि मोहणीय " ઈત્યાદિ—

अणिमिस देवसहावा, निच्चेट्ठाऽणुत्तरा उ कयकिच्चा ।
कालणुभावा तित्थुन्नइं पि अन्नत्थ कुव्वंति ॥२॥ "

छाया—अत्र प्रसिद्धि मोहनीय सातवेदनीय कर्मोदयात् ।
कामप्रसक्तिः, विरतिः कर्मोदयत एव न तेषाम् ॥१॥
अनिमेषा देवस्वभावाः निश्चेष्टा अनुत्तरास्तु कृतकृत्याः ।
कालानुभावात् तीर्थोन्नति मपि अन्यत्र कुर्वन्ति ॥२॥ इति ।

इति पञ्चमं स्थानम् ५। एभिः पञ्चभिः स्थानैर्जीवा दुर्लभबोधिका भवन्तीति बोध्यम् । अथ सुलभबोधितामाह–' पंचहिं ठाणेहिं ' इत्यादि । पञ्चभिः स्थानैः जीवाः सुलभबोधिकतासम्पादकं कर्म प्रकुर्वन्ति। कानि तानि स्थानानि? इत्याह–तद्यथा–अर्हतां वर्णम्=स्तुतिं वदन्–कुर्वन् जीवः सुलभबोधिकता सम्पादकं कर्म प्रकरोति । अर्हतां वर्णवादो यथा—

कर्मका उदय रहता है, अतः उनमें विरति नहीं होती है, देव स्वभावतः अनिमिष होते हैं, तथा अनुत्तरवासी जो देव हैं वे कृतकृत्य होनेसे निश्चेष्ट होते हैं। देव कालके प्रभावसे अन्यत्र तीर्थको उन्नत भी करते हैं, इस प्रकारका यह पांचवां कारण है, इन पूर्वोक्त पांच कारणोंसे जीव दुर्लभ बोधिवाले होते हैं। अब सुलभ बोधिवाले जीव कैसे होते हैं–इस बातको सूत्रकार प्रकट करते हैं–

' पंचहिं ठाणेहिं " इत्यादि । जीव पांच कारणोंसे सुलभ बोधिताके सम्पादक कर्मका बन्ध करते हैं वे पांच कारण इस प्रकारसे हैं– अर्हन्तोंकी स्तुति करना १ क्योंकि अर्हन्तोंकी स्तुति करनेवाला जीव

દેવોને ચારિત્ર મોહનીય કર્મનો ઉદય રહે છે, તેથી તેમનામાં વિરતિનો અભાવ રહે છે, દેવો સ્વાભાવિક રીતે જ અનિમિષ હોય છે, તથા અનુત્તર વિમાનનિવાસી જે દેવો છે, તેઓ કૃતકૃત્ય હોવાથી નિશ્ચેષ્ટ (ચેષ્ટા રહિત) હોય છે. દેવ કાલના પ્રભાવથી અન્યત્ર તીર્થની ઉન્નતિ પણ કરે છે. આ પ્રકારનું આ પાંચમું કારણ છે આ પાંચ કારણોથી જીવ દુર્લભ બોધિવાળો બને છે.

હવે સૂત્રકાર એ વાત પ્રકટ કરે છે કે જીવ સુલભ બોધિવાળો કેવી રીતે બને છે. " પંચહિં ઠાણેહિં " ઇત્યાદિ—

જીવ નીચેના પાંચ કારણોને લીધે સુલભ બોધિતાના ઉત્પાદક કર્મનો બન્ધ કરે છે—(૧) અર્હંતોનો વર્ણવાદ કરવાથી એટલે કે તેમની સ્તુતિ

"जियरागदोसमोहा, सव्वन्नू तिदसनाहकयमहिमा।
अच्चंतसच्चवयणा, सिवगइगमणा जयंति जिणा" ॥१॥

छाया—जितरागद्वेषमोहाः, सर्वज्ञाः त्रिदशनाथकृतमहिमानः।
अत्यन्तसत्यवचनाः, शिवगतिगमना जयन्ति जिना। ॥१॥ इति।

इति प्रथमं स्थानम् १। एवमेव अर्हत् प्ररूपितधर्मादि विपक्वतपो ब्रह्मचर्य-देवान्तानां चतुर्णां वर्णं वदन् जीवः सुलभबोधिकतासम्पादकं कर्म प्रकरोति। तत्र-अर्हत्प्ररूपितधर्मस्य वर्णवादो यथा—

"वत्थुपयासणसूरो, अइसयरयणाण सायरो जयइ।
सव्वजगजीव बंधुरबंधू दुविहो वि जिणधम्मो ॥१॥"

छाया—वस्तुप्रकाशनसूर्यः, अतिशयरत्नानां सागरो जयति।
सर्व जगज्जीव बन्धुरबन्धु द्विविधोऽपि जिनधर्मः ॥१॥ इति।

इति द्वितीयं स्थानम् २। आचार्योपाध्यायवर्णवादो यथा—

सुलभबोधिताके सम्पादक कर्मका बन्ध करता है, अर्हन्तोंका वर्णवाद स्तुतिपाठ इस प्रकारसे कहा गया है, "जियरागदोसमोहा" इत्यादि।

अर्हन्त प्रभु रागद्वेषको जीतनेवाले होते हैं, वे सर्वज्ञ होते हैं, उनकी महिमा इन्द्र करते हैं। उनके वचन अत्यन्त सत्य होते हैं, और नियमतः वे उसी भवसे मोक्षमें जाते हैं ऐसा यह प्रथम स्थान है, इसी तरहसे अर्हत् प्ररूपित धर्मका जो वर्णवाद करते हैं, यावत् परिपक्वतप और ब्रह्मचर्यवाले देवोंका जो वर्णवाद करते हैं, ऐसे जीव सुलभबोधिताके सम्पादक कर्मका बन्ध करते हैं, अर्हत्प्ररूपित धर्मका वर्णवाद इस प्रकारसे है–"वत्थुपसायण सूरो" इत्यादि।

अर्हत्प्ररूपित धर्म वस्तुओंको प्रकाशित करनेके लिये सूर्यके जैसा

કરવાથી જીવ સુલભ બોધિતાના સંપાદક કર્મનો બન્ધ કરે છે અર્હંતોની સ્તુતિ જીવ આ પ્રમાણે કરે છે–' जियरागदोसमोहा " ઈત્યાદિ--
અર્હંત પ્રભુ રાગદ્વેષને જીતનારા હોય છે, તેઓ સર્વજ્ઞ હોય છે, ઇન્દ્રો પણ તેમનો મહિમા ગાય છે. તેમનાં વચન સર્વથા સત્ય જ હોય છે, તેઓ એ જ ભવમાં અવશ્ય મોક્ષ પ્રાપ્ત કરે છે."

બીજું સ્થાન--અર્હંત પ્રરૂપિત ધર્મનો વર્ણવાદ કરનાર જીવ પણ સુલભ બોધિતાના સંપાદક કર્મનો બન્ધ કરે છે. અર્હંત પ્રરૂપિત ધર્મનો વર્ણવાદ આ પ્રમાણે થાય છે. " वत्थुपसायणसूरो " ઈત્યાદિ–અર્હંત પ્રરૂપિત ધર્મ વસ્તુઓનો પ્રકાશિત કરવામાં સૂર્યના સમાન છે, તે અતિશય રૂપ રત્નોનો

" तेसिं नमो तेसिं नमो, भावेण पुणो तेसिं चेव णमो।
अणुवकयपरहियरया, जे नाणं देंति भव्वाणं " ॥१॥

छाया—तेभ्यो नमः, तेभ्यो नमः, भावेन पुनस्तेभ्य एव नमः।
अनुपकृतपरहितरता ये ज्ञानं ददति भव्येभ्यः ॥१॥ इति।

इति तृतीय स्थानम् ३। चातुर्वर्णसङ्घस्य वर्णवादो यथा—

" तवनियमसच्चसंजमः विणयज्जवखंतिमुत्तिगुणजुत्तो।
सीलवसीकयलोओ, स जयइ संघो चाउव्वण्णो ॥ १ ॥

छाया—तपो नियमसत्यसंयम विनयार्जवक्षान्तिमुक्तिगुणयुक्तः।
शीलवशीकृतलोकः स जयति सङ्घश्चतुर्वर्णः ॥१॥ इति।

इति चतुर्थं स्थानम् ४। देववर्णवादो यथा—

है, अतिशय रूप रत्नोंका समुद्र है, समस्त जगजीवोंका अनोखा बन्धु है, यह गृहस्थ धर्म और मुनिधर्मके भेदसे दो प्रकारका है, इस प्रकारका यह द्वितीय स्थान है, आचार्य उपाध्यायका वर्णवाद इस प्रकारसे है-" तेसिं नमो तेसिं नमो " इत्यादि।

इन आचार्य उपाध्यायोंको मेरा मन वचन कायरूप भावसे बारबार नमस्कार हो जो विना किसी चाहनाके परका हित करनेमें लगे रहते हैं, और निर्मल ज्ञानका दान देते हैं, ऐसा यह तृतीय स्थान है, चतुर्वर्ण संघका वर्णवाद इस प्रकारसे है—

" तव नियम सच्च संयम " इत्यादि।

जो चतुर्विध संघ तप, नियम, सत्य, संयम, विनय, आर्जव, क्षान्ति, मुक्ति आदि गुणोंसे युक्तहै, और जिसने शीलसे लोकको वशमें कियाहै, ऐसा यह चतुर्विध श्रीसंघ सदा जयशील रहो इस प्रकारका यह चतुर्थ स्थान है,

---

સાગર છે તે સમસ્ત સંસારી જીવોનો અનોખો બન્ધુ છે, તે ગૃહસ્થ ધર્મ અને મુનિધર્મના ભેદથી બે પ્રકારનો છે

ત્રીજું સ્થાન--આચાર્ય અને ઉપાધ્યાયનો વર્ણવાદ કરવાથી જીવ સુલભ બોધિ [illegible] અને છે તેમની સ્તુતિ આ પ્રમાણે કરી શકાય " તેસિં નમો તેસિં નમો " ઇત્યાદિ. " જેઓ નિષ્કામ ભાવે પરહિતના કાર્યમાં પ્રવૃત્ત રહે છે અને નિર્મળ જ્ઞાનના દાતા છે, એવા આચાર્યો અને ઉપાધ્યાયોને મન [illegible] અને કાયાથી વારંવાર નમસ્કાર હો "

ચોથું સ્થાન - ચતુર્વર્ણ સંઘના વર્ણવાદ કરવાથી પણ જીવ સુલભ [illegible] કર્મનો બન્ધ કરે છે. ચતુર્વિધ સંઘની આ પ્રમાણે સ્તુતિ [illegible] ચતુર્વિધ સંઘ તપ, નિયમ, સત્ય, સંયમ, વિનય, આર્જવ, [illegible] ગુણોથી યુક્ત છે, અને જેણે શીલથી લોકને વશ [illegible] ચતુર્વિધ શ્રીસંઘનો સદા જય હો. "

" धण्णा खलु ते देवा, विसयविमोहावि हत जिणसविहे ।
धम्मं सुणंति सम्मं, तित्थपभावं च कुव्वंति " ॥१॥
छाया—धन्याः खलु ते देवाः विषयविमोहा अपि हन्त ! जिनसविधे ।
धर्मं शृण्वन्ति सम्यक्, तीर्थ प्रभावं च कुर्वन्ति ॥ इति ॥

इति पञ्चमं स्थानम् ५। एभिः पञ्चभिः स्थानैः जीवाः सुलभबोधिका भवन्तीति बोध्यम् । स्थानस्थानिनोरभेदोपचारात् स्थानी एव स्थानत्वेन निर्दिष्ट इति ॥ सू० १६ ॥

संयतासंयतसंबद्धमेव ' पंच पडिसंलीण इत्याद्यारभ्य आरोपणा पर्यन्तेन सूत्रसप्तकेन प्राह—

मूलम्—पंच पडिसंलीणा पण्णत्ता, तं जहा-सोइंदियपडिसंलीणे जाव फासिंदियपडिसंलीणे । पंच अप्पाडिसंलीणा, पण्णत्ता, तं जहा-सोइंदिय अप्पाडिसंलीणे जाव फासिंदिये अप्पाडिसंलीणे । पंचविहे संवरे पण्णत्ते, तं जहा-सोइंदियसंवरे जाव फासिंदियसंवरे । पंचविहे असंवरे पण्णत्ते, तं जहा-सोइंदियअसंवरे जाव फासिंदिय असंवरे ॥ सू० १७ ॥

देववर्णवाद इस प्रकारसे है -" धण्णा खलु ते देवा " इत्यादि
वे देव धन्य हैं, जो विषयोंसे विमुख रहते हैं और जिनेन्द्र भगवन्तके निकट श्रुतचारित्ररूप धर्मका श्रवण करते हैं, और तीर्थकी प्रभावना करते हैं । इस प्रकारका यह पांचवां स्थान हैं-इस प्रकारके इन पांच कारणोंसे जीव सुलभ बोधिवाले होते हैं-यहां स्थान और स्थानीमें अभेदके उपचारसे स्थानीही स्थान रूपसे निर्दिष्ट हुआ है ॥सू० १६॥

પાંચમુ સ્થાન—દેવોના વર્ણવાદ કરવાથી પણ જીવ સુલભ બોધિની પ્રાપ્તિ કરે છે. દેવોના વર્ણવાદ આ પ્રમાણે કરવો જોઇએ, " धण्णा खलु ते देवा " ઇત્યાદિ. " ધન્ય છે તે દેવોને કે-જેઓ વિષયોથી સદા વિમુખ રહે છે અને જિનેન્દ્ર ભગવાનની સમીપે શ્રુતચારિત્ર રૂપ ધર્મનું શ્રવણ કરે છે, અને તીર્થની પ્રભાવના કરે છે " આ પ્રકારનું પાચમું સ્થાન છે. આ પ્રકારના આ પૂર્વોક્ત પાંચ કારણોથી જીવ સુલભ બોધિવાળો થાય છે. અહીં સ્થાન અને સ્થાનીમાં અભેદ ગણીને સ્થાનીનો જ સ્થાન રૂપે નિર્દેશ કરવામાં આવ્યો છે. ॥ સૂ. ૧૬ ॥

छाया—पञ्च प्रतिसंलीनाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-श्रोत्रेन्द्रियप्रतिसंलीनो यावत् स्पर्शेन्द्रियप्रतिसंलीनः । पञ्च अप्रतिसंलीनाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-श्रोत्रेन्द्रियाप्रति संलीनो यावत् स्पर्शेन्द्रियाप्रतिसंलीनाः । पञ्चविधः संवरः, प्रज्ञप्तः, तद्यथा-श्रोत्रेन्द्रिय संवरो यावत् स्पर्शेन्द्रियसंवरः । पञ्चविधोऽसंवरः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-श्रोत्रेन्द्रिया संवरो यावत् स्पर्शेन्द्रियासंवरः ॥सू० १७ ॥

टीका—' पंच पडिसंलीणा ' इत्यादि—

प्रतिसंलीनाः=कूर्मवदिन्द्रियगोपना श्रोत्रेन्द्रियप्रतिसंलीनादिभेदैः पञ्च संख्यकाः । अप्रतिसंलीना अपि श्रोत्रेन्द्रियाप्रतिसंलीनादिभेदैः पञ्च संख्यका बोध्याः । संवरस्तु श्रोत्रेन्द्रियसंवरादिभेदैः पञ्चविधः । असंवरोऽपि श्रोत्रेन्द्रिया संवरादिभेदैः पञ्चविधो बोध्यः । अत्र श्रोत्रेन्द्रियादिरूपेण यः क्रमो निर्दिष्टः स तत्तदिन्द्रियस्य क्षयोपशमबाहुल्यकृतो बोध्यः । प्रतिसंलीनाप्रतिसंलीनत्वेन च धर्मी पुरुष उक्तः । संवरासंवरत्वेन तु धर्म एवेति ॥ सू० १७ ॥

अब सूत्रकार संयतासंयत संबद्ध ही " पंच पडिसंलीणा " यहांसे लेकर आरोपणा पर्यन्तके सात सूत्रों द्वारा कथन करते हैं—

पंच पडिसंलीणा पण्णत्ता इत्यादि सूत्र १७ ॥

टीकार्थ-कूर्मकी तरह इन्द्रियोंका गोपन करनेवाले श्रोत्रेन्द्रिय प्रति संलीनादिके भेदसे पांच कहे गये हैं, तथा अप्रतिसंलीन भी श्रोत्रेन्द्रिय अप्रतिसंलीन आदिके भेदसे पांच कहे गये हैं संवर भी श्रोत्रेन्द्रिय संवर आदिके भेदसे पांच प्रकारका कहा गया है, तथा असंवर भी श्रोत्रेन्द्रिय असंवर आदिके भेदसे पांच प्रकारका कहा गया है, यहां जो श्रोत्रेन्द्रियादि रूपसे क्रम कहा गया है, वह उन २ इन्द्रियोंके क्षयोपशमकी

હવે સૂત્રકાર સંયતાસંયત વિષયક " પંચ પડિસંલીણા " થી લઈને ' આરોપણા ' પર્યન્તના સાત સૂત્રોનું કથન કરે છે.

" પંચ પડિસંલીણા પણ્ણત્તા " ઈત્યાદિ—

ટીકાર્થ-કાચબાની જેમ ઇન્દ્રિયોનું ગોપન કરનારા શ્રોત્રેન્દ્રિય પ્રતિસંલીન આદિના ભેદથી પાંચ પ્રકારના કહ્યા છે. અપ્રતિ સંલીનના પણ શ્રોત્રેન્દ્રિય અપ્રતિસંલીન આદિ પાંચ ભેદ કહ્યા છે. સંવરના પણ શ્રોત્રેન્દ્રિય સંવર આદિ પાંચ ભેદ કહ્યા છે. અસંવર પણ શ્રોત્રેન્દ્રિય અસંવર આદિના ભેદથી પાંચ પ્રકારનો કહ્યો છે. અહીં જે શ્રોત્રેન્દ્રિય આદિ રૂપે ક્રમ કહેવામાં આવ્યો છે તે ક્રમ તે તે ઇન્દ્રિયોના ક્ષયોપશમની બહુલતાને અનુલક્ષીને કહ્યો છે.

मूलम्—पंचविहे संजमे पण्णत्ते, तं जहा-सामाइयसंजमे १ छेदोवट्ठावणियसंजमे, २ परिहारविसुद्धियसंजमे, ३ सुहुमसंपरायसंजमे, ४ अहाक्खाय संजमे ५ ॥ सू० १८ ॥

छाया—पञ्चविधः संयमः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-सामायिकसंयमः १, छेदोपस्थापनीयसंयमः २, परिहारविशुद्धिकसंयमः ३ सूक्ष्मसंपरायसंयमः ४ यथाख्यातसंयमः ५। ॥सू० १८॥

टीका—'पंचविहे' इत्यादि—

संयमः-संयमनं संयमः-सावद्यव्यापारविनिवृत्तिः। सच सामायिकसंयमादिभेदेन पञ्चविधः तत्र सामायिकसंयमः-समानां=सम्यग्ज्ञानदर्शनचारित्रतपोरूपाणां रत्नानाम् आयो=लाभः। यद्वा=समानि=ज्ञानादीनि तेषु तैर्वा

बहुलताको लेकर कहा गया है, प्रतिसंलीन रूपसे और अप्रतिसंलीन रूपसे धर्मी पुरुष कहा गयाहै, और संवर रूपसे धर्म कहा गयाहै सू० १७॥

'पंचविहे संजमे पण्णत्ते' इत्यादि सूत्र १८॥

संयम पांच प्रकारका कहा गया है, जैसे सामायिक संयम १ छेदोपस्थापनीय संयम २ परिहारविशुद्धिकसंयम ३ सूक्ष्म संपराय संयम ४ और यथाख्यातसंयम ५

सावद्य व्यापारसे निवृत्ति होना इसका नाम संयम है, यह संयम पूर्वोक्त रूपसे सामायिक आदिके भेदसे पांच प्रकार है, जिस संयममें सम्यग्दर्शन,सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र सम्यक्तप रूप रत्नोंका लाभ होता है, वह अथवा समरूप ज्ञानादिकोंमें अथवा समरूप ज्ञाना-

---

प्रतिसंलीन रूपे अने अप्रतिसंलीन रूपे धर्मीपुरुष कह्यो छे अने संवर रूपे अने असंवर रूपे धर्म कह्यो छे. ॥ सू. १७ ॥

"पंचविहे संजमे पण्णत्ते" ईत्यादि—

संयमना नीचे प्रमाणे पांच प्रकार कह्या छे—(१) सामायिक संयम, (२) छेदोपस्थापनीय संयम, (३) परिहार विशुद्धिक संयम, (४) सूक्ष्म संपराय संयम अने (५) यथाख्यात संयम.

सावद्य व्यापारोथी निवृत्त थवुं तेनुं नाम संयम छे. ते संयमना सामायिक आदि पूर्वोक्त पांच भेद छे. जे संयममां सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र अने सम्यक् तप रूप रत्नोनो लाभ थाय छे, ते संयमनुं नाम

आयो गमनम् । अपि वा समो=रागद्वेषाद्यस्पृष्टान्तःकरणः=स्ववन्निखिल-भूतदर्शी विशुद्ध आत्मा तुच्छितानल्पचिन्तामणिकल्पतरुकामधेनुभिर्गहनभव-गहनपरिभ्रमणजन्यक्लेशनाशकैरपूर्वैर्ज्ञानदर्शनादिभिः संवृतत्वात्, तस्य आयः=प्राप्तिः स्वात्मविशुद्धीकरणमिति यावत्, समायः, स एव सामायिकम् । सावद्ययोगविरमणात्मकशेषमपि चारित्रं सामान्यतः सामायिकमेवोच्यते । तदेव छेदादिविशेषणैर्विशिष्टं सत् शब्दार्थाभ्यामनेकविधत्वं लभते । तच्च तत्र प्रथमो भेदो निर्विशेषणं सामायिकमेव इत्वरकालिकयावज्जीवेतिभेदेन

दिकों द्वारा जो गमन है, वह अथवा-रागद्वेष आदिसे अस्पृष्ट अन्तः-करणका जो लाभ है, वह समाय है, अर्थात्-जो कामधेनु, कल्पवृक्ष और चिन्तामणि इनको भी तुच्छ फीका कर देते हैं, एवं गहनकान्तारके जैसे इस भवके भ्रमणसे जन्य क्लेशोंका जो सर्वथा विनाश कर देते हैं, ऐसे अपूर्व ज्ञान दर्शनादिकोंसे संवृत्त होनेके कारण विशुद्ध बना हुआ जो आत्मा है, कि जो समस्त प्राणियोंको अपने समान देखता है, वह सम है, इस समका जो आय प्रासि है, वह समाय है, यह समाय आत्माकी विशुद्धि करने रूप होता है । ऐसा समायही सामायिक है । यह सामायिक जितना भी सावद्ययोग विरमणरूप चारित्र है, सामा न्यतः तद्रूपही कहा जाता है, यह सामायिक चारित्रही छेदादिक विशे-षणोंसे विशिष्ट हुआ शब्द और अर्थकी अपेक्षा अनेक प्रकारताको प्राप्त करता है । इनमें जो प्रथम भेद है, वह तो विना किसी विशेषणका है,

'સમાય' છે. અથવા સમરૂપ જ્ઞાનાદિકોમાં અથવા સમરૂપ જ્ઞાનાદિકો દ્વારા જે ગમન છે તેનું નામ 'સમાય' છે.

અથવા--રાગદ્વેષ આદિ વડે અસ્પૃષ્ટ અંતઃકરણનો જે લાભ છે તેનું નામ 'સમાય' છે. એટલે કે જે કામધેનું, કલ્પવૃક્ષ અને ચિન્તમણિને પણ ફીકાં પાડી દે છે, જે ગહન અટવીના સમાન આ સંસારના ભ્રમણથી જનિત કલેશોનો સર્વથા વિનાશ કરી નાખે છે, એવો સંસારના સમસ્ત જીવો તરફ સમભાવ રાખનારો જે આત્મા છે, અને જે જ્ઞાન દર્શનાદિ વડે સંવૃત હોવાને લીધે વિશુદ્ધ બનેલો છે, તેને 'સમ' કહે છે. તે સમની જે આય (પ્રાપ્તિ) થવી તેનું નામ 'સમાય' છે તે સમાય આત્માની વિશુદ્ધિ કરવા રૂપ હોય છે એવા સમાયને જ સામાયિક કહે છે. તેને સાવદ્યયોગ વિરમણરૂપ જે ચારિત્ર છે, તે ચારિત્રરૂપ સામાન્યતઃ ગણવામાં આવે છે તે સામાયિક રૂપ ચારિત્ર જ છેદાદિક વિશેષણોથી યુક્ત થયેલા શબ્દ અને અર્થની અપેક્ષાએ અનેક પ્રકારતાને પ્રાપ્ત કરે છે. તેમાંથી જે પહેલો ભેદ છે તે કોઈ પણ

द्विविधम् । तत्र-इत्वरकालिकं सामायिकं प्रथमान्तिमतीर्थकृतोस्तीर्थयोरनारोपितव्रतस्य भवति । यावज्जीवं तु मध्यमतीर्थकृतां महाविदेहवर्त्तितीर्थकृतां च तीर्थेषु उपस्थापनाभावाद् अनारोपितव्रतस्य भवतीति बोध्यम् । तदुक्तम्—

" सव्वमिणं सामाइयं, छेदादिविसेसओ पुण विभिन्नं ।
अविसेसियमादिमयं, ठियमिह सामन्नसन्नाए ॥१॥
सावज्जजोगविरइत्ति तत्थ सामाइयं दुहा तं च ।
इत्तरमावकहंति य, पढमं पढमंतिमजिणाणं ॥२॥
तित्थेसु अणारोवियवयस्स सेहस्स थोवकालीयं ।
सेसाणमावकहियं, तित्थेसु विदेहयाणं च ॥ ३ ॥

छाया—सर्वमिदं सामायिकं छेदादिविशेषतः पुनर्विभिन्नं ।
अविशेषितमादिमकं स्थितमिह सामान्यसंज्ञया ॥१॥

इसमें किसी भी प्रकारका विशेषण नहीं है, इस प्रकार निर्विशेषणरूप यह सामायिक इत्वर कालिक और यावज्जीव इस प्रकारसे दो प्रकारका कहा गया है, इनमें इत्वरकालिक जो सामायिक है, वह प्रथम और अन्तिम तीर्थंकरके तीर्थके अनारोपित व्रतवाले प्राणीको होना है, तथा यावज्जीव जो सामायिक है, वह मध्यके शेष २२ तीर्थंकरोंके एवं महा विदेहवर्ती तीर्थकरोंके तीर्थमें उपस्थानके अभावसे अनारोपित व्रतवाले प्राणीको होनाहै, कहा भी है-" सव्वमिणं सामाइयं " इत्यादि ।

यह समस्त सामायिक छेदादिके विशेषसे भिन्न २ हो जाता है, " सामायिक " ऐसी यह सामान्य संज्ञा है, सावद्य योगसे विरति होना इसका नाम सामायिकहै, यह सामायिक इत्वर और यावत्कथिकके

વિશેષણુ વિનાનો છે આ પ્રકારે વિશેષણુરહિત તે સામાયિકના બે પ્રકાર કહ્યા છે--(૧) ઇત્વરકાલિક અને (૨) યાવજ્જીવ ઇત્વરકાલિક સામાયિકનો સદ્‌ભાવ પહેલા અને છેલ્લા તીર્થંકરના તીર્થંન અનારોપિત વ્રતવાળા જીવોમાં હોય યાવજ્જીવ સામાયિકનો સદ્‌ભાવ વચ્ચેના ૨૨ તીર્થંકરોના અને મહાવિદેહવર્તી તીથ કરોના તીર્થમા ઉપસ્થાનના અભાવે અનારોપિત વ્રતવાળા જીવોમાં હોય છે. કહ્યુ પણુ છે કે-" સવ્વમિણં સામાઇયં " ઇત્યાદિ.

આ સમસ્ત સામાયિક છેદાદિના વિશેષથી રહિત હોય છે. " સામાયિક " એવી આ સામાન્ય સંજ્ઞા છે સાવદ્ય યોગોમાથી વિરતિ થવું તેનુ નામ સામાયિક છે. તેના ઇત્વર અને યાવત્કથિક નામના બે ભેદ છે. તેમાંની ઇત્વર-

सावद्ययोगविरतिरिति तत्र सामायिकं द्विधा तच्च ।
इत्वरं यावत्कथिकमिति च प्रथम प्रथमान्तिमजिनयोः ॥२॥
तीर्थयोरनारोपितव्रतस्य शैक्षकस्य स्तोककालिकं ।
शेषाणां यावत्कथिकं तीर्थेषु विदेहकानां च ॥३॥ इति ।

सामायिकं च तत् संयमश्चेति सामायिकसंयमः=सामायिकरूपः संयम इत्यर्थः । इति प्रथमं स्थानम् । तथा–छेदोपस्थानिकसंयमः–छेदः पूर्वपर्यायस्य छेदनम्, उपस्थापनं व्रतेषु आरोपणं, चैतदद्वयं यत्र तच्छेदोपस्थापनं, तदेव छेदोपस्थापनिकम्, यद्वा–छेदश्च उपस्थापन च छेदोपस्थापने, ते विद्येते यत्र तच्छेदोपस्थापनिकम्, अथवा–छेदेन=पूर्वपर्यायस्य छेदनेन उपस्थाप्यते=आरोप्यते यन्महाव्रतरूपं चारित्रं तच्छेदोपस्थापनीयम् । इदमप्यनतिचारसातिचा-

भेदसे दो प्रकारका है, इनमें इत्वर सामायिक प्रथम और अन्तिम तीर्थंकरके तीर्थमें अनारोपित व्रतवाले शैक्ष शिष्यके स्तोककालिक होताहै। तथा जो यावत्कथित सामायिक हैं, वह बाकीके २२ तीर्थंकरोंके और विदेहक्षेत्र सम्बन्धी तीर्थंकरोंके तीर्थमें उपस्थानके अभावसे अनारोपित व्रतवाले जीव के शिष्य को होता है । सामायिकरूप जो संयम है वह सामायिक संयम है । पूर्वपर्याय के छेदनका नाम छेदहै, और व्रतोंमें आरोपण करनेका नाम उपस्थापनहै। यह दोनों जिस समयमें होतेहैं, वह छेदोपस्थानहै, यह छेदोपस्थानही छेदोपस्थानिक है, अथवा–जो महाव्रतरूप चारित्र पूर्वपर्यायके छेदनसे आरोपित किया जाता है, वह छेदोपस्थापनीय है, यह भी अनतिचार

કાલિક સામાયિકનો સદ્‌ભાવ પ્રથમ અને અન્તિમ તીર્થંકરોના તીર્થમાં અનારોપિત વ્રતવાળા શૈક્ષોમાં શિષ્યોમાં હોય છે. તે સ્તોકકાલિક હોય છે. યાવત્કથિક સામાયિકનો સદ્‌ભાવ બાકીના બાવીશ તીર્થંકરોના અને વિદેહ ક્ષેત્રના તીર્થંકરોના તીર્થમાં ઉપસ્થાનને અભાવે અનારોપિત વ્રતવાળા જીવોના શિષ્યોમાં હોય છે. સામાયિક રૂપ જે સંયમ છે તેનું નામ સામાયિક સંયમ છે. આ પ્રકારનું સંયમના પ્રથમ ભેદનું સ્વરૂપ છે. ।૧।

પૂર્વપર્યાયના છેદનનું નામ છેદ છે, અને વ્રતોમાં આરોપણ કરવાનું નામ ઉપસ્થાપન છે. આ બન્નેનો જે સમયમાં સદ્‌ભાવ હોય છે, તે સમયનું નામ છેદોપસ્થાપન છે. આ છેદોપસ્થાપન જ છેદોપસ્થાપનિક છે. અથવા જે મહાવ્રત રૂપ ચારિત્ર પૂર્વપર્યાયના છેદન વડે આરોપિત કરાય છે, તેનું નામ છેદોપ-

राभ्यां द्विविधम्। तत्र प्रथमम् इत्वरसामायिकस्य शैक्षकस्य पञ्चयामप्रतिपत्तुः पार्श्वनाथसाधोः केशिश्रमणादेर्वा। द्वितीयं तु मूलप्रायश्चित्तप्रतिपन्नस्य साधोरारोप्यते। तदुक्तम्—

"परियायस्स उ छेओ, जत्थोवट्ठावणं वएसुं च।
छेओवट्ठावणमिह, तमणइयारेतरं दुविहं ॥१॥
सेहस्स निरइयारं, तित्थंतरसंकमेव तं होज्जा।
मूलगुणघाइणो साइयारमुभयं च ठियकप्पे" ॥ २ ॥

छाया—पर्यायस्य तु छेदो, यत्रोपस्थापनं व्रतेषु च।
छेदोपस्थापनमिह, तदनतिचारमितरद् द्विविधम् ॥१॥
शैक्षस्य निरतिचारं, तीर्थान्तरसंक्रमेवा तद् भवेत्।
मूलगुणघातिनः सातिचारम् उभयं स्थितकल्पे ॥२॥

स्थितकल्पे=प्रथमान्तिमतीर्थंकरयोरवस्थितसमाचारे इत्यर्थः। छेदोप-

और सातिचारके भेदसे दो प्रकारका होता है, इनमें प्रथम भेद इत्वर सामायिकवाले शिष्यको होता है, अथवा-तीर्थान्तरके संक्रममें होता है, जैसा कि पार्श्वनाथके साधु केशिश्रमण आदि को हुआ है और द्वितीय भेद मूल प्रायश्चित्त का स्वीकार करनेवाले साधुको होता है, कहा भी है-"परियायस्स उ छेदो" इत्यादि।

पूर्वपर्यायका छेद और व्रतोंमें उपस्थान जहां होताहै, वह छेदोपस्थापनीयहै, यह अनतिचार और सातिचारके भेदसे दो प्रकारका कहा गया है, शैक्षको (नवीन) शिष्यको निरतिचार होताहै, अथवा-तीर्थान्तरके संक्रममें वह होताहै, और मूल गुणघाती साधुको वह सातिचार होताहै, एवं प्रथम तथा अन्तिम तीर्थंकरके अवस्थिति समाचाररूप स्थितकल्पमें दोनों प्रका-

સ્થાપનીય છે તે પણ અનતિચાર અને સાતિચારના ભેદથી બે પ્રકારનું કહ્યું છે તેમાંના પ્રથમ ભેદનો સદ્‌ભાવ ઈત્વર સામાયિકવાળા શિષ્યમાં હોય છે, અથવા તીર્થાન્તરના સંક્રમમા તેનો સદ્‌ભાવ હોય છે. જેમકે પાર્શ્વનાથના સાધુઓ કેશિમુનિ આદિ અનતિચાર છેદોપસ્થાપનીય હતા. બીજા ભેદનો સદ્‌ભાવ મૂળ પ્રાયશ્ચિત્તનો સ્વીકાર કરનાર સાધુમાં હોય છે.

કહ્યુ પણ છે કે "પરિયાયસ્સ વ છેદો" ઈત્યાદિ—

પૂર્વ પર્યાયનું છેદન અને વ્રતોમાં ઉપસ્થાન જ્યાં થાય છે, તેનું નામ છેદોપસ્થાપનીય છે તે અનતિચાર સાતિચારના ભેદથી બે પ્રકારનું કહ્યુ છે. શૈક્ષમાં નિરતિચારનો સદ્‌ભાવ હોય છે, અથવા તીર્થાન્તરના સંક્રમમાં તે હોય છે મૂલગુણઘાતી સાધુમાં સાતિચારનો સદ્‌ભાવ હોય છે. પ્રથમ તથા અંતિમ તીર્થંકરના અવસ્થિત સમાચાર રૂપ સ્થિતકલ્પમાં બન્ને પ્રકારના છેદોપસ્થાપનીય

स्थापनिकं च तत् संयमश्चेति छेदोपस्थापनिकसंयमः, अयमपि प्रथमान्तिमतीर्थकरतीर्थयोर्भवतीति बोध्यमिति । इति द्वितीयम् । तथा-परिहारविशुद्धिकसंयमः-परिहरणं परिहारः-तपोविशेषः, तेन विशुद्धं-परिहारविशुद्धम्, अथवा-परिहारो विशेषेण शुद्धो यस्मिंस्तत् परिहारविशुद्धम्, तदस्ति यस्मिंस्तत् परिहारविशुद्धिकम् । यद्वा=परिहारेण=तपोविशेषेण कर्मनिर्जरारूपा विशुद्धि र्यस्मिंस्तत् परिहारविशुद्धिकम् । एतच्च निर्विशमानकनिर्विष्टकायिकभेदेन द्विविधम् । तत्र इदं चारित्रं सेवमानाः साधवो निर्विशमानका उच्यन्ते, तैः सेव्यमानत्वादिदं चारित्रमपि निर्विशमानकमुच्यते । ये तु इदं चारित्रं निर्विष्टवन्तः=आसेवितवन्तः, ते निर्विष्टकायिका उच्यन्ते । तैरासेवितत्वादिदं चारित्रं निर्विष्टकायिकमित्युच्यते ।

रूपता छेदोपस्थापनीय होता है, छेदोपस्थापनीय रूप जो संयम है, यह भी प्रथम तीर्थंकर और अन्तिम तीर्थंकरके तीर्थमें होता है । इस प्रकारसे यह द्वितीय संयम है । परिहार विशुद्धिक संयम-परिहरणका नाम परिहार है, यह परिहार तपो विशेषरूप होता है, इस परिहारसे जो विशुद्ध होता है, वह अथवा परिहारविशेषरूपसे शुद्ध जिसमें होता है, वह परिहार विशुद्ध है, यह परिहार विशुद्ध जिसमें है, वह परिहार विशुद्धिक है, अथवा-परिहाररूप तप विशेष कर्मकी निर्जरारूप विशुद्धि जिसमें होती है, वह परिहारविशुद्धिक है, यह निर्विशमानक और निर्विष्ट कायिकके भेदसे दो प्रकारका है, इस चारित्रको पालन करते हुए साधु निर्विशमानक कहलाते हैं, परन्तु उनके द्वारा सेव्यमान होनेसे

થાય છે. છેદોપસ્થાપનિક રૂપ જે સંયમ છે તેને છેદોપસ્થાપનિક સંયમ કહે છે. તેનો સદ્ભાવ પણ પહેલા તીર્થંકર અને છેલ્લા તીર્થંકરના તીર્થમાં હોય છે. આ પ્રકારનું સંયમના બીજા ભેદનું સ્વરૂપ છે.

પરિહાર વિશુદ્ધિ સંયમ—પરિહરણનું નામ પરિહાર છે. તે પરિહાર તપ વિશેષરૂપ હોય છે. આ પરિહારની અપેક્ષાએ જે વિશુદ્ધ હોય છે તેને અથવા જેમાં આ પરિહાર વિશેષ રૂપે વિશુદ્ધ હોય છે તેને પરિહાર વિશુદ્ધ કહે છે. આ પરિહાર વિશુદ્ધિ જેમાં હોય છે તેને પરિહાર વિશુદ્ધિક કહે છે. અથવા પરિહાર રૂપ તપવિશેષ કર્મોની નિર્જરા રૂપ વિશુદ્ધિ જેમાં થાય છે તે ચારિત્રને પરિહાર વિશુદ્ધિક કહે છે. તેના નીચે પ્રમાણે બે ભેદ છે—(૧) નિર્વિશમાનક, અને (૨) નિર્વિષ્ટકાયિક.

આ ચારિત્રનું પાલન કરનારા એવા સાધુઓને નિર્વિશમાનક કહેવાય છે, પરન્તુ તેમના દ્વારા સેવ્યમાન હોવાને કારણે તે ચારિત્રને પણ નિર્વિશમાનક

तदुक्तम्-" परिहारेण विसुद्धं, सुद्धोय तवो जहिं विसेसेणं ।
तं परिहारविसुद्धं, परिहारविसुद्धियं नाम ॥ १ ॥
तं दुविकप्पं निव्विसमाणनिव्विट्ठकाइयवसेणं ।
परिहारियाणुपरिहारियाणकप्पट्ठियस्सावि " ॥२॥

छाया—परिहारेण विशुद्धं, शुद्धं च तपो यत्र विशेषेण ।
तत् परिहारविशुद्धं परिहारविशुद्धिकं नाम ॥१॥
तद् द्विविकल्पं निर्विशमाननिर्विष्टकायिकवशेन ।
पारिहारिकानुपारिहारिकाणां कल्पस्थितस्यापि ॥२॥ इति

अत्रेदं बोध्यम्-इह हि नवसंख्यकः साधूनां गणो भवति । तत्र चत्वारः परिहारतपोविशेषं कुर्वन्ति, ते पारिहारिका उच्यन्ते, चत्वारस्तुतद्वैयावृत्त्यकारकाः अनुपारिहारिका भवन्ति, एकस्तु कल्पस्थितो वाचनाचार्यो गुरुकल्पो भवति । एतेषु निर्विशमानकानामयं परिहारो भवति । तथाहि-ग्रीष्मे जघन्यादीनि चतुर्थषष्ठाष्टमानि, शिशिरे तु षष्ठाष्टमदशमानि, वर्षास्वष्टमदशमद्वादशानि पारणके

यह चारित्र भी निर्विशमानक कहा गया है । जिन्होंने इस चारित्र का सेवन कर लिया है, वे निर्विष्टकायिक कहे जाते हैं कहा भी है—
" परिहारेण विसुद्धं " इत्यादि ।

यहां इस प्रकार समझना चाहिये—यहां नौ साधुओंका गण होता है, इनमें चार परिहार तपोविशेष करते हैं—इन्हें पारिहारिक कहा जाता है, और चार इनका वैयावृत्त्य करनेवाले होते हैं, इन्हें अनुपारिहारिक कहा जाता है, एक कल्पस्थित वाचनाचार्य होता है, जो गुरुके जैसा होताहै, इनमें निर्विशमानकोंका यह परिहार होताहै, जैसे—ग्रीष्ममें जघन्यादि रूपसे चतुर्थ, षष्ठ, अष्टम, शिशिरमें (शियाळेमें) षष्ठ, अष्टम,

---

કહેવામાં આવ્યું છે. જેમણે આ ચારિત્રનું સેવન કરી લીધું છે તેમને નિર્વિષ્ટકાયિક કહેવામાં આવે છે.કહ્યું પણ છે કે " परिहारेण विसुद्धं " ઇત્યાદિ—

પરિહાર વિશુદ્ધિક રૂપ સંયમનું આ પ્રકારનું સ્વરૂપ સમજવું—નવ સાધુઓનું એક ગણ હોય છે. તેમાંથી ચાર સાધુઓ પરિહાર તપોવિશેષની આરાધના કરે છે. તે ચાર સાધુને પારિહારિક કહેવામાં આવે છે. બીજા ચાર સાધુઓ તેમનું વૈયાવૃત્ય કરે છે. વૈયાવૃત્ય કરનારા તે સાધુઓને અનુ પારિહારિક કહેવાય છે. બાકીનો એક સાધુ કલ્પસ્થિત વાચનાચાર્ય હોય છે. જે ગુરુના જેવો હોય છે. તેમાંના જે નિર્વિશમાનકો છે (પારિહારિકો છે) તેમનો આ પ્રકારનો પરિહાર હોય છે-ગ્રીષ્મમાં તેઓ એક, બે અને ત્રણ

चाचामाम्लम् । इतरेषां तु सर्वेषामाचामाम्लमेव । एवं चत्वारो निर्विशमानकाः षण्मासान् यावत् परिहारं कुर्वन्ति । तत एते निर्विशमानकाः सन्तस्तद्वैयावृत्यकारका भवन्ति, ये पूर्वं वैयावृत्त्यकरास्ते पारिहारिका भवन्ति । ते पारिहारिकाः षड् मासान् यावत् परिहारं कुर्वन्ति । ततस्तेऽपि निर्विष्टकायिका भवन्ति । ततो वाचनाचार्यः षड् मासान् यावत् परिहारं करोति । निर्विष्टकायिकेष्वष्टसु एको वाचनाचार्यो भवति, अन्ये तु वैयावृत्त्यकारका भवन्ति । इत्थम् अयं परिहारविशुद्धिकः कल्पः अष्टादशमासिको भवति । परिहारविशुद्धिकं च तत् संयमश्चेति परिहारविशुद्धिकसंयमः—परिहारतपः=साध्यविशुद्धियुक्तः संयम इत्यर्थः । इति तृतीयं स्थानम् ।

दशम और वर्षामें अष्टम दशम और द्वादश इन परिहारोंको करते हैं, एवं पारणाके दिन आचामाम्ल (आंबिल) करते हैं बाकी और सब मुनि जन (आंबिल) आचामाम्लही करते हैं । इस तरहसे चार निर्विशमानक छह महीने तक परिहार तप करतेहैं, इसके बादसे चार निर्विष्टकायिक बन जाते हैं, और उनकी वैयावृत्ति करनेवाले होते हैं, और जो पहिले वैयावृत्त्यकारक थे वे पारिहारिक तप होतेहैं । वे पारिहारिक छह महीने तक परिहार तप करतेहैं, तब वे भी निर्विष्टकायिक हो जाते हैं, इसके बाद जो वाचनाचार्य है, वह छह महीने तक परिहार करता है, आठ निर्विष्टकायिकोंमें एक वाचनाचार्य हो जाता है, और दूसरे वैयावृत्त्यकारक होते हैं । इस प्रकारका यह परिहारविशुद्धिक कल्प १८ मासका होता है, परिहार विशुद्धिक रूप जो संयम है, वह परिहार

ઉપવાસ, શિશિરમાં બેત્રણ અને ચાર ઉપવાસ અને વર્ષામાં ત્રણ, ચાર અને પાંચ ઉપવાસ કરે છે. પારણાને દિવસે તેઓ આયંબીલ કરે છે. બાકીના પાંચે સાધુઓ આયંબીલ જ કરે છે. આ રીતે છ માસ સુધી ચાર નિર્વિશમાનક પરિહાર કર્યા કરે છે, ત્યારબાદ તેઓ—નિર્વિષ્ટકાયિક બની જાય છે અને છ માસ સુધી તેમનું વૈયાવૃત્ય કરનારા ચાર સાધુઓ પરિહારક થાય છે. ત્યાર બાદ તેઓ પણ નિર્વિષ્ટકાયિક થઇ જાય છે. ત્યારબાદ તેમના વાચનાચાર્ય છ માસ સુધી પરિહાર કરે છે. તે સમય દરમિયાન આઠ નિર્વિષ્ટકાયિકોમાંથી એક વાચનાચાર્ય બને છે અને બાકીના સાધુઓ વૈયાવૃત્ય કરે છે. આ રીતે આ પરિહાર વિશુદ્ધિક કલ્પ ૧૮ માસ સુધી ચાલે છે. આ પ્રકારનો પરિહાર વિશુદ્ધિક રૂપ જે સંયમ છે તેને પરિહાર વિશુદ્ધિક

तथा-सूक्ष्म संपरायसंयमः-संपरैति-पर्यटति संसारमेभिरिति संपरायाः=कषायाः, सूक्ष्माः=लोभांशाविशेषाः सम्परायाः यत्र स सूक्ष्मसम्परायः-लोभकिट्टिकारूपकषाययुक्त इत्यर्थः। स च विशुध्यमानकसंक्लिश्यमानकभेदेन द्विविधः। तत्र विशुध्यमानकक्षपकश्रेणिमुपशमश्रेणिंचारोहतो भवति, संक्लिश्यमानकस्तु उपशमश्रेणितः प्रच्यवमानस्य भवति। तदुक्तम्—

"कोहाइ संपराओ, तेणजओ संपरीइ संसारं।
तं सुहुमसंपरायं, सुहुमो जत्थावसेसो उ ॥१॥
सेढिं विलग्गओ तं, विसुज्झमाणं तओचयं तस्स।
तह संकिलिस्समाणं परिणामवसेण विन्नेयं ॥२॥"

विशुद्धिक संयम है, अर्थात् परिहार तपसे साध्य जो विशुद्धि उस विशुद्धिसे युक्त जो संयम है, वह परिहार विशुद्धिक संयम है ३। सूक्ष्म संपराय संयम-जिनके कारण जीव संसारमें भटकता है, वे संपराय कषाय हैं। जिस संपरायोंमें सूक्ष्म लोभके अंशाही अविशेष रहते हैं-अर्थात् केवल सूक्ष्म लोभ कषायका जो सद्भाव है, वह सूक्ष्म संपराय है, इस तरह जो संयम लोभ रूप कषायसे युक्त होना है, वह सूक्ष्म संपराय संयमहै, यह १० वें गुणस्थानवर्ती जीवको होता है, यह संयम विशुध्यमानक एवं संक्लिश्यमानकके भेदसे दो प्रकारका होना है, इनमें विशुध्यमानक क्षपकश्रेणि एवं उपशमश्रेणि पर आरोहण चढते हुवे करते हुए जीवको होताहै, और संक्लिश्यमानक उपशमश्रेणिसे गिरते हुए जीवको होता है, तदुक्तम्-" कोहाइ संपराओ " इत्यादि।

સંયમ કહે છે એટલે કે પરિહાર તપ વડે સાધ્ય જે વિશુદ્ધિ છે તે વિશુદ્ધિથી યુક્ત જે સંયમ છે તેનું નામ પરિહાર વિશુદ્ધિક સંયમ છે । ૩ ।

સૂક્ષ્મસંપરાય સંયમ—જેમને કારણે જીવ સંસારમાં ભટકે છે તે કષાયોને સંપરાય કહે છે. જે સંપરાયોમાં સૂક્ષ્મલોભનો અંશ જ બાકી રહી જાય છે-એટલે કે સૂક્ષ્મલોભ કષાયનો જ જેમાં સદ્ભાવ હોય છે, તે સંપરાયને સૂક્ષ્મસંપરાય કહે છે આ રીતે જે સંયમ લોભકિટ્ટિકા (સૂક્ષ્મલોભ) રૂપ કષાયથી યુક્ત હોય છે, તેને સૂક્ષ્મસંપરાય સંયમ કહે છે. ૧૦ માં ગુણસ્થાનવર્તી જીવમાં તેનો સદ્ભાવ હોય છે. તેના વિશુધ્યમાનક અને સંકિલશ્યમાનક નામના બે ભેદ પડે છે. ક્ષપક શ્રેણિ અને ઉપશમ શ્રેણિ પર આરોહણ કરતા જીવમાં વિશુધ્યમાનક સૂક્ષ્મસંપરાયનો સદ્ભાવ હોય છે, પરન્તુ ઉપશમ શ્રેણિથી નીચે ઉતરતા જીવમાં સંકિલશ્યમાનકનો સદ્ભાવ હોય છે. કહ્યું પણ છે કે " કોહાઇ સંપરાઓ " ઇત્યાદિ—

छाया—क्रोधादिः संपरायः, तेन यतः संपरैति संसारम्।
स सूक्ष्मसम्परायः, सूक्ष्मो यत्रावशेषस्तु ॥१॥
श्रेणिं विलगतः स विशुद्ध्यमानः, ततश्चत्रमानस्य।
तथा संक्लिश्यमानः परिणामवशेन विज्ञेयः ॥२॥ इति।

अत्रेदं बोध्यम्-संख्येयानां लोभखंडानाम् उपशमनं बादरसंपराय उच्यते चरमस्य तु संख्येयखण्डस्य असंख्येयानि खंडानि क्रियन्ते, तेषु प्रतिसमयमेकैकस्य खंडस्य उपशमनं सूक्ष्मसंपराय उच्यते। तथा-बादरसम्परायोपशमयुक्तो बादरसम्परायः, सूक्ष्मसम्परायोपशमयुक्तस्तु सूक्ष्मसम्पराय उच्यते। इति। सूक्ष्मसम्परायश्च स संयमश्चेति सूक्ष्मसंपरायसंयमः-लोभांशरूपकषाययुक्तः संयम इत्यर्थः। इति चतुर्थं स्थानम्। तथा-यथाख्यातचारित्रसंयमः-

यहां ऐसा समझना चाहिये-संख्यातलोभ खण्डोंका उपशम बादर संपराय कहलाता है, इनमेंसे अन्तिम संख्यातवें खण्डके असंख्यात टुकडे अपनी बुद्धिसे और करो इनमेंसे प्रति समयमें एक २ खण्डका जो उपशमनहै, वह सूक्ष्म संपरायहै, तथा बादर संपरायके उपशमसे युक्त जो बादर संपरायहै, वह बादर संपरायहै। उपशम रूप जो संयणहै वह सूक्ष्म संपराय संयमहै, तात्पर्य इसका यहीहै, कि लोभ कषायवाला जो संयमहै वह सूक्ष्मसंपराय संयम है, ऐसा यह चौथा संयम है ४, यथाख्यात संयम-भगवान्ने जो संयम यथार्थ रूपसे और विधिके अनुसार कहा है, वह यथाख्यातसंयम है, अथवा सर्व जीव लोकमें जो प्रसिद्ध हो

અહીં એવું સમજવું જોઇએ કે સંખ્યાત લોભખંડોનું ઉપશમન બાદર સંપરાય કહેવાય છે તેમાંથી અન્તિમ સંખ્યાતમાં ખંડના બીજા અસંખ્યાત ટુકડા પોતાની કલ્પનાથી કરવામાં આવે. તેમાંથી પ્રત્યેક સમયે એક એક ખંડનું જે ઉપશમન છે, તે સૂક્ષ્મસંપરાય છે, તથા બાદર સંપરાયના ઉપશમથી યુક્ત જે બાદર સંપરાય છે, તે બાદર સંપરાય છે. સૂક્ષ્મસંપરાય ઉપશમ રૂપ જે સંયમ છે તેનું નામ સૂક્ષ્મસંપરાય સંયમ છે. આ કથનનો ભાવાર્થ એ છે કે લોભકિટ્ટકા (સૂક્ષ્મલોભ) રૂપ કષાયવાળો જે સંયમ છે તેનું નામ સૂક્ષ્મ સંપરાય સંયમ છે. આ સંયમના ચોથા ભેદરૂપ છે. । ૪ ।

યથાખ્યાત સંયમ—ભગવાને જે સંયમ યથાર્થ રૂપે અને વિધિ અનુસાર કહ્યો છે; તેને યથાખ્યાત સંયમ કહે છે. અથવા સમસ્ત જીવલોકમાં જે પ્રસિદ્ધ છે તેનું નામ યથાખ્યાત છે. યથાખ્યાત અકષાય રૂપ હોય છે. યથાખ્યાત ચારિત્રરૂપ જે સંયમ છે, તે યથાખ્યાત ચારિત્ર સંયમ છે. આ

यथा=याथातथ्येन आङ्=अभिविधिना च यद् भगवता ख्यातं=कथितम्—यथाख्यातम्, यद्वा—सर्वस्मिन् जीवलोके ख्यातं—प्रसिद्धं यथाख्यातम् अकषायमिति। यथाख्यातं च तत् चारित्रं चेति यथाख्यातचारित्रम्, तद्रूपः सयमः यथाख्यातचारित्रसंयमः। अयं च छद्मस्थस्य उपशान्तमोहस्य क्षीणमोहस्य च भवति, तथा—सयोगस्यायोगस्य च केवलिनो भवति। इति पञ्चमं स्थानम् ॥ सू० १८॥

संयमप्रस्तावात्संयमं, तत्प्रतिपक्षभूतमसंयमं च प्राह—

मूलम्—एगिंदिया णं जीवा असमारभमाणस्स पंचविहे संजमे कज्जइ, तं जहा—पुढविकाइयसंजमे जाव वणस्सइकाइयसंजमे। एगिंदिया णं जीवा समारभमाणस्स पंचविहे असंजमे कज्जइ, तं जहा—पुढविकाइयअसंजमे जाव वणस्सइकाइय असंजमे ॥ सू० १९ ॥

छाया—एकेन्द्रियान् खलु जीवान् असमारभमाणस्य पञ्चविधः संयमः क्रियते, तद्यथा—पृथिवीकायिकसंयमो यावद् वनस्पतिकायिकसंयमः एकेन्द्रियान् खलु जीवान् समारभमाणस्य पञ्चविधः असंयमः क्रियते, तद्यथा—पृथिवीकायिकासंयमो यावद् वनस्पतिकायिकासंयमः ॥सू० १९॥

वह यथाख्यात अकषायरूप होता है, यथाख्यात चारित्ररूप जो सयम है, वह यथाख्यातचारित्रसंयम है, तात्पर्य इसका यह है, कि यथाख्यात चारित्र संयम अकषायवाले उपशान्तमोह और क्षीणमोहको होता है, ये दोनों छद्मस्थ वीतराग कहे गये हैं और सयोग केवली १३ वें गुणस्थानवालेको एवं अयोगकेवली चौदहवें गुणस्थानवालेको होता है, ऐसा यह यथाख्यात चारित्रका कथन है ॥सू० १८॥

अब सूत्रकार इसी संयमके प्रस्तावको लेकर संयम और संयमके

કથનનો ભાવાર્થ એ છે કે યથાખ્યાત ચારિત્રસંયમનો સદ્‌ભાવ અકષાયવાળા ઉપશાન્તમોહ ક્ષીણમોહવાળા જીવોમાં હોય છે. તે બન્નેને છદ્મસ્થ વીતરાગ કહે છે. સયોગી કેવલી—૧૩ માં ગુણસ્થાનવાળા અને અયોગી કેવળી ૧૪ ચૌદમાં ગુણસ્થાનવાળામાં તે સંયમનો સદ્‌ભાવ હોયછે. આ પ્રકારનું સંયમના પાંચમાં ભેદ રૂપ યથાખ્યાતચારિત્રનું કથન સમજવું. ॥ સૂ. ૧૮ ॥

टीका—'एगिंदियाणं' इत्यादि—

एकेन्द्रियान् जीवान् असमारभमाणस्य=संघट्टादिना अनुपमर्दयमानस्य साधोः सप्तदशप्रकारेषु संयमेषु मध्ये पञ्चविधः=पञ्चप्रकारकः संयमः क्रियते=भवति । कर्मणः संयमस्य कर्तृत्वेन विवक्षितत्वात् 'कृञ्' धातुर्भवत्यर्थो भवतीति बोध्यम् । संयमस्य पञ्चविधत्वमेवाह-तद्यथा-पृथिवीकायिकसंयमः=संघट्टाद्युपरमः १। एवम्-अप्कायिकसंयमः २, तेजस्कायिकसंयमः ३, वायुकायिकसंयमो ४ वनस्पतिकायिकसंयमश्च ५ बोध्यः । एतद्वैपरीत्येन पञ्चविधोऽसंयमो बोध्य इति ॥ सू० १९ ॥

प्रतिपक्ष असंयमका कथन करते हैं—

'एगिंदियाणं जीवा असमारभमाणस्स' इत्यादि सूत्र १९ ॥

संघट्ट आदि द्वारा एकेन्द्रिय जीवका उपमर्दन नहीं करते हुए साधुको १७ प्रकारके संयममेंसे पांच प्रकारका संयम होता है । यहां "कृञ्" धातु "भवति" अर्थमें लिया गया है । वह पांच प्रकारका संयम ऐसा है, पृथिवीकायिक संयम यावत् वनस्पतिकायिक संयम यहां यावत्पदसे "अप्कायिक संयम, तेजस्कायिक संयम वायुकायिक संयम" इन तीन संयमोंका ग्रहण हुआ है । इन पांच संयमोंसे विरुद्ध पांच प्रकारका असंयम होता है । पृथिवीकायिक जीवोंका संघट्ट आदि करनेका त्याग करना यह पृथिवीकायिक संयम है, इसी तरहसे यावत् वनस्पतिकायिक संयम तक कथन जानना चाहिये ॥ सू० १९॥

હવે સૂત્રકાર સંયમ અને સંયમના પ્રતિપક્ષ રૂપ અસયમનું કથન કરે છે.

"एगिंदियाणं जीवा असमारभमाणस्स" ઈત્યાદિ—

સંઘટ્ટન આદિ દ્વારા એકેન્દ્રિય જીવોનું ઉપમર્દન (હત્યા) નહીં કરનારા સાધુ વડે ૧૭ પ્રકારના સંયમમાંથી પાંચ પ્રકારના સયમનું પાલન થાય છે. અહીં 'कृञ्' ધાતુ 'भवति' ના અર્થમાં વપરાયો છે. સંયમના તે પાંચ પ્રકાર નીચે પ્રમાણે સમજવા-(૧) પૃથ્વીકાયિક સંયમ, (૨) અપ્કાયિક સંયમ (૩) તેજસ્કાયિક સયમ, (૪) વાયુકાયિક સંયમ અને (૫) વનસ્પતિકાયિક સંયમ. આ પાંચ સંયમોથી વિરૂદ્ધ પાંચ પ્રકારના અસંયમ હોય છે. પૃથ્વીકાયિક જીવોના સંઘટ્ટન આદિને ત્યાગ કરવો તેનું નામ પૃથ્વીકાયિક સંયમ છે એજ પ્રમાણે અપ્કાયથી લઈને વનસ્પતિકાયિક પર્યન્તના સંયમ વિષે પણ સમજવું. ॥ સૂ. ૧૯ ॥

मूलम्—पंचिंदिया णं जीवा असमारभमाणस्स पंचविहे संजमे कज्जइ, तं जहा–सोइंदियसंजमे जाव फासिंदियसंजमे। पंचिंदिया णं जीवा समारभमाणस्स पंचविहे असंजमे कज्जइ, तं जहा–सोइंदिय असंजमे जाव फासिंदिय असंजमे। सव्वपाणभूयजीवसत्ताणं असमारभमाणस्स पंचविहे संजमे कज्जइ, तं जहा--एगिंदिय संजमे जाव पंचिंदियसंजमे। सव्वपाणभूयजीवसत्ता णं समारभमाणस्स पंचविहे असंजमे कज्जइ, तं जहा--एगिंदियअसंजमे जाव पंचिंदिय असंजमे ॥ सू० २० ॥

छाया–पञ्चेन्द्रियान् खलु जीवान् असमारभमाणस्य पञ्चविधः संयमः क्रियते, तद्यथा–श्रोत्रेन्द्रियसंयमो यावत् स्पर्शेन्द्रियसंयमः। पञ्चेन्द्रियान् खलु जीवान् समारभमाणस्य पञ्चविधोऽसंयमः क्रियते, तद्यथा–श्रोत्रेन्द्रियासंयमो यावत् स्पर्शेन्द्रियासंयमः। सर्वप्राणभूतजीवसत्त्वान् खलु असमारभमाणस्य पञ्चविधः संयमः

'पंचिंदियाणं जीवा असमारभमाणस्स' इत्यादि सूत्र २० ॥

सूत्रार्थ–पञ्चेन्द्रिय जीवोंका संघट्टन आदि द्वारा उपमर्दन करनेका त्याग करनेरूप जो संयम है, वह पांच प्रकारका है जैसे–श्रोत्रेन्द्रिय संयम यावत् स्पर्शेन्द्रिय संयम इसी तरहसे संघट्ट आदि द्वारा पञ्चेन्द्रिय जीवोंका उपमर्दन करने रूप जो असंयम है, वह भी पांच प्रकारका है, जैसे–श्रोत्रेन्द्रिय असंयम यावत् स्पर्शेन्द्रिय असंयम समस्त प्राण, भूत जीव एवं सत्त्वोंके संघट्टन आदि द्वारा मर्दन करनेका त्याग करनेवाले

" પંચિંદિયાણ જીવા અસમારભમાણસ્સ " ઇત્યાદિ—

સૂત્રાર્થ–પંચેન્દ્રિય જીવોનું સંઘટ્ટન આદિ દ્વારા ઉપમર્દન નહીં કરવા રૂપ જે સંયમ છે, તેના પાંચ પ્રકાર નીચે પ્રમાણે છે–શ્રોત્રેન્દ્રિય સંયમથી લઇને સ્પર્શેન્દ્રિય સંયમ પર્યન્તના પાંચે ઇન્દ્રિયોના સંયમ અહીં ગ્રહણ કરવા જોઇએ. એ જ પ્રમાણે સંઘટ્ટન આદિ વડે પંચેન્દ્રિય જીવોનું ઉપમર્દન કરવા રૂપ અસંયમના પણ નીચે પ્રમાણે પાંચ પ્રકાર પડે છે–શ્રોત્રેન્દ્રિય અસંયમથી લઇને સ્પર્શેન્દ્રિય અસંયમ પર્યન્તના પાંચ પ્રકારો અહીં ગ્રહણ કરવા જોઇએ. સમસ્ત પ્રાણ, ભૂત, જીવો અને સત્ત્વોનું સંઘટ્ટન આદિ દ્વારા મર્દન કરવાનો ત્યાગ કરનાર જીવ દ્વારા પાંચ પ્રકારના સંયમનું પાલન થાય

क्रियते, तद्यथा-एकेन्द्रियसंयमो यावत् पञ्चेन्द्रियसंयमः । सर्वप्राणभूतजीव सत्त्वान् खलु समारभमाणस्य पञ्चविधः असंयमः क्रियते, तद्यथा-एकेन्द्रिया-संयमो यावत् पञ्चेन्द्रियासंयमः ॥ सू० २० ॥

टीका—' पंचिंदिया ' इत्यादि—

" पुढविदगअगणिमारुय वणस्सइ बितिचउपणिंदियाजीवा । पेहुप्पेहपम-ज्जणपरिद्ववणमणोवईकाए ॥ १ ॥ छाया-पृथिव्युदकाग्निमारुताः वनस्पति-र्द्वित्रिचतुःपञ्चेन्द्रिया अजीवाः प्रेक्षोत्प्रेक्षा प्रमार्जनं परिष्ठापनं मनोवाक् कायः ॥१॥ इत्यत्र सप्तदशविधः संयमः प्रोक्तः तत्र तस्य संयमस्य नवमो भेदः पञ्चे-न्द्रियसंयमः प्रोक्तः । स एवात्र श्रोत्रेन्द्रियसंयमादिभेदैः पञ्चविधत्वेनोच्यते। तथाहि-पञ्चेन्द्रियान् जीवान् असमारभमाणस्य=पञ्चेन्द्रियजीवानां विराधनामकुर्वतो जीवस्य श्रोत्रेन्द्रियसंयमादिरूपः पञ्चविधः संयमो भवति तत्र श्रोत्रेन्द्रियस्य विराधनापरिवर्जनं श्रोत्रेन्द्रियसंयमः एवं चक्षुरिन्द्रियादि तत्तदिन्द्रियस्य-

---

जीवको पांच प्रकारका संयम होता है, जैसे-एकेन्द्रिय संयम यावत् पंचेन्द्रिय संयम समस्त प्राण भूत जीव एवं सत्त्वोंका संघट्टन आदि द्वारा मर्दनकरनेरूप असंयम पांच प्रकारका है, जैसे-एकेन्द्रिय असंयम यावत् पञ्चेन्द्रिय असंयम।

" पुढविदग अगणिमारुय " इत्यादि।

इस गाथा द्वारा जो १७ प्रकारका संयम कहा गया है, उसमें संय-मका नौवां भेद जो पञ्चेन्द्रिय संयम कहा है, वही यहां सूत्रमें श्रोत्रे-न्द्रिय संयम आदिके भेदों द्वारा पांच प्रकार से कहा गया है, जो जीव पञ्चेन्द्रिय जीवोंकी विराधना नहीं करता है, ऐसे जीवको श्रोत्रेन्द्रिय संयम आदि रूप पांच प्रकारका संयम होता है, इनमें श्रोत्रेन्द्रियकी विराधनाका त्याग करना वह श्रोत्रेन्द्रिय संयम है, इसी तरहसे चक्षु-

---

છે તે પાંચ પ્રકારો નીચે પ્રમાણે છે-એકેન્દ્રિય સંયમથી લઇને પંચેન્દ્રિય સંયમ પર્યન્તના પાંચ પ્રકાર અહીં સમજી લેવા. સમસ્ત પ્રાણ, ભૂત, જીવો અને સત્ત્વોનું સંઘટ્ટન આદિ દ્વારા મર્દન કરવા રૂપ અસંયમના પણ નીચે પ્રમાણે પાંચ પ્રકાર છે-એકેન્દ્રિય અસંયમથી લઇને પંચેન્દ્રિય અસંયમ પર્યન્તના પાંચ પ્રકારો અહીં સમજી લેવા.

" पुढविदगअगणिमारुय " ઈત્યાદિ—

આ ગાથા દ્વારા સંયમના જે ૧૭ પ્રકાર બતાવવામાં આવ્યા છે, તેમાં નવમો ભેદ જે પંચેન્દ્રિય સંયમ કહ્યો છે, એ જ અહીં સૂત્રમાં શ્રોત્રેન્દ્રિય સંયમ આદિના ભેદથી પાંચ પ્રકારનો કહ્યો છે. જે જીવ પંચેન્દ્રિય જીવોની વિરાધના કરતો નથી, એવા જીવ દ્વારા શ્રોત્રેન્દ્રિય સંયમ આદિ રૂપ પાંચ પ્રકારના સંયમનું પાલન થાય છે. તેમાં શ્રોત્રેન્દ્રિયની વિરાધનાનો ત્યાગ કરવો

विराधना परिवर्जनं तत्तदिन्द्रियसंयमो बोध्य इति। एतद्वैपरीत्येन पञ्चविध-इन्द्रियासंयमो बोध्य इति। पूर्वमेकेन्द्रियपञ्चेन्द्रियजीवाश्रयेण संयमसंयमा-सर्वजीवाश्रयत्वेन तावुच्येते 'सव्वपाणभूय' -इत्यादिना। सर्वप्राणभूतजीव-सत्त्वान् सर्वे च ते प्राणाश्च भूताश्च जीवाश्च सत्त्वाश्चेति-सर्वप्राणभूतजीवसत्त्वा-स्तान् असमारभमाणस्य=अविराधयतो जीवस्य एकेन्द्रियसंयमादिपञ्चेन्द्रिय-संयमान्तः पञ्चविधः संयमो भवति। प्राणादीनां भेदस्त्वेवं बोध्यः, तथाहि—

" प्राणा द्वित्रिचतुः प्रोक्ताः भूतास्तु तरवः स्मृताः।
जीवाः पञ्चेन्द्रिया ज्ञेयाः शेषाः सत्त्वा इतीरिताः " ॥१॥ इति।

रिन्द्रिय आदि इन्द्रियोंकी विराधना करनेका त्याग करना वह इन्द्रिय संयम है, इन इन्द्रियोंके संयमसे विपरीत पांच प्रकारका इन्द्रिय असंयम होता है, संयम और असंयमका वह पूर्वोक्त कथन एकेन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय जीवोंके आश्रयको लेकर कहा है, अब समस्त जीवोंके आश्रयसे संयम असंयमका कथन सूत्रकार करते हैं-" सव्वपाणभूय " इत्यादि-समस्त प्राणोंकी समस्त भूतोंकी समस्त जीवोंकी और समस्त सत्त्वोंकी विराधना करनेवाले जीवको एकेन्द्रिय संयम आदिसे लेकर पञ्चेन्द्रिय संयम तक पांचों प्रकारका संयम होता है, प्राणादिकोंमें भेद इस प्रकारसे कहा गया है—प्राणा द्वित्रिचतुः प्रोक्ता " इत्यादि।

दो इन्द्रियवाले तेइन्द्रियवाले और चार इन्द्रियवाले जीव " प्राण "

તેનું નામ શ્રોત્રેન્દ્રિય સંયમ છે, એ જ પ્રમાણે ચક્ષુરિન્દ્રિય, ઘ્રાણેન્દ્રિય, રસનેન્દ્રિય અને સ્પર્શેન્દ્રિયની વિરાધનાનો ત્યાગ કરવો તેનું નામ અનુક્રમે ચક્ષુરિન્દ્રિય સંયમ, ઘ્રાણેન્દ્રિય સંયમ, રસનેન્દ્રિય સંયમ અને સ્પર્શેન્દ્રિય સંયમ છે. એ ઇન્દ્રિયોના સંયમથી વિપરીત પાંચ પ્રકારનો ઇન્દ્રિય અસયમ હોય છે. સંયમ અને અસંયમનું આ કથન એકેન્દ્રિય અને પંચેન્દ્રિય જીવોને આધારે કરવામાં આવ્યુ છે હવે સમસ્ત જીવોને આધારે સંયમ અને અસંયમનું કથન સૂત્રકાર કરે છે-" सव्वपाणभूय " ઈત્યાદિ—સમસ્ત પ્રાણોની, સમસ્ત ભૂતોની, સમસ્ત જીવોની અને સમસ્ત સત્ત્વોની વિરાધના ન કરનાર જીવો એકેન્દ્રિય સંયમથી લઈને પંચેન્દ્રિય સંયમ પર્યન્તના પાંચે પ્રકારના સંયમનું પાલન કરનારા ગણાય છે. પ્રાણાદિકોનો આ પ્રમાણે અર્થ સમજવો-" प्राणा द्वि त्रि चतुः प्रोक्ता " ઈત્યાદિ—

દ્વીન્દ્રિય, ત્રીન્દ્રિય અને ચતુરિન્દ્રિય જીવોને 'પ્રાણ' કહે છે. વનસ્પતિ

अत्र पृथिव्यादिपञ्चेन्द्रियपर्यन्ता नव संयमा बोध्याः। यतः एकेन्द्रियसंयमेन पृथिव्यादयः पञ्च, द्वित्रिचतुःपञ्चेन्द्रिया इति चत्वारः, इत्युभयेषां संकलनया नव। सर्वप्राणभूतजीवसत्त्वानां विराधनां कुर्वतस्तु एकेन्द्रियासंयमादिपञ्चेन्द्रियासंयमान्तः पञ्चविधासंयमो भवति ॥ सू० २० ॥

एकेन्द्रियभेदेनोक्तस्य वनस्पतेर्बादरभेदस्य पञ्चविधत्वमाह—

मूलम्—पंचविहा तणवणस्सइकाइया पण्णत्ता, तं जहा—अग्गबीया १ मूलबीया २ पोरबीया ३ खंधबीया ४ बीयरुहा ५ ॥ सू० २१ ॥

छाया—पञ्चविधास्तृणवनस्पतिकायिकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—अग्रबीजाः १ मूलबीजाः २ पर्वबीजाः ३ स्कन्धबीजाः ४ बीजरुहाः ५ ॥ सू० २१ ॥

इस शब्दसे कहे गये हैं, वृक्ष "भूत" इस शब्दसे कहे गये हैं "पञ्चेन्द्रिय" जीव इस शब्दसे कहे गये हैं, इनसे अतिरिक्त एकेन्द्रिय जीव "सत्त्व" शब्दसे कहे गये हैं। यहां पृथिवी आदिसे लेकर पञ्चेन्द्रिय तकके नौ संयम हैं, क्योंकि एकेन्द्रिय संयमसे पृथिव्यादिक पांच द्वीन्द्रिय तेइन्द्रिय चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय संयमसे चार इस प्रकारसे ये नौ संयम होते हैं। सर्व प्राण, भूत, जीव एवं सत्त्व इनकी विराधना करनेवाले जीवके एकेन्द्रिय असंयमसे लेकर पञ्चेन्द्रिय असंयम तक पांच प्रकारका असंयम होता है ॥ सू० २० ॥

एकेन्द्रियके भेदसे कथित हुए वनस्पतिका जो बादर भेद है, उसकी पंचविधताका कथन अब सूत्रकार करते हैं—

કાયિકને 'ભૂત' કહે છે, પંચેન્દ્રિયોને 'જીવ' કહે છે, તે સિવાયના એકેન્દ્રિય જીવોને 'સત્ત્વ' કહે છે. અહીં પૃથ્વીકાયિક સંયમથી લઇને પચેન્દ્રિય સંયમ પર્યન્તના નવ પ્રકારના સંયમ કહ્યા છે. 'એકેન્દ્રિય સયમ' આ પદ દ્વારા પૃથ્વીકાયિક સંયમથી લઇને વનસ્પતિકાયિક સંયમ પર્યન્તના પાંચ ભેદ ગ્રહણ થયા છે. આ સિવાયના ચાર ભેદ નીચે પ્રમાણે છે-દ્વીન્દ્રિય સંયમ, ત્રીન્દ્રિય સંયમ, ચતુરિન્દ્રિય સંયમ અને પંચેન્દ્રિય સંયમ સમસ્ત પ્રાણો, ભૂતો, જીવો અને સત્ત્વોની વિરાધના કરનારે જીવો વડે એકેન્દ્રિય અસંયમથી લઇને પંચેન્દ્રિય અસંયમ પર્યન્તના પાંચ પ્રકારના અસંયમ સેવાય છે ॥ સૂ. ૨૦ ॥

એકેન્દ્રિયના ભેદરૂપ જે વનસ્પતિકાય છે, તેના બાદર વનસ્પતિ રૂપ ભેદના પાંચ પ્રકારોનું સૂત્રકાર હવે કથન કરે છે.

टीका—' पंचविहा ' इत्यादि—

तृणवनस्पतिकायिकाः—तृणरूपाः=बादररूपा ये वनस्पतिकायिकाजीवाः सन्ति ते अग्रबीजादिभेदेन पञ्चविधा बोध्याः। तत्र—अग्रबीजाः=कोरण्टकादयः १, मूलबीजाः=कमलकन्दादयः २, पर्वबीजाः=इक्षुवंशादयः ३, स्कन्धबीजाः= शल्लक्यादयः ४ बीजरुहाः=वटादयः ५ इति ॥ सू० २१ ॥

पूर्वं वनस्पतिकायिकजीवाः प्रोक्ताः, तेषां रक्षणं त्वाचारेणैव भवतीत्यत आचारस्वरूपमाह—

मूलम्—पंचविहे आयारे पण्णत्ते, तं जहा—णाणायारे १ दंसणायारे २ चरित्तायारे ३ तवायारे ४ वीरियायारे ५ ॥सू०२२॥

छाया—पञ्चविध आचारः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—ज्ञानाचारः १ दर्शनाचारः २ चारित्राचारः ३ तप आचारः ४ वीर्याचारः ५ ॥ सू० २२ ॥

'पंचविहा तणवणस्सइकाइया पण्णत्ता' इत्यादि सू० २१ ॥

तृणरूप जो बादर वनस्पतिकायिक जीव हैं, वे अग्रबीज आदिके भेदसे पांच प्रकारके कहे गये हैं, जिनका अग्रभागही बीजरूप होता है, ऐसे कोरण्टक आदि अग्रबीज हैं १। जिनका मूलही बीजरूप होता है, ऐसे कमलकन्द आदि मूलबीज हैं २। जिनका पर्वही बीजरूप होता है, ऐसे इक्षु (गन्ना) वंश आदि पर्वबीजहैं, तथा जिनका स्कन्धही बीजरूप होता है, ऐसे शल्लकी आदि स्कन्धबीज हैं, और जो वनस्पति बीजसे उत्पन्न होते हैं ऐसे वे वड आदि बीजरूप वनस्पति बीज हैं ॥सू० २१॥

इन कथित वनस्पतिकायिक जीवोंका रक्षण आचारसेही होता है, अतः अब सूत्रकार आचारका स्वरूप कहते हैं—

" पंचविहा तणवणस्सइकाइया पण्णत्ता " इत्यादि—

तृणु रूप जे બાદર વનસ્પતિકાયિક જીવો છે, તેમના નીચે પ્રમાણે પાંચ પ્રકાર પડે છે—(૧) અગ્રબીજ-જેમનો અગ્રભાગ જ બીજરૂપ હોય છે, એવા કોરંટક આદિને ' અગ્રબીજ ' કહે છે (૨) જેમનું મૂળ જ બીજરૂપ હોય છે, એવા કમલકન્દ આદિને ' મૂળબીજ ' કહે છે (૩) જેમના પર્વ જ (ગાંઠ) બીજરૂપ હોય છે, એવા શેરડીના સાંઠા આદિને ' પર્વબીજ ' કહે છે. (૪) જેનું થડ બીજ રૂપ હોય છે, એવી શલ્લકી આદિને ' સ્કન્ધ બીજ ' કહે છે (૫) જે વનસ્પતિ બીજમાંથી ઉત્પન્ન થાય છે, એવા વડ આદિના બીજને ' બીજરૂપ વનસ્પતિ બીજ ' કહે છે ॥ સૂ. ૨૧ ॥

ઉપર જે વનસ્પતિકાયિક આદિ જીવોની વાત કરી તેમનું રક્ષણ આચાર દ્વારા જ થાય છે. તેથી હવે સૂત્રકાર આચારનું સ્વરૂપ પ્રકટ કરે છે.

टीका--' पंचविहे ' इत्यादि--

आचरणम्-आचारः-ज्ञानादिविषयकमनुष्ठानमित्यर्थः। स च ज्ञानाचारादिभेदेन पञ्चविधः। तत्र-ज्ञानाचार -ज्ञानं=श्रुतज्ञानं, तद्विषय आचारः-श्रुतज्ञानरूपोऽष्टविध आचार इत्यर्थः।

तदुक्तम्-" काले १, विणए २ बहुमाणे ३ उवहाणे ४ तहय अनिण्हवणे ५।
वंजण ६ अत्थ ७ तदुभए ८, अट्ठविहो नाणमायारो ॥१॥ "

छाया--कालो विनयो बहुमानम्, उपधानं तथा च अनिह्नवनम्।
व्यञ्जनम् अर्थस्तदुभयम्, अष्टविधो ज्ञानाचारः ॥१॥ इति १।

तथा-दर्शनाचारः-दर्शनं=सम्यक्त्वं, तद्विषयआचारः-सम्यक्त्ववतां व्यवहार इत्यर्थः। अयमप्यष्टविधः। तदुक्तम्--

---

'पंचविहे आयारे पण्णत्ते' इत्यादि सू० २२ ॥

टीकार्थ-आचार पांच प्रकारका कहा गयाहै, जैसे-ज्ञानाचार१ दर्शनाचार २ चारित्राचार ३ तप आचार ४ और वीर्याचार ५

आचरणका नाम आचारहै, यह आचार ज्ञानादि विषयक अनुष्ठानरूप होता है, यह पूर्वोक्तरूपसे पांच प्रकारका कहा गया है, इनमें श्रुतज्ञान सम्बधी जो आचार है, वह ज्ञानाचार है,यह ज्ञानाचार आठ प्रकारका है। कहा भी है—" काले विणए बहुमाणे " इत्यादि।

काल १ विनय २ बहुमान ३ उपधान ४ अनिह्नव ५ व्यञ्जन ६ अर्थ ७ और तदुभय ८ दर्शननाम सम्यक्त्वका है, इस सम्बन्धी जो आचार है, वह दर्शनाचारहै, यह दर्शनाचार सम्यक्त्व सहित जीवोंको

ટીકાર્થ-" પંચવિહે આયારે પણ્ણત્તે " ઇત્યાદિ—

આચારના નીચે પ્રમાણે પાંચ પ્રકાર કહ્યાં છે—(૧) જ્ઞાનાચાર, (૨) દર્શનાચાર, (૩) ચારિત્રાચાર, (૪) તપ આચાર અને (૫) વીર્યાચાર.

આચરણને આચાર કહે છે. તે આચારો જ્ઞાનાદિ વિષયક અનુષ્ઠાન રૂપ હોય છે. તેના જ્ઞાનાચાર આદિ પાંચ પ્રકાર છે. શ્રુતજ્ઞાન સંબંધી જે આચાર છે, તેને જ્ઞાનાચાર કહે છે. તે જ્ઞાનાચારના નીચે પ્રમાણે આઠ પ્રકાર છે—

" કાલે વિણએ બહુમાણે " ઇત્યાદિ—

(૧) કાળ, (૨) વિનય, (૩) બહુમાન, (૪) ઉપધાન, (૫) અનિહ્નવ, (૬) વ્યંજન, (૭) અર્થ અને (૮) તદુભય

સમ્યકત્વને દર્શન કહે છે. દર્શન સંબંધી જે આચાર છે તેને દર્શનાચાર કહે છે. તે દર્શનાચાર સમ્યકત્વ યુક્ત જીવોના વ્યવહાર રૂપ હોય છે. તેના

" निस्संकिय १ निक्कंखिय २, निव्वितिगिच्छा ३ अमूढदिट्ठी ४ य।
उववूह ५-थिरीकरणे ६, वच्छल्ल ७, पभावणे ८ अट्ठ ॥१॥ "

छाया--निश्शङ्कितं निष्काङ्क्षितं, निर्विचिकित्सा अमूढदृष्टिश्च ।
उपबृंहा-स्थिरीकरणे वात्सल्य-प्रभावने अष्ट ॥ १ ॥ इति।

तथा--चारित्राचारः-चारित्रं-सर्वविरतिलक्षणं, तद्विषयआचारः, समित्यादिरूप चारित्र पालनात्मकोऽष्टविधो व्यवहारः ।

तदुक्तम्--पणिहाणजोगजुत्तो, पंचहिं समिईहिं तिहि य गुत्तीहिं ।
एस चरित्तायारो, अट्ठविहो होइ णायव्वो ॥१॥ १ ॥ "

छाया-प्रणिधानयोगयुक्तः(प्रशस्तव्यापारवान्)पञ्चभिः समितिभिस्तिसृभिश्चगुप्तिभिः।
एष चारित्राचारः अष्टविधो भवति ज्ञातव्यः ॥१॥ इति ।

व्यवहाररूप होता है, यह भी आठ प्रकारका है, जैसे-" निस्संकिय निक्कंखिय " इत्यादि ।

निश्शंकित १ निष्कांक्षित २ निर्विचिकित्सा ३ अमूढदृष्टि ४ उपबृंहा ५ स्थिरीकरण ६ वात्सल्य ७ और प्रभावना ८

चारित्राचार-सर्वविरति रूप जो संयम है, वह चारित्र है, इस चारित्र सम्बन्धी जो आचार है, वह चारित्राचार है. यह चारित्राचार समिति आदिके पालने रूप होताहै, और यह भी अष्ठ प्रकारका है जैसे-
" पणिहाणजोगजुत्तो " इत्यादि ।

पांच समितियोंसे एवं तीन गुप्तियोंसे युक्त जो प्रशस्त व्यापारवाला होता है, वह चारित्राचार है, इस प्रकार यह चारित्राचार पांच समिति और तीन गुप्तिरूप होनेसे आठ प्रकारका है, तप आचार १२

પણ નીચે પ્રમાણે આઠ પ્રકાર છે.

" निस्संकिय निक्कखिय " ઈત્યાદિ—

(૧) નિઃશંકિત, (૨) નિષ્કાંક્ષિત, (૩) નિર્વિચિકિત્સા, (૪) અમૂઢ દૃષ્ટિ (૫) ઉપબૃંહા, (૬) સ્થિરીકરણ, (૭) વાત્સલ્ય અને (૮) પ્રભાવના.

ચારિત્રાચાર—સર્વવિરતિ રૂપ જે સંયમ છે તેને ચારિત્ર કહે છે. તે ચારિત્ર વિષયક જે આચાર છે તેને ચારિત્રાચાર કહે છે. તે સમિતિ આદિના પાલન રૂપ હોય છે. તેના પણ નીચે પ્રમાણે આઠ પ્રકાર કહ્યા છે.

" पणिहाणजोगजुत्तो " ઈત્યાદિ—

પાંચ સમિતિઓ અને ત્રણ ગુપ્તિઓથી યુક્ત એવો જે સાધુનો પ્રશસ્ત વ્યાપાર છે, તેને ચારિત્રાચાર કહે છે. આ રીતે પાંચ સમિતિ રૂપ પાંચ પ્રકાર

तथा-तप आचारो-द्वादशविध तपोऽनुष्ठानात्मकस्तपस्वि नामाचारः।

तपसो द्वादशभेदास्तु बाह्याभ्यन्तरभेदाद् बोध्याः। तत्र बाह्यभेदाः षट् तथा हि--

" अणसणमूणोयरिया, भिक्खायरिया य रसपरिच्चाओ।
कायकिलेसो पडिसंलीणया य, बज्झो तवो होइ ॥ "

छाया--अनशनम् ऊनोदरिका भिक्षाचर्या च रसपरित्यागः।
कायक्लेशः प्रतिसंलीनता च बाह्यं तपो भवति ॥ इति।

तथा-आभ्यन्तरभेदाः षट्, तथाहि--

" पायच्छित्तं विणओ, वेयावच्चं तहेव सज्झाओ।
झाणं च विउस्सग्गो, एसो अब्भिंतरो तवो ॥

छाया--प्रायश्चित्तं विनयो वैयावृत्त्यं तथैव स्वाध्यायः।
ध्यानं च व्युत्सर्गः, एतदाभ्यन्तरं तपः ॥

प्रकारका होता है, तपस्वियोंका जो तपोंके अनुष्ठान करनेरूप आचार है, वह तप आचार है, तपके १२ भेद ६ बाह्य तप और ६ आभ्यन्तर तपके भेदसे होते हैं-जैसे-" अणसणमूणोयरिया " इत्यादि।

अनशन १ ऊनोदरिका २ भिक्षाचर्या ३ रसपरित्याग ४ काय· क्लेश ५ और प्रतिसंलीनता ६ ये बाह्य तप हैं, आभ्यन्तर तपके ये ६ भेद हैं-" प्रायश्चित्तं विणओ " इत्यादि।

प्रायश्चित्त १ विनय २ वैयावृत्य ३ स्वाध्याय ४ ध्यान ५ और व्युसर्ग ६ आत्मा एवं शरीरकी शक्तिका नाम वीर्य है, ज्ञानाचारका

અને ત્રણ ગુપ્તિરૂપ ત્રણ પ્રકાર મળીને તે કુલ આઠ પ્રકારનો હોય છે.

તપ આચાર—તપસ્વીઓનો-તપનું અનુષ્ઠાન કરવા રૂપ-જે આચાર હોય છે તેને તપાચાર કહે છે. તેના ૧૨ પ્રકાર છે ૬ બાહ્ય તપ અને ૬ આભ્યન્તર તપ બારે ભેદોના નામ નીચે પ્રમાણે છે

" अणसणमूणोयरिया " ઈત્યાદિ—

(૧) અનશન, (૨) ઊણોદરિકા, (૩) ભિક્ષાચર્યા, (૪) રસપરિત્યાગ, (૫) કાયક્લેશ અને (૬) પ્રતિસંલીનતા, આ ૬ બાહ્યતપ છે. આભ્યન્તર તપના ૬ ભેદ નીચે પ્રમાણે છે " पायच्छित्तं विणओ " ઈત્યાદિ—

(૧) પ્રાયશ્ચિત્ત, (૨) વિનય, (૩) વૈયાવૃત્ય, (૪) સ્વાધ્યાય (૫) ધ્યાન અને (૬) વ્યુત્સર્ગ

વીર્યાચાર—આત્મા અને શરીરની શક્તિનું નામ વીર્ય છે જ્ઞાનાચારના

तथा-वीर्याचारः-वीर्यम्=आत्मशरीरसामर्थ्यं, तस्यानन्तरोक्तेषु षट्त्रिंशद्भेदेषु ज्ञानाचारादिषु स्फोरणम्। इति। सू० २२॥

आचारस्य प्रस्तुतत्वात् सम्प्रति आचारप्रकल्पस्य भेदानाह—

मूलम्-पंचविहे आयारपकप्पे पण्णत्ते, तं जहा-मासिए उग्घाइए १, मासिए अणुग्घाइए २, चाउमासिए उग्घाइए ३, चाउम्मासिए अणुग्घाइए ४, आरोवणा ५। आरोवणा पंचविहा पण्णत्ता, तं जहा-पट्ठविया १ ठविया २ कसिणा ३ अकसिणा ४ हाडहडा ५॥ सू० २३॥

छाया—पञ्चविध आचारप्रकल्पः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-मासिकमुद्घात्तिकम् १, मासिकमनुद्घातिकम् २, चातुर्मासिकमुद्घातिकम् ३, चातुर्मासिकमनुद्घातिकम् ४, आरोपणा पञ्चविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा-प्रस्थापिता १, स्थापिता २, कृत्स्ना ३, अकृत्स्ना ४, हाडहडा ५॥ सू० २३॥

---

८ दर्शनाचारका ८ चारित्राचारका ८ तप आचारका १२ कुल ३६ प्रकारके ज्ञानाचार आदिकोंके परिपालनमें जो वीर्यरूप शक्तिका प्रकट करना है, वह वीर्याचार है ॥सू० २२॥

अब सूत्रकार आचार प्रकल्पके भेदोंका कथन करते हैं—

'पंचविहे आयारकप्पे पण्णत्ते' इत्यादि सू० २३॥

सूत्रार्थ-आचार प्रकल्प पांच प्रकारका कहा गयाहै, जैसे-मासिक उद्घातिक१ मासिक अनुद्घातिक२ चातुर्मासिक उद्घातिक३ चातुर्मासिक अनुद्घातिक४ और आरोपणा ५ इनमें आरोपणा पांच प्रकारकी कही गईहै-जैसे-प्रस्थापिता१ स्थापिता २ कृत्स्ना३ अकृत्स्ना४ और हाडहडा ५

૮, દર્શનાચારના ૮, ચારિત્રાચારના ૮ અને તપાચારના ૧૨ એ રીતે કુલ ૩૬ પ્રકારના જ્ઞાનાચારાદિકોના પરિપાલનમાં જે વીર્યરૂપ શક્તિનું પ્રકાશન થાય છે, તેનું નામ વીર્યાચાર છે ॥ સૂ. ૨૨ ॥

હવે સૂત્રકાર આચાર પ્રકલ્પના ભેદોનું કથન કરે છે.

સૂત્રાર્થ-" पंचविहे आयारपकप्पे पण्णत्ते " ઇત્યાદિ—

આચાર પ્રકલ્પના નીચે પ્રમાણે પાંચ પ્રકાર કહ્યાં છે—(૧) માસિક, ઉદ્ઘાતિક, (૨) માસિક અનુદ્ઘાતિક, (૩) ચાતુર્માસિક ઉદ્ઘાતિક, (૪) ચાતુર્માસિક અનુદ્ઘાતિક અને (૫) આરોપણા. તેમાંથી આરોપણા પાંચ પ્રકારની કહી છે. જેમકે (૧) પ્રસ્થાપિતા, (૨) સ્થાપિતા, (૩) કૃત્સ્ના, (૪) અકૃત્સ્ના, અને (૫) હાડહડા.

टीका—' पंचविहे आयारपकप्पे ' इत्यादि—

आचारप्रकल्पः-प्रकृष्टः कल्पः=प्रायश्चित्तरूपो यत्र सः प्रकल्पः, आचारस्य= आचाराङ्गस्य प्रकल्पः=निशीथाख्योऽध्ययनविशेष आचारप्रकल्पः, स च पञ्चविधप्रायश्चित्तप्ररूपकत्वात् पञ्चविधः। तथाहि-मासिकमुद्घातिकम्-मासेन निर्वृत्तं मासिकम्, उद्घातः=भागपातः सान्तरदानं वा, तद् विद्यते यत्र तत् उद्घातिकम्। सार्द्धसप्तविंशतिदिनप्रमाणं प्रायश्चित्तं मासिकमुद्घातिकमुच्यते। लघुमासप्रायश्चित्तमित्यर्थः। उक्तंचात्र—

" अद्धेण छिन्नसेसं, पुव्वद्धेण तु संजुयं काउं।
देज्जाइ लहुयदाणं, गुरुदाणं तत्तियं चेव ॥१॥"

छाया—अर्द्धेन छिन्नशेषं, पूर्वार्द्धेन तु संयुतं कृत्वा।
दीयते लघुकदानं गुरुदानं तावदेव ॥ इति।

मासिकतपोऽधिकृत्य अस्या गाथाया भावार्थ एवं बोध्यः, तथाहि-मासे अर्द्धेन छिन्ने सति पञ्चदशदिनानि शिष्यन्ते। मासापेक्षया पूर्वस्य पूर्वतपसः पञ्चविंशतिदिनात्मकस्य अर्द्धं सार्द्धद्वादशकम् उभयसंकलनया सार्द्धसप्तविंशति-

---

प्रायश्चित्त रूप प्रकृष्टकल्प जहां होता है, वह प्रकल्प है, आचाराङ्गरूप आचारका जो प्रकल्प है, वह आचार प्रकल्प है, यह आचारप्रकल्प निशीथ नामक अध्ययन विशेष रूप है यह पूर्वोक्त रूपसे पांच प्रकारका है, क्योंकि यह प्रायश्चित्तका प्ररूपक होताहै, वह मासिक उद्घातिक कहलाताहै, इसे लघुमास प्रायश्चित्त कहा गयाहै। कहा भीहै—

' अद्धेण छिन्नसेसं ' इत्यादि।

मासिक तपकी अपेक्षासे इस गाथाका ऐसा अर्थहै, मासके आधे दिन पन्द्रह दिन होतेहैं, मासकी अपेक्षासे २५ दिनात्मक पूर्वतपके आधे१२॥ दिन होतेहैं, १५और१२॥ साढे बारहको परस्परमें जोड़नेसे२७॥साडेसताईस होतेहैं। लघु प्रायश्चित्त यदि एक मासका देना हो तो वह२७॥दिनकाही

પ્રાયશ્ચિત્ત રૂપ પ્રકૃષ્ટ કલ્પ જ્યાં હોય છે, તે પ્રકલ્પ છે. આચારાંગ રૂપ આચારનો જે પ્રકલ્પ છે, તેનું નામ આચાર પ્રકલ્પ છે તે આચાર પ્રકલ્પ નિશીથ નામના અધ્યયન વિશેષરૂપ છે તેના પૂર્વોક્ત પાંચ પ્રકારો કહ્યાં છે તે પ્રાયશ્ચિત્તની પ્રરૂપણા કરે છે માસિક ઉદ્ઘાતિકને લઘુમાસ પ્રાયશ્ચિત્ત પણ કહે છે. કહ્યું પણ છે કે " अद्धेण छिन्न सेसं " ઇત્યાદિ—

માસિક તપની અપેક્ષાએ આ ગાથાનો અર્થ આ પ્રમાણે થાય છે—માસથી અર્ધો દિવસ એટલે ૧૫ દિવસ થાય છે. માસની અપેક્ષાએ ૨૫ દિનાત્મક પૂર્વતપના અર્ધા દિવસો ૧૨॥ થાય છે. ૧૫ અને ૧૨॥ નો સરવાળો

दिनानि भवन्ति । एतावद्दिनात्मकं मासिकं लघुप्रायश्चित्तं दातव्यम् । गुरु प्रायश्चित्तं तु मासावधिकमेव दातव्यमिति ॥१॥

तथा–मासिकम् अनुद्घातिकम् न उद्घातिकम् अनुद्घातिकम्–यथाश्रुतप्रायश्चित्तं गुरुप्रायश्चित्तमित्यर्थः । एतत् त्रिंशद्दिनप्रमाणं भवतीति ॥२॥

तथा–चातुर्मासिकम् चतुर्भिर्मासैर्निर्वृत्तम् चातुर्मासिकं तद्रूपम् उद्घातिकम्–लघुचतुर्मासप्रायश्चित्तमित्यर्थः ॥३॥ तथा–चातुर्मासिकम् अनुद्घातिकम्=गुरु चतुर्मासप्रायश्चित्तमित्यर्थः ॥४॥ तथा–आरोपणा–आरोप्यते इत्यारोपणा–प्रायश्चित्तानामुपर्युपर्यारोपणं यावत् षण्मासान्, तत ऊर्ध्वं तु भगवतो महावीरस्वामिनस्तीर्थे आरोपणा न भवति ।

अयं भावः–"आरोवणाचडावणत्तिभाणियं होइ"

छाया–आरोपणा आरोहणेति भाणितं भवति=इति । यो हि यथाप्रतिसेवितमालोचयति तस्य प्रतिसेवना–निष्पन्नमेव मासलघुमासगुरुप्रभृतिकं दीयते,

देना चाहिये और गुरु प्रायश्चित्त दिया जावे तो वह तो एक पूरे मास तकका ही देना चाहिये १ तथा–मासिक अनुद्घातिक गुरु प्रायश्चित्त रूप होता है, और यह तीस दिनका होता है, जो प्रायश्चित्त चातुर्मासिक उद्घातिक होता है, वह ३ मास २७॥ दिनका होता है, इसे लघु चातुर्मासिक प्रायश्चित्त भी कहा गया है, जो प्रायश्चित्त चातुर्मासिक अनुद्घातिक होता है, वह गुरु चातुर्मासिक होता है, अर्थात् पूरे चार मासका होता है, प्रायश्चित्तोंके ऊपर जो प्रायश्चित्त ६ मास तक लगातार दिये जाते हैं, वह आरोपणा है, इसके बाद महावीर स्वामीके शासनमें आरोपणा नहीं होती है, भाव यह है, "आरोवणा चडावणत्ति भाणियं होइ" आरोपणा आरोहणा कही गई है, जो प्राणी जैसे

૨૭॥ સાડીસત્યાવીસ આવે છે જો એક માસનું લઘુપ્રાયશ્ચિત્ત દેવું હોય તો પૂરા ૩૦ દિવસનું દેવાને બદલે ૨૭॥ સાડીસત્યાવીસ દિવસનું દેવું જોઈએ, જો ગુરુપ્રાયશ્ચિત્ત દેવું હોય તો તે પૂરા ૩૦ દિવસનું હોવુ જોઈએ. આ પ્રકારના ૩૦ દિવસના પ્રાયશ્ચિત્તને માસિક અનુદ્ઘાતિક કહે છે. જે પ્રાયશ્ચિત્ત ૩ માસ ૨૭॥ દિવસનું દેવામાં આવે છે તેને લઘુચાતુર્માસિક અથવા ચાતુર્માસિક ઉદ્ઘાતિક કહે છે પૂરા ચાર માસના પ્રાયશ્ચિત્તને ચાતુર્માસિક અનુદ્ઘાતિક અથવા ગુરુચાતુર્માસિક કહે છે. સતત ૭ માસ પર્યન્તનું જે પ્રાયશ્ચિત્ત દેવામાં આવે છે તેનું નામ આરોપણા છે. મહાવીર પ્રભુના શાસનમાં તેટલા સમય કરતાં વધારે સમયની આરોપણા દેવામાં આવતી નથી. "આરોવણા ચડાવણત્તિભાણિય હોઇ" આરોપણાને આરોહણ કહેવામાં આવે

यस्तु न तथा तस्य तत्तावद् दीयत एव माया निष्पन्नं चान्यदारोप्यते इत्यारोपणेति। आचारप्रकल्पस्य केषुचिदुद्देशकेषु लघुमासप्रायश्चित्तं प्ररूप्यते, केषुचित् गुरुमासप्रायश्चित्तम्, केषुचिद् लघुचतुर्मासप्रायश्चित्तं, केषुचिद् गुरु चतुर्मासप्रायश्चित्तम्, केषुचित् आरोपणा। इति पञ्चविधप्रायश्चित्तप्ररूपकत्वादयमाचारप्रकल्पः पञ्चविधो बोध्य इति। अत्र आरोपणा आचारप्रकल्पस्य पञ्चमभेदत्वेनोक्ताः तस्या एव सम्प्रति पञ्चविधत्वमाह—' आरोवणा पंचविहा ' इत्या-

दोषका सेवन करता है, वह उसकी आलोचना उसीके अनुसार करता है, तो उसे उस प्रतिसेवनाके अनुसारही मास लघु मासगुरु आदि प्रायश्चित्त दिये जाते हैं, और जो प्रतिसेवित दोषके अनुसार आलोचना नहीं करता है, उसे प्रायश्चित्त तो दियाही जाता है, परन्तु उस प्रायश्चित्तमें मायासे निष्पन्न हुए अन्य प्रायश्चित्तकी आरोपणा की जाती है, इस प्रकारसे यह आरोपणा होती है, आचार प्रकल्पके किन्हीं २ उद्देशकोंमें लघुमास प्रायश्चित्त प्ररूपित्त हुआ है, किन्हीं २ उद्देशकोंमें गुरुमास प्रायश्चित्त प्ररूपित हुआ है, और किन्हीं २ उद्देशकोंमें आरोपणा प्ररूपित हुई है, इस तरहसे पांच प्रकारके प्रायश्चित्तोंका प्ररूपक होनेसे यह आचारप्रकल्प पांच प्रकारका कहा गया है, ऐसा जानना चाहिये यहां आरोपणा आचार प्रकल्पके पञ्चम भेद रूपसे कही है, सो अब उसकेही सूत्रकार पांच भेद प्रकट करनेके लिये कहते हैं—

છે. જે જીવ જેવા દોષનું સેવન કરે છે, તે દોષની તેના દ્વારા તેને અનુરૂપ આલોચના કરાય છે–તેને પ્રતિસેવનાને અનુરૂપ જ માસલઘુ, માસગુરુ આદિ પ્રાયશ્ચિત્ત દેવામાં આવે છે. જે માણસ પ્રતિસેવિત દોષને અનુરૂપ આલોચના કરતો નથી, તેને પ્રાયશ્ચિત્ત તો દેવામાં આવે જ છે, પરન્તુ તે પ્રાયશ્ચિત્તમાં માયાથી નિષ્પન્ન થયેલા અન્ય પ્રાયશ્ચિત્તની આરોપણા કરાય છે આ પ્રકારનું તે આરોપણાનું સ્વરૂપ હોય છે. આચાર પ્રકલ્પના કોઈ કોઈ ઉદ્દેશકોમાં લઘુમાસ પ્રાયશ્ચિત્તની પ્રરૂપણા કરવામાં આવી છે, કોઈ કોઈ ઉદ્દેશકોમાં ગુરુમાસ પ્રાયશ્ચિત્તની, કોઈ કોઈ ઉદ્દેશકોમાં લઘુ ચાતુર્માસ પ્રાયશ્ચિત્તની, કોઈ કોઈ ઉદ્દેશકોમાં ગુરુ ચાતુર્માસ પ્રાયશ્ચિત્તની અને કોઈ કોઈ ઉદ્દેશકોમાં આરોપણાની પ્રરૂપણા કરવામાં આવી છે. આ રીતે પાંચ પ્રકારના પ્રાયશ્ચિત્તોનું પ્રરૂપક હોવાને કારણે આ આચાર પ્રકલ્પને પાંચ પ્રકારનો કહેવામાં આવેલ છે, એમ સમજવું. અહીં આરોપણાને આચાર પ્રકલ્પના પાંચમાં ભેદ રૂપે પ્રકટ કરવામાં આવી છે.

હવે સૂત્રકાર તે આરોપણાના પાંચ ભેદો પ્રકટ કરે છે.

दिना। आरोपणा हि प्रस्थापितादिभेदैः पञ्चविधा भवति। तत्र-प्रस्थापिता-आरोपणीयेषु बहुषु प्रायश्चित्तेषु सत्सु यद् लघुमासगुरुमासादिप्रायश्चित्तेषु कस्यचिदेकस्य प्रस्थापना सा प्रस्थापितेत्युच्यते ॥१॥ तथा-स्थापिता-यः कश्चित् मासगुर्वादिप्रायश्चित्तार्हो भवति, स गुरोर्वैयावृत्त्यं करोति, अतस्तस्य प्रायश्चित्त वैयावृत्त्यसमाप्तिं यावत् स्थापितम्, ततः पश्चात् स प्रायश्चित्तं करिष्यतीत्येषा स्थापितेत्युच्यते ॥२॥ तथा-कृत्स्ना-यत्र झोषो न क्रियते सा। झोपस्त्वयम्-भगवतो महावीरस्वामिनस्तीर्थे षण्मासान्तमेव तपो भवति षण्णां मासानामुपरि ये

"आरोवणा पंचविहा" इत्यादि।

यह आरोपणा प्रस्थापित आदिके भेदसे पांच प्रकारकी होती है, इनमें जो आरोपणा आरोपणीय अनेक प्रायश्चित्तोंके होने पर लघुमास गुरुमास आदि प्रायश्चित्तोंमेंसे किसी एक प्रायश्चित्तके प्रस्थापनारूप होती है, वह आरोपणा "प्रस्थापिता" इस रूपसे कही गई है, तथा जो कोई मासगुरु आदि प्रायश्चित्तके योग्य होता है, वह पहिले गुरुकी वैयावृत्ति करता है, अतः जबतक वैयावृत्तिकी समाप्ति नहीं हो जाती है, तब तक उसका प्रायश्चित्त स्थापित रहता है, इसके बाद वह प्रायश्चित्त करता है, इस तरहसे यह आरोपणा स्थापितारूप कही गई है, तथा जिस आरोपणामें झोष नहीं किया जाता है, वह आरोपणा कृत्स्ना आरोपणा है, झोषका अभिप्राय ऐसा है, कि भगवान् महावीर स्वामीके तीर्थमें छह मास तकही तप होता है, छह मासके बाद जो मास अप-

---

"આરોવણા પંચવિહા" ઈત્યાદિ—

તે આરોપણાના પ્રસ્થાપિત આદિ પાંચ ભેદ કહ્યાં છે જે આરોપણા, આરોપણીય અનેક પ્રાયશ્ચિત્તોનો સદ્‌ભાવ હોય ત્યારે લઘુમાસ, ગુરુમાસ આદિ પ્રાયશ્ચિત્તોમાંથી એક પ્રાયશ્ચિત્તની પ્રસ્થાપના રૂપ હોય છે, તે આરોપણાને 'પ્રસ્થાપિતા' કહે છે. તથા જે કોઈ સાધુ માસગુરુ આદિ પ્રાયશ્ચિત્તને યોગ્ય હોય છે, તે પહેલાં ગુરુનું વૈયાવૃત્ય કરે છે, તેથી જ્યાં સુધી વૈયાવૃત્તિની સમાપ્તિ થઈ જતી નથી, ત્યાં સુધી તેનું પ્રાયશ્ચિત્ત સ્થાપિત રહે છે, ત્યારબાદ તે પ્રાયશ્ચિત્ત કરે છે. આ રીતે આ આરોપણાને 'સ્થાપિતા' રૂપ કહેવામાં આવી છે. તથા જે આરોપણામાં 'ઝોષ' કરાતો નથી તે આરોપણાને "કૃત્સ્ના આરોપણા" કહે છે. ઝોષનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે—

મહાવીર પ્રભુના તીર્થમાં ૭ માસ સુધીનું જ પ્રાયશ્ચિત્ત આપી શકાય

मासा अपराधिनो भवन्ति, तेषां क्षपणं भवति, अर्थात् षण्मासाधिकमासानां प्रायश्चित्तमपराधिषु नारोप्यते। किमिव? यथा प्रस्थे धान्ये मातव्ये तदधिकधान्यस्यापतनं भवति तद्वदिवेति। षण्मासाधिकमासानां यत्प्रायश्चित्तानारोपणं स एव झोषो बोध्यः। तस्याभावेन परिपूर्णत्वादियं कृत्स्नेत्युच्यते इति ॥३॥

तथा—अकृत्स्ना—यत्र षण्मासाधिकमासानां प्रायश्चित्तं नारोप्यते इति सा अपरिपूर्णत्वात् अकृत्स्नेत्युच्यते, इति ॥४॥ तथा—हाडहडा—यस्यापराधिनो लघुगुरुमासादिप्रायश्चित्तेषु यत् प्रायश्चित्तं प्राप्तं, तत् तस्मिन्नेव काले तस्मि-

राधीके होतेहैं, उसकी क्षपणा हो जातीहै, अर्थात् अपराधियोंमें छह माससे अधिक मासोंका प्रायश्चित्त आरोपित नहीं होता है, जैसे—जिस प्रस्थमें (मापविशेष) जितना धान्य समानेके योग्य होताहै, उस प्रस्थमें उतनाही धान्य समाता है, अधिक धान्य वहांसे गिर जाता है, इस तरह छह माससे अधिक मासोंके प्रायश्चित्तको जो अनारोपणा है, वही झोष है, इसके अभावसे छह माससे अधिक प्रायश्चित्त देनेके अभावसे यह आरोपणा पूर्ण होनेके कारण कृत्स्ना आरोपणा कही जाती है। जिसमें छ माससे अधिक मास का प्रायश्चित्त की आरोपणा नहीं की जातीहै वह अपरिपूर्ण होनेसे "अकृत्स्ना" आरोपणा कही जातीहै. तथा हाडहडा जो आरोपणा है, वह ऐसी है कि जिस अपराधीके लघुमास गुरुमास आदि प्रायश्चित्तोंमेंसे जो प्रायश्चित्त हो वह उसी कालमें उसमें

છે અપરાધીને છ માસથી વધારે માસનુ પ્રાયશ્ચિત્ત આપી શકાતું નથી ૬ માસ કરતાં વધારે સમયનું પ્રાયશ્ચિત્ત આરોપિત કરી શકાતુ નથી. જેમ કોઈ પાત્રમાં જેટલુ ધાન્ય સમાઈ શકે તેમ હોય એટલું જ ધાન્ય તેમાં ભરી શકાય છે, પરન્તુ જો તેથી વધારે ધાન્ય તેમાં નાખવામાં આવે તો તે પાત્રમાંથી બહાર નીકળી જાય છે, એજ પ્રમાણે છ માસથી વધારે માસના પ્રાયશ્ચિત્તની જે અનારોપણા છે, તેનું નામ જ "ઝોષ" છે. છ માસથી અધિક સમયના પ્રાયશ્ચિત્તનો અભાવ હોવાને કારણે, તે આરોપણા (છ માસના પ્રાયશ્ચિત્ત રૂપ આરોપણા) પૂર્ણ હોવાને કારણે તેને 'કૃત્સ્ના આરોપણા' કહે છે. 'જેમાં છ મહીનાથી વધારે મહિનાનું પ્રાયશ્ચિત્તની આરોપણા કરવામાં આવતી નથી તે અપરિપૂર્ણ હોવાથી "અકૃત્સ્ના આરોપણા કહેવાય છે. હાડહડા આરોપણા' આ પ્રકારની છે—જે અપરાધીને લઘુમાસ, ગુરુમાસ આદિ પ્રાયશ્ચિત્તોમાંથી જે પ્રાયશ્ચિત્ત દેવાનું હોય, તે પ્રાયશ્ચિત્ત એજ કાળે તે અપરાધીમાં આરોપિત કરવામાં આવે છે, તેથી તે આરોપણાને

न्नारोप्यते इति सा ' हाडहडा ' इत्युच्यते । कृतापराधस्य सद्य एव यत्प्रायश्चित्तारोपणा सा ' हाडहडे 'ति भावः ॥सू० २३॥

संयतासंयतसम्बन्धितया सूत्राणि प्रागभिहितानि, तत्र संयतासंयतगतवस्तुविशेषाः प्रोक्ताः, तेषां व्यतिकरस्तु मनुष्यक्षेत्र एव भवतीति मनुष्यक्षेत्रस्थान् पदार्थविशेषानाह—

मूलम्—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमेणं सीयाए महानईए उत्तरेणं पंच वक्खारपव्वया पण्णत्ता, तं जहा—मालवंते, १ चित्तकूडे २ पम्हकूडे ३ णलिणकूडे ४ एगसेले ५ ॥१॥ जंबू मंदरस्स पुरत्थिमेणं सीयाए महानईए दाहिणेणं पंच वक्खारपव्वया पण्णत्ता, तं जहा—तिकूडे १ वेसमणकूडे २ अंजणे ३ मायंजणे ४ सोमणसे ५ ॥२॥ जंबू मंदरस्स पच्चत्थिमेणं सीओदाए महाणईए दाहिणेणं पंच वक्खारपव्वया पण्णत्ता, तं जहा—विज्जुप्पभे १ अंकावई २ पम्हावई ३ आसीविसे ४ सुहावहे ५ ॥ ३ ॥ जंबू मंदरस्स पच्चत्थिमेणं सीओदाए महाणईए उत्तरेणं पंच वक्खारपव्वया पण्णत्ता, तं जहा—चंदपव्वए १ सूरपव्वए २ णागपव्वए ३ देवपव्वए ४ गंधमायणे ५ ॥४॥ जंबूमंदरदाहिणेणं देवकुराए कुराए पंच महद्दहा पण्णत्ता, तं जहा—निसहदहे १ देवकुरुदहे २ सूरदहे ३ सुल-

आरोपित किया जाता है, इसलिये यह " हाडहडा " कही गई है, तात्पर्य यह है, कि जिसने जो अपराध किया है, उस अपराधकी उसी समय जो प्रायश्चित्तकी आरोपणा है, वह हाडहडाआरोपणा है सू. २३॥

" હાડહડા " કહી છે. એટલે કે જેણે જે અપરાધ કર્યો હોય તે અપરાધના પ્રાયશ્ચિત્તની એ જ સમયે જે આરોપણા કરવામાં આવે છે તેને " હાડહડા આરોપણા " કહી છે. ॥ સૂ. ૨૩ ॥

सद्दहे ४ विज्जुप्पभद्दहे ५ ॥५॥ जंबू मंदरस्स उत्तरकुराए कुराए पंच महद्दहा पण्णत्ता, तं जहा-नीलवंतदहे १ उत्तरकुरुदहे २ चंददहे ३ एरावणदहे ४ मालवंतदहे ५॥६॥ सव्वे वि णं वक्खारपव्वया सीया सीओयाओ महाणईओ मंदरं वा पव्वयंतेणं पंच जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पंच गाउयसयाइं उव्वेहेणं ॥७॥ धायइसंडे दीवे पुरत्थिमद्धेणं मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमेणं सीयाए महाणईए उत्तरेणं पंच वक्खारपव्वया पण्णत्ता, तं जहा-मालवंते, एवं जहा--जंबूदीवे तहा जाव पुक्खरवरदीवड्ढपच्चत्थिमद्धे वक्खारा दहा य उच्चत्तं भाणियव्वं । समयखेत्ते णं पंच भरहाइं पंच एरवयाइं एवं जहा चउट्ठाणे बिइयउद्देसे तहा एत्थ वि भाणियव्वं जाव पंच मंदरा पंच मंदरचूलियाओ, णवरं उसुयारा णत्थि ॥ सू० २४ ॥

छाया—जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पौरस्त्ये सीताया महानद्या उत्तरे पञ्च वक्षस्कारपर्वताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—माल्यवान, १ चित्रकूटः, २ पद्मकूटः, ३ नलिनकूटः, ४ एकशैलः ५ ॥१॥

संयत असंयतके सम्बन्धके सूत्र सूत्रकारने पहिले कह दिये हैं, उनमें संयत असंयत गत जो वस्तुविशेष कहे गये हैं, उनका व्यतिकर सम्बन्ध या सद्भाव मनुष्यक्षेत्रमेंही होता है, इस कारण अब सूत्रकार मनुष्यक्षेत्रगत पदार्थ विशेषोंका कथन करते हैं—

સંયત અને અસંયત વિષયક સૂત્રની પ્રરૂપણા સૂત્રકારે પહેલાં કરેલી છે. તે સૂત્રોમાં સંયત અસંયત જે વસ્તુવિશેષ કહેવામાં આવેલ છે તેમનો વ્યતિકર સંબંધ અથવા સદ્ભાવ તો મનુષ્યક્ષેત્રમાં જ સંભવી શકે છે તેથી હવે સૂત્રકાર મનુષ્યક્ષેત્રમાં રહેલા કેટલાક પદાર્થવિશેષોનું કથન કરે છે—

जम्बू मन्दरस्य पौरस्त्ये सीताया महानद्या दक्षिणे पञ्च वक्षस्कारपर्वताः, प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–त्रिकूटः १, वैश्रमणकूटः, २ अञ्जनः, ३ मायाञ्जन', ४ सौमनसः ५ ॥२॥ जम्बूमन्दरस्य पाश्चात्ये सीतोदाया महानद्या दक्षिणे पञ्च वक्षस्कार पर्वताः प्रज्ञप्ताः तद्यथा विद्युत्प्रभः १, अङ्कावती, २ पद्मावती ३, आशीविषः ४, सुखावहः ५ ॥३॥ जम्बू मन्दरस्य पाश्चात्ये सीतोदाया महानद्या उत्तरे पञ्च वक्षस्कारपर्वताः, प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-चन्द्रपर्वतः, १ सूरपर्वत , २ नागपर्वतः, ३ देवपर्वतः, ४ गन्धमादनः ५ ॥४॥

जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स इत्यादि सू० २४ ॥

सूत्रार्थ–जंबूद्वीप नामके इस द्वीपमें मन्दर(मेरु) पर्वतकी पूर्वदिशामें सीता महानदीकी उत्तर दिशामें पांच वक्षस्कार पर्वत कहे गये हैं उनके नाम इस प्रकारसेहैं–माल्यवान्१ चित्रकूट २ पद्मकूट३ नलिनकूट४ और एकशैल५। जम्बूद्वीपस्थ मन्दर (मेरु) पर्वतकी पूर्व दिशामें सीता महानदीकी दक्षिण दिशामें पांच वक्षस्कार पर्वत कहे गये हैं–उनके नाम इस प्रकारसे हैं–त्रिकूट १ वैश्रमण कूट २ अञ्जन ३ मायाञ्जन४ और सौमनस५

जम्बूद्वीपस्थ महामन्दर पर्वतकी पश्चिम दिशामें सीतोदा महानदीकी दक्षिण दिशामें पांच वक्षस्कार पर्वत कहे गये हैं–उनके नाम इस प्रकारसे हैं–विद्युत्प्रभ १ अङ्कावती २ पद्मावती ३ आशीविष ४ और सुखावह ५ जम्बूद्वीपस्थ मन्दर पर्वतकी पश्चिम दिशामें सीतोदा महानदीकी उत्तर दिशामें पांच वक्षस्कार पर्वत कहे गये हैं। जैसे–चन्द्रपर्वत १ सूर पर्वत २ नाग पर्वत ३ देवपर्वत ४ और गन्धमादन पर्वत ५

"जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स" ઇત્યાદિ—

સૂત્રાર્થ–જંબૂદ્વીપ નામના આ દ્વીપમાં મન્દર પર્વતની પૂર્વ દિશામાં વહેતી સીતા મહાનદીની ઉત્તર દિશામાં પાંચ વક્ષસ્કાર પર્વતો આવેલા છે. તેમનાં નામ આ પ્રમાણે છે—(૧) માલ્યવાન્, (૨) ચિત્રકૂટ, (૩) પદ્મકૂટ, (૪) નલિનકૂટ અને (૫) એકશૈલ

જંબૂદ્વીપમાં આવેલા મન્દર પર્વતની પૂર્વ દિશમાં વહેતી સીના મહાનદીની દક્ષિણ દિશામાં પાંચ વક્ષસ્કાર પર્વતો આવેલા છે તેમનાં નામ આ પ્રમાણે છે-(૧) ત્રિકૂટ, (૨) વૈશ્રમણકૂટ, (૩) અંજન, (૪) માયાજન અને (૫) સૌમનસ.

જંબૂદ્વીપના મન્દર પર્વતની પશ્ચિમ દિશામાં આવેલી સીતોદા મહાનદીની દક્ષિણ દિશામાં પંચ વક્ષસ્કાર પર્વતો આવેલા છે તેમનાં નામ આ પ્રમાણે છે—(૧) વિદ્યુત્પ્રભ, (૨) અંકાવતી, (૩) પદ્માવતી, (૪) આશીવિષ અને (૫) સુખાવહ.

जम्बू मन्दरदक्षिणे देवकुरोः कुरोः पञ्च महाह्रदाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–निषध-ह्रदः १, देवकुरुह्रदः, २ सूरह्रदः, ३ सुलस ह्रदः ४ विद्युत्प्रभ ह्रदः ५ ॥५॥ जम्बू मन्दरस्योत्तरकुरुषु कुरुषु पञ्च महाह्रदाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–नीलवद् ह्रदः, १ उत्तर–कुरुह्रदः, २ चन्द्रह्रदः, ३ ऐरावणह्रदः, ४ माल्यवद् ह्रदः ५ ॥६॥ सर्वेऽपि खलु वक्षस्कारपर्वताः सीता सीतोदे महानद्यौ मन्दरं वा पर्वतं प्रति पञ्च योजनशतानि ऊर्ध्वमुच्चत्वेन पञ्च गव्यूतिशतानि उद्वेधेन ॥७॥ धातकीखण्डे द्वीपे पौरस्त्यार्द्धे खलु मन्दरस्य पर्वतस्य पौरस्त्ये सीताया महानद्या उत्तरे पञ्च वक्षस्कार-

---

जम्बूद्वीपस्थ मन्दर पर्वतकी दक्षिण दिशामें देवकुरुमें पांच महाहूद कहे गयेहैं–उनके नाम इस प्रकारसेहैं–निषध ह्रद (द्रह) १ देवकुरु ह्रद २ सूर ह्रद ३ सुलस हूद ४ और विद्युत्प्रभ ह्रद ५। जम्बूद्वीपस्थ मन्दर पर्वतके उत्तर कुरुमें पांच महाहूद कहे गये हैं उनके नाम इस प्रकारसे हैं नीलवत् हूद १ उत्तरकुरु हूद २ चन्द्र ह्रद ३ ऐरावण ह्रद ४ और माल्यवद् ह्रद ५ समस्त वक्षस्कार पर्वत सीता सीतोदा महानदियोंकी तरफ और मन्दर पर्वतकी तरफ पांचसौ योजन ऊँचे हैं और उद्वेधसे (भूमिके अन्दर गहराइमें) पांचसौ गव्यूति (दो कोस) प्रमाण हैं।

धातकी खण्ड द्वीपमें पौरस्त्यार्धमें मन्दर(मेरु)पर्वतके पूर्वदिशामें सीता महानदीके उत्तरमें पांच वक्षस्कार पर्वत कहे गये हैं उनके नाम इस

જંબૂદ્વીપના મન્દર પર્વતની પશ્ચિમ દિશામાં આવેલી સીતોદા મહા નદીની ઉત્તર દિશામાં પાંચ વક્ષસ્કાર પર્વતો છે. તેમનાં નામ આ પ્રમાણે છે—(૧) ચન્દ્ર પર્વત, (૨) સૂર પર્વત, (૩) નાગ પર્વત, (૪) દેવ પર્વત અને (૫) ગન્ધમાદન પર્વત.

જંબૂદ્વીપમાં આવેલા મન્દર પર્વતની દક્ષિણ દિશામાં આવેલા દેવકુરુમાં પાંચ મહાહ્રદ છે. તેમનાં નામ આ પ્રમાણે છે --(૧) નિષધ હ્રદ, (૨) દેવકુરુ હ્રદ, (૩) સૂર હ્રદ, (૪) સુલસ હ્રદ અને (૫) વિદ્યુત્પ્રભ હ્રદ

જંબૂદ્વીપના મન્દર પર્વતની ઉત્તર દિશામાં આવેલા ઉત્તરકુરુમાં પણ નીચે પ્રમાણે પાંચ મહાહ્રદ છે—(૧) નીલવત્ હ્રદ, (૨) ઉત્તરકુરુ હ્રદ, (૩) ચન્દ્ર હ્રદ, (૪) ઐરાવણ હ્રદ અને (૫) માલ્યવત્ હ્રદ.

સમસ્ત વક્ષસ્કાર પર્વતો સીતા અને સીતોદા મહાનદીઓની તરફ અને મન્દર પર્વતની તરફ ૫૦૦ યોજન ઊંચા છે, અને તેમનો ઉદ્વેધ (જમીનની અંદરની ઊંડાઈ) ૫૦૦ ગવ્યૂતિપ્રમાણ છે.

ધાતકીખંડ દ્વીપના પૂર્વાર્ધમાં મન્દર પર્વતની પૂર્વ દિશામાં સીતા મહા નદીની ઉત્તરે પાંચ વક્ષસ્કાર પર્વતો આવેલા છે તેમનાં નામ આ પ્રમાણે છે.

पर्वताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–माल्यवान् एवं यथा जम्बूद्वीपे तथा यावत् पुष्करवर द्वीपार्द्धपाश्चात्यार्द्धे वक्षस्कारा ह्रदाश्च उच्चत्वं भणितव्यम् ॥८॥ समयक्षेत्रे खलु पञ्चभरतानि पञ्च ऐरावतानि। एवं यथा चतुःस्थाने द्वितीयोद्देशे तथा अत्राऽपि भणितव्यं यावत् पञ्च मन्दराः पञ्च मन्दरचूलिकाः। नवरम् इषुकारा न सन्ति॥सू०२४॥

टीका—' जंबुद्दीवे ' इत्यादि—

व्याख्या सुगमा, तथापि किंचिदत्र लिख्यते–वक्षसि=मध्ये गोप्यं क्षेत्रं द्वौ संभूय कुर्वन्ति ये ते वक्षस्कारा गजदन्तापरपर्यायाः पर्वतविशेषाः। ते च माल्यवतो गजदन्तकाद् प्रदक्षिणया चतुर्दिक्षु वर्तमानाः चतुःसूत्रोक्ता विंशतिसंख्यकाः

प्रकारसे हैं–माल्यवान् इत्यादि इनका नाम जैसा जम्बूद्वीपके प्रकरणमें कहा गया है, वैसाही है, पुष्करवरद्वीपार्द्धमें और पाश्चात्यार्द्धमें वक्षस्कारों का ह्रदों का और इन की – वक्षस्कार पर्वतों की ऊंचाई का कथन पहिले की तरहसेही कहना चाहिये। समयक्षेत्रमें पांच भरत और पांच ऐरवत क्षेत्रहैं। चतुःस्थानमें द्वितीय उद्देशे में जैसा कहा गया है, वैसा यहाँ पर भी कह लेना चाहिये यावत् पांच मन्दर और पांच मन्दर चूलिकाएँ हैं, विशेषता केवल इतनीसीही है, कि इषुकार नहीं हैं।

टीकार्थ–इसकी व्याख्या सुगम है, तब भी कुछ इस विषयमें लिखा जाता है, वक्षस्कार पर्वतोंका दूसरा नाम गजदन्त भी है, यह विशेष पर्वत है। इनका वक्षस्कार ऐसा नाम इसलिये हुआ है कि ये दो एकत्रित होकर अपने मध्यमें क्षेत्रको गोप्य करते हैं। ये माल्यवान्

માલ્યવાન્ ઇત્યાદિ નામ જંબૂદ્વીપના પ્રકરણમાં ઉપર કહ્યા અનુસાર સમજવા. પુષ્કરવરદ્વીપાર્ધમાં અને પશ્ચિમાર્ધમાં વક્ષસ્કારોનું, હ્રદોનું અને વક્ષસ્કાર પર્વતની ઊંચાઇનું કથન આગળના કથન પ્રમાણે જ સમજવું. સમયક્ષેત્રમાં પાંચ ભરત અને પાંચ ઐરવતક્ષેત્ર છે ચતુઃસ્થાનકના બીજા ઉદ્દેશામાં તેમને વિષે જેવું કથન કરવામા આવ્યુ છે એવું જ કથન અહીં પણ કરવું જોઇએ.

આ રીતે " પાંચ મન્દર અને પાંચ મન્દર ચૂલિકાઓ છે, " ત્યાં સુધીનું કથન ગ્રહણ કરવું જોઇએ. અહીં કેવળ એટલી જ વિશેષતા છે કે અહીં ઇષુકારનો સદ્ભાવ નથી

ટીકાર્થ–આ સૂત્રની વ્યાખ્યા સુગમ હોવા છતાં પણ અહીં તેમનું થોડું સ્પષ્ટીકરણ કરવામાં આવે છે. વક્ષસ્કાર પર્વતોનું બીજું નામ ગજદન્ત પણ છે. તે પર્વતોને વક્ષસ્કાર કહેવાનું કારણ એ છે કે તે બે પહાડો એકત્ર થઇને તેમની વચ્ચેના ક્ષેત્રને ગોપ્ય (અદૃશ્ય) કરે છે. તેઓ માલ્યવાન્

सन्ति । तथा-देवकुरुषु निषधवर्षधरपर्वतात् उत्तरस्यां दिशि सप्तभागविभिन्नस्यैकस्य योजनस्य चतुरो भागान् चतुस्त्रिंशदधिकानि अष्टशतयोजनानि गत्वा शीतोदाया महानद्याः पूर्वापरतटवर्त्तिनौ विचित्रकूटचित्रकूटनामानौ पर्वतौ स्तः । तयोः प्रत्येकपर्वत-उच्चत्वेन योजनसहस्रप्रमाणः, मूले सहस्रयोजनायामविष्कम्भयुक्तः, उपरितनप्रदेशे च पञ्चशतयोजनायामविष्कम्भयुक्तः। तौ च पर्वतौ प्रासादपरिमण्डितौ स्व स्वनामसदृशविचित्रकूटचित्रकूटनामक देव निवासभूतौ विज्ञेयौ । ततस्ताभ्यां पर्वताभ्यां पूर्वोक्तान्तर्ययुक्तः शीतोदा महानदी मध्यभागवर्ती दक्षिणोत्तरतः सहस्रयोजनान्यायतः पूर्वापरतः पञ्चशतयोजनानि

गजदन्तसे प्रदक्षिणा करते हुए चारों दिशामें स्थित हैं। यहां चारों सूत्रों द्वारा ये बीस कहे गये हैं । तथा-देवकुरुओंमें निषध वर्षधर पर्वतसे उत्तर दिशामें एक योजनके सात भागमेंसे चार भाग अधिक ८३४ योजन तक आगे जाकर शीतोदा महानदीके पूर्व और पश्चिम तट पर स्थित विचित्रकूट और चित्रकूट नामके दो पर्वत हैं । इनमें प्रत्येक पर्वतकी ऊंचाई १ हजार योजनकी है, मूलमें प्रत्येक पर्वतका आयाम और विष्कंभ एक हजार योजनका है, और ऊपरका इनका प्रदेश पांचसौ योजनका लम्बा चौड़ा है, ये दोनों पर्वत प्रासादोंसे मण्डित हैं, और अपने २ नामके जैसे विचित्रकूट एवं चित्रकूट नामवाले देवोंके ये निवासस्थानरूपहैं । इन दोनों पर्वतोंसे आगे पूर्वोक्त आन्तर्यसे युक्त शीतोदा महानदीके मध्य भागमें रहा हुआ दक्षिणसे उत्तर तक एक हजार योजनका आयामवाला पूर्वसे पश्चिम तक पांचसौ योजनका

ગજદન્તની પ્રદક્ષિણા કરતા હોય એવી રીતે તેની ચારે દિશાઓમાં આવેલા છે. અહીં ચાર સૂત્રો દ્વારા એવાં ૨૦ વક્ષસ્કાર પર્વતો પ્રકટ કરવામાં આવ્યાં છે. તથા દેવકુરુઓમાં નિષધ વર્ષધર પર્વતથી ઉત્તર દિશામાં ૮૩૪/૪/૭ યોજનપ્રમાણ અંતરે શીતોદા મહાનદીના પૂર્વ અને પશ્ચિમ તટપર વિચિત્રકૂટ અને ચિત્રકૂટ નામના બે પર્વતો છે. તે પ્રત્યેક પર્વતની ઊંચાઈ ૧ હજાર યોજનની છે. તેમના મૂળભાગની લંબાઈ-પહોળાઈ ૧૦૦૦ યોજનની અને શિરોભાગની લંબાઈ-પહોળાઈ ૫૦૦ યોજનની કહી છે. તે બન્ને પર્વતો પ્રાસાદોથી મંડિત છે તે પર્વતો વિચિત્રકૂટ અને ચિત્રકૂટ નામના દેવોના નિવાસસ્થાન રૂપ છે. આ બન્ને પર્વતોથી આગળ જતા પૂર્વોક્ત આન્તર્યથી યુક્ત શીતોદા મહાનદીના મધ્યભાગમા રહેલું, દક્ષિણથી ઉત્તરમાં ૧૦૦૦ યોજનના આયામ (લંબાઈ) વાળું અને પૂર્વથી પશ્ચિમમાં ૫૦૦ યોજનની

विस्तीर्णो वेदिकावनषण्डद्वयवेष्टितो दश योजनानि भूमिमवगाढोऽर्द्धयोजन बाहल्यैकयोजनविष्कम्भात्मकेन नानामणिमयेन दशयोजननालेन अर्द्धयोजन-विस्तीर्णक्रोशोच्छ्रितकर्णिकायुक्तेन निषधनामकदेवनिवासभूतभवनविभूषित मध्येन तदर्द्धप्रमाणयुक्तैरष्टोत्तरशतसंख्यकैः पद्मैः तदितरैश्च सामानिकादि देवनिवासभूतैरनेकलक्षैः पद्मैः समन्तात् संपरिक्षिप्तेन महापद्मेन विराजन्मध्य-भागो निषधो नाम महाह्रदः। एवं देवकुरु ह्रदादयोऽपि तत्तद्ध्रदसमानदेव निवासभूता उक्तान्तर्ययुक्ता विज्ञेयाः। अत्रेदं बोध्यम्—नीलवन्महाह्रदः स्वस्वसमान नामकदेवनिवासभूताभ्यां विचित्रकूटचित्रकूटपर्वतवक्तव्यतासदृशवक्त-

विस्तारवाला वेदिका वनखण्डद्वयसे वेष्टित हुआ एवं १० योजन तक भूमिमें विस्तृत ऐसा निषध नामका महाह्रद है, यह महाह्रद आठ योजनके बाहल्यवाले एक योजनके विष्कंभवाले नाना मणियोंसे युक्त दश योजनके नालवाले आधे योजनकी विस्तारवाली एव एक कोशकी ऊंची ऐसी कर्णिकासे युक्त एवं जिसका मध्य भाग निषध नाम के देवके निवासभूत भवनसे विभूषित हैं, ऐसे एक महापद्मसे जिसका मध्यभाग विराजित हैं, ऐसा है। यह महापद्म अपने प्रमाणसे आधे प्रमाणवाले ऐसे १०८ पद्मोंसे (कमलों) एवं इनसे अतिरिक्त और भी अनेक लक्ष पद्मोंसे जो कि सामानिक आदि देवोंके निवासभूत हैं, चारों ओरसे घिरा हुआ है, इसी तरहसे देवकुरुह्रद आदि भी अपने २ समाननाम-वाले देवोंके निवासभूत हैं, और युक्त आन्तर्यवाले हैं, ऐसा जानना चाहिये। यहां ऐसा समझना—कि नीलवत् जो महाह्रद है, वह अपने समान

પહોળાઈવાળુ વેદિકા અને વનખંડદ્વયથી વેષ્ટિત એવું, અને ૧૦ યોજન સુધી ભૂમિમાં વિસ્તૃત એવું નિષધ નામનુ મહાહ્રદ છે. તે મહાહ્રદ આઠ યોજન લાંબા, એક યોજન પહોળા, વિવિધ મણિઓથી યુક્ત, ૧૦ યોજનની નાલ-વાળા, અર્ધા યોજનની વિસ્તારવાળી અને એક કોશ ઊંચી એવી કર્ણિકાથી યુક્ત અને જેનો મધ્યભાગ નિષધ નામના દેવના નિવાસસ્થાન રૂપ ભવનથી વિભૂષિત છે એવા એક મહાપદ્મથી યુક્ત છે તે મહાપદ્મ, તેના કરતાં અર્ધા પ્રમાણવાળા ૧૦૮ પદ્મોથી અને તે સિવાયના બીજા પણ અનેક લક્ષપદ્મોથી ઘેરાયેલુ છે તે પદ્મો સામાનિક આદિ દેવોના નિવાસસ્થાન રૂપ છે. એ જ પ્રમાણે દેવકુરુ હ્રદ આદિ હ્રદો પણ તેમના જેવા જ નામવાળા દેવોના નિવાસ-સ્થાન રૂપ છે, અને ઉપર્યુક્ત આન્તર્યવાળા છે એમ સમજવું.

व्यतायुक्ताभ्यां यमकाभिधानपर्वताभ्यामनन्तरं द्रष्टव्यः। ततो दक्षिणत उत्तर कुरु ह्रदादयश्चत्वारो ह्रदा बोध्या इति। एतेषु सर्वेषु महाह्रदेषु एकैको महाह्रदो दशभिर्दशभिः काञ्चनकनामकैः पर्वतैर्युक्तो विज्ञेयः। एते पर्वतास्तु शतयोजनो-च्छ्रिता मूले शतयोजनविष्कम्भयुक्ताः उपरि पञ्चाशद्योजनविस्तृता स्व समान नामकैर्देवैरधिष्ठिताः प्रत्येकं पूर्वापरतो दशयोजनान्तरेण व्यवस्थिता बोध्याः। एते ये विचित्रकूटादिपर्वतह्रदवासिनो देवाः सन्ति, तेषामसंख्येयतमजम्बू-द्वीपे द्वादशयोजनसहस्रप्रमाणास्तन्नामिका नगर्यो भवन्तीति बोध्यम्। एते वक्षस्कारपर्वताः कस्यां दिशि वर्तन्ते? इति प्ररूपयितुमाह–

नामवाले निवास भूत यमक नामके दो पर्वतोंके अन्तर बादमें है, इन दोनों पर्वतोंके सम्बन्धकी वक्तव्यता विचित्रकूट और चित्रकूटकी वक्त-व्यता जैसी है इससे दक्षिण दिशामें उत्तरकुरु ह्रदादि चार ह्रद हैं। इन समस्त महाह्रदोंमें एक एक महाह्रद दश दशका काञ्चन नामक पर्वतोंसे युक्त हैं। ये सब पर्वत १०० योजन हैं। मूलमें भी १०० योजनके ही विस्तारवाले हैं। तथा ऊपरमें इनका विस्तार पांचसौ योजनका है, और ये अपने २ जैसे नामवाले देवोंसे अधिष्ठित हैं, ये प्रत्येक पर्वत पूर्वसे पश्चिम तक १०–१० योजनके अन्तरसे व्यवस्थित हैं। ये विचित्रकूट आदि पर्वतवासी और ह्रदवासी जो देव हैं सो इनकी जम्बूद्वीपके असं-ख्यातवें भागमें १२ योजन प्रमाणवाली उनके नामवाली नगरियां हैं। ये वक्षस्कार पर्वत किस २ दिशामें हैं? इस बातकी प्ररूपणा करनेके

જેમકે જે નીલવત્ મહાહ્રદ છે તે નીલવત્ નામના દેવના નિવાસ રૂપ છે. તે મહાહ્રદ યમક નામના બે પર્વતો પછી આવે છે આ બન્ને પર્વતનું વર્ણન વિચિત્રકૂટ અને ચિત્રકૂટના વર્ણન પ્રમાણે જ સમજવું. તેની દક્ષિણ દિશામાં ઉત્તરકુરુ હ્રદ આદિ ચાર હ્રદ આવેલાં છે. તે પ્રત્યેક મહાહ્રદ દસ દસ કાંચન નામના પર્વતોથી યુક્ત છે તે બધાં પર્વતો ૧૦૦ યોજનના વિસ્તારવાળા છે. તેમનો વિસ્તાર મૂળભાગમાં ૧૦૦ યોજનનો અને ઉપરના ભાગમાં ૫૦૦ યોજનનો છે, તે પર્વતો તેમના જેવાં જ નામવાળા દેવોથી અધિષ્ઠિત છે. તે પ્રત્યેક પર્વત પૂર્વથી પશ્ચિમ સુધી ૧૦–૧૦ યોજનના અંતરે વ્યવસ્થિત છે. તે વિચિત્રકૂટ આદિ પર્વતવાસી અને હ્રદવાસી જે દેવો છે તેમની જંબૂદ્વીપના અસંખ્યાતમાં ભાગમાં ૧૨ યોજન પ્રમાણવાળી નગરીઓ છે. તે નગરીઓનાં નામો તે દેવોનાં નામ જેવાં જ છે. તે વક્ષસ્કાર પર્વતો કઈ કઈ દિશામાં છે, તે સૂત્રકાર હવે પ્રકટ કરે છે.

'सव्वे वि णं' इत्यादि । सर्वेऽपि जम्बूद्वीपादि सम्बन्धिनो वक्षस्कारपर्वताः सीता सीतोदे महानद्यौ पुनः मन्दरं पर्वतं च 'तेण' ते द्वे खलु नदी पर्वते लक्षणी कृत्य नदीद्वयं मन्दरपर्वतं च प्रतीत्यर्थः एतन्महानदीद्वयदिशि मन्दरपर्वतदिशि-चेति भावः, पञ्चयोजनशतानि — ऊर्ध्वमुच्चत्वेन पञ्च गव्यूति शतानि च उद्वेधेन सन्ति । तत्र मन्दरपर्वतदिशि माल्यवत्सौमनस-विद्युत्प्रभगन्धमादननामानश्चत्वारो गजदन्ताकारपर्वताः यथोक्तस्वरूपाः सन्ति । इतोऽन्ये वक्षस्कारपर्वताः सीता सीतोदा महानदी दिशि वर्त्तन्ते, इति । यथा जम्बूद्वीपे यावत्प्रमाणा वक्षस्कारपर्वता महाह्रदाश्च प्रोक्तास्तथैव धातकीखण्डस्य पूर्वार्धअपरार्द्धे, पुष्करार्द्धस्य पूर्वार्द्धेअपरार्द्धे च बोध्याः । अमुमेवार्थं दर्शयितुमाह सूत्रकारः 'धायइसंडे' इत्यादि 'वक्खारा दहाय उच्चत्तं भाणियव्वं'

लिये सूत्रकार कहते हैं "सव्वे वि णं" इत्यादि—

ये जम्बूद्वीपादि सम्बन्धी जो वक्षस्कार पर्वत हैं वे सब सीता सीतोदा नामकी जो महानदियांहैं, उनकी ओर और मेरुपर्वतकी ओरहैं, अर्थात् इन नदीद्वयकी एवं मन्दरकी दिशामेंहैं । इनकी ऊंचाई इस दिशामें पांचसौ योजन की है और उद्वेध गन्धमादन इनका पांचसौ गव्यूतिका है । मन्दर पर्वतकी दिशामें माल्यवत् सौमनस विद्युत्प्रभ और गन्धमा-दन नामके चार गजदंत के आकार जैसे पर्वत पूर्वोक्त स्वरूप-वाले हैं । इनसे अन्य वक्षस्कार पर्वत सीता सीतोदा महानदियोंकी दिशामें हैं । जिस प्रकारसे जम्बूद्वीपमें जितने प्रमाणोपेत ये वक्षस्कार पर्वत और महाह्रद कहे हैं, उसी प्रकारसे वे धातकीखण्डके पूर्वार्द्धमें और पश्चिमार्द्धमें पुष्करार्धके पूर्वार्धमें और पश्चिमार्द्ध में भी हैं, ऐसा जानना चाहिये । इसी बातको प्रकट करनेकेलिये सूत्रकारने "धायइ संडे" इत्यादि

"सव्वे वि णं" ઇત્યાદિ—તે વક્ષસ્કાર પર્વતો સીતા અને સીતોદા નામની મહાનદીઓ અને મન્દર પર્વતની દિશામાં છે તેમની ઊંચાઈ તે દિશામાં ૫૦૦ યોજનની છે. અને તેમનો ઉદ્વેધ (ભૂમિની અંદરનો વિસ્તાર) ૫૦૦ ગવ્યૂતિ પ્રમાણ છે મન્દર પર્વતની દિશામાં માલ્યવત્, સૌમનસ, વિદ્યુત્પ્રભ અને ગન્ધમાદન નામના ગજદન્તના આકાર જેવા પર્વતો પૂર્વોક્ત સ્વરૂપવાળા છે તે સિવાયના જે અન્ય વક્ષસ્કાર પર્વતો છે, તેઓ સીતા અને સીતોદા મહાનદીઓની દિશામાં છે જંબૂદ્વીપમાં જેટલા પ્રમાણવાળા આ વક્ષસ્કાર પર્વતો અને મહાહ્રદો કહ્યાં છે, એટલા જ પ્રમાણવાળા વક્ષસ્કાર પર્વતો અને મહાહ્રદો ધાતકીખંડના પૂર્વાર્ધમાં, પશ્ચિમાર્ધમાં અને પુષ્કરાર્ધના પૂર્વાર્ધ અને પશ્ચિમાર્ધમાં પણ આવેલા છે. એ જ વાતને સૂત્રકારે "ધાયઇ

इत्यन्तमिति । सम्प्रति भरतादीनि क्षेत्राणि, तत्रस्थितपर्वतादींश्च पञ्चस्थानत्वेन प्ररूपयितुमाह—' समयक्खेत्तेणं ' इत्यादि समयक्षेत्रे समयः=आदित्यगतिसमभिव्यज्यमानऋत्वयनादिकालः, तद्युक्तं क्षेत्रं समयक्षेत्रं, मनुष्यक्षेत्रमित्यर्थः, तस्मिन् पञ्च भरतानि पञ्च ऐरवतानि, यावत्करणात् पञ्च हैमवतानि पञ्च हैरण्यवतानि, एवमितोऽन्यान्यपि क्षेत्राणि भावनीयानि, तथा तत्र ' शब्दापातिनः पर्वतानारभ्य पञ्च मन्दराः पञ्च मन्दरचूलिकाः' इत्यन्तः सर्वोऽपि पाठश्चतुस्थानकद्वितीयो शकवद् वाच्यः । परन्तु इषुकारपर्वताश्चत्वार एव सन्ति, अतस्तेऽत्र न वाच्याः । अत एवाह–' णवरं उसुयारा नत्थि ' इति ।।सू० २४।।

सूत्रसे लेकर "वक्खारा दहा य उच्चत्तं भाणियव्वं" यहां तक सूत्र कहाहै।

अब सूत्रकार समयक्षेत्रमें अढाइद्वीप मनुष्यक्षेत्रमें भरतादि क्षेत्रोंकी और उसमें रहे हुए पर्वत आदिकोंकी प्ररूपणा पांचस्थानकसे करते हुए कहते हैं कि " समयक्खेत्तेणं " इत्यादि—

आदित्यकी गतिसे प्रकट होने योग्य ऋतु अयन आदि रूप समय से युक्त जो क्षेत्र है वह समयक्षेत्रहै, ऐसा समयक्षेत्र मनुष्यक्षेत्र ढाई द्वीप हैं । इन मनुष्यक्षेत्रमें पांच भरत पांच ऐरवत यावत्–पांच हैमवत पांच हैरण्यवत और इनसेभी अन्य औरभी क्षेत्र हैं, तथा शब्दापाती पर्वतोंसे लेकर पांच मन्दर और पांच मन्दर चूलिकाएँ हैं। इत्यादि यहां तकका सब पाठ चतुर्थ स्थानकके द्वितीय उद्देशककी तरहसे कह लेना चाहिये। परन्तु इषुकार पर्वत चारही हैं, अतः वे यहां नहीं कहना

संडे " थी लईने " वक्खारा दहाय उच्चत्त भाणियव्व " आ सूत्रपाठ पर्यन्तना लखाणु द्वारा व्यक्त करी छे.

हवे सूत्रकार समयक्षेत्रमां (मनुष्यक्षेत्रमां) रहेलां भरतादि क्षेत्रोनी अने तेमां आवेला पर्वतादिकोनी पांच स्थानकनी अपेक्षाए प्ररूपणा करे छे.

" समयक्खेत्तणं " ईत्यादि—सूर्यनी गति वडे प्रकट थतां ऋतु, अयन आदि रूप समयथी युक्त जे क्षेत्र छे, तेने समयक्षेत्र कहे छे. एवुं समयक्षेत्र (मनुष्यक्षेत्र) अढी द्वीप छे. आ मनुष्यक्षेत्रमां पांच भरत, पांच ऐरवत यावत् पांच हैमवत, पांच हैरण्यवत अने ते सिवायना बीजां क्षेत्रो पण छे. वळी त्यां शब्दापाती पर्वतोथी लईने पांच मन्दर अने पांच मन्दर चूलिकाओ पर्यन्तनुं बधुं छे. चोथा स्थानकना बीजा उद्देशामां आ विषयने अनुलक्षीने जेवुं कथन करवामां आव्युं छे, तेवुं कथन अहीं पण ग्रहण करवुं जोईए, परन्तु ईषुकार पर्वत चार ज छे, तेथी अहीं तेमनुं कथन

अनन्तरं मनुष्यक्षेत्रस्थानि पर्वतादिरूपाणि वस्तूनि प्रोक्तानि, सम्प्रति तद्‌धिकारादेव भरतक्षेत्रस्य वर्तमानावसर्पिणीभूषणानाम् ऋषभादीनां सम्बधिकं किंचित् प्ररूपयति—

मूलम्—उसभेणं अरहा कोसलिए पंच धणुसयाइं उद्धं उच्चत्तेणं होत्था। भरहे णं राया चाउरंतचक्कवट्टी पंच धणुसयाइं उद्धंउच्चत्तेणं होत्था। बाहुबली णं अणगारे एवंचेव। बंभी णामं अज्जा एवं चेव। एवं सुंदरी वि॥ सू० २५॥

छाया—ऋषभः खलु अर्हन् कौसलिकः पञ्च धनुश्शतानि ऊर्ध्वम् उच्चत्वेनाभवत्। भरतः खलु राजा चातुरन्तचक्रवर्ती पञ्च धनुश्शतानि ऊर्ध्वमुच्चत्वेनाभवत्। बाहुबली खलु अनगार एवमेव। ब्राह्मी नामार्या एवमेव। एवं सुन्दरी अपि २५॥

टीका—'उसभेण' इत्यादि—

व्याख्या स्पष्टा। नवरं कोसले भवः कौसलिकः=कोसलदेशोत्पन्नः। ऋषभः=आदिजिनः। भरतादयश्च तदपत्यानि बोध्यानि ॥सू० २५॥

चाहिये, इसीलिये वे "णवरं उसुयारा नत्थि" इस सूत्रपाठसे वर्जित किये गये हैं॥ सू० २४॥

इस प्रकारसे मनुष्यक्षेत्रस्थित पर्वतादिरूप वस्तुओंका कथन कर अब सूत्रकार इसी अधिकारको लेकर भरतक्षेत्रमें वर्तमान अवसर्पिणी कालके भूषणरूप जो ऋषभादि हुए हैं, उनसे सम्बन्धित थोडासा कथन करते हैं। "उसभेणं अरहा कोसलिए पंच" इत्यादि—

टीकार्थ–कोसल देशमें उत्पन्न हुए ऋषभदेव अर्हन्त पांचसौ धनुष ऊंचे थे भरत राजा जो कि चातुरन्त चक्रवर्ती थे। पांचसौ धनुष ऊंचे थे और

કરવું જોઈએ નહીં "णवरं उसुयारा नत्थि" આ સૂત્રપાઠ દ્વારા એ જ વાત પ્રકટ કરવામાં આવી છે કે ઇષુકાર પર્વત ચાર જ હોવાથી તેમનું કથન અહીં કરવું જોઇએ નહીં. ॥ સૂ. ૨૪ ॥

આ પ્રકારે મનુષ્યક્ષેત્રના પર્વત આદિનું કથન કરીને હવે સૂત્રકાર ભરતક્ષેત્રમાં વર્તમાન અવસર્પિણીકાળના ભૂષણ રૂપ જે ઋષભદેવ આદિ પુરુષો થયા હતા તેમને વિષે થોડું કથન કરે છે.

"उसभेणं अरहा कोसलिए पंच" ઇત્યાદિ—

ટીકાર્થ–કોશલ દેશમાં ઉત્પન્ન થયેલા ઋષભદેવ જિનેશ્વરની ઊંચાઈ ૫૦૦ ધનુષપ્રમાણ હતી ચાતુરન્ત ચક્રવર્તી ભરત રાજા પણ ૫૦૦ ધનુષપ્રમાણ ઊંચા હતા. બાહુબલી અણગાર, બ્રાહ્મી આર્યા અને સુંદરીની ઊંચાઇ પણ એટલી જ

उपरि निर्दिष्टाः सर्वेऽपि बुद्धाः। बुद्धश्च जीवो भावतो मोहक्षयाद्, द्रव्यतश्च निद्राक्षयाद् भवतीति द्रव्यबोधं कारणत उपदर्शयति—

मूलम्—पंचहिं ठाणेहिं सुत्ते विबुज्झेज्जा, तं जहा--सद्देणं १ फासेणं २ भोयणपरिणामेणं ३ णिद्दक्खएणं ४ सुविणदंसणेणं ५ ॥ सू० २६ ॥

छाया—पञ्चभिः स्थानैः सुप्तो विबुध्येत, तद्यथा-शब्देन १ स्पर्शेन २ भोजनपरिणामेन ३ निद्राक्षयेण ४ स्वप्नदर्शनेन ५ ॥ सू० २६॥

टीका—' पंचहिं ' इत्यादि—

पञ्चभिः स्थानैः=कारणैः सुप्तो जीवो विबुध्येत=जागरितो भवेत्। तद्यथा-तथाहि-शब्देन=कस्यचित् शब्दं श्रुत्वा १, स्पर्शेन=कस्यचित् स्पर्शमुपलभ्य २,

---

बाहुबली अनगार ब्राह्मी आर्या एवं सुन्दरी भी इतनी ही ऊंची थीं, ऋषभदेव सर्व प्रथम तीर्थङ्कर हैं। भरत बाहुबली आदि सब इनकी संतान पुत्रपुत्री हैं॥ सू० २५ ॥

ये ऊपरमें कहे गये ऋषभादिक सब बुद्ध थे, जीव बुद्ध जो होता है वह भावसे मोहके क्षयसे और द्रव्यसे निद्राके क्षयसे होता है। इसलिये सूत्रकार अब कारणको लेकर द्रव्यबोधका कथन करते हैं।

" पंचहिं ठाणेहिं सुत्ते विबुज्झेज्जा " इत्यादि—

सुप्त जीव पांच कारणोंसे जागरित हो सकता है, वे पांच कारण ये हैं—शब्द १, स्पर्श २, भोजन परिणाम ३, निद्राक्षय ४ और स्वप्नदर्शन ५। किसीके शब्दको सुनकर १ किसीके स्पर्शको उपलब्ध कर

હતી. ઋષભદેવ સૌથી પહેલા તીર્થંકર થઈ ગયા, અને ભરત, બાહુબલી, બ્રાહ્મી અને સુંદરી તેમનાં પુત્રપુત્રી હતાં. ॥ સૂ ૨૫ ॥

ઉપર જેમનું વર્ણન કરવામાં આવ્યું છે, તે ઋષભાદિ બુદ્ધ હતા. ભાવની અપેક્ષાએ મોહના ક્ષયથી અને દ્રવ્યની અપેક્ષાએ નિદ્રાના ક્ષયથી જ જીવ બુદ્ધ થઈ શકે છે. તેથી હવે સૂત્રકાર દ્રવ્યબોધના કારણોનું નિરૂપણ કરે છે.

" પંચહિંઠાણેહિં સુત્તે વિબુજ્ઝેજ્જા " ઈત્યાદિ—

સુપ્ત જીવ નીચેના પાંચ કારણોને લીધે જાગૃત થઈ શકે છે—(૧) શબ્દ, (૨) સ્પર્શ, (૩) ભોજનપરિણામ, નિદ્રાક્ષય અને (૫) સ્વપ્ન દર્શન.

કોઇનો અવાજ સાંભળીને અથવા કોઈ વ્યક્તિ દ્વારા શરીરનો સ્પર્શ થવાથી સૂતેલી વ્યક્તિ જાગી જાય છે. એજ પ્રમાણે ભૂખને કારણે પણ તે

भोजनपरिणामेन=भोजनपरिपाकेन—बुभुक्षयेत्यर्थः ३, तथा निद्राक्षयेण=निद्राया अपगमेन ४, स्वप्नदर्शनेन चेति ५। जागरणस्य निद्राक्षयः साक्षात्कारणम्, निद्राक्षयस्य च शब्दस्पर्शभोजनपरिणामाः परम्परा कारणम्, अतो जागरणकारणस्य निद्राक्षयस्य हेतुत्वेन शब्दादीन्यपि जागरणकारणानि बोध्यानीति सू०२६॥

इत्थं कारणनिर्देशपुरस्सरं द्रव्यप्रबुद्धमुक्त्वा, सम्प्रति भावप्रबुद्धस्य कारणे सति जिनाज्ञानतिक्रमणतामाह—

मूलम्—पंचहिं ठाणेहिं समणे णिग्गंथे णिग्गंथिं गिण्हमाणे वा अवलंबमाणे वा णाइक्कमइ, तं जहा—निग्गंथिंच णं अन्नयरे पसुजाइए वा पक्खिजाइए वा ओहाएज्जा, एत्थ णिग्गंथे णिग्गंथिं गिण्हमाणे वा अवलंबमाणे वा नाइक्कमइ ॥ १ ॥ णिग्गंथे णिग्गंथिं दुग्गंसि वा विसमंसि वा पक्खलमाणिं वा पवडमाणिं वा गिण्हमाणे वा अवलंबमाणे वा णाइक्कमइ ॥२॥ णिग्गंथे णिग्गंथिं सेयंसि वा पंकंसि वा पणगंसि वा उदगंसि वा उक्कसमाणिं वा उवुज्झमाणिं वा गिण्हमाणे वा अवलंब-

सोता हुआ प्राणी जग जाता है, इस प्रकार वह भूखसे भी जग जाता है, तथा निद्राका अपगम हो जावे तो भी वह जग जाता है तथा सोती हुई अवस्थामें स्वप्नके देखनेसे भी जग जाताहै। जागरणका साक्षात्कारण निद्रा क्षयहै और निद्राक्षयके शब्द श्रवण, स्पर्शोपलब्धि एवं भोजन परिणाम—बुभुक्षा ये सब परम्परा कारण हैं। इसलिये जागरणके कारण निद्राक्षयके हेतु होनेसे शब्दादिकोंको भी जागरणकी कारण यहां कहा गया है ऐसा जानना चाहिये ॥ सू० २६ ॥

જાગી જાય છે, ઊંઘ પૂરી થવાથી પણ તે જાગી જાય છે, અને ઊંઘમાં સ્વપ્ન દેખવાથી પણ તે જાગી જાય છે. જાગરણનું સાક્ષાત્કારણ નિદ્રા છે, અને શબ્દ શ્રવણ, સ્પર્શોપલબ્ધિ, ભૂખ અને સ્વપ્નદર્શન, આ બધાં નિદ્રાક્ષયના પરમ્પરા કારણો છે, તેથી તેઓ જાગૃતિના કારણભૂત નિદ્રાક્ષયમાં હેતુરૂપ હોવાથી તેમને પણ જાગરણના કારણ રૂપે અહીં પ્રકટ કરવામાં આવ્યા છે, એમ સમજવું ॥ સૂ. ૨૬ ॥

माणे वा णाइक्कमइ ॥ ३ ॥ णिग्गंथे णिग्गंथिं नावं आरोहमाणे वा ओरोहमाणे वा णाइक्कमइ ॥ ४ ॥ खित्तचित्तं दित्तचित्तं जक्खाइट्ठं उम्मायपत्तं उवसग्गपत्तं साहिगरणं सपायच्छित्तं भत्तपाणपडियाइक्खियं अट्ठजायं वा निग्गंथे निग्गंथिं गिण्हमाणे वा अवलंबमाणे वा णाइक्कमइ ॥ सू० २७ ॥

छाया:-पञ्चभिः स्थानैः श्रमणो निर्ग्रन्थो निर्ग्रन्थीं गृह्णन् वा अवलम्बमानो वा नातिक्रामति, तद्यथा-निर्ग्रन्थीं च अन्यतरः पशुजातिको वा पक्षिजातिको वा उपहन्यात्, तत्र निर्ग्रन्थो निर्ग्रन्थीं गृह्णन् वा अवलम्बमानो वा नातिक्रामति ॥१॥ निर्ग्रन्थो निर्ग्रन्थीं दुर्गे वा विषमे वा प्रस्खलन्तीं वा प्रपतन्तीं वा गृह्णन् वा अवलम्बमानो वा नातिक्रामति ॥२॥ निर्ग्रन्थो निर्ग्रन्थीं सेके वा पङ्के वा पनके वा

इस प्रकार कारणके निर्देशपूर्वक द्रव्य प्रवुद्धका कथन करके अब सूत्रकार भाव प्रवुद्धमें कारणके होने पर जिनाज्ञाकी अनतिक्रमणता होती है ऐसा कथन करते हैं।

सूत्रार्थ-" पंचहिं ठाणेहिं समणे णिग्गंथे " इत्यादि-

पांच कारणोंसे श्रमण निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थी साध्वीको सहाय देता हुआ जिनाज्ञाका विराधक नहीं होताहै, वे पांच कारण येहैं-जैसे-किसी साध्वी को कोई पशु-उद्धत हुआ वैल आदि या पक्षिजातिक-गीध आदि चोट पहुंचा देता है और वह गिर पड़ती है, उठ नहीं सकती है तो ऐसी स्थितिमें अन्य साध्वी जनके अभावमें वहां पर स्थित हुआ साधु

આ પ્રકારે કારણના નિર્દેશપૂર્વક દ્રવ્યપ્રબુદ્ધનું કથન કરીને હવે સૂત્રકાર એ વાતનું પ્રતિપાદન કરે છે કે અમુક સંયોગોમા ભાવપ્રબુદ્ધ અમુક પ્રકારે વર્તવાથી જિનાજ્ઞાનો વિરાધક ગણાતો નથી.

શૂત્રાર્થ—" પંચહિં ઠાણેહિં સમણે ણિગ્ગંથે " ઇત્યાદિ—

નીચેના પાંચ કારણોમાંથી કોઈ પણ કારણ ઉદ્‌ભવે ત્યારે કોઇ શ્રમણ નિર્ગ્રંથ કોઈ નિર્ગ્રંથીને (સાધ્વીજીને) સહારો આપે, તો તે જિનાજ્ઞાનો વિરાધક ગણાતો નથી—(૧) કોઈ ઉન્મત્ત આખલો આદિ પશુ કે ગીધ આદિ પક્ષી કોઇ સાધ્વી પર ધસી જઇને તેમને ભૂમિ પર પછાડી નાખે અને તેઓ પોતાની જાતે ઊભા થવાને સમર્થ ન હોય તથા તેમને ટેકો આપીને ઊભા કરનાર કોઈ અન્ય સાધ્વીજી પણ ત્યા હાજર ન હોય, તો એવી પરિસ્થિતિમાં

उदके वा अवकृष्यमाणां वा अपोह्यमानां वा गृह्णन् वा अवलम्बमानो वा नातिक्रामति ॥३॥ निर्ग्रन्थो निर्ग्रन्थी नावमारोहयन् वा अवरोहयन् वा नातिक्रामति ॥४॥ क्षिप्तचित्तां दृप्तचित्तां यक्षाविष्टाम् उन्मादप्राप्ताम् उपसर्गप्राप्ताम् साधिकरणां सप्रायश्चित्तां भक्तपानप्रत्याख्याताम् अर्थजातां वा निर्ग्रन्थो निर्ग्रन्थीं गृह्णन् वा अवलम्बमानो वा नातिक्रामति ५ ॥सू० २७॥

टीका—' पंचहिं ठाणेहिं ' इत्यादि—

पञ्चभिः स्थानैः=कारणैः श्रमणो निर्ग्रन्थो निर्ग्रन्थीं गृह्णन्=बाह्वादौ ग्रहणं कुर्वन् वा अवलम्बमानः=बाह्वादौ गृहीत्वा धारयन् वा, अथवा-' सव्वंगिय तु गहण अवलंबणं तु देसम्मि "

छाया—' सार्वाङ्गिकं तु ग्रहणं करेण अवलम्बनं तु देशे ' इति, गृ न्= सर्वाङ्गे ग्रहणं कुर्वन्, अवलम्बमानः=हस्तादौ धरन् वा नातिक्रामति=नोल्लङ्घयति जिनाज्ञाम् । तान्येव स्थानान्याह-तद्यथा-कांचित् निर्ग्रन्थीं=साध्वीम् अन्यतरः= कश्चित् पशुजातिकः=उद्धतगवादि वा पक्षिजातिको गृध्रादि र्वा उपहन्यात्=उपघातं कुर्यात्, तत्र=उपघाते अन्यस्या निर्ग्रन्थिकाया अभावे तां निर्ग्रन्थीं गृह्णन् वा अवलम्बमानो वा निर्ग्रन्थ आज्ञां नातिक्रामति सकारणत्वात्। निष्कारणं तु गृह्णन् अवलम्बमानो वा जिनाज्ञामतिक्रामत्येव, अतश्च तत्र दोषा भवन्त्येव। दोषाश्चात्रैवमुक्ताः, तथाहि—

" मिच्छत्तं उड्डाहो, विराहणा फास भाव संबंधो ।
पडिगमणाई दोसा, भुत्ताभुत्ते य नायव्वा ॥१॥"

उसे सहायता दे सकता है । इस स्थितिमें वह जिनाज्ञाका विराधक नहीं होता है,

टीकार्थ-बाहु आदि पकड़कर उठाना इसका नाम ग्रहण है और उसे अपने दोनों हाथोंमें उठा लेना इसका नाम अवलम्बन है ।

अथवा—" सव्वंगियं तु गहणं करेण अवलंबणं तु देसम्मि " उसे पूरा उठा लेना यह ग्रहण है और उसे अपने हाथका सहारा देकर उठाना यह अवलम्बन है । साधु जब विना किसी कारण ऐसा करता है तो अवश्यही वह जिनाज्ञाका विराधक होता है, क्योंकि ऐसा कर-

---

કોઈ સાધુ તેમને મદદ કરે-તેમનો હાથ ઝાલીને તેમને ઊભાં કરે, તો તે સાધુ જિનાજ્ઞાનો વિરાધક ગણાતો નથી

ટીકાર્થ — હાથ આદિ પકડીને ઉઠાડવા તેનું નામ ' ગ્રહણ ' છે અને પોતાના બન્ને હાથોમા ઉપાડી લેવાં તેનું નામ ' અવલમ્બન ' છે અથવા-" सव्वंगिय तु गहणं करेण अवलवण तु देसम्मि " તેમને પૂરેપૂરા ઉઠાવી લેવા તેનું નામ ગ્રહણ છે, અને તેમને પોતાના હાથનો આધાર આપીને ઊભા કરવા તેનુ નામ અવલમ્બન છે. કોઇ પણ કારણ વિના સાધુ એવું વર્તન કરે તો તે જિનાજ્ઞાનો વિરાધક ગણાય છે, કારણ કે એવું કરવામાં તેને આ પ્રકારના દોષ લાગે છે " मिच्छत्त उड्डाहो " ઇત્યાદિ—

छाया—मिथ्यात्वमुड्डाहो विराधना स्पर्शे भाव सम्बन्धः।
प्रतिगमनादयो दोषा भुक्ताऽभुक्ते (भोगे अभोगे च सति) ज्ञातव्याः इति।

इति प्रथमं स्थानम्। तथा–निर्ग्रन्थो दुर्गे–दुःखेन गम्यते इति दुर्गः, स च त्रिविधः–वृक्षदुर्गः श्वापददुर्गो म्लेच्छदुर्गश्च, तदुक्तम्—

तिविहं च होइ दुग्गं, रुक्खे सावयमणुस्स दुग्गं च।"

छाया—त्रिविधश्च भवति दुर्गो वृक्ष-श्वापदमनुष्यदुर्गश्च–इति। तस्मिन् तथोक्ते मार्गे वा, विषमे=गर्तपाषाणादि संकुले पर्वते वा प्रस्खलन्तीं=गत्या प्रस्खलितां

नेमें ऐसे दोष कहे गये हैं "मिच्छत्तं उड्डाहो" इत्यादि--

मिथ्यात्व उड्डाह आदि ये दोष उसे लगते हैं, ऐसा यह प्रथम कारण है। दूसरा कारण ऐसा है–इस कारणमें जब साध्वी किसी दुर्गमें या किसी विषम स्थानमें रिपटकर गिर पड़ती है या चलते २ उसका पैर मोच जाता है कि जिससे वह चलनेमें सर्वथा असमर्थ बन जाती है तो ऐसी स्थितिमें भी साधु उसे सहाय दे सकता है तो वह जिनाज्ञाका विराधक नहीं माना गया है। जिस स्थान पर दुःखसे चला जाय वह दुर्ग है, यह दुर्ग तीन प्रकारका कहा गया है–एक वृक्ष दुर्ग, दूसरा श्वापद दुर्ग और तिसरा म्लेच्छ दुर्ग कहा भी है।

"तिविहं च होई दुग्गं" इत्यादि—

ऐसे दुर्गमें अथवा-गर्त(खड्डा)पाषाण आदिसे संकुल पर्वतके ऊपर चलती चलती साध्वी प्रस्खलित हो जाती है, या भूमिमें गिर पड़तीहै तो ऐसी

કારણ વિના એવું કરવાથી સાધુને મિથ્યાત્વ, ઉડ્ડાહ આદિ દોષ લાગે છે આ પ્રકારનું પહેલુ કારણ સમજવું.

બીજું કારણ આ પ્રમાણે છે—કોઈ સાધ્વી કોઈ દુર્ગમાં અથવા કોઈ વિષમ સ્થાનમાં ચાલતાં ચાલતાં લપસી જાય અથવા ચાલતાં ચાલતાં તેમનો પગ મચકોડાઇ જવાને લીધે તેઓ ચાલી શકે તેમ ન હોય, તો એવી પરિસ્થિતિમાં તેમને સહારો દેનાર સાધુ જિનાજ્ઞાનો વિરાધક ગણાતો નથી. દુર્ગ ત્રણ પ્રકારના કહ્યા છે—(૧) વૃક્ષ દુર્ગ, (૨) શ્વાપદ દુર્ગ, અને (૩) મ્લેચ્છ દુર્ગ. એવા સ્થાન પર ચાલવામાં મુશ્કેલી પડે છે. કહ્યુ પણ છે કે "तिविहं च होइ दुग्गं" ઈત્યાદિ—

એવા માર્ગ પર અથવા ગર્ત, પાષાણ આદિથી યુક્ત પર્વત ઉપર ચાલતાં ચાલતાં જો કોઈ સાધ્વીજી પ્રસ્ખલિત થઈ જાય–લપસી જાય અથવા

भवन्तीं वा प्रपतन्तीं=भूमौ पतनं प्राप्नुवतीं वा, प्रस्खलन-प्रपतन लक्षण प्रद-र्शिका गाथा यथा—

" भूमीए असंपत्तं, पत्तं वा हत्थजाणुजाईहिं।
पक्खलणं नायव्वं, पवडण भूमीए गत्तेहिं " ॥१॥

छाया—भूमौ असंप्राप्तं प्राप्तं वा हस्तजानुकादिभिः।
प्रस्खलनं ज्ञातव्यं, प्रपतनभूमौ गात्रैः ॥१॥

इति गाथाऽनुसारेण भूमौ असंप्राप्तिः, हस्तजानुकादिषु केनचिदेकेनाङ्गेन वा प्राप्तिः प्रस्खलनं, सर्वगात्रैर्भूमौ प्राप्तिस्तु प्रपतनम्, तत् प्रस्खलनं प्रपतनं वा प्राप्नुवतीं निर्ग्रन्थीं गृह्णन् वा अवलम्बमानो वा आज्ञां नातिक्रामतीति द्वितीयं स्थानम्। तथा-निर्ग्रन्थः सेके सीयते=बध्यते यस्मिन्नसौ सेकः=सजलकर्दम-

स्थितिमें साधु उसे सहाय दे सकता है। इसमें जिनाज्ञाके उल्लङ्घन करने जन्य दोषसे वह लिप्त नहीं हो सकता है, प्रस्खलन और प्रपतन का लक्षण इस प्रकारसे कहा गया है।

" भूमीए असंपत्त " इत्यादि—

जिसमें चलते २ इस प्रकारकी स्थिति हो जाय कि भूमि पर गिरना तो हो नहीं किन्तु फिसलना हो जाय वह स्खलन है अथवा हाथ घुट-नोंके बलही जमीन पर गिरना हो जाय वह प्रस्खलन है। ऐसे प्रस्खलन में शरीर पशुके जैसा झुक जाता है, तथा उसमें भूमिका स्पर्श नहीं होता है, जमीन पर जो शरीरका पतन हो जाता है वह प्रपतन है। इस गाथाके अनुसार भूमि पर गिरना तो हो नहीं उस ओर केवल झुकना हो अथवा-हस्तजानुकादि अंगोमें से किसी एक अङ्ग द्वारा भूमिका स्पर्श हो वह प्रस्खलन है और समस्त अङ्गोंसे जिस पतनमें जमीनका स्पर्श हो जाय वह प्रपतन है। तृतीय कारण ऐसा है कि

જમીન પર પડી જાય, તો તેમને સહારો દેનાર સાધુ જિનાજ્ઞાનો વિરાધક ગણાતો નથી. પ્રસ્ખલન અને પ્રપતનનું લક્ષણ આ પ્રમાણે છે.

" भूमिए असंपत्तं " ઇત્યાદિ—જ્યારે ચાલતાં ચાલતાં જમીન પર આખું શરીર પડી જાય છે, ત્યારે પ્રપતન થયું ગણાય છે, પણ લપસી જવાને કારણે શરીર એક બાજુ ઝૂકી જાય છે અને હાથ આદિ કોઇ એક જ અંગને આધારે જમીન પર ખડું રહે છે, ત્યારે તેનું પ્રસ્ખલન થયું કહેવાય છે. પ્રપતન વખતે આખું શરીર ભૂમિનો સ્પર્શ કરે છે, પણ પ્રસ્ખલન વખતે તો કોઇ એક જ અંગ ભૂમિનો સ્પર્શ કરે છે.

स्तस्मिन् वा, पङ्के=जलरहिते कर्दमे वा, पनके-पनकः=शैवालः तत्र वा, उदके=जले वा अपकृष्यमाणाम्=परिपतन्तीं वा, अपोह्यमानां=जलधाराभिः प्रवहमानां वा निर्ग्रन्थीं गृह्णन् वा अवलम्बमानोवा नातिक्रामति जिनाज्ञाम्। इह पतनं पङ्के पनके च बोध्यम्। अपवाहनं तु सेके उदके च बोध्यम्। इति तृतीयं स्थानम्। तथा-निर्ग्रन्थो निर्ग्रन्थीं नावम् आरोहयन्=नौकोपरि निर्ग्रन्थ्या आरोहणं कारयन् वा, तथा-अवरोहयन्=नौकातोऽवतारयन् वा नातिक्रामतीति चतुर्थं स्थानम्। तथा-क्षिप्तचित्तां=क्षिप्तं=नष्टं चित्तं यस्याः सा ताम्, क्षिप्तचित्तता तु रागभयापमानादिना भवति। तदुक्तम्--

अब साध्वी सेकमें जल सहित कीचडमें फंस जाय, पङ्कमें जल रहित कीचडमें फंस जाय पनक में शेवाल में फंस जाय अथवा - जल में किसी प्रवाह में फंस जाय, उसमें गिर पड़े या उसमें वह जावे तो ऐसी स्थितिमें उसे सहायता करनेके अभिप्रायसे प्रेरित हुआ साधु सहारा देता है तो वह जिनाज्ञाका विराधक नहीं होता है। यहां पतन पङ्क और पनकमें समझना और अपवाहन सेक (सिंचन) एवं उदकमें समझना। चतुर्थ कारण ऐसा है-निर्ग्रन्थो निर्ग्रन्थीं नावमारोहयन् वा अवरोहयन् वा नातिक्रामति " निर्ग्रन्थ जब निर्ग्रन्थीको नाव पर चढाता है या नावसे उसे नीचे उतारता है तो वह इस स्थितिमें जिनाज्ञाका विराधक नहीं होता है। पांचवां कारण ऐसा है-क्षिप्तचित्तां दृप्तचित्तां यक्षाविष्टाम्, उन्मादप्राप्ताम्, उपसर्गप्राप्ताम्, साधिकरणां, सप्रायश्चित्तां, भक्तपानप्रत्याख्याताम् अर्थजातां वा निर्ग्रन्थां-निर्ग्रन्थीं गृह्णन् वा अवलम्बमानो वा नातिक्रामति " जब साध्वी

ત્રીજું કારણ આ પ્રમાણે છે—જ્યારે કોઈ સાધ્વીજી કોઈ જલયુક્ત ખાડામાં અથવા જલરહિત કીચડમાં ફસાઈ જાય, લીલ, શેવાળ આદિમાં ફસાઈ જાય, પાણીના પ્રવાહમાં ફસાઈ જાય અથવા તણાતાં હોય, તો એવી પરિસ્થિતિમાં તેમને મદદ કરવાના આશયથી તેમનો સહારો દેનાર સાધુ જિનાજ્ઞાનો વિરાધક ગણાતો નથી અહીં પતન પંક અને પનકમાં સમજવું અને અપવાહન પાણીના પ્રવાહમાં સમજવું

ચોથું કારણ-"निग्रन्थो निर्ग्रन्थीं नावमारोहयन वा अवरोहयन् वा नातिक्रामति" કોઈ નિર્ગ્રંથ કોઈ નિર્ગ્રંથીને બેસાડવામાં મદદ કરે અથવા નાવમાંથી ઉતરવામાં મદદરૂપ બને, તો એવી સ્થિતિમાં તે જિનાજ્ઞાનો વિરાધક ગણાતો નથી.

પાંચમું કારણ—" क्षिप्तचित्तां, दृप्तचित्तां यक्षाविष्टाम्, उन्मादप्राप्ताम्, उपसर्गप्राप्ताम्, साधिकरणां, सप्रायश्चित्तां, भक्तपानप्रत्याख्याताम् अर्थजातां वा

" रागेण वा भएणवा, अहवा अवमाणिया महंतेणं ।
एएहिं खित्तचित्ता, होई भणियं जिणिंदेहिं ॥ "

छाया—रागेण वा भयेन वा, अथवा अपमानिता महता ।
एतैः क्षिप्तचित्ता भवति कथितं जिनेन्द्रैः ॥ इति ।

अथवा-दृप्तचित्ताम्-दृप्तम्=दर्पयुक्तं उद्धतमिति यावत् चित्तं यस्याः सा ताम्, उद्धतचित्तता तु सम्मानादिना भवति, तदुक्तम्--

" इइ एस असंमाणाखित्तो संमणओ भवे दित्तो ।
अग्गीव इंधणेणं, दिप्पइ चित्तं इमेहिं तु ॥१॥
लाभमएण उ मत्तो, अहवा जेऊण दुज्जयं सत्तुं ॥ "

छाया—इत्येष असंमानात् क्षिप्तः सम्मानतो भवेद् दृप्तः ।
अग्निरिव इन्धनैः दृप्यति चित्तमेभिस्तु ॥१॥
लाभमदेन तु मत्तः अथवा जित्वा दुर्जयं शत्रुम् ॥ इति ।

क्षिप्त नष्ट चित्तवाली हो जाय क्योंकि क्षिप्तचित्तता तो राग, भय, अपमान आदिसे हो ही जातीहै। कहाभीहै-"रागेण वा भएण वा" इत्यादि ।

ऐसा जिनेन्द्रदेवने कहा है कि क्षिप्तचित्तता राग, भय अथवा अपमानसे हो जाती है अथवा जब वह साध्वी दृप्त दर्पयुक्त-उद्धत चित्तवाली हो जाय, क्योंकि उद्धत चित्तता तो सम्मान आदि से हो ही जाती है। कहा भी है-" इह एस असंमाणाखित्तो " इत्यादि ।

मनुष्य असंमानसे क्षिप्त होता है और संमानसे दृप्त होता है। जिस प्रकार अग्नि इंधनसे दृप्त होती है। लाभसे या मदसे अथवा दुर्जय

निर्ग्रन्थो निर्ग्रन्थीं गृह्णन् वा अवलम्बमानो वा नातिक्रामति." જ્યારે કોઈ સાધ્વીજી ક્ષિપ્ત ચિત્તવાળાં (ઉન્માદયુકત) થઈ જાય ત્યારે તેમને સહારો દેનાર સાધુ જિનાજ્ઞાનો વિરાધક ગણાતો નથી. ક્ષિપ્તચિત્તતા રાગ, ભય, અપમાન આદિ કારણોને લીધે થઈ જાય છે કહ્યુ પણ છે કે :

" रागेण वा भएण वा " ઈત્યાદિ—

જિનેન્દ્રદેવે એવું કહ્યું છે કે ક્ષિપ્તચિત્તતા (ચિત્તભ્રમ) રાગ, ભય, અથવા અપમાનથી થાય છે અથવા જ્યારે તે સાધ્વી દર્પયુકત ચિત્તવાળાં થઈ જાય છે, ત્યારે પણ એવું બને છે, કારણ કે સન્માન આદિને કારણે ઉદ્ધત ચિત્તતાનો સદ્ભાવ તો જોવા મળે જ છે. કહ્યું પણ છે કે :

'इह एस असंमाणाखित्तो " ઈત્યાદિ—

જેમ અગ્નિ ઇંધનથી પ્રજ્વલિત થાય છે, તેમ મનુષ્ય અસંમાનથી ક્ષિપ્ત થાય છે, અને સમાનથી દ્રપ્ત (દર્પયુકત) થાય છે. લાભ પ્રાપ્ત થવાથી, મદથી અથવા દુર્જય શત્રુને હરાવવાથી મનુષ્ય મત્ત થાય છે.

अथवा-यक्षाविष्टाम्-यक्षेण=देवविशेषेण आविष्टा=आस्थिता ताम्। यक्षावेशस्तु पूर्वभववैरादिना भवति। तदुक्तम्--

" पुव्वभववेरिएणं, अहवा रागेण रागिया संती।
एएहि जक्खइट्टा, कहिया सिरि जिणवरिंदेहिं ॥१॥

छाया--पूर्वभववैरिकेण अथवा रागेण रागिता सती।
एताभ्यां यक्षाविष्टा कथिता श्री जिनवरेन्द्रैः ॥इति।

अथवा-उन्मादप्राप्ताम्=उन्मादः=चित्तानवस्थितिः, तं प्राप्ता ताम्। उन्मादो यक्षावेशो मोहनीयश्चेति द्विविधो भवति। तत्र यक्षावेशः पूर्वमुक्तः। अयं मोहनीयो बोध्यः। अयंच रूपाङ्गदर्शनेन पित्तमूर्च्छयावा भवति। तदुक्तम्--

---

शत्रुको जीतनेसे मनुष्य मत्त होता हैं अथवा वह साध्वी यक्षाविष्ट हो जाय, देवविशेषसे आस्थित हो जाय-यक्षावेश तो पूर्वभवके वैर आदिसे हो ही जाती है। कहाभी है—" पुव्वभववेरिएणं " इत्यादि।

जिनेन्द्रदेवने इन दो कारणोंसे साध्वीको यक्षाविष्टा कहा है, या तो वह किसी पूर्वभवके वैरी देव आदिसे आक्रान्त हो जाय या किसी विशेष रागसे अनुरक्त हो जाय तो ऐसी स्थितिमें वह यक्षाविष्टा कही जाती है अथवा जब वह साध्वी उन्मादको प्राप्त हुई हो। चित्तकी अनवस्थितिका (विक्षेप)नाम उन्माद है, इस उन्मादकी स्थितिमें वह आगई हो, उन्माद यक्षावेश और मोहनीयके भेदसे दो प्रकारका होता है, यक्षावेश रूप उन्माद तो ऊपर प्रकट करही दिया गया है, यह मोहनीय रूप

અથવા તે સાધ્વી જ્યારે યક્ષાવિષ્ટ થઇ જાય એટલે કે તેમના શરીરમાં યક્ષ નામના દેવવિશેષનો પ્રવેશ થવાને કારણે તે સાધ્વી જ્યારે ઉન્મત્ત બની જાય ત્યારે તેને અવલંબન આદિ રૂપે સહારો આપનાર સાધુ જિનાજ્ઞાનો વિરાધક ગણાતો નથી. " पुव्वभववेरिएण " ઇત્યાદિ—

જિનેશ્વર ભગવાને એવું કહ્યુ છે કે નીચેના બે કારણોને લીધે સાધ્વીને યક્ષાવિષ્ટા કહેવાય છે—(૧) કોઇ પૂર્વભવના વેરી દેવાદિનો શરીરમાં પ્રવેશ થવાથી અથવા (૨) કોઈ વિશેષ રાગ વડે અનુરક્ત થઇ જાય, તો એવી સ્થિતિમાં તેને યક્ષાવિષ્ટા કહેવામાં આવે છે.

અથવા જ્યારે કોઇ સાધ્વી ઉન્માદાવસ્થામાં-ચિત્તભ્રમની હાલતમાં હોય ત્યારે પણ તેને સહારો દેનાર સાધુ જિનાજ્ઞાનો વિરાધક થતો નથી. ઉન્માદના બે પ્રકાર કહ્યા છે—યક્ષાવેશ રૂપ ઉન્માદ-તેનું સ્વરૂપ ઉપર સ્પષ્ટ કરવામાં આવ્યું છે. (૨) મોહનીય રૂપ ઉન્માદ-ચિત્તભ્રમ રૂપ આ ઉન્માદ રૂપાંગ

" उम्माओ खलु दुविहो, जक्खाएसोयमोहणिज्जो य।
जक्खाएसो वुत्तो, मोहेण इमं तु वोच्छामि ॥१॥
रूवंगं दट्ठूणं, उम्माओ अहव पित्तमुच्छाए।
उम्मायस्स य भया, कहिया तित्थंकराईहिं ॥२॥"

छाया—उन्मादः खलु द्विविधो यक्षावेशश्च मोहनीयश्च।
यक्षावेशउक्तो मोहेनैनं तु वक्ष्यामि ॥१॥
रूपाङ्गं च दृष्ट्वा उन्मादोऽथवा पित्तमूर्च्छया।
उन्मादस्य च भेदौ कथितौ तीर्थङ्करादिभिः ॥ २ ॥ इति।

अथवा—उपसर्गमाप्ताम्—उपसर्गम्=उपद्रवं प्राप्ता ताम्। उपसर्गश्च दिव्यमानुषतिर्यक्कृतत्वात् त्रिविधो बोध्यः। तदुक्तम्—

उन्माद है, चित्तकी अनवस्थिति रूप यह उन्माद रूपाङ्ग दर्शनसे या पित्तकी मूर्च्छासे होता है। कहाभी है—

" उम्माओ खलु दुविहो " इत्यादि।

इस गाथाका अर्थ स्पष्ट है, अथवा जब वह साध्वी उपसर्ग प्राप्त हुई हो, उपद्रवको प्राप्त करनेकी स्थितिवाली हो गई हो, देवकृत उपसर्ग, मानुषकृत उपसर्ग, तिर्यक्कृत उपसर्ग, इस प्रकारसे उपसर्ग तीन प्रकारका होता है, जो उपसर्ग देव द्वारा कृत होता है वह दिव्य उपसर्ग है, जो उपसर्ग मनुष्य द्वारा किया गया होता है वह मानुष उपसर्ग होता है और जो उपसर्ग पशु द्वारा किया गया होता है वह तिर्यक् कृत उपसर्ग होता है। सो ही कहा गया है—

દર્શનથી અથવા પિત્તની મૂર્ચ્છાથી થાય છે કહ્યું પણ છે કે: "उम्माओ खलु दुविहो " ઇત્યાદિ. આ ગાથાનો અર્થ સ્પષ્ટ છે.

અથવા જ્યારે કોઇ સાધ્વીને ઉપસર્ગો અનુભવવા પડતાં હોય ત્યારે પણ તેને સહારો દેનાર સાધુ જિનાજ્ઞાનો વિરાધક ગણાતો નથી. ઉપસર્ગના નીચે પ્રમાણે ત્રણ પ્રકાર છે—દેવકૃત ઉપસર્ગ, મનુષ્યકૃત ઉપસર્ગ અને તિર્યંચકૃત ઉપસર્ગ. જે ઉપસર્ગો દેવ દ્વારા કરાય છે, તેમને દિવ્ય ઉપસર્ગો કહે છે, મનુષ્ય દ્વારા કરાતા ઉપસર્ગોને માનુષી ઉપસર્ગો કહે છે, અને તિર્યંચો દ્વારા કરાતા ઉપસર્ગોને તિર્યંચકૃત ઉપસર્ગો કહે છે. એ જ વાત " तिविहे व उवसग्गे " ઇત્યાદિ ગાથાઓ દ્વારા વ્યકત કરવામાં આવી છે.

छाया—अर्थं वा हेतुं वा श्रमणीनां विरहिते कथयतः ।
मूर्च्छया विपतितायाः कल्पते ग्रहणं परिज्ञया ॥ इति ।

अयमर्थः-संस्तारकस्य अर्थम्=उद्देश्यं हेतुं=कारणं वा कथयतः=उपदिशतो निर्ग्रन्थस्य पुरतो मूर्च्छया निपतितायाः निर्ग्रन्थ्याः श्रमणीनां विरहिते सति परिज्ञायाम्=अनशने ग्रहणं कल्पते इति । अथवा-अर्थजाताम्-अर्थः=पतिचौरादेः कार्यं प्रयोजनमिति यावत् जातो यतः सा तथा ताम्-पतिचौरादिना संयमाच्चाल्यमानामित्यर्थः । उक्तंचात्र—

" अट्ठोत्तिजीए कज्जं, संजयं एस अट्ठजायाउ ।
तं पुण संजमभावा चालिज्जंतं समवलंबे ॥२॥"

छाया—अर्थ इति यस्याः कार्यं संजातम् एषा अर्थजाता तु ।
तां पुनः संयमभावाच्चाल्यमानां समवलम्बः ॥१॥ इति ।

इसका भाव ऐसाहै-संस्तारकके (अनशन) प्रयोजनको अथवा कारणको कहते हुए, उपदेश देते हुए, निर्ग्रन्थके समक्ष यदि कोई यावज्जीव भक्तप्रत्याख्यानवाली साध्वी गिर पडी हो-और उस समय वहां अन्य साध्वियां न हो तो ऐसी अवस्थामें साधुका उसे सहारा देना दोषावह नहीं है अथवा-जब वह अर्थजाता हो, पति अथवा चोर आदि जिसे संयमसे चलायमान कर रहे हो । कहाभी है—

" अट्ठो त्ति जीए कज्जं " इत्यादि ।

जिसे पति अथवा चोर आदिका भय उपस्थित हो गया हो, इस स्थितिमें जो साध्वी आगई हो ऐसी वह अर्थजाता साध्वी है । इस तरह

અથવા કોઇ સાધ્વીએ આજીવન અનશનવ્રત અંગીકાર કર્યું હોય, અને શારીરિક અશક્તિને કારણે તેઓ પડી જાય તો ત્યાં અન્ય સાધ્વીઓ હાજર ન હોય એવી પરિસ્થિતિમાં તેમને સહારો દેનાર સાધુ જિનાજ્ઞાનો વિરાધક ગણાતો નથી. અથવા જ્યારે તે સાધ્વીજી અર્થજાતા હોય (જેને પતિ અથવા ચોર આદિ સંયમથી ચલાયમાન કરી રહ્યા હોય એવી સાધ્વીને અર્થજાતા કહે છે) ત્યારે તેને સહારો દેનાર સાધુ પણ જિનાજ્ઞાનો વિરાધક ગણાતો નથી. કહ્યું પણ છે કે " अट्ठो त्ति जीए कज्जं " ઈત્યાદિ—

જેને પતિ અને ચોર આદિનો ભય ઉપસ્થિત થયો હોય એવી પરિસ્થિતિમાં મૂકાયેલા સાધ્વીને અહીં અર્થજાતા સાધ્વી કહેવામાં આવેલ છે.

क्षिप्तचित्ताद्यर्थजातापर्यन्तासु कामपि निर्ग्रन्थीं गृह्णन् वा अवलम्बमानो वा निर्ग्रन्थो जिनाज्ञां नातिक्रामतीति पञ्चमं स्थानम् ॥ सू० २७ ॥

अनन्तरं येषु कारणेषु वर्त्तमानो निर्ग्रन्थो जिनाज्ञां नातिक्रामति तान्युक्तानि, सम्प्रति निर्ग्रन्थविशेषा आचार्योपाध्याया येषु अतिशयेषु वर्तमाना जिनाज्ञां नातिक्रामन्ति तानाह—

मूलम्—आयरियउवज्झायस्स णं गणंसि पंच अइसेसा पण्णत्ता, तं जहा—आयरिय उवज्झाए अंतो उवस्सयस्स पाए निगिज्झिय निगिज्झिय पप्फोडेमाणे वा पमज्जेमाणे वा णाइक्कमइ १। आयरियउवज्झाए अंतो उवस्सयस्स उच्चारपासवणं विगिंचमाणे वा विसोहेमाणे वा णाइक्कमइ २। आयरियउवज्झाए पभू इच्छावेयावडियं करेज्जा इच्छा णो करेज्जा ३। आयरिय उवज्झाए अंतो उवस्सयस्स एगरायं वा दुरायं वा एगागी वसमाणे णाइक्कमइ ४। आयरियउवज्झाए बाहिं उवस्सयस्स एगरायं वा दुरायं वा वसमाणे णाइक्कमइ ५ ॥ सू० २८ ॥

क्षिप्तचित्तसे लेकर अर्थजाता पर्यन्त तककी किसी भी अवस्थामें पतित हुई किसी भी साध्वीको सहारा देनेवाला साधु निर्ग्रन्थ जिनाज्ञाका अतिक्रमण—उल्लंघन करनेवाला नहीं होता है, इस तरहसे यह पांचवां स्थान है ॥ सू० २७ ॥

इस तरहसे जिन कारणोंको लेकर निर्ग्रन्थ जिनाज्ञाका उल्लङ्घन करनेवाला नहीं होता है, उनको प्रदर्शित कर अब सूत्रकार निर्ग्रन्थ विशेष जो आचार्य और उपाध्याय हैं, वे जिन अतिशयोंमें वर्तमान होकर जिनाज्ञाका उल्लङ्घन नहीं करते हैं, उनका कथन करते हैं—

આ રીતે ક્ષિપ્તચિત્તથી લઇને અર્થજાતા પર્યન્તની કોઈ પણ પરિસ્થિતિમાં મૂકાયેલા સાધ્વીજીને સહારો દેનાર-શ્રમણ નિર્ગ્રંથ જિનાજ્ઞાનો વિરાધક ગણાતો નથી આ પ્રકારનું આ પાંચમું કારણ સમજવું. ॥ સૂ. ૨૭ ॥

કયા પ્રકારની પરિસ્થિતિમાં સાધ્વીજીને સહારો દેનાર શ્રમણ નિર્ગ્રન્થ જિનાગાનો વિરાધક ગણાતો નથી, એ વાત પ્રકટ કરીને હવે સૂત્રકાર એ વાત પ્રકટ કરે છે કે આચાર્ય અને ઉપાધ્યાય રૂપ નિર્ગ્રંથ વિશેષો કયા અતિશયોથી યુક્ત હોવા છતાં પણ જિનાજ્ઞાની અવગણના કરનારા ગણાતા નથી.

छाया—आचार्योपाध्यायस्य खलु गणे पञ्च अतिशेषाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—आचार्योपाध्यायः अन्तरुपाश्रयस्य पादौ निगृह्य निगृह्य प्रस्फोटयन् वा प्रमार्जयन् वा नातिक्रामति १। आचार्योपाध्यायः अन्तरुपाश्रयस्य उच्चारप्रस्रवणं विवेचयन् वा विशोधयन् वा नातिक्रामति २। आचार्योपाध्यायः प्रभुः इच्छा वैयावृत्त्यं कुर्यात् इच्छा न कुर्यात् ३। आचार्योपाध्यायः अन्तरुपाश्रयस्य एकरात्रं वा द्विरात्रं वा एकाकी वसन् नातिक्रामति ४। आचार्योपाध्यायो बहिरुपाश्रयस्य एकरात्रं वा द्विरात्रं वा वसन् नातिक्रामति ५ ॥सू० २८॥

टीका—'आयरियउवज्झायस्स' इत्यादि—

आचार्योपाध्यायस्य—आचार्यः—केषांचिदर्थप्रदातृत्वात्, स एव उपाध्यायः केषांचित् साधूनां सूत्रप्रदातृत्वात्, आचार्यश्चासौ उपाध्यायश्चेति आचार्योपाध्यायः, यद्वा—आचार्योऽन्यः, उपाध्यायश्चान्यः,उभयोः समाहारे—आचार्योपाध्यायं, तस्य—आचार्योपाध्यायस्य आचार्योपाध्याययोर्वा खलु=निश्चयेन गणे=साधुसमुदाये पञ्च अतिशेषाः=अतिशयाः अन्यसाध्वपेक्षया प्रज्ञप्ताः कथिताः। तद्यथा—आचार्योपाध्यायः—आचार्योपाध्यायपदविशिष्ट एकः साधुः आचार्यत्वोपाध्यायत्वविशिष्टं

"आयरियउवज्झायस्स णं गणंसि" इत्यादि।

आचार्योपाध्यायके अथवा आचार्य और उपाध्यायके गणमें पांच अतिशेष अन्य साधुकी अपेक्षा अतिशय कहे गये हैं, वे इस प्रकारसे हैं—"आयरिय उवज्झाए अंतो उवस्सयस्स" इत्यादि।

जो आचार्योपाध्याय–आचार्यरूप उपाध्याय किन्हीं किन्हीं साधुओंको अर्थ और सूत्र प्रदाता होने से आचार्यरूप और उपाध्याय रूप हुआ ऐसा वह आचार्योपाध्याय अथवा स्वतंत्र उपाध्याय–उपाश्रयके भीतर शिष्यजनको इस अभिप्रायसे ऐसा कहकर "कि चरणों परकी धूलिको झटकारनेसे उडी हुई चरण रज अन्यके ऊपर पड जाती है, अतः वे न पड जायें इसलिये चरणोंको उपाश्रयके बाहरही झटकार लेना चाहिये," उपाश्रयके भीतर

"आयरिय उवज्झायस्स णं गणंसि" ઈત્યાદિ—

આચાર્યોપાધ્યાયમાં અથવા આચાર્ય અને ઉપાધ્યાયમાં પાંચ અતિશેષ એટલે કે અન્ય સાધુઓની અપેક્ષાએ અતિશય કહ્યા છે. તે પાંચ અતિશયો નીચે પ્રમાણે છે—"आयरियउवज्झाए अंतो उवस्सयस्स" ઈત્યાદિ—જે આચાર્યોપાધ્યાય-આચાર્ય રૂપ ઉપાધ્યાય કોઈ કોઈ સાધુઓને અર્થના દાતા હોવાને કારણે આચાર્ય રૂપ ગણી શકાય છે અને કોઈ કોઈ સાધુઓને સૂત્રના પ્રદાતા હોવાથી તેઓ ઉપાધ્યાય રૂપ ગણાય છે, એવાં તે આચાર્યોપાધ્યાય અથવા સ્વતંત્ર આચાર્ય અને સ્વતંત્ર ઉપાધ્યાય ઉપાશ્રયની અંદર શિષ્યોને આ

साधुद्वयं वा उपाश्रयस्य=वसतेः अन्तः=मध्ये निगृह्य निगृह्य=प्रस्फोटनेन उड्डीय मनैश्चरणरजोभिरन्यजीवविराधना मा भवेदिति यतनया शिष्य भूयो भूयो निवार्य पादौ प्रस्फोटयन्=आभिग्रहिकेण अन्येन वा साधुना स्वकीय रजोहरणादिना चरणयोः प्रस्फोटनं कारयन् वा, प्रमार्जयन्=शनैः शोधयन् वा नातिक्रामति जिनाज्ञाम्। अयमत्राभिप्रायः—आचार्य उपाध्यायो वा कुलगणादिकार्येण निर्गत्य प्रत्यावृत्तः। सचोत्सर्गेण उपाश्रयाद् बहिरेव चरणौ प्रस्फोटयति, यदि तत्र कश्चित् सागारिको भवति तदा स उपाश्रयमध्ये प्रस्फोटयति। प्रस्फोटनं च प्रमार्जनविशेष एव,

---

नहीं" पैरोंके झटकारने से बार २ निषेध करता है और वह स्वयं अपने पैरोंको किसी आभिग्रहिकसे अथवा किसी अन्य साधुसे अपने रजोहरण आदिसे उपाश्रयके भीतर झटकारता है दूरकराता है या उनकी धीरे २ प्रमार्जना कराता है तो ऐसा कराता हुआ वह आचार्य या उपाध्याय जिनाज्ञाका विराधक नहीं होता है। तात्पर्य इस कथनका ऐसा है— आचार्य अथवा उपाध्याय कुलगण आदिके कार्यके निमित्त बाहर गये और उस कार्य करके वे फिर पीछे लौट आये तो उत्सर्ग मार्ग तो यही है कि वे उपाश्रयके बाहर ही अपने दोनों पैरोंको प्रमार्जन कर ले पीछे उपाश्रयके भीतर प्रविष्ट होते हैं, परन्तु यदि वहां कोई सागारिक होता है तो वे उपाश्रयके भीतर अपने पैरोंको प्रमार्जन करवाते हैं, यह प्रस्फो-

---

પ્રમાણે કહે છે. " પગ પર લાગેલી રજને ઝાપટવાથી તે રજ ઉડીને કોઈની ઉપર પડે છે, તેથી તમારે ઉપાશ્રયની બહાર જ પગની રજને ઝાપટી નાખવી જોઈએ, ઉપાશ્રયમાં ઝાપટવી જોઈએ નહીં. "

આ પ્રમાણે તેઓ શિષ્યોને ઉપાશ્રયની અંદર પગની રજ ઝાપટી નાખવાનો વારંવાર નિષેધ કરે છે, પરન્તુ તેઓ પોતે કોઈ આભિગ્રહિક પાસે અથવા કોઈ અન્ય સાધુ પાસે પોતાના પગને રજોહરણ આદિ વડે ઉપાશ્રયની અંદર જ ઝપટાવે છે અથવા ધીરે ધીરે તેની પ્રમાર્જના કરાવે છે, તો એવું કરનાર તે આચાર્ય અથવા ઉપાધ્યાય જિનાજ્ઞાના વિરાધક ગણાતા નથી. આ કથનનું તાત્પર્ય નીચે પ્રમાણે છે—

આચાર્ય અથવા ઉપાધ્યાયને કુલ, ગણ આદિના કાર્યને નિમિત્તે બહાર જવું પડયું હોય. ત્યારબાદ જ્યારે તેઓ પાછા ફરે, ત્યારે ઉત્સર્ગવિધિ પ્રમાણે તો તેમણે ઉપાશ્રયની બહાર જ પોતાના બન્ને પગનું પ્રમાર્જન કરીને જ ઉપાશ્રયમાં પ્રવેશ કરવો જોઈએ, પરન્તુ જો ત્યાં કોઈ સાગારિક હોય છે તો તેઓ ઉપાશ્રયની અંદર દાખલ થયા બાદ પણ પોતાના પગનું

तच्च प्रत्युपेक्षणपूर्वकमेव भवति। प्रत्युपेक्षणं च चक्षुर्व्यापार एवेति सप्तभङ्गा अत्र भवन्ति। तथाहि-न प्रत्युपेक्षते न च प्रमार्ष्टि-इति प्रथमो भङ्गः। न प्रत्युपेक्षते प्रमार्ष्टि चेति द्वितीयो भङ्गः। प्रत्युपेक्षते न च प्रमार्ष्टि-इति तृतीयो भङ्गः। प्रत्युपेक्षते प्रमार्ष्टि चेति चतुर्थो भङ्गः। प्रत्युपेक्षणं प्रमार्जनं च दुष्ठुतया सुष्ठुतया चापि भवतीति चतुर्थे भङ्गे चत्वारो भङ्गा बोध्याः। तत्र दुष्प्रत्युपेक्षते दुष्प्रमार्ष्टि-इति प्रथमो भङ्गः। दुष्प्रत्युपेक्षते सुप्रमार्ष्टि इति द्वितीयो भङ्गः। सुप्रत्यु-

---

टन रूप पैरोंका झटकारना प्रमार्जन विशेषरूप हीहै, यह प्रत्यु पेक्षणपूर्वकही होता है, और प्रत्युपेक्षण-पडिलेहण चक्षुव्यापार रूप होता है, अतः यहां सात भङ्ग होते हैं-जैसे-" न प्रत्युपेक्षते न प्रमार्ष्टि १ " न वह प्रत्युपेक्षा करताहै, और न प्रमार्जना करताहै १ "न प्रत्युपेक्षते प्रमार्ष्टि च २ " प्रत्युपेक्षा तो नहीं करता है पर प्रमार्जना करता है २ " प्रत्युपेक्षते न च प्रमार्ष्टि ३ " प्रत्युपेक्षा तो करता है, पर प्रमार्जना नहीं करता है ३ " प्रत्युपेक्षते प्रमार्ष्टि च ४ " और प्रत्युपेक्षा भी करता है, और प्रमार्जना भी करता है ४ इस चतुर्थ भङ्गके भी चार भंग होते हैं, क्योंकि प्रत्युपेक्षण और प्रमार्जन दुष्ठुरूपसे विना उपयोगके और सुष्ठुरूपसे उपयोगसे भी होते हैं, वे चार भंग इस प्रकारसे हैं " दुष्प्रत्युपेक्षते दुष्प्रमार्ष्टि १ " यदि वह असावधानीसे अच्छी तरहसे नहीं उपयोग दिये विना ही-प्रत्युपेक्षा करता है, और प्रमार्जना करता है, तो वह प्रथम भंगवाला है। " दुष्प्रत्युपेक्षते सुप्रमार्ष्टि २ " यदि वह प्रत्यु-

---

પ્રમાર્જન કરાવી શકે છે રજોહરણ આદિ વડે બન્ને પગને કોઈ સાધુ પાસે ઝપટાવવા એ પણ પ્રમાર્જન વિશેષરૂપ જ હોય છે. તે ક્રિયા પ્રત્યુપેક્ષણપૂર્વક થાય છે, અને પ્રત્યુપેક્ષણ ચક્ષુવ્યાપાર રૂપ હોય છે, તેથી અહીં સાત ભાંગા (વિકલ્પો) બને છે " न प्रत्युपेक्षते न प्रमार्ष्टि " (૧) તે પ્રત્યુપેક્ષા કરતો નથી અને પ્રમાર્જના પણ કરતો નથી. (૨) " न प्रत्युपेक्षते न प्रमार्ष्टि च " પ્રત્યુપેક્ષા તો કરતો નથી પણ પ્રમાર્જના કરે છે (૩) પ્રત્યુપેક્ષતે ન ચ પ્રમાર્ષ્ટિ " પ્રત્યુપેક્ષા તો કરે છે, પણ પ્રમાર્જના કરતો નથી. (૪) પ્રત્યુપેક્ષતે પ્રમાર્ષ્ટિ ચ " પ્રત્યુપેક્ષા પણ કરે છે અને પ્રમાર્જના પણ કરે છે. આ ચોથા ભાંગાના પણ ચાર ભાંગા પડી શકે છે, કારણ કે પ્રત્યુપેક્ષણ અને પ્રમાર્જન દુષ્ઠ રૂપે (ઉપયોગ રહિત પણે) અને સુષ્ઠુ રૂપે (ઉપયોગ સહિત) પણ થાય છે. તે ચાર ભાંગા નીચે પ્રમાણે સમજવા. " दुष्प्रत्युपेक्षते दुष्प्रमार्ष्टि " જો તે અસાવધાનીથી પ્રત્યુપ્રેક્ષા કરે છે અને અસાવધાનીથી પ્રમાર્જના કરે છે, તો

पेक्षते दुष्प्रमार्ष्टि–इति तृतीयो भङ्गः । सुप्रत्युपेक्षते सुप्रमार्ष्टि इति चतुर्थो भङ्गः । चतुर्थभङ्गस्य भङ्गचतुष्टयकरणेन शेपास्त्रय एवेति सप्तभङ्गा बोध्याः । अत्रान्तिमः शुद्धः । अवशिष्टेषु सामाचारी न भवति । यदि तु सागारिकस्ततो गमनोन्मुखो भवेत्तदा यावता कालेन सप्तपदान्यवक्रम्यन्ते तावन्तं कालम् उपाश्रयाद् बहिरेव तिष्ठेत्, गतेच तस्मिन् पादौ प्रस्फोटयेत् । आचार्यस्य पादप्रस्फोटनमाचार्या-

पेक्षा तो अच्छी तरहसे नहीं करता है, पर प्रमार्जना अच्छी तरहसे करताहै, तो वह इस द्वितीय भंगवालाहै । "सुप्रत्युपेक्षते दुष्प्रमार्ष्टि ३" यदि वह प्रत्युपेक्षण अच्छी तरहसे करता है, और प्रमार्जन ठीक तरहसे नहीं करता है तो वह इस तृतीय भंगवाला है ३ "सुप्रत्युपेक्षते सुप्रमार्ष्टि ४" और यदि वह अच्छी तरहसे प्रत्युपेक्षण करता है, और अच्छी तरहसेही प्रमार्जन करता है, तो वह इस चतुर्थ भंगवाला है, चतुर्थ भंगके चार भंग करनेसे शेष भंग ३ही भंग हैं, इस प्रकार कुल ये ७ भंग होते हैं । चतुर्थ भंगका जो अन्तिम चौथा भंग है वही शुद्ध है, अवशिष्ट भंगोंमें सामाचारी नहीं होती है, यदि सागारिक वहांसे गमनोन्मुख होता है, तो जितने समयमें वह सात पैर आगे बढता है, उतने काल तक उपाश्रयसे बाहर रहना चाहिये और फिर उसके चले जाने पर फिर चरणोंको प्रमार्जन करना चाहिये आचार्यका पादप्रस्फोटन

પહેલા ભાંગામાં (૨) दुष्प्रत्युपेक्षते सुप्रमार्ष्टि " જો તે પ્રત્યુપ્રેક્ષા તે સારી રીતે કરતે નથી પણ પ્રમાર્જના સારી રીતે કરે છે, તે તેને બીજા ભાંગામાં મૂકી શકાય છે. " सुप्रत्युपेक्षते दुष्प्रमार्ष्टि " (૩) જો તે પ્રત્યુપ્રેક્ષા તે સારી રીતે કરે છે પણ પ્રમાર્જના સારી રીતે કરતે નથી, તે તેને ત્રીજા ભાંગામાં મૂકી શકાય છે. " सुप्रत्युपेक्षते सुप्रमार्ष्टि " જો તે પ્રત્યુપેક્ષા પણ સારી રીતે કરે છે, અને પ્રમાર્જના પણ સારી રીતે કરે છે તે તેને ચોથા ભાંગાવાળે કહે છે. આ રીતે આગળના ત્રણ ભાંગા અને ચોથા ભંગના જે ચાર ભાંગા બને છે, તે મળીને કુલ ૭ ભાંગા થાય છે. ચોથા ભાંગાના જે ચાર ભાંગા કહેવામાં આવ્યા છે તેમાંને જે ચોથો ભાંગો છે, એજ શુદ્ધ છે, બાકીના ભાંગાઓમાં સામાચારી થતી નથી. જો સાગારિક ત્યાંથી ગમન કરવા માંડે, તે જેટલા સમયમાં તે સાત ડગલાં આગળ વધે છે, તેટલા કાળ સુધી ઉપાશ્રયની બહાર રહેવું જોઇએ અને તે ચાલ્યા ગયા બાદ પગનું પ્રમાર્જન કરવું જોઇએ. આચાર્ય કરતાં દીક્ષાપર્યાયની અપેક્ષાએ જે સાધુ નાને હોય તેણે જ આચાર્યના પગનું રજોહરણ

पेक्षया पर्यायलघुनैव साधुना कर्तव्यं न तु पर्यायज्येष्ठेन। पर्यायज्येष्ठास्तु आचार्यस्य गुरुतुल्या एव। आचार्यः सागारिकस्य सत्तायामुपाश्रयान्तर्गत एव पादौ प्रस्फोटयतीत्युक्तम्। तत्र उपाश्रयो यदि विपुलो भवेत्तदाऽपरिभुक्तस्थाने उपविश्य पादौ तेन प्रस्फोटनीयौ। यदि उपाश्रयः सङ्कुचितः भवेत्तदा स्वसंस्तारकावकाशे एव समुपविष्टेन तेन पादौ प्रस्फोटनीयौ। अथ चेदाचार्योपाध्यायौ, सहैव समागच्छतस्तदा तयोर्यः पर्यायज्येष्ठस्तस्य पूर्वं पादप्रस्फोटना कार्या। ततोऽन्यस्य। इति प्रथमोऽतिशेषः। तथा–आचार्योपाध्याय उपाश्रयस्य मध्ये

आचार्यकी अपेक्षा जो पर्यायमें लघु साधु हो ऐसेही साधुको करना चाहिये पर्यायकी अपेक्षा ज्येष्ठ साधुको नहीं करना चाहिये क्योंकि पर्याय ज्येष्ठ जो साधु हैं वे आचार्यके गुरुतुल्यही होते हैं। आचार्य सागारिककी सत्तामें मौजूदगीमें उपाश्रयके भीतरही दोनों पैरोंको पूंजता है, ऐसा कहा है, सो यदि उपाश्रय विपुल बडा हो तो उसे अपरि भुक्त स्थानमें बैठकर अपने दोनों पैरोंको शुद्ध करना चाहिये और यदि उपाश्रय छोटा है, तो उसे अपने संस्तारकके स्थान परही बैठकर पैरोंको पूंज लेना चाहिये यदि आचार्य और उपाध्याय साथही साथ आये हों तो उन दोनोंमें जो पर्यायसे जेष्ठ है, उसे पहिले चरणोंका प्रमार्जन करनी चाहिये उसके बाद दूसरेको करनी चाहिये इस प्रकारका यह प्रथम

આદિ વડે પ્રસ્ફોટન (રજ ઝાપટવાનું કાર્ય) કરવું જોઈએ, પરન્તુ આચાર્ય કરતાં જે સાધુ દીર્ઘ દીક્ષાપર્યાયવાળો હોય, તેણે આચાર્યનું પાદપ્રસ્ફોટન કરવું જોઈએ નહીં, કારણ કે પર્યાયજ્યેષ્ઠ જે સાધુઓ હોય છે તેઓ તો આચાર્યના ગુરુ સમાન ગણાય છે આચાર્ય સાગારિકની હાજરી હોય ત્યારે ઉપાશ્રયની અંદર જ બન્ને પગની પ્રમાર્જના કરે છે, એવું અહીં જે કહેવામાં આવ્યું છે તેનો ભાવાર્થ એ છે કે જો ઉપાશ્રય વિશાળ હોય તો તેમણે અપરિભુક્ત સ્થાનમાં બેસીને જ પોતાના બન્ને પગ ધોવા જોઈએ, પણ જો ઉપાશ્રય નાનો હોય તો તેમણે પોતાના સંસ્તારકના સ્થાન પર બેસીને જ પોતાના પગની પ્રમાર્જના કરવી જોઈએ. જો આચાર્ય અને ઉપાધ્યાય બન્ને બહારથી સાથે આવ્યા હોય, તો તે બન્નેમાં દીક્ષાપર્યાયની અપેક્ષાએ જ્યેષ્ઠ હોય તેમણે પોતાના પગની પ્રમાર્જના પહેલાં કરવી જોઈએ, અને ત્યાર બાદ લઘુ દીક્ષાપર્યાયવાળાએ પોતાના પગની પ્રમાર્જના કરવી જોઈએ. આ પ્રકારનું પહેલા અતિશેષનું સ્વરૂપ છે.

उच्चारप्रस्रवणं विवेचयन्=परिष्ठापयन् वा विशोधयन् वा जिनाज्ञां नातिक्रामति । अत्रेदं बोध्यम्-आचार्य उपाध्यायो वा उत्सर्गतो विचारभूमिं न गच्छति दोषसम्भवात्, तथाहि-आचार्यादिः कदाचिद् तिथिषु गच्छन् पूर्वं 'श्रुतादिगुणयुक्तोऽय'-मिति बुद्धया श्रावकादिभिरभ्युत्थानादिना सत्क्रियते, यद्यनेकशो विचारभूमिं गच्छति ततः श्रावकादय आलस्यवशात् न तथा कुर्वन्ति, ततोऽन्ये कदाचित् एवं मन्यन्ते-यदेते श्रावकादयो गुणिनां पूजका भवन्ति, ते चैनं

अतिशेष है। द्वितीय अतिशेष ऐसा है-आचार्य और उपाध्याय उपाश्रयमें उच्चार और प्रस्रवणका निवारण करते हैं तो वे जिनाज्ञाका उल्लङ्घन नहीं करते हैं, यहां ऐसा समझना चाहिये आचार्य अथवा उपाध्याय दोषोंकी संभावनासे विचारभूमिमें नहीं जाते हैं, इसका कारण ऐसा है, कि जब वे विचार भूमिमें जाते समय मार्ग से निकलतेहैं, तो उस समय पहिले श्रावक लोग उन्हें इस बुद्धिसे कि ये श्रुतादि गुणोंसे युक्त हैं, अभ्युत्थान आदि द्वारा सत्कृत करते हैं, पर यदि ये बार२ विचार भूमिमें जानेके लिये मार्गसे होकर निकलने लगते हैं, तो श्रावक आदिजन आलस्यके वशसे बार २ ऐसा नहीं भी करते हैं तो ऐसी उनकी दशा देखकर अन्य जन कदाचित् ऐसा भी मानने लगते हैं, कि ये श्रावकजन तो गुणिजनोंके पूजक होते हैं, और फिर

દ્વિતીય અતિશેષ આ પ્રકારનો છે—આચાર્ય અને ઉપાધ્યાય જો ઉપાશ્રયમાં ઉચ્ચાર અને પ્રસ્રવણની (મળમૂત્રની) પરિષ્ઠાપના અથવા વિશોધના કરે, તો તેઓ જિનાજ્ઞાની વિરાધના કરનારા ગણાતા નથી. અહીં એમ સમજવું જોઈએ કે આચાર્ય અથવા ઉપાધ્યાય દોષોની સંભાવનાને લીધે વિચારભૂમિમાં (શૌચભૂમિમાં) જતા નથી. તેનું કારણ નીચે પ્રમાણે સમજવું. જ્યારે વિચારભૂમિમાં જવા માટે તેઓ નીકળે છે ત્યારે તેમના માર્ગમાં જે જે શ્રાવકો આવે છે, તેઓ તેમને શ્રુતાદિ ગુણોથી યુકત ગણીને ઉત્થાન આદિ દ્વારા તેમનો સત્કાર કરે છે. પણ જો તેઓ વારંવાર વિચારભૂમિમાં જવાને માટે માર્ગ પરથી પસાર થાય છે, તો શ્રાવકો વગેરે આળસને આધીન થઈને અભ્યુત્થાન આદિ દ્વારા તેમનો સત્કાર કરવાનો કદાચ બંધ પણ કરી નાખે છે. માર્ગેથી પસાર થતાં તે આચાર્ય આદિનો શ્રાવકો દ્વારા અભ્યુત્થાન આદિ દ્વારા સત્કાર ન થતો જોઈને બીજા લોકો કદાચ એવી પણ કલ્પના કરવા માંડે છે કે શ્રાવકો તો ગુણીજનોના પૂજક હોય છે, છતાં તેઓ આ

न सत्कुर्वन्ति, अतो नूनमयं पतित इति। तथा-अयं द्विर्भुङ्क्ते इत्यवर्णवादो भवति, मत्सरिकर्तृकमरणाद्याशङ्काऽपि च तस्य भवतीति। इति द्वितीयोऽतिशेषः।

तथा-आचार्य उपाध्यायो वा प्रभुः=स्वामी भवति गणनायकत्वात्, अतस्तस्य यदि इच्छा भवेत् तदा स वैयावृत्यं=साधुभ्यो भक्तपानादिदानरूपं कुर्यात्, तस्य इच्छा न भवेत्तदा न कुर्यात्। आचार्यादिर्गणनायको भवति, अतस्तस्य वैयावृत्यकरणे कामचारः, स स्वेच्छया कुर्यादपि, नापि च कुर्यात्। नास्ति तस्मिन् प्रतिबन्ध इति भावः। इति तृतीयोऽतिशेषः। तथा-आचार्य उपाध्यायो

ये अब ऐसा क्यों नही करते हैं, जो इनके ये गुरुजन यहांसे होकर निकलते हैं, और ये उनका अभ्युत्थान आदि द्वारा सत्कार आदि नहीं करते हैं, अतः नियमसे ये पतित हैं, इसलिये ये ऐसा करते हैं, तथा ये दो बार भोजन करते हैं, इसीलिये इन्हें अनेक बार विचारभूमिमें जाना पड़ता है, ऐसा अवर्णवाद भी होता है, तथा जो मात्सर्य भावसे युक्त होते है, ऐसे व्यक्तियों द्वारा उन्हें अपने मारे जाने आदिकी शङ्का भी हो सकती है, इसीलिये वे उच्चार प्रस्रवण आदि उपाश्रयके भीतरही करते हैं, और उसकी विशोधना करते हैं, ऐसा यह द्वितीय अतिशेष है, तृतीय अतिशेष ऐसा है, गणनायक होनेसे आचार्य या उपाध्याय अपने गणका स्वामी होता है, अतः यदि उसकी इच्छा होती है, तो वह अन्य साधुजनोंकी भक्तपान आदिके देनेरूप उनकी वैयावृत्ति करता है, और यदि उसकी इच्छा नही होती है, तो वह ऐसा नहीं भी करता है, आचार्य आदि गणनायक होते हैं, अतः अन्य सा-

તેમના આચાર્યનો અભ્યુત્થાન આદિ દ્વારા સત્કાર શા માટે કરતાં નથી? અવશ્ય આ સાધુનું પતન થયું હોવું જોઈએ, અને તે કારણે શ્રાવકો તેમનો સત્કાર નહીં કરતા હોય વળી લોકો એવી કલ્પના પણ કરે છે કે તેઓ બે વાર જમે છે, તેથી તેમને અનેકવાર વિચારભૂમિમાં જવું પડે છે, આ પ્રકારનો તેમનો અવર્ણવાદ (નિંદા) પણ થાય છે. વળી માત્સર્યભાવ યુક્ત વિરોધીઓ વડે પોતાની હત્યા થઈ જવાની શંકા પણ તેમને રહે છે. તે કારણે તેઓ ઉચ્ચાર પ્રસવણ આદિ ઉપાશ્રયની અંદર જ કરે છે અને તેની વિશોધના કરે છે આ પ્રકારનો આ બીજો અતિશેષ છે.

ત્રીજો અતિશેષ આ પ્રકારનો છે—ગણનાયક હોવાને કારણે આચાર્ય અથવા ઉપાધ્યાય પોતાના ગણના સ્વામી હોય છે. અન્ય સાધુઓને ભક્તપાન આદિ દેવા રૂપ તેમનું વૈયાવૃત્ય તેઓ ઐચ્છિક રીતે કરે છે, એટલે કે તેમની

वा साधनादिरूप कारणवशात् उपाश्रयस्य मध्ये एकरात्रं वा द्विरा त्रं वा एकाकी वसन् नातिक्रामति जिनाज्ञामिति चतुर्थोऽतिशेषः। तथा-आचार्य उपाध्यायो वा साधनादिरूपकारणवशात् उपाश्रयाद् वहिः एकरात्रं वा द्विरात्रं वा एकाकी वसन् जिनाज्ञां नातिक्रामतीति पञ्चमोऽतिशेषः। अत्रेदं वोध्यम्-गणावच्छेदकस्यादितस्त्रयोऽतिशेषा न भवन्ति, अन्तिमौ द्वौ भवतः। तदुक्तम्—

" गणावच्छेयगस्स गणंसि णं दो अइसेसा पण्णत्ता, तं जहा-गणावच्छेयए अन्तो उवस्सयस्स एगरायं वा दुरायं वा वसमाणे णो अइक्कमइ १, गणावच्छेयए

धुओंकी वैयावृत्ति करनेमें उसकी कामचारता है, उसकी इच्छा होती है, तो वह करता है, और नहीं होती है तो नहीं करता है। अन्य साधुओंकी वैयावृत्ति करनेमें उसे प्रतिबन्ध नहीं है। चतुर्थ अतिशेष ऐसा है, आचार्य अथवा उपाध्याय साधनादि रूप कारणके वशसे उपाश्रयमें एक रात या दो रात तक अकेला रहता है, तो वह जिनाज्ञाका उल्लङ्घन नहीं करता है, पांचवां अतिशेष ऐसा है, आचार्य अथवा उपाध्याय साधनादि रूप कारणके वशसे उपाश्रयके बाहर एक रात अथवा दो रात तक यदि बाहर रहता है, तो वह जिनाज्ञाका विराधक नहीं बनता है, आदिके तीन अतिशेष गणावच्छेदकको नहीं होते हैं, अन्तिम दो अतिशेष होते है तदुक्तम्—

" गणावच्छेयगस्स गणंसि णं दो अइसेसा पण्णत्ता-तं जहा गणावच्छेयए बाहिं उवस्सयस्स एगरायं वा दुरायं वा वसमाणे णो अइक्क-

ઇચ્છા થાય તો કરે છે અને ઇચ્છા ન થાય તો કરતા નથી. તેઓ ગણનાયક હોવાથી તેમને માટે વૈયાવૃત્ય કરવાનું ફરજિયાત નથી, અને વૈયાવૃત્ય કરવાનો નિષેધ પણ નથી.

ચોથો અતિશેષ આ પ્રકારનો છે—આચાર્ય અથવા ઉપાધ્યાય સાધના આદિ રૂપ કારણે ઉપાશ્રયમાં એકથી બે રાત સુધી એકલા રહે તો તેઓ જિનાજ્ઞાના વિરાધક ગણાતા નથી.

પાંચમો અતિશેષ આ પ્રકારનો છે—આચાર્ય અથવા ઉપાધ્યાય સાધના આદિ રૂપ કારણને લીધે ઉપાશ્રયની બહાર એક અથવા બે રાત સુધી રહે છે, તો તેઓ જિનાજ્ઞાના વિરાધક ગણાતા નથી.

પહેલાં ત્રણ અતિશેષનો ગણાવચ્છેદકમાં સદ્ભાવ હોતો નથી, છેલ્લા બે અતિશેષોનો જ તેમનામાં સદ્ભાવ હોય છે. કહ્યું પણ છે કે—

" गणावच्छेयगस्स गणंसि णं दो अइसेसा पण्णत्ता-तं जहा गणावच्छेयए बाहिं उवस्सयस्स एगरायं वा दुरायं वा वसमाणे णो अइक्कमइ१। गणावच्छेयए

बाहिं उवस्सयस्स एगरायं वा दुरायं वा वसमाणे णो अइक्कमइ २ ।।"

छाया—गणावच्छेदकस्य गणे खलु द्वौ अतिशेषौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा—गणावच्छेदकः अन्तरुपाश्रयस्य एकरात्रं वा द्विरात्रं वा वसन् नातिक्रामति १, गणावच्छेदको बहिरुपाश्रयात् एकरात्रं वा द्विरात्रं वा वसन् नातिक्रामति २। इति ।

यदि आचार्योपाध्यायगणावच्छेदकाः सहैव समागच्छेयुस्तत्र यदि गणावच्छेदः पर्यायज्येष्ठो भवति, तदा पर्यायज्येष्ठत्वाद् गणावच्छेदकस्य प्रथमं पादप्रस्फोटना, अनन्तरमाचार्योपाध्याययोः पर्यायक्रमानुसारेणेति ।।सू० २८।।

आचार्योपाध्याययोर्गणेऽतिशेषा उक्ताः, सम्प्रति तयोरतिशयविपरीतानि गणनिर्गमनकारणानि प्राह—

मूलम्—पंचहिं ठाणेहिं आयरियउवज्झायस्स गणावक्कमणे पण्णत्ते तं जहा—आयरियउवज्झाए गणंसि आणं वा धारणं वा नो सम्मं पउंजित्ता भवइ १। आयरियउवज्झाए गणंसि आहारायणियाए किइकम्मं वेणइयं णो सम्मं पउंजित्ता भवइ २। आयरियउवज्झाए गणंसि जे सुयपज्जवजाए धारेइ ते काले काले णो सम्ममणुप्पवाएत्ता भवइ ३। आयरियउवज्झाए

मइ १ गणावच्छेयए बाहिं उवस्सयस्स एगरायं वा दुरायं वा वसमाणे णो अइक्कमइ २" इसका अर्थ पूर्वोक्तानुसारही है--

यदि आचार्य उपाध्याय और गणावच्छेदक ये तीनों साथही आते हैं, तो उनमें यदि गणावच्छेदक पर्यायसे ज्येष्ठ है, तो उस गणावच्छेदककी पादप्रस्फोटना (प्रमार्जना) सबसे पहिले होतीहै, इसके बाद आचार्य और उपाध्यायकी पर्यायके क्रमानुसार होती है ।।सू० २८।।

बाहिं उवस्सयस्स एगरायं वा दुराय वा वसमाणे णो अइक्कमइ२"

આ સૂત્રપાઠનો ભાવાર્થ પૂર્વોક્ત કથન અનુસાર જ સમજવો. જો આચાર્ય, ઉપાધ્યાય અને ગણાવચ્છેદક એ ત્રણે સાથે જ આવે, તો ગણાવચ્છેદક જો પર્યાયની અપેક્ષાએ જયેષ્ઠ હોય તો તે ગણાવચ્છેદકની પાદપ્રસ્ફોટના (પગની પ્રમાર્જના) સૌથી પહેલાં થાય છે અને ત્યાર બાદ પર્યાયના ક્રમ અનુસાર આચાર્ય અને ઉપાધ્યાયના પગની પ્રમાર્જના થાય છે. ।। સૂ. ૨૮ ।।

गणंसि सगणियाए वा परगणियाए वा निग्गंथीए बहिल्लेसे भवइ ४। मित्ते णाईगणे वा से गणाओ अवक्कमेज्जा, तेसिं संगहोवग्गहट्ठयाए गणावक्कमणे पण्णत्ते ॥ सू० २९ ॥

छाया—पञ्चभिः स्थानैः आचार्योपाध्यायस्य गणापक्रमणं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—आचार्योपाध्यायो गणे आज्ञां वा धारणां वा नो सम्यक् प्रयोक्ता भवति १, आचार्योपाध्यायो गणे यथारात्निकतया कृतिकर्म वैनयिकं नो सम्यक् प्रयोक्ता भवति २। आचार्योपाध्यायो गणे यानि श्रुतपर्यवजातानि धारयति तानि काले काले नो सम्यक् अनुप्रवाचयिता भवति ३। आचार्योपाध्यायो गणे स्वगणिकायां वा परगणिकायां वा निर्ग्रन्थ्यां बहिर्लेश्यो भवति ४। मित्रं ज्ञातिगणो वा तस्य गणात् अपक्रामेत् तेषां संग्रहोपग्रहार्थाय गणापक्रमणं प्रज्ञप्तम् ५ ॥सू०२९॥

टीका—'पचहिं ठाणेहिं' इत्यादि—

पञ्चभिः स्थानैः=कारणैः आचार्योपाध्यायस्य—आचार्योपाध्यायत्वविशिष्टस्य कस्य साधोः आचार्यस्य उपाध्यायस्य च साधुद्वयस्य वा गणापक्रमणम्—गणात्=गच्छात् अपक्रमणं=निस्सरणं=बहिर्गमनम् प्रज्ञप्तम्। तद्यथा—तानि स्थानान्याह—आचार्योपाध्यायो गणे=गच्छे आज्ञां='हे मुने ! भवतेदं विधेयम्' इत्येवंरूपाम्,

---

आचार्य और उपाध्यायके गणमें इस प्रकारसे जो अतिशेष होते हैं वे प्रकट किये अब सूत्रकार इन दोनोंके गणसे निर्गमन होनेके कारणोंको जो अतिशयोंसे विपरीत होते हैं कहते हैं—

'पंचहिं ठाणेहिं आयरियउवज्झायस्स' इत्यादि सूत्र २९ ॥

टीकार्थ—पांच कारणोंको लेकर आचार्य रूप उपाध्यायका अथवा आचार्य एवं उपाध्यायका गच्छसे निस्सरण होना कहा गया है—वे पांच कारण इस प्रकारसे हैं—"आचार्योपाध्यायो गणे आज्ञां वा धारणां वा" इत्यादि

આચાર્ય અને ઉપાધ્યાયના ગણમાં આ પ્રકારના જે અતિશેષો હોય છે તે પ્રકટ કરવામાં આવ્યા. હવે સૂત્રકાર તે બન્નેના ગણમાંથી નીકળી જવાના કારણોનું નિરૂપણ કરે છે. અતિશયો કરતાં નિર્ગમન વિપરીત હોવાથી અતિશયોનું નિરૂપણ કરીને સૂત્રકાર નિર્ગમનના કારણો પ્રકટ કરે છે.

ટીકાર્થ—"पंचहिं ठाणेहिं आयरियउवज्झायस्स" ઇત્યાદિ—

નીચેના પાંચ કારણોને લીધે આચાર્ય રૂપ ઉપાધ્યાયને અથવા આચાર્ય અને ઉપાધ્યાયને ગચ્છમાંથી નીકળી જવું પડે છે. તે કારણો આ પ્રમાણે છે.

(૧) "आचार्योपाध्यायो गणे आज्ञां वा धारणां वा ઇત્યાદિ—જે આચાર્ય

धारणां=' नेदं विधेयम् ' इत्येवंरूपां वा नो सम्यग्=यथौचित्येन प्रयोक्ता=प्रवर्तको भवति। अयं भावः-गणस्य दुर्विनीतत्वात् आज्ञां धारणां वा गणे प्रवर्तयितुमशक्नुवन् आचार्य उपाध्यायो वा गणादपक्रामति कालकाचार्यवदिति। आज्ञाधारणयोर्विशिष्टव्याख्याऽस्यैव स्थानकस्य प्रथमोद्देशे त्रयोदशसूत्रे द्रष्टव्या। इति प्रथमं स्थानम्। तथा-आचार्योपाध्यायो गणे=गणविषये यथारात्निकतया=पर्यायज्येष्ठानुसारेण कृतिकर्म=वन्दनकं वैनयिकं=विनयं च नो सम्यक् प्रयोक्ता भवति। अयं भावः-आचार्येणापि प्रतिक्रमणक्षामणादिषु पर्यायज्येष्ठानामुचितो

आचार्य या उपाध्याय गच्छमें आज्ञाका-" हे मुने! आपको यह करना चाहिये " इस प्रकारका निषेधका औचित्यरूपसे यदि प्रवर्त्तक नहीं होता है, तथा आज्ञा और धारणा नहीं करा सकता है, तो उसे गणसे पृथक् हो जाना चाहिये ऐसा यह प्रथम कारण है। तात्पर्य इसका ऐसा है, कि अपना गण यदि दुर्विनीत हो गया है, और वह गणमें अपनी आज्ञा एवं धारणाको प्रवृत्त करानेमें अशक्य है, तो ऐसी स्थितिमें उसका कालकाचार्यकी तरह गणसे बाहर होना श्रेयस्कर है १ आज्ञा और धारणाकी विशिष्ट व्याख्या इसी स्थानके प्रथम उद्देशकमें १३ वें सूत्रमें देख लेनी चाहिये। द्वितीय स्थान ऐसा है-आचार्य एवं उपाध्याय यदि अपने गणमें पर्याय ज्येष्ठके अनुसार कृतिकर्म वन्दनक एवं वैनयिक विनय इनके प्रयोक्ता नहीं होते हैं, तो उन्हें गणसे पृथक् हो जाना चाहिये. इसका भाव ऐसा है. आचार्यको भी प्रतिक्रमण क्षामणा आ-

અથવા ઉપાધ્યાય પોતાના ગણમાં આજ્ઞા અને ધારણાનું ઉચિત રીતે પાલન કરાવવાને સમર્થ ન હોય તો તેમણે ગણમાંથી નીકળી જવું જોઈએ. "હે મુનિ! તમારે આ પ્રમાણે કરવું જોઈએ" આ પ્રકારના આદેશને આજ્ઞા કહે છે. "હે મુનિ! તમારે આ પ્રમાણે ન કરવું જોઈએ" આ પ્રકારના નિષેધનું નામ ધારણા છે. આ કથનનું તાત્પર્ય એવું છે કે પોતાનો શિષ્યસમુદાય દુર્વિનીત થઈ ગયો હોય અને તે કારણે પોતાની આજ્ઞા અને ધારણાનું તેમની પાસે પાલન કરાવવાનું અશક્ય બની ગયું હોય, તો એવી પરિસ્થિતિમાં કાલકાચાર્યની જેમ તેમણે ગણમાંથી નીકળી જવું જોઈએ. આજ્ઞા અને ધારણાની વિસ્તૃત વ્યાખ્યા આજ સ્થાનના પહેલા ઉદ્દેશાના ૧૩ માં સૂત્રમાં આપવામાં આવી છે, તો ત્યાંથી વાંચી લેવી જોઈએ.

બીજું કારણ આ પ્રમાણે છે—જો આચાર્ય અને ઉપાધ્યાય પોતાના ગણમાં દીક્ષાપર્યાયની અપેક્ષાએ કૃતિકર્મ, વન્દણા અને વૈનયિકના પ્રયોક્તા ન હોય, તો તેમણે ગણમાંથી અલગ થઈ જવું જોઈએ. આ કથનનો ભાવાર્થ

विनयः कर्त्तव्य एव । स चेद् आचार्यसम्पदा साभिमानस्तथा न करोति तदा तस्य गणान्निष्क्रमणं भवति । एवमुपाध्यायस्यापि बोध्यमिति । इति द्वितीयं स्थानम् । तथा–आचार्योपाध्यायो यानि श्रुतपर्यवजातानि=सूत्रार्थप्रकारान् धारयति=अवगच्छति तानि काले काले=यथावसरं नो सम्यक्=याथातथ्येन अनुप्रवाचयिता=पाठयिता भवतीति–गणादपक्रामतीति तृतीयं स्थानम् । तथा–आचार्योपाध्यायो गणे स्थितः सन् स्वगणिकायां=स्वगच्छस्थितायां परगणिकायां=परगणस्थितायां वा निर्ग्रन्थ्यां=साध्व्यां बहिर्लेश्यः–प्राक्तनाशुभकर्मोदयवशेन सकलकल्याणाश्रयस्थानसंयमप्रासादाद् बहिर्गतालेश्या=अन्तःकरणं यस्य स तथाभूतः–आसक्तो भवतीति गणादपक्रान्तो भवति । गुणाढ्यस्याचार्यस्य नैवं

दिमें पर्यायसे ज्येष्ठ साधुजनोंका उचित विनय करना चाहिये यदि वह आचार्य संपदासे अभिमान सहित होता हुआ ऐसा नहीं करता है, तो उसका गणसे निष्क्रमण होता है, इसी प्रकारसे उपाध्यायके सम्बन्धमें भी जानना चाहिये ऐसा यह द्वितीय स्थान है; तृतीय स्थान ऐसा है, आचार्य और उपाध्याय जिन सूत्रार्थ प्रकारोंको जानते हैं, उन्हें यथावसर वे यदि सम्यक् रूपसे शिष्योंको पढानेवाले नहीं होते हैं तो उन्हें गणसे पृथक् हो जाना चाहिये । चतुर्थ कारण ऐसाहै, कि आचार्य एवं उपाध्याय गणमें स्थित होता हुआ अपने गच्छमें रही हुई या पर गच्छमें रही हुई निर्ग्रन्थीके ऊपर बहिर्लेश्यावाला बन जाता है–आसक्त हो जाता है, तो वह गणसे बाहर निकाला जाता है " गुणाढ्य आचार्यके ऐसा भाव संभवित नहीं होता है " ऐसी विचारणा नहीं करनी

એવો છે કે આચાર્યે પણ પ્રતિક્રમણ, ખામણાં આદિમાં દીક્ષાપર્યાયની અપેક્ષાએ પોતાના કરતાં જયેષ્ઠ જે સાધુએ હોય તેમનો ઉચિત વિનય કરવો જોઈએ અને આ પ્રકારના પર્યાય જયેષ્ઠ સાધુઓનો યોગ વિનય અન્ય સાધુએ પાસે પણ કરાવવો જોઈએ જો આચાર્ય અભિમાનને કારણે પર્યાયજયેષ્ઠ સાધુઓનો વિનય ન કરે તો તેમને ગણુમાંથી નીકળી જવું પડે છે. ઉપાધ્યાયને પણ એ જ પ્રકારના કારણને લીધે ગણુમાંથી નીકળી જવું પડે છે.

ત્રીજું કારણ—આચાર્ય અને ઉપાધ્યાય જે સૂત્રાર્થ પ્રકારોને જાણુતા હોય, તેમનું યોગ્ય અવસરે શિષ્યોને સમ્યક્ રીતે અધ્યયન ન કરાવે, તો તેમણે ગણુમાંથી નીકળી જવું જોઈએ.

ચોથું કારણુ—જો આચાર્ય અથવા ઉપાધ્યાય પોતાના ગચ્છની અથવા અન્ય ગચ્છની નિર્ગ્રંથીમાં આસકત થઈ જાય–તેના પ્રત્યે કુદૃષ્ટિ કરે તો, તેમને ગણુમાંથી નીકળી જવું પડે છે. " ગુણાઢ્ય (ગુણુસંપન્ન) આ આચાર્યમાં

संभाव्यते इति विचारणा न कार्या। यतः प्राक्तनाशुभघनचिक्कणगुरुवज्रसार-कर्मोदयाद् ज्ञानाढ्या अपि उत्पथप्रवृत्ता भवन्ति। तदुक्तम्—

" कम्माइं णूणं घणचिक्कणाइं गरुयाइं वज्जसाराइं।
नाणड्ढयंपि पुरिसं, पंथाओ उप्पहं निंति ॥१॥ "

छाया—कर्माणि नूनं घनचिक्कणानि गुरुकाणि वज्रसाराणि।
ज्ञानाढ्यमपि पुरुषं नूनं पथ उत्पथं नयन्ति ॥ १ ॥ इति।

इति चतुर्थं स्थानम्।

तथा—तस्य=आचार्यस्य मित्रं=सुहृत् ज्ञातिगणः=स्वजनवर्गो वा कुतश्चित् कारणात् गणात् अपक्रामेत्=निर्गच्छेत्, तेषां=निर्गतानां सुहृत्स्वजनानां, संग्रहोपग्रहार्थम्—सङ्ग्रहः=स्वीकरणम् उपग्रहः=वस्त्रादिदानैरुपष्टम्भः, तदर्थं गणापक्रमणं=गच्छान्निर्गमनम् आचार्योपाध्यायस्य प्रज्ञप्तमिति पञ्चमं स्थानकम् ॥सू० २९॥

चाहिये क्योंकि प्राक्तन अशुभ घन चिक्कण वज्रसार कर्मके उदयसे ज्ञानाढ्यजन भी उत्पथमें प्रवृत्त हो जाते हैं, जैसा कि कहा है—

" कम्माइं णूणं " इत्यादि

घनचिक्कण गुरु वज्रसार कर्म ज्ञानाढ्य पुरुषको भी उन्मार्गमें ले जाते हैं। पांचवां स्थान ऐसा है, यदि आचार्य एवं उपाध्यायके सुहृत्-जन अथवा ज्ञातिगण—स्वजनवर्ग गणसे बाहर हो गये हों तो उन निकले हुए सुहृत् जन एवं स्वजनोंके संग्रह एवं उपग्रहके लिये—स्वीकार एवं वस्त्रादिकोंसे उन्हें धर्ममें स्थिर करनेके लिये गच्छसे बाहर होना कहा गया है, ऐसा यह पांचवां स्थान है ॥ सू० २९॥

પ્રકારનો ભાવ સંભવી શકતો નથી," એવી વિચારણા કરવી જોઈએ નહીં, કારણ કે પ્રાક્તન, અશુભ, ઘન, ચીકણા અને વજ્રસાર કર્મના ઉદયથી જ્ઞાનાઢય પુરુષનું પણ પતન થઈ જાય છે અને તે અવળે માર્ગે ચડી જાય છે. કહ્યું પણ છે કે " कम्माइं णूणं " ઈત્યાદિ—ઘન, ચીકણા, ગુરુ અને વજ્રસાર કર્મ જ્ઞાનાઢય પુરુષને પણ ઉત્પથમાં (અવળે માર્ગે) લઈ જાય છે.

પાંચમું કારણ—જો આચાર્ય અથવા ઉપાધ્યાયના સુહૃદજનો અથવા જ્ઞાતિગણ (સ્વજનોનો સમૂહ) ગણમાંથી બહાર નીકળી ગયેલ હોય, તો તેમના (નીકળી ગયેલા તે લોકોના) સંગ્રહ અને ઉપગ્રહને માટે—સ્વીકાર અને વસ્ત્રાદિકો વડે તેમને ધર્મમાં સ્થિર કરવાને માટે તેમણે ગચ્છમાંથી નીકળી જવું જોઈએ. ॥ સૂ. ૨૯ ॥

आचार्यस्य गणादपक्रमणमनन्तरसूत्रे प्रोक्तम् । आचार्यस्तु ऋद्धिमानेव भवतीति ऋद्धिमतो मनुष्यविशेषानाह—

मूलम्—पंचविहा इड्ढिमंता मणुस्सा पण्णत्ता, तं जहा—अरहंता चक्कवट्टी बलदेवा वासुदेवा भावियप्पाणो अणगारा ॥ सू० ३० ॥

॥ इइ पंचमट्ठाणस्स बिइओ उद्देसो ॥

छाया—पञ्चविधा ऋद्धिमन्तो मनुष्याः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—अर्हन्तः, चक्रवर्त्तिनः, बलदेवाः, वासुदेवाः, भावितात्मानोऽनगाराः ॥ सू० ३० ॥

॥ इति पञ्चमस्थानस्य द्वितीय उद्देशः ॥

टीका—' पंचविहा ' इत्यादि—

ऋद्धिमन्तः—ऋद्धिः=लब्धिः, सा च—आमर्शौषधिः विप्रुडौषधिः, श्लेष्मौषधिः—१—जल्लौषधिः २ जल्लो=मलः, स एव ओषधिः, सर्वौषधिः, संभिन्नश्रो

आचार्यका गणसे उपक्रमण (निकलना) अनन्तर सूत्रमें कहा गया है, आचार्य तो ऋद्धिवालाही होता है, अतः अब सूत्रकार ऋद्धिवाले मनुष्य विशेषोंका कथन करते हैं—

'पंचविहा इड्ढिमता मणुस्सा पण्णत्ता' इत्यादि सूत्र ३० ॥

टीकार्थ—ऋद्धिवाले मनुष्य पांच प्रकारके कहे गये हैं जैसे—अर्हन्त १ चक्रवर्ती २ बलदेव ३ वासुदेव ४ और भावितात्मा अनगार ५ ऋद्धि नाम लब्धिका है, यह ऋद्धि अनेक प्रकारकी होती है, जैसे—आमर्शौषधि १ विप्रुडौषधि २ श्लेष्मौषधि ३ जल्लौषधि ४ सर्वौषधि ५

આગલા સૂત્રમાં આચાર્યના ગણમાંથી અપક્રમણ (નીકળી જવાની ક્રિયા) ના કારણો પ્રકટ કરવામાં આવ્યા. આચાર્યો તો ઋદ્ધિવાળા હોય છે. તેથી હવે સૂત્રકાર ઋદ્ધિસંપન્ન વિશિષ્ટ વ્યક્તિઓનું કથન કરે છે.

ટીકાર્થ—" પંચવિહા ઇડ્ઢીમતા મણુસ્સા પણ્ણત્તા " ઇત્યાદિ—

ઋદ્ધિસંપન્ન મનુષ્યોના નીચે પ્રમાણે પાંચ પ્રકાર કહ્યા છે—(૧) અર્હંત, (૨) ચક્રવર્તી, (૩) બલદેવ, (૪) વાસુદેવ અને (૫) ભાવિતાત્મા અણગાર. ઋદ્ધિ એટલે લબ્ધિ. તેના અનેક પ્રકારો કહ્યા છે. જેમકે (૧) આમર્શૌષધિ, (૨) વિપ્રુડૌષધિ, (૩) શ્લેષ્મૌષધિ, (૪) જલ્લૌષધિ, (૫) સર્વૌષધિ,

तृत्वलब्धिः ६, संभिन्नश्रोतृत्वम्=युगपत्सर्वशब्दश्रवणशक्तिमत्ता अवधिलब्धिः ७ ऋजुमतित्वलब्धिः ८, विपुलमतित्वलब्धिः ९, चारणत्वलब्धिः १० आशीविषत्व-लब्धिः ११, आशीविषत्व=शापानुग्रहसामर्थ्यम् केवलित्वलब्धिः १२, गणधरत्व-लब्धिः १३, पूर्वधरत्वलब्धिः १४, अर्हत्त्वलब्धिः १५, चक्रवर्तित्वलब्धिः १६, बलदेवत्वलब्धिः १७, वासुदेवत्वलब्धिः १८ क्षीरास्रवत्व, मध्वास्रवत्व, सर्पिरा-स्रवत्वलब्धिः १९, कोष्ठबुद्धित्वलब्धिः २०, पदानुसारित्वलब्धिः २१, बीजबु-द्धित्वलब्धिः २२, तेजोलेश्यत्वलब्धिः २३, आहारकत्वलब्धिः २४, शीतलेश्यत्व-लब्धिः २५, वैक्रियत्वलब्धिः २६, अक्षीणमहानसत्वलब्धिः २७, पुलाकत्वलब्धिः २८, उक्तं च–" उदयखयखओवसमोवसमसमुत्था बहुप्पगाराओ ।

एवं परिणामवसा, लद्धीओ होंति जीवाणं " ॥

छाया—उदय क्षय क्षयोपशमोपशम समुत्था बहुप्रकाराः ।

एवं परिणामवशाद् लब्धयो भवन्ति जीवानाम् ॥ इति ।

एवं प्रकारा ऋद्धिरस्ति प्राचुर्येण येषां ते तथाभूता मनुष्याः पञ्चविधाः प्रज्ञप्ताः । पञ्चविधत्वमेवाह–तद्यथा–अर्हन्त इत्यादयः । तत्र–भावितात्मानः–

संभिन्नश्रोत्र लब्धि ६, अवधि लब्धि ७, ऋजुमति लब्धि ८, विपुल-मति लब्धि ९, चारण लब्धि १०, आशीविष लब्धि ११, केवलि लब्धि १२, गणधरलब्धि १३, पूर्वधर लब्धि १४, अर्हत्व लब्धि १५, चक्रव-र्तित्व लब्धि १६, बलदेव लब्धि १७, वासुदेव लब्धि १८, क्षीरास्रव, मध्वास्रव, सर्पिरास्रव लब्धि १९, कोष्ठबुद्धि लब्धि २०, पदानुसारि लब्धि २१, बीजबुद्धि लब्धि २२, तेजोलेश्या लब्धि २३, आहारक लब्धि २४, शीतलेश्या लब्धि २५, वैक्रिय लब्धि २६, अक्षीण महानस लब्धि २७, पुलाक लब्धि २८. सोही कहाहै–"उदयखय खओवसमा" इत्यादि ।

शुभ कर्मोंके उदयसे कर्मोंके क्षयसे कर्मोंके क्षयोपशमसे कर्मोंके उपशमसे एवं शुभ परिणामोंके वशसे जीवोंको अनेक प्रकारकी लब्धियां उत्पन्न होती हैं । ऐसी ऋद्धि जिनके प्रचुर मात्रामें होती हैं वे ऋद्धि-

---

(६) संभिन्नश्रोत्रलब्धि, (७) અવધિલબ્ધિ, (૮) ઋજુમતિલબ્ધિ, (૯) વિપુલમતિ લબ્ધિ, (૧૦) ચારણલબ્ધિ, (૧૧) આશીવિષલબ્ધિ, (૧૨) કેવલીલબ્ધિ, (૧૩) ગણધરલબ્ધિ, (૧૪) પૂર્વધરલબ્ધિ, (૧૫) અર્હત્વલબ્ધિ, (૧૬) ચક્રવર્તિત્વલબ્ધિ, (૧૭) બળદેવલબ્ધિ, (૧૮) વાસુદેવલબ્ધિ, (૧૯) ક્ષીરાસ્રવ, મધ્વાસ્રવ, સર્પિરાસ્રવલબ્ધિ, (૨૦) કોષ્ઠબુદ્ધિલબ્ધિ, (૨૧) પદાનુસારીલબ્ધિ, (૨૨) બીજબુદ્ધિલબ્ધિ, (૨૩) તેજોલેશ્યાલબ્ધિ, (૨૪) આહારકલબ્ધિ, (૨૫) શીતલેશ્યાલબ્ધિ, (૨૬) વૈક્રિયલબ્ધિ, (૨૭) અક્ષીણમાનસલબ્ધિ, (૨૮) પુલાકલબ્ધિ વગેરે કહ્યું પણ છે કે " उदय खय खओवसमो " ઇત્યાદિ –

શુભ કર્મોના ઉદયથી, કર્મોના ક્ષયથી, કર્મોના ક્ષયોપશમથી, કર્મોના ઉપશમથી અને શુભ પરિણામોના નિમિત્તથી જીવોને અનેક પ્રકારની લબ્ધિઓની પ્રાપ્તિ થાય છે. એવી લબ્ધિ અથવા ઋદ્ધિથી ખૂબ જ સંપન્ન પુરુષોને

भावितः=सद्भावनया वासितः आत्मा यैस्ते तथा—शुभवासनावासितान्तःकरणा अनगाराः=साधवः। एतेषु पञ्चसु आदितश्चतुर्णाम् ऋद्धिमत्त्वम् अर्हत्त्वादिभिः, यथासम्भवआमर्शौषध्यादिभिश्च बोध्यम्। पञ्चमभेदस्य ऋद्धिमत्त्वं तु आमर्शौषध्यादिभिरेवेति ॥ सू० ३० ॥

इति श्री विश्वविख्यातजगद्वल्लभ प्रसिद्धवाचकपञ्चदशभाषाकलितललितकलापालापकप्रविशुद्धगद्यपद्यनैकग्रन्थनिर्मापक—वादिमानमर्दक श्रीशाहू छत्रपतिकोल्हापुरराजप्रदत्त 'जैनशास्त्राचार्य' पदभूषित कोल्हापुरराजगुरु-बालब्रह्मचारि-जैनाचार्य—जैनधर्मदिवाकर पूज्यश्री घासीलालव्रतिविरचितायां श्री स्थानाङ्गसूत्रस्य सुधाख्यायां व्याख्यायां पञ्चमस्थानके द्वितीयोद्देशकः समाप्तः ॥५–२॥

मान् कहे जाते हैं ये ऋद्धियां मनुष्योंको होती हैं, अतः वे मनुष्य पांच प्रकारके पूर्वोक्त रूपसे प्रकट किये गये हैं। जल्ल नाम मलका है, यह मलही जब औषधिरूप हो जाता है, वह जल्लौषधि है, शाप एवं अनुग्रहकी जो सामर्थ्य है, वह आशीविष ऋद्धि है, एकही साथ समस्त शब्दोंको सुननेकी शक्तिका प्रकट होना संभिन्नश्रोतृत्व है, जो साधुजन सद्वासनासे वासित अन्तःकरणवाले होते हैं वे भावितात्मा अनगार हैं। इन पांचोंमेंसे जो आदिके चार मनुष्य हैं उनमें अर्हत्त्वादिसे एवं यथासंभव आमर्शौषधि आदिसे ऋद्धिमत्ता जानना चाहिये तथा जो पंचम भेद है उसमें आमर्शौषधि आदिसेही ऋद्धिमत्ता जानना चाहिये ॥ सू० ३० ॥

श्री जैनाचार्य श्री घासीलालजी महाराज रचित "स्थानाङ्गसूत्र" की सुधा नामकी व्याख्याके पांचवें स्थानका द्वितीय उद्देशा समाप्त ॥ ५–२ ॥

ઋદ્ધિમાન્ કહેવામાં આવે છે. એવા ઋદ્ધિમાન પુરુષોના અર્હંત આદિ પૂર્વોક્ત પાંચ પ્રકારો સમજવા. 'જલ્લ' એટલે 'મળ' તે જલ્લજ જ્યારે ઔષધિ રૂપ બની જાય છે, ત્યારે તેને જલ્લૌષધિ કહે છે. શાપ અને અનુગ્રહનું જે સામર્થ્ય છે તેનું નામ આશીવિષ લબ્ધિ છે એકી સાથે સમસ્ત શબ્દોને શ્રવણ કરવાની શક્તિ જે ઋદ્ધિને લીધે પ્રાપ્ત થાય છે, તે ઋદ્ધિને સંભિન્નશ્રોતૃત્વ ઋદ્ધિ કહે છે. જે મુનિ સદ્દવાસનાથી યુક્ત અન્તઃકરણવાળા હોય છે, તેમને ભાવિતાત્મા અણગાર કહે છે. ઉપર્યુક્ત પાંચમાંથી જે શરૂઆતના ચાર મનુષ્યો છે તેમનામાં અર્હંત્વાદિની અપેક્ષાએ અને યથા સંભવ આમર્શૌષધિ આદિની અપેક્ષાએ ઋદ્ધિમત્તા સમજવી જોઈએ અને જે પાંચમો પ્રકાર છે તેમાં આમર્શૌષધિ આદિની અપેક્ષાએ જ ઋદ્ધિમત્તા સમજવી. સૂ. ૩૦

॥ પાંચમાં સ્થાનકનો બીજો ઉદ્દેશક સમાપ્ત ॥

अथ तृतीयोद्देशकः प्रारभ्यते

उक्तो द्वितीयोद्देशकः, सम्प्रति तृतीय आरभ्यते। अस्य च पूर्वोद्देशकेन सहायमभिसम्बन्धः। पूर्वस्मिन्नुद्देशके जीवधर्माः प्रायः प्ररूपिताः। अस्मिंस्तृतीयोद्देशके अजीवजीवधर्माः प्ररूप्यन्ते, इत्यनेन सबन्धेनायातस्यास्य तृतीयोद्देशकस्येदमादिमं सूत्रम्—

तथा—द्वितीयोद्देशकान्त्यसूत्रेण सहास्य तृतीयोद्देशकप्रथमसूत्रस्यायमभिसम्बन्धः—पूर्वोद्देशकान्त्यसूत्रे ऋद्धिमन्तो जीवास्तिकायविशेषा उक्ताः, इह तु असंख्येयानन्तप्रदेशलक्षणऋद्धिमन्तः समस्ता अस्तिकाया उच्यन्ते—

मूलम्—पंच अत्थिकाया पण्णत्ता, तं जहा—धम्मत्थिकाए १, अधम्मत्थिकाए २, आगासत्थिकाए ३, जीवत्थिकाए ४, पोग्गलत्थिकाए ५। धम्मत्थिकाए अवन्ने अगंधे अरसे अफासे

— पाँचवे स्थानके तीसरा उद्देशेका प्रारंभ —

पंचम स्थानका द्वितीय उद्देशा समाप्त हुआ अब सूत्रकार इसका तृतीय उद्देशक प्रारंभ करते हैं, पूर्व उद्देशकके साथ इसका ऐसा संबंध है, कि पूर्व उद्देशकमें प्रायः जीव धर्मोंकी प्ररूपणा हुई हैं, और अब इस तृतीय उद्देशकमें अजीव जीव धर्मोंकी प्ररूपणा होती है, तथा द्वितीय उद्देशकके अन्तिम सूत्रके साथ इस तृतीय उद्देशकके प्रथम सूत्रका संबंध ऐसा है, कि पूर्व उद्देशकके अन्तिम सूत्रमें ऋद्धिमान् जीवास्तिकाय विशेष कहे गये हैं, परन्तु यहां असंख्यात प्रदेशरूप और अनन्तप्रदेशरूप ऋद्धिवाले समस्त अस्तिकाय कहे जा रहे हैं—

— પાંચમા સ્થાનનો ત્રીજો ઉદ્દેશો —

પાંચમાં સ્થાનનો બીજો ઉદ્દેશક પૂરો થયો. હવે સૂત્રકાર ત્રીજા ઉદ્દેશકનો પ્રારંભ કરે છે. આ ઉદ્દેશકનો આગલા ઉદ્દેશક સાથે આ પ્રકારનો સંબંધ છે. આગલા ઉદ્દેશકમાં જીવધર્મોની પ્રરૂપણા કરવામાં આવી છે, હવે આ ત્રીજા ઉદ્દેશામાં અજીવ અને જીવધર્મોની પ્રરૂપણા કરવાની છે. બીજા ઉદ્દેશકના છેલ્લા સૂત્ર સાથે આ ઉદ્દેશકના પહેલા સૂત્રનો સંબંધ આ પ્રકારનો છે-બીજા ઉદ્દેશકના છેલ્લા સૂત્રમા ઋદ્ધિસંપન્ન જીવાસ્તિકાય વિશેષનું કથન કરવામાં આવ્યું હતું, પરન્તુ અહીં અસંખ્યાત પ્રદેશ રૂપ અને અનંત પ્રદેશ રૂપ ઋદ્ધિવાળા સમસ્ત અસ્તિકાયની પ્રરૂપણા કરવામાં આવે છે.

अरूवी अजीवे सासए अवट्ठिए लोगदव्वे। से समासओ पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा-दव्वओ खित्तओ कालओ भावओ गुणओ। दव्वओ णं धम्मत्थिकाए एगं दव्वं खेत्तओ लोगपमाणमेत्ते, कालओ ण कयाइ णासी, न कयाइ न भवइ, न कयाइ न भविस्सइत्ति भुविं य भविस्सइ य, धुवे णियए सासए अक्खए अव्वए अवट्ठिए णिच्चे, भावओ अवन्ने अगंधे अरसे अफासे गुणओ गमणगुणे य १। अधम्मत्थिकाए अवन्ने एवं चेव, णवरं गुणओ ठाणगुणे २। आगासत्थिकाए अवन्ने एवं चेव, खेत्तओ लोगालोगपमाणमित्ते, गुणओ अवगाहणा गुणे, सेसं तं चेव ३। जीवत्थिकाए णं अवन्ने एवं चेव, णवरं दव्वओ णं जीवत्थिकाए अणंताइं दव्वाइं अरूवी जीवे सासए, गुणओ उवओगगुणे, सेसं तं चेव ४। पोग्गलत्थिकाए पंचवन्ने पंचरसे दुगंधे अट्ठफासे रूवी अजीवे सासए अवट्ठिए जाव दव्वओ णं पोग्गलत्थिकाए अणंताइं दव्वाइं, खेत्तओ लोगपमाणमेत्ते, कालओ ण कयाइ णासी जाव णिच्चे, भावओ वन्नमंते गंधमंते रसमंते फासमंते, गुणओ गहणगुणे ॥ सू०१ ॥

छाया-पञ्च अस्तिकायाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-धर्मास्तिकायः१, अधर्मास्तिकायः २ आकाशास्तिकायो ३ जीवास्तिकायः ४ पुद्गलास्तिकायः ५। धर्मास्तिकायः अवर्णः अगन्धः अरसः-अस्पर्शः अरूपी अजीवः शाश्वतः अवस्थितो लोकद्रव्यम्। स समासतः पञ्चविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-द्रव्यतः कालतः भावतो गुणतः। द्रव्यतः खलु धर्मास्तिकाय एकं द्रव्यम्, क्षेत्रतो लोक प्रमाणमात्रः, कालतो न कदापि नासीत्, न कदापि न भवति, न कदापि न भविष्यतीति अभूद् भवति भविष्यति च ध्रुवो नित्यः शाश्वतः अक्षयः अव्ययः अवस्थितो नित्यः भावतः-अवर्णः अगन्धः

अरसः अस्पर्शः, गुणतो गमनगुणश्च १। अधर्मास्तिकायः अवर्णः एवमेव, नवरं गुणतः स्थानगुणः २। आकाशास्तिकायः अवर्ण एवमेव, क्षेत्रतो लोकालोकप्रमाणमात्रः, गुणतः-अवगाहनागुणः, शेषं तदेव ३। जीवास्तिकायः खलु अवर्णः एवमेव नवरं द्रव्यतः खलु जीवास्तिकायः अनन्तानि द्रव्याणि अरूपी जीवः शाश्वतः, गुणत उपयोगगुणः शेष तदेव ४। पुद्गलास्तिकायः पञ्चवर्णः पञ्चरसो द्विगन्धः अष्टस्पर्श रूपी अजीवः शाश्वतः अवस्थितो यावद् द्रव्यतः खलु पुद्गलास्तिकायः अनन्तानि द्रव्याणि, क्षेत्रतो लोकप्रमाणमात्रः, कालतो न कदापि नासीत् यावद् नित्यः, भावतो वर्णवान् गन्धवान् रसवान् स्पर्शवान्, गुणतो ग्रहणगुणः ५ ॥ सू० १ ॥

टीका—' पंच अत्थिकाया ' इत्यादि--

अस्तिकायाः-अस्ति शब्दः अभूवन् भवन्ति भविष्यन्ति चेति त्रिकालवाचकः, अस्ति च ते कायाः=प्रदेशानां राशयश्चेति, यद्वा-अस्तिशब्दः प्रदेशवाचकः, अस्तीनां=प्रदेशानां कायाः-राशयः । ते च पञ्चविधाः प्रज्ञप्ताः । पञ्चविधत्वमेवाह-

---

'पंच अत्थिकाया पण्णत्ता' इत्यादि सूत्र १ ॥'

टीकार्थ-पांच अस्तिकाय कहे गये हैं-जैसे-धर्मास्तिकाय१ अधर्मास्तिकाय २ आकाशास्तिकाय ३ जीवास्तिकाय ४ और पुद्गलास्तिकाय ५ यहां जो अस्ति शब्द है, वह त्रिकालका वाचक है, अर्थात् ये धर्मास्तिकाय आदि पहिले थे वर्तमानमें हैं, और आगे भी रहेगें । प्रदेशोंकी राशिका नाम काय है, इस तरह जो अस्तिरूप काय हैं, वे अस्तिकाय हैं। अथवा-अस्ति शब्द प्रदेशका वाचक है, इस तरह जो अस्तियोंकी प्रदेशोंकी राशियां हैं, वे अस्तिकाय हैं, ये अस्तिकाय धर्मास्तिकाय आदिके भेदसे पांच प्रकारके कहे गये हैं, इन धर्मास्तिकायादिकों की व्याख्या

" पच अत्थिकाया पण्णत्ता " ઇત્યાદિ—

ટીકાર્થ-પાંચ અસ્તિકાય કહ્યા છે—(૧) ધર્માસ્તિકાય, (૨) અધર્માસ્તિકાય, (૩) આકાશાસ્તિકાય, (૪) જીવાસ્તિકાય અને (૫) પુદ્ગલાસ્તિકાય

અહીં જે અસ્તિ પદ છે, તે ત્રિકાળનું વાચક છે એટલે કે આ ધર્માસ્તિકાય આદિ પહેલા હતાં, હાલમાં છે અને ભવિષ્યમાં પણ હશે જ પ્રદેશોની રાશિને ' કાય ' કહે છે. આ રીતે જે અસ્તિ રૂપ કાય છે, તેમને અસ્તિકાય કહે છે અથવા ' અસ્તિ ' શબ્દ પ્રદેશનો વાચક છે આ રીતે જે અસ્તિઓની (પ્રદેશોની) રાશિઓ છે, તેમને અસ્તિકાય કહે છે આ અસ્તિકાયના ધર્માસ્તિકાય આદિ પાચ પ્રકારો છે તેમની વ્યાખ્યા પ્રથમ સ્થાનમાં આપવામાં આવી છે, તો ત્યાંથી વાચી લેવી.

तद्यथा—धर्मास्तिकायः अधर्मास्तिकाय इत्यादि। धर्मास्तिकायादीनां व्याख्या प्रथम स्थानतोऽवसेया। धर्मास्तिकायादिक्रमेण यो निर्देशः कृतस्तत्रायं हेतुर्बोध्यः। धर्मशब्दो माङ्गलिकः, अतः पूर्वं धर्मास्तिकायः प्रोक्तः। तदनु धर्मास्तिकाय-प्रतिपक्षत्वात् अधर्मास्तिकायः। धर्माधर्मास्तिकाययोराधारभूतत्वात्त आकाशास्तिकायः। ततश्च तदाधेयो जीवास्तिकायः। तत्पश्चाद् जीवास्तिकायस्योपग्राहकः पुद्गलास्तिकायश्च प्रोक्तः। सम्प्रति धर्मास्तिकायादीनां स्वरूपं क्रमेणाह—'धम्मत्थिकाए' इत्यादिना तत्र धर्मास्तिकायः—अवर्णः—न विद्यते वर्णः=शुक्लादिः पञ्चविधो यस्य सः—शुक्लादि पञ्चविधवर्णरहितः, अगन्धः=सुरभिदुरभि-

प्रथम स्थानसे जान लेना चाहिये। इन धर्मास्तिकायादिकोंका जो पूर्वोक्त रूपसे निर्देश किया गया है, उसमें ऐसा विचार है, कि धर्मास्तिकायमें जो धर्म शब्द है, वह माङ्गलिक है, इसलिये सबसे पहिले अस्तिकायोंमें धर्मास्तिकायका कथन किया गया है, इस धर्मास्तिकायका प्रतिपक्ष होनेसे उसके बाद अधर्मास्तिकायका कथन किया गया है, इन धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकायका आधारभूत होनेसे इन दोनोंके बाद आकाशास्तिकायका कथन किया गया है, इस आकाशास्तिकायका आधेय जीवास्तिकाय हैं, और इस जीवास्तिकायका उपग्राहक पुद्गलास्तिकाय है, इसलिये जीवास्तिकायके बाद पुद्गलास्तिकायका कथन किया गया है।

अब सूत्रकार धर्मास्तिकायादिकों के स्वरूप का कथन करते हैं—"धम्मत्थिकाए" इत्यादि—यह धर्मास्तिकाय शुक्लादिके भेदसे पांच प्रकारके वर्णसे रहित है, सुगन्ध और दुर्गन्ध इन दोनों गन्धसे

ધર્માસ્તિકાયમાં 'ધર્મ' શબ્દ માંગલિક હોવાથી સમસ્ત અસ્તિકાયોમાં સૌથી પહેલાં ધર્માસ્તિકાયની પ્રરૂપણા કરવામાં આવી છે. ધર્માસ્તિકાયના પ્રતિપક્ષ રૂપ હોવાને કારણે અધર્માસ્તિકાયની પ્રરૂપણા ત્યાર બાદ કરવામાં આવી છે ધર્માસ્તિકાય અને અધર્માસ્તિકાયના આધારભૂત આકાશાસ્તિકાય છે, તે કારણે તે બન્નેની પ્રરૂપણા કર્યા બાદ આકાશાસ્તિકાયની પ્રરૂપણા કરી છે. આ આકાશાસ્તિકાયનું આધેય જીવાસ્તિકાય છે અને જીવાસ્તિકાયનું ઉપગ્રાહક પુદ્ગલાસ્તિકાય છે, તે કારણે આકાસ્તિકાયનું કથન કર્યા બાદ અનુક્રમે જીવાસ્તિકાય અને પુદ્ગલાસ્તિકાયનુ કથન કરવામાં આવ્યું છે હવે સૂત્રકાર ધર્માસ્તિકાય વગેરેના સ્વરૂપનું નિરૂપણ કરે છે

"ધમ્મત્થિકાએ" ઇત્યાદિ—ધર્માસ્તિકાય શુક્લ આદિ પાંચ પ્રકારના વર્ણથી રહિત છે, સુગન્ધ અને દુર્ગન્ધ રૂપ બન્ને પ્રકારના ગન્ધથી રહિત

गन्धद्वयवर्जितः । अरसः=मधुरादिरसपञ्चकवर्जितः । अस्पर्शः=मृदुकर्कशाद्यष्टविध स्पर्श वर्जितः । अरूपी-रूपम् आकारः-वर्णादिमत्त्वं, तदस्यास्तीति रूपी, न रूपी-अरूपी=अमूर्त्तः । अजीवः-जीवः=उपयोगलक्षणं जीवद्रव्यम्, न जीवः-अजीवः=अचेतनः । शाश्वतः-प्रतिसमय तस्य सद्भावात् । अवस्थितः-धर्मास्तिकायस्य यत् स्वरूपं नित्यत्वात्तेनैव स्वरूपेण स सर्वदा स्थायी । तथा-लोकद्रव्यम्-लोकस्य अंशभूतं द्रव्यम् । लोकस्य सर्वात्मकं द्रव्य त्वयं नास्ति, पञ्चास्तिकायात्मकलोकस्यैकदेशत्वात् । तदुक्तम्—

'पंचत्थिकायमइये लोए अणाइनिहणे ।"

रहित है, मधुरादिके भेदसे पांचों प्रकारके रससे रहित है, एवं मृदु कर्कश आदि आठ प्रकारके स्पर्शसे रहित है । आकाशका नाम रूप है, रूप यह उपलक्षण है, इससे रूप रस आदि चारों गुणोंका ग्रहण हुआ है अतः यह अरूपी है, इसका तात्पर्य ऐसा है, कि यह रूप रस गन्ध आदिसे रहित होनेके कारण अरूपी है, अमूर्त है । उपयोग लक्षणवाला जो होता है, वह जीव है, यह धर्मास्तिकाय ऐसा नहीं है अतः अजीव है, प्रतिसमय इसका सद्भाव रहता है, अतः शाश्वत है, धर्मास्तिकायका जो अपना स्वरूप है, उस स्वरूपसे यह नित्य होनेके कारण सर्वदा स्थायी रहता है, अतः यह अवस्थित है, तथा यह लोकका अंशभूत द्रव्य है, इसलिये यह लोकद्रव्य है, यह लोक पंचास्तिकाय रूप है, केवल धर्मद्रव्यरूप नहीं है, अतः यह लोकका सर्वात्मक द्रव्य नहीं है, किन्तु उसका एक अंशभूत द्रव्य है । कहा भी है—

છે, મધુરાદિ પાંચે પ્રકારના રસથી રહિત છે અને મૃદુ, કર્કશ આદિ આઠે પ્રકારના સ્પર્શથી રહિત છે. આકાશનું નામ રૂપ છે રૂપ તે ઉપલક્ષણ છે, તેના દ્વારા રૂપ, રસ, આદિ ચારે ગુણોનું ગ્રહણ થયું છે. તેથી તે અરૂપી છે આ કથનનું તાત્પર્ય એ છે કે ધર્માસ્તિકાય રૂપ, રસ, ગંધ અને સ્પર્શથી રહિત હોવાને લીધે અરૂપી છે-અમૂર્ત છે જીવની જેમ તે ઉપયોગ લક્ષણવાળું નથી, તે કારણે તે અજીવ છે. પ્રતિસમય તેનો સદ્ભાવ રહે છે, તેથી તેને શાશ્વત કહ્યું છે તેનુ પોતાનું જે સ્વરૂપ છે તે સ્વરૂપે તે નિત્ય હોવાને લીધે સ્થાયી રહે છે, તેથી તેને અવસ્થિત કહ્યું છે. ધર્માસ્તિકાય આ લોકના અંશભૂત દ્રવ્ય હોવાથી તેને લોકદ્રવ્ય કહ્યુ છે આ લોક પંચાસ્તિકાય રૂપ છે, પરન્તુ માત્ર ધર્મદ્રવ્ય રૂપ નથી, તેથી તેને લોકના સર્વાત્મક દ્રવ્યરૂપ કહી શકાય નહિ, પણ તેના એક અંશભૂત દ્રવ્ય રૂપજ કહી શકાય છે.

छाया-पञ्चास्तिकायमयो लोकः अनादिनिधनः-इति ।

तदेव विशदयति-' से समासओ ' इत्यादि । स धर्मास्तिकायो द्रव्यादिभेदेन संक्षेपतः पञ्चविधो बोध्यः । तत्र द्रव्यतः=द्रव्यत्वमाश्रित्य धर्मास्तिकायः एकं द्रव्यम्-तथाविधैकपरिणामस्य सत्त्वेनैकत्वसंख्याया एवेह सद्भावात् । क्षेत्रतः= क्षेत्रमाश्रित्य लोकप्रमाणमात्रः-लोकस्य प्रमाणं-लोकप्रमाणम्=असंख्येयाः प्रदेशाः, तत्प्रमाणमस्येति । कालतः=कालमाश्रित्य अयं धर्मास्तिकायः त्रैकालिकः, त्रैकालिकत्वमेव विशदयति-न कदापि नासीत् अर्थात्-अस्य धर्मास्तिकायस्य भूतकालिकी सत्ता सर्वदा आसीदेव । तथा-अयं न कदापि न भवति-अस्य वर्तमानकालिकी सत्ता सर्वदा तिष्ठत्येव । तथा च-अयं न कदापि न भविष्यति-अस्य

" पंचत्थिकायमइये " इत्यादि । यह लोक पंचास्तिकाय मय है, और अनादि अनन्त है, इसी विषयको अब सूत्रकार विशद रूपसे प्रकट करते हैं-" से समासओ " इत्यादि-यह धर्मास्तिकाय द्रव्यादिके भेदसे संक्षेपतः पांच प्रकारका कहा गया है-जैसे-द्रव्यकी अपेक्षा धर्मास्तिकाय एक द्रव्य है, क्योंकि तथाविध एक परिणामके सत्त्वसे एकत्व संख्याकाही इसमें सद्भाव पाया जाता है । क्षेत्रकी अपेक्षा यह धर्मास्तिकाय लोकप्रमाण मात्र है, अर्थात् लोकाकाशके जितने प्रदेश हैं, असंख्यात प्रदेश हैं-उतनेही प्रमाणवाला यह धर्मास्तिकाय है, क्योंकि तिलमें तेलकी तरह यह पूरे लोकाकाशमें व्यापक है, कालकी अपेक्षा यह धर्मास्तिकाय त्रैकालिक है, ऐसा भूतकालका कोई समय नहीं था कि जिसमें यह न रहा हो वर्तमानकाल भी ऐसा नहीं है, कि

કહ્યુ પણ છે કે " પંચત્થિકાયમઇયે " ઇત્યાદિ --

આ લોક પંચાસ્તિકાયમય છે, અને અનાદિ અનન્ત છે. એ જ વિષયનું હવે સૂત્રકાર વિસ્તૃત રૂપે નિરૂપણ કરે છે

"से समासओ" ઇત્યાદિ-તે ધર્માસ્તિકાયના દ્રવ્યાદિના ભેદથી પાંચ પ્રકાર પડે છે-દ્રવ્યની અપેક્ષાએ ધર્માસ્તિકાય એક દ્રવ્ય છે, કારણ કે તથાવિધ (તે પ્રકારના એક પરિણામના સત્ત્વ (સદ્ભાવ) થી એકત્વ સંખ્યાનો જ તેમાં સદ્ભાવ સંભવી શકે છે. ક્ષેત્રની અપેક્ષાએ આ ધર્માસ્તિકાય લોકપ્રમાણ માત્ર છે, એટલે કે લોકાકાશના જેટલા પ્રદેશ છે (લોકાકાશના અસંખ્યાત પ્રદેશ છે) એટલા જ પ્રમાણવાળું આ ધર્માસ્તિકાય છે, જેમ તલમાં તેલ રહેલુ હોય છે એ જ પ્રમાણે તે પુરેપૂરા લોકાકાશમાં વ્યાપક છે. કાળની અપેક્ષાએ ત્રણે કાળમાં તેનો સદ્ભાવ કહ્યો છે. ભૂતકાળનો કોઈ પણ સમય એવો ન હતો કે જ્યારે તેનું અસ્તિત્વ ન હોય, વર્તમાનકાળે પણ તેનુ અસ્તિત્વ ન હોય

भविष्यत्कालिकी सत्तापि सर्वदा स्थास्यत्येव। इति हेतोरयम् अभून् भवति भविष्यति। इत्थं चायं धर्मास्तिकायस्त्रैकालिको बोध्यः। त्रैकालिकत्वादेव अयं धर्मास्तिकायो ध्रुवः। ध्रौव्यं च एकसृष्ट्यपेक्षयाऽपि संभाव्यतेऽत आह–नियतः= सर्वदा एकरूपेण स्थित इति। नियतत्वमनेकसृष्ट्यपेक्षयाऽपि संभाव्यमत आह–शाश्वत इति, शाश्वतत्वं तु प्रलयाभावात्। एवम् अक्षयः सर्वदा सद्भावित्वात्। तथा–अव्ययः=अविनाशी–केषांचित् पर्यायाणामपागमेऽप्यनन्तपर्यायत्वात्। अवस्थितः–अक्षयत्वेनाव्ययत्वेन च सर्वदा स्थितिशीलः। अनेन प्रकारेणाग-मोघतो नित्यः।

अथवा यतोऽयं धर्मास्तिकायस्त्रैकालिकः, अतएवासौ ध्रुव। नियतः=एकरूप। शाश्वतः=प्रतिक्षणं विद्यमानः। अतएव-अक्षयः=क्षयवर्जितः–

जिसमें यह नहीं रहा है, और भविष्यत् काल भी ऐसा नहीं होगा कि जिसमें इसका सद्भाव नहीं रहेगा अर्थात् भूतकालमें वर्तमानकालमें और भविष्यत् कालमें सर्वदा यह रहा है, रहता है और रहेगा त्रैका-लिक होनेसेही यह धर्मास्तिकाय ध्रुव है. ध्रुवता एक सृष्टिकी अपेक्षासे भी संभवित होती है, अतः इसके लिये कहा गया है, "नियतः" यह धर्मास्तिकाय सर्वदा एकरूपसे स्थित रहता है, नियतता अनेक सृष्टिकी अपेक्षासे भी संभवित हो सकती है, अतः इसके लिये कहा गया है– "शाश्वत" यह शाश्वत है, क्योंकि इसमें क्षयका अभाव है, इसी तरहसे यह अक्षय है, क्योंकि इसका सर्वदा सद्भाव रहता है, तथा यह धर्मास्तिकाय अव्यय है, अविनाशी है, क्योंकि कितनेक पर्यायोंके अपगम हो जाने पर भी यह अनन्तपर्यायवाला होनेसे कभी भी विनष्ट

એવું નથી અને ભવિષ્યકાળમાં પણ કોઈ સમય એવો નહી હોય કે જ્યારે તેનું અસ્તિત્વ નહીં હોય. એટલે કે ભૂત, વર્તમાન અને ભવિષ્યકાળમાં તે અનુક્રમે હતું, છે અને રહેવાનુ જ છે.

આ રીતે ત્રણે કાળમા તેનુ અસ્તિત્વ હોય છે, તે કારણે તેને ધ્રુવ કહ્યુ છે ધ્રુવતા એક સૃષ્ટિની અપેક્ષાએ પણ સભવિત હોય છે, તેથી તેને 'નિયત' વિશેષણ લગાડયુ છે આ ધર્માસ્તિકાય સદા એક જ રૂપે સ્થિત છે. નિયતતા અનેક સૃષ્ટિની અપેક્ષાએ પણ સભવી શકે છે, તેથી તેને શાશ્વત વિશેષણ લગાડયુ છે તેનો ક્ષય થતો નથી તેથી તેને અક્ષય કહ્યુ છે. અથવા તેનો કાયમ સદ્‌ભાવ રહે છે તેથી તેને અક્ષય કહ્યુ છે આ ધર્માસ્તિકાય અવ્યય (અવિનાશી) છે, કારણ કે કેટલાક પર્યાયોનુ ગમન થઈ જવા છતા પણ તે અનન્ત પર્યાયોવાળુ હોવાથી કદી પણ વિનષ્ટ થતુ નથી. તથા આ

अवयविद्रव्यापेक्षया, अक्षत इति-छायापक्षेतु अक्षतः=परिपूर्णः। तथा-अव्ययः-अवयवापेक्षया। तथा-अवस्थितः-निश्चलत्वात्। यतोऽयं ध्रुवत्वादिविशिष्टोऽत एव नित्य इति। तथा-भावतोऽयं धर्मास्तिकायो वर्णगन्धरसस्पर्शवर्जितः। तथा-गुणतः=कार्यतश्चायं गमनगुणः-गमनं=गतिः गुणः=गतिपरिणामपरिणतानां जीवपुद्गलानां सहकारिकारणत्वात् कार्यं मत्स्यानां जलस्येव यस्यासौ, यद्वा-गतौ=गमने गुण उपकारो यस्मात् सः-गमनोपकारक इत्यर्थः। इति मथ-

नहीं होता है, तथा यह धर्मास्तिकाय अक्षय एवं अव्यय होनेसे सर्वदा स्थितिशील है, इसलिये यह अवस्थित है, इसी प्रकारसे यह सामान्य रूपसे नित्य है, अथवा-जिस कारण यह धर्मास्तिकाय त्रैकालिक है, इसी कारणसे यह ध्रुव है, नियत एक रूप है, शाश्वत है-प्रतिक्षण विद्यमान है, और इसीसे यह अक्षय है, अवयवि द्रव्यकी अपेक्षा क्षयरहित है, अथवा अक्षत है-परिपूर्ण है, तथा-अवयवकी अपेक्षा अव्यय है, निश्चल होनेसे अवस्थित है, जिस कारण यह ध्रुवत्व आदि विशेषणोंवाला है, इसीलिये यह नित्य है, तथा भावकी अपेक्षासे-यह धर्मास्तिकाय वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्शसे रहित है, तथा कार्यकी अपेक्षासे यह गमन है गुण जिसका ऐसा है, अर्थात् जिस प्रकार मत्स्योंके चलनेमें सहायक जल होता है, उसी प्रकार गति क्रिया परिणत जीव और पुद्गलोंको गमन करनेमें यह सहायक होता है, अतः गमन है, गुण-कार्य जिसका ऐसा इसे कहा गया है, अथवा गमनमें है उपकार जिससे

ધર્માસ્તિકાય અક્ષય અને અવ્યય હોવાથી સર્વદા સ્થિતિશીલ હોવાને કારણે તેને અવસ્થિત કહ્યું છે આ પ્રકારે તે સામાન્ય રૂપે નિત્ય છે અથવા જે કારણે આ ધર્માસ્તિકાય ત્રૈકાલિક છે, એ જ કારણે તે ધ્રુવ છે, નિયત (એક રૂપ) છે, શાશ્વત (પ્રતિક્ષણ વિદ્યમાન) છે, અને તેથી જ તે અક્ષય છે, અવયવિ દ્રવ્યની અપેક્ષાએ તે ક્ષયરહિત છે અથવા અક્ષત (પરિપૂર્ણ) છે, તથા અવયવની અપેક્ષાએ અવ્યય છે, નિશ્ચલ હોવાને કારણે તે અવસ્થિત છે. તે કારણે તે ધ્રુવત્વ આદિ વિશેષણોવાળું છે, તે કારણે જ તે નિત્ય છે. ભાવની અપેક્ષાએ આ ધર્માસ્તિકાય વર્ણ, રસ, ગન્ધ અને સ્પર્શથી રહિત છે

હવે આ ધર્માસ્તિકાયના કાર્યનું નિરૂપણ કરવામાં આવે છે—જેવી રીતે પાણીમાં ગતિ કરનારા માછલાંઓને પાણીમાં ગતિ કરવામાં જળ સહાયક બને છે, એ જ રીતે ગતિક્રિયા પરિણત જીવ અને પુદ્ગલોને ગમન કરવામાં આ ધર્માસ્તિકાય સહાયભૂત બને છે. તેથી તેને ગમનરૂપ ગુણકાર્યવાળું કહ્યું છે અથવા ગમનમાં જેના દ્વારા ઉપકાર (સહાયતા) થાય છે તેને ગતિગુણ કહે

मोऽस्तिकायः। तथा-अधर्मास्तिकायोऽपि धर्मास्तिकायवदेव अवर्णादि स्वरूपो बोध्यः। द्रव्यक्षेत्रकालभावानाश्रित्याऽप्ययं धर्मास्तिकायवदेव। विशेषस्त्वयम्-यदयं गुणतः स्थानगुणः-स्थानं=स्थितिः गुणः=कार्यं यस्य सः, अयंहि स्थिति परिणतानां जीवपुद्गलानामपेक्षाकारणतया स्थितिरूपं कार्यं करोति। यद्वा-स्थाने=स्थितौ गुणः=उपकारो यस्मात् सः, जीवपुद्गलानां स्थितावुपकारक इत्यर्थः। इति द्वितीयोऽस्तिकायः। तथा-आकाशास्तिकायोऽपि धर्मास्तिकायवदेव अवर्णादिस्वरूपः। तथा-द्रव्यकालभावानाश्रित्यापि पूर्ववदेव। तथा-क्षेत्रमाश्रित्य

वह गतिगुण है, जीव और पुद्गलोंके अपनी २ गतिमें गमन करनेमें यह उपकारक होता है। इस प्रकारका यह प्रथम अस्तिकाय है। तथा अधर्मास्तिकाय भी धर्मास्तिकायकी तरहही अवर्णादि स्वरूपवाला है, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावकी अपेक्षा लेकर यह धर्मास्तिकायकी तरहही है, विशेषता केवल इतनीसी है, कि यह गुणकी कार्यकी अपेक्षा स्थिति है गुणकार्य जिसका ऐसा है, यह अस्तिकाय स्थितिमें ठहरनेमें परिणत हुए जीव और पुद्गलोंको अपेक्षा कारणरूप होनेसे स्थितिरुप कार्य करता है, जिस प्रकार ठहरनेमें मुसाफिरोंको छाया मदद करती है, उसी प्रकारसे यह भी ठहरनेमें उन्हें उदासीन रूपसे कारण होता है अथवा जीव और पुद्गलोंको अपनी स्थितिमें जिससे उपकार होताहै, वह स्थिति-गुणहै, तात्पर्य इसका यहीहै, कि जीव और पुद्गलोंको ठहरनेमें उपकार होताहै इस प्रकारका यह द्वितीय अस्तिकायहै, तथा-आकाशास्तिकाय भी धर्मास्तिकायकी तरहही अवकाशदानअवर्णादि स्वरूपवाला है, एवं

છે. જીવ અને પુદ્ગલોને પોતપોતાની ગતિ કરવામાં તે મદદ રૂપ બને છે. આ પ્રકારનું ધર્માસ્તિકાય નામના અસ્તિકાયના પહેલા ભેદનું સ્વરૂપ છે.

અધમર્માસ્તિકાય પણ ધર્માસ્તિકાયની જેમ અવર્ણાદિ સ્વરૂપવાળું છે. દ્રવ્ય, કાળ, ક્ષેત્ર અને ભાવની અપેક્ષાએ તે ધર્માસ્તિકાયના જેવું જ છે, પણ માત્ર ગુણની (કાર્યની) અપેક્ષાએ તેમાં તફાવત છે ધર્માસ્તિકાય પુદ્ગલોને ગતિકાર્યમાં મદદ રૂપ બને છે, ત્યારે અધર્માસ્તિકાય તેમને સ્થિતિકાર્યમાં મદદ રૂપ બને છે એટલે કે ગતિપરિણત જીવો અને પુદ્ગલોને થોભવામાં મદદરૂપ થાય છે જેમ વૃક્ષની છાયા મુસાફરોને થોભવામાં મદદરૂપ બને છે, તેમ ધર્માસ્તિકાય જીવો અને પુદ્ગલોની ગતિ અટકાવીને તેમને થોભવામા સહાયભૂત બને છે આ રીતે ગતિને બદલે સ્થિતિમા ઉપકારક બનવાનું કાર્ય તેના દ્વારા થાય છે આ અસ્તિકાયના બીજા ભેદનુ સ્વરૂપ છે

लोकालोकप्रमाणमात्रः=लोकालोकयोर्यत् अनन्तप्रदेशात्मकं प्रमाणं, तत्प्रमाणं यस्य सः। लोकालोकाम्बन्धि यदनन्तप्रदेशात्मकं प्रमाणं, तत्प्रमाण आकाशास्तिकायः क्षेत्रतो बोध्यः। तथा–गुणतः=गुणमाश्रित्य अवगाहनागुण'–अवगाहना=जीवादीनामाश्रयो गुणः=कार्यं यस्य स तथा। जीवाद्याश्रयप्रदानरूपकार्ययुक्त इत्यर्थः। अथवा–अवगाहनायाम् गुण उपकारो यस्मात् सः–अवगाहनाविषयकोपकारहेतुक इत्यर्थः। इति तृतीयोऽस्तिकायः। तथा–जीवास्तिकायोऽपि पूर्ववदेव अवर्णादि स्वरूपः। विशेषस्त्वय यदयं द्रव्यतः–अनन्तानि द्रव्याणि=अनन्तद्रव्यस्वरूपः। प्रत्येकजीवस्य द्रव्यत्वात् जीवानां चानन्तत्वात् जीवास्तिकायस्य अनन्तद्रव्यात्मकत्वं बोध्यम्। तथायं जीवास्तिकायः–अरूपी=अमूर्त्तः,

द्रव्य काल और भावकी अपेक्षासे भी इस सम्बन्धमें कथन पूर्वके जैसा ही है, क्षेत्रकी अपेक्षा यह लोकालोक प्रमाण मात्र है, अर्थात् आकाशके प्रदेश अनन्त हैं, क्योंकि लोक और अलोकमें सामान्य रूपसे आकाश रहता है, अतः इस अपेक्षा आकाशास्तिकायके इतने प्रदेश कहे गये हैं. इसलिये लोकालोक सम्बन्धी जो अनन्त प्रदेश प्रमाणता है, वही प्रदेश प्रमाणता क्षेत्रकी अपेक्षासे आकाशास्तिकायमें कही गई है, ऐसा समझना चाहिये तथा गुणकार्यकी अपेक्षा यह आकाशास्तिकाय अवगाहना गुणवाला है, अर्थात् जीवादिकोंको अपनेमें आश्रय देना यही इसका कार्य है, अथवा–अवगाहनामें है, गुण उपकार–जिससे वह अवगाहना गुणहै, इस तरह अवगाहना विषयक उपकारमें यह हेतुवालाहै,

जीवास्तिकाय भी पूर्वकी तरहही अवर्णादिवालाहै, इसमें जो विशेषता है, वह इस प्रकारसे है, यह द्रव्यकी अपेक्षा अनन्त द्रव्य स्वरूप

હવે આકાશાસ્તિકાયના સ્વરૂપનું નિરૂપણ કરવામાં આવે છે. તે પણ ધર્માસ્તિકાય તથા અધર્માસ્તિકાયની જેમ વર્ણ, ગન્ધ, રસ અને સ્પર્શથી રહિત છે. દ્રવ્ય, કાળ અને ભાવની અપેક્ષાએ તે લોકાલોક પ્રમાણ માત્ર જ છે, એટલે કે આકાશના પ્રદેશ અનંત છે, કારણ કે લોક તથા અલોકમાં સામાન્યતઃ આકાશ રહે છે. તેથી તે દૃષ્ટિએ વિચાર કરતાં આકાશાસ્તિકાયના એટલા પ્રદેશ કહ્યા છે. તેથી લોકાલોક સંબંધી જે અનંત પ્રદેશપ્રમાણુતા છે, એ જ પ્રદેશપ્રમાણુતા ક્ષેત્રની અપેક્ષાએ આકાશાસ્તિકાયમાં કહી છે, એમ સમજવું. ગુણકાર્ય (ઉપયોગીતા) ની અપેક્ષાએ વિચાર કરવામાં આવે તો તે અવગાહના ગુણવાળું છે એટલે કે જીવાદિકોને આશ્રય દેવાનું જ તેનું કાર્ય છે. આ રીતે અવગાહના વિષયક ઉપકાર કરનાર હોવાથી તેને અવગાહના ગુણવાળું કહ્યું છે.

जीवः=चेतनावान् शाश्वतः=अविनाशी च बोध्यः। गुणतस्त्वयम्-उपयोगगुणः-उपयोजनमुपयोगः, उपयुज्यते वस्तुपरिच्छेदं प्रति व्यापार्यते जीवोऽनेनेति वा उपयोगः-बोधरूपो जीवस्य तत्त्वभूतो व्यापारः। स च साकारानाकारभेदाद् द्विविधः। यदा सचेतनेऽचेतने वा वस्तुनि उपयुञ्जान आत्मा सपर्यायमेव वस्तु परिच्छिनत्ति तदा स उपयोगः साकार इत्युच्यते। स च छद्मस्थानामन्तर्मुहूर्त्त

है, क्योंकि प्रत्येक जीव स्वतंत्र द्रव्य है, और जीव हैं अनन्त इसलिये यह जीवास्तिकाय द्रव्यकी अपेक्षा अनन्त कहा गया है, तथा यह जीवास्तिकाय अरूपी अमूर्त है, चेतनावाला होनेसे यह जीवरूप है, और शाश्वत अविनाशी है। गुणकी अपेक्षा यह उपयोग गुणवाला है क्योंकि पदार्थोंको जाननेकी तरफ यह उन्मुख होता है, पदार्थोंको जाननेकी तरफ उन्मुख होना इसीका नाम उपयोग है. इसीलिये-"इन्द्रियप्रणालिकया शब्दादीनामुपलब्धिरूपयोगः" ऐसा उपयोगका लक्षण किया गया है, अथवा-वस्तु परिच्छेद करनेके प्रति जीव जिसके द्वारा व्यापारयुक्त किया जाता है, वह उपयोग है, यह उपयोग जीवका तत्त्वभूत एक व्यापाररूप होता है। यह साकार उपयोग और अनाकार उपयोगके भेदसे दो प्रकारका कहा गयाहै, जिस समय पर्याय सहित सचेतन अथवा अचेतन वस्तुको जाननेके लिये आत्माका बोधरूप व्यापार होता है, वह साकार उपयोग है, यह साकार उपयोग छद्मस्थ जीवोंको अन्त-

---

જીવાસ્તિકાય પણ અવર્ણાદિવાળું છે તેમાં એટલી જ વિશેષતા છે કે દ્રવ્યની અપેક્ષાએ તે અનંત દ્રવ્યસ્વરૂપ છે, કારણ કે પ્રત્યેક જીવ સ્વતંત્ર દ્રવ્ય છે, અને જીવ અનંત છે, તેથી જીવાસ્તિકાયને દ્રવ્યની અપેક્ષાએ અનંત કહ્યુ છે તથા તે જીવાસ્તિકાય અરૂપી અમૂર્ત છે, ચેતનાવાળું હોવાથી તે જીવરૂપ છે અને શાશ્વત અવિનાશી છે ગુણની અપેક્ષાએ તે ઉપયોગ ગુણવાળું છે, કારણ કે તે પદાર્થોને જાણવાની વૃત્તિવાળું છે "પદાર્થોના વિષયમાં જાણવાને તત્પર થવું તેનુ નામ જ ઉપયોગ છે તેથી જ "इन्द्रिय प्रणालिकया शब्दादिनामुपलब्धिरुपयोग" આ પ્રકારનું ઉપયોગનું લક્ષણ કહ્યું છે અથવા વસ્તુ પરિચ્છેદ (વસ્તુ વિષયક બોધ) ને માટે જીવ જેના દ્વારા વ્યાપારયુક્ત કરાય છે તે ઉપયોગ છે આ ઉપયોગ જીવના તત્ત્વભૂત એક વ્યાપાર રૂપ હોય છે તે ઉપયોગના બે પ્રકાર છે—(૧) સાકાર ઉપયોગ અને (૨) અનાકાર ઉપયોગ પર્યાય સહિત સચેતન અથવા અચેતન વસ્તુને જાણવાને માટે આત્માનો બોધરૂપ જે વ્યાપાર ચાલે છે તેનું નામ સાકાર ઉપયોગ છે આ

कालं तिष्ठति, केवलिनां तु एकं समयम् । यदा च वस्तुनः सामान्यतया परिच्छेदस्तदाऽनाकार उपयोगो भवति । अयमपि छद्मस्थानामन्तर्मुहूर्त्तं तिष्ठति, केवलिनां तु एकं समयम् । अत्रेदं बोध्यम्-छद्मस्थानां साकारोपयोगकालोऽनाकारोपयोगकालादसंख्येयगुणः पर्यायपरिच्छेदकतया चिरकालगलनाच्छद्मस्थानां तथा स्वाभाव्यात् । उपयोगो गुणो धर्मो यस्य स तथा, साकारानाकाररूपचैतन्यधर्मयुक्त इत्यर्थः । इतिचतुर्थोऽस्तिकायः । तथा-पुद्गलास्तिकायः पञ्चवर्णः=शुक्लादिपञ्चवर्णयुक्तः, पञ्चरसः=मधुरादि पञ्चरससंपन्नः, द्विगन्धः-सुरभिदुरभिगन्धद्वययुक्तः, अष्टस्पर्शः=मृदुकर्कशाद्यष्टविधस्पर्शसहितः, रूपी=मूर्त्तः, अजीवः=अचेतनः । तथा-शाश्वतः अवस्थितो लोकद्रव्यं च । स पुनर्द्रव्यादिभेदैः पञ्चविधः । तत्र

मुहूर्त तक रहता है, और केवलियोंको एक समय तक रहता है, यहाँ ऐसा समझना चाहिये-छद्मस्थोंके साकारोपयोगका काल अनाकारोपयोगके कालसे असंख्यात गुणा है, क्योंकि पर्यायोंको जाननेके रूपमें इसका चिरकाल गल जाता है, क्योंकि छद्मस्थोंका ऐसाही स्वभाव होता है, उपयोग है, गुणधर्म जिसका ऐसा यह जीव है, अर्थात् यह जीव साकार अनाकाररूप चैतन्य धर्मसे युक्त है तथा-पुद्गलास्तिकाय शुक्लादि पांच वर्णोंवाला है, मधुरादि पांच रसोंवाला है, सुरभि दुरभिरूप दोनों गन्धवाला है, और मृदु कर्कश आदि आठ प्रकारके स्पर्शवाला है, रूपी है, मूर्त्त है, अजीव अचेतन है, तथा शाश्वत अवस्थित है, और लोकद्रव्य है, लोक भरमें यह व्यापक है, यह पुद्गलास्तिकाय द्रव्यादिके भेदसे पांच प्रकारका है, द्रव्यकी अपेक्षा यह पुद्गलास्तिकाय अनन्त द्रव्यात्मक है क्षेत्र की अपेक्षा यह लोकप्रमाण है,

સાકાર ઉપયોગનો સદ્ભાવ છદ્મસ્થ જીવોમાં એક અન્તર્મૂહૂર્ત પર્યન્ત રહે છે અને કેવલીઓમાં એક સમય પર્યન્ત રહે છે અહીં એવુ સમજવું જોઇએ કે છદ્મસ્થોનો સાકારોપયોગનો કાળ અનાકારોપયોગના કાળ કરતાં અસંખ્યાત ગણો છે, કારણ કે પર્યાયોને જાણવામાં તેનો ચિરકાળ વ્યતીત થઈ જાય છે, કારણ કે છદ્મસ્થોનો એવો જ સ્વભાવ હોય છે આ જીવ ઉપયોગરૂપ ગુણધર્મવાળો છે, એટલે કે આ જીવ સાકાર અનાકાર રૂપ ચૈતન્યધર્મથી યુક્ત છે.

પુદ્ગલાસ્તિકાયનું સ્વરૂપ આ પ્રકારનું છે—પુદ્ગલાસ્તિકાય શુકલ આદિ પાંચ વર્ણોથી, મધુર આદિ પાંચ રસોથી, સુરભિ અને દુરભિ રૂપ બે ગન્ધોથી અને મૃદુ, કર્કશ આદિ આઠ પ્રકારના સ્પર્શથી યુક્ત હોય છે. તે રૂપી-મૂર્ત છે, અજીવ-અચેતન છે, શાશ્વત અવસ્થિત છે અને લોકદ્રવ્ય છે. એટલે કે સમસ્ત લોકમાં વ્યાપેલુ છે. દ્રવ્યાદિના ભેદથી તે પુદ્ગલાસ્તિકાયના પાંચ ભેદ

द्रव्यतः पुद्गलास्तिकायोऽनन्त द्रव्यात्मकः । क्षेत्रतो लोकप्रमाणः । कालतश्च त्रैकालिकत्वमेवाह–' ण कया विणासी ' इत्यादिना । भावतश्चायं वर्णगन्धरसस्पर्शवान् । गुणतश्चायं ग्रहणगुणः–ग्रहणम्=औदारिकशरीरादितया ग्राह्यत्वम्, इन्द्रियग्राह्यत्वं वा, अथवा–वर्णादिमत्त्वात् परस्परसम्बन्धो ग्रहणम्, तद्गुणो धर्मो यस्य स तथा । इति पञ्चमोऽस्तिकायः ॥ सू० १ ॥

पञ्चास्तिकायाः प्रोक्ताः । सम्प्रति तद्गत जीवास्तिकायसम्बन्धीनि वस्तूनि प्राह–अध्ययनसमाप्तिं यावत् । तत्र प्रथमं गतिभेदानाह—

मूलम्—पंच गईओ पण्णत्ताओ, तं जहा–निरयगई १, तिरियगई २, मणुयगई ३, देवगई ४, सिद्धिगई ५ ॥ सू० २ ॥

छाया—पञ्च गतयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–निरयगतिः १, तिर्यग्गतिः २, मनुष्यगतिः ३, देवगतिः ४, सिद्धिगतिः ५ ॥ सू० २ ॥

कालकी अपेक्षा यह त्रैकालिक है, इसी बातकी पुष्टिके लिये सूत्रकारने "न कदापि नासीत्" इत्यादि सूत्र कहा है, भावकी अपेक्षा यह वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्शवाला है, गुणकी अपेक्षा यह ग्रहण है, औदारिक शरीरादिरूप ग्राह्यता अथवा इन्द्रियों द्वारा ग्राह्यता अथवा–वर्णादिमत्व होनेसे परस्पर सम्बन्ध रूपता है, गुणधर्म जिसका ऐसा ग्रहण गुणवाला है । अर्थात् सडण पडन धर्मवाला है । इस प्रकारसे यह पंचम अस्तिकाय है ॥ सू० १ ॥

इस प्रकार पांच अस्तिकाय कहे अब सूत्रकार तद्गत जीवास्ति-

કહ્યા છે દ્રવ્યની અપેક્ષાએ પુદ્ગલાસ્તિકાય અનંત દ્રવ્યાત્મક છે, ક્ષેત્રની અપેક્ષાએ તે લોકપ્રમાણ છે, કાળની અપેક્ષાએ તે ત્રૈકાલિક છે એટલે જ સૂત્રકારે "न कदापि नासीत्" આ સૂત્રપાઠ દ્વારા તેનું ત્રણે કાળમાં અસ્તિત્વ હોવાનું પ્રતિપાદન કર્યું છે. ભાવની અપેક્ષાએ તે વર્ણ, ગન્ધ, રસ અને સ્પર્શથી યુક્ત છે, અને ગુણની અપેક્ષાએ તે ગ્રહણ ગુણવાળું છે, એટલે કે ઔદારિક શરીરાદિ રૂપ ગ્રાહ્યતા અથવા ઇન્દ્રિયો દ્વારા ગ્રાહ્યતા અથવા વર્ણાદિથી યુક્ત હોવાને કારણે પરસ્પર સંબંધ રૂપતા જ જેનો ગુણધર્મ છે એવું ગ્રહણ ગુણવાળું તે છે એટલે કે તે સડવું, પડવું વગેરે ધર્મવાળું છે. આ પ્રકારનું પુદ્ગલાસ્તિકાયનું સ્વરૂપ કહ્યુ છે ॥ સૂ ૧ ॥

આ પ્રકારે પાંચ અસ્તિકાયોનું નિરૂપણ કરવામાં આવ્યું. હવે સૂત્રકાર

टीका—'पंच गईओ' इत्यादि—

गमनं-गतिः-गमनक्रिया १, गम्यते-प्राप्यते या सा गतिः-क्षेत्रविशेष [illegible] २, गम्यते [illegible] कर्मपुद्गलनयेति गतिः-नामकर्मोत्तरप्रकृतिरूपा, [illegible] वा [illegible] ३, [illegible] गतयः, ताः पञ्चविधाः प्रज्ञप्ताः । पञ्चविध-[illegible] 'निरयगई' इत्यादि । निरये-नरके गतिः-गमनं-निरयगतिः १ निरय[illegible] चासौ गतिश्च निरयगतिः २। गम्यतेऽनयेति गतिः-निरय[illegible] गतिनिरयगति [illegible] ३। तिर्यग्गतिः-तिर्यक्षु गतिः १, तिर्यक्-

[illegible] करनेवाली जो गति हैं, उनका कथन अध्ययनकी समाप्ति [illegible] करते हैं, इनमें प्रथम गति भेदोंको वे कहते हैं—

'पंच गईओ [illegible]' इत्यादि सूत्र २ ॥

टीकार्थ—गमन [illegible] नाम गति है, अथवा जो जीवद्वारा प्राप्तकी जाती है [illegible] गति है, ऐसी वह गति क्षेत्र विशेषरूप होती है, अथवा-जिस [illegible] पुद्गलोंकी सहायतासे जीवका गमन होता है, वह गति है, ऐसी वह गति नामकर्मकी उत्तर प्रकृतिरूप होती है, अथवा-जीवकी जो अवस्था नामकर्मकी उत्तर प्रकृतिरूप गति द्वारा की जातीहै, वह गति है । ये [illegible] अवस्थाएँ बहुत होती हैं ये गतियां पांच कही गई हैं जैसे-निरयगति १ तिर्यग्गति २ मनुष्यगति ३ देवगति ४ और सिद्ध-गति ५ निरय [illegible] में जो गमन करता है, वह निरयगतिहै, निरय क्षेत्र विशेषरूप [illegible], [illegible] क्षेत्र विशेषरूप जो गति है, वह निरयगति है,

[illegible] અધ્યયનની સમાપ્તિ [illegible] કથન કરે છે.

[illegible]

[illegible] પ્રાપ્ત કરાય છે તે [illegible] કર્મપુદ્ગલોની [illegible] તે ગતિ નામકર્મની [illegible] ગતિ દ્વારા જીવની [illegible] (ગતિઓ) [illegible] મનુષ્યગતિ, (૪) [illegible]

[illegible] છે નિરય ક્ષેત્રવિશેષ [illegible] છે તેને નિરયગતિ કહે

क्षेत्ररूपागतिः २, तिर्यक्त्वप्रापिका वा गतिः ३। २। एवं देवगति ३ मनुष्यगति रपि ४ भावनीया ।४। सिद्धिगतिः-सिद्धौ गतिः १, सिद्धिश्चासौ गतिश्चेति वा, इह नामप्रकृति र्नास्तीति ५ ॥ सू० २ ॥

अनन्तरसूत्रे सिद्धिगतिः प्रोक्ता। सा च इन्द्रियार्थान् कषायादींश्च निमित्तीकृत्य मुण्डितत्वे सति भवतीतीन्द्रियार्थान् इन्द्रियकषायादिमुण्डांश्च प्राह—

मूलम्—पंच इंदियत्था पण्णत्ता, तं जहा—सोइंदियत्थे जाव फासिंदियत्थे। पंच मुंडा पण्णत्ता, तं जहा—सोइंदियमुंडे जाव फासिंदियमुंडे। अहवा पंच मुंडा पण्णत्ता, तं जहा—कोहमुंडे १ माणमुंडे २ मायामुंडे ३ लोहमुंडे ४ सिरमुंडे ५ ॥सू० ३ ॥

छाया—पञ्च इन्द्रियार्थाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-श्रोत्रेन्द्रियार्थो यावत् स्पर्शेन्द्रियार्थः। पञ्च मुण्डाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-श्रोत्रेन्द्रियमुण्डो यावत् स्पर्शेन्द्रियमुण्डः। अथवा-मुण्डाः पञ्च प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-क्रोधमुण्डो १ मानमुण्डो २ मायामुण्डो ३ लोभमुण्ड ४ शिरोमुण्डः ५ ॥ सू० ३ ॥

अथवा इस क्षेत्र विशेषरूप निरयके प्राप्त करानेवाली जो गति है, वह निरयगतिहै, तिर्यञ्चोंमें जो गति-गमन किया जाताहै, वह तिर्यञ्च गतिहै, अथवा तिर्यक् क्षेत्र रूपवाली जो गति है, वह तिर्यञ्च गति है। इसी तरहका कथन देवगति और मनुष्यगतिके सम्बन्धमें भी जानना चाहिये सिद्धिमें जो जाता है, वह सिद्धिगति है, अथवा सिद्धिरूप जो गति है, वह सिद्धिगति है, यहां नामकर्मकी प्रकृति नहीं है ॥ सू० २ ॥

इस अनन्तर सूत्रमें जो सिद्धगति कही गई है, वह इन्द्रियार्थ और कषायोंको निमित्त करके मुण्डित होने पर होती है, अत. अब सूत्रकार

છે. અથવા તે ક્ષેત્રવિશેષ રૂપ નિરયને પ્રાપ્ત કરાવનારી જે ગતિ છે તેનુ નામ નિરયગતિ છે. તિર્યંચોમા જે ગમન થાય છે તેનું નામ તિર્યંચગતિ છે. અથવા તિર્યક્ ક્ષેત્રરૂપ જે ગતિ છે તેને તિર્યગ્ગતિ કહે છે. અથવા તિર્યંચ દશાને પ્રાપ્ત કરાવનારી જે ગતિ છે તેને તિર્યંચગતિ કહે છે. એ જ પ્રકારનુ કથન મનુષ્યગતિ અને દેવગતિ વિષે પણ સમજવું સિદ્ધિમા જે જાય છે તેનુ નામ સિદ્ધિગતિ છે. અથવા સિદ્ધિરૂપ જે ગતિ છે તેનું નામ સિદ્ધિગતિ છે અહીં નામકર્મની પ્રકૃતિનો સદ્ભાવ હોતો નથી ॥ સૂ ૨ ॥

આગલા સૂત્રમા સિદ્ધિગતિનો ઉલ્લેખ થયો છે ઇન્દ્રિયાર્થો અને કષાયોના ત્યાગપૂર્વક મુંડિત થઈને શ્રમણપર્યાય અંગીકાર કરવાથી તેની પ્રાપ્તિ

टीका--' पंच इदियत्था ' इत्यादि--

इन्द्रियार्थाः - इन्द्रनात्=सर्वविषयोपलब्धिभोगलक्षणपरमैश्वर्यसद्भावात्-इन्द्रो-जीवः, तस्य लिङ्गं, तेन वा दृष्टं सृष्टं जुष्टं दत्तं दुर्जयं वा इन्द्रियं श्रोत्रादिकम् , तच्च नामस्थापनाद्रव्यभावभेदाच्चतुर्विधम् । तत्र नामस्थापने सुगमे । द्रव्येन्द्रियं तु निर्वृत्युपकरणभेदाद् द्विविधम् । तत्र निर्वृत्तिः=आकारः । सा च बाह्याभ्यन्तरभेदाद्

इन्द्रियार्थोंको और इन्द्रिय कषायोंसे मुण्डित हुए व्यक्तियोंको लेकर कथन करते हैं--'पंच इंदियत्था पण्णत्ता' इत्यादि सूत्र ३ ॥

टीकार्थ-इन्द्रियोंके अर्थ विषय पांच कहे गये हैं जैसे-श्रोत्रेन्द्रियका अर्थ १ यावत् स्पर्शनेन्द्रियार्थ ५ इन्द्रका जो चिह्न है, वह इन्द्रिय है, इन्द्र शब्दसे यहां आत्मा लिया गया है, क्योंकि वह सर्व विषयोंकी उपलब्धि एवं उनके भोगरूप जो परमैश्वर्य अनुभव करनेवाला है, उस जीवका जो चिह्न है, यह इन्द्रिय है, अथवा उस जीवरूप इन्द्रसे जो दृष्ट है, सृष्ट है जुष्ट है दत्त है अथवा दुर्जय है वह इन्द्रिय है, अथवा इन्द्रसे होनेवाला है, ऐसी ये इन्द्रियां श्रोत्रादिक हैं । ये श्रोत्रादिक इन्द्रियां नाम स्थापना द्रव्य और भावके भेदसे चार प्रकारकी हैं, इनमें नाम और स्थापनारूप इन्द्रियां सुगम हैं। द्रव्येन्द्रिय निर्वृत्ति और उपकरणके भेदसे दो प्रकारकी है निर्वृत्तिका नाम आकार है, यह निर्वृत्तिरूप

થાય છે તેથી હવે સૂત્રકાર ઇન્દ્રિયાર્થોનું અને ઇન્દ્રિય કષાયોથી રહિત થવા રૂપ મુંડિત અવસ્થા ધારણ કરનાર વ્યક્તિઓનું કથન કરે છે

ટીકાર્થ-" પંચ ઇંદિયત્થા પણ્ણત્તા " ઇત્યાદિ--

ઇન્દ્રિયોના વિષયરૂપ અર્થ પાંચ કહ્યા છે--(૧) શ્રોત્રેન્દ્રિયાર્થ, (૨) નેત્રેન્દ્રિયાર્થ, (૩) ઘ્રાણેન્દ્રિયાર્થ, (૪) રસનેન્દ્રિયાર્થ અને (૫) સ્પર્શેન્દ્રિયાર્થ. ઈન્દ્રનું જે ચિહ્ન છે તે ઇન્દ્રિય છે. ઈન્દ્ર શબ્દ દ્વારા અહીં આત્મા ગ્રહણ થયો છે, કારણ કે સર્વવિષયોની ઉપલબ્ધિ અને અનેક ભોગ રૂપ પરમૈશ્વર્યનો અનુભવ તે કરે છે, તેની જીવને પ્રાપ્તિ કરાવનાર જે બાહ્ય સાધનો છે તેને ઇન્દ્રિયો કહે છે. અથવા તે જીવ રૂપ ઇન્દ્રથી જે દૃષ્ટ છે, સૃષ્ટ છે, જુષ્ટ છે, દત્ત છે, અથવા દુર્જય છે, તે ઇન્દ્રિય છે. એવી ઇન્દ્રિયો શ્રોત્રેન્દ્રિય આદિ પાંચ છે. તે શ્રોત્રાદિક ઇન્દ્રિયો નામ, સ્થાપના, દ્રવ્ય અને ભાવના ભેદથી ચાર પ્રકારની છે. તેમાંથી નામ અને સ્થાપના રૂપ ઇન્દ્રિયો સુગમ હોવાથી અહીં તેમનું વધુ વિવેચન કર્યું નથી. દ્રવ્યેન્દ્રિયના નિવૃત્તિ અને ઉપકરણ નામના બે ભેદ કહ્યા છે. નિવૃત્તિ એટલે આકાર તે નિવૃત્તિરૂપ ઇન્દ્રિયના પણ બાહ્ય અને

द्विविधा। तत्र बाह्या अनेकविधा आभ्यन्तरा निर्वृत्तिः श्रोत्रादीनां क्रमेण कदम्ब-पुष्पधान्यमसूरातिमुक्तकपुष्पचन्द्रिकाक्षुरप्रनानाप्रकारसंस्थाना। उपकरणेन्द्रिय तु विषयगुणसामर्थ्यरूपम्। इदं छेद्यच्छेदने खड्गधारेव भवति। यथा धाराया-मुपहतायां खड्गश्छेद्यच्छेदने समर्थो न भवति तथैव उपकरणेन्द्रियासत्त्वे निर्वृत्तौ सत्यामपि इन्द्रियं विषयान्न गृह्णातीति। तथा भावेन्द्रियलब्ध्युपयोगभेदाद् द्विविधम्। तत्र लब्धीन्द्रियम्-तदावरणक्षयोपशमरूपम्। उपयोगेन्द्रियं च स्वविषये

इन्द्रिय भी बाह्य और आभ्यन्तरके भेदसे दो प्रकारकी है। बाह्य निर्वृत्ति इन्द्रिय अनेक प्रकारकी है, आभ्यन्तर निर्वृत्ति श्रोत्रादिकके क्रमसे कदम्बपुष्प, धान्यमसूर अतिमुक्तकपुष्प चन्द्रिका क्षुरप तथा नाना प्रकारके संस्थानवाली है। अर्थात् श्रोत्रेन्द्रियकी आभ्यन्तर निर्वृत्ति कदम्ब पुष्पके समान है, आंखकी आभ्यन्तर निर्वृत्ति मसूरके दालके समान है, नाककी आभ्यन्तर निर्वृत्ति अतिमुक्तकपुष्प चन्द्रिकाके समान है, रसनेन्द्रियकी निर्वृत्ति क्षुरप्र (उस्तरा)के समान है, और स्पर्शन इन्द्रियकी आभ्यन्तर निर्वृत्ति अनियमित आकारवाली है। विषयोंको ग्रहण करनेकी शक्तिरूप उपकरण इन्द्रिय होती है यह छेद्य-को छेदनमें खड्गधाराके समान होती है, अर्थात् जिस प्रकारसे धारके उपहत हो जाने पर खड्ग तलवार छेदनेके योग्य पदार्थोंको छेदनेमें समर्थ नहीं होती है, उसी प्रकार उपकरण इन्द्रियके अभावमें निर्वृत्तिके होने पर भी इन्द्रिय विषयोंको ग्रहण नहीं करती है, तथा यह भावेन्द्रिय

આભ્યન્તરના ભેદથી બે પ્રકાર કહ્યા છે. બાહ્યનિવૃત્તિ ઇન્દ્રિય અનેક પ્રકારની છે અને આભ્યન્તર નિવૃત્તિ અનુક્રમે શ્રોત્રેન્દ્રિયથી લઈએ તો કદમ્બપુષ્પ, ધાન્યમસુર, અતિમુક્તક પુષ્પ ચન્દ્રિકા, ક્ષુરપ્ર (અસ્રો) અને વિવિધ સંસ્થાન-વાળી છે. એટલે કે શ્રોત્રેન્દ્રિયની આભ્યન્તર નિવૃત્તિ (આકાર) કદમ્બપુષ્પ સમાન છે, આંખની આભ્યન્તર નિવૃત્તિ મસૂરની દાળ સમાન છે, નાકની આભ્યન્તર નિવૃત્તિ અતિમુકતક પુષ્પચન્દ્રિકા સમાન છે, જીભની આભ્યન્તર નિવૃત્તિ અસ્રા સમાન છે, અને સ્પર્શેન્દ્રિયની આભ્યન્તર નિવૃત્તિ અનિયમિત આકારવાળી છે. વિષયોને ગ્રહણ કરવાની શકિત રૂપ ઉપકરણ ઇન્દ્રિય હોય છે. તે છેદ્યનું છેદન કરવામાં તલવારની ધારસમાન હોય છે એટલે કે જેમ ધાર વિનાની તલવાર-બૂઠી તલવાર છેદવા યોગ્ય પદાર્થને છેદવામા અસમર્થ નિવડે છે, એ જ પ્રમાણે ઉપકરણ ઇન્દ્રિયનો અભાવ હોય ત્યારે નિવૃત્તિનો સદ્ભાવ હોવા છતાં પણ ઇન્દ્રિય વિષયોને ગ્રહણ કરી શકતી નથી.

व्यापारः । उक्तं च—

'इंदो जीवो सव्वोवलद्धिभोगपरमेसरत्तणओ ।
सोत्ताइ भेयमिंदियमिह तल्लिंगाइ भावाओ ॥ १ ॥
तं नामादि चउद्धा, दव्वं निव्वत्तिओवकरणं च ।
आगारो निव्वत्ती, चित्ता बज्झा इमा अंतो ॥ २ ॥
पुप्फं कलंवुयाए, धन्नमसूराइमुत्तचंदो य ।
होइ खुरुप्पो नाणागिई य सोइंदियाईणं ॥ ३ ॥
विसयग्गहणसमत्थं, उवगरणं इंदियंतरं तंपि ।
जं नेह तदुवघाए. गिण्हइ निव्वित्तिभावे वि ॥ ४ ॥
लद्धुवओगा भाविंदियंतु लद्धित्ति जो खओवसमो ।
होइ तयावरणाणं. तल्लाभे चेव सेसंपि ॥ ५ ॥
जो सविसयवावारो. सो उवओगो सचेगकालम्मि ।
एगेण चेव तम्हा, उवओगेगिंदिओ सव्वो ॥ ६ ॥
एगिंदियाइभेया, पडुच्च सेसिंदियाइं जीवाणं ।
अहवा पडुच्च लद्धिंदियंपि पंचिंदिया सव्वे ॥ ७ ॥
जं किर बउलाईणं, दीसइ सेसिंदिओवलंभो वि ।
ते णत्थि तदावरणक्खओवसमसंभवो तेसिं ॥ ८ ॥

छाया—इन्द्रो जीवः सर्वोपलब्धिभोगपरमैश्वर्यात् ।
श्रोत्रादिभेदमिन्द्रियमिह तल्लिङ्गादिभावात् ॥ १ ॥

लब्धि और उपयोगके भेदसे दो प्रकारकी होती है। इनमें लब्धिरूप जो भावेन्द्रिय है, वह तदावरणक्षयोपशम रूप होती है, और उपयोग रूप जो भावेन्द्रिय होती है, वह अपने विषयमें व्यापाररूप होती है। कहा भी है—"इंदो जीवो सव्वोवलद्धि" इत्यादि।

इन गाथाओंका भावार्थ ऐसा है—"इन्द्रस्य लिङ्गं इन्द्रियम् इन्द्रेण इन्द्रजीव दृष्टादित्वात् वा इन्द्रियम्' इस व्युत्पत्तिके अनुसार इन्द्रका चिह्न होने

તે ઉપકરણ ઇન્દ્રિયના બે ભેદ છે—(૧) ભાવેન્દ્રિય લબ્ધિ અને (૨) ભાવેન્દ્રિય ઉપયોગ તેમાંથી જે લબ્ધિરૂપ ભાવેન્દ્રિય છે તે તદાવરણક્ષયોપશમ રૂપ હોય છે અને ઉપયોગ રૂપ જે ભાવેન્દ્રિય હોય છે તે પોતાના વિષયમાં વ્યાપાર (પ્રવૃત્તિ) રૂપ હોય છે. કહ્યું પણ છે કે:

"इंदो जीवो सव्वोवलद्धि" ઇત્યાદિ—

આ ગાથાઓનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે—"इन्द्रस्य लिङ्गं इन्द्रियम् इन्द्रेण दृष्टादित्वात् वा इन्द्रियम्" આ વ્યુત્પત્તિ અનુસાર ઇન્દ્રનું ચિહ્ન હોવાથી

तत् नासादि चतुर्द्धा द्रव्यं निर्वृत्तिरुपकरणं च ।
आकारो निर्वृत्तिः चित्रा बाह्या अन्तरिमा ॥ २ ॥
पुष्प कलम्बुकायाः धान्यमसूरातिमुक्तचन्द्रं च ।
भवति क्षुरप्रो नानाकृतिश्च श्रोत्रेन्द्रियादीनाम् ॥ ३ ॥
विषयग्रहणसामर्थ्यम्, उपकरणम् इन्द्रियान्तरं तदपि ।
यन्नेह तदुपघाते गृह्णाति निर्वृत्तिभावेऽपि । ४ ॥
लब्ध्युपयोगौ भावेन्द्रियं तु लब्धिरिति यः क्षयोपशमः ।
भवति तदावरणानां तल्लाभे एव शेषमपि ॥ ५ ॥
यः स्वविषयव्यापारः स उपयोगः स चैककाले ।
एकेन एव तस्मात् उपयोगैकेन्द्रिय सर्वः ॥ ६ ॥
एकेन्द्रियादिभेदाः प्रतीत्य शेषेन्द्रियाणि जीवानाम् ।
अथवा प्रतीत्य लब्धीन्द्रियमपि पञ्चेन्द्रियाः सर्वे ॥ ७ ॥
यत्किल बकुलादीनां दृश्यते शेषेन्द्रियोपलम्भोऽपि ।
तेनास्ति तदावरण क्षयोपशमसंभवस्तेषाम् ॥ ८ ॥ इति ॥

अथवा इन्द्रके द्वारा दृष्ट आदि होनेसे श्रोत्रादिकोंको इन्द्रिय कहा गयाहै। "इदि परमैश्वर्ये" के अनुसार इद् धातुसे इन्द्र शब्द बनताहै, समस्त पदार्थोंका ज्ञाता द्रष्टा बन जाता है, ऐसा बन जानाही आत्माका परमैश्वर्य है, ऐसे परमैश्वर्यवाला यह आत्माही हो सकता है, और द्रव्य नहीं हो सकताहै, अतः इन्द्रकी तरह यह जीव परमैश्वर्यवाला हो सकनेके कारण इन्द्र कहा गया है. इस इन्द्रकाही यह चिह्न है, इस इन्द्रिय रूप चिह्नसेही आत्मा जीवकी पहिचान होती है, यहां ज्ञानेन्द्रियोंकी ही यह बात चल रही है इसलिये श्रोत्रादिक इन्द्रियां पांचही कही गई हैं, क्योंकि छद्मस्थ जीव इनकी सहायतासे ही इनके विषयोंका ज्ञाता हो सकता है ॥ १ ॥

અથવા ઇન્દ્રના દ્વારા દૃષ્ટ આદિ હોવાથી શ્રોત્રાદિકોને ઇન્દ્રિયો કહેવામાં આવેલ છે. " इदि परमैश्वर्ये " ના અનુસાર " इद् " ધાતુમાંથી ઇન્દ્ર બન્યો છે સમસ્ત જ્ઞાનાવરણ અને દર્શનાવરણનો અભાવ થઈ જાય ત્યારે આત્મા સમસ્ત પદાર્થોનો જ્ઞાતા (દ્રષ્ટા) બની જાય છે. એવો બની જવું એજ આત્માનું પરમૈશ્વર્ય છે. એવા પરમૈશ્વર્યવાળો આ આત્મા જ હોઈ શકે છે–બીજું દ્રવ્ય હોઈ શકતું નથી તેથી તે ઇન્દ્રની જેમ પરમૈશ્વર્યસંપન્ન હોઈ શકવાને કારણે તેને ઇન્દ્ર કહ્યો છે આ ઇન્દ્રનું જ તે ચિહ્ન છે આ ઇન્દ્રિય રૂપ ચિહ્ન વડે જ આત્માને (જીવને) ઓળખી શકાય છે. અહીં જ્ઞાનેન્દ્રિયોની જ વાત ચાલી રહી છે અહીં શ્રોત્રાદિક પાંચ ઇન્દ્રિયો કહી છે, અને છદ્મસ્થ જીવો તેમની સહાયતાથી જ તેમના વિષયોને (તે પાંચે ઇન્દ્રિયોના વિષયોને) જાણી શકે છે ।૧।

इनमें निवृत्ति नाम रचनाका है, यह इन्द्रियाकार रचना पुद्गलों में भी होती है और आत्मप्रदेशोंमें भी होती है। अर्थात् पुद्गलोंके प्रदेश भी इन्द्रियाकार रूपसे परिणमते हैं और आत्मप्रदेश भी इन्द्रियाकार रूपसे परिणमते हैं। श्रोत्रादिक इन्द्रियों के आकारमें जो पुद्गलके प्रदेश एवं आत्माके प्रदेश परिणमते हैं वे द्रव्येन्द्रिय हैं। एवं क्षयोपशम विशेषसे होनेवाला जो आत्मा का परिणाम है, ज्ञानदर्शन रूप वह भावेन्द्रिय है, द्रव्येन्द्रियके दो भेद हैं-निवृत्ति और उपकरण—निवृत्तिका अर्थ रचना है, इसलिये निवृत्ति द्रव्येन्द्रियका अर्थ हुआ-इन्द्रियाकार रचना यह बाह्य और आभ्यन्तरके भेदसे दो प्रकारकी है, बाह्य निवृत्ति से इन्द्रियाकार पुद्गल रचना ली गई है और आभ्यन्तर निवृत्ति से इन्द्रियाकार आत्मप्रदेशके लिये कहे गयेहैं। यद्यपि प्रतिनियत इन्द्रिय सम्बधी ज्ञानावरण कर्मका क्षयोपशम सर्वाङ्ग होता है, तथापि अंगोपाङ्ग नाम कर्मके उदयसे यहां पुद्गल प्रचय-समूहरूप जिस द्रव्येन्द्रियकी रचना होतीहै, वहीं के आत्मप्रदेशोंमें उस२ इन्द्रियको कार्य करनेकी क्षमता होती है। उपकरणका अर्थ है-उपकार का प्रयोजक साधन यह भी बाह्य और आभ्यन्तरके भेदसे दो प्रकारका है, नेत्र इन्द्रिय में जो कृष्ण शुक्ल

તું નામ નિવૃત્તિ છે. આ ઇન્દ્રિયાકાર રચના પુદ્ગલોમાં પણ થાય છે અને આત્મપ્રદેશોમાં પણ થાય છે. એટલે કે પુદ્ગલોના પ્રદેશ પણ ઇન્દ્રિયાકાર રૂપે પરિણમે છે અને આત્મપ્રદેશો પણ ઇન્દ્રિયાકાર રૂપે પરિણમે છે શ્રોત્રાદિક ઇન્દ્રિયોના આકારમાં જે પુદ્ગલના પ્રદેશો અને આત્માના પ્રદેશો પરિણમે છે, દ્રવ્યેન્દ્રિયરૂપ છે, અને ક્ષયોપશમ વિશેષ દ્વારા ઉત્પન્ન થતું જે આત્માનુ પરિણામ છે, તે જ્ઞાનદર્શન રૂપ ભાવેન્દ્રિય છે.

દ્રવ્યેન્દ્રિયના બે ભેદ છે—(૧) નિવૃત્તિ અને ઉપકરણ. નિવૃત્તિ એટલે રચના નિવૃત્તિ દ્રવ્યેન્દ્રિય એટલે ઇન્દ્રિયાકાર રચના તે નિવૃત્તિના બે ભેદ છે—(૧) બાહ્ય અને આભ્યન્તર. બાહ્યનિવૃત્તિ દ્વારા ઇન્દ્રિયાકાર પુદ્ગલરચના ગ્રહણ કરવી જોઈએ. જો કે પ્રતિનિયત ઇન્દ્રિય સંબંધી જ્ઞાનાવરણ કર્મનો ક્ષયોપશમ સર્વાંગી હોય છે, છતાં પણ અંગોપાંગ નામકરણના ઉદયથી જ્યાં પુદ્ગલ પ્રચયરૂપ જે દ્રવ્યેન્દ્રિયની રચના થય છે, ત્યાના આત્મપ્રદેશોમા તે તે ઇન્દ્રિયના કાર્યો કરવાની ક્ષમતા હોય છે ઉપકરણ એટલે ઉપકારનુ પ્રયોજક સાધન તે પણ બાહ્ય અને આભ્યન્તરના ભેદથી બે પ્રકારનું છે નેત્રેન્દ્રિયમાં

निर्वृत्तिः चित्रा=अनेकविधा । अयं भावः—बाह्या निर्वृत्तिः, पर्पटिकादिरूपा । सा च विचित्रा—प्रतिनियतरूपतया उपदेष्टुमशक्यत्वात् । तथाहि—मनुष्यकर्णौ नेत्रयोरुभयपार्श्वतोभवतः, भ्रुवौ चोपरितनश्रवणबन्धापेक्षया समे, तुरगस्य नेत्रयोरुपरि तीक्ष्णे चाग्रभागे, इत्यादि प्रकारा जातिभेदान्नानाविधा बाह्या निर्वृत्तिरिति । अन्तरिमा=आभ्यन्तरा निर्वृत्तिस्तु सर्वेषां प्राणिनां समानैव । स्पर्शेन्द्रियनिर्वृत्तेस्तु बाह्याभ्यन्तरभेदा न भवन्ति, नानाकृतिकत्वात् । 'इमा अंतो' इत्यत्र प्राकृतत्वात् इमनिच् प्रत्ययः प्रकृतेः पूर्वं निर्दिष्ट इति ॥ २ ॥ सम्प्रति—इंद्रियाणाम् आभ्यन्तरसंस्थानान्याह—'पुप्फं कलंबुयाए' इत्यादिना श्रोत्रेन्द्रि-

---

मण्डल है वह आभ्यन्तर उपकरण है, और अक्षिपत्र आदि रूप जो है वह बाह्य उपकरण है । यही बात यहां "बाह्या निवृत्ति चित्रा" इस कथन से प्रदर्शित की गई है । बाह्य निवृत्ति अनेक प्रकार की होती है, क्योंकि यह प्रतिनियत आकार रूपसे कही नहीं जा सकती है । जैसे—मनुष्यके कान नेत्रोंके दोनों पार्श्वभाग में होते हैं और उपरितन श्रवणबन्धकी अपेक्षा से दोनों भौहें समान होती हैं । तुरग—घोडा के दोनों नेत्रों के ऊपर तीक्ष्ण अग्रभाग होते हैं, इत्यादि प्रकार के जाति भेदसे नाना प्रकारकी बाह्य निवृत्ति होती है । परन्तु आभ्यन्तर जो निवृत्ति होती है वह समस्त जीवों के समान होती है । स्पर्शनेन्द्रिय निवृत्ति के तो बाह्य और आभ्यन्तर ऐसे दो भेद नहीं होते हैं, क्योंकि वह नाना आकृतिवाली होती है । २ ॥

જે કૃષ્ણુ શુક્લ મંડળ છે, તે આભ્યન્તર ઉપકરણુ છે અને જે અક્ષિપત્ર (પાંપણુ) આદિ રૂપ ઉપકરણુ છે, તે બાહ્ય ઉપકરણુ છે. એ જ વાત અહીં "बाह्या निवृत्ति चित्रा" આ સૂત્રપાઠ દ્વારા પ્રકટ કરવામા આવી છે. બાહ્ય નિવૃત્તિ (બાહ્યાકાર) અનેક પ્રકારની હોય છે, કારણુ કે તે પ્રતિનિયત આકારવાળી સંભવી શકતી નથી જેમકે માણુસના કાન નેત્રોના બન્ને પાર્શ્વભાગોમાં હોય છે. અને ઉપરીતન શ્રવણુબન્ધની અપેક્ષાએ બન્ને ભ્રમરો સમાન હોય છે. ઘોડાના બન્ને નેત્રો ઉપર તીક્ષ્ણુ અગ્રભાગ (બન્ને કાન) હોય છે, ઇત્યાદિ પ્રકારે જાતિભેદ અનુસાર વિવિધ પ્રકારની બાહ્ય ઇન્દ્રિય નિવૃત્તિ હોય છે. પરન્તુ સમસ્ત જીવોમાં જે આભ્યન્તર નિવૃત્તિ હોય છે તે તો સમાન જ હોય છે. સ્પર્શેન્દ્રિય નિવૃત્તિના તો બાહ્ય અને આન્તરિક રૂપ બે ભેદો પડતાં જ નથી કારણુ કે તે વિવિધ આકૃતિવાળી હોય છે ॥ ૨ ॥

यादीनां=श्रोत्रचक्षुर्घ्राणरसनस्पर्शनेन्द्रियाणां क्रमेण कदम्बपुष्पादीनि संस्थानानि बोध्यानि। तत्र श्रोत्रेन्द्रिय कदम्बपुष्पसंस्थानम्-कदम्बपुष्पाकारमांसगोलकरूप मित्यर्थः। चक्षुरिन्द्रियं-मसूरधान्यसंस्थानम्। घ्राणेन्द्रियम्-अतिमुक्तककुसुम चन्द्रकसंस्थानम्। रसनेन्द्रियं क्षुरप्रसंस्थानम्। स्पर्शनेन्द्रियं तु नानासंस्थानम्। इति ॥ ३ ॥ अथ द्रव्येन्द्रियस्य द्वितीयभेद निरूपयति-'विसयमाहण इत्यादि, उपकरणं विषयग्रहणसामर्थ्यं, तदपि इन्द्रियान्तरम्=निर्वृत्तीन्द्रियाद् अन्यदिन्द्रियं बोध्यम्। अयं भावः-कदम्बपुष्पाद्याकृतिमांसगोलकरूपायाः श्रोत्राद्यन्तर्निर्वृत्तेः

अब सूत्रकार इन्द्रियों के आभ्यन्तर संस्थान का कथन करते हैं—
"पुप्फं कलंबुयाए" इत्यादि-श्रोत्र, चक्षु, घ्राण एवं रसन इन इन्द्रियो का संस्थान क्रमसे कदम्बपुष्प के जैसा मसूर धान्यकेजैसा अतिमुक्तक कुसुम के चन्द्रक जैसा एवं क्षुरप्र के जैसा है। एवं स्पर्शनेन्द्रिय का संस्थान नियमित नहीं होने से वह नाना संस्थानवाला है। अर्थात् श्रोत्रेन्द्रिय का संस्थान कदम्ब पुष्पके जैसा, चक्षु इन्द्रिय का संस्थान चंद्र मसूर की दाल जैसा, घ्राणेन्द्रियका संस्थान अतिमुक्तक कुसुमके चन्द्रक जैसा, रसनेन्द्रिय का संस्थान क्षुरप्र के जैसा है ॥ ३ ॥

"विसयगहणाइ" इत्यादि-द्रव्येन्द्रिय का द्वितीय भेद जो उपकरणेन्द्रिय है, वह विषयको ग्रहण करने की सामर्थ्यरूप है, इसलिये इसे इन्द्रियान्तर रूप-निर्वृत्ति इन्द्रिय से अन्य इन्द्रिय रूप कहा गयाहै। तात्पर्य इसका यह है कि कदम्ब पुष्प आदि की आकृतिरूप जो मांस गोलक है, इस मांसगोलक रूप जो श्रोत्र आदि की आभ्यन्तर निवृत्ति

હવે સૂત્રકાર ઇન્દ્રિયોના આભ્યન્તર સંસ્થાનનું કથન કરે છે—

"પુપ્ફ કલંબુયાએ" ઇત્યાદિ—શ્રોત્ર, ચક્ષુ, ઘ્રાણ અને રસના ઇન્દ્રિયોનુ સંસ્થાન અનુક્રમે કદમ્બ પુષ્પ જેવું, મસૂરની દાળ જેવુ, અતિમુક્તક કુસુમના ચન્દ્રક જેવુ અને ક્ષુરપ્ર (અસ્રા) જેવું છે સ્પર્શેન્દ્રિયનુ સંસ્થાન નિયમિત નથી પણ વિવિધ આકારવાળુ છે એટલે કે શ્રોત્રેન્દ્રિયનો આકાર કદમ્બ પુષ્પ સમાન છે, ચક્ષુઇન્દ્રિયનો આકાર મસૂરની દાળ સમાન છે, ઘ્રાણેન્દ્રિયનો આકાર અતિમુક્તક કુસુમના ચન્દ્રક સમાન છે, અને રસનેન્દ્રિયનો આકાર અસ્રા સમાન છે ॥ ૩ ॥

"વિસયગહણાઇ" ઇત્યાદિ—દ્રવ્યેન્દ્રિયનો જે ઉપકરણેન્દ્રિય રૂપ બીજો ભેદ છે તે વિષયને ગ્રહણ કરવાના સામર્થ્ય રૂપ છે, તેથી તેને ઇન્દ્રિયાન્તર રૂપ-નિવૃત્તિ ઇન્દ્રિય કરતાં અન્ય ઇન્દ્રિય રૂપ કહેવામાં આવેલ છે આ કથનનું તાત્પર્ય નીચે પ્રમાણે છે—કદમ્બપુષ્પ આદિની આકૃતિ રૂપ જે માંસગોલક છે, આ માંસગોલક રૂપ જે શ્રોત્ર આદિની આભ્યન્તર નિવૃત્તિ છે, તે આભ્યન્તર

विषयग्रहणसामर्थ्यम् उपकरणद्रव्येन्द्रियमिति । यद्=यस्माद् हेतोः तदुपघाते= विषयग्रहणसामर्थ्यरूपोपकरणेन्द्रियस्य उपघाते=नाशे सति निर्वृत्तिसद्भावेऽपि= इन्द्रियस्य बाह्याभ्यन्तराकारसत्त्वेऽपि इन्द्रियं विषयान् न गृह्णाति, यथा धारायामुपहतायां । खङ्गः किमपि वस्तु न छिनत्ति-इति ॥ ४ ॥ अथ भावेन्द्रियं प्ररूपयति- 'लध्धुवओगो' इत्यादि । भावेन्द्रियं तु लब्धीन्द्रियोपयोगेन्द्रियभेदाद् द्विविधम् । तत्र यस्तदावरणानां क्षयोपशमस्तद् लब्धीन्द्रियम् । तल्लाभे=लब्धीन्द्रियस्य प्राप्तावेव शेषमपि=अवशिष्टमपि इन्द्रियम् अर्थाद् द्रव्येन्द्रियं भवतीति बोध्यम्

है, सो इस आभ्यन्तर निर्वृत्ति की जो विषय को ग्रहण करनेकी शक्ति है वह द्रव्येन्द्रिय है, क्योंकि विषय ग्रहण करने की सामर्थ्य रूप जो उपकरणेन्द्रिय है उसके नाश होने पर निर्वृत्तिके सद्भाव में भी बाह्य एवं आभ्यन्तर के होने पर भी इन्द्रिय विषय को ग्रहण नहीं करती है, जैसे खड्गधारा के भोथरी हो जाने पर किसी भी वस्तुका छेदन नहीं कर पाता है ॥ ४ ॥

अब सूत्रकार भावेन्द्रिय को प्ररूपणा करते हैं—" लद्धुवओगो " इत्यादि । यह भावेन्द्रिय लब्धि एवं उपयोग के भेद से दो प्रकार की है तदावरणों का जो क्षयोपशम है वह लब्धीन्द्रिय है । अर्थात्-मतिज्ञानावरण, चक्षुर्दर्शनावरण, और अचक्षुर्दर्शनावरण का क्षयोपशम होकर जो आत्मामें ज्ञान और दर्शन रूप शक्ति उत्पन्न होती है वह लब्धि इन्द्रिय है, यह लब्धि इन्द्रिय आत्माके सब प्रदेशों में पाई जाती है,

---

निवृत्तिनी विषयकने ग्रहणु करवानी जे शकित छे, ते उपकरणु द्रव्येन्द्रिय छे, कारणु के विषय ग्रहणु करवाना सामर्थ्य रूप जे उपकरणेन्द्रिय छे तेनो नाश थाय तो निवृत्तिनो सद्‌भाव होवा छतां पणु એટલે કે બાહ્ય અને આભ્યન્તરનો સદ્‌ભાવ હોવા છતા પણુ ઈન્દ્રિય વિષયને ગ્રહણુ કરતી નથી. જેમ તલવારની ધાર બૂઠી થઈ ગઈ હોય તો તલવાર કોઈ પણુ વસ્તુનું છેદન કરી શકતી નથી, એ જ પ્રમાણે ઉપકરણેન્દ્રિયનો નાશ થવાથી ઈન્દ્રિય પણુ વિષયને ગ્રહણુ કરી શકતી નથી. ॥ ૪ ॥

હવે સૂત્રકાર ભાવેન્દ્રિયની પ્રરૂપણા કરે છે. " લદ્ધુવઓગો " ઈત્યાદિ— આ ભાવેન્દ્રિય લબ્ધિ અને ઉપયોગના ભેદથી બે પ્રકારની કહી છે મતિજ્ઞાનાવરણુ, ચક્ષુદર્શનાવરણુ અને અચક્ષુ દર્શનાવરણુનો ક્ષયોપશમ થવાથી આત્મામાં જે જ્ઞાન અને દર્શન રૂપ શક્તિ ઉત્પન્ન થાય છે, તેનુ નામ લબ્ધિ ઈન્દ્રિય છે. તે લબ્ધિ ઈન્દ્રિયનો સદ્‌ભાવ આત્માના સઘળા પ્રદેશોમા હોય છે કારણુ

॥ ५ ॥ भावेन्द्रियस्य द्वितीयभेदमाह–' जो सविसय ' इत्यादिना। श्रोत्रादेरिन्द्रियस्य यः स्वविषयव्यापारः-स्वविषये=तत्तदिन्द्रियग्राह्ये शब्दादौ व्यापारः स उपयोगः-उपयोगेन्द्रियमित्यर्थः । स च एककाले=एकस्मिन् समये श्रोत्रादिषु एकेनैव केनचिदिन्द्रियेण भवति, तस्मात् हेतोः सर्वोऽपि जीव एकेन्द्रिय एव भवतीति ॥ ६ ॥ ननु सर्वोऽपि जीव एकेन्द्रियस्तर्हि एकेन्द्रियद्वीन्द्रियादि जीवभेदो न सिध्यतीति चेदाह–' एगिंदियाइभेया ' इत्यादि । जीवानाम् एकेन्द्रियद्वीन्द्रि-

---

क्योंकि क्षयोपशम सर्वाङ्ग होता है । तथा–लब्धि निर्वृत्ति और उपकरण इन तीनों के होने पर जो विषयोंमें प्रवृत्ति होती है, उपयोगेन्द्रिय है, यहां कोई ऐसी आशंका कर सकता है कि उपयोग इन्द्रिय का कार्य है, पर यहां उपचारसे अर्थात् कार्यमें कारण का उपयोग को भी इन्द्रिय कहा है । अथवा इन्द्रियका मुख्य अर्थ उपयोग है, इसलिये भी उपयोग को इन्द्रिय कह दिया है ॥ ५ ॥

" जो सविसय " इत्यादि––श्रोत्रेन्द्रिय आदिका जो स्वविषय के प्रति व्यापार है, अर्थात् अपने २ ग्राह्य शब्दादिको ग्रहण करने रूप जो प्रवृत्ति है वह उपयोग है, उपयोगेन्द्रिय है । ऐसा यह उपयोग एक समयमें किसी एक इन्द्रिय से ही होता है ॥ ६ ॥

" एगिंदियाइभेया " इत्यादि ।

इस कारण समस्त भी जीव एक इन्द्रियवाले ही होते हैं । यदि यहां पर ऐसी शंका की जावे कि यदि समस्त जीव एक इन्द्रियवाले

કે ક્ષયોપશમ સર્વાંગી હોય છે તથા લબ્ધિ, નિર્વૃત્તિ અને ઉપકરણ આ ત્રણેનો સદ્‌ભાવ હોય ત્યારે વિષયોમાં જે પ્રવૃત્તિ થાય છે, તે ઉપયોગેન્દ્રિય રૂપ છે અહીં કોઈ એવી આશંકા કરી શકે છે કે ઉપયોગ ઇન્દ્રિય નથી, પણ ઇન્દ્રિયનું ફલ છે, છતાં તેને ઇન્દ્રિય રૂપ કેવી રીતે કહો છો ? તો તેની શંકાનું સમાધાન આ પ્રમાણે કરી શકાય છે–જો કે ઉપયોગ ઇન્દ્રિયનું કાર્ય છે, પરન્તુ અહીં કાર્યમાં કારણનું આરોપણ કરીને ઉપયોગને પણ ઇન્દ્રિય કહેવામા આવેલ છે અથવા ઇન્દ્રિયનો મુખ્ય અર્થ (વિષય) ઉપયોગ છે, તેથી ઉપયોગને ઇન્દ્રિય કહેવામાં આવેલ છે ॥ ૫ ॥

" जो सविसय " ઇત્યાદિ—શ્રોત્રેન્દ્રિય આદિની પોતપોતાના વિષયને એટલે કે શબ્દાદિકોને ગ્રહણ કરવા રૂપ જે પ્રવૃત્તિ છે, એ જ ઉપયોગ છે અને તે ઉપયોગ જ ઉપયોગેન્દ્રિય રૂપ છે એવો તે ઉપયોગ એક સમયમાં ઇન્દ્રિય વડે જ થાય છે ॥ ૬ ॥

" एगिंदियाइभेया " ઇત્યાદિ—આ કારણે સમસ્ત જીવો એક ઇન્દ્રિય-વાળા જ હોય છે

यत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियपञ्चेन्द्रियभेदाः शेषेन्द्रियाणि=निर्वृत्त्युपकरणलब्धिरूपाद् शिष्टेन्द्रियाणि प्रतीत्य=आश्रित्य प्रज्ञप्ताः। अथवा-लब्धीन्द्रियं प्रतीत्य= आश्रित्य सर्वेऽपि जीवाः पञ्चेन्द्रिया भवन्तीति ॥ ७ ॥ ननु कथं सर्वेऽपि जीवाः पञ्चेन्द्रिया भवन्ति ? इत्याह-'जं किर' इत्यादिना। यद् यस्माद् हेतो किल निश्चयेन बकुलादीनां=बकुलवृक्षादीनां वनस्पतिविशेषाणां शेषेन्द्रियोपलम्भोऽपि= स्पर्शनेन्द्रियातिरिक्तेन्द्रियलाभोऽपि दृश्यते, तेन हेतुना ज्ञायते यत् तेषां बकुला दीनामपि तदावरणक्षयोपशमसंभवोऽस्ति। अन्यथा बकुलस्य कामिनीमुखार्पित-मदिरागण्डूषेण चंपकस्य अतिसुरभिगन्धोदकसेचनेन, तिलकस्य कामिनीकटा-

---

है तो फिर एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय रूप जो जीवों के भेद हैं वे सिद्ध नहीं हो सकते हैं। तो इसका उत्तर ऐसा है कि ऐसे जो ये भेद हुए हैं वे निवृत्ति उपकरण एवं लब्धि इन इन्द्रियों से भिन्न जो इन्द्रियांहै, उनकी प्रतीति करके आश्रित करके ही हुएहैं अथवा लब्धीन्द्रिय रूप भावेन्द्रिय को लेकर समस्त जीव पंचेन्द्रिय होतेहैं ॥७।

समस्त जीव पंचेन्द्रिय कैसे होते हैं ? तो इसके लिये "जं किर" इत्यादि द्वारा समझाया गया है कि बकुलवृक्ष आदि जो वनस्पति विशेष हैं उनके स्पर्शन इन्द्रिय से अतिरिक्त इन्द्रियों का लाभ भी देखा जाता है, कि बकुल आदिकों के भी तदावरण का क्षयोपशम संभव है नहीं तो बकुल को कामिनी के मुखसे अर्पित मदिरा के कुल्ले से चंपक के अति सुरभि गन्धोदक के सिंचन से तिलक के कामिनीजनोंके

શંકા—જો સમસ્ત જીવો એક ઇન્દ્રિયવાળા હોય, તો જીવોના એકેન્દ્રિય, દ્વીન્દ્રિય, ત્રીન્દ્રિય, ચતુરિન્દ્રિય અને પંચેન્દ્રિય રૂપ ભેદો શા માટે પાડયા છે ?

ઉત્તર—આ જે ભેદો પડવામાં આવ્યા છે તે નિવૃત્તિ ઉપકરણ અને લબ્ધિ, આ ઇન્દ્રિયોથી ભિન્ન જે ઇન્દ્રિયો કહી છે તેમને આધારે જ પાડવામાં આવેલ છે અથવા લબ્ધીન્દ્રિય રૂપ ભાવેન્દ્રિયની અપેક્ષાએ સમસ્ત જીવ પંચેન્દ્રિય હોય છે. ॥ ૭ ॥

સમસ્ત જીવો પંચેન્દ્રિય કેવી રીતે હોય છે ? આ વાત નીચેના સૂત્રપાઠ દ્વારા સમજાવવામાં આવી છે. "जं किर" ઇત્યાદિ—બકુલવૃક્ષ આદિ જે વનસ્પતિ વિશેષ છે તેમનામાં સ્પર્શેન્દ્રિય સિવાયની ઇન્દ્રિયોનો સદ્‌ભાવ જોવામાં આવે છે તે કારણે એવું માની શકાય છે કે બકુલ આદિકોમાં પણ તદાવરણીય કર્મોનો ક્ષયોપશમ સંભવિત છે જો આ વાત અસંભવિત હોત તો બકુલવૃક્ષને અતિ સુગન્ધીદાર ગન્ધોદક છાંટવાથી, તિલકવૃક્ષને કોઈ

क्षविक्षेपेण, विरहकवृक्षस्य च पञ्चमस्वरश्रवणेन पुष्पपल्लवादि संभवो न स्यादिति ॥ ८॥ ननु वकुलादयो यदि पञ्चेन्द्रियास्तर्हि ते पञ्चेन्द्रियत्वेन कथं न व्यवह्रियन्ते ? इत्यत आह—

" पंचिंदियव्व बउलो, नरोव्व सव्वविसओवलंभाउ।
तहवि न भण्णइ पंचिंदिओत्ति बज्झिंदिया भावा " ॥९॥

छाया—पञ्चेन्द्रिय एव बकुलः, नर इव सर्वविषयोपलम्भात्।
तथापि न भण्यते पञ्चेन्द्रिय इति बाह्येन्द्रियाभावात् ॥९॥

अयमर्थः—उपलक्षणत्वात् चम्पकादिश्च सर्वविषयोपलम्भात् नरइव पञ्चेन्द्रिय एव। तथापि स बाह्येन्द्रियाभावात् पञ्चेन्द्रिय इति न भण्यते इति ॥९॥

एवं भूतस्य इन्द्रियस्य अर्थाः=विषयाः, शब्दादयः पञ्चसंख्यकाः प्रज्ञप्ताः,

---

कटाक्ष विक्षेप से एवं विरहक वृक्षके पञ्चम स्वरके श्रवण से पुष्पपल्लव आदिका जो संभव होता है वह नहीं होना चाहिये ॥ ८ ॥

यदि यहां पर ऐसी शंका की जावे कि वकुल आदि पंचेन्द्रिय माने जाते हैं तो फिर इनमें पञ्चेन्द्रियत्व रूपका व्यवहार क्यों नही होता है? तो इसके लिये ऐसा कहा गया है—

" पंचिंदियव्वबउलो " इत्यादि। वकुल चंपक आदि वृक्ष सर्व विषयके उपलंभक होने से मनुष्य की तरह पंचेन्द्रिय ही हैं, फिर भी बाह्येन्द्रियके अभावसे पंचेन्द्रिय इस रूपसे नहीं कहे जाते हैं ॥ ९ ॥

इस प्रकार की इन्द्रिय के जो अर्थ हैं, विषय हैं वे इन्द्रियार्थ हैं, ऐसे ये इन्द्रियार्थ शब्दादिक रूप पांच होते हैं। जिससे सुना जाता है

કોઈ કામિનીના કટાક્ષ વિક્ષેપ સંભળાવવાથી અને વિરહકવૃક્ષને પંચમ સ્વરના સૂરનું શ્રવણ કરવવાથી પુષ્પપલ્લવ આદિ જે આવવા માંડે છે, તે આવવાનું સંભવી શકત નહીં. ॥ ૮ ॥

શંકા—જો બકુલ આદિને અહીં પંચેન્દ્રિય રૂપ બતાવવામાં આવેલ છે, તો તેમનામાં પંચેન્દ્રિયત્વ રૂપે વ્યવહાર કેમ થતો નથી. શા માટે તેમને એકેન્દ્રિય રૂપે માનવામાં આવે છે?

આ શંકાના સમાધાન માટે એવું કહ્યું છે કે " પંચિંદિયવ્વબઉસો " ઈત્યાદિ--બકુલ, ચંપક આદિ વૃક્ષો સર્વ વિષયના ઉપલંભક હોવાથી તેમને મનુષ્યની જેમ અહીં પંચેન્દ્રિય રૂપ બતાવ્યા છે. છતાં પણ બાહ્યેન્દ્રિયના અભાવે કરીને તેમને એકેન્દ્રિય રૂપ જ ગણવામાં આવે છે-પંચેન્દ્રિય રૂપ ગણાતાં નથી. ॥ ૯ ॥

આ પ્રકારના ઇન્દ્રિયોના જે અર્થ (વિષય) છે, તેમને ઇન્દ્રિયાર્થ કહે

तानेवाह-तद्यथा-श्रोत्रेन्द्रियार्थः-श्रूयतेऽनेनेति श्रोत्रम्, तच्च तदिन्द्रियं च श्रोत्रेन्द्रियं तस्य अर्थो विषयः शब्दः। यावत्-शब्दात्-चक्षुरिन्द्रियार्थः घ्राणेन्द्रियार्थः रसनेन्द्रियार्थश्च ग्राह्यः। तत्र चक्षुरिन्द्रियार्थो रूपम्, घ्राणेन्द्रियार्थो गन्धः। रसनेन्द्रियार्थो रसः, स्पर्शनेन्द्रियार्थश्च स्पर्श इति।

तथा—मुण्डः-मुण्डनम्-अपनयनम्-मुण्डः। स च द्विविधो-द्रव्यतो भावतश्च। तत्र-द्रव्यतः केशापनयनम्। भावतस्तु मनस इन्द्रियार्थनिष्ठ रागद्वेषयोः कषायाणां वाऽपनयनम्। द्रव्यभावरूपमुण्डयोगात् पुरुषोऽपि मुण्डः। स च पञ्चविधः प्रज्ञप्तः। पञ्चविधत्वमाह-तद्यथा-श्रोत्रेन्द्रियमुण्डः-श्रोत्रेन्द्रिये मुण्डः श्रोत्रेन्द्रियेण वा मुण्डः। श्रोत्रेन्द्रियविषयशब्दे रागाद्यपनयनात् पुरुषः श्रो-

---

ऐसी जो इन्द्रिय है वह श्रोत्रेन्द्रिय है। इस इन्द्रिय का विषय शब्द है, यहां यावत् शब्दसे "चक्षुरिन्द्रियार्थः घ्राणेन्द्रियार्थः रसनेन्द्रियार्थः स्पर्शनेन्द्रियार्थः" इनका ग्रहण हुआ है। चक्षुइन्द्रिय का विषय रूप है घ्राणेन्द्रिय का विषय गन्ध है, रसनेन्द्रिय का विषय रस है, और स्पर्शनेन्द्रिय का विषय स्पर्श है। दूर करने का नाम मुण्ड है, यह मुण्ड दो प्रकार का होता है, एक द्रव्य से मुण्ड और दूसरा भाव से मुण्ड केशों का दूर करना, मस्तक से केशों का लुंचन आदि करना यह द्रव्य से मुण्ड है तथा मनसे इन्द्रिय के अर्थों में रागद्वेष करने का अथवा कषाय करने का त्याग करना यह भाव से मुण्ड है। इस द्रव्य और भावरूप मुण्ड के संबंध से पुरुष भी मुण्ड होता है, यह मुण्ड पांच प्रकार कहा गया है। जैसे-श्रोत्रेन्द्रिय मुण्ड, जो श्रोत्रेन्द्रिय में मुण्ड अथवा श्रोत्र-

---

છે. એવાં તે ઇન્દ્રિયાર્થો શબ્દાદિ રૂપ પાચ પ્રકારના હોય છે. જેના દ્વારા સંભળાય છે તે ઇન્દ્રિયને શ્રોત્રેન્દ્રિય કહે છે. તે ઇન્દ્રિયનો વિષય શબ્દ છે. અહીં 'યાવત્' પદ વડે ચક્ષુરિન્દ્રિયાર્થ, ઘ્રાણેન્દ્રિયાર્થ, રસનેન્દ્રિયાર્થ અને સ્પર્શેન્દ્રિયાર્થ ગ્રહણ કરવા જોઇએ ચક્ષુઇન્દ્રિયનો વિષય રૂપ છે, ઘ્રાણેન્દ્રિયનો વિષય ગન્ધ છે, રસનાઇન્દ્રિયનો વિષય રસ છે અને સ્પર્શેન્દ્રિયનો વિષય સ્પર્શ છે. દૂર કરવું તેનું નામ "મુંડ" છે. તે મુંડ (મુંડન) બે પ્રકારનું છે—(૧) દ્રવ્યની અપેક્ષાએ મુંડન અને (૨) ભાવની અપેક્ષાએ મુંડન મસ્તકના કેશનું લુંચન આદિ કરવું તેનું નામ દ્રવ્યની અપેક્ષાએ મુંડન છે. તથા મનથી ઇન્દ્રિયોના વિષયોમાં રાગદ્વેષ કરવાનો અથવા કષાય કરવાનો ત્યાગ કરવો તેનું નામ ભાવની અપેક્ષાએ મુંડન છે. આ દ્રવ્ય અને ભાવ રૂપ મુંડ-

त्रेन्द्रियमुण्ड इत्युच्यते । एवं चक्षुरिन्द्रिय-मुण्डादिरपि बोध्य इति । प्रकारान्तरेण पुनरपि पञ्चविधान् मुण्डानाह-क्रोधमुण्ड -क्रोधस्य अपनयात् क्रोधे मुण्डः क्रोधेन वा मुण्ड इति १। एवं मानमुण्डो २ मायामुण्डो ३ लोभमुण्डः ४ शिरोमुण्डश्च ५ बोध्य इति ॥सू० ३॥

मुण्डनं च वादरजीवविशेषाणामेव भवतीति वादरजीव विशेषानाह-

मूलम्-अहेलोगे णं पंच बायरा पण्णत्ता, तं जहा-पुढविकाइया १ आउक्काइया२ वाउकाइया३ वणस्सई काइया ४ ओराला तसा पाणा ५ ।१। उड्ढलोगे णं पंच बायरा पण्णत्ता, तं जहा-एवं तं चेव २। तिरियलोगे णं पंच बायरा पण्णत्ता, तं जहा-एगिंदिया जाव पंचिंदिया ३। पंचविहा बायरतेउकाइया पण्णत्ता, तं जहा-इंगाले १ जाला २ मुम्मुरे ३ अच्ची ४

इन्द्रिय से मुण्ड होता है-अर्थात् श्रोत्रेन्द्रिय के विषयभूत शब्दमें राग द्वेष होने रूप भाव कोई २ करता है, वह पुरुष श्रोत्रेन्द्रिय मुण्ड कहा जाता है, इसी प्रकार से चक्षु इन्द्रिय मुण्ड आदि भी समझ लेना चाहिये । इस द्वितीय प्रकारान्तर से भी मुण्ड पांच प्रकारके कहे गये हैं, जैसे-क्रोध मुण्ड, मान मुण्ड, माया मुण्ड, लोभ मुण्ड और शिरो मुण्ड है, जो क्रोध को हटा देनाहै, क्रोध करने का त्याग कर देताहै, वह क्रोध मुण्डहै, इसी प्रकारसे मान मुण्ड आदि भी समझ लेना चाहिये॥सू० ३॥

નના સંબંધથી પુરુષ પણ મુંડિત થાય છે તે મુંડ (મુંડિત) ના પાંચ પ્રકાર કહ્યા છે—(૧) શ્રોત્રેન્દ્રિય મુંડ, (૨) ચક્ષુરિન્દ્રિય મુંડ, (૩) ઘ્રાણેન્દ્રિય મુંડ, (૪) રસનેન્દ્રિય મુંડ અને (૫) સ્પર્શેન્દ્રિય મુંડ.

જે શ્રોત્રેન્દ્રિયમાં મુંડ અથવા શ્રોત્રેન્દ્રિયની અપેક્ષાએ મુંડ અથવા શ્રોત્રેન્દ્રિયના વિષય રૂપ શબ્દમાં રાગદ્વેષથી રહિત હોય છે તેને શ્રોત્રેન્દ્રિય મુંડ કહે છે. એ જ પ્રમાણે ચક્ષુરિન્દ્રિય મુંડ આદિ વિષે પણ સમજવું. બીજી રીતે પણ પાંચ પ્રકારના મુંડ કહ્યા છે—(૧) ક્રોધમુંડ, (૨) માનમુંડ, (૩) માયામુંડ, (૪) લોભમુંડ અને (૫) શિરોમુંડ. જે માણસ ક્રોધને દૂર કરે છે-ક્રોધનો ત્યાગ કરે છે તેને ક્રોધમુંડ કહે છે. એ જ પ્રમાણે માનમુંડ આદિ વિષે પણ સમજવું. ॥ સૂ. ૩ ॥

अलाए। पंचविहा बायरवाउकाइया पण्णत्ता, तं जहा-पाईण-वाए १ पडीणवाए २ दाहिणवाए ३ उदीणवाए ४ विदिस-वाए ५। पंचविहा अचित्ता वाउकाइया पण्णत्ता, तं जहा-अक्कंते १ धंते २ पीलिए ३ सरीराणुगए ४ संमुच्छिमे ५ ॥सू०४॥

छाया—अधोलोके खलु पञ्च बादराः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-पृथिवीकायिकाः १, अप्कायिकाः २, वायुकायिकाः ३, वनस्पतिकायिकाः ४, उदारास्त्रसाः प्राणाः ५। १। ऊर्ध्वलोके खलु पञ्च बादराः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-एवं तदेव। तिर्यग्लोके खलु पञ्च बादराः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-एकेन्द्रिया यावत् पञ्चेन्द्रियाः। पञ्चविधा बादरतेजस्कायिकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा१अङ्गारो १ ज्वाला २ मुर्मुरः ३ अर्चिः ४ अलातम् ५। पञ्चविधा बादरवायुकायिकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-प्राचीनवातः १, प्रतीचीन-वातः २, दक्षिणवातः ३, उदीचीनवातः ४ विदिग्वातः ५। पञ्चविधा अचित्ता वायुकायिकाः, प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-आक्रान्तः १ ध्मातः २ पीडितः ३ शरीरानुगतः ४ संमूर्च्छिमः ५ ॥सू० ४॥

टीका—'अहेलोगे' इत्यादि—

अधो लोके खलु=निश्चयेन पञ्च-पञ्च संख्यका बादराः सन्ति। तत्र पृथिवी कायिकाः १, अप्कायिकाः २, वायुकायिकाः ३, वनस्पतिकायिकाः ४ तथा-उदाराः=स्थूलाः त्रसाः प्राणाः=प्राणिनः ५। तेजस्कायिका वायुकायिका अपि त्रसा भवन्तीति 'उदाराः' इति विशेषणमुक्तम्। उदारत्वंचैकेन्द्रियापेक्षया बोध्यम्।

यह मुण्डित अवस्था जो विशेष बादरजीव होते हैं, उन्हीं को होती है। अब सूत्रकार बादरजीव विशेषोंका कथन करते हैं—

"अहे लोगेणं पंच बायरा पण्णत्ता" इत्यादि।

टीकार्थ-अधोलोकमें पांच बादरहैं जैसे-पृथिवीकायिक१, अप्कायिक२ वायुकायिक ३ वनस्पतिकायिक ४ तथा उदार स्थूल त्रसप्राणी ५ तेजस्का-यिक एवं वायुकायिक भी त्रस होते हैं, इसलिये उदार ऐसा विशेषण

આ મુંડિત અવસ્થાનો સદ્ભાવ બાદર જીવ વિશેષોમાં હોય છે. તેથી હવે સૂત્રકાર બાદર જીવ વિશેષનું કથન કરે છે.

"अहे लोगेणं पंच बायरा पण्णत्ता" ઇત્યાદિ—

ટીકાર્થ-અધોલોકમાં નીચે પ્રમાણે પાંચ બાદર જીવો હોય છે-(૧) પૃથ્વીકાયિક (૨) અપ્કાયિક, (૩) વાયુકાયિક, (૪) વનસ્પતિકાયિક અને (૫) ઉદાર સ્થૂલ

अधोलोकवदेव ऊर्ध्वलोकेऽपि पञ्च बादरा बोध्याः। अधोलोकोर्ध्वलोकयोश्च तैजसा बादरा न सन्तीति पञ्च बादरा उक्ताः। ननु अधोलोके ऊर्ध्वकपाटद्वये चापि तैजसा बादराः सन्ति, तर्हि कथमुक्तम्-अधोलोकोर्ध्वलोकयोश्च तैजसा बादरा न सन्ति? इति चेदाह-यद्यपि सन्ति परन्तु तेऽल्पतया न विवक्षिताः। ये चोर्ध्वकपाटद्वये तेऽपि उत्पत्स्यमानत्वेन उत्पत्तिस्थान-स्थितत्वाद् न विवक्षिता इति। तिर्यग्लोकेऽपि एकेन्द्रियादि पञ्चेन्द्रियान्ताः पञ्च बादराः सन्ति। तत्र-एकेन्द्रियाः-एकं=स्पर्शनलक्षणम् इन्द्रियम्=एकेन्द्रियजातिनामकर्मोदयात्तदावर-

---

कहा है। एकेन्द्रियकी अपेक्षा से उदारता जाननी चाहिये, अधोलोक की तरह उर्ध्वलोक में भी इसी तरह से पांच बादर हैं। अधोलोक एव उर्ध्वलोक में तैजस बादर नहीं हैं।

शंका--अधोलोक में एवं उर्ध्व कपाटद्वय में तैजस बादर हैं, तो फिर आप अधोलोक एवं उर्ध्वलोक में तैजस बादर नहीं है ऐसा कैसे कहते हैं?

उत्तर--यद्यपि ये वहां हैं परन्तु वे वहां बहुत थोडे हैं, इसलिये वहां वे विवक्षित नहीं हुए हैं। तथा जो ऊर्ध्वकपाटद्वय में तैजस बादर कहे गये हैं, वे भी उत्पत्स्यमान होने से उत्पत्तिस्थान के आश्रित होने रूपसे विवक्षित नहीं हुए हैं। तिर्यग्लोक में भी एकेन्द्रिय से लेकर पञ्चेन्द्रिय तकके पांच बादर हैं। जिनको एकेन्द्रिय जाति नाम कर्म के उदयसे और तदावरण के क्षयोपशम से एक स्पर्शन इन्द्रिय है वे

ત્રસ પ્રાણી. તેજસ્કાયિક અને વાયુકાયિક પણ ત્રસ હોય છે, તેથી સ્થૂલ ત્રસ પ્રાણીને 'ઉદાર' વિશેષણ લગાડવામાં આવ્યુ છે. આ ઉદારતા એકેન્દ્રિયોની અપેક્ષાએ સમજવી જોઈએ. ઉર્ધ્વલોકમાં પણ એ જ પ્રકારના પાંચ બાદરો છે. અધોલોક અને ઉર્ધ્વલોકમાં તેજસ બાદર નથી.

શંકા—અધોલોકમાં અને ઉર્ધ્વકપાટ દ્વયમાં પણ તૈજસ બાદરનો સદ્ભાવ હોય છે, છતાં આપ શા કારણે એવું કહો છો કે ઉર્ધ્વલોક અને અધોલોકમાં તેજસ બાદરનો સદ્ભાવ નથી?

ઉત્તર—જો કે તેમનું ત્યાં અસ્તિત્વ છે ખરું, પણ તેઓ ત્યા ઘણાં જ અલ્પ પ્રમાણમાં છે, તેથી અહીં તેમનો ઉલ્લેખ કરવામા આવ્યો નથી.

તથા જે ઉર્ધ્વકપાટદ્વયમાં તૈજસ બાદર કહ્યા છે, તેઓ પણ ઉત્પસ્યમાન હોવાથી ઉત્પત્તિ સ્થાનમાં આશ્રિત હોવા રૂપે વિવક્ષિત થયા નથી. તિર્યગ્લોકમાં પણ એકેન્દ્રિયથી લઇને પંચેન્દ્રિય પર્યન્તના પાંચ પ્રકારના બાદર

णक्षयोपशमाच्च-पृथिव्यादय इत्यर्थः एवमेव द्वीन्द्रियप्रभृतीनामप्यर्थो बोध्यः। एकेन्द्रियादि पञ्चेन्द्रियान्तेषु पूर्वपूर्वापेक्षया उत्तरोत्तरत्र इन्द्रियविशेषो जाति विशेषश्च बोध्य इति। सम्प्रति एकेन्द्रियानेव त्रिपञ्चकस्थानकत्वेनाह-'पंचविहा' इत्यादि। बादरतेजस्कायिका जीवाः पञ्चविधाः=पञ्चप्रकाराः प्रज्ञप्ताः=कथिताः। पञ्चविधत्वमेवाह-तद्यथा-अङ्गारः प्रसिद्धः १। ज्वाला=छिन्नमूलाऽग्निशिखा २। मुर्मुरः=सभस्माग्निकणरूपः ३। अर्चिः=अच्छिन्नमूलाऽग्निशिखा ४। अलातम्=उल्मुकम्-अर्द्धदग्धकाष्ठरूपम् ५। तथा-बादर-वायुकायिकाः पञ्चसंख्यकाः सन्ति।

एकेन्द्रिय हैं, ऐसे ये एकेन्द्रिय पृथिवि आदि हैं। इसी तरह से दो इन्द्रिय आदिकोंका भी अर्थ समझ लेना चाहिये। एकेन्द्रिय से लेकर पञ्चेन्द्रिय तकमें पूर्व २ की अपेक्षा उत्तरोत्तर में इन्द्रिय की विशेषता जाति नामकर्म की विशेषता कह लेनी चाहिये।

अब सूत्रकार एकेन्द्रियोंको ही तीन पांच स्थानकों से कहते हैं।

"पंचविहा" इत्यादि--बादर तेजस्कायिक जीव पांच प्रकारके कहे गये हैं, जैसे—अङ्गार १, ज्वाला २, मुर्मुर ३, अर्चि ४ और अलात ५। इनमें अङ्गार तो प्रसिद्धहै १ जो अग्निशिखा छिन्न मूलवाली होती है वह ज्वाला है जो भस्म सहित अग्निकण रूप होता है वह मुर्मुर है, जो अग्निशिखा अच्छिन्न मूलवाली होती है वह अर्चि है। एवं जो अर्धदग्ध काष्ठ रूप होता है वह उल्मुक अलात है। बादर वायुकायिक

જીવો છે. એકેન્દ્રિય જાતિ નામકર્મના ઉદયથી અને તદાવરણુ (તેનું આવરણુ કરનારા) ક્ષયોપશમથી જેમને એક સ્પર્શેન્દ્રિયને જ સદ્ભાવ હાય છે, તેમને એકેન્દ્રિય જીવો કહે છે. પૃથ્વીકાય આદિ જીવોને એકેન્દ્રિય કહે છે. એ જ પ્રમાણે દ્વીન્દ્રિય આદિકોના વિષયમાં પણુ સમજવું એકેન્દ્રિયથી લઇને પંચેન્દ્રિય પર્યન્તના જીવોમાં પૂર્વપૂર્વની અપેક્ષાએ ઉત્તરોત્તરમાં ઇન્દ્રિયની વિશેષતા અને જાતિનામકર્મની વિશેષતાનું કથન થવું જોઇએ.

હવે સૂત્રકાર જુદી જુદી ત્રણુ રીતે એકેન્દ્રિયોના પાંચ પ્રકારોનું કથન કરે છે. "પંચવિહા" ઇત્યાદિ—બાદર તેજસ્કાયિક જીવ પાંચ પ્રકારના કહ્યા છે—(૧) અંગાર, (૨) જ્વાળા, (૩) મુર્મુર, (૪) અર્ચિ અને (૫) અલાત.

અંગાર એટલે દેવતાનો અંગારો. જે અગ્નિશિખા છિન્ન મૂળવાળી હાય છે તેને 'જ્વાળા' કહે છે, જેના ઉપર રાખ બાઝી ગઇ હાય એવા અગ્નિકણુને-અંગારાને 'મુર્મુર' કહે છે જે અગ્નિશિખા અછિન્ન મૂળવાળી હાય છે તેને 'અર્ચિ' કહે છે અર્ધદગ્ધ કાષ્ઠ આદિ રૂપ જે અગ્નિ છે તેને 'અલાત' કહે છે.

पञ्चसंख्यकत्वमेवाह-तद्यथा-प्राचीनवातः=पूर्वदिग्वातः १, प्रतीचीनवातः=पश्चिमदिग्वातः, २ दक्षिणवातः=दक्षिणदिग्वातः ३, उदीचीनवातः=उत्तरदिग्वातः ४। एभ्यो भिन्नो वातो विदिग्वात इति ५।

तथा-अचित्ता वायुकायिकाः पञ्चविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-आक्रान्तः=चरणादिना आक्रान्ते भूतलादौ यो भवति स आक्रान्त इत्युच्यते १। ध्मातः-ध्माते शङ्खादौ वायुर्ध्मातः २। पीडितः=निष्पीडयमाने जलार्द्रवस्त्रे वायुः पीडितः ३। शरीरानुगतः=उद्गारोच्छ्वासादिः ४। सम्मूर्च्छिमः=व्यजनादि जन्यः ५। एते आक्रान्तादयः पूर्वमचेतनाः पश्चात् सचेतना अपि भवन्तीति ॥सू० ४॥

पांच प्रकारके हैं, जैसे--प्राचीनवात, प्रतीचीनवात, दक्षिणवात, उदीचीनवात और विदिग्वात ५ इनमें पूर्व दिशाका जो वात है वह प्राचीन वात है, पश्चिम दिशाका जो वात है वह प्रतीचीन वात है, दक्षिण दिशाका जो वात है वह दक्षिणवात है, उत्तर दिशाका जो वात है वह उदीचीन वात है तथा इनसे भिन्न जो वात है वह विदिग्वात है। अचित्त जो वायुकायिक हैं वे पांच प्रकार के हैं, जैसे-आक्रान्त १, ध्मात २, पीडित ३, शरीरानुगत ४ और सम्मूर्च्छिम ५। चरणादि द्वारा आक्रान्त होने पर भूतल आदिमें जो वायु होता है वह ध्मात वायु है, जलार्द्र वस्त्र जब निष्पीडयमान होता है, तब जो वायु होता है वह पीडित वायु है, शरीर में जो उद्गार उच्छ्वास आदि रूप वायु होता है वह शरीरानुगत वायु है, एवं जो वायु व्यजन आदिसे जन्य होता

બાદર વાયુકાયિક પાંચ પ્રકારના કહ્યા છે—(૧) પ્રાચીનવાત, (૨) પ્રતીચીનવાત, (૩) દક્ષિણવાત, (૪) ઉદીચીનવાત અને (૫) વિદિગ્વાત.

પૂર્વ દિશાના વાયુને પ્રાચીનવાત કહે છે, પશ્ચિમ દિશાના વાયુને પ્રતિચીનવાત કહે છે, દક્ષિણ દિશાના વાયુને દક્ષિણવાત કહે છે, ઉત્તર દિશાના વાયુને ઉદીચીનવાત કહે છે, અને એ સિવાયની દિશાઓના વાયુને વિદિગ્વાત કહે છે. અચિત્ત વાયુકાયિકના નીચે પ્રમાણે પાંચ પ્રકાર છે—(૧) આક્રાન્ત, (૨) ધ્માત, (૩) પીડિત, (૪) શરીરાનુગત અને (૫) સમ્મૂર્ચ્છિમ ચરણાદિ દ્વારા આક્રાન્ત થતી વખતે ભૂતલ આદિમાંથી જે વાયુ નીકળે છે તેને આક્રાન્તવાયુ કહે છે શંખ આદિને વગાડતી વખતે જે વાયુ છૂટે છે તેનું નામ ધ્માતવાયુ છે ભીના વસ્ત્રને જ્યારે ફડફડાવવામાં આવે છે, ત્યારે જે વાયુ નીકળે છે તેને પીડિતવાયુ કહે છે. શરીરમાંથી ઉચ્છ્વાસ વખતે, વાછૂટ વખતે અને શબ્દના ઉચ્ચારણ વખતે જે વાયુ નીકળે છે તેને શરીરાનુગત વાયુ કહે

कुशीलः ४, यथा सूक्ष्मकुशीलो ५ नाम पञ्चमः। निर्ग्रन्थः पञ्चविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-प्रथमसमयनिर्ग्रन्थः, १ अप्रथमसमयनिर्ग्रन्थः, २ चरमसमयनिर्ग्रन्थः, ३ अचरमसमयनिर्ग्रन्थः, ४ यथासूक्ष्म निर्ग्रन्थः, ५। स्नातः पञ्चविधः प्रज्ञप्तः-तद्यथा-अच्छविः १, अशवलः, २ अकर्मांशः, ३ संशुद्धज्ञानदर्शनधरः ४ अर्हन् जिनः केवली, ४ अपरिस्रावी ५ ॥सू० ५॥

टीका—' पंच निग्गंथा ' इत्यादि—

निर्ग्रन्थाः-श्रमणाः, ते पञ्चविधाः प्रज्ञप्ताः। पञ्चविधत्वमेवाह-तद्यथा-पुलाकः-तन्दुलकणरहित पलञ्जिरूप निस्सारं धान्यं पुलाक इत्युच्यते, तत्सदृश-चारित्रयुक्तः साधुरपि पुलाक इत्युच्यते।

अयं भावः-तपः-श्रुतसमुत्पन्नायाः संघादि प्रयोजने सति ससैन्यस्य

पहिले पञ्चेन्द्रिय सामान्य रूपसे कहे गये हैं। अब पञ्चेन्द्रियों में विशेषरूप जो निर्ग्रन्थ हैं उन्हें अथवा सचेतन अचेतन जो वायु कही गई है सो उसकी यथार्थ रूपसे रक्षा करनेवाले जो निर्ग्रन्थ हैं उन्हें अब सूत्रकार प्रकट करते हैं--" पंच निग्गंथा पण्णत्ता " इत्यादि।

टीकार्थ-निर्ग्रन्थ पांच प्रकारके कहे गयेहैं, वे ये हैं--पुलाक१ बकुश२ कुशील ३ निर्ग्रन्थ ४ और स्नात ५। तन्दुलकणों से रहित पलञ्जिरूप जो पोचा निस्सार धान्य होता है उसे पुलाक कहा जाता है, इसके जैसे चारित्र से युक्त जो साधु होता है वह भी पुलाक कहलाता है। तात्पर्य यह है कि तप और श्रुत की आराधना से उत्पन्न हुई-तथा संघादिके प्रयोजन होने पर ससैन्य चक्रवर्ती आदिके विनाश करने में समर्थ

પહેલાં પચેન્દ્રિયનુ સામાન્ય રૂપે કથન કરવામાં આવ્યુ હવે પંચેન્દ્રિય વિશેષરૂપ જે નિર્ગ્રંથો છે તેમનું સૂત્રકાર નિરૂપણ કરે છે. તે નિર્ગ્રંથો જ સચેતન અચેતન જે વાયુ કહ્યા છે, તેનું યથાર્થ રૂપે રક્ષણ કરે છે. આ પ્રકારના સંબંધને અનુલક્ષીને વાયુકાયિકોના પ્રકારોનું નિરૂપણ કરીને હવે સૂત્રકાર નિર્ગ્રંથોનું નિરૂપણ કરે છે " પંચ નિગ્ગથા પણ્ણત્તા " ઈત્યાદિ—

ટીકાર્થ-નિર્ગ્રંથોના નીચે પ્રમાણે પાંચ પ્રકાર કહ્યા છે—(૧) પુલાક, (૨) બકુશ, (૩) કુશીલ, (૪) નિર્ગ્રંથ અને (૫) સ્નાત

ચોખાના કણોથી રહિત જે પરાળ હોય છે તેને પુલાક કહે છે. તેના જેવા ચારિત્રથી યુક્ત જે સાધુ હોય છે તેને પણ પુલાક કહેવાય છે એટલે કે તપ અને શ્રુતની આરાધનાથી ઉત્પન્ન થયેલી અને સંઘાદિના રક્ષણનું પ્રયોજન ઉદ્દ્ભવે ત્યારે સૈન્યયુક્ત ચક્રવર્તી આદિનો વિનાશ કરવાને સમર્થ

बकुशः-शिथिलाचारितया करचरणप्रक्षालनं नयनादिमलाद्यपनयनं च यः शरीर-सौन्दर्यार्थं करोति सः । उपकरणबकुशश्च य अकाल एव चोलपट्टादिकं प्रक्षाल्य पात्रादिकं च तैलेन चमत्कृत्य विभूषार्थं धारयति सः । उभयेऽप्येते प्रभूतवस्त्र-पात्रादिरूपाम् ऋद्धिं 'एते गुणवन्तो विशिष्टाः साधवः' इत्यादि प्रवादरूपां ख्यातिं च कामयन्ते, सातगौरवयुक्ततयाऽहोरात्रानुष्ठेयक्रियासु नोद्युञ्जते, घृष्ट-जङ्घतैलाभ्यञ्जितशरीरत्वादिना एषां शिष्यपरिवारोऽसंयमयुक्तो भवति, तथा-सर्वदेशच्छेदार्हातिचारजनितशबलत्वेनैते बहुच्छेदशबलयुक्ताश्चापि भवन्तीति

प्रक्षालन एवं नयन आदि के मलादिक का अपनयन शारिरिक सौन्दर्य के निमित्त करता है वह शरीर बकुश है । तथा जो अकाल में ही चोलपट्टक आदि का प्रक्षालन करके एवं पात्रादिकों को तैलसे चिकना करके सौन्दर्य के निमित्त धारण करता है वह उपकरण बकुश है । ये दोनों भी वस्त्र पात्रादि रूप ऋद्धि को तथा ये "गुणशाली विशिष्ठ साधुजन हैं" इत्यादि प्रवादरूप ख्याति को कामनावाले होते है, सात गौरव युक्त होने के कारण रातदिन की अनुष्ठेय क्रियाओंमें वे उपयोग पूर्वक प्रवृत्ति करनेवाले नहीं होते हैं । जङ्घादिकों में तैल की मालिश करने से एव चिकनाचुपड़ा शरीर आदि रखनेसे इनका शिष्य परिवार असंयम युक्त होता है तथा सर्वदेश संयम को छेदने के योग्य जो अति-चार होते हैं अर्थात् समस्त रूपसे संयम को या देशरूपसे संयम को छेदने योग्य जो अतिचार हैं, उन अतिचारों को ये सेवन करते हैं,

---

વારંવાર પ્રક્ષાલન કરે છે, અને આખ, કાન આદિનો મેલ વારવાર કાઢયા કરે છે-આ બધું શરીર સૌદર્ય નિમિત્તે કરનાર સાધુને શરીર બકુશ કહે છે. જે સાધુ અકાળે ચોલપટ્ટક આદિનું પ્રક્ષાલન કરીને અને પાત્રાદિકોને તેલ અથવા વાર્નિશ આદિ વડે મુલાયમ અને ચળકતાં કરીને સૌંદર્યને નિમિત્તે ધારણ કરે છે, તે સાધુને ઉપકરણ બકુશ કહે છે. આ બન્ને પ્રકારના સાધુઓ વસ્ત્રપાત્રાદિ રૂપ ઋદ્ધિની અને "આ ગુણસંપન્ન વિશિષ્ટ સાધુજન છે" આ પ્રકારની ખ્યાતિની કામનાવાળો હોય છે.

સાત ગૌરવયુક્ત હોવાને કારણે રાતદિનની અનુષ્ઠેય ક્રિયાઓમાં તેઓ ઉપયોગપૂર્વક પ્રવૃત્તિ કરનારા હોતા નથી. જાંઘ આદિપર તેલનું માલિશ કરવાથી અને સ્નિગ્ધ શરીરાદિ રાખવાને કારણે તેમનો શિષ્ય પરિવાર પણ અસયમયુક્ત હોય છે તથા સમસ્ત રૂપે સયમનું છેદન કરનારા અથવા દેશ રૂપે સંયમનું છેદન કરનારા જે અતિચારો છે તેમનુ તેઓ સેવન કરતા હોય છે તેથી તેમનો સંયમ અતિચારયુક્ત હોય છે.

चक्रवर्त्यादेरपि विनाशने समर्थया: लब्धेरुपजीवनेन ज्ञानाद्यतिचारासेवनेन वा सकलसंयमसारगलनात् पलञ्जिवन्निस्सारो यः स पुलाक उच्यते इति।

उक्तंचात्र—

" जिन प्रणीतादागमात् सदैवाप्रतिपातिनो ज्ञानानुसारेण क्रियानुष्ठायिनो लब्धिमुपजीवन्तो निर्ग्रन्थाः पुलाकाः भवन्ति " इति।

इत्थं चायं लब्धिपुलाकाऽऽसेवनापुलाकभेदेन द्विविधो ज्ञेयः १। तथा-बकुशः-बकुशसंयमयोगाद् बकुशः-शरीरोपकरणविभूषादिना शबलचारित्रः। अय मोहनीयक्षय मत्युद्युक्तः शरीरबकुशोपकरणबकुशभेदेन द्विविधः। तत्र-

ऐसी लब्धिकी प्राप्तिसे अथवा ज्ञानादिकमें अतिचारके आसेवन से सकल संयम रूप सारके गल जानेके कारण जो पलञ्जि (पलाल) की तरह सारसे रहित होता है, ऐसा वह साधु पुलाक कहलाता है। कहा भी है—" जिनप्रणीतादागमात् सदैवाप्रतिपातिनो ज्ञानानुसारेण क्रियानुष्ठायिनो लब्धिमुपजीवन्तो निर्ग्रन्थाः पुलाकाः भवन्ति" जो जिन प्रणीत आगम के अनुसार सदा अपनी क्रियाएँ करता है, एवं उसीका जो श्रद्धालु होता है और जो लब्धिवाला होता है वह पुलाकमुनि है। यह पुलाक लब्धिपुलाक और आसेवना पुलाक के भेद से दो प्रकार का है, जो शरीर और उपकरणको विभूषा आदि से शबल चारित्रवाला होता है और इसीसे जिसका संयम बकुश होता है, अतिचार सहित होता है, ऐसा साधु बकुश कहा गया है, यह बकुश शरीर बकुश और उपकरण बकुश के भेदसे दो प्रकारका है। इनमें जो कर, चरण का

એવી લબ્ધિની પ્રાપ્તિ વડે, અથવા જ્ઞાનાદિકમાં અતિચારનું આસેવન કરવાથી સકલ સંયમ રૂપ સાર ઝરી જવાને કારણે પરાળની જેમ સારરહિત હોય છે, એવા સાધુને પુલાક કહે છે કહ્યું પણ છે કે " जिनप्रणीतादागमात् सदैवा प्रतिपातिनो ज्ञानानुसारेण क्रियानुष्ठायिनो लब्धिमुपजीवन्तो निर्ग्रन्थो पुलाका भवन्ति " જે સાધુ સદા જિનપ્રણીત આગમ અનુસાર પોતાની ક્રિયાઓ કરે છે, અને તેના પ્રત્યે જે શ્રદ્ધાવાળો હોય છે, અને જે લબ્ધિવાળો હોય છે, તે સાધુને પુલાકમુનિ કહે છે તે પુલાકના લબ્ધિપુલાક અને આસેવના પુલાકના ભેદથી બે પ્રકારના હોય છે.

જે સાધુ શરીર અને ઉપકરણને વિભૂષિત કરવાને કારણે શબલ (દૂષિત) ચારિત્રવાળો હોય છે અને તે કારણે જેનો સંયમ બકુશ હોય છે-અતિચાર સહિત હોય છે, એવા સાધુને બકુશ કહે છે. બકુશના બે પ્રકાર પડે છે— (૧) શરીર બકુશ અને (૨) ઉપકરણ બકુશ જે સાધુ હાથ, પગ આદિનું

बकुशः-शिथिलाचारितया करचरणप्रक्षालनं नयनादिमलाद्यपनयनं च यः शरीर-सौन्दर्यार्थं करोति सः। उपकरणबकुशश्च यः अकाल एव चोलपट्टादिकं प्रक्षाल्य पात्रादिकं च तैलेन चमत्कृत्य विभूषार्थं धारयति सः। उभयेऽप्येते प्रभूतवस्त्र-पात्रादिरूपाम् ऋद्धिं 'एते गुणवन्तो विशिष्टाः साधवः' इत्यादि प्रवादरूपां ख्यातिं च कामयन्ते, सातगौरवयुक्ततयाऽहोरात्रानुष्ठेयक्रियासु नोद्युञ्जते, घृष्ट-जङ्घतैलाभ्यञ्जितशरीरत्वादिना एषां शिष्यपरिवारोऽसंयमयुक्तो भवति, तथा-सर्वदेशच्छेदार्हातिचारजनितशबलत्वेनैते बहुच्छेदशबलयुक्ताश्चापि भवन्तीति

प्रक्षालन एवं नयन आदि के मलादिक का अपनयन शारिरिक सौन्दर्य के निमित्त करता है वह शरीर बकुश है। तथा जो अकाल में ही चोलपट्टक आदि का प्रक्षालन करके एवं पात्रादिकों को तैलसे चिकना करके सौन्दर्य के निमित्त धारण करता है वह उपकरण बकुश है। ये दोनों भी वस्त्र पात्रादि रूप ऋद्धि को तथा ये "गुणशाली विशिष्ठ साधुजन हैं" इत्यादि प्रवादरूप ख्याति को कामनावाले होते हैं, सात गौरव युक्त होने के कारण रातदिन की अनुष्ठेय क्रियाओंमें ये उपयोग पूर्वक प्रवृत्ति करनेवाले नहीं होते हैं। जङ्घादिकों में तैल की मालिश करने से एव चिकनाचुपड़ा शरीर आदि रखनेसे इनका शिष्य परिवार असंयम युक्त होता है तथा सर्वदेश संयम को छेदने के योग्य जो अति-चार होते हैं अर्थात् समस्त रूपसे संयम को या देशरूपसे संयम को छेदने योग्य जो अतिचार हैं, उन अतिचारों को ये सेवन करते हैं,

---

વારંવાર પ્રક્ષાલન કરે છે, અને આંખ, કાન આદિનો મેલ વારવાર કાઢયા કરે છે-આ બધું શરીર સૌંદર્ય નિમિત્તે કરનાર સાધુને શરીર બકુશ કહે છે. જે સાધુ અકાળે ચોલપટ્ટક આદિનું પ્રક્ષાલન કરીને અને પાત્રાદિકોને તેલ અથવા વાર્નિશ આદિ વડે મુલાયમ અને ચળકતાં કરીને સૌંદર્યને નિમિત્તે ધારણ કરે છે, તે સાધુને ઉપકરણ બકુશ કહે છે. આ બન્ને પ્રકારના સાધુઓ વસ્ત્રપાત્રાદિ રૂપ ઋદ્ધિની અને "આ ગુણસંપન્ન વિશિષ્ટ સાધુજન છે" આ પ્રકારની ખ્યાતિની કામનાવાળો હોય છે.

સાત ગૌરવયુક્ત હોવાને કારણે રાતદિનની અનુષ્ઠેય ક્રિયાઓમાં તેઓ ઉપયોગપૂર્વક પ્રવૃત્તિ કરનારા હોતા નથી. જાંઘ આદિપર તેલનું માલિશ કરવાથી અને સ્નિગ્ધ શરીરાદિ રાખવાને કારણે તેમનો શિષ્ય પરિવાર પણ અસંયમયુક્ત હોય છે. તથા સમસ્ત રૂપે સયમનું છેદન કરનારા અથવા દેશ રૂપે સયમનું છેદન કરનારા જે અતિચારો છે તેમનુ તેઓ સેવન કરતા હોય છે તેથી તેમનો સંયમ અતિચારયુક્ત હોય છે

२। तथा–कुशीलः–उत्तरगुणप्रतिसेवनेन संज्वलनकषायोदयेन वा दूषितत्वात् कुत्सितं शीलम्=अष्टादशशीलाङ्ग सहस्रभेदं यस्य स तथा। अयं प्रतिसेवनाकुशील कषायकुशीलभेदाद् द्विविधः। तत्र ये नैर्ग्रन्थ्यमापन्ना अपि अनियतेन्द्रियत्वात् पिण्डविशुद्धिसमितिभावना तपः प्रतिमाभिग्रहादिषु उत्तरगुणेषु कथंचित् किंचिदेव विराधनां कुर्वन्तो जिनाज्ञामुल्लङ्घयन्ति ते प्रतिसेवनाकुशीलाः। ये तु संयता सन्तोऽपि कथंचिदुदीरितसंज्वलनकषाया भवन्ति ते कषायकुशीला इति ३। तथा–निर्ग्रन्थः–निर्गतो ग्रन्थात्=मोहनीयाभिधाद् यः सः। अयं च क्षीणकषायोपशान्तमोहभेदेन द्विविध इति ४।

अतः इनका संयम अतिचार युक्त होता है। उत्तर गुणोंके प्रतिसेवन से अथवा संज्वलनकषाय के उदय से दूषित होने से १८००० शील के भेद जिसके कुत्सित हैं वह कुशील है, यह कुशील प्रतिसेवना कुशील और कषाय कुशीलके भेदसे दो प्रकारका है। जो निर्ग्रन्थभावको प्राप्त हुए भी अनियत इन्द्रियवाले होनेसे पिण्ड विशुद्धि समिति भावना तप एवं अभिग्रह आदिरूप उत्तर गुणोंमें किसी तरहसे कुछ थोडी बहुत विराधना करते हुए जिनाज्ञाका उल्लङ्घन करते हैं वे प्रतिसेवनाकुशील हैं, तथा जो संयत होते हुए भी कथञ्चित् उदय प्राप्त संज्वलन कषायवाले होते हैं वे कषायकुशील हैं। तथा जो मोहनीय रूप ग्रन्थसे निर्गत होता है, वह निर्ग्रन्थ है यह निर्ग्रन्थ क्षीण कषाय और उपशान्त मोहके भेदसे दो प्रकारका होता है,

---

ઉત્તરગુણોના પ્રતિસેવનથી અથવા સંજ્વલન કષાયના ઉદયથી દૂષિત થવાને કારણે જેના ૧૮૦૦૦ શીલના ભેદ કુત્સિત થયેલા છે, એવા સાધુને કુશીલ કહે છે તેના બે ભેદ કહ્યા છે—(૧) પ્રતિસેવનાકુશીલ અને (૨) કષાય કુશીલ.

જે સાધુ અનિયત ઇન્દ્રિયવાળો (ઇન્દ્રિયોપર કાબૂ રાખવાને અસમર્થ) હોવાને કારણે પિંડવિશુદ્ધિ, સમિતિ, ભાવના, તપ, પ્રતિમા અને અભિગ્રહ આદિ રૂપ ઉત્તરગુણોમાં કોઇપણ પ્રકારે વધુ ઓછી વિરાધના કરતો હોવાથી જિનાજ્ઞાનું ઉલ્લંઘન કરે છે, તે સાધુને પ્રતિસેવનાકુશીલ કહે છે. સંયત હોવા છતાં પણ જેમનામાં સંજ્વલન કષાયનો વધુ ઓછો ઉદય હોય છે, એવા સાધુઓને કષાય કુશીલ કહે છે.

જે સાધુ મોહનીય રૂપ ગ્રન્થ (બન્ધન) થી મુક્ત હોય છે, તેને નિર્ગ્રંથ કહે છે. તે નિર્ગ્રંથના નીચે પ્રમાણે બે ભેદ કહ્યા છે—(૧) ક્ષીણકષાય અને (૨) ઉપશાન્તમોહ.

स्नातकः -- शुक्लध्यानरूपजलक्षालितसकलघातिकर्ममलसमूहतया स्नात इव स्नातः, स एव स्नातकः । अयमपि सयोग केवल्ययोगकेवलिभेदेन द्विविध इति ५। इत्थं निर्ग्रन्थभेदानुक्त्वा सम्प्रति तेषामेव एकैकस्य पञ्च पञ्चभेदानाह—

जो शुक्लध्यानरूप जलसे क्षालित हुए सकल घातियो कर्मरूप मलवाला होता है, अतएव जो स्नातकी तरह स्नात होता है, ऐसा वह साधु स्नातक कहा गया है। जिसमें सर्वज्ञता प्रकट हो चुकी है, वह स्नातक है। यह स्नातक सयोग केवली और अयोग केवलीके भेदसे दो प्रकारका होता है। तात्पर्य इस समस्त कथनका ऐसा है कि यहां निर्ग्रन्थके तरतम रूपसे होनेवाले भावोंकी अपेक्षा ये पांच भेद किये गयेहैं। मूलगुण तथा उत्तर गुणमें परिपूर्णता प्राप्त न करते भी वीतराग प्रणीत आगमसे कभी अस्थिर न होनेवाला पुलाक निर्ग्रन्थ है। पुलाक नाम पलालका है, वह जैसे सारभाग रहित होता है, वैसेही ये निर्ग्रन्थ होते हैं ये पुलाक उत्तर गुणोंको उत्तमतासे नहीं पालते हैं साथमें मूलगुणोंमें भी पूर्णताको प्राप्त नहीं होते हैं। जो व्रतोंको पूरी तरहसे पालते हैं किन्तु शरीर और उपकरणोंको संस्कारित करते रहते हैं ऋद्धि और यशकी अभिलाषा रखतेहैं, शिष्यादि परिवारसे घिरे रहते हैं। एवं मोहजन्य दोषसे युक्तहै वे बकुशहैं। कुशील निर्ग्रन्थ दो प्रकारके

શુકલધ્યાન રૂપ જલ વડે જેના ઘાતિયા કર્મરૂપ મળ (મેલ) ધોવાઈ જવાને કારણે જે સાધુ સ્નાત મનુષ્યના જેવો બની ગયો હોય છે તેને સ્નાતક કહે છે. અથવા જેનામાં સર્વજ્ઞતા પ્રકટ થઈ ચુકી છે તે સ્નાતક છે તે સ્નાતકના નીચે પ્રમાણે બે ભેદ કહ્યા છે-(૧) સયોગ કેવલી, (૨) અયોગ કેવલી

આ સમસ્ત કથનનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે—અહીં નિર્ગ્રંથના તરતમ રૂપે પ્રકટ થનારા ભાવોની અપેક્ષાએ પાંચ પ્રકાર કહ્યા છે મૂળગુણો અને ઉત્તરગુણોમાં પરિપૂર્ણતા પ્રાપ્ત ન કરવા છતા પણ વીતરાગ પ્રણીત આગમમાં સદા સ્થિર રહેનાર સાધુને અહીં પુલાક નિર્ગ્રંથ કહ્યો છે પુલાક એટલે પરાળ. પરાળ જેમ સારભાગ રહિત હોય છે, એ જ પ્રમાણે આ પુલાક નિર્ગ્રંથ પણ સારરહિત હોય છે, કારણ કે તેઓ ઉત્તરગુણોનું સંપૂર્ણ રીતે પાલન કરતા નથી એટલુ જ નહિ પણ મૂળગુણોમાં પણ પૂર્ણતા પ્રાપ્ત કરતા નથી જેઓ વ્રતોનું સંપૂર્ણત પાલન કરે છે, પરન્તુ શરીર અને ઉપકરણોને સંસ્કારિત કરતા રહે છે, ઋદ્ધિ અને યશની અભિલાષા સેવે છે, પરિવારથી વીંટળાયેલા રહે છે, અને મોહજન્ય દોષથી યુક્ત હોય છે, એવા સાધુઓને

'पुलए पंचविहे' इत्यादिना।

पुलाकः=आसेवनापुलाकलब्धिपुलाकभेदेन द्विविधः प्रोक्तः तत्र- आसेवनापुलाकः - ज्ञानपुलाकादिभेदेन पञ्चविधः । तत्र - यस्खलित मिलितादिभिराचारैर्ज्ञानमाश्रित्यात्मानमसारं करोति स ज्ञानपुलाकः १।

होते हैं-प्रतिसेवनाकुशील औरकषाय कुशील जिनको परिग्रहसे आसक्ति नहीं है जो मूलगुणों और उत्तरगुणोंको पालते हैं तो भी कदाचित् उत्तरगुणोंकी विराधना कर लेते हैं, वे प्रतिसेवनाकुशील हैं जो अन्य कषायों पर विजय पाकर भी संज्वलन कषायके आधीन हैं वे कषाय कुशील निर्ग्रन्थ हैं। जिन्होंने रागद्वेषका अभाव कर दिया है, और अन्तर्मुहूर्त्तमें जो केवलज्ञानको प्राप्त करते हैं वे निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थ हैं। सर्वज्ञता प्राप्त जो निर्ग्रन्थ हैं वे स्नातक हैं।

इस प्रकार निर्ग्रन्थके भेदोंको कहकर अब सूत्रकार उनमेंसे एक एकके पांच २ भेदोंको कहते हैं-"पुलाए पंचविहे" इत्यादि-पुलाक आसेवना पुलाक एवं लब्धिपुलाकके भेदसे दो प्रकारका कहा गया है-इनमें जो आसेवनापुलाक है, वह ज्ञानपुलाक आदिके भेदसे पांच प्रकारका है, जो स्खलना मिलित आदि आचारोंसे ज्ञानको आश्रित करके आत्माको असार करता है, वह ज्ञानपुलक है १ कुदृष्टिके संस्तव

બકુશ કહે છે. કુશીલ નિર્ગ્રંથના બે પ્રકાર કહ્યા છે--(૧) પ્રતિસેવનાકુશીલ અને (૨) કષાયકુશીલ.

જેમને પરિગ્રહ પ્રત્યે આસક્તિ નથી, જેઓ મૂળગુણો અને ઉત્તરગુણોનું પાલન કરે છે, છતાં પણ જેઓ ક્યારેક ઉત્તરગુણોની વિરાધના કરી નાખે છે, એવા સાધુઓને પ્રતિસેવનાકુશીલ કહે છે જે સાધુઓ અન્ય કષાયો પર વિજય પ્રાપ્ત કરવા છતાં સંજવલન કષાયને આધીન રહે છે, તે સાધુઓને કષાય કુશીલ કહે છે. જેમણે રાગદ્વેષનો અભાવ કરી નાખ્યો છે અને અન્તર્મુહૂર્તમાં જેઓ કેવળજ્ઞાન પ્રાપ્ત કરે છે, તેમને નિર્ગ્રંથ કહે છે. જેમણે સર્વજ્ઞતા પ્રાપ્ત કરી છે એવા નિર્ગ્રંથને સ્નાતક કહે છે.

નિર્ગ્રંથના ભેદોનું નિરૂપણ કરીને હવે સૂત્રકાર તે પ્રત્યેક ભેદના જે પાંચ પાંચ ઉપભેદો પડે છે તેનું કથન કરે છે. "પુલાએ પંચવિહે" ઇત્યાદિ પુલાકના આસેવનાપુલાક અને લબ્ધિપુલાક નામના બે ભેદ કહ્યા છે. તેમાંથી જે આસેવનપુલાક છે તેમાંથી જ્ઞાનપુલાક આદિ પાંચ ભેદ કહ્યા છે. જે સ્ખલનામિલિત આદિ આચારો વડે જ્ઞાનને આશ્રિત કરીને આત્માને અસાર કરે છે, તે સાધુને જ્ઞાનપુલાક કહે છે. (૨) કુદૃષ્ટિના સંસ્તવ આદિ વડે જે

तथा–कुदृष्टि संस्तवादिना यो दर्शनं निस्सारं करोति स दर्शनपुलाकः २। तथा–मूलोत्तरगुणान् यः प्रतिसेवते स चरणपुलाकः ३। यः साधूनां यल्लिङ्गं, ततोऽधिकलिङ्गं गृह्णाति स लिङ्गपुलाकः ४। यस्तु किंचित् प्रमाद्यति मनसा वा अकल्प्यं गृह्णाति स यथासूक्ष्मपुलाको नाम पुलाकस्य पञ्चमो भेदः ५। लब्धिपुलाकश्च एकविध एवेति स नात्र विवक्षित इति। तथा–शरीरवकुशोपकरणवकुशभेदद्वयन्विशिष्टो वकुशोऽपि आभोगवकुशादिभेदेन पञ्चविधः। तत्र–यः शरीरविभूषामुपकरणविभूषां च चिन्तनपुरस्सरं करोति स आभोगवकुशः १। यः सहसाकरोति सः अनाभोगवकुशः २। यः प्रच्छन्नतया करोति स संवृतवकुशः ३। यः प्रकटतया करोति सः असवृत वकुशः ४। संट

आदिसे जो दर्शनको निस्सार करता है, वह दर्शन पुलाक है २ मूलगुणों एवं उत्तर गुणोंकी जो प्रतिसेवना करता है, वह चरणपुलाक है ३ जो साधुओंका लिङ्ग है उससे अधिक लिङ्गको जो ग्रहण करता है, वह लिङ्ग पुलाक है, ४ जो कुछ २ प्रमाद पतित हो जाता है, अथवा मनसे अकल्प्यको ग्रहण करताहै, वह यथासूक्ष्म पुलाक है। यह पुलाकका पांचवां भेद है। लब्धिपुलाक एक प्रकारकाही होता है, अतः उसकी यहां विवक्षा नहीं हुई है। शरीर बकुश एवं उपकरण बकुशके भेदसे दो भेदवाला हुआ बकुश भी आभोगबकुश आदिके भेदसे पांच प्रकारका है, इनमें जो विचारपूर्वक शरीरकी विभूषा एवं उपकरणकी विभूषाको करता है, वह आभोगबकुश है १ और सहसा विना विचारेही शरीरकी विभूषा एवं उपकरणकी विभूषाको करता है, वह अनाभोग बकुश है २। तथा जो गुप्त रूपसे शरीरादिकोंकी विभूषा

દર્શનને નિસ્સાર કરે છે, તેને દર્શનપુલાક કહે છે. (૩) મૂલગુણો અને ઉત્તર ગુણોની જે પ્રતિસેવના કરે છે તેને ચરણપુલાક કહે છે (૨) રજોહરણ, મુહપત્તિ આદિ રૂપ સાધુઓના જે લિંગ છે, તેના કરતાં અધિક લિંગને ધારણ કરનાર સાધુને લિંગપુલાક કહે છે. (૫) જે સાધુ થોડા થોડા પ્રમાદી બની ગયો હોય છે તેને અથવા જે મનથી અકલ્પ્યને ગ્રહણ કરે છે તેને યથાસૂક્ષ્મ પુલાક કહે છે. લબ્ધિપુલાક એક જ પ્રકારનો હોય છે તેથી અહીં તેનું વિવેચન કર્યું નથી

હવે સૂત્રકાર બકુશના ભેદોનું નિરૂપણ કરે છે. બકુશના મુખ્ય બે ભેદ કહ્યા છે—(૧) શરીર બકુશ અને (૨) ઉપકરણ બકુશ બકુશના નીચે પ્રમાણે પાચ ભેદ પણ પડે છે—(૧) આભોગ બકુશ–જે સાધુ વિચારપૂર્વક શરીર અને ઉપકરણોની વિભૂષા કરે છે તેને આભોગ બકુશ કહે છે. (૨) વિના વિચારે જ સહસા શરીર અને ઉપકરણોની વિભૂષા કરનાર સાધુને અનાભોગ બકુશ કહે

तत्वमसंवृतत्वं च मूलोत्तरगुणाश्रितत्वं बोध्यम् । तथा यः किंचित् प्रमाद्यति नेत्रमलाद्यपनयनं वा करोति स यथा सूक्ष्मबकुशो नाम पञ्चमबकुशभेदः ५। तथा—प्रतिसेवनाकुशीलकषायकुशीलभेदद्वयविशिष्टः कुशीलोऽपि ज्ञानकुशीलदर्शन कुशीलादिभेदेन पञ्चविधः । तत्र—यो ज्ञानमुपजीवन् पिण्डविशुद्ध्यादि स्खलनादि पूर्वकं पिण्डादिकं प्रतिसेवमानो जिनाज्ञाम् उल्लङ्घयति स ज्ञानकुशीलः १। एवं दर्शनचारित्रं लिङ्गं च उपजीवन् दर्शनकुशीलश्चारित्रकुशीलो ३। लिङ्गकुशीलश्च बोध्यः । तथा—' अयं तपश्चरतीत्येवं जनैः प्रशंसितो यो हृष्यति स यथासूक्ष्म-

---

करताहै, वह संवृत बकुशहै ३। एवं जो प्रकट रूपमें शरीरादिकोंकी विभूषा करताहै, वह असंवृत्त बकुशहै ४। संवृतत्व और असंवृतत्व मूल गुण और उत्तर गुणोंके आश्रित जानना चाहिये । तथा जो कुछ प्रमाद पतित होता है, अथवा नेत्रके मैल आदिका अपनयन करता है, वह यथा सूक्ष्मबकुश नामका पांचवां भेद है, प्रतिसेवना कुशील और कषाय कुशील इन दोनों भेदोंसे विशिष्ट जो कुशील है, वह ज्ञानकुशील दर्शनकुशील आदिके भेदसे पांच प्रकारका है। इनमें जो ज्ञानसे युक्त होता भी पिण्ड विशुद्धि आदिमें स्खलना आदि पूर्वक पिण्डादिकका प्रतिसेवन करता है, वह जिनेन्द्रकी आज्ञाका उल्लङ्घन करता है, ऐसा यह ज्ञानकुशील है १ । इसी प्रकारसे दर्शन और चारित्र एवं लिङ्गको धारण करता हुआ अर्थात् उन्हें अपने निर्वाह करनेका साधन मानता है, ऐसा वह दर्शनकुशील और चारित्रकुशील लिङ्ग कुशील कहा गया है । तथा यह तपस्या करता है, ऐसी जनोंद्वारा कृत प्रशं-

---

છે (૩) જે ગુપ્ત રૂપે શરીરાદિકોની વિભૂષા કરે છે તેને સંવૃત બકુશ કહે છે. (૪) જે પ્રકટ રીતે શરીરાદિકોની વિભૂષા કરે છે તેને અસંવૃત બકુશ કહે છે. સંવૃતત્વ અને અસંવૃતત્વ મૂલગુણ અને ઉત્તરગુણોને આશ્રિત સમજવું. (૫) જે સાધુ થોડો થોડો પ્રમાદી થઈ ગયો હોય છે તેને અથવા જે સાધુ નેત્ર આદિના મેલનું અપનયન કરે છે તેને યથાસૂક્ષ્મબકુશ કહે છે.

કુશીલના પ્રતિસેવનાકુશીલ અને કષાયકુશીલ નામના બે ભેદોનું પ્રતિપાદન તો આગળ કરવામાં આવ્યું છે તેના જ્ઞાનકુશીલ, દર્શનકુશીલ આદિ પાંચ ભેદ પડે છે. જે સાધુ જ્ઞાનસંપન્ન હોવા છતાં પણ પિંડવિશુદ્ધિ આદિમાં સ્ખલનાપૂર્વક પિંડાદિકનું પ્રતિસેવન કરે છે, તે જિનાજ્ઞાનું ઉલ્લંઘન કરે છે. તેથી એવા સાધુને જ્ઞાનકુશીલ કહે છે. એ જ પ્રમાણે દર્શનકુશીલ, ચારિત્રકુશીલ અને લિંગકુશીલ વિષે પણ સમજવું. લિંગને (સાધુવેષને) ધારણ

कुशील ५। इति। तथा कषायकुशीलस्य पञ्चविधत्वमेवं बोध्यम्। तथाहि–यः क्रोधादिना विद्यादिज्ञानं प्रयुङ्क्ते स ज्ञानकुशीलः १। क्रोधादिकषायेण यो निश्शङ्कितत्वादिकं दर्शनाचारं विराधयति स दर्शनकुशीलः २। तथा यः क्रोधादिवशात् कमपि शपति स चारित्रकुशीलः ३। यश्च क्रोधादिना लिङ्गान्तरं गृह्णाति स लिङ्गकुशीलः ४। तथा यो मनसा क्रोधादिकषायान् करोति स यथासूक्ष्मकुशीलो नाम पञ्चमः कुशीलभेदः ५। तथा–क्षीणकषायोपशान्तमोहभेदद्वयविशिष्टो निर्ग्रन्थः प्रथमसमयनिर्ग्रन्थादिभेदेन पञ्चविधः। तत्र यः अन्तर्मुहूर्तप्रमाणाया निर्ग्रन्थाद्धायाः प्रथमसमये तिष्ठति स प्रथमसमयनिर्ग्रन्थः १। प्रथम समयातिरिक्तसमयेषु

सासे जो हर्षित होता है, वह यथासूक्ष्मकुशील है १। तथा कषाय कुशील पांच प्रकारका इस तरहसे है जो क्रोध आदिके वश होकर विद्यादिज्ञानको प्रयुक्त करता है वह ज्ञानकुशील है १ क्रोधादिक कषायसे जो निःशंकित आदि दर्शनाचारकी विराधना करता है, वह दर्शनकुशील है २। जो क्रोधादिकके वशसे किसीको शाप देता है; वह चारित्रकुशील है ३। क्रोधादिकके वश से जो अन्य लिङ्गको धारण करता है वह लिङ्गकुशील है ४। तथा जो अपने मनसे क्रोधादिक कषायोंको करता है वह यथासूक्ष्म कुशील है ५। क्षीणकषाय और उपशान्तमोह इन दो भेदोंवाला निर्ग्रन्थ प्रथम समयके निर्ग्रन्थादिकके भेदसे पांच प्रकारका है–इनमें जो अन्तर्मुहूर्त प्रमाणवाले निर्ग्रन्थकालके प्रथम समयमें रहता है, वह प्रथमसमय निर्ग्रन्थ है १ जो अन्तर्मुहूर्त प्रमाणवाले नि-

---

કરવા છતા તેને પેતાના નિર્વાહનુ સાધન માનતા સાધુને લિંગકુશીલ કહે છે. પોતાની તપસ્યાની લોકો દ્વારા પ્રશંસા થતી જોઇને હર્ષ પામતા સાધુને સૂક્ષ્મકુશીલ કહે છે કષાય કુશીલના પણ એવા જ પાંચ પ્રકાર કહ્યા છે. (૧) જે ક્રોધાદિથી યુક્ત થઇને વિદ્યાદિજ્ઞાનને પ્રયુક્ત કરે છે તેને જ્ઞાનકુશીલ કહે છે. (૨) ક્રોધાદિક કષાયને અધીન થઇને જે નિઃશંકિત આદિ દર્શનાચારની વિરાધના કરે છે તેને દર્શનકુશીલ કહે છે (૩) જે ક્રોધાદિકને આધીન થઇને કોઇને શાપ આપે છે તેને ચારિત્રકુશીલ કહે છે (૪) ક્રોધાદિકને આધીન થઇને જે અન્યલિંગને ધારણ કરે છે તેને લિંગકુશીલ કહે છે. (૫) જે પોતાના મનમાં જ ક્રોધાદિક કષાયો કરે છે તેને યથાસૂક્ષ્મકુશીલ કહે છે

ક્ષીણકષાય અને ઉપશાન્ત મોહ, આ બે ભેદોવાળા નિર્ગ્રંથોના નીચે પ્રમાણે પાચ પ્રકાર પણ પડે છે—(૧) પ્રથમ સમય નિર્ગ્રંથ–જે અન્તમુહૂર્ત પ્રમાણુવાળા નિર્ગ્રંથકાળના પ્રથમ સમયમા રહે છે, તેને પ્રથમ સમય નિર્ગ્રંથ કહે છે. (૨) અપ્રથમસમય નિર્ગ્રંથ–જે અન્તર્મુહૂર્ત પ્રમાણુવાળા નિર્ગ્રંથ

यस्तिष्ठति सोऽप्रथमसमयनिर्ग्रन्थः २। तथा-योऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणाया निर्ग्रन्थाद्धायाश्चरमसमये तिष्ठति स चरमसमयनिर्ग्रन्थः ३। तथा-यश्चरमसमयादन्यस्मिन् यावच्छैलेश्यवस्थाचरमसमये तिष्ठति सोऽचरमसमयनिर्ग्रन्थः ४। यस्तु निर्ग्रन्थाद्धायाः अन्तर्मुहूर्तप्रमाणायाः प्रथमसमयादारभ्य शैलेश्यवस्थायाश्चरमसमयपर्यन्तेषु सर्वेषु समयेषु तिष्ठतीति स यथासूक्ष्मनिर्ग्रन्थ इति ५। तथा-सयोगकेवल्ययोगकेवलिभेदद्वयविशिष्टः स्नातकः अच्छव्यादिभेदेन पञ्चविधः। तत्र-काययोगनिरोधेन यस्य छविः=शरीरं नास्ति सोऽच्छविः। अत्रेदं बोध्यम्-अयोगकेवलिनां काययोगनिरोधो भवत्येवेति तेषामच्छवित्वं सुस्पष्टम्। सयोगकेवलिनोऽपि यदा

ग्रन्थकालके प्रथम समयसे अतिरिक्त समयोंमें रहता है, वह अप्रथम समय निर्ग्रन्थ है २। जो अन्तर्मुहूर्त प्रमाणवाले निर्ग्रन्थकालके चरम समयमें रहता है, वह चरम समय निर्ग्रन्थ है ३। जो चरम समयसे अन्य समयमें यावत् शैलेशी अवस्थाके चरम समयमें रहता है, वह अचरम समय निर्ग्रन्थ है ४। जो अन्तर्मुहूर्त प्रमाणवाले निर्ग्रन्थकालके प्रथम समयसे लेकर शैलेशी अवस्थाके चरम समय पर्यन्त सब समयोंमें रहता है, वह यथासूक्ष्म निर्ग्रन्थ है ५। सयोग केवली और अयोग केवली रूप दो भेदोंसे विशिष्ट जो निर्ग्रन्थ है, वह अच्छवि आदिके भेदसे पांच प्रकारका है, इनमें काययोगके निरोधसे जिसको शरीर नहीं होता है, वह अच्छवि है, यहां इस प्रकार समझना चाहिये-अयोग केवलियोंके काययोगका तो निरोध होताहै, इसलिये उनमें अ-

કાળના પ્રથમ સમય સિવાયેના સમયમાં રહે છે તેને અપ્રથમસમય નિર્ગ્રંથ કહે છે. (૩) ચરમસમય નિર્ગ્રંથ-જે અન્તર્મુહૂર્ત પ્રમાણવાળા નિર્ગ્રંથકાળના ચરમ (અન્તિમ) સમયમાં રહે છે, તેને ચરમસમય નિર્ગ્રંથ કહે છે. (૪) અચરમ સમય નિર્ગ્રંથ-જે ચરમ સમય કરતાં અન્ય સમયમાં શૈલેશી અવસ્થામાં ચરમ સમય પર્યંતના સમયમાં રહે છે, તેને અચરમસમય નિર્ગ્રંથ કહે છે. (૫) યથાસૂક્ષ્મ નિર્ગ્રંથ-જે અન્તર્મુહૂર્ત પ્રમાણવાળા નિર્ગ્રંથકાળના પ્રથમ સમયથી લઈને શૈલેશી અવસ્થામાં ચરમ સમય પર્યંતના બધા સમયોમાં રહે છે, તેને યથાસૂક્ષ્મ નિર્ગ્રંથ કહે છે

સયોગ કેવલી અને અયોગકેવલી રૂપ બે ભેદવાળા જે સ્નાતક નિર્ગ્રંથો છે તેમના અચ્છવી આદિ પાંચ પ્રકાર કહ્યા છે.

કાયયોગના નિરોધને કારણે જેમનો શરીરનો-કાયાના વ્યાપારનો અભાવ હોય છે તે નિર્ગ્રંથને અચ્છવિ કહે છે. અહીં એવું સમજવું જોઈએ કે અયોગ કેવલીના કાયયોગનો તો નિરોધ થઈ ગયેલો જ હોય છે, તેથી તેમનામાં

सूक्ष्मकाययोगेन बादरकाययोगं निरुन्धन्ति तदा तेषामपि अच्छवित्वं भवति। विरोधस्त्वेवं बोध्यः—भगवान् सयोगकेवली भवोपग्राहि कर्मक्षपणाय परमनिर्मलमत्यन्ताप्रकम्पं परमनिर्जराकारणं ध्यानं प्रतिपत्तुकामो योगनिरोधार्थमुपक्रमते। तत्र प्रथमं बादरकाययोगेन बादरमनोयोगं निरुणद्धि, ततो बादरवाग्योगम्। ततः सूक्ष्मकाययोगेन बादरकाययोगं निरुणद्धि ततः सूक्ष्मकाययोगेनैव सूक्ष्ममनोयोगं सूक्ष्मवाग्योगं च। सूक्ष्मकाययोगं तु सूक्ष्मक्रियमनिवर्त्ति शुक्लध्यानं ध्यायन् स्वावष्टम्भेनैव निरुणद्धि, अन्यस्य अवष्टम्भनीयस्य योगस्य तस्मिन् काले अभावात्।

च्छविता तो सुस्पष्टही है, संयोग केवलीके भी जब सूक्ष्म कायके योगसे बादरकाय योगका निरोध करते हैं, तब उनके भी अच्छविता होती है, निरोध इस प्रकारसे होता है—भगवान् सयोग केवली भवोपग्राहि कर्मके क्षपणके लिये परम निर्मल अत्यन्त अप्रकम्प एवं परम निर्जराके कारणरूप ध्यान करनेके अभिलाषी होते हैं, तब वे योग निरोधके लिये उपक्रम करते हैं, उसमें वे प्रथम काययोगसे बादर मनोयोगका निरोध करते हैं, बादमें बादर वाग्योगका निरोध करते हैं। इसके बाद सूक्ष्म काययोगसे बादर काययोगका निरोध करते हैं, बादमें वे सूक्ष्म काययोगसेही सूक्ष्ममनोयोगका और सूक्ष्म वाग्योगका निरोध करते हैं। सूक्ष्म क्रिया अनिवृत्ति शुक्लध्यानको ध्याते हुए वे केवली अपने अवष्टंभसेही सूक्ष्म कायका निरोध करते हैं। क्योंकि उस समय अन्य अवष्टंभनीय योगका अभाव होता है, उस ध्यानके सामर्थ्यसे वे

અચ્છવિતા સુસ્પષ્ટ જ છે. સંયોગ કેવલી પણ જ્યારે સૂક્ષ્મ કાયના યોગથી બાદર કાયયોગનો નિરોધ કરે છે, ત્યારે તેમનામાં પણ અચ્છવિતા જ હોય છે. નિરોધ આ પ્રમાણે થાય છે-ભગવાન સયોગ કેવલી ભવોપગ્રાહિ કર્મના ક્ષપણને માટે પરમ નિર્મળ અત્યન્ત અપ્રકમ્પ પરમનિર્જરાના કારણરૂપ ધ્યાન ધરવાની અભિલાષાવાળા થાય છે. ત્યારે તેઓ યોગનિરોધને માટે ઉપક્રમ કરે છે. ત્યારે તેઓ પહેલા કાયયોગ દ્વારા બાદર મનોયોગનો નિરોધ કરે છે, ત્યાર બાદ બાદર વાગ્યોગનો નિરોધ કરે છે ત્યાર બાદ સૂક્ષ્મ કાયયોગ વડે બાદર કાયયોગનો નિરોધ કરે છે ત્યારબાદ તેઓ સૂક્ષ્મકાયયોગ વડે જ સૂક્ષ્મ મનોયોગનો અને સૂક્ષ્મ વાગ્યોગનો નિરોધ કરે છે સૂક્ષ્મ ક્રિયા નિવૃત્તિ શુકલ ધ્યાન ધરતા ધરતા તે કેવલી પોતાના અવષ્ટંભથી જ સૂક્ષ્મ કાયનો નિરોધ કરે છે, કારણ કે તે સમયે અન્ય અવષ્ટંભનીય યોગનો અભાવ

तद्ध्यानसामर्थ्यात् स वदनोदरादिविवरपूरणेन संकुचितदेहत्रिभागवर्त्ति प्रदेशो भवति। तदनन्तरं समुच्छिन्नक्रियमप्रतिपाति शुक्लध्यानं ध्यायन् मध्यमप्रतिपत्त्या ह्रस्वपञ्चाक्षरोच्चारणमात्रकालं शैलेशीकरणं प्रविशति इति। बादरकाययोगनिरोधानन्तरं यावत् सूक्ष्मकाययोगं न निरुणद्धि तावत् सयोगिकेवली भवति। अस्यामवस्थायां बादरकाययोगाभावेन अच्छवित्वम्। सूक्ष्मकाययोगनिरोधानन्तरं तु अयोगिकेवली भवति। तत्र तु अच्छवित्वं सुस्थितमेवेति तत्त्वमिति। इति स्नातकस्य प्रथमो भेदः। अतिचारेभ्यो निर्गतत्वादशबलो द्वितीयः। अकर्मांशः–नास्ति कर्मणः अंशः=लेशोऽपि क्षपितकर्मत्वाद्यस्य स इति तृतीयः। तथा–संशुद्धज्ञानदर्शनधरः–संशुद्धं–ज्ञानदर्शनान्तरसंपर्कशून्यत्वाद् यद् ज्ञानदर्शनं तस्य धरः= धारकः, अर्हन्–नरामरनमस्काराऽर्हत्वात्, जिनो जितकषायत्वात् केवली–परिपूर्णरत्नत्रयत्वादिति चतुर्थः। अपरिस्रावी–सकलयोगनिरोधेन निष्क्रियत्वादिति पञ्चमः। इति॥ सू० ५॥

वदन उदर आदि विवरके पूरण होनेसे संकुचितदेह त्रिभागवर्ती प्रदेशवाले हो जाते हैं। इसके बाद समुच्छिन्न क्रिया अप्रतिपाती शुक्लध्यानको ध्याते हुए वे मध्यम प्रतिपत्तिसे ह्रस्व पंचाक्षरके उच्चारण मात्र कालतक शैलेशीकरणमें प्रवेश करते हैं। बादर काययोगके निरोधके बाद जब तक सूक्ष्म काययोगका निरोध नहीं कर लेते हैं, तब तक वे सयोग केवली होते हैं, इस अवस्थामें बादर काययोगके अभावसे उनमें अच्छविता सुस्थितही हो जाती है, इस प्रकारका यह स्नातकका प्रथम भेद है, अशबल यह इसका द्वितीय भेद है इस अवस्थामें वे अतिचारोंसे रहित हो जाते हैं। अकर्मांश यह तृतीय भेद है इस अवस्थामें क्षपित कर्मवाले हो जानेसे उनके कर्मोंका अंश तक भी नहीं रहता है। संशुद्ध ज्ञान दर्शनधर यह चतुर्थभेद है, इस अवस्थामें

હોય છે. તે ધ્યાનના સામર્થ્યથી તેઓ વદન, ઉદર આદિ વિવર પૂરણ થવાથી સંકુચિત દેહવાળા–ત્રિભાગવર્તી પ્રદેશવાળા થઈ જાય છે. ત્યાર બાદ સમુચ્છિન્ન ક્રિયા અપ્રતિપાતી શુક્લધ્યાનને ધરતા થકાં તેઓ મધ્યમ પ્રતિપત્તિ વડે પાંચ હ્રસ્વાક્ષરોના ઉચ્ચારણ પ્રમાણકાળ સુધી જ શૈલેશીકરણમાં પ્રવેશ કરે છે. બાદર કાયયોગનો નિરોધ કર્યા બાદ જ્યા સુધી તેઓ સૂક્ષ્મ કાયયોગનો નિરોધ કરી લેતા નથી ત્યાં સુધી તેઓ સયોગ કેવલી જ ગણાય છે. આ અવસ્થામાં તેઓ અતિચારોથી રહિત થઈ જાય છે (૩) અકર્માંશ નામનો ત્રીજો ભેદ છે. આ અવસ્થામાં તેમના કર્મોનો ક્ષય થઈ જવાથી તેમના કર્મોના અંશ પણ

निर्ग्रन्थप्रस्तावात् सम्प्रति तेषामेव उपधिविशेषान् प्रदर्शयति—

मूलम्—कप्पइ णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा पंच वत्थाइं धरित्तए वा परिहरित्तए वा तं जहा—जंगिए १ भंगिए २ साणए ३ पोत्तिए ४ तिरीडपट्टए ५ णामं पंचमए। कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा पंच रयहरणाइं धरित्तए वा परिहरित्तए वा, तं जहा--उण्णिए १ उट्टिए २ साणए ३ पच्चापिच्चियए ४ मुंजापिच्चिए ५ नामं पंचमए ॥ सू० ६ ॥

छाया—कल्पते निर्ग्रन्थानां वा निर्ग्रन्थीनां वा पञ्चवस्त्राणि धर्तुं वा परिहर्तुं वा, तद्यथा—जाङ्गमिकम् १ भाङ्गिकम् २ शाणकम् ३ पौतिकं ४ तिरीटपट्टकं ५ नाम पञ्चमकम्। कल्पते निर्ग्रन्थानां वा निर्ग्रन्थीनां वा पञ्च रजोहरणानि धर्तुं वा परिहर्तुं वा, तद्यथा—और्णिकम् १, औष्ट्रिकम् २, शाणकम् ३ वल्वजकुट्टितत्वङ्मयं ४ मुञ्जकुट्टितत्वङ्मयं ५ नाम पञ्चमकम् ॥ सू० ६ ॥

उनका ज्ञानान्तर और दर्शनान्तरके संपर्कसे ज्ञानदर्शन शून्य हो जाता है, इसलिये ऐसे ज्ञान और दर्शनके वे धारी हो जाते हैं। "अर्हन् जिन: केवली अपरिस्रावी ५" इस प्रकार नर और अमरसे नमस्कार करने योग्य हो जानेसे वे अर्हन् हो जाते हैं जित कषायवाले होनेसे वे जिन हो जाते हैं, और परिपूर्ण रत्नत्रयवाले हो जानेसे केवली हो जाते हैं ऐसा यह चतुर्थ भेद है, और अन्तमें सकल योगोंके निरोधसे वे निष्क्रिय बन जानेके कारण अपरिस्रावी हो जातेहैं ऐसा यह पांचवांभेदहै ॥सू०५॥

બાકી રહેતા નથી (૪) સંશુદ્ધ જ્ઞાન દર્શનધર નામનો ચોથો ભેદ છે આ અવસ્થામાં જ્ઞાનાન્તર અને દર્શનાન્તરના સંપર્કથી તેમનું જ્ઞાન અને દર્શન વિહીન થઈ જાય છે, તે કારણે તેઓ જ્ઞાન અને દર્શનને ધારણ કરનારા બની જાય છે "अर्हन् जिन. केवली अपरिस्रावि" આ પ્રકારે મનુષ્યો અને દેવો દ્વારા વન્દનીય થઈ જવાથી તેઓ અર્હંત બની જાય છે. કષાયોને જીતનારા હોવાને કારણે તેઓ જિન કહેવાય છે અને પરિપૂર્ણ રત્નત્રયવાળા થઈ જવાને લીધે તેઓ કેવલી બની જાય છે, એવો આ ચોથો ભેદ છે અન્તે સકળ યોગોનો નિરોધ કરીને તેઓ નિષ્ક્રિય બની જવાને કારણે અપરિસ્રાવી

टीका—' कप्पइ ' इत्यादि—

निर्ग्रन्थानां निर्ग्रन्थीनां वा पञ्च=पञ्चविधानि वस्त्राणि धर्तुं=ग्रहीतुं वा परिहर्त्तुम्=आसेवितुं कल्पते । तान्येव वस्त्राण्याह–तद्यथा–जाङ्गमिकम्–जङ्गमाः= त्रसा मेषादयस्तल्लोमनिष्पन्न कम्बलादिकम् । भाङ्गिकम्–भङ्गा=अतसी, (अलसी) तत्त्वग्भिर्निष्पन्नम् । शाणकम्=शणसूत्रनिष्पन्नम् । पौतिकम्–पोतं कार्पासं वस्त्रं तदेव । तिरीटपट्टकम्–तिरीटनामक वृक्षविशेषत्वचानिर्मितम् । उक्तं चात्र—

" जंगमजाय जंगियं, तं पुण विगलिंदियं च पंचिंदि ।
एक्केक्कंपि च इत्तो, होइ विभागेण णेगविहं ॥ १ ॥

अब सूत्रकार निर्ग्रन्थके प्रकरणसेही उनकी विशेष उपधिका प्ररूपण करते हैं—'कप्पइ णिग्गंथाण वा' इत्यादि सूत्र ६ ॥

टीकार्थ–निर्ग्रन्थोंको अथवा निर्ग्रन्थनियोंको पांच प्रकारके वस्त्रोंका धारण करना और उनका आसेवन करना कल्प्य कहा गया है। वे पांच प्रकारके वस्त्र येहैं–जाङ्गमिक१ भाङ्गिक२ शाणक३ पौतिक४ और तिरीटपट्टक ५ जो वस्त्र मेषादिक (मेंढादि) जङ्गम जीवोंके रोमसे निष्पन्न होता है, वह जाङ्गमिक है जैसे–कम्बल आदि भङ्ग नाम अतसी अलसीका है, इस अलसीकी छालसे जो वस्त्र निर्मित होता है, वह भाङ्गिक है, शणके सूत्रोंसे जो वस्त्र बनता है, वह शाणक है, पोत नाम कपासका है, इस कपाससे जो वस्त्र निर्मित होता है, वह पौतिक वस्त्र है, और जो वस्त्र तिरीट नामक वृक्ष विशेषकी छालसे निर्मित होता है, वह तिरीटपट्टक

થઈ જાય છે, આ પાંચમો ભેદ સમજવો. ॥ સૂ. ૫ ॥

નિર્ગ્રંથનો અધિકાર ચાલી રહ્યો છે, તેથી હવે સૂત્રકાર તેમની વિશિષ્ટ ઉપધિનું નિરૂપણ કરે છે. " कप्पइ णिग्गंथाण वा " ઇત્યાદિ—

ટીકાર્થ–નિર્ગ્રંથોને અને નિર્ગ્રંથીઓને નીચે બતાવેલા પાંચ પ્રકારના વસ્ત્રો ધારણ કરવા અને તેમનો ઉપયોગ કરવો કલ્પે છે—(૧) જાંગમિક, (૨) ભાંગિક, (૩) શાણુક, (૪) પૌતિક અને (૫) તિરીટ પટ્ટક.

જે વસ્ત્રો ઘેટાં આદિ જંગમ જીવોના વાળમાંથી બને છે, તે વસ્ત્રોને જાંગમિક કહે છે. કમ્બલ આદિને આ પ્રકારનું વસ્ત્ર કહી શકાય છે. અલસીને ભંગ કહે છે. અલસીની છાલમાંથી જે વસ્ત્ર બને છે, તે વસ્ત્રને ભાંગિક કહે છે. શણના રેસામાંથી જે વસ્ત્ર બને છે તેને શાણુક કહે છે. કપાસને પોત કહે છે. તે કપાસમાંથી જે વસ્ત્ર બને છે તેને પૌતિકવસ્ત્ર કહે છે. જે વસ્ત્ર તિરીટ નામના વૃક્ષની છાલમાંથી બને છે તેને તિરીટપટ્ટક કહે છે.

पट्टसुवण्णे मलए, अंसुय चीणंसुए य विगलिंदी ।
उन्नोट्टियमियलोमे, कुतवे किट्टियपंचिंदी ॥ २ ॥
अयसी वंसीमाइय, भंगियं साणयं तु सणवक्को ।
पोत्तं कप्पासमयं, तिरीडरुक्खा तिरीडपट्टो ॥ ३ ॥

छाया—जङ्गमजातं जाङ्गमिकं तत् पुनर्विकलेन्द्रियं च पञ्चेन्द्रियम् ।
एकैकमपि च इतो भवति विभागेन पञ्चविधम् ॥ १ ॥
पट्टः सुवर्णं मलयम् अंशुकं चीनांशुकं च विकलेन्द्रियम् ।
औणम् औष्ट्रिकं मृगलोमकुतुपं किट्टिजं पञ्चेन्द्रियम् ॥ २ ॥
अतसी वंशयादिजं भाङ्गिकं शाणकं तु शणवल्कः ।
पोतं कार्पासमयं तिरीटवृक्षात् तिरीटपट्टः ॥ ३ ॥

अयमर्थः—जङ्गमाज्जातं वस्त्रं जाङ्गमिकं भवति । तत्पुनः विकलेन्द्रियजन्यत्वाद् विकलेन्द्रियं पञ्चेन्द्रिय जन्यत्वाच्च पञ्चेन्द्रियं भवति । इतः=अत्र भेदद्वयमध्ये एकैकमपि विभागेन=विकलेन्द्रियाणां पञ्चेन्द्रियाणां च जीवानां भेदेन अनेकविधं भवति ॥ १ ॥ पट्टवस्त्रं प्रसिद्धम् सुवर्ण=सुवर्णवर्णसूत्रनिर्मितं कृमिज-

---

है । कहा भी है—"जंगमजायं जंगियं" इत्यादि ।

जो वस्त्र जङ्गमसे उत्पन्न होता है, वह जाङ्गमिक है, यह वस्त्र विकलेन्द्रियोंके रोमसे जन्य होनेसे विकलेन्द्रिय होता है, और पञ्चेन्द्रियके रोमसे जन्य होनेसे पञ्चेन्द्रिय होता है, इस तरह इन दो भेदोंके बीचमें एक वस्त्र भी विकलेन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय जीवोंके भेदसे अनेक प्रकारका होताहै ? पट्टवस्त्र१ सुवर्णवस्त्र २ मलयवस्त्र३ अंशुक बारीक वस्त्र ४ और चीनांशुक वस्त्रके भेदसे वस्त्र पांच प्रकारका होता है, यह पांच प्रकारका वस्त्र विकलेन्द्रिय जीवोंके रोमसे उत्पन्न होताहै, इनमें पट्टवस्त्र प्रसिद्धहै । अच्छे वर्णवाले सूत्रसे जो वस्त्र निर्मित होता है, वह सुवर्णवस्त्र है, यह

કહ્યુ પણ છે કે " જંગમજાયં જંગિયં " ઇત્યાદિ—

જે વસ્ત્ર જંગમ જીવોના વાળમાંથી ઉત્પન્ન થાય છે તેને જાંગમિક કહે છે તે વસ્ત્ર વિકલેન્દ્રિયોના રોમમાંથી ઉત્પન્ન થતું હોવાથી વિકલેન્દ્રિય જન્ય પણ હોય છે અને પંચેન્દ્રિયોના રોમમાંથી ઉત્પન્ન થતું હોવાથી પંચેન્દ્રિયજન્ય પણ હોય છે. વિકલેન્દ્રિયજન્ય વસ્ત્ર પણ પાંચ પ્રકારનું હોય છે—(૧) પટ્ટવસ્ત્ર (૨) સુવર્ણ વસ્ત્ર, (૩) મલય વસ્ત્ર, (૪) અંશુકવસ્ત્ર (૫) અને ચીનાંશુકવસ્ત્ર આ પાંચે પ્રકારના વસ્ત્ર વિકલેન્દ્રિય જીવોના રોમમાંથી બને છે પટ્ટ વસ્ત્ર જાણીતું હોવાથી અહીં તેનું વર્ણન કર્યું નથી. સુંદર વર્ણ વાળા તંતુમાંથી જે વસ્ત્ર બને છે, તેને સુવર્ણ

मित्यर्थः, मलयं=मलयदेशोद्भवं वस्त्रम्, अंशुकं=श्लक्ष्णवस्त्रं, चीनांशुकम्=कौशेयम्,-चीनदेशोद्भवं वा श्लक्ष्णपट्टमयं वस्त्रम्, एतत् पट्टादि पञ्चभेदभिन्नं वस्त्रं विकलेन्द्रियजम्। तथा-औणिकम्=ऊर्णामयम्, औष्ट्रिकम्=उष्ट्ररोमजम्, मृगलोम्नो जातत्वाद् वस्त्रं मृगलोमजम्। उपलक्षणत्वात् शशरोमजं मूषकरोमजं चापि बोध्यम्। तथा-कुतुपम्-छागरोमजम्, किट्टिमम्=एतेषामेव निकृष्टरोमनिर्मितम् ॥ २ ॥ तथा-अतसीवल्कयादिजं भाङ्गिकं वस्त्रं भवति, शणवल्कलनिष्पन्नं तु शाणकं

वस्त्र कृमिज (रेशमी) होता है, मलयवस्त्र-मलयदेशका बना हुआ होता है, जो वस्त्र चिकना होता है, वह अंशुक कहलाता है, जो वस्त्र चीन देशका बना होता है, अथवा रेशमका बना होता है, वह चीनांशुक कहलाता है, जो वस्त्र ऊंटके रोमोंका बना होता है, वह औष्ट्रिकवस्त्र है, जो वस्त्र ऊर्णाका बना होता है, वह औणिक वस्त्र है, जो वस्त्र मृगके रोमका बना होता है, वह मृगलोम वस्त्र है, उपलक्षणसे "शशरोमज मूषकरोमज" इन वस्त्रोंका भी ग्रहण हुआ है, खरगोशके रोमोंका बना हुआ वस्त्र शशरोमज है, और चूहोंके रोमसे बना वस्त्र मूषकरोमज है, जो वस्त्र बकरेके रोमसे बनता है, वह कुतुप वस्त्र है, तथा इन्हींके निकृष्ट (हलके) रोमोंसे जो वस्त्र बनाया जाता है, वह किट्टिजवस्त्र है, तथा-अलसी आदिकी छालसे जो वस्त्र बनाया जाता है, वह भाङ्गिक वस्त्र है। शणके डोरोंसे जो वस्त्र बनाया जाता है, वह शाणक है,

વસ્ત્ર કહે છે. તે વસ્ત્ર રેશમના કીડાઓની લાળમાંથી બને છે. મલય વસ્ત્ર મલય દેશમાં બને છે જે વસ્ત્ર બહુ જ મુલાયમ હોય છે તેને અંશુક વસ્ત્ર કહે છે જે વસ્ત્ર ચીન દેશમાં બને છે અથવા રેશમમાંથી બને છે તેને ચીનાંશુક કહે છે.

પંચેન્દ્રિયજન્ય વસ્ત્રોના નીચે પ્રમાણે અનેક પ્રકાર પડે છે—જે વસ્ત્ર ઊંટની રુંવાટીમાંથી બને છે તેને ઔષ્ટ્રીક કહે છે. જે વસ્ત્ર ઊનમાંથી બને છે તેને ઔર્ણિક વસ્ત્ર કહે છે જે વસ્ત્ર મૃગની રુંવાટીમાંથી બને છે તેને મૃગલોમ વસ્ત્ર કહે છે. ઉપલક્ષણથી "शशरोमज मूषकरोमज" સસલાની રુંવાટીમાંથી બનેલુ શશરોમજ વસ્ત્ર અને મૂષકોની રુંવાટીમાંથી બનાવેલું મૂષકરોમજ પણ અહીં ગ્રહણ થવું જોઈએ. (૪) 'कुतुपवस्त्र' જે વસ્ત્ર બકરાના વાળમાંથી બને છે, તેને કુતુપવસ્ત્ર કહે છે (૫) 'किट्टिजवस्त्र' તેમની જ નિકૃષ્ટ રુંવાટીમાંથી જે વસ્ત્ર બને છે તેને કિટ્ટિજવસ્ત્ર કહે છે

અળસી આદિની છાલમાંથી જે વસ્ત્ર બને છે, તેને ભાંગિકવસ્ત્ર કહે છે. શણના રેસામાંથી જે વસ્ત્ર વણવામાં આવે છે, તેને શાણકવસ્ત્ર કહે છે. કપાસ

भवति कर्पासनिर्मितं तु पोतमुच्यते, तथा-तिरीटवृक्षत्वचया यद् वस्त्रं निष्पद्यते तत् तिरीटपट्टकमुच्यते ॥ ३ ॥

यद्यपि साधुकल्पनीयं पञ्चविधं प्रोक्तं तथापि उत्सर्गतः साधुभिः कार्पासमौर्णिकं च द्विविधमेव वस्त्रं ग्राह्यम् । तदुक्तम्—

"कप्पासिया उ दोन्नी उन्निय एक्को य परिभोगो" ।

छाया—कार्पासिकस्य तु द्वे और्णिकमेकं च परिभोगः इति ।

तथा — "कप्पासियस्स असईवागयपट्टो य कोसियारो य ।
असई य उण्णियस्स वागयकोसेज्जपट्टो य ॥ १ ॥"

छाया—कार्पासिकस्यासति वाल्वजपट्टश्च कौशिकाकारश्च ।
असति च और्णिके वाल्वजः कौशेयपट्टश्च ॥ १ ॥ इति ।

एतदप्यल्पमूल्यकमेव ग्राह्यं न तु बहुमूल्यकम् । दशमुद्रादिमूल्यकं वस्त्रं बहुमूल्यं बोध्यमिति । तथा-निर्ग्रन्थानां निर्ग्रन्थीनां वा पञ्चविधानि रजोहरणानि धर्तुं परिग्रहीतुं वा कल्पते । पञ्चविधत्वमेवाह-तद्यथा-और्णिकम्-मेषलो-

---

और कपासके डोरोंसे जो वस्त्र बनाया जाता है, वह पोतवस्त्र कहलाता है, तथा तिरीट वृक्षकी छालसे जो वस्त्र निष्पन्न होता है, वह तिरीटपट्टक है ३ । यद्यपि साधुजनोंको कल्पनीय पांच प्रकारका वस्त्र कहा गया है, तब भी उत्सर्गसे साधुजनोंको कार्पास और और्णिक ये दो वस्त्रही ग्रहण करना चाहिये । कहा भी है—

"कप्पासिया उ दोन्नी" इत्यादि ।

कार्पासिक आदि जो वस्त्र साधुजनोंको धारण करने योग्य कहे हैं, वे वस्त्र भी ऐसे धारण करना चाहिये जो अल्पमूल्यके हों बहुमूल्यवाला न हों । दशमुद्रा आदिके मूल्यवाला वस्त्र बहुमूल्य कहा गया है । तथा-निर्ग्रन्थोंको एवं निर्ग्रन्थनियोंको पांच प्रकारके रजोहरण

ના સૂતરમાંથી જે વસ્ત્ર વણવામાં આવે છે, તેને પોતવસ્ત્ર કહે છે. તિરીટવૃક્ષની છાલમાંથી જે વસ્ત્ર બનાવવામાં આવે છે, તેને તિરીટપટ્ટક કહે છે. જો કે સાધુઓને માટે ઉપર્યુક્ત પાંચ પ્રકારના વસ્ત્રને કલ્પ્ય કહ્યાં છે, છતાં સાધુઓએ સુતરાઉ અને ઊનના બનાવેલા વસ્ત્રોજ ગ્રહણ કરવા તે વધારે ઉચિત છે. કહ્યુ પણ છે કે "कप्पासिया उ दोन्नी" ઈત્યાદિ—

સૂતરાઉ આદિ જે વસ્ત્રો સાધુજનોને માટે ધારણ કરવા યોગ્ય કહ્યા છે, તે પણ બહુ મૂલ્યવાન હોવા જોઇએ નહીં, પણ સસ્તા હોવા જોઇએ દશ મુદ્રા આદિ ભાવના કપડાને બહુમૂલ્ય કહ્યા છે.

સાધુ અને સાધ્વીઓને નીચે પ્રમાણે પાંચ પ્રકારના રજોહરણ જ કલ્પે

टीका—'धम्मं चरमाणस्स' इत्यादि—

धर्म=श्रुतचारित्ररूपं चरतः=आसेवमानस्य पञ्च निश्रास्थानानि=आलम्बनस्थानानि धर्मोपग्रहकारणानि प्रज्ञप्तानि, तान्येवाह—तद्यथा—षट्काय—षड्जीवनिकायः, संयमोपकारकत्व शास्त्रे प्रसिद्धं, तथापि किञ्चिद्दर्श्यते—पृथिवीकायस्य संयमोपकारकत्वं स्थाननिषीदन त्वग्वर्त्तनादिना १। अप्कायस्य धावनादिजलपानादिना २। तेजस्कायस्य वायुप्रकोपादौ तप्तेष्टिका तापिकादिना ३। वायुकायस्य श्वासोच्छ्वा-

---

'धम्मं चरमाणस्स पंच निस्सा ठाणा पण्णत्ता' इत्यादि सूत्र ७ ।।

टीकार्थ-श्रुत चारित्ररूप धर्मको आसेवन करनेवाले श्रमण निर्ग्रन्थोंके धर्मोपग्रहमें कारणभूत पांच स्थान कहे गये हैं, जैसे-षड्जीवनिकायरूप षट्काय १ यह संयमका उपकारक होता है, यह बात यद्यपि शास्त्रमें प्रसिद्ध है, तब भी यहां उसे प्रकट किया जाता है-पृथिवीकायिक एक स्थान पर बैठनेमें और पार्श्व आदि परिवर्तन करनेमें सहायक होनेके कारण संयमका उपकारक होता है, अर्थात् पृथिवी पर संयमी जीव एक स्थान पर बैठता है, उस पर अपने पार्श्वभाग आदिको बदलता है, इस तरह पृथिवीकायिक जीव अपने ऊपर स्थान आदि देने रूपसे संयमके पालन करानेमें उपकारक होता है । अप्काय पान आदि क्रिया द्वारा संयमका उपकारक होता है, तेजस्कायिक वायुप्रकोप आदि के होने पर तप्त ईटसे सेंक आदि करानेरूपसे संयमका उपकारक होता

"धम्म चरमाणस्स पच निस्साठाणा पण्णत्ता" ईत्यादि—

टीकार्थ-श्रुतचारित्र રૂપ ધર્મની આરાધના કરનારા શ્રમણ નિર્ગ્રંથોના ધર્મોપગ્રહમાં કારણભૂત નીચે પ્રમાણે પાંચ સ્થાન કહ્યાં છે—

(૧) ષડ્જીવનિકાય રૂપ છકાય—તેઓ સંયમમાં ઉપકારક થઈ પડે છે, તે વાત તો શાસ્ત્રોમાં પ્રસિદ્ધ છે તેઓ કેવી રીતે સંયમમાં ઉપકારક થાય છે તે હવે પ્રકટ કરવામાં આવે છે—પૃથ્વીકાયિક જીવો એક સ્થાન પર બેસવામાં અને પડખું ફેરવવા આદિમાં સહાયક હોવાને લીધે સંયમની આરાધનામાં ઉપકારક થઈ પડે છે એટલે કે સંયમી જીવ એક સ્થાન પર બેસે છે અથવા તે સ્થાન પર પોતાના પાર્શ્વભાગ આદિને બદલે છે તે સ્થાન પૃથ્વીકાય રૂપ જ હોય છે. આ રીતે પૃથ્વીકાયિક જીવ પોતાની ઉપર બેસવા, ઊઠવા આદિ રૂપ સ્થાન આપીને સંયમના પાલનમાં સહાયક બને છે અપ્કાય પાન (પીવાની ક્રિયા) આદિ દ્વારા સંયમના પાલનમાં ઉપકારક બને છે, વાયુનો પ્રકોપ થાય ત્યારે તપ્ત ઇંટ વડે સેક આદિ કરાવવામાં તેજસ્કાયિક ઉપકારક

सादिना ४। वनस्पतिकायस्य पात्रपीठफलकौषधभैषज्यादिना ५। त्रसकायस्य कम्बलरजोहरणादिना मुनेः संयमोपकारकत्वमिति प्रथमनिश्रास्थानम् १। तथा गणः-गच्छोऽपि धर्मोपग्राहकः। तदुक्तम्—

" गुरुपरिवारो गच्छो, तत्थ वसंताण निज्जरा विउला।
विणयाउ तहा सारण, माईहिं न दोस पडिवत्ती ॥ १ ॥
अन्नोन्नावेक्खाए, जोयम्मि तहिं तहिं पयट्टंतो।
नियमेण गच्छवासी, असंगपयसाहगो णेओ ॥ २ ॥ "

छाया—गुरुपरिवारो गच्छः, तत्र वसतां निर्जरा विपुला।
विनयात्तथा सारणादिभिर्न दोषप्रतिपत्तिः ॥ १ ॥
अन्योन्यापेक्षया योगे तत्र तत्र पर्यटन्।
नियमेन गच्छवासी असङ्गपद साधकोज्ञेयः ॥ २ ॥

है। वायुकाय श्वासोच्छ्वास रूपसे सहायक होनेसे संयमका उपकारक होता है, और वनस्पतिकाय पात्र पीठ, फलक आदि रूपसे एवं औषधि आदि रूपसे संयमका उपकारक होता है। तथा त्रसकाय संयमके उपकारक जो कम्बल रजोहरण आदि हैं उनके रूपसे संयमका उपकारक होता है। इस प्रकारका यह प्रथम निश्रास्थान है, तथा गण गच्छ भी धर्मोपग्राहक होता है। कहा भी है—' गुरु परिवारोगच्छो " इत्यादि।

गुरु परिवारका नाम गच्छ है, इस गच्छमें रहनेवाले मुनिजनोंके कर्मोंका विनय एवं सारण आदिसे निर्जरा अधिक होती है, तथा उसमें रहनेवालोंके चारित्रमें अतिचार आदिरूप दोष भी नहीं लगते हैं। अन्य अन्यकी अपेक्षासे उस उस योगमें विहार करता हुआ साधु

થઇ પડે છે. વાયુકાયિક શ્વાસોચ્છ્વાસની ક્રિયામાં સહાયક બનીને સંયમપાલનમાં સહાયભૂત બને છે. વનસ્પતિકાયિક પાત્ર, ફલક, પીઠ આદિ ઉપકરણો રૂપે તથા ઔષધિ આદિ રૂપે સંયમના પાલનમાં ઉપકારક બને છે. ત્રસકાયની રુંવાટીમાંથી સંયમીના વસ્ત્ર, રજોહરણ આદિ બને છે, તેથી તેઓ સંયમમાં ઉપકારક બને છે. આ પ્રકારનું આ પ્રથમ નિશ્રાસ્થાન સમજવું.

(૨) ગણ અથવા ગચ્છ સાધુનું બીજું નિશ્રાસ્થાન છે. કહ્યું પણ છે કે " ગુરુપરિવારો ગચ્છો " ઇત્યાદિ—એક જ ગુરુના પરિવારને ગચ્છ કહે છે. એવા ગચ્છમાં રહેનારા સાધુ દ્વારા વિનય અને સારણ આદિ વડે કર્મોની નિર્જરા અધિક થાય છે. વળી ગચ્છમાં રહેનાર સાધુઓના ચારિત્રમાં અતિચાર આદિ રૂપ દોષો લાગવાનો સંભવ પણ ઓછો રહે છે. અન્ય અન્યની

योगः–कुशलमनोवाक्कायोदीरणलक्षणः । असङ्गः=मोक्षः । इति द्वितीयं निश्रास्थानम् २।

तथा–राजाऽपि धर्मोपग्राहको भवति, दुष्टकृतोपद्रवतः साधूनां रक्षणात् । उक्तं चात्र–

" जिणुत्तं परमं धम्मं, पालिज्जासु कहं जणा ? ।
सिया णो धम्मिओ राया, तेयंसी पुढवीतले ॥ १ ॥ "

छाया–जिनोक्तं परमं धर्मं, पालयेयुः कथं जनाः ।
स्यात् नो धार्मिको राजा, तेजस्वी पृथिवीतले ॥१॥ "

अन्यतीर्थिकैरप्युक्तम्–

" क्षुद्रलोकाकुले लोके, धर्मं कुर्युः कथं हि ते ।
क्षान्ता दान्ता अहन्तारश्चेद्राजा तान्न रक्षति ॥ १ ॥

गच्छवासी संयमी नियमसे असङ्ग पदका साधक होता है, ऐसा जानना चाहिये २ । धार्मिक क्रियाओंमें कुशल मन वचन और कायका वना रहना यह यहां योग शब्दसे लिया गया है । अथवा सर्वदा मन वचन और कायकी शुद्धिका वना रहना यह योग शब्दसे गृहीत हुआ है । असङ्ग शब्दका अर्थ मोक्ष है । इस प्रकारका यह द्वितीय निश्रास्थान है २। तथा राजा भी धर्मोपकारक होता है, क्योंकि वह दुष्टजनकृत उपद्रवसे साधुओंकी रक्षा करता है । कहा भी है–

" जिणुत्तं परमं धम्मं " इत्यादि ।

इस भूमण्डल पर यदि तेजस्वी राजा न हो तो मनुष्य जिनोक्त धर्मकी आराधना कैसे कर सकते हैं । अन्य तीर्थिकोंने भी ऐसा कहा

અપેક્ષાએ તે તે યોગમાં વિચરતો ગચ્છવાસી સંયમી સાધુ નિયમથી જ અસંગ (મોક્ષ) પદનો સાધક બને છે.

ધાર્મિક ક્રિયાઓમાં મન, વચન અને કાયને પ્રવૃત્ત કર્યા જ કરવા તેનું નામ યોગ છે. અથવા મન, વચન અને કાયને સર્વદા શુદ્ધ રાખવા તેનું નામ યોગ છે. ' અસંગ ' એટલે ' મોક્ષ '. આ પ્રકારનું આ બીજું નિશ્રાસ્થાન છે.

(૩) રાજા પણ સાધુઓને ધર્મસાધનામાં ઉપકારક થઈ શકે છે. કારણ કે દુષ્ટ લોકો દ્વારા કરાતા ઉપદ્રવોથી તે સાધુઓની રક્ષા કરે છે.

કહ્યુ પણ છે કે " जिणुत्तं परमं धम्मं " ઇત્યાદિ–

આ પૃથ્વી પર જો રાજા ન હોત તો મનુષ્ય જિનોક્ત ધર્મની આરાધના કેવી રીતે કરી શકત ! અન્ય મતવાદીઓએ પણ એવું જ કહ્યું છે કે

अराजके हि लोकेऽस्मिन्, सर्वतो विद्रुते भयात्।
रक्षार्थमस्य सर्वस्य, राजानमसृजत् प्रभुः ॥ २ ॥ इति। इति तृतीयं निश्रा-स्थानम् ३।

तथा-गृहपतिः=शय्यादायको धर्मोपग्रहकारको भवति, आवासदायकत्वेन तस्यापि तथात्वात्। तदुक्तम्—

"धृतिर्मतिर्गतिस्तेन, दत्ता दत्त सुखं तथा।
गुणिभ्यः साधुमुख्येभ्यो, येन वास समर्पितः ॥ १ ॥" इति।

तथा—"जो देइ उवस्सयं जइवराणत णियमजोगजुत्ताणं।
तेणं दिन्ना वत्थन्नपाणसयणासणविगप्पा ॥ १ ॥"

है-"क्षुद्र लोकाकुले लोके" इत्यादि।

क्षुद्रलोकों से युक्त इस लोकमें अगर शांत दांत दयालु की रक्षा राजा नहीं करे तो धर्म की रक्षा कैसे किया जाय।

इन दोनों श्लोकोंका अर्थ स्पष्ट है। इस प्रकारका यह तृतीय स्थान है, चतुर्थ निश्रास्थान गृहपति है, क्योंकि गृहपति शय्यादायक होता है, अतः वह धर्मोपकारक होता है, इसलिये निवासदायक होनेसे वह भी निश्रास्थान है। कहा भी है-"धृतिर्मतिर्गतिस्तेन" इत्यादि।

जिसने साधुजनोंके लिये वास प्रदान किया है, उसने उनके लिये धृति मति ज्ञान और गति प्रदान की है, तथा सुख दिया है। तथा- "जो देइ उवस्सयं" इत्यादि।

जो तप, नियम, योग युक्त साधुजनोंके लिये उपाश्रय देता है, वह उनके लिये शयन, आसन, वस्त्र, अन्न, पान आदि सब कुछ दिया

"क्षुद्रलोकाकुले लोके" ઇત્યાદિ. આ બન્ને શ્લોકનો અર્થ સ્પષ્ટ છે—

(૪) સાધુઓનું ચોથું નિશ્રાસ્થાન ગૃહપતિ (ગૃહસ્થ) છે. કારણ કે ગૃહપતિ શય્યાદાયક હોય છે આ રીતે સાધુને નિવાસસ્થાન આપનાર હોવાને કારણે તેને પણ નિશ્રસ્થાન રૂપ પ્રકટ કરવામાં આવેલ છે.

કહ્યુ પણ છે કે "धृतिर्मतिर्गतिस्तेन" ઇત્યાદિ—

જેણે સાધુને નિવાસસ્થાન પ્રદાન કર્યું છે, તેણે તેમને ધૃતિ, મતિ, જ્ઞાન અને ગતિ પ્રદાન કરી છે તથા તેમને સુખ આપ્યું છે. તથા "जो देइ उवस्सयं" ઇત્યાદિ—જે તપ, નિયમ અને યોગયુક્ત સાધુઓને ઉપાશ્રય આપે છે, તેણે તેમને શયન, આસન, વસ્ત્ર, અન્ન, પાણિ આદિ સઘળું આપ્યું જ છે, એમ સમજવું. આ પ્રકારનું આ ચોથું નિશ્રાસ્થાન છે.

छाया—यो ददात्युपाश्रयं यतिवरेभ्यस्ततो नियमयोगयुक्तेभ्यः ।

तेन दत्ता वस्त्रान्नपानशयनासनविकल्पाः (प्रकाराः) ॥१॥ इति ।

इति चतुर्थं निश्रास्थानम् ४।

तथा—शरीरमपि धर्मोपग्राहकम् । तथा चोक्तम्—

" शरीरं धर्मसंयुक्तं, रक्षणीयं प्रयत्नतः ।

शरीरात् स्रवते धर्मः, पर्वतात् सलिलं यथा ॥ १ ॥ " इति ।

इति पञ्चमं निश्रास्थानम् ५।

एतत्पञ्चविधनिश्रास्थानोपग्राहिका गाथा एवं निर्दिष्टा—

तथाहि—" धर्मं चरतः साधोर्लोके निश्रापदानि पञ्चैव ।

राजा गृहपतिरपरः, षट्काया गणशरीरे च ॥१॥ इति । "॥सू०७॥

समझना चाहिये इस प्रकारका यह चौथा निश्रास्थान है । तथा पांचवां निश्रास्थान धर्मोपग्राहक शरीर भी है । कहा भी है—

" शरीरं धर्मसंयुक्तं " इत्यादि ।

धर्मसंयुक्त शरीरकी बडी सावधानीके साथ रक्षा करनी चाहिये क्योंकि जिस प्रकार पर्वतसे पानी झरता है, उसी प्रकार शरीरसे धर्मरूप पानी झरता है ।

इन पांच प्रकारके निश्रास्थानोंमें धर्मोपग्राहिकता प्रकट करनेवाली एक यह गाथा भी है—" धर्मं चरतः साधोर्लोके " इत्यादि ।

धर्मका आचरण करनेवाले साधुके निश्रापद पांचही होते हैं । एक षट्काय दूसरा गण तीसरा राजा चौथा गृहपति और पांचवां शरीर है ७॥

---

(૫) સાધુઓનુ પાચમું નિશ્રાસ્થાન ધર્મોપગ્રાહક શરીર છે કહ્યુ પણ છે કે " शरीरं धर्मसंयुक्तं " ઈત્યાદિ—ધર્મસંયુક્ત શરીરની ઘણી સાવધાની પૂર્વક રક્ષા કરવી જોઈએ, કારણ કે જેમ પર્વતપરથી પાણી ઝરે છે એ જ પ્રમાણે શરીરમાંથી ધર્મરૂપી પાણી ઝરે છે.

આ પંચ પ્રકારના સ્થાનોમા ધર્મોપગ્રાહિતા પ્રકટ કરનારી એક ગાથા નીચે પ્રમાણે છે. " धर्मं चरतः साधोर्लोके " ઈત્યાદિ—

ધર્મની આરાધના કરતા સાધુઓને માટે રાજા, ગૃહપતિ, છકાયના જીવો, ગણ અને શરીર એ પાંચ જ નિશ્રાસ્થાનો છે ॥ સૂ. ૭ ॥

साधु सम्बन्धीनि पञ्च निश्रास्थानान्युक्त्वा सम्प्रति निधिरूपाणि लौकिकानि पञ्च निश्रास्थानान्याह—

मूलम्--पंच णिही पण्णत्ता, तं जहा--पुत्तणिही १ मित्तणिही २ सिप्पणिही ३ धणणिही ४ धन्नणिही ५ ॥ सू० ८ ॥

छाया-पञ्च निधयः प्रज्ञप्ताः तद्यथा-पुत्रनिधिः १ मित्रनिधिः २ शिल्पनिधिः ३, धननिधिः ४, धान्यनिधिः ५ ॥ सू० ८ ॥

टीका—' पंच णिही ' इत्यादि—

निधयः पञ्चसंख्यकाः प्रज्ञप्ताः, तानेवाह-तद्यथा-पुत्रनिधिः-नितरां धीयते=स्थाप्यते यत्र स निधिः=विशिष्टरत्न सुवर्णादि द्रव्यभाजनं, निधिरिव निधिः, पुत्रश्चासौ निधिश्चेति । धनोपार्जनेन मातापित्रोः परिपोषकतया पुत्रस्य निधित्वम् । अत एव पुत्रमुखावलोकनं पित्रोरानन्दजनकं भवति । तदुक्तम्—

" जन्मान्तरफलं पुण्यं, तपोदानसमुद्भवम् ।
सन्ततिः शुद्धवंश्या हि परत्रेह च शर्मणे ॥ १ ॥ इति ॥

इति प्रथमो निधिः १।

इस प्रकारसे साधु संबन्धी पांच निश्रास्थानोंको कह कर अब सूत्रकार निधिरूप लौकिक पांच निश्रास्थानोंका कथन करते है--

'पंच णिही पण्णत्ता' इत्यादि सूत्र ८॥

निधि पांच कही गई हैं-जैसे-पुत्रनिधि १ मित्रनिधि २ शिल्पनिधि ३ धननिधि ४ और धान्यनिधि ५ ।

विशिष्ठ रत्न सुवर्णादि द्रव्यका जो भाजन होता है, वह निधि है, पुत्ररूप जो निधि है, वह पुत्रनिधि है, पुत्रको जो निधिरूप कहा गया है, उसका कारण धनोपार्जन द्वारा मातापिताका परिपोषक होनेसे कहा गया है, इसीलिये पुत्रके मुखका अवलोकन मातापिताको आनन्दका जनक होता है । कहा भी है--" जन्मान्तरं फलं पुण्यं " इत्यादि ।

આ રીતે સાધુઓના પાંચ નિશ્રાસ્થાનો પ્રકટ કરીને હવે સૂત્રકાર નિધિરૂપ પાંચ લૌકિક નિશ્રાસ્થાનોનું નિરૂપણ કરે છે

"પંચ णिही पण्णत्ता" ઇત્યાદિ પાંચ પ્રકારના નિધિ કહ્યા છે-(૧) પુત્રનિધિ, (૨) મિત્રનિધિ, (૩) શિલ્પનિધિ, (૪) ધનનિધિ અને (૫) ધાન્યનિધિ.

વિશિષ્ટ રત્ન સુવર્ણાદિના ભંડારને નિધિ કહે છે પુત્ર રૂપ જે નિધિ છે તેને પુત્રનિધિ કહે છે પુત્રને નિધિરૂપ કહેવાનું કારણ એ છે કે તે ધનોપાર્જન કરીને માતાપિતાનું પાલન પોષણ કરે છે તેથી જ પુત્રનું દર્શન અથવા પુત્રપ્રાપ્તિ માતાપિતાને માટે આનંદજનક થઈ પડે છે. કહ્યું પણ છે કે

" जन्मान्तरं फलं पुण्यं " ઇત્યાદિ—

तथा-मित्रनिधिः-मेद्यति=स्निह्यतीति मित्रं=सुहृत्, तच्चतन्निधिश्चेति। अर्थादि साधने साहाय्यकरणेन मित्रस्यानन्दजनकत्वात् निधित्वम्। तदुक्तम्—

"कुतस्तस्यास्तु राज्यश्रीः, कुतस्तस्य मृगेक्षणाः।
यस्य शूरं विनीतं च, नास्ति मित्रं विचक्षणम्ः" ॥ १ ॥ इति।

इति द्वितीयो निधिः २।

तथा-शिल्पनिधिः-शिल्पं=चित्रादिविज्ञानं, तदेव निधिः-शिल्प-निधिः। शिल्पं च विद्याया उपलक्षणम्। तेन विद्यापि निधिरिव पुरुषार्थसाधकत्वाद् बोध्या।

तप और दानसे उत्पन्न हुआ पुण्य परलोकमें जीवोंको सुख देनेवाला होता है, परन्तु शुद्धवंशमें उत्पन्न हुई संतति परलोक एवं इहलोक दोनों लोकोंमें आनन्द देनेवाली होती है।

इस प्रकारकी यह पुत्ररूप निधि पहिली लौकिक निधि है। जो स्नेह करता है, वह मित्र सुहृत् है। सुहृत रूप जो निधि है, वह सुहृत् निधि है। मित्रको जो निधिरूप कहा गया है, उसका कारण यह है, कि वह अर्थादिके साधनमें सहायता करनेसे आनन्दजनक होता है। कहा भी है-"कुतस्तस्यास्तु राज्यश्रीः" इत्यादि।

जिसको शूर विनीत एवं विचक्षण मित्र नहीं है, उसको कहांसे तो राज्यश्री हो सकती है, और कहांसे मृगेक्षणा-मृगके जैसी नेत्रवाली प्राणप्यारी हो सकतीं है। इस प्रकारकी यह द्वितीय निधि है।

चित्रादिके विज्ञानका नाम शिल्प है, यह शिल्परूप जो निधि है, वह शिल्पनिधि है। शिल्प यह विद्याका उपलक्षण है, इससे पुरुषा

તપ અને દાન કરવાથી પ્રાપ્ત થતુ પુણ્ય તો જીવને પરલોકમાં જ સુખદાયી થાય છે, પણ સુપુત્ર તો આલોક અને પરલોક રૂપ બન્ને લોકમાં સુખદાયક થઈ પડે છે આ પ્રકારના આ પુત્રરૂપ નિધિને પહેલો લૌકિક નિધિ કહ્યો છે. (૨) મિત્રને બીજા લૌકિક નિધિરૂપ કહ્યો છે. જે સ્નેહ કરે છે તે મિત્ર-સુહૃત્ છે. એવા મિત્રરૂપ નિધિને મિત્રનિધિ અથવા સુહૃત્નિધિ કહે છે મિત્રને નિધિરૂપ કહેવાનુ' કારણ એ છે કે તે અર્થાદિની પ્રાપ્તિમાં સહાયક બનતો હોવાથી આન'દદાયક થઈ પડે છે. કહ્યું પણ છે કે :

"કુતસ્તસ્યાસ્તુ રાજ્યશ્રીઃ" ઈત્યાદિ—

જેને શૂર, વિનીત અને વિચક્ષણ મિત્ર હોતો નથી તેને રાજ્યશ્રીની પ્રાપ્તિ કેવી રીતે થઈ શકે અને મૃગના જેવા નયનવાળી પ્રાણપ્યારી પણ કેવી રીતે સ'ભવી શકે ! આ પ્રકારનો આ બીજો લૌકિકનિધિ કહ્યો છે. (૩) શિલ્પનિધિ—ચિત્રાદિના જ્ઞાનનું નામ શિલ્પ છે. આ પ્રકારના શિલ્પરૂપ જે નિધિ છે તેને શિલ્પનિધિ કહે છે. 'શિલ્પ' પદ વિદ્યાનુ' ઉપલક્ષણ

उक्तं च—

" विद्यया राजपूज्यः स्यात्, विद्यया सर्वमान्यता ।

विद्या हि सर्वलोकस्य, वशीकरणकारणम् " ॥ १ ॥ इति ।

इति तृतीयो निधिः ३। तथा-धननिधिः=कोशः । धान्यनिधिश्च कोष्ठागारः इति चतुर्थपञ्चमौ निधी । ४ । ५ ॥ सू० ८ ॥

इत्थं निधिः पञ्चविधः प्रोक्तः, स च द्रव्यतः पुत्रादि, भावतस्तु कुशलानुष्ठानरूपं ब्रह्मचर्यं, तदेव शौचत्वेन विवक्षन् अन्यान्यपि शौचानि माह—

मूलम्—सोए पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा—पुढविसोए १ आउसोए २ तेउसोए ३ मंतसोए ४ बंभसोए ॥५॥ सू० ९ ॥

छाया—शौचं पञ्चविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा-पृथिवीशौचम्, १ अप्शौचम् २, तेजःशौचम् ३, मन्त्रशौचम् ४, ब्रह्मशौचम् ५ ॥ सू० ९ ॥

र्थका साधनरूप होनेसे विद्या भी निधिकी तरह समझनी चाहिये। कहा भी है-" विद्यया राज्यपूज्यः स्यात् " इत्यादि ।

मनुष्य विद्यासे राज्यपूज्य हो सकता है, और विद्यासे वह सर्वमान्य हो सकता है, क्योंकि विद्या सर्वलोकको वशमें करनेका एक वशीकरण मन्त्र है, इस प्रकारका यह तृतीय निधिस्थान है ।

इसी प्रकारसे कोश और धान्यागार रूप जो निधि है, वह चतुर्थ पंचम निधि है ४-५ ॥ सू० ८ ॥

इस प्रकारसे पांच निधियोंका कथन किया इनमें द्रव्यरूप निधि पुत्रादिक हैं, और भावरूपनिधि कुशलानुष्ठानरूप ब्रह्मचर्य है, इसको शौचरूपसे कहनेकी इच्छावाले आचार्य अब अन्य शौचोंका कथन करते हैं।

હોવાથી તે વિદ્યાને પણ નિધિરૂપ સમજવી. વિદ્યા જ પુરુષાર્થમાં સાધનરૂપ બને છે. કહ્યું પણ છે કે " विद्यया राज्यपूज्यः स्यात् " ઇત્યાદિ—

વિદ્યાને કારણે મનુષ્ય રાજા વડે પણ પૂજાય છે. વિદ્યા વડે માણસ સમસ્ત લોકોમાં માનનીય બને છે, કારણ કે વિદ્યા સમસ્ત મનુષ્યોને વશ કરવામાં વશીકરણ મંત્રની ગરજ સારે છે. આ પ્રકારનો આ ત્રીજો નિધિ સમજવો. એ જ પ્રમાણે કોશ અને ધાન્યાગાર રૂપ જે ચોથો અને પાંચમો નિધિ છે, તેને વિષે પણ સમજવું ॥ સૂ. ૮ ॥

આ પ્રકારના પાંચ નિધિઓનું કથન કરવામાં આવ્યું. તેમાંથી પુત્રાદિકને દ્રવ્ય રૂપ નિધિ સમજવા કુશલાનુષ્ઠાન રૂપ બ્રહ્મચર્યને ભાવરૂપ નિધિ સમજવો. તેને શૌચ રૂપે પ્રકટ કરવાની અભિલાષાવાળા સૂત્રકાર હવે અન્ય

टीका—'सोए' इत्यादि—

शुचिः=शुद्धिः सैव शौचम्। तच्च द्रव्यतः चतुर्विधं भावत एकविधम्। पञ्चविधमपीदं शौचं तत्तन्नाम्ना व्यपदिशति, तद्यथा—पृथिवीशौचम्—पृथिव्या=मृत्तिकया शौच शुद्धिः—शरीरादिषु मृत्तिकाया घर्षणापलेपनेन ततो मलदुर्गन्धदूरीकरणमित्यर्थः। इति प्रथमं शौचम्। तथा=अप्शौचम्—अद्भिः=जलैः शौचम्=प्रक्षालनम् २। तेजः शौचम्—तेजसा=अग्निना तद्विकारेण भस्मना वा शौचम् ३। मन्त्र शौचम्—मन्त्रेण=शुचिविद्यया शौचम् ४। तथा—पञ्चमं ब्रह्मशौचम्—ब्रह्म—ब्रह्मचर्यादि कुशलानुष्ठानं, तदेव शौचं ब्रह्मशौचम्। अनेन सत्यशौचं तपः शौचम् इन्द्रियनिग्रहशौच सर्वभूतदयाशौचम् चेति चतुर्विधमपि शौच गृहीतम्—

सोए पंचविहे पण्णत्ते' इत्यादि सूत्र ९॥

टीकार्थ—शौच पांच प्रकारका कहा गया है जैसे—पृथिवी शौच १ अप्शौच २ तेजः शौच ३ मन्त्र शौच ४ और ब्रह्मचर्य शौच ५ शुद्धिका नाम शौच है, यह द्रव्यकी अपेक्षा चार प्रकारका कहा गया है, और भावकी अपेक्षा एक प्रकारका कहा गया है, पांच प्रकारके भी इस शौचको सूत्रकारने उस २ नामसे कहा है, जैसे पृथिवीशौच आदि—मृत्तिका द्वारा जो शुद्धि की जाती है वह पृथिवीशौच है, मिट्टीसे हाथोंको धोना शरीर पर मिट्टी लगाना इत्यादि लौकिक क्रियाएँ इस पृथिवी शौचमें आ जाती हैं। जलसे शुद्धि करना यह अप् शौच है। तेज अग्निसे या राखसे शुद्धि करना यह तेजः शौच है मंत्र से शुचि विद्यासे जो शुद्धि करता है यह मन्त्र शौच है, ब्रह्मचर्य आदि कुशल अनुष्ठान करना यह ब्रह्मशौच है। इससे सत्यशौच, तपः शौच, इन्द्रिय

શૌચોને પ્રકટ કરે છે. 'सोए पंचविहे पण्णत्ते" ઈત્યાદિ—

ટીકાર્થ—શૌચના નીચે પ્રમાણે પાંચ પ્રકાર કહ્યા છે—(૧) પૃથ્વીશૌચ, (૨) અપ્શૌચ, (૩) તેજઃશૌચ, (૪) મંત્રશૌચ, અને (૫) બ્રહ્મચર્યશૌચ

શૌચ એટલે શુદ્ધિ દ્રવ્યની અપેક્ષાએ શૌચના પૃથ્વીશૌચથી લઈને મંત્રશૌચ પર્યન્તના ચાર પ્રકાર સમજવા અને ભાવની અપેક્ષાએ તેનો બ્રહ્મચર્યશૌચ નામનો એક જ પ્રકાર સમજવો.

માટી દ્વારા શરીરની જે શુદ્ધિ થાય છે તેનુ નામ પૃથ્વીશૌચ છે. માટી વડે હાથની શુદ્ધિ કરવી, શરીર પર માટીનો લેપ કરવો આદિ લૌકિક ક્રિયાઓને આ પૃથ્વીશૌચ રૂપ કહી શકાય છે. પાણી વડે શરીર આદિની શુદ્ધિ કરવી તેનું નામ અપ્શૌચ છે પ્રકાશ, અગ્નિ અથવા રાખ વડે શુદ્ધિ કરવી તે તેજઃશૌચ છે. મંત્ર વડે (શુચિ વિદ્યા વડે) શુદ્ધિ કરવી તેનું નામ મંત્રશૌચ છે. બ્રહ્મચર્ય આદિ કુશલ અનુષ્ઠાન કરવા તેનું નામ બ્રહ્મશૌચ છે. બ્રહ્મ-

" सत्यं शौचं तपः शौचं, शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
सर्वभूतदया शौचं, जलशौचं च पञ्चमम् ॥ १ ॥ " इति ।

अन्यतीर्थिकैः पुनरिदं शौचं सप्तविधं प्रोक्तं तथाहि—

" सप्तस्नानानि प्रोक्तानि, स्वयमेव स्वयम्भुवा ।
द्रव्यभावविशुद्ध्यर्थम्, ऋषीणां ब्रह्मवादिणाम् ॥ १ ॥
आग्नेयं वारुणं ब्राह्म, वायव्यं दिव्यमेव च ।
पार्थिवं मानसं चैव स्नानं सप्तविध स्मृतम् ॥ २ ॥
आग्नेयं भस्मना स्नानमवगाह्यंतु वारुणम् ।
आपोहिष्ठामयं ब्राह्मं वायव्यं तु गवां रजः ॥ ३ ॥

निग्रह शौच और सर्वभून दया शौच ये जो चार प्रकारके शौच हैं, वह भी गृहीत हो जाता है । कहा भी है—

" सत्यं शौच तपः शौचं " इत्यादि ।

अन्य तीर्थिकोंने जो सात प्रकारका शौच कहा है वह इस प्रकारसे है–" सप्त स्नानानि प्रोक्तानि " इत्यादि ।

ऋषी ब्रह्मचारियोंका द्रव्य एवं भावकी शुद्धिके लिये स्वयंभूने ये सात स्नान कहे हैं–आग्नेय १ वारुण २ ब्राह्म ३ वायव्य ४ दिव्य ५ पार्थिव ६ और मानस स्नान ७ इनमें जो राखसे स्नान किया जाता है, वह आग्नेय स्नान है, जलसे जो स्नान किया जाता है, वह वारुण स्नान है....मंत्रसे जो स्नान किया जाय ...वह ब्रह्मस्नान है, गोधूलिसे

શૌચમાં સત્યશૌચ, તપ.શૌચ, ઇન્દ્રિય નિગ્રહશૌચ અને સર્વભૂન દયાશૌચનો પણ સમાવેશ થઈ જાય છે. કહ્યું પણ છે કે—

" સત્યં શૌચ તપઃ શૌચં " ઈત્યાદિ

અન્ય તીર્થિકોએ સાત પ્રકારના જે શૌચ કહ્યા છે, તે નીચે પ્રમાણે છે " सप्तस्नानानि प्रोक्तानि " ઈત્યાદિ—

બ્રહ્મચારી ઋષિઓની દ્રવ્યશુદ્ધિ અને ભાવશુદ્ધિ નિમિત્તે સ્વયંભૂએ સાત સ્નાન કહ્યાં છે—(૧) આગ્નેય, (૨) વારુણ, (૩) બ્રાહ્મ, (૪) વાયવ્ય, (૫) દિવ્ય, (૬) પાર્થિવ અને (૭) માનસ સ્નાન.

રાખથી જે સ્નાન કરાય છે તેનું નામ આગ્નેય સ્નાન છે. પાણી વડે જે સ્નાન કરાય છે, તેનું નામ વારુણ સ્નાન છે. મંત્ર વડે જે સ્નાન કરાય છે, તેનું નામ બ્રહ્મસ્નાન છે. ગોધૂલિ વડે જે સ્નાન કરાય છે, તેનું

सूर्यदृष्टं तु यद्दृष्टं, तद्दिव्यमृषयो विदुः ।

पार्थिवं च मृदा स्नानं, मनः शुद्धिस्तु मानसम् ॥ ४ ॥" इति ॥सू०९॥

पूर्वसूत्रे ब्रह्मशौचमुक्तम् तच्च जीवशुद्धिरूपम् । जीवं तु छद्मस्थो न विजानाति केवली तु विजानातीति सम्बन्धाच्छद्मस्थकेवलिनोरज्ञेयज्ञेयपदार्थान् पञ्चधा प्रतिपादयति—

मूलम्-पंच ठाणाइं छउमत्थे सव्वभावेणं ण जाणइ, ण पासइ, तं जहा-धम्मत्थिकायं १ अधम्मात्थिकायं २ आगासत्थिकायं ३ जीवं असरीरपडिबद्धं ४, परमाणुपोग्गलं ५। एयाणि चेव उप्पन्ननाणदंसणधरे अरहा जिणे केवली सव्वभावेणं जाणइ पासइ धम्मत्थिकायं जाव परमाणुपोग्गलं ॥सू० १०॥

छाया—पञ्च स्थानानि छद्मस्थः सर्वभावेन न जानाति न पश्यति, तद्यथा-धर्मास्तिकायम् १ अधर्मास्तिकायम् २ आकाशास्तिकायम् ३ जीवम् अशरीरप्रतिबद्धं ४ परमाणुपुद्गलम् ५। एतान्येव उत्पन्नज्ञानदर्शनधरः अर्हन् जिनः केवली सर्वभावेन जानाति पश्यति-धर्मास्तिकायं यावत् परमाणुपुद्गलम् ॥सू०१०॥

जो स्नान किया जाता है, वह वायव्य स्नान है, सूर्यका आताप लेना यह दिव्य स्नान है, मृत्तिका से जो स्नान है, वह पार्थिव स्नान है, और मनकी शुद्धि करना यह मानस स्नान है ॥ सू० ९ ॥

इस प्रकारसे यह शौच कहा है, यह शौच जीवकी शुद्धि रूप होता है, छद्मस्थ जीवको नहीं जानता है, केवलीही जीवको जानते हैं, सो इस सम्बन्धको लेकर अबसूत्रकार छद्मस्थ और केवलीके जो अज्ञेय ज्ञेय पदार्थ हैं, उनके पांच प्रकारोंका कथन करते हैं—

'पंच ठाणाइं छउमत्थे सव्वभावेणं ण जाणइ इत्यादि' सूत्र १० ॥

નામ વાયવ્યસ્નાન છે. સૂર્યના તડકા વડે જે આતાપના લેવાય છે, તેનું નામ દિવ્યસ્નાન છે. માટી વડે જે સ્નાન કરાય છે, તેનું નામ પાર્થિવસ્નાન છે. અને મનની શુદ્ધિ કરવા રૂપ માનસસ્નાન હોય છે. ॥ સૂ. ૯ ॥

આ પ્રકારના આ શૌચ કહ્યાં છે તે શૌચ જીવની શુદ્ધિરૂપ હોય છે. છદ્મસ્થ મનુષ્ય જીવને જાણતો નથી, કેવલી જ જીવને જાણે છે. આ પ્રકારના સંબંધને અનુલક્ષીને હવે સૂત્રકાર છદ્મસ્થ અને કેવલીને જે અજ્ઞેય અને જ્ઞેય પદાર્થો છે તેમના પાંચ પ્રકારોનું કથન કરે છે.

टीका—'पंच ठाणाइं' इत्यादि—

छद्मस्थः-अवधिज्ञानमनःपर्यवज्ञानवर्जितो मुनिः पञ्चस्थानानि सर्वभावेन=साक्षात्कारेण=प्रत्यक्षतयेत्यर्थः, न जानाति न पश्यति। तानि स्थानान्याह- तद्यथा-धर्मास्तिकायमित्यादि। तत्र=अशरीरप्रतिबद्धम्=शरीरवर्जित जीवम्। परमाणुपुद्गलम्-परमाणुश्चासौ पुद्गलश्चेति तम्। इदं द्व्यणुकादीनामप्युपलक्षणम्, तेन द्व्यणुकादीनपि छद्मस्थः साक्षात्कारेण नो जानाति नो पश्यति। श्रुतज्ञानेन

टीकार्थ-अवधिज्ञान एवं मनः पर्यवज्ञानसे रहित मुनिरूप छद्मस्थ इन पांच स्थानोंको सर्वभावसे साक्षात् रूपसे प्रत्यक्षरूपसे नहीं जानता है, नहीं देखताहै, वे पांच स्थान इस प्रकारसे हैं-धर्मास्तिकाय १ अधर्मास्तिकाय २ आकाशास्तिकाय ३ अशरीरप्रतिबद्ध जीव ४ और परमाणु पुद्गल ५। इन्हीं पांच स्थानोंको उत्पन्नज्ञानदर्शनधारी अर्हन्त जिन केवली सर्वभावसे साक्षात् रूपसे जानते हैं देखते हैं। वे पांच स्थान धर्मास्तिकाय यावत् परमाणु पुद्गल हैं। अवधिज्ञान एव मन.पर्यवज्ञानवाले जीव भी छद्मस्थ जीवमें गृहीत किये गये हैं, अतः वे यहां गृहीत न हों इसीलिये टीकाकारने उन्हे वर्जित किया है, अशरीर प्रतिबद्धका भाव है, शरीरसे रहित जीव परमाणु पुद्गल द्व्यणुक आदिका उपलक्षण है, अतः जैसा वह छद्मस्थ परमाणु पुद्गलको साक्षात् नहीं जानता है, उसी प्रकारसे वह द्व्यणुक आदिको भी साक्षात् रूपसे नहीं जानना

"पच ठाणाइं छउमत्थे सव्वभावेणं ण जाणइ" ईत्यादि—

અવધિજ્ઞાન અને મનઃપર્યવજ્ઞાનથી રહિત એવો છદ્મસ્થ મુનિ આ પાચ સ્થાનોને સર્વભાવે, સાક્ષાત્ રૂપે, પ્રત્યક્ષ રૂપે જાણુતો નથી. (૧) ધર્માસ્તિકાય (૨) અધર્માસ્તિકાય, (૩) આકાશાસ્તિકાય, (૪) અશરીર પ્રતિબદ્ધ જીવ અને (૫) પરમાણુ પુદ્ગલ.

એ જ પાંચ સ્થાનોને ઉત્પન્ન જ્ઞાન દર્શનધારી અહુંત જિન કેવલી સર્વભાવે-સાક્ષાત્ રૂપે જાણે છે અને દેખે છે એટલે કે ધર્માસ્તિકાયથી લઈને પરમાણુ પુદ્ગલ પર્યન્તના પાંચે સ્થાનોને કેવળજ્ઞાની જીવ પ્રત્યક્ષ રૂપે જાણી શકે છે અને દેખી શકે છે અવધિજ્ઞાની અને મનઃપર્યયજ્ઞાનવાળા જીવને પણ છદ્મસ્થ જ ગણવામાં આવે છે, તેથી તેમને અહીં ગૃહીત કરવાના ન હોવાથી સૂત્રકારે તેમને અહીં વર્જિત કર્યા છે "અશરીર પ્રતિબદ્ધ" એટલે શરીરથી રહિત જીવ પરમાણુ પુદ્ગલ દ્વયણુક આદિનું ઉપલક્ષણ છે. તે છદ્મસ્થ જેમ પરમાણુ પુદ્ગલને સાક્ષાત્ રૂપે જાણુતો નથી, એ જ પ્રમાણે તે દ્વયણુક આદિને પણ સાક્ષાત રૂપે જાણુતો નથી. શ્રુતજ્ઞાનની સહાયતાથી જ

तु धर्मास्तिकायादीन् जानात्येवेति अत्रेदं बोध्यम्-अवधिज्ञानी मनःपर्यवज्ञानी च यद्यपि छद्मस्थ एव तथापि स नेह विवक्षितः धर्मास्तिकायादीनां चतुर्णां साक्षात्कारेण ज्ञानाभावेऽपि परमाणुपुद्गलस्य साक्षात्कारेण ज्ञानात् । ननु सर्वभावेन इत्यस्य सर्वपर्यायेण इत्यर्थः, एवं च अवधिज्ञानी मनःपर्ययज्ञानी च सर्वपर्यायेण परमाणुपुद्गलं न जानातीति छद्मस्थपदेन अवधिमनःपर्ययज्ञानिनोरपि ग्रहणे

है, श्रुतज्ञानकी सहायतासेही जानता है, तात्पर्य ऐसा है-यद्यपि अवधिज्ञानी मनः पर्ययज्ञानी छद्मस्थही हैं, परन्तु यहां उनकी विवक्षा नहीं हुई है, क्योंकि वे परमाणु पुद्गलको तो साक्षात् रूपसे जानते हैं, भलेही वे धर्मास्तिकायादिक चारको साक्षात् रूपसे नहीं जानते ।

शंका—" सर्वभाव " इस पदका अर्थ है, सर्वपर्यायसे अतः अवधिज्ञानी एवं मनः पर्ययज्ञानी जो जीव है, वह सर्वभावसे सर्वपर्यायसे परमाणुपुद्गलको जानता नहीं है, इसलिये छद्मस्थ पदसे अवधिज्ञानी और मनःपर्ययज्ञानी इनका भी ग्रहण कर लिया जावे तो क्या हानि है ?

उत्तर—" सर्वभावेन " इस पदका अर्थ यदि " सर्वपर्यायैः " ऐसा माना जाय और ऐसा मानकर यह कहा जायकि अशरीर प्रतिबद्ध जीवको छद्मस्थ सर्व पर्यायरूपसे साक्षात् नहीं जानता है, साक्षात् नहीं देखता है, तो इसका भाव ऐसा होता है, कि वह शरीर प्रतिबद्ध

જાણે છે આ કથનનુ તાત્પર્ય એવું છે કે અવધિજ્ઞાની અને મનઃપર્યયજ્ઞાની છદ્મસ્થ જ છે, છતાં પણ અહી તેમની વિવક્ષા થઇ નથી કારણ કે તેઓ પરમાણુ પુદ્ગલને તો સાક્ષાત્ રૂપે જાણે જ છે, ભલે તેઓ ધર્માસ્તિકાય આદિ ચારને સાક્ષાત્ રૂપે જાણતા નથી

શંકા—" સર્વભાવ " આ પદને અર્થ 'સર્વપર્યાયની અપેક્ષાએ' થાય છે તેથી અવધિજ્ઞાની અને મનઃપર્યયજ્ઞાની જે જીવો છે, તેઓ સર્વભાવે, સર્વપર્યાયની અપેક્ષાએ-પરમાણુ પુદ્ગલને જાણતા નથી, એવું સિદ્ધ થાય છે તો પછી છદ્મસ્થ પદ વડે અવધિજ્ઞાની અને મન પર્યયજ્ઞાનીને પણ ગ્રહણ કરવામાં શો વાધો છે ?

ઉત્તર—" સર્વભાવેન " આ પદને અર્થ જો " સર્વ પર્યાય રૂપે " માનવામાં આવે, તો અને એ પ્રકારનો અર્થ માનીને જો એવું કહેવામાં આવે કે " અશરીર પ્રતિબદ્ધ જીવને છદ્મસ્થ સર્વ પર્યાય રૂપે સાક્ષાત્ જાણતો નથી અને સાક્ષાત્ દેખતો નથી, " તો તેના દ્વારા એવો ભાવ પ્રકટ થાય છે

न क्वापि हानिरितिचेत्, अत्रोच्यते–यदि सर्वभावेन इत्यस्य सर्वपर्यायेण इत्यर्थः स्वीक्रियते, तर्हि 'अशरीरप्रतिबद्धं जीवं छद्मस्थः सर्वपर्यायेण न जानाति न पश्यतीत्युक्ते शरीरप्रतिबद्धं जीवं तु सर्वपर्यायेण जानाति पश्यतीत्यर्थो गम्यते। स च शरीरप्रतिबद्धं जीवम् अवधिज्ञानी मनःपर्यवज्ञानी च सर्वपर्यायेण जानाति। अतः 'सर्वभावेन' इत्यस्य 'साक्षात्कारेण' इत्येवार्थो युक्तः। परमाणु पुद्गलं तु साक्षात्कारेण अवध्यादि ज्ञानीजानात्येव, अतः–छद्मस्थपदेनात्र अवध्यादि रहित एव ग्राह्य इति। जिनस्तु एतानि पञ्च स्थानानि साक्षात्कारेण जानाति–इत्याह–' एयाणि चेव ' इत्यादि इति ॥सू० १०॥

पूर्वोक्त धर्मास्तिकायाद्यतिरिक्तानप्यतीन्द्रियभावान् जिनो जानातीत्यधोलोकोर्ध्वलोकवर्तीन् अतीन्द्रियान् भावान् पञ्च स्थानकत्वेनाह––

मूलम्–अहोलोए णं पंच अणुत्तरा महइमहालया महानिरया पण्णत्ता, तं जहा--काले १ महाकाले २ रोरुए ३ महा-

---

जीवको साक्षात् जानता है, और साक्षात् देखता है, परन्तु ऐसा अर्थ मानना भी संगत नहीं होता है, क्योंकि अवधिज्ञानी और मनःपर्यवज्ञानी जीवको शरीर प्रतिबद्ध जीवको सर्वपर्याय सहित न जानता है, और न देखता है, इसलिये "सर्वभाव" पदका अर्थ "साक्षात्कार" ऐसाही यहां करना चाहिये "सर्वपर्याय" ऐसा नहीं करना चाहिये अतः ऐसी अर्थ संगतिमें कोई दोष नहीं आता है, क्योंकि अवधिज्ञान आदिवाले जीव परमाणु पुद्गलको साक्षात् रूपसे जानतेही हैं। इसलिये छद्मस्थ पदसे यहां अवधिज्ञान आदिसे वर्जित पुरुषही लेना चाहिये। जिन भगवान् तो इन पांच स्थानोंको साक्षात् रूपहीसे जानते हैं, यही बात "एयाणि चेव" इत्यादि सूत्र पाठ द्वारा प्रकटकी गई है ॥सू०१०॥

કે તે શરીર પ્રતિબદ્ધ જીવને સાક્ષાત્ જાણે છે અને સાક્ષાત્ દેખે છે. પરન્તુ એવો અર્થ પણ સંગત લાગતો નથી કારણ કે અવધિજ્ઞાની અને મનઃપર્યય જ્ઞાની મનુષ્ય શરીર પ્રતિબદ્ધ જીવને સર્વપર્યાય સહિત જાણતો નથી અને દેખતો નથી તેથી "સર્વભાવ" પદનો અર્થ અહીં "સાક્ષાત્કાર" જ કરવો જોઇએ "સર્વપર્યાય" એવો અર્થ અહીં કરવો જોઇએ નહી તેથી એવી અર્થસંગતિમાં કોઈ દોષ રહેતો નથી, કારણ કે અવધિજ્ઞાન આદિવાળો જીવ પરમાણુ પુદ્ગલને સાક્ષાત્ રૂપે જાણે જ છે. તેથી છદ્મસ્થ પદ દ્વારા અહીં અવધિજ્ઞાન આદિથી રહિત પુરુષને જ ગ્રહણ કરવો જોઇએ જિનેન્દ્ર ભગવાન તો આ પાંચે સ્થાનને સાક્ષાત્ રૂપે જાણે છે, એ જ વાતને "एयाणि चेव" ઇત્યાદિ સૂત્રપાઠ દ્વારા પ્રકટ કરવામાં આવેલ છે. ॥ સૂ. ૧૦ ॥

रोरुए ४ अप्पइट्ठाणे ५। उड्ढलोए णं पंच अणुत्तरा महइमहालया महाविमाणा पण्णत्ता, तं जहा—विजए १ वेजयंते २ जयंते ३ अपराजिए ४ सव्वट्ठसिद्धे ॥ सू० ११ ॥

छाया—अधोलोके खलु पञ्च अनुत्तरा महातिमहालयाः महानिरयाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—कालो १ महाकालो २ रौरवो ३ महारौरवः ४ अप्रतिष्ठानः ५। ऊर्ध्वलोके खलु पञ्च अनुत्तरा महातिमहालया महाविमानाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—विजयो १ वैजयन्तो २ जयन्तः ३ अपराजितः ४ सर्वार्थसिद्धः ५ ॥सू० ११॥

इन पूर्वोक्त धर्मास्तिकाय आदिसे अतिरिक्त भी अतीन्द्रिय पदार्थोंको जिन भगवान् जानते हैं, यही बात प्रकट करनेके लिये अधोलोकवर्ती ऊर्ध्वलोकवर्ती अतीन्द्रिय भावोंकी प्ररूपणा अब सूत्रकार पांच स्थानोंसे करते हैं—'अहोलोएणं पंच अणुत्तरा' इत्यादि सूत्र ११ ॥

सूत्रार्थ—इस सूत्रकी व्याख्या स्पष्ट है—अधोलोकमें सात पृथिवी हैं उनमें जो सातवीं पृथिवी है, उसमें पांच अनुत्तर बहुत बड़े विशाल महानिरय कहे गये हैं, उनके नाम इस प्रकारसे हैं—काल १ महाकाल २, रौरव ३, महा रौरव ४, और अप्रतिष्ठान ५, ऊर्ध्वलोकमें पांच नाम अनुत्तर महाविमान जो कि बहुत बडे विशाल कहे गये हैं, उनके नाम इस प्रकारसेहैं—विजय१ वैजयन्त २ जयन्त ३ अपराजित ४ और सर्वार्थ सिद्ध ५।

આ પૂર્વોક્ત ધર્માસ્તિકાય આદિ સિવાયના અન્ય અતીન્દ્રિય પદાર્થોને પણ જિન ભગવાન જાણે છે એ જ વાતને પ્રકટ કરવા માટે સૂત્રકાર હવે અધોલોકવર્તી અને ઉર્ધ્વલોકવર્તી અતીન્દ્રિય ભાવોની પ્રરૂપણા પાંચ સ્થાનોની અપેક્ષા કરે છે. " अहोलोएण पंच अणुत्तरा " ઇત્યાદિ—

સૂત્રાર્થ—આ સૂત્રની વ્યાખ્યા સુગમ છે અધોલોકમાં સાત પૃથ્વી (રત્નપ્રભા આદિ નરકો) છે. તેમાંની જે સાતમી પૃથ્વી છે તેમાં પાંચ અનુત્તર (ઘણાજ વિશાળ) નરકવાસો આવેલા છે. તેમના નામ આ પ્રમાણે છે—(૧) કાલ, (૨) મહાકાલ, (૩) રૌરવ, (૪) મહારૌરવ અને (૫) અપ્રતિષ્ઠાન.

ઉર્ધ્વલોકમાં પાંચ અનુત્તર મહાવિમાનો છે તેમનાં નામ આ પ્રમાણે છે—(૧) વિજય, (૨) વૈજયન્ત, (૩) જયન્ત, (૪) અપરાજિત અને (૫) સર્વાર્થસિદ્ધ.

टीका--' अहोलोए ' इत्यादि--

व्याख्या स्पष्टा । नवरम्-अधोलोके सप्तमपृथिव्याम् । अनुत्तराः-नास्ति उत्तरः=उत्कृष्टो येभ्यस्ते-सर्वोत्कृष्टा इत्यर्थः । सर्वोत्कृष्टत्वं तु उत्कृष्टवेदनादित्वात्, ततः परं नरकाभावाद् वा बोध्यम् । महातिमहालयाः-अतिमहान्तः-अतिविशाला इत्यर्थः । अति महत्त्वमादितश्चतुर्णां क्षेत्रतोऽप्यसख्यातयोजनत्वेन बोध्यम् । अप्रतिष्ठानो यद्यपि क्षेत्रतो योजनलक्षप्रमाण एव तथापि तत्रत्यानां नारकजीवानामायुषोऽतिमहत्त्वात्तस्य महत्त्वं बोध्यमिति । एवमूर्ध्वलोकेऽपि विज्ञेयम्, न वरम् ऊर्ध्वलोके सातावेदनादित्वं बोध्यम् ॥ सू०११॥

टीकार्थ-इस सूत्रकी व्याख्या स्पष्टहै, जिनकी अपेक्षा कोई और उत्कृष्ट नहीं होता है, वे अनुत्तर हैं-सर्वोत्कृष्ट हैं । सर्वोत्कृष्टता इनमें उत्कृष्टवेदनावाले होनेसे आई हैं । अथवा-इनके बाद और नरक नहीं हैं, इस कारण भी इनमें उत्कृष्टता कही गई है, महालिमहालय शब्दका अर्थ अति विशाल है। इनमें अतिविशालता आदिके चारोंमें क्षेत्रकी अपेक्षा असंख्यात योजनके होनेसे है । अप्रतिष्ठान यद्यपि क्षेत्रकी अपेक्षा १ लाख योजनकाही है । तब भी वहांके नारक जीवोंकी आयु अति महान् है, इसलिये इसमें इस अपेक्षा अति महत्ता कही गई है। इसी तरहका कथन उर्ध्वलोकमें भी जानना चाहिये। यहां पर जो महत्ता प्रकट की गई है वह " सातावेदनीयका तीव्र उदय रहता है, अतः उससे यहां सातवेदन आदिका प्रकृष्ट अनुभव होता रहता है " इस अपेक्षासे प्रकट की गई है ॥ सू० ११॥

टीकार्थ-જેના કરતાં કોઈ પણ ઉત્કૃષ્ટ ન હોય તેને અનુત્તર અથવા સર્વોત્કૃષ્ટ કહે છે. કાલ, મહાકાલ આદિ પાંચ નરકાવાસોમાં ઉત્કૃષ્ટ વેદનાવાળા નારકોને કારણે સર્વોત્કૃષ્ટતા સમજવી અથવા તે નરકાવાસોની નીચે બીજી કોઈ પણ નરકો નહીં હોવાને કારણે પણ તેમાં સર્વોત્કૃષ્ટતા સમજવી. ' મહાતિમહાલય ' એટલે ' અતિ વિશાળ ' પહેલાં ચાર નરકાવાસો અસંખ્યાત યોજનપ્રમાણ હોવાને કારણે તેમનામાં ક્ષેત્રની અપેક્ષાએ અતિ વિશાળતા સમજવી. જો કે અપ્રતિષ્ઠાન નામનો પાંચમો નરકાવાસ એક લાખ યોજનપ્રમાણ જ છે, છતાં પણ તેમાં નારકોનું આયુષ્ય અતિ મહાન હોવાથી તે દૃષ્ટિએ તેમાં સર્વોત્કૃષ્ટતા પ્રકટ કરવામાં આવી છે.

એ જ પ્રકારનું કથન ઉર્ધ્વલોકના પાંચ અનુત્તર વિમાનો વિષે પણ સમજવું. ત્યાં સાતાવેદનીયનો તીવ્ર ઉદય રહે છે. તેથી તે અનુત્તર વિમાનનિવાસી દેવો સાતાવેદનીય આદિનો પ્રકૃષ્ટ અનુભવ કરે છે. તે કારણે તેમાં સર્વોત્કૃષ્ટતા પ્રકટ કરવામાં આવી છે. ॥ સૂ. ૧૧ ॥

अनुत्तरनरकेषु अनुत्तरविमानेषु च विशिष्टसत्त्वा एव पुरुषा गच्छन्तीति पञ्चविधान् पुरुषानाह--

मूलम्---पंच पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा-हिरिसत्ते १ हिरिमणसत्ते २ चलसत्ते ३ थिरसत्ते ४ उदयणसत्ते ५ ॥सू०१२॥

छाया---पञ्च पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-ह्री सत्त्वः १ ह्रीमनः सत्त्वः २ चलसत्त्वः ३ स्थिरसत्त्वः ४ उदयनसत्त्वः ५ ॥सू० १२॥

टीका---' पंच पुरिसजाया ' इत्यादि--

पुरुषजातानि=पुरुष प्रकाराः पञ्च प्ररूपितानि । तान्येवाह-तद्यथा-ह्रीसत्त्वः-ह्रिया=लज्जया सत्त्वं=स्थितिः-अवष्टम्भः अविचलत्वमिति यावत् परीषहेषु यस्य संयतस्य, संग्रामादिषु वा यस्य संयतेतरपुरुषस्य सः ।१। तथा-ह्रीमनःसत्त्वः-ह्रिया=मनस्येव सत्त्वं न तु शरीरे, शीतादौ कम्पादि-विकारदर्शनाद् यस्य सः

अनुत्तर नारकोंमें और अनुत्तर विमानोंमें विशिष्ट शक्तिशाली पुरुषही जाते हैं, इसलिये अब सूत्रकार पांच प्रकार के पुरुष का कथन करते हैं--'पंच पुरिसजाया पण्णत्ता' इत्यादि सूत्र १२ ॥

टीकार्थ-पुरुष जात पांच कहे गये हैं जैसे-ह्रीसत्त्व १ ह्रीमनः सत्त्व २ चल सत्त्व ३ स्थिर सत्त्व ४ और उदयन सत्त्व ५ जिस संयतकी परीषहके आने पर लज्जावश अपने संयम भावसे अविचलता बनी रहती है, वह ह्रीसत्त्व है, अथवा संयतसे इतर जिस प्राणीकी संग्राम आदिकोंमें लज्जाके वशसे स्थिरता रहती है, वह ह्री सत्त्व है, लज्जासे स्थिति अविचलता जिसकीहै ऐसा वह प्राणी ह्रीसत्त्वहै। लज्जाके वश जिसके

અનુત્તર નરકોમાં અને અનુત્તર વિમાનોમાં વિશિષ્ટ શક્તિશાળી જીવો જ જાય છે. તેથી હવે સૂત્રકાર પાંચ પ્રકારના પુરુષોનું કથન કરે છે.

" પંચ પુરિસજાયા પણ્ણત્તા " ઇત્યાદિ—

ટીકાર્થ-પુરુષોના નીચે પ્રમાણે પાંચ પ્રકાર કહ્યા છે—(૧) હ્રી સત્ત્વ, (૨) હ્રીમનઃ સત્ત્વ, (૩) ચલ સત્ત્વ, (૪) સ્થિર સત્ત્વ અને (૫) ઉદયન સત્ત્વ.

પરીષહો આવી પડે ત્યારે જે સંયત લજ્જાને કારણે પોતાના સંયમ ભાવમાંથી ચલાયમાન થતો નથી-અવિચલ જ રહે છે તેને હ્રીસત્ત્વ કહે છે. અથવા સંગ્રામ આદિમાં લજ્જાને કારણે જે માણસ અવિચલ રહે છે તેને હ્રીસત્ત્વ કહે છે. આ રીતે લજ્જાને કારણે જ જેની અવિચલતા ટકી રહી છે એવા જીવને હ્રીસત્ત્વ કહે છે. લજ્જાને કારણે જેના મનમાં જ માત્ર હ્રીસત્ત્વ

।२। चलसत्त्वः–चलम्=अस्थिरं सत्त्वं यस्य सः ।३। अचलसत्त्वः–अचलं=स्थिरं सत्त्वं यस्य सः ।४। तथा–उदयनसत्त्वः–उत्=ऊर्ध्वम् अयन=गमनं यस्य तत् उदयनम्–उदयगामि प्रवर्द्धमानमिति यावत् सत्त्वं यस्य स इति पञ्चमः ५ ॥१२॥

अनन्तरं सत्त्ववान् पुरुषः पञ्चसंख्यकत्वेन प्रोक्तः। सत्त्ववान् पुरुषश्च प्रायो भिक्षुरेवेति तत्स्वरूपं सदृष्टान्तमाह––

मूलम्–पंच मच्छा पण्णत्ता, तं जहा–अणुसोयचारी १, पडिसोयचारी २ अंतचारी ३ मज्झचारी ५। एवमेव पंच भिक्खागा पण्णत्ता, तं जहा–अणुसोयचारी १ जाव सव्वचारी ५ ॥ सू० १३ ॥

छाया––पञ्च मत्स्याः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–अनुस्रोतश्चारी १ प्रतिस्रोतश्चारी २ अन्तचारी ३ मध्यचारी ४ सर्वचारी ५। एवमेव पञ्च भिक्षाकाः प्रज्ञप्ताः तद्यथा–अनुस्रोतश्चारी १ यावत् सर्वचारी ५ ॥ सू० १३॥

केवल मनमें ही सत्त्व स्थिरता रहती है, शरीरमें नहीं क्योंकि शीत आदिके समयमें शरीरमें कम्पादि विकार देखा जाता है, ऐसा वह प्राणी ह्रीमनः सत्वहै। जिसका सत्व अस्थिर होता है ऐसा वह प्राणी चल सत्व है, जिसका सत्व–बल स्थिर होता है, ऐसा वह प्राणी अचल सत्त्व है। और जिसका सत्त्व प्रवर्द्धमान होता है, ऐसा वह प्राणी उदयन सत्त्व है ॥ सू० १२ ॥

सत्त्ववान् पुरुष पांच प्रकारका कहा अब सूत्रकार यह प्रकट करते हैं कि सत्त्ववान् पुरुष प्रायः भिक्षुही होता है अतः भिक्षुका स्वरूप दृष्टान्तपूर्वक प्रगट किया जाता है–'पंच मच्छा पण्णत्ता' इत्यादि सूत्र १३ ॥

સ્થિરતા રહે છે–શરીરમાં રહેતી નથી (કારણ કે શીતાદિને અવસરે તેના શરીરમાં કંપાદિ વિકાર નજરે પડે છે), એવા જીવને "હ્રીમનઃ સત્ત્વ" કહે છે. અસ્થિર સત્ત્વવાળા જીવને "ચલસત્ત્વ" કહે છે. જેનું સત્ત્વ (મનોબલ) સ્થિર હોય છે એવા જીવને "અચલ સત્ત્વ" કહે છે જેનું સત્ત્વ પ્રવર્દ્ધમાન હોય છે, એવા જીવને "ઉદયન સત્ત્વ" કહે છે. ॥ સૂ. ૧૨ ॥

સત્યવાન્ પુરુષના પાંચ પ્રકાર પ્રકટ કરવામાં આવ્યા. સામાન્ય રીતે ભિક્ષુ (સાધુ) જ સત્યવાન્ હોઈ શકે છે. તેથી હવે સૂત્રકાર દૃષ્ટાન્ત સહિત ભિક્ષુના સ્વરૂપનું નિરૂપણ કરે છે. "પંચ મચ્છા પણ્ણત્તા" ઇત્યાદિ–

टीका--' पंच मच्छा ' इत्यादि--

मत्स्याः पञ्च संख्यका भवन्ति। तत्र प्रथमः-अनुस्रोतश्चारी-प्रवाहानुकूलचरणशीलः ।१। प्रतिस्रोतश्चारी=प्रवाहसंमुखचरणशीलः २। अन्तचारी=पार्श्वचारी ३। मध्यचारी=मध्यभागे संचरणशीलः ४। तथा-सर्वचारी=अनुस्रोतः प्रतिस्रोतोऽन्तमध्येषु सर्वत्र संचरणशीलः ५। इति। इत्थं दृष्टान्तमुक्त्वा सम्प्रति दार्ष्टान्तिकमाह-' एवमेव ' इत्यादि। एवमेव=अनेनैव प्रकारेण पञ्च संख्यका भिक्षवोऽपि भवन्ति। तत्र कश्चित् अनुस्रोतश्चारी=उपाश्रयसमीपात् क्रमेण भिक्षार्थं चरणशीलः

टीकार्थ—मत्स्य पांच प्रकारके कहे गये हैं-जैसे-अनुस्रोतश्चारी १ प्रतिस्रोतश्चारी २ अन्तचारी ३ मध्यचारी ४ और सर्वचारी ५ इसी प्रकारसे पांच भिक्षुक कहे गये हैं जैसे-अनुस्रोतश्चारी १ यावत् सर्वचारी ५।

जो मत्स्य प्रवाहके अनुकूल चलनेके स्वभाववाला होता है, वह अनुस्रोतश्चारी होता है, जो प्रवाहके संमुख चलनेके स्वभाववाला होता है, वह प्रतिस्रोतश्चारी होता है, जो पार्श्वमें चलनेके स्वभाववाला होता है, वह पार्श्वचारी होता है, जिसका स्वभाव मध्यभागमें संचरण करनेका होता है, वह मध्यचारी है, और जिसका स्वभाव प्रवाहके अनुकूल प्रवाहके प्रतिकूल चलनेका एवं अन्तमें और मध्यमें चलनेका होता है वह सर्वचारी है, इसी तरहसे भिक्षु भी पांच प्रकारके होते हैं, इनमें कोई एक भिक्षु ऐसा होता है, जो उपाश्रयके पाससेही क्रमशः भिक्षा करनेके स्वभाववाला होता है, ऐसा वह भिक्षु अनुस्रोतश्चारी

ટીકાર્થ-મત્સ્યના નીચે પ્રમાણે પાંચ પ્રકાર કહ્યા છે—(૧) અનુસ્રોતચારી, (૨) પ્રતિસ્રોતચારી, (૩) અન્તચારી, (૪) મધ્યચારી અને (૫) સર્વચારી.

એજ પ્રમાણે ભિક્ષુકના પણ અનુસ્રોતચારી આદિ પાંચ પ્રકાર કહ્યા છે.

જે મત્સ્ય પ્રવાહના વહેણની દિશામાં જ ચાલવાના સ્વભાવવાળો હોય છે, તેને અનુસ્રોતચારી કહે છે જે મત્સ્ય પ્રવાહના વહેણની વિરૂદ્ધની દિશામાં ચાલવાના સ્વભાવવાળો હોય છે તેને પ્રતિસ્રોતચારી કહે છે જે પ્રવાહની બાજુમાં ચાલવાના સ્વભાવવાળો હોય છે, તેને અન્તચારી કહે છે જે મત્સ્ય પ્રવાહના મધ્યભાગમા સચરણ કરનારો હોય છે, તેને મધ્યચારી કહે છે. જે મત્સ્ય પ્રવાહની દિશામાં, પ્રવાહની સામે, પ્રવાહની પડખે અને પ્રવાહના મધ્યભાગમાં સંચરણ કરનારો હોય છે તેને સર્વચારી કહે છે. એજ પ્રમાણે ભિક્ષુક પણ પાંચ પ્રકારનો હોય છે. જે ભિક્ષુક ઉપાશ્રયની નજીકના ઘરથી શરૂ કરીને ક્રમશઃ અન્ય ઘરોમાંથી ભિક્ષા પ્રાપ્ત કરનારો હોય છે તેને અનુ-

टीका--' पंच वणीमगा ' इत्यादि--

वनीपकाः-वन्वते=याचन्ते ये ते-याचका इत्यर्थः। स्वभक्तान् प्रशंसादिभि र्दानाभिमुखकारका इत्यर्थः। ते च पञ्चविधाः प्रज्ञप्ताः। तानेवाह-तद्यथा-अतिथि वनीपकः-भोजनकाले उपतिष्ठमानोऽतिथिः-सोऽतिथिदानप्रशंसया स्वभक्ताद् दातुराहारादिकं याचतेऽतः सोऽतिथिवनीपक इत्युच्यते।

अतिथिदानप्रशंसा यथा--

" पाएण देइलोगो, उवगारिसु परिजिएसु जुसिएसु।
जो पुण अद्धाखिन्नं अतिहिं पूएइ तं दाणं ॥१॥"

छाया-प्रायेण ददाति लोकः उपकारिभ्यः परिचितेभ्योजुष्टेभ्यः।
यः पुनरध्वखिन्नमतिथिं पूजयति तद्दानमिति ॥१॥

वनीपक ३ श्ववनीपक ४ और श्रमण वनीपक ५ जो प्रशंसा आदि द्वारा अपने भक्तोंको दानके अभिमुख करनेवाले होते हैं वे वनीपक हैं। इनमें जो वनीपक भोजन कालमें आता है, और अतिथि दानकी प्रशंसासे अपने भक्त दातासे आहार आदिकी याचना करते हैं, ऐसा वह याचक अतिथिवनीपक है अतिथि दानकी प्रशंसा इस प्रकारसे है—

" पाएण देइ लोगो इत्यादि।

लोक प्रायः उपकारीके लिये या परिचितजनके लिये या सेवा करनेवालेके लिये जो कुछ बनता है, वह देता है पर वह दान नहीं है, पर दान वही है जो मार्गसे चलकर आये हुए खिन्न अतिथिजनके लिये प्रत्युपकारकी आकाङ्क्षा किये विना आहारादि देता है, कृपणवनीपक

જેઓ પ્રશંસા આદિ દ્વારા પોતાના ભક્તોને દાન કરવાને પ્રેરે છે, તેમને 'વનીપક' કહે છે. જે વનીપક ભોજન કરવાને સમયે આવીને અતિથિદાનની પ્રશંસા કરીને દાતા પાસેથી આહારાદિની યાચના કરે છે, તે વનીપક (યાચક) ને 'અતિથિ વનીપક' કહે છે. અતિથિદાનની પ્રશંસા આ પ્રમાણે કરવામાં આવી છે. " पाएण देइ लोगो " ઈત્યાદિ—

સામાન્ય રીતે તો લોકો ઉપકારીજનોને અથવા પરિચિતજનોને અથવા પોતાની સેવા કરનાર લોકોને કંઇને કંઈ આપે છે-યથાશક્તિ મદદ કરે છે, પરન્તુ આ પ્રકારની મદદને દાન કહી શકાય નહીં. દાન તો તેને જ કહી શકાય કે જે કોઈ પણ પ્રકારના પ્રત્યુપકારની આકાંક્ષા વિના આપવામાં આવે છે. આગણે આવીને ઊભેલા કોઇ દુઃખી અને અજાણ્યા અતિથિને જે આહારાદિનું દાન કરાય છે તેને જ સાચું દાન કહે છે.

कृपणवनीपकः-कृपणो=दरिद्रः, स एव वनीपकः। यो हि स्वस्य दारिद्र्याख्यान-पुरस्सरं स्वस्मै दीयमानं दानं प्रशंसति स कृपणवनीपकः। कृपणदानप्रशंसा यथा-

" किविणेसु दुम्मणेसु य, अबंधवायंकि जुंगियंगेसु।
पूयाहिज्जेलोए, दाणपडागं हरइदेंतो ॥१॥

छाया--कृपणेभ्यो दुर्मनोभ्यश्च अबान्धवातङ्किव्यङ्गिताङ्गेभ्यः।
पूजार्हे लोके दानपताकां हरति ददत् ॥१॥ इति।

ब्राह्मणवनीपकः-यो हि ब्राह्मणाय दीयमानं दानं प्रशंसन् भिक्षार्थं चरति सः। ब्राह्मणदानप्रशंसा यथा--

" लोगाणुग्गहकारिसु, भूमीदेवेसु बहुफलं दाणं।
अविणाम बंभवंधुसु, किं पुण छक्कम्मनिरयाणं ॥१॥"

वे हैं, जो अपनी दरिद्रताके प्रकाशनपूर्वक अपने लिये दिये जा रहे दानकी प्रशंसा करता है। कृपणदानकी प्रशंसा इस प्रकारसे है—

" किविणेसु दुम्मणेसु य " इत्यादि।

जिनका कोई बन्धु नहीं है, आतङ्कसे जो सदा युक्त बने रहते हैं, शरीर जिनका उपाङ्ग आदिसे रहित हो रहा है, ऐसे कृपण दुःखित जनोंके लिये जो देता है, वह अपनी दान पताकाको इस लोकमें फहराता है।

जो वनीपक ब्राह्मणके लिये दिये जाते दानकी प्रशंसा करता हुआ भिक्षाके लिये भ्रमण करता है, वह ब्राह्मण वनीपक है, ब्राह्मण दान प्रशंसा इस प्रकारसे है-" लोगाणुग्गहकारिसु " इत्यादि।

लोकका अनुग्रह करनेवाले भूमिदेवोंमें ब्राह्मणोमें दिया गया दान

જે યાચક પોતાની દીનતા પ્રકટ કરીને દાતા પાસે દાન માગે છે અને પોતાને આપવામાં આવતા દાનની પ્રશંસા કરે છે તેને ' કૃપણ વનીપક ' કહે છે. કૃપણદાનની પ્રશંસા આ પ્રમાણે કરી છે—" किविणेसु दुम्मणेसु य " ઇત્યાદિ જેમને કોઇ બન્ધુ નથી, જેઓ સદા આતંકથી યુક્ત જ રહ્યા કરે છે, જેમનું શરીર ઉપાંગ આદિથી રહિત હોય, એવા કૃપણ દુઃખિતજનોને જે માણસ દાન આપે છે, તે પોતાની યશપતાકાને આ લોકમાં ફરકાવે છે

જે વનીપક (યાચક) બ્રાહ્મણને અપાતા દાનની પ્રશંસા કરી કરીને દાતા પાસેથી દાનની યાચના કરે છે તેને બ્રાહ્મણ વનીપક કહે છે. બ્રાહ્મણને અપાતા દાનની આ પ્રમાણે પ્રશંસા કરવામાં આવે છે.

" लोगाणुग्गहकारिसु " ઇત્યાદિ—

લોકોનું કલ્યાણ કરનાર ભૂદેવોને (બ્રાહ્મણોને) આપવામાં આવતું દાન

छाया--लोकानुग्रहकारिषु भूमिदेवेषु बहुफलं दानम् ।
अपि नाम ब्रह्मबन्धुषु किं पुनः षट्कर्मनिरतेषु । १॥ इति ।

ब्रह्मबन्धवः=जन्मना ब्राह्मणा न तु कर्मणा ।

तथा-श्ववनीपकः-श्वार्थं वनीपकः । श्वभ्यो दीयमानस्य दानस्य प्रशंसा यथा-

" अविणाम होज्ज सुलभो, गोणाईणं तणाइ आहारो ।
छिच्छिकारहयाणं, न हु सुलभो होज्ज सुणयाणं ॥१॥
केलासभवणा एए, गुज्झगा आगया महिं ।
चरंति जक्खरूवेणं, पूयाऽपूया हियाऽहिया ॥२॥"

छाया--अपि नाम भवेत् सुलभो गवादीनां तृणादिराहारः ।
छिच्छीकारहतानां न खलु सुलभो भवेत् शुनकानाम् ॥१॥
कैलासभवनादेते गुह्यका आगता महीम् ।
चरन्ति यक्षरूपेण पूजिता अपूजिता हिता अहिताः । २॥ इति।

बहुत फलवाला होता है, जब ऐसी बातहै तो फिर षट्कर्म निरत ब्रह्मबन्धुओंमें दिये गये दानकी बातही क्या कहनी ? यहां ब्रह्मबन्धुसे जो जन्मसे ब्राह्मण है, कर्मसे नहीं ऐसा ब्राह्मण लिया गया है ।

जो कुत्तोंके लिये वनीपक होता है, वह श्ववनीपक है, वह कुत्तोंके लिये दिये गये दानकी प्रशंसा इस प्रकारसे करता है-" अविणाम होज्ज सुलभो " इत्यादि ।

गवादिकोंके लिये तो तृणादिका आहार सुलभ होता है, परन्तु छिछीकारसे हत हुए कुत्तोंको आहार सुलभ नहीं होता है, ये कुत्ते, कैलासभवनसे आये हुए गुह्यक-देव विशेष हैं । ये यक्षरूपसे पृथ्वी

ઘણું જ ફલદાયી ગણાય છે. તો પછી ષટ્કર્મ નિરત બ્રહ્મબન્ધુઓને અર્પણ કરાતાં દાનના ફળની તો વાત જ શી કરવી ! અહી ભૂદેવ પદ જન્મે બ્રાહ્મણ કર્મે બ્રાહ્મણ નહીં એવા બ્રાહ્મણનું વાચક છે. અને " બ્રહ્મબન્ધુ " પદ જન્મે પણ બ્રાહ્મણ અને કર્મે પણ બ્રાહ્મણનું વાચક છે.

જે વનીપક કૂતરાઓને નિમિત્તે અપાતાં દાનની પ્રશંસા કરે છે તેને ' શ્વવનીપક ' કહે છે કૂતરાને માટે અપાતાં દાનની આ પ્રમાણે પ્રશંસા કરવામાં આવે છે.

ગાયઆદિને તો ઘાસચારો આદિ આહાર સરળતાથી પ્રાપ્ત થાય છે, પરંતુ જેના પ્રત્યે લોકો નફરતથી જુવે છે અને જેને લોકો હડધૂત કરે છે એવા કૂતરાઓને તો આહારપ્રાપ્તિ દુર્લભ થઇ પડે છે તે કૂતરાઓ કૈલાસ ભવનમાંથી આવેલા ગુહ્યકો (દેવવિશેષો) છે તેઓ યક્ષ રૂપે ભૂમિપર સંચરણ

गुह्यकाः–देवविशेषाः। एते पूजिताः–भोजनादिना सत्कृता हिताय, अपूजिता अहिताय भवन्तीति भावः। तथा–श्रमणवनीपकः–निर्ग्रन्थशाक्यतापसगैरिकाजीवकरूपः पञ्चविधः श्रमणः। तत्र निर्ग्रन्थो वनीपको न भवति। शाक्यादय एव वनीपका उच्यन्ते। तत्र शाक्यश्रमणवनीपकदानप्रशंसा यथा––

" भुंजति चित्तकम्मट्ठिया व कारुणिय दाणरुइणो य।
अविकामगदभेसु वि न नस्सए किंपुण जईसु ॥१॥

छाया––भुञ्जन्ति चित्रकर्मे स्थिता इव कारुणिका दानरुचयश्च।
अपि नाम कामगर्दभेषु अपि न नश्यति किं पुनर्यतिषु ॥१॥ इति।

कामगर्दभाः–विषय लोलुपास्तेषु दत्तं दानमपि न नश्यति किं पुनर्यतिषु दत्तम् एवमेव तापसवनीपकादि दानप्रशंसाऽपि अवगम्येति।सू० १४॥

पर चलते रहते हैं। भोजनादिसे जो इनका सत्कार करता है, वह उसके हितके लिये होता है, और जो इनका सत्कार नहीं करता है, वह उसके आहितके लिये होता है।

श्रमणवनीपक–निर्ग्रन्थ, शाक्य, तापस, गैरिक और आजीवकके भेदसे पांच प्रकारका है, इनमें जो निर्ग्रन्थ होता है, वह वनीपक नहीं होता है, किन्तु जो शाक्य आदि होते हैं, वे ही वनीपक कहलाते हैं। इनमें शाक्य श्रमण वनीपक दान प्रशंसा इस प्रकारसे है-" भुंजति चित्तकम्मट्ठिया " इत्यादि।

जो प्राणी विषयोंमें लोलुप हैं, उनमें दिया गया दान भी जब नष्ट नहीं होता है, तो फिर यति जनोंमें दिया गया दान निष्फल कैसे हो सकता है। इसी प्रकारसे दानकी प्रशंसा जानना चाहिये ॥सू० १४॥

કરતા રહે છે ભોજનાદિ વડે તેમનો સત્કાર કરનારનું કલ્યાણ થાય છે, અને તેમને ભોજનાદિ વડે તૃપ્ત નહીં કરનારનું અહિત થાય છે

શ્રવણુવનીપકના પાંચ પ્રકાર છે—(૧) નિર્ગ્રંથ, (૨) શાક્ય, (૩) તાપસ, (૪) ગૈરિક અને (૫) આજીવક તેમાંથી જે નિર્ગ્રંથ હોય છે, તેઓ વનીપક હોતા નથી, પરન્તુ શાક્ય આદિ જ વનીપક હોય છે. શાક્યશ્રમણ વનીપકને અપાતાં દાનની પ્રશંસા આ પ્રમાણે કરવામાં આવી છે.

" ભુજતિ ચિત્તકમ્મટ્ઠિયા " ઇત્યાદિ

વિષય લોલુપ મનુષ્યને દેવામાં આવેલુ દાન પણ જો નષ્ટ થતું નથી, તો યતિઓને અપાતાં દાનની તો વાત જ શી કરવી! આ પ્રકારની દાનની પ્રશંસા સમજવી. ॥ સૂ. ૧૪ ॥

अनन्तरसूत्रे पञ्चविधो वनीपकः प्रोक्तः। स च साध्वाभासो न तु साधुः। साधुश्च अचेल एव भवतीति अचेलकस्य पञ्च प्रशस्त स्थानानि प्राह--

मूलम्--पंचहिं ठाणेहिं अचेलए पसत्थे भवइ, तं जहा--अप्पापडिलेहा १, लाघविए पसत्थे २, रूवे वेसासिए ३, तवे अणुण्णाए ४, विउले इंदियनिग्गहे ५ ॥ सू० १५ ॥

छाया-पञ्चभिः स्थानैरचेलकः प्रशस्तो भवति, तद्यथा-अल्पा प्रतिलेखा १, लाघविकं प्रशस्तम् २, रूपं वैश्वासिकम् ३, तपः अनुज्ञातम् ४, विपुल इन्द्रिय निग्रहः ५।१५।

टीका--'पंचहिं ठाणेहिं' इत्यादि--

अचेलकः-न सन्ति चेलानि=वस्त्राणि यस्य सः। स च जिनकल्पिकस्थविरकल्पिकभेदेन द्विविधः। तत्र जिनकल्पिकस्याचेलत्वं चेलाभावादेव। स्थविरकल्पिकस्तु अत्यल्पमूल्यकपरिमितजीर्णमलिन-वस्त्रधारकः। अचेलकत्वं चास्य

अनन्तर सूत्रमें जो पांच प्रकारके वनीपक कहे गये हैं, सो वनीपक साध्वा भासरूप होते हैं, सच्चे साधु नहीं होते हैं। क्योंकि सत्य साधु जो होता है, वह तो अचेलही होता है, इसलिये अब सूत्रकार अचेलताके पांच प्रशंसा स्थानोंका कथन करते हैं--

पंचहिं ठाणेहिं अचेलए इत्यादि सूत्र १५ ॥

टीकार्थ--जिसको वस्त्र नहीं होते हैं, वह अचेलक है, यह अचेलक जिन कल्पिक और स्थविरकल्पिकके भेदसे दो प्रकारका होता है, इनमें चेलके अभावसे जिनकल्पिकमें अचेलता है। तथा जो स्थविरकल्पिक हैं, उनमें जो अचेलता आती है, वह अत्यल्प मूल्यवाले परि-

---

આગલા સૂત્રમાં વનીપકના પાંચ પ્રકારનું નિરૂપણ કરવામાં આવ્યું. તે વનીપક સાચા સાધુ હોતા નથી-તેઓ તો સાધુ હોવાનો ભાસ જ કરાવે છે સાચો સાધુ તો અચેલ (વસ્ત્રરહિત) જ હોય છે. તેથી હવે સૂત્રકાર અચેલના પાંચ પ્રશંસાસ્થાનોનું કથન કરે છે.

"પંચહિં ઠાણેહિં અચેલર" ઇત્યાદિ—

જેમને વસ્ત્ર હોતાં નથી તેમને અચેલક કહે છે. તે અચેલકના નીચે પ્રમાણે બે પ્રકાર કહ્યા છે—(૧) જિનકલ્પિક અને (૨) સ્થવિર કલ્પિક. ચેલ (વસ્ત્ર) ના અભાવને લીધે જિનકલ્પિકમાં અચેલતા કહી છે. સ્થવિર કલ્પિકોમાં અલ્પમૂલ્યવાળાં, પરિમિત, જીર્ણશીર્ણ અને મલિન વસ્ત્રોને ધારણ કરવાને

तथाविधवस्त्रधारकत्वादेव। अयं च सदोरकमुखवस्त्रिका रजोहरणप्रभृति त्रिविधा द्युपकरणधारकः। सोऽयमचेलकः पञ्चभिः स्थानैः प्रशस्तः=प्रशंसनीयो भवति तीर्थकरगणधरादिभिः। तान्येव स्थानान्याह-तद्यथा-अल्पा प्रतिलेखा=प्रतिलेख्योपधेः स्वल्पत्वसद्भावाद् अल्पं प्रतिलेखनम्। इत्थं च न तेषां स्वाध्यायादौ प्रतिघातो भवतीति बोध्यम्। इति प्रथमं स्थानम् १। लाघविकं प्रशस्तम्-प्रशस्तम्=अनिन्द्यं यथास्यात्तथा लाघविकम्-लघोर्भावो लाघवं तदेव लाघविकं द्रव्यतो भावतश्च। इति द्वितीयं स्थानम् २। रूपं वैश्वासिकम्-रूपम्=सदोरकमुखवस्त्रिकारजोहरणादिधारणलक्षणः साधुवेषः, वैश्वासिकम्=विश्वासोत्पादकम् निर्लो-

भित जीर्णशीर्ण मलिन वस्त्रोंके धारण करनेसे आती है। यह स्थविरकल्पिक सदोरकमुखवस्त्रिका एवं रजोहरण आदि त्रिविध उपकरणका धारक होता है, ऐसा वह अचेलक पांच स्थानोंसे प्रशस्त प्रशंसनीय तीर्थकर गणधरादिकोंसे कहा गयाहै। ये पांच स्थान इस प्रकारसेहैं-एक अल्पा प्रतिलेखा १ दूसरा-प्रशस्त लाघविक २ तीसरा-वैश्वासिक रूप ३ चौथा-अनुज्ञाततप ४ एवं पांचवां-विपुल इन्द्रिय निग्रह ५।

प्रतिलेखन करने योग्य जो उनके पास उपधि होती है, वह अत्यल्प होती है, इसलिये उनका प्रतिलेखन कर्म भी अल्प होता है, अतः उन्हें स्वाध्याय आदि करनेमें प्रतिघात नहीं होता है, इस प्रकारका यह प्रथम स्थान है, द्रव्य और भावकी अपेक्षा लघुताका होना यह प्रशस्त लाघविक है। ऐसा यह द्वितीय स्थान है। सदोरक मुखवस्त्रिका एवं रजोहरण आदिरूप जो साधुवेष उनका होताहै, वह निर्लोभताका

કારણે અચેલના સમજવી. તે સ્થવિરકલ્પિક સાધુઓ સદોરક મુહપત્તી, રજોહરણ આદિ ત્રિવિધ ઉપકરણના ધારણ કરનારા હોય છે. એવા તે અચેલકોને તિર્થંકરોએ અને ગણધરોએ નીચેનાં પાંચ કારણોને લીધે પ્રશસ્ત કહ્યાં છે—(૧) અલ્પા પ્રતિલેખના, (૨) પ્રશસ્ત લાઘવિક, (૩) વૈશ્વાસિક રૂપ, (૪) અનુજ્ઞાત તપ અને (૫) વિપુલ ઇન્દ્રિય નિગ્રહ.

તેની પાસે પ્રતિલેખના કરવા લાયક જે ઉપધિ હોય છે, તે અતિ અલ્પ હોય છે. તેથી તેની પ્રતિલેખના કરવાનું કામ પણ અલ્પ જ હોય છે, તેથી તેને સ્વાધ્યાય આદિ કરવામાં પ્રતિઘાત થતો નથી. આ પ્રકારનું આ પ્રથમ સ્થાન છે.

બીજું સ્થાન—દ્રવ્ય અને ભાવની અપેક્ષાએ લઘુતાનો સદ્ભાવ હોવો તેનું નામ પ્રશસ્ત લાઘવિક છે.

ત્રીજું સ્થાન—સદોરક મુહપત્તી, રજોહરણ આદિ રૂપ તેનો જે વેષ હોય છે તે નિર્લોભતાનો સૂચક હોવાથી અન્ય લોકોમાં વિશ્વાસોત્પાદક થઈ પડે છે.

भताम्रूचकत्वादिति तृतीयं स्थानम् ३। तपः=शरीरोपकरणसंगोपनरूपम् अनुज्ञात= तीर्थकरानुमोदितं स्यादिति चतुर्थम् ४। तथा-विपुल इन्द्रियनिग्रहः-इन्द्रियाणां निग्रहो-नियमनं विपुलो=महान् भवेत्, प्रतिकूलशीतवातातपादि सहनादिति पञ्चमं स्थानमिति ५। अचेलकविषये विशेषजिज्ञासुभिरुत्तराध्ययनसूत्रस्य द्वितीयेऽध्ययने त्रयोदशगाथाया मत्कृता प्रियदर्शिनी टीकाऽवलोकनीयेति ॥ सू० १५ ॥

इन्द्रियनिग्रहं च सत्त्वोत्कटा एव कर्तुं प्रभवन्तीति उत्कटानां पञ्चभेदानाह-

मूलम्—पंच उक्कला पण्णत्ता, तं जहा—दंडुक्कले १ रज्जुक्कले २ तणुक्कले ३ देसुक्कले ४ सव्वुक्कले ५॥सू० १६ ॥

छाया—पञ्च उत्कटाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-दण्डोत्कटो १ राज्योत्कटः २ स्तैन्योत्कटः ३ देशोत्कटः ४ सर्वोत्कटः ५ ॥ सू० १६ ॥

सूचक होनेसे विश्वासोत्पादक होता है। ऐसा यह तृतीय स्थान होता है। शरीर और उपकरणका संगोपनरूप जो तप है, कि जिसे वे करते हैं, वह तीर्थकरादि द्वारा अनुमोदित होता है। ऐसा यह चतुर्थ स्थान है। तथा उनका जो इन्द्रियोंका निग्रह होता है, वह महान् होता है, क्योंकि प्रतिकूल शीत, वात, आतप आदिको वे सहन करते हैं, ऐसा यह पांचवां स्थान है। अचेलकके विषयमें विशेष जाननेके अभिलाषियोंको उत्तराध्ययन सूत्रके द्वितीय अध्ययनमें आगत १३ वीं गाथाकी प्रियदर्शिनी टीका देखनी चाहिये ॥सू० १५॥

इन्द्रियोंका निग्रह वे ही कर सकते हैं, जो उत्कट होते हैं, अतः अब सूत्रकार उत्कटोंके पांच भेदोंका कथन करते हैं—

'पंच उक्कला पण्णत्ता' इत्यादि सूत्र १६ ॥

ચોથું સ્થાન—શરીર અને ઉપકરણના સંગોપન રૂપ જે તપ તેઓ કરે છે, તે તિર્થંકરાદિ દ્વારા અનુમોદિત છે

પાંચમું સ્થાન—તેઓ ઇન્દ્રિયોનો ખૂબ જ નિગ્રહ કરે છે. પ્રતિકૂળ ટાઢ તાપ, પવન આદિ તેઓ સહન કરે છે

અચેલકના વિષયમાં વધુ માહિતી મેળવવાની જિજ્ઞાસાવાળા પાઠકોએ ઉત્તરાધ્યયન સૂત્રના બીજા અધ્યયનની ૧૩ મી ગાથાની મારા દ્વારા લખાયેલી પ્રિયદર્શિની ટીકા વાંચી જવી. ॥ સૂ. ૧૫ ॥

टीका—' पंच उक्कला ' इत्यादि—

डलयोरभेदात् ' उक्कला ' इत्यस्य ' उत्कटाः ' इतिच्छाया । उत्कटा= प्रकृष्टाः पञ्चसंख्यकाः प्रज्ञप्ताः । तत्र प्रत्येकं नामतो निर्दिशति–तद्यथा–दण्डोत्कटः–दण्डः–आज्ञा अपराधे सति दमनं वा उत्कटः=प्रकृष्टः–प्रबलो यस्य स तथा । दण्डेन वा उत्कटो दण्डोत्कट इति ॥ १ ॥ एवं राज्योत्कट स्तैन्योत्कटादिष्वपि बोध्यम् । तत्र–राज्य=प्रभुताम् । स्तैन्यम्=चौर्यम् । देशः–प्रसिद्धः । सर्व= दण्डादि समस्तम् । इति । ' उत्कल ' इतिच्छाया पक्षेतु ' दण्डोत्कलः ' इत्यादि

टीकार्थ—पांच प्रकारके उत्कट कहे गये हैं, जैसे–दण्डोत्कट १ राज्योत्कट २ स्तैन्योत्कट ३ देशोत्कट ४ और सर्वोत्कट ५ ड और ल में अभेद होनेसे " उक्कल " इसकी संस्कृतच्छाया उत्कट ऐसी होती है। उत्कट शब्दका अर्थ प्रकृष्ट है । ये प्रकृष्ट दण्डोत्कट आदिके भेदसे पांच प्रकारके कहे गये हैं–दण्ड नाम आज्ञा है, अथवा अपराधके होने पर दमन करना इसका नाम दण्ड है, यह दण्ड जिसका प्रबल होता है वह दण्डोत्कट है, अथवा–जो दण्डसे उत्कट होता है, वह दण्डोत्कट है। इसी तरहका कथन राज्योत्कट स्तैन्योत्कट आदिके सम्बन्धमें भी जानना चाहिये । राज्य नाम प्रभुताका है, और स्तैन्य नाम चोरीका है, देश प्रसिद्ध हैं । तथा–दण्डादि समस्तसे जो उत्कट होता है, वह सर्वोत्कट है । " उक्कल "की जब संस्कृत छाया " उत्कल " ऐसी होगी

જે જીવો ઉત્કટ હોય છે તેઓ જ ઇન્દ્રિયોનો નિગ્રહ કરી શકે છે. તેથી હવે સૂત્રકાર ઉત્કટોના પાંચ ભેદોનું નિરૂપણ કરે છે.

" પંચ उक्कला पण्णत्ता " ઈત્યાદિ—

પાંચ પ્રકારના ઉત્કટ કહ્યા છે તે પ્રકારો નીચે પ્રમાણે છે—(૧) દંડોત્કટ, (૨) રાજ્યોત્કટ, (૩) સ્તૈન્યોત્કટ, (૪) દેશોત્કટ અને (૫) સર્વોત્કટ.

" ड " અને ' ल ' માં અભેદ હોવાથી " उक्कल " ની સંસ્કૃત છાયા ' उत्कट " થાય છે. ઉત્કટ શબ્દનો અર્થ પ્રકૃષ્ટ થાય છે. તે પ્રકૃષ્ટના દંડોત્કટ આદિ પાંચ પ્રકાર કહ્યા છે. દંડ એટલે આજ્ઞા. અથવા અપરાધ થઈ જાય ત્યારે દમન કરવું તેનું નામ દંડ છે તે દંડ જેનો પ્રબલ હોય છે તેને દંડોત્કટ કહે છે અથવા જે દંડની અપેક્ષાએ ઉત્કટ હોય છે તેને દંડોત્કટ કહે છે એ જ પ્રકારનું કથન રાજ્યોત્કટ, સ્તૈન્યોત્કટ આદિના વિષે પણ સમજવું. રાજ્ય નામ પ્રભુતાનું છે અને ચોરીને સ્તૈન્ય કહે છે. દેશ શબ્દ જાણીતો છે. તથા દંડાદિ સમસ્તની અપેક્ષાએ જે ઉત્કટ હોય છે, તેને સર્વોત્કટ કહે છે.

च्छाया। उत्कलतीत्युत्कलः=प्रवृद्ध इत्यर्थः। दण्ड उत्कलो यस्य सः, दण्डेन वा उत्कल इति विग्रहः। एवं राज्योत्कलादिष्वपि विग्रहो बोध्य इति॥ सू० १६॥

उत्कटोऽनन्तरसूत्रे पञ्चविधः प्रोक्तः। स चासंयत एव। संयतस्तु समितिभिरेव उत्कटो भवतीति पञ्चविधाः समितीः प्राह—

मूलम्—पंच समिईओ पण्णत्ताओ। तं जहा—ईरियासमिई १ भासासमिई २ जाव पारिट्ठावणियासमिई ५॥ सू० १७॥

छाया—पञ्च समितयः प्रज्ञप्ताः। तद्यथा—ईर्यासमितिः १ भाषासमितिः २ यावत् परिष्ठापनिकासमितिः ५॥ सू० १७॥

टीका—'पंच समिईओ' इत्यादि—

समितयः—सम्यक्=एकीभावेन इतयः=प्रवृत्तयः, शोभनैकाग्र परिणामवतश्चेष्टा।

तो इस पक्षमें उत्कल शब्दका अर्थ प्रवृद्ध होना है, इस तरह दण्डसे जो उत्कल है, वह अथवा दण्ड जिसका उत्कल है, वह दण्डोत्कल है। इसी तरहसे राज्योत्कल आदिमें भी विग्रह जानना चाहिये। सू० १६।

इस अनन्तर सूत्रमें जो यह उत्कट पांच प्रकारका कहा गया है, वह असंयतही होता है, तथा जो संयत होता है, वह तो समिति आदिसेही उत्कट होताहै, अतः अब सूत्रकार पांच समितियोंका कथनकरतेहैं 'पंच समिईओ पण्णत्ताओ' इत्यादि सूत्र १७॥

टीकार्थ—समितियां पांच कही गईहैं जैसे—ईर्यासमिति १ भाषासमिति २ यावत्परिष्ठापनिका समिति ५ एकीभावसे जो प्रवृत्तियां उनका नाम समिति है, शोभन एकाग्र परिणामवालेकी जो चेष्टाएँ हैं, वे

"उक्कल" આ પદની સંસ્કૃત છાયા "उत्कल" લેવામાં આવે, તો તેનો અર્થ 'પ્રવૃદ્ધ' થાય છે. તો તેના દંડોત્કલ, રાજ્યોત્કલ આદિ પાંચ પ્રકારો પડે છે દંડની અપેક્ષાએ જે ઉત્કલ છે તેને અથવા જેનો દંડ ઉત્કલ છે તેને દંડોત્કલ કહે છે એજ પ્રમાણે રાજ્યોત્કલ આદિ વિષે પણ સમજવું. ॥ સૂ. ૧૬ ॥

આગલા સૂત્રમાં જે પાંચ પ્રકારના ઉત્કટ કહ્યા તેઓ અસંયત જ હોય છે. સંયતો સમિતિ આદિની અપેક્ષાએ જ ઉત્કટ હોય છે. તેથી હવે સૂત્રકાર પાંચ સમિતિઓનું કથન કરે છે. "પંચ સમિઈઓ પણ્ણત્તાઓ" ઇત્યાદિ—

સમિતિઓ પાંચ કહી છે—(૧) ઈર્યાસમિતિ, (૨) ભાષાસમિતિ, (૩) એષણા સમિતિ, (૪) આદાન ભાંડ માત્ર નિક્ષેપણ સમિતિ અને (૫) પરિષ્ઠાપનિકા સમિતિ.

इत्यर्थः, ताः पञ्च प्रज्ञप्ताः । ता एव समितीः प्राह-तद्यथा-ईर्यासमितिः-ईरणम् ईर्या=गमनं तत्र समितिः=सम्यक् प्रवृत्तिः । ईर्यासमिति नाम जीवरक्षार्थं पुरतो युग्यमात्रभूभागन्यस्तदृष्टिना गमनम् । तथा-भाषासमितिः-भाषणं भाषा= वाणी, तस्यां समितिः । भाषासमितिर्नाम सावद्यपरिहारपूर्वकं निरवद्यहितमितासन्दिग्धार्थभाषणम्, यावच्छब्दात्-एषणासमितिरादानभाण्डामत्रनिक्षेपणासमितिश्च ग्राह्या । तत्र-एषणासमितिः-एषणमेषणा=तस्यां समितिः । एषणासमिति नाम द्वात्रिंशद्दोषवर्जनेन भक्तादिग्रहणे प्रवृत्तिः । तथा-आदानभाण्डामत्रनिक्षेपणासमितिः-भाण्डामत्रयोरादाने=ग्रहणे निक्षेपणे=स्थापने च समितिः=

समितियां हैं, ये समितियां ईर्यासमिति आदिके भेदसे पांच प्रकारकी कही गई है, उनमेंसे जो साधु गमनमें सम्यक् प्रवृत्ति करता है ऐसी उसकी वह प्रवृत्ति ईर्यासमिति है । इस ईर्यासमितिमें प्रवृत्त हुआ साधु षट्जीवनिकायके रक्षाके निमित्त युग्यमात्र (झूसरा प्रमाण) भूभागका निरीक्षण करता हुआ आगे २ चलना है । सावद्य वचनके परिहारपूर्वक निरवद्य हितमित एवं असंदिग्ध अर्थका कथन करना हितमित प्रिय वचन बोलना इसका नाम भाषासमिति है । यहां यावत् शब्दसे "एषणासमिति आदानभाण्डमात्रनिक्षेपण समिति" इन दो समितियोंका ग्रहण हुआ है । ४२ दोषरहित आहारके ग्रहणमें जो प्रवृत्ति है वह एषणासमिति है भाण्ड एवं पात्रके लेनेमें और धरनेमें जो सुप्रतिलेखना एवं सुप्रमार्जना आदि यतनापूर्वक प्रवृत्ति है, वह आदानभाण्डमात्रनिक्षेपणा समिति

જતનાપૂર્વકની જે પ્રવૃત્તિઓ છે તેમનુ નામ સમિતિ છે. અથવા શોભન એકાગ્ર પરિણામવાળાઓની જે પ્રવૃત્તિઓ છે, તેમનું નામ સમિતિ છે. ચાલતી વખતે જતનાપૂર્વક ચાલવું, જીવહિંસા ન થાય એવી રીતે ચાલવું, એવી ગમનની સમ્યક્ પ્રવૃત્તિ કરનાર સાધુની તે પ્રવૃત્તિને ઈર્યાસમિતિ કહે છે જીવરક્ષા માટે સાધુએ ચાલતી વખતે યુગ્યપ્રમાણ (ધૂંસરી પ્રમાણ) ભૂમિનું નિરીક્ષણ કરતા કરતાં આગળ ચાલવું જોઈએ.

સાવદ્ય વચનના પરિત્યાગપૂર્વક નિરવદ્ય, હિત, મિત અને અસંદિગ્ધ વચન બોલવું તેનું નામ ભાષાસમિતિ છે.

૪૨ દોષોથી રહિત આહાર ગ્રહણ કરવાની સાધુની જે પ્રવૃત્તિ છે તેને એષણા સમિતિ કહે છે. ભાંડ (પાત્ર) અને માત્રને લેતી વખતે અને મૂકતી વખતે જે સુપ્રતિલેખના અને સુપ્રમાર્જના આદિ પૂર્વકની પ્રવૃત્તિ થાય છે, તેને "આદાન ભાંડામત્ર નિક્ષેપણા સમિતિ" કહે છે.

सुप्रतिलेखितसुप्रमार्जितादिक्रमेण प्रवृत्तिः । तथा-परिष्ठापनिकासमितिः-उच्चारस्य=पुरीषस्य, प्रस्रवणस्य=मूत्रस्य, खेलस्य=श्लेष्मणः, शिङ्घाणस्य नासिकोद्भवमलस्य, जल्लस्य=शरीरमलस्य च परिष्ठापनिकायां=त्यागे समितिः=सम्यक् प्रवृत्तिः ॥ सू० १७ ॥

निर्ग्रन्थाश्च जीवरक्षार्थमेव समितियुक्ता भवन्तीति जीवस्वरूपमाह—

मूलम्--पंचविहा संसारसमावन्नगा जीवा पण्णत्ता, तं जहा--एगिंदिया जाव पंचिंदिया । एगिंदिया पंचगइया पंचागइया पण्णत्ता, तं जहा--एगिंदिए एगिंदिएसु उववज्जमाणे एगिंदिएहिंतो जाव पंचिंदिएहिंतो वा उववज्जेज्जा, से चेव णं एगिंदिए एगिंदियत्तं विप्पजहमाणे एगिंदियत्ताए वा जाव पंचिंदियत्ताए वा गच्छेज्जा २। बेंदिया पंचगइया पंचागइया एवं चेव ३। एवं जाव पंचिंदिया पंचगइया पंचागइया पण्णत्ता ४। पंचिंदिया जाव गच्छेज्जा ५। पंचविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा--कोहकसाई जाव लोहकसाई अकसाई । अहवा पंचविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा--नेरईया जाव देवा सिद्धा ॥सू०१८॥

छाया—पञ्चविधाः संसारसमापन्नका जीवाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-एकेन्द्रिया यावत् पञ्चेन्द्रियाः । एकेन्द्रियाः पञ्चगतिकाः पञ्चागतिकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-एकेन्द्रियएकेन्द्रियेषु उत्पद्यमान एकेन्द्रियेभ्यो यावत् पञ्चेन्द्रियेभ्यो वा उपपद्यते, स एव खलु एकेन्द्रिय एकेन्द्रियत्वं विप्रजहत् एकेन्द्रियतया वा यावत् पञ्चेन्द्रियतया वा गच्छति २। द्वीन्द्रियाः पञ्चगतिकाः पञ्चागतिका एवमेव ३। एवं यावत् पञ्चेन्द्रियाः पञ्चगतिकाः पञ्चागतिकाः प्रज्ञप्ताः ४, पञ्चेन्द्रिया यावत् गच्छन्ति ५। पञ्चविधाः सर्वजीवाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—क्रोधकषायिणो यावत् लोभ

है, एवं मलमूत्रके श्लेष्माके शिङ्घाण-नाकके मलके जल्ल शरीरके मैलके त्यागमें जो सम्यक् प्रवृत्ति है वह परिष्ठापनिका समिति है ॥सू० १७॥

મળમૂત્ર, કફ, શિંઘાણુ-નાકમાંથી નીકળતો ચીકણો પદાર્થ અને જલ્લ (શરીરનો મેલ) ના ત્યાગની જે સમ્યક્ પ્રવૃત્તિ છે તેનું નામ 'પરિષ્ઠાપનિકા સમિતિ છે. ॥ સૂ. ૧૭ ॥

कषायिणः अकषायिणः । अथवा-पञ्चविधाः सर्वजीवाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-नैरयिका यावत् देवाः सिद्धाः ॥ सू० १८ ॥

टीका—'पंचविहा' इत्यादि—

संसारसमापन्नकाः-संसरणं संसारः=नारकतिर्यग्नरामरभवानुभवभ्रमणलक्षणः, तं सम्यक्=एकीभावेन आपन्नाः=प्राप्ताः, संसारसमापन्नाः, त एव संसारसमापन्नकाः-भववर्तिनो जीवा इत्यर्थः । ते च पञ्चविधाः कथिताः । पञ्चविधत्वमेव प्राह-तद्यथा-एकेन्द्रियाः=एकेन्द्रियजीवाः, यावत्-पञ्चेन्द्रियाः=पञ्चन्द्रियजीवाः । यावत्पदेन-द्वीन्द्रियत्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रियजीवा ग्राह्याः । एते प्रत्येकं पञ्चगतिकाः पञ्चागतिकाश्च भवन्ति । तदेव प्रदर्शयति-'एगिंदिया पंचगइया'-इत्यादि । एकेन्द्रियाः-एकं=स्पर्शनलक्षणम् इन्द्रियं येषां ते तथाभूता जीवाः

निर्ग्रन्थ जीवरक्षाके निमित्तही समितियोंसे युक्त होते हैं, अतः अब सूत्रकार जीवके स्वरूपका कथन करते हैं—

'पंचविहा संसारसमावन्नगा' इत्यादि सूत्र १८ ॥

टीकार्थ-नारक तिर्यक् मनुष्य और देवके भवोंका भोगना-उनमें भ्रमण करना इसका नाम संसार है, इस संसारको जो एकीभावसे प्राप्त हैं, वे संसारसमापन्नक हैं । तात्पर्य यह है कि जो भववर्त्ती जीव हैं वे संसारसमापन्नक हैं । ये संसारसमापन्नक जीव एकेन्द्रिय यावत् पञ्चेन्द्रिय जीवसे पांच प्रकारके हैं । यहां यावत्पदसे "द्वीन्द्रिय, तीन्द्रिय एवं चतुरिन्द्रिय" जीवोंका ग्रहण हुआ है । ये प्रत्येक पंचगतिक और पंच आगतिक होते हैं। यही बात अब सूत्रकार प्रकट करते हैं-"एगिंदिया पंचगइया" इत्यादि । जिनको एक स्पर्शन इन्द्रिय होती है वे

નિર્ગ્રંથો જીવરક્ષાને નિમિત્તે જ પાંચ સમિતિઓથી યુક્ત હોય છે, તેથી હવે સૂત્રકાર જીવના સ્વરૂપનું કથન કરે છે.

"પંચવિહા સંસારસમાવન્નગા" ઇત્યાદિ—

ટીકાર્થ-નારક, તિર્યંચ, મનુષ્ય અને દેવના ભવોને ભોગવવા તે ભવોમાં ભ્રમણ કરવું તેનું નામ સંસાર છે જેઓ આ સંસારમાં ઉપર્યુક્ત કોઈ પણ ગતિનું જીવન જીવી રહ્યા છે તેમને સંસાર સમાપન્નક કહે છે. એટલે કે ભવવર્તી જીવોને સંસાર સમાપન્નક કહે છે તેમના એકેન્દ્રિયથી લઈને ૫ ચેન્દ્રિય પર્યન્તના પાંચ ભેદ કહ્યા છે તે પ્રત્યેક પંચગતિક અને પંચ આગતિક હોય છે. એ જ વાત સૂત્રકાર હવે પ્રકટ કરે છે. "एगिंदिया पंचगइया" ઇત્યાદિ—

જે જીવોને એક માત્ર સ્પર્શેન્દ્રિયનો જ સદ્‌ભાવ હોય છે, તેમને એકે-

पञ्चगतिकाः-पञ्चसु गतिः=गमनं येषां ते तथा, पञ्चागतिकाः-पञ्चभ्य आगतिः= आगमनं येषां ते तथाभूताश्च प्रज्ञप्ताः। तत्र एकेन्द्रियाणां पञ्चागतिकत्वमाह- तद्यथा-एकेन्द्रियेषु=एकेन्द्रियाणां मध्ये एकेन्द्रिय उत्पद्यमानः=एकेन्द्रियत्वेन जायमानो जीवः एकेन्द्रियेभ्यो यावत् पञ्चेन्द्रियेभ्यो वा=एकेन्द्रियादि पञ्चेन्द्रि- यान्तानां मध्ये कुतश्चिदागत्य उत्पद्यते=जायते। इत्थं पञ्चागतिकत्वमुक्त्वा सम्प्रति पञ्चगतिकत्वमाह—'से चेव णं' इत्यादिना। स एव खलु एकेन्द्रियः=य एकेन्द्रियादेः कस्माच्चिदपि समागत्य एकेन्द्रियत्वेन समुत्पन्नः, स एव एकेन्द्रियो जीव एकेन्द्रियत्वं विप्रजहत्=परित्यजन् एकेन्द्रियतया वा यावत् पञ्चेन्द्रियतया वा गच्छतीति। एवमेव द्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियपञ्चेन्द्रियाणां पञ्चागतिकत्वं पञ्चगतिकत्वं च बोध्यमिति। अथ सर्वजीवानां पञ्चविधत्वं प्रकारद्वयेन प्राह-

एकेन्द्रिय जीव हैं। ये जीव पंच गतिक होते हैं-पांच गतियोंमें जिनका गमन होताहै वे पंचगतिकहैं तथा पांच गतियोंसे जिनका आगमन होता है वे पंचागतिकहैं। एकेन्द्रियोंमें उत्पद्यमान कोई जीव एकेन्द्रियसे आकर, द्वीन्द्रियसे आकर तेइन्द्रियसे आकर, चौइन्द्रियसे आकर और पचेन्द्रियसे आकर इस तरह किसी भी इन्द्रियवाले जीवोंमेंसे आकर-एकेन्द्रिय जीव- रूपसे उत्पन्न हो सकता है। इसी तरहसे एकेन्द्रिय जीव मरकर एके- न्द्रिय जीवसे लेकर पञ्चेन्द्रिय जीवों तकमें उत्पन्न हो सकता है। अर्थात् एकेन्द्रिय जीव मरकर एकेन्द्रिय रूपसे भी उत्पन्न हो सकता है, यावत् वह पंचेन्द्रिय रूपसे भी उत्पन्न हो सकता है। इसी तरहसे द्वीन्द्रिय जीव, तेइन्द्रिय जीव, चौइन्द्रिय जीव और पंचेन्द्रिय जीव इनमें भी पच आगतिकता और पंच गतिकता जाननी चाहिये "पंचविहा सव्व-

न्द्रिय જીવો કહે છે. તેઓ પચગતિક હોય છે અને પચાગતિક હોય છે. પાંચ ગતિઓમાં જેમનું ગમન થાય છે, તે જીવોને પંચગતિક કહે છે. પાંચ ગતિઓમાં જેમનુ આગમન થાય છે તેમને પંચાગતિક કહે છે. એકે- ન્દ્રિયોમાં ઉત્પન્ન થતો જીવ એકેન્દ્રિયોમાંથી દ્વીન્દ્રિયોમાંથી, ત્રિન્દ્રિયોમાંથી, ચતુરિન્દ્રિયોમાથી કે પચેન્દ્રિયોમાથી, આ રીતે પાચે પ્રકારના જીવોમાંથી આવીને એકેન્દ્રિય જીવ રૂપે ઉત્પન્ન થઇ જાય છે. એ જ પ્રમાણે એકેન્દ્રિય જીવ મરીને એકેન્દ્રિયથી લઇને પચેન્દ્રિય પર્યન્તના જીવોમાં ઉત્પન્ન થઇ જાય છે એટલે કે એકેન્દ્રિય જીવ મરીને એકેન્દ્રિય જીવ રૂપે પણ ઉત્પન્ન થાય છે, દ્વીન્દ્રિય જીવ રૂપે પણ ઉત્પન્ન થાય છે, ત્રીન્દ્રિય, ચતુરિન્દ્રિય અથવા પંચેન્દ્રિય જીવરૂપે પણ ઉત્પન્ન થાય છે એ જ પ્રમાણે દ્વીન્દ્રિયોમાં, ત્રીન્દ્રિયોમાં, ચતુ- રિન્દ્રિયોમાં, અને પંચેન્દ્રિયોમાં પણ પંચ ગતિકતા અને પંચ આગતિકતા

'पंचविहा सव्वजीवा' इत्यादि। नैरयिका १ यावत्, यावत्पदेन तिर्यञ्चः २, मनुष्याः ३, देवाः ४, सिद्धाश्च ५। तत्र-संसारिणः सिद्धाश्च समस्ता अपि जीवाः क्रोधकषायिप्रभृतिभेदेन पञ्चप्रकारकाः बोध्याः। तत्र क्रोधकषायिप्रभृतयश्चत्वारः प्रसिद्धाः। अकषायिणस्तु उपशान्तमोहादयः। अथवा-नैरयिकादिभेदभिन्नाः पञ्चविधा जीवा बोध्याः इति ॥ सू० १८॥

जीवप्रस्तावात् सम्प्रतिवनस्पतिजीवानां योनिमाश्रित्य पञ्चस्थानानि प्राह-

मूलम्-अह भंते! कलमसूरतिलमुग्गमासणिप्फाव-कुलत्थआलिसंदग सईणपलिमंथगाणं एएसि णं धन्नाणं कुट्ठा उत्ताणं जहा सालीणं जाव केवइयं कालं जोणी संचिट्ठइ १, गोयमा! जहण्णेणं अंतो मुहुत्तं उक्कोसेणं पंच संवच्छराइं। तेण परं जोणी पमिलायइ जाव तेण परं जोणीवोच्छेए पण्णत्ते ॥ सू० १९॥

छाया—अथ भदन्त! कलममसूरतिलमुद्गमापनिष्पावकुलत्थालिसन्दकतुवरीपलिमन्थकानाम् एतेषां खलु धान्यानां कोष्ठागुप्तानां यथा शालीनां यावत् कियन्तं कालं योनिः सन्तिष्ठते?, गौतम! जघन्येन अन्तर्मुहूर्तम्, उत्कर्षेण पञ्च संवत्सरान्। ततः परं योनिः प्रम्लायति यावत्ततः परं योनिव्युच्छेदः प्रज्ञप्तः ॥ सू १९॥

जीवा" इत्यादि-नैरयिक १ तथा यावत्पद ग्राह्य तिर्यञ्च २ मनुष्य ३ देव ४ और सिद्ध ५ इस प्रकारसे भी समस्त जीव पांच प्रकारके होते हैं। तथा-संसारी और सिद्ध ये समस्त भी जीव क्रोध कषायी आदिके एवं अकषायीके भेदसे पांच प्रकारके होते हैं। इनमें क्रोध कषायवाले, मान कषायवाले, माया कषायवाले और लोभ कषायवाले ये चार प्रकारके कषायवाले जीव संसारी जीव हैं एवं उपशान्त कषायवाले, क्षीण कषायवाले सयोग केवली और अयोग केवली ये अकषायी जीव हैं ॥सू१८॥

સમજવી. "પંચવિહા સવ્વજીવા" ઇત્યાદિ—

સમસ્ત જીવોના પાંચ પ્રકારો નીચે પ્રમાણે કહ્યા છે—(૧) નારક, (૨) તિર્યંચ, (૩) મનુષ્ય, (૪) દેવ અને (૫) સિદ્ધ

તથા સંસારી અને સિદ્ધ એ સમસ્ત જીવો ક્રોધકષાયી આદિના અને અકષાયીના ભેદથી પાંચ પ્રકારના હોય છે. તેમાથી ક્રોધકષાયવાળા, માનકષાયવાળા, માયાકષાયવાળા, અને લોભકષાયવાળા, આ ચાર પ્રકારના કષાયવાળા સંસારી જીવો હોય છે, અને ઉપશાન્ત કષાયવાળા, ક્ષીણકષાયવાળા, સયોગ કેવલી અને અયોગકેવલી, એ અકષાયી જીવો હોય છે. ॥ સૂ. ૧૮ ॥

टीका—' अह भंते ' इत्यादि—

' अथ ' इति प्रश्ने ' भदन्त ' इत्यामन्त्रणे । हे भदन्त ! कलमसूरतिलमुद्गमाषनिष्पावकुलत्थालिसन्दकतुवरीपलिमन्थकानां-तत्र कलः='मटर' इति भाषाप्रसिद्धो धान्यविशेषः, मसूरतिलमुद्गमाषाः प्रसिद्धाः, निष्पावो वल्लः-' वाल ' इति प्रसिद्धः, कुलत्थः='कुलथी' इति ख्यातो धान्यविशेषः, आलिसन्दको राजमाषः-' चौला चोरा ' इत्यादिनाम्ना लोके प्रसिद्धाः, ' सईणा '-तुवरी-' अरहर ' इति भाषा प्रसिद्धा, पलिमन्थकः-कृष्णचणक इति । कलमसूरादीनाम् एतेषां धान्यानां शालीनां यथा=शालीनामिव कोष्ठगुप्तानां कोष्ठागारे रक्षितानां यावत्-यावत् शब्दात् पल्यागुप्तानाम्-पल्यम्=वंशकटकादिकृतो धान्याधारपात्रविशेषः, तत्र आगुप्तानाम्, म गुप्तान मु-मञ्चः-' मंचान ' इति भाषाप्रसिद्धः, तत्र आगुप्तानाम्, मालागुप्तानां=गृहोपरितनभागे संरक्षितानाम्, अवलिप्तानाम्-पात्रद्वारदेशन् पिधाय गोमयादिना उपलिप्य रक्षितानां, लिप्तानाम्=सर्वतः कृत-

---

जीवके प्रस्तावसे अब सूत्रकार वनस्पति जीवोंकी योनिको आश्रित करके पांच स्थानोंका कथन करते हैं--

'अह भंते ! कलमसूरतिलमुग्ग' इत्यादि सूत्र १९॥

टीकार्थ-हे भदन्त ! कल, मटर, मसूर, तिल, मुद्ग, मुंग, माष, उडद, निष्पाव वाल, कुलत्थ-कुलथी, आलिसन्दक-राजमाष रोंशा-चौला, सईणा-अरहर और पलिमन्थक-काला चना-इन सब धान्योंकी चाहे ये कोष्ठागुप्त हों-कोष्ठागारमें भरकर रखे हुए हों यावत्-चाहे वांसके बने हुए पिटारेमें भरकर रखे हुए हों चाहे-आगुप्त हो-मचानके ऊपर भरकर रखे गये हों चाहें मालागुप्त हों-घरके ऊपरके भागमें संरक्षित हों चाहे लिप्त हों-सब तरफसे वर्तनमें भरकर जिसमें लेप कर दिया

જીવનો અધિકાર ચાલી રહ્યો છે, તેથી હવે સૂત્રકાર વનસ્પતિ જીવોની યોનિને આશ્રિત કરીને પાચ સ્થાનોનું કથન કરે છે.

" अह भंते ! कलमसूरतिलमुग्ग " ઇત્યાદિ—

ટીકાર્થ-ગૌતમસ્વામીનો પ્રશ્ન—હે ભગવન્ ! વટાણા, મસૂર, તલ, મગ, અડદ, વાલ, કળથી, ચોળા, તુવેર, ચણા વગેરે ધાન્યોની અંકુરોત્પાદન શક્તિ કેટલા સમયની કહી છે ? અહીં એ ધાન્યોનો સંગ્રહ કરવાની જુદી જુદી રીતો પ્રકટ કરવામાં આવી છે. આ રીતોને આવરી લઈને આ પ્રમાણે પ્રશ્ન પૂછવામાં આવ્યો છે-" હે ભગવન્ ! કોઠારમાં ભરીને સંઘરી રાખેલા, વાંસની બનાવેલી પેટીમાં રાખેલા, કોઈ ઊંચા માંચડા ઉપર સંઘરેલા, ઘરના ઉપરના ભાગમાં સંઘરેલા (માલાગુપ્ત), માટીથી લિપ્ત પાત્રમાં ભરી રાખેલા, માટીથી અલિપ્ત પાત્રમાં ભરી રાખેલા, માટીથી લેપ કરેલા ઢાંકણાવાળા પાત્રની અંદર રાખેલા

लेपानां पिहितानाम्=आच्छादितानाम्, मुद्रितानाम्=मृत्तिकादिमुद्रावतां, लाञ्छितानाम्=रेखादिभिः कृतलाञ्छनानां कियन्तं कालं योनिः=उत्पादशक्तिः सन्तिष्ठते ? कोष्ठागारादिरक्षितानां कलममसूरादिदशविधधान्यानां योनिः कियत्कालावधि तिष्ठति ? इति प्रश्नाशयः। भगवानाह–हे गौतम ! एतेषां धान्यानां योनिः जघन्येन अन्तर्मुहूर्त्तम्, उत्कर्षेण तु पञ्च संवत्सरान् तिष्ठति ततः परम्=तदनन्तरं योनिः प्रम्लायति=वर्णादिना हीयते, यावच्छब्दात् ततः परं योनिः विध्वंसते=नश्यति, ततः परं बीजम् अबीजं भवति=उप्तमपि तत् न प्ररोहति।

गया हो ऐसी जगहमें रखे गये हों चाहे अब लिप्त हों–ऐसे पात्रमें भरकर रखे गये हों कि जिसका द्वार पहिले ढक्कनसे ढांक दिया गया हो और बादमें गोबर आदिसे छाब कर दिया गया हो चाहे लिप्त हों–सामान्य रूपसे ढककर रखे हुए हों, चाहे मुद्रित हों–मिट्टी आदिका लेप कर रखे गये हों चाहे लाञ्छित हों–रेखा आदि द्वारा जो चिन्हित कर दिये गये हों कितने काल तक उत्पादन शक्ति रहती है ? अर्थात् कोष्ठागार आदिमें भर कर रखे गये इन कल मसूर आदि दश प्रकारके धान्योंकी अङ्कुरोत्पादन शक्ति कितने समय तक रहतीहै, ऐसा प्रश्नाशय है–इस पर भगवान् कहते हैं–हे गौतम ! इन १० प्रकारके धान्योंकी अङ्कुरोत्पादन शक्ति जघन्यसे एक अन्तर्मुहूर्तकीहै, और उत्कृष्टसे पांच वर्ष तककी है, इसके बाद उनकी वह अङ्कुरोत्पादन शक्ति वर्णादि द्वारा कमजोर हो जाती है फिर वे अङ्कुरोत्पादन करनेमें शक्ति सम्पन्न नहीं रहते हैं। यही बात " बीजं अबीजं भवति " इस पाठ द्वारा प्रकट की गई है अर्थात् वह केवल देखनेमेंही बीज लगता है, पर वास्तवमें

કે લેપ કર્યા વગરના ઢાંકણાવાળા વાસણમાં રાખેલા, રેતી રાખ આદિમાં રાખેલા વટાણા, મસૂર, તલ, મગ અડદ, વાલ, કળથી, ચોળા, તુવેર, ચણા આદિ ધાન્યોની અંકુરોત્પાદન શક્તિ કેટલા કાળની કહી છે ?

મહાવીર પ્રભુના ઉત્તર—હે ગૌતમ ! વટાણા આદિ આ ૧૦ પ્રકારના ધાન્યોની અંકુરોત્પાદન શક્તિ ઓછામાં ઓછા એક અન્તર્મુહૂર્ત પ્રમાણ કાળની અને અધિકમાં અધિક પચ વર્ષ સુધીની હોય છે. ત્યારબાદ તેની અંકુરોત્પાદન શક્તિના ક્ષય થઇ જાય છે અને આખરે તેમની તે શક્તિ નષ્ટ થઇ જાય છે, એટલા કાળ બાદ તેઓ અંકુરોત્પાદન કરવાની શકિતથી રહિત બની જાય છે. એજ વાત સૂત્રકારે " बीजं अबीजं भवति " આ સૂત્રપાઠ દ્વારા પ્રકટ કરી છે. એટલે કે પાંચ વર્ષ બાદ તેઓ બીજ જેવા દેખાતાં

अत एव हे गौतम ! ततः परं तेषां योनिव्यवच्छेदः=प्ररोहणशक्ति प्रणाशः प्रज्ञप्तः= प्ररूपितः । अर्थात् उक्तकालानन्तरं कलममसुरादीनि अचित्तानि भवन्तीति॥सू० १९॥

अनन्तरसूत्रे कलममसूरादीनां योनिव्युच्छेदः पञ्चभिः संवत्सरैर्भवतीत्युक्तम् । सम्प्रति संवत्सरानेव पञ्चविधत्वेनाह—

मूलम्—पंच संवच्छरा पण्णत्ता, तं जहा—णक्खत्तसंवच्छरे १ जुगसंवच्छरे २ पमाणसंवच्छरे ३ लक्खणसंवच्छरे ४ सणिचरसंवच्छरे ५ । १ । जुगसंवच्छरे पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा—चंदे १ चंदे २ अभिवड्ढिए ३ चंदे ४ अभिवड्ढिए ५ चेव । २ । पमाणसंवच्छरे पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा—नक्खत्ते १ चंदे २ उऊ ३ आइच्चे ४ अभिवड्ढिए ५ । ३ । लक्खणसंवच्छरे पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा—समगं नक्खत्ता जोगं जोयंति समगं उऊ परिणमंति । णच्चुण्हो णइसीओ बहूदओ होइ नक्खत्ते ॥ १ ॥ ससिसगलपुण्णमासी जोएई विसमचारणक्खत्ते । कडुओ बहूदओ य तमाहु संवच्छरं चंदं ॥ २ ॥ विसमं पवालिणो परिणमंते अणुदूसुदेंति पुप्फफलं । वासं ण सम्मं वासइ, तमाहु संवच्छरं कम्मं । ३ । पुढविदगाणं तु रसं, पुप्फफलाणं तु देइ आइच्चो । अप्पेण वित्तासेण, सम्मं निप्फज्जए

वह बीज नहीं रहता है, क्योंकि वह खेतमें बोये जाने पर अङ्कुरोंको उत्पन्न नहीं कर सकता है । इसी कारण हे गौतम ! पांच वर्षके बाद उनकी योनिका विच्छेद—प्ररोहण शक्तिका विनाश—कहा गयाहै, अर्थात् ये कल मसूर आदि धान्य उक्त कालके बाद अचित्त हो जाते हैं ॥सू०१९॥

હોવા છતાં પણ ખરી રીતે અબીજ રૂપ જ બની ગયા હોય છે. કારણ કે તેમને ખેતરમાં વાવવામાં આવે તો તેમાંથી અંકુરો ઉત્પન્ન થતા નથી તે કારણે હે ગૌતમ ! પાંચ વર્ષ બાદ તેમની યોનિનો વ્યવચ્છેદ-ઉત્પાદન શક્તિનો વિનાશ કહ્યો છે. એટલે કે તે વટાણા આદિ ધાન્ય ઉપર્યુક્ત કાળ દરમિયાન અચિત્ત થઈ જાય છે. ॥ સૂ. ૧૯ ॥

सस्सं । ४ । आइच्चतेयतविया, खणलवदिवसा उऊ परिणमंति पूरिंति रेणुथलयाइं, तमाहु अभिवड्ढियं जाण ॥ ५ ॥ सू०२० ॥

छाया—पञ्च संवत्सराः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—नक्षत्रसंवत्सरः १ युगसंवत्सरः २ प्रमाणसंवत्सरः ३ लक्षणसंवत्सरः ४ शनैश्चरसंवत्सरः ५ ।१। युगसंवत्सरः पञ्चविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—चन्द्रः १ चन्द्रः २ अभिवर्द्धितः ३ चन्द्रः ४ अभिवर्द्धितश्चैव ५ ।२। प्रमाणसंवत्सरः पञ्चविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—नक्षत्रः १ चन्द्रः २ ऋतुः ३ आदित्यः ४ अभिवर्द्धितः ५ ।३। लक्षणसंवत्सरः पञ्चविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—समकं नक्षत्राणि योगं योजयन्ति समकम् ऋतवः परिणमन्ते । नात्युष्णो नातिशीतो बहूदको भवति नक्षत्रः । १ । शशी सकलपौर्णमासी योजयति विषमचार नक्षत्रः । कटुको बहूदकश्च तमाहुः—संवत्सरं चान्द्रम् । २ ॥ विषमं प्रवालिनः परिणमन्ते अनृतुषु ददति पुष्पफलम् । वर्षं न सम्यग् वर्षति तमाहुः संवत्सरं कार्मणम् ॥३॥ पृथिव्युदकानां तु रसं पुष्पफलेभ्यश्च ददाति आदित्यः । अल्पेनापि वर्षेण सम्यग् निष्पद्यते सस्यम् ॥४॥ आदित्यतेजस्तापिताः क्षणलवदिवसा ऋतवः परिणमन्ते । पूरयन्ति रेणुभिः स्थलकानि तमाहुः अभिवर्द्धितं जानीहि ॥ ४ ॥ सू० २० ॥

टीका —'पंच संवच्छरा' इत्यादि—

संवत्सराः—नक्षत्रसंवत्सरादिभेदेन पञ्चविधा बोध्याः । तत्र—द्वादशनक्षत्रमासात्मको बोध्यः । नक्षत्रमासस्तु चन्द्रस्य नक्षत्रमण्डलभोगकालः । चन्द्रस्य

इस सूत्रमें कल मसूर आदि धान्योंकी योनिका छेद पांच वर्षके बाद हो जाता है ऐसा कहा है सो अब सूत्रकार उन्हीं संवत्सरोंका पंचविध रूपसे कथन करतेहैं—'पंच संवच्छरा पण्णत्ता' इत्यादि सूत्र२०॥

टीकार्थ—संवत्सर पांच प्रकारके कहे गयेहैं—जैसे—नक्षत्र संवत्सर१ युग संवत्सर २ प्रमाण संवत्सर ३ लक्षण संवत्सर ४ और शनैश्चर संवत्सर ५ इनमें जो नक्षत्र संवत्सर होता है, वह १२ नक्षत्रोंके मास रूप

આગલા સૂત્રમા એવું કહેવામાં આવ્યું છે કે વટાણા, મસૂર આદિ ધાન્યની યોનિનો પાંચ વર્ષમાં વિનાશ થઇ જાય છે. હવે સૂત્રકાર એ જ સંવત્સરો (વર્ષો) ના પાંચ પ્રકારોનું કથન કરે છે

"પચ સંવચ્છરા પણ્ણત્તા" ઇત્યાદિ—

ટીકાર્થ—સંવત્સર પાંચ પ્રકારના કહ્યાં છે—(૧) નક્ષત્ર સંવત્સર, (૨) યુગ સંવત્સર, (૩) પ્રમાણ સંવત્સર, (૪) લક્ષણ સંવત્સર અને (૫) શનૈશ્ચર સંવત્સર. નક્ષત્ર સંવત્સર બાર નક્ષત્રોના માસ રૂપ હોય છે. ચન્દ્રનો નક્ષત્ર મંડળનો જે ભોગકાળ છે તેને નક્ષત્રમાસ કહે છે. નક્ષત્ર મંડળના ભોગકાળ રૂપ નક્ષત્ર

नक्षत्रमण्डलभोगस्तु सप्तविंशत्या दिनैः सप्तषष्टिभागविभक्तस्यैकस्य दिवसस्य एकविंशत्या भागैश्च (२७२१/६७) भवति । एतावद्दिवसप्रमाणो नक्षत्रमास एकस्मिन् नक्षत्रसंवत्सरे तु सप्तविंशत्यधिकानि त्रीणि शतानि दिनानि सप्तषष्टिभागविभक्तस्यैकस्य दिवसस्य एकपञ्चाशद्भागाश्च (३२७५१/६७) भवन्तीति ।

युगसंवत्सरः-पञ्चसंवत्सरात्मकं युगं, तदेकदेशभूतश्चन्द्रादिसंवत्सरो युगसंवत्सर इति । प्रमाणसंवत्सरः प्रमाणं=परिमाणदिवसादीनां, तेनोपलक्षितो वक्ष्यमाण एव नक्षत्र संवत्सरादि लक्षणसंवत्सरः वक्ष्यमाण स्वरूपाणां लक्षणानां प्राधान्येन प्रमाणसंवत्सर एव । शनैश्चरसंवत्सरः शनैश्चरेण निष्पादितः

होता है चन्द्रके नक्षत्र मण्डलका जो भोगकाल होता है वह नक्षत्र मास होता है, चन्द्रके नक्षत्र मण्डलका भोगकाल २७ दिन और ६७ भागोंमें विभक्त एक दिनके २१ भाग प्रमाण होता है, अर्थात् नक्षत्र मास नक्षत्र मण्डलका भोगकाल २७।२१-६७ सडसठिया इक्कीस दिनका होता है । एक नक्षत्र संवत्सरमें ३२७ दिन और एक दिनके ६७ भागोंमेंसे ५१ भाग होते हैं । युग-संवत्सर-पांच संवत्सरोंका एक युग होता है, इसका एकदेश भूत चन्द्रादि संवत्सर होता है, यह चन्द्रादि संवत्सरही युग संवत्सर है । प्रमाण संवत्सर दिवस आदिके प्रमाणसे उपलक्षित जो नक्षत्र संवत्सर आदि है वही प्रमाण संवत्सर है. लक्षण संवत्सर-जिनका स्वरूप आगे कहा जानेवाला है, ऐसे लक्षणोंकी प्रधानतासे जो प्रमाण संवत्सर है, वही लक्षण संवत्सर है । शनैश्वर संवत्सर-जो संवत्सर शनै-

---

માસ ૨૭/૨૧/૬૭ સડસઠીયા એકવીસ દિવસને હોય છે. એવાં બાર નક્ષત્ર-માસનું એક નક્ષત્ર સંવત્સર થાય છે તે નક્ષત્ર સંવત્સરના ૩૨૭।૫૧।૬૭ દિવસ હોય છે.

યુગ સંવત્સર—પાંચ સંવત્સરોનો એક યુગ થાય છે. તેના એકદેશ-ભૂત (ભાગ ૩૫) ચન્દ્ર સવત્સર હોય છે. તે ચન્દ્રાદિ સંવત્સર જ યુગ સંવત્સર છે

પ્રમાણ સંવત્સર—દિવસ આદિના પ્રમાણથી ઉપલક્ષિત જે નક્ષત્ર સંવ-ત્સર આદિ છે, એ જ પ્રમાણ સવત્સર છે.

લક્ષણ સંવત્સર—તેના સ્વરૂપનું પ્રતિપાદન આગળ કરવામાં આવશે. એવા લક્ષણોની પ્રધાનતાવાળું જે પ્રમાણ સંવત્સર છે, તેનું નામ જ લક્ષણ સંવત્સર છે

શનૈશ્વર સંવત્સર—જે સંવત્સરનુ શનીચરો વડે નિર્માણ થાય છે, તેને શનૈશ્વર સવત્સર કહે છે એટલે કે જેટલા સમયમાં શનીનો ગ્રહ એક નક્ષ-

तत्र-युगसंवत्सरः - चन्द्रचन्द्राभिवर्द्धितचन्द्राभिवर्द्धितसंवत्सरेति पञ्चविधः । चंद्रसंवत्सरो द्वादशभिश्चन्द्रमासै भवति । एकस्मिंश्चन्द्रमासे एकोनत्रिंशद्दिनानि द्विषष्टिभागविभक्तस्यैकदिवसस्य द्वात्रिंशद्भागाश्च (२९ ३२-६२) भवन्ति। अयं च कृष्णप्रतिपद आरभ्य पौर्णमासी मभिव्याप्य भवति । एकस्मिंश्चन्द्र-संवत्सरे चतुष्पञ्चाशदधिकानि त्रीणि शतानि दिनानि द्विषष्टिभागविभक्त-स्यैकस्य दिवसस्य द्वादशभागाश्च (३५४ १२-६२) भवन्तीति । अभिवर्द्धितसंवत्सरस्तु द्वादशभिरभिवर्द्धितमासैस्त्रयोदशभिश्चन्द्रमासैर्वा भवति । एकस्मिन् अभिवर्द्धितमासे एकत्रिंशद्दिनानि चतुर्विंशत्यधिकैकशतभाग-विभक्त-स्यैकस्य दिवसस्य एकविंशत्यधिकैकशतभागाश्च (३१=१२१-१२४) भवन्ति। अनेन क्रमेण द्वादशमासप्रमाणे एकस्मिन्नभिवर्द्धितसंवत्सरे त्र्यशीत्यधिकानि त्रीणि शतानि दिनानि द्विषष्टिभागविभक्तस्य एकस्य दिवसस्य चतुश्चत्वारिंशद्

ताका कथन करते हैं-"जुगसंवच्छरे" इत्यादि-चन्द्र १ चन्द्र २ अभिवर्द्धित ३ चन्द्र ४ और अभिवर्द्धित ५ इनमें चन्द्र संवत्सर १२ चन्द्र मासोंसे होता है, एक चन्द्रमासमें २९ दिन एवं ६२ भागोंमें विभक्त एक दिनके ३२ भाग होते हैं, यह कृष्णपक्षकी प्रतिपदासे लेकर पौर्ण-मासी तक होता है, एक चन्द्र संवत्सरमें ३५४ दिन और ६२ भागोंमें विभक्त हुए एक दिनके १२ भाग होते हैं। अभिवर्द्धित संवत्सर १२ अभिवर्द्धित महिनोंसे अथवा १३ चन्द्र मासोंसे निष्पन्न होता है, एक अभिवर्द्धित मासमें एकतीस दिन और १२४ भागोंमें विभक्त हुए एक दिनके १२१ भाग होते हैं। इस तरह द्वादश मास प्रमाण एक अभि-वर्द्धित संवत्सरमें ३८३ दिन और ६२ भागोंमें विभक्त हुए एक दिनके ४४ भाग होते हैं।

"जुग संवच्छरे" ઇત્યાદિ—(૧) ચન્દ્ર, (૨) ચન્દ્ર, (૩) અભિવર્દ્ધિત, (૪) ચન્દ્ર અને (૫) અભિવર્દ્ધિત. તેમાંનું ચન્દ્ર સંવત્સર ૧૨ ચન્દ્રમાસોનું બને છે. એક ચન્દ્રમાસના ૨૯|૩૨|૬૨ દિવસ થાય છે. કૃષ્ણપક્ષની પ્રતિપદા (વદી એકમ) થી લઈને પૂનમ સુધીના દિવસોનો એક ચાન્દ્રમાસ થાય છે. એવા બાર ચાન્દ્રમાસોનું એક ચન્દ્રસંવત્સર બને છે. તેના ૩૫૪|૧૨|૬૨ દિવસ થાય છે.

અભિવર્દ્ધિત સંવત્સર (અધિક માસવાળું વર્ષ) ૧૨ અભિવર્દ્ધિત મહિ-નાઓનું અથવા ૧૩ ચાન્દ્રમાસોનું બને છે. એક અભિવર્દ્ધિત માસના ૩૧|૧૨૧|૧૨૪ દિવસ હોય છે, અને ૧૨ માસપ્રમાણ એક અભિવર્દ્ધિત સંવ-

भागाश्च (३८३ ४४-६२) भवन्तीति । एभिश्चन्द्रादिभिः पञ्चभिः संवत्सरै-रेकं युगं भवति । तत्राभिवर्द्धितसंवत्सरेऽधिकमासो बोध्य इति । युगसंवत्सरप्रति-पादिका गाथाऽन्यत्रैवमभिहिता, । तथाहि—

" चंदो चंदो अभिवड्ढिओ य चंदमभिवड्ढिओ चेव ।
पंच सहियं जुगमिणं, दिट्ठ तेल्लोकदंसीहिं ॥ १ ॥ "

छाया—चन्द्रश्चन्द्रोऽभिवर्द्धितश्च चन्द्रोऽभिवर्द्धितश्चैव ।
पञ्चसहितं युगमिदं दृष्टं त्रैलोक्यदर्शिभिः ॥ १ ॥ इति ।

तथा-प्रमाणसंवत्सरः नक्षत्रः १ चन्द्रः २ ऋतुः ३ आदित्यः ४ अभिव-र्द्धित ५ इति पञ्चविधः । तत्र-नक्षत्रः नक्षत्रसंवत्सरः पूर्वोक्तलक्षणः । पूर्वस्माद् विशेषस्त्वयम्-तत्र नक्षत्रमण्डलस्य चन्द्रभोगमात्रं विवक्षितम् । इह तु दिन तद्भागादिप्रमाणमिति विशेषः ।१। तथा-चन्द्र - चन्द्रसंवत्सर उक्त लक्षण एव । २ । विशेषस्त्वयं-तत्र तस्य युगावयवत्वमात्रं विवक्षितम्, इह

इन चन्द्रादिक पांच संवत्सरोंसे एक युग बनता है, अभिवर्द्धित संवत्सरमें अधिक मास होता है, युग संवत्सरकी प्रतिपादिक गाथा अन्यत्र इस प्रकारसे कही गई है-" चंदो चंदो अभिवड्ढिओय " इत्यादि।

तथा-प्रमाण संवत्सर-पांच प्रकारका कहा गया है-जैसे नक्षत्र १ चन्द्र २ ऋतु ३ आदित्य ४ और अभिवर्द्धित ५ इनमें पूर्वोक्त लक्ष-णवाला नक्षत्र शब्दसे गृहीत हुआ है। पूर्वकी अपेक्षा इसमें ऐसी विशेषता है-कि वहां नक्षत्र मण्डलका चन्द्रभोग मात्र विवक्षित हुआ है, उक्त लक्षणवाला चन्द्र संवत्सरही यहां चन्द्र शब्दसे विवक्षित हुआ है। परन्तु उसकी अपेक्षा यहां ऐसी विशेषता है, कि वहां पर युगकी

त्सरना ३८३।४४।६२ દિવસ થાય છે. આ ચન્દ્રાદિક પાંચ સંવત્સરોનો એક યુગ બને છે. અભિવર્દ્ધિત સંવત્સરમાં એક અધિક માસ હોય છે. યુગ સંવ-ત્સરનું પ્રતિપાદન કરતી ગાથા અન્યત્ર આ પ્રમાણે કહી છે—

" ચંદો ચંદો અભિવડ્ઢિઓ ય " ઇત્યાદિ.

તથા પ્રમાણુ સંવત્સર પાંચ પ્રકારનુ કહ્યુ છે—(૧) નક્ષત્ર, (૨) ચન્દ્ર, (૩) ઋતુ, (૪) આદિત્ય અને (૫) અભિવર્દ્ધિત. પૂર્વોક્ત લક્ષણુવાળું નક્ષત્ર સંવત્સર જ અહીં નક્ષત્ર પદથી ગૃહીત થયું છે. અહીં પૂર્વની અપેક્ષાએ એટલી જ વિશેષતા છે કે ત્યાં નક્ષત્રમંડળના ચન્દ્રભોગની જ માત્ર વિવક્ષા કરવામાં આવી છે, અને અહીં દિન અને દિનનો ભાગ આદિ પ્રમાણુ વિવ-ક્ષિત થયેલ છે. ઉપર્યુક્ત લક્ષણુવાળું ચન્દ્ર સંવત્સર જ અહીં ચન્દ્ર શબ્દ વડે વિવક્ષિત થયું છે. પરન્તુ તે કથન કરતાં અહીં એટલી જ વિશેષતા છે કે

तु प्रमाणं विवक्षितमिति । तथा-ऋतुः=ऋतुसंवत्सरः ऋतवो लोकप्रसिद्धा वसन्तादयः, तत्प्रधानः संवत्सर इत्यर्थः । अयं च सावनमासकर्ममासपर्यायैः द्वादशभिर्ऋतुमासैर्निष्पद्यते । एकैकस्मिन् ऋतुमासे त्रिंशदहोरात्रा (३०) भवन्ति । एकस्मिन् ऋतुसंवत्सरेतु षष्ट्यधिकशतत्रय प्रमाणा अहोरात्रा (३६०) भवन्तीति । तथा-आदित्यः=आदित्य संवत्सरः अयं च द्वादशभिरादित्यमासैर्निष्पद्यते । एकस्मिन्नादित्यमासे तु सार्द्धत्रिंशद्दिनानि (३० १-२) भवन्ति । एकस्मिन्नादित्य-संवत्सरे षट्षष्ट्यधिकशतत्रयप्रमाणानि (३६६) दिनानि भवन्तीति ४। अभिवर्द्धित उक्तलक्षण एव । ५ । नक्षत्रादि भेदैरुक्तोऽयमेव प्रमाणसंवत्सरो लक्षणप्राधान्येन यदा निर्दिश्यते तदा लक्षणसंवत्सरो भवति । अयं लक्षणसंवत्सरोऽपि चन्द्रादिभेदेन पञ्चविधो भवति।

अवयवता मात्र विवक्षित हुई है, और यहां उसका प्रमाण विवक्षित हुआ है । वसन्त आदिक ऋतुओंकी प्रधानतावाला जो संवत्सर है, वह ऋतुसंवत्सर है । यह संवत्सर सावन मास कर्ममास पर्यायोंवाले १२ ऋतुमासोंसे निष्पन्न होताहै । एक २ ऋतुमासमें तीस अहोरात्र होते हैं । आदित्य संवत्सर-यह १२ आदित्य मासों द्वारा निष्पन्न होता है, एक आदित्य मासमें ३०½ दिन होते हैं । एक आदित्य संवत्सरमें ३६६ दिन होते हैं । अभिवर्द्धित-इसका लक्षण कह दिया गया है । नक्षत्र आदिके भेदोंसे कहा गया यही प्रमाण संवत्सर लक्षणोंकी प्रधानतासे जब निर्दिष्ट होता है, तब लक्षण संवत्सर होता है। यह लक्षणसंव-

---

ત્યાં યુગની અવયવતાની જ વિવક્ષા થઈ છે અને અહીં તેનું પ્રમાણ વિવક્ષિત થયું છે. વસંત આદિ ઋતુઓની પ્રધાનતાવાળું જે સંવત્સર છે તેને ઋતુ-સંવત્સર કહે છે. તે સંવત્સર શ્રાવણમાસ આદિ ૧૨ માસોનું બને છે તે પ્રત્યેક ઋતુમાસમાં ૩૦ દિવસ અને ૩૦ રાત્રિ હોય છે. આ રીતે એક ઋતુ-સંવત્સરના ૩૬૦ દિનરાત થાય છે.

આદિત્ય સંવત્સર—તે બાર આદિત્ય (સૂર્ય) માસોનું બને છે. ૩૦૧।૨ દિવસનો એક આદિત્યમાસ અને ૩૬૬ દિવસનું એક આદિત્ય સંવત્સર થાય છે.

અભિવર્દ્ધિત સંવત્સરનું સ્વરૂપ આગળ પ્રકટ થઇ ચુકયું છે. નક્ષત્ર આદિકોના ભેદોની અપેક્ષાએ પ્રતિપાદિત પ્રમાણ સંવત્સરની જ્યારે લક્ષણોની પ્રધાનતાપૂર્વક નિર્દેશ થાય છે, ત્યારે તેને લક્ષણ સંવત્સર કહે છે તે લક્ષણ

पञ्चविधत्वमेवाह–' तद्यथा ' इत्यादिना । तत्र प्रथमं नक्षत्रसंवत्सरमाह– ' समगं ' इत्यादिना । नक्षत्राणि=कृत्तिकादीनि समकं=समतया योग=कार्त्तिकी-पौर्णमास्यादितिथिना सह संबन्धं योजयन्ति=कुर्वन्ति । अयं भावः–यानि नक्षत्राणि यासु तिथिषु उत्सर्गतो भवन्ति तानि तास्वेव यत्र भवन्ति । तत्र–ज्येष्ठः श्रावणो मार्गशीर्षश्चेति त्रयोमासास्तत्तन्नाम्ना नो समागच्छन्ति यथा ज्येष्ठो मासो मूलनक्षत्रेण, श्रावणो धनिष्ठानक्षत्रेण, मार्गशीर्षश्च आर्द्रानक्षत्रेण समागच्छति, शेषा मासास्तत्तन्नक्षत्र नामानोभवन्ति यथा कृत्तिकाभिः कार्त्तिको मासः, पुष्येण पौषः, इत्यादि ।

त्सर भी चन्द्र आदिके भेदसे पांच प्रकारका होता है। जो इस प्रकारसे हैं–नक्षत्र १ चन्द्र इत्यादि इनमें अब पहिले सूत्रकार नक्षत्र संवत्सरका कथन करते हैं–" समगं " इत्यादि–कृत्तिकादि नक्षत्र समतासे कार्तिकी पौर्णमासी आदि तिथिके साथ जिसमें सम्बन्ध करते हैं वह नक्षत्र संवत्सर है, भाव यह है कि जो नक्षत्र जिन तिथियोंमें उत्सर्गसे सामान्य रूपसे होते हैं वे नक्षत्र उन्हीं तिथियोंमें जहां होते हैं जैसे–जेठ, श्रावण, मार्गशीर्ष ये तीन मास उन २ नक्षत्रोंके नामसे नहीं आते हैं क्योंकि ज्येष्ठ मास मूल नक्षत्रके साथ श्रावणमास धनिष्ठा नक्षत्रके साथ और मार्गशीर्ष आर्द्रा नक्षत्रके साथ आता है शेष मास उन २ नक्षत्रोंके नामवाले होते हैं जैसे कृत्तिकासे कार्तिक मास पुष्य नक्षत्रसे पौष मास इत्यादि कहा भी है—

સંવત્સર પણ ચન્દ્ર આદિના ભેદોની અપેક્ષાએ પાંચ પ્રકારનું કહ્યું છે. જે પાંચ પ્રકારો નીચે પ્રમાણે છે–નક્ષત્ર, ચન્દ્ર ઇત્યાદિ. તે પાચ પ્રકારોમાંના નક્ષત્ર સંવત્સર નામના પહેલા પ્રકારનું સૂત્રકાર હવે કથન કરે છે. "समगं" ઇત્યાદિ.

કૃતકાદિ નક્ષત્ર સમાનતાપૂર્વક, કાર્તિકી પૂર્ણિમા આદિ તિથિની સાથે જેમાં સંબંધ કરે છે, તેનું નામ નક્ષત્ર સંવત્સર છે આ કથનનો ભાવાર્થ એ છે કે જે નક્ષત્રો જે તિથિઓમાં સામાન્ય રૂપે હોય છે તે નક્ષત્રો જે તિથિઓમાં સામાન્ય રૂપે હોય છે, તે નક્ષત્રો એ જ તિથિઓમાં જ્યાં હોય છે, જેમકે જેઠ, શ્રાવણ, માર્ગશીર્ષ (માગશર) આ ત્રણ માસનાં નામ તે તે નક્ષત્રોના નામ ઉપરથી પડયા નથી, કારણ કે જેઠ માસ મૂલનક્ષત્ર સાથે, શ્રાવણ માસ ધનિષ્ઠા નક્ષત્રની સાથે અને માગશર માસ આર્દ્રા નક્ષત્રની સાથે આવે છે. બાકીના મહિનાઓ તે તે નક્ષત્રોના નામવાળા હોય છે. જેમકે કૃત્તિકા પરથી કારતક માસ, પુષ્ય નક્ષત્ર પરથી પોષ માસ, ઇત્યાદિ નામો નક્ષત્ર પરથી જ પડયાં છે. કહ્યુ પણ છે કેઃ

उक्तं च-" जेट्ठो वच्चइ मूलेणं सावणो धणिट्ठाहिं ।
अद्दासु य मग्गसिरो सेसा नक्खत्तनामिया मासा ॥ १ ॥"
छाया—ज्येष्ठो व्रजति मूलेन श्रावणो धनिष्ठाभिः ।
आर्द्रासु च मार्गशीर्षः, शेषा नक्षत्र नामानो मासाः ॥१॥ इति ।

तथा——यत्र समकं=साम्येनैव ऋतवः परिणमन्ते न विषमतया । अर्थात्-कार्त्तिक्या अनन्तरं हेमन्तऋतुः, पौष्या अनन्तरं शिशिरऋतुरित्येवं साम्येनैव ऋतवः परिणतिं गच्छन्तीति । तथा-यो न अत्युष्णः न चातिशीतः-अर्थात् समशीतोष्णो भवति तथा-बहूदकः-बहून्युदकानि यस्मिस्तथाभूतश्च भवति, स लक्षणतः नक्षत्रसंवत्सरो भवतीति । नक्षत्रचारलक्षणलक्षितत्वादयं नक्षत्रसंवत्सरो बोध्यइति १। अथ चन्द्रसंवत्सरं लक्षणतो निर्दिशति-' ससिसगल ' इत्यादिना । शशी=चन्द्रो यत्र सकल पौर्णमासीः-योजयति-सकलपौर्णमासीभिः सह सम्बन्धं

" जेट्ठो वच्चइ, मूलेणं " इत्यादि—

तथा-जहां छहों ऋतुएँ समानरूपसे परिणमती हैं, विषम रूपसे नहीं अर्थात्-कार्त्तिकीके बाद हेमन्त ऋतु पौषीके बाद शिशिर ऋतु इस प्रकारकी समानतासेही जहां ऋतुएँ परिणतिको प्राप्त करती हैं, तथा जो न अतिशीत होता है, और न अति उष्ण होता है, किन्तु समशीतोष्ण रहता है, तथा जिसमें बहुत पानी होता है, ऐसा वह प्रमाण संवत्सर नक्षत्र संवत्सर होता है, यह संवत्सर नक्षत्रोंकी गति-रूप लक्षणोंसे लक्षित होनेके कारण नक्षत्र संवत्सर कहा गया है, ऐसा जानना चाहिये १ चन्द्र संवत्सर-जिस संवत्सरमें चन्द्र सकल पौर्ण-

---

" जेट्ठो वच्चइ,, मूलेणं " ઇત્યાદિ—

તથા—જેમાં છએ ઋતુઓ સમાન રૂપે પરિણમે છે-વિષમ રૂપે પરિણમતી નથી એટલે કે કાર્તક પછી હેમન્ત ઋતુ, પોષ પછી શિશિર ઋતુ, આ પ્રકારની સમાનતાથી જ જ્યાં ઋતુઓ પરિણમે છે, અને જ્યારે અતિ ઠંડી પણ હોતી નથી અને અતિ ગરમી પણ હોતી નથી, પરન્તુ સમશીતોષ્ણ આબોહવા જ રહે છે તથા જેમાં ખૂબ જ વરસાદ વરસે છે એવું તે પ્રમાણ સંવત્સર નક્ષત્ર સંવત્સર રૂપ હોય છે. તે સંવત્સર નક્ષત્રોની ગતિ રૂપ લક્ષણોથી લક્ષિત હોવાને કારણે નક્ષત્ર સંવત્સરને નામે ઓળખાય છે, એમ સમજવું જોઈએ.

ચન્દ્ર સંવત્સર—જે સંવત્સરમાં ચન્દ્ર બધી પૂર્ણીમાઓ સાથે સંબંધ રાખે છે તથા વિષમ ચાલવાળાં નક્ષત્રો જેમાં હોય છે એવા સંવત્સરને ચન્દ્ર

करोति। तथा–यो विषमचारनक्षत्रः–विषमः चारः=चलनं येषां तानि तथाभूतानि नक्षत्राणि यत्र स तथाभूतो भवति। तथा–कटुकः=अत्युष्णः, अति शीतो वा भवति। तथा–बहूदकश्च भवति। एवंविधो यः संवत्सरः, तं चन्द्रसंवत्सरमाह–चन्द्रचारलक्षणलक्षितत्वादयं संवत्सरो लक्षणतश्चन्द्रो बोध्य इति २। अथ ऋतुसंवत्सरं लक्षणतो निर्दिशति–'विसमं' इत्यादिना। यत्र प्रवालिनः=वृक्षाः विषमं=वैषम्येण परिणमन्ते=परिणता भवन्ति–अङ्कुराद्युद्भेदावस्थां यान्ति। तथा–अनृतुषु=अस्वकालेऽपि पुष्पफलं प्रयच्छन्ति=स्वभावतः चैत्रादिषु पुष्पफलोद्गमशीला अपि रसालवृक्षा माघादिषु पुष्पादिशालिनो भवन्ति। तथा–यत्र मेघो वर्षं=वृष्टिं न सम्यग् वर्षति, एवंभूतो यः संवत्सरस्तं तीर्थकृत्प्रभृतिभिर्लक्षणतः कार्मणं संवत्सरम् आह। अयं कार्मण संवत्सर एव ऋतुसंवत्सरः सावनसंवत्स-

---

मासियोंके साथ सम्बन्ध करता है, तथा विषम चालवाले नक्षत्र जिसमें होते हैं, ऐसा जो संवत्सर होता है, तथा जो कटुक अत्युष्ण होता है, अथवा अतिशीत होता है, तथा बहूदक–बहुत जलवाला होता है, ऐसा जो संवत्सर होता है, वह चन्द्र संवत्सर चन्द्रकी गतिरूप लक्षणोंसे लक्षित होनेके कारण लक्षणकी अपेक्षा चन्द्र संवत्सर कहा गया है। ऋतु संवत्सर – जिसमें प्रवाली वृक्ष विषमता रूपसे परिणत होते हैं–अङ्कुरादिकोंके उद्भेद होने रूप अवस्थाको प्राप्त करते हैं तथा–अकालमें भी जो पुष्प फलको देते हैं जैसे स्वभावसे चैत्र आदिमें पुष्पफलोद्गमशील भी रसालवृक्ष–आम्रवृक्ष माघ आदि महीनोंमें पुष्पादि देनेवाले हो जाते हैं, तथा जिसमें वृष्टि अच्छी तरहसे नहीं होती है, ऐसा जो संवत्सर है, वह ऋतुसंवत्सर है, इस ऋतु संवत्सरका नामही कार्मण संवत्सर है, यह कार्मण संवत्सरही ऋतु संवत्सर और सावन संवत्सर नामान्तरवाला

સંવત્સર કહે છે. તે સંવત્સરમાં અતિશય ઠંડી અથવા અતિશય ગરમી પડે છે અને ભારે વરસાદ પડે છે. આ સંવત્સર ચન્દ્રની ગતિરૂપ લક્ષણોથી લક્ષિત હોવાને કારણે તેને લક્ષણની અપેક્ષાએ ચન્દ્ર સંવત્સર કહે છે.

ઋતુ સંવત્સર—જેમાં વૃક્ષ વિષમ રૂપે પરિણમન પામે છે અંકુરાદિનો ઉદ્‌ભેદ થવા રૂપ દશાને પ્રાપ્ત કરે છે, તથા અકાળે પણ જે ફૂલફળ દે છે, જેમકે ચૈત્ર માસમાં પુષ્પ અને ફલોદ્‌ગમશીલ રસાળ આમ્રવૃક્ષ મહા આદિ માસોમાં ફૂલફળ દેતાં થઈ જાય છે, તથા જે સંવત્સરમાં સારી વૃષ્ટિ થતી નથી, તે સંવત્સરને ઋતુ સંવત્સર કહે છે. આ ઋતુ સંવત્સરને જ કાર્મણ સંવત્સર કહે છે. અથવા આ કાર્મણ સંવત્સરના જ ઋતુસંવત્સર અને સાવન સંવત્સર રૂપ બીજાં નામો કહ્યાં છે.

रश्च प्रोच्यते इति ३। आदित्यसंवत्सर लक्षणतो निर्दिशति-'पुढविदगाणं' इत्यादि। यत्र संवत्सरे आदित्यः=सूर्यः पृथिव्युदकानां रसं=माधुर्यस्निग्धतादि-लक्षणं पृथिवीजलसम्बन्धिरसं पुष्पफलेभ्यो ददाति=प्रयच्छति। तथा-अल्पेनापि वर्षेण=अल्पवृष्ट्याऽपि तथाविधवर्षाभावेऽपि सस्यं=शाल्यादिकम् अन्नं सम्यक्=याथातथ्येन निष्पद्यते=जायते। सोऽयं संवत्सरो लक्षणत आदित्यसंवत्सर उच्यते इति ४। अथ अभिवर्द्धितसंवत्सरं लक्षणतो निर्दिशति-'आदिच्चतेयतविया' इत्यादिना। यत्र संवत्सरे आदित्यतेजस्तापिताः=सूर्यकिरणैः संतापिताः क्षणलवमुहूर्त्तदिवसाः-क्षणः=कालविशेषः लवः=एकोनपञ्चाशदुच्छ्वासप्रमाणः, सप्तसप्तति लवप्रमाणः दिवसः=अहोरात्रः, एषां द्वन्द्वे ते तथाभूताः-क्षणलवमुहूर्त्तदिवसाः ऋतवश्च परिणमन्ति। तथा - यत्र सूर्यकिरणतापितास्त एव क्षणलवमुहूर्त्तदिवसाः ऋतवश्च रेणुभिः = वायूत्क्षिप्तरेणुभिः

कहा गया है, 'पुढविदगाणं" जिस संवत्सरमें सूर्य पृथिवी एवं उदकके रसको पृथिवी सम्बन्धी रसको एवं उदक सम्बन्धी रसको-मधुरता स्निग्धताको-पुष्प फलोंके लिये देता है, तथा अल्प भी वृष्टिसे जिस संवत्सरमें शालि आदि अन्न अच्छी तरहसे निष्पन्न होता है, ऐसा यह संवत्सर इन लक्षणोंकी अपेक्षासे आदित्य संवत्सर कहा गया है "आदिच्च तेयतविया" इत्यादि।

जिस संवत्सरमें सूर्यके तेजसे किरणोंसे तापितकाल-विशेष रूप क्षण मुहूर्त्त ४९ उच्छ्वास प्रमाण लव एवं अहोरात्ररूप दिवस और ऋतुएँ, दो दो मास प्रमाणवाली होती हैं तथा-सूर्यकी किरणोंसे तापित हुए वे ही क्षण लव मुहूर्त और दिवस एवं ऋतुएँ वायुसे उडाई गई धूलि द्वारा स्थलोंको पूरित कर देती हैं,

આદિત્ય સંવત્સર—"પુઢવિદગાણં" ઈત્યાદિ—જે સંવત્સરમાં સૂર્ય પૃથ્વી અને ઉદકના રસને-પૃથ્વીસંબંધી રસને અને પાણી સંબંધી રસને એટલે કે પુષ્પ અને ફલોને મધુરતા અને સ્નિગ્ધતા અર્પે છે, તથા જે સંવત્સરમાં અલ્પ વૃષ્ટિ થવા છતા પણ ડાંગર આદિ ધાન્યો વિશેષ પ્રમાણમાં ઉત્પન્ન થાય છે, તે સંવત્સરને આદિત્ય સંવત્સર કહે છે

"આદિચ્ચ તેયતવિયા" ઇત્યાદિ—

જે સંવત્સરમા સૂર્યના તેજથી (કિરણો વડે) કાળવિશેષ રૂપ ક્ષણ, મુહૂર્ત ૪૯ ઉચ્છ્વાસ પ્રમાણ લવ, અહોરાત્ર રૂપ દિન રાત, તથા બબ્બે માસ પ્રમાણવાળી ઋતુઓ તપ્ત થાય છે અને સૂર્યના કિરણોથી તપ્ત થયેલી એ જ ક્ષણો, લવ, મુહૂર્ત દિવસ અને ઋતુઓ પવન વડે ઉડેલી ધૂળ વડે સ્થળોને ભરી દે છે, તે સંવત્સરનું નામ અભિવ-

स्थलानि पूरयन्ति, तं संवत्सरम् अभिवर्द्धितम् आह तीर्थकृत्प्रभृतिरिति हे शिष्य! त्वं जानीहि। यद्यपि सूर्यतेजसा पृथिव्यादयस्ताप्यन्ते तथापि उपचारात् क्षणादयोऽपि तथोच्यन्ते, इति ॥ सू० २० ॥

अनन्तरसूत्रे संवत्सर उक्तः। संवत्सरश्च कालः, काले व्यतीते तु शरीरिणां शरीरान्निर्गमो भवतीत्यतस्तन्मार्गं निरूपयति—

मूलम्—पंचविहे जीवस्स णिज्जाणमग्गो पण्णत्ते, तं जहा—पाएहिं १ ऊरूहिं २ उरेणं ३ सिरेणं ४ सव्वंगेहिं ५। पाएहिं णिज्जाणमाणे निरयगामी भवइ १। ऊरूहिं णिज्जाणमाणे तिरियगामी भवइ २। उरेणं णिज्जाणमाणे मणुयगामी भवइ ३। सिरेणं णिज्जाणमाणे देवगामी भवइ ४, सव्वंगेहिं णिज्जाणमाणे सिद्धिगइपज्जवसाणे पण्णत्ते ५ ॥ सू० २१ ॥

छाया—पञ्चविधो जीवस्य निर्याणमार्गः प्रज्ञप्तः तद्यथा—पादाभ्याम्, १ ऊरुभ्याम् २, उरसा ३, शिरसा ४, सर्वाङ्गैः ५। पादाभ्यां निर्यान् निरयगामी भवति। ऊरुभ्यां निर्यान् तिर्यग्गामी भवति २। उरसा निर्यान् मनुजगामी भवति ३। शिरसा निर्यान् देवगामी भवति ४। सर्वाङ्गैः निर्यान् सिद्धिगतिपर्यवसानः प्रज्ञप्तः ॥ सू० २१ ॥

भर देती हैं, उस संवत्सरका नाम अभिवर्द्धित संवत्सर है। ऐसा तीर्थंकर आदिकोंने कहा है, सो हे शिष्य! तुम इस कथन पर विश्वास करो। यद्यपि सूर्यकी किरणोंसे पृथिवी आदि तपाये जाते हैं क्षणादिक नहीं परन्तु उपचारसे वे भी तपाये जाते हैं, ऐसा कह दिया जाता है, इसीलिये क्षणादिक तपाये जाते हैं ऐसा कह दिया गया है ॥ सू० २० ॥

इस पूर्वोक्तमें संवत्सर कहा गया है, यह संवत्सर कालरूप होता है। कालके व्यतीत होने पर शरीरधारियोंका शरीरसे निर्गम होता है,

---

र्द्धित સંવત્સર છે, એવું તીર્થંકરોએ કહ્યું છે. તો હે શિષ્ય! તું આ કથનને વિશ્વાસપૂર્વક સાચું માની લે. જો કે સૂર્યના કિરણો વડે પૃથ્વી આદિને તપાવવામાં આવતાં નથી, છતાં પણ અહીં ઔપચારિક રીતે એવું કહેવામાં આવ્યું છે કે ક્ષણ, લવ આદિ સૂર્યના કિરણો વડે તપે છે. ॥ સૂ. ૨૦ ॥

આગલા સૂત્રમાં સંવત્સરની પ્રરૂપણા કરવામાં આવી. તે સંવત્સર કાળ રૂપ હોય છે. આયુકાળ પૂરો થતાં શરીરધારીઓનો આત્મા શરીરમાંથી નીકળી

टीका—' पंचविहे ' इत्यादि—

जीवस्य निर्याणमार्गः-निर्याणं-मृत्युसमये शरीरिणः शरीरान्निस्सरणं, तस्य मार्गः पादादिरूपः पञ्चविधः कथितः। पञ्चविधत्वमेवाह-तद्यथा-पादाभ्याम् इत्यादि। जीवः शरीरात् पादादिभिः पञ्चभिर्मार्गैः परलोके गच्छतीति भावः। तत्र जीवो येन मार्गेण यत्र गच्छति तत् माह-' पाएहिं ' इत्यादि। पादाभ्यां=चरणरूपमार्गेण निर्यान्=शरीराद् निर्गच्छन् जीवो निरयगामी भवति १। एवम्-ऊरुभ्यां-जङ्घाभ्यां कटेरधोजान्वोरुपरिभागरूपाभ्यां तिर्यग्गामी २। उरसा-वक्षसा मनुजगामी ३। शिरसा देवगामी च भवति ४। तथा-सर्वाङ्गैः=पादादिभिः

अतः अब सूत्रकार उस मार्गका निरूपण करते हैं—

"पंचविहे जीवस्स णिज्जाणमग्गे पण्णत्ते" इत्यादि सूत्र २१॥

टीकार्थ-जीवका निर्याण मार्ग पांच प्रकारका कहा गयाहै, जैसे-दो चरणोंसे १ दो जंघोंसे २ छातीसे ३ शिरसे ४ और सर्वाङ्गसे ५ मृत्युके समय जीवका जो शरीरसे बाहर निकलना होता है, उसका नाम निर्याण है, इस निर्याणका चरणादि रूप मार्ग पांच प्रकारका कहा गया है, अर्थात् जीव शरीरसे चरण आदि पांच मार्गों से होकर निकल कर परलोकमें जाताहै, यही बात यहां सूत्रकारने प्रकट कीहै, जो जीवशरीर से चरणरूप मार्गसे होकर निकलताहै, वह निरयगामी नरकगामी होता है १ जो जीव दो जङ्घाओंसे होकर निकलता है, वह तिर्यग्गामी होता है २। जो जीव छातीसे होकर निकलता है, वह मनुजगामी होता है, जो जीव शिरसे होकर निकलता है, वह देवगामी होता है, और चरणादि

જાય છે. હવે સૂત્રકાર જીવના નિર્યાણુમાર્ગની પંચ વિધાતાનું નિરૂપણુ કરે છે.

" પંચવિહે જીવસ્સ ણિજ્જાણમગ્ગે પણ્ણત્તે " ઇત્યાદિ—

ટીકાર્થ-જીવનો નિર્યાણુમાર્ગ પાંચ પ્રકારનો કહ્યો છે જે પાંચ પ્રકારો નીચે પ્રમાણે છે—(૧) બે ચરણો દ્વારા, (૨) બે જાંઘો દ્વારા, (૩) છાતીમાંથી, (૪) મસ્તકમાંથી અને (૫) સર્વાંગોમાંથી.

મૃત્યુ સમયે શરીરમાંથી જીવને જે બહાર નીકળવાનું થાય છે, તેનું નામ નિર્યાણુ છે. તે નિર્યાણુના ચરણાદિ રૂપ પાચ માર્ગ બતાવ્યા છે. સૂત્રકારે આ સૂત્ર દ્વારા એજ વાત પ્રકટ કરી છે કે ચરણાદિ પાંચ માર્ગેથી જીવ શરીર માંથી નીકળી જાય છે. જે જીવ શરીરમાથી ચરણરૂપ માર્ગે થઇને નીકળી જાય છે તે નિરયગામી બને છે બે જંઘાઓ રૂપ માર્ગેથી નીકળતો જીવ તિર્યંચોમાં ઉત્પન્ન થાય છે, છાતી રૂપ માર્ગેથી નીકળતો જીવ મનુષ્ય ગતિમા ઉત્પન્ન થાય છે. મસ્તકરૂપ માર્ગેથી નિકળતો જીવ દેવગતિમાં

सकलैरङ्गैः निर्यान्=शरीराद् निर्गच्छन् जीवः सिद्धिगतिपर्यवसानः-गतेः पर्यवसानं=पर्यन्तो गतिपर्यवसानं, सिद्धो गतिपर्यवसानं यस्य सः-सिद्धिपदगामी प्रज्ञप्तः=प्ररूपितस्तीर्थकृद्धिरिति ॥ सू० २१ ॥

शरीरिणः शरीरान्निष्क्रमणमायुपश्छेदे भवतीति छेदनं पञ्चविधत्वेनाह—

मूलम्—पंचविहे छेयणे पण्णत्ते, तं जहा—उप्पायछेयणे १ वियछेयणे २ बंधच्छेयणे ३ पएसच्छेयणे ४ दोधारच्छेयणे ५। ॥ सू० २२ ॥

छाया—पञ्चविधं छेदनं प्रज्ञप्तं, तद्यथा=उत्पादच्छेदनं १, व्ययच्छेदनं २, बन्धच्छेदनं ३ प्रदेशच्छेदनं ४ द्विधाकारच्छेदनम् ५ ॥ सू० २२ ॥

टीका—'पंचविहे' इत्यादि—

छेदनं=विभजनं पञ्चविधं प्रज्ञप्तम्, पञ्चविधत्वमेवाह-तद्यथा-उत्पादच्छेदनम्-उत्पादो-देवत्वादि पर्यायान्तरस्य उत्पत्तिः, तेन छेदनं=जीवादिद्रव्यस्य विभज-

---

रूप समस्त अङ्गोंसे होकर निकलना है, वह सिद्धिपद गामी होता है। ऐसा तीर्थंकरोंका कथन है ॥ सू० २१ ॥

जीवका शरीरसे निकलना आयुके छेद होने पर होता है, अतः अब सूत्रकार छेदमें पंच प्रकारताका कथन करते हैं—

"पंचविहे छेयणे पण्णत्ते" इत्यादि सूत्र २२ ॥

छेदन पांच प्रकारका कहा गया है, जैसे—उत्पादच्छेदन १ व्ययच्छेदन २ बन्धच्छेदन ३ प्रदेशच्छेदन ४ और द्विधाकारकच्छेदन ५।

टीकार्थ—विभजनका नाम छेदनहै, यह छेदन उत्पाद छेदन आदिके भेदसे पांच प्रकारका जो कहा गया है, उसका तात्पर्य ऐसा है, कि जो छेदन-

---

ઉત્પન્ન થાય છે. જે જીવ ચરણાદિ રૂપ સમસ્ત અંગોમાંથી નીકળે છે, તે સિદ્ધિગતિમાં ગમન કરે છે, એવું તીર્થંકર ભગવાનોનું કથન છે. ॥ સૂ. ૨૧ ॥

જ્યારે આયુના બંધનો છેદ થાય છે, તૂટે છે, ત્યારે જ જીવ શરીરમાંથી નીકળે છે. તેથી હવે સૂત્રકાર છેદના પાંચ પ્રકારોની પ્રરૂપણા કરે છે.

" પંચવિહે છેયણે પણ્ણત્તે " ઇત્યાદિ—

વિભજન અથવા તૂટવા રૂપ ક્રિયાનું નામ છેદન છે. તેના નીચે પ્રમાણે પાંચ પ્રકાર કહ્યા છે—(૧) ઉત્પાદ છેદન, (૨) વ્યયચ્છેદન, (૩) બન્ધછેદન, (૪) પ્રદેશચ્છેદન અને (૫) દ્વિધારક છેદન.

ટીકાર્થ—જે છેદન રૂપ વિભજન દેવત્વ આદિ અન્ય પર્યાયની ઉત્પત્તિને લીધે થાય છે, તેનું નામ ઉત્પાદચ્છેદન છે. આ કથનનો ભાવાર્થ એ છે કે પ્રત્યેક

नम् १। व्ययच्छेदनं-व्ययः=मानुषत्वादि-पर्यायस्य विनाशः, तेन छेदनं=जीवा दिद्रव्यस्य विभजनम् २। बन्धच्छेदनं-बन्धनं बन्धः=जीवापेक्षया कर्म, स्कन्धापेक्षया सम्बन्धश्च, तस्य छेदनं=विनाशः ३। प्रदेशच्छेदनं-तस्यैव जीवादेः प्रदेशतः=निर्विभागावयवतो बुद्धया छेदनं=विभागः ४। तथा-द्विधाकारच्छेदनम्-द्विधाकरणं-द्विधाकारः=जीवादेरेव द्रव्यस्य भागद्वयकरणं, तद्रूपं छेदनम् । उपलक्षणं चैतत्त्रिधाकारच्छेदनादीनामपि ५।

अथवा-उत्पादस्य=उत्पत्तेः छेदनं=विरह उत्पादछेदनं, यथा नरकगतौ द्वादश मुहूर्त्ताः १। तथा-व्ययच्छेदनम्-व्ययस्य=उद्वर्तनायाः छेदनं विरहः यथा-नरकगतौ द्वादश मुहूर्त्ताः २। बन्धच्छेदनं=बन्धनविरहः, अयम्-उपशान्तमोहस्य सप्तविध कर्मबन्धनापेक्षया भवति ३। प्रदेशच्छेदनम्=प्रदेशविरहः-अयं विसंयोजिता-

रूप विभजन देवत्वादि पर्यायान्तरकी उत्पत्तिसे होता है, वह उत्पादच्छेदन है, तात्पर्य ऐसा है कि प्रत्येक जीवादि द्रव्य परिणमन स्वभावरूप है, अतः उसमें पूर्व पर्यायका विनाश और उत्तर पर्यायका उत्पाद होता रहता है, जब उत्तर पर्यायकी विवक्षित किसी भी देवदत्तत्वादि रूप पर्यायकी उत्पत्ति होती है, उस समय जीवादि द्रव्यका भी विभाजन होता है, क्योंकि उस पर्यायके उत्पादमें उस पूर्व पर्यायवाले जीवादि द्रव्यका विभजन हो जाता है, इसी तरह जब पूर्व पर्यायका मानुषत्वादि रूप पर्यायका विनाशरूप व्यय होता है, उस समय उस व्ययसे जीवादि द्रव्यका विभाजन होता है २। जीवकी अपेक्षासे कर्मका बन्धन बन्ध है, और स्कन्धकी अपेक्षासे सम्बन्धका नाम बन्ध है, इस बन्धका जो विनाश है, वह बन्धच्छेदन है, जीवादिके प्रदेशसे निर्विभाग अव-

જીવાદિ દ્રવ્ય પરિણમન સ્વભાવવાળુ હોય છે, તેથી તેની પૂર્વ પર્યાયને વિનાશ અને ઉત્તર પર્યાયને ઉત્પાદ થતો જ રહે છે. જ્યારે ઉત્તર પર્યાયની (દેવ તિર્યંચ આદિ રૂપ પર્યાયની) ઉત્પત્તિ થાય છે, ત્યારે જીવાદિ દ્રવ્યનું પણ વિભજન થાય છે, કારણ કે તે પર્યાયના ઉત્પાદમાં તે પૂર્વ પર્યાયવાળા જીવાદિ દ્રવ્યનું વિભજન થઇ જાય છે. આ રીતે જ્યારે માનુષત્વ આદિ રૂપ પૂર્વપર્યાયનો વિનાશ રૂપ વ્યય થાય છે, ત્યારે તે વ્યયને લીધે જીવાદિ દ્રવ્યનું વિભજન થાય છે.

જીવની અપેક્ષાએ કર્મનું જે બન્ધન છે તેનું નામ બન્ધ છે. અને સ્કન્ધની અપેક્ષાએ જે પુદ્ગલોનો સબંધ છે તેનું નામ પણ બન્ધ છે. આ બન્ધનો વિનાશ થવો તેનુ નામ બન્ધચ્છેદન છે. જીવાદિના પ્રદેશોની અપેક્ષાએ

नाम् अनन्तानुबन्ध्यादि-कर्मप्रदेशानाम् ४। तथा-द्विधारच्छेदनम्-द्वे धारे यस्य तद् द्विधारं, तच्च तच्छेदनं च ५। उपलक्षणत्वात्-त्रिधारच्छेदनादिकमपि ग्राह्यम्। तच्च क्षुरखड्गचक्रादिकम्। छेदनशब्दसाम्यादिदमत्रोक्तमिति ॥ सू० २२ ॥

यवसे बुद्धि द्वारा छेदनरूप विभाग है, वह प्रदेशच्छेदन है ४। जीवादि द्रव्यकाही विभाग द्वयरूप छेदन करना यह द्विधाच्छेदन है, यह त्रिधाकारक छेदनादिकोंका भी उपलक्षण है। अथवा-उत्पत्तिरूप उत्पादका जो छेदन विरह है, वह उत्पादच्छेदन है, जैसे-नरकगतिमें १२ मुहूर्त्त १ तथा व्ययरूप उद्वर्तनका जो छेदन है, वह व्ययच्छेदन है, जैसे नरकगतिमें १२ मुहूर्त्त बन्धनका जो विरह है, वह बन्धच्छेदन है, यह उपशान्त मोहवाले जीवके सात प्रकारके कर्मबन्धकी अपेक्षासे होता है, ३। प्रदेश विरहका नाम प्रदेशच्छेदन है, यह विसंयोजित अनन्तानुबन्धि आदि कर्म प्रदेशोंका होता है तथा द्विधारच्छेदन, दो हैं धारा जिसकी वह द्विधार है ऐसा द्विधाररूप जो छेदन है, वह द्विधारच्छेदन है ५। उपलक्षण होनेसे इस पद द्वारा त्रिधारच्छेदन आदिका भी ग्रहण कर लेना चाहिये ऐसा वह द्विधारच्छेदन क्षुर खड्ग चक्र आदि रूप होता है, छेदन धर्मकी समानतासे यह यहां कहा है ॥ सू० २२ ॥

निर्विभाग અવયવની અપેક્ષાએ બુદ્ધિ દ્વારા છેદન રૂપ જે વિભજન છે તેનું નામ પ્રદેશચ્છેદન છે. જીવાદિ દ્રવ્યનું જ બે વિભાગ રૂપ છેદન કરવુ તેનું નામ દ્વિધારચ્છેદન છે. આ કથન ત્રિવિભાગકારક છેદનનું પણ ઉપલક્ષણ છે.

અથવા—ઉત્પત્તિ રૂપ ઉત્પાદનનું જે છેદન (વિરહ) છે, તે ઉત્પાદચ્છેદન છે. જેમકે નરકગતિમાં ૧૨ મુહૂર્તનો વિરહકાળ હોય છે. વ્યય રૂપ ઉદ્વર્તનાનું જે છેદન છે, વિરહ છે, તેનુ નામ વ્યયચ્છેદન છે જેમકે નરકમાં ૧૨ મુહૂર્ત પ્રમાણ જે બન્ધનનો વિરહ છે તેનું નામ બન્ધચ્છેદન છે. તે ઉપશાન્ત મોહવાળા જીવના સાત પ્રકારના કર્મબન્ધની અપેક્ષાએ થાય છે.

પ્રદેશ વિરહનું નામ પ્રદેશચ્છેદન છે. તે વિસંયોજિત અનન્તાનુબન્ધી આદિ કર્મપ્રદેશોનું થાય છે. તથા દ્વિધારચ્છેદન જેની બે ધારા છે તેને દ્વિધાર કહે છે એવું જે દ્વિધારરૂપ ચ્છેદન છે તેને દ્વિધારચ્છેદન કહે છે. ઉપલક્ષણની અપેક્ષાએ અહીં ત્રિધારચ્છેદન આદિ પણ ગ્રહણ કરવા જોઇએ એવું તે દ્વિધારચ્છેદન અસ્રો, તલવાર, ચક્ર આદિ રૂપ હોય છે. છેદન ધર્મની સમાનતાને લીધે અહીં તેનુ કથન કરવામાં આવ્યું છે. ॥ સૂ. ૨૨ ॥

छेदनाभावे तु आनन्तर्यमेव भवतीतिच्छेदनविपरीतमानन्तर्यमाह—

मूलम्—पंचविहे आणंतरिए पण्णत्ते, तं जहा—उप्पायणंतरिए १, वियणंतरिए २ पएसाणंतरिए ३ समयाणंतरिए ४ सामण्णाणंतरिए ५ ॥ सू० २३ ॥

छाया—पञ्चविधम् आनन्तर्यं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—उत्पादानन्तर्यम् १, व्ययानन्तर्यम् २, प्रदेशानन्तर्यम् ३, समयानन्तर्यम् ४, सामान्यानन्तर्यम् ५ ॥सू०२३॥

टीका—'पंचविहे' इत्यादि—

आनन्तर्यम्—सातत्यं छेदनभावो विरहाभाव इति यावत्, तच्च पञ्चविधं प्रज्ञप्तम्। पञ्चविधत्वमेवाह—तद्यथा—उत्पादानन्तर्यम्—उत्पादस्य=उत्पत्तेः आनन्तर्यं=सातत्यम्। यथा—नरकगतौ जीवानामुत्कर्षतोऽसंख्येयाः समया इति १। व्ययानन्तर्यम्—व्ययस्य=उद्वर्तनाया आनन्तर्यं=सातत्यम्। यथा—नरकगतौ जीवाना-

छेदनके अभावमें तो आनन्तर्यही होता है, अतः अब सूत्रकार छेदनसे विपरीत आनन्तर्यका कथन करते हैं—

"पंचविहे आणंतरिए पण्णत्ते" इत्यादि सूत्र २३ ॥

टीकार्थ—आनन्तर्य पांच प्रकारका कहा गयाहै जैसे—उत्पाद आनन्तर्य १ व्यय आनन्तर्य २ प्रदेशानन्तर्य ३ समयानन्तर्य ४। और सामान्यानन्तर्य ५ उत्पादका निरन्तर होना यह उत्पादानन्तर्य है। आनन्तर्य शब्दका अर्थ यही है कि निरन्तर होना या छेदनका अभाव होना या विरह कालका अभाव होना इस तरह उत्पत्तिका जो सातत्य है, सतत होना है, वह उत्पादानन्तर्य है। जैसे—नरकगतिमें जीवोंकी उत्पत्तिका आनन्तर्य उत्कृष्टसे असंख्यात समयका है। उद्वर्तनाका सातत्य निरन्तर

છેદનના અભાવમાં તો આનન્તર્યનો જે સદ્ભાવ રહે છે તેથી હવે સૂત્રકાર છેદનથી વિપરીત સ્વરૂપવાળા આનન્તર્યનું નિરૂપણ કરે છે.

" પંચવિહે આણંતરિએ પણ્ણત્તે " ઇત્યાદિ—

ટીકાર્થ—આનન્તર્ય પાંચ પ્રકારનુ કહ્યુ છે—(૧) ઉત્પાદ આનન્તર્ય, (૨) પ્રદેશાનન્તર્ય, (૩) સમયાનન્તર્ય અને (૫) સામાન્યાનન્તર્ય.

નિરન્તર ઉત્પાદનું હોવું તેનું નામ ઉત્પાદ આનન્તર્ય છે. આનન્તર્ય એટલે નિરંતર હોવું અથવા છેદનનો અભાવ હોવો અથવા વિરહકાળનો અભાવ હોવો આ રીતે ઉત્પત્તિનું સાતત્ય (સતત સદ્ભાવ) હોવું તેનું નામ જ ઉત્પાદનાન્તર્ય છે. જેમકે નરક ગતિમાં જીવોની ઉત્પત્તિનું આનન્તર્ય વધારેમાં વધારે અસંખ્યાત સમયનું છે ઉદ્વર્તનાનું નિરન્તર સાતત્ય હોવું

मुत्कर्षतोऽसंख्येयाः समया इति २। प्रदेशानन्तर्यम्–निर्विभागावयवरूपाणां प्रदेशानाम् आनन्तर्यम् ३। समयानन्तर्यम्–समयानाम् आनन्तर्यम् ४। एतद्द्वयं प्रतीतमेव। तथा–सामान्यानन्तर्यम्–यत्र उत्पादव्ययादिरूपं विशेषणं न विवक्ष्यते, एवंविधं यदानन्तर्यमात्रं तत् सामान्यानन्तर्यम् ५। अथवा–श्रामण्यानन्तर्यमितिच्छाया। श्रामण्यस्य आनन्तर्यम्=सातत्यम्। एतत् आकर्षविरहेण बहुजीवापेक्षया श्रामण्यप्रतिपत्त्या वा बोध्यम्। एतत्पुनरष्टौ समया इति ॥ सू० २३ ॥

पूर्वसूत्रे समयप्रदेशानाम् आनन्तर्यमुक्तम्, समयाः प्रदेशाश्चानन्ता एव भवन्तीति अनन्तस्य पञ्चविधत्वमाह––

मूलम्–पंचविहे अणंतए पण्णत्ते, तं जहा–णामाणंतए १ ठवणाणंतए २ दव्वाणंतए ३ गणणाणंतए ४ पएसाणंतए ५। अहवा पंचविहे अणंतए पण्णत्ते, तं जहा–एगओऽणंतए १

होना यह व्ययानन्तर्य है, जैसे–नरकगतिमें जीवोंका व्ययानन्तर्य उत्कृष्टसे असंख्यात समयका है, निर्विभाग अवयवरूप प्रदेशोंका जो आनन्तर्य है वह प्रदेशानन्तर्य है। समयोंका जो आनन्तर्यहै, वह समयानन्तर्य है, प्रदेशानान्तर्य और समयानन्तर्य ये दो प्रतीतही हैं। जिस आनन्तर्यमें उत्पाद, व्यय आदिरूप विशेषण विवक्षित न हो ऐसा जो आनन्तर्य है वह सामान्यानंतर्य है, अथवा–"सामण्णाणंतरिए" की संस्कृत छाया श्रामण्यानन्तर्य ऐसा भी होती है, यह आकर्षके विरहसे अथवा बहु जीवोंकी अपेक्षासे या श्रामण्यकी प्रतिपत्तिसे होता है, यह आठ समयका होता है ॥ सू. २३॥

તેનું નામ વ્યયાન્તર્ય છે. જેમકે નરક ગતિમાં જીવોનું વ્યયાનન્તર્ય વધારેમાં વધારે અસંખ્યાત સમયનું છે. નિર્વિભાગ અવયવ રૂપ પ્રદેશોનું જે આનન્તર્ય છે, તેનું નામ પ્રદેશાનન્તર્ય છે. સમયોનું જે આનન્તર્ય છે, તેનું નામ સમયાનન્તર્ય છે. પ્રદેશાનાન્તર્ય અને સમયાનાન્તર્ય, એ બે પ્રતીત જ છે જે આનન્તર્યમાં ઉત્પાદ, વ્યય, આદિ રૂપ વિશેષણ વિવક્ષિત ન હોય એવા આનન્તર્યને સામાન્યાન્તર્ય કહે છે. અથવા "સામણ્ણાણંતરિએ" ની સંસ્કૃત છાયા શ્રામણ્યાનન્તર્ય પણ થાય છે. તે આકર્ષના વિરહથી અથવા બહુ જીવોની અપેક્ષાએ અથવા શ્રામણ્યની પ્રતિપત્તિની અપેક્ષાએ હોય છે. તે આઠ સમયનું હોય છે. ॥ સૂ. ૨૩ ॥

दुहओऽणंतए २ देसवित्थाराणंतए ३ सव्ववित्थाराणंतए ४ सासयाणंतए ५ ॥ सू० २४ ॥

छाया—पञ्चविधम् अनन्तकं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—नामानन्तकं १ स्थापनानन्तकं २ द्रव्यानन्तकं ३ गणनानन्तकं ४ प्रदेशानन्तकम् ५। अथवा पञ्चविधम् अनन्तकं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—एकतोऽनन्तकम् १, उभयतोऽनन्तकं २ देशविस्तारानन्तकं ३ सर्वविस्तारानन्तकं ४ शाश्वतानन्तकम् ५ ॥ सू० २४ ॥

टीका—'पंचविहे' इत्यादि—

अनन्तकस्य पञ्चविधत्वं प्रकारद्वयेनात्रोक्तम्। तत्र प्रथम प्रकारो नामानन्तकम्—इत्यादि। तत्र—यस्य नाम 'अनन्त' इति कृतं स नामानन्तकम् १।

इस ऊपरके सूत्रमें समय एवं प्रदेशोंका आनन्तर्य कहा है समय और प्रदेश अनन्तही होते हैं, इसलिये अब सूत्रकार अनन्तकी पांच प्रकारताका कथन करते हैं—

'पंचविहे अणंतए पण्णत्ते' इत्यादि सूत्र २४ ॥

टीकार्थ—अनन्तक पांच प्रकारका कहा गया है, जैसे—नामानन्तक१ स्थापनानन्तक २ द्रव्यानन्तक ३ गणनानन्तक ४ और प्रदेशानन्तक ५ अथवा एकतोऽनन्तक १ उभयतोऽनन्तक २ देशविस्तारानन्तक ३ सर्वविस्तारानन्तक ४ और शाश्वतानन्तक ५ इस सूत्र द्वारा अनन्तकमें पंचविधता दो तरहसे प्रकटकी गई है—इनमें प्रथम प्रकार नामानन्तक आदि रूपसे है, जिसका नाम "अनन्त" इस रूपसे कर दिया गया हो

આગલા સૂત્રમા સમય અને પ્રદેશોના આનન્તર્યનું કથન કરવામાં આવ્યું. સમય અને પ્રદેશ અનન્ત હોય છે તેથી હવે સૂત્રકાર અનન્તના પાંચ પ્રકારોનું કથન કરે છે "पंचविहे अणंतए पण्णत्ते" ઇત્યાદિ—

ટીકાર્થ—આનન્તક પાચ પ્રકારના કહ્યા છે—(૧) નામાનન્તક, (૨) સ્થાપનાનન્તક (૩) દ્રવ્યાનન્તક, (૪) ગણનાનન્તક અને (૫) પ્રદેશાનન્તક. અથવા તેના આ પ્રમાણે પાંચ પ્રકાર પણ પડે છે—

(૧) એકતો અનન્તક, (૨) ઉભયત અનન્તક, (૩) દેશવિસ્તારાનન્તક, (૪) સર્વવિસ્તારાનન્તક અને (૫) શાશ્વતાનન્તક

આ સૂત્રમા બે પ્રકારે અનન્તકમાં પંચવિધતા પ્રકટ કરવામાં આવી છે. જેનું નામ 'અનન્ત' રાખવામાં આવ્યું હોય, તે નામાનન્તક છે. જે અક્ષ

यस्याक्षादेः अनन्तेति कल्पनया स्थापना कृता तत् स्थापनानन्तकम् २। जीव-द्रव्याणां पुद्गलद्रव्याणां वा यदनन्तकं तद् द्रव्यानन्तकम् ३। गणनानन्तकम्-गणना= संख्यानं तद्रूपम् अनन्तकम् अविवक्षितपरापवादिसंख्येयविषयः संख्याविशेष इत्यर्थः ४। तथा प्रदेशानन्तकम् प्रदेशानां=संख्येयादेशानाम् अनन्तकमिति ५। अथ द्वितीयं प्रकारमाह-'अहवा पंचविहे' इत्यादिना। तत्र-एकतोऽनन्तकम्-एकतः= आयामलक्षणेन एकेनांशेन अनन्तकम्-एकश्रेणीकं क्षेत्रमित्यर्थः १। उभयतोऽन-न्तकम्-उभयतः=आयामविस्ताराभ्याम् उभाभ्याम् अनन्तकम्-प्रतरक्षेत्रमित्यर्थः २। देशविस्तारानन्तकम्-देशः=क्षेत्रस्य रुचकापेक्षया यः पूर्वाद्यन्यतमदिग्लक्षणः,

---

वह नामानन्तक है, जिस अक्ष (पाशा) आदिकी "अनन्त" इस कल्पनासे स्थापना करली गई हो वह स्थापनानन्तक है, जीव द्रव्योंका अथवा पुद्गल द्रव्योंका जो अनन्तक है, वह द्रव्यानन्तक है, गणना नाम गिनतीका है, इस गिनती रूप जो अनन्तक है, वह गणनानन्तक है, इस गणनानन्तकमें अणु आदिकोंकी जो संख्याततता है, वह अविवक्षित होनेसे विषय नहीं होती है, यह गणनानन्तक संख्या विशेषरूप होता है, तथा संख्यात प्रदेशोंकी जो अनन्तता है वह प्रदेशानन्तक है, अब अनन्तकी द्वितीय प्रकारता इस प्रकारसे है-आयाम रूप एक अंशसे जो क्षेत्र समश्रेणीवाला होता है, वह एकतोऽनन्तक है, आयाम एवं विस्तारसे दोनोंसे जो क्षेत्र प्रतररूप वर्गरूप होता है, वह उभयतोऽनन्तक है, क्षेत्रका रुचक आदिकी अपेक्षा पूर्वादि अन्यतम दिशा आदिका

(પાશા) આદિની "અનન્ત" આ કલ્પનાથી સ્થાપના કરી લેવામાં આવી હોય, તે સ્થાપનાનન્તક છે. જીવદ્રવ્યોનું અથવા પુદ્ગલ દ્રવ્યોનું જે અનન્તક છે, તે દ્રવ્યાનન્તક છે. ગણના એટલે ગણુતરી. આ ગણુતરી રૂપ જે અનન્તક છે તેને ગણુનાનન્તક કહે છે આ ગણુનાનન્તકમાં અણુ આદિની જે સંખ્યાતતા છે તે અવિવક્ષિત હોવાથી તે પ્રતિપાદિત થતી નથી. તે ગણુનાનન્તક સંખ્યા-વિશેષ રૂપ હોય છે. સંખ્યાત પ્રદેશોની જે અનન્તતા છે તેનું નામ પ્રદેશા-નન્તક છે. બીજી રીતે અનન્તના જે પાંચ પ્રકારો બતાવ્યા છે, તેમનું હવે સ્પષ્ટીકરણ કરવામાં આવે છે--

આયામ (લંબાઇ) રૂપ એક અંશની અપેક્ષાએ જે ક્ષેત્ર સમશ્રેણીવાળું હોય છે, તેને 'એકતઃ અનન્તક' કહે છે. આયામ અને વિસ્તાર, એ બંનેની અપેક્ષાએ જે ક્ષેત્ર પ્રતર રૂપ-વર્ગરૂપ હોય છે, તેને 'ઉભયતઃ અનન્તક' કહે છે. ક્ષેત્રનો રુચક આદિની અપેક્ષાએ પૂર્વાદિ કોઇ પણ દિશાનો જે

तस्य विस्तारो=विष्कम्भस्तस्य प्रदेशापेक्षया अनन्तकम् ३। सर्वविस्तारानन्तकम्-सर्वतो विस्तारो यस्य स सर्वविस्तारः-सर्वाकाशः, तस्य प्रदेशापेक्षया अनन्तकम् ४। तथा-शाश्वतानन्तकम्-शाश्वतम्-अनाद्यपर्यवसितं जीवादिद्रव्यं, तस्य अनन्तकम्-अनन्तकालस्थितिकत्वादिति ॥ सू० २४ ॥

अनन्तरसूत्रोक्तार्थपरिच्छेदो ज्ञानाद् भवतीति ज्ञानस्वरूपं निरूपयितुमाह—

मूलम्-पंचविहे नाणे पण्णत्ते, तं जहा-आभिणिबोहिय-णाणे १ सुयणाणे २ ओहिणाणे ३ मणपज्जवणाणे ४ केवल-णाणे ५ ॥ सू० २५ ॥

छाया—पञ्चविधं ज्ञानं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा-आभिनिबोधिकज्ञानं १ श्रुतज्ञानम् २ अवधिज्ञानं ३, मनःपर्यवज्ञानं ४ केवलज्ञानम् ५ ॥ सू० २५ ॥

टीका—'पंचविहे' इत्यादि।

व्याख्या निगदसिद्धा। विस्तरस्तु नन्दीसूत्रस्य मत्कृतायां ज्ञानचन्द्रिका व्याख्यायां विलोकनीयः ॥ सू० २५ ॥

जो विस्तार-विष्कम्भ है, सो इस विस्तारमें जो प्रदेशोंकी अपेक्षासे अनन्तक है, वह प्रदेशानन्तक है, जिसका सर्व रूपसे विस्तार है, ऐसा वह सर्वाकाश सर्व विस्तार पदसे यहां लिया गया है, इस सर्वाकाशरूप सर्व विस्तारमें जो प्रदेशोंकी अपेक्षा अनन्तक है, वह सर्व विस्तारानन्तक है। अनादि अनन्तरूप जो जीवादि द्रव्य है, वह यहां शाश्वत शब्दसे गृहीत हुआ है, इस शाश्वतकी जो अनन्तता है, वह अनन्तकाल तक स्थितिवाला होनेसे शाश्वतानन्तक है ॥ सू० २४ ॥

इस ऊपरके सूत्रमें उक्त अर्थका परिच्छेद ज्ञानसे होता है, इसलिये अब सूत्रकार ज्ञानके स्वरूपका निरूपण करते हैं—

વિસ્તાર (વિષ્કંભ) છે તે વિસ્તારમાં પ્રદેશોની અપેક્ષાએ જે અનન્તક છે તેનું નામ પ્રદેશાનન્તક છે જેનો સર્વ રૂપે વિસ્તાર છે એવા સર્વાકાશને, અહીં સર્વ વિસ્તાર પદથી ગ્રહણ કરવામા આવેલ છે. તે સર્વાકાશ રૂપ સર્વ વિસ્તારમાં પ્રદેશોની અપેક્ષાએ જે અનન્તક છે તેને સર્વ વિસ્તારાનન્તક કહે છે. અનાદિ અનન્ત રૂપ જે જીવાદિ દ્રવ્ય છે, તેને અહીં શાશ્વત પદથી ગ્રહણ કરવામાં આવેલ છે. આ શાશ્વતની જે અનન્તતા છે તે અનન્તકાળની સ્થિતિવાળી છે તેથી તેને શાશ્વતાનન્તક કહે છે ॥ સૂ. ૨૪ ॥

આગલા સૂત્રમા જે વિષયનું પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યું છે તે વિષયનો પરિચ્છેદ (બોધ) જ્ઞાન વડે જ થાય છે. તેથી હવે સૂત્રકાર જ્ઞાનના પ્રકારોનું

इत्थं ज्ञानं पञ्चविधत्वेनोक्त्वा सम्प्रति तदावरकं कर्म पञ्चविधत्वेनाह—

मूलम्—पंचविहे णाणावरणिज्जे कम्मे पण्णत्ते, तं जहा-आभिणिबोहियणाणावरणिज्जे जाव केवलनाणावरणिज्जे ॥सू०२६॥

छाया—पञ्चविधं ज्ञानावरणीयं कर्म प्रज्ञप्तम्, तद्यथा-आभिनिबोधिकज्ञानावरणीयं यावत् केवलज्ञानावरणीयम् ॥ सू० २६ ॥

टीका—' पंचविहे ' इत्यादि—

ज्ञानावरणीयं-ज्ञानम्=उक्तलक्षणम् आवृणोति=आच्छादयति यत् कर्म तत् पञ्चविधं प्रज्ञप्तम् । पञ्चविधत्वमेवाह-तद्यथा-आभिनिबोधिकज्ञानावरणीयमित्यादि ॥ सू० २६ ॥

'पंचविहे णाणे पण्णत्ते' इत्यादि सूत्र २५ ॥

टीकार्थ-ज्ञान पांच प्रकारका कहा गयाहै, जैसे-आभिनिबोधिक ज्ञान १ श्रुतज्ञान २ अवधिज्ञान ३ मनःपर्ययज्ञान ४ और केवलज्ञान ५।

इन पांच स्थानोंके विषयमें विशेष कथन जाननेके अभिलाषियोंको नन्दीसूत्रकी ज्ञानचन्द्रिका नामकी व्याख्या देखनी चाहिये ॥ सू० २५ ॥

ज्ञानकी पंचविधता कहकर अब सूत्रकार इनके आवारक कर्मोंकी पंचविधताका कथन करते हैं—

'पंचविहे णाणावरणिज्जे कम्मे पण्णत्ते' इत्यादि सू० २६॥

टीकार्थ-ज्ञानको आवरण करनेवाला जो ज्ञानावरणीय कर्महै, वह पांच प्रकारका कहा गया है, जैसे-आभिनिबोधिक ज्ञानावरणीय यावत् केव-

---

નિરૂપણ કરે છે. " પંચવિહે ણાણે પણ્ણત્તે " ઇત્યાદિ—

ટીકાર્થ-જ્ઞાનના નીચે પ્રમાણે પાંચ પ્રકાર કહ્યા છે—(૧) આભિનિબોધિક જ્ઞાન (૨) શ્રુતજ્ઞાન, (૩) અવધિજ્ઞાન, (૪) મનઃપર્યય જ્ઞાન અને (૫) કેવળજ્ઞાન.

આ પાંચે જ્ઞાનના સ્વરૂપનું વિસ્તૃત નિરૂપણ નન્દીસૂત્રની જ્ઞાનચન્દ્રિકા નામની ટીકામાં કરવામાં આવ્યુ છે. તો જિજ્ઞાસુ પાઠકોએ ત્યાંથી તે વાંચી લેવું. ॥ સૂ. ૨૫ ॥

જ્ઞાનના પાંચ પ્રકારોનું કથન કરીને હવે સૂત્રકાર તેના આવરક કર્મોની પંચવિધતાનું કથન કરે છે. " પંચવિહે णाणावरणिज्जे कम्मे पण्णत्ते " ઇત્યાદિ—

જ્ઞાનાવરણીય કર્મ પાંચ પ્રકારના કહ્યા છે—(૧) આભિનિબોધિક જ્ઞાનાવરણીય, શ્રુત જ્ઞાનાવરણીય, અવધિજ્ઞાનાવરણીય, મનઃપર્યય જ્ઞાનાવરણીય અને કેવળ જ્ઞાનાવરણીય.

इत्थं ज्ञानावरणीयं कर्म पञ्चविधत्वेनोक्त्वा सम्प्रति तत्क्षपणोपायविशेषं स्वाध्यायं पञ्चविधत्वेन प्ररूपयति—

मूलम्—पंचविहे सज्झाए पण्णत्ते, तं जहा—वायणा १ पुच्छणा २ परियट्टणा ३ अणुप्पेहा ४ धम्मकहा ५ ॥ सू० २७ ॥

छाया--पञ्चविधः स्वाध्यायः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—वाचना १ प्रच्छना २ परिवर्तना ३ अनुप्रेक्षा ४ धर्मकथा ५ ॥ सू० २७ ॥

टीका--' पंचविहे ' इत्यादि--

स्वाध्यायः—सु=शोभनम् आ=मर्यादया अध्ययनं=पठनादिकं स्वाध्यायः, स पञ्चविधो बोध्यः । पञ्चविधत्वमेवाह—तद्यथा—वाचना=गुरोः सकाशाद्विनय-

---

ज्ञानावरणीय ५ जो कर्म ज्ञानका आवरण करता है, उसे आच्छादित करता है, वह ज्ञानावरणीय कर्म है, इसी प्रकारसे श्रुतज्ञानावरणीय कर्म है इत्यादि ॥ सू० २६ ॥

इस प्रकारसे ज्ञानावरणीय कर्म पांच प्रकारका कहकर अब सूत्रकार उसके क्षयके उपाय विशेषको और स्वाध्यायको पांच प्रकारका कहते हैं—पंचविहे सज्झाए पण्णत्ते' इत्यादि सू० २७ ॥

स्वाध्याय पांच प्रकारका कहा गया है, जैसे—वाचना १ प्रच्छना २ परिवर्तना ३ अनुप्रेक्षा ४ और धर्मकथा ५ ।

टीकार्थ—मर्यादापूर्वक जो मूल सूत्रका अच्छी तरहसे पठनादिक किया जाता है, वह स्वाध्याय है, यह स्वाध्याय पांच प्रकारका वाचना आदिके

જે કર્મ જ્ઞાનના ઉપર આવરણુ રૂપ બની જાય છે, જ્ઞાનને આચ્છાદિત કરી દે છે, તે કર્મોને જ્ઞાનાવરણીય કર્મો કહે છે. જેમકે શ્રુતજ્ઞાનનું આવરણુ કરનાર જે કર્મ છે તેને શ્રુતજ્ઞાનાવરણીય કર્મ કહે છે એ જ પ્રમાણે બાકીનાં કર્મો વિષે પણ સમજવું. ॥ સૂ. ૨૬ ॥

જ્ઞાનાવરણીય કર્મના પાચ પ્રકારો પ્રકટ કરીને હવે સૂત્રકાર તેના ક્ષયના ઉપાય વિશેષો રૂપ સ્વાધ્યાયના પાચ પ્રકારોને હવે પ્રકટ કરે છે.

" પંચવિહે સજ્ઝાયે પણ્ણત્તે " ઇત્યાદિ—

સ્વાધ્યાય પાંચ પ્રકારનાં કહ્યાં છે—(૧) વાચના, (૨) પ્રચ્છના, (૩) પરિવર્તના, (૪) અનુપ્રેક્ષા, અને (૫) ધર્મકથા.

મર્યાદાપૂર્વક મૂળ સૂત્રનુ જે પઠન આદિ કરવામાં આવે છે તેનું નામ સ્વાધ્યાય છે તેના વાચના આદિ જે પાંચ ભેદો કહ્યા છે તેનું હવે સ્પષ્ટીકરણુ કરવામાં આવે છે—-

पूर्वकं सूत्रार्थतदुभयानां ग्रहणम् १। पृच्छना=वाचितस्य शिष्यस्य वाचनायां संशयोत्पत्तौ तन्निराकरणाय यद् गुरोः समीपे पृच्छनं सा पृच्छना २। परिवर्तनावाचनया वाचितस्य पृच्छनया विशोधितस्य सूत्रार्थतदुभयस्य विस्मृतिर्माभूदिति यत् सूत्रस्य पुनः पुनरावृत्तिः सा, ३। अनुप्रेक्षा अनुप्रेक्षणम् अनुप्रेक्षा-गृहीतस्य सूत्रार्थतदुभयस्य विस्मृति र्मा भूदिति या तच्चिन्तना सा। ४। धर्मकथा-धर्मस्य=श्रुतचारित्ररूपस्य कथनं=व्याख्यानं-धर्मकथा ५। वाचनापृच्छनापरिवर्तनानुप्रेक्षाभिरभ्यस्तश्रुतेन साधुना धर्मकथा कर्तव्येति भावः ॥ सू० २७ ॥

भेदसे जो कहा गया है, उसका अभिप्राय ऐसा है, कि विनयपूर्वक गुरुके पाससे जो सूत्रका अर्थका और सूत्रार्थ दोनोंका ग्रहण किया जाता है, पढे हुए विषयमें शिष्यको जो शंका आदि हो जाती है, सो उस शंकाको दूर करनेके निमित्त जो गुरुसे पूछा जाता है, वह प्रच्छना है, वाचनासे सीखे गये और प्रच्छनासे विशुद्ध किये गये सूत्रको अर्थको और सूत्रार्थ दोनोंकी विस्मृति न हो जाय इस अभिप्रायसे जो पुनः पुनः आवृत्ति करना है, वह परिवर्तना करना है, गृहीत सूत्र अर्थ और तदुभयकी विस्मृति न हो जाय इस अभिप्रायसे जो चिन्तना है, वह अनुप्रेक्षा है, तथा श्रुतचारित्र रूप धर्मका जो व्याख्यान है, वह धर्मकथा है। वाचना, प्रच्छना, परिवर्तना और अनुप्रेक्षा इनसे अभ्यस्त श्रुतवाले साधुको धर्मकथा करनी चाहिये ऐसा इस कथनका भाव है ॥ सू० २७ ॥

વિનયપૂર્વક ગુરુની પાસે જે સૂત્રનું અને અર્થને ગ્રહણ કરવાનુ કાર્ય થાય છે, તેનું નામ વાચના છે. જે વિષયનો શિષ્ય દ્વારા અભ્યાસ કરાયો હોય તે વિષયમાં કોઈ શંકા ઉદ્ભવે તો તેના નિવારણ માટે ગુરુને જે પ્રશ્ન પૂછવામા આવે છે, તેનુ નામ પ્રચ્છના છે. વાચના દ્વારા જે સૂત્ર અથવા અર્થને ગ્રહણ કરવામાં આવ્યો હોય અને પ્રચ્છના દ્વારા જે સૂત્ર અને અર્થને વિશુદ્ધ કરવામા આવ્યો હોય તેની વિસ્મૃતિ ન થઈ જાય તે માટે ફરી ફરીને તેનુ પુનરાવર્તન કરવું-તેનું નામ પરિવર્તના છે ગૃહીત સૂત્ર, અર્થ અને સૂત્રાર્થની વિસ્મૃતિ થઈ ન જાય, તે માટે વારંવાર તેનું ચિન્તન કર્યા કરવું તેનું નામ અનુપ્રેક્ષા છે. શ્રુતચારિત્ર રૂપ ધર્મનું જે વ્યાખ્યાન કરવામા આવે છે, તેનું નામ ધર્મકથા છે વાચના, પ્રચ્છના, પરિવર્તના અને અનુપ્રેક્ષા, આ ચાર વડે જેને શ્રુતજ્ઞાન સંપાદન કર્યું હોય એવા સાધુએ જ ધર્મકથા (વ્યાખ્યાન) કરવી જોઈએ. ॥ સૂ. ૨૭ ॥

धर्मकथाऽभिभूतमिथ्याभावा एव भविनो विशुद्धप्रत्याख्यानभाजो भवन्तीति प्रत्याख्यानं निरूपयति--

मूलम्—पंचविहे पच्चक्खाणे पण्णत्ते, तं जहा-सद्दहणसुद्धे १ विणयसुद्धे २ अणुभासणासुद्धे ३ अणुपालणासुद्धे ४ भावसुद्धे ५ ॥ सू० २८ ॥

छाया--पञ्चविधं प्रत्याख्यानं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा-श्रद्धानशुद्धं १ विनयशुद्धम् २ अनुभाषणाशुद्धम् ३ अनुपालनाशुद्धं ४ भावशुद्धम् ५ ॥ सू० २८ ॥

टीका--'पंचविहे पच्चक्खाणे' इत्यादि--

प्रत्याख्यानम्-प्रति=प्रतिषेधतः आ=मर्यादया विवक्षित कालमानया ख्यानं=प्रकथनं प्रत्याख्यानम्। तच्च पञ्चविधं प्रज्ञप्तं=प्ररूपितम्। पञ्चविधत्वमेवाह-तद्यथा-श्रद्धानशुद्धम्-श्रद्धानं=श्रद्धा-'तथेद' मिति विश्वासस्तेन शुद्धं=निरवद्य, श्रद्धानाभावे तु तत्सावद्यं भवति। तदुक्तम्—

धर्मकथासे जिनके मिथ्यात्व नष्ट हो चुके हैं, ऐसेही भव्य जीव विशुद्ध प्रत्याख्यानवाले होते हैं, अतः अब सूत्रकार प्रत्याख्यानका निरूपण करते हैं-'पंचविहे पच्चक्खाणे पण्णत्ते' इत्यादि सू० २८ ॥

प्रत्याख्यान पांच प्रकारका कहा गया है, जैसे-श्रद्धानशुद्ध १ विनयशुद्ध २ अनुभाषणा शुद्ध ३ अनुपालना शुद्ध ४ और भाव शुद्ध ५।

टीकार्थ-प्रतिषेध करके जिसका कथन विवक्षित कालकी मर्यादा तक किया जाना है, वह प्रत्याख्यानहै, यह प्रत्याख्यान श्रद्धान शुद्ध आदिके भेदसे पांच प्रकारका कहा गया है, जो प्रत्याख्यान श्रद्धासे यह ऐसा ही है, इस प्रकारके विश्वाससे शुद्ध निरवद्य होता है, वह श्रद्धान शुद्ध

ધર્મકથા દ્વારા જેમનો મિથ્યાભાવ નષ્ટ થઈ ચુકયો હોય છે એવાં જ ભવ્ય જીવો વિશુદ્ધ પ્રત્યાખ્યાનવાળા હોય છે, તેથી હવે સૂત્રકાર પ્રત્યાખ્યાનનું સ્વરૂપ પ્રકટ કરે છે "પંચવિહે પચ્ચક્ખાણે પણ્ણત્તે" ઈત્યાદિ—

ટીકાર્થ-પ્રત્યાખ્યાનના નીચે પ્રમાણે પાંચ પ્રકાર કહ્યા છે-(૧) શ્રદ્ધાનશુદ્ધ, (૨) વિનયશુદ્ધ, (૩) અનુભાષણાશુદ્ધ, (૪) અનુપાલનાશુદ્ધ અને (૫) ભાવશુદ્ધ.

પ્રતિષેધ (નિષેધ) કરીને જેનું કથન અમુક ચોક્કસ કાળની મર્યાદા પર્યન્ત કરવામાં આવે છે તેનું નામ પ્રત્યાખ્યાન છે. તે પ્રત્યાખ્યાન શ્રદ્ધાન-શુદ્ધ આદિના ભેદથી પાચ પ્રકારના છે આ વસ્તુ આદિ ત્યાગ કરવાને પાત્ર છે, એવી શ્રદ્ધાપૂર્વક જે પ્રત્યાખ્યાન લેવામાં આવે છે, તે પ્રત્યાખ્યાનને શ્રદ્ધાન-શુદ્ધ કહે છે શ્રદ્ધાના સદ્ભાવમાં જ પ્રત્યાખ્યાન શુદ્ધ-નિરવદ્ય હોઈ શકે છે,

" पच्चक्खाणं सव्वन्नुदेसियं जं जहिं जया काले।
तं जो सद्दहइ नरो, तं जाणसु सद्दहणसुद्धं ॥ १ ॥ "

छाया---प्रत्याख्यानं सर्वज्ञदेशितं यद् यत्र यदा काले।
तद् यः श्रद्दधाति नरस्तद् जानीहि श्रद्धानशुद्धम् ॥ १ ॥ इति ॥१॥

विनयशुद्धम्-विनयेन शुद्धं विनयाभावेत्वशुद्धम्। एवमग्रेऽपि तत्तदभावे अशुद्धता बोध्या। विनयशुद्धमेवमुक्तम्---

" किइकम्मस्स विसोहिं, पउंजए जो अहीणमइरित्तं।
मणवयणकायगुत्तो, तं जाणसु विणयओ सुद्धं ॥ १ ॥ "

छाया---कृतिकर्मणो विशोधि प्रयुङ्क्ते यः अहीनातिरिक्तम्।
मनोवचनकायगुप्तः तं जानीहि विनयतः शुद्धम् ॥ १ ॥ इति ॥ २॥

प्रत्याख्यान है, श्रद्धानके अभावमें तो वह सावद्य होता है। कहा भी है-
" पच्चक्खाणं सव्वन्नुदेसियं " इत्यादि।

जिस कालमें जो प्रत्याख्यान सर्वज्ञ भगवान्‌ने कहा है, उस पर जो विश्वास करता है, वह प्रत्याख्यान श्रद्धान शुद्ध प्रत्याख्यान है। जो प्रत्याख्यान विनयसे शुद्ध होता है, वह प्रत्याख्यान विनय शुद्ध प्रत्याख्यान है, जो प्रत्याख्यान विनयके अभावमें होता है, वह अशुद्ध प्रत्याख्यान है-इसी तरहसे आगे भी उन २ के अभावमें प्रत्याख्यानमें अशुद्धता जाननी चाहिये-विनय शुद्ध प्रत्याख्यानके विषयमें ऐसा ही कहा गया है—" किइ कम्मस्स विसोहिं " इत्यादि

मन वचन और कायसे गुप्त हुआ जो मनुष्य कृतिकर्मकी न हीन और न अधिक ऐसी विशुद्धि करता है, वह विनय शुद्ध प्रत्याख्यान-

---

તેના અભાવમાં તો તે અશુદ્ધ-નિરવદ્ય જ હોય છે. કહ્યું પણ છે કે :
" पच्चक्खाणं सव्वन्नुदेसियं " ઇત્યાદિ—

જે કાળે જે પ્રત્યાખ્યાન કરવાનું સર્વજ્ઞ ભગવાને ફરમાવ્યું છે, તે કાળે શ્રદ્ધાપૂર્વક તે પ્રત્યાખ્યાન કરનારના પ્રત્યાખ્યાનને શ્રદ્ધાનશુદ્ધ પ્રત્યાખ્યાન કહે છે. જે પ્રત્યાખ્યાન વિનયની અપેક્ષાએ શુદ્ધ હોય છે, તે પ્રત્યાખ્યાનને વિનય-શુદ્ધ પ્રત્યાખ્યાન કહે છે. જે પ્રત્યાખ્યાનમાં વિનયનો અભાવ હોય છે-વિનયની અપેક્ષાએ અશુદ્ધ હોય છે, તે પ્રત્યાખ્યાનને અશુદ્ધ પ્રત્યાખ્યાન કહે છે. એ જ પ્રમાણે આગળ પણ જે જે પ્રકાર કહેવામાં આવ્યા છે, તેમાં પણ તે વિષયના અભાવમાં અશુદ્ધતા સમજવી વિનયશુદ્ધ પ્રત્યાખ્યાનના વિષયમાં એવું કહ્યુ છે કે " किइकम्मस्स विसोहिं " ઇત્યાદિ—

अनुभाषणाशुद्धम्-अनुभाषणम्-अनुभाषणा='वोसिर' इतिगुरुणा प्रोचते यत् शिष्यस्य 'वोसिरामि' इति कथनं सा, तया शुद्धम्। तदुक्तम्--

"अणुभासइ गुरुवयणं, अक्खरपयवंजणेहिं परिसुद्धं।
पंजलिउडो अभिमुहो, तं जाणणुभासणासुद्धं ॥ १ ॥"

छाया--अनुभाषते गुरुवचनम्-अक्षरपदव्यञ्जनैः परिशुद्धम्।
प्राञ्जलिपुटः अभिमुखस्तद् जानीहि अनुभाषणाशुद्धम् ॥१॥ इति ॥३॥

अनुपालनाशुद्धम्-अनुपालनम्-अनुपालना=गृहीतस्य व्रतस्य परीषहोपसर्गादिष्वपि परिपालनं, तया विशुद्धम्। उक्तं च--

---

है, अनुभाषणा शुद्ध प्रत्याख्यान इस प्रकारसे है, कि जब गुरुके द्वारा "वोसिरे" ऐसा कहा जावे तब जो शिष्य "वोसिरामि" ऐसा कहता है वह अनुभाषण-अनुभाषणा है इस अनुभाषणासे जो प्रत्याख्यान शुद्ध होता है, वह अनुभाषणा शुद्ध प्रत्याख्यान है। कहा भी है- "अणुभासइ गुरुवयण" इत्यादि।

अक्षर पद एवं व्यञ्जनोंसे परिशुद्ध जिस भाषणको गुरु कहता है उस भाषणके बाद जो दोनों हाथ जोड़कर और उनके समक्ष होकर शिष्यका भाषण करता है, वह अनुभाषणा शुद्ध प्रत्याख्यान है। अनुपालना शुद्ध-गृहीत व्रतका जो परीषह एवं उपसर्ग आदिके आने पर

મન, વચન અને કાયની અપેક્ષાએ ગુપ્ત થયેલે પુરુષ-મનોગુપ્તિ, વચનગુપ્તિ અને કાયગુપ્તિથી યુક્ત પુરુષ-જો કૃતિકર્મની હીન વિશુદ્ધિ પણ કરતે નથી અને અધિક વિશુદ્ધિ પણ કરતો નથી, તો તે વિનયશુદ્ધ પ્રત્યાખ્યાનવાળો ગણાય છે. અનુભાષણા શુદ્ધપ્રત્યાખ્યાન—જ્યારે ગુરુ દ્વારા "वोसिरे" આ પદ કહેવામાં આવે ત્યારે શિષ્ય "वोसिरामि" આ પદ બોલે છે આ પ્રકારના અનુકથનને અનુભાષણા કહે છે. આ અનુભાષણાથી જે પ્રત્યાખ્યાન શુદ્ધ હોય છે, તે પ્રત્યાખ્યાનને અનુભાષણાશુદ્ધ પ્રત્યાખ્યાન કહે છે. કહ્યુ પણ છે કે "अणुभासइ गुरुवयणं" ઇત્યાદિ--

અક્ષર, પદ અને વ્યંજનોની અપેક્ષાએ પરિશુદ્ધ એવું જે ભાષણ (વ્યાખ્યાન) ગુરુ કરે છે, તે ભાષણ સાંભળીને તેમની સમક્ષ ઊભા થઇને વિનયપૂર્વક બે હાથ જોડીને જે પ્રત્યાખ્યાન કરવામાં આવે છે, તેને અનુભાષણા શુદ્ધ પ્રત્યાખ્યાન કહે છે. ગુરુ જ્યારે "वोसिरे" પદનો ઉચ્ચાર કરે ત્યારે પ્રત્યાખ્યાન ધારણ કરનાર "वोसिरामि" પદનો ઉચ્ચાર કરીને આ પ્રકારના પ્રત્યાખ્યાન લે છે.

અનુપાલના શુદ્ધ--ગૃહીત વ્રતનું પરીષહો અને ઉપસર્ગો આવી પડે તો

" कंतारे दुब्भिक्खे, आयंके वा महइ समुप्पण्णो ।
जं पालियं न भग्गं, जाणणुपालणा सुद्धं ॥१॥ "

छाया—कान्तारे दुर्भिक्षे आतङ्के वा महति समुत्पन्ने ।
यत्पालितं न भग्नं तद् जानीहि अनुपालनाशुद्धम् ॥१॥ इति ॥४॥

भावशुद्धम्—भावेन—रागद्वेषेहलोकाद्याशंसारूपं परिणामराहित्येन यद् निरवद्यं तद् भावशुद्धम् ।

तदुक्तम्—" रागेण व दोसेण व, परिणामेण व ण दूसियं जं तु ।
तं खलु पच्चक्खाणं, भावविसुद्धं मुणेयव्वं ॥ १ ॥ "

छाया—रागेण वा द्वेषेण वा परिणामेन वा न दूषितं यत्तु ।
तत्खलु प्रत्याख्यानं भावविशुद्धं ज्ञातव्यम् ॥१॥ इति ॥५॥ सू० २८॥

भी चलायमान न हो कर परिपालन करताहै, वह अनुपालनाहै इस अनुपालनसे जो प्रत्याख्यान शुद्ध होता है वह अनुपालना शुद्ध प्रत्याख्यान है। कहा भी है—' कंतारे दुब्भिक्खे " इत्यादि ।

भयंकर गहन वनमें पड जाने पर दुर्भिक्षके आजाने पर किसी भयंकर रोगमें फंस जाने पर जो अपने पालित व्रतको भग्न नहीं करता है वह अनुपालना शुद्ध प्रत्याख्यान है।

जो प्रत्याख्यान रागद्वेष इहलोक परलोक आदिकी आशंसारूप परिणामसे रहित होकर किया जाता है, ऐसा वह निरवद्य प्रत्याख्यान भावशुद्ध प्रत्याख्यानहै । कहा भीहै—"रागेण व दोसेण व" इत्यादि ।

जो प्रत्याख्यान राग एवं द्वेषके परिणामसे दूषित नहीं है, ऐसा वह प्रत्याख्यान भावविशुद्ध कहा गया है ॥ सू० २८ ॥

પણ ચલાયમાન ન થતાં પાલન કરનારના પ્રત્યાખ્યાનને અનુપાલના શુદ્ધ પ્રત્યાખ્યાન કહે છે. કહ્યું પણ છે કે कतारे दुब्भिक्खे " ઇત્યાદિ—

ભયંકર ગહન વનમાં અટવાઈ ગયા હોય, દુર્ભિક્ષને કારણે ભૂખે મરવાનો પ્રસંગ આવી પડયો હોય, ભયંકર રોગમાં જકડાયા હોય, ત્યારે પણ જે માણસ પોતે ગ્રહણ કરેલા વ્રતને દૃઢતાપૂર્વક પાળે છે, એવા માણસના પ્રત્યાખ્યાનને અનુપાલના શુદ્ધ પ્રત્યાખ્યાન કહેવાય છે.

જે પ્રત્યાખ્યાન રાગદ્વેષ અને આલોક પરલોકની આશંસા રૂપ વૃત્તિ રાખ્યા વિના કરવામાં આવે છે, એવાં નિરવદ્ય પ્રત્યાખ્યાનને ભાવશુદ્ધ પ્રત્યાખ્યાન કહે છે. કહ્યુ પણ છે કે " रागेण व दोसेण व " ઇત્યાદિ—જે પ્રત્યાખ્યાન રાગ અને દ્વેષના પરિણામથી દૂષિત હોતા નથી, તે પ્રત્યાખ્યાનને ભાવવિશુદ્ધ કહેવાય છે. ॥ સૂ. ૨૮ ॥

कृतप्रत्याख्यानस्य कदाचिदतिचारसंभावनाऽपि भवति, ततश्च तत्र प्रति-क्रमणं क्रियते इति प्रतिक्रमणस्य पञ्चविधत्वमाह—

मूलम्—पंचविहे पडिक्कमणे पण्णत्ते, तं जहा—आसवदार-पडिक्कमणे १, मिच्छत्तपडिक्कमणे २ कसायपडिक्कमणे ३ जोग-पडिक्कमणे ४ भावपडिक्कमणे ५ ॥ सू० २९ ॥

छाया—पञ्चविधं प्रतिक्रमणं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—आस्रवद्वारप्रतिक्रमणं १ मिथ्या-त्वप्रतिक्रमणं २ कषायप्रतिक्रमणं ३ योगप्रतिक्रमणं ४ भावप्रतिक्रमणम् ५ ॥ ॥ सू० २९ ॥

टीका—पंचविहे पडिक्कमणे' इत्यादि—

प्रतिक्रमणं-प्रति-प्रतीपं क्रमणम्-शुभयोगेभ्योऽशुभयोगान् प्रतिपन्नस्य आत्मनः पुनः शुभयोगेषु गमनम्। तदुक्तम्—

"स्वस्थानाद् यत् परस्थानं, प्रमादस्य वशाद् गतः।
तत्रैव क्रमणं भूयः, प्रतिक्रमणमुच्यते ॥ १ ॥

जिसने प्रत्याख्यान किया है, ऐसे पुरुषको कदाचित् अतिचारोंके होनेकी संभावना भी हो सकती है, अतः उसके होने पर प्रतिक्रमण किया जाता है, इसलिये अब सूत्रकार प्रतिक्रमणकी पंचविधताका वर्णन करते हैं—'पंचविहे पडिक्कमणे पण्णत्ते" इत्यादि सूत्र २९ ॥

प्रतिक्रमण पांच प्रकारका कहा गया है, जैसे—आस्रवद्वार प्रतिक्रमण १ मिथ्यात्व प्रतिक्रमण २ कषाय प्रतिक्रमण ३ योग प्रतिक्रमण ४ और भाव प्रतिक्रमण ५ शुभ योगोंसे अशुभ योगोंमें पहुँची हुई आत्माका पुनः शुभ योगोंमें आना इसका नाम प्रतिक्रमण है। कहा भी है—

પ્રત્યાખ્યાન કરનાર પુરુષોને કયારેક અતિચાર લાગવાનો સંભવ રહે છે. તે અતિચારોની શુદ્ધિ માટે પ્રતિક્રમણ કરવામાં આવે છે. તેથી હવે સૂત્રકાર પ્રતિક્રમણના પાંચ પ્રકારોનું કથન કરે છે.

"પંચવિહે પડિક્કમણે પણ્ણત્તે" ઇત્યાદિ—

પ્રતિક્રમણના નીચે પ્રમાણે પાંચ પ્રકાર કહ્યા છે—(૧) આસ્રવદ્વાર પ્રતિ-ક્રમણ, (૨) મિથ્યાત્વ પ્રતિક્રમણ, (૩) કષાય પ્રતિક્રમણ, (૪) યોગ પ્રતિક્રમણ અને (૫) ભાવ પ્રતિક્રમણ.

શુભ યોગોમાંથી અશુભ યોગોમાં પહોંચેલા આત્માનું ફરીથી શુભ યોગોમાં આવવું તેનું નામ પ્રતિક્રમણ છે. કહ્યુ પણ છે કે "स्वस्थानात् यत्

क्षायोपशमिकाद् भावादौदयिकस्य वशं गतः ।
तत्रापि च स एवार्थः प्रतिकूलगमात् स्मृतः ॥ २ ॥ " इति ।

तदिदं प्रतिक्रमणं पञ्चविधं प्रज्ञप्तम् । पञ्चविधत्वमेवाह—तद्यथा—आस्रवद्वार-प्रतिक्रमणम्—आस्रवद्वाराणि=प्राणातिपातादीनि, ततः प्रतिक्रमणं=निवर्तनम् १। मिथ्यात्वप्रतिक्रमणम्—मिथ्यात्वम् आभोगानाभोगसहसाकारैर्भवति, ततः प्रति-क्रमणं=निवर्तनम् २। कषायप्रतिक्रमणम्—कषायेभ्यः प्रतिनिवृत्तिः ३। योगप्रतिक्र-

---

" स्वस्थानात् यत् परस्थानं " इत्यादि ।

प्रमादके वशसे जीवका जो अपने स्थानसे हटकर परस्थानमें गमन है, और फिर वहांसे जो पुनः अपने स्थान पर आजाना वह प्रतिक्रमण है । " क्षायोपशमिकाद् भावाद् " इत्यादि ।

इसी तरहसे जो कोई जीव क्षायोपशमिक भाव से औदयिक भावका वशंगत हो जाता है, और पुनः उसी क्षायोपशमिक भावमें आकर प्राप्त जिसके प्रभावसे हो जाता है वह प्रतिक्रमण है ।

ऐसा यह प्रतिक्रमण पांच प्रकारका कहा गया है, इनमें जो आस्रव-द्वार प्रतिक्रमण है, वह प्राणातिपातादि रूप जो आस्रव द्वार है, उनसे निवर्तन रूप पीछे हटने रूप होता है । मिथ्यात्व प्रतिक्रमण—आभोग (जानकर) अनाभोग (अनजान) एवं सहसाकार (अकस्मात्) से मिथ्यात्व होता है, सो इस मिथ्यात्वसे जो जीवका निवर्तन है, वह मिथ्यात्व प्रतिक्रमण है, कषायोंसे जो प्रतिनिवृत्ति है, वह कषाय प्रतिक्रमण है,

---

परस्थानं " ઇત્યાદિ. પ્રમાદને કારણે જીવનુ સ્વસ્થાનમાંથી નીકળીને પરસ્થાનમાં જે ગમન થાય છે, અને ફરીથી ત્યાંથી સ્વસ્થાનમાં જે આગમન થાય છે તેનું નામ પ્રતિક્રમણ છે " क्षायोपशमिकाद् भावाद् " ઇત્યાદિ---

કોઇ જીવ ક્ષાયોપશમિક ભાવમાંથી ઔદયિક ભાવમાં આવી જાય અને ફરી ઔદયિક ભાવમાંથી ક્ષાયોપશમિક ભાવમાં આવી જાય છે, આવું જેના પ્રભાવથી બને છે તેનું નામ પ્રતિક્રમણ છે

એવા પ્રતિક્રમણના પાંચ પ્રકાર કહ્યા છે--આસ્રવદ્વાર રૂપ જે પ્રતિક્રમણ છે તે પ્રાણાતિપાત આદિ રૂપ જે આસ્રવ દ્વારો છે તેમનાથી નિવર્તન રૂપ (તેમ કરતાં અટકવા રૂપ) હોય છે. આભોગ (જાણીને) અનાભોગ (અજાણતા) અને અકસ્માતથી જે મિથ્યાત્વનું સેવન થઇ જાય છે, તે મિથ્યાત્વથી નિવૃત્ત થવું તેનું નામ મિથ્યાત્વનું પ્રતિક્રમણ છે. કષાયોમાંથી નિવૃત્ત થવું

मणम्-अशुभेभ्यो मनोवाक्काययोगेभ्यः प्रतिक्रमणं=प्रतिनिवर्तनम् ४। तथा-भाव-प्रतिक्रमणम्-अविवक्षितविशेषेभ्यः आस्रवद्वारादिभ्यः प्रतिनिवर्तनम्। तदुक्तम्—

" मिच्छत्ताइ न गच्छइ, न य गच्छावेइ नाणुजाणाइ।
जं मणवइकाएहिं, तं भणियं भावपडिक्कमणं ॥ १ ॥ "

छाया—मिथ्यात्वादि न गच्छति न च गमयति नानुजानाति।
यद् मनोवाक्कायैस्तद् भणितं भावप्रतिक्रमणम् ॥ १ ॥ इति ॥

आस्रवद्वारादि विशेषरूपेण विवक्षायां तु आस्रवद्वारप्रतिक्रमणादीनि पूर्वोक्तानि चत्वारि स्थानानि बोध्यानि। तदुक्तम्—

" मिच्छत्तपडिक्कमणं, तहेव असंजमा पडिक्कमणं।
कसायाण पडिक्कमणं, जोगाण य अप्पसत्थाणं ॥ १ ॥ "

छाया—मिथ्यात्वप्रतिक्रमणं तथैव असंयमात् प्रतिक्रमणम्।
कषायाणां प्रतिक्रमणं योगानां चाप्रशस्तानाम् ॥ १ ॥ इति ॥ सू० २९ ॥

अशुभ मन वचन काययोगोंसे जो प्रतिनिवर्तन है, वह योग निवर्तन है ४ अविवक्षित विशेषोंवाले आस्रवद्वारोंसे जो प्रतिनिवर्तन है, वह भावप्रतिक्रमण है। कहा भी है-" मिच्छत्ताइ न गच्छइ " इत्यादि।

जो जीव मन वचन कायसे मिथ्यात्व आदि भावोंमें न स्वयं जाता है, न दूसरोंको पहुँचाता है, और न उनकी अनुमोदना करता है, वह भाव प्रतिक्रमण है।

आस्रव द्वार आदिकी विशेष रूपसे विवक्षामें तो पूर्वोक्त आस्रव द्वार प्रतिक्रमण आदि चार स्थान होते हैं। कहा भी है-" मिच्छत्त पडिक्कमणं " इत्यादि।

તેનું નામ કષાય પ્રતિક્રમણ છે. અશુભ, મન, વચન અને કાય યોગોનો પરિત્યાગ કરવો તેનું નામ યોગપ્રતિક્રમણ છે અવિવક્ષિત વિશેષોવાળા આસ્રવદ્વારોથી જે પ્રતિનિવર્તન થાય છે, તેનું નામ ભાવપ્રતિક્રમણ છે. કહ્યું પણ છે કે " मिच्छत्ताइ न गच्छइ " ઇત્યાદિ—

જીવનું મન, વચન અને કાય વડે મિથ્યાત્વ આદિ ભાવોમાં જાતે જવું નહીં, અન્યને તે ભાવોમાં લીન કરવા નહીં અને તે પ્રકારના ભાવોની અનુમોદના કરવી નહીં તેનું નામ ભાવપ્રતિક્રમણ છે. આસ્રવદ્વાર આદિની વિશેષ રૂપે વિવક્ષામાં તો પૂર્વોક્ત આસ્રવદ્વાર પ્રતિક્રમણ આદિ ચાર સ્થાન હોય છે. કહ્યું પણ છે કે ' मिच्छत्तं पडिक्कमणं " ઇત્યાદિ—(૧) મિથ્યાત્વ પ્રતિક્રમણ,

यस्य मतिः सूत्रभाविता भवति, स एव भावप्रतिक्रमणं विधत्ते इति हेतोः सूत्रं वाचनीयं शिक्षणीयं च भवतीति सूत्रस्य पञ्चवाचनास्थानानि पञ्च शिक्षा स्थानानि चाह—

मूलम्—पंचहिं ठाणेहिं सुत्तं वाएज्जा, तं जहा--संगहट्ठयाए १, उवग्गहणट्ठयाए २, णिज्जरणट्ठयाए ३, सुत्ते वा मे पज्जवजाए भविस्सइ ४, सुत्तस्स वा अवोच्छित्तिणयट्ठयाए ५। पंचहिं ठाणेहिं सुत्तं सिक्खिज्जा, तं जहा -णाणट्ठयाए १, दंसणट्ठयाए २, चरित्तट्ठयाए ३, वुग्गहविमोयणट्ठयाए ४, अहत्थे वा भावे जाणिस्सामित्तिकट्टु ४ सू० ३० ॥

छाया—पञ्चभिः स्थानैः सूत्रं वाचयेत् , तद्यथा—संग्रहार्थतायै,१ उपग्रहणार्थतायै,२ निर्जरणार्थतायै, ३ सूत्रं वा मे पर्यवयातं भविष्यति, ४ सूत्रस्य वा अव्युच्छित्तिनयार्थतायै ५। पञ्चभिः स्थानैः सूत्रं शिक्षेत, तद्यथा—ज्ञानार्थतायै, दर्शनार्थतायै, चारित्रार्थतायै, व्युद्ग्रहविमोचनार्थतायै, यथास्थान् वा भावान् ज्ञास्यामीति कृत्वा ॥ सू० ३० ॥

टीका—' पंचहिं ठाणेहिं सुत्तं ' इत्यादि--

पञ्चभिः स्थानैः सूत्रं=श्रुतं वाचयेत्=पाठयेत् , तान्येव पञ्चस्थानानि प्राह-तद्यथा-संग्रहार्थतायै-संग्रहणं संग्रहः-शिष्यकर्तृकं श्रुतोपादानं, तदेव अर्थः=प्रयोजनं यस्य स तथा, तस्यभावस्तत्ता, तस्यै-' शिष्याः श्रुतानि संगृह्णीयु '-रिति

मिथ्यात्व प्रतिक्रमण १ असंयम प्रतिक्रमण २ कषाय प्रतिक्रमण ३ और अप्रशस्तयोग प्रतिक्रमण ४ ॥सू० २९ ॥

टीकार्थ-जिसकी मति सूत्रभावित होतीहै, वही भावप्रतिक्रमण करता है, इस कारणसे सूत्र बाचने योग्य होता है, और सिखने योग्य होता है, इसी अभिप्रायसे अब सूत्रकार पांच वाचना स्थानोंका कथन करते हैं।

---

(२) અસંયમ પ્રતિક્રમણ, (૩) કષાય પ્રતિક્રમણ અને (૪) અપ્રશસ્ત યોગ પ્રતિક્રમણ. ॥ સૂ ૨૯ ॥

ટીકાર્થ-જેની મતિ સૂત્રભાવિત હોય છે, એ જ ભાવપ્રતિક્રમણ કરે છે. આ કારણે સૂત્ર વાંચવા તથા શીખવા યોગ્ય તથા શિખવવા યોગ્ય ગણાય છે. તેથી જ હવે સૂત્રકાર પાંચ વાચના સ્થાનોનું અને પાંચ શિક્ષા સ્થાનોનું કથન

प्रयोजनेन सूत्रं वाचयेत्। अथवा-वाचनया एव शिष्याः संगृहीता भवन्तीति शिष्यान् संग्रहीतुं सूत्रं वाचयेत्। इति प्रथमं स्थानम् १। उपग्रहणार्थताये-उपग्रहणं=पुष्टिः, तदेव अर्थः=प्रयोजनं यस्य स तथा, तस्य भावस्तत्ता, तस्यै-'वाचिता एते शिष्यास्तपः संयमाराधने समर्थाः सन्त उपष्टम्भिता भवन्तु' इति प्रयोजनेन सूत्रं वाचयेत्-इति द्वितीयं स्थानम् २। निर्जरणार्थतायै-निर्जरणं=निर्जरा-कर्मक्षयः अर्थो यस्य स तथा तस्य भावस्तत्ता तस्यै-'कर्माणि मे निर्जरतां गच्छन्तु'-इति हेतोः सूत्रं वाचयेत्-इति तृतीयं स्थानम् ३। 'सूत्रं वा मे पर्यवयातं भविष्यति, वा=अथवा वाचयतो मम सूत्रं पर्यवयातं पर्यवान्=ज्ञानादि विशेषान् यात=प्राप्तं-ज्ञानविषयीकृतं भविष्यति'-इति हेतोः सूत्रं वाचयेत्-इति

'पंचहिं ठाणेहिं सुत्तं वाएज्जा' इत्यादि सूत्र ३० ॥

टीकार्थ-पांच कारणोंसे सूत्र-श्रुत पढना चाहिये वे पांच स्थान इस प्रकारसे हैं- शिष्यजन श्रुतका संग्रह करें इस प्रयोजनसे शिष्यके लिये सूत्रकी वांचना देनी चाहिये अथवा वांचनासेही शिष्योंका संग्रहण होता है-वाचनासेही शिष्योंकी प्राप्ति होती है, इस अभिप्रायसे शिष्योंके लिये सूत्रकी वांचना देनी चाहिये ऐसा यह प्रथम कारण है, द्वितीय कारण ऐसा है, कि सूत्रकी वाचनासे युक्त किये गये शिष्य तप और संयमकी आराधना करनेमें समर्थ होते हैं, और तभी जाकर उनकी पुष्टि होती है, कर्म क्षय करनेके लिये वे शक्ति सम्पन्न बनते हैं, इस प्रयोजनसे श्रुत पढाना चाहिये तृतीय कारण ऐसा है-श्रुतकी वाचनासे मेरे कर्मोंकी निर्जरा हो इस अभिप्रायसे श्रुतकी वाचना देनी चाहिये

કરે છે. "પંચહિં ઠાણેહિં સુત્તં વાએજ્જા" ઈત્યાદિ--

ટીકાર્થ-નીચેના પાંચ કારણોને લીધે શિષ્યોને સૂત્ર-શ્રુતનો અભ્યાસ કરાવવો જોઈએ--(૧) શિષ્યો શ્રુતનો સંગ્રહ કરે, આ પ્રયોજનથી ગુરુએ શિષ્યને શ્રુતની વાચના દેવી જોઈએ. અથવા વાચના દ્વારા જ શિષ્યોની પ્રાપ્તિ થાય છે, એવી માન્યતાને કારણે પણ શિષ્યોને શ્રુતની વાચના દેવી જોઈએ.

(૨) શ્રુતની વાચનાથી યુક્ત હોય એવો શિષ્ય જ તપ અને સંયમની આરાધના કરવાને સમર્થ હોય છે, અને ત્યારે જ તેમની પુષ્ટિ થાય છે. કર્મનો ક્ષય કરવાને તેઓ સમર્થ બને છે, આ પ્રયોજનથી શ્રુતનો અભ્યાસ કરાવવો જોઈએ. (૩) શ્રુતની વાચના દેવાથી મારા કર્મોની નિર્જરા થશે, એવી ભાવનાથી પ્રેરાઈને પણ શ્રુતની વાચના દેવામાં આવે છે. (૪) "સુત્તે

चतुर्थं स्थानम् ४। सूत्रस्य अव्युच्छित्तिनयार्थतायै-अव्युच्छित्तिः-अव्यवच्छेदो नैरन्तर्यमिति यावत, तया नयः=नयनं कालान्तरप्रापणं, स एव अर्थः=प्रयोजनं यस्य स तथा, तस्य भावस्तत्ता तस्यै-कालान्तरेऽपि 'सूत्रपरम्परा अविच्छिन्ना तिष्ठतु' इति हेतोः सूत्रं वाचयेत्-इति पञ्चमं स्थानम् ५। तथा-पञ्चभिः स्थानैः कारणैः सूत्रं शिक्षेत, तान्येव स्थानान्याह-तद्यथा-ज्ञानार्थतायै-ज्ञानं=तत्त्वानां विवेकः, स एवार्थो यस्य स तथा तस्य भावस्तत्ता, तस्यै-तत्त्वपरिज्ञानार्थं सूत्रं शिक्षेत । १ । दर्शनार्थतायै-दर्शनं=श्रद्धानं जिनवचनेष्वभिरुचिस्तदर्थम् । २। चारित्रार्थतायै-चारित्रं=सदनुष्ठानं तदर्थम् । ३ । व्युद्ग्रहविमोचनार्थतायै-विपरीत उद्ग्रहः-व्युद्ग्रहः=मिथ्यात्वाभिनिवेशः, तस्य विमोचनम्=स्वपरेभ्योऽप-

---

चतुर्थ कारण ऐसा है कि-" सुत्ते वा मे पज्जवयाए भविस्सइ " श्रुतकी वाचना देनेवाले मुझे सूत्र ज्ञानादि विशेषोंका प्राप्त करानेवाला होगा पंचम कारण ऐसा है, कि सूत्रकी वाचना देनेसे सूत्र परम्परा विच्छिन्न नहीं होगी वह निरन्तर बनी रहेगी इस प्रकारके ये पांच कारण हैं, जो श्रुतकी वाचना देनेके लिये इस सूत्र द्वारा प्रकट किये गये हैं।

अब सूत्रकार यह प्रकट करते हैं, कि इन पांच कारणोंसे सूत्र सीखना चाहिये-उनमें प्रथम कारण ऐसा है कि सूत्रके सीखनेसे तत्त्वोंका विवेक प्राप्त होगा अर्थात् तत्त्वोंके परिज्ञानके लिये सूत्र सीखना चाहिये १ तत्त्वोंकी श्रद्धा-जिनप्रणीत वचनोंमें रुचि प्राप्त करनेके लिये सूत्र सीखना चाहिये-सदनुष्ठानरूप चारित्रकी आराधना करनेके लिये

वा मे पज्जवयाए भविस्सइ" श्रुतनुं अध्ययन कराववाथी मने सूत्र (श्रुत) ज्ञानादि विशेषोनी प्राप्ति थशे, એવી ભાવનાથી પણ ગુરુ દ્વારા શિષ્યોને શ્રુતની વાચના દેવામાં આવે છે. (૫) શિષ્યોને સૂત્રની વાચના દેવાથી સૂત્ર પરમ્પરા નિરન્તર ચાલુ રહેશે-સૂત્રો વિચ્છિન્ન નહીં થાય, એવી ભાવનાથી પણ શિષ્યોને શ્રુતનું અધ્યયન કરાવવામાં આવે છે. આ પ્રકારના પાંચ કારણોને લીધે સૂત્રની વાચના દેવામાં આવે છે.

હવે સૂત્રકાર સૂત્ર શીખવાનું શા કારણે જરૂરી છે, તે બતાવતાં પાંચ કારણોનું નિરૂપણ કરે છે—(૧) તત્ત્વોના પરિજ્ઞાનને નિમિત્ત સૂત્રનું અધ્યયન થવું જોઈએ શ્રુતના અધ્યયન વિના કેવલી પ્રરૂપિત ધર્મના તત્ત્વોનું જ્ઞાન પ્રાપ્ત થઈ શકતું નથી. (૨) તત્ત્વોમાં શ્રદ્ધા-જિન પ્રણીત વચનોમાં રુચિ પ્રાપ્ત કરવા માટે પણ સૂત્રનું અધ્યયન કરવું જોઈએ (૩) સદનુષ્ઠાન રૂપ ચારિત્રની આરાધના કરવાને માટે સૂત્રનું અધ્યયન કરવું જોઈએ. (૪) મિથ્યાત્વ રૂપ અભિ

नयनं, तन्निमित्तम् । ४ । वा=अथवा ' यथास्थान्=तीर्थंकरप्ररूपितान् यथाऽवस्थितान् भावान्=जीवाजीवादिस्वरूपान् ज्ञास्यामि '—इतिकृत्वा=इति हेतोः सूत्रं शिक्षेत । ५ ॥ सू० ३० ॥

पूर्वं यथावस्थितभावाः प्रोक्ताः, ते च ऊर्ध्वलोकादिषु सन्ति, तत्र सौधर्मादीनां यथावस्थितान् भावानाश्रित्य सूत्रत्रयम्, तथा नारकादीनां यथावस्थितान् भावानाश्रित्य सूत्रचतुर्विंशतिं च प्राह—

मूलम्—सोहम्मीसाणेसु णं कप्पेसु विमाणा पंचवण्णा पण्णत्ता, तं जहा--किण्हा जाव सुक्किल्ला १। सोहम्मीसाणेसु णं कप्पेसु विमाणा पंच जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता २। बंभलोगलंतएसु णं कप्पेसु देवाणं भवधारणिज्जसरीरगा उक्कोसेणं पंचरयणी उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता ३। नेरइया णं पंचवन्ने पंचरसे पुग्गले बंधिंसु वा बंधंति वा बंधिस्संति वा, तं जहा-- किण्हे जाव सुक्किल्ले, तित्ते जाव महुरे। एवं जाव वेमाणिया॥सू०३१॥

छाया०-सौधर्मेशानयोः खलु कल्पयोः विमानाः पञ्चवर्णाः प्रज्ञप्ताः तद्यथा—कृष्णा-यावत् शुक्लाः १। सौधर्मेशानयोः खलु कल्पयोः विमानाः पञ्चयोजनशतानि ऊर्ध्वमुच्चत्वेन प्रज्ञप्ताः । २ । ब्रह्मलोक लान्तकयोः खलु कल्पयोः देवानां भवधारणीयशरीरकाणि उत्कर्षेण पञ्चरत्नीनि ऊर्ध्वमुच्चत्वेन प्रज्ञप्तानि ३। नैरयिकाः खलु पञ्चवर्णान् पञ्चरसान् पुद्गलान् अबध्नन् बध्नन्ति भन्त्स्यन्ति वा, तद्यथा—कृष्णान् यावत् शुक्लान्, तिक्तान् यावद् मधुरान् एवं यावद् वैमानिकाः २४ ॥सू०३१॥

सूत्र सीखना चाहिये मिथ्यात्व रूप अभिनिवेश दूर करनेके लिये सूत्र सीखना चाहिये अथवा—तीर्थंकर प्ररूपित यथावस्थित जीवाजीवादि रूप तत्त्व मुझे ज्ञान होंगे ऐसे प्रयोजनको सिद्ध करनेके लिये सूत्र सीखना चाहिये इस प्रकारके ये पांच कारण सूत्रके सीखनेमें हैं ॥३०॥

નિવેશને દૂર કરવા માટે સૂત્રનું અધ્યયન કરવું જોઇએ. (૫) તીર્થંકર પ્રરૂપિત યથાવસ્થિત જીવ અજીવાદિ રૂપ તત્ત્વનું મને જ્ઞાન થવું જ જોઇએ, એવી ભાવનાથી પ્રેરાઇને પણ શ્રુતનું અધ્યયન કરવામાં આવે છે. આ પ્રકારના પાંચ કારણોને લીધે સૂત્ર (શ્રુત) નું અધ્યયન થાય છે. ॥ સૂ. ૩૦ ॥

टीका—' सोहम्मीसाणेसु णं ' इत्यादि—

व्याख्या स्पष्टा। नवरम्-अबध्नन्, बध्नन्ति, भंत्स्यन्ति, एषां पदानां शरीरादितया पुद्गलानां बन्धनं कृतवन्तः कुर्वन्ति करिष्यन्ति चेत्यर्थः। नैरयिकाणामिव सर्वेषां चतुर्विंशतिदण्डकोक्तानां पञ्चवर्णपञ्चरसात्मकपुद्गलबन्धनं भवति। तदुक्तम्-' एवं जाव वेमाणिया ' इति ॥ सू० ३१ ॥

कथित यथावस्थित भाव ऊर्ध्वलोक आदिकोंमें होते हैं उनमें सौधर्मादिकोंके यथावस्थित भावोंको लेकर तीन सूत्र, तथा नारकादिसे लेकर वैमानिक तक चौवीस दण्डकों यथावस्थित भावोंको लेकर २४ सूत्र सूत्रकार कहते हैं—'सोहम्मीसाणेसु' इत्यादि सू० ३१ ॥

टीकार्थ-सौधर्म ईशान कल्पोंके विमान पांच वर्णों वाले कहे गयेहैं। जैसे-कृष्णवर्णवाले, नीलवर्णवाले, लालवर्णवाले, पीतवर्णवाले, शुक्ल वर्णवाले सौधर्म और ईशान इन दो कल्पोंमें जो विमानहैं वे ऊंचाईमें पांचसौ पांचसौ योजनके हैं-अर्थात् उनकी ऊचाई पांचसौ योजनकी है। ब्रह्म लोक और लान्तक इन दो कल्पोंके देवोंका भवधारणीय शरीर उत्कृष्टसे पांच रत्नि प्रमाण ऊंचा है, नैरयिक जीवोंने पांच वर्णों वाले पुद्गलोंका पांच रसोंवाले पुद्गलोंका बन्ध किया है, अब भी वे ऐसेही पुद्गलोंका बन्ध करते हैं, और भविष्यत्कालमें भी वे ऐसेही पुद्गलोंका बन्ध करेंगे। पांच वर्णोंवाले पुद्गलों उन्होंने कृष्णवर्णके पुद्गलोंसे लेकर यावत् शुक्ल-

ઉપર્યુક્ત યથાવસ્થિત ભાવ ઉર્ધ્વલોક આદિકોમાં હોય છે. ઉર્ધ્વલોકમાં આવેલા સૌધર્માદિકના યથાવસ્થિત ભાવોનું ત્રણ સૂત્રો દ્વારા અને નારકાદિકોના યથાવસ્થિત ભાવોનું ૨૪ સૂત્ર દ્વારા સૂત્રકાર નિરૂપણ કરે છે—

" सोहम्मीसाणेसु " ઇત્યાદિ—

સૌધર્મ અને ઈશાન કલ્પોનાં વિમાનો પાંચ વર્ણવાળાં કહ્યાં છે. એટલે કે તે વિમાનો કૃષ્ણ વર્ણવાળાં, નીલ વર્ણવાળાં, લાલ વર્ણવાળાં, પીત વર્ણવાળાં અને શુકલ વર્ણવાળાં હોય છે. સૌધર્મ અને ઈશાન કલ્પોમાં જે વિમાનો છે તેમની ઊંચાઈ ૫૦૦ યોજનની છે. બ્રહ્મલોક અને લાન્તક કલ્પોના દેવોના ભવધારણીય શરીરની ઉત્કૃષ્ટ ઊંચાઈ પાંચ રત્નિપ્રમાણ (પાંચ હાથની) છે.

નારક જીવોએ પાંચ વર્ણોવાળા પુદ્ગલોનો અને પાંચ રસોવાળા પુદ્ગલોનો બન્ધ કર્યો છે, હાલમાં પણ તેઓ એવા જ પુદ્ગલોનો બન્ધ કરે છે અને ભવિષ્યમાં પણ તેઓ એવા જ પુદ્ગલોનો બન્ધ કરશે. આ કથનનું તાત્પર્ય એ છે કે તેમણે કૃષ્ણથી લઈને શુકલ પર્યન્તના પાંચ વર્ણોવાળા પુદ્ગલોનો

तिर्यग्लोके च जम्बूद्वीपादयोयथावस्थिता भावाः सन्ति, तानाश्रित्य सूत्र चतुष्टयीं माह—

मूलम्—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं गंगामहाणई, पंच महाणईओ समप्पेंति, तं जहा—जउणा १, सरऊ २ आदी ३ कोसी ४ मही ५।१। जंबू मंदरस्स दाहिणेणं सिंधुमहाणई, पंच महाणईओ समप्पेंति, तं जहा—सयद्दु १, विभासा २, वितत्था ३, एरावई ४ चंदभागा ५ ।२। जंबू मंदरस्स उत्तरेणं रत्ता महाणई, पंच महाणईओ समप्पेंति, तं जहा—किण्हा

वर्ण तकके पुद्गलोंका और पांच रसोंवाले पुद्गलोंमें उन्होंने तिक्त रससे लेकर यावत् मधुर रसवाले पुद्गलों तकका बन्ध किया है, इसी तरहका इनके बन्ध होनेका कथन वर्तमान कालमें और भविष्यत् कालमें भी कर लेना चाहिये इसी तरहका इन वर्णवाले पुद्गलोंका और रसवाले पुद्गलोंका कथन त्रिकालको लेकर यावत् वैमानिक देवों तक कर लेना चाहिये नारकसे लेकर वैमानिक तक चौवीस दण्डकों के जीवों में पांच वर्ण दो गंध पांच रस आठ स्पर्श वाले पुद्गलोंका बन्ध हुआ है, होता है, और आगे होगा ऐसा जो यह कथन है, वह शरीरादि रूपसे उनके उनका बन्ध हुआ है, वह होता है, और आगे भी उनका उनके बन्ध होगा इस रूपसे समझना चाहिये ॥ सूत्र ३१ ॥

અને તિકતથી લઈને મધુર પર્યન્તના પંચ રસવાળા પુદ્ગલોનો બન્ધ ભૂતકાળમાં કર્યો છે. એ જ પ્રકારનો બન્ધ તેઓ વર્તમાનકાળમાં પણ બાંધે છે અને ભવિષ્યકાળમાં પણ બાંધશે. એવું કથન પણ ગ્રહણ થવું જોઈએ. આ પાંચે વર્ણોવાળા અને પાંચે રસવાળા પુદ્ગલોના બન્ધનું કથન ત્રિકાળને અનુલક્ષીને વૈમાનિક પર્યન્તના જીવોમાં પણ થવું જોઈએ નારકોથી લઈને વૈમાનિકો પર્યન્તના ચોવીસે દંડકના જીવો પાંચ વર્ણોવાળાં અને પાંચ રસવાળા પુદ્ગલોનો બન્ધ કરતા હતા, કરે છે અને કરશે. આ કથનનો ભાવાર્થ એ છે કે તેમને શરીરાદિ રૂપે તેમનો બન્ધ થયો હતો, થાય છે અને ભવિષ્યમાં પણ થવાનો જ છે. ॥ સૂ૦ ૩૧ ॥

१ महाकिण्हा २ नीला ३ महानीला ४ महातीरा ५। ३। जंबू-मंदरस्स उत्तरेणं रत्तावई महानई, पंचमहानईओ समप्पेंति, तं जहा-इंदा १ इंदसेणा २ सुसेणा ३ वारिसेणा ४ महाभोया ५। ४ ॥ सू० ३२ ॥

छाया—जम्बूद्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य दक्षिणे गङ्गा महानदी, पञ्च महानद्यः समाप्नुवन्ति, तद्यथा-यमुना १, सरयूः २ आदी ३ कोशी ४ मही ५। ।१। जम्बू मन्दरस्य दक्षिणे सिन्धुः महानदी, पञ्च महानद्यः समाप्नुवन्ति, तद्यथा-शतद्रूः १, विपाशा २, वितस्ता ३, ऐरावती ४, चन्द्रभागा ५। । २। जम्बूमन्दरस्य उत्तरे रक्ता महानदीः पञ्च महानद्यः समाप्नुवन्ति, तद्यथा-कृष्णा १ महाकृष्णा २ नीला ३ महानीला ४ महातीरा ५। । ३ । जम्बू मन्दरस्य उत्तरे रक्ता-

तिर्यग्लोकमें जम्बूद्वीप आदि क्षेत्र जैसे अवस्थित हैं, सूत्रकार अब उनको आश्रित करके सूत्र चतुष्टयका कथन करते हैं—

'जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं' इत्यादि सूत्र ३२॥

जम्बूद्वीप नामके द्वीपमें मन्दर पर्वतकी दक्षिण दिशामें जो भरत-क्षेत्रमें गंगा नामकी महानदी है, उसमें पांच महानदियां मिली हुई हैं-जैसे-यमुना १ सरयू २ आदी ३ कोशी ४ और मही ५ (१)

जम्बूद्वीप नामके द्वीपमें मन्दर पर्वतकी दक्षिण दिशामें जो सिन्धु महानदी है, उसमें भी पांच महानदियां मिली हुई हैं, जैसे-शतद्रू १ विपाशा २ वितस्ता ३ ऐरावती ४ और चन्द्रभागा ५ (२)

जम्बूद्वीप नामके द्वीपमें मन्दर पर्वतकी उत्तर दिशामें रक्ता नामकी

તિર્યગ્લોકમાં જંબૂદ્વીપ આદિ ક્ષેત્રો આવેલાં છે. તેમાં પર્વતો, નદીઓ વગેરેનો સદ્ભાવ છે. આ વિષયને અનુલક્ષીને સૂત્રકાર ૨૪ સૂત્રોનું કથન કરે છે--

" જંબુદ્દીવે દીવે મંદરસ્સ પવ્વયસ્સ દાહિણેણં " ઇત્યાદિ--

જંબૂદ્વીપ નામના દ્વીપમાં મન્દર પર્વતની દક્ષિણ દિશામાં જે ભરતક્ષેત્ર આવેલું છે, તે ભરતક્ષેત્રમાં ગંગા નામની મહાનદી વહે છે. તેને પાંચ મહા-નદીઓ મળે છે જેમનાં નામ નીચે પ્રમાણે છે--(૧) યમુના, (૨) સરયૂ, (૩) આદી, (૪) કોશી અને (૫) મહી ॥ ૧ ॥

જંબૂદ્વીપ નામના દ્વીપમાં મન્દર પર્વતની દક્ષિણ દિશામાં જે સિંધુ નામની મહાનદી વહે છે તેને પંચ મહાનદીઓ મળે છે --(૧) શતદ્રૂ (૨) વિપાશા (૩) વિતસ્તા, (૪) ઐરાવતી અને (૫) ચન્દ્રભાગા । ૨ ।

જંબૂદ્વીપ નામના દ્વીપમાં મન્દર પર્વતની ઉત્તર દિશામાં જે રક્તા

वती महानदी पञ्च महानद्यः समाप्नुवन्ति, तद्यथा-इन्द्रा १, इन्द्रसेना २, सुषेणा ३ वारिषेणा ४ महाभोगा ५। ।४। ॥ सू० ३२ ॥

टीका—' जंबुद्दीवे दीवे ' इत्यादि—

व्याख्या स्पष्टा। नवरं-जम्बूद्वीपाख्यमन्दरपर्वतस्य दक्षिणे=दक्षिणदिशि भरतक्षेत्रे गङ्गा नाम महानदी वर्तते, तत्र पञ्च महानद्यः समाप्नुवन्ति=संगता भवन्ति। शेषं स्पष्टम् ॥ सू० ३२ ॥

अनन्तरसूत्रे भरतक्षेत्रे स्थिता महानद्यः प्रोक्ताः, तत्प्रस्तावात् सम्प्रति तद्वर्त्ति तीर्थंकरसम्बन्धि सूत्रमाह—

मूलम्—पंच तित्थगरा कुमारवासमज्झे वासित्ता मुंडा जाव पव्वइया, तं जहा-वासुपुज्जे १ मल्ली २ अरिट्ठनेमी ३ पासे ४ वीरे ५ ॥ सू० ३३ ॥

छाया—पञ्च तीर्थंकराः कुमारवासमध्ये उषित्वा मुण्डा यावत् प्रव्रजिताः, तद्यथा-वासुपूज्यो १ मल्लिः २ अरिष्टनेमिः ३ पार्श्वः ४ वीरः ५ ॥ सू० ३३ ॥

जो महानदी है, उसमें पांच महानदियां मिली हैं जैसे-कृष्णा १ महाकृष्णा २ नीला ३ महानीला ४ महातीरा ५ (३)

जम्बूद्वीप नामके द्वीपमें मन्दर पर्वतकी उत्तर दिशामें जो रक्तावती नामकी महानदी है, उसमें भी पांच महानदियां मिली हैं जैसे-इन्द्रा१ इन्द्रसेना२ सुषेणा३ वारिषेणा४ और महाभोगा५ (४)॥सू०३२॥

इस ऊपरके सूत्रमें भरतक्षेत्रमें स्थित जो महानदियां हैं, वे प्रकट की गई हैं, अब इसी भरतक्षेत्रके सम्बन्धको लेकर उसमें हुए जो तीर्थंकर हैं उनके विषयमे सूत्रकार सूत्रका कथन करते हैं—

નામની મહાનદી છે, તેને નીચેની પાંચ મહાનદીઓ મળે છે--(૧) કૃષ્ણા, (૨) મહાકૃષ્ણા, (૩) નીલા, (૪) મહાનીલા અને (૫) મહાતીરા ॥ ૩ ॥

જમ્બૂદ્વીપ નામના દ્વીપમાં મન્દર પર્વતની ઉત્તર દિશામાં જે રક્તાવતી નામની મહાનદી છે તેને જે પાંચ મહાનદીઓ મળે છે તેમનાં નામ નીચે પ્રમાણે છે—(૧) ઇન્દ્રા, (૨) ઇન્દ્રસેના, (૩) સુષેણા, (૪) વારિષેણા અને (૫) મહાભોગા । ૪ ॥ સૂ. ૩૨ ॥

ઉપરના સૂત્રમાં ભરતક્ષેત્રમાં આવેલી મહાનદીઓનાં નામ પ્રકટ કરવામાં આવ્યા. હવે સૂત્રકાર એ જ ભરતક્ષેત્રમાં થઈ ગયેલા તીર્થંકરોના વિષયમાં કથન કરે છે. " पंच तित्थगरा कुमारवासमज्झे " ઇત્યાદિ—

टीका—'पंच तित्थगरा' इत्यादि—

व्याख्या स्पष्टा। नवरं-कुमारवासमध्ये कुमारे=कुमारत्वे वसनम्=अवस्थानम्-कुमारवासः, तन्मध्ये अर्थात्-कौमार्ये। उषित्वा=स्थित्वा। वासुपूज्यादयो भगवन्तो राज्येऽनभिषिक्ता एव दीक्षां गृहीतवन्त इति सूत्राशयः॥ सू० ३३॥

भरतादि क्षेत्रप्रस्तावात् क्षेत्रभूतचमरचञ्चादि वक्तव्यतां पञ्चस्थानकत्वेनाह—

मूलम्—चमरचंचाए रायहाणीए पंच सभा पण्णत्ता, तं जहा-सभासुहम्मा १, उववायसभा २, अभिसेयसभा ३, अलंकारियसभा ४, ववसायसभा ५। एगमेगे णं इंदट्ठाणे पंच सभाओ पण्णत्ताओ, तं जहा-सभासुहम्मा १ जाव ववसायसभा ५॥ सू० ३४॥

छाया—चमरचञ्चायां राजधान्यां पञ्च सभाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-सभा सुधर्मा १, उपपात सभा २, अभिषेक सभा ३, अलङ्कारिकसभा ४, व्यवसायसभा

'पंच तित्थगरा कुमारवासमज्झे' इत्यादि सू० ३३॥

पांच तीर्थंकर कुमारकालमेंही दीक्षित हुए हैं, उनके नाम इस प्रकारसे हैं-वासुपूज्य १ मल्लि २ अरिष्टनेमि ३ पार्श्वनाथ ४ और वीरप्रभु ५ इन पांचोंका राज्यमें अभिषेक नहीं हुआ है, इन्होंने विना राज्यमें अभिषिक्त हुएही दीक्षा ग्रहण की है॥ ३३॥

भरतादि क्षेत्रके प्रस्तावको लेकर क्षेत्रभूत चमरचञ्चा आदिकी वक्तव्यताका कथन पांच स्थानोंको आश्रित करके अब सूत्रकार कहते हैं—

चमरचंचाए रायहाणीए' इत्यादि सू० ३४॥

चमरचञ्चा नामकी राजधानीमें पांच सभा कही गई हैं जैसे-सुधर्मासभा १ उपपात सभा २ अभिषेक सभा ३ अलङ्कारिक सभा ४ एवं

પાંચ તીર્થંકરોએ પોતાની કુમારાવસ્થામાં જ પ્રવ્રજ્યા લીધી હતી. એટલે કે રાજ્યગાદીએ તેમનો અભિષેક થયા પહેલાં જ તેમણે દીક્ષા ગ્રહણ કરી હતી તેમનાં નામ નીચે પ્રમાણે છે—(૧) વાસુપૂજ્ય, (૨) મલ્લિનાથ, અરિષ્ટનેમિ, પાર્શ્વનાથ અને (૫) મહાવીર પ્રભુ ॥ સૂ. ૩૩ ॥

ભરતાદિ ક્ષેત્રવિષયક પ્રસ્તાવ ચાલી રહ્યો છે ચમરચંચા નામની રાજધાની પણ એક ક્ષેત્ર રૂપ છે તેથી હવે સૂત્રકાર પાંચ સ્થાનોનો આધાર લઈને ચમરચંચાનું વર્ણન કરે છે. "चमरचंचाए रायहाणीए" ઇત્યાદિ—

ચમરચંચા નામની રાજધાનીમાં પાંચ સભા કહી છે. તે સભાઓનાં

५। एकैकस्मिन् खलु इन्द्रस्थाने पञ्च सभाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-सभा सुधर्मा १ यावद् व्यवसाय सभा ५। सू० ३४॥

टीका—'चमरचंचाए' इत्यादि—

व्याख्या सुगमा। नवरं-चमरचञ्चा नाम राजधानी रत्नप्रभा पृथिव्यां चमरस्य असुरकुमारराजस्य बोध्या। यत्र देवसभा सा सुधर्मा सभा। यस्यामुत्पद्यते सा उपपातसभा। यस्यामभिषेको भवति सा अभिषेकसभा। यस्यां मण्डनं क्रियते सा अलंकारिकसभा। यस्यां कर्तव्यानां विनिश्चयो भवति सा व्यवसाय सभा। एताः पञ्चाऽपि सभा यथाक्रमम् उत्तरपूर्वस्यां दिशि=ईशानकोणे द्रष्टव्या। इन्द्र स्थाने=इन्द्रनिवासभूते स्थाने इत्यर्थः॥ सू० ३४॥

व्यवसाय सभा ५ एक एक इन्द्रस्थानमें पांच २ सभाएँ कही गई हैं जैसे-सुधर्मा सभा १ यावत् व्यवसाय सभा ५।

चमर चञ्चा नामकी राजधानी रत्नप्रभा पृथिवीमें असुरकुमारराज चमरकी है, जहां देवसभा है, वह सुधर्मा सभा है, जहां पर उत्पाद (जन्म) होता है, वह उपपात सभा है २ जिसमें अभिषेक होता है ३ जिसमें मण्डन किया जाता है, वह अलंकारिक सभा है, और जिसमें कर्त्तव्यकार्योंका विनिश्चय होता है, वह व्यवसाय सभा है, ये पाँचोंही सभाएँ यथाक्रमसे उत्तर पूर्व दिशामें ईशान कोनेमें हैं। इन्द्रका जो निवासभूत स्थान है, वह इन्द्रस्थान है॥ सू० ३४॥

નામ નીચે પ્રમાણે છે—(૧) સુધર્મા સભા, (૨) ઉપપાત સભા, (૩) અભિષેક સભા, (૪) અલંકારિક સભા, અને (૫) વ્યવસાય સભા.

પ્રત્યેક ઈન્દ્રસ્થાનમાં સુધર્મા સભાથી લઈને વ્યવસાય સભા પર્યન્તની પાંચ સભાઓ હોય છે.

રત્નપ્રભા પૃથ્વીમાં અસુરકુમારરાજ ચમરની ચમરચંચા નામની રાજધાની આવેલી છે. તે રાજધાનીમા જ્યાં દેવોની સભા મળે છે તે સ્થાનને સુધર્મા સભા કહે છે, જ્યાં ઉત્પાદ (જન્મ) થાય છે તે સ્થાનને ઉપપાત સભા કહે છે. જે સભામાં અભિષેક થાય છે, તેને અભિષેક સભા કહે છે. જેમાં મંડન કરવામાં આવે છે, તેનું નામ અલંકારિક સભા છે. જે સભામાં કર્તવ્ય કાર્યોનો નિર્ણય થાય છે, તે સભાને વ્યવસાય સભા કહે છે. તે પાંચે સભાઓ ઈશાન કોણમાં અનુક્રમે આવેલી છે. ઈન્દ્રનું જે નિવાસસ્થાન હોય છે તેને ઈન્દ્રસ્થાન કહે છે. ॥ સૂ. ૩૪ ॥

अनन्तरसूत्रे देवनिवास उक्तः, तदधिकारादेव सम्प्रति नक्षत्रसूत्रमाह—

मूलम्—पंच णक्खत्ता पंचतारा पण्णत्ता, तं जहा-धणिट्ठा १, रोहिणी २, पुणव्वसू ३, हत्थो ४, विसाहा ५ ॥ सू० ३५ ॥

छाया—पञ्च नक्षत्राणि पञ्चताराणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-धनिष्ठा १, रोहिणी २, पुनर्वसुः ३, हस्तः ४, विशाखा ५ ॥ सू० ३५ ॥

टीका—' पंच णक्खत्ता ' इत्यादि—

व्याख्या स्पष्टा ॥ सू० ३५ ॥

प्राणिनां नक्षत्रादि देव रूपता च कर्मपुद्गलचयादि सत्त्वे एव भवतीति चयादीनाह—

मूलम्—जीवाणं पंचट्ठाणनिव्वत्तिए पोग्गले पावकम्मत्ताए चिणिंसु वा चिणंति वा चिणिस्संति वा, तं जहा-एगिंदियनिव्वत्तिए जाव पंचिंदियनिव्वत्तिए। एवं-चिण उवचिण बंध उदीर वेद तह तह णिज्जरा चेव। पंच पएसिया खंधा अणंता पण्णत्ता। पंच पएसोगाढा पोग्गला अणंता पण्णत्ता जाव पंचगुणलुक्खा पोग्गला अणंता पण्णत्ता ॥ सू० ३६ ॥

॥ पंचमट्ठाणस्स तईओ उद्देसो ॥

॥ पंचमं ठाणं समत्तं ॥

इस ऊपरके सूत्रमें देव निवास कहा है, इसी अधिकारको लेकर अब सूत्रकार नक्षत्र सूत्रका कथन करते हैं—

'पंच नक्खत्ता पंच तारा पण्णत्ता' इत्यादि सू० ३५ ॥

पांच नक्षत्र पांच ताराओंवाले कहे गये हैं जैसे—धनिष्ठा १ रोहिणी २ पुनर्वसु ३ हस्त ४ और विशाखा ५ ॥ सूत्र ३५ ॥

આગલા સૂત્રમાં દેવનિવાસનું કથન કર્યું. નક્ષત્રો પણ દેવો જ છે. તેથી હવે સૂત્રકાર પાંચ સ્થાનોને આધારે નક્ષત્રોનું કથન કરે છે

" પચ નક્ખત્તા પંચ તારા પણ્ણત્તા " ઈત્યાદિ—

નીચે લખેલાં પાંચ નક્ષત્રો પાંચ-પાંચ તારાઓવાળાં છે—(૧) ધનિષ્ઠા, (૨) રોહિણી, (૩) પુનર્વસુ, (૪) હસ્ત અને (૫) વિશાખા. ॥ સૂ. ૩૫ ॥

छाया—जीवाः खलु पञ्चस्थाननिर्वर्त्तितान् पुद्गलान् पापकर्मतया अचिन्वन् वा, चिन्वन्ति वा चेष्यन्ति वा, तद्यथा-एकेन्द्रियनिर्वर्त्तितान् यावत् पञ्चेन्द्रियनिर्वर्त्तितान् । एवं-चय उपचयो बन्धः उदीरो वेदस्तथा निर्जरा चैव । पञ्चप्रदेशिकाः स्कन्धाः अनन्ताः प्रज्ञप्ताः । पञ्चप्रदेशावगाढाः पुद्गलाः अनन्ता प्रज्ञप्ताः यावत् पञ्चगुणरूक्षाः पुद्गला अनन्ताः प्रज्ञप्ताः ॥ सू० ३६ ॥

॥ पञ्चमस्थानस्य तृतीय उद्देशः ॥

॥ पञ्चमं स्थानं समाप्तम् ॥

प्राणियोंमें जो नक्षत्रादि देवता रूपता होती है, वह कर्मपुद्गलचय आदिके होने परही होती है अतः अब सूत्रकार चय आदिका कथन करते हैं

'जीवाणं पंचट्ठाणनिव्वत्तिए' इत्यादि सू० ३६ ॥

जीवोंने पांच स्थानोंसे निर्वर्तित हुए पुद्गलोंका पापकर्म रूपसे चयन (उपार्जन) किया है, वर्तमानमें वे उनका चयन करते हैं, और आगे भी वे उनका चयन करेंगे वे पांच स्थान इस प्रकारसे हैं-एकेन्द्रियरूप स्थान १ यावत् पञ्चेन्द्रियरूप स्थान इसी तरहका कथक चय, उपचय, बन्ध, उदीरणा, वेद तथा निर्जराके सम्बन्धमें भी जानना चाहिये ।

पांच प्रदेशोंवाले पुद्गल स्कन्ध अनन्त कहे गये हैं। पांच प्रदेशोंमें अवगाढ हुए पुद्गल स्कन्ध अनन्त कहे गये हैं। यावत् पांच गुण रूक्षवाले पुद्गल स्कन्ध अनन्त कहे गये हैं ?

જીવોમાં જે નક્ષત્રાદિ દેવતારૂપતા હોય છે તે કર્મપુદ્ગલોનો ચય આદિ થવાથી જ થાય છે. તેથી હવે સૂત્રકાર ચય આદિનું કથન કરે છે.

" जीवाणं पंचट्ठाणनिव्वत्तिए " ઇત્યાદિ—

જીવોએ પાંચ સ્થાનોમાંથી નિવર્તિત થયેલાં પુદ્ગલોનો પાપકર્મ રૂપે ચય કર્યો છે-ઉપાર્જન કર્યું છે, વર્તમાન કાળે પણ તેઓ તેમનો ચય કરે છે અને ભવિષ્યમાં પણ તેઓ તેમનો ચય કરશે તે પાંચ સ્થાનો નીચે પ્રમાણે છે—(૧) એકેન્દ્રિય રૂપ સ્થાન, (૨) દ્વીન્દ્રિય રૂપ, (૩) ત્રીન્દ્રિય રૂપ, (૪) ચતુરિન્દ્રિય રૂપ અને (૫) પંચેન્દ્રિય રૂપ સ્થાન. એ જ પ્રકારનું કથન ઉપચય, બન્ધ, ઉદીરણા, વેદન તથા નિર્જરા વિષે પણ સમજવું.

પાંચ પ્રદેશવાળા પુદ્ગલસ્કન્ધ અનંત કહ્યા છે, પાંચ પ્રદેશોમાં અવગાહિત થયેલા પુદ્ગલસ્કન્ધ અનન્ત કહ્યા છે, (યાવત્), પાંચ ગણી રૂક્ષતાવાળાં પુદ્ગલ-

टीका--' जीवा णं ' इत्यादि--

अस्य व्याख्या पूर्ववद् बोध्या। नवरं तस्मिन्-तस्मिन् स्थाने तत्तत्संख्यक-स्थानकत्वेनोक्तम्। अत्र तु पञ्च स्थानकत्वेनेति ॥ सू० ३६ ॥

इति श्री विश्वविख्यात-जगद्वल्लभ-प्रसिद्धवाचक-पञ्चदशभाषाकलितललितकला-पालापक-प्रविशुद्धगद्यपद्यनैकग्रन्थनिर्मापक-वादिमानमर्दक - श्रीशाहूछत्र-पति कोल्हापुरराजप्रदत्त ' जैनशास्त्राचार्य ' पदभूषित-कोल्हापुर-राजगुरु बालब्रह्मचारी- जैनाचार्य - जैनधर्मदिवाकर-पूज्यश्री -- घासीलालव्रतिविरचितायां ' स्थानाङ्गसूत्रस्य ' सुधाख्यायां व्याख्यायां पञ्चमस्थानस्य तृतीयोद्देशः सम्पूर्णः ॥ ५-३ ॥

पञ्चमं स्थानम् सम्पूर्णम्

इन सब सूत्रोंकी व्याख्या सुगम है, तथा पूर्वमें उस उस स्थानमें उस उस स्थानकी संख्याके रूपसे उनकी व्याख्या जैसी की गई है, वैसीही व्याख्या इनकी यहां पञ्च स्थानक रूपसे कर लेनी चाहिये।

श्री जैनाचार्य जैनधर्मदिवाकर श्री घासीलालजी महाराजकृत स्थानाङ्ग-सूत्रकी सुधा नामकी व्याख्या के पांचवें स्थानकका तीसरा उद्देशक समाप्त ॥ ५-३ ॥

॥ पांचवा स्थान समाप्त ॥

સ્કન્ધો અનંત કહ્યાં છે આ બધાં સૂત્રોની વ્યાખ્યા સુગમ છે. આગળ જે સ્થાનમાં તે તે સ્થાનની સંખ્યા રૂપે તેમની જેવી વ્યાખ્યા કરવામાં આવી છે, એવી જ વ્યાખ્યા અહીં પાંચ સ્થાન રૂપે કરવી જોઈએ. ॥ સૂ. ૩૬ ॥

શ્રી જૈનાચાર્ય જૈનધર્મ દિવાકર શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ કૃત સ્થાનાંગસૂત્રની સુધા નામની ટીકાના પાંચમા સ્થાનનો ત્રીજો ઉદ્દેશો સમાપ્ત ॥ ૫-૩ ॥

॥ પાંચમું સ્થાન સમાપ્ત ॥

षष्ठं स्थानकम् प्रारभ्यते—

उक्तं पञ्चमं स्थानम्, सम्प्रति संख्याक्रमप्राप्तं षष्ठं स्थानमुच्यते। अस्य च पूर्वेण सहायमभिसम्बन्धः—पूर्वस्मिन् स्थाने जीवादिपर्यायाः प्ररूपिताः अत्रापि तेषामेव प्ररूपणा क्रियते, इत्यनेन सम्बन्धेन आयातस्य अस्य षष्ठस्थानकस्येदमादिमं सूत्रम्—"छहिं ठाणेहिं इत्यादि

अस्यानन्तरसूत्रेण सहायं सम्बन्धः—

अनन्तर स्थानकान्तिमसूत्रे 'पञ्चगुणरूक्षाः पुद्गला अनन्ताः प्रज्ञप्ताः, इत्युक्तम्, एषां पुद्गलानां प्रज्ञापकत्वमर्थतस्तीर्थकराणां, सूत्रतश्च गणधराणां भवति, ते च यैर्गुणैर्युक्ताएव भवन्तीति तान् गुणान् प्रदर्शयति—

॥ छट्ठा स्थानका प्रथम उद्देशक ॥

पांचवां स्थान कहा जा चुका है, अब संख्याके क्रमसे प्राप्त हुआ छठा स्थान कहा जाता है, इसका पूर्व स्थानके साथ ऐसा सम्बन्ध है, कि पूर्वस्थानमें जीवादि पर्यायें प्ररूपित हुई हैं, यहां पर भी वे ही प्ररूपित की जा रही हैं, तथा पांचवे स्थानकके अन्तके सूत्रके साथ इस छठे स्थानके प्रथम सूत्रका सम्बन्ध ऐसा है, कि पांचवें स्थानके अन्तिम सूत्रमें जो पंच गुणे रूक्ष पुद्गल स्कन्ध अनन्त कहे गये हैं, सो इनकी ऐसी अर्थ रूपसे प्रज्ञापना तीर्थकरोंनेकी है, और सूत्र रूपसे प्ररूपणा गणधरोंने की है, अतः जिन गुणोंसे युक्त होते हैं, उन्हीं गुणोंका अब सूत्रकार कथन करते हैं—'छहिं ठाणेहिं संपन्ने अणगारे' इत्यादि ॥

— સ્થાન ૬ ઉદ્દેશક ૧ —

પાંચમાં સ્થાનનું કથન સમાપ્ત થયું. હવે છઠ્ઠા સ્થાનનું કથન કરવામાં આવે છે. પૂર્વસ્થાન સાથે તેનો સંબંધ આ પ્રકારનો છે—

પૂર્વ સ્થાનમાં જીવાદિ પર્યાયોની પ્રરૂપણા કરવામાં આવી છે, અહીં પણ તેમની જ પ્રરૂપણા કરવામાં આવશે. પાંચમાં સ્થાનકના છેલ્લા સૂત્ર સાથે આ સ્થાનના પહેલા સૂત્રનો સંબંધ આ પ્રકારનો છે—પાંચમાં સ્થાનના અંતિમ સૂત્રમાં એવું કહેવામાં આવ્યુ છે કે પાંચ ગણી રૂક્ષતાવાળા પુદ્ગલસ્કન્ધ અનંત કહ્યા છે. તેમની અર્થરૂપે આ પ્રકારની પ્રજ્ઞાપના તીર્થંકરોએ કરી છે, અને સૂત્ર રૂપે પ્રરૂપણા ગણધરોએ કરી છે તે ગણધરો જે ગુણોથી યુક્ત હોય છે તે ગુણોનુ સૂત્રકાર હવે કથન કરે છે.

"छहिं ठाणेहिं संपन्ने अणगारे" ઇત્યાદિ—

मूलम्—छहिं ठाणेहिं संपन्ने अणगारे अरिहइगणं धरित्तए, तं जहा--सड्ढी पुरिसजाए १, सच्चे पुरिसजाए २, मेहावी पुरिसजाए ३, बहुस्सुए पुरिसजाए ४, सत्तिमं पुरिसजाए ५, अप्पाधिकरणे पुरिसजाए ६ ॥ सू० १ ॥

छाया-षड्भिः स्थानैः सम्पन्नोऽनगारः अर्हति गणं धारयितुम्, तद्यथा-श्रद्धिपुरुषजातम् १, सत्यम् पुरुषजातम् २, मेधावि पुरुषजातम् ३, बहुश्रुतं पुरुषजातम् ४, शक्तिमत् पुरुषजातम् ५, अल्पाधिकरणं पुरुषजातम् ६ ॥ सू० १ ॥

टीका—' छहिं ठाणेहिं ' इत्यादि—

षड्भिः स्थानैः=गुणैः सम्पन्नः अनगारः=साधुरर्हति=योग्यो भवति गणं=गच्छं धारयितुं=मर्यादायां संचालयितुम्। तान्येव स्थानान्याह—तद्यथा—श्रद्धिपुरुषजातम्=श्रद्धाशीलः पुरुषविशेषः—यः कश्चित् पुरुषः श्रद्धाशीलो भवति स इत्यर्थः। इति प्रथमो भेदः। तथा—सत्यं पुरुषजातम्—सद्भ्यो—जीवेभ्यो हित सत्यं-जीवानां हितचिन्तनपरः पुरुषविशेषः। एवंविध पुरुषो गणधारक आदे-

टीकार्थ—जो अणगार छह स्थानोंसे गुणोंसे युक्त होताहै, वही अणगार गच्छको धारण करनेके योग्य होता है, गणोंको मर्यादामें चलानेके योग्य होता है। वे स्थान इस प्रकारसे हैं—श्रद्धि पुरुष जात १ सत्य पुरुष जात २ मेधावि पुरुष जात ३ बहुश्रुत पुरुष जात ४ शक्तिमत्पुरुष जात ५। और अल्पाधिकरण पुरुष जात ६ इनमें श्रद्धाशील जो पुरुष विशेष है, वह श्रद्धि पुरुष जात है, जीवोंके लिये जो हितकारी होता है वह सत्य है, जीवोंके हितके चिन्तवनमें जो पुरुष विशेष लगा रहता है, ऐसा वह पुरुष विशेष सत्य पुरुष जात है, ऐसा वह पुरुष विशेष

ટીકાર્થ—જે અણગાર ૭ સ્થાનોથી (૭ પ્રકારના ગુણોથી) યુક્ત હોય છે, એજ અણગાર ગચ્છને ધારણ કરવાને યોગ્ય હોય છે અને ગચ્છમાં મર્યાદાનું પાલન કરાવનાર હોય છે. તે ૭ સ્થાન નીચે પ્રમાણે છે—

(૧) "શ્રદ્ધિ પુરુષજાત"—જે શ્રદ્ધાશીલ પુરુષ વિશેષ હોય છે, તેને 'શ્રદ્ધિ પુરુષ જાત' કહે છે. એટલે કે ગણધરને તીર્થંકર ભગવાનના વચનો પ્રત્યે અપાર શ્રદ્ધા હોવી જોઇએ.

(૨) "સત્ય પુરુષજાત"—જીવોને માટે જે હિતકારી હોય છે, તેનું નામ જ સત્ય છે. જે પુરુષ જીવોના હિતનું ચિન્તવન કર્યા કરે છે તેને

यवचनश्च भवति। इति द्वितीयो भेदः। तथा-मेधाविपुरुषजातम्-धारणावती-बुद्धिर्मेधा, सा वर्त्तते यस्य तत् मेधाविपुरुषजातम्-मेधायुक्तः पुरुषविशेषः। एवं प्रकारः पुरुषविशेषोऽन्यस्मात् झटिति श्रुतं गृहीत्वा शिष्यानध्यापयितु समर्थो भवति। यद्वा-'मेधावी' इत्यस्य मर्यादायां धावतीति निर्वचनम्। मर्यादायां गमनशीलः पुरुषविशेषो गणं मर्यादायां प्रवर्तयति। इति तृतीयः। तथा-बहुश्रुतं-बहु=प्रभूतं श्रुतं=सूत्रार्थरूप आगमो यस्य तत्तथा, पुरुषजातं=पुरुषविशेषः। अधीतप्रभूतश्रुतः पुरुषविशेषः इत्यर्थ.। अबहुश्रुतस्तु न कदापि गणस्य उपकारको भवति तदुक्तम्।

गणधारक होता है, और आदेय वचनवाला होता है, यह द्वितीय भेद है, धारणावाली जो बुद्धि है, उसका नाम मेधा है, ऐसी मेधासे युक्त जो पुरुष विशेष होता है, वह मेधावि पुरुष जात है, ऐसा पुरुष विशेष शीघ्रही दूसरोंसे श्रुतको ग्रहण कर शिष्योंको पढा देता है, यद्वा-"मेधावी" इसका अर्थ जो "मर्यादामें रहता है" ऐसा भी होता है, मर्यादामें गमनशील जो पुरुष विशेष होता है, वह गणको गणकी मर्यादाके अनुसार अच्छी तरहसे चला सकता है, ऐसा यह तृतीय स्थान है, जिसका सूत्ररूप एवं अर्थरूप आगम प्रभूत होता है, है, अर्थात् जिसे सूत्रार्थरूप आगमका विशेष ज्ञान होता है, ऐसा वह पुरुष विशेष बहुश्रुत पुरुषजात कहा गया है, क्योंकि जो अल्परूपसे श्रुतका ज्ञाता है, वह गणका उपकारक नहीं होता है। कहा भी है—

'સત્ય પુરુષ જાત' કહે છે. ગણધર આ પ્રકારનો પુરુષવિશેષ હોવો જોઈએ, અને આદેય વચનોવાળો હોવો જોઈએ.

(૩) "મેધાવિ પુરુષજાત"—ધારણાવાળી જે બુદ્ધિ છે તેનું નામ 'મેધા' છે. એવી મેધાથી યુક્ત જે પુરુષવિશેષ હોય છે તેને મેધાવિ પુરુષ કહેવાય છે. એવો મેધાવિ પુરુષ અન્યની પાસેથી શ્રુતનું ગ્રહણ પણ વિશેષ ઝડપથી કરી શકે છે, અને શિષ્યોને ઝડપથી શ્રુત ભણાવી શકે છે. 'મેધાવી' એટલે "મર્યાદામાં રહેનારો" એવો અર્થ પણ થાય છે. જે પુરુષ પોતે મર્યાદાનું પાલન કરનારો હોય છે, તે ગણને પણ મર્યાદા અનુસાર સારી રીતે ચલાવી શકે છે. માટે જ ગણધર મેધાવિ હોવા જોઈએ.

(૪) બહુશ્રુત પુરુષ જાત—જેનું સૂત્ર રૂપ અને અર્થ રૂપ આગમ પ્રભૂત (વિશાળ) હોય છે એટલે કે જેને સૂત્રાર્થ રૂપ આગમનું વિશેષ જ્ઞાન હોય એવા પુરુષને બહુશ્રુત પુરુષ કહેવાય છે એવા બહુશ્રુત અણગાર જ ગણધરના પદને માટે યોગ્ય ગણાય છે જેને શ્રુતનું અલ્પજ્ઞાન હોય છે તે ગણનો ઉપકારક થઈ શકતો નથી. કહ્યુ પણ છે કે—

" सीसाण कुणइ कह सो, तहाविहो हंद नाणमाईणं ।
अहियाहिय संपत्तिं, संसारुच्छेयणिं परमं ? ॥ १ ॥

छाया—शिष्याणां करोति कथं स तथाविधो हन्त ज्ञानादीनाम् ।
अधिकाधिकसम्पत्तिं संसारोच्छेदनीं परमाम् ? ॥१॥ इति ।

तथा च-" कहं सो जयउ अगीओ, कहं वा कुणउ अगीयनिस्साए ।
कहं वा करेउ गच्छं, सबालवुड्डाउलं सो उ ॥ १ ॥ "

छाया—कथं स यततामगीतः, कथं वा करोतु अगीतनिश्रायाम् ।
कथं वा करोतु गच्छं सबालवृद्धाकुलं स तु ॥ १ ॥ इति ।

अयमर्थः—अगीतार्थः साधुः स्वपरोद्धरणार्थं कथं यतताम्=प्रयत्नवान् भवतु । अबहुश्रुतत्वात् स स्वपरोद्धरणे न कदापि समर्थो भवति । तथा—अगीतनिश्रायाम्=अबहुश्रुतसाधोरधीनतायां वा कथं स्वोद्धरणार्थं प्रयत्नं करोतु । अबहुश्रु-

---

" सीसाण कुणइ कहं सो " इत्यादि ।

अल्पश्रुतका ज्ञाता होता है, वह ज्ञानादिकोंकी अधिकाधिक संपत्तिको शिष्यजनोंमें उत्कृष्ट रूपसे कैसे कर सकता है, तात्पर्य यह है, कि जो अल्पश्रुतधारी होता है, वह पुरुष शिष्यजनोंमें ज्ञानादि रूप संपत्तिको अधिकाधिक रूपमें कैसे वृद्धि करता है, अर्थात् नहीं कर सकता है । तथा च-" कहं सो जयउ अगीओ " इत्यादि ।

इसका अर्थ ऐसाहै, जो साधु अगीतार्थ होताहै, वह स्व और परके उद्धार करनेमें प्रयत्नशाली कैसे हो सकता है, अर्थात् वह कदापि नहीं हो सकताहै, क्योंकि वह अबहुश्रुतवाला होता है, तथा—अबहुश्रुत साधुकी अधीनतामें रहा हुआ गण अपने उद्धार करनेका प्रयत्न कैसे कर सकता है । अर्थात् कदापि वह आत्मोद्धार करनेमें प्रयत्नवाला नहीं हो सकता

" सीसाण कुणइ कहं सो " ઇત્યાદિ—

અલ્પ શ્રુતનો જ્ઞાતા હોય એવો પુરુષ શિષ્યોને જ્ઞાનાદિક સંપત્તિની અધિકાધિક પ્રાપ્તિ કેવી રીતે કરાવી શકે ! શ્રુતનું વિશાળ જ્ઞાન ધરાવનાર પુરુષ જ શિષ્યોને જ્ઞાનાદિ રૂપ સંપત્તિની વધારેમાં વધારે પ્રાપ્તિ કરાવી શકે છે. માટે જ ગણધર બહુશ્રુતધારી હોવા જોઈએ.

વળી—" कहं सो जयउ अगीओ " ઇત્યાદિ—

જે સાધુ અગીતાર્થ હોય છે, તે પોતાનો અને પરનો ઉદ્ધાર કરાવવામાં પ્રયત્નશીલ કેવી રીતે થઈ શકે છે ! એટલે કે તે તેમ કરવાને સમર્થ થતો નથી. અલ્પશ્રુત સાધુની અધીનતામાં રહેલો ગણ કદી પણ આત્મોદ્ધાર કરવાના કાર્યમાં પ્રયત્નશાળી થઈ શકતો નથી. અલ્પશ્રુત સાધુના વચનોમાં

ताधीनो गणो न कदापि आत्मोद्धरणे समर्थो भवतीति । तथा-स गणाधिपोऽबहुश्रुतः साधुस्तु कथं वा सबालवृद्धाकुलं=बालवृद्धयुक्तं गच्छं करोतु=कार्ये प्रवर्तयतु । अबहुश्रुतत्वात् तस्य वचने गणो न निष्ठावान् भवतीति तेन प्रेरितोऽपि गणः कार्ये न प्रवर्तते । इति चतुर्थः । तथा-शक्तिमत्-शक्तिः=शरीरादि सामर्थ्यरूपा, तद्युक्तं पुरुषजातं=पुरुषप्रकारः । एवंविध एव साधुरनेकविधापद्भ्यो गणमात्मानं चोद्धर्तुं समर्थो भवति । इति पञ्चमः । तथा-अल्पाधिकरणम्-अल्पम्=अविद्यमानम् अधिकरणं=स्वपरपक्षविषयः कलहो यस्य तत्तथाविधं पुरुषजातम् । 'अल्प' शब्दोऽत्र अभावार्थकः । एवंविधः साधुरनुवर्तनया गणस्योपकारको

है । तथा वह अबहुश्रुतवाला साधु अपने गणके बालवृद्ध साधुओंको अपने २ कार्यमें कैसे प्रवृत्त करा सकता है । क्योंकि उसके वचन पर अबहुश्रुत होनेसे गण निष्ठावान् नहीं होता है, और न उसके द्वारा प्रेरित हुआ भी गण अपने कर्तव्य कार्यमें प्रवृत्ति कर सकता है । ऐसा यह चतुर्थ कारण है । तथा-जो शरीरादिकी सामर्थ्यरूप शक्तिसे संपन्न होता है, ऐसा वह पुरुष विशेषही अनेकविध आपत्तियोंसे गणका और अपना निजका उद्धार करनेमें समर्थ होता है, ऐसा यह पांचवां स्थान है, अल्पाधिकरण यह छठा स्थान है, जिस साधुके स्वपर पक्ष विषयक कलह रूप अधिकरण अल्प-अविद्यमान है, ऐसा वह साधु विशेष अविद्यमान अधिकरण कहा गया है, यहां अल्प शब्द अभाव अर्थका कहनेवाला है, ऐसा अल्प अधिकरणवाला साधु अनुवर्त्तनासे गणका उपकारक होता है, गुणी और गुणमें अभेद सम्बन्ध मानकर

गणुने पुरती श्रद्धा पણ હોતી નથી. તે કારણે અલ્પશ્રુત સાધુ ગણના આબાલ વૃદ્ધ સાધુઓને પોતપોતાના કર્તવ્ય પાલનમાં પ્રવૃત્તી પણ કરી શકતો નથી. આ રીતે ગણધર બહુશ્રતધારી હોય તો જ ગણ તેમના વચનો પર વિશ્વાસ મૂકીને તેમની આજ્ઞા પ્રમાણે પ્રવૃત્તિ કર્યા કરે છે.

(૫) શક્તિમત્પુરુષ જાત—શારીરિક શક્તિ આદિથી સંપન્ન હોય એવો પુરુષવિશેષ જ અનેક પ્રકારની આપત્તિઓમાથી ગણનું અને પોતાનું રક્ષણ કરવાને સમર્થ હોય છે.

(૬) અલ્પાધિકરણ પુરુષ જાત—જે સાધુમાં સ્વ પક્ષ અને પરપક્ષ વિષયક કલહ રૂપ અધિકરણ અલ્પ હોય છે, એવા સાધુને અહીં અલ્પ અધિક રણવાળો કહ્યો છે. 'અલ્પ' પદ "અભાવ" નું વાચક છે. એવો અલ્પ-અધિકરણવાળો સાધુ અનુવર્ત્તના વડે ગણને ઉપકારક થાય છે. ગુણી અને

भवति । इति षष्ठः । गुणगुणिनोरभेदोपचाराद् गुणी एवात्र गुणत्वेन निर्दिष्टः । अन्यथा तु ऋद्धित्वं सत्यत्वमित्यादि ब्रूयादिति । अन्यत्र तु गणिनः स्वरूपमेवमुक्तम्, तथाहि—

" सुत्तत्थे निम्माओ, पियदढधम्मोऽणुवत्तणाकुसलो ।
जाई कुलसंपन्नो, गंभीरो लद्धिमंतो य ॥ १ ॥
संगहुवग्गहनिरओ, कयकरणो पवयणाणुरागी य ।
एवं विहोउ भणिओ, गणसामी जिणवरिंदेहिं ॥ २ ॥"

छाया—सूत्रार्थे निर्मातः (कुशलः) प्रियदृढधर्मोऽनुवर्तनाकुशलः ।
जातिकुलसंपन्नो गम्भीरो लब्धिमांश्च ॥ १ ॥
संग्रहोपग्रहनिरतः कृतकरणः प्रवचनानुरागी च ।
एवंविधस्तु भणितो गणस्वामी जिनवरेन्द्रैः ॥ २ ॥ इति ॥ सू० १ ॥

अभेदका उपचार कर–गुणीही यहां गुणरूपसे प्रकट किया गया है, नहीं तो ऋद्धित्व सत्यत्व इत्यादि रूपसे सूत्रकारको सूत्रमें कहना चाहिये था । गणिका स्वरूप अन्यत्र ऐसा कहा गया है–"सुत्तत्थे निम्माओ" इत्यादि । जो सूत्रके अर्थमें कुशल मतिवाला होता है, जिनेन्द्र प्रतिपादित धर्ममें जिसकी दृढता होती है, वह धर्म जिसको अपने प्राणोंसे भी अधिक प्यारा होता है, अनुवर्तनामें जो कुशल होता है, जाति कुलसे जो संपन्न होता है, गंभीर होता है लब्धिवाला होता है ॥१॥ संग्रह एवं उपग्रह (रक्षण) करनेमें जो निरत होता है, कृतकरण होता है, और प्रवचनका अनुरागी होता है, वही गणका स्वामी होता है, ऐसा जिनेन्द्रने कहा है ॥२॥ सू० १ ॥

ગુણુમાં અભેદ સંબંધ માનીને અહીં ગુણીને જ ગુણરૂપે પ્રકટ કરવામાં આવેલ છે. જો આ પ્રકારનો અર્થ ગ્રહણ કરવાનો ન હોત તો ઋદ્ધિત્વ, સત્યત્વ, ઈત્યાદિ રૂપે સૂત્રકારે કથન કરવું જોઈતું હતું. ગણિનું આ પ્રકારનું સ્વરૂપ કહ્યું છે: " सुत्तत्थे निम्माओ " ઈત્યાદિ—

જે સૂત્રના અર્થમાં કુશળ મતિવાળા હોય છે, જિનેન્દ્ર ભગવાન દ્વારા પ્રતિપાદિત ધર્મપ્રત્યે જેને અવિચળ શ્રદ્ધા છે, જેને ધર્મ પ્રાણોથી પણ અધિક પ્યારો છે, અનુવર્તનામાં જે કુશળ હોય છે, જેઓ ઉત્તમ જાતિ અને કુળથી સંપન્ન હોય છે, જેઓ ગંભીર હોય, લબ્ધિધારી હોય છે, સંગ્રહ અને ઉપગ્રહ (રક્ષણ) કરવામાં જે નિરત હોય છે, કૃતકરણ હોય છે અને પ્રવચન પ્રત્યે અનુરાગવાળા હોય છે, એવા સાધુ જ ગણના સ્વામી ગણધર બનવાને યોગ્ય ગણાય છે, એવું જિનેન્દ્ર ભગવાને કહ્યું છે. ॥ સૂ. ૧ ॥

इत्थं यैर्गुणैः गणधरतां साधवो यान्ति, ते गुणाः प्रोक्ताः। संप्रत्येवंगुणविशिष्टगणधराज्ञायां वर्तमानो निर्ग्रन्थो यैः स्थानैः जिनाज्ञाविराधको न भवति तानि स्थानानि प्राह—

मूलम्—छहिं ठाणेहिं निग्गंथे निग्गंथिं गिण्हमाणे वा अवलंबमाणे वा नाइक्कमइ, तं जहा—खित्तचित्तं; १, दित्तचित्तं, २ जक्खाइट्ठं, ३ उम्मायपत्तं, ४ उवसग्गपत्तं, ५, साहिगरणं ६ ॥सू०२॥

छाया—षड्भिः स्थानैः निर्ग्रन्थो निर्ग्रन्थीं गृह्णन् वा अवलम्बमानो वा नातिक्रामति, तद्यथा—क्षिप्तचित्तां १, दृप्तचित्तां २, यक्षाविष्टाम् ३, उन्मादप्राप्ताम् ४, उपसर्गप्राप्ताम् ५, साधिकरणाम् ६ ॥ सू० २ ॥

टीका—' छहिं ठाणेहिं ' इत्यादि—

अस्य सूत्रस्य व्याख्या पञ्चमस्थानकस्य द्वितीयोद्देशे सप्तावशतिसूत्रे गता तत एवावगम्या। नवरम्—साधिकरणां=कलहं कुर्वतीम् ॥ २ ॥

इस प्रकार जिन गुणोंसे साधु गणधरताको प्राप्त करते हैं, वे गुण कहे। अब सूत्रकार यह प्रकट करते हैं कि जो निर्ग्रन्थ ऐसे गुण विशिष्ट गणधरकी आज्ञामें रहता है, वह जिन स्थानों द्वारा जिनकी आज्ञाका विराधक नहीं होता है, वे स्थान ये हैं—

टीकार्थ—'छहिं ठाणेहिं निग्गंथे' इत्यादि सू० २ ॥

इन ६ कारणोंको लेकर निर्ग्रन्थीको अपने हाथसे ग्रहण करनेवाला या उसे अपने हाथोंमें उठानेवाला साधु जिन आज्ञाका विराधक नहीं होता है, वे कारण इस प्रकारसे हैं—क्षिप्तचित्ता १ दृप्तचित्ता २ यक्षाविष्टा ३ उन्मादप्राप्ता ४ उपसर्गप्राप्ता ५ और साधिकरणा ६ इस

જે ગુણોને લીધે સાધુ ગણધર બની શકે છે, તે ગુણોનુ કથન કરીને હવે સૂત્રકાર એ વાત પ્રકટ કરે છે કે જે નિર્ગ્રંથ એવા ગુણોથી યુક્ત ગણધરની આજ્ઞામાં રહે છે, તે કયા સ્થાનો દ્વારા (કયા સંજોગોમાં) જિનની આજ્ઞાનો વિરાધક થતો નથી. " छहिं ठाणेहिं निग्गंथे " ઇત્યાદિ—

ટીકાર્થ—નીચે બતાવેલાં ૬ કારણોને લીધે નિર્ગ્રંથીને (સાધ્વીજીને) પોતાના હાથ વડે સહારો આપનાર અથવા પોતાના હાથમાં ઉપાડી લેનાર સાધુ જિનેશ્વર ભગવાનની આજ્ઞાનો વિરાધક ગણાતો નથી.

(૧) ક્ષિપ્તચિત્તા, (૨) દૃપ્તચિત્તા, (૩) યક્ષાવિષ્ટા. (૪) ઉન્માદ પ્રાપ્તા, (૫) ઉપસર્ગ પ્રાપ્તા અને (૬) સાધિકરણા,

पुनरपि यैः स्थानैः साधवो जिनाज्ञां नातिक्रामन्ति तानि स्थानानि माह—

मूलम्—छहिं ठाणेहिं निग्गंथा निग्गंथीओ य साहम्मियं कालगयं समायरमाणा णाइक्कमंति, तं जहा–अंतोहिंतो वा बहिं णीणेमाणा १, बाहीहिंतो वा निब्बाहिं णीणेमाणा वा २, उवेहमाणा वा ३, उवासमाणा वा ४, अणुन्नवेमाणा वा ५, तुसिणीए वा संपव्वयमाणा ६ ॥ सू० ३ ॥

छाया—षड्भिः स्थानैः निर्ग्रन्थाः निर्ग्रन्थ्यश्च साधर्मिकं कालगतं समाचरमाणा नातिक्रामन्ति, तद्यथा–अन्तस्तो वा बहिर्नयन्तः १, बहिष्टो वा निर्बहिः नयन्तः २, उपेक्षमाणा वा ३, उपासीना वा ४, अनुज्ञापयन्तो वा ५, तूर्णीं वा संप्रव्रजन्तः ॥ सू० ३ ॥

टीका—'छहिं ठाणेहिं इत्यादि—

निर्ग्रन्थाः=साधवो निर्ग्रन्थ्यः=साध्व्यो वा, उभये वा षड्भिः स्थानैः साधर्मिकं=समानधर्माणं साधुं कालगतं समाचरन्तः–उत्थापनादि क्रियाविषयं कुर्वन्तो

सूत्रकी व्याख्या पांचवें स्थानके द्वितीय उद्देशेके २७ वे सूत्रमें की गईहै, अतः वहींसे देख लेनी चाहिये। वहां पर पांच स्थानोंका वर्णन है, यहां–"साधिकरणा" यह ६ वां स्थानहै इसका अर्थ है 'कलह करती हुई' २॥

पुनश्च—साधु जिन स्थानोंको लेकर जिनाज्ञाका विराधक नहीं होता है, वे स्थान इस प्रकारसे हैं यह प्रकट करते हुए सूत्रकार कहते हैं–

'छहिं ठाणेहिं निग्गंथा निग्गंथीओ' इत्यादि सू० ३ ॥

टीकार्थ–निर्ग्रन्थ साधु और निर्ग्रन्थ साध्वियां ये दोनों इन छह कारणोंसे

પાચમા સ્થાનના બીજા ઉદ્દેશાના ૨૭ માં સૂત્રમાં ક્ષિપ્તચિત્તા આદિ પહેલાં પાંચ કારણોની સ્પષ્ટતા કરવામાં આવી ચુકી છે. તો ત્યાંથી તે વાંચી લેવી. છઠ્ઠું સ્થાન "સાધિકરણા" છે. તેનો અર્થ "કલહ કરતી" થાય છે. એટલે કે કલહ કરતી સાધ્વીને હાથ પકડીને અથવા ઉપાડીને દૂર લઈ જનાર સાધુ જિનાજ્ઞાનો વિરાધક ગણાતો નથી ॥ સૂ. ૨ ॥

વળી—જે કારણોને લીધે જે જે સંજોગો ઉદ્ભવવાથી એક બીજાનો સ્પર્શ કરનાર સાધુ સાધ્વીઓ જિનાજ્ઞાના વિરાધક ગણાતા નથી, તે કારણો હવે સૂત્રકાર પ્રકટ કરે છે "છહિં ઠાણેહિં નિગ્ગંથા નિગ્ગંથીઓ" ઇત્યાદિ—

ટીકાર્થ–સમાન ધર્મવાળા સાધુને કાળધર્મ પામેલા જાણીને તેની ઉત્થાપના,

नातिक्रामन्ति=जिनाज्ञां नोल्लङ्घयन्ति । तान्येव स्थानान्याह—तद्यथा-अन्तस्तो=वसतेराभ्यन्तराद् बहिः=बाह्यप्रदेशं नयन्तः=प्रापयन्तो नातिक्रामन्ति जिनाज्ञामिति प्रथमं स्थानम् । वा=अथवा बहिष्टः=वसतेर्बहिः प्रदेशात् निर्वहिः-नितरां बहिः निर्बहिः-बाह्यप्रदेशादपि बहिः-दूरप्रदेशं नयन्त इति द्वितीयं स्थानम् । तथा-उपेक्षमाणाः=विलापाद्यकरणरूपाम् उपेक्षां कुर्वन्तो वा, इति तृतीयं स्थानम् । उपासीनाः=रात्रिजागरया तत्समीपे उपविशन्तो वा इति चतुर्थं स्थानम् । अनुज्ञा-

समान धर्मवाले साधुको कालगत जानकर उसकी उत्थापनादिक क्रिया विशेष करते हुए जिनाज्ञाका उलङ्घन नहीं करते हैं वे स्थान इस प्रकारसेहैं

जब समान धर्मवाला कोई साधु कालगत हो जाता है, और वे जब उसे वसतिसे-उपाश्रयसे बाहर निकालते हैं, तो उस स्थितिमें वे जिनाज्ञाकी विराधना करनेवाले नहीं होते हैं । ऐसा यह प्रथम स्थान है । दूसरा स्थान ऐसा है, कि उपाश्रयके बाह्य प्रदेशसे भी बहुत दूर तक जब वे उसे ले जाते हैं, तब भी वे जिनाज्ञाकी विराधना करनेवाले नहीं होते हैं । तीसरा स्थान ऐसा है-समान धर्मवाले साधुके मरजाने पर जो वे विलाप आदि क्रिया नहीं करते हैं । अथवा-उत्सर्ग से वे बिलकुल उपेक्षा भाव धारण कर लेते हैं, ऐसी स्थितिमें वे जिनाज्ञाके विराधक नहीं होते हैं । चतुर्थ कारण इस प्रकारसे हैं, जब वह समान धर्मवाला साधु यदि रात्रिमें मर जाता है, और वे यदि

આદિ ક્રિયાવિશેષ કરતાં સાધુ અને સાધ્વીઓ નીચે દર્શાવ્યા મુજબના ૬ પ્રસંગોમાં જિનાજ્ઞાના વિરાધક ગણાતા નથી.

(૧) જ્યારે સમાન ધર્મવાળો કોઈ સાધુ કાળધર્મ પામે, ત્યારે તેમના શબને ઉપાશ્રયમાંથી બહાર કાઢનાર સાધુ સાધ્વીઓને જિનાજ્ઞાની વિરાધના કરનારા ગણાતાં નથી, એવું આ પહેલું સ્થાન સમજવું.

બીજું સ્થાન—ઉપાશ્રયની બહાર તો શું પણ ઉપાશ્રયથી દૂર દૂરના સ્થળે તેના શબને લઇ જનાર સાધુ સાધ્વીઓ પણ જિનાજ્ઞાના વિરાધક ગણાતા નથી.

ત્રીજું સ્થાન—સમાન ધર્મવાળા સાધુનું અવસાન થઇ જવાથી જેઓ વિલાપ આદિ કરતાં નથી-સંસારના સંબંધોને અનિત્ય માનીને જેઓ આવે પ્રસંગે પણ ઉપેક્ષાભાવ ધારણ કરી લે છે, એવા સાધુસાધ્વીઓ પણ જિનાજ્ઞાની વિરાધના કરનારા ગણાતા નથી.

ચોથું સ્થાન—કોઇ સમાન ધર્મવાળો સાધુ રાત્રે અવસાન પામે, તો

वा, तं जहा--जीवं वा अजीवं करित्तए १, अजीवं वा जीवं करित्तए २, एगसमएणं वा दो भासाओ भासित्तए ३, सयं कडं वा कम्मं वेदेमि वा मा वा वेदेमि ४, परमाणुपोग्गलं वा छिंदित्तए वा भिंदित्तए वा अगणिकाएण वा समोदहित्तए ५ वहिया लोगंतागमणयाए ॥ सू० ५ ॥

छाया-पट्सु स्थानेषु सर्वजीवानां नास्ति ऋद्धिरिति वा द्युतिरिति वा यश इति वा बलमिति वा वीर्यमिति वा पुरुषकार इति वा पराक्रम इति वा, तद्यथा-जीवं वा अजीवं कर्तुम् १, अजीवं वा जीवं कर्तुम् २, एकसमयेन द्वे भाषे भाषितुम् ३, स्वयं कृतं वा कर्म वेदयामि मा वा वेदयामि ४, परमाणुपुद्गलं वा छेत्तुं वा भेत्तुं वा अग्निकायेन वा समादग्धुम् ५, वहिर्वा लोकान्ताद् गमनाय ६ ॥सू०५॥

टीका—' छहिं ठाणेहिं ' इत्यादि—

पट्सु स्थानेषु=विषयेषु सर्वजीवानां=सर्वज्ञछद्मस्थानां सकलजीवानां नास्ति

छद्मस्थोंकी शक्ति ऐसी नहीं है, जो वे धर्मास्तिकाय आदिके विषयमें ज्ञान और दर्शनवाले हो सके अतः इस शक्तिके अभावमें वे धर्मास्तिकायादिकको नहीं जानते हैं और न देखते हैं, ऐसा कहकर अब सूत्रकार जिन स्थानोंसे समस्त जीवोंके भी ऋद्धयादि शक्ति नहीं होती है ऐसे उन स्थानोंका कथन करते हैं—

'छहिं ठाणेहिं सव्वजीवाणं णत्थि' इत्यादि ५ ॥

टीकार्थ-छह स्थानोंमें विषयमें सिद्ध एवं संसारी इन समस्त जीवोंको ऋद्धि विभूति नहीं है, द्युति-कान्ति-महात्म्य नहीं हैं, यश पराक्रमादि जनित प्रसिद्धि नहीं है, बल शारीरिक शक्ति नहीं है, वीर्य-आत्मा शक्ति नहीं

ધર્માસ્તિકાય આદિના વિષયમાં જાણવાની અને દેખવાની શક્તિ છદ્મસ્થ જીવોમાં હોતી નથી. તેઓ કેવળજ્ઞાનને અભાવે તેમને જાણી શકતા નથી અને કેવળદર્શનને અભાવે તેમને દેખી શકતા નથી આ પ્રકારનું કથન કરીને હવે સૂત્રકાર સમસ્ત જીવોમાં જે જે ઋદ્ધિ અને શક્તિનો અભાવ હોય છે તે અભાવનાં સ્થાનો પ્રકટ કરે છે.

" છહિં ઠાણેહિં સવ્વજીવાણં ણત્થિ " ઈત્યાદિ—

ટીકાર્થ-નીચે દર્શાવેલા છ સ્થાનોમાં (વિષયોમ) સિદ્ધ અને સંસારી જીવોની ઋદ્ધિ, દ્યુતિ, મહાત્મ્ય, યશ, શારીરિક શક્તિ અને આત્મશક્તિ તથા પુરુષકાર અને પરાક્રમ, કોઈ પણ રીતે ઉપયોગી નિવડતાં નથી. કહેવાનું તાત્પર્ય એ

ऋद्धिः=विभूतिः, ' इति ' वाक्यालङ्कारे ' वा ' अथवार्थे एवं सर्वत्रापि विज्ञेयम्। नास्ति द्युतिः=कान्तिः=महात्म्यम् , नास्ति यशः–पराक्रमादिजनिता प्रसिद्धिः, नास्ति बल=शारीरिकशक्तिः, नास्ति वीर्यम्=आत्मशक्तिः, नास्ति पुरुषकारः= पौरुषम्, नास्ति पराक्रमः–उत्साह इति । अयं भावः–वक्ष्यमाणेषु षट्सु स्थानेषु सिद्धसंसारिणः सर्वेऽपि प्राणिनः ऋद्ध्यादि शक्तिमन्तो न भवन्तीति। तान्येव स्थानानि प्राह–तद्यथा-जीवं वा अजीवं कर्तुम्–जीवमजीवत्वेन परिणतं कर्तुं न कोऽपि शक्नोतीति प्रथमं स्थानम्। एवम् अजीवं जीवं कर्तुं न कोऽपि शक्नोतीति द्वितीयं स्थानम्। एकसमयेन द्वे भाषे=सत्यासत्यादिरूपां भाषाद्वयं भाषितुं न कश्चित् शक्नोतीति तृतीयं स्थानम्। स्वयंकृतं=स्वोपार्जितं कर्म उदयावलिकायां प्रविष्टं सत् ' वेदयामि मा वेदयामि '=इति स्वेच्छया कश्चिद् वेदनम् अवेदनं वा कर्तुं न शक्नोति। अयं विशेषः–एतद्द्वयं सर्वज्ञानामाभोगनिर्वर्त्तितम् , अन्येषां

है, पुरुषकार पौरुष नहीं है, और पराक्रम–उत्साह नहीं है, तात्पर्य यह है, कि इन छह स्थानोंमें समस्त जीव चाहे वे सिद्ध हो या संसारी हो ऋद्ध्यादि शक्तिवाले नहीं होते हैं, वे छह स्थान इस प्रकारसे हैं– " जीवं वा अजीवं कर्त्तुम् १ " कोई भी जीव जीवको अजीव रूपसे करनेकी क्षमता (सामर्थ्य) आदि नहीं रखता है १ " अजीवं वा जीवं कर्त्तुम् " कोई भी जीव अजीवको जीवरूपसे परिणमानेकी क्षमता आदि नहीं रखता है" एक समयेन द्वे भाषे भाषितुम् " कोई भी जीव एक समयमें सत्यासत्यादि रूप दो भाषाएँ बोल सके ऐसी क्षमता आदि नहीं रखता है, " स्वयं कृतं वा कर्म वेदयामि मा वा वेदयामि ४ " कोई भी जीव ऐसा नहीं है, जो अपनी इच्छाके अनुसार स्वयं कृतकर्मका वेदन करें या नहीं करें ऐसी शक्तिवाला हो। तात्पर्य ऐसा

છે કે જીવ ભલે સસારી હોય કે સિદ્ધ હોય, પરન્તુ નીચેના છ કાર્યો કર. વાને સમર્થ હોતો નથી—

(૧) " जीवं वा अजीवं वा कर्तुम् " કોઇ પણ જીવમાં જીવને અજીવ કરવાનું સામર્થ્ય હોતું નથી. " अजीव वा जीव कर्तुम् " કોઈ પણ જીવ અજીવને જીવ રૂપે પરિણમાવવાને સમર્થ નથી. (૩) " एक समयेन द्वे भाषे भाषितुम् " કોઇ પણ જીવ એક જ સમયે સત્યાસત્યાદિ રૂપ બે ભાષાઓ બોલી શકવાને સમર્થ હોતો નથી. " स्वयं कृतं वा कर्म वेदयामि मा वा वेदयामि " કોઈ પણ જીવમાં એવી ઋદ્ધિ હોતી નથી કે તે પોતાની ઇચ્છા અનુસાર પોતાના કૃતકર્મનું વેદન કરે અથવા ન કરે. એટલે કે પોતાની ઇચ્છા

चानाभोगनिर्वर्त्तितं भवतीति । इति चतुर्थं स्थानम् । तथा न कश्चित् शक्नोति परमाणुपुद्गलं छेत्तुं=खड्गादिना द्विधाकर्तुम् , भेत्तुं=सूच्यादिना विदारयितुं, अग्निकायेन समादग्धुं=भस्मसात् कर्तुं वेति पञ्चमं स्थानम् । तथा न कश्चित् शक्नोति लोकान्ताद् बहिर्गमनायेति षष्ठं स्थानम् ॥ सू० ५ ॥

जीवस्य् अजीवं कर्तुमित्युक्तमिति जीवप्रस्तावात्सम्प्रति तस्यैव षड् भेदानाह-

मूलम्—छज्जीवनिकाया पण्णत्ता, तं जहा—पुढविकाइया जाव तसकाइया ॥ सू० ६ ॥

छाया—षड्जीवनिकायाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—पृथिवीकायिका यावत् त्रसकायिकाः ॥ सू० ६ ॥

है, कि अपनी इच्छाके अनुसार कृत कर्मका वेदन करना और कृतकर्मका वेदन नहीं करना ऐसी ऋद्धि आदिवाला कोई भी जीव नहीं है । सर्वज्ञके ये दो आभोग निर्वर्तित होते हैं । ऐसा यह चतुर्थ स्थान है । पांचवां स्थान ऐसा है, कि कोई भी जीव ऐसी ऋद्धि आदिवाला नहीं है, जो परमाणुपुद्गलको खड्ग आदि द्वारा टुकडे कर सके या उसका सूची आदि द्वारा विदारण कर सके या अग्नि द्वारा उसे जला सके तथा छठा स्थान ऐसा है, कि कोई भी जीव ऐसी ऋद्धि आदिवाला नहीं है, कि जो लोकान्त बाहर जानेके लिये समर्थ हो ॥ सू०५ ॥

जीवको अजीव करनेके लिये कोई भी समर्थ नहीं है, इत्यादि जो ऊपरके सूत्रमें कहा है, सो इसी जीव प्रस्तावको लेकर अब सूत्रकार

અનુસાર કૃતકર્મનું વેદન કરવું કે વેદન ન કરવું, એવી ઋદ્ધિ આદિવાળો કોઈ જીવ હોતો નથી. આ બન્ને સર્વજ્ઞમાં આભોગ નિર્વર્તિત હોય છે, અને અન્ય જીવોમાં અનાભોગ નિર્વર્તિત હોય છે, એવું આ ચોથું સ્થાન સમજવું (૫) કોઈ પણ જીવમાં એવી ઋદ્ધિ આદિનો સદ્ભાવ હોતો નથી કે તે પરમાણુ પુદ્ગલના ખડ્ગ આદિ દ્વારા ટુકડા કરી શકે કે સોય આદિ દ્વારા તેને છેદી શકે, કે અગ્નિ દ્વારા તેને બાળી શકે (૬) કોઈ પણ જીવ એવી ઋદ્ધિ વાળો હોતો નથી કે જે લોકાન્તની બહાર જઈ શકવાને સમર્થ હોય. ॥ સૂ. ૫ ॥

આગલા સૂત્રમાં એવો ઉલ્લેખ થયો છે કે "જીવને અજીવ કરવાને કોઈ સમર્થ નથી." આ જીવના પ્રસ્તાવના અનુસંધાનમાં હવે તેના ૬

टीका–'छज्जीवनिकाया' इत्यादि—

व्याख्या स्पष्टा। नवरं निकायानां षड्विधत्वं प्रतिज्ञाय षड्विधत्वोपदर्शने निकायिनो यदुक्ताः, तत् समुदायसमुदायिनोरभेदत्वमाश्रित्य। नहि समुदायात् समुदायी व्यतिरिच्यते। इति ॥ सू० ६ ॥

जीवा एव कालगतास्तारकाग्रहादिषूपपद्यन्ते, इति तारकाग्रहाणां षड्विधत्वमाह—

मूलम्—छ तारग्गहा पण्णत्ता, तं जहा–सुक्के १ बुहे २ बहस्सई ३ अंगारए ४ सनिच्चरे ५ केऊ ६ ॥ सू० ७ ॥

छाया—षट् ताराग्रहाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–शुक्रो १ बुधो २ बृहस्पतिः ३ अङ्गारकः ४ शनैश्चरः ५ केतुः ६ ॥ सू० ७ ॥

उसीके ६ भेदोंका कथन करते हैं—

'छज्जीवनिकाया पण्णत्ता' इत्यादि सूत्र ६ ॥

टीकार्थ–जीव निकाय ६ प्रकारके कहे गयेहैं जैसे–पृथिवीकायिक १ यावत् त्रसकायिक ६ इस सूत्रकी व्याख्या स्पष्ट है। सूत्रकारने जो निकायोंमें षट् विधताकी प्रतिज्ञा करके जो उनके प्रदर्शनमें छ प्रकारके निकायी यहां प्रकट किये हैं सो समुदाय समुदायीमें अभेदका आश्रय करके उन्हें किया है, क्योंकि समुदायसे समुदायी भिन्न नहीं होता है ॥सू६॥

कालगत हुए जीवही तारकाग्रह आदिकोंमें उत्पन्न होते हैं। अब सूत्रकार उनकी षट् विधताका कथन करते हैं—

ભેદોનું કથન કરવામાં આવે છે.

ટીકાર્થ–" છજ્જીવનિકાયા પણ્ણત્તા " ઇત્યાદિ—

જીવનિકાય ૬ પ્રકારના કહ્યા છે પૃથ્વીકાયથી લઇને ત્રસકાયિક પર્યન્તના ૬ પ્રકારો અહીં ગ્રહણ કરવા જોઇએ. આ સૂત્રનો અર્થ સરળ છે.

સૂત્રકારે નિકાયોમાં છ પ્રકારતા હોવાનું કથન કરીને, તેમના છ પ્રકાર પ્રકટ કરવાને બદલે નિકાયોના છ પ્રકારનું જે પ્રદર્શન કર્યું છે તે નિકાય (સમુદાય) અને નિકાયી (સમુદાયી) માં અભેદનો આશ્રય લઇને કરવામાં આવ્યું છે, કારણ કે સમુદાયથી સમુદાયી ભિન્ન હોતો નથી. ॥ સૂ. ૬ ॥

કાળધર્મ પામેલા જીવો જ તારા રૂપ ગ્રહો આદિકોમાં ઉત્પન્ન થાય છે, તેથી હવે સૂત્રકાર તેમના છ પ્રકારોનું કથન કરે છે.

टीका—' छ तारग्गहा ' इत्यादि—

व्याख्या सुगमा। नवरम्-ताराग्रहाः=तारारूपाग्रहाः। ग्रहा लोके नव प्रसिद्धाः। परन्तु चन्द्रादित्यराहूनामतारकारत्वात् षडेव ताराग्रहा बोध्या इति। अङ्गारको मङ्गलः ॥ सू० ७ ॥

पूर्वं ताराग्रहा उक्ताः, ते च संसार एव सन्तीति संसारिजीवानाह—

मूलम्—छव्विहा संसारसमापन्नगा जीवा पण्णत्ता, तं जहा–पुढविकाइया जाव तसकाइया। पुढविकाइया छगइया छआगइया पण्णत्ता, तं जहा–पुढविकाइए पुढविकाइएसु उववज्जमाणे पुढविकाइएहिंतो वा जाव तसकाइएहिंतो वा उववज्जेज्जा, सो चेव णं पुढविकाइए पुढविकाइयत्तं विप्पजहमाणे पुढविकाइयत्ताए वा जाव तसकाइयत्ताए वा गच्छेज्जा। आउकाइयावि छगइया छ आगइया। एवं चेव जाव तसकाइया ॥ सू० ८ ॥

छाया–षड्विधाः संसारसमापन्नका जीवाः प्रज्ञप्ताः तद्यथा–पृथिवीकायिका यावत् त्रसकायिकाः। पृथिवीकायिकाः षड्गतिकाः षडागतिकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–

'छ तारग्गहा पण्णत्ता' इत्यादि सू० ७ ॥

तारा रूप ग्रह ६ प्रकारके कहे गये हैं जैसे–शुक्र १ बुध २ बृहस्पति ३ अंगारक (मंगल) ४ शनैश्चर ५ एवं केतु ६।

व्याख्या इसकी स्पष्ट है, लोकमें ग्रह नौ प्रसिद्ध हैं, परन्तु चन्द्र आदित्य राहु ये तारका रूप नहीं है, इसलिये ६ ही ताराग्रह हैं। अङ्गारक नाम मंगलका है ॥ सू० ७ ॥

"छ तारग्गहा पण्णत्ता" ઈત્યાદિ—

તારા રૂપ જે ગ્રહો છે તેમના નીચે પ્રમાણે ૬ પ્રકાર કહ્યા છે—(૧) શુક્ર, (૨) બુધ, (૩) બૃહસ્પતિ (ગુરુ), (૪) અંગારક (મંગળ) (૫) શનૈશ્ચર (શનિ) અને (૬) કેતુ.

આ સૂત્રની વ્યાખ્યા સરળ છે લોકમાં નવ ગ્રહ પ્રસિદ્ધ છે, પરન્તુ ચન્દ્ર, સૂર્ય અને રાહુ, આ ત્રણ ગ્રહો તારા રૂપ નહીં હોવાથી અહીં તારા રૂપ ગ્રહો છ જ કહ્યા છે. મંગળના ગ્રહને અંગારક કહે છે ॥ સૂ. ૭ ॥

पृथिवीकायिकाः पृथिवीकायिकेषु उत्पद्यमानः पृथिवीकायिकेभ्यो वा यावत् त्रस-कायिकेभ्यो वा उत्पद्येत । स एव खलु पृथिवीकायिकः पृथिवीकायिकत्वं विप्रजहत् पृथिवीकायिकतया वा यावत् त्रसकायिकतया वा गच्छेत् । अप्कायिका अपि षड्गतिकाः षडागतिकाः । एवमेव यावत् त्रसकायिकाः ॥ सू० ८ ॥

टीका—' छव्विहा ' इत्यादि—

संसारसमापन्नकाः=संसरणं=परिभ्रमणं संसारः=नारकतिर्यग्नरामरभवेषु परिभ्रमणम्, तं सम्यक्=एकीभावेन आपन्नाः=प्राप्ताः संसारसमापन्नाः, त एव संसारसमापन्नकाः भववर्तिनो जीवा इत्यर्थः । ते च षड्विधाः प्रज्ञप्ताः=कथिताः । षड्विधत्वमेवाह—तद्यथा—पृथिवीकायिकाः=पृथिवीकायिकजीवाः । यावत् त्रसकायिकाः । यावत्प-

---

ये ऊपरके सूत्रमें कहे गये ताराग्रह संसारमेंही हैं, इसलिये अब सूत्रकार संसारी जीवोंका कथन करते हैं—

'छव्विहा संसार समापन्नगा' इत्यादि सू० ८ ॥

टीकार्थ—संसार समापन्नक जीव संसारी जीव छ प्रकारके कहे गयेहैं, जैसे—पृथिवीकायिक १ यावत् त्रसकायिक ६ इनमें जो पृथिवीकायिक जीव हैं वे षट् गतिक और षट् आगतिक हैं—जैसे—पृथिवीकायिकोंमें उत्पन्न हुआ पृथिवीकायिक जीव पृथिवीकायिकोंसे आकर पृथिवीकायिक रूपसे उत्पन्न हो सकता है, यावत् त्रसकायिकोंमेंसे आकर पृथिवीकायिक रूपसे उत्पन्न हो सकता है, वही पृथिवीकायिक जीव पृथिवीकायिक रूप अपनी अवस्थारूप पर्यायको छोडकर पुनः पृथिवीकायिक रूपसे उत्पन्न हो सकता है, यावत् त्रसकायिक रूपसे उत्पन्न हो सकता है,

---

આગલા સૂત્રમાં જે તારા રૂપ ગ્રહોની વાત કરવામાં આવી છે, તેઓ સંસારમાં જ છે. તેથી હવે સૂત્રકાર સંસારી જીવોનું કથન કરે છે.

ટીકાર્થ–" छव्विहा संसारसमापन्नगा " ઇત્યાદિ—

સંસાર સમાપન્નક જીવો—સંસારી જીવો ૬ પ્રકારનાં કહ્યાં છે. પૃથ્વી-કાયિકથી લઇને ત્રસકાયિક પર્યન્તના ૬ પ્રકારો અહીં ગ્રહણ કરવા જોઇએ. જે પૃથ્વીકાયિક જીવો છે તેઓ ષટ્ ગતિક (છ ગતિમાં ગમન કરનારા) અને ષટ્ આગતિક (છ ગતિમાંથી પૃથ્વીકાયિકોમાં ઉત્પન્ન થનારા) હોય છે જેમકે પૃથ્વીકાયિકોમાં ઉત્પન્ન થયેલો જીવ પૃથ્વીકાયિકોમાંથી આવીને પૃથ્વીકાયિક રૂપે ઉત્પન્ન થઈ શકે છે, અને અપ્કાયિક, વાયુકાયિક, તેજસ્કાયિક, વનસ્પતિ-કાયિક અને ત્રસકાયિકમાંથી આવીને પણ પૃથ્વીકાયિક રૂપે ઉત્પન્ન થઈ શકે છે. એ જ પૃથ્વીકાયિક જીવ પોતાની પૃથ્વીકાયિક અવસ્થા રૂપ પર્યાયને છોડીને ફરી પૃથ્વીકાયિકથી લઇને ત્રસકાયિક પર્યન્તના છએ પ્રકારના જીવોમાં ઉત્પન્ન

देन-अप्कायिकतेजस्कायिकवायुकायिकवनस्पतिकायिकाः संग्राह्याः । एतेषु प्रत्येकजीवः षड्गतिकः षडागतिकश्च भवति । तदेव मदर्शयति-' पुढविकाइया छग्गइया ' इत्यादि-पृथिवीकायिका जीवाः षड्गतिकाः-षट्सु=पृथिवीकायिकादिषु षड्जीवनिकायेषु गतिः=गमनं येषां ते तथा=षट्कायेषु गमनशीलः । षडागतिकाः-षड्भ्यो कायिकेभ्य आगतिः=आगमनं येषां ते तथाभूताश्च प्रज्ञप्ताः । तत्र पृथिवीकायिकानां षडागतिकत्वमाह-तद्यथा-पृथिवीकायिकेषु=पृथिवीकायिकानां मध्ये पृथिवीकायिक उत्पद्यमानः=पृथिवीकायिकत्वेन जायमानो जीवः पृथिवीकायिकेभ्यो वा यावत् त्रसकायिकेभ्यो वा=पृथिवीकायिकादि यावत्

इसी तरहसे अप्कायिक जीव भी षट् गतिक और षट् आगतिक कहे गये जानना चाहिये इसी तरहसे यावत् त्रसकायिक भी जानना चाहिये

नारक तिर्यग्, नर अमर इन भवोंमें जो जीवका परिभ्रमण है, वह संसार है; इस संसारको जो एकी भावरूपसे प्राप्त हैं वे संसार समापन्नक हैं, अर्थात् भववर्त्ती जो जीव हैं वे संसार समापन्नक हैं, ये पृथिवीकायिक जीवसे लेकर त्रसकायिक जीव तक छह प्रकारके कहे गये हैं । यहां यावत् शब्दसे " अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक " इनका ग्रहण हुआ है, इनमें प्रत्येक जीव छह गतिवाला और छह आगतिवाला होता है, यही बात सूत्रकारने " पुढविकाइया छग्गइया " इत्यादि सूत्रपाठसे प्रदर्शित की है, इसके द्वारा सूत्रकारने यह समझाया है, कि पृथिवीकायिक जीव षट् जीवनिकायोंमें गमनशील होता है, अर्थात् वह पृथिवीकायिक पर्यायको छोड-

---

થઈ શકે છે. એ જ પ્રમાણે અપ્કાયિક જીવને પણ છ ગતિક અને છ આગતિક સમજવા. એવું જ કથન ત્રસકાયિક પર્યન્તના જીવો વિષે પણ સમજવું.

નારક, તિર્યંચ, મનુષ્ય અને દેવ, આ જીવોનું જે પરિભ્રમણ થાય છે, તેનું નામ જ સંસાર છે. આ સંસાર જેમણે પ્રાપ્ત કર્યો છે એવાં જીવોને સંસાર સમાપન્નક કહે છે. એટલે કે આ ચાર ગતિમાંની કોઈ પણ ગતિમાં રહેલા જીવને અથવા પૃથ્વીકાયિક, અપ્કાયિક, તેજસ્કાયિક, વાયુકાયિક, વનસ્પતિકાયિક અને ત્રસકાયિક આ છ પ્રકારના જીવોને સંસાર સમાપન્નક કહે છે.

પ્રત્યેક જીવ છ ગતિવાળો અને છ અગતિવાળો હોય છે એ જ વાત સૂત્રકારે " पुढविकाइया छग्गइया " ઈત્યાદિ સૂત્રપાઠ દ્વારા પ્રદર્શિત કરી છે. તેના દ્વારા સૂત્રકારે એ સમજાવ્યું છે કે પૃથ્વિકાયિક જીવ છ નિકાયોમાં ગમનશીલ હોય છે. એટલે કે પૃથ્વિકાયિક પર્યાયને છોડીને તે ફરી પૃથ્વી-

त्रसकायिकान्तानां मध्ये कुतश्चित् आगत्य उत्पद्येत=जायेत। इत्थं षडागतिकत्वमुक्त्वा सम्प्रति षड्गतिकत्वमाह-'से चेव णं' इत्यादिना। स एव खलु पृथिवीकायिकः यः पृथिवीकायिकादेः कुतश्चित् समागत्य पृथिवीकायिकत्वेन समुत्पन्नः स एव पृथिवीकायिको जीवः पृथिवीकायिकत्वं विप्रजहत्=परित्यजन् पृथिवीकायिकतया वा यावत् त्रसकायिकतया वा गच्छेदिति। एवमेव अप्कायिकादि त्रसकायिकान्तानापि षडागतिकत्व षड्गतिकत्वं च बोध्यमिति ॥सू०८॥

कर पुनः पृथिवीकायिकमें उत्पन्न हो सकता है, अप्कायिकमें उत्पन्न हो सकता है, तेजस्कायिकमें उत्पन्न हो सकता है, वायुकायिकमें उत्पन्न हो सकता है, वनस्पतिकायिक में उत्पन्न हो सकता है और त्रसकायिकमें भी उत्पन्न हो सकता है, इसी तरहसे वह पृथिवीकायिकसे आकर पृथिवीकायिकमें उत्पन्न हो सकता है, अप्कायिकसे आकर पृथिवीकायिकमें उत्पन्न हो सकता है, यावत् त्रसकायिकसे आकर पृथिवीकायिकमें उत्पन्न हो सकता है, इस प्रकारसे छह गतिमें जाने का और छह गति से आने का कथन करके अब सूत्रकार अप्कायिक आदिकों में भी षट् गति में जानेका और षट् गतिसे आनेका कथन इसी प्रकारसे कर लेना चाहिये ऐसा समझते हैं, इसमें जैसा कथन पृथिवीकायिकमें किया गया है, वैसाही कथन यहां पर भी कर लेना चाहिये और यह सब कथन त्रसकायिक तक करना चाहिये ॥ सू०८ ॥

કાયિકમાં પણ ઉત્પન્ન થઈ જાય છે, અથવા અપૂકાયિકમાં અથવા તેજસ્કાયિકમાં અથવા વાયુકાયિકમાં અથવા વનસ્પતિકાયિકમાં અથવા ત્રસકાયિકમાં ઉત્પન્ન થઈ જાય છે. એ જ રીતે જીવ પૃથ્વિકાયિકમાંથી આવીને ફરી પૃથ્વીકાયિકમાં ઉત્પન્ન થઈ શકે છે, અપૂકાયિકમાંથી આવીને પણ પૃથ્વીકાયિકમાં ઉત્પન્ન થઈ શકે છે, અને ત્રસકાયિક પર્યન્તની કોઈ પણ પર્યાયમાંથી આવીને પૃથ્વીકાયિકમાં ઉત્પન્ન થઈ શકે છે. આ પ્રકારે છ ગતિમાં જવાનું અને છ ગતિમાથી આવવાનું કથન કરીને હવે સૂત્રકાર અપૂકાયિક આદિમાંથી છ ગતિમાં જવાનું અને છ ગતિમાંથી અપૂકાયિક આદિકોમાં આવવાનું કથન પણ એ જ પ્રમાણે કરી લેવાનું સૂચન કરે છે. એટલે કે અપૂકાયિકથી લઈને ત્રસકાયિક પર્યન્તના જીવો પણ પોતપોતાનું તે ગતિનું આયુષ્ય પૂરૂ કરીને પૃથ્વીકાયિકથી લઈને ત્રસકાયિક પર્યન્તના છએ પ્રકારના જીવોમાં ઉત્પન્ન થઈ શકે છે. અને અપૂકાયિકમાં પૃથ્વીકાયિક આદિ છએ પ્રકારના જીવોની આગતિ થઈ શકે છે એ જ પ્રમાણે ત્રસકાયિક પર્યન્તના જીવોની ગતિ અને આગતિ

सम्प्रति प्रकारत्रयेण सर्वजीवानां षड्विधत्वमाह—

मूलम्—छव्विहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा—आभिणिबोहियणाणी जाव केवलणाणी अन्नाणी । अहवा छव्विहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा—एगिंदिया जाव पंचिंदिया अणिंदिया । अहवा छव्विहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा—ओरालियसरीरी, १ वेउव्वियसरीरी २, आहारगसरीरी, ३, तेयगसरीरी, ४ कम्मगसरीरी, ५ असरीरी ६ ॥ सू० ९ ॥

छाया—षड्विधाः सर्वजीवाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—आभिनिबोधिकज्ञानी यावत् केवलज्ञानी अज्ञानी । अथवा षड्विधाः सर्वजीवाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—एकेन्द्रियाः यावत् पञ्चेन्द्रिया अनिन्द्रियाः । अथवा षडविधाः सर्वजीवाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—औदारिकशरीरी १ वैक्रियशरीरी २ आहारकशरीरी ३, तैजसशरीरी, ४ कर्मजशरीरी, ५ अशरीरी ६ ॥ सू० ९ ॥

टीका—' छव्विहा ' इत्यादि—

व्याख्या स्पष्टा । नवरम्—अत्र प्रथमे प्रकारे षष्ठे भेदे ये अज्ञानिनः=

अब सूत्रकार तीनप्रकार समस्त जीवोंमें छह प्रकारका कथन करते हैं छव्विहा सव्वजीवा पण्णत्ता इत्यादि सू० ९॥

समस्त जीव छह प्रकारके कहे गये हैं—जैसे—आभिनिबोधिकज्ञानी यावत् केवलज्ञानी और अज्ञानी अथवा—इस प्रकारसे भी समस्त जीव छह प्रकारके कहे गये हैं—जैसे—औदारिक शरीरी १ वैक्रिय शरीरी २ आहारक शरीरी ३ तैजस शरीरी ४ कार्मण शरीरी ५ और अशरीरी ६

विषे पण समजवुं. ॥ सू. ८ ॥

હવે સૂત્રકાર ત્રણ રીતે સમસ્ત જીવોના છ પ્રકારોનું કથન કરે છે—

" છવ્વિહા સવ્વજીવા પણ્ણત્તા " ઇત્યાદિ—

સમસ્ત સંસારી જીવોના છ પ્રકારો પડે છે. જેમકે આભિનિબોધિક જ્ઞાનીથી કેવળજ્ઞાની પર્યન્તના પાંચ પ્રકારો અને (૬) અજ્ઞાની. અથવા સમસ્ત જીવોના આ પ્રમાણે ૬ પ્રકાર પણ પડે છે—(૧) ઔદારિક શરીરી, (૨) વૈક્રિય શરીરી, (૩) આહારક શરીરી, (૪) તૈજસ શરીરી, ૫ કાર્મણ શરીરી અને (૬) અશરીરી

અહીં પહેલી રીતે જે ૬ ભેદો પાડવામાં આવ્યા છે, તેમાના જે અજ્ઞાની

मिथ्यात्वोपहतज्ञानास्ते देशाज्ञानि सर्वाज्ञानिभावाज्ञानिभेदात् त्रिविधा बोध्याः। द्वितीये प्रकारे षष्ठे भेदे ये अनिन्द्रियास्ते अपर्याप्ताः, उपयोगतः केवलिनः, सिद्धाश्चेति त्रिविधा बोध्याः। तृतीये प्रकारे तैजसशरीरी कर्मजशरीरी च प्रोक्तौ, तत्रेदं बोध्यम्-ननु यत्र तैजसशरीरं तत्र कार्मणशरीरमपि भवति, उभयोर्नियमेन साहचर्यात्। एवं च तैजसशरीरी कार्मणशरीरी वा एकएव कश्चित् शरीरी निर्देष्टुं शक्यते, न तु द्वयमिति चेत आह, यद्यपि तैजसकार्मणशरीरयोरेकजीवाश्रितत्वेन तद्द्वयशरीरान्यतरशरीराश्रितत्वेन एकएव शरीरी निर्देश्यस्तथापि शरीरभेदात् शरीरी अपि भेदेन निर्दिष्ट इति। अशरीरीत्यत्र सिद्ध इति ॥ सू० ९ ॥

यहां प्रथम प्रकारके ६ भेदमें जो अज्ञानी मिथ्यात्वसे उपहत ज्ञानवाले कहे गये हैं. वे देशाज्ञानी, सर्वाज्ञानी और भावज्ञानीके भेदसे तीन प्रकारके होते हैं, द्वितीय प्रकारमें जो छठा भेद है, वे अपर्याप्त उपयोगसे केवली और सिद्धके भेदसे ३ प्रकारके होते हैं, तृतीय प्रकारमें जो तैजस शरीरी एवं कर्मण शरीरी कहे गये हैं, सो इस विषयमें कोई ऐसी आशंका कर सकता है, कि जहां तैजस शरीर होता है, वहां कार्मण शरीर भी होता है, क्योंकि इन दोनोंका नियमसे साहचर्य सम्बन्ध है, इस तरहसे या तो तैजस शरीरीही कहना था या कार्मण शरीरीही कहना था, एकही कोई कहना था, दोनोंको नहीं कहना था, सो इसका उत्तर ऐसा है, कि बात तो ठीक है, पर यहां जो इस प्रकारसे निर्देश हुआ है, वह इस बातको प्रकट करनेके लिये निर्दिष्ट

મિથ્યાત્વથી ઉપહત જ્ઞાનવાળા જીવો કહ્યા છે, તેમના દેશજ્ઞાની, સર્વાજ્ઞાની અને ભાવાજ્ઞાની નામના ત્રણ ભેદ છે. બીજી રીતે જે છ ભેદો બતાવ્યા છે, તેમાંના છઠ્ઠા ભેદવાળા જીવોના નીચે પ્રમાણે ત્રણ પ્રકાર પણ પડે છે—(૧) અપર્યાપ્ત, (૨) ઉપયોગની અપેક્ષાએ કેવલી અને (૩) સિદ્ધ.

બીજી રીતે સમસ્ત જીવોના જે છ ભેદો બતાવવામાં આવ્યા છે, તેમાં તૈજસ શરીરી અને કાર્મણ શરીરી નામના જે બે અલગ ભેદો પાડવામાં આવ્યા છે, તેથી કોઇને એવી આશંકા થાય કે 'જ્યાં તૈજસ શરીરનો સદ્ભાવ જ હોય છે, ત્યાં કાર્મણ શરીરનો પણ સદ્ભાવ જ હોય છે. કારણ કે તે બન્નેનો નિયમથી જ સાહચર્ય સંબંધ છે. આ પ્રકારની પરિસ્થિતિમાં કાં તો તૈજસ શરીરી નામનો અથવા તો કાર્મણ શરીરી નામનો એક જ પ્રકાર કહેવો જોઇતો હતો. બન્નેના અલગ અલગ પ્રકાર બતાવવાની આવશ્યકતા ન હતી. આ શંકાનું સમાધાન નીચે પ્રમાણે કરી શકાય—અહીં જે આ પ્રકારે નિર્દેશ થયો છે તે એ વાતને પ્રકટ

एकेन्द्रियभेदेनोक्तस्य वनस्पतेर्बादरभेदस्य षड्विधत्वमाह—

मूलम्—छव्विहा तणवणस्सइकाइया पण्णत्ता, तं जहा—अग्गबीया १, मूलबीया २, पोरबीया ३, खंधबीया ४, बीयरुहा ५, संमुच्छिमा ६ ॥ सू० १० ॥

छाया—षड्विधाः तृणवनस्पतिकायिकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-अग्रबीजाः १, मूलबीजाः २, पर्वबीजाः ३, स्कन्धबीजाः ४, बीजरुहाः ५, सम्मूर्च्छिमाः ६ ॥ सू० १० ॥

टीका—'छव्विहा' इत्यादि—

तृणवनस्पतिकायिकाः-तृणरूपाः=बादररूपा ये वनस्पतिकायिका जीवाः सन्ति ते अग्रबीजादिभेदैः षड्विधा बोध्याः। तत्र-अग्रबीजाः-करण्टकादयः १। मूलबीजाः-उत्पलकन्दादयः २। पर्वबीजाः-इक्षुवंशादयः ३। स्कन्धबीजाः=शल्ल-

---

हुआ है कि शरीरके भेदसे शरीरीमें भेद होता है। अशरीरीसे यहां सिद्ध गृहीत हुए हैं ॥ सू० ९ ॥

एकेन्द्रियके भेदसे उक्त जो वनस्पति हैं वे सूक्ष्म और बादरके भेदसे दो प्रकारके होते हैं, इनमें जो बादर वनस्पति हैं, वे छह प्रकारके हैं, यही बात अब सूत्रकार प्रकट करते हैं—

'छव्विहा तणवणस्सइकाइया पण्णत्ता' इत्यादि सू० १० ॥

टीकार्थ-तृणरूप-बादर रूप जो वनस्पतिकायिक हैं, वे अग्रबीजादिके भेदसे ६ प्रकारके कहे गये हैं। इनमें जो करण्टक आदि हैं, वे अग्र-बीज वनस्पतिकायिक हैं, उत्पल कन्दादिक मूलबीज वनस्पतिकायिक हैं। इक्षु वांश आदि पर्वबीज वनस्पतिकायिक हैं, शल्लकी आदिक

કરવા માટે થયો છે કે શરીરના ભેદને કારણે શરીરમાં પણ ભેદ સંભવી શકે છે આ સૂત્રમાં સિદ્ધ જીવોને અશરીરી રૂપે ગ્રહણ કરવામાં આવ્યા છે. ॥ સૂ. ૯ ॥

એકેન્દ્રિયના ભેદ રૂપ જે વનસ્પતિકાયિક જીવો છે, તેમના સૂક્ષ્મ અને બાદર નામના બે પ્રકારો છે. તેમાંથી બાદર વનસ્પતિના ૬ ભેદો પડે છે. એ જ વાત હવે સૂત્રકાર પ્રકટ કરે છે.

"છવ્વિહા તણવણસ્સઇકાઇયા પણ્ણત્તા" ઇત્યાદિ—

તૃણરૂપ-બાદર રૂપ જે વનસ્પતિકાયિક છે તેમના નીચે પ્રમાણે છ ભેદ કહ્યા છે—(૧) અગ્રબીજ-કરંટક આદિ અગ્રબીજ વનસ્પતિકાયિક છે. (૨) મૂલબીજ-ઉત્પલ કન્દાદિક મૂલબીજ વનસ્પતિકાયિક છે. (૩) પર્વબીજ-શેરડી વાંસ આદિ પર્વબીજ વનસ્પતિકાયિક છે. (૪) સ્કન્ધબીજ-શલ્લકી આદિ સ્કન્ધ બીજ વનસ્પતિકાયિક છે. (૫) બીજરૂહ-વડ આદિ બીજરૂહ વનસ્પતિકાયિક છે.

कयादयः ४। बीजरुहाः–वटादयः ५। सम्मूर्च्छिमाः दग्धभूमौ असत्यपि बीजे ये प्ररोहन्ति ते ६ ॥ सू० १० ॥

अनन्तरसूत्रेषु जीवाः प्ररूपिताः। सम्प्रति तेषामेव जीवानां ये पर्यायविशेषा दुर्लभास्तानाह––

मूलम्–छट्ठाणाइं सव्वजीवाणं णो सुलभाइं भवंति, तं जहा-- माणुस्सए भवे १, आयरिए खित्ते जम्मं २, सुकुले पच्चायाई ३, केवलिपन्नत्तस्स धम्मस्स सवणया ४, सुयस्स वा सद्दहणया ५, सद्दहियस्स वा पत्तियस्स वा रोइयस्स वा सम्मं काएणं फासणया ६ ॥ सू० ११ ॥

छाया––षट् स्थानानि सर्वजीवानां नो सुलभानि भवन्ति, तद्यथा–मानुष्यको भवः १, आर्ये क्षेत्रे जन्म २, सुकुले प्रत्यायातिः ३, केवलिप्रज्ञसस्य धर्मस्य श्रवणता ४, श्रुतस्य वा श्रद्धानता ५, श्रद्धितस्य वा प्रतीतस्य वा रोचितस्य वा सम्यक् कायेन स्पर्शनता ६ ॥ सू० ११ ॥

स्कन्दबीज वनस्पतिकायिक हैं। वट आदि बीजरुह वनस्पतिकायिक हैं और जो जलीहुई भूमिमें बीजके अभावमें उत्पन्न होजाते हैं वे सम्मूर्च्छिम वनस्पतिकायिक हैं

अब सूत्रकार इस बातको प्रकट करते हैं, कि जीवोंको ये २ पर्याय विशेष दुर्लभ हैं–'छट्ठाणाइं सव्वजीवाणं' इत्यादि सू० ११ ॥

समस्त जीवोंके ये छह पर्यायें रूप स्थान सुलभ नहीं हैं–वे इस प्रकारसे हैं मनुष्यभव १ आर्यक्षेत्रमें जन्म २ सुकुलमें जन्म ३ केवलि प्रज्ञप्त धर्मकी श्रवणता ४ श्रुतका श्रद्धान ५ एव श्रद्धाके विषयभूत अथवा प्रतीतिके विषयभूत अथवा रुचिके विषयभूत पदार्थकी अच्छी

---

(१) सम्मूर्च्छिम–દગ્ધભૂમિમાં બીજના અભાવમાં પણ જે ઉત્પન્ન થઈ જાય છે તેને સમ્મૂર્ચ્છિમ વનસ્પતિકાયિક કહે છે ॥ સૂ. ૧૦ ॥

હવે સૂત્રકાર એ વાત પ્રકટ કરે છે કે જીવને કઈ કઈ પર્યાયવિશેષોની પ્રાપ્તિ દુર્લભ છે "छट्ठाणाइ सव्वजीवाणं" ઇત્યાદિ—

સમસ્ત જીવોને માટે આ છ પર્યાયો રૂપ સ્થાનની પ્રાપ્તિ દુર્લભ ગણાય છે—(૧) મનુષ્ય ભવ, (૨) સુકુલમાં જન્મ, (૩) આર્યક્ષેત્રમાં જન્મ, (૪) કેવલીપ્રજ્ઞપ્ત ધર્મનું શ્રવણ, (૫) શ્રુત પ્રત્યે શ્રદ્ધા, (૬) શ્રદ્ધાના વિષયભૂત અથવા પ્રતીતિના વિષયભૂત અથવા રુચિના વિષયભૂત પદાર્થની કાયા વડે

टीका--' छट्ठाणाइं ' इत्यादि--

षट् स्थानानि सर्वजीवानां सुलभानि नो भवन्ति कानि तानि स्थानानि ? इत्याह-तद्यथा-मानुष्यको=मनुष्यसम्बन्धी भवो-जन्म न सुलभो भवति। तदुक्तम्-

" [1]ननु पुनरिदमतिदुर्लभमगाधसंसारजलधिविभ्रष्टम् ।
मानुष्यं खद्योतकतडिल्लताविलसितप्रतिमम् " ॥ १ ॥ इति ।

इति प्रथमं स्थानम् ।

तथा-आर्ये क्षेत्रे=अर्द्धषड्विंशतिजनपदरूपे जन्म=उत्पत्तिः सुलभं न भवति। तदुक्तम्--

" सत्यपि च मानुषत्वे, दुर्लभतरमार्यभूमिसंभवनम् ।
यस्मिन् धर्माचरणप्रवणत्वं प्राप्नुयात् प्राणी " ॥१॥ इति ।

इति द्वितीयं स्थानम् ।

तरहसे कायसे स्पर्शनता ५ मनुष्यभव सुलभ नहीं होता है, यह बात इस प्रकारसे प्रकट की गई है-" ननु पुनरिदमति दुर्लभम् " इत्यादि।

जिस प्रकारसे अगाध संसार समुद्रमें पतित हुए रत्नका पुनः मिलना अति दुर्लभ है, इसी प्रकारसे प्राप्त किये गये इस मनुष्य जन्मका नष्ट हो जाने पर पुनः मिलना भी बडा दुर्लभ है, यह मनुष्यजन्म खद्योत और विद्युत्‌की चमकके जैसा देखते २ नष्ट हो जाता है, आर्य-क्षेत्रमें जन्म मिलना सुलभ नहीं है, सो इस विषयमें ऐसा समझाया गया है-" सत्यपि च मानुषत्वे " इत्यादि ।

मनुष्य जन्मके मिल जाने पर भी आर्य भूमिमें जन्म धारण करना इस जीवको महादुर्लभ है, क्योंकि इस जीवको धर्माचरण करनेमें

સારી રીતે સ્પર્શના. મનુષ્યભવની પ્રાપ્તિ સુલભ નથી, એ વાતનું નીચેની ગાથા દ્વારા પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યું છે: " ननु पुनरिदमतिदुर्लभम् " ઇત્યાદિ

જેમ અગાધ સમુદ્રમાં પડી ગયેલા રત્નની ફરીથી પ્રાપ્તિ થવી દુર્લભ ગણાય છે, એ જ પ્રમાણે પ્રાપ્ત થયેલા આ મનુષ્ય જન્મને વ્યર્થ ગુમાવી બેસવાથી ફરી તેની પ્રાપ્તિ થવી ઘણી જ દુર્લભ ગણાય છે. આગિયા અને વિજળીની ચમક જેમ જોત જોતામાં નષ્ટ થઈ જાય છે, તેમ મનુષ્ય જન્મ પણ જોતજોતામાં નષ્ટ થઈ જાય છે.

આર્યક્ષેત્રમાં જન્મ થવો, તે પણ દુર્લભ છે. આ વાત નીચેના સૂત્ર દ્વારા પુષ્ટ કરવામાં આવી છે " सत्यपि च मानुषत्वे " ઇત્યાદિ—

કદાચ મનુષ્ય જન્મ મળી જાય, તો પણ આર્યભૂમિમાં જન્મ ધારણ કરવાનું તો આ જીવને માટે ઘણું જ દુર્લભ ગણાય છે, કારણ કે ધર્માચરણ

---

(१) ननु=निश्चये ।

तथा-सुकुले=ऐक्ष्वाकादौ कुले प्रत्यायातिः=जन्म सुलभा न भवति। उक्तंच-

" आर्यक्षेत्रोत्पत्तौ, सत्यामपि सत्कुलं न सुलभं स्यात् ।
सच्चरणगुणमणीनां, पात्रं प्राणी भवति यत्र ॥१॥ " इति ।

इति तृतीयं स्थानम् ।

तथा--केवलिप्रज्ञप्तस्य=तीर्थंकरप्ररूपितस्य धर्मस्य श्रुतचारित्रलक्षणस्य श्रवणता-श्रवणं न सुलभा भवति । तदुक्तम्--

" सुलहा सुरलोगसिरी, रयणायरमेहला मही सुलहा ।
निव्वुइसुहजणियरुई, जिणवयणसुईजए दुलहा ॥१॥ "

छाया--सुलभा सुरलोकश्रीः, रत्नाकरमेखला मही सुलभा ।
निर्वृति सुखजनितरुचि जिनवचनश्रुतिर्जगति दुर्लभा ॥१॥ इति।

इति चतुर्थं स्थानम् ।

प्रवीणता इस आर्य क्षेत्रमेंही प्राप्त होती है, आर्यक्षेत्रमें २५॥ क्षेत्रही कहे गये हैं। ऐक्ष्वाकु आदि कुलमें जन्म लेना सुलभ नहीं है, सो इसके लिये ऐसा कहा गया है-" आर्यक्षेत्रोत्पत्तौ " इत्यादि ।

जीवको मनुष्यभवकी प्राप्ति हो जाने पर और आर्य क्षेत्रमें जन्ममिल जाने पर भी ऐक्ष्वाकु आदि सत्कुलमें (उत्तम) जन्म मिलना सुलभ नहीं है-क्योंकि सम्यक् चारित्र रूपी गुण मणियोंका पात्र यह जीव सत्कुलमेंही बनताहै, केवलि प्रज्ञप्त-तीर्थंकर कथित श्रुतचरित्र रूप धर्मका सुनना महादुर्लभ है-सो कहा है-

" सुलहा सुरलोगसिरी " इत्यादि ।

देवलोककी लक्ष्मीका मिलना सुलभ है, जिसका मध्यभाग रत्नोंकी खनिसे भरा पडा हो ऐसी भूमिका मिल जाना भी सुलभ है, परन्तु

કરવાની પ્રવીણતાની પ્રાપ્તિ તો આર્યક્ષેત્રમાં જ થાય છે. એવા આર્યક્ષેત્રો ૨૫॥ કહ્યાં છે. ઐક્ષ્વાકુ આદિ કુળમાં જન્મ થવો, તે પણ સુલભ નથી. કહ્યું પણ છે કે " આર્યક્ષેત્રોત્પત્તૌ " ઇત્યાદિ—

જીવને કદાચ મનુષ્ય ભવ પણ મળી જાય, આર્યક્ષેત્ર પણ મળી જાય, છતાં પણ ઐક્ષ્વાકુ આદિ સત્કુળમાં જન્મ થવો સુલભ નથી. સત્કુળમાં જન્મેલો જીવ જ સમ્યક્ ચારિત્ર રૂપ ગુણમણિઓને પાત્ર બને છે.

કેવલી પ્રજ્ઞપ્ત—તીર્થંકર પ્રરૂપિત શ્રુત ચારિત્ર રૂપ ધર્મનું શ્રવણ તો તેથી પણ વધુ દુર્લભ ગણાય છે કહ્યું પણ છે કે " સુલહા સુર લોગ સિરી " ઇત્યાદિ

દેવલોકની લક્ષ્મીની પ્રાપ્તિ સુલભ ગણાય છે, રત્નોથી ભરપૂર ભૂમિભાગ (ખાણ) ની પ્રાપ્તિ પણ સુલભ ગણાય છે, પરન્તુ જીવને મુક્તિના સુખમાં

तथा--श्रुतस्य श्रद्धानं न सुलभं भवति। अयं भावः-केवलिप्रज्ञप्ते धर्मे श्रुतेऽपि तत्र श्रद्धा दुर्लभा भवतीति। तदुक्तम्--

" आहच्च सवणं लद्धुं, सद्धा परमदुल्लहा।
सोचा नेयाउयं मग्गं, बहवे परिभस्सइ॥ १ ॥"

छाया--कदाचित् श्रवणं लब्ध्वा, श्रद्धा परमदुर्लभा।
श्रुत्वा (अपि) नैयागिकं मार्गं बहवः परिभ्रश्यन्ति॥ १॥ इति।

इति पञ्चमं स्थानम्।

तथा--श्रद्धितस्य=सामान्येन श्रद्धाविषयीकृतस्य, वा=अथवा प्रतीतस्य= उपपत्तिभिः प्रत्ययविषयीकृतस्य, वा=अथवा रोचितस्य=रुचिविषयी कृतस्य श्रुतस्य सम्यक्=याथातथ्येन कायेन=शरीरेण स्पर्शनता-स्पर्शनम् आचरणं सुलभा न भवति, मनोरथमात्रेण अविरतवत् स्पर्शनं तु सुलभमेव।

इस जीवको मुक्तिके सुखमें रुचिको उत्पन्न करनेवाले जिन वचनको सुनना महा दुर्लभ है। श्रुतका श्रद्धान होना अर्थात् जिन वचनके ऊपर जीवकी प्रतीतिका जगना बड़ा ही दुर्लभ है-केवलि प्रज्ञप्त धर्मके सुनने पर भी उस पर श्रद्धा होना महादुर्लभ है। कहा भी है-' आहच्च सवणं लध्धुं " इत्यादि। जिन प्रणीत वचनको सुनकर भी उस पर श्रद्धाका होना जीवके लिये बड़ा कठिन है, क्योंकि जीव न्यायानुकूल मार्गसे भ्रष्ट हो जाते हैं।

तथा जो श्रुत सामान्यसे श्रद्धाका विषय भी बनाया गया हो, अथवा-युक्ति आदिकोंसे जो श्रुतज्ञानका भी विषय बनाया गया हो अथवा रुचिका विषय भी बनाया गया हो परन्तु शरीरसे सम्यक्

રુચિ ઉત્પન્ન કરાવનાર જિનવચનના શ્રવણનો લાભ પ્રાપ્ત થવો અતિ દુર્લભ ગણાય છે કદાચ જીવને કેવલી પ્રજ્ઞપ્ત ધર્મના શ્રવણની પણ તક મળી જાય, પરન્તુ કેવલી ભગવાનનાં વચનો પ્રત્યે શ્રદ્ધા જાગૃત થવી, રુચિ ઉત્પન્ન થવી અને તેની પ્રતીતિ થવી ઘણી દુર્લભ છે. કહ્યું પણ છે કે:

" આહચ્ચ સવણં લદ્ધું " ઇત્યાદિ—જિન પ્રણિત વચનોનું શ્રવણ કરવા છતાં પણ જીવને તે વચનો પ્રત્યે શ્રદ્ધા ઉત્પન્ન થવી ઘણી મુશ્કેલ છે, કારણ કે જીવ ન્યાયાનુકૂલ માર્ગથી ભ્રષ્ટ થઇ જાય છે.

કદાચ એવું પણ બની શકે કે જીવને કેવલી પ્રજ્ઞપ્ત વચનોમાં શ્રદ્ધા ઉત્પન્ન થઈ જાય છે. અથવા યુક્તિ આદિકો દ્વારા તેને જ્ઞાનનો વિષય પણ બનાવવામાં આવે છે, અથવા રુચિનો વિષય પણ બનાવવામાં આવે છે, પરંતુ

उक्तंच—" धम्मं पि हु सद्दहतया, दुल्लहया काएण फासया ।
इयकामगुणेहिं मुच्छिया, समयं गोयम ! मा पमायए ॥१॥ "

छाया--धर्ममपि श्रद्दधत्काः, दुर्लभाः कायेन स्पर्शकाः ।
इति कामगुणेषु मूर्च्छिताः, समयं गौतम ! मा प्रमादीः ॥१॥ इति ।

इति षष्ठं स्थानम् । प्रमादादिषु व्यापृता एव प्राणिनोदुर्लभमनुष्यभवका भवन्ति, नत्वन्ये । यतो मनुष्यभवमाश्रित्य उक्तमपि---

" एयं पुण एवं खलु, अन्नाणपमायदोसओ नेयं ।
जं दीहा कायठिई, भणिया एगिंदियादीणं ॥ १ ॥
एसा य असइ दोसा सेवणओ धम्मवज्जचित्ताणं ।
ता धम्मे जइयव्वं, सम्मं सइ धीरपुरिसेहिं ॥ २॥ "

छाया--एतत् पुनरेवं खलु अज्ञान प्रमाददोषतो ज्ञेयम् ।
यद् दीर्घा कायस्थितिः भणिता एकेन्द्रियादीनाम् ॥ १ ॥

रूपमें उसकी स्पर्शना करना तो इस जीवको सदा दुर्लभ है, अविरत की तरह मनोरथ मात्रसे स्पर्शना तो सुलभ है सोही कहा है-

" धम्मंपि हु सद्दहंतया " इत्यादि ।

हे गौतम ! धर्मकी श्रद्धा करनेवाले जीव ऐसे दुर्लभ है, जो उसके कथनके अनुसार अपनी प्रवृत्तिको बना लेते हैं। क्योंकि यह संसार कामगुणोंमें मूर्च्छित बना हुआ है अतः हे गौतम तुम एक समय भी प्रमादमें पतित मत बनो क्योंकि प्रमादमें पतित हुए जीवही दुर्लभ मनुष्यभववाले बनते हैं। अन्य नहीं क्योंकि मनुष्यभवको आश्रित करके ऐसा कहा गया है-" एयं पुण एवं खलु " इत्यादि ।

શરીર વડે સમ્યક્ રૂપે તેની સ્પર્શના (આચરણ) કરવાનું કાર્ય તો જીવને માટે સૌથી વધારે કઠણ ગણાય છે. અવિરતની જેમ મનોરથ માત્રથી જ સ્પર્શના કાર્યનું કાર્ય તો સુલભ છે. કહ્યું પણ છે " धम्मं पि हु सद्दहंतया " ઇત્યાદિ-

હે ગૌતમ ! ધર્મ પ્રત્યે શ્રદ્ધા ધરાવનારા જીવો દુર્લભ છે. ધર્મ પ્રત્યે શ્રદ્ધા રાખવા છતાં ધર્મ અનુસાર પોતાની પ્રવૃત્તિ કરનારા જીવો તો અતિ દુર્લભ છે, કારણ કે આ સંસાર કામભોગોમાં મૂર્છિત બનેલો છે. માટે હે ગૌતમ ! એક ક્ષણને માટે પણ પ્રમાદ કરવો જોઇએ નહીં. જે જીવ પ્રમાદ કરે છે તેને માટે મનુષ્યભવની પ્રાપ્તિ દુર્લભ બની જાય છે માટે મનુષ્યે પ્રમાદનો ત્યાગ કરવો જોઇએ. મનુષ્યભવને આશ્રિત કરીને એવું કહ્યું છે કે

" एवं पुण एवं खलु " ઇત્યાદિ—

एषा चासकृद् दोषासेवनतो धर्मवर्जचित्तानाम् ।

तस्माद् धर्मे यतितव्यं सम्यक् सदा धीरपुरुषैः ॥२॥ इति ॥सू० ११॥

इन्द्रियार्थसंवरे सति मानुषत्वादिकं सुलभं भवति, तदसंवरे दुर्लभमिति इन्द्रियार्थस्य षड्विधत्वमाह--

मूलम्--छ इंदियत्था पण्णत्ता, तं जहा--सोइंदियत्थे जाव फासिंदियत्थे नो इंदियत्थे ॥ सू० १२ ॥

छाया--षट् इन्द्रियार्थाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा श्रोत्रेन्द्रियार्थो यावत् स्पर्शेन्द्रियार्थो नो इन्द्रियार्थः ॥ सू० १२ ॥

टीका--' छ इंदियत्था ' इत्यादि--

इन्द्रियार्थाः-इन्द्रियाणाम् अर्थाः=विषया षट्=षट् संख्यकाः प्रज्ञप्ताः । तानेवाह-तद्यथा-श्रोत्रेन्द्रियार्थः-श्रोत्रेन्द्रियस्य-अर्थो विषयः शब्दः । यावत्पदात्-

---

एकेन्द्रियादिक जीवोंकी जो यह दीर्घकालकी काय स्थिति प्रकटकी गई है, कही गई है, उसका कारण जीवका वारंवार प्रमादका सेवन करना है, प्रमादका सेवन करनेवाला जीव धर्मसे वर्जित चित्तवाला हो जाता है, इसलिये धीर पुरुषोंका यह कर्त्तव्य है, कि वे धर्ममें सदा प्रयत्नशील रहे ॥ सू० ११ ॥

इन्द्रियोंके अर्थमें यदि इस जीवको संवरकी प्राप्ति हो जाती है, तो मानुषत्व आदिकी प्राप्ति उसे सुलभ हो जाती है, इन्द्रियार्थके असंवरमें नहीं उस अवस्थामें तो वह दुर्लभही बन जाती है, अतः अब सूत्रकार इन्द्रियार्थकी षट्विधताका कथन करते हैं—

એકેન્દ્રિયાદિક જીવોની આ જે દીર્ઘકાળની કાયસ્થિતિ પ્રકટ કરવામાં આવી છે, તેનું કારણ એ છે કે તે જીવોએ પૂર્વભવમાં વારંવાર પ્રમાદનું સેવન કર્યું હોય છે. પ્રમાદનું સેવન કરનારો જીવ ધર્મથી વર્જિત (રહિત) ચિત્તવાળો બની જાય છે. તેથી ધર્મની પ્રવૃત્તિમાં પ્રવૃત્તિશીલ રહેવાનું ધીર પુરુષોનું કર્તવ્ય થઇ પડે છે ॥ સૂ ૧૧ ॥

ઇન્દ્રિયોના અર્થમાં (વિષયોમાં) જો આ જીવને સંવરની પ્રાપ્તિ થઈ જાય છે, તો તેને માટે માનુષત્વ આદિની પ્રાપ્તિ સુલભ બની જાય છે. ઇન્દ્રિયાર્થના અસંવરમાં તો તે દુર્લભ બની જાય છે. તેથી હવે સૂત્રકાર છ પ્રકારના ઇન્દ્રિયાર્થોનું કથન કરે છે.

चक्षुरिन्द्रियार्थः घ्राणेन्द्रियार्थो रसनेन्द्रियार्थश्च ग्राह्यः । तत्र-चक्षुरिन्द्रियार्थो रूपम् । घ्राणेन्द्रियार्थो गन्धः । रसनेन्द्रियार्थो रसः । स्पर्शनेन्द्रियार्थः स्पर्शः । नोइन्द्रियार्थः नो शब्दो देशनिषेधपरः सादृश्यपरश्च । तत्र-औदारिकत्वार्थपरिच्छेदकत्वरूपधर्मद्वययुक्तमिन्द्रियं भवति । तत्र धर्मद्वयमध्ये औदारिकत्वरूपो धर्मो मनसि नास्ति, इति देशनिषेधात् नोइन्द्रियं मनः । अथवा-नो शब्दः सादृश्यार्थकः । इन्द्रियसादृश्यं च अर्थपरिच्छेदकत्वेनेति नो इन्द्रियं मनः । तस्य अर्थः=

'छ इंदियत्था पण्णत्ता" इत्यादि सूत्र १२ ॥

इन्द्रियोंके अर्थ विषय छ कहे गये हैं जैसे-श्रोत्रेन्द्रियका विषय यावत् स्पर्शनेन्द्रियका विषय और नोइन्द्रियका विषय इन्द्रियोंके विषय ६ प्रकारके कहे गये हैं, इनमें श्रोत्रेन्द्रियका विषय शब्द है, यावत् शब्दसे गृहीत हुए चक्षुरिन्द्रियका विषयरूप है, घ्राणेन्द्रियका विषय गन्ध है, रसना इन्द्रियका विषय रस है, और स्पर्शन इन्द्रियका विषय स्पर्श है । नो इन्द्रियमें नो शब्द देश निषेध परक और सादृश्य परक है, इस तरह जो इन्द्रिय औदारिकरूप और अर्थ परिच्छेदकरूप दो धर्मसे युक्त होता है, वह इन्द्रिय है, इन दो धर्मोंमेंसे मनमें औदारिकादि रूप धर्म नहीं है, इस कारण औदारिकत्वरूप एक देशके निषेधसे मन नो इन्द्रिय है, अथवा नो शब्द सादृश्यार्थक जब माना जाता है, तब जो अर्थपरिच्छेदकताको लेकर इन्द्रियके समान होता है, वह नो

"छ इंदियत्था पण्णत्ता" ઈત્યાદિ—

ઇન્દ્રિયોના અર્થ (વિષય) છ કહ્યાં છે—(૧) શ્રોત્રેન્દ્રિયથી લઇને સ્પર્શેન્દ્રિયના વિષય પર્યન્તના પાંચ ઇન્દ્રિયાર્થોને અહીં ગ્રહણ કરવા જોઇએ. (૫) નો ઇન્દ્રિયનો વિષય.

ઇન્દ્રિયોના વિષય છ પ્રકારના બતાવ્યા છે. શ્રોત્રેન્દ્રિયનો વિષય શબ્દ છે, ચક્ષુરિન્દ્રિયનો વિષય રૂપ છે, ઘ્રાણેન્દ્રિયનો વિષય ગન્ધ છે, રસના ઇન્દ્રિયનો વિષય રસ છે અને સ્પર્શેન્દ્રિયનો વિષય સ્પર્શ છે. "નો ઇન્દ્રિય" આ પદમાં નો શબ્દ દેશનિષેધપરક અને સાદૃશ્યપરક છે. ઇન્દ્રિય તેને કહે છે કે જે ઔદારિક રૂપ અને અર્થ પરિચ્છેદક રૂપ ધર્મદ્વયથી યુક્ત હોય છે. આ બે ધર્મોમાંથી ઔદારિકત્વ રૂપ એકદેશના નિષેધને લીધે મનને નો ઇન્દ્રિય રૂપ કહ્યું છે અથવા 'નો' પદને જો સાદૃશ્યાર્થક માનવામાં આવે, તો નો ઇન્દ્રિયનો અર્થ આ પ્રમાણે થાય છે-" જે અર્થ પરિચ્છેદકતાને લીધે

विषयो जीवादिः। मनो हि आन्तरकरणं, करणं चेन्द्रियमेवेति तदर्थोऽपि इन्द्रियार्थ इति षडिन्द्रियार्था उक्ताः॥ सू० १२॥

इन्द्रियार्थानां संवरे असंवरे च सति मनुष्यत्वादिकं सुलभं दुर्लभं च भवतीत्युक्तम्, इन्द्रियार्थसंवरासंवरौ च इन्द्रियसंवरासंवराधीनाविति इन्द्रियाणां संवरान् असंवरांश्च प्राह--

मूलम्--छव्विहे संवरे पण्णत्ते, तं जहा--सोइंदियसंवरे जाव फासिंदियसंवरे नोइंदियसंवरे। छव्विहे असंवरे पण्णत्ते, तं जहा-सोइंदियअसंवरे जाव फासिंदिय असंवरे नोइंदियअसंवरे॥ सू० १३॥

छाया-षड्विधः संवरः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-श्रोत्रेन्द्रियसंवरो यावत् स्पर्शेन्द्रियसंवरो

इन्द्रिय है, ऐसा अर्थ होता है, अर्थ परिच्छेदकता मनमें है ही इसलिये मन नोइन्द्रिय है, इस मनका विषय जीवादि पदार्थ है, मन आन्तरकरण है, और जो कारण होता है, वह इन्द्रियरूपही होता है, इन्द्रियका अर्थ इन्द्रियार्थ होता है, इस कारण इन्द्रियार्थ छ कहे गये हैं॥ सू.१२॥

इन्द्रियार्थके संवर होने पर मनुष्यत्व आदि पर्याय सुलभ होती है, और असंवर होने पर वह दुर्लभ होती है, ऐसा जो कहा गया है, सो इन्द्रियार्थका संवर और असंवर इन्द्रियोंके संवर और असंवरके आधीन होता है, अतः अब सूत्रकार इन्द्रियोंके संवर और असंवरका विवेचन करते हैं—"छव्विहे संवरे पण्णत्ते" इत्यादि सू० १३॥

ઇન્દ્રિયોના સમાન છે, એવું મન નો ઇન્દ્રિય રૂપ છે અર્થ પરિચ્છેદકતાનો મનમાં અવશ્ય સદ્ભાવ છે, તેથી મન 'નો ઇન્દ્રિય' જ છે. મનનો વિષય જીવાદિ પદાર્થ છે. મન આન્તર કરણ છે, અને જે કરણ હોય છે તે ઇન્દ્રિય રૂપ જ હોય છે ઇન્દ્રિયના વિષયને ઇન્દ્રિયાર્થ કહે છે ઇન્દ્રિયો ૬ હોવાથી ઇન્દ્રિયાર્થ પણ ૭ કહ્યા છે. ॥ સૂ. ૧૨ ॥

ઇન્દ્રિયાર્થોમાં સંવરની પ્રાપ્તિ થવાથી મનુષ્યત્વ આદિ પર્યાયો સુલભ થઈ જાય છે, અને અસંવરના સદ્ભાવમાં તે દુર્લભ બની જાય છે, એવું આગળ કહેવામાં આવ્યું છે. ઇન્દ્રિયાર્થનો સંવર કે અસંવર ઇન્દ્રિયોના સંવર અને અસંવરને આધીન હોય છે. તેથી હવે સૂત્રકાર ઇન્દ્રિયોના સંવર અને અસંવરનું વિવેચન કરે છે. "છવ્વિહે સંવરે પણ્ણત્તે" ઇત્યાદિ—

नोइन्द्रियसंवरः। षड्विधोऽसंवरः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–श्रोत्रेन्द्रियासंवरो यावत्स्पर्शेन्द्रियासंवरो नोइन्द्रियासंवरः ॥ सू० १३ ॥

टीका—'छव्विहे' इत्यादि–

व्याख्या सुगमा ॥ सू० १३ ॥

संवरे असंवरे च सति सातमसातं च भवति, इति सातासातयोः प्रत्येकं षड्विधत्वमाह—

मूलम्--छव्विहे साते पण्णत्ते, तं जहा--सोइंदियसाते नोइंदियसाते। छव्विहे असाते पण्णत्ते, तं जहा--सोइंदियासाते जाव नोइंदियासाते ॥ सू० १४ ॥

छाया—षड्विधम् सातं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा–श्रोत्रेन्द्रियसातं यावत् नोइन्द्रियसातम्। षड्विधम् असातं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा–श्रोत्रेन्द्रियासातं यावत् नोइन्द्रियासातम् ॥ सू० १४ ॥

टीका—'छव्विहे' इत्यादि—

सातं=सुखं, तत् षड्विधं=षट्प्रकारकं प्रज्ञप्तं=प्ररूपितम्। षड्विधत्वमेवाह–तद्यथा–श्रोत्रेन्द्रियसातम्–मनोज्ञशब्दश्रवणेन यत् सुखं भवति तत् श्रोत्रेन्द्रिय-

---

संवर छह प्रकारका कहा गया है, जैसे श्रोत्रेन्द्रियसंवर यावत् स्पर्शनेन्द्रिय संवर और नो इन्द्रिय (याने मन) संवर। असंवर भी छह प्रकारका कहा गया है, जैसे–श्रोत्रेन्द्रिय असंवर यावत् स्पर्शनेन्द्रिय-असंवर और नोइन्द्रिय असंवर इस सूत्रकी व्याख्या सुगम है ॥सु.१३॥

संवर और असंवरके होने पर सात और असात होता है, अतः अब सूत्रकार प्रत्येक सात एवं असातमें षट् प्रकारताका कथन करते हैं–

સંવરના ૬ પ્રકાર કહ્યા છે—(૧) શ્રોત્રેન્દ્રિય સંવર, (૨) ચક્ષુરિન્દ્રિય સંવર, (૩) ઘ્રાણેન્દ્રિય સંવર, (૪) રસનેન્દ્રિય સંવર, (૫) સ્પર્શેન્દ્રિય સંવર અને (૬) નો ઇન્દ્રિય સંવર (મન સંવર)

અસંવરના પણ છ પ્રકાર કહ્યા છે—શ્રોત્રેન્દ્રિય અસંવરથી લઇને નો ઇન્દ્રિય અસંવર પર્યન્તના ઉપર્યુક્ત ૬ પ્રકારો અહીં ગ્રહણ કરવા જોઇએ. આ સૂત્રની વ્યાખ્યા સુગમ છે. ॥ સૂ. ૧૩ ॥

સંવર અને અસંવરના સદ્દભાવમાં જ સાત (સાતા, સુખ) અને અસાત (અસાતા, દુઃખ) નો સદ્દભાવ રહે છે. તેથી હવે સૂત્રકાર સાત અને અસાતના ૬ પ્રકારોનું કથન કરે છે.

जातम्। एवं चक्षुरिन्द्रियजातादिकमपि विज्ञेयम्। तथा-इष्टचिन्तनतो यत् सुखं भवति तत् नोइन्द्रियजातमिति। तथा-असातं=दुःखमपि षड्विधं भवति। तत्र-अमनोज्ञशब्दश्रवणतो यत् दुःखं भवति तत् श्रोत्रेन्द्रियजातम्। एवम् अमनोज्ञरूपादिदर्शनादितश्चक्षुरिन्द्रियादिजातं बोध्यम्। अनिष्टचिन्तनतो यद् दुःखं भवति तत् नोइन्द्रियजातमिति॥ सू० १४॥

पूर्वसूत्रान्ते दुःखं निरूपितं दुःखस्य क्षयश्च प्रायश्चित्ताद् भवतीति प्रायश्चित्तस्य षड्भेदानाह—

मूलम्-छव्विहे पायच्छित्ते पण्णत्ते, तं जहा--आलोयणारिहे १, पडिक्कमणारिहे २, तदुभयारिहे ३, विवेगारिहे ४, विउसग्गारिहे ५ तवारिहे ६॥ सू १५॥

छाया—षड्विधं प्रायश्चित्तं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा–आलोचनार्हम् १, प्रतिक्रमणार्हम् १, तदुभयार्हम् ३, विवेकार्हम् ४, व्युत्सर्गार्हम् ५, तपोऽर्हम् ६ ॥सू०१५॥

टीका–'छव्विहे' इत्यादि । प्रायश्चित्तम् षड्विधं बोध्यम् । तत्र यद् गुरुनिवेदनया शुध्यति–तदालोचनार्हं प्रायश्चित्तम् १। मिथ्यादुष्कृतेन यत् शुध्यति तत् प्रतिक्रमणार्हम् । यदालोचनामिथ्यादुष्कृताभ्यां शुध्यति तत् उभयार्हम् ३। आधाकर्मादौ परिष्ठापिते यत् शुध्यति तद् विवेकार्हम् ४। कायचेष्टानिरोधतो यत् शुध्यति तत् व्युत्सर्गार्हम् ५। निर्विकृतिकादिना तपसा यत् शुध्यति तत् तपोऽर्हम् ६ इति ॥ सू० १५ ॥

सूत्रके अन्तमें दुःखका निरूपण कियाहै और दुःखका क्षय प्रायश्चित्तसे होताहै, इसलिये अब सूत्रकार प्रायश्चित्तके छह भेदोंका कथन करतेहैं

'छव्विहे प्रायच्छित्ते पण्णत्ते' इत्यादि सू० १५ ॥

प्रायश्चित्त छह प्रकारका कहा गया है, जैसे–आलोचनार्ह १ प्रतिक्रमणार्ह २ तदुभयार्ह ३ विवेकार्ह ४ व्युत्सर्गार्ह ५ और तपोऽर्ह ६ ।

इनमें जो गुरुसे निवेदन करने पर दोष शुद्ध होता है, वह आलोचनार्ह प्रायश्चित्त है, जो मिथ्यादुष्कृतसे शुद्ध होता है, वह प्रतिक्रमणार्ह प्रायश्चित्त है, जो आलोचना एवं प्रतिक्रमण इन दोनोंसे शुद्ध होता है, वह तदुभयार्ह प्रायश्चित्त है, आधाकर्म आदिके परिष्ठापित होने पर जो शुद्ध होता है, वह विवेकार्ह प्रायश्चित्त है, कायचेष्टाके

પૂર્વસૂત્રના અંતમાં દુઃખનું નિરૂપણ કર્યું છે. અને દુઃખનો સૂત્રકાર પ્રાયશ્ચિત્તના ૬ ભેદોનું કથન કરે છે.

"છવ્વિહે પાયચ્છિત્તે પણ્ણત્તે" ઇત્યાદિ—

પ્રાયશ્ચિત્તના નીચે પ્રમાણે ૬ પ્રકાર કહ્યા છે—(૧) આલોચનાર્હ, (૨) પ્રતિક્રમણાર્હ, (૩) તદુભયાર્હ, (૪) વિવેકાર્હ, (૫) વ્યુત્સર્ગાર્હ અને (૬) તપઃઅર્હ

ગુરુની પાસે નિવેદન કરવા માત્રથી જ જે દોષની શુદ્ધિ થઇ જાય છે, તે દોષની શુદ્ધિરૂપ પ્રાયશ્ચિત્તને આલોચનાર્હ પ્રાયશ્ચિત્ત કહે છે. જે મિથ્યા દુષ્કૃત વડે શુદ્ધ થાય છે, તેને પ્રતિક્રમણાર્હ પ્રાયશ્ચિત્ત કહે છે. જે દોષની શુદ્ધિ આલોચના અને પ્રતિક્રમણ આ બન્ને દ્વારા થાય છે, તેને તદુભયાર્હ પ્રાયશ્ચિત્ત કહે છે. આધાકર્મ દોષથી દૂષિત થયેલા આહારાદિને પરિષ્ઠાપિત કરવાથી (પરઠવવાથી) જે શુદ્ધ થાય છે તેને વિવેકાર્હ પ્રાયશ્ચિત્ત કહે છે. કાયચેષ્ટાના નિરોધથી જે શુદ્ધ થાય છે તે દોષના પ્રાયશ્ચિત્તને વ્યુત્સર્ગાર્હ

प्रायश्चित्तवहनशीलास्तु मनुष्या एव भवन्तीति 'छव्विहा मणुस्सा' इत्यारभ्य लोकस्थितिसूत्रपर्यन्तं मनुष्यसम्बन्धीनि सूत्राणि माह--

मूलम्--छव्विहा मणुस्सगा पण्णत्ता, तं जहा--जंबूदीवगा १, धायइसंडदीवपुरत्थिमद्धगा २, धायइसंडदीवपच्चत्थिमद्धगा ३, पुक्खरवरदीवड्ढपुरत्थिमद्धगा ४, पुक्खरवरदीवड्ढपच्चत्थिमद्धगा ५, अंतरदीवगा ६। अहवा छव्विहा मणुस्सा पण्णत्ता, तं जहा-संमुच्छिमसमणुस्सा--कम्मभूमिगा १, अकम्मभूमिगा २, अंतरदीवगा ३, गब्भवक्कंतियमणुस्सा--कम्मभूमिगा १, अकम्मभूमिगा २, अंतरदीवगा ३ ॥ सू० १६ ॥

छाया—षड्विधा मनुष्यकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-जम्बूद्वीपगाः १ धातकीखण्डद्वीपपौरस्त्यार्धगाः २, धातकीखण्डद्वीपपाश्चात्त्यार्द्धगाः ३, पुष्करवरद्वीपार्धपौरस्त्यार्द्धगाः ४, पुष्करवरद्वीपार्धपाश्चात्त्यार्धगाः ५, अन्तरद्वीपगाः ६। अथवा

निरोधसे जो शुद्ध होता है, वह व्युत्सर्गार्ह प्रायश्चित्त है, एवं निर्विकृतिक (विनाविगय) आदि तपसे जो दोप शुद्ध होता है, वह तपोऽर्ह प्रायश्चित्त है ॥ सु० १५ ॥

प्रायश्चित्तको अङ्गीकार करनेवाले मनुष्यही होते हैं इसलिये अव सूत्रकार "छव्विहा मणुस्सा" यहांसे लेकर लोकस्थिति पर्यन्त मनुष्य संवन्धी सूत्रोंका कथन करतेहैं-"छव्विहा मणुस्सगा पणगत्ता" इत्यादि

मनुष्य ६ प्रकारके कहे गये हैं-जैसे जम्बूद्वीपग १ धातकीखण्ड द्वीप पौरस्त्यार्धग २ धातकीखण्डद्वीप पाश्चात्यार्द्धग ३ पुष्करवरद्वीपार्ध-पौरस्त्यार्द्धग ४ पुष्करवरद्वीपार्ध पाश्चात्यार्धग ५ एवं अन्तरद्वीपग ६

પ્રાયશ્ચિત્ત કહે છે. નિર્વિકૃતિક આદિ તપ દ્વારા દોષની શુદ્ધિ કરવાને ચોગ્ય પ્રાયશ્ચિત્તને (તપોર્હ (તપઃ અર્હ) પ્રાયશ્ચિત્ત કહે છે ॥ સૂ. ૧૫ ॥

મનુષ્યો જ પ્રાયશ્ચિત્ત લે છે આ સંબંધને લીધે હવે સૂત્રકાર મનુષ્ય વિષયક સૂત્રોનું કથન કરે છે "छव्विहा मणुस्सा" અહીંથી શરૂ કરીને લોકસ્થિતિ પર્યન્તના સૂત્રોમાં સૂત્રકારે મનુષ્ય વિષયક કથન કર્યું છે.

"छव्विहा मणुस्सगा पण्णत्ता" ઇત્યાદિ—

મનુષ્યના નીચે પ્રમાણે ૬ પ્રકારો કહ્યા છે—(૧) જંબૂદ્વીપગ (જંબૂદ્વીપમાં જન્મેલા) ધતકી ખંડ દ્વીપના પૂર્વાર્ધમાં જન્મેલા, (૩) ધાતકી ખંડ દ્વીપના પશ્ચિમાર્ધમાં જન્મેલા, (૪) પુષ્કરવર દ્વીપાર્ધના પૂર્વાર્ધમાં જન્મેલા, (૫) પુષ્કરવર દ્વીપાર્ધનાં પશ્ચિમાર્ધમાં જન્મેલા અને (૬) અન્તરદ્વીપમાં જન્મેલા

षड्विधा मनुष्याः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—सम्मूर्च्छिममनुष्याः—कर्मभूमिगाः १, अकर्मभूमिगाः २, अन्तरद्वीपगाः ३, गर्भव्युत्क्रान्तिकाः—कर्मभूमिगाः १, अकर्मभूमिगाः २, अन्तरद्वीपगाः ३ ॥ सू० १६ ॥

टीका—'छव्विहा' इत्यादि—

मनुष्याणां षड्विधत्वं प्रकारद्वयेन बोध्यम्। तत्र प्रथमे प्रकारे जम्बूद्वीपगाः' इत्यादयः षड्भेदाः। द्वितीये प्रकारे पूर्वं सम्मूर्च्छिमगर्भव्युत्क्रान्तिकभेदेन मनुष्या द्विविधाः। तत्र सम्मूर्च्छिमा त्रिविधा भवन्ति, गर्भव्युत्क्रान्तिका अपि त्रिविधा भवन्तीति षड्विधा मनुष्या भवन्तीति ॥ सू० १६ ॥

तथा—

मूलम्—छव्विहा इड्ढीमंता मणुस्सा पण्णत्ता, तं जहा—अरहंता १, चक्कवट्टी २, बलदेवा ३, वासुदेवा ४, चारणा ५, विज्जाहरा ६ ॥ सू० १७ ॥

अथवा—इस प्रकारसे मनुष्य ६ प्रकारके कहे गये हैं जैसे—सम्मूर्च्छिम मनुष्य कर्मभूमिग १ अकर्म भूमिग २ अन्तरद्वीपग ३ गर्भव्युत्क्रान्तिक कर्मभूमिग १ अकर्मभूमिग २ और अन्तरद्वीपग ३।

इस सूत्रमें मनुष्योंकी षट् प्रकारता प्रकटकी गई है, वह दो प्रकारसे प्रकटकी गई है, इनमें प्रथम प्रकारतामें "जम्बूद्वीपग" यहांसे लेकर "अन्तरद्वीपग" तक कथन हुआ है, द्वितीय प्रकारतामें सम्मूर्च्छिम एवं गर्भव्युत्क्रान्तिकके भेदसे मनुष्य दो दो प्रकारके होते हैं, इनमें सम्मूर्च्छिम मनुष्य कर्मभूमिग, अकर्मभूमिग, और अन्तरद्वीपग तीन प्रकारके होते हैं, और गर्भव्युत्क्रान्तिक मनुष्य भी ३ प्रकारके होते हैं, इस तरह ६ प्रकारके मनुष्य होते हैं। सू०१६।

અથવા—મનુષ્યના નીચે પ્રમાણે ૬ પ્રકાર પણ પડે છે—(૧) સમ્મૂર્ચ્છિમ મનુષ્ય કર્મભૂમિગ, (૨) સમ્મૂર્ચ્છિમ અકર્મભૂમિગ, (૩) સમ્મૂર્ચ્છિમ અન્તરદ્વીપગ, (૪) ગર્ભવ્યુત્ક્રાન્તિક કર્મભૂમિગ, (૫) અકર્મભૂમિગ અને (૬) અન્તરદ્વીપગ.

આ સૂત્રમાં બે રીતે મનુષ્યના ૬ પ્રકારો પાડવામાં આવ્યા છે. પહેલી રીતે "જમ્બૂદ્વીપગ" થી લઈને "અન્તરદ્વીપગ" પર્યન્તના ૬ પ્રકાર પ્રકટ કરવામાં આવ્યા છે બીજી રીતે મનુષ્યના મુખ્ય બે ભેદ પાડયા છે—(૧) સમ્મૂર્ચ્છિમ અને (૨) ગર્ભવ્યુત્ક્રાન્તિક તેમાંથી સમ્મૂર્ચ્છિમ મનુષ્યોના કર્મભૂમિજ આદિ ત્રણ પ્રકાર પડે છે, અને ગર્ભવ્યુત્ક્રાન્તિકના પણ કર્મભૂમિજ, અકર્મભૂમિજ અને અન્તરદ્વીપજ નામના ત્રણ પ્રકાર પડે છે. આ રીતે કુલ છ પ્રકાર થાય છે. ॥ સૂ. ૧૬ ॥

छाया--षड्विधा ऋद्धिमन्तो मनुष्याः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-अर्हन्तः १, चक्रवर्तिनः २, बलदेवाः ३, वासुदेवाः ४, चारणाः ५, विद्याधराः ६ ॥ सू० १७॥

टीका--' छव्विहा ' इत्यादि--

व्याख्या स्पष्टा । नवरम्-चारणाः-जङ्घाचारणा विद्याचारणाश्च बोध्याः । विद्याधराः-वैताढ्यादिवासिनः ॥ सू० १७ ॥

तथा--

मूलम्-छव्विहा अणिड्डिमंता पण्णत्ता, तं जहा-हेमवंतगा १, हेरन्नवंतगा २, हरिवंसगा ३, रम्मगवंसगा ४, कुरुवासिणो ५, अंतरदीवगा ६ ॥ सू० १८ ॥

छाया--षड्विधा अनृद्धिमन्तः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-हैमवतगाः १, हैरण्यवतगाः २, हरिवर्षगाः ३, रम्यकवर्षगाः ४, कुरुवासिनः ५, अन्तरद्वीपगाः ६ ॥सू०१८॥

टीका--' छव्विहा ' इत्यादि ।

व्याख्या सुगमा ॥ सू० १८ ॥

"छव्विहा इड्ढीमंता मणुस्सा" इत्यादि सू० १७ ॥

ऋद्धिधारी मनुष्य ६ प्रकारके होते हैं, जैसे-अर्हन्त १ चक्रवर्ती २ बलदेव ३ वासुदेव ४ चारण ५ और विद्याधर ६ ।

इसकी व्याख्या स्पष्ट है, जङ्घाचारण और विद्याचारणके भेदसे चारण मनुष्य दो प्रकारके होते हैं, वैताढ्य आदि पर्वतवासी जो मनुष्य होते हैं वे विद्याधर हैं ॥ सू०१७॥

"छव्विहा अणिड्डिमंता पण्णत्ता" इत्यादि सूत्र १८॥

जिनको किसी भी प्रकारकी ऋद्धि नहीं होती है, वे अनृद्धिमान् प्राणी ६ प्रकारके कहे गये हैं जैसे-हेमवर्षग १ हैरण्यवर्षग २ हरिवर्षग

" छव्विहा इड्ढीमंता मणुस्सा " ઈત્યાદિ—

ઋદ્ધિધારી મનુષ્યોના નીચે પ્રમાણે ૬ પ્રકાર પડે છે—(૧) અર્હન્ત, (૨) ચક્રવર્તી, (૩) બળદેવ, (૪) વાસુદેવ, (૫) ચારણ અને (૬) વિદ્યાધર.

આ સૂત્રની વ્યાખ્યા સુગમ છે. જંઘાચારણ અને વિદ્યાચારણના ભેદથી ચારણ મનુષ્ય બે પ્રકારના કહ્યા છે. વિદ્યાધરો વૈતાઢ્ય આદિ પર્વતોના નિવાસી હોય છે. ॥ સૂ. ૧૭ ॥

" छव्विहा अणिड्ढिमंता पण्णत्ता " ઈત્યાદિ –

જેમને કોઈ પણ પ્રકારની ઋદ્ધિનો સદ્‌ભાવ હોતો નથી એવાં ઋદ્ધિ રહિત મનુષ્યોના નીચે પ્રમાણે ૬ પ્રકાર કહ્યા છે—(૧) હૈમવર્ષગ, (૨) હૈરણ્ય-

तथा—

मूलम्–छव्विहा ओसप्पिणी पण्णत्ता, तं जहा–दुसमदुसमा जाव सुसमसुसमा ॥ सू० १९ ॥

छाया––षड्विधा अवसर्पिणी प्रज्ञप्ता, तद्यथा–दुष्पमदुष्पमा यावत् सुषमसुपमा ॥ सू० १९ ॥

टीका––'छव्विहा' इत्यादि––

व्याख्या स्पष्टा। नवरं यावत्पदात्–दुष्पम २ दुष्षम सुषमा ३ सुषमदुष्षमा ४, सुपमा ५ ग्राह्याः ॥ सू० १९ ॥

तथा––

मूलम्–जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु तीयाए उस्सप्पिणीए सुसमसुसमाए समाए मणुया छच्च धणुसहस्साइं उड्ढुमुच्चत्तेणं हुत्था, छच्च अद्धपलिओवमाइं परमाउं पालइत्था १, जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु इमीसे ओसप्पिणीए सुसमसुसमाए समाए एवं चेव २, जंबूद्दीवे दीवे भरहेरवए आगमेस्साए उस्सप्पिणीए सुसमसुसमाए समाए एवं चेव जाव छच्च

---

३ रम्यकवर्षग ४ कुरुवासी ५ और अन्तरद्वीपग ६ इस सूत्रकी व्याख्या सुगम है ॥ सू० १८ ॥

"छव्विहा ओसप्पिणी पण्णत्ता" इत्यादि सूत्र १९ ॥

अवसर्पिणी ६ प्रकारकी कही गई है, जैसे–दुष्षम दुष्षमा १ यावत् सुषम सुषमा ६ यहाँ यावत्पदसे–दुष्पमा २ दुष्षम सुषमा ३ सुषम दुष्षमा ४ सुषमा ५ इनका ग्रहण हुआ है ॥ १९ ॥

વર્ષગ, (૩) હરિવર્ષગ, (૪) રમ્યકવર્ષગ, (૫) કુરુવાસી અને (૬) અન્તરદ્વીપગ આ સૂત્રની વ્યાખ્યા સુગમ છે. ॥ સૂ. ૧૮ ॥

"છવ્વિહા ઓસપ્પિણી પણ્ણત્તા" ઈત્યાદિ—

અવસર્પિણીના નીચે પ્રમાણે ૬ પ્રકાર કહ્યા છે—(૧) દુષ્ષમ દુષ્ષમા, (૨) દુષ્ષમા, (૩) દુષ્ષમ સુષમા, (૪) સુષમ દુષ્ષમા, (૫) સુષમા અને (૬) સુષમ સુષમા. ॥ સૂ. ૧૯ ॥

पलिओवमाइं परमाउं पालइस्संति ३, जंबुद्दीवे दीवे देवकुरु उत्तरकुरासु मणुया छ धणुसहस्साइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता, छच्च अद्धपलिओवमाइं परमाउं पालेंति ४, एवं धायइसंड-दीवपुरत्थिमद्धे चत्तारि आलावगा जाव पुक्खरवरदीवड्ढपच्च-त्थिमद्धे चत्तारि आलावगा ॥ सू० २० ॥

छाया--जम्बूद्वीपे द्वीपे भरतैरवतयोः वर्षयोः अतीतायाम् उत्सर्पिण्यां सुषमसुषमायां समायां मनुजाः षट् च धनुःसहस्राणि ऊर्ध्वमुच्चत्वेन अभवन् षट् च अर्धपल्योपमानि परमायुः अपालयन् १। जम्बूद्वीपे द्वीपे भरतैरवतयोः वर्षयोः अस्यामवसर्पिण्याम् सुषमसुषमायां समायामेवमेव २। जम्बूद्वीपे द्वीपे भरतैरवते आगमिष्यन्त्यामुत्सर्पिण्यां सुषमसुषमायां समायाम् एवमेव यावत् षट् अर्द्धपल्योपमानि परमायुः पालयिष्यन्ति ३। जम्बूद्वीपे द्वीपे देवकुरूत्तरकुरुषु

तथा--'जम्बुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु' इत्यादि सूत्र २० ॥

टीकार्थ जम्बूद्वीप सम्बन्धी भरतक्षेत्रमें और ऐरवत क्षेत्रमें अतीत कालकी उत्सर्पिणीमें सुषम सुषमा नामके आरेमें मनुष्य ६ हजार धनुषके ऊंचे थे ६ अर्ध पल्योपमकी उनकी उत्कृष्ट आयु थी १ जम्बूद्वीप नामके द्वीपमें भरत ऐरवत क्षेत्रमें इस अवसर्पिणीमें सुषम सुषमा नामके आरेमें ऐसाही कथन कर लेना चाहिये २ जम्बूद्वीप नामके द्वीपमें भरतक्षेत्र और ऐरवत क्षेत्रमें आगामी सुषमसुषमा नामके आरेमें इसी तरहसे कथन जानना चाहिये यावत् ६ अर्द्ध पल्योपमकी वहां उत्कृष्ट आयु थी ३ जम्बूद्वीप नामके द्वीपमें देवकुरु और उत्तरकुरुमें मनुष्य ६ हजार

તથા "जम्बूद्दीवे दीवे भरहेरवएसु" ઇત્યાદિ—

જંબૂદ્વીપના ભરતક્ષેત્ર અને ઐરવતક્ષેત્રમાં અતીતકાળની ઉત્સર્પિણીના સુષમ સુષમા નામના આરામાં મનુષ્યની ઊંચાઈ ૬ હજાર ધનુષપ્રમાણુ હતી, અને તેમનું ઉત્કૃષ્ટ આયુષ્ય ૭ અર્ધપલ્યોપમનુ હતું. । ૧ ।

જંબૂદ્વીપના ભરત અને ઐરવતક્ષેત્રમાં આ અવસર્પિણીના સુષમ સુષમા નામના આરામાં મનુષ્યની ઊંચાઈ અને આયુષ્યના વિષયમાં પણુ ઉપર્યુક્ત કથન ગ્રહણુ થવું જોઈએ. । ૨ ।

જંબૂદ્વીપના ભારત અને ઐરવત ક્ષેત્રમાં આગામી ઉત્સર્પિણીના સુષમ સુષમા નામના આરામાં પણુ મનુષ્યની ઊંચાઈ ૬ હજાર ધનુષ્યપ્રમાણુ અને તેમનું ઉત્કૃષ્ટ આયુષ્ય ૬ અર્ધપલ્યોપમનું હશે. । ૩ ।

मनुजाः षड्धनुः सहस्राणि ऊर्ध्वमुच्चत्वेन प्रज्ञप्ताः षट् च अर्द्ध पल्योपमानि परमायुः पालयन्ति ४। एवं धातकीखण्डद्वीपपौरस्त्यार्द्धे चत्वार आलापका यावत् पुष्करवरद्वीपार्धपाश्चात्यार्द्धे चत्वार आलापकाः ॥ सू० २०॥

टीका--' जंबुद्दीवे दीवे ' इत्यादि--

जम्बूद्वीपनामक द्वीपस्थे भरते ऐरवते च क्षेत्रे अतीतायाम् उत्सर्पिण्याम् सुषम सुषमा नामक समायां मनुजाः षट् च धनुः सहस्राणि=त्रीन्क्रोशान् ऊर्ध्वम् उच्चत्वेन अभवन्, तथा-षट् च अर्धपल्योपमानि=त्रीणि पल्योपमानि परमायुः= उत्कृष्टमायुः अपालयन्=पालयन्ति स्मेति १। एवमग्रेऽपि व्याख्या बोध्या ॥सू०२०॥

तथा--

मूलम्--छव्विहे संघयणे पण्णत्ते, तं जहा--वइरोसभ णारायसंघयणे १, उसभणाराय संघयणे २, नारायसंघयणे ३, अद्धनारायसंघयणे ४, खीलियासंघयणे ५, छेवट्ठसंघणे ६ ॥ सू० २१ ॥

छाया--षड्विधं संहननं प्रज्ञप्तं, तद्यथा-वज्रऋषभनाराचसंहननत् १ ऋषभनाराचसंहननं २, नाराचसंहननं ३, कीलिका संहननं ४, सेवार्त्तसंहननम् ५ ॥ सू० २१ ॥

धनुषके ऊंचे होते कहे गयेहैं, औरद अर्ध पल्योपमकी इनकी उत्कृष्ट आयु कही गईहै ४ इसी तरहसे धातकी खण्ड द्वीपके पौरस्त्यार्द्धमें (पूर्वके आधा भाग)चार आलापक यावत् पुष्करवर द्वीपार्धके पाश्चात्यार्धमें चार आलापक कहलेना चाहिये। छह अर्ध पल्योपमका भाव है ३ पल्योपम ६ हजार धनुषसे ३ कोश लिये गये हैं, क्योंकि २ हजार धनुषका एक कोश होता है ॥ सू० २० ॥

જંબૂદ્વીપ નામના દ્વીપના દેવકુરુ અને ઉત્તરકુરુ નામના ક્ષેત્રોમાં મનુષ્યોની ઊંચાઈ ૬ હજાર ધનુષપ્રમાણ કહી છે અને તેમનું ઉત્કૃષ્ટ આયુષ્ય ૬ અર્ધ-પલ્યોપમનું કહ્યુ છે. । ૪ ।

એજ પ્રમાણે ધાતકીખંડ દ્વીપના પૂર્વાર્ધના મનુષ્યો વિષે ચાર આલાપક કહેવા જોઈએ એજ પ્રમાણે પુષ્કરવર દ્વીપાર્ધના પશ્ચિમાર્ધ પર્યન્તના દ્વીપોના મનુષ્યો વિષે પણ ચાર-ચાર આલાપકો કહેવા જોઈએ. બે હજાર ધનુષનો એક કોશ થાય છે. તેથી ૬૦૦૦ ધનુષપ્રમાણ ઊંચાઇ એટલે ૩ કોશપ્રમાણ ઊંચાઈ સમજવી છ અર્ધપલ્યોપમનું આયુષ્ય એટલે ત્રણ પલ્યોપમનું આયુષ્ય સમજવું ॥ સૂ. ૨૦ ॥

टीका--' छव्विहे ' इत्यादि--

संहननं-संहन्यन्ते=दृढतामापाद्यन्ते शरीरपुद्गला येन तत्, अस्थ्नां रचनाविशेषः, शक्तिविशेषो वा। तत् षड्विधं=षट्प्रकारकं प्रज्ञप्तम्। तद्यथा-वज्रऋषभनाराचसंहननम्, तत्र-वज्र=कीलिकाकारमस्थि, ऋषभः=तदुपरिपरिवेष्टनपट्टाकृतिकोऽस्थिविशेषः, नाराच=उभयतो मर्कटबन्धः। तथा च-द्वयोरस्थ्नो रुभयतो मर्कटबन्धेन बद्धयोः पट्टाकृतिना तृतीयेनास्थ्ना परिवेष्टितयोरुपरि तदस्थित्रयं पुनरपि दृढीकर्तुं निखातमस्थित्रयभेदकं कीलिकाकारं वज्रनामकमस्थि यत्र भवति

टीकार्थ-तथा-"छव्विहे संघयणे पण्णत्ते तं जहा" इत्यादि

संहनन ६ प्रकारका कहा गया है, जिसके द्वारा शरीर पुद्गल दृढताको प्राप्त करते हैं, उसका नाम संहनन है, यह संहनन हड्डियोंकी रचना विशेषरूप होता है, अथवा शक्ति विशेषरूप होता है, संहनन ६ प्रकारका कहा गया है, जैसे-वज्र ऋषभनाराच संहनन १ इस संहननमें वज्र नामकी हड्डी कीलकके आकारकी होती है, और इसके ऊपर एक हड्डी ऐसी होती है, जो परिवेष्टन पट्टकी आकृतिके जैसी होती है, इसका नाम ऋषभ है, तथा दोनों तरफ जो मर्कटबन्ध होता है, उसका नाम नाराच है, तथा च दोनों तरफ मर्कटबन्धसे बन्ध एवं पट्टकी आकृति जैसी तृतीय हड्डीसे परिवेष्टित हुई ऐसी दो हड्डियोंके ऊपर जो इन तीनों हड्डियोंको बहुत अधिक दृढ करनेके लिये कीलेके जैसी गढी हुई

ટીકાર્થ-તથા "છવ્વિહે સંઘયણે પણ્ણત્તે તં જહા" ઇત્યાદિ—

સંહનના ૬ પ્રકાર કહ્યા છે-જેના દ્વારા શરીરનાં પુદ્ગલો દૃઢતાને પ્રાપ્ત કરે છે તેનું નામ સંહનન છે. તે સંહનન હાડકાંઓની વિશિષ્ટ રચનારૂપ હોય છે અથવા શક્તિ વિશેષરૂપ હોય છે તે સંહનનના છ પ્રકારો નીચે પ્રમાણે કહ્યા છે—(૧) વજ્ર ઋષભનારાચ સંહનન, (૨) ઋષભનારાચ સંહનન, (૩) નારાચ સંહનન, (૪) અર્ધનારાચ સંહનન, (૫) કીલિકા સંહનન અને (૬) સેવાર્ત્ત સંહનન

હવે વજ્રઋષભનારાચ સંહનનનું સ્વરૂપ કેવું હોય છે તે પ્રકટ કરવામાં આવે છે—આ સંહનનમાં કીલકના આકારની વજ્ર નામની હડ્ડી (હાડકું) હોય છે. તેના ઉપર એક એવી હડ્ડી હોય છે કે જે પરિવેષ્ટન પટ્ટના જેવા આકારની હોય છે, જેનું નામ ઋષભ છે. તથા બન્ને તરફનો જે મર્કટબન્ધ હોય છે તેનું નામ 'નારાચ' છે તથા બન્ને તરફના મર્કટબન્ધની સાથે બન્ધ અને પટ્ટની આકૃતિ જેવું ત્રીજું હાડકા વડે પરિવેષ્ટિત થયેલા બે હાડકાઓની ઉપર એ ત્રણે હાડકાઓને ખૂબ જ દૃઢ કરવાને માટે ખીલાના જેવી રચનાવાળા

तद् वज्रऋषभनाराचं, तच्च तत्संहनन चेति तत् ।१। तथा-ऋषभनाराचसंहननम्-यत्र संहनने वज्रं नास्ति ऋषभनाराचौ तु विद्येते तत् ॥ २ ॥ नाराचसंहननम् यत्र संहननेन वज्रऋषभौ न स्तः, केवलो नाराचो भवति, तत् ॥ ३ ॥ अर्द्धनाराचसंहननम्-यत्र तु एकपार्श्वेन नाराचो द्वितीयपार्श्वेन च वज्रं तत् ॥४॥

हड्डी रहती है, कि जिसका नाम वज्र अस्थि है, ऐसी रचना विशेष जिस शरीरमें होता है, वह वज्र ऋषभनाराच संहनन है, तात्पर्य इस कथनका केवल यही है, कि जिस शरीरके वेष्टन कीलें और हड्डियां वज्रमय होती हैं, वह पूर्वोक्त संहनन है, व्यवहारमें जिस प्रकार दो काष्ठोंको जोडनेके लिये पहिले तो लोहेकी पंचसे उन्हें जकड दिया जाता है, और फिर उस पंचके ऊपर विशेष मजबूतीके लिये कीले भी ठोक दी जाती है, इसी तरहकी रचना जिस शरीरमें हड्डियोंकी होती है, वही वज्र ऋषभनाराच संहनन है, दूसरा संहनन है ऋषभनाराच संहनन इस संहननमें वज्र नामकी अस्थि नहीं होती है, केवल ऋषभ और नाराचही होते हैं, तृतीय संहनन है नाराच-इस संहननमें वज्र और ऋषभ ये दोनों नहीं होते हैं, केवल नाराच उभयतः मर्कटबन्धही होता है, चतुर्थ संहनन है-अर्धनाराच-इस संहननमें एक तरफ तो नाराच होता है, ओर दूसरी ओर वज्र रहता है, पांचवां

જે હાડકા રહે છે તેનું નામ વજ્ર અસ્થિ છે આ પ્રકારની રચના વિશેષનો જે સંહનનમાં સદ્‌ભાવ હોય છે, તે સંહનનને વજ્રઋષભનારાચ સંહનન કહે છે. આ કથનનો ભાવાર્થ આ પ્રમાણે છે-જે શરીરનાં વેષ્ટન, કીલો (ખીલીઓ) અને હાડકાંઓ વજ્રમય હોય છે તે શરીરને વજ્રઋષભનારાચ સંહનનવાળું કહે જેમ બે લાકડાંને જોડવાને માટે પહેલાં તો લોઢાના પંચ વડે તેમને જકડી લેવામાં આવે છે, અને ત્યાર બાદ વિશેષ મજબૂતીને માટે તે પંચ ઉપર ખીલાઓ પણ ઠોકવામાં આવે છે. આ પ્રકારની હાડકાંની રચના જે શરીરમાં હોય છે તે શરીરને વજ્રઋષભનારાચ સંહનનવાળું શરીર કહે છે.

(૨) ઋષભનારાચ સંહનન--આ સંહનનમાં વજ્ર નામના અસ્થિનો સદ્‌ભાવ હોતો નથી. માત્ર ઋષભ અને નારાચનો જ સદ્‌ભાવ હોય છે

(૩) નારાચ સંહનન--આ સંહનનમાં વજ્ર અને ઋષભ, આ બન્ને હોતાં નથી પણ નારાચ (ઉભયતઃ મર્કટ બન્ધ) જ હોય છે.

(૪) અર્ધનારાચ સંહનન--આ પ્રકારના સંહનનમાં એક તરફ નારાચ હોય છે અને બીજી તરફ વજ્ર રહે છે,

कीलिकासंहननम्—यत्र संहननेऽस्थीनि वज्रापरनामधेयकीलिकामात्रेण अवबद्धानि भवन्ति तत् ॥ ५ ॥ तथा—सेवार्त्तसंहननम्—सेवा=परस्परं पर्यन्तस्पर्शलक्षणा; यत्र संहनने सेवामागतानि अस्थीनि भवन्ति, स्नेहाभ्यवहरणतैलाभ्यङ्गविश्रामणादिरूपां च परिशीलनां नित्यमपेक्षते तत् ॥ ६ ॥ इति । शक्तिविशेषपक्षे तु—'सागवान्' इति भाषाप्रसिद्धशाखोटकाष्ठादेरिव दृढत्वं संहननं बोध्यम् । इति ॥ सू० २१ ॥

तथा—

मूलम्—छव्विहे संठाणे पण्णत्ते, तं जहा-समचउरंसे १, णग्गोहपरिमंडले २, साई ३, खुज्जे ४ वामणे ५ हुंडे ६ सू ॥२२॥

छाया—षड्विधं संस्थानं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—समचतुरस्रम् १, न्यग्रोधपरिमण्डलं २, सादि ३, कुब्जं ४, वामनं ५, हुण्डम् ६ ॥ सू० २२ ॥

संहनन है कीलिका—इस संहननमें हड्डियां वज्र नामक कीलिका मात्रसे बंधी हुई रहती है, तथा छठा संहनन है—सेवार्त्त—इस संहननमें सेवा तक आगत हड्डियां होती हैं, अर्थात् हड्डियां आपसमें एक दूसरी हड्डिके कोनोंसे मिलीजुली रहती हैं। तैल लगाना तैलसे मालिश करना थकावट होने पर विश्राम देना आदि रूप परिशीलना की जो नित्य अपेक्षा रखता है, ऐसा जो संहनन है, वह सेवार्त्त संहनन है, ६ इस प्रकारसे ये ६ संहनन हैं, शक्ति विशेष पक्षमें तो "सागवान्" शाखोट काष्ठ आदिकी तरह जो दृढता है, वह संहननहै, ऐसा जानना चाहिये।सू०२१।

---

(५) કીલિકા સંહનન--આ સંહનનમાં હાડકાં માત્ર વજ્ર નામની કીલિકા વડે જ બંધાયેલાં રહે છે.

(૬) સેવાર્ત્ત સંહનન--આ સંહનનમાં હાડકાંઓ અન્યોન્યની સાથે એક બીજાના ખૂણાઓ વડે મળેલાં રહે છે. આ પ્રકારના સંહનનવાળું શરીર તેલના માલિશની તથા થાક લાગે ત્યારે વિશ્રામ આદિ રૂપ પરિશીલતાની (સેવાની) અપેક્ષા રાખે છે, તેથી એવા સંહનનને સેવાર્ત્ત સંહનન કહે છે. આ પ્રકારના આ છ સંહનન કહ્યા છે. શક્તિવિશેષ પક્ષે તો "સાગવાન્" શાખોટ કાષ્ટ આદિની જેમ જે દૃઢતા છે, તે સંહનન છે, એમ સમજવું જોઈએ. ॥ સૂ. ૨૧ ॥

टीका—' छव्विहे ' इत्यादि—

संस्थानम्-अवयवरचनारूपः शरीराकारः षड्विधं प्रज्ञप्तम् । तद्यथा-समच-तुरस्रम्-समाः=तुल्याः चतस्रः अस्रयः=कोटयो यस्य तत् । अस्रयस्त्विह-चतु-र्दिग्विभागोपलक्षिताः शरीरावयवाः । अयं भावः-यत्र संस्थाने सर्वेऽपि शरीरा-वयवाः चतुर्दिग् विभागोपलक्षिताः=शरीरलक्षणोक्तप्रमाणप्रमिता भवन्ति, न तु न्यूना अधिकाः तत्संस्थानं समचतुरस्रं बोध्यमिति ॥ १ ॥ तथा-न्यग्रोधपरिमण्ड-लम्-यत्र संस्थाने न्यग्रोधवत् परितो मण्डलं भवति तत् । अयं भावः-यथा न्यग्रोधो-

टीकार्थ-तथा—"छव्विहे संठाणे पण्णत्ते" इत्यादि सूत्र २२ ॥

संस्थान छह प्रकारका कहा गया है, जैसे-समचतुरस्रसंस्थान १ न्यग्रोधपरिमण्डल संस्थान २ सादि संस्थान ३ कुब्जसंस्थान ४ वामन संस्थान ५ और हुंडक संस्थान ६ अवयवोंकी रचना रूप जो शरीरका आकार है, उसका नाम संस्थान है, जिस संस्थानमें शरीरका आकार ठीक प्रमाणमें होता है, वह समचतुरस्र संस्थान है, समान कोटि जिसकी होती है, अर्थात् शरीरके अमुक अवयव अमुक दिशाकी ओर उस शरीरके अनुसार इतने प्रमाणवाले होना चाहिये अमुक दिशाकी ओर इतने प्रमाणवाले होने चाहिये इस तरहके प्रमाणसे युक्त जिस शरीरमें उसके अवयव हों कमती बढती न हों ऐसा वह संस्थान सम-चतुरस्र संस्थानहै । दूसरा संस्थान-न्यग्रोधपरिमण्डलहै, इस संस्थानमें न्यग्रोधकी वटवृक्ष तरह परितः मण्डल होनाहै, तात्पर्य ऐसाहै, जैसे-

ટીકાર્થ-તથા " છવ્વિહે સંઠાણે પણ્ણત્તે " ઇત્યાદિ—

સંસ્થાનના છ પ્રકાર કહ્યા છે—(૧) સમચતુરસ્ર સંસ્થાન, (૨) ન્યગ્રોધ પરિમંડલ સંસ્થાન, (૩) સાદિ સંસ્થાન, (૪) કુબ્જ સંસ્થાન, (૫) વામન સંસ્થાન અને (૬) હુંડક સંસ્થાન.

અવયવોની રચના રૂપ જે શરીરનો આકાર છે તેનું નામ સંસ્થાન છે. જે સંસ્થાનમાં શરીરનો આકાર સપ્રમાણ હોય છે, તે સંસ્થાનને સમચતુરસ્ર સંસ્થાન કહે છે. શરીરના જે ભાગના અવયવનું જેટલુ પ્રમાણ હોવું જોઇએ એટલા પ્રમાણવાળા તે અવયવો હોય-કોઈ પણ અવયવના પ્રમાણમાં વધારો ઘટાડો ન હોય, એવા સપ્રમાણ અવયવોવાળા શરીરને સમચતુરસ્ર સંસ્થાન કહે છે.

ન્યગ્રોધપરિમંડલ સંસ્થાન—ન્યગ્રોધ એટલે વડનું ઝાડ. જેમ વડનું ઝાડ ઉપરના ભાગમાં પરિપૂર્ણ આકારવાળું હોય છે, પણ તે નીચેના ભાગમાં પરિ-

वटवृक्ष उपरि परिपूर्णाकारो भवति, अधस्तु न तथा, तथैव यत्संस्थानं नाभेरुपरि शरीरलक्षणोक्तावयवसमन्वितं भवति, तदधस्तु हीनमधिकं वा भवति, तत्संस्थानं न्यग्रोधपरिमण्डलं बोध्यमिति ॥ २ ॥ तथा-सादि-आदिना-प्रमाणोपेतरूपेण सह वर्तते इति सादि। अत्र आदि शब्देन नाभेरधोभागो गृह्यते। ततश्च यत्र संस्थाने नाभेरधस्तनः प्रदेशः शरीरलक्षणोक्तप्रमाणयुक्तो भवति, उपरिभागस्तु न तथा, तत् संस्थानं सादीत्युच्यते, इति ॥ ३ ॥ कुब्जम्-यत्र संस्थाने पाणिपादशिरोग्रीवरूपा अवयवाः अन्यूनाधिकप्रमाणा भवन्ति अवशिष्टा वक्षः-

न्यग्रोध-वटवृक्ष ऊपरमें परिपूर्ण आकारवाला होता है, और अपने नीचे यह परिपूर्ण आकारवाला नहीं होताहै, इसी तरहसे जो संस्थान नाभिसे ऊपर तो शरीर लक्षणोक्त प्रमाणवाले अवयवोंसे युक्त होता है, और नीचे नाभिसे नीचे ऐसा नहीं होता है, हीन अवयवोंवाला भी होता है, अधिक अवयवोंवाला भी होता है, ऐसा संस्थान न्यग्रोध परिमण्डल संस्थान है, 'सादिसंस्थान' यह तृतीय संस्थान है, इस संस्थानमें आदि शब्दसे नाभिका अधोभाग गृहीत हुआ है, अतः जिस संस्थानमें नाभिसे नीचेका प्रदेश शरीरके लक्षणोंमें जैसा आकारका प्रमाण कहा गया है, उस प्रमाणसे युक्त हो और ऊपरका प्रदेश वैसा न हो ऐसे संस्थानका नाम सादि संस्थान है, यह संस्थान न्यग्रोध परिमण्डल संस्थान विपरीत होता है। कुब्ज यह चतुर्थ संस्थान है-इस संस्थानमें कर, चरण, शिर, ग्रीवा ये सब अवयव अन्यूनाधिक प्रमाणवाले होते

પૂર્ણ આકારવાળું હોતું નથી, એ જ પ્રમાણે જે શરીરનું સંસ્થાન નાભિથી ઉપરના ભાગમાં તો સપ્રમાણ અવયવોથી (શાસ્ત્રોક્ત લક્ષણોવાળાં અવયવોથી) યુક્ત હોય, પરન્તુ નાભિથી નીચે હીન અવયવોવાળું અથવા અધિક પ્રમાણયુક્ત અવયવોવાળું હોય, તે સંસ્થાનને ન્યગ્રોધપરિમંડલ સંસ્થાન કહે છે. આ સંસ્થાનમાં વટવૃક્ષની જેમ પરિતઃ મંડલ હોય છે. તેની સ્પષ્ટતા ઉપર કહ્યા પ્રમાણે સમજવી.

સાદિ સંસ્થાન--અહીં આદિ પદ વડે નાભિનો અધો ભાગ ગૃહીત થયો જે સંસ્થાનમાં નાભિની નીચેના ભાગના અવયવોનો આકાર સપ્રમાણ હોય પણ નાભિની ઉપરના ભાગના અવયવો સપ્રમાણ આકારવાળા ન હોય એવા સંસ્થાનને સાદિ સંસ્થાન કહે છે. આ સંસ્થાન ન્યગ્રોધપરિમંડલ સંસ્થાન કરતાં વિપરીત લક્ષણોવાળું હોય છે.

કુબ્જ સંસ્થાન—આ સંસ્થાનમાં હાથ, પગ, મસ્તક, ડોક આદિ અવયવો અન્યૂનાધિક પ્રમાણવાળા (સપ્રમાણ) હોય છે. પણ વક્ષઃસ્થલ આદિ

स्थलादयस्तु अवयवाः शरीरलक्षणोक्तप्रमाणरहिता भवन्ति, तत् ॥ ४ ॥ वामनम्-यत्र संस्थाने पाणिपादशिरोग्रीवरूपा अवयवाः लघवो भवन्ति, तत् ॥ ५ ॥ तथा-हुण्डम्-यत्र संस्थाने एकमप्यङ्गं शरीरलक्षणोक्तप्रमाणोपेतं न भवति, तत् ६॥सू०२२॥

तथा-

मूलम्--छट्ठाणा अणत्तवओ अहियाए असुहाए अखमाए अणिस्सेयसाए अणाणुगामियत्ताए भवंति, तं जहा--परियाए १, परियाले २, सुए ३, तवे ४, लाभे ५. पूयासक्कारे ६। छट्ठाणा अत्तवओ हियाए जाव आणुगामियत्ताए भवंति, तं जहा--परियाले जाव पूयासक्कारे ॥ सू० २३ ॥

छाया—षट् स्थानानि अनात्मवतः अहिताय अशुभाय अक्षमाय अनिःश्रेयसाय अनानुगामिकतायै भवन्ति, तद्यथा-पर्यायः १, परिवारः २, श्रुतम् ३, तपः ४, लाभः ५, पूजासत्कारः ६। षट् स्थानानि आत्मवतो हिताय यावत् आनुगामिकतायै भवन्ति, तद्यथा-पर्यायः परिवारो यावत् पूजासत्कारः ॥सू०२३॥

हैं, और वक्षःस्थल आदि अवयव शरीर लक्षणोक्त प्रमाणसे रहित होते हैं, ऐसा वह संस्थान कुब्ज संस्थान है, तात्पर्य यह है, कि कुब्ज-संस्थानमें हाथ चरण आदि तो लम्बे होतेहैं, और मध्यभाग छोटा होता है, वामन यह ५ वां संस्थान है, इस संस्थानमें कर, चरण, शिर और ग्रीवा ये अवयव तो लघु होते हैं, और मध्य भाग बड़ा होता है, तथा जिस संस्थानमें एक भी अंग शरीर लक्षणोक्त प्रमाणवाला नहीं होता है, वह हुण्डक संस्थान है ॥ सू० २२ ॥

અવયવો ન્યૂનાધિક પ્રમાણવાળા હોય છે. આ કથનનુ તાત્પર્ય એ છે કે આ સંસ્થાનમાં હાથ, પગ આદિ અંગો તો યોગ્ય લંબાઈવાળા હોય છે, પણ મધ્ય ભાગ મોટો હોય છે.

વામન સંસ્થાન—આ સંસ્થાનમાં હાથ, પગ, મસ્તક, ડોક આદિ અવયવો લઘુ (હીન પ્રમાણવાળા) હોય છે, પણ મધ્ય ભાગ (અધિક પ્રમાણવાળો) હોય છે.

હુંડક સંસ્થાન—જે સંસ્થાનમાં શરીરનું એક પણ અંગ શાસ્ત્રોક્ત લક્ષણવાળા પ્રમાણવાળું હોતું નથી પણ પ્રત્યેક અંગ ન્યૂનાધિક પ્રમાણવાળું હોય છે, તે સંસ્થાનનું નામ હુંડક સંસ્થાન છે. ॥ સૂ. ૨૨ ॥

टीका—' छट्ठाणा ' इत्यादि ।

अनात्मवतः-अकषायो हि आत्मा स्वस्वरूपावस्थितत्वादात्मेति उच्यते, एवं विध आत्मा यस्य भवति स आत्मवान् न आत्मवान्-अनात्मवान् तस्य अनात्मवतः-सकषायजीवस्य षट् स्थानानि=वस्तूनि अहिताय=अपथ्याय, अशुभाय=पापाय, ' असुखाय ' इतिच्छाया पक्षे-असुखाय=दुःखाय, अक्षमाय=

टीकार्थ-"छट्ठाणा अणत्तवओ अहियाए असुहाए" इत्यादि सूत्र २३।

अनात्मावाले जीवके लिये छह स्थान अहितके निमित्त अशुभके निमित्त अक्षान्तिके निमित्त अकल्याणके निमित्त और अनानुगामिकताके निमित्त होते हैं, यहां अनात्मा शब्दसे जिसमें आत्मा नहीं है, ऐसा अर्थ नहीं लिया गया है, किन्तु जिसकी आत्मा कषाय सहित है, ऐसा प्राणी यह अर्थ लिया गया है, क्योंकि कषाय विहीन आत्मा अपने स्वरूपमें अवस्थित रहता है, अतः सच्चे अर्थमें वही आत्मा है, ऐसा आत्मा जिसका होता है, वह आत्मावाला है, और ऐसा आत्मा जिसका नहीं होता है, वह अनात्मावाला है, ऐसे अनात्मावाले जीवको पर्याय आदि ६ स्थान अहित आदिके लिये होते हैं-वे ६ स्थान इस प्रकारसे हैं-पर्याय १, परिवार २, श्रुत ३, तप ४, लाभ ५ और पूजा सत्कार ६ अहितका भाव अपथ्य है, अशुभका तात्पर्य पाप है, अथवा " असुहाए " शब्दकी संस्कृत छाया-" असुखाय " ऐसी भी

ટીકાર્થ-તથા " छट्ठाणा अणत्तओ अहियाए असुहाए " ઇત્યાદિ—

અનાત્માવાળા જીવોને નીચેનાં છ સ્થાન અહિતકારી, અશુભકારી, અક્ષાન્તિકારી, અકલ્યાણકારી, અને અનાનુગામિકતાના નિમિત્ત રૂપ થઇ પડે છે. અહીં ' અનાત્મા ' પદ " આત્મા વિનાનો " આ અર્થનું વાચક નથી. પરન્તુ અહીં કષાયયુક્ત આત્માને માટે જ ' અનાત્મા ' શબ્દનો પ્રયોગ થયો છે, કારણ કે કષાય રહિત આત્મા જ પોતાના મૂળ સ્વરૂપમાં અવસ્થિત રહે છે, માટે કષાય રહિત આત્મા જ ખરા અર્થમાં આત્મા કહેવાને યોગ્ય છે. જે જીવનો આત્મા કષાય રહિત હોય છે એવા જીવને જ આત્માવાળો કહી શકાય છે, જેનો આત્મા એવો હોતો નથી તેને અનાત્માવાળો કહી શકાય છે. એવા કષાયયુક્ત જીવને માટે જે ૬ સ્થાન અહિત આદિનું નિમિત્ત બને છે તે હવે પ્રકટ કરવામાં આવે છે—(૧) પર્યાય, (૨) પરિવાર, (૩) શ્રુત, (૪) તપ, (૫) લાભ અને (૬) પૂજાસત્કાર.

આ સૂત્રમાં અહિત શબ્દ અપથ્યના અર્થમાં, અને અશુભ શબ્દ પાપના અર્થમાં વપરાયો છે. " असुहाए " આ શબ્દની સંસ્કૃત છાયા " असुखाय "

असामर्थ्याय अक्षान्त्यै वा, अनिःश्रेयसाय अकल्याणाय, अनानुगामिकतायै= अशुभानुबन्धाय भवन्ति तद्यथा-पर्यायः=जन्मकालः, प्रव्रज्याकालो वा। अयं च महानेव गृह्यते, यतोऽनात्मवान् महापर्याययुक्तश्चिन्तयति – यदहं ज्येष्ठोऽस्मि जन्मना प्रव्रज्यया वेति। अथवा-स्वल्पोऽपि प्रव्रज्याकालो गृहस्थापेक्षयाऽभिमान-कारणं भवतीति। तत्र-जन्मपर्यायो ब्रह्मदत्तचक्रवर्तिन इव, प्रव्रज्यापर्यायः-कण्ड-रीकस्येवाहितादित्वया भवति। इति ॥१॥ तथा-परिवारः=शिष्यादिः।२।

होती है, तब इसका अर्थ असुख-दुःख ऐसा होता है, तथा अक्षम शब्दका अर्थ असामर्थ्य या अक्षान्ति, अनिःश्रेयसका अर्थ अकल्याण और अनानुगामिकताका अर्थ अशुभानुबन्ध ऐसा होताहै, इस तरहसे ये ६ स्थान क्रोधादि कषाय सहित जीवके लिये अहित आदिके निमित्त होते हैं। पर्यायसे यहां जन्मकाल या प्रव्रज्याकाल लिया गया है, ये जन्मकाल और प्रव्रज्या-काल भी महान् कालके ही गृहीत हुए हैं। अल्प कालके नहीं क्योंकि अनात्मवान् जीव महापर्याय युक्त होकर ऐसा विचार करता है, कि मैं जन्मसे अथवा पर्यायसे ज्येष्ठ हूं इस तरहसे पर्याय उसे अहित अभिमान आदिका कारण बनती है, प्रव्रज्याकाल थोड़ा भी हो तब भी वह उसे अन्य गृहस्थकी अपेक्षा अभिमानका कारण बनता है, जिस प्रकारसे ब्रह्मदत्त चक्रवर्तीके लिये जन्मपर्याय अहित अभिमान आदिका कारण हुई है, और प्रव्रज्या पर्याय कण्डरीकके लिये अहित आदिका

પણ થાય છે તે પક્ષે તેનો અર્થ અસુખ અથવા દુ:ખ થાય છે. 'અક્ષમ' શબ્દનો અર્થ 'અસામર્થ્ય' અથવા 'અક્ષાન્તિ' થાય છે. "અનિઃશ્રેયસ" એટલે 'અકલ્યાણ' અને 'અનાનુગામિકતા' એટલે 'અશુભાનુબન્ધ' એવો અર્થ થાય છે આ પ્રકારના પર્યાય આદિ ૬ સ્થાન ક્રોધાદિ કષાયોથી યુક્ત જીવોને માટે અહિત આદિના નિમિત્ત રૂપ બને છે પર્યાય પદ અહીં જન્મ-કાળ અથવા પ્રવ્રજ્યાકાળનુ વાચક છે તે જન્મકાળ અને પ્રવ્રજ્યાકાળને પણ અહીં દીર્ઘકાલિન રૂપે જ ગ્રહણ કરવામાં આવ્યા છે, અલ્પકાલિન રૂપે ગ્રહણ કરાયા નથી, કારણ કે અનાત્મવાન્ જીવ મહાપર્યાયવાળો હોય તો એવો વિચાર કરે છે કે "હુ જન્મની અપેક્ષાએ અથવા પર્યાયની અપેક્ષાએ જ્યેષ્ઠ છું" આ પ્રકારે તેને તેની પર્યાય અભિમાન આદિનુ કારણ બને છે પ્રવ્રજ્યા કાળ ટૂંકો હોય તો પણ એવા જીવને માટે પ્રવ્રજ્યા અભિમાનનુ કારણ બની શકે છે, કારણ કે તે બ્રહ્મદત્ત ચક્રવર્તીને માટે જન્મપર્યાય અહિત, અભિમાન આદિનું કારણ બની હતી અને કંડરીકને માટે પ્રવ્રજ્યા પર્યાય જેવી રીતે

श्रुतं=पूर्वगतादिरूपं च अहितादितया भवति । तदुक्तम्—

" जह जह बहुस्सुओ संमओ य सीसगणसंपरिवुडो य ।
अविणिच्छिओ य समए तह तह सिद्धंतपडिणीओ ॥ १ ॥ "

छाया—यथा यथा बहुश्रुतः सम्मतश्च शिष्यगणसम्परिवृतश्च ।
अविनिश्चितश्च समये (शास्त्रे) तथा तथा सिद्धान्तप्रत्यनीकः ॥१॥ इति

इति द्वितीयतृतीय स्थाने ॥ २-३ । तथा-तपः-अनशनादि रूपं द्वादशविधम् ४। लाभः=अनशनादीनां प्राप्तिः ५। पूजासत्कारः-पूजा=स्तवादिरूपा, तत्पूर्वकः सत्कारः=वस्त्रादिदानरूपः ६। इति । तथा-एतान्येव षट् स्थानानि

कारण हुई है । तथा शिष्यादि रूप परिवार एवं पूर्वगतादि रूप श्रुत भी उसके लिये अहित आदिका निमित्त होता है । तदुक्तम् ।

" जहा जह बहुस्सुओ " इत्यादि ।

मनुष्य जैसे २ बहुश्रुत होता है, लोकमें मान्य होता है, शिष्य समूहसे परिवृत होता है, वैसे २ वह सिद्धान्तसे श्रद्धा विहीन होकर प्रत्यनीक आचारविचारवाला बनता जाता है, और उससे दूर होता जाता है, इसी तरहसे अनात्म जीवको तप अनशनादि रूप १२ प्रकारका तप, लाभ - अशनादिकी प्राप्ति, पूजासत्कार आदि रूप पूजा और पूजा पूर्वक वस्त्रादि दान रूप सत्कार ये सब स्थान रूप बातें उस अनात्मवाले जीवके लिये अहित आदिके निमित्त होती हैं, परन्तु जो आत्मवान्-निष्कषाय जीव है, उसे ये

અહિત આદિનું કારણુ બની હતી એ પ્રમાણે અનાત્મવાન્ (કષાયયુક્ત) જીવોને માટે પણુ જન્મપર્યાય અને પ્રવ્રજ્યા પર્યાય અહિત આદિનું કારણુ બને છે. અનાત્મવાન્ જીવને માટે શિષ્યાદિ રૂપ પરિવાર અને પૂર્વગત આદિ રૂપ શ્રુત પણુ અહિત, અશુભ, અકલ્યાણુ આદિનું નિમિત્ત બને છે. કહ્યું પણુ છે કે " जहा जह बहुस्सुओ " ઇત્યાદિ—

મનુષ્ય જેમ જેમ બહુશ્રુત થતો જાય છે, લોકમાં માન્ય થતો જાય છે, શિષ્ય સમુદાયથી યુક્ત થતો જાય છે, તેમ તેમ સિદ્ધાન્ત પ્રત્યેની શ્રદ્ધાથી વિહીન બનીને પ્રત્યનીક (વિપરીત) આચાર વિચારવાળો બનતો જાય છે અને તેનાથી દૂર અને દૂર થતો જાય છે. આ કથન અનાત્મવાન્ જીવોને અનુલક્ષીને કરવામાં આવ્યું છે. એ જ પ્રમાણે અનાત્મવાન્ જીવનું અનશનાદિ રૂપ ૧૨ પ્રકારનું તપ પણ તેનું અહિત આદિ કરવાનું નિમિત્ત બને છે. એ જ પ્રમાણે અશન પ્રાપ્તિ આદિ રૂપ લાભ અને પૂજાસત્કાર (વસ્ત્રાદિના દાન દ્વારા થતો સત્કાર અને વંદના નમસ્કાર રૂપ પૂજા) પણ એવા જીવને માટે અહિત આદિનું નિમિત્ત બને છે.

निष्कषाय जीवस्य हितादित्वेन जायन्ते। अमुमेवाभिप्रायं प्रदर्शयितुमाह–'छ ट्ठाणा अत्तवओ हियाए' इत्यादि। अस्यार्थः पूर्वसूत्रवैपरीत्येन भावनीय इति ॥सू०२३॥

तथा--

मूलम्--छव्विहा जाइआरिया मणुस्सा पण्णत्ता, तं जहा-- अंबट्ठा य १ कलंदा य २ वेदेहा ३ वेदिगाइ य ४। हरिया ५ चुंचुणा ६ चेव छप्पेया इब्भजाइया ॥ १ ॥ छव्विहा कुलारिया मणुस्सा पण्णत्ता, तं जहा--उग्गा १ भोगा २ राइण्णा ३ इक्खागा ४ णाया ५ कोरव्वा ६ ॥ सू० २४ ॥

छाया--षड्विधा जात्यार्या मनुष्याः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–अम्बष्ठाश्च १ कालन्दाश्च २ वैदेहा ३ वैदिका इति च ४। हरिता ५ श्चुञ्चुना ६ श्चैव, षडप्येता इभ्यजातयः ॥ १ ॥ षड्विधाः कुलार्या मनुष्याः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–उग्राः १, भोगाः २, राजन्याः ३, ऐक्ष्वाकाः ४, ज्ञाताः ५, कौरव्याः ६ ॥ सू० २४ ॥

सब स्थान हितादिके लिये होते हैं। इसी अभिप्रायको दिखानेके लिये सूत्रकारने "छट्ठाणा अत्तवओ हियाए" इत्यादि सूत्र कहा है, इस सूत्रका अर्थ पूर्व सूत्रसे विपरीत रूपसे भावितकर लेना चाहिये ॥सू०२३॥

"छव्विहा जाइआरिया मणुस्सा पण्णत्ता" इत्यादि सूत्र २४ ॥

सूत्रार्थ–आर्य मनुष्य छह प्रकारके कहे गयेहैं, जैसे–अम्बष्ठ१ कलन्द २ वैदेह ३ वैदिक ४ हारित ५ एवं चुञ्चुना ६ कुलार्य मनुष्य ६ प्रकारके कहे गयेहैं जैसे–उग्र १भोग २ राजन्य३ ऐक्ष्वाक ४ ज्ञात ५ और कौरव्य ६

પરન્તુ જે જીવ આત્મવાન્ (કષાયોથી રહિત) હોય છે, તેને માટે તો પર્યાય, પરિવાર આદિ રૂપ એ જ ૬ સ્થાન હિત, શુભ, કલ્યાણુ આદિનુ બને છે. એ જ વાત સૂત્રકારે "छट्ठाणा अत्तवओ हियाए" સૂત્રપાઠ દ્વારા પ્રકટ કરી છે. આ સૂત્રના અર્થ પૂર્વ સૂત્ર કરતાં વિપરીત ગ્રહણુ કરવો જોઇએ. ॥ સૂ. ૨૩ ॥

તથા "छव्विहा जाइआरिया मणुस्सा पण्णत्ता" ઇત્યાદિ—

સૂત્રાર્થ–આર્ય મનુષ્યોના નીચે પ્રમાણે છ પ્રકાર કહ્યા છે—(૧) અમ્બષ્ઠ, (૨) કલન્દ, (૩) વૈદેહ, (૪) વૈદિક, (૫) હારિત અને (૬) ચુંચુના. કુલાર્ય મનુષ્યના નીચે પ્રમાણે ૬ પ્રકાર કહ્યા છે—(૧) ઉગ્ર, (૨) ભોગ, (૩) રાજન્ય ઐક્ષ્વાક, (૫) જ્ઞાત અને (૬) કૌરવ્ય.

टीका--' छव्विहा ' इत्यादि--

जात्यार्याः-लोकरूढ्या जात्यार्यत्वेन प्रसिद्धा मनुष्याः षड्विधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-अम्बष्ठाश्चेत्यादि गाथा । एताः षडपि इभ्यजातयः-इभमर्हन्तीति, इभ्याः ते तु जघन्यमध्यमोत्कृष्टभेदात् त्रिविधाः । तत्र-ये हस्तिपरिमितमणि-मुक्ता-प्रवाल-सुवर्ण-रजतादि द्रव्यराशिस्वामिनो भवन्ति ते जघन्याः । ये तु हस्ति-परिमित वज्र-मणि-माणिक्य-राशिस्वामिनो भवन्ति ते मध्यमाः । ये तु हस्ति-परिमितकेवलवज्रराशिस्वामिनो भवन्ति ते उत्तमाः । तेषां जातयो बोध्याः ६। तथा-कुलार्याः-लोकरूढ्या कुलार्यत्वेन प्रसिद्धा मनुष्याः षड्विधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-उग्रा भोगा इत्यादि । तत्र-ये आदिनाथेन भगवता ऋषभेण आरक्षकतया व्यवस्थापितास्ते उग्राः १ ये तु गुरुरूपेण स्थापितास्ते भोगाः २, ये पुन-

टीकार्थ-लोकरूढि द्वारा जातिसे आर्यरूपमें प्रसिद्ध जो मनुष्य हैं, वे जात्यार्य हैं । ये जात्यार्य आदिके भेदसे ६ प्रकारके कहे गये हैं । ये छहों जात्यार्य इभ्य जातिके होते हैं । ये जघन्य मध्यम और उत्कृष्टके भेदसे तीन प्रकारके कहे गये हैं । इनमें जो हस्ति परिमित मणि, मुक्ता, प्रवाल, सुवर्ण, रजत आदि द्रव्यराशिके स्वामी होते हैं, वे जघन्य जात्यार्य हैं, जो हस्ति परिमित वज्र, मणि, माणिक्य आदि राशिके स्वामी होते हैं वे मध्यम जात्यार्य हैं, और जो हस्ति परिमित केवल वज्रराशिके स्वामी होते हैं वे उत्तम जात्यार्य हैं । लोकरूढि द्वारा जो कुलार्य रूपसे प्रसिद्ध मनुष्यहैं वे कुलार्य भी उग्र भोग, आदि रूपसे ६ प्रकारके कहे गये हैं । इन में भगवान् आदिनाथके द्वारा जो आरक्षक (कोटवाल) रूपसे व्यवस्थापित किये गये वे उग्र हैं, जो गुरुरूपसे व्यव-

ટીકાર્થ-લોકરુઢિ દ્વારા જેઓ જાતિની અપેક્ષાએ આર્ય ગણાય છે, તે મનુષ્યોને જાત્યાર્ય કહે છે. તેના અમ્બષ્ઠ આદિ ૬ ભેદ બતાવ્યા છે. આ છએ જાત્યાર્ય ઇભ્ય જાતિના હોય છે. તેમને જઘન્ય, મધ્યમ અને ઉત્કૃષ્ટના ભેદથી ત્રણ પ્રકારના કહ્યા છે. જે આર્યો હસ્તિપરિમિત (હાથીના જેટલા વજનના) મણિ, મોતી, પ્રવાલ, સોનું, ચાંદી આદિ દ્રવ્યરાશિના સ્વામી હોય છે, તેમને જઘન્ય જાત્યાર્ય કહે છે. જેઓ હસ્તિપરિમિત વજ્ર, મણિ, માણેક, આદિ દ્રવ્યરાશિના સ્વામી હોય છે, તેમને મધ્યમ જાત્યાર્ય કહે છે. જેઓ હસ્તિપરિમિત વજ્રના સ્વામી હોય છે, તેમને ઉત્તમ જાત્યાર્ય કહે છે. લોક-રુઢિ દ્વારા જે મનુષ્યો કુલાર્ય રૂપે પ્રસિદ્ધ છે તેમને કુલાર્ય કહે છે. તે કુલાર્યના પણ ઉગ્ર આદિ રૂપ છ પ્રકાર કહ્યા છે—

ભગવાન આદિનાથ દ્વારા જેમને આરક્ષક (કોટવાલ) રૂપે નિયુક્ત કરવામાં આવ્યા હતા તેમને ઉગ્ર કહે છે અને જેમને ગુરુ રૂપે નિયુક્ત કર-

वयस्यभावेन स्वीकृतास्ते राजन्या बोध्याः ३। ऐक्ष्वाकाः-ऋषभवंशजाः ४। ज्ञाताः=भगवन्महावीरपूर्वजाः ५। कौरव्या=जिनशान्तिनाथपूर्वजा ६, इति॥सू० २४॥

मूलम्--छव्विहा लोगट्ठिई पण्णत्ता, तं जहा--आगासपइट्ठिए वाए १, वायपइट्ठिए उदही २, उदहीपइट्ठिया पुढवी ३, पुढविपइट्ठिया तसा थावरा पाणा ४, अजीवा जीवपइट्ठिया ५, जीवाः कम्मपइट्ठिया ६ ॥ सू० २५ ॥

छाया---षड्विधा लोकस्थितिः प्रज्ञप्ता, तद्यथा-आकाशप्रतिष्ठितो वातः १, वातप्रतिष्ठित उदधिः २, उदधिप्रतिष्ठिता पृथिवी ३, पृथिवी प्रतिष्ठितास्त्रसाः स्थावराः प्राणाः ४, अजीवा जीवप्रतिष्ठिताः ५, जीवाः कर्मप्रतिष्ठिताः ॥सू० २५॥

टीका--' छव्विहा ' इत्यादि--

लोकस्थितिः=लोकस्य=क्षेत्रलक्षणस्य स्थितिः=व्यवस्था, सा षड्विधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा-आकाशप्रतिष्ठितो वातः=तनुवातघनवातलक्षणः ।१। वातप्रति

स्थापित किये गये-वे भोग हैं २ जो वयस्य (मित्र) भावसे व्यवस्थापित किये गये स्वीकृत किये गये वे राजन्य हैं ऋषभके वंशके जो हैं, वे ऐक्ष्वाकु हैं, भगवान् महावीरके जो पूर्वज हैं वे ज्ञात हैं शान्तिनाथ भगवान्के जो पूर्वज हैं वे कौरव्य हैं ॥ सू० २४ ॥

जातिसे आर्यपन जो होता है, वह लोकस्थितिसे होता है, इसलिये अब सूत्रकार लोकस्थितिकी प्ररूपणा करते हैं—

'छव्विहा लोगट्ठिई पण्णत्ता ' इत्यादि सूत्र २५ ॥

टीकार्थ—लोक क्षेत्रकी स्थिति व्यवस्था छह प्रकारकी कही गई है, जैसे-आकाश प्रतिष्ठित वात १ आकाश प्रतिष्ठित वातमें तनुवात और

વામાં આવ્યા હતા તેમને ભોગ કહે છે. જેમને તેમના દ્વારા વયસ્ય (મિત્ર) ભાવે વ્યવસ્થાપિત (સ્વીકૃત) કરવામાં આવ્યા તેમને રાજન્ય કહે છે. ઋષભના વંશમાં જેમનો જન્મ થયો હોય તેમને ઐક્ષ્વાક કહે છે. ભગવાન મહાવીરના પૂર્વજોને જ્ઞાત કહે છે અને શાન્તિનાથ ભગવાનના પૂર્વજોને કૌરવ્ય (કૌરવ) કહે છે. ॥ સૂ. ૨૪ ॥

લોકસ્થિતિને લીધે જાતિની અપેક્ષાએ આર્યત્વ પ્રાપ્ત થાય છે. તેથી હવે સૂત્રકાર લોકસ્થિતિની પ્રરૂપણા કરે છે—

" છવ્વિહા લોગટ્ઠિઈ પણ્ણત્તા " ઇત્યાદિ—

ટીકાર્થ–લોકક્ષેત્રની સ્થિતિ (વ્યવસ્થા) છ પ્રકારની કહી છે—(૧) આકાશ પ્રતિષ્ઠિત વાત. તેમાં તનુવાત અને ઘનવાત એ બન્ને વાતનો સમાવેશ થાય

ष्ठितः-तनुवातघनवातलक्षणे वाते व्यवस्थित उदधिः=घनोदधिः २। उदधिप्रतिष्ठिता=घनोदधौ व्यवस्थिता पृथिवी=रत्नप्रभादिका। यद्यपि ईषत्प्राग्भारा पृथिवी आकाशप्रतिष्ठिता, अन्याश्चापि विमानपर्वतादि पृथिव्य आकाशादिप्रतिष्ठिता नतूदधिप्रतिष्ठिताः, एवं च "उदधिप्रतिष्ठिता पृथिवी" इति न वक्तव्यं, रत्नप्रभादीनां बाहुल्यात् उदधिप्रतिष्ठितत्वेन पृथिवी उक्तेति बोध्यम् । ३ । तथा-पृथिवीप्रतिष्ठिताः त्रसाः स्थावरा प्राणाः-तत्र त्रसाः प्राणाः=द्वीन्द्रियादयः प्राणिनः पृथिवीप्रतिष्ठिताः=पृथिव्यां व्यवस्थिताः। आकाशादिप्रतिष्ठितः पर्वतविमानादिः पृथिवीनामपि पृथिवीत्वात्तत्रप्रतिष्ठिताः त्रसा जीवा अपि पृथिवीप्रतिष्ठिता एव बोध्याः। तद्गतदेवादित्रसजीवानामविवक्षा वा बोध्या। तथा-

घनवात ये दोनों वात गर्भित हैं। वात प्रतिष्ठित उदधि २, उदधि प्रतिष्ठित पृथिवी-घनोदधिमें प्रतिष्ठित-व्यवस्थित रत्नप्रभा आदि पृथिवी यद्यपि ईषत्प्राग्भारा पृथिवी आकाश प्रतिष्ठित है, तथा और भी विमान पर्वत आदि रूप पृथिवियां आकाश आदिमें प्रतिष्ठित हैं, उदधिमें प्रतिष्ठित नहीं हैं, फिर भी यहां "उदधि प्रतिष्ठिता पृथिवी" ऐसा जो कहा गया है, वह रत्नप्रभा आदिकोंकी बहुलता लेकर कहा गया है, क्योंकि ये पृथिवियां तो उदधि प्रतिष्ठित हैं, ही ३ पृथिवी प्रतिष्ठित त्रस स्थावर जीव (द्वीन्द्रियादिक जीव पृथिवी पर प्रतिष्ठित व्यवस्थित) है। आकाश आदिमें प्रतिष्ठित पर्वत विमान आदि रूप पृथिवियोंमें भी पृथिवीत्व सामान्य होनेके कारण उनमें प्रतिष्ठित त्रस जीव भी पृथिवी प्रतिष्ठितही जानना चाहिये अथवा-विमान

છે. (૨) વાત પ્રતિષ્ઠિત ઉદધિ--તનુવાત ઘનવાત રૂપ વાતમાં વ્યવસ્થિત ઉદધિ એટલે કે ઘનોદધિ (૩) ઉદધિ પ્રતિષ્ઠિત પૃથ્વી--ઘનોદધિમાં પ્રતિષ્ઠિત (વ્યવસ્થિત) રત્નપ્રભા આદિ પૃથ્વી જો કે ઇષત્પ્રાગ્ભારા પૃથ્વી આકાશપ્રતિષ્ઠિત છે અને વિમાન, પર્વત આદિ રૂપ બીજી પૃથ્વીઓ પણ આકાશ આદિમાં પ્રતિષ્ઠિત (વ્યવસ્થિત) છે, ઉદધિમાં પ્રતિષ્ઠિત નથી, છતાં પણ અહીં "ઉદધિ પ્રતિષ્ઠિત પૃથ્વી" આ પ્રકારનું જે કથન કરવામાં આવ્યું છે તે રત્નપ્રભા આદિ પૃથ્વીઓની બહુલતાને લીધે કરવામાં આવ્યુ છે, કારણ કે તે પૃથ્વીઓ તો ઉદધિ પ્રતિષ્ઠિત જ છે. (૪) પૃથ્વી પ્રતિષ્ઠિત ત્રસ સ્થાવર જીવ--કારણ કે દ્વીન્દ્રિયાદિક જીવો પૃથ્વી પર જ વ્યવસ્થિત હોય છે. આકાશ આદિમાં પ્રતિષ્ઠિત પર્વત, વિમાન આદિ રૂપ પૃથ્વીઓમાં પણ પૃથ્વીત્વ સામાન્ય હોવાને કારણે તેમાં પ્રતિષ્ઠિત (રહેલા) ત્રસ જીવો પણ પૃથ્વીપ્રતિષ્ઠિત જ

पृथिवीप्रतिष्ठिताः स्थावराः=बादरवनस्पत्यादयो जीवाः । सूक्ष्माः स्थावरास्तु सकललोकप्रतिष्ठिता इति स्थावरपदेनात्र बादरा एव गृह्यन्ते इति बोध्यम् । इति चतुर्थं स्थानम् । तथा-अजीवाः=औदारिकादि पुद्गला जीवप्रतिष्ठिताः=जीवेषु व्यवस्थिताः । अजीवानां जीवप्रतिष्ठितत्वमनियतं, जीवाऽप्रतिष्ठितत्वेनापि बहुतराणां तेषां तद्भावादिति पञ्चमं स्थानम् । तथा-जीवाः कर्मप्रतिष्ठिताः-कर्मसु=ज्ञानावरणीयादिषु स्थिताः विज्ञेयाः । कर्मप्रतिष्ठितभिन्ना जीवास्तु प्रायो न सन्तीत्यपि बोध्यमिति षष्ठं स्थानम् ॥ सू० २५ ॥

'जीवाः कर्मप्रतिष्ठिताः-' इत्युक्तम्, तेषां जीवानां गत्यादयो भवन्ति, गत्यादयश्च दिश्वेवेति दिशो गत्यादींश्च प्ररूपयति--

मूलम्--छद्दिसाओ पण्णत्ताओ, तं जहा,-पाईणा १, पडीणा २, दाहिणा ३, उईणा, ४, उड्ढा ५, अहा ६। छहिं दिसाहिं जीवाणं गई पवत्तइ, तं जहा--पाईणाए जाव अहाए । १। एव-

गत देवादि त्रस जीवोंकी अविवक्षा समझना चाहिये तथा-पृथिवीमें प्रतिष्ठित स्थावर ऐसा जो कहा गया है, सो इससे बादर वनस्पत्यादि जीवही ग्रहण करना चाहिये क्योंकि सूक्ष्म स्थावर तो सकल लोकमें प्रतिष्ठित हैं, अतः स्थावर पदसे यहां बादर स्थावरही गृहीत हुए हैं, ऐसा समझना चाहिये ४ जीवमें प्रतिष्ठित अजीव औदारिक आदि पुद्गल ५ " अजीवमें प्रतिष्ठित जीव " ऐसा इसलिये नहीं कहा गया है, कि बहुतसे अजीव जीव द्वारा अप्रतिष्ठित हुए भी देखे जाते हैं, और कर्म प्रतिष्ठित जीव ६ ज्ञानावरणीय आदि कर्मोंमें स्थित जीव ॥सू० २५॥

સમજવા જોઈએ. અથવા વિમાનગત દેવાદિ ત્રસજીવોની અવિવક્ષા સમજવી જોઈએ. એટલે કે તેમનો પૃથ્વીપ્રતિષ્ઠિત ત્રસોમાં સમાવેશ થવો જોઈએ નહીં. 'પૃથ્વીપ્રતિષ્ઠિ સ્થાવર' એવું જે કહેવામાં આવ્યું છે તે કથન દ્વારા બાદર વનસ્પતિ આદિ જીવો જ ગ્રહણ કરવા જોઈએ. કારણ કે સૂક્ષ્મ સ્થાવર તો સકલ લોકમાં રહેલા છે. તેથી સ્થાવર પદ દ્વારા અહીં બાદર સ્થાવરને જ ગ્રહણ કરવા જોઈએ. (૫) જીવમાં પ્રતિષ્ઠિત અજીવ—ઔદારિક આદિ પુદ્ગલ અહીં "અજીવમાં પ્રતિષ્ઠિત જીવ" આ પ્રકારનું કથન કરવામાં આવ્યું નથી. તેનું કારણ એ છે કે ઘણા અજીવો જીવ દ્વારા અપ્રતિષ્ઠિત રૂપે પણ જોવામાં આવે છે. (૬) કર્મપ્રતિષ્ઠિત જીવ એટલે કે જ્ઞાનાવરણીય આદિ કર્મોમાં સ્થિત જીવ. ॥ સૂ. ૨૫ ॥

मागई २, वक्कंती ३, आहारे ४, वुड्ढी ५, निवुड्ढी ६, विगुव्वणा ७, गइपरियाए ८, समुग्घाए ९, कालसंजोगे १०, दंसणाभिगमे ११, णाणाभिगमे १२, जीवाभिगमे १३, अजीवाभिगमे १३। एवं पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणवि मणुस्साणवि ॥सू० २६॥

छाया–षड् दिशः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–प्राचीना१, प्रतीचीना२, दक्षिणा३, उदीचीना ४, ऊर्ध्वा ५, अधः ६। षड्भिर्दिग्भिर्जीवानां गतिः प्रवर्तते, तद्यथा–प्राचीनया यावत् अधः । १ । एवम्–आगतिः २, व्युत्क्रान्तिः ३, आहारः ४, वृद्धिः ५, निर्वृद्धिः ६, विक्रिया ७, गतिपर्यायः ८, समुद्घातः ९, कालसंयोगः १०, दर्शनाभिगमः ११, ज्ञानाभिगमः १२, जीवाभिगमः १३, अजीवाभिगमः १४। एवं पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकानामपि मनुष्याणामपि ॥ सू० २६ ॥

टीका––' छद्दिसाओ ' इत्यादि––

दिशोहि–प्राचीना=पूर्वा, प्रतीचीना=पश्चिमा, दक्षिणा, उदीचीना=उत्तरा, ऊर्ध्वा, अधश्चेति षड् बोध्याः । आग्नेयैशानवायव्यनैर्ऋतानां चतसृणां विदिशां तु विदिक्त्वात् दिक्त्वेनाग्रहणात् षडेव दिश उक्ताः । अथवा जीवानां गतिव्युत्क्रा-

---

जीव कर्म प्रतिष्ठित है, ऐसा कहा सो इसी जीवके सम्बन्धको लेकर अब सूत्रकार उन जीवोंकी जो गति होती है, वह दिशाओंमेंही होती है, इस अभिप्रायसे उनकी गतियोंका एवं दिशाओंकी प्ररूपणा करते हैं—'छद्दिसाओ पण्णत्ताओ' इत्यादि सूत्र २६ ॥

टीकार्थ–दिशाएँ छह कही गईहैं, जैसे–प्राचीन (पूर्व)१ प्रतीचीन२ दक्षिण३ उदीचीन उतर४ उर्ध्व५ और अधः६ आग्नेय, ऐशान वायव्य और नैऋत्य ये चार विदिशाएँ हैं, अतः इनका ग्रहण विदिशा होनेके कारण नहीं

આગલા સૂત્રમા એવું કહેવામાં આવ્યું છે કે જીવ કર્મપ્રતિષ્ઠિત છે. જીવોની ગતિ દિશાઓમાં જ થાય છે, તેથી હવે સૂત્રકાર તેમની ગતિઓની તથા દિશાઓની પ્રરૂપણા કરે છે

" छद्दिसाओ पण्णत्ताओ " ઇત્યાદિ—

ટીકાર્થ–દિશાઓ ૬ કહી છે—(૧) પ્રાચીન (પૂર્વ), (૨) પ્રતીચીન (પશ્ચિમ), (૩) દક્ષિણ, (૪) ઉદીચીન (ઉત્તર), (૫) ઉર્ધ્વ દિશા અને (૬) અધોદિશા. ઇશાન, અગ્નિ, નૈઋત્ય અને વાયવ્ય, એ ચાર વિદિશાઓ હોવાથી તેમને અહીં ગ્રહણ કરવામાં આવી નથી, તે કારણે પૂર્વાદિ ૬ દિશાઓ જ અહીં

न्त्यादयः षट्स्वेव दिक्षु भवन्तीति षड् दिशः प्रोक्ताः। यद्वा-षट्स्थानकानुरोधेन षडेव दिश उक्ताः। सम्प्रति गत्यादिकं प्ररूपयति-' छहिं दिसाहिं ' इत्यादिना। जीवानाम् अनुश्रेणिगमनात् पूर्वादिभिः षड्भिर्दिग्भिः गतिः= उत्पत्तिस्थानगमनं प्रवर्तते=भवति ॥ १ ॥ एवम्-जीवानाम् आगतिः=उत्पत्तिस्थानागमनं षड्भिर्दिग्भिः प्रवर्तते। गतिरागतिश्चेति द्वयं प्रज्ञापकापेक्षया पूर्वादिदिशाश्रितं बोध्यम् ॥ २ ॥ तथा-व्युत्क्रान्तिः=उत्पत्तिस्थानप्राप्तस्य जीवस्य उत्पत्तिः। साऽपि ऋजुगतौ षट्स्वेव दिक्षु भवति ॥ ३ ॥ तथा आहारोऽपि षड्-

हुआ इसलिये दिशाएँ ६ ही कही गई हैं। अथवा-जीवों की गति एवं व्युत्क्रान्ति आदि छह ही दिशाओं में होती है इसलिये छह ही दिशाएँ कही गई हैं। अथवा-षट् स्थानक के अनुरोध से ही छह दिशाएँ कही गई हैं। अब गत्यादिककी प्ररूपणा सूत्रकार करते हैं-" छहिं दिसाहिं " इत्यादि जीवों की गति श्रेणिके अनुसार होती है इसलिये वे पूर्वादि छह दिशाओं से होकर ही अपने अधिष्ठित स्थान से उत्पत्ति स्थानके प्रति गमन करते हैं १ इसी प्रकार से जीवोंकी आगति उत्पत्तिस्थानके प्रति आगमन भी छह दिशाओं से ही होता है। तात्पर्य यही है कि गति और आगति ये दोनों ही जीवों की प्रज्ञापक स्थान की अपेक्षा से पूर्वादि दिशाओं के आश्रित होती हैं। तथा-व्युत्क्रान्ति-उत्पत्तिस्थानमें प्राप्त जीव की उत्पत्ति भी ऋजुगति के होने पर छह ही दिशाओंमें होती है ३ तथा आहार भी छह ही दिशाओं से होता है ४

કહેવામાં આવી છે અથવા-જીવોની ગતિ અને વ્યુત્કાન્તિ આદિ ૬ દિશાઓમાં જ થાય છે, તે કારણે દિશાઓ છ જ કહેવામાં આવી છે અથવા છ સ્થાનકનો અધિકાર ચાલતો હોવાથી અહીં ૬ મુખ્ય દિશાઓનું જ કથન કરવામાં આવ્યું છે. હવે સૂત્રકાર ગતિ આદિની પ્રરૂપણા કરે છે—

" છહિં દિસાહિં " ઇત્યાદિ—

જીવોની ગતિ શ્રેણુ અનુસાર થાય છે, તેથી તેઓ પૂર્વાદિ છ દિશાઓમાં થઈને જ પોતાના અધિષ્ઠિત સ્થાનમાંથી ઉત્પત્તિસ્થાન તરફ ગમન કરે છે. ।૧। એ જ પ્રમાણે જીવોની આગતિ-ઉત્પત્તિસ્થાન તરફ આગમન પણ ૬ દિશાઓમાંથી જ થાય છે. આ કથનનું તાત્પર્ય એ છે કે જીવોની ગતિ અને આગતિ આ બન્ને પ્રજ્ઞાપક સ્થાનની અપેક્ષાએ પૂર્વાદિ દિશાઓને આશ્રિત હોય છે ।૨। તથા વ્યુત્કાન્તિ-ઉત્પત્તિસ્થાનને પ્રાપ્ત જીવની તે ઉત્પત્તિસ્થાનમાં ઉત્પત્તિ-પણ ઋજુ ગતિના છએ દિશાઓમાં જ થાય છે. ।૩।

भिरेव दिग्भिर्भवति। यतो जीवाः पूर्वादि दिग्व्यवस्थितप्रदेशावगाढपुद्गलानेव स्पृशन्ति, स्पृष्टानेव चाहरन्तीति ॥ ४ ॥ तथा-वृद्धिः=उपचयः षड्भिर्दिग्भिर्भवति ॥ ५ ॥ एवं षड्दिगाश्रितत्वं निर्वृद्ध्यादिष्वपि बोध्यम्। तत्र-निर्वृद्धिः= शरीरस्य हानिः ॥ ६ ॥ विक्रिया=शरीरस्य वैक्रियकरणम् ॥ ७ ॥ गतिपर्यायः= गमनमात्रं न तु परलोकगमनरूपः, तस्य गत्यागतिशब्दे ग्रहणात् ॥ ८ ॥ समुद्घातः=वेदनादिकः सप्तप्रकारः ॥९॥ कालसंयोगः=समयक्षेत्रे आदित्यादिप्रकाशसम्बन्धलक्षणः। आदित्यादि प्रकाशस्यैव कालनियामकतया कालत्वं बोध्यम्

क्योंकि जीव पूर्वादि दिशाओं के व्यवस्थित प्रदेशों में अवगाढ हुए पुद्गलों का स्पर्श करते हैं और स्पृष्ट हुए उन्हीं पुद्गलों का आहार करते है। ४। तथा-वृद्धि भी-उपचय भी छह दिशाओं से होती है ५ इसी प्रकार से निर्वृद्धि विकुर्वणा आदिकों में भी षट् दिगाश्रितता जाननी चाहिये। शरीर की हानि का नाम निर्वृद्धि है ६। शरीर को भिन्न २ रूप में परिणमाना इसका नाम विक्रिया है ७ गतिपर्याय-सामान्य गमन का नाम है ८। यहां गतिपर्याय से परलोक में जो जीवका गमन होता है वह गृहीत नहीं हुआ है क्योंकि उसका तो ग्रहण गति और आगति में हो चुका है। मूल शरीर को न छोड़कर आत्मा के कुछ प्रदेशों का शरीर से बाहर निकलना इसका नाम समुद्घातहै ९ और यह समुद्घात वेदना समुद्घात आदिके भेदसे ७ प्रकार का कहा गया है। समयक्षेत्रमें मनुष्यक्षेत्रमें-जो आदित्य आदि के प्रकाश का सम्ब-

તથા આહાર પણ છએ દિશાઓમાંથી ગ્રહણ થાય છે, કારણ કે જીવ પૂર્વાદિ દિશાઓમાં રહેલા પ્રદેશોમાં અવગાઢ થયેલાં પુદ્ગલોનો સ્પર્શ કરે છે અને સ્પૃષ્ટ થયેલાં તે પુદ્ગલોનો જ આહાર કરે છે ।૪। તથા વૃદ્ધિ (ઉપચય) પણ છએ દિશાઓમાંથી થાય છે. ।૫। એ જ પ્રમાણે નિર્વૃદ્ધિ, વિકુર્વણા આદિ પણ છએ દિશાઓને આશ્રિત હોય છે, એમ સમજવું.

શરીરની હાનિનું નામ નિર્વૃદ્ધિ છે ।૬। શરીરને જુદા જુદા રૂપે પરિણમાવવું તેનું નામ વિક્રિયા છે. ।૭। ગતિપર્યાય-સામાન્ય ગતિનું નામ ગતિપર્યાય છે. અહીં 'ગતિપર્યાય' પદ પરલોકમાં જીવના ગમનનું વાચક નથી, કારણ કે તેનું તો ગતિ અને આગતિમાં ગ્રહણ થઈ ચુકયું છે. મૂળ શરીરને છોડયા વિના આત્માના કેટલાક પ્રદેશોને બહાર કાઢવા તેનું નામ સમુદ્ઘાત છે. તે સમુદ્ઘાતના વેદના સમુદ્ઘાત આદિ સાત પ્રકાર કહ્યા છે. ।૯। સમયક્ષેત્રમાં-મનુષ્યક્ષેત્રમાં જે સૂર્ય આદિના પ્રકાશનો સંબંધ છે, તે

॥ १० ॥ दर्शनाभिगमः–दर्शनम्–सामान्यग्राही बोधः, तच्चेह–गुणप्रत्ययावध्यादिप्रत्यक्षरूपम् , तेन अभिगमः=वस्तुनः परिच्छेदः, तस्य अभिगमः=प्राप्तिर्वेति ॥ ११ ॥ ज्ञानाभिगमः–ज्ञानं=मत्यादि लक्षणं, तेन तस्य वा अभिगमः ॥ १२ ॥ जीवाभिगमः–जीवानां=प्राणिनाम् अभिगमो गुणप्रत्ययावध्यादिप्रत्यक्षतः ॥ १३ ॥ अजीवाभिगमः–अजीवानां=पुद्गलास्तिकायादीनाम् अभिगमः=परिच्छेदो गुणप्रत्ययावध्यादि प्रत्यक्षतः ॥ १४ ॥ इति । एवम्=अमुना प्रकारेण–यथा जीवानां षड्भिर्दिग्भिः गत्यादीनि भवन्ति तथैव–चतुर्विंशतिदण्डकेषु पञ्चेन्द्रियतिर्यग्यो-

न्ध है वह काल संयोग है यहां काल का नियामक होने से आदित्य आदि के प्रकाश को ही काल कह दिया गया है १० सामान्य को ग्रहण करनेवाला जो बोध है उसका नाम दर्शन है वह दर्शन यहां गुण-प्रत्यय जो अवधि आदि प्रत्यक्ष हैं तद्रूप लिया गया है इस दर्शन से जो वस्तु का परिच्छेद है वह अथवा इसकी जो प्राप्ति है वह दर्शनाभि-गम है ११ मत्यादि रूप ज्ञान से जो अभिगम है वह अथवा मत्यादि रूप ज्ञान का जो अभिगम प्राप्ति है वह ज्ञानाभिगम है :१२ जीवों का जो गुण प्रत्यय अवधि आदि प्रत्यक्ष से परिच्छेद होता है वह जीवा-भिगम है १३ पुद्गलास्तिकाय आदिकों का जो गुण प्रत्यय अवधि आदि प्रत्यक्ष से परिच्छेद ज्ञान होता है वह अजीवाभिगम है १४ इस तरह से जैसे जीवों की छह दिशाओं से ये गत्यादिक वस्तुएँ होती हैं उसी तरह से चौवीस दण्डकों में पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिकों की छह दिशाओं

કાળસંયોગ છે. આદિત્ય આદિ દ્વારા જ કાળનું નિયમન થતું હોવાથી અહીં આદિત્ય આદિના પ્રકાશને જ કાળરૂપે પ્રકટ કરવામાં આવેલ છે. ।૧૦। સામાન્યને ગ્રહણ કરનાર જે બોધ છે, તેનું નામ દર્શન છે. તે દર્શનને અહીં ગુણપ્રત્યય અવધિ આદિ પ્રત્યક્ષ રૂપે ગ્રહણ કરવામાં આવેલ છે. તે દર્શન દ્વારા વસ્તુનો જે પરિચ્છેદ (બોધ) થાય છે તેને અથવા તેની જે પ્રાપ્તિ છે તેનું નામ દર્શનાભિગમ છે. ।૧૧। મતિજ્ઞાન આદિ રૂપ જ્ઞાન વડે જે અભિગમ થાય છે તેને અથવા મતિજ્ઞાન આદિ રૂપ જ્ઞાનનો જે અભિગમ (પ્રાપ્તિ) થાય છે તેને જ્ઞાનાભિગમ કહે છે. ।૧૨। ગુણપ્રત્યય અવધિ આદિ પ્રત્યક્ષ વડે જીવોનો જે પરિચ્છેદ (બોધ) થાય છે તેનું નામ જીવાભિગમ છે ।૧૩। પુદ્ગલાસ્તિકાય આદિકોનો ગુણપ્રત્યય અવધિ આદિ પ્રત્યક્ષ વડે જે પરિચ્છેદ (બોધ-જ્ઞાન) થાય છે તેનું નામ અજીવાભિગમ છે. ।૧૪। આ રીતે જેમ જીવોની ગતિ આદિ ઉપર્યુક્ત વસ્તુઓ છએ દિશામાં થાય છે, એ જ પ્રમાણે ચોવીસ દંડકના જીવોમાંના પચેન્દ્રિય તિર્યંચયોનિકોની ગતિ

निकानां षड्भिर्दिग्भिर्गत्यादीनि भवन्ति, मनुष्याणामपि षड्भिर्दिग्भिर्गत्यादीनि भवन्तीति। नारकादयो द्वाविंशतिदण्डकगता जीवास्तु षड्भिर्दिग्भिर्गत्यादिमन्तो न भवन्ति। तथाहि-नारकादीनां द्वाविंशतेर्जीवविशेषाणां तु नारकदेवेषु उत्पत्त्यभावात् ऊर्ध्वाधोदिशौ आश्रित्य गत्यागत्योरभावः। तथा-गुणप्रत्ययावधिलक्षणप्रत्यक्षरूपा दर्शनज्ञानजीवाजीवाभिगमा अपि तेषां न भवन्ति। भवप्रत्ययावधिपक्षेतु नारकज्योतिष्कास्तिर्यगवधयः, भवनपतिव्यन्तरा ऊर्ध्वावधयः, वैमानिकास्त्वधोऽवधयः, शेषास्तु निरवधयो बोध्याः॥ इतिः सू० २६॥

से गत्यादिक वस्तुएँ होती हैं मनुष्यों की भी छह दिशाओं से ये गत्यादिक वस्तुएँ होती हैं। परन्तु जो नारकादि २२ दण्डकगत जीव हैं वे छह दिशाओं से गत्यादिवाले नहीं होते हैं क्योंकि २२ जीव विशेष रूप नारक आदिकों का नारक देवों में उत्पत्ति का अभाव रहता है इसलिये ऊर्ध्वदिशा और अधो दिशा को आश्रित करके गति और आगति का अभाव है नारक मरकर द्वितीय भव में नारक और देव नहीं होता है और देव मरकर अनन्तर भव में द्वितीय भव में देव एवं नारक नहीं होता है। तथा गुण प्रत्यय-तपस्यादि जन्य अवधिज्ञान अवधिदर्शन जीवाभिगम और अजीवाभिगम ये सब भी उनके नहीं होते हैं परन्तु भवप्रत्यय अवधिपक्षमें तो नारक एवं ज्योतिष्क तिर्यगवधिवाले होतेहैं भवनपति और व्यन्तर ऊर्ध्व अवधिवाले होतेहैं।

અધિક વસ્તુઓ છએ દિશામાંથી થાય છે. મનુષ્યોની ગતિ આદિક વસ્તુઓ પણ છએ દિશામાંથી થાય છે. પરન્તુ નારક આદિ ૨૨ દંડકગત જીવો છએ દિશાઓમાં ગતિ આદિવાળાં હોતા નથી, કારણ કે તે ૨૨ પ્રકારના જીવ-વિશેષ રૂપ નારક આદિકોનો નારકો અને દેવોમાં ઉત્પત્તિનો અભાવ રહે છે. તે કારણે તે જીવોમાં ઉર્ધ્વદિશા અને અધોદિશા તરફની ગતિ અને આગતિનો અભાવ રહે છે. નારક જીવ તેનું નરકગતિનું આયુષ્ય પૂરૂં કરીને ત્યાર પછીના ભવમાં નારક રૂપે કે દેવ રૂપે ઉત્પન્ન થતો નથી, અને દેવ પણ તેનું દેવલોકનું આયુષ્ય પૂરૂં કરીને પછીના ભવમાં દેવ અથવા નારક રૂપે ઉત્પન્ન થતો નથી. તથા તેમનામાં ગુણપ્રત્યય (તપસ્યાદિ જન્ય) અવધિજ્ઞાન, અવધિ-દર્શન, જીવાભિગમ અને અજીવાભિગમનો સદ્ભાવ હોતો નથી. પરન્તુ ભવ-પ્રત્યય અવધિની અપેક્ષાએ વિચાર કરવામાં આવે તો નારક અને જ્યોતિષ્ક તિર્યગ્ અવધિવાળા હોય છે, ભવનપતિ અને વ્યન્તર ઉર્ધ્વ અવધિવાળા

मनुष्याणामजीवाभिगमः प्रोक्त इति मनुष्यप्रस्तावात् सम्प्रति संयतमनुष्याणाम् आहारग्रहणाग्रहणकारणानि प्राह—

मूलम्—छहिं ठाणेहिं समणे णिग्गंथे आहारमाहरमाणे णाइक्कमइ, तं जहा--वेयणे वेयावच्चे २ ईरियट्ठाए ३ य संजमट्ठाए ४। तह पाणवत्तियाए ५ छट्ठं पुण धम्मचिंताए ६ ॥ १ ॥ छहिं ठाणेहिं समणे णिग्गंथे आहारं वोच्छिदमाणे णाइक्कमइ, तं जहा--आयंके १ उवसग्गे २, तितिक्खणे बंभचेरगुत्तीए ३। पाणिदयातव ५ हेउं, सरीरवुच्छेयणट्ठाए ६ ॥१॥ सू० २७ ॥

छाया—षड्भिः स्थानैः श्रमणो निर्ग्रन्थः आहारमाहरन् नातिक्रामति, तद्यथा—वेदनावैयावृत्त्ये २ ईर्यार्थाय ३ च संयमार्थाय ४। तथा प्राणवृत्तये ५ षष्ठं पुनर्धर्मचिन्तायै ६ ॥ १ ॥ षड्भिः स्थानैः श्रमणो निर्ग्रन्थ आहारं व्युच्छिन्दन् नातिक्रामति, तद्यथा—आतङ्के १ उपसर्गे २ तितिक्षणे ब्रह्मचर्यगुप्तेः ३। प्राणिदया तपो ५ हेतोः शरीरव्युच्छेदनार्थाय ६ ॥१॥ सू० २७ ॥

टीका—' छहिं ठाणेहिं ' इत्यादि—

श्रमणो निर्ग्रन्थः षड्भिः स्थानैः=कारणैः आहारम् आहरन्=भुञ्जानो नाति-

---

एवं वैमानिक देव अधो अवधिवाले होते हैं तथा इनसे बाकी बचे हुए जीव अवधिरहित होते हैं ॥ सू० २६ ॥

मनुष्यों को अजीवाभिगम कहा गया है सो इसी मनुष्य के प्रस्ताव को लेकर अब सूत्रकार संयत मनुष्यों के आहार ग्रहण और आहार अग्रहण के जो कारण हैं उनका कथन करते हैं—

'छहिं ठाणेहिं समणे णिग्गंथे' इत्यादि सूत्र ॥ २७ ॥

टीकार्थ—छह कारणों से आहार को ग्रहण करने वाला श्रमण निर्ग्रन्थ

હોય છે અને વૈમાનિક દેવો અધો અવધિવાળા હોય છે. બાકીના જીવો અવધિ રહિત હોય છે. ॥ સૂ. ૨૬ ॥

આગલા સૂત્રમાં જ મનુષ્યોને અજીવાભિગમવાળા કહેવામાં આવ્યા છે. તેથી એ જ મનુષ્યના પ્રસ્તાવ સાથે સુસંગત એવા સંયત મનુષ્યોના આહાર ગ્રહણ અને આહાર અગ્રહણના જે કારણો છે તેમનું સૂત્રકાર હવે નિરૂપણ કરે છે " छहिं ठाणेहिं समणे णिग्गंथे " ઇત્યાદિ—

સૂત્રાર્થ—નીચે દર્શાવેલા છ કારણોથી આહાર ગ્રહણ કરનાર શ્રમણ નિર્ગ્રંથ જિનાજ્ઞાનું ઉલ્લંઘન કરનારો ગણાતો નથી.

क्रामति=नोल्लङ्घयति जिनाज्ञाम्। तानि स्थानान्याह गाथया-तद्यथा-वेदनावैयावृत्त्ये-वेदना=क्षुद्वेदना, वैयावृत्त्यं=गुरुशुश्रूषा वेदना च वैयावृत्त्यं चेति समाहारः, तस्मिन्, क्षुद्वेदनारूपे गुर्वादिवैयावृत्त्यरूपे च कारणद्वये सति आहारमाहरन् निर्ग्रन्थो जिनाज्ञां नातिक्रामति।१।२॥ तथा-ईर्यार्थाय-ईर्या=गमनं, तदर्थाय=तद्विशुद्ध्यर्थम्। बुभुक्षितो ह्यशक्तो भवति। न चाशक्त ईर्याविशुद्धि कर्तुं शक्नोतीति भावः॥ ३॥ च=पुनः संयमार्थाय-संयमः=पृथिवीकायादिभेदैः सप्तदशविधः, तस्य अर्थाय=तन्निमित्तम्॥ ४॥ तथा-प्राणवृत्तये-प्राणाः=उच्छ्वा-

जिनाज्ञाका उल्लङ्घन नहीं करता है वे छह कारण ऐसे हैं एक वेदना और दूसरा वैयावृत्य २ जब क्षुधा वेदना रूप कारण उपस्थित होता है तब श्रमण निर्ग्रन्थ उसकी उपशान्तिके निमित्त आहार ग्रहण करता है इस स्थितिमें वह जिनाज्ञाका विराधक नहीं होताहै। इसी प्रकार गुरु की शुश्रूषा (सेवा) करने रूप वैयावृत्ति रूप कारण जब उपस्थित हो जाता है तब वह यदि आहार को ग्रहण करता है तब भी वह जिनाज्ञा का विराधक नहीं है इसी प्रकार जब ईर्यापथ की विशुद्धि होने रूप कारण उपस्थित हो जाता है तब भी यदि वह श्रमण निर्ग्रन्थ आहार ग्रहण करता है तो वह जिनाज्ञा का विराधक नहीं होता है क्योंकि जो बुभुक्षित (भूखा) होता है वह अशक्त हो जाता है अशक्त से ईर्यापथ की विशुद्धि यथावत् हो नहीं सकती है अतः उस ईर्यापथ की विशुद्धि करने के लिये यदि वह आहार लेता है तो जिनाज्ञा का विराधक नहीं होता है इसी प्रकार यदि श्रमण निर्ग्रन्थ पृथिवीकायादिक की रक्षा करने रूप १७ प्रकार के संयम के निमित्त आहार ग्रहण करता है तो

(૧) વેદના—જ્યારે ક્ષુધાવેદના રૂપ કારણ ઉપસ્થિત થાય છે ત્યારે તેના ઉપશમનને માટે આહાર ગ્રહણ કરતો સાધુ જિનાજ્ઞાનો વિરાધક ગણાતો નથી.

(૨) વૈયાવૃત્ય—ગુરુની શુશ્રૂષા કરવા રૂપ કારણ જ્યારે ઉપસ્થિત થાય, ત્યારે જો તે આહાર ગ્રહણ કરે તો જિનાજ્ઞાનો વિરાધક ગણાતો નથી.

(૩) ઇર્યાપથની વિશુદ્ધિ રૂપ કારણ જ્યારે ઉપસ્થિત થાય ત્યારે પણ જો તે શ્રમણ નિર્ગ્રંથ આહાર ગ્રહણ કરે તો તે પરિસ્થિતિમાં પણ તે જિનાજ્ઞાનો વિરાધક ગણાતો નથી, કારણ કે જે સાધુ ભૂખ્યો હોય છે તે અશક્ત બની જવાને કારણે ઇર્યાપથની વિશુદ્ધિ યોગ્ય પ્રકારે જાળવી શકતો નથી. તેથી આ ઇર્યાપથની વિશુદ્ધિ કરવાને નિમિત્તે જો તે આહાર લે તો જિનાજ્ઞાનું ઉલ્લંઘનકર્તા ગણાતો નથી.

सादयः, तेषां वृत्तिः=स्थितिस्तस्यै-प्राणधारणार्थमित्यर्थः ॥ ५ ॥ षष्ठं स्थानं पुनः धर्मचिन्तायै=धर्मचिन्तनार्थं = सूत्रार्थानुचिन्तनादि लक्षण - शुभचित्तप्रणिधानार्थमिति ६। एभिः षड्भिः कारणैराहारमाहरतां साधूनां जिनाज्ञाविराधना नास्तीति । तथा-श्रमणो निर्ग्रन्थः षड्भिः स्थानैः आहारं व्युच्छिन्दन्=परित्यजन् जिनाज्ञां नातिक्रामति । तानि स्थानान्याह-तद्यथा-आतङ्के=ज्वरादौ । १ ।

जिनाज्ञा का विराधक नहीं होता है इसी प्रकार से यदि श्रमण निर्ग्रन्थ उच्छ्वास आदि रूप प्राणों की रक्षा के निमित्त आहार ग्रहण करता है तो वह जिनाज्ञा का विराधक नहीं होता है इसी प्रकारसे यदि वह श्रमण निर्ग्रन्थ धर्मचिन्तन के निमित्त-सूत्रार्थ के बार २ विचार करने रूप शुभचित्त प्रणिधान के निमित्त यदि आहार ग्रहण करता है तो वह जिनाज्ञा का विराधक नहीं होता है इस प्रकार के इन ६ कारणों को लेकर आहार को ग्रहण करने वाले साधुजनों में जिनाज्ञा की विराधकता नहीं आती है । इसी प्रकार से ६ कारणों को लेकर यदि श्रमण निर्ग्रन्थ आहार का परित्याग कर देता है तो भी उसमें जिनाज्ञा की विराधकता नहीं आती है-वे ६ कारण ये हैं-यदि श्रमण निर्ग्रन्थ ज्वरादि अवस्थावाला हो गया हो तो उस स्थिति में यदि वह आहार नहीं लेता है तो वह जिनाज्ञा का विराधक नहीं होता है १ यदि देव

પૃથ્વીકાયાદિકની રક્ષા કરવા રૂપ ૧૭ પ્રકારના સંયમને નિમિત્તે આહાર ગ્રહણ કરનાર શ્રમણ નિર્ગ્રંથ પણ જિનાજ્ઞાનો વિરાધક ગણાતો નથી.

(૫) ઉચ્છ્વાસ આદિ રૂપ પ્રાણોની સ્થિતિ નિમિત્તે આહાર ગ્રહણ કરનાર શ્રમણ નિર્ગ્રંથ પણ જિનાજ્ઞાનો વિરાધક થતો નથી.

(૬) જો તે શ્રમણ નિર્ગ્રંથ ધર્મચિન્તનને નિમિત્તે-સૂત્રાર્થનો વારંવાર વિચાર કરવા રૂપ શુભ ચિત્તપ્રણિધાનને નિમિત્તે-આહાર ગ્રહણ કરે તો પણ તે જિનાજ્ઞાનો વિરાધક ગણાતો નથી. આ પ્રકારના આ ૬ કારણોને લીધે આહાર ગ્રહણ કરનાર સાધુને જિનાજ્ઞાના વિરાધક ગણાતા નથી.

એ જ પ્રમાણે નીચે દર્શાવેલાં ૭ કારણોને લીધે જો કોઈ શ્રમણ નિર્ગ્રંથ આહારનો પરિત્યાગ કરી નાખે તો તેને પણ જિનાજ્ઞાનો વિરાધક ગણી શકાતો નથી--

જો કોઈ શ્રમણ નિર્ગ્રંથ જ્વર આદિથી પીડાતો હોય તો એવી પરિસ્થતિમાં જો તે આહાર લેવો બંધ કરી દે તો તેને જિનાજ્ઞાનો વિરાધક ગણાતો નથી.

उपसर्गे=देवमनुष्यादिजनिते उपद्रवे । २ । तथा-ब्रह्मचर्यगुप्तेः तितिक्षणे=अधिसहने च, आहारत्यागे हि ब्रह्मचर्यं सुरक्षितं भवतीति बोध्यम् । ३ । तथा-प्राणिदयातपोहेतोः-प्राणिदया=पृथिव्यादि जीवरक्षा, तपः=अनशनादिकं द्वादशविधम्, तयोर्हेतोः-प्राणिदयानिमित्तं तपोनिमित्तं चेत्यर्थः । ४ । ५ ॥ तथा-शरीरव्यवच्छेदनार्थाय शरीरस्य व्यवच्छेदनं=त्यागः-भक्तप्रत्याख्यानादिरूपः, तदर्थाय=तन्निमित्तम् आहारं परित्यजन् जिनाज्ञाविराधको न भवतीति षष्ठं स्थानम् ॥सू०२७॥

मनुष्य आदि कृत उपसर्गों युक्त हो जाताहै तो ऐसी स्थिति में आहार का परित्याग करने वाला श्रमण निर्ग्रन्थ जिनाज्ञा का विराधक नहीं होता है २ ब्रह्मचर्य की रक्षा करने के निमित्त यदि वह आहार का परित्याग कर देता है तो वह जिनाज्ञा का विराधक नहीं होता है क्योंकि कुछ समय के लिये किया गया आहार का परित्याग ब्रह्मचर्य का रक्षक माना गया है प्राणिदया पृथिव्यादिक जीवों की रक्षा के हेतु एवं अनशन आदि १२ प्रकार के तपों के आचरण के निमित्त यदि वह श्रमण निर्ग्रन्थ आहार का परित्याग कर देता है तो वह जिनाज्ञा का विराधक नहीं होना है इसी प्रकार से वह यदि भक्त प्रत्याख्यानादि (संथारा) रूप विशिष्ट तपस्या के निमित्त आहार का परित्याग कर देता है नो वह जिनाज्ञा का विराधक नहीं होना है इस प्रकार के इन ६ कारणों के निमित्त आहार का परित्याग करने वाला श्रमण निर्ग्रन्थ जिनाज्ञा का विराधक नहीं होता है ॥ सू० २७ ॥

જો કોઇ શ્રમણુ નિર્ગ્રંથ પર દેવ, મનુષ્ય આદિ કૃત ઉપસર્ગો આવી પડે, તો એવી પરિસ્થિતિમાં જો તે આહારનો પરિત્યાગ કરી નાખે તો તેને જિનાજ્ઞાનું ઉલ્લંઘન કરનારો ગણી શકાય નહીં.

બ્રહ્મચર્યની રક્ષા નિમિત્તે આહારનો પરિત્યાગ કરી નાખનારો શ્રમણુ પણુ જિનાજ્ઞાનો વિરાધક ગણાતો નથી, કારણુ કે અમુક સમય પર્યન્તના આહારના ત્યાગ દ્વારા બ્રહ્મચર્ય વ્રતની રક્ષા થાય છે, એવું માનવામાં આવે છે.

(૪) પ્રાણુદયા-પૃથ્વીકાય આદિ જીવોની રક્ષાના હેતુથી અને (૫) અનશન આદિ ૧૨ પ્રકારના તપના આચરણુને નિમિત્તે આહારનો પરિત્યાગ કરનારો સાધુ પણુ જિનાજ્ઞાનો વિરાધક ગણાતો નથી.

(૬) ભક્તપ્રત્યાખ્યાન (સંથારો) આદિ રૂપ વિશિષ્ટ તપસ્યાને નિમિત્તે આહારનો પરિત્યાગ કરનારો શ્રમણુ નિર્ગ્રંથ પણુ જિનાજ્ઞાનો વિરાધક ગણાતો નથી. આ પ્રકારના છ કારણોને નિમિત્તે પરિત્યાગ કરનાર સાધુ જિનાજ્ઞાનો વિરાધક બનતો નથી. ॥ સૂ. ૨૭ ॥

अनन्तरसूत्रे श्रमणस्याहारग्रहणाग्रहणकारणानि अभिहितानि, सम्प्रति श्रमणादयोऽनुचितकारिण उन्मत्ता भवन्तीत्युन्मादस्थानान्याह—

मूलम्--छहिं ठाणेहिं आया उम्मायं पाउणेज्जा, तं जहा--अरहंताणमवण्णं वयमाणे १, अरहंतपण्णत्तस्स धम्मस्स अवण्णं वयमाणे २, आयरियउवज्झायाणमवण्णं वयमाणे ३, चाउव्वन्नस्स संघस्स अवण्णं वयमाणे ४ जक्खावेसेण चेव ५, मोहणिज्जस्स चेव कम्मस्स उदएणं ६ ॥ सू० २८ ॥

छाया—षड्भिः स्थानैरात्मा उन्मादं प्राप्नुयात्, तद्यथा-अर्हतामवर्णं वदन् १, अर्हत्प्रज्ञप्तस्य धर्मस्य अवर्णं वदन् २, आचार्योपाध्यायानामवर्णं वदन् ३, चातुर्वर्ण्यस्य संघस्य अवर्णं वदन् ४, यक्षावेशेन चैव ५, मोहनीयस्य चैव कर्मण उदयेन ६ ॥ सू० २८ ॥

टीका—'छहिं ठाणेहिं' इत्यादि--

आत्मा=जीवः षड्भिः स्थानैः उन्मादम्=उन्मत्ततां प्राप्नुयात्। तान्येव स्थानान्याह-तद्यथा-अर्हताम् अवर्णम्=अश्लाघाम् - अस्पृहणीयतां निन्दां वा वदन्=ब्रुवाणः, उन्मादं प्राप्नुयात् १। एवम्-अर्हत्प्रज्ञप्तस्य-धर्मस्य २, आचार्यो-

इस प्रकार से इस ऊपर के सूत्र में श्रमणको आहार लेने और न लेने के कारणों को दिखाया अब सूत्रकार जिन कारणों से अनुचित्त कार्य करनेवाले श्रमणजन उन्मत्त (पागल) होते हैं उन उन्माद होने के कारणों का कथन करते हैं—

"छहिं ठाणेहिं आया उम्मायं पाउणेज्जा" सूत्र २८ ॥

टीकार्थ-छह कारणोंसे आत्मा जीव उन्मादको-उन्मत्तता को प्राप्त करता है वे छह कारण इस प्रकार से हैं-अर्हन्तों का अवर्णवाद करना १ अर्हन्त भगवन्तों की अश्लाघा-अस्पृहणीयता अथवा निंदा करनेवाला

ઉપરના સૂત્રમાં શ્રમણોને આહાર ગ્રહણ કરવાના તથા આહારનો પરિત્યાગ કરવાના કારણો બતાવવામાં આવ્યાં હવે સૂત્રકાર એ વાત પ્રકટ કરે છે કે કયાં કયાં અનુચિત કાર્યો કરનાર શ્રમણ નિર્ગ્રંથ ઉન્મત્ત (પાગલ) બની જાય છે. "छहिं ठाणेहि आया उम्मायं पाउणेज्जा" ઇત્યાદિ—

ટીકાર્થ-આત્મા (જીવ) નીચેના ૭ કારણોને લીધે ઉન્માદને પ્રાપ્ત કરે છે. (૧) અર્હન્ત ભગવાનોનો અવર્ણવાદ કરવાથી એટલે કે તેમની અશ્લાઘા

पाध्यायानां ३, साधुसाध्वीश्रावकश्राविकारूपचतुर्विधसंघस्य ४ च अवर्णं-वदन् उन्मादं प्राप्नुयात् ४। उन्मादश्च महामिथ्यात्वरूपः, स च अर्हदादीनामवर्णं-वदतो भवत्येव। यद्वा-उन्मादो=वातुलत्वं, स च अर्हदाद्यवर्णवक्तॄणां कुपितशासन-देवताप्रभावाद् भवत्येवेति बोध्यम्। इति स्थानचतुष्टयम्। तथा-यक्षावेशेन=निमित्तान्तरप्रकुपितदेवाधिष्ठिततया उन्मादं प्राप्नुयादिति पञ्चमं स्थानम्।

जीव उन्मादको प्राप्त करता है १ ऐसा जीव उन्मत्त हुए की तरह माना जाता है इसी प्रकार से जो जीव अर्हत्प्रज्ञप्त अर्हन्त भगवन्त द्वारा कथित धर्मका-श्रुत चारित्ररूप धर्मका अवर्णवाद करता है वह उन्मादको प्राप्त करता है २ आचार्य उपाध्याय का जो अवर्णवाद करता है वह उन्माद को प्राप्त करता है ३ साधु, साध्वी, श्रावक एवं श्राविका रूप चतुर्विध संघ का जो अवर्णवाद करता है वह उन्माद को प्राप्त करता है ४ उन्माद महामिथ्यात्व रूप होता है अतः यह उन्हीं जीवों को होता है जो अर्हन्त आदिकों का अवर्णवाद करते हैं अथवा-उन्माद शब्द का अर्थ वातुलता भी होता है चित्त की अस्थिरता रूप होता है -यह अर्हत् आदिकों के अवर्णवाद को कहने वाले जीवों को कुपित हुए शासनदेवों के प्रभाव से हो ही जाता है इस प्रकार के उन्माद होने के ये चार कारण हैं तथा पांचवां कारण यक्षावेश है-निमित्ता-न्तर से कुपित हुए देव से अधिष्ठित होने के कारण जीव उन्माद दशा

અથવા નિંદા કરવાથી જીવ ઉન્માદને પ્રાપ્ત કરે છે. અથવા એવા જીવને ઉન્મત્ત જેવો (પાગલ જેવો) માનવામાં આવે છે. (૨) જે જીવ અર્હંતો દ્વારા પ્રરૂપિત શ્રુત ચારિત્રરૂપ ધર્મનો અવર્ણવાદ કરે છે તે પણ ઉન્માદને પ્રાપ્ત કરે છે. (૩) જે જીવ આચાર્ય કે ઉપાધ્યાયનો અવર્ણવાદ કરે છે તે પણ ઉન્માદને પ્રાપ્ત કરે છે. (૪) સાધુ, સાધ્વી, શ્રાવક અને શ્રાવિકા રૂપ ચતુર્વિધ સંઘનો અવર્ણવાદ કરનાર જીવ પણ ઉન્માદને પ્રાપ્ત કરે છે. ઉન્માદ મહા-મિથ્યાત્વ રૂપ હોય છે, તેથી તેનો સદ્ભાવ એવાં જીવોમાં જ રહે છે કે જેઓ અર્હંત આદિનો અવર્ણવાદ કરતા હોય છે. અથવા ઉન્માદ શબ્દનો અર્થ બકવાટ પણ થાય છે અને તે ચિત્તની અસ્થિરતા રૂપ હોય છે, અર્હંત આદિની નિંદા કરનાર જીવો પર શાસન દેવો કુપિત થઈને તેમની આ પ્રકા-રની દુર્દશા કરી નાખે છે. આ પ્રકારે ઉન્માદના ચાર કારણોનું નિરૂપણ કરીને હવે સૂત્રકાર પાંચમાં કારણનું કથન કરે છે-યક્ષાવેશ-કોઈ પણ કારણે કોપાયમાન થયેલા દેવથી અધિષ્ઠિત થવાને કારણે શરીરમાં દેવનો પ્રવેશ

तथा-मोहनीयस्य कर्मण उदयेन=मिथ्यात्ववेदशोकादिरूपमोहनीयकर्मण उदयावलिकायां प्रवेशेन उन्मादं प्राप्नुयादिति षष्ठं स्थानम् ॥ सू० २८ ॥

यत्रोन्मादस्तत्र प्रमादोऽपि तिष्ठत्येवेति प्रमादस्य षड्विधत्वमाह—

मूलम्—छव्विहे पमाए पण्णत्ते, तं जहा—मज्जप्पमाए १, णिद्दप्पमाए २, विसयप्पमाए ३, कसायप्पमाए ४, जूयप्पमाए ५, पडिलेहणापमाए ६ ॥ सू० २९ ॥

छाया—षड्विधः प्रमादः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-मद्यप्रमादो १ निद्राप्रमादो २ विषयप्रमादः ३ कषायप्रमादो ४ द्यूतप्रमादः ५ प्रतिलेखनाप्रमादः ६ ॥सू०२९॥

को प्राप्त कर लेता है यह बात तो प्रत्यक्ष ही है। तथा उन्माद होने का छठा कारण मोहनीय कर्म का उदय है जीव को जब विशिष्टावस्था में मिथ्यात्व वेद शोक आदि के रूप में मोहनीय कर्म का उदय होता है तब जीव उन्माद की अवस्था को प्राप्त करताहै इस प्रकार के ये ६ कारण जीव को उन्माद अवस्था की प्राप्ति करातेहैं यह प्रकट कियाहै ॥सू०२८॥

जहां उन्माद होता है वहां प्रमाद भी होता ही है इसलिये अब सूत्रकार प्रमाद की षट् प्रकारता का निरूपण करते हैं—

'छव्विहे पमाए पण्णत्ते' इत्यादि सूत्र २९ ॥

टीकार्थ-प्रमाद ६ प्रकारका कहा गयाहै जैसे—मद्यप्रमाद १ निद्रा प्रमाद २ विषय प्रमाद ३ कषाय प्रमाद ४ द्यूतप्रमाद ५ और प्रतिलेखना प्रमाद ६

થવાને કારણે જીવ ઉન્માદ દશાને પ્રાપ્ત કરે છે, આ વાતનો તો ઘણા લોકોને પ્રત્યક્ષ અનુભવ થતો હોય છે.

(૬) મોહનીય કર્મના ઉદયથી પણ જીવ ઉન્માદ દશા પ્રાપ્ત કરે છે. જીવને જ્યારે વિશિષ્ટાવસ્થામાં મિથ્યાત્વ, વેદ, શોક આદિ રૂપે મોહનીય કર્મનો ઉદય થાય છે ત્યારે પણ જીવ ઉન્માદની અવસ્થાને પ્રાપ્ત કરે છે. આ પ્રકારના ૬ કારણોને લીધે જીવ ઉન્માદની અવસ્થાને પ્રાપ્ત કરે છે, એમ સમજવું. ॥ સૂ ૨૮ ॥

જ્યાં ઉન્માદ હોય છે ત્યાં પ્રમાદ પણ હોય છે જ. તેથી હવે સૂત્રકાર પ્રમાદના ૬ પ્રકારોનું નિરૂપણ કરે છે

" છવ્વિહે પમાએ પણ્ણત્તે " ઇત્યાદિ—

પ્રમાદના નીચે પ્રમાણે ૬ પ્રકાર કહ્યા છે—(૧) મદ્યપ્રમાદ, (૨) નિદ્રાપ્રમાદ, (૩) વિષયપ્રમાદ, (૪) કષાયપ્રમાદ, (૫) દ્યૂતપ્રમાદ અને (૬) પ્રતિ-

टीका—'छव्विहे' इत्यादि—

प्रमादः—सदुपयोगाभावः, स च षड्विधः प्रज्ञप्तः तद्यथा—मद्यप्रमादः—मद्यं=मदजनकं सुरादिकं तदेव प्रमादकारकत्वात् प्रमादः। अथवा—मद्यपानजनितः प्रमादो मद्यप्रमादः। उक्तं च—

"चित्तभ्रान्तिर्जायते मद्यपानाच्चित्ते भ्रान्ते पापचर्यामुपैति।
पापं कृत्वा दुर्गतिं यान्ति मूढाः, तस्मान्मद्यं नैव देयं न पेयम्"॥१॥इति।१।

तथा—निद्राप्रमादः—निद्रारूपः प्रमादः निद्राजनितः प्रमादो वा।

सदुपयोग के अभाव का नाम प्रमाद है यह प्रमाद मद्यप्रमाद आदि के भेद से ६ प्रकार का जो कहा गया है उसका तात्पर्य ऐसा है—मदजनक जो सुरा शराब आदिक हैं वे ही प्रमाद कारक होने से प्रमाद रूप कह दिये गये हैं अथवा मद्य के पान से जनित जो प्रमाद है वह मद्यप्रमाद है। कहा भी है—"चित्तभ्रान्तिर्जायते मद्यपानात्" इत्यादि।

मद्यपान से जीवों के चित्त में भ्रान्ति असावधानता आ जाती है इस भ्रान्ति से जब चित्त भ्रान्त हो जाता है तो फिर उस में पाप ही पाप करने की विचार धारा उठने लगती है। वह पाप करके दुर्गति में जाता है। इसलिये मद्य न किसी को देना चाहिये और न उसे पीना ही चाहिये। ऐसा यह प्रथम स्थान है। द्वितीय स्थान निद्राप्रमाद रूप है निद्रा स्वयं प्रमाद है अथवा निद्रा से उत्पन्न जो प्रमाद है वह निद्राप्रमाद है। कहा भी है—

છેખના પ્રમાદ. સદુપયોગના અભાવનું નામ પ્રમાદ છે. તે પ્રમાદના મદ્યપ્રમાદ આદિ ૬ પ્રકાર કહ્યા છે.

મદજનક જે સુરા (શરાબ) આદિ છે તેઓ પ્રમાદકારક હોવાથી તેમને પ્રમાદરૂપ કહેવામાં આવ્યા છે અથવા મદિરાપાન કરવાને લીધે જનિત જે પ્રમાદ છે તેનું નામ મદ્યપ્રમાદ છે. કહ્યુ પણ છે કે—

"चित्तभ्रान्ति र्जायते मद्यपानात्" ઈત્યાદિ—

મદ્યપાન કરવાથી મદ્યપાન કરનાર જીવોના ચિત્તમાં ભ્રાન્તિ—અસાવધાનતા આવી જાય છે. આ ભ્રાન્તિ દ્વારા જ્યારે ચિત્ત ભ્રાન્ત થઈ જાય છે, ત્યારે જીવને પાપ કૃત્યો કરવાના જ વિચારો આવવા લાગે છે, તેથી તે જીવ પાપ કૃત્યો કરીને દુર્ગતિમાં જાય છે. તે કારણે કોઈને મદિરા આપવી જોઈએ પણ નહીં અને પોતે પણ તેનુ સેવન કરવું જોઈએ નહીં. આ પ્રકારનું આ પહેલું સ્થાન (કારણ) સમજવું.

હવે નિદ્રાપ્રમાદ રૂપ બીજા સ્થાનનું સ્પષ્ટીકરણ કરવામાં આવે છે—

उक्तं च—" निद्राशीलो न श्रुतं नापि वित्तं, लब्धुं शक्तो हीयतेचैव ताभ्याम् (श्रुतवित्ताभ्याम्)।

ज्ञान द्रव्याभावतो दुःखभागी, लोकद्विष्टेस्यादतो निद्रयाऽलम् " ॥ १ ॥ इति ॥ २ ॥

तथा—विषयप्रमादः-विषयाः=शब्दादयः, तद्रूपः प्रमादः, तज्जनितो वा प्रमादः । उक्तं च--

" विषयव्याकुलचित्तो, हितमहितं वा न वेत्ति जन्तुरयम् ।
तस्मादनुचितचारी, चरति चिरं दुःखकान्तारे " ॥१॥ इति ॥३॥

" निद्राशीलो न श्रुतं नापि वित्तं " इत्यादि

निद्राशील प्राणी श्रुत की और वित्त द्रव्य की कमाई से वंचित रहता है इन श्रुत और वित्त के अभाव से वह सदा दुःखी का दुःखी ही बना रहता है इसलिये इस निद्रा को जीत कर जो अपने वश में कर लेते हैं वे धन्य हैं २।

शब्दादि विषय रूप जो प्रमाद है वह अथवा शब्दादि जनित जो प्रमाद है वह विषय प्रमाद है । कहा भी है—

" विषय व्याकुल चित्तो " इत्यादि ।

जब यह प्राणी विषयों से व्याकुल हो जाता है तब अपने हित और अहित की पहिचान नहीं कर पाता है । ऐसे वह अनुचित्त कामों को करनेवाला जीव बहुत काल तक इस संसार रूपी गहनवनमें परिभ्रमण करताहै। उससे वह ऐसे काम करते हुए कभी पार नहीं हो पाताहै।

નિદ્રા પોતે જ પ્રમાદ રૂપ છે અથવા નિદ્રાજનિત જે પ્રમાદ છે તેનું નામ નિદ્રાપ્રમાદ છે. કહ્યુ પણ છે કે " निद्राशीलो न श्रुतं नापि वित्तं " ઈત્યાદિ—

નિદ્રાશીલ જીવ શ્રુતની અને ધનની પ્રાપ્તિથી વંચિત રહે છે. અને શ્રુત અને ધનના અભાવથી તે સદા દુઃખમાં જ સબડયા કરે છે. તેથી આ નિદ્રાને જીતી લેનાર અથવા તેને આધીન નહીં થનાર જીવ ધન્ય છે.

હવે વિષયપ્રમાદનું સ્વરૂપ સમજાવવામાં આવે છે—શબ્દાદિ વિષયરૂપ પ્રમાદ છે તેને વિષયપ્રમાદ કહે છે. અથવા શબ્દાદિ જનિત જે પ્રમાદ છે તેને વિષયપ્રમાદ કહે છે. કહ્યુ પણ છે કે " विषयव्याकुलचित्तो " ઈત્યાદિ

જ્યારે જીવ વિષયોમાં લીન થઈ જાય છે ત્યારે તે પોતાનું હિત શેમાં છે અને અહિત શેમાં છે તે સમજી શકતો નથી. તેથી તે અનુચિત કાર્યો કર્યા કરે છે. તેને લીધે તે દીર્ઘકાળ સુધી આ સંસાર રૂપ ગહન વનમાં પરિભ્રમણ કર્યા કરે છે. અને તે આ સંસાર સાગરને પાર કરવાને કદી સમર્થ થતો નથી.

कषायप्रमादः-कषायाः=क्रोधादयः, तद्रूपस्तज्जनितो वा प्रमादः ।
उक्तं च-" चित्तरत्नमसंक्लिष्टमान्तरं धनमुच्यते ।
यस्य तन्मुषितं दोषै (क्रोधादिरूपै) स्तस्य शिष्टा (अत्रशिष्टाः) विपत्तयः इति ॥ ४॥

तथा—द्यूतप्रमादः-द्यूतं-प्रसिद्धं, तद्रूपस्तज्जनितो वा प्रमादः ।
उक्तंचात्र—" द्यूतासक्तस्य सच्चित्तं, धनं कामाः सुचेष्टितम् ।
नश्यन्त्येव परं शीर्षं, नामापि च विनश्यति ॥ १ ॥ इति ५ ॥

कषाय रूप प्रमाद कषाय प्रमाद है अथवा क्रोधादि कषायों से जन्य जो प्रमाद है वह कषाय प्रमाद है । कहा भी है—

" चित्तरत्नमसंक्लिष्टं " इत्यादि ।

कषायों से असंक्लिष्ट जो चित्त है वही एक आन्तर रत्न कहा गया है । जिसका यह चित्त रूपी रत्न कषाय रूप दोषों से चुरालिया गया है उसके पास दुनिया भर की विपत्तियां आती रहती हैं और उसे दुःखित किया करती हैं ।

द्यूत जुवा खेलना रूप जो प्रमाद है वह द्यूतप्रमाद है अथवा द्यूत से जन्य जो प्रमाद है वह द्यूत प्रमाद है । कहा भी है-द्यूतासक्तस्य सच्चित्तं " इत्यादि ।

द्यूतक्रीडा में आसक्त हुए प्राणी का चित्त, धन, काम शुभचेष्टायें

હવે કષાય પ્રમાદનું સ્વરૂપ સ્પષ્ટ કરવામાં આવે છે—કષાય રૂપ જે પ્રમાદ છે તેનું નામ કષાય પ્રમાદ છે. અથવા ક્રોધાદિ કષાયોથી જનિત જે પ્રમાદ છે તેનું નામ કષાય પ્રમાદ છે. કહ્યુ પણ છે કે—

" चित्तरत्नमसंक्लिष्ट " ઇત્યાદિ—

કષાયોથી અસંક્લિષ્ટ (રહિત) જે ચિત્ત છે, તેને જ એક આન્તર રત્ન રૂપ કહ્યુ છે. જેનું તે ચિત્ત રૂપી રત્ન કષાય રૂપ દોષો દ્વારા ચોરી લેવામાં અથવા ખૂંચવી લેવામાં આવ્યું છે એવા જીવની પાસે દુનિયાભરની વિપત્તિઓ આવતી રહે છે અને તેને દુઃખિત કર્યા કરે છે.

હવે દ્યૂતપ્રમાદનું સ્વરૂપ પ્રકટ કરવામાં આવે છે. દ્યૂત (જુગાર) રમવા રૂપ જે પ્રમાદ છે તેનું નામ દ્યૂતપ્રમાદ છે. અથવા દ્યૂતથી જન્ય જે પ્રમાદ છે તેનું નામ દ્યૂતપ્રમાદ છે. કહ્યું પણ છે કે :

" द्यूतासक्तस्य सच्चित्तं " ઇત્યાદિ—

દ્યૂતક્રિયામાં આસક્ત થયેલા જીવનું ચિત્ત, ધન, કામ-શુભચેષ્ટાઓ અને

तथा-प्रतिलेखनाप्रमादः-प्रतिलेखना=प्रत्युपेक्षणा, सा च द्रव्यक्षेत्रकालभावभेदाच्चतुर्विधा। तत्र द्रव्यप्रत्युपेक्षणा-वस्त्रपात्राद्युपकरणानामुभयकालम्, यच्चक्षुषा निरीक्षणं, तद्रूपा, उक्तञ्च--

" वत्थपत्ताइवत्थूणं, कालद्दुगनिरिक्खणे।
पमायकरणा जीवो, पडिज्जा भवसायरे ॥ १ ॥"

छाया--वस्त्रपात्रादिवस्तूनां, कालद्विकनिरीक्षणे।
प्रमादकरणाज्जीवः पतेद् भवसागरे ॥ १ ॥ (१)।

कायोत्सर्गनिपदनशयनस्थानस्य स्थण्डिलानां मार्गस्य विहारक्षेत्रस्य च या

एवं शिर ये सब नष्ट हो जाते हैं, यहां तक कि उनका नाम भी संसार में लेना बुरा माना जाता है।

छट्ठा प्रमाद प्रतिलेखना प्रमाद है प्रतिलेखना नाम पडिलेहणा का है यह द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के भेद से चार प्रकार की है दोनों समय वस्त्र पात्रादि उपकरणों की पडिलेहणा करना यह द्रव्य प्रतिलेखना चक्षु से अच्छी तरह से देखने रूप होती है। कहा भी है " वत्थपत्ताइ वत्थूणं " इत्यादि।

जो जीव दोनों काल वस्त्र पात्रादि वस्तुओं के पडिलेहणा करने में प्रमादी होते हैं वे इस संसार में ही परिभ्रमण करते रहते हैं कायोत्सर्ग करने के स्थानका बैठने के स्थान का शयन करने के स्थान का स्थण्डिल जाने के रास्ते का और विहार क्षेत्र का जो अच्छी तरह

બુદ્ધિ નષ્ટ થઈ જાય છે એટલું જ નહીં પણ સંસારમાં તેનું નામ લેવું એ પણ પાપ ગણાય છે.

હવે પ્રતિલેખના પ્રમાદનું સ્વરૂપ પ્રકટ કરવામાં આવે છે—પ્રતિલેખના એટલે પડિલેહણા અથવા વસ્ત્રાદિની પલેવણા તે દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર, કાળ અને ભાવના ભેદથી ચાર પ્રકારની છે. બન્ને સમય વસ્ત્ર, પાત્રાદિની પ્રતિલેખના (પલેવણા) કરવી તેનું નામ દ્રવ્ય પ્રતિલેખના છે. તે દ્રવ્ય પ્રતિલેખના ચક્ષુ વડે સંભાળ પૂર્વક નિરીક્ષણ કરવા રૂપ હોય છે. કહ્યું પણ છે કે :

" વત્થપત્તાઇવત્થૂણં " ઇત્યાદિ—

જે જીવ બન્ને કાળ વસ્ત્ર, પાત્રાદિની પ્રતિલેખના કરવામાં પ્રમાદ કરે છે, તે આ સંસાર સાગરમાં પરિભ્રમણ કર્યા જ કરે છે. કાયોત્સર્ગ કરવાના સ્થાનનું, બેસવાના સ્થાનનું, શયન કરવાના સ્થાનનું, સ્થંડિલ જવાના (ઠલ્લે જવાના) રસ્તાનું અને વિહાર ક્ષેત્રનું જે સારી રીતે નિરીક્ષણ કરવું

कपायप्रमादः-कपायाः=क्रोधादयः, तद्रूपस्तज्जनितो वा प्रमादः ।
उक्तं च-" चित्तरत्नमसंक्लिष्टमान्तरं धनमुच्यते ।
यस्य तन्मुपितं दोषै (क्रोधादिरूपै) स्तस्य शिष्टा (अवशिष्टाः) विपत्तयः इति ॥ ४॥

तथा—द्यूतप्रमादः-द्यूतं-प्रसिद्ध, तद्रूपस्तज्जनितो वा प्रमादः ।
उक्तंचात्र—" द्यूतासक्तस्य सच्चित्तं, धन कामाः सुचेष्टितम् ।
नश्यन्त्येव परं शीर्षं, नामापि च विनश्यति ॥ १ ॥ इति ५ ॥

कषाय रूप प्रमाद कषाय प्रमाद है अथवा क्रोधादि कषायों से जन्य जो प्रमाद है वह कषाय प्रमाद है । कहा भी है—

" चित्तरत्नमसंक्लिष्टं " इत्यादि ।

कषायों से असंक्लिष्ट जो चित्त है वही एक आन्तर रत्न कहा गया है । जिसका यह चित्त रूपी रत्न कषाय रूप दोषों से चुरालिया गया है उसके पास दुनिया भर की विपत्तियां आती रहती हैं और उसे दुःखित किया करती हैं ।

द्यूत जुवा खेलना रूप जो प्रमाद है वह द्यूतप्रमाद है अथवा द्यूत से जन्य जो प्रमाद है वह द्यूत प्रमाद है । कहा भी है-द्यूतासक्तस्य सच्चित्तं " इत्यादि ।

द्यूतक्रीडा में आसक्त हुए प्राणी का चित्त, धन, काम शुभचेष्टायें

હવે કષાય પ્રમાદનું સ્વરૂપ સ્પષ્ટ કરવામાં આવે છે—કષાય રૂપ જે પ્રમાદ છે તેનું નામ કષાય પ્રમાદ છે. અથવા ક્રોધાદિ કષાયોથી જનિત જે પ્રમાદ છે તેનું નામ કષાય પ્રમાદ છે. કહ્યું પણ છે કે—

" चित्तरत्नमसंक्लिष्टं " ઈત્યાદિ—

કષાયોથી અસંક્લિષ્ટ (રહિત) જે ચિત્ત છે, તેને જ એક આન્તર રત્ન રૂપ કહ્યુ છે. જેનુ તે ચિત્ત રૂપી રત્ન કષાય રૂપ દોષો દ્વારા ચોરી લેવામાં અથવા ખૂંચવી લેવામાં આવ્યુ છે એવા જીવની પાસે દુનિયાભરની વિપત્તિઓ આવતી રહે છે અને તેને દુઃખિત કર્યા કરે છે.

હવે દ્યૂતપ્રમાદનું સ્વરૂપ પ્રકટ કરવામાં આવે છે. દ્યૂત (જુગાર) રમવા રૂપ જે પ્રમાદ છે તેનું નામ દ્યૂતપ્રમાદ છે. અથવા દ્યૂતથી જન્ય જે પ્રમાદ છે તેનું નામ દ્યૂતપ્રમાદ છે. કહ્યું પણ છે કે :

" द्यूतासक्तस्य सच्चित्तं " ઈત્યાદિ—

દ્યૂતક્રિયામાં આસક્ત થયેલા જીવનું ચિત્ત, ધન, કામ-શુભચેષ્ટાઓ અને

तथा-प्रतिलेखनाप्रमादः-प्रतिलेखना=प्रत्युपेक्षणा, सा च द्रव्यक्षेत्रकालभावभेदाश्चतुर्विधा। तत्र द्रव्यप्रत्युपेक्षणा-वस्त्रपात्राद्युपकरणानामुभयकालम्, यच्चक्षुषा निरीक्षणं, तद्रूपा, उक्तञ्च--

" वत्थपत्ताइवत्थूणं, कालदुगनिरिक्खणे।
पमायकरणा जीवो, पडिज्जा भवसायरे ॥ १ ॥"

छाया--वस्त्रपात्रादिवस्तूनां, कालद्विकनिरीक्षणे।
प्रमादकरणाज्जीवः पतेद् भवसागरे ॥ १ ॥ (१)।

कायोत्सर्गनिपदनशयनस्थानस्य स्थण्डिलानां मार्गस्य विहारक्षेत्रस्य च या

एवं शिर ये सब नष्ट हो जाते हैं, यहां तक कि उनका नाम भी संसार में लेना बुरा माना जाता है।

छट्ठा प्रमाद प्रतिलेखना प्रमाद है प्रतिलेखना नाम पडिलेहणा का है यह द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के भेद से चार प्रकार की है दोनों समय वस्त्र पात्रादि उपकरणों की पडिलेहणा करना यह द्रव्य प्रतिलेखना चक्षु से अच्छी तरह से देखने रूप होती है। कहा भी है " वत्थपत्ताइ वत्थूणं " इत्यादि।

जो जीव दोनों काल वस्त्र पात्रादि वस्तुओं के पडिलेहणा करने में प्रमादी होते हैं वे इस संसार में ही परिभ्रमण करते रहते हैं कायोत्सर्ग करने के स्थानका बैठने के स्थान का शयन करने के स्थान का स्थण्डिल जाने के रास्ते का और विहार क्षेत्र का जो अच्छी तरह

બુદ્ધિ નષ્ટ થઈ જાય છે એટલું જ નહીં પણ સંસારમાં તેનું નામ લેવું એ પણ પાપ ગણાય છે.

હવે પ્રતિલેખના પ્રમાદનું સ્વરૂપ પ્રકટ કરવામાં આવે છે—પ્રતિલેખના એટલે પડિલેહણા અથવા વસ્ત્રાદિની પલેવણા તે દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર, કાળ અને ભાવના ભેદથી ચાર પ્રકારની છે. બન્ને સમય વસ્ત્ર, પાત્રાદિની પ્રતિલેખના (પલેવણા) કરવી તેનું નામ દ્રવ્ય પ્રતિલેખના છે. તે દ્રવ્ય પ્રતિલેખના ચક્ષુ વડે સંભાળ પૂર્વક નિરીક્ષણ કરવા રૂપ હોય છે. કહ્યું પણ છે કે:

" वत्थपत्ताइवत्थूणं " ઇત્યાદિ—

જે જીવ બન્ને કાળ વસ્ત્ર, પાત્રાદિની પ્રતિલેખના કરવામાં પ્રમાદ કરે છે, તે આ સંસાર સાગરમા પરિભ્રમણ કર્યા જ કરે છે. કાયોત્સર્ગ કરવાના સ્થાનનું, બેસવાના સ્થાનનું, શયન કરવાના સ્થાનનું, સ્થંડિલ જવાના (ઠલ્લે જવાના) રસ્તાનું અને વિહાર ક્ષેત્રનું જે સારી રીતે નિરીક્ષણ કરવું

निरीक्षणा सा क्षेत्रप्रत्युपेक्षणा (२)। या च कालविशेषपर्यालोचना सा कालप्रत्युपेक्षणा (३)। या च पुनः धर्मजागरिकादिरूपा सा भावप्रत्युपेक्षणा (४)॥ उक्तं च--

" किं कयं किंवा सेसं, किं करणिज्जं तवं च न करेमि ?।
पुव्वावरत्तकाले, जागरओ भावपडिलेहा ॥ १ ॥

छाया--किं कृतं किंवा शेष किंकरणीयं तपश्च न करोमि ? ।
पूर्वापररात्रकाले जागरको भावपतिलेखा ॥ १ ॥ इति ।

तत्र-प्रत्युपेक्षणायां यः प्रमादः=शिथिलता जिनाज्ञातिक्रमो वा स प्रत्युपेक्षणाप्रमादः ॥ ६ ॥ इति । अनेन दशविधसामाचारीलक्षणेषु प्रमार्जनभिक्षाचर्यादिषु इच्छाकारमिथ्याकारादिषु यः प्रमादः सोऽपि गृहीतः, प्रत्युपेक्षणायाः

से निरीक्षण करना है वह क्षेत्र प्रत्युपेक्षणा (पडिलेहणा) है २ जो काल विशेष की विचारणा है वह काल प्रत्युपेक्षणा है ३ जो धर्म के निमित्त जागरण आदि रूप प्रत्युपेक्षणा (पडिलेहणा) है वह भाव प्रत्युपेक्षणा (पडिलेहणा) है४ कहा भीहै-"किं कय किं वा सेसं"इत्यादि।

मैने अभी तक क्या किया है अब और बाकी मुझे क्या करना है मैं तप नहीं करता हूँ इस प्रकार की जोपूर्वापर-रात्रकाल में विचारणा है वह भावप्रतिलेखा है। इस प्रत्युपेक्षणा में जो प्रमाद है शिथिलता है अथवा जिनेन्द्र भगवान की आज्ञा का अतिक्रम करना है वह प्रत्युपेक्षणा प्रमाद है ॥ ६ ॥ इस कथन से दश प्रकार की सामाचारी रूप जो प्रमार्जन भिक्षाचर्या आदि हैं एवं इच्छाकार मिथ्याकार आदिकों में जो प्रमाद है वह गृहीत हो गया है। क्योंकि प्रत्यु-

---

તેનું નામ ક્ષેત્ર પ્રત્યુપેક્ષણા (ક્ષેત્ર પડિલેહણા) છે. કાળવિશેષની જે વિચારણા છે તેનું નામ કાળ પ્રત્યુપેક્ષણા છે. ધર્મને નિમિત્તે જે જાગરણ આદિ રૂપ પ્રત્યુપેક્ષણા (પડિલેહણા) છે તેનું નામ ભાવ પ્રત્યુપેક્ષણા (પડિલેહણા) છે. કહ્યું પણ છે કે : " किं कय किं वा सेस " ઇત્યાદિ—

" મેં હજી સુધી શું કર્યું અને હવે મારે શું કરવાનું બાકી છે ? હું તપ તો કરતો નથી, મારૂં શું થશે ? " આ પ્રકારની પૂર્વાપર રાત્રિકાળમાં જે વિચારણા ચાલે છે તેનું નામ ભાવ પ્રતિલેખના છે. આ પ્રત્યુપેક્ષણામાં જે પ્રમાદ છે-શિથિલતા છે, અથવા જિનેન્દ્ર ભગવાનની આજ્ઞાનું જે ઉલ્લંઘન થાય છે તેનું નામ જ પ્રત્યુપેક્ષણા પ્રમાદ છે આ કથન દ્વારા દસ પ્રકારની સમાચારી રૂપ જે પ્રમાર્જન, ભિક્ષાચર્યા આદિ છે, તેમાં જે પ્રમાદ છે તે પ્રમાદ તથા ઇચ્છાકાર મિથ્યાકાર આદિકોમાં જે પ્રમાદ છે, તે ગૃહીત થઈ

सामाचारीत्वात् प्रमार्जनादीनां सामाचार्यन्तर्गतत्वेन प्रत्युपेक्षणाप्रमादेन प्रमार्जनादिप्रमादस्यापि संग्रहणादिति ॥ सू० २९ ॥

अनन्तरसूत्रे प्रत्युपेक्षणाप्रमाद उक्तः, सम्प्रति प्रमादविशिष्टां तामेव प्रत्युपेक्षणामाह--

मूलम्--छव्विहा पमायपडिलेहणा पण्णत्ता, तं जहा--आरभडा १ सम्मद्दा २ वज्जेयव्वा य मोसली ३ तइया । पप्फोडणा ४ चउत्थी वक्खित्ता ५ वेइया ६ छट्ठी ॥१॥ छव्विहा अप्पमायपडिलेहणा पण्णत्ता, तं जहा--अणच्चावियं १ अवलियं २ अणाणुबंधि ३ अमोसलिं ४ चेव । छप्पुरिमा नवखोडा ५ पाणीपाणविसोहणं ६ ॥ २ ॥ सू० ३० ॥

छाया--षड्विधा प्रमादप्रतिलेखना प्रज्ञप्ता, तद्यथा--आरभटा १ सम्मर्दा २ वर्जयितव्या च मोशली ३ तृतीया । प्रस्फोटना ४ चतुर्थी व्याक्षिप्ता ५ वेदिका ६ षष्ठी ॥ १ ॥ षड्विधा अप्रमादप्रतिलेखना प्रज्ञप्ता, तद्यथा--अनर्तितम् १ अवलितम् २ अननुबन्धि ३ अमोशलि ४ चैव । षट्पुरिमा नवखोटाः ५ पाणीप्राणविशोधनम् ६ ॥ २ ॥ सू० ३० ॥

टीका--' छव्विहा पमायपडिलेहणा ' इत्यादि--

प्रमादप्रतिलेखना--प्रमादः=सदुपयोगाभावः, तत्पूर्विका प्रतिलेखना षड्-

---

पेक्षणा सामाचारी रूप होती है इससे प्रमार्जना आदि ये सब सामाचारी के अन्तर्गत हो जाने के कारण प्रत्युपेक्षणा प्रमाद से प्रमार्जनादि प्रमाद का भी ग्रहण हो जाता है ॥ सू० २९ ॥

इस ऊपर के सूत्र में प्रत्युपेक्षणा (पडिलेहणा) प्रमाद कहा सो अब सूत्रकार प्रमादविशिष्ट उसी प्रत्युपेक्षणा (पडिलेहणा) का कथन करते हैं--"छव्विहा पमाय पडिलेहणा पण्णत्ता" इत्यादि सूत्र ३० ॥

ગયો છે, કારણ કે પ્રત્યુપેક્ષણા સમાચારી રૂપ હોય છે પ્રમાર્જના આદિને સમાચારીમાં સમાવેશ થઈ જવાને કારણે પ્રત્યુપેક્ષણા પ્રમાદમાં પ્રમાર્જનાદિ પ્રમાદને પણ સમાવેશ થઈ જાય છે. ॥ સૂ. ૨૯ ॥

આગલા સૂત્રમાં પ્રત્યુપેક્ષણા (પડિલેહણા) પ્રમાદની પ્રરૂપણા કરવામાં આવી. હવે સૂત્રકાર પ્રમાદ વિશેષ રૂપ એજ પ્રત્યુપેક્ષણા (પડિલેહણા) ના ૭ પ્રકારનું કથન કરે છે. " છવ્વિહા પમાયપડિલેહણા પણ્ણત્તા " ઇત્યાદિ--

विधा=षट्प्रकारा प्रज्ञप्ता। षड्विधत्वमेवाह-तद्यथा-' आरभटे ' त्यादि गाथया। तत्र-आरभटा-विपरीतकरणरूपा प्रत्युपेक्षणा, अथवा-त्वरितं सर्वम् आरभमाणस्य वा प्रत्युपेक्षणा सा, यद्वा-एकस्मिन् वस्त्रेऽर्धप्रत्युपेक्षिते एव यदपरापरवस्त्रस्य ग्रहणं सा, इयं वर्जयितव्या। १। तथा-सम्मर्दा-यत्र वस्त्रस्य मध्यभागे संकुचिताः कोणा भवन्ति सा, अथवा यत्र प्रत्युपेक्षणीयोपधेरुपरि समुपविश्य प्रत्यु-

प्रमाद प्रतिलेखना ६ प्रकार की कही गई है-जैसे-आरभटा १ सम्मर्दा २ मोशली ३ प्रस्फोटना ४ व्याक्षिप्ता ५ और वेदिका यह पहिले प्रकट कर दिया है कि उपयोग का जो अभाव है वह प्रमाद है इस प्रमाद पूर्वक जो प्रतिलेखना है वह प्रमाद प्रतिलेखना है यह प्रमाद प्रतिलेखना आरभटा आदि के भेद से जो ६ प्रकार की कही गई है सो उसका भाव इस प्रकार से है जो प्रत्युपेक्षणा विपरीत रूप से की जाती है वह आरभटा प्रत्युपेक्षणा है अथवा समस्तकार्य को शीघ्र से करने वाले की जो प्रत्युपेक्षणा है वह अथवा एक वस्त्र को आधा प्रत्युपेक्षित कर लेने पर जो दूसरे वस्त्र को ग्रहण कर लेता है वह आरभटा प्रत्युपेक्षणा है ऐसी यह प्रत्युपेक्षणा वर्जनीय है तथा संमर्दा-जिस वस्त्र के मध्य भाग में संकुचित कोने होते हैं ऐसे वस्त्र की प्रत्युपेक्षणा संमर्दा प्रत्युपेक्षणा है अथवा प्रत्युपेक्षणीय (अप्रतिलेखित) उपधि के ऊपर बैठकर जो प्रत्युपेक्षणा (पडिलेहणा)

પ્રમાદ પ્રતિલેખના (પલેવણા) છ પ્રકારની કહી છે. તે પ્રકારો નીચે પ્રમાણે છે—(૧) આરભટા, (૨) સમ્મર્દા, (૩) મોશલી, (૪) પ્રસ્ફોટના, (૫) વ્યાક્ષિપ્તા અને (૬) વેદિકા.

ઉપયોગનો જે અભાવ છે તેનું નામ જ પ્રમાદ છે. તે પ્રમાદ પૂર્વકની જે પ્રતિલેખના થાય છે તેને પ્રમાદ પ્રતિલેખના કહે છે તેના આરભટા પ્રતિલેખના આદિ ૬ ભેદ કહ્યા છે, તેનું હવે સ્પષ્ટીકરણ કરવામાં આવે છે—

આરભટા પ્રતિલેખના—જે પ્રત્યુપેક્ષણ વિપરીત રૂપે કરવામાં આવે છે, તેને આરભટા પ્રત્યુપેક્ષણા કહે છે. અથવા ઘણી જ ઉતાવળથી જે પલેવણા થાય છે તેને આરભટા પ્રત્યુપેક્ષણા કહે છે એક વસ્ત્રની પૂરેપૂરી પ્રતિલેખના કર્યા પહેલાં બીજા વસ્ત્રની પ્રતિલેખના શરૂ કરનારની પ્રતિલેખના આ પ્રકારની ગણાય છે. આ પ્રકારની પલેવણા વર્જનીય છે.

સંમર્દા પ્રત્યુપેક્ષણા—જે વસ્ત્રના મધ્યભાગમાં સંકુચિત ખૂણા હોય છે તે વસ્ત્રની પ્રત્યુપેક્ષણાને સંમર્દા પ્રત્યુપેક્ષણા કહે છે. અથવા અપ્રતિલેખિત

पेक्ष्यते सा सम्मर्दा । इयमपि वर्जयितव्या । एवमग्रेऽपि 'वर्जयितव्ये' ति योजनीयम् ॥ २ ॥ तथा तृतीया प्रत्युपेक्षणा-मोशली, प्रत्युपेक्ष्यमाणं यद् वस्त्रं तस्य भागेन यत् तिर्यगूर्ध्वमधो वा संघट्टनं सा मोशली बोध्येति ॥ ३ ॥ तथा-प्रस्फोटना-धूलिधूसरितवस्त्रस्येव यत्र प्रत्युपेक्षणीयवस्त्रस्य प्रकर्षेण धूननं सा चतुर्थी । ४ । तथा-व्याक्षिप्ता वस्त्रं प्रत्युपेक्ष्य नागदन्तादौ तस्य वस्त्रस्य व्याक्षेपणं यत्र क्रियते सा । ५ ॥ तथा-वेदिका षष्ठी प्रत्युपेक्षणा भवति । इयं हि ऊर्ध्ववेदिका १ अधोवेदिका २ तिर्यग्वेदिका ३ द्विधावेदिका ४ एकतोवेदिके ५ ति पञ्चप्र-

की जाती है वह संमर्दा प्रत्युपेक्षणा है २ यह संमर्दा प्रत्युपेक्षणा भी वर्जनीय है । मोशली-प्रत्युपेक्षणीय (प्रत्युपेक्षा करने योग्य) इधर उधर संघट्टा करते हुवे जो वस्त्र है उस वस्त्र के भाग से जो तिर्यग् ऊर्ध्व अथवा अधः संघट्टन है वह मोशली प्रत्युपेक्षणा है यह मोशली प्रत्युपेक्षणा भी वर्जनीय है । प्रस्फोटना-धूलि से धूसरित हुए वस्त्र की तरह प्रत्युपेक्षणीय वस्त्र का जो जोर से झटकारना है वह प्रस्फोटना प्रत्युपेक्षणा है यह प्रत्युपेक्षणा भी वर्जनीय है । वस्त्र की प्रत्युपेक्षा करके जो नागदन्त आदि पर-खूंटी आदि के ऊपर उस वस्त्र का टांग देना जिस प्रत्युपेक्षणा में होता है ऐसी वह प्रत्युपेक्षणा व्याक्षिप्ता प्रत्युपेक्षणा है यह प्रत्युपेक्षणा भी वर्जनीय है । छट्ठी प्रत्युपेक्षणा वेदिका है यह वेदिका ऊर्ध्ववेदिका १ अधोवेदिका २ तिर्यग्वेदिका ३ द्विधावेदिका ४ और एकतोवेदिका के भेद से ५ प्रकार की है इनमें दोनों

ઉપધિની ઉપર બેસીને જે પ્રત્યુપેક્ષણા (પલેવણા) કરાય છે તેનું નામ સંમર્દા પ્રત્યુપેક્ષણા કહે છે. આ પ્રકારની પ્રત્યુપેક્ષણા પણ વર્જનીય છે

મોશલી પ્રત્યુપેક્ષણા—પ્રત્યુપેક્ષણીય જે વસ્ત્ર છે, તે વસ્ત્રના ભાગ વડે તે તિર્યગ્, ઉર્ધ્વ અથવા અધ સંઘટ્ટન છે, તેનું નામ મોશલી પ્રત્યુપેક્ષણા છે. તે મોશલી પ્રત્યુપેક્ષણા પણ વર્જનીય છે.

પ્રસ્ફોટના પ્રત્યુપેક્ષણા—ધૂળવાળા વસ્ત્રને જેમ ઝાટકારવામાં (ખંખેરવામાં) આવે છે તેમ પ્રત્યુપેક્ષણીય વસ્ત્રને જોરથી જે ઝટકારવામાં આવે છે તેનુ નામ પ્રસ્ફોટના પ્રત્યુપેક્ષણા છે. તે પ્રત્યુપેક્ષણા પણ વર્જનીય છે.

વ્યાક્ષિપ્તા પ્રત્યુપેક્ષણા—વસ્ત્રની પ્રત્યુપેક્ષણા કરીને વસ્ત્રને ખીંટી આદિ પર ટાંગી દેવાનું કાર્ય જે પ્રત્યુપેક્ષણામાં થાય છે, તે પ્રત્યુપેક્ષણાને વ્યાક્ષિપ્તા પ્રત્યુપેક્ષણા કહે છે તે પ્રકારની પ્રત્યુપેક્ષણા પણ વર્જનીય છે.

વેદિકા પ્રત્યુપેક્ષણા—વેદિકા પ્રત્યુપેક્ષણાના નીચે પ્રમાણે પાંચ પ્રકાર પડે છે—(૧) ઉર્ધ્વ વેદિકા, (૨) અધોવેદિકા, (૩) તિર્યગ્ વેદિકા, (૪) દ્વિધા વેદિકા અને (૫) એકતો વેદિકા.

कारा । तत्र—जानुनोरुपरि हस्तौ निधाय यत्र प्रत्युपेक्षणं सा ऊर्ध्ववेदिका १। यत्र तु जानुनोरधो हस्तौ निवेश्य प्रत्युपेक्षणं सा अधोवेदिका २। यत्र पुनः जानुनोः पार्श्वभागे हस्तौ निधाय प्रत्युपेक्षणं सा तिर्यग्वेदिका ३। यत्र तु जानुद्वयं बाह्वोर्मध्ये कृत्वा प्रत्युपेक्षणं सा द्विधावेदिका ४। तथा—यत्र एकं जानुबाह्वोर्मध्ये कृत्वा प्रत्युपेक्षणं सा एकतोवेदिकेति ५। एताः सर्वा अपि सदोषा अतो वर्ज्याः॥१॥

इत्थं प्रमादप्रतिलेखनायाः षड्विधत्वमुक्त्वा सम्प्रति तद्विपरीतायाः अप्रमादप्रतिलेखनायाः षड्विधत्वमाह—' छव्विहा अप्पमायपडिलेहणा' इत्यादि । अप्रमादप्रतिलेखना—अप्रमादपूर्विका या प्रतिलेखना सा षड्विधा प्रज्ञप्ता, षड्विधत्व-

घुटनों के ऊपर हाथों को रखकर जो प्रत्युपेक्षणा की जाती है वह ऊर्ध्ववेदिका है १ जो दोनों घुटनों के नीचे हाथों को रखकर प्रत्युपेक्षणा की जाती है वह अधोवेदिका है २ जो दोनों घुटनो के पार्श्वभागों में हाथों को रखकर प्रत्युपेक्षणा की जाती है वह तिर्यग्वेदिका है ३ दोनों हाथों के बीच में दोनों घुटनों को करके जो प्रत्युपेक्षणा की जाती है वह द्विधावेदिका है ४ जो एक जानु को दोनों हाथों के मध्य में करके प्रत्युपेक्षणा वह एकतो वेदिका है ५ यहाँ तक की जब प्रत्युपेक्षणाएँ सदोष होती हैं अतः वे वर्जनीय कही गई हैं । इस प्रकार से प्रमाद प्रतिलेखना में षट् प्रकारता कह कर अब सूत्रकार उससे विपरीत जो अप्रमाद प्रतिलेखना है उसमें षट् विधता का कथन करते हैं—छव्विहा अप्पमायपडिलेहणा " इत्यादि—अप्रमाद पूर्वक जो प्रति-

બન્ને ઘુંટણોની ઉપર હાથ રાખીને જે પ્રત્યુપેક્ષણા કરાય છે તેને ઉર્ધ્વવેદિકા પ્રત્યુપેક્ષણા કહે છે. બન્ને ઘુંટણોની નીચે હાથોને રાખીને જે પ્રત્યુપેક્ષણા કરાય છે તેને અધોવેદિકા પ્રત્યુપેક્ષણા કહે છે. બન્ને જાનુઓ (જાંઘો) ની બાજુઓમાં હાથ રાખીને જે પ્રત્યુપેક્ષણા કરાય છે તેનું નામ તિર્યગ્ વેદિકા પ્રત્યુપેક્ષણા છે. બન્ને હાથની વચ્ચે બન્ને જાનુઓને રાખીને જે પ્રત્યુપેક્ષણા કરાય છે તેનું નામ દ્વિધાવેદિકા પ્રત્યુપેક્ષણા છે. એક જાનુને (જાંઘને) બન્ને હાથની વચ્ચે રાખીને જે પ્રત્યુપેક્ષણા કરાય છે તેનું નામ એકતોવેદિકા પ્રત્યુપેક્ષણા છે. આ બધી પ્રત્યુપેક્ષણાઓ સદોષ હોવાને લીધે વર્જનીય છે.

આ પ્રમાણે પ્રમાદ પ્રતિલેખનાના છ પ્રકારોનું નિરૂપણ કરીને હવે સૂત્રકાર અપ્રમાદ પ્રતિલેખનાના છ પ્રકારોનું નિરૂપણ કરે છે.

" छव्विहा अप्पमायपडिलेहणा " ઇત્યાદિ—

मेवाह-' तद्यथा-अनर्तितम् ' इत्यादि-गाथया। तत्र-अनर्तितम्-यत्र प्रत्युपेक्षणायां तत्कर्त्रा वस्त्रम् शरीरं वा न नर्त्यते तत् ॥१॥ तथा-अवलितम्-यत्र प्रत्युपेक्षणे वस्त्रं शरीरं च न वलितं=संकुचितं तत् ॥ २ ॥ तथा-अननुबन्धि-अनुबन्धः= सातत्यम् , तच्चेह प्रस्फोटनस्य ग्राह्यम् , न अनुबन्धः, अननुबन्धः सोऽस्ति यस्मिंस्तत् , सातत्यप्रस्फोटनाभावयुक्तं प्रत्युपेक्षणमित्यर्थः ॥ ३ ॥ तथा-अमोशलि-

लेखना है वह अप्रमाद प्रतिलेखना है यह प्रतिलेखना भी ६ प्रकार की कही गयी है जैसे-अनर्तित १ अवलित २ अननुबन्धि ३ अमोशलि ४ षट् पुरिमा नवखोट ५ और प्राणि प्राणविशोधन ६ जिस प्रत्युपेक्षणा में प्रत्युपेक्षणा करने वाले के द्वारा वस्त्र अथवा शरीर नचाया नहीं जाता है ऐसी वह अनर्तित अप्रमाद प्रतिलेखना है जिस प्रत्युपेक्षणा में वस्त्र और शरीर दोनों संकुचित नहीं किये जाते हैं ऐसी वह अवलित अप्रमाद प्रतिलेखना है जिस प्रत्युपेक्षणा में निरन्तर प्रस्फोटन का अभाव रहता है वह प्रत्युपेक्षणा अननुबन्धी प्रत्युपेक्षणा है यहां पर प्रस्फोटन का निरंतरपना ग्रहण हुआ है यह प्रस्फोटन का सातत्य रूप अनुबन्ध जिस में प्रत्युपेक्षण में नहीं होता है उसी प्रत्युपेक्षण को अननुबन्धी अप्रमाद प्रतिलेखना कहा गया है ३ पूर्वोक्त लक्षण

અપ્રમાદપૂર્વક જે પ્રતિલેખના કરવામાં આવે છે તેનું નામ અપ્રમાદ પ્રતિલેખના છે તેના નીચે પ્રમાણે ૭ પ્રકારો છે—(૧) અનર્તિત, (૨) અવલિત, (૩) અનનુબન્ધિ, (૪) અમોશલિ, (૫) ષટ્ પુરિમા નવ ખોટ અને (૬) પ્રાણી પ્રાણુવિશોધન.

અનર્તિત અપ્રમાદ પ્રતિલેખના—જે પ્રત્યુપેક્ષણામાં પ્રત્યુપેક્ષણા કરનાર વ્યક્તિ દ્વારા વસ્ત્ર અથવા શરીરને નચાવવામાં (ડોલાવવામાં) આવતું નથી તે પ્રત્યુપેક્ષણાને અનર્તિત અપ્રમાદ પ્રતિલેખના કહે છે.

અવલિત અપ્રમાદ પ્રતિલેખના—જે પ્રત્યુપેક્ષણામા વસ્ત્ર અને શરીર, એ બન્નેને સંકુચિત કરવામાં આવતા નથી એવી પ્રતિલેખનાને અવલિત અપ્રમાદ પ્રતિલેખના કહે છે.

અનનુબન્ધી પ્રત્યુપેક્ષણા—જે પ્રત્યુપેક્ષણામાં નિરન્તર પ્રસ્ફોટન (ઝટકારવાની ક્રિયા) નો અભાવ રહે છે તે પ્રત્યુપેક્ષણાને અનનુબન્ધી પ્રત્યુપેક્ષણા કહે છે. અહીં પ્રસ્ફોટનનું સાતત્ય ગ્રહણ થયું છે. તે પ્રસ્ફોટનના સાતત્ય રૂપ અનુબન્ધનો જે પ્રત્યુપેક્ષણામાં અભાવ હોય છે તે પ્રત્યુપેક્ષણાને અનનુબન્ધી અપ્રમાદ પ્રતિલેખના કહી છે.

मौशली=पूर्वोक्तलक्षणा न विद्यते यत्र तत् ॥ ४ ॥ तथा—षट् पुरिमा नव खोडाः कर्तव्याः । अयं भावः—वस्त्रं प्रसार्य तस्य संमुखभागम् ऊर्ध्वमध्याधश्चक्षुषा विलोक्य त्रयः पुरिमाः=प्रस्फोटाः कर्तव्याः, ततस्तत् परावर्त्य तथैव चक्षुषा विलोक्य त्रयः पुरिमाः कर्तव्या इति षट् पुरिमाः । तथा—नव खोटाः—कृतभागत्रयस्य प्रत्युपेक्ष्यमाणवस्त्रस्य प्रथमभागं वारत्रयं जीवं यतनया प्रमार्ज्य यतनया त्रयः प्रस्फोटाः कर्तव्याः, ततो मध्यमान्तिमभागयोरपि तथैव त्रयस्त्रयः प्रस्फोटाः कर्तव्या इति नव खोटाः । चक्षुषा निरीक्ष्य यत्प्रस्फोटनं तत् पुरिममित्युच्यते,

वाली मोशली जिस प्रत्युपेक्षणा में नहीं होती है ऐसी वह प्रत्युपेक्षणा अमौशलि अप्रमाद प्रतिलेखना है ४ वस्त्र को पसार कर उसके आगे के भागको ऊंचे मध्य और अधोभाग में आंखों से अच्छी तरह देखकर तीन पुरिमा प्रस्फोट करना चाहिये इसके बाद उसे फिर फेरकर उसी तरह से आँखों से देखकर तीन पुरिमा करना चाहिये इस प्रकार से ये ६ पुरिमा हैं तथा नौ खोड इस प्रकार से हैं—जिस वस्त्रकी प्रत्युपेक्षणा करनी है ऐसे वस्त्र को पहिले उसकी घरी को संभाल कर खोल लेना चाहिये और खोल कर संमुख भाग की तीन वार यतना पूर्वक प्रमार्जना करनी चाहिये और प्रमार्जना करके फिर तीन प्रस्फोट करना चाहिये इसी प्रकार मध्य भाग और अन्तिम भाग में तीन वार यतना पूर्वक प्रमार्जना करके ३–३ प्रस्फोट करना चाहिये इस प्रकार से ये नौ खोट होते हैं चक्षु से देखकर जो प्रस्फोटन किया जाता है वह पुरिम कहलाता है और जो प्रमार्जना के

અમોશલી અપ્રમાદ પ્રતિલેખના—પૂર્વોક્ત લક્ષણવાળી મોશલીનો જે પ્રત્યુપેક્ષણામાં સદ્ભાવ હોતો નથી એવી પ્રત્યુપેક્ષણાને અમોશલી અપ્રમાદ પ્રતિલેખના કહે છે.

ષટ્ પુરિમા નવ ખોટ અપ્રમાદ પ્રતિલેખના—આંખો વડે જોઇને જે પ્રસ્ફોટન (ઝટકારવાની ક્રિયા) કરાય છે, તેને ' પુરિમ ' કહે છે. પ્રમાર્જના કર્યા બાદ જે પ્રસ્ફોટન થાય છે તેને ખોટ કહે છે. આ પ્રકારનું પુરિમ અને ખોટ વચ્ચે અન્તર છે. વસ્ત્રને ઉકેલીને તેના આગલા ભાગનું ઉપર, વચ્ચે અને નીચેના ભાગોમાં આંખો વડે બારીક નિરીક્ષણ કરીને ત્રણ પુરિમા (ત્રણ પ્રસ્ફોટન) કરવા જોઇએ. ત્યારબાદ તેને ફેરવી નાખીને ફરીથી એ જ પ્રમાણે આંખોથી બારીક નિરીક્ષણ કરીને ત્રણ પુરિમા કરવા જોઇએ. આ પ્રકારના ૬ પુરિમા સમજવા. નવ ખોટનું સ્વરૂપ આ પ્રકારનું છે—જે વસ્ત્રની

यत्तु प्रमार्जनानन्तरं प्रस्फोटनं तत् खोट इत्युच्यते, इति पुरिमखोटयो र्भेदो बोध्य इति ॥ ५ ॥ तथा-पाणी-प्राणविशोधना=हस्तस्थितानां प्राणानां=कुन्थ्वादिप्राणिनां विशोधना=प्रमार्जना । ६ । इति षट् अप्रमादप्रतिलेखनाः ॥ इति । विस्तरस्तु उत्तराध्ययनसूत्रस्य षड्विंशतितमेऽध्ययने मत्कृतायां प्रियदर्शिनी टीकायां विलोकनीयः ॥ २ ॥ सू० ३० ॥

प्रमादाप्रमादप्रतिलेखना प्रोक्ता, सा च लेश्याविशेषादेव भवतीति सामान्यतो विशेषश्च लेश्यास्वरूपं प्ररूपयति—

मूलम्—छलेसाओ पण्णत्ताओ, तं जहा-कण्हलेसा जाव सुक्कलेसा । पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं छलेसाओ पण्णत्ताओ, तं जहा-कण्हलेसा जाव सुक्कलेसा । एवं मणुस्सदेवाणवि ।सू०३१।

बाद ही प्रस्फोटन होता है वह खोट कहलाता है इस तरह से पुरिम और खोट में अन्तर है इस प्रकार की जो प्रत्युपेक्षणा है वह षट् पुरिमा और नौ खोट रूप अप्रमाद प्रत्युपेक्षणा है ५ एवं हस्त में रहा हुवा जो कुन्थु आदिक प्राणी है उनकी जो विशोधना है वह "प्राणिप्राणविशोधन" नाम की ६ वीं अप्रमादप्रतिलेखना है इनका विस्तार यदि देखना हो तो मेरे द्वारा कृत उत्तराध्ययन सूत्र के २६ वें अध्ययन की प्रियदर्शिनी टीका देखनी चाहिये ॥ सू० ३० ॥

પ્રત્યુપેક્ષણા (પલેવણા) કરવાની હોય તેને પહેલાં તો સંભાળપૂર્વક ઉકેલવું જોઈએ. ત્યારબાદ સંમુખ ભાગની ત્રણ વાર યતનાપૂર્વક પ્રમાર્જના કરવી જોઈએ, અને પ્રમાર્જના કરીને ફરી ત્રણ પ્રસ્ફોટન કરવા જોઈએ. એ જ પ્રમાણે મધ્યભાગમાં અને અન્તિમ ભાગમા ત્રણ વાર યતનાપૂર્વક પ્રમાર્જના કરીને ત્રણ ત્રણ પ્રસ્ફોટ કરવા જોઈએ. આ પ્રકારે કુલ નવ ખોટ થાય છે. આ પ્રકારની જે પ્રત્યુપેક્ષણા છે તેને "ષટ્ પુરિમા અને નૌ ખોટ રૂપ અપ્રમાદ પ્રત્યુપેક્ષણા" કહે છે

પ્રાણિ પ્રાણ વિશોધન અપ્રમાદ પ્રતિલેખના—કુન્થુ (અંતવો) આદિક જીવોની જે વિશોધના છે તેનું નામ 'પ્રાણિપ્રાણ વિશોધન અપ્રમાદ પ્રતિલેખના' છે. ઉત્તરાધ્યયન સૂત્રના ૨૬ માં અધ્યયનની પ્રિયદર્શિની ટીકામાં આ અપ્રમાદ પ્રતિલેખનાનું વિસ્તૃત વિવેચન કરવામાં આવ્યુ છે. તો જિજ્ઞાસુ પાઠકોએ ત્યાંથી તે વાંચી લેવાની ભલામણ કરવામાં આવે છે. ॥ સૂ. ૩૦ ॥

छाया-षड्लेश्याः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-कृष्णलेश्या यावत् शुक्ललेश्या। पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकानां षड्लेश्याः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा कृष्णलेश्या यावत् शुक्ललेश्याः। एवं मनुष्यदेवानामपि ॥ सू० ३१ ॥

टीका—' छ लेसाओ ' इत्यादि--

लिश्यते=श्लिष्यते प्राणी कर्मणा याभिस्ताः लेश्याः=कृष्णादि द्रव्यसाचिव्यादात्मनः परिणामविशेषाः, तदुक्तम्--

" कृष्णादिद्रव्यसाचिव्यात्, परिणामो य आत्मनः।
स्फटिकस्येव तत्रायं, लेश्या शब्दः प्रवर्तते ॥ १ ॥ " इति।

इस ऊपर के सूत्र में जो प्रमाद प्रतिलेखना और अप्रमाद प्रतिलेखना इस प्रकार से दो प्रतिलेखनाएँ कहीं गई हैं सो यह लेश्या विशेष से ही होती है इसलिये अब सूत्रकार सामान्य और विशेषरूप से लेश्या के स्वरूप की प्ररूपणा करते हैं—

"छलेसाओ पण्णत्ताओ" इत्यादि सूत्र ३१ ॥

टीकार्थ-जिनके द्वारा प्राणी कर्म से लिप्त होताहै वे लेश्याएँहैं ऐसी ये लेश्याएँ ६ प्रकार की होती हैं-कृष्णलेश्या यावत शुक्ललेश्या पञ्चेन्द्रिय तिर्यग्योनिकों में ६ लेश्याएँ होती हैं जैसे-कृष्णलेश्या यावत् शुक्ललेश्या इसी तरह का कथन मनुष्य एवं देवों को भी जानना चाहिये

कृष्णादि द्रव्य की सहायता से आत्मा के परिणाम विशेष रूप ये लेश्याएँ होती हैं। सो ही कहा है—

" कृष्णादिद्रव्यसाचिव्यात् " इत्यादि।

जिस प्रकारसे जपापुष्प लाल रंगके संसर्गसे स्फटिक मणिमें

ઉપરના સૂત્રમાં પ્રમાદ પ્રતિલેખના અને અપ્રમાદ પ્રતિલેખનાનું નિરૂપણ કરવામાં આવ્યું. લેશ્યાવિશેષ પર તેનો આધાર હોવાથી હવે સૂત્રકાર સામાન્ય અને વિશેષ રૂપે લેશ્યાઓના સ્વરૂપનું નિરૂપણ કરે છે.

" छ लेसाओ पण्णत्तओ " ઇત્યાદિ—

ટીકાર્થ-જેમના દ્વારા જીવ કર્મથી લિપ્ત (આચ્છાદિત) થાય છે, તે લેશ્યાઓ છે. એવી લેશ્યાઓના નીચે પ્રમાણે ૬ પ્રકાર છે—(૧) કૃષ્ણલેશ્યા, (૨) નીલ લેશ્યા, (૩) કાપોતલેશ્યા, (૪) તેજોલેશ્યા, (૫) પદ્મલેશ્યા અને (૬) શુકલ લેશ્યા. એ જ પ્રકારનું કથન મનુષ્ય અને દેવોના વિષયમાં પણ સમજવું. કૃષ્ણાદિ દ્રવ્યની સહાયતાથી જન્ય આત્માના પરિણામ વિશેષ રૂપ આ લેશ્યાઓ હોય છે કહ્યું પણ છે કે: " कृष्णादिद्रव्यसाचिव्यात् " ઇત્યાદિ—

જે પ્રકારે જપાપુષ્પના સંસર્ગથી સ્ફટિકમાં (મણિમાં) તેના આકારનું પરિણમન થઇ જાય છે, એ જ પ્રમાણે કૃષ્ણાદિ દ્રવ્યના સંસર્ગથી આત્મામાં એ જ જાતનું જે પરિણમન થાય છે, એ જ લેશ્યા છે.

પંચેન્દ્રિય તિર્યંચોમાં અને મનુષ્યોમાં ૬ લેશ્યાઓનો સદ્ભાવ હોય

ताः षट् संख्यकाः प्रज्ञप्ताः । तद्यथा—कृष्णलेश्या यावत् शुक्ललेश्या । यावत्पदात्—नीललेश्या कापोतलेश्या तेजोलेश्या पद्मलेश्या च ग्राह्याः । तथा—पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकानां मनुष्याणां च प्रत्येकं कृष्णादि षड्लेश्याः । देवानां तु जात्यपेक्षया षड्लेश्या बोध्याः । लेश्या विषये विशेष जिज्ञासुभिरावश्यकसूत्रस्य मत्कृता मुनितोषिणी टीकाऽवलोकनीयेति ॥ सू० ३१ ॥

देवप्रस्तावात् सम्प्रति देव सूत्राणि प्राह—

मूलम्—सक्कस्स णं देविंदस्स देवरन्नो सोमस्स महारन्नो छ अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ । सक्कस्स णं देविंदस्स देवरन्नो जमस्स महारन्नो छ अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ ॥सू०३२॥

छाया—शक्रस्य खलु देवेन्द्रस्य देवराजस्य सोमस्य महाराजस्य ष अग्रमहिष्यः प्रज्ञप्ताः । शक्रस्य खलु देवेन्द्रस्य देवराजस्य यमस्य महाराजस्य षड् अग्रमहिष्यः प्रज्ञप्ताः ॥ सू० ३२ ॥

उसके आकार का परिणाम हो जाताहै उसी प्रकार से कृष्णादि द्रव्य के संसर्ग से आत्मा में इसी जाति का जो परिणमन होता है वही लेश्या है । यहां सूत्र में यावत् पद से " नीललेश्या, कापोतलेश्या, तेजोलेश्या और पद्मलेश्या " इन लेश्याओं का ग्रहण हुआ है । पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चों में और मनुष्यों में प्रत्येक को कृष्णादिक ६ लेश्याएँ होती हैं । परन्तु देवों को तो जाति की अपेक्षा से ६ लेश्याएँ होतीहैं । लेश्या के विषय में विशेष जिज्ञासुओं को आवश्यक सूत्र की मुनितोषिणी टीका जो कि मेरे द्वारा रची गई है देखनी चाहिये ॥ सू० ३१ ॥

देव प्रस्ताव को लेकर अब सूत्रकार देव सूत्रों का कथन करते हैं—

છે. પરન્તુ દેવોમાં તો જાતિની અપેક્ષાએ ૬ લેશ્યાઓ હોય છે એટલે કે અમુક દેવોમાં અમુક લેશ્યાઓનો અને બીજા દેવોમા અમુક લેશ્યાઓનો સદ્ભાવ હોય છે. આવશ્યક સૂત્રની મુનિતોષિણી જે ટીકા મારા દ્વારા લખાઇ છે તેમાં લેશ્યાઓના સ્વરૂપનું વિસ્તૃત વિવેચન કરવામાં આવ્યું છે. તો જિજ્ઞાસુ પાઠકોએ તે વાંચી લેવું. ॥ સૂ. ૩૧ ॥

દેવોની લેશ્યાઓનો આગલા સૂત્રમાં ઉલ્લેખ થયો છે તે સંબંધને અનુલક્ષીને હવે સૂત્રકાર દેવવિષયક સૂત્રોનું કથન કરે છે

टीका—'सक्कस्स णं' इत्यादि—

शक्रेन्द्राधीनयोः सोमयमयोः षट् षड् अग्रमहिष्यो बोध्याः ॥ सू० ३२ ॥

मूलम्—ईसाणस्स णं देविंदस्स देवरण्णो मज्झिमपरिसाए देवाणं छ पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता ॥ सू० ३३ ॥

छाया—ईशानस्य खलु देवेन्द्रस्य देवराजस्य मध्यमपरिषदि देवानां षट् पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता ॥ सू० ३३ ॥

टीका—'ईसाणस्स' इत्यादि—

व्याख्या स्पष्टा ॥ सू० ३३ ॥

मूलम्—छ दिसिकुमारि महत्तरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा-- रूवा १, रूवंसा २, सुरूवा ३, रूववई ४, रूवकंता ५, रूवप्पभा ६। छ विज्जुकुमारि महत्तरियाओ पण्णत्ताओ तं जहा— आला १, सक्का २, सतेरा ३, सोयामणी ४, इंदा ५, घणविज्जुया ६ ॥ सू० ३४ ॥

"सक्कस्स णं देविंदस्स देवरन्नो सोमस्स" इत्याति सूत्र ३२ ॥

टीकार्थ—देवेन्द्र देवराज शक्रके सोम महाराज की ६ पट्टदेवियां कही गई हैं-इसी तरह देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल यम महाराज की ६ पट्टदेवियां कही गई हैं ॥ सू० ३२ ॥

"ईसाणस्स णं देविंदस्स देवरण्णो" इत्यादि सूत्र ३३ ॥

टीकार्थ—देवेन्द्र देवराज ईशानकी मध्यम परिषदामें देवों की ६ पल्योपम की स्थिति कही गई हैं ॥ सू० ३३ ॥

" सक्कस्स ण देविंदस्स देवरन्नो सोमस्स " ઇત્યાદિ—

ટીકાર્થ--દેવેન્દ્ર દેવરાજ શક્રના લોકપાલ સોમ મહારાજને ૬ પટ્ટરાણીઓ કહી છે. એ જ પ્રમાણે દેવેન્દ્ર દેવરાજ શક્રના લોકપાલ યમ મહારાજને પણ ૬ પટ્ટરાણીઓ કહી છે. ॥ સૂ ૩૨ ॥

" ईसाणस्स णं देविंदस्स देवरण्णो " ઇત્યાદિ—

ટીકાર્થ–દેવેન્દ્ર દેવરાજ ઈશાનની મધ્યમ પરિષદના દેવોની ૬ પલ્યોપમની સ્થિતિ કહી છે ॥ સૂ. ૩૩ ॥

छाया--षड् दिक्कुमारीमहत्तरिकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-रूपा १ रूपांशा २, सुरूपा ३, रूपवती ४, रूपकान्ता ५, रूपप्रभा ६। षड् विद्युत्कुमारी महत्तरिकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-आला १, शक्रा २, शतेरा ३, सौदामनी ४, इन्द्रा ५, घनविद्युत् ६ ॥ सू० ३४ ॥

टीका--' छ दिसिकुमारी ' इत्यादि--

दिक्कुमारी महत्तरिकाः-दिक्कुमार्यः=दिक्कुमार भवनपतिदेव विशेष जातीयदेव्यः, ताश्च महत्तरिकाः=प्रधानतमाश्च तास्तथोक्ताः, ताश्च रूपा सुरूपादिभेदैः षट्संख्यका बोध्याः। तथा-विद्युत्कुमारी महत्तरिका-विद्युत्कुमार भवनपति देव विशेषजातीय प्रधानतया देव्योऽपि 'आलाशक्रा' दिभेदैः षट्संख्यका बोध्याः ॥ सू० ३४ ॥

मूलम्-धरणस्स णं नागकुमारिंदस्स नागकुमाररन्नो छ अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा-आला १, सक्का २, सतेरा

"छ दिसिकुमारि महत्तरियाओ" इत्यादि सूत्र ३४ ॥

टीकार्थ-दिक्कुमार जाति के जो भवनपति विशेषहैं उनकी जाति की देवियां जो दिक्कुमारी महत्तरिकाएँ हैं वे ६ कही गई हैं उनके नाम इस प्रकार से हैं-रूपा १ रूपांशा २ सुरूपा ३ रूपवती ४ रूपकान्ता ५ और रूपप्रभा ६ इन्हे महत्तरिका प्रधानतम होने से कहा गया है। इसी प्रकार विद्युत्कुमार जाति के भवनपति देव विशेष हैं उनकी जाति की जो विद्युत्कुमारी महत्तरिकाएँ हैं वे भी ६ ही कही गई हैं उनके नाम इस प्रकार से हैं-आला १ शक्रा २ शतेरा ३ सौदामनी ४ इन्द्रा-५ और घनविद्युत् ६ ॥ सू० ३४ ॥

"छ दिसिकुमारि महत्तरियाओ" ઇત્યાદિ—

ટીકાર્થ-ભવનપતિ દેવોના દસ પ્રકારો છે. તેમાંનો એક પ્રકાર દિક્કુમારોનો છે. તે દિક્કુમાર જાતિની ૬ દિક્કુમારી મહત્તરિકાઓ (મુખ્ય દેવીઓ) કહી છે. તેમનાં નામ નીચે પ્રમાણે છે—(૧) રૂપા, (૨) રૂપાંશા, (૩) સુરૂપા (૪) રૂપવતી, (૫) રૂપકાન્તા અને (૬) રૂપપ્રભા તે દેવીઓ પ્રધાનતમ-મુખ્ય હોવાને કારણે તેમને મહત્તરિકા કહી છે

એ જ પ્રમાણે વિદ્યુત્કુમાર જાતિના ભવનપતિ દેવોની જાતિની જે વિદ્યુત્કુમારી મહત્તરિકાઓ છે, તે પણ છ જ કહી છે તેમનાં નામ નીચે પ્રમાણે છે—(૧) આલા, (૨) શક્રા, (૩) શતેરા, (૪) સૌદામની, (૫) ઇન્દ્રા અને (૬) ઘનવિદ્યુત્ ॥ સૂ. ૩૪ ॥

३, सोयामणी ४, इंदा ५, घणविज्जुया ६। भूयाणंदस्स णं नाग-कुमारिंदस्स नागकुमाररण्णो छ अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा–रूवा १, रूवंसा २, सुरूवा ३, रूववई ४, रूवकंता ५, रूवप्पभा ६। जहा धरणस्स तहा सव्वेसिं दाहिणिल्लाणं जाव घोसस्स। जहा भूयाणंदस्स तहा सव्वेसिं उत्तरिल्लाणं जाव महाघोसस्स ॥ सू० ३५ ॥

छाया–धरणस्य खलु नागकुमारेन्द्रस्य नागकुमारराजस्य षड् अग्रमहिष्यः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–आला १, शक्रा २, शतेरा ३, सौदामनी ४, इन्द्रा ५, घनविद्युत् ६। भूतानन्दस्य नागकुमारेन्द्रस्य नागकुमारराजस्य षड् अग्रमहिष्यः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–रूपा १ रूपाँशा २, सुरूपा ३, रूपवती ४, रूपकान्ता ५, रूपप्रभा ६। यथा–

"धरणस्स णं नागकुमारिंदस्स नागकुमाररन्नो" इत्यादि सूत्र ३५॥

नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज धरणका ६ अग्रमहिषियां कही गई हैं जैसे–आला १ शक्रा २ शतेरा ३ सौदामनी ४ इन्द्रा ५ और घनविद्युत् ६ नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज भूतानन्दकी छह अग्रमहिषियां कही गई हैं जैसे–रूपा १ रूपांशा २ सुरूपा ३ रूपवती ४ रूपकान्ता ५ और रूपप्रभा ६ जिस प्रकार से धरण की पट्टदेवियों के विषय में कहा गया है उसी प्रकार से समस्त दक्षिण दिशा के अधिपतियों का यावत् घोष तक का कथन जानना चाहिये तथा जैसा कथन भूतानन्द की

" धरणस्स णं नागकुमारिंदस्स नागकुमाररन्नो " ઇત્યાદિ—

નાગકુમારેન્દ્ર નાગકુમારરાય ધરણને ૬ અગ્રમહિષીઓ છે, તેમનાં નામ નીચે પ્રમાણે છે—(૧) આલા, (૨) શક્રા, (૩) શતેરા, (૪) સૌદામની, (૫) ઇન્દ્રા અને (૬) ઘનવિદ્યુત્

નાગકુમારેન્દ્ર નાગકુમારરાય ભૂતાનન્દને ૬ અગ્રમહિષીઓ છે. તેમનાં નામ નીચે પ્રમાણે છે—(૧) રૂપા, (૨) રૂપાંશા, (૩) સુરૂપા, (૪) રૂપવતી, (૫) રૂપકાન્તા અને (૬) રૂપપ્રભા.

ઘોષ પર્યન્તના દક્ષિણ દિશાના સમસ્ત અધિપતિઓની અગ્રમહિષીઓના વિષયમાં ધરણની અગ્રમહિષીઓના જેવું જ કથન સમજવું. મહાઘોષ પર્ય-

धरणस्य तथा सर्वेषां दाक्षिणात्यानां यावद् घोषस्य। यथा भूतानन्दस्य तथा सर्वेषाम् उत्तरीयाणां यावद् महाघोषस्य ॥ सू० ३५ ॥

टीका—'धरणस्स णं' इत्यादि—

व्याख्या स्पष्टा ॥ सू० ३५ ॥

मूलम्—धरणस्स णं णागकुमारिंदस्स णागकुमाररण्णो छ सामाणियसाहस्सीओ पण्णत्ताओ। एवं भूयाणंदस्सवि जाव महाघोसस्स ॥ सू० ३६ ॥

छाया—धरणस्य खलु नागकुमारेन्द्रस्य नागकुमारराजस्य षट् सामानिकसाहस्त्र्यः प्रज्ञप्ताः एवं भूतानन्दस्यापि यावद् महाघोषस्य ॥ सू० ३६ ॥

टीका—'धरणस्स णं' इत्यादि।

नवरम्—सामानिकसाहस्त्र्यः—ऋद्धिमत्त्वेन ये इन्द्रसमानतया चरन्ति ते देवाः सामानिकाः। तेषां साहस्त्र्यः इति ॥ सू० ३६ ॥

पट्टरानियों का किया गया है वैसा ही समस्त उत्तर दिशा के अधिपतियों का यावत् महाघोष तक का कथन जानना चाहिये ॥ सू० ३५ ॥

"धरणस्स णं णागकुमारिंदस्स" इत्यादि सूत्र ॥ ३६ ॥

टीकार्थ-नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज धरणकी सामानिक देवोंकी संख्या ६ हजार कही गई है इसी प्रकार से भूतानन्द के यावत् महाघोष के सामानिक देवों की संख्या ६ हजार कही गई है। ऋद्धिवाले होने से जो इन्द्र के जैसे होते हैं वे सामानिक देव हैं ॥ सू० ३६ ॥

इस ऊपर के सूत्र में देवों के सम्बन्धमे कुछ थोड़ा सा कथन किया गया है। अब सूत्रकार भवप्रत्ययसे ही विशिष्ट मतिवाले हुए उन

ન્તના ઉત્તર દિશાના સમસ્ત અધિપતિઓની અગ્રમહિષીઓના વિષયમાં ભૂતાનન્દની અગ્રમહિષીઓના જેવું જ કથન ગ્રહણ કરવું. ॥ સૂ. ૩૫ ॥

"ધરણસ્સ ણં ણાગકુમારિંદસ્સ" ઇત્યાદિ—

ટીકાર્થ—નાગકુમારેન્દ્ર નાગકુમારરાજ ધરણના સામાનિક દેવોની સંખ્યા ૬૦૦૦ ની કહી છે. એ જ પ્રમાણે ભૂતાનન્દથી લઇને મહાઘોષ પર્યન્તના પ્રત્યેક ઇન્દ્રના સામાનિક દેવો ૬-૬ હજાર કહ્યા છે સામાનિક દેવો ઋદ્ધિવાળા હોવાને લીધે ઇન્દ્રના સમાન હોય છે. ॥ સૂ. ૩૬ ॥

ઉપરના સૂત્રોમાં દેવોના વિષયમાં થોડું કથન કરવામાં આવ્યું છે. આ દેવો ભવપ્રત્યયથી જ (દેવ ભવની પ્રાપ્તિ થવાને કારણે) વિશિષ્ટ મતિવાળા

अनन्तरसूत्रे देवसम्बन्धिकं किंचित् मोक्तम्, सम्प्रति भवप्रत्ययादेव विशिष्टमतिमतां तेषां मतिभेदानाह—

मूलम्—छव्विहा उग्गहमई पण्णत्ता, तं जहा-खिप्पमोगिण्हइ १, बहुमोगिण्हइ २, बहुविहमोगिण्हइ ३, धुवमोगिण्हइ ४, अणिस्सियमोगिण्हइ ५, असंदिद्धमोगिण्हइ ६। छव्विहा ईहामई पण्णत्ता, तं जहा-खिप्पमीहइ १, बहुमीहइ २, जाव असंदिद्धमीहइ ६। छव्विहा अवायमई पण्णत्ता, तं जहा-खिप्पमवेइ १, जाव असंदिद्ध मवेइ ६। छव्विहा धारणा पण्णत्ता, तं जहा--बहुं धारेइ १, बहुविहं धारेइ २, पोराणं धारेइ३, दुद्धरं धारेइ ४, अणिस्सियं धारेइ ५, असंदिद्धं धारेइ६॥सू०३७॥

छाया-षड्विधा अवग्रहमतिः प्रज्ञप्ता तद्यथा-क्षिप्रमवगृह्णाति१, बहु अवगृह्णाति २, बहुविधमवगृह्णाति ३, ध्रुवमवगृह्णाति ४, अनिश्रितमवगृह्णाति ५, असंदिग्धमवगृह्णाति ६। षड्विधा ईहामतिः प्रज्ञप्ता, तद्यथा-क्षिप्रमीहते १, बहु ईहते २, यावत्-असन्दिग्धमीहते ६। षड्विधा अवायमतिः प्रज्ञप्ता, तद्यथा-क्षिप्रमवैति १ यावत् असन्दिग्धमवैति ६। षड्विधा धारणा प्रज्ञप्ता, तद्यथा-बहु धारयति १, बहुविधं धारयति २, पुराणं धारयति ३, दुर्धरं धारयति ४, अनिश्रितं धारयति ५, असन्दिग्धं धारयति ६ ॥ सू० ३७ ॥

टीका-' छव्विहा ' इत्यादि—

मननं मतिः=आभिनिबोधिकं ज्ञानं, सा च-अवग्रहेहाऽवायधारणाभेदात् चतुर्विधा। तत्र-अवग्रहणम्-अवग्रहः=सामान्यार्थस्य अशेषविशेषनिरपेक्षस्य अनि-

देवोंकी मतिके भेदोंका कथन करते हैं।

"छव्विहा उग्गहमई पण्णत्ता" इत्यादि सूत्र ३७ ॥

टीकार्थ-अवग्रहमति६ प्रकार की कही गईहै। मनन करनेका नाम मति है, यह मति आभिनिबोधिक ज्ञानरूप होती है। आभिनिबोधिक ज्ञान-

હોય છે. તેથી હવે તે દેવોની મતિના ભેદોનું સૂત્રકાર નિરૂપણ કરે છે

ટીકાર્થ-" છવ્વિહા ઉગ્ગહમઈ પણ્ણત્તા " ઇત્યાદિ--

અવગ્રહમતિ ૬ પ્રકારની કહી છે. મનન કરવું તેનું નામ મતિ છે. તે મતિ આભિનિબોધિક જ્ઞાનરૂપ હોય છે. આભિનિબોધિક જ્ઞાનરૂપ મતિના નીચે

देश्यस्य रूपादेरेव प्रथमतो ग्रहणं परिच्छेदनम् १। ईहनम्-ईहा=अवग्रहगृहीत-सामान्यार्थस्य विशेषत आलोचनम् २। तथा-अवग्रहेहाभ्यां सामान्यविशेषरूपेण गृहीतस्यार्थस्य यो निश्चयः सोऽवायः ३। एभिरवग्रहेहाऽवायैरधिगतस्यार्थस्य याऽविच्युतिः सा धारणा ४। तदुक्तम्—

'सामन्नत्थावग्गहण मोग्गहो भेयमुग्गहणमिहेहा।
तस्सावगमोऽवाओ, अविच्चुई धारणा तस्स ॥ १ ॥

छाया—सामान्यार्थावग्रहणमवग्रहः, भेदोद्ग्रहणमिहेहा।
तस्यावगमः अवायः अविच्युतिर्धारणा तस्य ॥१॥ इति।

तत्र-अवग्रहादिषु चतुर्विधासु मतिषु मध्ये या अवग्रहरूपा मतिः अवग्रहमतिः। इयं च व्यञ्जनावग्रहमत्यर्थावग्रहमतिभेदाभ्यां द्विधा। तत्र-व्यञ्जनावग्रहमतिः-

रूप मति अवग्रह १, ईहा २ अवायएवं धारणा के भेदसे चार प्रकारकी है। इनमें समस्त विशेषोंसे निरपेक्ष एवं अनिर्देश्य ऐसे सामान्य अर्थरूप रूपादि का ही जो प्रथमतः ग्रहण होता है वह अवग्रह है। अवग्रहसे जाने हुए पदार्थ का विशेष रूपसे आलोचन होता है वह ईहा है, अवग्रह एवं ईहा इन दोनों से सामान्य विशेष रूपसे जाने गये पदार्थ का जो निश्चय है वह अवाय है ३ तथा अवग्रह ईहा और अवाय इनसे अधिगत अर्थ की जो अविस्मृति (नहीं भूलना) है वह धारणा है। कहा भी है "सामन्नत्थावग्गहणं" इत्यादि।

इस तरहसे अवग्रहादि रूप चार प्रकारकी मतिके बीचमें जो अवग्रह रूप मति है वह अवग्रहमति है। यह अवग्रह रूप मति व्यञ्जनाव-

પ્રમાણે ચાર ભેદ પડે છે-(૧) અવગ્રહ, (૨) ઇહા, (૩) અવાય અને (૪) ધારણા.

સમસ્ત વિશેષોથી નિરપેક્ષ અને અનિર્દેશ્ય એવા સામાન્ય અર્થ રૂપ રૂપાદિનું જે પહેલાં ગ્રહણ થાય છે તેનું નામ અવગ્રહ છે. અવગ્રહ વડે જાણેલા પદાર્થનું જે વિશેષ રૂપે આલોચન થાય છે, તેનું નામ ઇહા છે અવગ્રહ અને ઇહા, આ બન્ને વડે સામાન્ય અને વિશેષ રૂપે જાણેલા પદાર્થનો જે નિશ્ચય થાય છે. તેનું નામ અવાય છે અવગ્રહ, ઇહા અને અવાય, એ ત્રણે દ્વારા અધિગત અર્થની જે અવિસ્મૃતિ (ભૂલવું નહીં તે) છે, તેનું નામ ધારણા છે. કહ્યું પણ છે કે: "सामन्नत्थावग्गहण" ઇત્યાદિ—

આ પ્રકારે મતિના ચાર ભેદોમાંનો જે પહેલો ભેદ છે તેનું નામ અવગ્રહ મતિ છે. તે અવગ્રહ મતિના વ્યંજનાવગ્રહમતિ અને અર્થાવગ્રહમતિ નામના બે ભેદ પડે છે. વ્યંજનાવગ્રહમતિનું સ્વરૂપ આ પ્રકારનું છે—

व्यज्यते प्रकटीक्रियतेऽनेनार्थः प्रदीपेनेव घट इति व्यञ्जनम्—चक्षुर्मनसोरप्राप्यकारित्वात्तद्वर्जितं, श्रोत्रघ्राणरसनस्पर्शनरूपं—चतुर्विधमुपकरणेन्द्रियं, तेन स्व सम्बद्धस्यार्थस्य—शब्दादेरवग्रहणम्—अव्यक्तरूपः परिच्छेदो व्यञ्जनावग्रहः। अयं भावः—उपकरणेन्द्रियस्य शब्दादिपरिणतद्रव्यस्य च सम्बन्धे प्रथमसमयादारभ्य अर्थावग्रहात् प्राक् या सुप्तमत्तमूर्च्छितादिपुरुषाणामिव शब्दादि द्रव्यमात्रसम्बन्धविषया काचिदव्यक्ता ज्ञानमात्रा सा व्यञ्जनावग्रह इति। तद्रूपा मति—र्व्यञ्जनावग्रहमतिः—

ग्रह मति एवं अर्थावग्रहमति के भेद से दो प्रकारकी है, इनमें व्यञ्जनावग्रहमति इस प्रकारसे है—जैसे दीपकके द्वारा पदार्थ व्यक्त किया जाता है। उसी प्रकार जिसके द्वारा पदार्थ व्यक्त किया जाता है वह व्यञ्जनावग्रह मति है यह व्यञ्जनावग्रह रूप मति चक्षु और मनसे इस लिये नहीं होती है कि ये दोनों इन्द्रियां अप्राप्यकारी हैं। श्रोत्र, घ्राण, रसना और स्पर्शन ये जो चार उपकरणेन्द्रियां हैं इनसे होती है क्योंकि ये इन्द्रियां प्राप्यकारी है अतः इन इन्द्रियोंसे सम्बद्ध शब्दादि रूप अर्थ का जो अव्यक्त रूप बोध होताहै, वह व्यञ्जनावग्रहहै। भाव ऐसा है उपकरणेन्द्रिय का और शब्दादि रूप परिणत द्रव्यका सम्बन्ध होने पर प्रथम समयसे लेकर अर्थावग्रह होने के पहिले तक जो सुप्त मत्त मूर्च्छित आदि पुरुषों के ज्ञानकी तरह शब्दादि द्रव्य मात्रके सम्बन्धको विषय करनेवाली कोई अव्यक्त ज्ञान मात्रा है वह व्यञ्जनावग्रह मति है।

જેમ દીપકના દ્વારા પદાર્થ વ્યક્ત કરાય છે તેનું નામ વ્યંજનાવગ્રહમતિ છે. ચક્ષુ અને મન વડે વ્યંજનાવગ્રહ થતો નથી, કારણ કે તે બન્ને ઇન્દ્રિયો અપ્રાપ્યકારી છે. વ્યંજનાવગ્રહ શ્રોત્ર, ઘ્રાણ, રસના અને સ્પર્શેન્દ્રિય, આ ચાર ઇન્દ્રિયો વડે જ થાય છે, કારણ કે આ ચાર ઇન્દ્રિયો ઉપકરણેન્દ્રિયો છે અને તે ઇન્દ્રિયો પ્રાપ્યકારી છે. તેથી તે ચાર ઉપકરણેન્દ્રિયો સાથે સંબદ્ધ શબ્દાદિ રૂપ અર્થનો જે અવ્યક્ત રૂપે બોધ થાય છે, તેનું નામ વ્યંજનાવગ્રહ છે. આ કથનનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે—

ઉપકરણેન્દ્રિયનો અને શબ્દાદિ રૂપ પરિણત દ્રવ્યનો સંબંધ થતાં પ્રથમ સમયથી લઈને અર્થાવગ્રહ થવાના સમય સુધી, જે સુપ્ત, ઉન્મત્ત, મૂર્ચ્છિત આદિ પુરુષોના જ્ઞાનની જેમ શબ્દાદિ દ્રવ્ય માત્રના સંબંધને વિષય કરનારી કોઈ અવ્યક્ત જ્ઞાનમાત્રા હોય છે તેનું નામ વ્યંજનાવગ્રહ મતિ છે.

अर्थावग्रहमतिः—अवग्रहणम् अवग्रहः—अर्थस्यावग्रहोऽर्थावग्रहः—अनिर्देशसामान्यमात्ररूपाद्यर्थस्य व्यक्तरूपः परिच्छेदः। तद्रूपा मतिः—अर्थावग्रहमतिरिति। तत्रार्थावग्रहमतिर्निश्चयव्यवहाराभ्यां द्विधा। व्यञ्जनावग्रहोत्तरमेकसामयिकी निश्चयार्थावग्रहमतिः। व्यवहारार्थावग्रहमतिस्तु अन्तर्मुहूर्त्तप्रमाणा। इयं यद्यपि अवायरूपा तथापि उत्तरकालभाविनोरीहावाययोः कारणत्वादवग्रहमतिरित्युपचर्यते। उक्तं च—

"सामन्नमेत्तगहणं, नेच्छइयो समयमोग्गहो पढमो।
तत्तोऽणंतरमीहिय वत्थु विसेसस्स जोऽवाओ ॥ १ ॥
सो पुण ईहावायावेक्खाउ अवग्गहोत्ति उवयरिओ।
एस विसेसावेक्खं, सामन्नं गेण्हए जेण ॥ २ ॥
तत्तोऽणंतरमीहा, तत्तोऽवाओ य तव्विसेसस्स।
इय सामन्नविसेसावेक्खा जावंतिमो भेओ ॥ ३ ॥
सव्वत्थेहावाया, निच्छयओ मोत्तुमाइ सामन्नं।
संववहारत्थं पुण, सव्वत्थावग्गहोवाओ ॥ ४ ॥

अर्थावग्रह—यह क्या है इस प्रकारसे अनिर्देश्य सामान्य मात्र रूप अर्थ का जो व्यक्तरूपसे परिच्छेद (निर्णय) होता है वह अर्थावग्रह है। इस अर्थावग्रह रूप जो मति है वह अर्थावग्रहमति है यह अर्थावग्रह रूपमति निश्चय और व्यवहारके भेदसे दो प्रकारकी है इनमें व्यञ्जनावग्रह के बाद एक समय तक जो मति है वह निश्चय अर्थावग्रहमति है और अन्तर मुहूर्त प्रमाणवाली जो मति है वह व्यवहार अर्थावग्रह मति है यह मति यद्यपि अवायरूप होती है फिरभी उत्तरकाल भावी जो ईहा एवं अवाय है उनका कारण होने से इसे अवग्रह मति इस रूपसे उपचरित किया गयाहै। कहा भीहै—"सामन्नमेत्तगहणं" इत्यादि।

અર્થાવગ્રહ મતિ—"આ શું છે?" આ પ્રકારે અનિર્દેશ્ય સામાન્ય માત્રરૂપ અર્થનો જે વ્યક્ત રૂપે પરિચ્છેદ (બોધ) થાય છે, તેનું નામ અર્થાવગ્રહ છે. અર્થાવગ્રહ રૂપ જે મતિ છે તેને અર્થાવગ્રહ મતિ કહે છે. તે અર્થાવગ્રહ મતિ નિશ્ચય અને વ્યવહારના ભેદથી બે પ્રકારની છે. વ્યંજનાવગ્રહ થયા બાદ એક સમય સુધી જે મતિ હોય છે તેનું નામ નિશ્ચય અર્થાવગ્રહ મતિ છે, અને અન્તર મુહૂર્ત પ્રમાણવાળી જે મતિ છે તેનું નામ વ્યવહાર અર્થાવગ્રહ મતિ' છે. આ મતિ જો કે અવાય રૂપ હોય છે, છતાં પણ ઉત્તરકાળભાવી જે ઈહા અને અવાય છે તેમના કારણભૂત હોવાથી તેને અવગ્રહ મતિ આ રૂપે ઉપચરિત કરવામાં આવેલ છે. કહ્યું પણ છે કેઃ

तरतमजोगाभावेऽवाउच्चिय धारणा तदंतम्मि ।
सव्वत्थवासणा पुण, भणिया कालंतर सइत्ति ॥ ५ ॥"

छाया—सामान्यमात्रग्रहणं नैश्चयिकः समयमवग्रहः प्रथमः ।
ततोऽनन्तरमीहितवस्तु विशेपस्य योऽवायः ॥१॥
स पुनरीहावायापेक्षया अवग्रह इत्युपचरितः ।
एप विशेपापेक्षं, सामान्यं गृह्णाति येन ॥ २ ॥
ततोऽनन्तरमीहा, ततोऽवायश्च तद्विशेपस्य ।
इति सामान्यविशेपापेक्षा यावदन्तिमो भेदः ॥ ३ ॥
सर्वत्रेहावायौ, निश्चयतो मुक्त्वा आदि सामान्यम् ।
संव्यवहारार्थं पुनः, सर्वत्रावग्रहोऽवायः ॥ ४ ॥
तरतमयोगाभावेऽवाय एव धारणा तदन्ते ।
सर्वत्र वासना पुनर्भणिता कालान्तरस्मृतिरिति ॥५॥ इति ।

अथासामर्थः प्रकाश्यते—' सामन्नमेत्तग्गहणं ' इत्यादि—

यः सामान्यमात्रं गृह्णाति स एकसामायिको नैश्चयिकः प्रथमोऽवग्रहः । द्वितीयस्तु ततः पश्चात् ईहितवस्तुविशेपग्रहणशीलोऽन्तर्मुहूर्त्तप्रमाणोऽवायरूपो व्यावहारिको बोध्यः ॥ १ ॥ अयं पुनरीहावायापेक्षयाऽवग्रहइत्युपचर्यते, यतोऽयं विशेपापेक्षं सामान्यं गृह्णाति ॥ २ ॥ ततः पश्चात् अवग्रहगृहीतसामान्यार्थस्य

इन गाथाओं का अर्थ इस प्रकार से है—जो सामान्य मात्रको ग्रहण करता है वह एक समय प्रमाणकालवाला नैश्चयिक प्रथम अवग्रह है। द्वितीय जो अवग्रह है वह इसके बाद ईहितवस्तु विशेष को ग्रहण करनेके स्वभाववाला होता है, इसके कालका प्रमाण एक अन्तर्मुहूर्त्तका है और यह अवाय (निश्चय) रूप होता है यही व्यावहारिक अवग्रह है इसे जो अवग्रह कहा गया है वह ईहा और अवाय की अपेक्षासे उपचार से कहा गया है, क्योंकि यह विशेषापेक्ष सामान्यको

" सामन्नमेत्तगहणं " ઈત્યાદિ—

આ ગાથાઓનો અર્થ આ પ્રમાણે છે—જે સામાન્ય માત્રને ગ્રહણ કરે છે તે એક સમયના પ્રમાણુ કાળવાળો નૈશ્ચયિક પ્રથમ અવગ્રહ છે. બીજો જે અવગ્રહ છે તે ત્યાર બાદ ઈહિત વસ્તુવિશેષને ગ્રહણ કરવાના સ્વભાવવાળો હોય છે. તેના કાળનું પ્રમાણુ એક અન્તર્મુહૂર્તનું છે અને તે અવાય (નિશ્ચય) રૂપ હોય છે, એ જ વ્યાવહારિક અવગ્રહ છે. તેને જે અવગ્રહ રૂપે પ્રકટ કરવામાં આવેલ છે તે ઈહા અને અવાયની અપેક્ષાએ ઔપચારિક રીતે કહેલ

विशेषत आलोचनरूपा ईहा भवति। ततोऽनन्तरम् अवग्रहेहाभ्यां सामान्यविशेषतया गृहीतार्थस्य निश्चयरूपोऽवायो भवति। इति=इत्थं सामान्यविशेषापेक्षा यावत् धारणारूपोऽन्तिमो भेदो भवति तावद् बोध्या ॥ ३ ॥ आदि सामान्यं मुक्त्वा निश्चयतः सर्वत्र ईहावायो भवतः। पुनः संव्यवहारार्थं सर्वत्र अवग्रहरूपोऽवायो बोध्यः ॥ ४ ॥ तरतमयोगाभावे=तारतम्याभावेऽवाय एव तदन्ते अवग्रहे-

---

ग्रहण करता है इसके बाद अवग्रहसे गृहीत हुए सामान्य अर्थको विशेष रूपसे जो आलोचना होती है वह ईहा है इसके बाद अवग्रह और ईहासे सामान्य विशेषरूपसे गृहीत हुए पदार्थ का अवाय होता है। यह अवाय निश्चयरूप होता है, बादमें सामान्य विशेषकी अपेक्षा जब तक रहती है तब तक धारणा रूप अन्तिम भेद होता है। आदिमें सामान्य को छोडकर निश्चय से सर्वत्र ईहा और अवाय होते हैं, तात्पर्य यह है कि सामान्य में तो अवग्रह रूपही बोध होता है और विशेषमें ईहा अवायरूप बोध होता है। व्यवहारार्थावग्रह मति यद्यपि अवायरूप होतीहै परन्तु वह उत्तर काल भावी ईहा और अवाय का कारण होती है इसलिये वह अवाय अवग्रह कहा गया है तारतम्य के अभाव में अवाय ही होता है अर्थात् जहां पर अवग्रह के बाद ऐसा बोध होता है कि यह दक्षिण का रहने वाला है या उत्तरके रहनेवाला है तो इस शंका की निवृत्ति के लिये

છે, કારણ કે તે વિશેષાપેક્ષ સામાન્યને ગ્રહણ કરે છે. ત્યાર બાદ અવગ્રહ દ્વારા ગ્રહણ કરાયેલ સામાન્ય અર્થની વિશેષ રૂપે જે આલોચના થાય છે, તેનું નામ 'ઈહા' છે. ત્યાર બાદ અવગ્રહ અને ઇહા દ્વારા સામાન્ય વિશેષ રૂપે ગૃહીત થયેલા પદાર્થને 'અવાય' રૂપ બોધ થાય છે તે અવાય નિશ્ચય રૂપ હોય છે. ત્યાર બાદ સામાન્ય વિશેષની અપેક્ષા જ્યાં સુધી રહે છે, ત્યાં સુધી ધારણા રૂપ છેલ્લો ભેદ રહે છે શરૂઆતમાં સામાન્યને છોડીને નિશ્ચય વડે સર્વત્ર ઇહા અને અવાયનો સદ્ભાવ હોય છે. આ કથનનું તાત્પર્ય એ છે કે સામાન્યમાં તો અવગ્રહ રૂપ બોધ જ થાય છે અને વિશેષમાં ઇહા અવાય રૂપ બોધ થાય છે. વ્યવહારાર્થાવગ્રહ મતિ જો કે અવાય રૂપ હોય છે, પરન્તુ તે ઉત્તરકાળભાવી ઈહા અને અવાય રૂપ બોધ થવામાં કારણભૂત હોય છે તેથી તેને અવાય અવગ્રહ કહેવામાં આવેલ છે. તારતમ્ય (નિશ્ચય) ના અભાવમાં અવાય રૂપ બોધનો જ સદ્ભાવ રહે છે. એટલે કે જ્યાં અવગ્રહ પછી એવો બોધ થાય છે કે આ દાક્ષિણાત્ય છે કે ઔદિચ્ય છે. તો આ શંકાનું નિવારણ કરવાને માટે નિશ્ચય કરાવવા તરફ ઝુકતો એવો જે બોધ

हाभ्यां सामान्यरूपेण गृहीतस्यार्थस्य निश्चयरूपेण यत् ग्रहणं तस्य अन्ते=अवसाने सर्वत्र धारणा भवति। इयं पुनः कालान्तरस्मृतिरूपा वासना भणिता ॥५॥ इति गाथा पञ्चकार्थः।

तत्र–व्यवहारार्थावग्रहमतिमाश्रित्य षड्विधत्वं व्याख्यायते–तद्यथा–साऽवग्रहमतिः षड्विधा यथा–क्षिप्रम् अवगृह्णाति–तदावरणीयक्षयोपशमाधिक्यात् शीघ्रं चन्दनादि स्पर्शं स्वेनात्मना जानाति १। बहु अवगृह्णाति–बहु=अधिकं

निश्चय की ओर झुकता हुआ ऐसा जो बोध होता है कि इसे दक्षिणी होना चाहिये तो ऐसे ज्ञान का नाम ईहा है परन्तु यह दक्षिणी ही है ऐसा जो अवाय रूप बोध होता है उसमें तारतम्य नहीं होता है उसमें तो निश्चय ही होता है। अन्त में अवग्रह और ईहा से सामान्य रूपमें गृहीत हुए अर्थ का अवाय द्वारा निश्चयरूपसे ग्रहण किये जानेके बादमें–सर्वत्र धारणा होती है। यह धारणा उस पदार्थ को कालान्तरमें विस्मरण नहीं होने देती है क्योंकि इस धारणा द्वारा आत्मामें ऐसा संस्कार उत्पन्न हो जाता है कि जिसकी वजह से वह आत्मा उस पदार्थको कालान्तर में भी याद रखता है ऐसा यह पांच गाथाओं का अर्थ है।

अब सूत्रकार व्यवहारार्थावग्रहरूप मतिको लेकर षट विधताका व्याख्यान करते हैं–जो इस प्रकारसे है—कोई एक व्यवहारार्थावग्रह रूपमति ऐसी होती है जो ज्ञानावरणीय कर्मके क्षयोपशमकी अधिकता से शीघ्र ही चन्दनादिके स्पर्शको जान लेती है। कोई एक मति ऐसी

થાય છે કે તે દક્ષિણી જ હોવો જોઈએ, તો એવા જ્ઞાનનું નામ ઈહા છે, પરન્તુ આ દક્ષિણી જ હોવો જોઈએ એવો જે અવાય રૂપ બોધ થાય છે તેમાં તારતમ્ય (શંકાનો સહેજ પણ સદ્ભાવ) હોતું નથી–તેમાં તો નિશ્ચય જ હોય છે. અન્તે અવગ્રહ અને ઈહા દ્વારા સામાન્ય રૂપે ગૃહીત થયેલો અર્થ અવાય દ્વારા નિશ્ચય રૂપે ગ્રહણ થઈ ગયા બાદ સર્વત્ર ધારણા થાય છે. આ ધારણા ગૃહીત થયેલ પદાર્થને ઘણા કાળના અન્તર બાદ પણ વિસ્મૃત થવા દેતી નથી, કારણ કે તે ધારણા દ્વારા આત્મામાં એવા સંસ્કાર ઉત્પન્ન થઈ જાય છે કે તે સંસ્કારને કારણે આત્મા તે પદાર્થને ઘણો કાળ વ્યતીત થઈ ગયા બાદ પણ યાદ રાખી શકે છે. આ પ્રકારનો આ પાંચ ગાથાઓનો અર્થ થાય છે.

હવે સૂત્રકાર વ્યવહારાર્થાવગ્રહ રૂપ મતિના છ ભેદોનું વિવેચન કરે છે--કોઈ એક વ્યવહારાર્થાવગ્રહ રૂપ મતિ એવી હોય છે કે જે જ્ઞાનાવરણીય કર્મના ક્ષયોપશમની શીઘ્રતાથી ચન્દનાદિના સ્પર્શને જાણી લે છે. કોઈ એક

वस्तु भिन्नभिन्नजातीयमेकैकं तत्तद्रूपेण अवगृह्णाति=अवबुध्यते, यथा=स्पर्शाव-ग्रहः। कश्चिज्जनश्चन्दनादिस्पर्शस्य बहुत्वे चन्दनस्पर्शोऽयं चीनांशुकस्पर्शोऽयं नवनीत-स्पर्शोऽयमिति तत्तद्रूपेण तमवबुध्यते।२।बहुविधमवगृह्णाति बहवो विधाः प्रकारा यस्य सबहुविधोऽर्थस्तम् अवगृह्णाति। यथा स एव चन्दनादिस्पर्शः एकैकः शीतस्नि-ग्धमृदुकठिनत्वादिरूपेण यदाऽवबुध्यते तदा बहुविधं शीतत्वस्निग्धत्वमृदुत्व-कठिनत्वादि गुणैर्भिन्नं स्पर्शं भिन्नतया कुर्वन् सोऽवबोधः 'बहुविधम् अवगृ-ह्णाति' इत्युच्यते ॥ ३ ॥ ध्रुवम् अवगृह्णाति-ध्रुवं=नित्यं निश्चलम् अर्थम् अवगृ-ह्णाति=भिन्नतयाऽवबुध्यते, जनस्य यदा यदा तेन तेन चन्दनादिस्पर्शेन सम्बन्धो

होती है जो भिन्न २ जातिकी एक एक वस्तुको उस उस रूपसे जान लेती है जैसे स्पर्शावग्रह जानता है-चन्दनादि अनेक पदार्थों के धरे होने पर जैसे स्पर्शावग्रह से कोई मनुष्य यह चन्दन का स्पर्श है यह चिनांशुक का स्पर्शहै यह नवनीतका (मक्खन) स्पर्श है। इस प्रकारसे तत्तद्रूपसे उस २ पदार्थके स्पर्शको जानताहै, इसी प्रकारसे बहुका अवग्रह भी बहुत पदार्थोंको बहुत रूपसे जानता है २, बहुविधका तात्पर्य बहुत प्रकारसे है-जैसे वही चन्दनादि स्पर्शका अवग्रह जब शीत, स्निग्ध, मृदु, कठिनादि स्पर्श रूपसे भिन्न २ रूपमें स्पर्शको जानता है, तो इस प्रकारसे जाननेवाला स्पर्शावग्रह बहुविधका अवग्रह कहा जाता है ३ " ध्रुवं अवगृह्णाति " यहां ध्रुवका अभिप्राय नित्य निश्चल अर्थसे है, ऐसे ध्रुव अर्थको जाननेवाला जो अवग्रह ज्ञान है, वह ध्रुवका अवग्रह ज्ञान है-ध्रुवावग्रह है, जब किसी मनुष्यका उस उस,चन्दनादिके

મતિ એવી હોય છે કે જે ભિન્ન ભિન્ન જાતિની દરેક વસ્તુને તે તે રૂપે જાણી લે છે. જેમકે સ્પર્શાવગ્રહ જાણે છે એટલે કે ચન્દનાદિ અનેક વસ્તુઓ કોઈ જગ્યાએ મૂકેલી હોય અને કોઈ મનુષ્ય સ્પર્શાવગ્રહ દ્વારા એ જાણી લે છે કે આ ચન્દનનો સ્પર્શ છે, આ ચીનાંશુકનો સ્પર્શ છે, આ નવનીતનો સ્પર્શ છે, આ રીતે તે તે રૂપે તે તે પદાર્થને સ્પર્શ વડે તે જાણી લે છે એ જ પ્રમાણે બહુનો અવગ્રહ પણ બહુ પદાર્થોને બહુ રૂપે જાણે છે. જેમકે એ જ ચન્દનાદિ સ્પર્શનો અવગ્રહ જો શીત, સ્નિગ્ધ, મૃદુ, કઠિનાદિ સ્પર્શ રૂપે જુદે જુદે રૂપે સ્પર્શને જાણે છે તો તે પ્રકારે જાણનારા સ્પર્શાવગ્રહને બહુ-વિધનો (ઘણા પ્રકારનો) અવગ્રહ કહેવામાં આવે છે.

'ધ્રુવં અવગૃહ્ણાતિ" અહીં ધ્રુવ એટલે નિત્ય અને નિશ્ચલ અર્થ થાય છે. એવા ધ્રુવ અર્થને જાણનાર જે અવગ્રહજ્ઞાન છે તેને ધ્રુવનું અવગ્રહજ્ઞાન અથવા ધ્રુવાવગ્રહ કહે છે. જ્યારે કોઇ મનુષ્ય ચન્દનાદિનો સ્પર્શ કરે છે ત્યારે તે

भवति, तदा तदा चन्दनस्पर्शोऽयं, नवनीतस्पर्शोऽयं, चीनांशुकस्पर्शोऽयमित्यादिकं तत्तद्रूपेण तत्तत्स्पर्शमवच्छिनत्ति ॥ ४ ॥ अनिश्रितमवगृह्णाति—निश्रितो=हेतुप्रमितो, यथा केनचित् पूर्वं चन्दनादि स्पर्शाः शीतमृदुस्निग्धत्वादिनाऽनुभूताः, कालान्तरे पुनस्तदुपस्थितौ 'अयं चन्दनादिस्पर्शः शीतमृदुस्निग्धत्वादितः' इति शीतत्वादिना हेतुना प्रमितोयोऽर्थश्चन्दनादिस्पर्शरूपः स निश्रितोऽभिधीयते, तद्भिन्नोऽनिश्रितः, अर्थात्तादृशानुमावेन हेतुना विनैव तदा तं विषयं तज्ज्ञानं परिच्छिनत्ति तदाऽनिश्रितमहेतुकमर्थमवगृह्णातीति व्यपदिश्यते ॥ ५ ॥ असंदिग्ध-

स्पर्शके साथ सम्बन्ध होता है, तो वह निश्चित रूपसे यह जान लेता है, कि यह चन्दनका स्पर्श है, यह नवनीतका स्पर्श है, यह चीनांशुकका स्पर्श है, इत्यादि रूपसे वह उस उसके स्पर्शको जान लेता है, "अनिश्रितं अवगृह्णाति" हेतुसे प्रमित वस्तुका नाम निश्रित है, जैसे—किसी पुरुषने पहिले चन्दनादिका स्पर्श शीतरूपसे या मृदु स्निग्ध रूपसे अनुभूत किया अब कालान्तरमें जब वही विषय उपस्थित होता है, तो वह शीत मृदु आदि रूपसे यह जान लेता है, कि यह चन्दनादिका स्पर्श है, इस तरह शीतत्वादि रूप हेतुसे प्रमित जो चन्दनादि स्पर्श रूप अर्थ है, वह निश्रित है। इस निश्रितसे जो भिन्न है, वह अनिश्रित है। अर्थात् ऐसे हेतुके विनाही जो ज्ञान विषयको जान लेता है, ऐसा वह ज्ञान अनिश्रित विना हेतुके अर्थका अवग्रहण करनेवाला होनेसे अनिश्रित अवग्रह माना जाता है ५ "असंदिग्धं अव-

નિશ્ચિત રૂપે તે એ વાત જાણી લે છે કે આ ચન્દનનો સ્પર્શ છે, આ ચીનાંશુકનો સ્પર્શ છે, અને આ નવનીત (માખણ)નો સ્પર્શ છે, ઇત્યાદિ રૂપે તે તે માણસ તે પ્રત્યેકના સ્પર્શને જાણી લે છે.

"અનિશ્રિતં અવગૃહ્ણાતિ" હેતુ વડે પ્રમિત વસ્તુનું નામ નિશ્રિત છે. જેમકે કોઇ પુરુષે પહેલાં ચન્દનાદિનો સ્પર્શ શીત રૂપે અથવા મૃદુ-સ્નિગ્ધ રૂપે અનુભવ્યો હોય, ત્યાર બાદ અમુક કાળ વ્યતીત થઈ ગયા બાદ જ્યારે એજ પદાર્થ ઉપસ્થિત થાય છે ત્યારે શીત, મૃદુ આદિ પ્રકારના તેના સ્પર્શ દ્વારા તે જાણી લે છે કે આ ચન્દનાદિનો સ્પર્શ છે. આ રીતે શીતત્વ આદિ રૂપ હેતુ વડે પ્રમિત જે ચન્દનાદિ સ્પર્શ રૂપ અર્થ છે, તેનું નામ નિશ્રિત છે. આ નિશ્રિતથી જે ભિન્ન હોય છે તેને અનિશ્રિત કહે છે. એટલે કે એવા હેતુના સદ્ભાવ વિના જ જે જ્ઞાન વિષયને જાણી લે છે એવા જ્ઞાનને અનિશ્રિત અવગ્રહ માનવામાં આવે છે, કારણ કે તે જ્ઞાન હેતુના સદ્ભાવ વિનાજ અર્થનું અવગ્રહણ કરનારું હોય છે.

मवगृह्णाति–असंदिग्धं=सकल संशयादिदोषरहितं, यथाचन्दनादिस्पर्शम् अवगृह्णद्-ज्ञानं "चन्दनस्यैव, चीनांशुकस्यैव, नवनीतस्यैवायं स्पर्शः' इत्येवं रूपं यदा प्रवर्तते तदाऽसन्दिग्धमवगृह्णातीत्युच्यते ॥ ६ ॥ इति । एवम् ईहामतिरवायमतिश्चापि प्रत्येकं षड्विधा बोध्या । तथा–धारणामतिरपि षड्विधा प्रज्ञप्ता,

गृह्णाति" जिस समय समस्त संशयादि दोषोंसे रहित होकर ज्ञान चन्दनादिके स्पर्शको जानता है, कि यह चन्दनकाही या चीनांशुककाही या नवनीत (मक्खन)का ही यह स्पर्श है, अन्यका स्पर्श नहीं है, इस प्रकारसे निश्चित रूपसे स्पर्शको जाननेवाला ज्ञान असंदिग्धग्राही अवग्रह ज्ञान कहा गयाहै ६ तो जिस प्रकारसे यह अवग्रह रूप ज्ञान ६ प्रकारका पूर्वोक्तरूपसे प्रकट किया गयाहै, उसी प्रकारसे ईहाज्ञान और अवायज्ञान भी ६-६ प्रकारके कहे गये हैं। इसी प्रकारसे धारणाज्ञान भी ६ प्रकारका कहा गया है, तात्पर्य इस कथनका यही है, कि बहुग्राही अवग्रह बहुग्राहिणी ईहा, बहुग्राही अवाय और बहुग्राहिणी धारणा १ बहुविधग्राही अवग्रह बहुविधग्राहिणी ईहा बहुविधग्राही अवाय और बहुविधग्राहिणी धारणा २ ध्रुवग्राही अवग्रह ध्रुवग्राहिणी ईहा ध्रुवग्राही अवाय और ध्रुवग्राहिणी धारणा ३ क्षिप्रग्राही अवग्रह क्षिप्रग्राहिणी ईहा, क्षिप्रग्राही अवाय और क्षिप्रग्राहिणी धारणा ४ अनिश्रितग्राही अवग्रह अनिश्रित ग्राहिणी ईहा अनिश्रित ग्राही अवाय और अनिश्रितग्राहिणी धारणा ५ एवं असंदिग्धग्राही अवग्रह असंदिग्धग्राहिणी ईहा

"असदिग्धं अवगृह्णाति" જે સમયે સમસ્ત સંશયાદિથી રહિત થઈને જ્ઞાન એવું જાણી લે છે કે આ ચન્દનનો જ સ્પર્શ છે, આ ચીનાંશુકનો જ સ્પર્શ છે અને આ માખણનો જ સ્પર્શ છે–અન્યનો સ્પર્શ નથી, આ પ્રકારે નિશ્ચિત રૂપે સ્પર્શને જાણનારા જ્ઞાનને અસંદિગ્ધગ્રાહી અવગ્રહજ્ઞાન કહે છે. જેમ આ અવગ્રહજ્ઞાનને પૂર્વોક્ત ૬ પ્રકારનું કહેવામાં આવ્યું છે, એ જ પ્રમાણે ઈહાજ્ઞાન અને અવાયજ્ઞાનને પણ ૭-૭ પ્રકારનું કહ્યું છે. એ જ પ્રમાણે ધારણાજ્ઞાનને પણ ૭ પ્રકારનું કહ્યું છે. આ કથનનું તાત્પર્ય એ છે કે-- (૧) બહુગ્રાહી અવગ્રહ, બહુ ગ્રાહિણી ઈહા, બહુગ્રાહી અવાય અને બહુ ગ્રાહિણી ધારણા, (૨) બહુવિધ ગ્રાહી અવગ્રહ, બહુવિધ ગ્રાહિણી ઈહા, બહુવિધગ્રાહી અવાય અને બહુવિધ ગ્રાહિણી ધારણા, (૩) ધ્રુવગ્રાહી અવગ્રહ, ધ્રુવગ્રાહિણી ઈહા, ધ્રુવગ્રાહી અવાય અને ધ્રુવગ્રાહિણી ધારણા, (૪) ક્ષિપ્રગ્રાહી અવગ્રહ, ક્ષિપ્રગ્રાહિણી ઈહા, ક્ષિપ્રગ્રાહી અવાય અને ક્ષિપ્રગ્રાહિણી ધારણા, (૫) અનિશ્રિતગ્રાહી અવગ્રહ, અનિશ્રિત ગ્રાહીણી ઈહા, અનિશ્રિતગ્રાહી અવાય અને અનિશ્રિત ગ્રાહીણી ધારણા, (૬) અસંદિગ્ધગ્રાહી અવગ્રહ, અસંદિગ્ધ

तद्यथा-बहुधारयति-बहु=भिन्नजातीयमनेकं तत्तद्रूपेण धारयति=निर्णीतार्थस्याविच्युतिवासनास्मृतिलक्षणां धारणां नयति ॥ १ ॥ बहुविधं=नानाप्रकारं शीतत्वादिगुणैर्भिन्नं भिन्नं स्पर्शादिकं धारयति ॥ २ ॥ पुराणाम्=अतीतकालजातं वस्तु धारयति, यथा अनेन मुनिनाऽमुकस्मिन् वर्षे, मासि, पक्षे, प्रहरे, पले,

असंदिग्धग्राही अवाय और असंदिग्धग्राहिणी धारणा ये सब भेद व्यवहार अर्थके विषयमें हुए अवग्रह ईहा अवाय और धारणाके हैं। अर्थात् व्यवहार अर्थको बहुरूपसे बहुविध रूपसे क्षिप्र (जल्दी) रूपसे ध्रुवरूपसे अनिश्रितरूपसे और असंदिग्ध रूपसे अवग्रह ईहा आदि ज्ञान जानते हैं, क्योंकि वह व्यवहार रूप अर्थ बहुबहु विध आदिके भेदसे ६ प्रकारका होता है, अतः इसी प्रकारसे उसे अवग्रह आदि ज्ञान जानतेहैं। ये सब भेद मतिज्ञानकेहीहैं।

धारणामति इस प्रकारसे भी ६ प्रकारकी है, जैसे-" बहु धारयति " इत्यादि-जो मति भिन्न २ जातीय अनेक पदार्थोंको तत्तद्रूपसे धारण कराती है, निर्णीत अर्थको अविच्युति, वासना, स्मृतिरूप धारणामें ले जाती है, ऐसी वह मति बहु धारणामति है १. बहुविध धारणामति इस प्रकारसे है, नाना प्रकारके शीतत्वादि गुणोंसे भिन्न २ स्पर्शादिकको जो धारण कराती है, वह बहुविध धारणामति है २ अतीतकालमें हुई वस्तुको जो धारण कराती है, जैसे-इस मुनिने

ગ્રાહિણી ઇહા, અસંદિગ્ધગ્રાહી અવાય અને અસંદિગ્ધગ્રાહિણી, ધારણા, આ બધા વ્યવહાર અર્થના વિષયમાં અવગ્રહ, ઈહા, અવાય અને ધારણાના ભેદો છે. એટલે કે વ્યવહાર અર્થને બહુ રૂપે ક્ષિપ્ત (શીઘ્ર) રૂપે, અવાય ધ્રુવ રૂપે, અનિશ્રિત રૂપે અને અસંદિગ્ધ રૂપે અવગ્રહ, ઈહા, અવાય અને ધારણા રૂપ જ્ઞાન જાણે છે, કારણ કે તે વ્યવહાર રૂપ અર્થ બહુ, બહુવિધ આદિના ભેદથી ૬ પ્રકારનો હોય છે, તેથી એ જ પ્રકારે તેને અવગ્રહ આદિ જ્ઞાન જાણે છે. આ બધાં મતિજ્ઞાનના ભેદો છે.

ધારણામતિના આ પ્રકારના પણ ૬ ભેદો કહ્યા છે--જેમકે " बहु धारयति " ઇત્યાદિ—(૧) જે મતિ ભિન્ન ભિન્ન જાતના અનેક પદાર્થોને તે તે રૂપે ધારણ કરાવે છે, નિર્ણીત અર્થને અવિચ્યુતિ, વાસના અને સ્મૃતિ રૂપ ધારણામાં લઈ જાય છે, એવી તે મતિને બહુધારણા મતિ કહે છે. (૨) બહુવિધ ધારણામતિનું સ્વરૂપ આ પ્રકારનું છે--વિવિધ પ્રકારના શીતત્વ આદિ ગુણો વડે જુદા જુદા સ્પર્શાદિકને જે ધારણ કરાવે છે, તે બહુવિધ ધારણામતિ છે. (૩) ત્રીજા પ્રકારની ધારણામતિ ભૂતકાળના અર્થને ધારણ કરાવનારી છે, જેમકે આ મુનિએ અમુક વર્ષમાં, અમુક માસમાં, અમુક પક્ષમાં (શુક્લ

विपले, क्षणे दीक्षा गृहीतेति साधारणजनविस्मरणयोग्यकालज्ञानं धारयतीति दृष्टान्तः ॥ ३ ॥ दुर्धर-दुःखेन=बुद्धेरतिपरिश्रमेण धार्यतेऽसौ दुर्धरः=कठिनो भङ्गजालश्रेणि समारोहणादि विषयस्तं धारयति ॥ ४ ॥ अनिश्रितम्-अहेतुकम्-औत्पत्तिक्यादिबुद्ध्या धारयति ॥ ५ ॥ असंदिग्ध=सकलसंशयरहितं धारयति ॥ ६ ॥ इति । क्षिप्रबहु बहुविधादीनां विपर्ययेणापि अवग्रहादीनामेकैकस्य षड् षड्भेदा भवन्तीति अविपर्ययविपर्ययाभ्यां अवग्रहेहावायधारणामतिषु प्रत्येकं

अमुक वर्षमें अमुक मासमें अमुक पक्षमें अमुक प्रहरमें अमुक पलमें अमुक विपलमें एवं अमुक क्षणमें दीक्षा ग्रहणकी है, इस प्रकारसे साधारण जनको विस्मरण हो जाने योग्य कालज्ञानको यह धारणा धारण करातीहै, ऐसी वह धारणा ३ तीसरे नंबरकी धारणाहै, जो बुद्धिके अति परिश्रमसे धारण किया जाता है, वह दुर्धर है, ऐसा वह दुर्धर कठिन विषय-भङ्ग जाल या श्रेणि समारोहण आदि रूप होता है, ऐसे विषयको जो धारण कराती है, वह दुर्धर धारणामति है ४ औत्पत्तिकी आदि बुद्धिसेही जो अनिश्रितको धारण कराती है, वह अनिश्रित धारणा है ५ एवं जो असंदिग्ध पदार्थको धारण कराती है, वह असंदिग्ध धारणा है ६ अक्षिप्रका उल्टा क्षिप्र बहुका उल्टा एक बहुविधका उल्टा एकविध अनिश्रितका उल्टा निश्रित ध्रुवका उल्टा अध्रुव और असंदिग्धका उल्टा संदिग्ध इस तरहसे ६ तरहका पदार्थ और होता

પક્ષ કે કૃષ્ણ પક્ષમાં) અમુક તિથિએ, અમુક પ્રહરમાં, અમુક પળમાં, અમુક વિપળમાં અને અમુક ક્ષણે દીક્ષા ગ્રહણ કરી હતી. ” આ પ્રકારે સામાન્ય માણસને જેની વિસ્મૃતિ થઇ જાય એવા કાળજ્ઞાનને ધારણ કરાવનારી આ ધારણા છે. (૪) દુર્ધર ધારણામતિ—જે બુદ્ધિના અતિશય પરિશ્રમ વડે ધારણ કરી શકાય છે એવી ધારણાને દુર્ધર ધારણા કહે છે. એવો તે દુર્ધર (કઠિન) વિષય ભંગજાળ (અનેક ભાંગાઓના સમૂહ રૂપ જાળ) અથવા શ્રેણિ સમારોહણ આદિ રૂપ હોય છે. એવા કઠિન વિષયને જે ધારણ કરાવે છે તેને દુર્ધર ધારણામતિ કહે છે. (૫) અનિશ્રિત ધારણા–ઔત્પત્તિકી આદિ બુદ્ધિ વડે જ જે અનિશ્રિતને ધારણ કરાવે છે તે ધારણાને અનિશ્રિત ધારણા કહે છે. (૬) અસંદિગ્ધ ધારણા-જે ધારણા અસંદિગ્ધ પદાર્થને ધારણ કરાવે છે, તેનું નામ અસંદિગ્ધ ધારણા છે.

અક્ષિપ્ર (અશીઘ્ર) થી ઉલ્ટો શબ્દ ક્ષિપ્ર (શીઘ્ર) છે, બહુથી ઉલ્ટા અર્થનો શબ્દ એક છે, બહુવિધથી ઉલ્ટો શબ્દ એકવિધ છે અનિશ્રિતથી ઉલ્ટો શબ્દ નિશ્રિત છે, ધ્રુવથી ઉલ્ટો શબ્દ અધ્રુવ છે, અને અસંદિગ્ધથી ઉલ્ટો શબ્દ સંદિગ્ધ છે. આ પ્રકારે ૬ પ્રકારના બીજા પદાર્થો પણ હોય છે.

मतिः द्वादशविधाः द्वादशविधा भवति। सर्वासां मतीनां भेदास्तु षट्त्रिंशदधिकानि त्रीणिशतानि बोध्याः। तथाहि-श्रोत्रघ्राणजिह्वास्पर्शेन्द्रियग्राह्यत्वाद् व्यञ्जनावग्रहश्चतुर्विधः। श्रोत्र-चक्षु-घ्राण-जिह्वा-स्पर्श - नोइन्द्रियग्राह्यत्वात् अर्थावग्रहः षड्विधः। एवमेव श्रोत्रादि षडिन्द्रियग्राह्यत्वात् ईहाऽपि षड्विधा, अवायोऽपि षड्विधः धारणाऽपि च षड्विधा। एव सर्वसंकलनयाऽष्टाविंशति

है, सो जिस प्रकारसे अक्षिप्त पदार्थके बहु पदार्थके बहुविध पदार्थके ध्रुव पदार्थके और अनिश्रित एव असंदिग्ध पदार्थके विषयमें यह अवग्रह ईहा अवाय और धारणा रूप मतिज्ञान होता है, उसी प्रकारसे वह मतिज्ञान अवग्रहादि रूपसे क्षिप्र पदार्थमें एक पदार्थमें बहु पदार्थमें अध्रुव पदार्थमें और सन्दिग्ध पदार्थमें भी होता है, इसलिये अवग्रहके विषयभूत १२ प्रकारके पदार्थ हुए ईहाके विषयभूत १२ प्रकारके पदार्थ हुए अवायके विषयभूत १२ प्रकारके पदार्थ हुए और धारणाके विषयभूत भी १२ प्रकारके पदार्थ हुए और अर्थके विषयमें प्रकट पदार्थके विषयमें हुए ये अवग्राहादिक ५ इन्द्रिय और मनसे होते हैं इस तरह अर्थ विषयक मतिज्ञानके २८८ भेद हो जाते हैं, एवं व्यञ्जन अप्रकट पदार्थके विषयमें केवल एक अवग्रह रूपही ज्ञान होता है; और यह अप्रकट रूप पदार्थ भी बहु आदिके भेदसे १२ प्रकारका

જેમ અક્ષિપ્ત પદાર્થના, બહુ પદાર્થના, બહુવિધ પદાર્થના, ધ્રુવ પદાર્થના, અનિશ્રિત પદાર્થના અને અસંદિગ્ધ પદાર્થના વિષયમાં આ અવગ્રહ, ઇહા, અવાય અને ધારણા રૂપ મતિજ્ઞાન થાય છે, એ જ પ્રમાણે ક્ષિપ્ર, એક પદાર્થમાં, બહુ પદાર્થમાં, અધ્રુવ પદાર્થમાં, નિશ્રિત પદાર્થમાં અને સંદિગ્ધ પદાર્થમાં પણ આ અવગ્રહ, ઇહા, અવાય અને ધારણા રૂપ મતિજ્ઞાનનો સદ્ભાવ રહે છે. તથા અવગ્રહના વિષય રૂપ ૧૨ પ્રકારના પદાર્થ થયા, ઇહાના વિષય રૂપ ૧૨ પ્રકારના પદાર્થ થયા, અવાયના વિષયભૂત ૧૨ પ્રકારના પદાર્થ થયા અને ધારણાના વિષયભૂત પણ ૧૨ પ્રકારના પદાર્થ થયા. અને અર્થના સંબંધમાં-પ્રકટ પદાર્થના વિષયમાં જે અવગ્રહાદિ રૂપ જ્ઞાન થાય છે તે પાંચ ઇન્દ્રિયો અને મનની સહાયતાથી થાય છે. આ પ્રકારે મતિજ્ઞાનના અર્થ વિષયક કુલ ૨૮૮ ભેદ થાય છે. વ્યંજન રૂપ જે અવગ્રહ છે તેના કુલ ૪૮ ભેદ થાય છે. વ્યંજનના વિષયમાં અપ્રકટ પદાર્થના વિષયમાં કેવળ એક અવગ્રહ રૂપ જ જ્ઞાન થાય છે. તે અપ્રકટ રૂપ પદાર્થ પણ પૂર્વોક્ત બહુ આદિના ભેદથી ૧૨ પ્રકારનો હોય છે. ૧૨ પ્રકારનો આ વ્યંજન અવગ્રહ

संख्यका मतिभेदा भवन्ति । ते च द्वादशभिः सह गुणनात् मतिभेदाः षट्त्रिंशदधिक शतत्रयसंख्यकाः भवन्तीति ॥ सू० ३७ ॥

अनन्तरसूत्रे मतिरुक्ता, मतिभेदवन्त एव तपस्विनो भवन्तीति तपोभेदान् निरूपयति—

मूलम्—छव्विहे बाहिरए तवे पण्णत्ते, तं जहा—अणसणं १, ओमोयरिया २, भिक्खायरिया ३, रसपरिच्चाए ४, कायकिलेसो ५, पडिसंलीणया ६। छव्विहे अब्भंतरिए तवे पण्णत्ते तं जहा—पायच्छित्तं १, विणओ २, वेयावच्चं ३, सज्झाओ ४, झाणं ५, विउसग्गो ७ ॥ सू० ३८ ॥

छाया—षड्विधं बाह्य तपः प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—अनशनम् १, अवमोदरिका २, भिक्षाचर्या ३, रसपरित्यागः ४, कायक्लेशः ५, प्रतिसंलीनता ६। षड्विधम् आभ्यन्तरिकं तपः प्रज्ञप्तम् तद्यथा—प्रायश्चित्तं १, विनयो २, वैयावृत्यं ३, स्वाध्यायः ४, ध्यानं ५, व्युत्सर्गः ६ ॥ सू० ३८ ॥

टीका—' छव्विहे बाहिरिए ' इत्यादि—

तपति—दहति ज्ञानावरणीयाद्यष्टविधं कर्मेति तपः, तद्बाह्याभ्यन्तरभेदाद् द्विविधम् । तत्र—आसेव्यमानं यत्तपो लोकैरपि तपस्त्वेन ज्ञायते, प्रायो बहिः

होता है, इसलिये १२ प्रकारके इस व्यञ्जन पदार्थके विषयमें होनेवाला अवग्रह चक्षु और मनसे नहीं होनेके कारण और शेष इन्द्रियोंसेही होनेके कारण ४८ प्रकारका होता है, २८८ और ४८ को परस्परमें मिला देनेसे ३३६ भेद मतिज्ञानके हो जाते हैं, यही विषय टीकाकारने इस टीका द्वारा प्रकट किया गया है ॥सू० ३७॥

इस प्रकारसे ऊपरके सूत्रमें मतिज्ञानका कथन किया है, मतिज्ञान के भेदवाले तपस्वीजन होते हैं, अतः अब सूत्रकार तपके भेदका

ચક્ષુ અને મન વડે થતો નથી પણ બાકીની ચાર ઇન્દ્રિયો વડે જ થાય છે. તેથી તેના ૧૨×૪=૪૮ ભેદ થઇ જાય છે મતિજ્ઞાનના પૂર્વોક્ત ૨૮૮ ભેદોમાં આ ૪૮ ભેદો ઉમેરવાથી કુલ ૩૩૬ ભેદો થાય છે એ જ વિષયનું ટીકાકારે આ ટીકા દ્વારા અહીં સ્પષ્ટીકરણ કર્યું છે. ॥ સૂ ૩૭ ॥

સૂત્રકારે ઉપરના સૂત્રમાં મતિજ્ઞાનની પ્રરૂપણા કરી. મતિજ્ઞાનના ભેદવાળા તપસ્વીઓ હોય છે. તેથી હવે સૂત્રકાર તપના ભેદોનું નિરૂપણ કરે છે.

शरीरस्य तापकतया शोषकतया वा यत् कर्माणि क्षपयति तद् बाह्यं तप इत्युच्यते। यत्तु तपोलोकैस्तपस्तया नाभिलक्ष्यते तत्तपो मोक्षप्राप्त्यन्तरङ्गसाधनत्वात् आभ्यन्तरिकमित्युच्यते। तत्र बाह्यं तपः अनशनावमोदरिकादिभेदैः षड्विधं भवति। तत्र–अनशनम्=आहारत्यागः, तच्च–इत्वरयावत्कथिकभेदेन

निरूपण करतेहैं–"छव्विहे बाहिरतवे पण्णत्ते" इत्यादि सूत्र ३८॥

टीकार्थ–बाह्य तप ६ प्रकारका कहा गयाहै। जैसे–अनशन १ अवमोदरिका २ भिक्षाचर्या ३ रसपरित्याग ४ कायक्लेश ५ और प्रतिसंलीनता ६ इसी प्रकारसे आभ्यन्तर तप भी ६ प्रकारका होताहै, जैसे–प्रायश्चित्त विनय २ वैयावृत्त्य ३ स्वाध्याय ४ ध्यान ५ और व्युत्सर्ग ६।

जो ज्ञानावरणीय आदि ८ प्रकारके कर्मोंको जला देताहै, वह तप है, यह तप बाह्यतप और आभ्यन्तर तपके भेदसे दो प्रकारका है। जो तप बाहरमें लोकों द्वारा तप रूपसे किया जाताहै, अथवा बाहरमें शरीरका प्रायः तपानेवाला होनेके कारण उसका शोषक होनेके कारण जो कर्मोंको क्षय करता है, वह बाह्यतप है, तथा जो तप बाहरमें लोकों द्वारा तप रूपसे नहीं देखा जाता है, ऐसा वह तप मोक्ष प्राप्तिमें अन्तरङ्ग कारण होनेसे आभ्यन्तर तप है। इनमें बाह्यतप अनशन अवमोदरिका आदि भेदोंसे छह प्रकारका कहा गया है, इनमें चतुर्विध आहारका त्याग करना यह अनशनहै, यह अनशन तप इत्वर एवं यावत्कथिकके भेदसे

ટીકાર્થ–"છવ્વિહે બાહિરતવે પણ્ણત્તે" ઈત્યાદિ—

બાહ્યતપના નીચે પ્રમાણે ૬ પ્રકાર કહ્યા છે—(૧) અનશન, (૨) અવમોદરિકા, (૩) ભિક્ષાચર્યા, (૪) રસપરિત્યાગ, (૫) કાયકલેશ અને (૬) પ્રતિસંલીનતા. એજ પ્રમાણે આભ્યન્તર તપના પણ ૬ પ્રકારે કહ્યા છે—(૧) પ્રાયશ્ચિત્ત, (૨) વિનય, (૩) વૈયાવૃત્ય, (૪) સ્વાધ્યાય, (૫) ધ્યાન અને (૬) વ્યુત્સર્ગ. જે જ્ઞાનાવરણીય આદિ આઠ પ્રકારનાં કર્મોને બાળી નાખે છે, તેનું નામ તપ છે. તે તપના બાહ્યતપ અને આભ્યન્તર તપ નામના બે ભેદ કહ્યા છે.

જે તપને બહારથી જ લોકો દ્વારા તપ રૂપે ઓળખવામાં આવે છે અથવા બાહ્ય શરીરને સામાન્યતઃ તપાવનારૂં અને કૃશ કરનારૂં હોય છે અને કર્મનો ક્ષય કરનારૂં હોય છે. તે તપને બાહ્યતપ કહે છે જે તપને બાહ્યદૃષ્ટિએ–લોકો દ્વારા તપ રૂપે દેખવામાં આવતું નથી એવું આન્તરિક તપ કે જે મોક્ષપ્રાપ્તિમાં કારણભૂત બને છે તેને આભ્યન્તર તપ કહે છે તેમાં જે બાહ્યતપ છે તેના અનશન, અવમૌદરિકા ('ઊણોદરિકા') આદિ ૬ ભેદ છે. અશન, પાન આદિ ચારે પ્રકારના આહારનો ત્યાગ કરવો તેનું નામ અનશન છે. તેના ઈત્વર અને યાવત્કથિક નામના

द्विविधम्। तत्र-इत्वरम्-इदं तीर्थमाश्रित्य चतुर्थादि षण्मासान्तं बोध्यम्। यावत्कथिकं तु मरणावधि। इदं पुनः पादपोपगमनेङ्गितमरणभक्तपरिज्ञाभेदात्त्रिविधम् ॥ १ ॥ तथा-अवमोदरिका-अवमम्-ऊनम् उदरं=जठरम्=अवमोदरं, तस्य-करणम्-अवमोदरिका, सा च द्रव्यतो भक्तपानविषया, उपलक्षणादुपकरणविषया च। भावतस्तु क्रोधादिपरित्यागः ॥ २ ॥ भिक्षाचर्या-भिक्षार्थं चरणम्=अटनं भिक्षाचर्या, निर्जराङ्गत्वात् अनशनवत् साऽपि तपः। अथवा-यद्यपि भिक्षाचर्या सामान्येनोक्ता तथापि विचित्राभिग्रहयुक्तत्वेन वृत्तिसंक्षेपरूपा विशिष्टा साऽत्र ग्राह्या। यतोऽत्र वक्ष्यति-' छव्विहा गोयरचरिया ' इति। इयं च न

दो प्रकारका कहा गया है, इनमें इत्वर तप षष्ठ आदिकी तपस्यासे लेकर छह महिनेकी तपस्या तक होता है, और जो तप मरणावधि होता है, वह यावत्कथिक होता है, यावत्कथिक तप पादपोपगमन इंगित मरण एवं भक्तपरिज्ञाके भेदसे तीन प्रकारका होता है १ भूखसे कम आहारका लेना यह अवमोदरिका है। यह अवमोदरिका द्रव्यकी अपेक्षा भक्तपान विषयक और उपलक्षणसे उपकरण विषयक होती है। तथा भावकी अपेक्षासे क्रोधादि कषायोंके त्यागने रूप होती है। भिक्षाके निमित्त चर्या (भ्रमण) करना इसका नाम भिक्षाचर्या है। यह भिक्षाचर्या निर्जराका कारण होनेसे अनशनकी तरह तपरूप कही गईहै। अथवा-यद्यपि भिक्षाचर्या सामान्य रूपसे यहां कही गई है, परन्तु यह विचित्र अभिग्रह युक्त होनेके कारण वृत्ति संक्षेप रूप विशिष्ट भिक्षा-

---

બે ભેદ કહ્યા છે. એક ઉપવાસ, બે ઉપવાસ અને એ જ પ્રમાણે છ માસ પર્યન્તના ઉપવાસને ઇત્વર તપ કહે છે જે અનશન મરણકાળ પર્યન્ત ચાલે છે તે અનશન તપને યાવત્કથિક તપ કહે છે યાવત્કથિક તપના નીચે પ્રમાણે ત્રણ ભેદ છે—(૧) પાદપોપગમન, (૨) ઇંગિતમરણ અને (૩) ભક્તપરિજ્ઞા અવમોદરિકા—જેટલી ભૂખ હોય તેટલો આહાર ન લેતાં ઓછો આહાર લેવો તેનું નામ અવમોદરિકા છે. દ્રવ્યની અપેક્ષાએ તે ભક્તપાન વિષયક અને ઉપલક્ષણની અપેક્ષાએ ઉપકરણ વિષયક હોય છે, તથા ભાવની અપેક્ષાએ ક્રોધાદિ કષાયોના ત્યાગરૂપ હોય છે. ભિક્ષાચર્યા--ભિક્ષાપ્રાપ્તિ નિમિત્તે ચર્યા કરવી (ફરવું) તેનુ નામ ભિક્ષાચર્યા છે. આ ભિક્ષાચર્યા નિર્જરામાં કારણભૂત બનતી હોવાથી તેને અનશનની જેમ તપરૂપ કહી છે. અથવા—જો કે અહીં ભિક્ષાચર્યાનું સામાન્ય રૂપે કથન કરવામાં આવ્યું છે, પરન્તુ તે વિવિધ અભિગ્રહ રૂપ હોવાને કારણે વૃત્તિસંક્ષેપ રૂપ વિશિષ્ટ ભિક્ષા અહીં ગ્રહણ

ततोऽत्यन्तभिन्ना । भिक्षाचर्यायामभिग्रहास्तु–द्रव्यक्षेत्रकालभावविषयतया चतुर्विधाः । तत्र द्रव्यतः 'अलेपकृतादिकमेव द्रव्यं ग्रहीष्ये' इति । क्षेत्रतः 'परग्रामगृहपञ्चकादिलब्धं ग्रहीष्ये' इति । कालतः 'पूर्वाह्नादौ' भावतः–'मौनादिप्रवृत्ताद् ग्रहीष्ये' इति ॥ ३ ॥ तथा–रसपरित्यागः–रसाः=दुग्धघृतादयः तेषां परित्यागः ॥ ४ ॥ कायक्लेशः–कायस्य=शरीरस्य क्लेशः–वीरासनादिरूपः केशलुञ्चनादिरूपश्च ॥ ५ ॥ तथा–प्रतिसंलीनता=गुप्तता ॥ इयं च–इन्द्रियकषाययो-

चर्या यहां गृहीत हुई है, क्योंकि यहां पर आगे सूत्रकार कहनेवाले हैं कि–"छव्विहा गोयरचरिया" यह उससे अत्यन्त भिन्न नहीं है। भिक्षाचर्यामें द्रव्य क्षेत्र काल और भावके अनुसार चार प्रकारके अभिग्रह होते हैं, इनमें द्रव्यके अनुसार ऐसा अभिग्रह होता है, कि मैं अलेपकृत आदि रूप द्रव्यही ग्रहण करूंगा। क्षेत्रकी अपेक्षा ऐसा अभिग्रह होता है, कि मैं पर ग्रामके पांच आदि घरोंसे जो मिलेगा वही ग्रहण करूंगा। कालकी अपेक्षा ऐसा अभिग्रह होता है, कि पूर्वाह्न आदि कालमें जो प्राप्त होगा वही मैं लूंगा एवं भावकी अपेक्षा ऐसा अभिग्रह होता है, कि जो मौनादि रखकर मुझे आहार दो पोरसीके पहले देगा उससे ही मैं आहार ग्रहण करूंगा ३ दुग्धघृत आदि रसोंका परित्याग करना यह रस परित्याग तप है, वीरासन आदिसे स्थित होना एवं केशलुञ्चन आदि करना यह सब कायक्लेश तप है, प्रतिसंलीनता नाम गुप्तताका है, यह इन्द्रिय कषाय

કરવામાં આવી છે. સૂત્રકાર હવે પછીના સૂત્રમાં "છવ્વિહા ગોયરચરિયા" ઈત્યાદિ ભિક્ષાચર્યાના ૬ ભેદોનું નિરૂપણ કરવાના છે. ભિક્ષાચર્યામાં દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર કાળ અને ભાવની અપેક્ષાએ ચાર પ્રકારના અભિગ્રહ થાય છે. દ્રવ્યની અપેક્ષાએ એવો અભિગ્રહ થાય છે કે હું અલેપકૃત આદિ રૂપ દ્રવ્ય જ ગ્રહણ કરીશ. ક્ષેત્રની અપેક્ષાએ એવો અભિગ્રહ થાય છે કે હું ગામમાંથી પાંચ આદિ ઘરોમાંથી જે આહાર પ્રાપ્ત થશે તે આહાર જ ગ્રહણ કરીશ. કાળની અપેક્ષાએ એવો અભિગ્રહ કરવામાં આવે છે કે પૂર્વાહ્ણ આદિ કાળમાં જે ખાનપાન આદિ પ્રાપ્ત થશે તેને જ હું ગ્રહણ કરીશ. ભાવની અપેક્ષાએ એવો અભિગ્રહ થાય છે કે જે વ્યક્તિ મૌનાદિ રાખીને મને આહાર વહોરાવશે તેના હાથે અપાયેલો આહાર જ હું ગ્રહણ કરીશ.

દૂધ, ઘી આદિ રસોનો પરિત્યાગ કરવો તેનું નામ રસપરિત્યાગ તપ છે. વીરાસન આદિ આસને જ બેસવું, કેશલુંચન કરવું વગેરે તપને કાયકલેશ તપ

गविषया विविक्तशयनासनविषयावेति ॥ ६ ॥ इति । तथा-आभ्यन्तरिकं तपोऽपि प्रायश्चित्तविनयादिभेदेन षड्विधम् । तत्र-प्रायश्चित्तम्-अतीचारशोधनम् । तच्च आलोचनादि भेदेन दशविधं बोध्यम् ॥ १ ॥ विनयः-विनीयते=दूरीक्रियते कर्म येन सः, स च वक्ष्यमाण ज्ञानादि सप्तभेदरूपः । उक्तं च विनयस्वरूपम्—

" जम्हा विणयइ कम्मं, अट्ठविहं चाउरंतमोक्खाए ।
तम्हा उ वयंति विऊ, विणयंति विलीणसंसारा ॥ १ ॥ "

छाया—यस्माद् विनयति कर्म अष्टविधं चातुरन्तमोक्षाय ।
तस्मात्तु वदन्ति विद्वांसो विनयमिति विलीनसंसाराः
(तीर्थंकरगणधराः) इति ॥ २ ॥

वैयावृत्यम्-व्यावृतस्य=गुर्वादिसेवारूपशुभव्यापारवतः कर्म वैयावृत्यम् गुर्वादीनामशनादिना शुश्रूषणम् । तदुक्तम्—

योग विषयवाली अथवा विविक्त शय्यासन विषयवाली होती है, ६ तथा आभ्यन्तर तप प्रायश्चित्त आदिके भेदसे ६ प्रकारका कहा गया है, अतिचारोंका शोधन करना यह प्रायश्चित्त है, यह प्रायश्चित्त आलोचना आदिके भेदसे १२ प्रकारका होता है १ जिससे कर्म " विनीयते " दूर कर दिये जाते हैं, वह विनय है यह विनय आगे कहे जानेवाले ज्ञानादिके भेदसे ७ प्रकारका है । कहा भी है—

" जम्हा विणयइ कम्मं " इत्यादि ।

व्यावृतका-गुरु आदिकी सेवा रूप शुभ व्यापारवालेका जो कर्म है, वह वैयावृत्य है, अनशन आदि द्वारा गुरु आदि जनोंकी सुश्रूषा करना इसका नाम वैयावृत्य है ।

કહે છે. પ્રતિસંલીનતા એટલે ગુપ્તતા. તે ઇન્દ્રિયો, કષાયો અને યોગરૂપ વિષયવાળી હોય છે અથવા વિવિક્ત શય્યાસન વિષયવાળી હોય છે.

આભ્યન્તર તપના પ્રાયશ્ચિત્ત આદિ ૬ ભેદો કહ્યા છે. અતિચારોની શુદ્ધિ કરવી તેનું નામ પ્રાયશ્ચિત્ત છે. તે પ્રાયશ્ચિત્તના આલોચના આદિ ૧૨ ભેદ કહ્યા છે. વિનય—જેના દ્વારા કર્મોને " विनीयते " દૂર કરી નાખવામાં આવે છે, તેનું નામ વિનય છે. તે વિનયના જ્ઞાનાદિ જે સાત ભેદ છે તેનું સૂત્રકાર આગળ વર્ણન કરવાના છે. કહ્યું પણ છે કે :

" जम्हा विणयइ कम्मं " ઇત્યાદિ—

ગુરુ આદિની સેવા કરવા રૂપ જે શુભ પ્રવૃત્તિ કરવામાં આવે છે તેનું નામ વૈયાવૃત્ય છે. અશનાદિ દ્વારા ગુરુ આદિની જે શુશ્રૂષા કરવામાં આવે

" वैयावच्चं वावडभावो इह धम्म साहणनिमित्तम् ।
अण्णाइयाण विहिणा, संपायणमेस भावत्थो ॥ १ ॥

छाया—वैयावृत्यं व्यापृतभावः इह धर्मसाधननिमित्तम् ।
अन्नादिकानां विधिना संपादनमेष भावार्थः ॥ १ ॥ इति ।

वैयावृत्त्यं तु आचार्यवैयावृत्त्यादिभेदाद् दशविधम् । तदुक्तम्—

" आयरिय उवज्झाय,-थेरतवस्सि गिलाणसेहाणं ।
साहम्मियकुलगणसंघसंगयं तमिह कायव्वं ॥ १ ॥ "

छाया—आचार्योपाध्यायस्थविरतपस्विग्लानशैक्षाणाम् ।
साधर्मिक-कुल-गण सङ्घ संगतं तदिहकर्तव्यम् ॥ १ ॥ इति ॥ ३ ॥

स्वाध्यायः-सुष्ठु आ=मर्यादया अध्ययनं-स्वाध्यायः-श्रुतधर्माराधनम् । स च-वाचना प्रच्छना परावर्त्तनाऽनुप्रेक्षा धर्मकथाभेदात् पञ्चविधो बोध्य इति ॥ ४ ॥ ध्यानम्-ध्यातिर्ध्यानम्-एकमात्रावलम्बनेन पवनासंपृक्तदीपशिखाया

कहा भी है—" वेयावच्चं वावडभावो " इत्यादि ।

इस गाथाका पूर्वोक्त रूपसेही अर्थ है, यह वैयावृत्त्य आचार्य वैयावृत्यादिके भेदसे १० प्रकारका है । कहा भी है—

" आयरिय उवज्झाय थेर " इत्यादि ।

आचार्य १ उपाध्याय २ स्थविर ३ तपस्वी ४ ग्लान ५ शैक्ष ६ साधर्मिक ७ कुल ८ गण ९ और संघ १० इनकी वैयावृत्ति करनेके भेदसे वैयावृत्त्य १० प्रकारका होता है, श्रुतधर्मकी आराधनाका नाम स्वाध्याय है, यह स्वाध्याय-वाचना १ प्रच्छना २ परावर्त्तना ३ अनुप्रेक्षा ४ और धर्मकथा ५ के भेदसे पांच प्रकारका है । पवनके अभावमें जिस

છે તેને વૈયાવૃત્ય કહે છે. કહ્યું પણ છે કે " વેયાવચ્ચં વાવડભાવો " ઇત્યાદિ. આ ગાથાનો અર્થ ઉપર કહ્યા અનુસાર જ છે. તે વૈયાવૃત્યના આચાર્ય વૈયાવૃત્ય આદિ ૧૦ ભેદ કહ્યા છે. કહ્યું પણ છે કે :

" આયરિય ઉવજ્ઝાય થેર " ઇત્યાદિ—

વૈયાવૃત્યના ૧૦ ભેદ છે—(૧) આચાર્ય, (૨) ઉપાધ્યાય, (૩) સ્થવિર, (૪) તપસ્વી, (૫) ગ્લાન (બીમાર), (૬) શૈક્ષ (નવ દીક્ષિત), (૭) સાધર્મિક, (૮) કુલ, (૯) ગણ અને (૧૦) સંઘ, આ દસેની સેવાશુશ્રૂષા કરવા રૂપ ૧૦ પ્રકારનું વૈયાવૃત્ય સમજવું.

શ્રુતધર્મની આરાધના રૂપ સ્વાધ્યાય હોય છે. તે સ્વાધ્યાયના વાચના, પ્રચ્છના, પરાવર્ત્તના, અનુપ્રેક્ષા અને ધર્મકથા નામના પાંચ ભેદ કહ્યા છે. પવનને અભાવે જેમ દીપકની જ્વાલા (ઝાળ) સ્થિર રહે છે, તેમ કોઇ એક

इव चित्तस्य स्थिरीकरणम् । तच्च चतुर्थस्थानके चतुर्विधमुक्तम् । तत्र धर्म-शुक्ल-ध्यानद्वयमेव तपोरूपं बोध्यम्, तयोरेव निर्जराकारणत्वात् । तद्भिन्नम् आर्त्तरौद्र-ध्यानद्वयं तु बन्धकारणत्वान्न तपोरूपमिति ॥ ५ ॥ तथा-व्युत्सर्गः-परित्यागः, स च द्रव्यभावभेदाभ्यां द्विविधः । तत्र-द्रव्यतोव्युत्सर्गो गणशरीरोपध्याहारवि-षयः, भावतस्तु क्रोधादिविषयः ६ इति ॥ सू० ३८ ॥

पूर्वोक्तेषु तपः स्वरूपेषु केचिद् विवादमध्यासन्ते, इति विवादस्वरूपमाह-

मूलम्—छव्विहे विवाए पण्णत्ते, तं जहा-ओसक्कइत्ता १ उस्सक्कइत्ता २, अणुलोमइत्ता ३, पडिलोमइत्ता ४, भइत्ता ५, भेलइत्ता ७ ॥ सू० ३९ ॥

छाया—षड्विधो विवादः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-अवष्वष्क्य, उत्ष्वष्क्य, अनुलो-मयित्वा, प्रतिलोमयित्वा, भक्त्वा, मिश्रयित्वा ॥ सू० ३९ ॥

प्रकार दीपककी लौ स्थिर रहती है, उसी प्रकारसे किसी एकके आल-म्बनसे चित्तका स्थिर करना यह ध्यान है, चौथे स्थानमें वह ध्यान चार प्रकारका कहा गया है, धर्म और शुक्ल ये ध्यानही तपोरूप होते हैं, क्योंकि इन दोनोंमेंही निर्जराके प्रति हेतुता है । इनसे भिन्न जो आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान हैं ये कर्मके कारण होनेसे तपोरूप नहीं हैं । ५ परित्यागका नाम व्युत्सर्ग है, यह व्युत्सर्ग द्रव्य और भावसे दो प्रकारका है, इनमें गणका शरीरका उपधिका एवं आहारका जो परित्याग है, वह द्रव्य व्युत्सर्ग है, एवं क्रोधादि कषायोंका जो परित्याग है, वह भावव्युत्सर्ग है ॥ सू० ३८ ॥

पूर्वोक्त इन तपके स्वरूपोंमें कितनेक जन विवाद करते हैं, अतः

વસ્તુના આલમ્બન વડે ચિત્તને સ્થિર કરવું તેનું નામ ધ્યાન છે. ચોથા સ્થાનમાં આ ધ્યાનના ચાર પ્રકાર કહ્યા છે. ધર્મધ્યાન અને શુકલ ધ્યાનને જ તપરૂપ સમજવા, કારણ કે તે બે ધ્યાનો જ નિર્જરામાં કારણભૂત બને છે. આર્ત્તધ્યાન અને રૌદ્રધ્યાન કર્મબન્ધનમાં કારણભૂત બનતા હોવાથી તેમને તપોરૂપ ગણી શકાય નહીં વ્યુત્સર્ગ--પરિત્યાગનુ નામ વ્યુત્સર્ગ છે. તે વ્યુત્સર્ગ દ્રવ્ય અને ભાવની અપેક્ષાએ બે પ્રકારનો કહ્યો છે ગણુનો શરી-રનો, ઉપધિનો અને આહારનો જે પરિત્યાગ છે, તે દ્રવ્ય વ્યુત્સર્ગ છે, અને ક્રોધાદિ કષાયોનો જે પરિત્યાગ છે, તે ભાવવ્યુત્સર્ગ છે. ॥ સૂ. ૩૮ ॥

टीका—' छव्विहे ' इत्यादि—

विवादः—क्वचिदर्थे वि=विरुद्धयोः-असम्मतयोर्यो वादः=जल्पः स विवादः, उक्तं चास्य स्वरूपम्—

" लब्धिख्यात्यादिना तु स्याद्, दुःस्थितेनामहात्मना ।

छलजातिप्रधानो यः, स विवाद इति स्मृतः " इति ।

अयं च षड्विधः प्रज्ञप्तः । तद्यथा-विवादसमये प्रतिपक्षिणः प्रश्नस्योत्तरदानेऽसमर्थः केनाप्युपायेन अवष्वष्कय=अपसृत्य-दूरीभूय-अवसरलाभाय कालक्षेपं

अब सूत्रकार विवादके स्वरूपका कथन करते हैं—

"छव्विहे विवाए पण्णत्ते" इत्यादि सूत्र २९ ॥

टीकार्थ-विवाद६ प्रकारका कहा गयाहै, जैसे-ओसक्कइत्ता आदि१ किसी अर्थमें विरुद्ध असंमत दो विषयोंको लेकर जल्प (बोलना) होता है, वह विवाद है, विवादका स्वरूप इस प्रकारसे कहा गया है—

" लब्धिख्यात्यादिना तु " इत्यादि ।

लब्धि ख्याति आदिकी इच्छासे दुःस्थित किसी अमहात्मा द्वारा जो जय पराजयकी भावना लेकर छलजाति प्रधानतावाला जल्प है, वह विवाद है, यह विवाद वादी प्रतिवादीका होताहै, यह छह प्रकारका इस प्रकारसे है-विवादके समय प्रतिपक्षीके प्रश्नके उत्तर देनेमें असमर्थ बना हुआ यदि कोई वादी उससे दूर होकरके अवसर लाभके लिये कालक्षेप करके जो पुनः विवाद करना है, वह अवष्वष्कय विवाद है,

---

આગલા સૂત્રમાં તપના પ્રકારોનું નિરૂપણ કર્યું તે તપના વિષયમાં કેટલાક લોકો વિવાદ કરતા હોય છે, તેથી હવે સૂત્રકાર વિવાદના સ્વરૂપનુ નિરૂપણ કરે છે. " છવ્વિહે વિવાએ પણ્ણત્તે " ઇત્યાદિ—

વિવાદ ૬ પ્રકારનો કહ્યો છે. જેમકે ' ઓસક્કઇત્તા ' આદિ ૬ પ્રકાર સમજવા. કોઈ વિષયને અનુલક્ષીને-વિરુદ્ધ, અસંમત બે વિષયોને અનુલક્ષીને કોઈ બે વ્યક્તિઓ વચ્ચે જે ચર્ચા ચાલે છે તેનું નામ વિવાદ છે. તેનું સ્વરૂપ આ પ્રકારનું કહ્યું છે. " લબ્ધિખ્યાત્યાદિના તુ " ઇત્યાદિ—

લબ્ધિ ખ્યાતિ આદિની કામનાથી કોઈ અમહાત્મા દ્વારા જય પરાજયની ભાવના પૂર્વકની છળપ્રધાનતાવાળી જે ચર્ચા ચાલે છે તેનું નામ વિવાદ છે. વાદી પ્રતિવાદી વચ્ચે આ વિવાદ થાય છે. તેના નીચે પ્રમાણે ૬ પ્રકાર છે—(૧) વિવાદ વખતે પ્રતિપક્ષીના પ્રશ્નનો ઉત્તર આપવાને અસમર્થ બનેલો વાદી તે વખતે તો ત્યાંથી ખસી જાય છે, પણ અમુક કાળ જવા દઈને ફરી તેની સામે જે વિવાદ કરે છે તેનું નામ " અવષ્વષ્કય વિવાદ " છે. (૨) મોકો

कृत्वा यो विवादः पुनः क्रियते स तथा ॥ १ ॥ उत्ष्वष्क्य लब्धावसरेण उत्सृत्य=स्वयं गत्वा यो विवादो विधीयते स तथा ॥ २ ॥ अनुलोमयित्वा–मध्यस्थं साम्ना, प्रतिपक्षिणं वा पूर्वं तत्पक्षाभ्युपगमेन अनुकूलं कृत्वा यो विवादः स तथा ॥ ३ ॥ प्रतिलोमयित्वा–पूर्णसामर्थ्यवता पूर्वं मध्यस्थं प्रतिपक्षिणं वा प्रतिकूलं कृत्वा यो विवादः स तथा ॥ ४ ॥ भक्त्वा मध्यस्थम् आसेव्य यो विवादः सः तथा ॥ ५ ॥ तथा–मिश्रयित्वा–मध्यस्थं स्वपक्षे कृत्वा यो विवादः स तथा ॥६॥ इति ॥ सू० ३९ ॥

'विवादासक्तचित्ताः क्षुद्रप्राणितया समुत्पद्यन्ते' इति क्षुद्रप्राणिस्वरूपं निरूपयति—

मूलम्–छव्विहा खुड्डा पाणा पण्णत्ता, तं जहा–बेंदिया १, तेइंदिया २, चउरिंदिया ३, संमुच्छिमपंचिंदियतिरिक्खजोणिया ४, तेउकाइया ५, वाउकाइया ६ ॥ सू० ४० ॥

अवसर पाकर पुनः जो स्वयं जा करके विवाद किया जाता है, ऐसा वह विवाद उत्ष्वष्क्य है, मध्यस्थको अथवा शान्तिसे प्रतिपक्षीको पहिले उसके पक्षको स्वीकार कर अनुकूल करके जो विवाद किया जाता है, वह अनुलोमयित्वा विवाद है, पूर्ण सामर्थ्यसे युक्त हुए वादीके द्वारा पहिले मध्यस्थको अथवा प्रतिपक्षीको प्रतिकूल करके जो विवाद किया जाता है, वह प्रतिलोमयित्वा विवाद है, मध्यस्थकी अच्छी तरहसे सेवा करके जो विवाद किया जाताहै, वह भक्त्वा विवादहै, तथा मध्यस्थको अपने पक्षमें करके जो विवाद किया जाताहै, वह मिश्रयित्वा विवादहै॥सू०३९॥

મળતાં ફરી જાતે જ જઇને જે વિવાદ કરવામાં આવે છે તે વિવાદને 'ઉત્ષ્વષ્કય વિવાદ કહે છે. (૩) મધ્યસ્થની અથવા પ્રતીપક્ષીની વાતનો પહેલા સ્વીકાર કરી લઇને તેમને અનુકુલ કરી લઇને જે વિવાદ કરવામાં આવે છે તેને "અનુલોમયિત્વા વિવાદ" કહે છે. (૪) પૂર્ણ સામર્થ્યથી યુક્ત એવા વાદી દ્વારા પહેલાં મધ્યસ્થને અથવા પ્રતિપક્ષીને પ્રતિકૂલ કરીને જે વિવાદ કરવામાં આવે છે તેનું નામ "પ્રતિલોમયિત્વા વિવાદ" છે. (૫) મધ્યસ્થની સારી રીતે સેવા કરીને જે વિવાદ કરવામાં આવે છે તેનું નામ "ભકત્વા વિવાદ" છે. "મધ્યસ્થને પોતાના પક્ષમાં કરી નાખીને જે વિવાદ કરવામાં આવે છે તેનું નામ "મિશ્રયિત્વા વિવાદ" છે. ॥ સૂ. ૩૯ ॥

छाया—पड्विधाः क्षुद्राः प्राणाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—द्वीन्द्रियाः १, त्रीन्द्रियाः २, चतुरिन्द्रियाः ३, सम्मूर्च्छिमपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकाः ४ तेजस्कायिकाः ५, वायुकायिकाः ६ ॥ सू० ४० ॥

टीका—' छव्विहाखुड्डा ' इत्यादि—

क्षुद्राः प्राणाः=क्षुद्रजीवाः, द्वीन्द्रियादिभेदैः पट्संख्यका बोध्याः । एषां क्षुद्रत्वं च अनन्तरभवे सिद्धिगमनाभावाद् बोध्यम् ।

अत्र सूक्ष्मत्रसाः तेजोवायुकायिका जीवा बोध्याः । किंच-एतेषु देवाना मुत्पत्ति र्न भवतीति हेतोरपि द्वीन्द्रियादीनां क्षुद्रत्वं बोध्यम् । देवानां यत्रोत्पत्ति र्भवति यत्र च न भवति, तदुक्तमेकया गाथया—

विवादासक्त चित्तवाले प्राणी क्षुद्रप्राणी रूपसे उत्पन्न होते हैं, अतः अब सूत्रकार क्षुद्र प्राणियोंके स्वरूपका कथन करते हैं—

"छव्विहा खुड्डा पाणा पण्णत्ता" इत्यादि सूत्र ४० ॥

टीकार्थ-क्षुद्र प्राणी६ प्रकारके कहे गयेहैं जैसे-द्वीन्द्रिय१ त्रीन्द्रिय२ चतुरिन्द्रिय ३ संमूर्च्छिम पञ्चेन्द्रियतिर्यश्च ४ तेजस्कायिक ५ और वायुकायिक६

द्वीन्द्रियादिकोंके भेदोंसे जो क्षुद्र जीव ६ प्रकारके कहे गये हैं, सो इसका कारण यह है, कि ये सब अनन्तर भवमें सिद्धिमें गमन नहीं करते हैं अतः सिद्धिमें गमन करनेके अभावको लेकर इनमें क्षुद्रताका प्रतिपादन किया गया है । यहां तेजस्कायिक और वायुकायिक जीव त्रस जानना चाहिये किंच इनमें देवोंकी उत्पत्ति नहीं होती है, इस कारण भी द्वीन्द्रियादिकोंमें क्षुद्रता जाननी चाहिये देवोंकी जहां

વિવાદાસક્ત ચિત્તવાળા જીવો ક્ષુદ્રજીવો રૂપે ઉત્પન્ન થાય છે. તેથી હવે સૂત્રકાર એવા ક્ષુદ્રજીવોના સ્વરૂપનું નિરૂપણ કરે છે.

ટીકાર્થ-" છવ્વિહા ખુડ્ડા પાણા પણ્ણત્તા " ઇત્યાદિ--

ક્ષુદ્રજીવોના ૬ પ્રકારો કહ્યા છે--(૧) દ્વીન્દ્રિય, (૨) ત્રીન્દ્રિય, (૩) ચતુરિન્દ્રિય, (૪) સંમૂર્ચ્છિમ પચેન્દ્રિય તિર્યંચ, (૫) તેજસ્કાયિક અને (૬) વાયુકાયિક. દ્વીન્દ્રિયાદિક જીવોને ક્ષુદ્રજીવો ગણવાનું કારણ નીચે પ્રમાણે છે--આ જીવો અનન્તર ભવમાં સિદ્ધગમન કરી શકતા નથી આ. રીતે તે જીવોમાં અનન્તર ભવમાં સિદ્ધિગતિની પ્રાપ્તિનો અભાવ હોવાથી તેમનામાં અહીં ક્ષુદ્રતાનું પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યું છે. અહીં તેજસ્કાયિક અને વાયુકાયિક જીવોને સૂક્ષ્મ ત્રસ જાણવા જોઇએ. વળી દ્વીન્દ્રિયાદિકોમાં દેવોની ઉત્પત્તિ થતી નથી. તે કારણે પણ તે જીવોને ક્ષુદ્ર ગણી શકાય છે. નીચેની ગાથામાં

" पुढवी आउवणस्सइ,–गब्भयपज्जत्तसंखजीवीसु ।
सग्गच्चुयाणवासो, सेसा पडिसेहिया ठाणा ॥ १ ॥"

छाया—पृथिव्यब्वनस्पति गर्भजपर्याप्तसंख्यजीविषु ।
स्वर्गच्युतानां वासः शेषाणि प्रतिषेधितानि स्थानानि ॥१॥ इति ।

संमूर्च्छिमपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकानां तु पञ्चेन्द्रियत्वेऽपि मनसोऽभावेनाविवेकितया निर्गुणत्वात् क्षुद्रत्वं बोध्यमिति ॥ सू० ४० ॥

षड्विधाः क्षुद्राः प्राणिनः प्रोक्ताः, तेषां विराधना यथा न भवेत्तथा साधुभिर्भिक्षाचर्या कर्तव्येति प्राप्तावसरां गोचरचर्यां षड्विधत्वेन निरूपयति—

मूलम्—छव्विहा गोयरचरिया पण्णत्ता, तं जहा–पेडा १, अद्धपेडा २, गोमुत्तिया ३, पतंगवीहिया ४, संवुक्कावट्टा ५, गंतुं पच्चागया ६ ॥ सू० ४१ ॥

उत्पत्ति होती है, और जहां नहीं होती है यह बात इस गाथा द्वारा व्यक्त की गई है–" पुढवी आउ वणस्सइ " इत्यादि ।

पृथिवीकायिकमें अप्कायिकमें वनस्पतिकायिकमें एवं गर्भज पर्याप्त संख्यात वर्षकी आयुवालोंमें स्वर्गसे च्युत हुए जीवोंकी-देवोंकी उत्पत्ति होती है । सम्मूर्च्छिम तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रियोंमें जो देवोंकी उत्पत्ति होनेका निषेध किया गया है, सो उसका कारण ऐसा है, कि उनमें पंचेन्द्रियता होने पर भी मनका अभाव रहता है, अत इससे उनमें अविवेकताके कारण निर्गुणता होनेसे क्षुद्रता रहती है । इस तरह सूत्रनिर्दिष्ट क्षुद्र जीवोंमें देवोंकी उत्पत्ति नहीं होती है ॥ सू० ४० ॥

એ વાત પ્રકટ કરવામાં આવી છે કે દેવોની ઉત્પત્તિ ક્યાં ક્યાં થાય છે અને ક્યાં ક્યાં થતી નથી. " पुढवी आउ वणस्सइ " ઇત્યાદિ–

પૃથ્વીકાયિકોમાં, અપ્કાયિકોમાં, વનસ્પતિકાયિકોમાં, અને ગર્ભજ પર્યાપ્ત સંખ્યાત વર્ષના આયુવાળા જીવોમાં દેવલોકમાંથી ચ્યુત થયેલા જીવોની (દેવોની) ઉત્પત્તિ થાય છે–અન્યત્ર થતી નથી સંમૂર્છિમ તિર્યંચ પંચેન્દ્રિયોમાં દેવોની ઉત્પત્તિ થતી નથી, એવું જે કહેવામાં આવ્યું છે તેનું કારણ એ છે કે તેઓ પંચેન્દ્રિય હોવા છતાં પણ તેમનામાં મનનો અભાવ હોય છે. તેથી તે જીવોમાં અવિવેકતાને કારણે નિર્ગુણતા હોવાને લીધે ક્ષુદ્રતા હોય છે. આ રીતે સૂત્રનિર્દિષ્ટ ક્ષુદ્રજીવોમા દેવોની ઉત્પત્તિ થતી નથી, એમ સમજવું. ॥ સૂ. ૪૦ ॥

छाया—षड्विधा गोचरचर्या प्रज्ञप्ता, तद्यथा-पेटा १, अर्धपेटा २, गोमूत्रिका ३, पतङ्गवीथिका ४, शम्बूकावर्ता ५, गत्वाप्रत्यागता ६ ॥ सू० ४१ ॥

टीका—'छव्विहा गोयरचरिया' इत्यादि—

गोचरचर्या-गोश्चरणं गोचरः, तद्वद् या चर्या सा। अयं भावः-यथा गौः उच्चनीचतृणानि सामान्यतश्चरति, तथैव रागद्वेषराहित्येन यः साधुरुच्चनीचमध्यमकुलेषु धर्मसाधननिमित्तभूतं देहं परिपालयितुं भिक्षार्थं चरति, तस्य तथाचरणं गोचरचर्येत्युच्यते। इयं-गोचरचर्या पेटाऽर्धपेटादिभेदेन षड्विधा बोध्या। तत्र-

ये ६ प्रकारके क्षुद्र प्राणी कहे सो जिस तरहसे इनकी विराधना न हो सके इस प्रकारसे भिक्षाचर्या साधुको करनी चाहिए अतः इसी सम्बन्धको लेकर अब सूत्रकार ६ प्रकारकी भिक्षाचर्या प्रकट करते हैं—

"छव्विहा गोयरचरिया पण्णत्ता" इत्यादि सूत्र ४१ ॥

टीकार्थ-गोचरचर्या ६ प्रकारकी कही गईहै, जैसे-पेटा १ अर्धपेटा २ गोमूत्रिका ३ पतङ्गवीथिका ४ शम्बूकावर्ता ५ गत्वा प्रत्यागता ६ गौ के चरनेकी जैसी जो चर्या होती है, वह गोचरचर्या है, तात्पर्य ऐसा है, कि जैसे गाय सामान्य रूपसे ऊंचे नीचेके स्थानोंके तृणोंको चरती है, उसी प्रकार जो साधु रागद्वेष रहित होकर ऊंच नीच कुलोंमें धर्म साधनके निमित्तभूत देहकी परिपालनाके लिये भिक्षा करता है, ऐसे उस साधुकी वह भिक्षाचर्या गोचरचर्या इस रूपसे कही गई है, गोचरचर्या जो पेटा१ अर्धपेटा आदिके भेदसे ६ प्रकारकी कही गईहै, सो इसका

આગલા સૂત્રમાં છ પ્રકારના ક્ષુદ્રજીવેનું પ્રતિપાદન કરવામા આવ્યું છે. તેમની વિરાધના ન થાય એવી રીતે સાધુએ ભિક્ષાચર્યા કરવી જોઈએ આ પ્રકારના સંબંધને અનુલક્ષીને હવે સૂત્રકાર ભિક્ષાચર્યાના ૬ પ્રકારોનું કથન કરે છે. "છવ્વિહા ગોયરચરિયા પણ્ણત્તા" ઈત્યાદિ—

ટીકાર્થ—ભિક્ષાચર્યા (ગોચર ચર્યા) છ પ્રકારની કહી છે-(૧) પેટા, (૨) અર્ધપેટા, (૩) ગોમૂત્રિકા, (૪) પતંગવીથિકા, (૫) શમ્બૂકાવર્તા અને (૬) ગત્વા પ્રત્યાગતા. ગાયની ચરવાની ક્રિયા જેવી જે ચર્યા હોય છે તેનું નામ ગોચરચર્યા છે. એટલે કે ગાય જેમ ઊંચે અને નીચે આવેલાં સ્થળોનું ઘાસ ચરે છે, એ જ પ્રમાણે જે સાધુ રાગદ્વેષથી રહિત થઈને ધર્મની સાધનામાં નિમિત્ત રૂપ દેહના પોષણ નિમિત્તે ઊંચ, નીચ અને મધ્યમ કુળોમાં ગોચરીની પ્રાપ્તિ નિમિત્તે જે ચર્યા (ભ્રમણ) કરે છે તે ચર્યાને ભિક્ષાચર્યા કહે છે. તેના પેટા અર્ધપેટા આદિ ૬ પ્રકારોનું હવે સ્પષ્ટીકરણ કરવામાં આવે છે—

पेटा—पेटिकामञ्जूषा तद्वत् अभिग्रहविशेषवशात् साधुर्यस्यां भिक्षाचर्यायां ग्रामादौ पाटकस्य चतुर्भागं कृत्वा विहरति सा 'पेटा' इत्युच्यते । १ ॥ अर्धपेटापेटावच्चतुर्भागं क्षेत्रं कृत्वा तदर्धभागे भिक्षार्थं चरणम् ॥ २ ॥ गोमूत्रिका गोमूत्रिकेव गोमूत्रिका । गोमूत्रिकावद् वक्राकारेण वामदक्षिणतो भ्रमणम् ॥ ३ ॥ पतङ्गवीथिका—पतङ्गोड्डयन सदृशी, तिड्डवदन्तरा बहुगृहाणि मुक्त्वा मुक्त्वा भ्रमणम् ॥४॥ शम्बूकावर्त्ता—शम्बूकः=शङ्खः, तद्वदावर्तो यस्यां सा तथा । सा द्विविधा—आभ्यन्तरशम्बूकावर्त्ता बहिः शम्बूकावर्ता च । यस्यां मध्यभागादारभ्य बाह्यगृहं याव-

भाव ऐसा है, कि पेटा पेटिका मंजूषाकी तरह जिस भिक्षाचर्यामें अभिग्रह विशेषके वश साधु ग्रामादिमें पाटकके (महोल्ला) चार भाग करके भ्रमण करता है, ऐसी वह भिक्षाचर्या "पेटा" इस रूपसे कही गई है १। पेटाकी तरह चार भागवाला क्षेत्र करके उसके आधे भागमें जो साधु भिक्षाके निमित्त भ्रमण करता है, ऐसी वह भिक्षाचर्या अर्धपेटा इस रूपसे कही गई है, गोमूत्रिकाकी तरह वक्राकारसे जिस भिक्षाचर्यामें दायेंसे बाये, बायेंसे दायें भ्रमण करना होता है, ऐसी वह भिक्षाचर्या "गोमूत्रिका" इस रूपसे कही गई है, पतङ्ग पक्षीके उड़नेकी तरह जिस भिक्षाचर्यामें बीच २ में घरोंको छोड २ कर भ्रमण करना होता है, ऐसी वह भिक्षाचर्या "पतङ्गवीथिका" इस रूपसे कही गई है, शम्बूक शङ्ख की तरह जिस भिक्षाचर्यामें आवर्त होता है, ऐसी वह भिक्षाचर्या "शम्बूकावर्ता" इस रूपसे कही गई है, शम्बूकावर्त्ता आभ्यन्तर

(૧) પેટા ભિક્ષાચર્યા--જેમ પેટિકા (મંજૂષા) ના વિભાગો પાડેલા હોય છે તેમ ગ્રામાદિના ચાર વિભાગો પાડી ને તેમાંથી કોઈ પણ એક વિભાગમાં જ ભિક્ષાપ્રાપ્તિ માટે ભ્રમણ કરવું તેનું નામ પેટા ભિક્ષાચર્યા છે. (૨) અર્ધપેટા ભિક્ષાચર્યા--પેટા ભિક્ષાચર્યામાં ગ્રામાદિના ચાર ભાગ પાડવામાં આવે છે તેમાંથી એક ભાગના અર્ધા ભાગપ્રમાણ ક્ષેત્રમાં જ ભિક્ષાપ્રાપ્તિ માટે ભ્રમણ કરવું તેનું નામ અર્ધપેટા ભિક્ષાચર્યા છે. (૩) ગોમૂત્રિકા--જે ભિક્ષાચર્યામાં ગોમૂત્રિકાની જેમ જમણી તરફથી ડાબી તરફ અને ડાબી તરફથી જમણી તરફ ભ્રમણ કરવું પડે છે, તે ભિક્ષાચર્યાને ગોમૂત્રિકા ભિક્ષાચર્યા કહે છે. (૪) પતંગવીથિકા--જે ભિક્ષાચર્યામાં પતંગિયાની જેમ વચ્ચેના ઘરોને છોડીને છૂટાં છવાયા ઘરોમાં ભ્રમણ કરવામાં આવે છે તે ભીક્ષાચર્યાને પતંગવીથિકા ભિક્ષાચર્યા કહે છે (૫) શમ્બૂકાવર્તા--શમ્બૂક એટલે શંખ જે ભિક્ષાચર્યામાં શંખના જેવા આવર્તો હોય છે તે ભિક્ષાચર્યાને શમ્બૂકાવર્ત્તા

दटने प्रथमा, बाह्यगृहादारभ्य मध्यभागवर्त्तिगृहं यावद्भ्रमणे तु द्वितीया ॥ ५ ॥ तथा-गत्वा प्रत्यागता गत्वा प्रत्यागतं=प्रत्यागमनं यस्यां भिक्षाचर्यायां सा । अयं भावः-यस्यां भिक्षाचर्यायां साधुरुपाश्रयान्निर्गतः प्रथममेकस्यां गृहपङ्क्तौ भिक्षां गृह्णन् क्षेत्रपर्यन्तं याति, ततः प्रत्यावृत्तः पुनर्द्वितीयस्यां गृहपङ्क्तौ भिक्षां गृह्णन् उपाश्रयमायाति सा तथा ॥ सू० ४१ ॥

अनन्तरसूत्रे साधूनां विशिष्टाचर्या प्रोक्ता, सम्प्रति चर्याप्रस्तावादसाधुच

शम्बूकावर्त्ता और बहिः शम्बूकावर्त्ताके भेदसे दो प्रकारकी कही गई है, जिस भिक्षाचर्यामें मध्य भागसे लेकर बाह्य घर तक भ्रमण करनेमें फिरनेमें आभ्यन्तर शम्बूकावर्त्ता भिक्षाचर्या होती है, एवं बाह्य गृहसे लेकर मध्य भागवर्ती घर तक फिरनेमें द्वितीया शम्बूकावर्त्ता भिक्षाचर्या होती है ५। जा करके प्रत्यागमन जिस भिक्षाचर्यामें होता है, ऐसी वह भिक्षाचर्या गत्वा प्रत्यायाता ६ है, इसका तात्पर्य ऐसा है, कि जिस भिक्षाचर्यामें साधु उपाश्रयसे निकलकर प्रथम एक गृहपङ्क्तिमें भिक्षा लेता है, वहांसे भिक्षा लेकर फिर वह क्षेत्र पर्यन्त तक आगे चला जाता है, इसके बाद फिर वह वहांसे लौटता है और द्वितीय गृहपङ्क्तिमें भिक्षाके निमित्त प्रविष्ट होता है, वहांसे भिक्षा लेकर फिर वह उपाश्रयमें आ जाताहै, ऐसी वह भिक्षचर्या ६ठे नम्बरकी भिक्षाचर्याहै ॥सू०४१॥

इस ऊपरके सूत्रमें साधुओंकी विशिष्ट चर्या कही अब सूत्रकार

ભિક્ષાચર્યા કહે છે તેના બે ભેદ છે--(૧) આભ્યન્તર શમ્બૂકાવર્ત્તા, અને (૨) બહિર્શમ્બૂકાવર્ત્તા ગ્રામાદિના મધ્યભાગમાં આવેલા ઘરોથી શરૂ કરીને બહારના ભાગમાં આવેલા ઘરો સુધી ભિક્ષાપ્રાપ્તિ માટે ભ્રમણ કરવું તેનું નામ આભ્યન્તર શમ્બૂકાવર્ત્તા ભિક્ષાચર્યા છે. બહારના ભાગમાં આવેલા ઘરોથી શરૂ કરીને મધ્યભાગના ઘરો સુધી ભિક્ષાપ્રાપ્તિ માટે ભ્રમણ કરવું તેનું નામ બહિર્શમ્બૂકાવર્ત્તા ભિક્ષાચર્યા છે.

(૬) ગત્વા પ્રત્યાયાતા—જે ભિક્ષાચર્યામાં ગમન કરીને પ્રત્યાગમન થાય છે, તે ભિક્ષાચર્યાને ગત્વાપ્રત્યાયાતા કહે છે. આ કથનનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે—જે ભિક્ષાચર્યામાં સાધુ ઉપાશ્રયમાંથી બહાર નીકળીને પહેલા એક ગૃહપંક્તિમાંથી ભિક્ષા ગ્રહણ કરીને ક્ષેત્રપર્યન્ત સુધી આગળ ચાલ્યો જાય છે અને પછી ત્યાંથી પાછો ફરીને બીજી ગૃહપંક્તિમાં ભિક્ષાને નિમિત્તે પ્રવેશ કરે છે અને ત્યાંથી ભિક્ષા ગ્રહણ કરીને તે ઉપાશ્રયમાં આવી જાય છે. આ પ્રકારની ભિક્ષાચર્યાને ગત્વાપ્રત્યાયાતા ભિક્ષાચર્યા કહે છે. ॥ સૂ. ૪૧ ॥

ઉપરના સૂત્રમાં સાધુઓની વિશિષ્ટ ચર્યાનું વર્ણન કરવામાં આવ્યું.

र्यायाः फलभोक्तारो यान् स्थानविशेषान् प्राप्नुवन्ति तानाह—

मूलम्—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स य दाहिणेणं इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए छ अवक्कंतमहानिरया पण्णत्ता, तं जहा—लोले, १, लोलुए २, उद्दड्ढे ३, निदड्ढे ४, जरए ५, पज्जरए ६। चउत्थीए णं पंकप्पभाए पुढवीए छ अवक्कंता महानिरया पण्णत्ता, तं जहा—आरे १, वारे २, मारे ३, रोरे ४, रोरुए ५, खाडखडे ६ ॥ सू०४२ ॥

छाया—जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य च दक्षिणे अस्यां रत्नप्रभायां पृथिव्यां षट् अपक्रान्तनिरयाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—लोलो १, लोलुपः २, उदग्धः ३, निर्दग्धः ४, जरकः ५, प्रजरकः ६। चतुर्थ्यां खलु पङ्कप्रभायां पृथिव्यां षट् अपक्रान्ता महानिरयाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—आरः १, वारः २, मारः ३, रोरः ४, रोरुकः ५, खाडखडः ६ ॥ सू० ४२ ॥

टीका—' जंबुद्दीवे दीवे ' इत्यादि—

जम्बूद्वीपाख्य मध्यद्वीपान्तर्गतमन्दरपर्वतस्य दक्षिणे=दक्षिणतः अस्यां रत्न-प्रभानामकपृथिव्याम् अपक्रान्तनिरयाः—अपक्रान्ताः=सकल शुभभावेभ्योऽपगता अतिनिकृष्टा इत्यर्थः, ते च ते निरयाः=नरकाः, अथवा—' अपक्रान्तनिरयाः '

चर्याके प्रस्तावको लेकर असाधुचर्याके फलको भोगनेवाले जिन स्थान विशेषोंको प्राप्त करते हैं उन स्थानोंको कहते हैं—

"जम्बुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स" इत्यादि सूत्र ४२ ॥

टीकार्थ—जम्बूद्वीप नामके मध्यद्वीपके अन्तर्गत जो मन्दर (मेरु) पर्वतहै, उस पर्वतकी दक्षिण दिशामें इस रत्नप्रभा नामकी पृथिवीमें छह अप-क्रान्त—सकल शुभ भावोंसे रहित—अतिनिकृष्ट ऐसे नरक कहे गये

હવે સૂત્રકાર ચર્યાના વિષય સાથે સુસંગત એવા વિષયનું નિરૂપણ કરે છે. જે સાધુ સાધુચર્યાના નિયમોનું પાલન કરતો નથી—અસાધુચર્યાનું સેવન કરે છે. એવા સાધુને તેના ફલસ્વરૂપે કેવા સ્થાનોમાં જન્મ લેવો પડે છે, તે હવે સૂત્રકાર પ્રકટ કરે છે " जम्बूदीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स " ઈત્યાદિ—

ટીકાર્થ—જંબૂદ્વીપ નામના મધ્ય દ્વીપમાં જે મન્દર પર્વત આવેલો છે તેની દક્ષિણ દિશામાં રત્નપ્રભા નામની પૃથ્વીમાં (પહેલી નરકમાં) ૬ અપક્રાન્ત (સકળ શુભ ભાવોથી રહિત, અતિનિકૃષ્ટ એવાં) નરકાવાસો આવેલાં છે અથવા

इतिच्छाया । तत्पक्षे-अपक्रान्ताः-अकमनीयाः अशोभनाश्च ते निरयाश्चेति विग्रहः । ते हि षट् संख्यकाः प्रज्ञप्ताः । यद्यपि सर्वेऽपि नरका एवमेव, तथापि तेष्वप्येषां वक्ष्यमाणनिरयाणां प्राधान्येनैते एव 'अवक्रान्त' इति विशेषणविशिष्टतया प्रोक्ताः । तेऽवक्रान्तनिरया लोल लोलुपादयो मूलोक्ता विज्ञेयाः । एवं 'चउत्थीए' त्ति-चतुर्थ्यां पङ्कप्रभायाम् आरवारादयः षट् अपक्रान्तनिरयाः प्रज्ञप्ताः, तेऽपि मूलोक्ताएव बोध्याः ॥ सू० ४२ ॥

इत्थमसाधुचर्या फलभोक्तृस्थानत्वेन अवक्रान्तनरकानुक्त्वा सम्प्रति साधुचर्याफलभोक्तृस्थानविशेषानाह—

मूलम्—बंभलोए णं कप्पे छ विमाणपत्थडा पण्णत्ता, तं जहा—अरए १, विरए २, णीरए ३ णिम्मले ४ वितिमिरे ५ विसुद्धे ६ ॥ सू० ४३ ॥

हैं। अथवा-" अवक्कंत "की संस्कृत छाया " अपक्रान्त " ऐसी भी होती है, इस पक्षमें अकमनीय अशोभन-ऐसे छह नरकावास कहे गये हैं। यद्यपि समस्त नरकावास ऐसेही हैं, परन्तु उन सबमें से इन निरयोंमेंही प्रधान रूपसे " अवक्रान्तता या अपक्रान्तता " इसीलिये इन्हें इस विशेषणसे विशिष्ट करके कहा गया है, उनके नाम इस प्रकारसे हैं—लोल १ लोलुप २ उद्दग्ध ३ निर्दग्ध ४ जरक ५ और प्रजरक ६ इसी तरह चौथी पङ्कप्रभा पृथिवीमें ६ अपक्रान्त महानिरय (नरकावास) कहे गये हैं उनके नाम इस प्रकारसे हैं—आर १ वार २ मार ३ रोर ४ रोरुक ५ और खाडखड ६ ॥ सू० ४२ ॥

" अवक्कंत " આ પદની સંસ્કૃત છાયા " अपक्रान्त " પણ થાય છે. તે સંસ્કૃત છાયાની અપેક્ષાએ તે નરકાવાસોને અશોભન અથવા અકમનીય વિશેષણ પણ લગાડી શકાય છે. જો કે બધાં નરકાવાસો એવાં જ છે, છતાં પણ આ ૬ નરકાવાસોમાં ખાસ કરીને " અપક્રાન્તતા " અથવા " અપકાન્તતા " છે, તેથી તેમને આ વિશેષણ લગાડવામાં આવ્યું છે તે નરકાવાસોનાં નામ આ પ્રમાણે છે—(૧) લોલ, (૨) લોલુપ, (૩) ઉદ્દગ્ધ, (૪) નિર્દગ્ધ, (૫) જરક અને (૬) પ્રજરક. એ જ પ્રમાણે પંકપ્રભા નામની ચોથી નરકમાં પણ છ અપક્રાન્ત મહાનિરયો (નરકવાસો) આવેલાં છે તેમનાં નામ આ પ્રમાણે છે–૧ આર, ૨ વાર, ૩ માર, ૪ રોર, ૫ રોરુક અને ૬ ખાડખડ ॥ સૂ. ૪૨ ॥

छाया—ब्रह्मलोके खलु कल्पे षड् विमानप्रस्तटाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—अरजाः १ विरजाः २ नीरजाः ३ निर्मलो ४ वितिमिरो ५ विशुद्धः ६ ॥ सू० ४३ ॥

टीका—'बंभलोगे' इत्यादि—

व्याख्या स्पष्टा। नवरम्—ब्रह्मलोको हि पञ्चमो देवलोकः। तत्र तु षडेव प्रस्तटाः=भवनमध्यान्तरालभागाः सन्ति। यत्र देवलोके यावन्तः प्रस्तटाः सन्तिः, तदुक्तमेकया गाथया, तथाहि—

" तेरस बारस छ पंच चेव चत्तारि चउसु कप्पेसु।
गेवेज्जेसु तिय तिय, एगो य अणुत्तरेसु भवे ॥ १ ॥"

छाया—त्रयोदश द्वादश षट् पञ्च चैव चत्वार श्चतुर्षु कल्पेषु।
ग्रैवेयकेषु त्रयस्त्रय एकश्च अनुत्तरेषु भवेत् ॥ १ ॥ इति।

ये ऊपरके सूत्रमें जो ६ अपक्रान्त निरयस्थान कहे गये हैं वे उन्हे प्राप्त होते हैं, जो असाधुचर्या करते हैं, क्योंकि ये असाधुचर्याके फलको भोगनेवालोंके स्थान हैं। अब सूत्रकार साधुचर्याके फलको भोगनेवालोंके स्थान विशेषोंका कथन करते हैं—

"बंभलोए णं कप्पे छ विमाणपत्थडा पण्णत्ता" इत्यादि सूत्र ४३॥

टीकार्थ-ब्रह्मलोक कल्पमें ६ विमान प्रस्तर कहे गयेहैं जैसे—अरजा, विरजा, नीरजा, निर्मल, वितिमिर, और। विशुद्ध ब्रह्मलोक यह ५ वां देवलोक है, भवनके मध्यमें अन्तराल भाग होते हैं उनका नाम प्रस्तट है, जिस देवलोकमें जितने अन्तराल (बीचका खाली भाग) रूप प्रस्तट हैं, वे इस गाथा द्वारा कहे गये हैं—"तेरस बारस छपंच" इत्यादि।

ઉપરના સૂત્રમાં ૬ અપક્રાન્ત નિરયસ્થાનો કહ્યાં, તેમની પ્રાપ્તિ અસાધુચર્યા કરનાર જીવોને થાય છે, કારણ કે અસાધુચર્યાના ફલને ભોગવવાનાં એ સ્થાનો છે. હવે સૂત્રકાર સાધુચર્યાના ફલને ભોગવવાનાં જે સ્થાનો છે, તે સ્થાનોનું કથન કરે છે. " बंभलोए णं कप्पे छ विमाणपत्थडा पण्णत्ता " ઇત્યાદિ—

ટીકાર્થ-બ્રહ્મલોક કલ્પમાં નીચે પ્રમાણે ૬ વિમાન પ્રસ્તર આવેલાં છે—(૧) અરજા, (૨) વિરજા, (૩) નીરજા, (૪) નિમલાં, (૫) વિતિમિર અને (૬) વિશુદ્ધ. બ્રહ્મલોક પાચમું દેવલોક છે ભવનની મધ્યમાં જે અન્તરાલ (વચ્ચેનો જે ખાલી ભાગ) હોય છે તેનું નામ પ્રસ્તટ છે. કયા દેવલોકમાં કેટલા અન્ત રાલ રૂપ પ્રસ્તટ હોય છે તે નીચેની ગાથામાં બતાવવામા આવ્યું છે—

" तेरस बारस छ पच " ઇત્યાદિ—

अयं भावः-प्रथमद्वितीययोस्त्रयोदशविमानप्रस्तटा भवन्ति। तृतीयचतुर्थयो द्वादश, पञ्चमे षट्, षष्ठे पञ्च, सप्तमे चत्वारः, अष्टमे चत्वारः, नवम दशमयो- श्चत्वारः, एकादशद्वादशयोश्चत्वारः, नवानां ग्रैवेयकविमानानाम् अधोभागे त्रयो मध्यभागे त्रयः ऊर्ध्वभागे च त्रय इति नव, पञ्चसु अनुत्तरविमानेषु चैक इति सर्वविमानप्रस्तट संख्या द्विषष्टि (६२) प्रमाणा भवतीति ॥ सू० ४३ ॥

अनन्तरं विमानवक्तव्यता प्रोक्ता, तत्प्रस्तावात् सम्प्रति नक्षत्रवक्तव्यतामाह-

मूलम्—चंदस्स णं जोइसिंदस्स जोइसरन्नो छ णक्खत्ता पुव्वंभागा समक्खेत्ता तीसइमुहुत्ता पण्णत्ता, तं जहा-पुव्वाभद्दवया १, कत्तिया २ महा ३ पुव्वाफग्गुणी ४ मूलो ५ पुव्वासाढा ६। चंदस्स णं जोइसिंदस्स जोइसरण्णो छ णक्खत्ता णत्तंभागा अवड्ढक्खेत्ता पन्नरसमुहुत्ता पण्णत्ता, तं जहा--सायभिसया १ भरणी २ अद्दा ३ अस्सेसा ४ साई ५ जेट्ठा ६। चंदस्स णं

प्रथम और द्वितीय देवलोकमें १३ विमान प्रस्तट हैं, चतुर्थ देवलोकमें १२ विमान प्रस्तट हैं, पंचम देवलोकमें ६ विमान प्रस्तट हैं, छट्टे देवलोकमें पांच विमान प्रस्तट हैं, सातवे देवलोकमें चार विमान प्रस्तट हैं, नौवे दशमें देवलोकमें चार विमान प्रस्तट हैं, ग्यारहवें बारहवें देवलोकमें चार विमान प्रस्तट हैं, नौ ग्रैवेयक विमानोंके अधोभागमें तीन मध्य भागमें तीन और उर्ध्वभागमें ३ इस प्रकारसे ९ विमान प्रस्तट हैं। तथा पञ्च अनुत्तर विमानोंमें एक प्रस्तट है, इन सब विमान प्रस्तटोंकी संख्या ८६२ हैं ॥ सू० ४३ ॥

પહેલા અને બીજા દેવલોકમાં ૧૩ વિમાન પ્રસ્તટ છે ત્રીજા અને ચોથા દેવલોકમાં ૧૨ વિમાન પ્રસ્તટ છે. પાંચમાં દેવલોકમાં ૭, છઠ્ઠા દેવલોકમાં પાંચ સાતમાં દેવલોકમાં ૪ અને આઠમા દેવલોકમા પણ ૪ વિમાન પ્રસ્તટ છે. નવમાં અને દસમાં દેવલોકમાં ચાર વિમાન પ્રસ્તટ છે અગિયારમાં અને બારમાં દેવલોકમાં પણ ચાર વિમાન પ્રસ્તટ છે. નવ ગ્રૈવેયક વિમાનોનાં અધો- ભાગમાં ૩, મધ્યભાગમાં ૩ અને ઉર્ધ્વભાગમાં ૩ વિમાન પ્રસ્તટ છે. પાંચ અનુત્તર વિમાનોમાં એક પ્રસ્તટ છે. તે બધાં વિમાન પ્રસ્તટોની સંખ્યા ૬૨ છે. ॥ સૂ. ૪૩ ॥

जोइसिंदस्स जोइसरन्नो छ नक्खत्ता उभयंभागा दिवड्ढखेत्ता पणयालीसमुहुत्ता पण्णत्ता, तं जहा--रोहिणी १, पुणव्वसू २ उत्तराफग्गुणी ३, विसाहा ४ उत्तरासाढा ५ उत्तराभद्दवया ॥सू०४४॥

छाया—चन्द्रस्य खलु ज्योतिषेन्द्रस्य ज्योतिषराजस्य षट् नक्षत्राणि पूर्वभागानि समक्षेत्राणि त्रिंशन्मुहूर्त्तानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-पूर्वाभाद्रपदा १, कृत्तिका २, मघा ३, पूर्वाफाल्गुनी ४, मूलम् ५, पूर्वाषाढा ६। चन्द्रस्य खलु ज्योतिषेन्द्रस्य ज्योतिषराजस्य षट् नक्षत्राणि नक्तं भागानि अपार्द्धक्षेत्राणि पञ्चदशमुहूर्त्तानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-शतभिषक् १ भरणी २ आर्द्रा ३ आश्लेषा ४, स्वातिः ५, ज्येष्ठा ६। चन्द्रस्य खलु ज्योतिषेन्द्रस्य ज्योतिषराजस्य षट् नक्षत्राणि उभयभागानि द्व्यपार्द्धक्षेत्राणि पञ्चचत्वारिंशन्मुहूर्त्तानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-रोहिणी १, पुनर्वसू२, उत्तराफाल्गुनी३,विशाखा४, उत्तराषाढा५, उत्तराभाद्रपदा६,॥सू०४४॥

टीका—' चंदस्स णं ' इत्यादि—

ज्योतिषेन्द्रस्य=ज्योतिषदेवानां मध्ये ऐश्वर्ययुक्तस्य ज्योतिषराजस्य चन्द्रस्य खलु षट् नक्षत्राणि पूर्वभागानि-पूर्वेण=पूर्वभागेण अग्रेण-अप्राप्तेनैव चन्द्रेण इत्यर्थः, भज्यन्ते सेव्यन्ते-युज्यन्ते यानि तानि-अप्राप्तेनैव चन्द्रेण भुज्यमानानि समक्षेत्राणि-समं-स्थूलन्यायमाश्रित्य त्रिंशन्मुहूर्त्तभोग्यत्वेन समानं क्षेत्रम्=आकाशदेशलक्षणं येषां तानि, अतएव-त्रिंशन्मुहूर्त्तानि-त्रिंशत् मुहूर्त्ताश्चन्द्रभोगो येषां तानि तथोक्तानि प्रज्ञप्तानि । तद्यथा-पूर्वाभाद्रपदा, कृत्तिकेत्यादीनि । उक्तंचात्र-

---

अब सूत्रकार विमानके अन्तरालका वक्तव्यताका कथन करके नक्षत्र वक्तव्यताका कथन करते हैं—

"चंदस्स णं जोइसिंदस्स जोइसरन्नो" इत्यादि सूत्र ४४ ॥

टीकार्थ-ज्योतिषेन्द्र ज्योतिष देवोंके मध्यमें ऐश्वर्ययुक्त-ज्योतिषराज चन्द्र के ये ६ नक्षत्र पूर्वसेव्य हैं, अर्थात् अप्राप्त चन्द्रके द्वारा भुज्यमान हैं, और समक्षेत्रवाले हैं तथा तीस मुहूर्त्तवाले हैं । उनके नाम इस प्रकारसे हैं पूर्वभाद्रपद। १ कृत्तिका २ मघा ३ पूर्वाफाल्गुनी ४ मूल ५ और

વિમાનની અન્તરાલની વક્તવ્યતાનું કથન કરીને હવે સૂત્રકાર નક્ષત્રોનું કથન કરે છે. " चदस्स णं जोइसिंदस्स जोइसरन्नो " ઇત્યાદિ--

ટીકાર્થ-જ્યોતિષેન્દ્ર (જ્યોતિષ દેવોમાં ઐશ્વર્ય સંપન્ન) જ્યોતિષરાજ ચન્દ્રના આ ૬ નક્ષત્રો પૂર્વસેવ્ય છે એટલે કે અપ્રાપ્ત ચન્દ્ર દ્વારા ભુજ્યમાન છે, સમક્ષેત્રવાળાં છે અને ૩૦ મુહૂર્તવાળાં છે. (૧) પૂર્વ ભાદ્રપદા, (૨) કૃત્તિકા,

" पुव्वा तिन्नि य मूलो, मह क्तित्तिय अग्गिमा जोगा " ।

छाया--पूर्वाणि त्रीणि च मूलं मघा कृत्तिका अग्निमयोगानि । इति ।

तथा—ज्योतिषेन्द्रस्य ज्योतिषराजस्य चन्द्रस्य खलु षट् नक्षत्राणि नक्त भागानि—नक्तं=रात्रौ भज्यन्ते=सेव्यन्ते चन्द्रेण यानि तानि—चन्द्रस्य समयोगीनि, तथा—अपार्धक्षेत्राणि—अपार्धं=समक्षेत्रापेक्षयाऽर्धं क्षेत्रम्=आकाशदेशलक्षणं येषां तानि, अत एव—पञ्चदशमुहूर्त्तानि प्रज्ञप्तानि । तद्यथा—शतभिषगित्यादि।उक्तं च—

" अद्दाऽसेसा साई सयभि समभिई य जेट्ठ समजोगा " ।

छाया—आर्द्राऽश्लेषा स्वातिः शतभिषक् अभिजिच्च ज्येष्ठा समयोगानि " इति ।

तथा—ज्योतिषेन्द्रस्य ज्योतिषराजस्य चन्द्रस्य षट् नक्षत्राणि उभयभागानि-उभयतः=पूर्वतः पश्चाच्च भज्यन्ते=सेव्यन्ते चन्द्रेण यानि तानि—पूर्वापरतश्चन्द्रेण भुज्यमानानि, तथा—द्व्यपार्धक्षेत्राणि—द्वितीयम् अपार्धं यत्र तद् द्व्यपार्ध—

पूर्वाषाढा ६ । कहा भी है—" पुव्वा तिन्निय मूलो " इत्यादि ।

मूल मघा और कृत्तिका ये तीन और पूर्वके तीन नक्षत्र ये अग्रिम योगवाले हैं । तथा—ज्योतिषेन्द्र ज्योतिषराज चन्द्रके ये ६ नक्षत्र रात्रिमें चन्द्रमाके द्वारा सेव्य हैं, अपार्ध क्षेत्रवाले हैं, समक्षेत्रकी अपेक्षा आधा है, आकाशदेशरूप क्षेत्र जिन्होंका ऐसे हैं--एवं १५ मुहूर्त्तवाले हैं। उनके नाम इस प्रकारसे हैं—शतभिषक् १ भरणी २ आर्द्रा ३ अश्लेषा ४

" अद्दाऽसेसा साइ " इत्यादि ।

आर्द्रा, अश्लेषा, स्वाति, शतभिषक्, अभिजित और ज्येष्ठा ये नक्षत्र समयोगवाले हैं, ज्योतिषेन्द्र ज्योतिषराज चन्द्रके ६ नक्षत्र उसके द्वारा पूर्वसे और ऊपरसे दोनों तरफसे सेव्य कहे गये हैं—द्व्यपार्द्ध क्षेत्र-

---

(૩) મઘા, (૪) પૂર્વ ફાલ્ગુની, (૫) મૂલ અને (૬) પૂર્વાષાઢા. કહ્યુ પણ છે કે " पुव्वा तिन्नि य मूलो " ઈત્યાદિ--

મૂલ, મઘા અને કૃત્તિકા તથા પૂર્વના (આગલા) ત્રણ નક્ષત્રો અગ્રિમ યોગવાળા છે. તથા આ ૬ નક્ષત્રો રાત્રે જ્યોતિષેન્દ્ર જ્યોતિષરાજ ચન્દ્ર દ્વારા સેવ્ય છે, અપાર્ધ ક્ષેત્રવાળા છે, સમક્ષેત્રની અપેક્ષાએ અર્ધા આકાશ દેશરૂપ ક્ષેત્રવાળા છે અને ૧૫ મુહૂર્તવાળા છે. તેમના નામ આ પ્રમાણે છે-- (૧) શતભિષક, (૨) ભરણી, (૩) આર્દ્રા, (૪) અશ્લેષા, (૫) સ્વાતી અને (૬) જ્યેષ્ઠા. કહ્યું પણ છે કે " अद्दाऽसेसा साई " ઈત્યાદિ--

આર્દ્રા, અશ્લેષા, સ્વાતી, શતભિષક, અભિજિત અને જ્યેષ્ઠા આ નક્ષત્રો સમયોગવાળા છે. નીચેનાં ૬ નક્ષત્રો જ્યોતિષેન્દ્ર જ્યોતિષરાજ ચન્દ્ર દ્વારા પૂર્વ અને અપર (પશ્ચિમ), બન્ને તરફથી સેવ્ય કહ્યા છે, દ્વયપાર્દ્ધ ક્ષેત્રવાળાં

सार्धैकं क्षेत्रम्=आकाशदेशलक्षणं पञ्चचत्वारिंशन्मुहूर्त्तप्रमाणं येषां तानि तथोक्तानि, अत एव-पञ्चचत्वारिंशन्मुहूर्त्तानि प्रज्ञप्तानि। तद्यथा-'रोहिणी पुनर्वसू'-इत्यादि। उक्तं च—

"उत्तरतिन्नि विसाहा, पुणव्वसू रोहिणी उभयजोगा।"

छाया—उत्तरात्रीणि विशाखा पुनर्वसू रोहिणी उभययोगानि-इति।

एवं विधानि नक्षत्राणि यदा भवन्ति, तदा सुभिक्षं भवति, अन्यथा तु दुर्भिक्षम्। तदुक्तम्—

"उक्तक्रमेण नक्षत्रैर्युज्यमानस्तु चन्द्रमाः।"

सुभिक्षकृद् विपरीतं, युज्यमानोऽन्यथा भवेत् ॥ १ ॥ इति ॥ सू० ४४ ॥

अनन्तरसूत्रे चन्द्रेण भुज्यमानानि नक्षत्राणि स्थानषट्कत्वेनोक्तानि, चन्द्र

वाले कहे गये हैं-सार्ध एक क्षेत्रवाले कहे गये हैं, अर्थात् डेढ क्षेत्रवाले और ४५ मुहूर्त्तवाले कहे गये हैं। उनके नाम इस प्रकारसे हैं-रोहिणी १ पुनर्वसु २ उत्तराफाल्गुनी ३ विशाखा ४ उत्तराषाढा ५ और उत्तराभाद्रपदा ६। कहा भी है-"उत्तरतिन्नि विसाहा" इत्यादि।

उत्तराके ३ तीन तथा विशाखा, पुनर्वसु एवं रोहिणी ये ६ नक्षत्र उभय योगवाले कहे गये हैं। इस प्रकारके नक्षत्र जब होते हैं, तब सुभिक्ष होता है नहीं होते हैं तब दुर्भिक्ष होता है-कहा भी है-

"उक्तक्रमेण नक्षत्रैः" इत्यादि ॥ सू० ४४ ॥

इस ऊपरके सूत्रमें चन्द्रमाके द्वारा भुज्यमान नक्षत्र छह स्थानक रूपसे कहे अब सूत्रकार चन्द्र शब्दके प्रस्तावको लेकर चन्द्र शब्द घटित

કહ્યા છે, દોઢ ક્ષેત્રવાળા કહ્યા છે અને ૪૫ મુહૂર્તવાળા કહ્યા છે. તેમનાં નામ આ પ્રમાણે છે--(૧) રોહિણી, (૨) પુનર્વસુ, (૩) ઉત્તરા ફાલ્ગુની, (૪) વિશાખા, (૫) ઉત્તરાષાઢા અને (૬) ઉત્તર ભાદ્રપદા. કહ્યું પણ છે કે:

"उत्तर तिन्नि विसाहा" ઇત્યાદિ--

ઉત્તરના ત્રણ તથા વિશાખા, પુનર્વસુ અને રોહિણી આ ૬ નક્ષત્રો ઉભય યોગવાળા કહ્યાં છે. આ પ્રકારના નક્ષત્રો જ્યારે હોય છે ત્યારે સુભિક્ષ (સુકાળ) હોય છે, અને જ્યારે નથી હોતાં ત્યારે દુષ્કાળ પડે છે. કહ્યું પણ છે કે: "उक्तक्रमेण नक्षत्रैः" ઇત્યાદિ—॥ સૂ ૪૪ ॥

આગલા સૂત્રમાં ચન્દ્ર દ્વારા ભુજ્યમાન નક્ષત્રોનું છ સ્થાનક રૂપે કથન કરવામાં આવ્યું. હવે સૂત્રકાર જેના નામની સાથે ચન્દ્ર શબ્દ ઘટિત થયો છે

शब्दस्य प्रस्तुतत्वात् सम्प्रति तद्घटिताभिचन्द्रकुलकरसूत्रमाह—

मूलम्—अभिचंदे णं कुलकरे छ धणुसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था ॥ सू० ४५ ॥

छाया—अभिचन्द्रः खलु कुलकरः षड् धनुश्शतानि ऊर्ध्वमुच्चत्वेनाभवत् । ॥ सू० ४५ ॥

टीका—'अभिचदेणं' इत्यादि—

अमुष्यामवसर्पिण्याम् उत्पन्नः पञ्चदशकुलकरेषु दशमः, सप्तसु चतुर्थो वा अभिचन्द्रनामा कुलकर उच्चत्वेन षट्शतधनुः प्रमाणोऽभवदिति ॥ सू० ४५ ॥

अभिचन्द्र कुलकरवंशोत्पन्नत्वाद् भरतविषयकं सूत्रमाह—

मूलम्—भरहे णं राया चाउरंतचक्कवट्टी छ पुव्वसयसहस्साइं महाराया होत्था ॥ सू० ४६ ॥

छाया—भरतः खलु राजा चातुरन्तचक्रवर्ती षट् पूर्वशतसहस्राणि महाराजोऽभवत् ॥ सू० ४६ ॥

टीका—'भरहे णं' इत्यादि—

चातुरन्तचक्रवर्ती-चत्वारः=समुद्रत्रयहिमवल्लक्षणा अन्ताः=अवसानानि यस्याः

अभिचन्द्र कुलकरके सम्बन्धमें सूत्र कहते हैं--

"अभिचंदेणं कुलकरे धणु" इत्यादि सूत्र ४५ ॥

टीकार्थ-अभिचन्द्र कुलकर१५ कुलकरोंमेंसे१० वां कुलकर जो इस अवसर्पिणी कालमें उत्पन्न हुआ है, वह अथवा सात कुलकरोंमें चौथा कुलकर ऊंचाइमें ६०० धनुषप्रमाण कहा गया है ॥ सू० ४५ ॥

अभिचन्द्र कुलकरके वंशमें उत्पन्न होनेके कारण अब सूत्रकार भरतविषयक सूत्र कहते हैं--

---

એવા અભિચન્દ્ર કુલકરના વિષયમાં સૂત્રનું કથન કરે છે.

"અભિચંદેણ કુલકરે ધણુ" ઈત્યાદિ—

ટીકાર્થ–અભિચન્દ્ર કુલકરના શરીરની ઊંચાઈ ૬૦૦ ધનુષપ્રમાણ હતી. ૧૫ કુલકરોમાંના દસમાં કુલકર અભિચન્દ્ર થઇ ગયા તેઓ આ અવસર્પિણીકાળમાં થઇ ગયા અથવા સાત કુલકરોમાં ચોથા કુલકર અભિચન્દ્ર હતા. ॥ સૂ. ૪૫ ॥

હવે સૂત્રકાર અભિચન્દ્ર કુલકરના વંશમાં ઉત્પન્ન થયેલા ભરતના વિષયમાં સૂત્ર કહે છે. "ભરહેણં રાયા ચાઉરંત" ઈત્યાદિ—

सा चतुरन्ता, तस्या अयं चातुरन्तः, स चासौ चक्रवर्तीचेति तथोक्तो भरतो राजा षट्पूर्वशतसहस्राणि=षट्पूर्वलक्षाणि महाराजोऽभवदिति । चतुरशीतिलक्षवर्षाणि चतुरशीतिलक्षसंख्यया गुणितानि एकं पूर्वं विज्ञेयमिति ॥ सू० ४६ ॥

अभिचन्द्रकुलोत्पन्नत्वात् पार्श्वस्य, तत्साधर्म्यात् वासुपूज्यचन्द्रप्रभयोश्च संबन्धिकं किंचित् स्थानषट्कत्वेनाह—

मूलम्—पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स छ सया वाईणं सदेवमणुयासुराए परिसाए अपराजियाणं संपया होत्था। वासुपुज्जे णं अरहा छहिं पुरिससएहिं सद्धिं मुंडे जाव पव्वइए। चंदप्पभे णं अरहा छम्मासे छउमत्थे हुत्था ॥ सू० ४७ ॥

छाया—पार्श्वस्य खलु अर्हतः पुरुषादानीयस्य षट् शतानि वादिनां सदेवमनुजासुरायां परिषदि अपराजितानां सम्पद् अभवत् । वासुपूज्यः खलु अर्हन् षड्भिः पुरुषशतैः सार्द्धं मुण्डो यावत् प्रव्रजितः । चन्द्रप्रभः खलु अर्हन् षण्मासान् छद्मस्थोऽभवत् ॥ सू० ४७ ॥

टीका—' पासस्स णं ' इत्यादि—

पुरुषादानीयस्य आदीयते=उपादीयते यः स आदानीयः—उपादेयः—पुरुषाणाम् आदानीयः—पुरुषादानीयः पुरुषश्रेष्ठइत्यर्थः तस्य पार्श्वस्य अर्हतः खलु ' सदेव

"भरहेणं राया चाउरंत" इत्यादि सूत्र ४६ ॥

टीकार्थ—चतुरन्तके तीन समुद्र और हिमवत् रूप अन्तवाली पृथिवीके चक्रवर्ती भरतराजा ६ लाख पूर्वतक महाराज पदमें रहे हैं। ८४ लाख वर्षका १ पूर्वाङ्ग होता है, और ८४ लाख पूर्वाङ्गका एक पूर्व होता है ॥सू० ४६॥

अभिचन्द्रके कुलमें उत्पन्न होनेके कारण पार्श्वनाथ भगवान्‌के सम्बन्धमें और इसी साधर्म्यसे वासुपूज्य एवं चन्द्रप्रभुके सम्बन्धमें सूत्रकार कुछ कथन ६ स्थानकोंसे करते हैं—

ચાતુરન્ત ચક્રવર્તી (ત્રણ સમુદ્ર અને હિમવત્ પર્વત રૂપ ચાર અંતવાળી પૃથ્વીના ચક્રવર્તી રાજા) ભરત રાજાએ ૬ લાખ પૂર્વ સુધી મહારાજાનું પદ ભોગવ્યું હતું ૮૪ લાખ વર્ષનું એક પૂર્વાંગ થાય છે અને ૮૪ લાખ પૂર્વાંગનું એક પૂર્વ થાય છે. ॥ સૂ. ૪૬ ॥

અભિચન્દ્રના કુળમાં ઉત્પન્ન થયેલા પાર્શ્વનાથ ભગવાનના સંબંધમાં અને એ જ સાધર્મ્ય હોવાને કારણે વાસુપૂજ્ય અને ચન્દ્રપ્રભુના વિષયમાં સૂત્રકાર ૬ સ્થાનકોને અનુરૂપ સૂત્ર કહે છે.

मनुजासुरायाम्-देवैः सहिता मनुजाः सदेवमनुजाः, ते च असुराश्च यस्यां सा तथा, तस्यां-देवमनुजासुरसहितायां परिषदि=सभायाम् अपराजितानां=पराजयमप्राप्तवतां वादिनां=वादकर्तॄणां षट् शतात्मिका सम्पद्‍भूदिति। तथा-वासुपूज्योऽर्हन् खलु षट्शतसंख्यकैः पुरुषैः सह मुण्डो भूत्वाऽगारात् अनगारितां प्रव्रजित इति। तथा-चन्द्रप्रभोऽर्हन् खलु षण्मासान् यावत् छद्मस्थावस्थायामतिष्ठदिति। सू० ४७।

पूर्वसूत्रे 'छद्मस्थः' इत्युक्तम्, छद्मस्थश्चेन्द्रियोपयोगवान् भवतीतीन्द्रियप्रत्यासत्त्या त्रीन्द्रियाश्रितं संयममसंयमं चाह—

मूलम्-तेइंदिया जीवा णं असमारभमाणस्स छव्विहे संजमे कज्जइ, तं जहा-घाणामयाओ सोक्खाओ अववरोवेत्ता भवइ १, घाणमएणं दुक्खेणं असंजोएत्ता भवइ २। जिब्भामयाओ सोक्खाओ अववरोवेत्ता भवइ ३, जिब्भामएणं दुक्खेणं असंजोएत्ता भवइ ४। एवं चेव फासामयाओ वि ॥ ६॥ तेइंदिया जीवा णं समारभमाणस्स छव्विहे असंजमे कज्जइ, तं जहा-घाणामयाओ सोक्खाओ ववरोवेत्ता भवइ १, घाणामएणं दुक्खेणं संजोएत्ता भवइ २, जाव फासामएणं दुक्खेणं संजोएत्ता भवइ ३ ॥ सू० ४८ ॥

"पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स" इत्यादि सूत्र ४७ ॥

पुरुषश्रेष्ठ पार्श्वनाथ अर्हन्तकी देवों मनुजों एवं असुरोंसे सहित परिषदामें अपराजित अन्य प्रतिवादियों द्वारा अजेयवादियोंकी सम्पत्ति रूप संख्या ६०० थी वासुपूज्य भगवान् ६०० पुरुषोंके साथ मुंडित होकर अगारावस्थासे अनगारावस्थामें प्रव्रजित हुए थे। चन्द्रप्रभ भगवान् ६ महीना तक छद्मस्थावस्थामें रहे थे ॥ सू० ४७ ॥

"પાસસ્સ ણં અરહઓ પુરિસાદાણીયસ્સ" ઈત્યાદિ—

પુરુષશ્રેષ્ઠ પાર્શ્વનાથ અર્હંતની દેવો, મનુષ્યો અને અસુરોથી યુક્ત પરિષદમાં અન્ય પ્રતિવાદીઓ દ્વારા અજેય એવા વાદીઓ રૂપ શિષ્યસંપત્તિ ૬૦૦ ની હતી. વાસુપૂજ્ય ભગવાન ૬૦૦ પુરુષો સાથે મુંડિત થઈને ગૃહસ્થાવસ્થાનો પરિત્યાગ કરીને અણગારાવસ્થામાં પ્રવ્રજિત થયા હતા. ચન્દ્રપ્રભ ભગવાન ૬ માસ સુધી છદ્મસ્થ અવસ્થામાં રહ્યા હતા. ॥ સૂ. ૪૭ ॥

छाया—त्रीन्द्रियान् जीवान खलु असमारभमाणस्य षड्विधः संयमः क्रियते, तद्यथा–घ्राणमयात् सौख्यात् अव्यपरोपयिता भवति १, घ्राणमयेन दुःखेन असंयोजयिता भवति २। जिह्वामयात् सौख्यात् अव्यपरोपयिता भवति ३, जिह्वामयेन दुःखेन असंयोजयिता भवति ४। एवमेव स्पर्शमयादपि ६। त्रीन्द्रियान् जीवान् समारभमाणस्य षड्विधोऽसंयमः क्रियते, तद्यथा–घ्राणमयात् सौख्यात् व्यपरोपयिता भवति १, घ्राणमयेन दुःखेन संयोजयिता भवति २, यावत् स्पर्शमयेन दुःखेन संयोजयिता भवति ६ ॥ सू० ४८ ॥

टीका—' ते इंदिया ' इत्यादि—

त्रीन्द्रियान्=घ्राणजिह्वास्पर्शरूपेन्द्रियत्रयवतो जीवान् असमारभमाणस्य=अविराधयतो जीवस्य षड्विधः संयम क्रियते=भवति। तद्यथा–घ्राणमयात् सौख्यात्=घ्राणमयं यत् सौख्यं तस्त्रीन्द्रियान जीवान् अव्यपरोपयिता–अपृथक्कारको भवति १, ततश्च घ्राणमयेन दुःखेन–घ्राणेन्द्रियसंबन्धि यद् दुःखं तेन तांस्त्रीन्द्रियजीवान् असंयोजयिता=असंयोजको भवति २। एवं जिह्वामयात् स्पर्शमयाच्च सौख्यात् अव्यपरोपयिता भवति, ततश्च जिह्वामयेन स्पर्शमयेन च दुःखेन असंयो-

---

ऊपरके सूत्रमें छद्मस्थ ऐसा कहा है, सो छद्मस्थ प्राणी इन्द्रियोपयोगवाला होता है, अतः अब सूत्रकार इन्द्रिय प्रत्यासत्तिको लेकर त्रीन्द्रियको आश्रित करके संयम और असंयमका कथन करते हैं--

"तेइंदिया जीवाणं असमारभमाणस्स" इत्यादि सूत्र ४८ ॥

टीकार्थ-जो घ्राण जिह्वा स्पर्शन इन तीन इन्द्रियोंवाले जीवोंकी विराधना नहीं करताहै, उसको ६ प्रकारका संयम होताहै, जैसे-एक तो वह घ्राणमय सौख्यसे उनका अव्यपरोपयिता (नहीं मारनेवाला) होता है, १ दूसरे घ्राणमय दुःखसे वह उनका असंयोजित होताहै २, अर्थात् घ्राण नासिकाका दुःख उत्पन्न नहीं करता है। तीसरे जिह्वामयसौख्यसे अव्यपरोपिता (नाश करने वाला) नहीं होता

ઉપરના સૂત્રમાં 'છદ્મસ્થ' પદનો પ્રયોગ થયો છે. એવો છદ્મસ્થ જીવ ઇન્દ્રિયોપયોગવાળો હોય છે. તેથી હવે સૂત્રકાર ત્રીન્દ્રિય જીવોની રક્ષા અને વિરાધના રૂપ સંયમ અને અસંયમનું કથન કરે છે.

" તેઇંદિયા જીવાણં અસમારભમાણસ્સ " ઇત્યાદિ

ટીકાર્થ–જે જીવ ઘ્રાણેન્દ્રિય, જિહ્વેન્દ્રિય અને સ્પર્શેન્દ્રિય આ ત્રણ ઇન્દ્રિયોવાળા જીવોની હિંસા કરતો નથી, તેના દ્વારા ૬ પ્રકારના સંયમનું પાલન થાય છે—(૧) તે તેને (ત્રીન્દ્રિય જીવને) ઘ્રાણેન્દ્રિય દ્વારા પ્રાપ્ત થતાં સુખનો નાશકર્તા થતો નથી. (૨) તે તેની ઘ્રાણેન્દ્રિયને દુઃખ ઉત્પન્ન કરનારો થતો

जयिता भवति ६। अत्र संयमासंयमवतोरभेदोपचारात् संयमी एव संयमत्वेनोक्त इति बोध्यम्। तथा-त्रीन्द्रियान् जीवान् विराधयतस्तु तत्तदिन्द्रियजनित सौख्यात् व्यपरोपणरूपः, तत्तदिन्द्रियसम्बन्धिदुःखसंयोजनरूपश्चेति षड्विधोऽसंयमो भवति। एतदेवाह सूत्रकारः 'तेइंदिया जीवाणं समारभमाणस्स' इत्यादिना। अत्र-अव्यवरोपणसंयोजन चानास्रवरूपत्वात् संयमः, तद्भिन्नं व्यपरोपणं संयोजनं चास्रवरूपत्वादसंयमो बोध्य इति ॥ सू० ४८ ॥

है ३ चौथे वह जिह्वामय दुःखसे असंयोजयिता है ४ अर्थात् जिह्वाको दुःख उत्पन्न नहीं करता है, इसी तरहसे वह स्पर्शमय सुखसे अव्यपरोपयिता होता है ५ और इसी तरह वह स्पर्शमय दुःखसे असंयोजयिता होता है ६ जो जीव तेइन्द्रिय जीवोंकी विराधना करता है, उसको ६ प्रकारका असंयम होताहै, क्योंकि-एक तो वह घ्राणमय सौख्यसेउसे व्यपरोपित (नाश) करता है १ दूसरे घ्राणमय दुःखसे उसे संयोजित करता है २ तीसरे वह रसना इन्द्रियके सुख का जिह्वामय सौख्य से व्यपरोपित करता है ३ चौथे वह जिह्वामय दुःखसे उसे संयोजित करता है ४ पांचवें वह स्पर्शन इन्द्रियके सुखसे उसे वंचित रहित करता है ५ और छठे स्पर्शन इन्द्रियके दुःखसे वह उसे संयोजित करता है ६ यहां पर संयम और असंयमवालेमें अभेदके उपचारसे संयमीही संयमरूपसे कहा गया है, यहां पर अव्यपरोपण और असंयोजन ये अनास्रवरूप होनेसे संयम

નથી. (૩) તે તેના રસનેન્દ્રિય દ્વારા પ્રાપ્ત થતાં સુખનો નાશકર્તા થતો નથી. (૪) તે તેની જિહ્વાને દુઃખ ઉત્પન્ન કરનારો બનતો નથી (૫) તે તેની સ્પર્શેન્દ્રિય દ્વારા તેને પ્રાપ્ત થતાં સુખનો નાશકર્તા થતો નથી (૬) તે તેની સ્પર્શેન્દ્રિયને દુઃખ આપનારો બનતો નથી.

જે જીવ ત્રીન્દ્રિય જીવોની વિરાધના કરે છે તેના દ્વારા ૬ પ્રકારનો અસંયમ સેવાય છે—(૧) તે માણસ તેના ઘ્રાણેન્દ્રિયના સુખનો નાશકર્તા બને છે. (૨) તે તેને ઘ્રાણેન્દ્રિયના દુઃખનો જનક બને છે (૩) તે તેના રસનેન્દ્રિયના સુખનો નાશકર્તા બને છે. (૪) તે તેના રસનેન્દ્રિયના દુઃખનો ઉત્પાદક બને છે. (૫) તે તેના સ્પર્શેન્દ્રિયના સુખનો નાશકર્તા બને છે. (૬) તે તેના સ્પર્શેન્દ્રિયના દુઃખનો ઉત્પાદક બને છે.

અહીં સંયમ અને સંયમવાળામાં અભેદના ઉપચારની અપેક્ષાએ સંયમીને જ સંયમ રૂપે પ્રતિપાદિત કરવામાં આવ્યો છે. અહીં અવ્યપરોપણ (અલગ નહીં કરવાનું નામ અવ્યપરોપણ છે) અને અસંયોજન અનાસ્રવ

अनन्तर सूत्रे संयमोऽसंयमश्च स्थानषट्कत्वेन निर्दिष्टः; संयमासंयमयोः प्ररूपणा च मनुष्यक्षेत्र एव क्रियते इति तद्गतवस्तूनि स्थानषट्कत्वेन प्ररूपयन् पञ्चपञ्चाशत्सूत्राणि प्राह —

मूलम्—जंबुद्दीवे दीवे छ अकम्मभूमीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—हेमवए १, हेरण्णवए २, हरिवासे ३, रम्मगवासे ४, देवकुरा ५, उत्तरकुरा ६ । १ । जंबुद्दीवे दीवे छवासा पण्णत्ता, तं जहा—भरहे १, एरवए २, हेमवए ३, हेरन्नवए ४, हरिवासे ५, रम्मगवासे ६। । २ । जंबुद्दीवे दीवे छ वासहरपव्वया पण्णत्ता, तं जहा—चुल्लहिमवंते १; महाहिमवंते २, निसढे ३, नीलवंते ४ रुप्पी ५ सिहरी ६ । ३ । जंबूमंदरदाहिणे णं छ कूडा पण्णत्ता, तं जहा—चुल्लहिमवंतकूडे १, वेसमणकूडे २, महाहिमवंतकूडे ३, वेरुलियकूडे ४, निसढकूडे ५, रुयगकूडे ६ । ४ । जंबूमंदर उत्तरे णं छ कूडा पण्णत्ता, तं जहा—नीलवंतकूडे १, उवदंसणकूडे २, रुप्पिकूडे ३, मणिकंचणकूडे ४, सिहरिकूडे ४, तिगिच्छकूडे ६। । ५ । जंबुद्दीवे दीवे छ महद्दहा पण्णत्ता, तं जहा—पउमद्दहे १, महापउमद्दहे २, तिगिच्छद्दहे ३, केसरिद्दहे ४, महापोंडरीयद्दहे ४, पुंडरीयद्दहे ६ । ६ । तत्थ णं छ देवयाओ महिड्डियाओ जाव पल्लोवमट्ठिइयाओ परिवसंति, तं जहा—सिरी १, हिरी २, धिई

रूप हैं, और इनसे भिन्न जो व्यपरोपण और संयोजन हैं वे आस्रव रूप होनेसे असंयम रूप हैं। अव्यपरोपयिता " का तात्पर्य जो अपृथक्कारक होता है " ऐसा है ॥ सू० ४८ ॥

રૂપ હોવાથી સંયમ રૂપ છે, અને વ્યપરોપણ અને સંયોજન આસ્રવ રૂપ હોવાથી અસંયમ રૂપ છે. 'અવ્યપરોપયિતા' આ પદનો અર્થ "અલગ નહીં કરનાર" થાય છે. ॥ સૂ. ૪૮ ॥

३, कित्ती ४, बुद्धी ५, लच्छी ६ । ७ । जंबू मंदरदाहिणे णं छ महानईओ पण्णत्ताओ, तं जहा–गंगा १, सिंधू २, रोहिया ३, रोहितंसा ४, हरी ५, हरिकंता ६। ७। जंबू मंदरउत्तरेणं छ महानइओ पण्णत्ताओ, तं जहा–नरकंता १, नारीकंता २, सुवन्नकूला ३, रुप्पकूला ४, रत्ता ५, रत्तवई ६।९। जंबूमंदरपुरत्थिमे णं सीयाए महानईए उभयकूले छ अंतरनईओ पण्णत्ताओ तं जहा–गाहावई १, दहावई २, पंकवई ३, तत्तजला ४, मत्तजला ५, उम्मत्तजला ६ । १० । जंबूमंदर पच्चत्थिमेणं सीओदाए महानईए उभयकूले छ अंतरनईओ पण्णत्ताओ, तं जहा–खीरोदा १, सीहसोया २, अंतोवाहिणी ३, उम्मिमालिणी ४, फेणमालिणी ५, गंभीरमालिणी ६। ११ । धायईसंडदीवपुरत्थिमद्धे णं छ अकम्मभूमीओ पण्णत्ताओ, तं जहा–हेमवए १, एवं जहा जंबुद्दीवे दीवे तहा । नदी जाव अंतरणईओ । २२, जाव पुक्खरवरदीवद्धपच्चत्थिमद्धे भाणियव्वं ।५५। सू० ४९ ॥

छाया–जम्बूद्वीपे द्वीपे षड् अकर्मभूमयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–हैमवतं १, हैरण्यवतं २, हरिवर्षं ३, रम्यकवर्षं ४, देवकुरवः ५, उत्तरकुरवः ६ । १ । जम्बूद्वीपे

इस ऊपरके सूत्रमें संयम और असंयम ६ स्थानोंसे कहा गया है, संयम और असंयमकी प्ररूपणा मनुष्य क्षेत्रमेंही होती है, अतः अब सूत्रकार मनुष्यक्षेत्र गत वस्तुओंकी प्ररूपणा ६ स्थानोंसे करते हैं इस प्ररूपणामें ये ५५ सूत्र हैं–" जम्बूद्दीवेण दीवे ॥ इत्यादि

આગલા સૂત્રમાં સંયમ અને અસંયમનાં ૬ સ્થાનોની પ્રરૂપણા કરવામાં આવી. સયમ અને અસંયમની પ્રરૂપણા મનુષ્ય ક્ષેત્રમાં જ થાય છે. તેથી હવે સૂત્રકાર મનુષ્યક્ષેત્રમાં આવેલા સ્થળોની ૬ સ્થાનોની અપેક્ષાએ પ્રરૂપણા કરે છે. ૫૫ સૂત્રો વડે આ પ્રરૂપણા કરવામાં આવી છે.

द्वीपे षड् वर्षाणि प्रज्ञप्तानि तद्यथा-भरतम् १. ऐरवतं २ हैमवतं ३ हैरण्यवतं ४, हरिवर्षं ५, रम्यकवर्षम् ६ ।६। २। जम्बूद्वीपे द्वीपे षड् वर्षधरपर्वताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-क्षुद्र हिमवान् १. महाहिमवान् २, निषधो ३, नीलवान् ४, रुक्मी ५, शिखरी ६ । ३। जम्बूमन्दरदक्षिणे खलु षट्कूटाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-क्षुद्रहिमवत्कूट: १, वैश्रवणकूटः २, महाहिमवत्कूटः ३, वैडूर्यकूटः ४, निषधकूटः ५, रुचक कूटः ६ ।४। जम्बू मन्दरोत्तरे खलु षट्कूटाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-नीलवत्कूटः १, उपदर्शन कूटः २, रुक्मिकूटः ३, मणिकाञ्चनकूटः ४, शिखरि कूटः ५, तिगिच्छ कूटः ६ ।५। जम्बूद्वीपे द्वीपे षड् महाह्रदाः प्रज्ञप्ताः

जम्बूद्वीप नामके द्वीपमें ६ अकर्मभूमियां कही गई हैं, उनके नाम इस प्रकारसे हैं-हैमवत १ हैरण्यवत २ हरिवर्ष ३ रम्यकवर्ष ४ देवकुरु ५ और उत्तरकुरु ६ (१)

जम्बूद्वीप नामके द्वीपमें ६ वर्ष कहे गये हैं-जैसे-भरत १ ऐरवत २ हैमवत ३ हैरण्यवत ४ हरिवर्ष ५ और रम्यकवर्ष ६ (२)

जम्बूद्वीप नामके द्वीपमें छह वर्षधर पर्वत कहे गये हैं-जैसे क्षुद्रहिमवान् १ महा हिमवान् २ निषध ३ नीलवान् ४ रुक्मी ५ और शिखरी ६ (३)

जम्बूद्वीपके मन्दर पर्वतकी दक्षिण दिशामें छह कूट कहे गये हैं-जैसे-क्षुद्रहिमवत्कूट १ वैश्रवणकूट २ महाहिमवत्कूट ३ वैडूर्य कूट ४ निषधकूट ५ और रुचक कूट ६ (४)

जम्बूद्वीपके मन्दर पर्वतकी उत्तर दिशामें छह कूट कहे गयेहैं-जैसे-

"जम्बुद्दीवेणं दीवे" ઈત્યાદિ—

જંબૂદ્વીપ નામના દ્વીપમાં ૬ અકર્મભૂમિઓ કહી છે તેમનાં નામ નીચે પ્રમાણે છે--(૧) હૈમવત, (૨) હૈરણ્યવત, (૩) હરિવર્ષ, (૪) રમ્યકવર્ષ (૫) દેવકુરુ અને (૬) ઉત્તરકુરુ ॥ ૧ ॥

જંબૂદ્વીપ નામના દ્વીપમાં ૬ વર્ષ કહ્યાં છે--ભરત, (૨) ઐરવત, (૩) હૈમવત, (૪) હૈરણ્યવત, (૫) હરિવર્ષ અને (૬) રમ્યકવર્ષ ॥ ૨ ॥

જંબૂદ્વીપ નામના દ્વીપમાં ૬ વર્ષધર પર્વતો આવેલા છે. તેમનાં નામ નીચે પ્રમાણે છે--(૧) ક્ષુદ્રહિમવાન્ (૨) મહાહિમવાન્ (૩) નિષધ, (૪) નીલવાન્ (૫) રુક્મી, અને (૬) શિખરી ॥ ૩ ॥

જંબૂદ્વીપના મન્દર પર્વતની દક્ષિણ દિશામાં ૬ કૂટ આવેલાં છે—

तद्यथा-पद्महृदः १, महापद्महृदः २, तिगिच्छहृदः ३, केशरिहृदः ४, महापुण्डरीक हृदः ५, पुण्डरीक हृदः ६। ६। तत्र खलु षड् देवताः महर्द्धिका यावत् पल्योपमस्थितिकाः परिवसन्ति, तद्यथा-श्रीः १, ह्रीः २, धृतिः ३, कीर्त्तिः ४, बुद्धिः ५, लक्ष्मीः ६ । ७ । जम्बू मन्दरदक्षिणे खलु षड् महानद्यः प्रज्ञप्ताः तद्यथा-गङ्गा १, सिन्धुः २, रोहिता ३, रोहितांशा ४, हरिः ५, हरिकान्ता ६। ।८। जम्बूमन्दरोत्तरे खलु षड् महानद्यः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-नरकान्ता १, नारीकान्ता २, सुवर्णकूला ३, रुक्मकूला ४ रक्ता ५ रक्तवती ६ । ९ । जम्बूमन्दरस्य-

---

नीलवत्कूट १ उपदर्शनकूट २ रुक्मिकूट ३ मणिकाञ्चन कूट ४ शिखरिकूट ५ और तिगिच्छकूट ६ (५)

जम्बूद्वीप नामके द्वीपमें छह महाह्रद (द्रह) कहे गये हैं-जैसे-पद्महृद १ महापद्म ह्रद २ तिगिच्छहृद ३ केशरिहृद ४ महापुण्डरीक ह्रद ५ और पुण्डरीक ह्रद ६ (६) इनमें छह देवियां महाऋद्धिवाली यावत् एक पल्योपमकी स्थितिवाली रहती हैं उनके नाम इस प्रकारसे हैं-श्री १ ह्री २ धृति ३ कीर्ति ४ बुद्धि ५ एवं लक्ष्मी ६ (७)

जम्बूद्वीपके मन्दर पर्वतकी दक्षिण दिशामें छह महानदियां कही गई हैं-जैसे-गङ्गा १ सिन्धु २ रोहिता ३ रोहितांशा ४ हरि ५ और हरिकान्ता ६ (८) जम्बूद्वीपके मन्दर पर्वतकी उत्तरदिशामें छह महा-

---

(૧) ક્ષુદ્રહિમવત્કૂટ, (૨) વૈશ્રવણકૂટ, (૩) મહાહિમવત્કૂટ, (૪) વૈડૂર્યકૂટ, (૫) નિષધકૂટ અને (૬) રુચકકૂટ ॥ ૪ ॥

જંબૂદ્વીપના મન્દર પર્વતની ઉત્તર દિશામાં ૬ કૂટ આવેલાં છે-- (૧) નીલવત્કૂટ, (૨) ઉપદર્શનકૂટ, (૩) રુકિમકૂટ, (૪) મણિકાંચનકૂટ, (૫) શિખરીકૂટ અને (૬) તિગિચ્છકૂટ. ॥ ૫ ॥

જંબૂદ્વીપ નામના દ્વીપમાં નીચે પ્રમાણે ૬ મહાહ્રદ આવેલાં છે— (૧) પદ્મહ્રદ, (૨) મહાપદ્મહ્રદ, (૩) તિગિચ્છહ્રદ, (૪) કેશરીહ્રદ, (૫) મહાપુંડરીકહ્રદ અને (૬) પુંડરીકહ્રદ. ॥ ૬ ॥

ઉપર્યુક્ત હ્રદોમાં મહાઋદ્ધિ આદિથી સંપન્ન ૬ દેવીઓ રહે છે તેમનાં નામ (૧) શ્રી, (૨) હ્રી, (૩) ધૃતિ, (૪) કીર્તિ, (૫) બુદ્ધિ અને (૬) લક્ષ્મી ॥ ૭ ॥

જંબૂદ્વીપના મન્દર પર્વતની દક્ષિણ દિશામાં ૬ મહાનદીઓ કહી છે— (૧) ગંગા, (૨) સિંધુ, (૩) રોહિતા, (૪) રોહિતાંશા, (૫) હરિ અને (૬) હરિકાન્તા. ॥ ૮ ॥

જંબૂદ્વીપમાં મન્દર પર્વતની ઉત્તર દિશામાં નીચે પ્રમાણે ૬ મહા

पौरस्त्ये खलु सीताया महानद्या उभयकूले षट् अन्तरनद्यः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–ग्राहावती १, ह्रदावती २, पङ्कवती ३, तप्तजला ४, मत्तजला ५, उन्मत्तजला ६। ।१०। जम्बूमन्दरपाश्चात्ये खलु सीतोदाया महानद्या उभयकूले षट् अन्तरनद्यः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–क्षीरोदा १, सिंहस्रोताः २, अन्तर्वाहिनी ३, ऊर्मिमालिनी ४, फेनमालिनी ५, गम्भीरमालिनी ६ ।११। धातकी खण्ड पौरस्त्यार्द्धे खलु षट् अकर्मभूमयः प्रज्ञप्ताः तद्यथा–हैमवतम् १, एवं यथा जम्बूद्वीपे द्वीपे तथा। नद्यो यावत् अन्तर नद्यः। २२, यावत् पुष्करवरद्वीपार्द्ध पाश्चात्यार्द्धे भणितव्यम् ५५सू.४९

टीका—' जंबुद्दीवे दीवे ' इत्यादि—

जम्बूद्वीपस्था अकर्मभूमयः षड्भिः स्थानैरुक्ताः ।१। एवमेव वर्षाणि २, वर्षधरपर्वताः ३, जम्बूमन्दरस्य दक्षिणदिग्वर्त्तिनः कूटाः ४, तस्यैव उत्तरदिग्वर्त्तिनः कूटाः ५, महाह्रदाः ६, तत्रस्था देवताः ७, जम्बूमन्दरस्य दक्षिणदिग्व

नदियां कही गई हैं-जैसे-नरकान्ता १ नारीकान्ता २ सुवर्णकूला ३ रुक्मकूला ४ रक्ता ५ और रक्तवती ६ जम्बूद्वीपके मन्दर पर्वतकी पूर्व दिशामें सीता महानदीके दोनों तट पर छ अन्तर नदियां कही गई हैं-जैसे-ग्रहावती १ हृदावती २ पङ्कवती ३ तप्तजला ४ मत्तजला ५ और उन्मत्तजला ६ (१०)

जम्बूद्वीपके मन्दर पर्वतकी पश्चिम दिशामें सीतोदा महानदीके दोनों तटपर छह ६ अन्तर नदियाँ कही गई हैं-जैसे-क्षीरोदा १ सिंहस्रोता २ अन्तर्वाहिनी ३ ऊर्मिमालिनी ४ फेनमालिनी ५ और गम्भीरमालिनी ६ (११)

धातकीखण्डके पौरस्त्यार्द्धमें (पूर्वार्धमें) ६ अकर्मभूतियां कही गई हैं-जैसे-हैमवत १ हैरण्यवत २ हरिवर्ष ३ रम्यकवर्ष ४ देवकुरु ५ और

નદીઓ કહી છે—(૧) નરકાન્તા, (૨) નારીકાન્તા, (૩) સુવર્ણકૂલા, (૪) રુકમકૂલા, (૫) રક્તા અને (૬) રક્તવતી ॥ ૯ ॥

જંબૂદ્વીપના મન્દર પર્વતની પૂર્વ દિશામાં સીના મહાનદીના બન્ને તટ પર છ અન્તરનદીઓ કહી છે––(૧) ગ્રહાવતી, (૨) હ્રદાવતી, (૩) પંકવતી, (૪) તપ્તજલા, (૫) મત્તજલા અને (૬) ઉન્મત્તજલા. ॥ ૧૦ ॥

જંબૂદ્વીપના મન્દર પર્વતની પશ્ચિમ દિશામાં સીતોદા મહાનદીના બંને તટ પર છ અન્તરનદીઓ કહી છે––(૧) ક્ષીરોદા. (૨) સિંહસોતા, (૩) અન્તર્વાહિની, (૪) ઉર્મિમાલીની, (૫) ફેનમાલિની અને (૬) ગંભીરમાલિની ।૧૧।

ધાતકીખંડના પૂર્વાર્ધમાં છ અકર્મભૂમિઓ કહી છે––(૧) હૈમવત, (૨) હૈરણ્યવત, (૩) હરિવર્ષ, (૪) રમ્યકવર્ષ, (૫) દેવકુરુ અને (૬) ઉત્તરકુરુ.

र्त्तिन्यो महानद्यः ८, तस्यैवोत्तरदिग्वर्त्तिन्यो महानद्यः ९, जम्बूमन्दरपूर्वदिग्वर्त्तिन्यः सीताया महानद्या उभयकूलवर्त्तिन्योऽन्तरनद्यः १०, जम्बूमन्दर पश्चिमदिग्वर्त्तिन्यः सीतोदा महानद्या उभयकूलवर्त्तिन्योऽन्तरनद्यश्च षड्भिः षड्भिः स्थानैरुक्ताः ११। यथा जम्बूद्वीपेऽकर्मभूम्यादयः प्रोक्तास्तथैव धातकी खण्ड द्वीपस्य पौरस्त्यार्द्धे ११ पाश्चात्यार्द्धे च ११, पुष्करवरद्वीपार्द्धस्यापि पौरस्त्यार्द्धे ११, पाश्चात्यार्द्धे च ११ विज्ञेयाः। एवं सर्वसंकलनया पञ्च पञ्चाशत् (५५) सूत्राणि जातानीति ॥ सू० ४९ ॥

अनन्तरोक्तक्षेत्राणि तु कालविशिष्टानि भवन्तीति कालविशेषानाह—

मूलम्—छ उऊ पण्णत्ता, तं जहा—पाउसे १, वरिसारत्ते २, सरए ३, हेमंते ४, वसंते ५, गिम्हे ६। १ ॥ छ ओमरत्ता पण्णत्ता, तं जहा—तइए पव्वे १, सत्तमे पव्वे २, एक्कारसमे पव्वे ३, पन्नरसमे पव्वे ४, एगूणवीसइमे पव्वे ५ तेवीसइमे पव्वे ६। २। छ अइरत्ता पण्णत्ता, तं जहा--चउत्थे पव्वे १, अट्ठमे पव्वे २, दुवालसमे पव्वे ३, सोलसमे पव्वे ४, वीसइमे पव्वे ५ चउवीसइमे पव्वे ६। ३ ॥ सू० ५० ॥

उत्तरकुरु ६। नदियां एवं यावत् अन्तर नदियां यह सब कथन यहां ऊपर सूत्रमें जम्बूद्वीपके प्रकरण जैसा किया गयाहै, वैसा कर लेना चाहिये२२ इसी तरहका कथन पुष्करवर द्वीपार्द्धके पाश्चात्यार्द्धमें पश्चिमार्ध भी कर लेनाचाहिये ये ५५ सूत्र इस प्रकारसे हुएहैं, कि जम्बूद्वीप सम्बन्धी ११ धातकीखण्ड द्वीपके पौरस्त्यार्द्धके ११ ग्यारह इस पाश्चात्यार्द्धके ११ ग्यारह पुष्करवरद्वीपार्धके पौरस्त्यार्धके ११ और पाश्चात्यार्धके ११ इस प्रकार ये सब मिलकर ५५ हो जाते हैं ॥ सू० ४९ ॥

ત્યારબાદ અન્તરનદીઓ સુધીના સૂત્રોનું કથન ઉપર મુજબ જ કરવું જોઇએ. આ રીતે ધાતકીખંડના પૂર્વાર્ધ વિષયક ૧૧ સૂત્રો જંબૂદ્વીપના ૧૧ સૂત્રો જેવાં જ બનશે. એ જ પ્રમાણે ધાતકીખંડના પશ્ચિમાર્ધના પણ ૧૧ સૂત્રો બનશે. એ જ પ્રમાણે પુષ્કરવર દ્વીપાર્ધના પૂર્વાર્ધના ૧૧ અને પશ્ચિમાર્ધના ૧૧ સૂત્ર મળીને કુલ ૫૫ સૂત્ર બની જાય છે ॥ સૂ. ૪૯ ॥

छाया—षड् ऋतवः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-प्रावृट् १ वर्षारात्रः २, शरत् ३, हेमन्तो ४, वसन्तो ५, ग्रीष्मः ६ ।१। षड् अवमरात्राः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-तृतीये पर्वणि १, सप्तमे पर्वणि २, एकादशे पर्वणि ३, पञ्चदशे पर्वणि ४, एकोनविंशतितमे पर्वणि ५, त्रयोविंशतितमे पर्वणि ६। २। षट् अतिरात्राः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-चतुर्थे पर्वणि १, अष्टमे पर्वणि २, द्वादशे पर्वणि ३, षोडशे पर्वणि ४, विंशतितमे पर्वणि ५, चतुर्विंशतितमे पर्वणि ६ ।३। ॥ सू० ५० ॥

टीका--' छ उऊ ' इत्यादि--

ऋतवः=मासद्वयप्रमाणात्मककालविशेषाः प्रावृड् वर्षारात्रादिभेदेन षट्-संख्यका बोध्याः । तत्र प्रावृट् आषाढश्रावणमासद्वयात्मिका। वर्षारात्रो भाद्रपदामासद्वयप्रमाणः । एवं शरद्धेमन्तवसन्तग्रीष्मा अपि कार्तिकादिक्रमेण द्वि द्वि मासात्मका बोध्याः । लौकिकास्तु वर्षाशरद्धेमन्तशिशिरवसन्तग्रीष्माख्यान् श्रावणादि क्रमेण द्वि द्वि मासात्मकान् षड् ऋतून् मन्यन्ते इति ।१। तथा-अव-

"छ उऊ पण्णत्ता" इत्यादि सूत्र ५० ॥

टीकार्थ-दो महिनोंकी १-१ ऋतु होतीहै, ऐसी ऋतुएँ प्रावृट् वर्षारात्र आदिके भेद से छ प्रकार की है, जो इस प्रकार है—प्रावृट् १ वर्षारात्र २ शरत् ३ हेमन्त ४ वसन्त ५ और ग्रीष्म ६। इनमें आषाढ श्रावणकी प्रावृट् ऋतु होती है, भाद्रपद आश्विन इन दो महीनोंकी वर्षारात्र होती है, कार्तिक अगहनकी शरद् ऋतु होती है, पूस माहकी हेमन्त एवं फाल्गुन चैत्रकी वसन्त ऋतु होती है, वैशाख ज्येष्ठ मासकी ग्रीष्म ऋतु होती है, इस तरहसे ये ऋतुएँ दो दो मासकी होतीहैं । लौकिक जन शरद्-शिशिर हेमन्त वसन्त और ग्रीष्म वर्षा ये ऋतुएँ आसोज कार्तिक मास आदि दो दो मासके योगसे

ટીકાર્થ-" छ उऊ पण्णत्ता " ઈત્યાદિ--

બબ્બે માસની દરેક ઋતુ થાય છે. એવી છ ઋતુઓ નીચે પ્રમાણે છે. (૧) પ્રાવૃટ, (૨) વર્ષારાત્ર, (૩) શરત્ (૪) હેમન્ત, (૫) વસન્ત અને (૬) ગ્રીષ્મ.

અષાઢ અને શ્રાવણ માસમાં પ્રવૃટ ઋતુ આવે છે. ભાદરવા અને આસો માસમાં વર્ષારાત્ર આવે છે કારતક અને માગશરમાં શરદ ઋતુ આવે છે, છે, પોષ અને મહામાં હેમન્ત ઋતુ આવે છે, ફાગણ અને ચૈત્રમાં વસન્ત અને વૈશાખ અને જેઠમાં ગ્રીષ્મ ઋતુ આવે છે. આ પ્રમાણે બબ્બે માસની પ્રત્યેક ઋતુ સમજવી છતાં લોકો આ પ્રકારની છ ઋતુઓ ગણે છે- શરદ, શિશિર, હેમન્ત, વસન્ત અને ગ્રીષ્મ. આ ઋતુઓ આસો અને કાર્તિક માસ વિગેરે બબ્બે માસના યોગથી થાય છે. વર્ષા

मरात्राः-अवमाः=हीना रात्रयः-अवमरात्राः-दिनक्षयाः षट् संख्यकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-तृतीये पर्वणि ' इत्यादि ।

तदत्र पद्यं—

" आसाढबहुलपक्खे, भद्दवए कत्तिए य पोसेय ।
फग्गुणवइसाहेसुय, नायव्वा ओमरत्ताओ ॥१॥"

(उत्तरा० अध्य० २६ गा० १५)

छाया--आषाढबहुलपक्षे, कार्त्तिके च पौषे च ।
फाल्गुन वैशाखयोश्च, ज्ञातव्याः अवमरात्राः ॥१॥

इत्युत्तराध्ययनसूत्रवाक्यानुसारेण लौकिकग्रीष्मऋतुमारभ्य बोध्यम् । एवं च तृतीये पर्वणि-आषाढकृष्णपक्षे इत्यर्थः १। तथा-सप्तमे पर्वणि=भाद्रपद-कृष्णपक्षे, एकादशे पर्वणि=कार्त्तिक कृष्णपक्षे, पञ्चदशे पर्वणि=पौषकृष्णपक्षे,

---

होती हैं, ऐसा मानते हैं॥१॥ छह अवमरात्र अर्थात् न्यूनदिन कहे गये हैं-जैसे - तृतीय पर्वमें-आषाढ कृष्णपक्षमें-' आसाढबहुलपक्खे " इत्यादि ।

इस उत्तराध्ययन सूत्रके वाक्यके अनुसार लौकिक ग्रीष्म ऋतुसे लेकर जानना चाहिये इस तरह यहां तृतीय पर्वका वाच्यार्थ होता है, आषाढ कृष्ण पक्ष इस आषाढ कृष्णपक्षमें प्रथम अवमरात्र होता है, अर्थात् इस पक्ष में १४ चौदह दिन होते हैं द्वितीय अवमरात्र ग्यारहवें पर्वमें कार्तिक कृष्ण पक्षमें चतुर्थ अवमरात्र पन्द्रहवें पर्वमें-पौष कृष्णपक्षमें पंचम अवमरात्र १९ वे पर्वमें-फाल्गुन कृष्णपक्षमें और षष्ठम अवमरात्र २३ वें पर्वमें-वैशाख कृष्णपक्षमें

આવે છે એજ પ્રમાણે બીજી ઋતુઓના પણ બબ્બે માસ અનુક્રમે સમજી લેવા. ॥ ૧ ॥

વર્ષમાં છ અવમમાત્ર થાય છે. અવમરાત્ર એટલે દિનક્ષય. જેમકે— તૃતીય પર્વમાં એટલે કે અષાઢ માસના કૃષ્ણુપક્ષમાં. કહ્યું પણ છે કે " आसाढ बहुलपक्खे " ઈત્યાદિ. ઉત્તરાધ્યયન સૂત્રમાં કહ્યા પ્રમાણે લૌકિક ગ્રીષ્મ ઋતુથી લઈને વસન્ત ઋતુ પર્યન્તનું વર્ણુન સમજવું. તૃતીય પર્વમાં એટલે કે અષાઢ માસના કૃષ્ણુપક્ષમાં પહેલો દિનક્ષય થાય છે. સપ્તમ પર્વમાં એટલે કે ભાદરવા માસના કૃષ્ણુપક્ષમાં બીજો દીનક્ષય થાય છે. અગિયારમાં પર્વમાં એટલે કે કારતક માસના કૃષ્ણુપક્ષમાં ત્રીજો દિનક્ષય થાય છે. પંદરમાં પર્વમાં એટલે કે પોષ માસના કૃષ્ણુપક્ષમાં ચોથો દિનક્ષય થાય છે. ઓગણીસમાં પર્વમાં એટલે કે ફાગણુ માસના કૃષ્ણુપક્ષમાં પાંચમો દિનક્ષય થાય છે. ૨૩ માં પર્વમાં

एकोनत्रिंशतितमे पर्वणि=फाल्गुनकृष्णपक्षे, त्रयोविंशतितमे पर्वणि=वैशाखकृष्णपक्षे इति । एतेषु षट्सु अवमरात्र सद्भावात् षट् अवमरात्रा भवन्तीति भावः ।२।

तथा—अतिरात्राः-अतिशया रात्रयः, अतिरात्राः-दिनवृद्धयः षड्विधाः प्रज्ञप्ताः । तत्र—आषाढशुक्लपक्षः-चतुर्थं पर्व १, भाद्रशुक्लपक्षः-अष्टमं पर्व २, कार्त्तिक शुक्लपक्षो द्वादशं पर्व ३, पौषशुक्लपक्षः षोडशं पर्व ४, फाल्गुनशुक्लपक्षो विंशतितम पर्व ५, वैशाख शुक्लपक्षस्तु चतुर्विंशतितमं पर्वेति ।३।सू०५०।

अनन्तरसूत्रोक्तार्थस्तु ज्ञानेनावगम्यते इति ज्ञानमभिधातुं सूत्रद्वयमाह—

मूलम्—आभिणिबोहियणाणस्स णं छव्विहे अत्थोवग्गहे पण्णत्ते, तं जहा--सोइंदियत्थोवग्गहे जाव नोइंदियत्थोवग्गहे ॥ सू० ५१ ॥

छाया—आभिनिबोधिक ज्ञानस्य खलु षड्विधः अर्थावग्रहः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-श्रोत्रेन्द्रियार्थावग्रहो यावत् नो इन्द्रियार्थावग्रह ॥ सू० ५१ ॥

टीका—'आभिणिबोहियणाणस्स' इत्यादि—

आभिनिबोधिकज्ञानस्य=मतिज्ञानस्य खलु अर्थावग्रहः-अर्थस्य अवग्रहणम्, अर्थावग्रहः - सकलरूपादिविशेष निरपेक्षाऽनिर्देश्यसामान्यमात्रार्थग्रहणरूपः ।

होता है, इन छहमें अवमरात्र-दिनक्षयके सद्भावसे ये ६ अवमरात्र होते हैं ॥२॥ तथा-अतिरात्र-दिनवृद्धि-छह प्रकारके कहे गये हैं जैसे-चतुर्थ पर्व-आषाढ शुक्लपक्ष १ भाद्र शुक्लपक्ष २ कार्तिक शुक्लपक्ष ३ पौषशुक्लपक्ष४ फाल्गुन शुक्लपक्ष५ और वैशाख शुक्लपक्ष ॥सू०५०॥

इस ऊपरके सूत्रमें कहा गया अर्थ ज्ञानसे जाना जाताहै, इसलिये अब सूत्रकार ज्ञानका कथन करनेके लिये दो सूत्र कहते हैं—

એટલે કે વૈશાખ માસના છઠ્ઠા પર્વમાં છઠ્ઠો દિનક્ષય થાય છે. આ રીતે કુલ છ અવમરાત્ર (દિનક્ષય) થાય છે. ॥ ૨ ॥

અતિરાત્રિ (દિનવૃદ્ધિ) છ પ્રકારની કહી છે—(૧) ચતુર્થ પર્વ એટલે કે અષાઢ માસના શુક્લ પક્ષમાં, (૨) ભાદરવાના શુક્લ પક્ષમાં, (૩) કારતકના શુકલ પક્ષમાં, (૪) પોષના શુકલ પક્ષમાં, (૫) ફાગણના શુકલ પક્ષમાં અને વૈશાખના શુકલ પક્ષમાં. ॥ ૩ ॥ ॥ સૂ. ૫૦ ॥

ઉપરના સૂત્રમાં જે વિષયનું પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યું છે, તે વિષય જ્ઞાન દ્વારા જાણી શકાય છે. તેથી હવે સૂત્રકાર બે સૂત્રો વડે જ્ઞાનની પ્રરૂપણા

प्रथम परिच्छेदनम् अर्थावग्रह इति निर्विकल्पकं ज्ञान दर्शनरूपमित्युच्यते। अयं च नैश्चयिक एक सामयिकः। यस्तु व्यावहारिकः 'शब्दोऽयम्' इत्याद्युल्लेखवान् स आन्तर्मौहूर्त्तिक इति। स तु मनःसहितेन्द्रियपञ्चकजन्यत्वात् षड्विधः प्रज्ञप्तः तद्यथा-श्रोत्रेन्द्रियार्थावग्रहः-श्रोत्रेन्द्रियेण अर्थावग्रहः। एवं चक्षुरिन्द्रियार्थावग्रहादिषु बोध्यम्। इदमत्र बोध्यम्-चक्षुर्मनसोस्तु अप्राप्यकारित्वाद् व्यञ्ज-

---

"अभिणिबोहिय नाणस्स" इत्यादि सूत्र ५१॥

अभिनिबोधिक ज्ञानका-मतिज्ञानका अर्थावग्रह समस्त रूपादि विशेषकी अपेक्षासे रहित ऐसे अनिर्देश्य सामान्य मात्ररूप अर्थका जो ग्रहण करता है, वह अर्थावग्रह है, यह अर्थावग्रह प्रथम परिच्छेदन रूप होता है, प्रथम परिच्छेद निर्विकल्प ज्ञान रूप होता है। तथा-निर्विकल्पक ज्ञान दर्शनरूप होता है। अर्थावग्रह नैश्चयिक और व्यावहारिक भेदसे दो प्रकारका कहा गया है, यहां जो अर्थावग्रह कहा गया है, वह नैश्चयिक अर्थावग्रह कहा गया है, इस नैश्चयिक अर्थावग्रहका काल प्रमाण १ समयका होता है। व्यावहारिक जो अर्थावग्रह होता है-जैसे-यह शब्द है, ऐसा जो अर्थका अवग्रह रूप ज्ञान होता है, वह व्यावहारिक अर्थावग्रह है-सो यह व्यावहारिक अर्थावग्रह एक अन्तर्मुहूर्त्तकालके प्रमाणवाला होता है, यह पांच इन्द्रियोंसे एवं मनसे उत्पन्न होता है, अतः इसे छह प्रकारका कहा गया है, जैसे-श्रोत्रेन्द्रियजन्य अर्थावग्रह चक्षुइन्द्रियजन्य अर्थावग्रह इत्यादि यहां तात्पर्य

કરે છે. "आभिणिबोहियणाणस्स" ઇત્યાદિ--

આભિનિબોધિક જ્ઞાનનો (મતિજ્ઞાનનો) અર્થાવગ્રહ (સમસ્ત રૂપાદિ વિશેષોની અપેક્ષાથી રહિત એવા અનિર્દેશ્ય સામાન્ય માત્રરૂપ અર્થને જે ગ્રહણ કરવાનું થાય છે તેનું નામ અર્થાવગ્રહ છે) પ્રથમ પરિચ્છેદન રૂપ હોય છે. પ્રથમ પરિચ્છેદ નિર્વિકલ્પ જ્ઞાનરૂપ હોય છે. તથા નિર્વિકલ્પ જ્ઞાન દર્શન રૂપ હોય છે અર્થાવગ્રહના બે ભેદ કહ્યા છે-(૧) નૈશ્ચયિક અને (૨) વ્યાવહારિક. અહીં જે અર્થાવગ્રહ કહ્યો છે તે નૈશ્ચયિક અર્થાવગ્રહ સમજવો. આ નૈશ્ચયિક અર્થાવગ્રહનું કાળપ્રમાણ એક સમયનું હોય છે. "આ શબ્દ છે" એવું જે અર્થના અવગ્રહ રૂપ જ્ઞાન હોય છે, તેનું નામ વ્યાવહારિક અર્થાવગ્રહ છે. તે વ્યાવહારિક અર્થાવગ્રહનું કાળપ્રમાણ એક અન્તર્મુહૂર્તનું હોય છે. તે પાંચ ઇન્દ્રિયો અને મનથી ઉત્પન્ન થાય છે. તેથી તેના નીચે પ્રમાણે છ પ્રકાર કહ્યા છે-શ્રોત્રેન્દ્રિય જન્ય અર્થાવગ્રહથી લઇને નોઇન્દ્રિયજન્ય અર્થાવગ્રહ

नावग्रहो न भवति, ततस्तयो रर्थावग्रह एवेति। षष्ठ भेदमाह-'नो इंदियत्थुग्गहे' इति। नो इन्द्रियार्थावग्रहः-नो इन्द्रियेण=भाव मनसा अर्थावग्रहो द्रव्येन्द्रिय व्यापार निरपेक्षो घटाद्यर्थस्वरूपपरिभावनाभिमुखः प्रथमसैकसामायिको रूपाद्यर्थाकारादि विशेषचिन्तारहितोऽनिर्देश्यसामान्यमात्र चिन्तात्मको बोधो नोइन्द्रियार्थावग्रहः। नोइन्द्रियं हि मनः, तच्च द्विधा-द्रव्यरूपं भावरूपं च। तत्र मनः पर्याप्ति नामकर्मोदयात् यन्मनः-प्रायोग्य वर्गणा दलिकानादाय मनस्त्वेन परिणमते

ऐसा है, चक्षु और मन ये दोनों अप्राप्यकारी माने गये हैं इसलिये व्यञ्जनावग्रह अप्रकट पदार्थका अवग्रहरूप ज्ञान इन दोनों इन्द्रियोंसे नहीं होता है, इन दोनों इन्द्रियोंसे तो अर्थावग्रहही होता है, इस तरह पांच इन्द्रियोंसे जन्य अर्थावग्रह पांच प्रकारका हो जाता है, और जो मनसे जन्य अर्थका अवग्रह रूप ज्ञान होता है, वह नो इन्द्रियार्थावग्रह है, भाव मनसे द्रव्येन्द्रियके व्यापारकी अपेक्षा रखे बिना घटादिरूप पदार्थके स्वरूपको जाननेके अभिमुख जो बोध होता है, वह नो इन्द्रिर्थावग्रह है, यह नो इन्द्रियार्थावग्रह जब तक रूपादि अर्थके आकार आदिकी चिन्तासे रहित होता है, तब तक यह प्रथम एक समयका नैश्चयिक अर्थावग्रह कहलाता है, क्योंकि यह अनिर्देश्य सामान्य मात्रका चिन्तनरूप होता है, नो इन्द्रिय नाम मनका है, यह मन द्रव्यमन और भाव मनके भेदसे दो प्रकारका कहा है। इनमें जो मन मनः पर्याप्ति नामकर्मके उदयसे मनःप्रायोग्य वर्गणादलिकोंको लेकर

પર્યન્તના છ પ્રકાર અહીં સમજી લેવા. ચક્ષુ અને મન, આ બન્નેને અપ્રાપ્યકારી માનવામાં આવ્યા છે, તેથી વ્યંજનાવગ્રહ-અપ્રકટ પદાર્થના અવગ્રહ રૂપ જ્ઞાન-તે બન્ને ઇન્દ્રિયો દ્વારા થતું નથી તે બન્ને ઇન્દ્રિયો વડે તો અર્થાવગ્રહ જ થાય છે આ રીતે પાચ ઇન્દ્રિયો વડે જન્ય અર્થાવગ્રહ પાંચ પ્રકારનો હોય છે અને જે મનથી જન્ય અર્થના અવગ્રહ રૂપ જ્ઞાન હોય છે તેનું નામ 'નો ઇન્દ્રિયાર્થાવગ્રહ' છે. આ અવગ્રહનો છઠ્ઠો પ્રકાર છે. ભાવમન વડે દ્રવ્યેન્દ્રિયના વ્યાપારની અપેક્ષા રાખ્યા વિના ઘટાદિ રૂપ પદાર્થના સ્વરૂપને દર્શાવનારો જે બોધ થાય છે તે નોઇન્દ્રિયાર્થાવગ્રહ છે. આ નોઇન્દ્રિયાર્થાવગ્રહ જ્યાં સુધી રૂપાદિ અર્થના આકાર આદિની ચિન્તાથી રહિત હોય છે ત્યાં સુધી પ્રથમ એક સમયનો નૈશ્ચયિક અર્થાવગ્રહ કહેવાય છે, કારણ કે તે અનિર્દેશ્ય સામાન્ય માત્રના ચિન્તન રૂપ હોય છે. મનને નોઇન્દ્રિય કહે છે. તે મનના દ્રવ્યમન અને ભાવમન નામના બે ભેદ કહ્યા છે. જે મનઃપર્યાપ્તિ નામકર્મના

तद् द्रव्यरूपं मनः। तथा-द्रव्यमनोऽवष्टम्भेन जीवस्य यो मननपरिणामः स भाव मनः। तत्रेह भावमनो गृह्यते। तद्ग्रहणे हि द्रव्यमनसोऽपि ग्रहणं भवत्येव द्रव्यमनोविनाभावमनसोऽसंभवात्। भावमनोविनाऽपिच द्रव्यमनो भवति ।सू०५१।

तथा—

मूलम्-छव्विहे ओहिनाणे पण्णत्ते, तं जहा-आणुगामिए १ अणाणुगामिए २ वड्ढमाणए ३ हीयमाणए ४ पडिवाई ५ अपडिवाई ५ ॥ सू० ॥ ५२ ॥

छाया—षड्विधमवधिज्ञानं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा-आनुगामिकम् १, अनानुगामिकं २ वर्द्धमानकं ३ हीयमानकं ४ प्रतिपाति ५ अप्रतिपाति ६ ॥सू० ५२॥

उन्हें मनरूपसे परिणमना है, वह द्रव्यमन है, तथा द्रव्यमनके सहारेसे जो जीवका मनन करनेरूप परिणमन होता है, वह भावमन है, यहां नो इन्द्रियार्थावग्रहमें इसी भाव मनसे अर्थका अवग्रहरूप ज्ञान होता है, अतः उसे नो इन्द्रियार्थावग्रह कहा गया है, ऐसा जानना चाहिये भाव मनके ग्रहणसे द्रव्य मनका भी ग्रहण हो जाता है, क्योंकि भाव-मनका व्यापार द्रव्यमनके विना नहीं होता है, द्रव्यमन तो भावमनके विना भी होता है ॥ सू० ५१॥

तथा-"छव्विहे ओहिनाणे पण्णत्ते" इत्यादि सूत्र ५२ ॥

सूत्रार्थ-अवधिज्ञान ६ प्रकारका कहा गयाहै-जैसे-आनुगमिक १ अनानुगमिक २ वर्द्धमानक ३ हीयमानक ४ प्रतिपाति ५ और अप्रतिपाति ६ ।

ઉદયથી મનઃ પ્રાયોગ્ય વર્ગણુાદલિકોને લઈને તેમને મનરૂપે પરિણુમાવે છે, તે દ્રવ્યમન છે. તથા દ્રવ્યમનની મદદથી જીવની મનન કરવા રૂપ જે પ્રવૃત્તિ ચાલે છે તેને ભાવમન કહે છે નોઇન્દ્રિય અર્થાવગ્રહમાં આ ભાવમન વડે જ અર્થના અવગ્રહ રૂપ જ્ઞાન થાય છે, તેથી તેને નોઇન્દ્રિયાર્થાવગ્રહ કહેવામાં આવ્યો છે, એમ સમજવું. ભાવમનના ગ્રહણુ વડે દ્રવ્યમનનું પણુ ગ્રહણુ થઈ જાય છે, કારણુ કે દ્રવ્યમન વિના ભાવમનનો વ્યાપાર ચાલી શકતો નથી. દ્રવ્યમન તો ભાવમન વિના પણુ હોઈ શકે છે ॥ સૂ ૫૧ ॥

તથા—" છવ્વિહે ઓહિનાણે પણ્ણત્તે "—ઈત્યાદિ—(સૂ. ૫૨)

સૂત્રાર્થ-અવધિજ્ઞાનના નીચે પ્રમાણે ૬ પ્રકાર કહ્યા છે—(૧) આનુગમિક, (૨) અનાનુગમિક (૩) વર્દ્ધમાનક, (૪) હીયમાનક, (૫) પ્રતિપાતિ અને (૬) અપ્રતિપાતિ.

टीका—' छव्विहे ' इत्यादि—

अवधिज्ञानम्—आत्मनोऽर्थसाक्षात्करण,व्यापारोऽवधिः । यद्वा-' अव ' शब्दोऽव्ययत्वेनानेकार्थकत्वादधः शब्दार्थकः । अव—अधो नीचप्रदेशे विस्तृतं वस्तु धीयते—परिच्छिद्यतेऽनेनेत्यवधिः—अधोविस्तृतविषयकज्ञानम् । अवधिश्चासौ ज्ञानं चेत्यवधिज्ञानम् । विषयस्य बहुत्वं स्वीकृत्यैवं व्युत्पत्तिरिति बोध्यम् । अन्यथा तिर्यगूर्ध्वं वा विषयं परिच्छिन्दज्ञानस्यावधिव्यपदेशो न स्यात् ।यद्वा—अवधिर्मर्यादा—रूपिष्वेव द्रव्येषु परिच्छेदकतया प्रवृत्तिरूपा, तदुपलक्षितं ज्ञानमवधिज्ञानम् । यद्वा—

विना किसी इन्द्रियकी सहायतासे जो अवधिज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशमसे रूपीद्रव्यको स्पष्ट रूपसे जाननेवाला ज्ञान होता है, वह अवधिज्ञान है । अवधिज्ञानके बलसे आत्मा द्रव्यक्षेत्र काल भावकी मर्यादा लेकर रूपी पदार्थोंको जानता है, अथवा—अव शब्द अव्यय है, यह अनेक अर्थका वाचक है, यहां इसका अर्थ अधः लिया गया है, अतः जिसके द्वारा नीचे प्रदेशमें विस्तृत वस्तु जानी जाती है, वह अवधि है " अवधीयते " इति अवधिः अवधिश्चासौ ज्ञानं च इति अवधिज्ञानम् " ऐसी जो यह यहां व्युत्पत्ति प्रदर्शित की गई है, वह विषयकी बहुलताको लेकर की गई है । नहीं तो फिर तिर्यग् अथवा ऊर्ध्वगत वस्तुको जाननेवाला ज्ञान अवधिज्ञान नहीं कहलासकेगा अथवा अवधि नाम मर्यादाका है, इस ज्ञानमें रूपी पदार्थोंको ही जाननेकी अपेक्षासे है, अतः इस मर्यादासे उपलक्षित जो ज्ञान है, वह

અવધિજ્ઞાનાવરણ કર્મના ક્ષયોપશમથી, કોઇ પણ ઈન્દ્રિયની મદદ વિના રૂપી દ્રવ્યને સ્પષ્ટ રૂપે જાણનારુ જે જ્ઞાન છે તેને અવધિજ્ઞાન કહે છે અવધિજ્ઞાનના પ્રભાવથી આત્મા દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર, કાળ અને ભવની મર્યાદામાં રહીને રૂપી પદાર્થને જાણી શકે છે અથવા " अव " આ પદ અવ્યય છે અને તે અનેક પ્રકારના અર્થનું વાચક છે અહીં તેનો અર્થ " अधः " લેવામાં આવ્યો છે. તેથી અવધિજ્ઞાનનો અર્થ નીચે પ્રમાણે થાય છે—જેના દ્વારા નીચેના પ્રદેશમાં રહેલી વસ્તુને જાણી શકાય છે તેનું નામ અવધિજ્ઞાન છે. " अवधीयते इति अवधिः अवधिश्चासौ ज्ञानं च इति अवधिज्ञानम् " આ પ્રકારની જે અવધિજ્ઞાનની વ્યુત્પત્તિ પ્રકટ કરવામાં આવી છે તે વિષયની બહુલતાને લીધે પ્રકટ કરવામાં આવી છે, નહીં તો તિર્યગ્ અથવા ઉર્ધ્વગત વસ્તુને જાણનારા જ્ઞાનને અવધિજ્ઞાન કહી શકાત નહીં અથવા અવધિ એટલે મર્યાદા આ જ્ઞાન રૂપી પદાર્થોને જ જાણી શકે છે—અરૂપી પદાર્થોને જાણી શકતું નથી. આ પ્રકારની મર્યાદાવાળું આ જ્ઞાન હોવાથી તેને અવધિજ્ઞાન કહે છે.

अवधिना=मर्यादया रूपि द्रव्याण्येव जानातीति व्यवस्थया ज्ञानम्-अवधिज्ञानम्। यद्वा-अव=मर्यादया-एतावत् क्षेत्रं पश्यन् एतावन्ति द्रव्याणि एतावन्तं कालं पश्यतीत्यादि नियमित क्षेत्रादि लक्षणया धीयते-परिच्छिद्यते रूपि वस्तु अनेनेत्य-वधिः, अवधिश्चासौ ज्ञानं चेत्यवधिज्ञानम्। आत्मनोरूपि द्रव्य साक्षात्कार कारण-मिन्द्रिय-मनो निरपेक्षो ज्ञानविशेषोऽवधिज्ञानमिति। तत् षड्विधं=षट् प्रकारकं प्रज्ञप्तम्। तद्यथा-आनुगामिकम्-अनुगमन शीलं, यदवधिज्ञानं गच्छन्तमवधिज्ञानिनं लोचनवदनुगच्छति तदिति। अनानुगामिकम्-यद् गच्छन्तमवधिज्ञानिनं नानु-गच्छति शृङ्खलाप्रतिबद्धप्रदीपवत् तदित्यर्थः २। वर्द्धमानकम्-वर्द्धते इति वर्द्धमानं, तदेव वर्द्धमानकम् उत्पत्तिकालतः समारभ्य प्रवर्द्धमानं शुक्लपक्षचन्द्रवदित्यर्थः ३।

अवधिज्ञान है, अथवा-मर्यादासे द्रव्य क्षेत्रकाल एवं भावकी मर्यादासे जो ज्ञान रूपीही पदार्थोंको जानता है, वह अवधिज्ञान है, यह अवधि-ज्ञान आनुगामिक आदिके भेदसे जो ६ प्रकारका कहा गया है, उसका तात्पर्यार्थ ऐसा है-जो अवधिज्ञान जिस उत्पत्ति क्षेत्रमें जीवको उत्पन्न हुआ हो उसके उस उत्पत्ति क्षेत्रको छोड़कर दूसरी जगह चले जाने पर भी नेत्रकी तरह उस जीवके साथ जो चला जाता है, ऐसा वह अवधिज्ञान आनुगामिक है। जो अवधिज्ञान अपने उत्पत्तिके क्षेत्रको छोड़कर चले जानेवाले जीवके साथ नहीं जाता है, किन्तु शृङ्खलासे प्रतिबद्ध दीपकी तरह वहींका वहीं रहता है, ऐसा वह अवधिज्ञान अनानुगामिक है, जिस प्रकार शुक्लपक्षमें चन्द्र प्रतिदिन बढता जाता है, उसी प्रकार जो अवधिज्ञान अपनी उत्पत्तिके समयसे लेकर बढता ही जाता है, वह वर्द्धमानक अवधिज्ञान है ३ जिस प्रकार कृष्ण पक्षका

અથવા દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર, કાળ અને ભાવની મર્યાદામાં રહીને જે જ્ઞાન રૂપી પદા-ર્થોને જ જાણી શકે છે તે જ્ઞાનને અવધિજ્ઞાન કહે છે. તેના આનુગામિક આદિ પ્રકારોનુ હવે સ્પષ્ટીકરણ કરવામાં આવે છે—

જે અવધિજ્ઞાન ઉત્પત્તિક્ષેત્રમાંથી (જે ક્ષેત્રમાં ઉત્પન્ન થયો હોય તે ક્ષેત્રમાંથી) બીજા ક્ષેત્રમાં ચાલ્યા જવા છતાં પણ લોચનની જેમ તે જીવની સાથે જ ચાલ્યું જાય છે તે અવધિ જ્ઞાનને આનુગામિક કહે છે. જે અવ-ધિજ્ઞાન પોતાનું ઉત્પત્તિક્ષેત્ર છોડીને ચાલ્યા જતાં જીવની સાથે જતું નથી, પરન્તુ સાંકળ વડે બાંધેલા દીપકની જેમ ત્યાંને ત્યાં જ રહે છે તે અવધિ-જ્ઞાનને અનાનુગામિક કહે છે. જેમ શુકલપક્ષનો ચન્દ્ર પ્રતિદિન વૃદ્ધિ પામતો રહે છે, એ જ પ્રમાણે જે અવધિજ્ઞાન પોતાના ઉત્પત્તિ સમય બાદ વૃદ્ધિ જ પામતું રહે છે તે અવધિજ્ઞાનને વર્ધમાનક અવધિજ્ઞાન કહે છે. જેમ

तथा=हीयमानकम्-हीयते इति हीयमानं, तदेव हीयमानकम्, उद्यसमनन्तरमेव हीयमानं कृष्णपक्षचन्द्रवदित्यर्थः ४। तथा-प्रतिपाति-प्रतिपतनशीलम्, यत् फूत्कारनष्टप्रदीपवत्-सर्वथा विनश्यति तदित्यर्थः ५। तथा-अप्रतिपाति-न प्रतिपाति अप्रतिपाति, केवलज्ञानात्पूर्वं यन्न विनश्यति तदित्यर्थः ६ ॥ सू० ५२ ॥

एवंविधज्ञानवतो हि यादृशानि वचनानि वक्तुं न कल्पन्ते तान्याह—

मूलम्—नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा इमाइं छ अवयणाइं वइत्तए, तं जहा—अलियवयणे १, हीलियवयणे २, खिंसियवयणे ३, फरुसवयणे ४, गारत्थियवयणे ४, विउसवियं वा पुणो उदीरित्तए ६ ॥ सू० ५३ ॥

छाया—नो कल्पते निर्ग्रन्थानां वा निर्ग्रन्थीनां वा इमानि षट् अवचनानि वदितुम्, तद्यथा-अलीकवचनम् १, हीलितवचनम् २, खिंसितवचनं ३, परुषवचनम् ४, अगारस्थितवचनम्, व्युपशमितं वा पुनरुदीरयितुम् ॥सू० ५३ ॥

चन्द्रमा प्रतिदिन घटताही जाता है, उसी प्रकार जो अवधिज्ञान अपनी उत्पत्तिके बादसेही घटने लगता है, वह हीयमान अवधिज्ञान है, जिस तरह फूंकसे दीपक बुझ जाता है, उसी प्रकारसे जो अवधिज्ञान सर्वथा नष्ट हो जाता है, वह प्रतिपाति अवधिज्ञान है, तथा जो केवलज्ञानके पहिले नष्ट नहीं होता है, वह अप्रतिपाति अवधिज्ञान है ॥ सू० ५२ ॥

इस प्रकारके ज्ञानीको जो वचन बोलने योग्य नहीं कहे गये हैं, सूत्रकार उन वचनोंका कथन करते हैं—

કૃષ્ણપક્ષના ચન્દ્રમાનો ક્ષય થતા જાય છે એ જ પ્રમાણે જે અવધિજ્ઞાન પોતાની ઉત્પત્તિ બાદ ઘટતુ જ રહે છે તે અવધિજ્ઞાનને હીયમાન અવધિજ્ઞાન કહે છે. જેમ ફૂંક મારવાથી દીવો હોલવાઈ જાય છે એ જ પ્રમાણે જે અવધિજ્ઞાન બિલકુલ નષ્ટ થઇ જાય છે તે અવધિજ્ઞાનને પ્રતિપાતિ અવધિજ્ઞાન કહે છે. જે અવધિજ્ઞાન કેવળજ્ઞાનની પ્રાપ્તિ પહેલાં નાશ પામતુ નથી, તે અવધિજ્ઞાનને અપ્રતિપાતિ અવધિજ્ઞાન કહે છે. ॥ સૂ. ૫૨ ॥

જ્ઞાની માણસે કેવા વચનો બોલવા જોઈએ નહી, તે સૂત્રકાર હવે પ્રકટ કરે છે—" नो कप्पइ निग्गंथाण वा " ઈત્યાદિ—(સૂ. ૫૩)

टीका--' नो कप्पइ ' इत्यादि--

नो कल्पते निर्ग्रन्थानां वा निर्ग्रन्थीनां वा इमानि षट् अवचनानि नञः कुत्सितवचनत्वात् कुत्सितानि वचनानि वदितुम्=वक्तुम् । वक्ष्यमाणानि षट् कुत्सित वचनानि साधुभिः साध्वीभिर्वा न वक्तव्यानि । तद्यथा—अलीकवचनम्=मृषावचनम्—यथा निद्राणं कश्चित् साधुं कोऽपि साधुः पृच्छति—' किं निद्रासि ? ' उत्तरयति—' नो निद्रामि ' इति ॥१॥

तथा—हीलितवचनम्—जन्मकर्माद्युद्घाटनरूपम्, यथा—' अरे दासीपुत्र ' इत्यादि ।२। खिंसितवचनम्—हस्तमुखादि विकारपूर्वकापमानजनकवचनोच्चारणं, यथा—' अरे जानामि जानामि तवाचरणम् ' इत्यादि ।३। परुषवचनम्—कठोरवचनं—

"नो कप्पइ निग्गंथाण वा" इत्यादि सूत्र ५२ ॥

टीकार्थ—निर्ग्रन्थ साधुजनोंको अथवा निर्ग्रन्थी साध्वीजनोंको ये छ अवचन कुत्सित वचन कहने योग्य नहीं कहे गये हैं, वे छह अवचन इस प्रकारसे हैं—अलीक वचन १ मृषावचन जैसे—निद्रा लेते हुए किसी साधुसे कोई साधु पूछता है, कि क्या तुम निद्रा ले रहे हो ? तो उत्तरमें वह कहताहै, मैं निद्रा नहीं ले रहा हूं ? १ तथा हीलितवचन जन्मकर्म आदिको उद्घाटन करनेवाले वचन कुत्सितवचन जैसे२ओ दासी पुत्र ! २ इत्यादि—हस्तमुख आदि विकृत जिसमें हों ऐसे अपमानजनक वचन खिंसित वचन हैं,३ जैसे मुखको बिगाड़ करके किसीसे ऐसा कहना कि परे हठमें जानता हूं तेरे आचरणको इत्यादि४ कठोर वचनका नाम परुषवचन है,५

નિર્ગ્રંથો (સાધુઓ) અને નિર્ગ્રંથીઓએ (સાધ્વીઓએ) નીચે બતાવેલાં ૬ પ્રકારનાં અવચનો (કુત્સિત વચનો) બોલવા જોઈએ નહીં—(૧) અલીક વચન (અસત્ય વચન) જેમ કે નિદ્રા લેતા કોઈ સાધુને કોઈ સાધુ પૂછે છે. " શું તમે નિદ્રા લઈ રહ્યા છો ? " ત્યારે તે સાધુ જવાબ આપે છે કે " હું નિદ્રા લઈ રહ્યો નથી. " આ પ્રકારનાં વચનોને અલીકવચન કહે છે. (૨) હીલિત વચન—જન્મ, કર્મ આદિને ખુલ્લા પાડનારા વચનોને હીલિત વચન કહે છે. જેમ કે " હે દાસીપુત્ર ! " ઈત્યાદિ.

(૩) ખિંસિત વચન—હાથ, મુખ આદિ વિકૃત કરીને જે અપમાન જનક વચનો બોલાય છે તેમને ખિંસિત વચન કહે છે. જેમકે મુખ બગાડીને કોઈને એમ કહેવામાં આવે કે " અહીંથી દૂર ખસ. તારા બધા ધંધા હું

यथा-'दुष्ट शैक्ष !' इत्यादि ।४। अगारस्थितवचनम्-अगारस्थितानां=गृहस्थानां यद् वचनं तत् । यथा-'पुत्र ! मातुल ! भागिनेय !' इत्यादि ॥५॥ तथा-व्युपशमितं वा कलहादिकं पुनरुदीरयितुं न कल्पते । अयं भावः-यत् अधिकरणं व्युपशान्तं तद् येन पुनरुदीरितं भवति तादृशं वचनं वक्तुं न कल्पते इति ।

उक्तं च--

"खामियवो समियाइं, अहिगरणाइं तु जे उदीरेंति ।
ते पावा नायव्वा, तेसिं चारोवणा इणमो ॥१॥"

छाया--क्षमितव्युपशमितानि अधिकरणानि तु ये उदीरयन्ति ।
ते पापा ज्ञातव्याः तेषां चारोपणा इयम् ॥१॥ इति ॥६॥ सू० ५३॥

अवचनेषु हि प्रायश्चित्तप्रस्तारो भवतीति प्रस्तारस्य षड्विधत्वमाह--

मूलम्--छ कप्पस्स पत्थारा पण्णत्ता, तं जहा--पाणाइवायस्स वायं वयमाणे १, मुसावायस्स वायं वयमाणे २, अदिन्नादाणस्स वायं वयमाणे ३, अविरइवायं वयमाणे ४, अपुरिसवायं वयमाणे ५, दासवायं वयमाणे ६, इच्चेए छ कप्पस्स पत्थरे पत्थरेत्ता सम्मं अपडिपूरेमाणे तट्ठाणपत्ते ॥ सू० ५४ ॥

जैसे हे दुष्ट शिष्य ! इत्यादि ४ गृहस्थजनोंके जैसे-वचन अगारस्थित वचन हैं, जैसे-हे पुत्र ! हे मातुल ! हे भागिनेय ! इत्यादि तथा शान्त हुई लडाई जिन वचनोंसे पुनः उद्दीपित हो जाय ऐसी वाणी वचन ६ कहा भी है-"खामियवो समियाइं" इत्यादि ।

इस प्रकारके ये ६ अवचन साध्वी एवं साधुजनोंको बोलनेके योग्य नहीं कहे गये हैं ॥ सू० ५३ ॥

જાણું છું." (૪) પરુષવચન—કઠોર વચનને પરુષ વચન કહે છે. જેમકે "દુષ્ટ, આઘલા દૂર થા મારી સામેથી" (૫) અગારસ્થિત વચન—ગૃહસ્થ જનોનાં જેવાં વચન. જેમ કે "હે બેટા ! હે મામા ! હે કાકા ! હે બનેવી" ઇત્યાદિ (૬) શાન્ત પડેલા ઝઘડા જે વચનોથી ફરી ચાલૂ થઇ જાય એવા વચન પણ બોલવા જોઇએ નહીં. કહ્યું પણ છે કે—

"खामियवो समियाइं" ઇત્યાદિ.

આ છ પ્રકારનાં વચન કુત્સિત વચન રૂપ હોવાથી સાધુ સાધ્વીઓએ એવાં વચનો બોલવા જોઇએ નહીં. ॥ સૂ. ૫૩ ॥

छाया--षट् कल्पस्य प्रस्ताराः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-प्राणातिपातस्य वादं वदन् १, मृषावादस्य वादं वदन् २, अदत्तादानस्य वादं वदन् ३, अविरतिवादं वदन् ४, अपुरुषवादं वदन् ५ दासवादं वदन् ६, इत्येतान्-षट् कल्पस्य प्रस्तारान् प्रस्तारयिता सम्यगपरिपूरयन् तत्स्थानप्राप्तः ॥ सू० ५४ ॥

टीका--' छ कप्पस्स ' इत्यादि--

कल्पस्य=साध्वाचारस्य-साध्वाचारसम्बन्धिनो लघुगुरुप्रभृति-प्रदान रूपाः षट् संख्यकाः प्रस्ताराः=अतीचारकर्तरि व्यवस्थाप्यमानाः प्रायश्चित्तस्य रचना विशेषाः प्रज्ञप्ताः=कथिताः। प्रस्तराणां कल्पविशुद्ध्यर्थत्वात् कल्पसम्बन्धिता बोध्या। तानेवाह-तद्यथा-प्राणातिपातस्य वादं=वार्ता वदन्-कस्मिंश्चित् साधौ असत्यमेव प्राणातिपातदोषम् आरोपयन् साधुः प्रायश्चित्तप्रस्तारभाग् भवति। अत्र प्रस्तारो यथा भवति तथोच्यते--

गाथा--खुड्डो पेरिज्जंतो, अइक्कमादीसु मणसि धारेइ।
अहमवि णं पेरिस्सं, न लभइ सो तारिसं छिद्दं ॥१॥

अवचनोंसे प्रायश्चित्त लगता है, इसलिये अब सूत्रकार प्रायश्चित्तकी षट् विधताका कथन करते हैं—

' ६ कप्पस्स पत्थारा पण्णत्ता ' इत्यादि सूत्र ५४ ॥

टीकार्थ-कल्पके साधुके आचारके प्रस्तार-अतिचार करनेवाले पर प्रायश्चित्तके व्यवस्थाप्यमान रचना विशेष ६ प्रकारके कहे गये हैं, प्रस्तारोंमें कल्प सम्बन्धिता कल्पकी विशुद्धिके लिये होनेके कारणसे है, इनमें जो साधु किसी साधु पर असत्यही प्राणातिपात दोषका जब आरोपण करता है, तब वह प्रायश्चित्त प्रस्तारका पात्र होता है १ यहां प्रस्तार जैसा होता है, वैसा कहते हैं-" खुड्डो पेरिज्जंतो " इत्यादि।

અવચનોમાં પ્રાયશ્ચિત્તનો પ્રસ્તાર થાય છે તેથી હવે સૂત્રકાર પ્રસ્તારના ૬ પ્રકારોનું નિરૂપણ કરે છે ૬ કપ્પસ્સ પત્થારા પણ્ણત્તા " ઇત્યાદિ-(સૂ. ૫૩)

કલ્પના--સાધુના આચરના-પ્રસ્તારના ૬ પ્રકાર કહ્યા છે અતિચારનું સેવન કરનાર માટે પ્રાયશ્ચિત્તની જે ખાસ વિધિ છે તેનું નામ પ્રસ્તાર છે. પ્રસ્તારો કલ્પની વિશુદ્ધિને માટે હોવાથી કલ્પ સાથે તેનો સંબંધ છે. જ્યારે કોઈ સાધુ બીજા કોઈ સાધુ પર પ્રાણાતિપાત દોષનું જૂઠું આરોપણ કરે છે, ત્યારે તે દોષનું જૂઠું આરોપણ કરનાર સાધુ પ્રાયશ્ચિત્ત પ્રસ્તારને પાત્ર બને છે અહીં કેવો પ્રાયશ્ચિત્ત પ્રસ્તાર હોય છે તે પ્રકટ કરવામાં આવે છે--

" ખુડ્ડો પેરિજ્જંતો " ઇત્યાદિ--

छाया--क्षुल्लः प्रेर्यमाणः, अतिक्रमादिषु मनसि धारयति ।
अहमपि-एवं प्रेरयिष्यामि, न लभते तादृशं छिद्रम् ॥१॥

अयमर्थः--क्षुल्लः-क्षुल्लकः पर्यायलघुमुनिः-अतिक्रमादिषु दुष्प्रेक्षितादिषु स्खलितेषु सत्सु प्रेर्यमाणः-शिक्षयन् मनसि धारयति-विचारयति-यद् अहमपि-एवं मत्प्रेरकं प्रेरयिष्यामि-शिक्षयिष्यामि, किन्तु-सः-क्षुल्लकस्तस्य तादृशम् अतिक्रमादि रूपं छिद्रं न लभते ॥१॥

उक्तं च--अन्नेण घाइए दद्दुरम्मि दट्ठुं चलणं कयं ओमो ।
उद्दाविओ एस तुमे णवत्ति बिइयंपि ते णत्थि । २॥

छाया--अन्येन घातिते दर्दुरे दृष्ट्वा चलन कृतम् अवमः ।
उद्रावित एषत्वया न वेति द्वितीयमपि ते नास्ति ॥२॥

अयमर्थः--तस्य साधोश्छिद्रान्वेषणे तत्परः स क्षुल्लकोऽन्यदा तेन साधुना सह भिक्षाचर्यार्थं गतः । तत्र अन्येन केनापि घातिते दर्दुरे चरणं कृतं=न्यस्त-

---

पर्यायकी अपेक्षा कोई लघु मुनि जब उससे अतिक्रम आदि दोष हो जाते हैं, और उस पर जब उसे शिक्षा दण्ड प्रायश्चित्त दिया जाता है, तब वह मनमें ऐसा विचार करता है, कि मैं भी इस शिक्षा देने-वालेको दण्डित कराऊंगा परन्तु वह क्षुल्लक उसके अतिक्रमादिरूप छिद्रको नहीं पाता है १ ।

" अन्नेण घाइए दुदुरम्मि " इत्यादि ।

उस साधुके छिद्रान्वेषणमें तत्पर वह क्षुल्लक उस साधुके साथ किसी एक समय भिक्षाचर्याके लिये गया-रास्तेमें किसी अन्य पुरुषके द्वारा मरा हुआ एक मेंढक पड़ा था, उस पर उस साधुका पग पड़ गया इस

પર્યાયની અપેક્ષાએ નાના એવા કોઈ મુનિ દ્વારા અતિક્રમ આદિ કોઈ દોષ થઈ ગયા હોય. તેની શુદ્ધિ નિમિત્તે જ્યારે તેને પ્રાયશ્ચિત્ત આપવામાં આવે ત્યારે તે મનમાં એવો વિચાર કરે છે કે હું પણ મને શિક્ષા કરના-રને-(પ્રાયશ્ચિત્ત દેનારને) શિક્ષા કરાવીશ એવો વિચાર કરીને તે તેના દોષો શોધ્યા કરે છે, પરન્તુ તે મુનિના અતિક્રમાદિ રૂપ કોઈ દોષ તેની નજરે પડતાં નથી.

" अन्नेण घाइए दद्दुरम्मि " ઈત્યાદિ-હવે એવું બને છે કે તે સાધુના દોષો શોધતો તે ક્ષુલ્લક સાધુ તે સાધુની સાથે ભિક્ષાચર્યા માટે નીકળે છે. રસ્તામાં કોઈ પુરુષના પગ નીચે આવી જવાથી કોઈ દેડકો મરેલો પડ્યો

चरणं तं साधुं दृष्ट्वा अयमः=क्षुल्लकः साधु स्तं साधुं वदति एष दर्दुरस्त्वया उद्रावितः=मारितः। एवं क्षुल्लकेनोक्ते स साधुर्वदति नैव मया मारितो दर्दुर इति। एवं तस्य साधोर्वचः श्रुत्वा क्षुल्लको वदति–दर्दुरहननेन तव प्राणातिपातविरमणरूपं प्रथमं व्रतं विनष्टमेव। सम्प्रति मृषाभाषणेन मृषावादविरमणरूपं द्वितीयमपि व्रतं ते–तव नास्ति ॥२॥ एवमुक्त्वा सः––

गाथा––वच्चइ भगइ आलोयनिकाए पुच्छिए णिसिद्धे य।
साहु गिहि मिलिय सव्वे पत्थारो जाव वयमाणो ॥३॥
मासो लहुओ गुरुओ चउरो लहुगा य होंति गुरुगाय।
छम्मासा लहु गुरुगा छेदो मूलं तह दुगं च ॥४॥

छाया––व्रजति भगति आलोचय निकाचयति पृष्टे निषिद्धे च।
साधवो गृहिणो मिलिताः सर्वे प्रस्तारो यावद् वदन् ॥३॥
मासो लघुको गुरुकः चत्वारो लघुकाश्च भवन्ति गुरुकाश्च।
षण्मासा लघवो गुरुकाः छेदोमूलं तथा द्विकं च ॥४॥

अयमर्थ––क्षुल्लको भिक्षाचर्यातो निवृत्य आचार्यसमीपे व्रजति=गच्छतीति क्षुल्लकस्य मासलघुप्रायश्चितम्। ततो भणति–यथा तेन दर्दुरो मारित

बालको देखकर वह क्षुल्लक साधु उस साधुसे कहने लगा यह मेंढक आपने मारा है, तब वह बोला–मैंने नहीं मारा है, इस प्रकारसे उस साधुके वचन सुनकर पुनः वह क्षुल्लक कहने लगा–इस दर्दुरके मारनेसे आपका प्राणातिपात विरमणव्रत विनष्टही हो गया है, तथा मैंने इसे नहीं मारा है, इस प्रकारके कहने रूप मृषा भाषणसे मृषावाद विरमणरूप द्वितीय व्रत भी आपका खण्डित हो गया है, इस प्रकारसे उससे कहकर वह––" वच्चइ भणाइ आलोय " इत्यादि।

क्षुल्लक भिक्षाचर्यासे निवृत्त हो करके आचार्यके निकट आया इस स्थितिमें उस क्षुल्लकको मास लघु प्रायश्चित्त होता है, और आकर

હતો. તે મરેલા દેડકા પર તે સાધુનો પગ પડી જવાથી તે ક્ષુલ્લક સાધુ તે નિર્દોષ સાધુ પર એવો આરોપ મૂકે છે કે "આ દેડકાને તમે મારી નાંખ્યો છે." પેલા સાધુએ જવાબ આપ્યો–"મેં માર્યો નથી." ત્યારે તે ક્ષુલ્લક સાધુ બોલી ઉઠ્યો. "આ દેડકાને મારી નાખવાથી તમારું પ્રાણાતિપાત વિરમણ વ્રત ખંડિત થયું છે. અને 'મેં તેને માર્યો નથી' એવું અસત્ય કહેવાથી તમારું મૃષાવાદ વિરમણ રૂપ બીજું વ્રત ખંડિત થયું છે" "વચ્ચઇ ભણાઇ આલોય" ઈત્યાદિ આ પ્રમાણે કહેનાર ક્ષુલ્લક સાધુએ માસ લઘુ પ્રાયશ્ચિત્ત લેવું પડે છે. જો તે ક્ષુલ્લક સાધુ આચાર્યની પાસે જઈને એમ

इति। एवं भणतस्तस्य क्षुल्लकस्य मासगुरुः। ततः "क्षुल्लकारोपितदोषः" स साधुरप्याचार्यसमीपे समागतः। तमाचार्यः प्राह–सम्यगालोचय=कथय, किं त्वया दर्दुरो मारितः ? स साधुः कथयति–न मया मारितः। एवं तेन साधुनोक्ते दोषारोपणकर्तुः क्षुल्लकस्य चतुर्लघुप्रायश्चित्तं भवति। ततः क्षुल्लको निकाचयति=पुनस्तमेव दोषं तस्मिन्नारोपयति; स साधुः पुनरपि तदारोपितदोषं स्वकीयत्वेन न मनुते। ततः क्षुल्लकस्य चतुर्गुरु। ततः क्षुल्लको वदति–यदि मम वचने न विश्वासस्तदा गत्वा गृहस्थान् पृच्छतु। एवं क्षुल्लकेनोक्ते पर्यायज्येष्ठाः साधवो गत्वा गृहस्थान् पृच्छन्तीति पृष्टे क्षुल्लकस्य

जब वह ऐसा कहता है, कि उस साधुने मेंढक मार दिया है, तब उस क्षुल्लकको मास गुरु प्रायश्चित्त होता है, इतनेमें जिस पर इस क्षुल्लकने दोषारोपण किया था वह साधु भी आचार्यके पास आ जाता है, आचार्य उससे पूछते हैं–क्या तुमने मेंढक मारा है ? वह कहता है, गुरुदेव ! मैंने नहीं मारा है, इस प्रकार उस साधुके कहने पर दोषारोपणकर्ता क्षुल्लकको चतुर्थ लघु प्रायश्चित्त होता है, तब पुनरपि क्षुल्लक उस साधु पर उसी दोषका आरोपण करता है, साधु कहता है–मैंने ऐसा नहीं किया है; तब उस क्षुल्लकको चतुर्थ गुरु प्रायश्चित्त होता है। क्षुल्लक कहता है यदि मेरी बात पर आपको विश्वास न हो तो आप जा करके गृहस्थोंसे पूछ सकते हैं, तब पर्याय ज्येष्ठ साधु वहां जाकर गृहस्थोंसे पूछते हैं, इस प्रकार क्षुल्लकके कहने पर उसे षड्मास लघु

કહે કે "આ સાધુએ દેડકાને મારી નાખ્યો છે," તો તે ક્ષુલ્લક સાધુને માસગુરુ પ્રાયશ્ચિત્ત લેવું પડે છે. હવે જ્યારે તે નિર્દોષ સાધુને તે આચાર્ય દ્વારા એવો પ્રશ્ન કરવામાં આવે કે "શું તમે દેડકાને મારી નાખ્યો છે ? ત્યારે તે નિર્દોષ સાધુ એવો જવાબ આપે છે કે "હે ગુરુદેવ ! મેં તેને માર્યો નથી." તે નિર્દોષ સાધુ દ્વારા આ પ્રમાણે જ્યારે કહેવામાં આવે, ત્યારે તે ક્ષુલ્લકને (દોષારોપણ કરનાર સાધુને) ચતુર્થ લઘુ પ્રાયશ્ચિત્ત લાગે છે. તે નિર્દોષ સાધુ દ્વારા દોષનો અસ્વીકાર થવા છતાં પણ તે ક્ષુલ્લક ફરી પણ એ જ દોષનું તેના પર આરોપણ કરે છે અને નિર્દોષ સાધુ ફરી તે દોષનો અસ્વીકાર કરે છે. ત્યારે તે ક્ષુલ્લકને ચતુર્થ ગુરુ પ્રાયશ્ચિત્ત લાગે છે. ત્યાર બાદ તે દોષારોપણ કરનાર સાધુ કહે છે કે જો તમને મારી વાત પર વિશ્વાસ ન બેસતો હોય તો આપ ત્યાં જઈને ગૃહસ્થોને પૂછીને એ વાતની ખાતરી કરી શકો છો. ત્યારે કોઈ પર્યાયજ્યેષ્ઠ સાધુ ત્યાં જઈને ગૃહસ્થોને આ બાબતમાં પ્રશ્ન કરે છે "ગૃહસ્થને પૂછીને ખતરી કરી." આ પ્રમાણે કહેવાથી

षड्लघु। पृष्टा गृहस्था निषेधन्ति–नास्माभिर्दृष्टः स साधुर्दर्दुरं मारयन्निति क्षुल्लकस्य षड्गुरु। ततः पर्यायज्येष्ठाः आचार्यसमीपे समागत्य वदन्ति–नानेन साधुना दर्दुरो मारित इति तदाऽस्य क्षुल्लकस्य छेदः। ततः क्षुल्लको वदति गृहस्था असंयताः, ते तु प्रतिशब्दं असत्यं ब्रुवते एवं ब्रुवतः क्षुल्लकस्य मूलं प्रायश्चित्तं भवति। ततो यदि क्षुल्लको वदति–गृहस्था यूयं च एकत्र मिलिता अहं पुनरेक इति, तर्हि तस्य अनवस्थाप्यं भवति। ततो यदि स वदति यूयं सर्वेऽपि प्रवचनस्य बाह्याः, ततस्तस्य पाराञ्चिकं प्रायश्चित्तं भवति। एवमुत्तरोत्तरं वदतः क्षुल्लकस्य पाराञ्चिकं यावत् प्रायश्चित्तप्रस्तारो भवतीति। ३। ४॥ अत्रेदं बोध्यम्–क्षुल्ल-

प्रायश्चित्त होता है। पूछने पर गृहस्थजन निषेध करते हैं कि हमने मेंढक मारते हुए उस साधुको नहीं देखा है, तब क्षुल्लकको षड्मास गुरु प्रायश्चित्त होता है, पर्याय ज्येष्ठ साधु आ करके आचार्यसे कहते हैं कि इस साधुने मेंढक नहीं मारा है तब उस क्षुल्लकको षड्मास छेद प्रायश्चित्त लगता है, पुनः जब वह क्षुल्लक ऐसा कहता है–गृहस्थ असंयत होते हैं–वे तो शब्द शब्द पर असत्य बोलते हैं, इस प्रकारसे कहनेवाले क्षुल्लकको मूल प्रायश्चित्त लगता है, तब यदि क्षुल्लक कहता है, तुम सब गृहस्थ तो एक हो गये हो और मैं अकेला हूं तो फिर उस क्षुल्लकको अनवस्थाप्य प्रायश्चित्त लगता है, और यदि वह उस समय ऐसा कहता है, कि तुम सबके सब ही प्रवचनसे बाहर हो तब उसको पाराञ्चित्त प्रायश्चित्त लगता है, इस प्रकार उत्तरोत्तर करनेवाले

તે ક્ષુલ્લક છ માસિક લઘુ પ્રાયશ્ચિત્તને પાત્ર બને છે. જ્યારે તે પર્યાય જ્યેષ્ઠ સાધુને તે ગૃહસ્થો એવો જવાબ આપે છે કે "અમે તે સાધુને દેડકાને મારતો જોયો નથી, ત્યારે તે ક્ષુલ્લક છ માસિક ગુરુ પ્રાયશ્ચિત્તને પાત્ર બને છે. જ્યારે પર્યાય જ્યેષ્ઠ સાધુ આચાર્યની પાસે જઈને કહે છે કે ગૃહસ્થોના કહેવાથી અમને ખાતરી થઇ ગઈ છે કે તે સાધુએ દેડકાને માર્યો નથી, ત્યારે તે ક્ષુલ્લકને છ માસનું છેદ પ્રાયશ્ચિત્ત લાગે છે. ત્યાર બાદ જો ક્ષુલ્લક એમ કહે કે ગૃહસ્થો તો અસંયત હોય છે, તેઓ વાત વાતમાં જુઠું બોલતા હોય છે, તો તે ક્ષુલ્લકને મૂલ પ્રાયશ્ચિત્ત લાગે છે. વળી ત્યાર બાદ પણ જો ક્ષુલ્લક એમ કહે કે તમે બધાં ગૃહસ્થો તો એક થઈ ગયા છો અને હું એકલો છું, તો તેને અનવસ્થાપ્ય પ્રાયશ્ચિત્ત લાગે છે. ત્યાર બાદ જો તે ક્ષુલ્લક એમ કહે કે તમે સૌ પ્રવચનનું પાલન કરનારા નથી, તો તેને પારાંચિક પ્રાયશ્ચિત્ત લાગે છે. આ રીતે ઉત્તરોત્તર અસત્ય દોષારોપણ કરનાર તે

कस्यायं प्रायश्चित्तप्रस्तारो मृषावाद विरमणव्रतभङ्गजनितो भवति। यदि तु तेन साधुना सत्यमेव दर्दुरश्चरणन्यासेन मारितः, ततः सोऽपलपति च, तदा तस्याप्येवमेव प्राणातिपातविरमणमृषावादविरमणव्रतद्वयभङ्गजनितप्रायश्चित्तप्रस्तारो भवतीति प्रथमः प्रस्तारः। १।

तथा—मृषावादस्य वादं वदन्—कस्मिंश्चित् साधौ असत्यमेव मृषावादविरमण व्रतभङ्गजनितं दोषमारोपयन् साधुः प्रायश्चित्तप्रस्तारभाग् भवति। २। तथा—अदत्तादानस्य वादं वदन्—कस्मिंश्चित्साधावसत्यमेव अदत्तादानविरमणव्रतभङ्गजनितं दोषमारोपयन् साधुः प्रायश्चित्तप्रस्तारभाग् भवति। ३। अत्र द्वितीयतृतीयप्रायश्चित्तप्रस्तारावेवं बोध्यौ। तथाहि—

उस क्षुल्लकको पाराञ्चिक प्रायश्चित्त तक प्रायश्चित्त प्रस्तार होता है, यह प्रायश्चित्त प्रस्तार उसे मृषावाद विरमण व्रतके भङ्गसे होता है, और यदि उस साधुने यथार्थ रूपमें अपने पैरसे मेंढक मार दिया है, और फिर भी वह अपलाप करता है, तो उसे भी प्राणातिपात विरमण एवं मृषावाद विरमण ये दोनों व्रतोंके भङ्ग हो जानेसे इसी प्रकारसे प्रायश्चित्त प्रस्तार होता है १ इसी प्रकार यदि कोई साधु किसी अन्य साधु पर व्यर्थ मेंही मृषावाद विरमण व्रत भङ्ग जनित दोषका आरोपण करता है, तो वह साधु भी प्रायश्चित्तके प्रस्तारवाला होता है २ इसी प्रकारसे अदत्तादानके भङ्ग होनेके झूठे दोषका आरोपण कोई साधु किसी साधु पर करता है, तो वह भी इसी तरहसे प्रायश्चित्तके प्रस्तारवाला होता है, यहां द्वितीय और तृतीय प्रायश्चित्त प्रस्तार जानना चाहिये

સાધુને માટે પારાંચિક પ્રાયશ્ચિત્ત પર્યન્તના પ્રાયશ્ચિત્ત પ્રસ્તાર કહ્યાં છે. મૃષાવાદ વિરમણ વ્રતને ભંગ કરવાને કારણે તે આ પ્રકારના પ્રાયશ્ચિત્ત પ્રસ્તારને પાત્ર બને છે જો બીજા સાધુ (જેના પર દેડકાની હત્યાને આરોપ મૂકવામાં આવ્યો છે તે સાધુ) દ્વારા ખરેખર દેડકાની હત્યા થઈ ગઈ હોય અને તે જુઠું બોલતો હોય, તો તેને પણ પ્રાણાતિપાત વિરમણ અને મૃષાવાદ વિરમણ, આ બન્ને પ્રકારના વ્રતોનો ભંગ થઈ જવાથી ઉપર્યુક્ત પ્રાયશ્ચિત્ત પ્રસ્તારને પાત્ર બનવું પડે છે (૧) એ જ પ્રમાણે જે કોઈ સાધુ બીજા કોઈ સાધુ પર મૃષાવાદ વિરમણ વ્રતનો ભંગ કરવાનો ખોટો આરોપ મૂકે, તો તે ખોટો આરોપ મૂકનાર સાધુ પણ પ્રાયશ્ચિત્ત પ્રસ્તારને પાત્ર બને છે. (૨) એ જ પ્રમાણે અદત્તાદાનનો ભંગ થઈ જવાનો ખોટો આરોપ કોઈ સાધુ પર મુકનાર સાધુ પણ પ્રાયશ્ચિત્ત પ્રસ્તારને પાત્ર બને છે. હવે સૂત્રકાર બીજા અને ત્રીજા પ્રાયશ્ચિત્ત પ્રસ્તારનું સ્વરૂપ પ્રકટ કરે છે—

गाथा—मोसम्मि संखडीए मोयगगहणं अदत्तदाणम्मि ।
आरोवणपत्थरो तं चेव इमं तु नाणत्तं ॥ १ ॥

छाया—मृषावादे संखडयां मोदकग्रहणमदत्तादाने ।
आरोपणा प्रस्तारः स एव इदं तु नानात्वम् ॥ १ ॥

अयमर्थः—मृषावादे संखडयां—संखडीविषयं दोषारोपणं द्रष्टव्यम् । अदत्तादाने तु मोदकग्रहणविषयं दोषारोपणं द्रष्टव्यम् । अत्रोभयत्रापि आरोपणाप्रस्तारः—आरोपणायाः=प्रायश्चित्तस्य प्रस्तारः स एव=पूर्वोक्त एव । परन्तु, तयोर्नानात्वं=वैशिष्टचमिदं बोध्यम् ॥ १ ॥

तत्र मृषावादस्य वैशिष्टचमाश्रित्य प्राह—

गाथा—दीणकलुणेहिं जायइ, पडिसिद्धो विसइ एसणं च हणइ ।
जंपइ मुहप्पियाणि य, जोगतिगिच्छानिमित्ताइं ॥ २ ॥

छाया—दीनकरुणैर्याचते, प्रतिषिद्धो विशति एषणां च हन्ति ।
जल्पति मुखप्रियाणि च, योगचिकित्सा निमित्तानि ॥ २ ॥

अयमर्थः—भिक्षाचर्यार्थं विहरन्तौ द्वौ साधू कस्यचित् संखडीकर्तुर्गृहे गतौ ।

"मोसंमि संखडीए" इत्यादि ।

मृषावादमें संखडी (जिमणवार) विषयक दोषारोपण और अदत्तादानमें मोदकग्रहण विषयक दोषारोपण कहना चाहिये अर्थात् मृषावादमें संखडी विषयक दोषारोपण करनेवाले आरोपण कर्त्ताको तथा अदत्तादानमें मोदक ग्रहण विषयक दोषारोपण करनेवाले आरोपणाकर्त्ताको प्रायश्चित्त प्रस्तारका कथन पूर्वोक्त रूपसेही कर लेना चाहिये यही बात "दीणकलुणेहिं" इत्यादि गाथा द्वारा प्रकट की गई है—

"दीणकलुणेहिं जायइ" इत्यादि ।

इस गाथाका भावार्थ ऐसा है—भिक्षाके लिये भ्रमण करते हुए दो

"મોસંમિ સંખડીએ" ઇત્યાદિ—

મૃષાવાદમાં સંખડી વિષયક દોષારોપણ અને અદત્તાદાનમાં મોદકગ્રહણ વિષયક દોષારોપણનું કથન થવું જોઇએ. એટલે કે મૃષાવાદમાં સંખડી (સુખડી) વિષયક દોષારોપણ કરનાર આરોપણકર્તાના પ્રાયશ્ચિત્ત પ્રસ્તારનું અને અદત્તાદાનમાં મોદક ગ્રહણ વિષયક દોષારોપણ કરનાર આરોપણકર્તાના પ્રાયશ્ચિત્ત પ્રસ્તારનું કથન પૂર્વોક્તરૂપે જ થવું જોઇએ. એ જ વાત નીચેની ગાથા દ્વારા પ્રકટ કરવામાં આવી છે—

"दीणकलुणेहिं जायइ" ઇત્યાદિ—

આ ગાથાનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે—ભિક્ષાપ્રાપ્તિ માટે ભ્રમણ કરતા

तत्राकालत्वात् प्रतिषिद्धौ तौ अन्यत्र गतौ। ततः सम्प्राप्ते काले तयोर्यो ज्येष्ठः स प्रोक्तवान्-सम्प्राप्तः कालः, गच्छावः संखडीकर्तुर्गृहे। क्षुल्लको भणति-प्रतिषिद्धोऽहम्, अतो न तत्र गमिष्यामि। ततो भिक्षाचर्यातो निवृत्तः क्षुल्लकः आचार्यायेदं निवेदयति, यथा-अयं साधुर्दीनकरुणैर्वचनैर्याचते, प्रतिषिद्धोऽपि गृहं प्रविशति, एषणां च हन्ति=नाशयति। च=पुनरयं मुखप्रियाणि योगचिकित्सानिमित्तानि जल्पति=वदतीति। अत्रापि-पूर्ववदेव प्रायश्चित्तप्रस्तारो बोध्यः।

साधु किसी संखडीकर्त्ता (जीम्मण करनेवाला) के घर पर गये उस समय वहां संखडी निष्पन्न नहीं होने से वे दोनों वहांसे दूसरी जगह चले गये बादमें इनमें जो पर्याय ज्येष्ठ था वह समय आने पर कहने लगा अब संखडी निष्पन्न हो गई होगी चलो संखडीकर्त्ताके घर पर चलें तब क्षुल्लकने-छोटे साधुने कहा संखडीकर्त्ताने देनेसे मना कर दिया है, अतः मैं तो वहां नहीं आऊंगा इसके बाद भिक्षाचर्यासे निवृत्त हुआ वह क्षुल्लक वापिस आकर आचार्यसे कहने लगा हे गुरो! यह साधु दीन करुणे वचनोंसे मांगता है, प्रतिषिद्ध होने पर भी घरमें घुस जाता है, और एषणाका विनाश करता है, तथा मुखप्रिय वचन बोलकर मीठे २ वचन कहकर दाताको आहार देनेके निमित्त रिझाता है, इस प्रकार कहनेवाले उस क्षुल्लकके ऊपर प्रायश्चित्त प्रस्तार पूर्वोक्त रूपसे कह लेना चाहिये। जैसे-भिक्षाचर्यासे

બે સાધુએ કોઈ એક સુખડીઆને ત્યાં પહોંચ્યા, તેઓ જ્યારે ત્યાં પહોંચ્યા ત્યારે મીઠાઈ તૈયાર થઈ ન હતી. વળી ત્યાં વહોરવા આવવાની તે માણસે મનાઈ પણ કરી, તેથી તેઓ ત્યાંથી ચાલતાં થયાં હવે થોડા સમય બાદ પર્યાય જ્યેષ્ઠ સાધુએ લઘુપર્યાયવાળા સાધુને કહ્યું—"હવે પેલા માણસને ત્યાં મીઠાઈ તૈયાર થઈ ગઈ હશે. ચાલો ત્યાં જઈને મીઠાઈ વહોરી આવીએ." ત્યારે ક્ષુલ્લકે (લઘુ પર્યાયવાળા સાધુએ) કહ્યું—"તે માણસે આપણને વહોરવા આવવાની મનાઈ કરી છે, તેથી હું તો ત્યાં નહીં આવું." ત્યાર બાદ તે બન્ને સાધુ ઉપાશ્રયમાં પાછા ફર્યા. તે ક્ષુલ્લક સાધુએ ગુરુ પાસે એવી વાત કરી કે "આ સાધુ દીન, કરુણ વચનો બોલીને ભિક્ષા માગે છે. ગૃહસ્થ દ્વારા નિષેધ કરાવા છતાં પણ તે તેના ઘરમાં દાખલ થઈ જાય છે. અને એષણા દોષથી દૂષિત થયેલો આહાર ગ્રહણ કરે છે. તે મીઠાં વચનો બોલીને દાતાને ખુશ કરીને તેની પાસેથી આહાર ગ્રહણ કરે છે." આ પ્રકારનું ખોટું દોષારોપણ કરનાર તે સાધુને પૂર્વોક્ત પ્રાયશ્ચિત્ત પ્રસ્તારને

तथाहि-भिक्षाचर्यातो निवृत्तः क्षुल्लक आचार्यसमीपे व्रजतीति तस्य मासलघु। अयं दीनकरुणादि वचनैर्याचते-इत्यादि आचार्याय यदि निवेदयति तर्हि तस्य मास गुरु। एवं क्रमेग पूर्ववत् पाराञ्चिकं यावत् प्रायश्चित्तप्रस्तारो बोध्य इति। अत्र क्षुल्लकस्य मृषावादविरमणव्रतभङ्गनिमित्त एव प्रायश्चित्तप्रस्तारः। यदि रात्निकः सत्यमेव क्षुल्लकारोपितातीचारयुक्तो भवति, तदा तस्य गृहस्थप्रतिषेधानन्तरमपि 'न प्रतिषेधः कृतो गृहस्थेन' इत्युक्त्या प्रथमं मृषावादविरमणव्रत-

---

निवृत्त हुआ क्षुल्लक जब आचार्यके पास आता है, तब उसे मास लघु प्रायश्चित्त होता है, और जब वह आचार्यसे ऐसा कहता है, कि यह दीनकरुण वचनोंसे आहारकी याचना करता है, तब उसको मास गुरु प्रायश्चित्त होता है, इसी क्रमसे पूर्वकी तरह यावत् पाराञ्चिन प्रायश्चित्त तक प्रायश्चित्त प्रस्तार समझ लेना चाहिये। क्षुल्लक तो जो प्रायश्चित्त प्रस्तारका कथन किया गया है, वह इसलिये किया गया है, कि उसने अपने मृषावाद विरमण व्रतका भङ्ग किया है, और यदि वह रात्निक साधु पर्याय ज्येष्ठ साधु जैसा-क्षुल्लकने कहा है, यदि उसी प्रकारकी परिस्थितिवाला है, तो उसको भी मृषावाद विरमण व्रतका भङ्ग होना है, क्योंकि वह गृहस्थके प्रतिषेध करनेके बाद भी "उसने प्रतिषेध नहीं किया है" ऐसा कहता है, अतः वह अपने कथनसे उस गृहस्थके कथनका अपलाप करनेके कारण झूठ बोलता

પાત્ર કહ્યો છે. એટલે કે ભિક્ષાચર્યાથી નિવૃત્ત થઇને જ્યારે તે ક્ષુલ્લક સાધુ દોષારોપણ કરવા માટે ગુરુ પાસે આવે છે, ત્યારે તેને લઘુ માસ પ્રાયશ્ચિત્ત લાગે છે, જ્યારે તે ગુરુને કહે છે કે આ સાધુ દીન વચનો બોલીને આહારની યાચના કરે છે, ત્યારે તેને માસ ગુરુ પ્રાયશ્ચિત્ત લાગે છે. 'અહીં' પૂર્વોક્ત ક્રમથી પારાંચિક પ્રાયશ્ચિત્ત પર્યન્તના પ્રાયશ્ચિત્ત પ્રસ્તારનું કથન થવું જોઇએ. ક્ષુલ્લકને માટે આ પ્રકારનો પ્રાયશ્ચિત્ત પ્રસ્તાર બતાવવાનું કારણ એ છે કે તેણે મૃષાવાદ વિરમણ વ્રતનું ખંડન કર્યું છે. જો તે પર્યાય જ્યેષ્ઠ સાધુએ ક્ષુલ્લક સાધુના કહ્યા અનુસાર ભિક્ષાપ્રાપ્તિ કરી હોય તો તેના દ્વારા પણ મૃષાવાદ વિરમણ વ્રતનો ભંગ કરાયો છે એમ કહી શકાય. કારણ કે ગૃહસ્થે નિષેધ કર્યો હોવા છતાં પણ તે એવું કહે છે કે "ગૃહસ્થે નિષેધ કર્યો ન હતો." આ રીતે પોતાના આ કથન દ્વારા તે સાધુ તે ગૃહસ્થની વાતને ખોટી રીતે રજુ કરે છે. તે કારણે તે સાધુ મૃષાવાદ વિરમણ વ્રતનો

भङ्गो भवति। ततः स्वोक्तयपलापने द्वितीयमपि तस्य मृषावादविरमणव्रतभङ्गो भवति। प्रायश्चित्तप्रस्तारस्तु पूर्ववदेवेति ॥ २ ॥

साम्प्रतमदत्तादानस्य वैशिष्ट्यमाश्रित्य प्राह—

गाथा—जा फुसइ भाणमेगो, विइओ अण्णत्थ लड्डुए ताव।
लद्धूण णीइ इयरो, तद्दिस्स इमं कुणइ कोई ॥ १ ॥

छाया—यावत् स्पृशति भाण्डमेको, द्वितीयोऽन्यत्र लड्डुकाँस्तावत्।
लब्ध्वा (णीइ) गच्छति इतरः तद् दृष्ट्वा इदं करोति कोऽपि ॥१॥

अयमर्थ—गुरुणा प्रेषितौ द्वौ साधू भिक्षाचर्यार्थं गतौ। तत्र एकेन भिक्षा लब्धा गृहीता च। स यावद् भाण्डं=पात्रं स्पृशति=भिक्षाधान्यां स्थापयति तावत् द्वितीयेन ज्येष्ठेन साधुना समीपस्थगृहे लड्डुका लब्धाः। तत्र इतरः कोऽपि स क्षुल्लक इत्यर्थः, तान् लड्डुकान् दृष्ट्वा इदं=वक्ष्यमाणं करोति भिक्षाचर्यातो निवृत्त्य

है, इस तरह वह अपने मृषावाद विरमण व्रतका भङ्ग कर्त्ता हो जाता है, यहां प्रायश्चित्त प्रस्तार पूर्वकी तरहसे समझ लेना चाहिये ॥ २ ॥
अब सूत्रकार अदत्तादान की विशिष्टताको लेकर "जा फुसइ" इत्यादि गाथा द्वारा प्रायश्चित्त प्रस्तारका कथन करते हैं—

"जा फुसइ भाणमेगो" इत्यादि।

इस गाथाका भावार्थ ऐसा है-गुरुने दो साधुओंको भिक्षाचर्याके लिये भेजा इनमें एकको भिक्षाका योग मिल गया सो उसने भिक्षा लेली और वह जब तक भिक्षाके पात्रको भिक्षाधानीमें रखने लगा कि इतनेहीमें द्वितीय ज्येष्ठ साधुको वहींके किसी पासके घरमें मोदक मिल गये तब उस क्षुल्लकने लड्डुओंको देखकर ऐसा विचार किया

ભંગ કર્તા બને છે અહીં પણ પ્રાયશ્ચિત્ત પ્રસ્તાર પૂર્વોક્ત પ્રકારનો જ સમજવો ॥ ૨ ॥

હવે સૂત્રકાર અદત્તાદાનની વિશિષ્ટતાની અપેક્ષાએ "जा फुसइ" ઈત્યાદિ ગાથા દ્વારા પ્રાયશ્ચિત્ત પ્રસ્તારનું કથન કરે છે—

"जा फुसइ भाणमेगो" ઈત્યાદિ—

આ ગાથાનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે—ગુરુએ બે સાધુઓને ભિક્ષા-ચર્યા માટે મોકલ્યા. તેમાંથી એકને ભિક્ષાનો યોગ મળી ગયો. તેણે ભિક્ષા લઈ લીધી અને જેવો તે ભિક્ષાપાત્રને ઝોળીમાં મૂકવા જાય છે કે બીજો જ્યેષ્ઠ સાધુ પણ નજીકના કોઈ ઘરમાંથી લાડુ વહોરીને તેની પાસે આવી પહોંચ્યો. તે લઘુ પર્યાયવાળા સાધુએ એવો વિચાર કર્યો કે "આ રત્નિકે

'रात्निकेनाऽदत्ता मोदका गृहीता इति तस्यालोचनां श्रुत्वा तस्मै प्रायश्चित्तं प्रयच्छन्तु ' इति वक्तुं गुरुसमीपे व्रजति । ततस्तस्य मासलघु । भणति, तदा मासगुरु । एवमेव पूर्वोक्तक्रमेण पाराञ्चिकं यावत् प्रायश्चित्त प्रस्तारो बोध्यः। अत्र क्षुल्लकस्य प्रायश्चित्त प्रस्तारो मृषावादविरमणव्रतभङ्गजनितो भवति । यदि रत्नाधिकेन सत्यमेव अदत्ता लड्डुका गृहीता निह्नवनंगोपनं च क्रियते तदा तस्य अदत्तादानविरमणव्रतभङ्गजनितो मृषावादविरमणव्रतभङ्गजनितश्च प्रायश्चित्त-प्रस्तारो भवतीतिति ॥२॥ इति द्वितीयतृतीयप्रस्तारौ ।

कि इस रात्निकने विना दिये हुए इन मोदकोंको लिया है, अतः गुरुको इसे इसका प्रायश्चित्त देना चाहिये ऐसा विचार कर वह भिक्षा-चर्यासे निपट कर आचार्यके पास आया उस बातको कहनेके लिये इस तरहसे इसका गुरुके समीप आगमन मासलघु प्रायश्चित्तके योग्य होता है, और जब वह क्षुल्लक गुरुसे उसकी बातका निवेदन कर देता है, तब उसका वह कथन मासगुरु प्रायश्चित्तसे योग्य होता है, इसी तरहसे पाराञ्चिक प्रायश्चित्त तक प्रायश्चित्त प्रस्तार उद्भावित कर लेना चाहिये, यहां क्षुल्लकको जो प्रायश्चित्त प्रस्तार प्रकट किया गया है, वह उसके मृषावाद विरमण व्रतके भङ्ग हो जानेसे किया गया है, यदि च रात्निकने पर्याय ज्येष्ठ दूसरे साधुने—वास्तवमें अदत्त मोदकोंका आदान किया है, और वह उस अपनी बातको यदि छिपाता है, तो उसे अपने अदत्तादान विरमण व्रतका भङ्ग होनेके कारण और मृषावाद विरमण

(જ્યેષ્ઠ પર્યાયવાળા સાધુએ) કોઈ ગૃહસ્થના ઘરમાંથી લાડુ ચોરી લીધાં છે આ રીતે તેણે અદત્તાદાન વિરમણ વ્રતનો ભંગ કર્યો છે, તો ગુરુએ તેને આ દોષને માટે પ્રાયશ્ચિત્ત દેવું જોઈએ." આ પ્રકારનો વિચાર કરીને ગુરુની પાસે આવનાર તે ક્ષુલ્લક સાધુ લઘુમાસ પ્રાયશ્ચિત્તને પાત્ર બને છે. જ્યારે તે ક્ષુલ્લક ગુરુને આ બધી વાત કહે છે ત્યારે તે (ક્ષુલ્લક) ખોટા દોષનું તેના પર આરોપણ કરવાને કારણે ગુરુ માસ પ્રાયશ્ચિત્તને પાત્ર બને છે. એ જ પ્રકારે પારાંચિક પ્રાયશ્ચિત્ત પર્યન્તના પૂર્વોક્ત પ્રાયશ્ચિત્ત પ્રસ્તારનું અહીં પણ કથન થવું જોઈએ અહીં ક્ષુલ્લકને માટે જે પ્રાય-શ્ચિત્ત પસ્તાર પ્રકટ કરવામાં આવ્યો છે તે તેના મૃષાવાદ વિરમણ વ્રતનો ભંગ થઈ જવાને લીધે કરવામાં આવ્યો છે. પર્યાય જ્યેષ્ઠ બીજા સાધુએ ખરેખર એ દોષનું સેવન કર્યું હોય અને એ વાતને તે છુપાવતો હોય તો તેને પણ પ્રાયશ્ચિત્ત પ્રસ્તારને પાત્ર બનવું પડે છે, કારણ કે એમ કરવાથી

तथा-अविरतिवादम्-अविरतिः=अब्रह्मचर्यं, तस्याः वादं वदन् कस्मिंश्चित् साधौ असत्यमेव मैथुनविरमणव्रतभङ्गजनितं दोषमारोपयन् साधुः प्रायश्चित्त-भाग् भवति। प्रायश्चित्तप्रस्तारोऽत्रैवं बोध्यः। तथाहि—

गाथा—राइणियवाइएणं, खलियमिलिय पेल्लएण उदएणं।
देवउले मेहुणम्मि, आक्खाणं वा कुडंगे वा॥१॥

छाया—रात्निकवातिकेन स्खलितमिलितप्रेरणेन उदयेन।
देवकुले मैथुने आख्यानं वा कुटङ्के वा॥१॥

अयमर्थः—कश्चित् क्षुल्लको रत्नाधिकेन मुहुर्मुहुः शिक्ष्यमाणो मनसि एवं चिन्तयति-यदयं रात्निकः उदयेन=कपायोदयवशात्, रात्निकवातिकेन=' रत्नाधिकोऽहं '-मितिगर्वरूपवातरोगेण पीडितोऽस्ति, अत एवायं स्खलितमिलित

व्रतका भङ्ग होनेके कारण प्रायश्चित्त प्रस्तारका पात्र होना पड़ता है। इस प्रकारसे द्वितीय और तृतीय प्रस्तार हैं।

तथा-" अविरतिवादं " इत्यादि-किसी साधुके ऊपर असत्य रूपसे ब्रह्मचर्य व्रतके भङ्ग हो जानेरूप दोषका आरोपण करनेवाला कोई दूसरा साधु प्रायश्चित्त प्रस्तारका पात्र होताहै, प्रायश्चित्त प्रस्तार प्रकार यहां ऐसा जानना चाहिये—" राइणियवाइएणं " इत्यादि।

इस गाथाका भावार्थ ऐसा है-पर्याय ज्येष्ठ किसी रत्नाधिक साधुने किसी क्षुल्लक साधुको जब सीख दी तो वह मनमें ऐसा सोचने लगा-यह रत्नाधिक साधु कषायके उदयके वशसे कि "मैं रत्नाधिक हूं" इस अहंकाररूप वात रोगसे पीडित हो रहाहै, अतएव यह स्खलित मिलित

તેના અદત્તાદાન વિરમણુનો પણ ભંગ થાય છે અને મૃષાવાદ વિરમણુ વ્રતનો પણ ભંગ થાય છે. આ પ્રકારનું બીજા અને ત્રીજા પ્રાયશ્ચિત્ત પ્રસ્તારનું સ્વરૂપ છે.

હવે ચોથા પ્રાયશ્ચિત્ત પ્રસ્તારનું સ્વરૂપ પ્રકટ કરવામાં આવે છે—" अविरतिवादं " ઇત્યાદિ—

કોઈ સાધુ પર અસત્ય રૂપે બ્રહ્મચર્ય વ્રતનો ભંગ કરવા રૂપ દોષનું આરોપણુ કરનાર સાધુ પણ પ્રાયશ્ચિત્ત પ્રસ્તારને પાત્ર બને છે. એ જ વાત " राइणिय वाइएणं " ઇત્યાદિ ગાથા દ્વારા સ્પષ્ટ કરવામાં આવી છે. આ ગાથાનો અર્થ નીચે પ્રમાણે છે—

કોઈ પર્યાય જ્યેષ્ઠ સાધુ કોઈ લઘુ પર્યાયવાળા સાધુને હંમેશા સારી સારી શિખામણુ દેતા હતા. પરન્તુ તે ક્ષુલ્લક (લઘુ પર્યાયવાળો) સાધુના મનમાં એવું લાગતું કે આ પર્યાય જ્યેષ્ઠ સાધુ કષાયના ઉદયને લીધે "હું રત્નાધિક (પર્યાય જ્યેષ્ઠ) છું" આ પ્રકારના ઘમંડ રૂપ વાત રોગથી

प्रेरणेन=स्खलितेन मिलितेन प्रेरणेन च मां तर्जयति। अयं भावः-'अरे दुष्ट शिष्यक! स्खलितोऽसि' इत्यस्खलितमपि मां तर्जयति। तथा भिन्नमपि पदमुच्चारयन्तं मां 'हा दुष्ट शैक्ष!-मिलितमुच्चारयति' इति तर्जयति। तथा साधुभिर्वार्यमाणोऽपि मां हस्तेन प्रेरणापूर्वकं तर्जयतीति। एतत्सर्वमस्य रत्नाधिकस्य कषायोदयजनितमेवेति मन्ये। अत्र प्रतिकर्तुमप्यहं न पारयामि, यत एषा सामा-

और प्रेरणासे मुझे तर्जित कर रहा है, अरे दुष्ट शिष्य! तुम अपने कर्तव्यसे स्खलित चलायमान हो रहे हो यद्यपि मैं कर्त्तव्यसे चलायमान नहीं हो रहा हूं फिर भी मुझे चलायमान कह कर व्यर्थमें उपालम्भ करता रहता है, तथा मैं बोलते समय बहुतही सावधानीसे एक २ शब्दको ठीक २ रूपसे असंमिलित करकेही बोलता हूं, फिर भी यह कहता है, हा दुष्ट शिष्य! तुम मिलित करके पदका उच्चारण करते हो तथा-अन्य और भी साधुजन उसे मेरे प्रति इस प्रकारके व्यवहार निषेध करते हैं, परन्तु वह तो मानता ही नहीं है, और हाथ उठा २ कर मुझे प्रेरणापूर्वक वह दबाता रहता है, अतः मैं तो यही मानता हूं कि यह जो कुछ भी मेरे साथ इस प्रकारका व्यवहार करता है, वह सब कषायोदयके वशसे ही करता है, यद्यपि यह जैसा व्यवहार मेरे साथ करता है, वैसाही व्यवहार मैं भी इसके साथ कर सकता हूं. परन्तु मैं जो इन सब बातोंको सहन कर रहा हूं उससे कुछ नहीं कहता हूं उसका कारण ऐसी ही सामाचारीका होना है, अब मैं ऐसा करूंगा

પીડાઇ રહ્યો છે. તેથી તે સ્ખલિત, મિલિત અને ઉપાલભ યુક્ત શબ્દો દ્વારા જાણે કે મને આડકતરી રીતે એવું કહી રહ્યો છે કે "હે દુષ્ટ શિષ્ય! તું તારા કર્તવ્યમાર્ગમાંથી ચલાયમાન થઈ રહ્યો છે" જો કે હું તો મારા કર્તવ્યમાંથી બિલકુલ ચલાયમાન થયો નથી, છતાં પણ તે મને વારંવાર ટકોર કરતો રહે છે અને ઠપકો અને ધમકી આપતો રહે છે. બોલતી વખતે પણ હું ઘણી સાવધાનીથી પ્રત્યેક શબ્દને અસંમિલિત કરીને. સ્પષ્ટ રૂપે બોલું છું, છતાં પણ તે મને કહે છે કે હે દુષ્ટ શિષ્ય! તું મિલિત (અસ્પષ્ટ) શબ્દો બોલે છે. બીજા સાધુઓ પણ તેને મારી સાથે આવું વર્તન ન રાખવા સમજાવે છે પણ તેઓ તો માનતા જ નથી, અને હાથ ઊંચો કરી કરીને મને શિખામણો આપ્યા જ કરે છે, ટક ટક કર્યા કરે છે અને એ રીતે મને ખોટી દબામણી કરે છે હું તો એમ જ માનું છું કે તેઓ કષાયના ઉદયને વશવર્તી થઈને આ પ્રકારનું વર્તન મારી તરફ બતાવે છે. હું પણ ધારું તો તેમની સાથે એવું જ વર્તન બતાવી શકું છું. પરન્તુ હું તો

चारी। अतो मया एतत्कृतं तर्जनादिकं सोढव्यमेव। परन्त्वहमेवं करिष्यामि यथाऽयं मत्तो लघुर्भवेत्। एवं क्षुल्लकविचारणानन्तरमन्यदा तौ भिक्षाचर्यार्थं गतौ तृषितौ बुभुक्षितौ चेत्येवं चिन्तितवन्तौ–यदस्मिन् देवकुले=व्यन्तरायतने कुटङ्के=लतामण्डपे वा किंचिद् भुक्त्वा पानीयं पास्यावः। इत्थं विचार्य तौ तत्र गत्वा सुखेन स्थितौ। तावत् स क्षुल्लकः स्वस्थितस्थानाभिमुखमागच्छन्तीं कांचित् आर्यां ददर्श। स चिन्तितवान् 'सम्प्रति वैरनिर्यातनाय लब्धो मयाऽवसरः' इति चिन्तयित्वा स तं रत्नाधिकं प्राह=आर्य! करोतु भवान् लघ्वाहारं पिबतु पानीयं च, अहं तावत् संज्ञाभूमिं गत्वा प्रत्यायामि, इत्युक्त्वा स रत्नाधिके

कि जिससे यह मुझे लघु–दीक्षापर्यायकी अपेक्षा लघु हो जावे, इस तरहके क्षुल्लकके विचारके बाद वे दोनों क्षुल्लक और रात्निक किसी एक समय भिक्षाचर्याके लिये विचरण करते करते तृषित और बुभुक्षित बने हुए उन दोनोंने इस प्रकारसे विचार किया चलो इस व्यन्तरायतनमें अथवा लतामण्डपमें बैठकर कुछ खाकर पानी पीलेवें ऐसा सोच कर वे वहां गये और बैठ गये इतनेमें उस क्षुल्लकने अपने बैठे हुए स्थानकी ओर आती हुई एक किसी आर्याको देखा। देखकर उसने विचार किया "अब इस साधुसे वैर चुकानेका मुझे यह अच्छा अवसर हाथ लगा है" ऐसा विचार कर उसने रत्नाधिक साधु पर्याय ज्येष्ठसे कहा–आर्य! आप लघु आहार कर लेवे और पानी पी लेवे मैं तब तक संज्ञाभूमि विचार भूमिकी ओर जाकर वापिस आ जाता हूं, ऐसा कह कर वह

સમાચારીના નિયમ પ્રમાણે ચાલનારો છું, તેથી આ બધું સહન કરી લઉં છું અને તેમને એક શબ્દ પણ કહેતો નથી પરન્તુ હવે હું એવું કરીશ કે જેથી મારી લઘુ દીક્ષાપર્યાય હોવા છતાં પણ તેઓ મારા કરતાં લઘુ ગણાય. આ પ્રમાણે તે લઘુ દીક્ષાપર્યાયવાળા સાધુએ નિશ્ચય કર્યો. ત્યાર બાદ કોઈ એક દિવસે તે ક્ષુલ્લક અને તે રાત્નિક ભિક્ષાચર્યા માટે નીકળ્યા. ભિક્ષાચર્યા કરતાં કરતાં ક્ષુધા અને પિપાસાથી વ્યાકુળ બનેલા તે બન્નેએ વિચાર કર્યો કે ચાલો આ વ્યન્તરાયતનમાં–લતામંડપમાં જઈને આહાર પાણી કરી લઈએ. આ પ્રમાણે વિચાર કરીને તેઓ ત્યાં જઈને બેસી ગયા. એ વખતે તે ક્ષુલ્લકે કોઈ એક આર્યાને (સાધ્વીજીને) તે બાજુએ આવતાં જોયાં. તેમને જોઈને તે ક્ષુલ્લકના મનમાં એવો વિચાર આવ્યો કે "આજે આ સાધુનું વેર વાળવાનો સુંદર મોકો હાથ આવ્યો છે"—

આ પ્રમાણે વિચાર કરીને તે ક્ષુલ્લકે તે પર્યાય જ્યેષ્ઠ સાધુને કહ્યું કે આપ થોડો આહાર કરી લો અને પાણી પી લો. ત્યાં સુધીમાં હું ઠલ્લે

मैथुनविषयकमसत्यं दोषमारोपयितुमना आचार्यसमीपे गत्वा वदति—

गाथा—जेट्ठज्जेण अकज्जं, सज्जं देवालए कयं अज्जं।
उवजीविओ न भंते! मए तु संसट्ठकप्पोऽत्थ ॥ २ ॥

छाया—ज्येष्ठार्येण अकार्यं, सद्यो देवालये कृतमद्य।
उपजीवितो न भदन्त! मया तु संसृष्टकल्पोऽत्र ॥ २ ॥

अयमर्थः—हे भदन्त! अद्य सद्यः-इदानीमेव देवालये=व्यन्तरायतने ज्येष्ठार्येण अकार्यं=मैथुनसेवालक्षणम् अकृत्यं कृतम्=आचरितम्। अत्र मैथुनसेवनरूपे प्रस्तावे मया तु संसृष्टकल्पो न उपजीवितः मया तु तदकार्यं नाचरितमित्यर्थः। इति। अत्रापि आचार्यसमीपगमने मासलघु। 'ज्येष्ठार्येण अकार्यं कृत-' मित्यादि कथने मासगुरु। एवं क्रमेण पाराञ्चिकं यावत्प्रायश्चित्तप्रस्तारो बोध्यः। अत्रापि क्षुल्लकस्य मृषावादविरमणव्रतभङ्गजनितः प्रायश्चित्तप्रस्तारः। रत्नाधिको यदि सत्यमेव तथाविधाकृत्यकारी भवति, तदपह्नवं च

उस रत्नाधिक साधुमें झूठा मैथुन विषयक दोषको आरोपित करनेकी इच्छासे वहांसे चला आता है, और आचार्यके पास जाकर कहता है- " जेट्ठज्जेण अकज्जं सज्जं " इत्यादि।

हे भदन्त! आज अभी व्यन्तरायतनमें - ज्येष्ठ आर्यने मैथुन सेवनरूप अकार्य कार्यका सेवन किया है, मैंने इसे देख लिया है, अपने व्रतकी रक्षा करनेके अभिप्रायसे मैंने उस अकार्यका सेवन नहीं किया है, इस तरह आचार्यके समीप आनेमें उसे मास लघु प्रायश्चित्त लगता है, और ऐसा कहने पर मास गुरु प्रायश्चित्त लगता है, इसी क्रमसे पूर्वोक्त कथनके अनुसार पाराञ्चित प्रायश्चित्त तक उस क्षुल्लकको प्रायश्चित्त प्रस्तारका पात्र जानना चाहिये तथा-

જઈને આવી પહોંચ્યું છું. આ પ્રમાણે કહીને તે પર્યાય જ્યેષ્ઠ સાધુ પર બ્રહ્મચર્ય વ્રતના ભંગનો આરોપ મૂકવાની ઇચ્છાથી તે ત્યાંથી ચાલી નીકળ્યો. આચાર્યની પાસે જઈને તેણે આ પ્રમાણે કહ્યું-" જેટ્ઠજ્જેણ અકજ્જં સજ્જં " ઇત્યાદિ—" હે ભગવન્! આજે અત્યારે જ વ્યન્તરાયતનમાં (દેવાલયમાં) જ્યેષ્ઠ સાધુએ મૈથુન સેવન રૂપ અકાર્યનું સેવન કર્યું છે. મેં તેનું તે દુષ્કૃત્ય જોઈ લીધું છે. મારા વ્રતની રક્ષા કરવા માટે મેં તે દુષ્કૃત્યનું સેવન કર્યું નથી" આ પ્રકારનું ખોટું દોષારોપણ કરવાની ઇચ્છાથી ત્યાં આવેલા તે લઘુ પર્યાય સાધુને માસ લઘુ પ્રાયશ્ચિત્ત લાગે છે. અને ગુરુની સમક્ષ આ પ્રકારે ખોટી વાત કરવાથી તેને માસ ગુરુ પ્રાયશ્ચિત લાગે છે. પારાંચિત પ્રાયશ્ચિત્ત પર્યન્તના પ્રાયશ્ચિત્ત પ્રસ્તારને પાત્ર તે સાધુ ક્યારે બને

करोति, तदा तस्य मैथुनविरमणमृषावादविरमणव्रतद्वयभङ्गजनितः प्रायश्चित्तप्रस्तारो बोध्य इति चतुर्थः प्रस्तारः।

तथा—अपुरुषवादं वदन्=कस्मिंश्चित्साधौ असत्यमेव नपुसकत्वमारोपयन् साधुः प्रायश्चित्तप्रस्तारभाग्भवति। प्रायश्चित्तप्रस्तारस्त्वेवं बोध्यः। तथाहि—कश्चित् क्षुल्लको रत्नाधिकेन मुहुर्मुहुः शिक्ष्यमाणस्तच्छिद्रान्वेषणे तत्पर एकदा कदाचित् रत्नाधिकेन सह भिक्षार्थं गतस्ततएकाकी निवृत्त आचार्यमाह—भदन्त!

यदि वह रत्नाधिक वास्तविक रूपमें तथाविध अकृत्यका सेवन करनेवाला है, और उसे वह छिपाता है, तो ऐसी स्थितिमें वह मैथुन विरमण व्रतके भङ्ग होनेसे और मृषावाद विरमग व्रतके भंग होनेसे जनित प्रायश्चित्त प्रस्तारका पात्र हो जाता है, ऐसा यह चतुर्थ प्रस्तार है, तथा—"अपुरुषवादं वदन्" इत्यादि—किसी साधु पर असत्य रूपसेही नपुंसक होनेका आरोप करनेवाला साधु प्रायश्चित्त प्रस्तारका पात्र होता है, प्रायश्चित्त प्रस्तार ऐसे जानना चाहिये—किसी क्षुल्लक साधुको किसी रत्नाधिक साधुने वार २ समझाया—सो समझानेके अभिप्रायको न समझकर वह क्षुल्लक उसके प्रति उल्टा अन्यथा विचारशाली हो गया और उसके छिद्रान्वेषण करनेमें वह तत्पर रहने लग गया एक दिन वह उसी रत्नाधिकके साथ भिक्षाचर्याके लिये गया वहांसे वह भिक्षाचर्या करके अकेलाही लौट आया और आचार्यके पास आकर कहने

છે તે વાત પૂર્વોક્ત કથનને આધારે સમજી લેવી. જો તે પર્યાય જ્યેષ્ઠ સાધુ દ્વારા ખરેખર તે પ્રકારના દુષ્કૃત્યનું સેવન થઈ ગયું હોય અને તેને તે છુપાવતો હોય તો તેના દ્વારા મૈથુનવિરમણ વ્રતનો તથા મૃષાવાદ વિરમણ વ્રતનો ભંગ થાય છે. તે કારણે તે સાધુ આ બન્ને વ્રતના ભંગને લીધે પૂર્વોક્ત પ્રાયશ્ચિત્ત પ્રસ્તારને પાત્ર બને છે. આ પ્રકારનું ચોથા પ્રાયશ્ચિત્ત પ્રસ્તારનું સ્વરૂપ છે. હવે પાંચમાં પ્રાયશ્ચિત્ત પ્રસ્તારનું સ્વરૂપ પ્રકટ કરવામાં આવે છે—" अपुरुषवाद वदन् " ઈત્યાદિ—કોઈ સાધુ બીજા કોઇ સાધુ પર તે નપુંસક હોવાનો ખોટો આરોપ મૂકે તો આરોપ મૂકનાર તે સાધુ પ્રાયશ્ચિત્ત પ્રસ્તારને પાત્ર બને છે આ વાતનું સ્પષ્ટીકરણ નીચે પ્રમાણે છે. કોઇ એક ગુરૂ દીક્ષાપર્યાય વાળા સાધુએ કોઇ એક લઘુ દિક્ષાપર્યાયવાળા સાધુને અમુક કાર્ય ન કરવા અને અમુક પ્રકારનું વર્તન રાખવા વારંવાર સમજાવ્યો. પરન્તુ પોતાના કલ્યાણને માટે તે એવુ કહે છે એમ માનવાને બદલે તેણે કંઇ અવળું જ ધારી લીધું, અને તેણે તેના દોષો શોધવા માંડયા એક દિવસ તે સાધુ તે પર્યાય જ્યેષ્ઠ સાધુ સાથે ભિક્ષાચર્યા માટે ગયો

अयं रत्नाधिको नपुंसकः । अत्र आचार्य क्षुल्लकयोः प्रश्नोत्तररूपं गाथाद्वयमाह-

गाथा—तइउत्ति कहं जाणसि ?, दिट्ठा णियया से तेहि मे वुत्तो ।
वट्टइ तइओ तुज्झं पव्वावेउं मम वि संका ॥ १ ॥
दीसइ य पाडिरूवं, ठिय चंकमिय सरीरभासाहिं ।
बहुसो अपुरिसवयणे, सवित्थरारोवणं कुज्जा ॥ २ ॥

छाया—तृतीय इति कथं जानासि ? दृष्टा निजका अस्य तैर्मे उक्तम् ।
वर्तते तृतीयो युष्माकं प्रव्राजयितुं ममापि शङ्का । ॥ १ ॥
दृश्यते च प्रतिरूपं स्थितचङ्क्रमितशरीरभाषाभिः ।
बहुशः अपुरुषवचने सविस्तरारोपणां कुर्यात् ॥ २ ॥

अयमर्थः—'अयं रत्नाधिको नपुंसकः' इति ब्रुवाणं क्षुल्लकमाचार्यः पृच्छति-'अयं तृतीयः-तृतीया प्रकृतिः-नपुंसकः' इति कथ जानासि ? एवमाचार्येण पृष्टः क्षुल्लकः प्राह-मया अस्य=रत्नाधिकस्य निजकाः=कुटुम्बिनः दृष्टाः । तैः मे=मम उक्तम् यत्-'तृतीयो-नपुंसको युष्माकं प्रव्राजयितुं वर्तते=कल्पते किम् ?' इति । 'किं भवन्तो नपुंसकमपि प्रव्राजयन्ति' इति रत्नाधिकस्यास्य सांसारिक-

---

लगा हे भदन्त ! यह रत्नाधिक नपुंसक है । इस विषयमें आचार्य और क्षुल्लकका प्रश्नोत्तर रूप संवाद इस प्रकारसे है—

"तइउत्ति कहं जाणासि ?" इत्यादि ।

"रत्नाधिक नपुंसक है" इस प्रकारसे कहनेवाले क्षुल्लकसे आचार्यने पूछा यह "तृतीय प्रकृतिवाला है-नपुंसक है" यह तुमने कैसे जाना तब क्षुल्लकने आचार्यसे कहा-महाराज ! मैंने इसके कुटुम्बीजन देखे हैं, सो उन्होंने मुझसे पूछा-कि क्या तुम नपुंसकको भी दीक्षित करते हो ? मैंने कहा नपुंसकको दीक्षा लेनेका अधिकार ही

હતો. ત્યાંથી પાછા ફરીને તેણે આચાર્ય પાસે જઈને આ પ્રમાણે કહ્યું--

"હે ભગવન્ ! આ રત્નાધિક (ગુરુ દીક્ષા પર્યાયવાળો સાધુ) નપુંસક છે" આ વિષયને અનુલક્ષીને તે આચાર્ય અને ક્ષુલ્લકનો સંવાદ નીચે પ્રમાણે સમજવો. "तइउत्ति कहं जाणासि" ઇત્યાદિ—

આચાર્યે તે ક્ષુલ્લકને એવો પ્રશ્ન કર્યો કે "તમે એ કેવી રીતે જાણ્યું કે તે તૃતીય પ્રકૃતિવાળો (નપુંસક) છે ?

ક્ષુલ્લકનો જવાબ—"હે ગુરુદેવ ! મને તેમના કુટુંબીજનો મળ્યા હતા. તેઓ મને પૂછતાં હતાં કે શું તમે નપુંસકને પણ દીક્ષા આપો છો ખરાં ? મેં તેમને એવો જવાબ આપ્યો હતો કે નપુંસકને દીક્ષા લેવાનો

सम्बन्धिनो मां पृष्टवन्तः ' इत्यर्थः । तथा-ममाप्यस्य विषये शङ्काऽस्ति, यत्-अयं नपुंसकोऽस्ति । यतोऽस्य स्थितचङ्क्रमितशरीरभाषाभिः-स्थित्या गत्या शरीरेण भाषया च प्रतिरूपं=नपुंसकानुरूपं सर्वं दृश्यते, अतोऽहं ब्रवीमि-यदयं नपुंसक इति । एवंप्रकारेण रत्नाधिकविषये बहुशः अपुरुषवचने=नपुंसककथने वर्तमानस्य साधोः सविरतरारोपणं-मासलघुमारभ्य पाराञ्चिकं यावत् प्रायश्चित्तस्य प्रस्तारं कुर्यादिति । अत्रापि क्षुल्लकस्य मृषावादजनित एव प्रायश्चित्त प्रस्तारः । रत्नाधिको यदि सत्यमेव तथा भवति तदा तस्य साधुसङ्घाद् बहिष्कारो भवतीति पञ्चमः प्रायश्चित्तप्रस्तारः । ५ ।

नहीं है, तब उन्होंने कहा जो वह तुम्हारे पास रत्नाधिक है, वह नपुंसक है, तथा मुझे भी इसके विषयमें शङ्का है, क्योंकि इसकी स्थितिसे गतिसे शरीरसे और भाषासे मुझे सब इसमें नपुंसकके अनुरूपही दिखलाई देता है, इसलिये मै कहता हूं कि यह नपुंसक है, इस प्रकारसे रत्नाधिकमें नपुंसक होनेका आरोप करनेवाले उस क्षुल्लक साधुमें मास लघु प्रायश्चित्तसे लेकर पाराञ्चिक प्रायश्चित्त तकके प्रायश्चित्त प्रस्तारोंकी पात्रता जाननी चाहिये यहां क्षुल्लक साधुमें जो प्रायश्चित्त प्रस्तार की पात्रता कही गई है, वह उसके मृषावाद विरमण व्रतके भंग हो जानेसे कही गई है, तथा वह रत्नाधिक सत्य रूपमें जैसा क्षुल्लक साधुने प्रकट किया है, वैसाही यदि नपुंसक है, तो उसे साधु संघसे बहिष्कृत कर देना चाहिये इस प्रकारसे यह पांचवां प्रायश्चित्त प्रस्तारहै-

---

અધિકાર જ અમારા શાસનમાં મળ્યો નથી ત્યારે તેમણે મને કહ્યુ હતું કે તમારી સાથે જે રત્નાધિક છે તે નપુંસક છે. વળી હે ગુરુદેવ તેની રીતભાત, ભાષા, હલનચલન, હાવભાવ વગેરે જોતાં મને પણ એવી શંકા થાય છે કે તે ખરેખર નપુંસક જ છે." આ પ્રકારનો ખોટો આરોપ તે સાધુ પર મુકનાર તે સાધુ (ક્ષુલ્લક) માસ લઘુ પ્રાયશ્ચિત્તથી લઈને પારાંચિક પ્રાયશ્ચિત્ત પર્યન્તના પ્રાયશ્ચિત્તોને પાત્ર બને છે. અહીં ક્ષુલ્લકમાં જે પ્રાયશ્ચિત્ત પ્રસ્તારની પાત્રતા કહેવામાં આવી છે તે મૃષાવાદ વિરમણ વ્રતનો તેના દ્વારા ભંગ થવાને કારણે કહી છે. અને તે રત્નાધિક ખરેખર નપુંસક જ હોય તો તેને સંઘમાંથી હાંકી કાઢવો જોઈએ. આ પ્રકારનો આ પાંચમો પ્રાયશ્ચિત્ત પ્રસ્તાર છે.

तथा—दासवादं वदन्—'दासोऽयम्' इति असत्यमेव कस्मिंश्चित्-साधौ दोषमारोपयन् साधुः प्रायश्चित्तप्रस्तारभाग्भवति। अत्रेदं बोध्यम्—दुष्प्रेक्षितादिषु रत्नाधिकेन प्रेर्यमाणः क्षुल्लकः क्रोधमुपगतः कदाचिदाचार्यसमीपे समागत्य कथयति—भदन्त! अयं रत्नाधिको दासोऽस्ति। अत्राचार्यक्षुल्लकयोः प्रश्नोत्तररूपं गाथात्रयमाह—

गाथा—खरउत्ति कहं जाणसि, देहाऽऽयारा कहेंति से हंदी।
छिक्कोवणदुब्भंडो, णीयासी दारुणसभावो ॥ १ ॥

छाया—खरक इति कथं जानासि, देहाकाराः कथयन्त्यस्य हन्त।
क्षिप्रकोपनो दुर्भाण्डो, नीचासी दारुणस्वभावः ॥ १ ॥

अयमर्थः—रत्नाधिकोऽयं दासोऽस्तीति क्षुल्लकेनोक्ते आचार्यस्तं पृच्छति-

---

"दासवादं वदन्" इसी प्रकारसे किसी साधुके ऊपर ऐसे असत्य दोषका आरोपण करना कि "यह साधु दासहै" इस प्रकारसे असत्य दोषका आरोपण करनेवाला साधु प्रायश्चित्त प्रस्तारका पात्र होता है, इस विषयमें ऐसा समझना चाहिये, किसी रत्नाधिकने किसी क्षुल्लक साधुसे अच्छी तरहसे देखभाल करके प्रवृत्ति करनेकी बात कही तब वह क्षुल्लक उस पर क्रोधाविष्ट हो गया और आचार्यके पास जाकर कहने लगा हे भदन्त! यह रत्नाधिक दास है, इस विषयमें दोनोंका आचार्य क्षुल्लकको प्रश्नोत्तर रूप संवाद इस प्रकारसे है—

"खरउत्ति कहं जाणसि" इत्यादि।

यह रत्नाधिक दास है, ऐसा जब क्षुल्लकने कहा तब आचार्यने

હવે છઠ્ઠા પ્રાયશ્ચિત્ત પ્રસ્તારનું સ્વરૂપ પ્રકટ કરવામાં આવે છે.

"દાસવાદં વદન્" ઇત્યાદિ—

કોઇ સાધુ બીજા કોઈ સાધુ ઉપર એવો ખોટો આરોપ મૂકે છે કે "આ સાધુ દાસ છે." તો તે પ્રકારનું ખોટું દોષારોપણ કરનાર સાધુ પ્રાયશ્ચિત્ત પ્રસ્તારને પાત્ર બને છે. આ વિષયમાં વધુ સ્પષ્ટીકરણ નીચે પ્રમાણે સમજવું.

કોઇ એક ગુરુ દીક્ષા પર્યાયવાળા સાધુએ કોઈ લઘુ દીક્ષા પર્યાયવાળા સાધુને જતનાપૂર્વક પ્રવૃત્તિ કરવાની સલાહ આપી તેથી તેણે ક્રોધાવેશમાં આવી જઈને આચાર્યની પાસે જઈને આ પ્રમાણે કહ્યું—"હે ભગવન્! આ રત્નાધિક દાસ છે" આ વિષયમાં તે ક્ષુલ્લક અને આચાર્ય વચ્ચેનો સંવાદ હવે આપવામાં આવે છે. "ખરઉત્તિ કહં જાણાસિ" ઇત્યાદિ—

જ્યારે તે ક્ષુલ્લકે તે પર્યાયજ્યેષ્ઠ સાધુ દાસ છે એવી વાત કરી ત્યારે આચાર્યે તેને પૂછયું "તમે કેવી રીતે જાણ્યું કે તે ખરક (દાસ) છે?"

खरकः=दासोऽयमस्तीति कथं जानासि ? तदा क्षुल्लकः कथयति–हन्तेति खेदे । हे भदन्त ! अस्य देहाकारास्तथा कथयन्ति । तथाचायं क्षिप्रकोपनः=शीघ्रक्रोधकरणशीलः, दुर्भाण्डः=असंवृतपरिधानादिः, नीचासी–नीचतरे आसने उपवेशनशीलो दारुणस्वभावः क्रूरस्वभावश्चास्ति । अथ दासानां यथाऽऽकारा भवन्ति तानेवाह—

गाथा—देहेण वा विरूवो, खुज्जो वडभो य बाहिरप्पादो ।
फुडमेव से आयारा कहेंति जह एस खरउत्ति ॥ २ ॥

छायाः—देहेन वा विरूपः कुब्जो वडभश्च बाह्यपादः ।
स्फुटमेवास्य आकाराः कथयन्ति यथैष खरक इति ॥ २ ॥

अयमर्थः—अयं देहेन वा=शरीरेणाऽपि विरूपः=विकृतरूपवानस्ति । वैरूप्यमेवाह–अयं शरीरेण कुब्जो, वडभः=वामनः, बाह्यपादः=दीर्घचरणश्चास्ति । एतादृशा आकारा एवास्य स्फुटं कथयन्ति–यथा एष खरको=दासोऽस्तीति ।

उससे पूछा–" यह खरक–दास है " इस बातको तुम कैसे जानते हो तब क्षुल्लकने उनसे कहा हे भदन्त ! मै क्या कहूं इसके देहाकारही इस बातको कह रहे हैं तथा इसे जरा २ सी बातोंमें जल्दी क्रोध आ जाता है, उखाडे शरीरही यह बैठा रहता है, वस्त्र आदि ओढता नहीं है, नीचासी–नीचतर आसन पर यह बैठता है, और स्वभावमें यह क्रूर है । दासोंके जैसे आकार होते हैं वह उन्हें अब प्रकट करता हुआ कहता है–" देहेण वा विरूवो " इत्यादि ।

दास जैसा शरीरसे विकृतरूपवाला होता है, वैसाही यह विरूप है, विकृत रूपवाला है–देखिये कि–यह शरीरसे कुब्ज है, वामन है, बाह्यपादवाला है, लम्बे पगवाला है, इस तरहके ये शारीरिक आकार

ત્યારે તે ક્ષુલ્લકે જવાબ આપ્યો—" તેના શરીરની આકૃતિ, વર્તન આદિ દાસના જેવાં જ છે. તેને વાત વાતમાં ક્રોધ આવી જાય છે, તે ખૂલ્લે શરીરે જ બેસી રહે છે–શરીર પર કોઈ વસ્ત્ર ઓઢતો નથી, તે નીચતર આસને બેસે છે, અને તે સ્વભાવે ક્રૂર છે." દાસના શરીરનો આકાર કેવો હોય છે તેનું શાસ્ત્રોમાંથી પ્રમાણ આપીને તે ક્ષુલ્લક આચાર્યને કહે છે કે :

" देहेण वा विरूवो " ઇત્યાદિ—

દાસોનું શરીર જેવું વિકૃત (બેડોળ) હોય છે, એવું જ વિકૃત શરીર આ રત્નાધિક સાધુનું છે–તેના શરીરે ખૂંધ છે, તે વામન છે, તેના પગ લાંબા છે. આ પ્રકારની તેની શરીર રચના વડે જ એ વાત સિદ્ધ થઈ જાય છે કે

तथा-एतस्य संबन्धिनोऽपि मामुक्तवन्तो-यदयं दासोऽस्तीति । एवं तेनोक्ते आचार्यः प्राह—

गाथा—केइ सुरूव दुरूवा, खुज्जा वडभा य वाहिरप्पाया ।
न हु ते परिभवियव्वा, वयणं च अणारियं वोत्तुं ॥ ३ ॥

छाया—केऽपि सुरूपाः कुरूपाः कुब्जा वडभाश्च बाह्यपादाः ।
न खलु ते परिभवितव्याः, वचनं च अनार्यं वक्तुम् ॥ ३ ॥

अयमर्थः—इह नामकर्मोदयवैचित्र्यात् केचित् नीचकुलोत्पन्ना अपि दासादयः सुरूपा भवन्ति । केचित् पुनः राजकुलोत्पन्ना अपि कुरूपा अर्थात् कुब्जा वामना बाह्यपादाश्च भवन्ति। अतस्ते न खलु=नैव परिभवितव्याः-तिरस्करणीयाः। न च तेषां विषयेऽनार्यं वचनं वक्तुमुचितमिति । ३ ।

एवमाचार्येणोपदिष्टोऽपि क्षुल्लको रत्नाधिकविषये दासत्वमेव साधयति ।

ही स्पष्ट रूपसे यह प्रकट कर रहेहैं, कि यह खरक-दास है, तथा इसके जो सम्बन्धी जन हैं, उन्होंने भी मुझसे यही कहा है; कि यह दासहै, इस प्रकार जब क्षुल्लकने आचार्यसे कहा तब वे कहने लगे-"केइ सुरूव दुरूवा" इत्यादि ।

हे क्षुल्लक संसारमें नामकर्मके उदयकी विचित्रताको लेकर कितनेक नीच कुलमें उत्पन्न हुए दासादिजन सुरूपवाले होते हैं. और कितनेक राजकुलमें उत्पन्न हुए भी जन कुरूप अर्थात् कुब्ज वामन एवं बाह्यपादवाले होते हैं अतः ऐसे व्यक्ति न तिरस्करणीय होते हैं, और न उनके प्रति अनार्य वचनका प्रयोग शोभनीय होता है—

इस प्रकारसे आचार्यके द्वारा समझाया गया भी वह क्षुल्लक

તે દાસ છે. વળી તેમના જે સબંધીઓ છે તેમણે પણ મને કહ્યું છે કે તે દાસ છે" તે ક્ષુલ્લકની આ પ્રકારની દલીલો સાંભળીને તે આચાર્યે તેને કહ્યું:

"केइ सुरूव दुरूवा" ઇત્યાદિ--

"હે ક્ષુલ્લક ! સંસારમાં નામકર્મના ઉદયની વિચિત્રતાને લીધે નીચ કુળમાં ઉત્પન્ન થયેલા કેટલાક દાસાદિ જન પણ સૌંદર્ય સંપન્ન હોય છે અને રાજકુળ આદિ ઉત્તમ કુળમાં ઉત્પન્ન થયેલા કેટલાક લોકો કદરૂપાં (ખૂંધ આદિ વિકૃત શરીરવાળા, વામન રૂપ, લાંબા પગવાળાં) પણ હોય છે. તેથી એવા લોકો તિરસ્કારને પાત્ર નથી અને એવા લોકો માટે આવા કઠોર વચનો બોલવા તે કોઇ પણ રીતે યોગ્ય નથી"

આચાર્ય દ્વારા આ પ્રમાણે સમજાવવામાં આવ્યા છતાં પણ જો તે

अत्र पूर्ववदेव क्षुल्लकस्य मृषावादजनितो मासलघ्वादि पाराञ्चिकं यावत्प्रायश्चित्तप्रस्तारो बोध्यः। यदि तु रत्नाधिकः सत्यमेव दासो भवति तदा स साधु सङ्घाद् बहिष्कृतो भवतीति षष्ठः प्रस्तारः। ६।

पूर्वोक्तमेवार्थं स्पष्टयितुमाह-'इच्चेए' इत्यादि। इत्येतान् कल्पस्य=साध्वाचारस्य षट् प्रस्तारान्=मासलघ्वादिपाराञ्चिकान्तान् प्रायश्चित्तरचनाविशेषान् प्रस्तारयिता=रत्नाधिके दोषारोपणकर्ता साधुः सम्यक्=याथातथ्येन अप्रतिपूरयन्-प्रमाणीकर्तुम् अशक्नुवन् स्वयं तत्स्थानप्राप्तः=प्रायश्चित्तप्रस्तारभाग् भवतीति॥ सू० ५४॥

जब अपनी हठको नहीं छोड़ता है, और रत्नाधिकके विषयमें अपने विचारोंमें परिवर्तन नही लाता है, प्रत्युत दास भावकीही उसमें पुष्टि करता है, तब क्षुल्लक पूर्वकी तरहसे ही मृषावादजनित मास लघु आदि पाराञ्चित्त तक प्रायश्चित्त प्रस्तारोंका पात्र होता है, यदि वह रत्नाधिक क्षुल्लकके कथनानुसार यदि यथार्थ रूपमें दासहै, तो उसको साधु संस्थासे बाहर कर देना चाहिये इस प्रकार यह छट्ठा प्रस्तार है, ६ "इच्चेए छ कप्पस्स पत्थारे पत्थरेत्ता सम्मं अपरिपूरेमाणे तट्ठाणपत्ते" इस तरह इन साध्वाचारके षट् प्रस्तारोंको मास लघु आदिसे लेकर पाराञ्चित तकके प्रायश्चित्त रचना विशेषोंको रत्नाधिकमें दोषारोपण करनेवाला साधु यदि अपने द्वारा आरोपित दोषको उसमें प्रमाणित करनेमें असमर्थ है, तो वह दोषारोपण करनेवाला स्वयं प्रायश्चित्त प्रस्तारका पात्र होता है॥ सू० ५४॥

क्षुल्लक पोतानी हठ छोडतो नथी अने रत्नाधिक विषेना पोताना विचारोमां जो परिवर्तन लावतो नथी, ऊलटा ते रत्नाधिकमां दासभावनी ज पुष्टि करतो रहे छे तो ते आगळ कह्या मुजबना मृषावाद जनित मासलघुथी लईने पारांचित प्रायश्चित्त पर्यन्तना प्रायश्चित्त प्रस्तारोने पात्र बने छे. जो ते रत्नाधिक क्षुल्लकना कथन अनुसार खरेखर दास ज होय, तो तेने साधुओना गच्छमांथी काढी मूकवो जोईए आ प्रकारनो आ छठ्ठो प्रायश्चित्त प्रस्तार छे.

"इच्चेए छ कप्पस्स पत्थारे पत्थरेत्ता सम्मं अपरिपूरेमाणे तट्ठाणपत्ते" कोई पण रत्नाधिक पर दोषारोपण करनार साधु जो पोते मूकेला दोषने साबित करवाने असमर्थ निवडे, तो ते पोते मासलघु आदिथी लईने पारांचित पर्यन्तना ६ प्रायश्चित्त प्रस्तारोने पात्र बने छे. साध्वाचारना ते ६ प्रस्तारोनुं आ सूत्रमां निरूपण करवामां आव्युं छे. साथे साथे एवा ६ प्रकारना दोषारोपणो पण उपर प्रकट करवामां आव्या छे. ॥ सू. ५४ ॥

पुनरपि कल्पविषयमेव सूत्रद्वयमाह—

मूलम्—छ कप्पस्स पलिमंथू पण्णत्ता, तं जहा—कोकुइए संजमस्स पलिमंथू १ मोहरिए सच्चवयणस्स पलिमंथू २, चक्खुलोलए इरियावहियाए पलिमंथू ३ तिंतिणिए एसणागोयरस्स पलिमंथू ४ इच्छालोभिए मुत्तिमग्गस्स पलिमंथू ५ भिज्जाणियाणकरणे मोक्खमग्गस्स पलिमंथू ६, सव्वत्थ भगवया अणियाणया पसत्था ॥ सू० ५५ ॥

छाया—षट् कल्पस्य परिमन्थवः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—कौकुचिकः संयमस्य परिमन्थुः १, मौखरिकः सत्यवचनस्य परिमन्थुः २, चक्षुर्लोलकः ऐर्यापथिक्याः परिमन्थुः ३, तिन्तिणिकः एषणागोचरस्य परिमन्थुः ४, इच्छालोभिको मुक्तिमार्गस्य परिमन्थुः ५, अभिध्यानिदानकरणो मोक्षमार्गस्य परिमन्थुः ६, सर्वत्र भगवता अनिदानता प्रशस्ता ॥ सू० ५५ ॥

टीका—' छ कप्पस्स ' इत्यादि ।

परिमन्थुः—द्रव्यभावभेदाद् द्विविधः । तत्र—द्रव्यपरिमन्थु र्दधिमन्थनसाधनो मन्थानदण्डः । भावपरिमन्थुस्तु—दधिसदृशस्य कल्पस्य मन्थने—विनाशने साधनभूतो मन्थानसदृशः कौकुचिकादिः । तदुक्तम्—

पुनरपि सूत्रकार कल्प विषयक दो सूत्र कहते हैं—

" छ कप्पस्स पलिमंथू पण्णत्ता ' इत्यादि सूत्र ५५ ॥

टीकार्थ—कल्पके परिमन्थू ६ कहे गये हैं, इनमें द्रव्य और भावके भेदसे परिमन्थू दो प्रकारका होता है, दधिको मन्थन करनेका साधनभूत जो मन्थान—दण्ड रई होता है, वह द्रव्य परिमन्थू है, और दधिके सदृश

સૂત્રકાર હવે કલ્પવિષયક બીજા બે સૂત્રોનું કથન કરે છે—

ટીકાર્થ—" छ कप्पस्स पलिमंथू पण्णत्ता " ઇત્યાદિ—

જેના દ્વારા સાધુના આચાર નષ્ટ થાય છે એવી ચેષ્ટાનું નામ પરિમન્થન છે અને એવી ચેષ્ટા કરનારને કલ્પના (આચારના) પરિમન્થુ કહે છે પરિમન્થુના દ્રવ્ય અને ભાવના ભેદથી બે પ્રકાર પડે છે દહીંને વલોવવા માટેનો જે રવૈયો હોય છે તે દ્રવ્ય પરિમન્થુ છે. દધિ સમાન કલ્પના મન્થનમાં (વિનાશ કરવામાં) સાધનભૂત જે ભાવો છે (કૌકુચિકાદિ ભાવો

" दव्वम्मि मंथिए खलु, तेण मंथिज्जए जहा दहिए ।
दधितुल्लो खलु कप्पो मंथिज्जइ कुक्कुयाईहिं ॥ १ ॥ "

छाया--द्रव्ये मन्थिकः खलु, तेन मथ्यते यथा दधिकम् ।
दधितुल्यः खलु कल्पो मथ्यते कौकुचिकादिभिः ॥ १ ॥ इति ।

अत्र हि भावपरिमन्थव एव विवक्षिता इत्याह–' छ कप्पस्स ' इत्यादि । कल्पस्य=साध्वाचारस्य षट् परिमन्थवः=मन्थानभूताः प्रज्ञप्ताः । तद्यथा–कौकुचिकः=भाण्डवत् कुचेष्टाकारकः साधुः, अयं हि–स्थान–शरीरभाषाभेदात् त्रिविधः। तदुक्तम्--

" ठाण सरीरभासा तिविहो पुण कुक्कुई समासेणं । "

कल्पके मन्थनमें विनाश करनेमें–साधनभूत जो मन्थान–मथानीके जैसा कौकुच्चिकादि हैं वे परिमन्थु हैं। कहा भी है—

" दव्वम्मि मंथिए खलु " इत्यादि ।

जिस प्रकार मन्थान दण्डसे दही मथा जाता है, उसी प्रकार कौकुचिका आदिकोंसे दही तुल्य कल्प (साधुका आचार) भी मथा जाता है, नष्ट किया जाता है, अतः यहाँ भाव परिमन्थुही विवक्षित हुए हैं, ये भाव परिमन्थु साध्वाचार रूप कल्पके विनाशक होते हैं–इनमें प्रथम परिमन्थु कौकुचिक है, भाण्डकी तरह जो कुचेष्टा करनेवाला साधु होता है, वह कौकुचिक शब्दसे यहाँ प्रकट किया गया है, यह कौकुचिक स्थान शरीर और भाषाके भेदसे तीन प्रकारका होता है। कहा भी है–" ठाणं सरीरभासा " इत्यादि ।

સાધુના આચારનો વિનાશ કરનારા છે,) તેમને ભાવ પરિમન્થુ કહે છે. કહ્યુ પણ છે કે " दव्वम्मि मंथिए खलु " ઈત્યાદિ—

જેવી રીતે રવૈયા વડે દહીંનું મન્થન કરવામાં આવે છે, એ જ પ્રમાણે કૌકુચિકા આદિ વડે દહીં સમાન કલ્પ (સાધુના આચાર) નું પણ મન્થન કરાય છે. એટલે કે કૌકુચિકા આદિ વડે સાધુના આચારોનો ભંગ થાય છે. તેથી સૂત્રકારે અહીં ભાવ પરિમન્થુની જ પ્રરૂપણા કરી છે તે ભાવ પરિમન્થુઓ સાધુના આચાર રૂપ કલ્પના વિનાશક હોય છે. તેના નીચે પ્રમાણે ૬ પ્રકાર છે—(૧) કૌકુચિક-ભાંડના જેવી કુચેષ્ટા કરનાર સાધુને અહીં કૌકુચિક પરિમન્થુ કહ્યો છે. તે કૌકુચિકના સ્થાન, શરીર અને ભાષાના ભેદથી ત્રણ પ્રકાર પડે છે. કહ્યું પણ છે કે :

" ठाणं सरीरभासा " ઈત્યાદિ—

छाया—स्थानं शरीरभाषा त्रिविधः पुनः कौकुचिकः समासेन इति ।

तत्र–यन्त्रवत् नर्तिकावद् वा यो भ्राम्यति स स्थानतः कौकुचिकः । यस्तु करादिभिः पाषाणादीन् क्षिपति स शरीरतः कौकुचिकः । तदुक्तम्—

" करगोफणधणुपायाइएहिं उच्छुहइ पत्थराईए ।
भमुहादाढिय पुय पमिइ कंपणं णट्टवाइत्तं ॥ १ ॥

छाया—करगोफणधनुःपादादिकैः उत्क्षिपति प्रस्तरान् ।
भ्रूहनुपुतप्रभृतिकम्पनं नाट्यवादित्वम् ॥ १ ॥ इति ।

तथा–यो हि सेण्टितमुखवादित्रादि करोति, तथा च जल्पति यथाऽन्यो हसति, स भाषातः कौकुचिकः । तदुक्तम्—

" छेलिय मुहवाइत्तं, जंपइ य तहा जहा परो हसइ ।
कुणइ य सए वहुविहे वग्घाडिय देसभासाओ ॥ १ ॥ "

जो यन्त्रकी तरह अथवा नाचनेवालीकी तरह इधर उधर भ्रमण करता है, वह स्थानकी अपेक्षा कौकुचिक है, जो हाथ आदिकोंसे पत्थर आदिकोंको फेंकता है, वह शरीरकी अपेक्षा कौकुचिक है, कहा भी है—" कर गोफणधणुपायाइएहिं " इत्यादि ।

जो हाथसे गोफणसे धनुषसे और पग आदिकोंसे पत्थर फेंकना है, तथा भ्रू, दाढी, पोंद इत्यादिकोंको कंपाता है, विविध नाट्यकी क्रीडाओंको जो करता है, वह शरीरकी अपेक्षा कौकुचिक है, तथा-जो सेण्टित एवं अनेक प्रकारसे मुखको बजाता है, तथा इस प्रकारसे बोलता है, कि जिससे दूसरोंको हंसी आ जाती है, वह भाषाकी अपेक्षा कौकुचिक है । कहा भी है–" छेलिय मुहवाइत्तं " इत्यादि ।

જે સાધુ યંત્રની જેમ અથવા નાચનારીની જેમ આમ તેમ ભ્રમણ કર્યા કરે છે તેને સ્થાનની અપેક્ષાએ કૌકુચિક કહે છે. જે હાથ આદિ વડે પત્થર આદિ ફેંક્યા કરે છે તેને શરીરની અપેક્ષાએ કૌકુચિક કહે છે.

કહ્યું પણ છે કે " करगोफणधणुपायाइएहिं " ઇત્યાદિ—

હાથ વડે, ગોફણ વડે, અને પગ વગેરે વડે પત્થર ફેંકનાર તથા ભ્રૂ, દાઢી ઇત્યાદિને કંપાવનાર અને વિવિધ નાટ્યક્રીડાઓ કરનાર માણસને શરીરની અપેક્ષાએ કૌકુચિક કહે છે જે માણસ મુખ વડે સીટી બજાવે છે, અને વિવિધ સૂરો કાઢે છે અને બીજા લોકોને હસવું આવી જાય એવી ભાષા બોલે છે તેને ભાષાની અપેક્ષાએ કૌકુચિક કહે છે. કહ્યું પણ છે કે :

" छेलिय मुहवाइत्तं " ઇત્યાદિ—

छाया—सेण्टितं मुखवादित्रं जल्पति च तथा यथा परो हसति ।
करोति च रुतं बहुविधं वग्घाडी देशभाषाः ॥ १ ॥ इति

'छेलिअ' इति चीत्कारवाचको देशीशब्दः । हास्यजनिका भाषा 'वग्घाडी' इत्युच्यते । अयं त्रिविधोऽपि कौकुचिकः संयमस्य=चारित्रस्य परिमन्थुः=विघातको भवतीति प्रथमः । १ । तथा-मौखरिकः-मुखरो=वाचालः, स एव मौखरिकः । यद्वा-मुखेन अरिं शत्रुम् आवहति=करोति यः स पृषोदरादित्वात् मौखरिकः=अविचार्यभाषी ।

जो भिन्न ढंगसे चीत्कार करता है, मुखको बाजाके रूपमें करके जो बजाता है, और बोलनेके ढंगको जो इस प्रकारसे अपनाता है, कि जिससे दूसरे जनको हँसी आ जाती है-जो हास्योत्पादक भाषा बोलना है, जो अनेक प्रकारकी अवाजें करता है, ऐसा वह साधु भाषाकी अपेक्षा कौकुच्चिक है, इस गाथामें "छेलिअ" यह शब्द चीत्कार ध्वनिका वाचक देशी शब्द है, तथा "वग्घाडी" यह शब्द हास्यजनक भाषाका वाचक है, यह तीनों प्रकारका कौकुचिक चरित्रका विघातक होता है, यह कल्पका प्रथम परिमन्थु है १ द्वितीय प्रकारका परिमन्थु मौखरिक है २ मुखर शब्दका अर्थ वाचाल है, मुखरही मौखरिक कहा जाता है, अथवा "मुखेन-मुखसे-यद्वा तद्वा बोलनेसे-जो अपना "अरिं करोति" शत्रु बनाता है, वह मौखरिक है, बिना विचारे जो बोलनेका स्वभाववाला होता है, अर्थात् जो मनमें आया वही बोलनेवाला व्यक्ति

જે સાધુ ભિન્ન રીતે ચીત્કાર કરે છે, મુખને વાજાની જેમ વગાડે છે, હાસ્યોત્પાદક વાણી બોલે છે-એવા એવા ભાષાપ્રયોગો કરે છે કે શ્રોતાઓને હસવું આવી જાય છે, જે અનેક પ્રકારના સૂરો કાઢે છે, તે સાધુને ભાષાની અપેક્ષાએ કૌકુચિક કહે છે. આ ગાથામાં "છેલિઅ" પદ ચીત્કારનું વાચક છે તથા "વગ્ઘાડી" આ પદ હાસ્યોત્પાદક ભાષાનું વાચક છે. આ ત્રણે પ્રકારના કૌકુચિકો ચરિત્રના વિઘાતક હોય છે. કલ્પના (આચારના) પ્રથમ પરિમન્થુનું આ પ્રકારનું સ્વરૂપ છે

પરિમન્થુનો બીજો પ્રકાર મૌખરિક છે મુખર એટલે વાચાળ. એવા વાચાળ સાધુને મૌખરિક કહે છે જે માણસ વગર વિચાર્યે મનને ફાવે તેમ બોલનારો હોય છે તેને મૌખરિક કહે છે. અથવા મુખ વડે ગમે તેવું બોલીને જે "अरिं करोति" અન્યને પોતાના દુશ્મન બનાવે છે તેને મૌખરિક કહે છે.

उक्तं च—" मुखरिस्स गोन्ननामं, आवहइ मुहेण भासंतो । "
छाया—मौखरिकस्य गौणनाम आवहति (अरिं) मुखेन भाषमाणः-इति ।

स चायं मौखरिकः सत्यवचनस्य=मृषावादविरमणव्रतस्य परिमन्थुर्भवति । मुखरस्य बहुभाषित्वात् भाषणकाले मृषावादस्यास्ति संभवइति भावः । इति द्वितीयः । २ ।

तथा—चक्षुर्लोलकः-चक्षुषालोलः=चञ्चलः, स एव, यद्वा-चक्षुर्लोलं चञ्चलं यस्य सः यो हि उद्यानादीन् पश्यन् व्रजति सः । अयं च धर्मकथादीनामप्युपलक्षणम् । तेन यो हि धर्मकथां कुर्वन् व्रजति सोऽपि ग्राह्यः ।
तदुक्तम्-" आलोयंतो वच्चइ, उज्जाणाइ कहेइ वा धम्मं ।
परियट्टणाणुप्पेहण, ण पेहइ पंथं अणुवउत्तो ॥ १ ॥ "
छाया--आलोकयन् व्रजति उद्यानादिकम् कथयति वा धर्मम् ।
परिवर्तनानुप्रेक्षणे न प्रेक्षते पन्थानमनुपयुक्तः ॥ १ ॥ इति ।

मौखरिक कहलाता है, कहा भी है-मुखरिस्स गोन्ननामं" इत्यादि।

यह मौखरिक-सत्य वचनका मृषावादविरमणव्रतका परिमन्थु होता है, क्योंकि बहुत बोलनेके स्वभाववाला होनेके कारण उसके भाषणकालमें मृषावाद भी संभवित होता है २ तृतीय परिमन्थु चक्षुर्लोलक है, चक्षुसे जो चञ्चल होता है, वह अथवा-चक्षु जिसकी चंचल होती है, वह चक्षुर्लोलक है, चलते समय जो इधर उधरकी चीजोंको देखता २ चलता है, वह चक्षुर्लोलक कहा जाता है, धर्मकथा करते हुए चलनेवालोंका भी यह उपलक्षण है, अतः धर्मकथा करते २ चलनेवाला भी चक्षुर्लोलक है । कहा भी है—
" आलोयंतो वच्चइ " इत्यादि ।

કહ્યું પણ છે કે " मुखरिस्स गोन्ननाम " ઇત્યાદિ—

તે મૌખરિક મૃષાવાદ વિરમણ વ્રતનો પરિમન્થુ (વિરાધક) હોય છે, કારણ કે તેની વાચાળતાને કારણે તે જે કોઈ વાત કરતો હોય તેમાં અસત્યતા (મૃષાવાદ) સંભવી શકે છે. હવે ત્રીજા પ્રકારના પરિમન્થુ પ્રકટ કરવામાં આવે છે—

જે સાધુના નેત્ર ચંચલ હોય છે તેને ચક્ષુર્લોલક કહે છે. માર્ગમાં ચાલતી વખતે તે આસપાસની ચીજોને જોતાં જોતાં ચાલે છે, તેથી તેના દ્વારા ઈર્યાસમિતિની વિરાધના થાય છે. ચાલતાં ચાલતાં ધર્મકથા કરનાર સાધુને પણ ઉપલક્ષણની અપેક્ષાએ ચક્ષુર્લોલક કહી શકાય છે.

કહ્યું પણ છે કે " आलोयतो वच्चइ " ઇત્યાદિ--

एवं विधो हि साधुः ऐर्यापथिक्याः–ईरणम् ईर्या=गमनं, तस्याः पन्थाः–ईर्यापथः, तत्र भवा समितिः–ऐर्यापथिकी, तस्याः परिमन्थुर्भवति। उक्तं च—

"छक्कायाणविराहण, संजम आयाए कंटगाईओ।
आवडणभाणभेओ लोगे उड्डाह परिहाणी ॥ १ ॥"

छाया—षट्कायानां विराधना संयमे आत्मनि कण्टकादयः।
आपतनं भाण्डभेदः लोके उड्डाहः परिहानिश्च ॥ १ ॥ इति।

चक्षुर्लोलत्वादिना हि गमनकाले षट्कायविराधनादयो दोषा भवन्ति, ततश्च ऐर्यापथिकीसमितेर्विघातो भवतीति भावः। इति तृतीयः। ३। तथा–तिन्तिणिकः–यो हि भिक्षाचर्यादिषु पर्याप्ताहाराद्यलाभेन खेदात् संजातक्रोधावेशेन यत्किंचना भिधायी भवति स 'तिन्तिणिकः' इत्युच्यते। अयं हि एषणा गोच-

अर्थात्–उद्यान आदिकोंको देखते हुए जो चलता है, या धर्मकथा करते हुए जो चलता है, वह अनुपयुक्त होता है, अपने गमन मार्ग पर उपयोग रखनेवाला नहीं होता है, इस प्रकारका साधु ऐर्यापथिकी ईर्यापथ समितिका परिमन्थु होता है, ईर्या नाम गमनका है, इस गमनका जो मार्ग है, वह ईर्यापथ है, इस ईर्यापथमें जो समिति होती है, वह ऐर्यापथिकी है, चक्षुर्लोलक इस ऐर्यापथिकीका परिमन्थु विनाशक होता है–" छक्कायाण विराहण " इत्यादि।

छकायोंकी विराधना होनेसे संयम विराधना होती है, और कंटक आदिसे आत्म विराधना धर्मकी होती है, गिरना और पात्रोंका फूटना लोकमें उड्डाह अर्थात् निन्दा और हानि भी होती है, चतुर्थ परिमन्थु

ઉદ્યાન આદિને જોતાં જોતાં ચાલનારો અથવા ધર્મકથા કરતાં કરતાં ચાલનારો સાધુ અનુપયુક્ત હોય છે-એટલે કે પોતાના ગમન માર્ગ પર ઉપયોગપૂર્વક ચાલનારો હોતો નથી આ પ્રકારનો સાધુ ઐર્યાપથિકી સમિતિનો પરિમન્થુ (વિનાશક) હોય છે. ઇર્યા એટલે ગમન તે ગમનના માર્ગને ઇર્યા કહે છે. ચક્ષુલૌલક સાધુ આ ઇર્યાપથ સમિતિનું સમ્યક્ રીતે પાલન કરી શકતો નથી તે કારણે તે ઐર્યાપથિકી સમિતિનો વિરાધક બને છે.

કહ્યું પણ છે કે "छक्कायाण विराहाण" ઇત્યાદિ––

છકાયોની વિરાધના થવાથી સંયમની વિરાધના થાય છે. અસાવધાની પૂર્વક ચાલવાથી કાંટો વાગે, પડી જવાય, પાત્ર આદિ ફૂટે અને તે કારણે લોકોમાં નિન્દા પણ થાય અને પોતાને હાનિ થાય છે, સાથે સાથે ધર્મની પણ વિરાધના થાય છે.

रस्य-एषणा=उद्गमादिदोषरहितभक्तपानगवेषणरूपा, तत्प्रधानो गोचरः तस्य परिमन्थुर्भवति। खेदयुक्तो हि क्रोधावेशेन अनेषणीयमपि गृह्णातीति भावः। इति चतुर्थः। ४। तथा-इच्छालोभिकः-इच्छा=स्पृहा, लोभः=तृष्णा, तौ विद्येते यस्य सः-अभिलषितपदार्थे सतृष्णः-अधिकोपधिरित्यर्थः। स हि मुक्तिमार्गस्य-मुक्तिर्निर्लोभता, तद्रूपस्य मार्गस्य-परिमन्थुर्भवति। अधिकोपधि र्हि निष्परिग्रहत्वरूपं व्रतं न पालयितुं शक्नोतीति स तस्य विघातको भवतीति भावः।

" तिन्तिणिक " है, उद्गमादि दोप रहित भक्तपान की गवेषणा रूप एषणा होती है, इस एषणा प्रधान जो गोचर-गोचरी भिक्षाचर्या है, वह एषणा गोचर है, भिक्षाचर्या आदिमें पर्याप्त आहार आदिके अलाभसे जो खेद खिन्न हो जाता है, एवं उद्भूत क्रोधके आवेशसे जो मनमें आता है वही बकने लग जाता है, ऐसा पुरुष साधु-तिन्तिणिक कहलाता है, ऐसा खेदयुक्त साधु क्रोधके आवेशसे अनेषणीय भी आहारादिको ग्रहण कर लेता है, अतः वह एषणा गोचरका परिमन्थु होता कहा गया है ४ पांचवां परिमन्थु इच्छालोभिक है-इच्छा नाम स्पृहाका है, और लोभ नाम तृष्णाका है, स्पृहा और तृष्णा जिसके हैं ऐसा अधिक उपधिवाला इच्छालोभिक मुक्ति मार्गका परिमन्थु होता है, क्योंकि मुक्ति निर्लोभतारूप होती है, अधिक उपधिवाला निष्परिग्रहता रूप व्रतका पालन नहीं कर सकता है, अतः निर्लोभतारूप मुक्तिके निष्परिग्रहता रूप मार्गका इच्छा लोभिक अनुसरण नहीं कर सकता ऐसा वह मार्ग किसी प्रकार उसके हाथ नहीं आता है, क्योंकि वह

ચોથો પરિમન્થુ ' તિન્તિણિક ' ગણાય છે ઉદ્ગમાદિ દોષ રહિત આહાર પાણીની ગવેષણા રૂપ એષણા હોય છે તે એષણા પ્રધાન જે ગોચરી (ભિક્ષાચર્યા) છે તેને એષણા ગોચર કહે છે. ભિક્ષાચર્યા આદિમાં પુરતાં આહાર પાણીની પ્રાપ્તિ ન થવાથી જે સાધુ ખિન્ન થઈ જાય છે અને ક્રોધના આવેશમાં આવી જઈને મનમાં આવે તે બકવા માંડે છે, એવા સાધુને ' તિન્તિણિક ' (તિતાલિયો) કહે છે. એવો સાધુ અનેષણીય આહારાદિ પણ ગ્રહણ કરી લે છે તેથી એવો સાધુ એષણા ગોચરનો પરિમન્થુ (વિરાધક) ગણાય છે.

પાંચમો પરિમન્થુ ' ઇચ્છા લોભિક ' ગણાય છે. સ્પૃહા એટલે ઇચ્છા અને લોભ એટલે તૃષ્ણા. જે સાધુમાં વસ્ત્ર, પાત્ર આદિ ઉપધિની સ્પૃહા અને તૃષ્ણા અધિક હોય છે એવા સાધુને ઇચ્છાલોભિક કહે છે એવો સાધુ મુક્તિમાર્ગનો પરિમન્થુ (વિરાધક) હોય છે. કારણ કે મુક્તિ નિર્લોભતા રૂપ હોય છે. અધિક ઉપધિવાળો સાધુ પોતાના અપરિગ્રહ વ્રતનું પાલન કરી

इति पञ्चमः । ५ । तथा-अभिध्यानिदानकरणः-अभिध्यया=लोभेन यो निदानं= चक्रवर्तीन्द्रादि पदप्राप्तये प्रार्थनां करोति स मोक्षमार्गस्य-सम्यग्ज्ञानदर्शनचारित्र-तपोरूपस्य परिमन्थुर्भवति। अभिध्यावशान्निदानकारको हि आर्तध्यानवान् भवति। ततश्च स मोक्षमार्गात्स्खलितो भवति । अत एवाय मोक्षमार्गस्य परिमन्थुरित्यु-च्यते । 'अभिध्या' इति विशेषणेन यः पुनरलोभो जन्ममरणादिनिवारिणीं प्रार्थनां कुरुते, तस्यैवंविधं निदानं न मोक्षमार्गस्य परिमन्थुरिति सूचितम् ।

ननु तर्हि तीर्थंकरत्वादि पदप्राप्तिप्रार्थनं न चक्रवर्त्यादिपदप्रार्थनवद्दुष्टम्, अतस्तीर्थंकरत्वादिविषयकं निदानं न मोक्षस्य परिमन्थुरितिचेत्, आह सूत्रकारः

उसका विघातक होता है, छट्ठा परिमन्थु अभिध्या निदान करनेवाला अभिध्या नाम लोभका है, लोभसे जो चक्रवर्ती आदि पद पानेकी चाहना करता है, ऐसा वह साधु आर्त्तध्यानवाला होता है, आर्त्त-ध्यानसे साधु मुक्तिमार्गसे गिर जाता है, इसीलिये इसे मोक्ष-मार्गका परिमन्थु कहा गया है। "अभिध्या" इस विशेषणसे सूत्र-कारने यह प्रकट किया है, कि जो लोभ रहित होकर जन्म मरण आदिको नष्ट करनेकी आकांक्षा (वांछा) करता है, उसका इस प्रकारका निदान मोक्षमार्गका परिमन्थु-विनाशक नहीं होता है ।

शंका--तो तीर्थंकर आदि पदकी चाहना जो कि जन्म जरा मर-णकी विनाश करनेवाली है, चक्रवर्ती आदि पदकी चाहनाकी तरह दुष्ट नहीं होती है, तो इसके लिये तीर्थंकरत्व आदि विषयक निदान मोक्षका परिमन्थु नहीं होता होगा क्या?

શકતો નથી. તે કારણે તે સાધુ નિર્લોભિતા રૂપ મુક્તિમાર્ગ પર-આગળ વધી શકતો નથી. તેથી એવા સાધુને મુક્તિમાર્ગનો પરિમન્થુ (વિરાધક) કહ્યો છે.

અભિધ્યાનિદાન કરનારને છઠ્ઠા પ્રકારનો પરિમન્થુ કહ્યો છે-અભિધ્યા એટલે લોભ. જે સાધુ લોભને વશ થઈને ચક્રવર્તી આદિ પદ પ્રાપ્ત કરવાની ઇચ્છા સેવે છે, તે સાધુ આર્ત્તધ્યાનવાળો હોય છે. આર્ત્તધ્યાનને લીધે સાધુ મુક્તિમાર્ગથી સ્ખલિત થઈ જાય છે, તે કારણે તેને મોક્ષમાર્ગનો પરિમન્થુ કહ્યો છે. "अभिध्या" આ વિશેષણના પ્રયોગ દ્વારા સૂત્રકાર એ વાત પ્રકટ કરે છે કે જે સાધુ લોભરહિત બનીને જન્મમરણ આદિનો અન્ત લાવવાની આશા સેવે છે, તે સાધુની તે પ્રકારની આકાંક્ષા મોક્ષમાર્ગની વિનાશક બનતી નથી.

શંકા—જેવી રીતે ચક્રવર્તી આદિ પદની ચાહના મોક્ષમાર્ગની વિનાશક મનાય છે, એવી જ રીતે જન્મ, જરા અને મરણનો વિનાશ કરનાર તીર્થંકર પદની ચાહના રૂપ નિદાન શું મોક્ષમાર્ગનું વિનાશક બનતું નથી?

'सव्वत्थ' इत्यादि। भगवता तीर्थंकरेण सर्वत्र=सर्वस्मिन्नपि विषये अनिदानता= अप्रार्थनमेव प्रशंसिता। अयं भावः—भगवता जिनेन न केवलं चक्रवर्त्यादिविषय एव अनिदानता श्लाघिता, अपि तु तीर्थंकरत्वचरमदेहत्वादि विषयेऽपि अनिदानतैव श्लाघितेति। उक्तं च—

"इह परलोगनिमित्तं, अवि तित्थगरत्तचरमदेहत्ते।
सव्वत्थेसु भगवया, अणियाणत्तं पसत्थं तु ॥ १ ॥

छाया—इहपरलोकनिमित्तम् अपि तीर्थंकरत्वचरमदेहत्वे।
सर्वार्थेषु भगवता अनिदानत्वं प्रशस्तं तु ॥ १ ॥ इति ॥ सू० ५५ ॥

उत्तर—ऐसी बात नहीं है, इसी निमित्त सूत्रकारने "सव्वत्थ भगवया अनियाणया पसत्था" ऐसा सूत्रपाठ कहा है, इस सूत्रपाठ द्वारा ऐसा समझाया गया है कि चक्रवर्ती पद आदि विषयक अनिदानताही केवल प्रशंसनीय नहीं मानी गई है, अपितु तीर्थंकरत्व चरमदेहत्व आदिके विषयमें भी अनिदानता प्रशंसनीय मानी गई है। कहा भी है-"इह परलोगनिमित्तं" इत्यादि।

इहलोक सम्बन्धी तथा परलोक सम्बन्धी अनिदानताही केवल प्रशंसनीय नहीं कही गई है, किन्तु सर्व अर्थोंमें सब बातोंमें भी अनिदानता प्रशंसनीय कही गई है, इस तरह तीर्थंकर चरमदेह आदिका निदान प्रशंसनीय नहीं कहा गया है ॥ सू० ५५ ॥

ઉત્તર—"સવ્વત્થ ભગવયા અણિયાણયા પસત્થા" આ સૂત્રપાઠ દ્વારા સૂત્રકારે એ જ વાતનું સમાધાન કર્યું છે. તીર્થંકર પદની આકાંક્ષા મોક્ષમાર્ગની વિનાશક બનતી નથી. છતાં એ વાત પણ અહીં સ્પષ્ટ કરવામાં આવી છે કે "ચક્રવર્તી આદિ પદ વિષયક અનિદાનતાને જ પ્રશંસનીય માનવામાં આવેલ નથી, પરન્તુ તીર્થંકરત્વ ચરમ દેહત્વ આદિ વિષયક અનિદાનતાને પણ પ્રશંસનીય માનવામાં આવેલ છે. કહ્યું પણ છે કે:

"ઇહ પરલોગનિમિત્તં" ઈત્યાદિ—

માત્ર આલોક અને પરલોક વિષયક અનિદાનતાને જ પ્રશંસનીય કહેલ નથી, પરન્તુ સમસ્ત અર્થોમાં અને સમસ્ત બાબતોમાં પણ અનિદાનતાને પ્રશંસનીય કહી છે. આ રીત તીર્થંકર, ચરમદેહ આદિના નિદાનને પ્રશંસનીય કહેવામાં આવ્યું નથી. ॥ સૂ. ૫૫ ॥

तथा—

मूलम्—छव्विहा कप्पट्ठिई पण्णत्ता, तं जहा--सामाइयकप्पट्ठिई १, छेदोवट्ठावणियकप्पट्ठिई २, निव्विसमाणकप्पट्ठिई ३, णिव्विट्ठकप्पट्ठिई ४, जिणकप्पट्ठिई ५, थविरकप्पट्ठिई ६ ॥सू०५६॥

छाया-षड्विधा कल्पस्थितिः प्रज्ञप्ता, तद्यथा-सामायिककल्पस्थितिः १, छेदोपस्थापनीयकल्पस्थितिः२, निर्विंशमानकल्पस्थितिः३, निर्विष्टकल्पस्थितिः४, जिनकल्पस्थितिः ५, स्थविरकल्पस्थितिः ६ ॥ सू० ५६ ॥

टीका—' छव्विहा ' इत्यादि—

कल्पस्थितिः—कल्पः=साध्वाचारः, तस्य स्थितिः=मर्यादा, सा षड्विधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—सामायिककल्पस्थितिः—समानि=ज्ञानादीनि, तेषाम् आयो=लाभः समायः, स एव सामायिकम्, तद्रूपः कल्पः—सामायिककल्पः। अयं कल्पो हि प्रथमचरमतीर्थकरतीर्थस्थितानां साधूनामल्पकालिकः, तदनन्तरं छेदोपस्थापनी-

"छव्विहा कप्पट्ठिई पण्णत्ता" इत्यादि सूत्र ५६ ॥

टीकार्थ-कल्पस्थिति ६ प्रकारकी कही गई है, जैसे-सामायिक कल्पस्थिति १ छेदोपस्थापनीय कल्पस्थिति २ निर्विशमानकल्पस्थिति ३ निर्विष्ट कल्पस्थिति ४ जिन कल्पस्थिति ५ और स्थविर कल्पस्थिति ६।

साध्वाचारका नाम कल्प है, इस कल्पकी जो मर्यादा है, वह कल्पस्थिति है, यह कल्पस्थिति जो ६ प्रकारकी कही गई है, सो उसका तात्पर्य ऐसा है—ज्ञानादिकोंका जो लाभ है, वह समाय है, यह समायही सामायिक है, इस सामायिक रूप जो कल्प है, वह सामायिक कल्प है, यह कल्प प्रथम चरम तीर्थंकरके तीर्थमें स्थित साधुओंको

"છવ્વિહા કપ્પટ્ઠિઈ પણ્ણત્તા" ઇત્યાદિ—

કલ્પસ્થિતિ ૬ પ્રકારની કહી છે—(૧) સામાયિક કલ્પસ્થિતિ, (૨) છેદોપસ્થાપનીય કલ્પસ્થિતિ, (૩) નિર્વિશમાન કલ્પસ્થિતિ, (૪) નિર્વિષ્ટ કલ્પસ્થિતિ (૫) જિન કલ્પસ્થિતિ, અને (૬) સ્થવિર કલ્પસ્થિતિ.

સાધુના જે આચાર છે તેનું નામ કલ્પ છે. તે કલ્પની જે મર્યાદા છે તેને કલ્પસ્થિતિ કહે છે. તે કલ્પસ્થિતિના ૬ પ્રકાર કહ્યા છે.

(૧) સામાયિક કલ્પ—જ્ઞાનાદિકનો જે લાભ છે, તેનું નામ જ સમાય છે. તે સમાય જ સામાયિક છે. તે સામાયિક રૂપ જે કલ્પ છે તેને સામાયિક કલ્પ કહે છે. પ્રથમ તીર્થંકર અને ચરમ તીર્થંકરના તીર્થના સાધુઓમાં

यस्य विधीयमानत्वात् । मध्यमतीर्थङ्कराणां तीर्थेषु महाविदेहेषु च साधूनामयं कल्पो यावत्कथिकः, तेषां छेदोपस्थापनीयाभावात् । तस्य सामायिककल्पस्य स्थितिः – सामायिककल्पस्थितिः । इयं पुनर्नियमलक्षणाऽनियमलक्षणाभेदेन द्विविधा । तत्र–शय्यातरपिण्डपरिहारे, चातुर्यामपालने, पुरुषज्येष्ठत्वे, रत्नाधिकस्यावररात्निकेन वन्दनकदाने च नियमलक्षणा । तथा–औद्देशिकभक्ताद्यग्रहणे राजपिण्डाग्रहणे, प्रतिक्रमणकरणे, मासकल्पकरणे, पर्युषणकल्पकरणे चानियमलक्षणा । तदुक्तम्—

अल्प कालिक होता है, अर्थात् सात जघन्य दिन मध्यम चार महिनेकी और उत्कृष्ट छ महिनेकी स्थिति होती है । क्योंकि उसके अनन्तर छेदोपस्थापनीयका विधान होता है, मध्यम तीर्थंकरोंके तीर्थोंमें एवं महाविदेहोंमें साधुओंका यह कल्प यावत्कथिक कहा गया है, क्योंकि वहां छेदोपस्थापनीयका अभाव रहता है, इस सामायिक कल्पकी जो स्थिति है, वह सामायिक कल्पस्थिति है, यह नियम लक्षण और अनियम लक्षणके भेदसे दो प्रकारकी होती है, इनमें शय्यातर पिण्डके परिहारमें चातुर्यामके पालन करनेमें पुरुष ज्येष्ठतामें और रत्नाधिककी अवररात्निक द्वारा वन्दना करनेमें यह नियमरूप है तथा–औद्देशिक भक्त आदिके अग्रहण करनेमें राजपिण्डके अग्रहण करनेमें प्रतिक्रमण करनेमें मासकल्प करनेमें एवं पर्युषण कल्प करनेमें यह अनियत रूपहै ।

આ કલ્પસ્થિતિ અલ્પકાલિક હોય છે. એટલે કે જઘન્ય સાત દિનની, મધ્યમની અપેક્ષાએ ચાર માસની અને ઉત્કૃષ્ટની અપેક્ષાએ છ માસની આ સ્થિતિ હોય છે, કારણ કે ત્યારબાદ છેદોપસ્થાપનીયનું વિધાન થાય છે. મધ્યમ તીર્થંકરોના તીર્થમાં અને મહાવિદેહોમાં સાધુઓનું આ કલ્પ યાવત્કથિક કહ્યું છે; કારણ કે ત્યાં છેદોપસ્થાપનીયનો અભાવ રહે છે. આ સામાયિક કલ્પની જે સ્થિતિ છે તેનું નામ સામાયિક કલ્પસ્થિતિ છે. તેના નીચે પ્રમાણે બે ભેદ કહ્યા છે—(૧) નિયમ લક્ષણ અને (૨) અનિયમ લક્ષણ. શય્યાતરપિંડના પરિહારમાં (ત્યાગમાં), ચાતુર્યામના પાલનમાં, પુરુષ જ્યેષ્ઠતામાં અને રત્નાધિક (વધુ લાંબી દીક્ષા પર્યાયવાળા) ને લઘુ દીક્ષા પર્યાયવાળા સાધુ દ્વારા વંદણા કરવામાં તે નિયમ રૂપ હોય છે. પરન્તુ ઔદ્દેશિક આહારાદિનું અગ્રહણ કરવામાં રાજપિંડના અગ્રહણમાં, પ્રતિક્રમણ કરવામાં, માસકલ્પ કરવામાં અને પર્યુષણ કલ્પ કરવામાં તે અનિયત રૂપ છે.

"सिज्जायरपिंडे य, चाउज्जामे य पुरिसजेट्ठे य।
किइकम्मस्स य करणे, चत्तारि अवट्ठियाकप्पा ॥ १ ॥
आचेलुक्कुद्देसिय, सपडिक्कमणे य रायपिंडे य।
मासे पज्जोसवणा, छप्पेयणवट्ठिया कप्पा ॥ २ ॥"

छाया—शय्यातरपिण्डश्च (शय्यातरपिण्डपरिहारः) चातुर्यामश्च पुरुषज्येष्ठश्च।
कृतिकर्मणश्च करणं, चत्वारः अवस्थिताः कल्पाः ॥ १ ॥
आचेलक्यम् औद्देशिकं सप्रतिक्रमणश्च राजपिण्ड श्च।
मासः पर्युषणा षडप्येतेऽनवस्थिताः कल्पाः ॥ २ ॥ इति।

अत्र आचेलक्यमित्युक्तम्। तच्च सचेलासचेलत्वेन द्विविध भवति। तत्र-असचेलत्वेनाचेलक्यं जिनानाम्। सचेलत्वेन आचेलक्यं तु जीर्णखण्डितवस्त्रधारिणां च भवति। अत एव निर्ग्रन्थाः सत्यप्यल्पजीर्णखण्डितवस्त्रेऽचेला उच्यन्ते। इति। इति प्रथमा कल्पस्थितिः।१। तथा-छेदोपस्थापनीयकल्प-

---

कहा भी है-"सिज्जायरपिंड़े य" इत्यादि।

शय्यातर पिण्डका परिहार १ चातुर्याम २ पुरुष ज्येष्ठ ३ कृतिकर्मकरण (पर्याय ज्येष्ठको वंदना) ४ ये अवस्थित कल्प हैं। आचेलक्य औद्देशिक २ प्रतिक्रमण ३ राजपिण्ड ४ मासकल्प ५ पर्युषणा कल्प ६ ये ६ अनवस्थित कल्प हैं।

"आचेलक्य" ऐसा कहा गया है, सो यह सचेल और अचेलके भेदसे दो प्रकारका होता है, इन अचेलताको लेकर आचेलक्य जिनोंको होता है, तथा सचेलताको लेकर आचेलक्य जीर्ण खण्डित वस्त्र धारण करनेवालोंको होताहै, इसीलिये निर्ग्रन्थ अल्पजीर्ण वस्त्रादिके सद्भावमें भी अचेल कहलाते हैं। यह प्रथम कल्पस्थिति हैं। पूर्व पर्यायके छेद-

---

કહ્યું પણ છે કે "સિજ્જાયરપિંડેય" ઈત્યાદિ—

શય્યાતરપિંડનો પરિહાર, ચાતુર્યામ, પુરુષજ્યેષ્ઠ અને કૃતિકર્મકરણ (પર્યાય જ્યેષ્ઠને વંદણા) આ ચાર અવસ્થિત (નિયત) કલ્પ છે. આચેલક્ય ઔદ્દેશિક, પ્રતિક્રમણ, રાજપિંડ, માસકલ્પ અને કલ્પ આ ૬ અનવસ્થિત (અનિયત) કલ્પ છે.

"આચેલક્ય" બે પ્રકારનું કહ્યું છે—(૧) સચેલ અને અચેલ. અચેલતાની અપેક્ષાએ આચેલક્યનો જિનોમાં સદ્ભાવ હોય છે, તથા સચેલતાની અપેક્ષાએ આચેલક્યનો સદ્ભાવ જીર્ણશીર્ણ વસ્ત્ર ધારણ કરનારમાં હોય છે તે કારણે અલ્પ મૂલ્ય, જીર્ણ અને ખડિત વસ્ત્રાદિનો સદ્ભાવ હોવા છતાં પણ નિર્ગ્રંથોને અચેલ કહે છે આ પ્રકારની પ્રથમ કલ્પસ્થિતિ છે.

स्थितिः–छेदेन=पूर्वपर्यायस्य छेदनेन उपस्थापनीयम्–आरोपणीयं छेदोपस्थापनीयं–व्यक्तितो महाव्रतारोपणमित्यर्थः। इदं च प्रथमान्तिमतीर्थंकरतीर्थयोरेव भवति। तद्रूपः कल्पः=साध्वाचारस्तस्य स्थितिः। इति द्वितीया ।२। तथा–निर्विशमानकल्पस्थितिः–निर्विशन्ति=परिहारविशुद्धितपोऽनुचरन्ति ये ते निर्विशमानकाः=पारिहारिका इत्यर्थः, तेषां कल्पः, तत्र स्थितिः। इयं तु ग्रीष्मशीतवर्षाकालेषु जघन्य मध्यमोत्कृष्टतपोयुक्ता भवति। तत्र जघन्यं तप एतेषु क्रमेण चतुर्थषष्ठाष्टमानि, मध्यमं षष्ठाष्टमदशमानि, उत्कृष्टम् अष्टमदशमद्वाद-

नसे जो उपस्थापनीय आरोपणीय होता है वह छेदोपस्थापनीय है, यह छेदोपस्थापनीय पुनः स्पष्ट रूपसे महाव्रतके आरोपण करनेरूप होता है, यह छेदोपस्थापनीय प्रथम अन्तिम तीर्थ करोंके तीर्थोमेंही होता है, इस छेदोपस्थापना रूप जो कल्प है, साधुका आचार है, उस आचारकी जो स्थिति है, वह छेदोपस्थापनीय कल्पस्थिति है २ परिहार विशुद्धि तपका जो पालन करते हैं वे निर्विशमानक हैं, इन्हें पारिहारिक भी कहा गया है; इनका जो कल्प है, वह निर्विशमान कल्प है, और इस कल्पमें जो स्थिति है, वह निर्विशमान कल्प स्थिति है। यह स्थिति ग्रीष्ममें शीतमें एवं वर्षाकालमें जघन्य मध्यम और उत्कृष्ट तपसे युक्त होती है। इनमें जघन्य तप क्रमशः चतुर्थ षष्ठ और अष्टमकी तपस्या रूप होताहै, मध्यम तप षष्ठ, अष्टम और दशमकी तपस्या रूप होताहैं, पारणाके दिन आचामाम्ल(आयंबिल)तपस्यासेही युक्त होताहै, अर्थात् आमी-

(२) છેદોપસ્થાપનીય કલ્પસ્થિતિ—પૂર્વ પર્યાયના છેદનથી જે ઉપસ્થાપનીય–આરોપણીય હોય છે, તેનું નામ છેદોપસ્થાપનીય છે. આ છેદોપસ્થાપનીય મહાવ્રતનું પુનઃ સ્પષ્ટ રૂપે આરોપણ કરવા રૂપ હોય છે. આ છેદોપસ્થાપનીયનો સદ્ભાવ પહેલા અને છેલ્લા તીર્થંકરોના તીર્થોમાં હોય છે આ છેદોપસ્થાપના રૂપ જે કલ્પ છે–જે સાધુનો આચાર છે, તે આચારની સ્થિતિનું નામ છેદોપસ્થાપનીય કલ્પસ્થિતિ છે.

(૩) નિર્વિશમાન કલ્પસ્થિતિ—પરિહાર વિશુદ્ધિ તપનું જેઓ પાલન કરે છે તેમને નિર્વિશમાનક કહે છે. તેમને પારિહારિક પણ કહે છે. તેમનો જે કલ્પ (આચાર) છે તેનું નામ નિર્વિશમાન કલ્પ (આચાર) છે તે કલ્પમાં જે સ્થિતિ (મર્યાદા) હોય છે તેનું નામ નિર્વિશમાન કલ્પસ્થિતિ છે. તે સ્થિતિ ગ્રીષ્મ, શીત અને વર્ષાકાળમાં જઘન્ય, મધ્યમ અને ઉત્કૃષ્ટ તપથી યુક્ત હોય છે. જઘન્ય તપ ક્રમશઃ એક ઉપવાસ, છઠ્ઠ અને અઠ્ઠમની તપસ્યા રૂપ હોય છે. મધ્યમ તપ ક્રમશઃ છઠ્ઠ,

शानि। पारणके चात्राचामाम्लमेव। तथा—असंसृष्टा १, संसृष्टा २, संसृष्टाऽसंसृष्टा ३, अल्पलेपा ४, अवगृहीता ५, प्रगृहीता ६, उज्झितधर्मिका ७, इत्येतासु सप्तसु पिण्डैषणासु आद्ययोर्द्वयोरभिग्रहः, अत्रशिष्टासु पञ्चसु पुनरेकया भक्तग्रहणम्, एकया च पानकग्रहणम्। तदुक्तम्—

"पारणगे आयामं, पंचसु गहो दोसभिग्गहो भिक्खा"।

छाया—पारणके आचामाम्लं पञ्चसु ग्रहो द्वयोरभिग्रहो भिक्षायाम्। इति।

इति तृतीया। ३। तथा—निर्विष्टकल्पस्थितिः—निर्विष्टाः=आसेवितविवक्षितचारित्राः—अनुपारिहारिका इत्यर्थः, तेषां कल्पस्तस्य स्थितिः। अत्र—प्रतिदिनमाचामाम्लं तपो भिक्षा तथैव। उक्तं च—

लसे पारणा होताहै, तथा असंसृष्टा१ संसृष्टा२ (लेपयुक्त) संसृष्टासंसृष्टा ३ अल्पलेपा ४ अवगृहीता ५ प्रगृहीता ६ एवं उज्झितधर्मिका इन सात पिण्डैषणाओंमेंसे आदिकी दो एषणाओंका अभिग्रह होता है, बाकीकी पांच एषणाओंमेंसे एक एक एषणासे भक्त ग्रहण और पानक ग्रहण होता है, अर्थात् एक एषणासे भक्त ग्रहण और एक एषणासे पानकका ग्रहण होता है। कहा भी है-" पारणगे आयामं " इत्यादि।

इस प्रकारसे यह तृतीय कल्पस्थिति है, निर्विष्टकल्पस्थिति जिन्होंने विवक्षित चारित्रका अच्छी तरहसे आसेवन कियाहै, ऐसे अनुपारिहारिकोंके कल्पकी जो स्थितिहै, वह निर्विष्ट कल्पस्थितिहै, यहां पर प्रतिदिन आचामाम्लकी (आयंबिल) तपस्या और भिक्षा भी उसी तरहसे

અઠ્ઠમ અને દશમ (ચાર ઉપવાસ) ની તપસ્યા રૂપ હોય છે. ઉત્કૃષ્ટ તપ ક્રમશઃ અઠ્ઠમ, દશમ અને દ્વાદશ (પાંચ ઉપવાસ) ની તપસ્યા રૂપ હોય છે. પારણાને દિવસે આયંબીલ કરવામાં આવે છે, તથા (૧) અસંસૃષ્ટા, (૨) સંસૃષ્ટા, (૩) સસૃષ્ટાઽસંસૃષ્ટા, (૪) અલ્પલેપા, (૫) અવગૃહીતા, (૬) પ્રગૃહીતા અને (૭) ઉજ્ઝિતધર્મિકા, આ સાત પિંડૈષણાઓમાંથી પહેલી બે એષણાઓનો અભિગ્રહ થાય છે અને બાકીની પાંચ એષણાઓમાંથી એક એક એષણાથી આહાર ગ્રહણ અને પાનક ગ્રહણ થાય છે. એટલે કે એક એષણાથી આહાર ગ્રહણ થાય છે અને એક એષણાથી પાનકનું ગ્રહણ થાય છે. કહ્યું પણ છે કે " पारणगे आयाम " ઇત્યાદિ. આ પ્રકારની નિર્વિશમાન કલ્પસ્થિતિ છે.

(૪) નિર્વિષ્ટ કલ્પસ્થિતિ—જેમણે વિવક્ષિત ચારિત્રનું સમ્યક્ રીતે પાલન કર્યું છે એવા અનુપારિહારિકોના કલ્પની જે સ્થિતિ છે, તેને નિર્વિષ્ટ કલ્પસ્થિતિ કહે છે. અહીં પણ પ્રતિદિન આયંબિલની તપસ્યા અને ભિક્ષાચર્યા

"कप्पट्ठियावि पइदिणं, करेंति एमेव चायामं"।

छाया—कल्पस्थिता अपि प्रतिदिनं कुर्वन्ति एवमेव चाचामाम्लम्-इति।

अत्रेदं बोध्यम्-एते निर्विशमानका निर्विष्टाश्च परिहारविशुद्धिका उच्यन्ते। इह नवसंख्यको गणो भवति। तत्र चत्वारो ये परिहारं तपः कुर्वन्ति ते परिहारिका उच्यन्ते, चत्वारस्तु तद्वैयावृत्यकरा अनुपारिहारिका उच्यन्ते। एकस्तु कल्पस्थितो वाचनाचार्यो गुरुकल्पो भवति। तत्र परिहारिकाः षड् मासान् तपः कुर्वन्ति। तत एते निर्विष्टकायिका भवन्ति। ये च वैयावृत्यकरा आसन्, ते तपः कुर्वन्ति, निर्विष्टकायिकास्तु तेषां वैयावृत्यकरा भवन्ति। षण्मासांस्तपः कृत्वा तेऽपि निर्विष्टकायिका भवन्ति। ततः कल्पस्थितो वाचनाचार्यस्तपः प्रति-

---

होती है, कहा भी है-"कप्पट्ठिया वि पइदिणं करेंतिएमेव चायामं" यहां इस प्रकारसे समझना चाहिये-ये निर्विशमानक और निर्विष्ट परिहारविशुद्धिक कहे जाते हैं। यहां नौ संख्याका गण होता है, अर्थात् नौ साधुओंका समूह होता है, इनमें चार जो परिहार तप करते हैं वे पारिहारिक कहलाते हैं, और चार जो इनकी वैयावृत्त्य करनेवाले होते हैं वे अनुपारिहारिक कहलाते हैं, और एक कल्पस्थित वाचनाचार्य होता है, जो गुरुकल्प-गुरु जैसा होता है, इनमें पारिहारिक ६ महिने तक तप करते हैं, तब ये निर्विष्टकायिक हो जाते हैं, और जो इनकी वैयावृत्त्य करनेवाले थे, वे तप करने लगते हैं, तथा जो निर्विष्टकायिक बन चुके हैं, वे इनकी वैयावृत्त्य करनेवाले हो जाते हैं वे छह महिने तक तप करतेहैं, और तप करके वे भी निर्विष्टकायिक

પણ ઉપર બતાવ્યા અનુસાર જ થાય છે. કહ્યું પણ છે કે "कप्पट्ठिया वि पइदिणं करेंति एमेव चायामं" અહીં આ પ્રમાણે સમજવું જોઈએ. આ સાધુઓને નિર્વિશમાનક અને નિર્વિષ્ટ પરિહાર વિશુદ્ધિક કહે છે. અહીં નવ સાધુઓનો સમૂહ હોય છે. તેમાંથી જે ચાર સાધુઓ પરિહાર તપ કરે છે તેમને પારિહારિક કહેવાય છે, અને જે ચાર સાધુઓ તેમનું વૈયાવૃત્ય કરે છે તેમને અનુપારિહારિક કહેવાય છે બાકીનો એક સાધુ કલ્પસ્થિત વાચનાચાર્ય થાય છે. તે ગુરુકલ્પ-ગુરુ જેવો હોય છે. તેમાં જે ચાર પારિહારિકો હોય છે તેઓ છ માસ સુધી તપ કરે છે અને ત્યાર બાદ તેઓ નિર્વિષ્ટકાયિક થઈ જાય છે અને તેમનું વૈયાવૃત્ય કરનારા ચાર સાધુઓ તપ કરવા લાગી જાય છે અને જેઓ નિર્વિષ્ટકાયિક બની ગયા છે તેઓ તેમનું વૈયાવૃત્ય કરવા માંડી જાય છે. છ માસ સુધી આ ક્રમ પણ ચાલ્યા કરે છે. ત્યાર બાદ તપ કરનારા તે ચાર સાધુઓ

पद्यते, एको वाचनाचार्यो भवति, अन्ये तद्वैयावृत्त्यकरा भवन्ति। ततः षण्मासांस्तपः कृत्वा सोऽपि निर्विष्टकायिको भवति। इत्थमयं परिहारविशुद्धिकः कल्पोऽष्टादशमासिको भवति। उक्तं च—

"परिहारिय छम्मासे, तह अणुपरिहारियावि छम्मासे।
कप्पट्ठिओ छम्मासे, एए अट्ठारसवि मासा ॥ १ ॥"

छाया—परिहारिकाः षण्मासान् तथा अनुपारिहारिका अपि षण्मासान्।
कल्पस्थितः षण्मासान् एतेऽष्टादशापि मासाः ॥ १ ॥ इति।

एते कीदृशा भवन्तीत्याह—

"सव्वे चरित्तवंतो उ, दंसणे परिनिट्ठिया।
नवपुव्विया जहन्नेण, उक्कोसा दसपुव्विया ॥ १ ॥
पंचविहे ववहारे, (आगमादिक) कप्पम्मि दुविहम्मि य।
दसविहे य पच्छित्ते, सव्वे ते परिनिट्ठिया ॥ २ ॥"

छाया—सर्वे चारित्रवन्तस्तु दर्शने परिनिष्ठिताः।
नवपूर्विका जघन्येन, उत्कर्षाद् दशपूर्विकाः ॥ १ ॥
पञ्चविधे व्यवहारे, कल्पे द्विविधे च।
दशविधे च प्रायश्चित्ते, सर्वे ते परिनिष्ठिताः ॥ २ ॥ इति चतुर्थी ।४।

हो जाते हैं। इस के बाद कल्पस्थित वाचनाचार्य तप करता है, उनमेंसे एक वाचनाचार्य होता है, और बाकीके उसकी वैयावृत्त्य करनेवाले हो जाते हैं, वाचनाचार्य भी छ माह तक तप करके निर्विष्टकायिक हो जाता है, इस तरह यह परिहार विशुद्धिक कल्प अठारह मासका होता है। कहा भी है—"परिहारिय छम्मासे" इत्यादि।

इस श्लोकका अर्थ पारिहारिक छह मासका होता है, अनुपारिहारिक छह मासका होता है, और कल्पस्थिति छह मासका होता है, इस तरह अठारह महिने परिहारविशुद्धिमें लगते हैं, ये सब चारित्रवाले

પણ નિર્વિષ્ટકાયિક થઈ જાય છે. ત્યાર બાદ કલ્પસ્થિત વાચનાચાર્ય છ માસ સુધી તપ કરે છે, બાકીનામાંથી એક વાચનાચાર્ય બને છે અને બાકીના સાત તેમનું વૈયાવૃત્ય કરે છે. છ માસ પછી તે તપ કરનાર સાધુ પણ નિર્વિષ્ટકાયિક થઈ જાય છે. આ રીતે આ પરિહારવિશુદ્ધિક તપ અઢાર માસ સુધી ચાલે છે. કહ્યું પણ છે કે "परिहारिय छम्मासे" ઇત્યાદિ.

એટલે કે પારિહારિકમાં છ માસ, અનુપારિહારિકમાં છ માસ અને કલ્પસ્થિતિમાં છ માસ, એ રીતે પરિહાર વિશુદ્ધિમાં કુલ ૧૮ માસનો સમય

तथा—जिनकल्पस्थितिः—जिनाः=गच्छनिर्गतसाधुविशेषाः तेषां कल्पस्थितिः । सा त्वेवं विज्ञेया—यो हि प्रथमसंहननसंपन्नो भवति स जिनकल्पमतिपन्नो भवति, अयं च जघन्यतो नवमपूर्वस्य तृतीयमाचार वस्तु यावद् धारको भवति, उत्कृष्टतस्तु किंचिन्न्यूनदशपूर्वाणाम् । असौ पुनरेकाकी विहरति । दिव्याद्युपसर्गरोगवेदनाश्च सहते । दशगुणयुक्तस्थण्डिले एव उच्चारादि परित्यजति । सर्वोपधिविशुद्धायां वसतौ वसति । तृतीयपौरुष्यां भिक्षाचर्यां करोति । पिण्डैषणास्वा-

होते हैं, दर्शनमें पूर्ण परिपक्व होते हैं । कमसे कम ये नौ पूर्वके और उत्कृष्टसे १० पूर्वके धारी होते हैं । पांच प्रकारके व्यवहारमें दो प्रकारके कल्पमें और दश प्रकारके प्रायश्चित्तमें ये पूर्ण निष्णात होते हैं । पांचवां जिनकल्पस्थिति गच्छनिर्गत साधुविशेष जिन होते हैं । इन जिनोंकी जो कल्पस्थिति है, वह इस प्रकारसे होती है, जो प्रथम संहननका धारी होता है, वह जिनकल्पप्रतिपन्न होता है, यह जघन्यसे नवम पूर्वकी तृतीय आचार वस्तु तकका धारक होता है, और उत्कृष्टसे किञ्चित् कम दशवें पूर्वका धारी होता है, यह अकेलाही विचरता है, दिव्य आदि उपसर्गोंको एवं रोगजन्य वेदनाओंको सहन करता है, दश गुणोंसे युक्त स्थण्डिलमेंही उच्चार आदि परठता है, सर्वोपधिसे विशुद्ध वसति—उपाश्रयमें रहता है, तृतीय पौरुषीमें यह

વ્યતીત થાય છે. તે સાધુઓ ચારિત્રસંપન્ન અને દર્શનમાં પૂર્ણ પરિપકવ હોય છે. તેઓ ઓછામાં ઓછા નવ પૂર્વના ધારક અને વધારેમાં વધારે દસ પૂર્વના ધારક હોય છે તેઓ પાંચ પ્રકારના વ્યવહારના, બે પ્રકારના કલ્પના અને દસ પ્રકારના પ્રાયશ્ચિત્તના પૂર્ણ રૂપે નિષ્ણાત હોય છે.

(૫) જિન કલ્પસ્થિતિ—ગચ્છનિર્ગત સાધુવિશેષને જિન કહે છે. તે જિનોની કલ્પસ્થિતિ આ પ્રકારની હોય છે—

તેઓ પ્રથમ સંહનનના ધારક હોય છે, જિનકલ્પપ્રતિપન્ન હોય છે, તેઓ ઓછામાં ઓછા નવમાં પૂર્વની ત્રીજી આચારવસ્તુ પર્યન્તના ધારક હોય છે અને અધિકમાં અધિક સહેજ ન્યૂન દસ પૂર્વના ધારક હોય છે. તેઓ એકલા જ વિચરે છે. તેઓ દિવ્ય આદિ ઉપસર્ગોને અને રોગજન્ય વેદનાઓને સહન કરે છે, દસ ગુણોથી યુક્ત સ્થંડિલ (ઉચ્ચારાદિ પરઠવાનું સ્થાન વિશેષ) માં જ ઉચ્ચાર (મળત્યાગ) આદિ પરઠે છે, અને સર્વોપધિની અપેક્ષાએ, વિશુદ્ધ વસતિમાં (ઉપાશ્રયમાં) રહે છે. તેઓ ત્રીજા પ્રહરમાં જ

द्वयोरग्रहणं भवति । अवशिष्टासु ग्राह्यासु पञ्चसु पिण्डैषणासु द्वयोर्योगे सति तन्मध्यादेकतरस्या अभिग्रहधारी भवति । उक्तंच—

" गच्छम्मिय निम्मायाधीरा जाहेयगाहियपरमत्था ।
अग्गहे जोग अभिग्गहे, उवेंति जिण कप्पियचरित्तं ॥ १ ॥ "

गच्छे च निर्माताः धीरा यदा च गृहीतपरमार्थाः । अग्रहे योगे अभिग्रहे उपयन्ति जिनकल्पिकचारित्रम् ॥ इति पञ्चमी । ५ । तथा—स्थविर कल्पस्थितिः—स्थविराः=गच्छप्रतिबद्धा आचार्यादयः तेषां कल्पस्थितिः । उक्तं च—

" संजमकरणुज्जोगा, निप्फायगा नाणदंसणचरित्ते ।
दीहाऊ वुड्ढवासे, वसही दोसेसु विप्पमुक्का ॥ १ ॥ "

छाया—संयमकरणोद्योगा निष्पादका ज्ञानदर्शनचारित्रेषु ।
दीर्घायुषो वृद्धवासे, दोषैश्च विप्रमुक्ता वसतिः ॥ १ ॥

भिक्षाचर्या करता है, सात पिण्डैषणाओंमेंसे आदिकी दो पिण्डैषणाओंका नहीं ग्रहण करने वाला होता है इत्यादि । बाकीकी पांच एषणाओंमेंसे दोका योग होने पर उनमें से किसी एक एषणासे भिक्षा–भक्तपानको लेना है, कहा भी है–" गच्छम्मिय निम्माया " ५। इस प्रकारसे यह पांचवीं कल्पस्थिति है, छट्ठी स्थविरकल्पस्थिति इस प्रकारसे है–गच्छमें जो आचार्य आदि साधु रहते हैं वे स्थविर कहलाते हैं, इनके कल्पकी जो स्थिति है, वह स्थविरकल्पस्थिति है। कहा भी है–" संजमकरणुज्जोगा " इत्यादि ।

इसका भाव ऐसा है कि स्थविर कल्पका क्रम इस प्रकारसे है, प्रथम श्रुत चारित्र रूप धर्मका श्रवण उससे सम्यक्त्वका लाभ बादमें आलोचनापूर्वक प्रव्रज्याकी प्रतिपत्ति उससे ग्रहणशिक्षा एवं आसेवनशिक्षाके अधिकारका लाभ सूत्रके ग्रहण करनेरूप ग्रहणशिक्षा एवं

ભિક્ષાચર્યા કરે છે તેઓ પહેલી બે પિંડૈષણાના ગ્રહણ કરવાવાળા હોતા નથી છે અને બાકીની પાંચ એષણાઓમાંથી બેનો યોગ થતાં તેમાંથી કોઈ એક એષણા વડે ભિક્ષા (આહાર પાણી) ગ્રહણ કરતા હોય છે કહ્યું પણ છે–" गच्छम्मिय निम्माया इत्यादि । આ પ્રકારનું પાંચમી કલ્પસ્થિતિનું સ્વરૂપ છે.

(૬) સ્થવિરકલ્પસ્થિતિ—જે આચાર્ય આદિ સાધુ ગચ્છમાં રહે છે તેમને સ્થવિર કહે છે. તેમના કલ્પની જે સ્થિતિ છે તેને સ્થવિરકલ્પસ્થિતિ કહે છે. કહ્યું પણ છે કે " संजमकरणुज्जोगा " ઇત્યાદિ—

આ ગાથામાં સ્થવિર કલ્પનો આ પ્રકારનો ક્રમ બતાવ્યો છે— પ્રથમ શ્રુતચારિત્ર રૂપ ધર્મનું શ્રવણ અને તેના દ્વારા સમ્યકત્વની પ્રાપ્તિ, ત્યાર બાદ આલોચનાપૂર્વક પ્રવ્રજ્યાની પ્રતિપત્તિ અને તેના દ્વારા ગ્રહણશિક્ષા અને આસેવનશિક્ષાના અધિકારનો લાભ, (સૂત્રને ગ્રહણ કરવા રૂપ ગ્રહણ

तथा च–" पव्वज्जा सिक्खापयमत्थग्गहणं च अनियओ वासो ।
निप्फत्ती य विहारो, सामाचारी ठिई चेव ॥ १ ॥

छाया —प्रव्रज्या शिक्षापदम् अर्थग्रहणं च अनियतो वासः ।
निष्पत्तिश्च विहारः सामाचारी स्थितिश्चैव ॥ १ ॥ इति ।

इति षष्ठी । ६ । जिनकल्पिकस्थविरकल्पिकस्थितिविषये विशेषजिज्ञासुभिरुत्तराध्ययनसूत्रस्य द्वितीयेऽध्ययने मत्कृतायां प्रियदर्शिनीटीकायामवलो-

---

प्रतिलेखनादि रूप आसेवनशिक्षा है, इसके बाद सूत्रोंका अर्थ ग्रहण करना पश्चात् अनियतवास. अनियतवासका तात्पर्य है, गुरुकी आज्ञासे ग्राम नगर एवं सन्निवेश आदिकोंमें अथवा देशान्तरमें विचरण करना यह विचरण करनेकी योग्यतासंपन्न जो साधु होता है, उसीका विचरण होता है, फिर भी वह एकाकी विहार नहीं कर सकता किन्तु अन्य साधुओंके साथही विहार करता है, स्थविरकल्पका आराधक साधु संयमके पालन करनेमें विशेष उद्योगवाला होता है, ज्ञानदर्शन एवं चारित्रका पूर्ण रूपसे आराधक होता है, लम्बी आयुवाला होने से वह जंघाबल कम हो जाने पर स्थिरवास अंगीकार कर लेता है, और इसी स्थिरवाससे वह उसी क्षेत्रमें रहता हुआ भी दोषोंसे रहित वसतिमें रहता है । तथा—" पव्वज्जा सिक्खावय " इत्यादि ।

इस गाथाको अर्थ पूर्वोक्त रूपसेहीहै, जिन कल्पिक एवं स्थविरकल्पिक की स्थितिके विषयमें विशेष जिज्ञासुओंको उत्तराध्ययन सूत्रकी द्वितीय अध्ययनकी मेरी बनाई हुई प्रियदर्शिनी टीका देखनी चाहिये यहां जो इस

શિક્ષા અને પ્રતિલેખના આદિ રૂપ આસેવન શિક્ષા હોય છે) ત્યારબાદ સૂત્રોનો અર્થ ગ્રહણ કરવામાં આવે છે અને ત્યાર બાદ અનિયતવાસ કરે છે. ગ્રામ, નગર, સન્નિવેશ આદિ કોમાં ગુરુની આજ્ઞાથી વિચરવું તેનું નામ અનિયતવાસ છે. વિચરણ કરવાની યોગ્યતાવાળા સાધુને જ આ પ્રમાણે વિચરણ કરવાની આજ્ઞા મળે છે. છતાં તે સાધુ એકાકી વિહાર કરી શકતો નથી ગુરુની આજ્ઞાથી અન્ય સાધુઓ તેની સાથે વિહાર કરે છે. સ્થવિર કલ્પનો આરાધક સાધુ સંયમના પાલનમાં વિશેષ પ્રયત્નશીલ હોય છે જ્ઞાન, દર્શન અને ચારિત્રનો પૂર્ણ રૂપે આરાધક હોય છે જો તેનું આયુષ્ય લાંબુ હોય અને તે ચાલવાને અશક્ત થઇ ગયો હોય તો કોઈ ક્ષેત્રમાં તે સ્થિરવાસ અંગીકાર કરી લે છે. આ રીતે સ્થિરવાસમાં એક જ ક્ષેત્રમાં રહેવા છતાં પણ તે સાધુ દોષોથી રહિત વસતિમાં જ રહે છે

તથા—" પવ્વજ્જા સિક્ખાવય " ઇત્યાદિ—

આ ગાથાનો ભાવાર્થ ઉપર કહ્યા પ્રમાણે જ છે. જિનકલ્પિક અને સ્થવિર કલ્પિકની સ્થિતિના વિષયમાં વિશેષ જાણવાની ઇચ્છાવાળા પાઠકોએ ઉત્તરાધ્યયન સૂત્રના બીજા અધ્યનનની મારી બનાવેલી પ્રિયદર્શિની ટીકા વાંચી લેવી. અહીં

कनीयम् । अत्र योऽयं सामायिककल्पस्थितिरित्यादिक्रमेण पाठः स युक्ततर-एव । यतः पूर्वं सामायिकमेवारोप्यते ततश्छेदोपस्थापनीयम् । गृहीतछेदोपस्थापनीया एव निर्विशमानका भवन्ति, ततश्च ते निर्विष्टकायिका भवन्ति । ततो जिनकल्पिकाः स्थविरकल्पिका वा भवन्तीति ॥ सू० ५६ ॥

अनन्तरसूत्रे कल्पस्थितिरुक्ता, सा च भगवता महावीरेण निर्दिष्टेति तत्सम्बन्धिकं किमपि वक्तुमाह—

मूलम्—समणे भगवं महावीरे छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं मुंडे जाव पव्वइए । समणस्स णं भगवओ महावीरस्स छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं अणंते अणुत्तरे जाव समुप्पण्णे । समणे भगवं महावीरे छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं सिद्धे जाव सव्वदुक्खप्पहीणे ॥ सू० ५७ ॥

प्रकारसे–सामायिककल्पस्थिति१ छेदोपस्थापनीयकल्पस्थिति२–इत्यादि क्रमसे पाठ रखा गयाहै, सो इस कारणसे रखा गयाहै, कि पहिले सामायिकका ही आरोपण होता है, बादमें छेदोपस्थापनीयका आरोपण होता है, तथा गृहीतछेदोपस्थापनावालेही निर्विशमानक होते हैं, इसके बाद वे निर्विष्टकायिक हो जाते हैं, बादमें वे जिनकल्पिक या स्थविरकल्पिक हो जाते हैं ॥ सू० ५६ ॥

इस ऊपरके सूत्रमें कल्पस्थिति जो कही गईहै, वह भगवान् महावीरने प्रदर्शित की है, इसलिये अब सूत्रकार महावीरके सम्बन्धमें कुछ कहते हैं—

જે સામાયિકકલ્પસ્થિતિ, છેદોપસ્થાપનીય કલ્પસ્થિતિ, ઇત્યાદિ ક્રમથી પાઠ રાખવામાં આવ્યો છે તેનું કારણ એ છે કે પહેલાં સામાયિકનું જ આરોપણ થાય છે, ત્યાર બાદ છેદોપસ્થાપનીયનું આરોપણ થાય છે.

તથા ગૃહીત છેદોપસ્થાપનાવાળા જ નિર્વિશમાનક થાય છે, ત્યાર બાદ જ તેઓ નિર્વિષ્ટકાયિક થઇ જાય છે, અને ત્યાર બાદ તેઓ જિનકલ્પિક અથવા સ્થવિરકલ્પિક થઇ જાય છે. ॥ સૂ. ૫૬ ॥

ઉપરના સૂત્રમાં કલ્પસ્થિતિનું જે પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યું છે તે મહાવીર પ્રભુ દ્વારા કરવામાં આવ્યું છે, તેથી હવે સૂત્રકાર મહાવીર પ્રભુ વિષે થોડું કથન કરે છે. " समणे भगवं महावीरे " ઇત્યાદિ—

छाया—श्रमणो भगवान् महावीरः षष्ठेन भक्तेन अपानकेन मुण्डो यावत् प्रव्रजितः। श्रमणस्य खलु भगवतो महावीरस्य षष्ठेन भक्तेन अपानकेन अनन्तम् अनुत्तरं यावत् समुत्पन्नम्। श्रमणो भगवान् महावीरः षष्ठेन भक्तेन अपानकेन सिद्धो यावत् सर्वदुःखप्रहीणः ॥ सू० ५७ ॥

टीका—'समणे भगवं' इत्यादि।

व्याख्या स्पष्टा। नवरम्-अपानकेन=पानीयरहितेन। 'मुण्डो यावत्' इत्यत्र यावत्पदेन-'भूत्वा आगारादनगारिताम्' इत्यस्य संग्रहः। 'अनुत्तरं यावत्' इत्यत्र यावत्पदेन-'निर्व्याघातं निरावरणं कृत्स्नं प्रतिपूर्णं केवलवरज्ञान-दर्शनम्' इत्येषां संग्रहः। 'सिद्धो यावत्' इत्यत्र यावत्पदेन-'बुद्धो मुक्तः परि-निर्वृतः' इत्येषां संग्रहः ॥ सू० ५७ ॥

"समणे भगवं महावीरे" इत्यादि सूत्र ५७॥

टीकार्थ-श्रमण भगवान् महावीर अपानक षष्ठ भक्तसे मुण्डित होकर यावत् प्रव्रजित हुए। श्रमण भगवान् महावीरको अपानक षष्ठ भक्तसे अनन्त अनुत्तर यावत् केवलवर ज्ञान दर्शन उत्पन्न हुए। श्रमण भगवान् महावीर अपानक षष्ठ भक्तसे सिद्ध यावत् सर्व दुःखोंसे रहित हुए। अपानक शब्दका अर्थ पानीरहित है "मुण्डो यावत्" यहां यावत्पदसे "भूत्वा अगारादनगारिताम्" इस पाठका ग्रहण हुआ है "अनुत्तरं यावत्" यहां यावत्पदसे "निर्व्याघातं निरावरणं कृत्स्नं प्रतिपूर्णं केवलवरज्ञानदर्शनं" इस पाठका संग्रह हुआ है, एवं "सिद्धो यावत्" यहांके यावत्पदसे "बुद्धो मुक्तः परिनिर्वृतः" इस पाठका संग्रह हुआ है ॥ सू० ५७ ॥

શ્રમણ ભગવાન મહાવીર અપાનક ષષ્ઠ ભક્ત પૂર્વક (નિર્જળ છઠ્ઠની તપસ્યા કરીને) મુંડિત થઈને ગૃહસ્થાવાસના ત્યાગપૂર્વક પ્રવ્રજિત થયા હતા. શ્રમણ ભગવાન મહાવીરને અપાનક ષષ્ઠ ભક્તની તપસ્યા વડે અનંત, અનુત્તર, નિર્વ્યાઘાત, નિરાવરણ, કૃત્સ્ન અને પ્રતિપૂર્ણ કેવલવરજ્ઞાનદર્શન ઉત્પન્ન થયા હતાં. અપાનક ષષ્ઠ ભક્તની તપસ્યા દ્વારા જ શ્રમણ ભગવાન મહાવીર સિદ્ધ, બુદ્ધ, મુક્ત પરિનિર્વૃત અને સમસ્ત દુઃખોથી રહિત થયા હતા.

જે ઉપવાસમાં પાણીનો પણ ત્યાગ કરવામાં આવે છે તે ઉપવાસને અપાનક ઉપવાસ કહે છે. એવા બે દિવસના નિર્જળ ઉપવાસને અપાનક ષષ્ઠ ભક્ત કહે છે. ॥ સૂ. ૫૭ ॥

भगवन्महावीरप्ररूपितधर्मानुयायिनस्तु देवत्वेनोत्पद्यन्त एवेति देवविषयकं किंचिन्निरूपयति—

मूलम्–सणंकुमारमाहिंदेसु णं कप्पेसु विमाणा छ जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता। सणंकुमारमाहिंदेसु णं कप्पेसु देवाणं भवधारणिज्जगा सरीरगा उक्कोसेणं छ रयणीओ उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता ॥ सू० ५८ ॥

छाया––सनत्कुमारमाहेन्द्रयोः खलु कल्पयोः विमानानि षड् योजनशतानि ऊर्ध्वमुच्चत्वेन प्रज्ञप्तानि। सनत्कुमारमाहेन्द्रयोः खलु कल्पयोर्देवानां भवधारणीयकानि शरीरकाणि उत्कर्षेण षड् रत्नयः ऊर्ध्वमुच्चत्वेन प्रज्ञप्तानि॥सू०५८॥

टीका—'सणंकुमारमाहिंदेसु' इत्यादि––

व्याख्या स्पष्टा ॥ सू० ५८ ॥

उक्तरूपेषु च देवशरीरेष्वाहारपरिणामोऽस्तीत्याहारपरिणामं परिणामसंबन्धाद् विषपरिणामं च निरूपयति––

मूलम्--छव्विहे भोयणपरिणामे पण्णत्ते, तं जहा--मणुन्ने १, रसिए २, पीणणिज्जे ३, बिंहणिज्जे ४, दीवणिज्जे ५, दप्पणिज्जे ६।

भगवान् महावीर द्वारा प्ररूपित धर्मके जो अनुयायी होते हैं वे देवकी पर्यायसे उत्पन्न होते हैं अतः अब सूत्रकार देवोंके सम्बन्धमें कथन करते हैं—

"सणंकुमारमाहिंदेसु ण कप्पेसु" इत्यादि सूत्र ५८ ॥

सूत्रार्थ–सनत्कुमार और माहेन्द्र इन दो कल्पोंके विमान छसोछसो ६००–६०० योजनके ऊंचे कहे गयेहैं। सनत्कुमार और माहेन्द्र कल्पके देवोंके भवधारणीय शरीर उत्कृष्टसे छ रत्निप्रमाण ऊंचे कहे गयेहैं ॥सू०५८॥

ભગવાન મહાવીર દ્વારા પ્રરૂપિત ધર્મના જેઓ અનુયાયી હોય છે તેઓ દેવની પર્યાયે ઉત્પન્ન થઈ જાય છે. તેથી હવે સૂત્રકાર દેવોના વિષયમાં થોડું કથન કરે છે "सणंकुमारमाहिंदेसु णं कप्पेसु" ઈત્યાદિ—

સૂત્રાર્થ–સનત્કુમાર કલ્પમાં અને માહેન્દ્ર કલ્પમાં વિમાનોની ઊંચાઈ છસો છસો ૬૦૦–૬૦૦ યોજનની કહી છે આ બન્ને કલ્પના દેવોના ભવધારણીય શરીરની ઉત્કૃષ્ટ ઊંચાઈ છ રત્નિપ્રમાણ કહી છે. ॥ સૂ. ૫૮ ॥

छव्विहे विसपरिणामे पण्णत्ते, तं जहा--डक्के १ भुत्ते २ निवइए ३ मंसाणुसारी ४ सोणियाणुसारी ५ अट्ठिमिंजाणुसारी ६ ॥ सू० ५९ ॥

छाया--पड्विधो भोजनपरिणामः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-मनोज्ञो १ रसिकः २ प्रीणनीयो ३ बृंहणीयो ४ दीपनीयो ५ दर्पणीयः ६। पड्विधो विषपरिणामः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-दष्टो १ भुक्तो २ निपतितो ३ मांसानुसारी ४ शोणितानुसारी ५ अस्थिमज्जानुसारी ६ ॥ सू० ५९ ॥

टीका--' छव्विहे ' इत्यादि--

भोजनपरिणामः-भोजनस्य=आहारविशेषस्य परिणामः=परिणतिः पड्विधः प्रज्ञप्तः : तद्यथा-मनोज्ञः=सुन्दरः शुभत्वान्मनोज्ञभोजनसंबन्धाद् वा १, रसिकः=

उक्त रूपवाले देवशरीरोंमें आहार परिणाम होता है, अतः अब सूत्रकार आहार परिणामका और परिणामके सम्बन्धसे विष परिणामका निरूपण करतेहैं-"छव्विहे भोयण परिणामे पण्णत्ते" इत्यादि सूत्र५९॥

टीकार्थ-भोजन परिणाम६ प्रकारका कहा गयाहै, जैसे-मनोज्ञ१ रसिक २ प्रीणनीय ३ बृंहणीय ४ दीपनीय ५ और दर्पणीय ६

छ प्रकारका विषपरिणाम कहा गया है, जैसे-दष्ट १ भुक्त २ निपतित ३ मांसानुसारी ४ शोणितानुसारी ५ और अस्थिमज्जानुसारी ६ आहार विशेषका परिणाम परिणति परिणमन ६ प्रकारका जो कहा गया है, उसका तात्पर्य ऐसा है-जो आहार मनोज्ञ भोजनके सम्बन्धसे शुभ होता है, उसका परिणाम भी-परिपाकभी सुन्दर होता

ઉપરના સૂત્રમાં દેવોની વાત કરી. તે દેવશરીરોમાં આહાર પરિણામનો પણ સદ્‌ભાવ હોય છે, તેથી હવે સૂત્રકાર આહાર પરિણામનું અને પરિણામના સબંધથી વિષ પરિણામનું નિરૂપણ કરે છે. "छव्विहे भोयणपरिणामे पण्णत्ते" ઇત્યાદિ-

ભોજન પરિણામના નીચે પ્રમાણે ૬ પ્રકાર કહ્યા છે—(૧) મનોજ્ઞ, (૨) રસિક, (૩) પ્રીણનીય, (૪) બૃંહણીય, (૫) દીપનીય અને (૬) દર્પણીય

વિષ પરિણામના પણ ૬ પ્રકાર કહ્યા છે—(૧) દષ્ટ, (૨) ભુક્ત, (૩) નિપતિત, (૪) માંસાનુસારી, (૫) શોણિતાનુસારી અને (૬) અસ્થિ મજ્જાનુસારી

આહાર વિશેષની પરિણામ પરિણતિ અથવા આહારના પરિણમનના જે છ પ્રકારો કહ્યા છે તેનું સ્પષ્ટીકરણ નીચે પ્રમાણે છે—

જે આહાર મનોજ્ઞ ભોજનના સંબંધથી શુભ હોય છે તેનું પરિણમન (પરિપાક) પણ સુંદર હોય છે. જે આહાર રસયુક્ત ભોજનવાળો હોય છે

रसयुक्तो रसयुक्तभोजनसंबन्धात् २, प्रीणनीयः=रसादिधातुसमताकारी ३, बृंहणीयः=धातूपचयकारी ४, दीपनीयः=अग्निबलजनकः ५, दर्पणीयः-बलकर उत्साहकरो वा ६। अथवा-परिणामः-पर्यायः स्वभावो धर्म इति यावत्। परिणामपरिणामवतोरभेदोपचारात् परिणामवद् भोजनमेवात्र मनोज्ञादिभेदभिन्नं बोध्यम्। मनोज्ञादिशब्दाश्च नपुंसकलिङ्गा बोध्याः। तत्र-मनोज्ञम्-अभिलषणीयं भोजनम् १, रसिकं=माधुर्यादिरसयुक्तं भोजनम् २। प्रीणनीयादीनामर्थः पूर्ववद् बोध्यः ६ इति। तथा-विषपरिणामः-विषस्य परिणामो दष्टादिभेदैः षड्-

है, जो आहार रसयुक्त भोजनवाला होता है, उसका परिणाम भी रसयुक्त होता है २, जो आहार रसादि धातुओंमें समताका करनेवाला होता है, उसका परिणाम भी ऐसाही होता है, अतः प्रीणनीय कहा गया है ३, जो आहार धातुका उपचय-वृद्धि-करनेवाला होता है, वह आहार परिणामकी अपेक्षा बृंहणीय कहा गया हैं ४, जो आहार अग्निबलजनक होता है, वह दीपनीय कहा गया है ५, जो आहार बलकर अथवा उत्साहकर होता है, वह दर्पणीय कहा गया है ६। अथवा-परिणाम शब्दका अर्थ पर्याय स्वभाव धर्म ऐसा भी होता है, इसलिये परिणाम और परिणामीमें अभेदके उपचारसे परिणाम शब्द द्वारा परिणामवाला भोजनही यहां मनोज्ञ आदि भेदसे ग्रहण हुआ है; ऐसा जानना चाहिये जब मनोज्ञादि शब्द भोजनके विशेषण रूपसे कहे जायेंगे तब वे यहां नपुंसक लिङ्गवाले माने जावेंगे अतः जो भोजन अभिलषणीय होता है, वह मनोज्ञ है, जो भोजन माधुर्यादि

તેનો પરિપાક પણ રસયુક્ત હોય છે જે આહાર રસાદિ ધાતુઓમાં સમતા કરનારો હોય છે તેનું પરિણામ પણ એવું જ હોય છે. તેથી એવા આહારને પ્રીણનીય કહ્યો છે જે આહાર ધાતુની વૃદ્ધિ કરનારો હોય છે એવા આહારને પરિણામની અપેક્ષાએ બૃંહણીય કહ્યો છે જે આહાર અગ્નિબલ જનક (ગરમી ઉત્પન્ન કરનાર) હોય છે તેને દીપનીય કહ્યો છે. જે આહાર બલવર્ધક અથવા ઉત્સાહવર્ધક હોય છે તેને દર્પણીય કહ્યો છે અથવા 'પરિણામ' પદનો અર્થ પર્યાય, સ્વભાવ અને ધર્મ પણ થાય છે. તેથી પરિણામ અને પરિણામીમાં અભેદના ઉપચારની અપેક્ષાએ પરિણામ શબ્દ દ્વારા પરિણામવાળું ભોજન જ અહીં મનોજ્ઞ આદિ ભેદો વડે ગ્રહણ થયુ છે, એમ સમજવું જોઈએ. જો મનોજ્ઞ આદિ શબ્દોને ભોજનના વિશેષણ રૂપે વાપરવામાં આવે તો અહીં નાન્યતર જાતિમાં તે પદોનો પ્રયોગ કરવો પડશે. જેમકે-જે ભોજન અભિલષણીય (મન ભાવતું) હોય છે તેને મનોજ્ઞ ભોજન કહે છે. જે ભોજન

विधो भवति। अयं भावः-श्वादिना दष्टस्य जनस्य तद्दंष्ट्रास्थितविषं पीडां जनयतीति तद्विषं दशनानन्तरपीडाकारित्वाद् दष्टमित्युच्यते, तद्धि जङ्गमं विषं भवति। १। यत् पुनर्भुक्तं सत् पीडाकारि भवति तद् भुक्तम्। इदं च स्थावरं विषम्। २। निपतितम्-यत् पुनरुपरि पतितं सत् पीडयति तन्निपतितमित्युच्यते। इदं च त्वग्विषं दृष्टिविषं चेति द्विविधं भवति। ३। मांसानुसारि-यद्विषं मांसान्तधातुं व्याप्नोति तत्॥ ४॥ शोणितानुसारि-यद्विषं पुनः शोणितमनु-

रससे युक्त होता है, वह रसिक होता है, प्रीणनीय आदि शब्दोंका अर्थ पूर्ववत्ही है, विषका परिणाम दष्ट आदिके भेदसे ६ प्रकारका होता है, भाव इसका यह है कि-कुत्ते आदिके द्वारा काटे गये जनको उसकी दंष्ट्रामें रहा हुआ विष पीडा उत्पन्न करता है, इसलिये यह विष काटनेके बाद पीडा करनेवाला होनेसे दष्ट ऐसा कहा जाता है, यह विष जंगम विष कहलाता है, तथा जो विष खाने पर पीडा करनेवाला होता है, वह भुक्त विष कहलाता है, यह स्थावर विष होता है, जो विष शरीर पर पडतेही पीडा जनक होता है, वह विष निपतित विष कहलाता ऐसा यह विष त्वग्विष और दृष्टिविषके भेदसे दो प्रकारका होता है, जो विष मांस तककी धातुको व्याप्त कर लेता है, वह विष मांसानुसारी विष कहलाता है, खूनको जो विष व्याप्त कर लेता है, वह शोणितानुसारी विष है ५ और जो विष अस्थि एवं

માધુર્ય આદિ રસથી યુક્ત હોય છે તેને રસિક અથવા રસાળ કહે છે. પ્રીણનીય આદિ પદોનો અર્થ પણ આગળ કહ્યા મુજબ સમજવો. હવે વિષના જે છ પ્રકારના પરિણામ કહ્યા છે તેમનું સ્પષ્ટીકરણ કરવામાં આવે છે—

કૂતરા આદિ કરડે ત્યારે તેમની દાઢેમાં રહેલું વિષ માણસના શરીરમાં પીડા ઉત્પન્ન કરે છે આ રીતે કરડયા બાદ આ વિષ પીડા ઉત્પન્ન કરનારૂં હોવાથી તેને દષ્ટવિષ કહે છે આ વિષને જંગમ વિષ પણ કહે છે.

જે વિષ ખાવાથી પીડા ઉત્પન્ન કરનારૂં હોય છે તેને ભુક્તવિષ કહે છે. આ પ્રકારના વિષને સ્થાવર વિષ પણ કહે છે. જે વિષ શરીર પર પડવાથી શરીરમાં પીડા ઉત્પન્ન કરે છે તે વિષને નિપતિત વિષ કહે છે. તે વિષના ત્વગ્વિષ અને દૃષ્ટિવિષ નામના બે ભેદ પડે છે જે વિષ માંસ પર્યન્તની ધાતુને વ્યાપ્ત કરી લે છે તે વિષને માંસાનુસારી વિષ કહે છે. જે વિષ રક્તમાં વ્યાપી જાય છે તેને શોણિતાનુસારી વિષ કહે છે. જે વિષ અસ્થિ અને

गच्छति तत् । ५ । तथा–अस्थिमज्जानुसारि–यद्विषम् अस्थिमज्जां चानुगच्छति तत् ॥ ६ ॥ विषस्य षड्विधत्वात्तत्परिणामोऽपि षड्विध उक्तः ॥ सू० ५९ ॥

उपर्युक्तानामर्थानां निर्णयस्तु सातिशयाप्तसकाशात् प्रश्नपूर्वकमेव भवतीति प्रश्नस्य षड्विधत्वमाह––

मूलम्--छव्विहे पट्ठे पण्णत्ते, तं जहा--संसयपट्ठे १, वुग्गहपट्ठे २, अणुजोगी ३, अणुलोमे ४, तहणाणे ५, अतहणाणे ६ ॥ सू० ६० ॥

छाया––षड्विधं पृष्टं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा–संशयपृष्टम् १, व्युद्ग्रहपृष्टम् २, अनुयोगि ३, अनुलोमम् ४, तथाज्ञानम् ५ अतथाज्ञानम् ६ ॥ सू० ६० ॥

टीका––' छव्विहे ' इत्यादि––

पृष्टं=प्रश्नः षड्विधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा–संशयपृष्टम्–कस्मिंश्चिद्विषये संशये सति यः प्रश्नो विधीयते स संशयपृष्टमिति । यथा––

" जइ तवसा वोदाणं, संजमओऽणासवोत्ति ते कहं णु ।
देवत्तं जंति जइ ?, सरागसंजमओ गुरुप्पाह ॥ १ ॥

मज्जाको व्याप्त कर लेता है, वह अस्थिमज्जानुसारी विष है ६ इस तरहसे विषकी षट् प्रकारतामें उसके परिणाममें भी षट् प्रकारता कही गई है ॥ सू० ५९ ॥

उपर्युक्त अर्थोंका निर्णय सातिशय आप्तसे प्रश्नपूर्वकही होता है, अतः अब सूत्रकार प्रश्नमें षट् प्रकारता कहते हैं––

' छव्विहे पट्ठे पण्णत्ते ' इत्यादि सूत्र ६० ॥

टीकार्थ–प्रष्ट प्रश्न छ प्रकारका कहा गयाहै, जैसे–संशयपृष्ट१ व्युद्ग्रह पृष्ट २ अनुयोगी ३ अनुलोम ४ तथाज्ञान ५ और अतथाज्ञान ६। किसी विषयमें संशय होने पर जो प्रश्न किया जाता है, वह संशयपृष्ट है ।

મજ્જામાં વ્યાપી જાય છે તેને અસ્થિ મજ્જાનુસારી વિષ કહે છે. આ પ્રકારે વિષની છ પ્રકારતાના કથન દ્વારા તેના પરિણામમાં પણ છ પ્રકારતાનું કથન થઈ જાય છે, એમ સમજવું. ॥ સૂ. ૫૯ ॥

સાતિશય આપ્તને પ્રશ્ન પૂછવાથી જ ઉપર્યુક્ત અર્થોનો નિર્ણય થઈ શકે છે તેથી હવે સૂત્રકાર પ્રશ્નના છ પ્રકારોનું નિરૂપણ કરે છે.

" છવ્વિહે પ પણ્ણત્તે " ઇત્યાદિ––

ટીકાર્થ–પ્રશ્નના નીચે પ્રમાણે છ પ્રકાર કહ્યા છે––(૧) સંશયપૃષ્ટ, (૨) વ્યુદ્ગ્રહ પૃષ્ટ, (૩) અનુયોગી, (૪) અનુલોમ, (૫) તથાજ્ઞાન, (૬) અતથાજ્ઞાન.

(૧)કોઈ પણ વિષયમાં શંકા થવાથી જે પ્રશ્ન પૂછવામાં આવે છે તેને

छाया—यदि तपसा व्यवदानं संयमतोऽनास्रव इति ते कथं नु ।
देवत्वं यान्ति यतयः ! सरागसंयमतो गुरुः प्राह ॥ १ ॥

अयं भावः--तपसा द्वादशविधेन व्यवदानं=कर्मणां छेदो भवति, तथा-संयमतः अनास्रवो भवति-इति ते=तव मतं कथं नु संगच्छते ? यतः तपस्विनो गृहीतसंयमा अपि यतयो देवत्वं यान्ति । एवं शिष्यप्रश्ने गुरुः प्राह-ते हि सरागसंयमतो देवत्वं यान्तीति । इति प्रथमः प्रश्नः १। तथा-व्युद्ग्रहपृष्टम्-व्युद्ग्रहेण=विपरीतग्रहेण-मिथ्याभिनिवेशेन परपक्षदूषणार्थं यः प्रश्नः क्रियते सः । यथा--" सामन्ना उ विसेसो, अन्नोऽनन्नो व होज्जइ अन्नो ।
सो नत्थि खपुप्फं पिव, णन्नो सामन्नमेव तयं ॥ १ ॥"

यथा-" जइ तवसा वोदाणं " इत्यादि ।

भाव इसका ऐसा है-बारह प्रकारके तपसे कर्मोंका नाश होता है, और संयमसे अनास्रव-आस्रवका अभाव होता है, ऐसा जो मत है, वह समीचीन कैसे माना जा सकता है ? क्योंकि गृहीत संयमवाले भी तपस्विजन देव पर्यायको प्राप्त करते हैं, ऐसा यह शिष्यका प्रश्न है, इस पर गुरुदेव उससे कहते हैं-" ते हि सरागसंयमतो देवत्वं यान्ति " वे सरागसंयमसे देव पर्यायको प्राप्त करते हैं, यह संशय पृष्ट है, १। व्युद्ग्रहपृष्ट-विपरीत ग्रहका नाम व्युद्ग्रह है, इसे शब्दान्तरसे मिथ्याभिनिवेश भी कहा गया है, इस मिथ्याभिनिवेशसे जो पर पक्षको दूषित करनेके लिये प्रश्न किया जाता है, वह व्युद्ग्रह पृष्ट है-यथा-" सामन्ना उ विसेसो " इत्यादि ।

સંશયપૃષ્ટ કહે છે. જેમકે " जइ तवसा वोदाणं " ઇત્યાદિ—

પ્રશ્ન—" બાર પ્રકારના તપથી કર્મોનો નાશ થાય છે અને સંયમ વડે અનાસ્રવ (આસ્રવનો અભાવ) થાય છે, આ પ્રકારનો જે મત છે તેને ખરો કેવી રીતે માની શકાય ? કારણ કે ગૃહીત સંયમવાળા તપસ્વીઓ પણ દેવ પર્યાયને પ્રાપ્ત કરે છે." શિષ્યનો આ પ્રશ્ન સંયમપૃષ્ટ છે.

ઉત્તર—" ते हि सरागसयमतो देवत्वं यान्ति " તેઓ સરાગ સંયમ વડે દેવપર્યાયને પ્રાપ્ત કરે છે.

(૨)વ્યુદ્ગ્રહ પૃષ્ટ—વિપરીત ગ્રહનું નામ વ્યુદ્ગ્રહ છે. તેને મિથ્યાભિનિવેશ પણ કહે છે. આ મિથ્યાભિનિવેશ પૂર્વક પર પક્ષને દૂષિત કરવાને માટે જે પ્રશ્ન પૂછવામાં આવે છે તેનું નામ વ્યુદ્ગ્રહ પૃષ્ટ છે.

જેમકે " सामन्ना उ विसेसो " ઇત્યાદિ—

छाया—सामान्याद् विशेषोऽन्योऽनन्यो वा भवति यदि अन्यः ।
स नास्ति खपुष्पमिव नान्यः सामान्यमेव सः ॥ १ ॥ इति ।

अयं भावः–सामान्याद्=धर्माद् विशेषः=धर्मी अन्यो भवति अनन्यो वा ? यदि अन्यो भवति तदा स खपुष्पमिव नास्ति । अथ अनन्यो भवति तदा स सामान्यमेव भवतीति । एवंरूपो व्युद्ग्रहप्रश्नो भवतीति द्वितीयः प्रश्नः । २ । अनुयोगि–अनुयोगो=व्याख्यानं प्ररूपणेति यावत्, स यत्रास्ति तत् । अनुयोगार्थं क्रियमाणः प्रश्न इत्यर्थः । यथा–सौधर्मकल्पिकदेवानामुपपातविषये प्रश्नः– 'सोहम्मकप्पदेवाणं भंते ! केवइयं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता' इति । इति तृतीयः प्रश्नः ३। अनुलोमम्–पराननुकूलयितुं यः प्रश्नः क्रियते सः । यथा–

भाव ऐसा है–सामान्यसे–धर्मसे विशेष–धर्मी भिन्न है–या अभिन्न है ? यदि धर्मसे धर्मी भिन्न है, तो वह आकाशपुष्पकी तरह नहीं है, और यदि वह उससे अभिन्न है, तो वह सामान्य–धर्म ही हो जावेगा विशेष धर्मी नहीं होगा ! व्युद्ग्रह प्रश्न ऐसा होता है २

अनुयोगी – अनुयोग नाम व्याख्यान या प्ररूपणाका है, यह जिसमें होती है, वह अनुयोगी है, अनुयोगके लिये किया गया प्रश्न अनुयोगी प्रश्न है जैसे – सौधर्म कल्पिक देवोंसे उपपातके विषयमें ऐसा प्रश्न किया गया है–"सोहम्मकप्पदेवाणं भंते ! केवइयं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता" हे भदन्त ! सौधर्मकल्पके देवोंका उपपातसे विरह कितने कालका कहा गया है ३। अनुलोम–दूसरोंको अनुकूल करनेके लिये जो प्रश्न किया

પ્રશ્ન—" સામાન્ય ધર્મની અપેક્ષાએ વિશેષ–ધર્મી ભિન્ન છે કે અભિન્ન છે ? જો ધર્મ કરતાં ધર્મી ભિન્ન હોય તો તે આકાશકુસુમ સમાન નથી જો તે તેનાથી અભિન્ન હોય તો તે સામાન્ય ધર્મ જ થઈ જશે-વિશેષ–ધર્મી થશે નહીં " આ વ્યુદ્ગ્રહ પ્રશ્નનું દૃષ્ટાંત છે.

(૩) અનુયોગી પ્રશ્ન—વ્યાખ્યાન અથવા પ્રરૂપણાનું નામ અનુયોગ છે. તે જેમાં થાય છે તે અનુયોગી છે. અનુયોગને માટે પૂછાયેલા પ્રશ્નને અનુયોગી પ્રશ્ન કહે છે. જેમકે સૌધર્મ કલ્પના દેવોના ઉપપાતના વિષયમાં એવો પ્રશ્ન પૂછવામાં આવ્યો છે કે " सोहम्मकप्पदेवाणं भंते ! केवइयं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता ? " હે ભગવન્ ! સૌધર્મ કલ્પના દેવોનો ઉપપાતનો વિરહ કેટલા કાળનો કહ્યો છે ?

(૪)અનુલોમ પ્રશ્ન—અન્યને અનુકૂળ કરવાને માટે જે પ્રશ્ન કરવામાં આવે છે તે પ્રશ્નને અનુલોમ પ્રશ્ન કહે છે. જેમકે " कुशलं भवताम् " ઇત્યાદિ,

'कुशलं भवता'-मित्यादि,-इति चतुर्थः प्रश्नः ४। तथाज्ञानम्-यत्र विषये प्रश्न-कर्तुरपि प्रष्टव्यस्येव ज्ञानं भवति स प्रश्नस्तथाज्ञानमित्युच्यते। एवंविधप्रश्न ज्ञानवान् गौतमादिर्बोध्यः। स च प्रश्नविषयीभूतार्थं जानन्नपि भगवन्तं पृच्छति, यथा-'केवइयं कालं भंते ? चमरचंचा रायहाणी विरहिया उववाएणं' इत्यादि। इति पञ्चमः प्रश्नः ५। तथा-अतथाज्ञानम्-यत्र प्रश्नविषयीभूतेऽर्थे प्रश्न कर्तुः प्रष्टव्यस्येव ज्ञानं न भवति, स प्रश्नः-अतथाज्ञानमित्युच्यते। यथा-राज्ञः प्रदेशिनो जीवविषये केशिकुमारश्रमणं प्रति प्रश्नः। इति षष्ठः प्रश्नः६ ॥सू० ६०॥

जाता है, वह अनुलोम प्रश्न है, जैसे-"कुशलं भवताम्" इत्यादि ४। तथाज्ञान-जिस प्रश्नके विषयमें प्रश्नकर्त्ताको भी प्रष्टव्यविशेषका ज्ञान होता है, वह तथाज्ञान प्रश्न है, ऐसे प्रश्न ज्ञानवाले गौतमादि हुए हैं, क्योंकि जिन प्रश्नोंको उन्होंने भगवान्से पूछा है, वे स्वयं उस प्रश्नके अर्थको जानते थे, जैसे-"केवइयं कालं भंते ! चमरचंचा रायहाणी विरहिया उववाएणं" हे भदन्त ! चमरचश्चा राजधानी कितने काल तक उपपातसे विरहित रही ? इत्यादि ५। अतथाज्ञान-जहां प्रश्नकर्त्ताको प्रश्न विषयक ज्ञान जिससे प्रश्न पूछा गया है, उसकी तरह नहीं होता है, वह अतथाज्ञान प्रश्न है, जैसे-प्रदेशी राजाने जीव विषयमें केशिकुमार श्रमणसे प्रश्न किया है ६ ॥ सू० ६० ॥

---

(૫) તથાજ્ઞાન પ્રશ્ન—જે પ્રશ્ન પૂછવામાં આવે તે પ્રશ્નના વિષયનું જ્ઞાન પ્રશ્નકર્તા પણ ધરાવતો હોય, તો તેના તે પ્રશ્નને તથાજ્ઞાન પ્રશ્ન કહે છે. જેમકે ગૌતમ સ્વામીએ મહાવીર પ્રભુને જે પ્રશ્નો પૂછયા હતા તે પ્રશ્નોના ઉત્તર તેઓ જાણુતા હતા. છતાં અન્ય સાધુઓ અને લોકોને ધર્મતત્ત્વનું જ્ઞાન થાય તે હેતુપૂર્વક તેઓ મહાવીર પ્રભુને એવા પ્રશ્નો પૂછતા હતા. "केवइयं कालं भंते! चमरचंचा रायहाणी विरहिया उववाएणं ? હે ભગવન્! ચમરચંચા રાજધાની કેટલા કાળ સુધી ઉપપાતથી વિરહિત રહી ?" ઈત્યાદિ. આ પ્રશ્નનો ઉત્તર ગૌતમ સ્વામી પોતે જાણુતા હતા, છતાં આ પ્રકારનો પ્રશ્ન પૂછવામાં આવ્યો છે માટે તેને તથાજ્ઞાન પ્રશ્ન કહી શકાય.

(૬)અતથાજ્ઞાન પ્રશ્ન—પ્રશ્નમાં પૂછવામાં આવેલા વિષયનું જ્ઞાન પ્રશ્નકર્તામાં ન હોય ત્યારે તેના પ્રશ્નને અતથાજ્ઞાન પ્રશ્ન કહે છે. પ્રદેશી રાજાએ જીવના વિષે કેશિ અણુગારને જે પ્રશ્ન પૂછયો હતો તેને અતથાજ્ઞાન પ્રશ્ન કહી શકાય. ॥ સૂ. ૬૦ ॥

अनन्तरसूत्रे तथाज्ञानप्रश्नविषये 'केवइयं कालं भंते ! चमरचंचा रायहाणी विरहिया उववाएणं' इत्युक्तम्, अतस्तदुत्तरं दातु 'चमरचंचा' इति, विरहाधिकारात् इन्द्रस्थानादिकं च निरूपयति--

मूलम्- चमरचंचा रायहाणी उक्कोसेणं छम्मासा विरहिया उववाएणं। एगमेगेणं इंदट्ठाणे उक्कोसेणं छम्मासा विरहिए उववाएणं। अहे सत्तमाएणं पुढवी उक्कोसेणं छम्मासा विरहिया उववाएणं। सिद्धिगई णं उक्कोसेणं छम्मासा विरहिया उववाएणं ॥ सू० ६१ ॥

छाया—चमरचञ्चा राजधानी उत्कर्षेण षण्मासान् विरहिता उपपातेन। एकमेकं खलु इन्द्रस्थानम् उत्कर्षेण षण्मासान् विरहितम् उपपातेन। अधःसप्तमी खलु पृथिवी उत्कर्षेण षण्मासान् विरहिता उपपातेन। सिद्धिगतिः खलु उत्कर्षेण षण्मासान् विरहिता उपपातेन ॥ सू० ६१ ॥

इस ऊपरके सूत्रमें "तथाज्ञान" प्रश्नके विषयमें "केवइयं कालं भंते ! चमरचंचा रायहाणी विरहिया उववाएणं" ऐसा जो कहा गया है, सो उसका उत्तर देनेके लिये "चमरचञ्चा" का एवं विरहाधिकारको लेकर इन्द्रस्थान आदिका अब सूत्रकार कथन करते हैं—

"चमरचंचा रायहाणी उक्कोसेणं" इत्यादि सूत्र ६१ ॥

सूत्रार्थ—चमरचञ्चा राजधानी उत्कृष्टसे छ मास तक उपपातसे शूनी रह सकती है, अर्थात् छ मास तक उपपातका विरह काल होता है, एक एक इन्द्रस्थान उत्कृष्टसे छ मास तक उपपातसे शूना रह सकता है, अधःसप्तमी पृथिवी उत्कृष्टसे छ माह तक उपपातसे शूनी रह सकती है, अर्थात् छ मासका विरह होता है और सिद्धगति भी उत्कृष्टसे छ

આગલા સૂત્રમા એવો પ્રશ્ન પૂછવામાં આવ્યો છે કે "ચમરચંચા રાજધાની કેટલા કાળ સુધી ઉપપાતથી શૂન્ય રહે છે" તેનો ઉત્તર આપતાં ચમરચંચાનું અને વિરહાધિકારને લઇને ઇન્દ્રસ્થાન આદિનું હવે સૂત્રકાર કથન કરે છે. "चमरचंचा रायहाणी उक्कोसेणं" ઇત્યાદિ—

ચમરચંચા રાજધાની વધારેમાં વધારે છ માસ સુધી ઉપપાતથી રહિત રહી શકે છે એટલે કે ત્યાં ઉપપાતનો વિરહકાળ વધારેમાં વધારે છ માસનો હોઇ શકે છે પ્રત્યેક ઇન્દ્રસ્થાન વધારેમાં વધારે છ માસ સુધી ઉપપાતથી શૂન્ય રહી શકે છે, અને સિદ્ધગતિ પણ વધારેમા વધારે છ માસ સુધી ઉપપાતથી શૂન્ય રહી શકે છે.

टीका—'चमरचंचा' इत्यादि—

चमरचञ्चा—चमरस्य=दाक्षिणात्यस्य असुरनिकायस्वामिनः चञ्चाऽभिधेया राजधानी चमरचञ्चाऽभिधीयते। जम्बूद्वीपस्थमन्दरपर्वतस्य दक्षिणे तिर्यगसंख्येयान् द्वीपसमुद्रान् अतिक्रम्य अरुणवरद्वीपस्य बाह्याद् वेदिकान्तात् अरुणोदं समुद्रं द्विचत्वारिंशद्योजनसहस्राण्यवगाह्य चमरस्य असुरराजस्य तिगिच्छकूटनामा उत्पातपर्वतोऽस्ति। स हि उच्चत्वेन एकविंशत्यधिकसप्तदशशतयोजनप्रमाणः। तस्य दक्षिणे अरुणोदे समुद्रे साधिकानि षट्कोटिशतानि योजनानि तिर्यगतिक्रम्याधो रत्नप्रभायाः पृथिव्याः चत्वारिंशत्सहस्रयोजनान्यवगाह्य जम्बूद्वीपप्रमाणा चमरचञ्चाऽभिधेया राजधानी व्यवस्थिता। सा चेयं चमरचञ्चा राजधानी उत्कर्षेण षण्मासान् उपपातेन=देवोत्पत्त्या विरहिता भवति। चमरचञ्चायामुत्कर्षतः

मास तक उपपातसे खाली रह सकती है।

चमर यह दाक्षिणात्य असुर निकाय (दक्षिण दिशा) का स्वामी है, इसकी जो राजधानी है, वह चञ्चा है, अतः चमरके योगसे यह राजधानी चमरचञ्चा कहलाती है, इस जम्बूद्वीपके मन्दरपर्वतकी दक्षिण दिशामें तिरछे असंख्यात द्वीप समुद्रोंको पार करके अरुणवर द्वीपकी बाह्य वेदिकान्तसे लेकर अरुणोद समुद्रमें बयालीस हजार योजन आगे जाकर असुरराज चमरका तिगिच्छकूट नामका उत्पात पर्वत आता है। यह उत्पात पर्वत सत्रहसोइक्कीस १७२१ योजन ऊंचा है। इस पर्वतकी दक्षिण दिशामें अरुणोद समुद्रमें कुछ अधिक छसो करोड योजन तिरछे जाकर नीचे रत्नप्रभा पृथिवीको चालीस हजार योजन पार करके जम्बूद्वीपके बराबर चमरचञ्चा नामकी राजधानी है, यह चमरचञ्चा

ચમર દાક્ષિણાત્ય અસુરનિકાયનો સ્વામી છે. તેની રાજધાનીનું નામ ચંચા છે. ચમરના યોગથી તે રાજધાની ચમરચંચાને નામે ઓળખાય છે. આ જંબૂદ્વીપના મન્દર પર્વતની દક્ષિણ દિશામાં તિરછાં (તિરકસ) અસંખ્યાત દ્વીપસમુદ્રોને પાર કરીને, અરુણવર દ્વીપની બાહ્યવેદિકાન્તથી લઇને અરુણોદ સમુદ્રમાં બેતાલીસ હજાર યોજન આગળ જતાં અસુરરાજ ચમરનો તિગિચ્છકૂટ નામનો ઉત્પાત પર્વત આવે છે. તે ઉત્પાત પર્વત સત્તરસો એકવીસ૧૭૨૧ યોજન ઊંચો છે. આ પર્વતની દક્ષિણ દિશામાં અરુણોદ સમુદ્રમા છસો કરોડ યોજન કરતાં પણ થોડું વધારે તિરછું પાર કરીને, નીચે રત્નપ્રભા પૃથ્વીને ચાલીસ હજાર યોજન પાર કરીને જંબૂદ્વીપના જેવડી જ ચમરચંચા રાજધાની આવે છે. આ ચમરચંચા રાજધાની વધારેમાં વધારે છ માસ સુધી દેવોના ઉત્પાતથી (ઉત્પત્તિથી) રહિત રહે છે. એટલે કે ત્યાં છ માસ સુધી દેવોની

षण्मासान् देवानामुत्पत्तिविरहो भवतीति भावः। तथा-एकैकम् इन्द्रस्थानम्-यत्र चमरादय इन्द्रास्तिष्ठन्ति, एतादृशं भवननगरविमानरूपं स्थानम् उत्कर्षेण षण्मासान् यावत् उपपातेन इन्द्रापेक्षया विरहितं तिष्ठतीति। तथा-अधःसप्तमी,-सप्तमी तु पश्चानुपूर्व्या रत्नप्रभाऽप्यभिधीयते इत्यध इति विशेषणम्, ततश्चाधःसप्तमीशब्देन तमस्तमा ग्राह्या। सा तु उत्कर्षेण षण्मासान् यावत् उपपातेन विरहिता भवति। तदुक्तम्—(उत्कर्षतः प्रथमादिसप्तनरकेषु)

" चउवीसई मुहुत्ता १, सत्त अहोरत्त २ तह य पन्नरस ३।
मासो ४ य दो ५ य चउरो ६, छम्मासा ७ विरहकालो उ॥ १॥"

छाया—चतुर्विंशतिर्मुहूर्त्ताः १ सप्त अहोरात्रा २ स्तथा च पञ्चदश ३।
मासश्च ४ द्वौ च ५ चत्वारः ६ षण्मासा ७ विरहकालस्तु ॥१॥ इति।

राजधानी उत्कृष्टसे छह मास तक देवोंकी उत्पत्तिसे विरहवाली होती है, अर्थात् इस राजधानीमें छ मास तक देवोंकी उत्पत्तिका विरह होता है, इसके बाद फिर कोई न कोई देव वहां अवश्य उत्पन्न हो जाता है, तथा-जहां चमरादिक इन्द्र रहते हैं, ऐसा जो भवन नगर एवं विमान रूप एक २ स्थान है, वह भी उत्कृष्टसे छ मास तक उन इन्द्रोंकी उत्पत्तिसे विरहयुक्त होता है, तथा-अधःसप्तमी पृथिवी तमस्तमा पृथिवी भी छह मास तक नारकके उपपातसे विरहित होती है, यहां जो सप्तमी पृथिवीके साथ अधः पद दिया है, उसका कारण ऐसा है, कि :पश्चानुपूर्वीसे रत्नप्रभा पृथिवी भी सप्तमी पृथिवी हो सकती है, अतः वह यहां गृहीत न हो इसके लिये "अधः" पदका प्रयोग किया गया है। कहा भी है-" चउवीसई मुहुत्ता " इत्यादि।

ઉત્પત્તિનો વિરહ (અભાવ) રહે છે, ત્યાર બાદ કોઇને કોઈ દેવ ત્યાં અવશ્ય ઉત્પન્ન થઈ જાય છે. તથા જ્યાં ચમરાદિક ઈન્દ્રો રહે છે એવા ભવન, નગર અને વિમાન રૂપ પ્રત્યેક સ્થાન પણ વધારેમાં વધારે છ માસ સુધી ઈન્દ્રોની ઉત્પત્તિથી રહિત સંભવી શકે છે.

તથા અધઃસપ્તમી પૃથ્વી (તમસ્તમાં નામની સાતમી નરક પૃથ્વી) પણ છ માસ સુધી નારકના ઉપપાતથી રહિત હોઇ શકે છે. અહીં સાતમી પૃથ્વીની સાથે 'અધ' પદ યોજવાનું કારણ એ છે કે પશ્ચાનુપૂર્વીથી ગણવામાં આવે તો રત્નપ્રભા પૃથ્વીને પણ સાતમી પૃથ્વી કહી શકાય છે આ પ્રકારની ગેરસમજૂતિ નિવારવા માટે અહીં સાતમી પૃથ્વીની આગળ 'અધઃ' પદ મૂકવામાં આવ્યું છે. કહ્યું પણ છે કે " ચઉવીસઈમુહુત્તા " ઈત્યાદિ—

तथा-सिद्धिगतिः खलु उत्कर्षेण षण्मासान् उपपातेन=गमनेन विरहिता तिष्ठति। उपपात इह गमनमेव न तु जन्म। जन्मकारणानां सिद्धेष्वऽभावात्। उक्तं च-" एगसमओ जहन्नं, उक्कोसेणं हवंति छम्मासा।

विरहो सिद्धिगईए, उव्वट्टणवज्जिया नियमा ॥ १ ॥"

छाया—एकसमयो जघन्यम् उत्कर्षेण भवन्ति षण्मासाः।

विरहः सिद्धिगतौ उद्वर्तनवर्जिता नियमात् ॥ १ ॥ इति।

उद्वर्तनवर्जिता=निस्सरणरहिता सिद्धिगतिरिति ॥ सू० ६१ ॥

प्रथम पृथिवीमें विरहकाल उपपातकी अपेक्षा उत्कृष्टसे २४ मुहूर्तका है, द्वितीय पृथिवीमें सात अहोरात्रका हैं तृतीय पृथिवीमें १५ दिनकाहै, चौथी पृथिवीमें १ मासकाहै, पंचमी पृथिवीमें २ मासका छट्ठी पृथिवीमें ४ मासका और सातवीं पृथिवीमें ६ मासका उत्कृष्टसे विरहकाल है, तथा-सिद्धिगतिमें उपपातसे विरहकाल छह मासका उत्कृष्टसे हैं यहां उपपात शब्दका अर्थ गमन है, जन्म नहीं क्योंकि जन्मके कारणोंका सिद्धोंमें अभाव हो जाता है। कहा भी है-

" एग समओ जहन्नं " इत्यादि।

सिद्धिगतिमें जघन्यसे गमनका अन्तर १ समयका होता है, और उत्कृष्टसे छह मासका होता है, फिर यहांसे जीवका निकलना नहीं होता है ऐसा नियम है ॥ सू० ६१ ॥

પહેલી પૃથ્વીમાં વધારેમાં વધારે ૨૪ મુહૂર્ત સુધી ઉપપાતનો વિરહ રહે છે, બીજી પૃથ્વીમાં સાત દિનરાતનો, ત્રીજી પૃથ્વીમાં ૧૫ દિનરાતનો ચોથી પૃથ્વીમાં એક માસનો, પાંચમી પૃથ્વીમાં બે માસનો, છઠ્ઠી પૃથ્વીમાં ચાર માસનો અને સાતમી પૃથ્વીમાં છ માસનો વધારેમાં વધારે ઉપપાતનો વિરહકાળ કહ્યો છે. તથા સિદ્ધિ ગતિમાં ઉપપાતનો ઉત્કૃષ્ટ વિરહકાળ ૬ માસનો કહ્યો છે. અહીં ઉપપાત શબ્દ ગમનના અર્થમાં વપરાયો છે. જન્મના અર્થમાં વપરાયો નથી, કારણ કે જન્મનાં કારણોનો સિદ્ધોમાં અભાવ થઈ જાય છે. કહ્યું પણ છે કે " एग समओ जहन्न " ઇત્યાદિ—

સિદ્ધિગતિમાં ગમનનું અન્તર ઓછામાં ઓછું એક સમયનું અને વધારેમાં વધારે છ માસનું હોય છે. ત્યાં ગયા બાદ જીવને ત્યાંથી બીજી કોઈ ગતિમાં જવું પડતું નથી. ॥ સૂ. ૬૧ ॥

अनन्तरमुपपातविरह उक्तः। उपपातश्चायुर्बन्धे सति भवतीति सभेदमायुर्बन्धसूत्रमाह—

मूलम्--छव्विहे आउयबंधे पण्णत्ते, तं जहा -जाइणामणिहत्ताउए १, गइणामणिहत्ताउए २, ठिइणामणिहत्ताउए ३, ओगाहणाणामणिहत्ताउए ४, पएसणामणिहत्ताउए ५, अणुभावणामणिहत्ताउए ६। नेरइयाणं छव्विहे आउयबंधे पण्णत्ते, तं जहा--जाइणामणिहत्ताउए १ जाव अणुभावणामनिहत्ताउए ६। एवं जाव वेमाणियाणं। नेरइया णियमा छम्मासावसेसाउया परभवियाउयं पगरेंति। एवामेव असुरकुमारा वि जाव थणियकुमारा। असंखेज्जवासाउया सन्निपंचिंदियतिरिक्खजोणिया णियमा छम्मासावसेसाउया परभवियाउयं पगरेंति। असंखेज्जवासाउया सन्निमनुस्सा नियमा जाव पगरेंति। वाणमंतरा जोइसवासिया वेमाणिया जहा नेरइया ॥ सू० ६२ ॥

छाया—षड्विध आयुर्बन्धः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—जातिनामनिधत्तायुः १, गतिनामनिधत्तायुः २, स्थितिनामनिधत्तायुः ३, अवगाहनानामनिधत्तायुः ४, प्रदेशनामनिधत्तायुः ५, अनुभावनामनिधत्तायुः ६। नैरयिकाणां षड्विध-

इस ऊपरके सूत्रमें उपपातका विरह कहा सो उपपात आयुके बन्ध होने पर होता है, अतः अब सूत्रकार भेद सहित आयुर्बन्ध का कथन करते हैं—" छव्विहे आउयबंधे पण्णत्ते " इत्यादि सूत्र ६२ ॥

सूत्रार्थ—आयुबन्धछ प्रकारका कहा गयाहै। जैसे-जातिनामनिधत्तायु १ गतिनामनिधत्तायु २ स्थितिनामनिधत्तायु ३ अवगाहनानामनिधत्तायु प्रदेशनामनिधत्तायु ५ और अनुभावनामनिधत्तायु ६।

ઉપરના સૂત્રમાં ઉપપાતના વિરહકાળની વાત કરી. ઉપપાત આયુનો બન્ધ પડવાથી થાય છે, તેથી હવે સૂત્રકાર આયુબન્ધનું અને તેના ભેદોનું નિરૂપણ કરે છે. " छव्विहे आउयबंधे पण्णत्ते " ઇત્યાદિ—

સૂત્રાર્થ -આયુબન્ધના નીચે પ્રમાણે છ પ્રકાર કહ્યા છે—(૧) જાતિનામનિધત્તાયુ (૨) ગતિનામનિધત્તાયુ, (૩) સ્થિતિનામનિધત્તાયુ, (૪) અવગાહનાનામનિધત્તાયુ, (૫) પ્રદેશનામનિધત્તાયુ, અને (૬) અનુભાવનામનિધતાયુ.

आयुर्बन्धः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–जातिनामनिधत्तायुः १ यावत् अनुभावनामनिधत्तायुः ६। एवं यावद् वैमानिकानाम्। नैरयिका नियमात् पण्मासावशेषायुष्काः परभाविकायुष्कं प्रकुर्वन्ति। एवमेव असुरकुमारा अपि यावत्स्तनितकुमाराः। असंख्येयवर्षायुष्काः संज्ञिपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकाः नियमात् पण्मासावशेषायुष्का परभविकायुष्कं प्रकुर्वन्ति। असंख्येयवर्षायुष्काः संज्ञिमनुष्याः नियमात् यावत् प्रकुर्वन्ति। व्यन्तरा ज्योतिर्वासिका वैमानिका यथा नैरयिकाः॥ सू ६२॥

टीका—'छव्विहे' इत्यादि—

आयुर्बन्धः–आयुषो बन्धो निषेकः–प्रतिसमयं बहुहीनहीनतरस्य कर्मदलिकस्यानुभवनार्थं रचनाविशेषः, स षड्विधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–जातिनामनिधत्तायुः–जातिः=एकेन्द्रियादिः पञ्चविधा, सैव नाम=नामकर्मण उत्तरप्रकृतिविशेष अथवा नामः=जीवपरिणामः तेन सह निषत्तं=निषिक्तम्–कर्मदलिकानुभवनार्थं बह्वल्पाल्पतरक्रमेण व्यवस्थापितं यदायुस्तत्। उक्तं च—

" मोत्तूण सगमबाहं, पढमाए ठिईए बहुतरं दव्वं।
सेसे विसेसहीणं, जावुक्कोसंति सव्वासिं॥१॥"

आयुका जो बन्ध–निषेक–प्रति समय बहुहीन हीनतर–कर्मदलिकके अनुभवके लिये रचनाविशेष है, वह आयुर्बन्ध है, वह बन्ध जो छ प्रकारका कहा है, उसका भाव ऐसा है, एकेन्द्रिय जातिके भेदसे जाति पांच प्रकारकी है यह जातिही नाम है, नाम कर्मका उत्तर प्रकृतियोंमेंका एक भेद है, अथवा जीवके परिणामका नाम नामहै, इस जातिरूप नामके साथ जीवके परिणामके साथ या जातिकर्मके साथ जो आयु निषिक्त है कर्मदलिकोंके अनुभवके लिये बहु अल्प अल्पतरके क्रमसे व्यवस्थापित है, वह जातिनाम निधत्तायु है। कहा भी है—

આયુનો જે બન્ધ—નિષેક પ્રતિસમય બહુ હીન હીનતર કર્મદલિકના અનુભવનને માટે જે રચનાવિશેષ છે, તેનું નામ આયુબન્ધ છે. તે બન્ધના જે છ પ્રકારો પાડવામાં આવ્યા છે તેમનું હવે સ્પષ્ટીકરણ કરવામાં આવે છે.

એકેન્દ્રિય આદિના ભેદથી જાતિ પાંચ પ્રકારની છે. તે જાતિ જ નામ છે જેનું એવો નામકર્મની ઉત્તર પ્રકૃતિયોનો એક ભેદ છે. અથવા જીવના પરિણામને નામ કહે છે. આ જાતિરૂપ નામની સાથે, જીવના પરિણામની સાથે અથવા જાતિનામ કર્મની સાથે જે આયુ નિષિક્ત છે–કર્મદલિકોના અનુભવનને માટે બહુ અલ્પ અને અલ્પતરના ક્રમે વ્યવસ્થાપિત છે, તેનું નામ જાતિનામનિધત્તાયુ છે.

छाया—मुक्त्वा स्वकामबाधां प्रथमायां स्थितौ बहुतरं द्रव्यम् ।
शेषासु विशेषहीनं यावदुत्कर्षमिति सर्वासाम् ॥१॥ इति ।

इति प्रथम आयुर्बंधः ।

तथा-गतिनामनिधत्तायुः-गतिः=नरकादिका चतुर्विधा, सैव नाम=नामकर्मण उत्तरप्रकृतिविशेषो नामो=जीवपरिणामो वा, तेन सह निधत्तं यदायुस्तदिति द्वितीयः । स्थितिनामनिधत्तायुः-स्थितिः-केनचिद् विवक्षाविषयीभूतेन भावेन जीवेन आयुष्कर्मणा वा यत् स्थातव्यं सा स्थितिरित्युच्यते, सैव नाम=परिणामो धर्मः स्थितिपरिणामः, तेन सह निधत्तं यदायुः=दलिकरूप तत् ।

" मोत्तूण संगमबाहं " इत्यादि ।

अपनी २ अबाधाको छोड़कर प्रथम स्थितिमें बहुतर द्रव्य देना बाकी की स्थितिओंमें विशेष २ हीन द्रव्य देना चाहिये यह क्रम समस्त कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थिति तकका जानना चाहिये इस प्रकारसे यह प्रथम आयुबन्ध है

गतिनामनिधत्तायु—नरकादिकके भेदसे चार प्रकारकी गति होती है, यह गति भी नामकर्मकी उत्तर प्रकृतियोंमेंका एक भेद है, अथवा नामसे जीव परिणाम लिया गया है, सो इस गतिनाम कर्मके साथ अथवा गतिरूप जीव परिणामके साथ जो आयु निधत्त है, वह द्वितीय आयुबन्ध है, स्थितिनामनिधत्तायु—जीव जिस किसी विवक्षाभूत भावसे अथवा आयु कर्मसे स्थित रहता है वह स्थिति है, सो इस स्थितिरूप परिणामके साथ जो दलिकरूप आयु निधत्त है, वह

કહ્યું પણ છે કે " मोत्तूण संगमबाहं " ઇત્યાદિ—

પોતપોતાની અબાધાને છોડીને પ્રથમ સ્થિતિમાં બહુતર દ્રવ્ય દેવું જોઇએ, બાકીની સ્થિતિઓમાં વિશેષ, વિશેષ હીન દ્રવ્ય દેવું જોઇએ. આ ક્રમ સમસ્ત કર્મોની ઉત્કૃષ્ટ સ્થિતિ પર્યન્ત જાણવો જોઇએ. પ્રથમ આયુબન્ધનું આ પ્રકારનું સ્વરૂપ છે.

ગતિનામનિધત્તાયુ—નારક આદિના ભેદથી ચાર પ્રકારની ગતિ કહી છે. આ ગતિ પણ નામકર્મની ઉત્તર પ્રકૃતિયોના એક ભેદ રૂપ છે. અથવા નામ દ્વારા જીવપરિણામ લેવામાં આવ્યું છે. આ ગતિનામકર્મની સાથે અથવા ગતિરૂપ જીવપરિણામની સાથે જે આયુ નિધત્ત છે તેનું નામ ગતિનામ નિધત્તાયુ છે, અને તે આયુબન્ધના બીજા પ્રકાર રૂપ છે.

સ્થિતિનામનિધત્તાયુ—જીવ જે કોઇ વિવક્ષાભૂત ભાવ રૂપે અથવા આયુકર્મ રૂપે સ્થિત રહે છે, તેનું નામ સ્થિતિ છે. આ સ્થિતિ રૂપ પરિણામની સાથે જે દલિક રૂપ આયુ નિધત્ત છે, તેને ત્રીજા પ્રકારનો આયુબન્ધ

यद्वाऽत्रसूत्रे जातिनामगतिनामावगाहनानामग्रहणात् जातिगत्यवगाहनानां प्रकृतिमात्रमुक्तम्। स्थिति प्रदेशानुभावनामग्रहणात्तु जातिगत्यवगाहनानामेव स्थितिप्रदेशानुभागा उक्ताः। स्थित्यादयस्तु जात्यादिनाम सम्बन्धित्वान्नामकर्मरूपा एवेति नाम शब्दः सर्वत्र कर्मार्थो बोध्यः। इत्थं च स्थितिरूपं नाम, कर्मस्थिति नाम, तेन सह निधत्तं तदायुस्तत् स्थिति नाम निधत्तायुरिति तृतीयः। अवगाहना नाम-निधत्तायुः-अवगाहते जीवोऽस्मिन्निति यस्यां साऽवगाहना औदारिकादि शरीरं, तस्या नाम=नामकर्म-अवगाहना नाम-औदारिकादि शरीर नामकर्मेत्यर्थः तेन सह

तृतीय आयुबन्ध है, अथवा इस सूत्रमें जातिनाम गतिनाम और अवगाहना नाम इनके ग्रहणसे जाति, गति और अवगाहना इनका प्रकृतिबन्ध मात्र कहा गया है और स्थिति नाम प्रदेश नाम एवं अनुभाव नाम, इनके ग्रहणसे जाति गति और अवगाहना इनकेही स्थितिबन्ध प्रदेशबन्ध अनुभागबन्ध कहे गये हैं। क्योंकि स्थिति आदि बन्ध जाति आदि नामके साथ सम्बन्धवाले होते हैं, इसलिये वे नाम-रूप अर्थात् कर्मरूपही होते हैं, अतः नाम शब्द सर्वत्र कर्म अर्थवाला जानना चाहिये इस तरह स्थितिरूप जो नाम है,-कर्म है, वह स्थिति नाम है, इस स्थितिरूप कर्मके साथ जो आयु निधत्त होती है, वह स्थितिनामनिधत्तायु है, इस प्रकारका यह तृतीय बन्ध है, जीव जिसमें अवगाहित होता है, वह अवगाहना है, ऐसी अवगाहना औदारिकादि शरीररूप होती है, इसका जो नाम है,-नामकर्म है, वह अवगाहना

કહે છે અથવા આ સૂત્રમાં જાતિનામ, ગતિનામ અને અવગાહનાનામના ગ્રહણ દ્વારા જાતિ, ગતિ અને અવગાહનાનો પ્રકૃતિબન્ધ જ માત્ર ગ્રહણ કરાયો છે, અને સ્થિતિનામ, પ્રદેશનામ, અને અનુભાવનામના ગ્રહણ દ્વારા જાતિ, ગતિ અને અવગાહનાના જ સ્થિતિબન્ધ, પ્રદેશબન્ધ, અને અનુભાગ-બન્ધ કહેવામાં આવ્યા છે, કારણ કે સ્થિતિ આદિ બન્ધ જાતિ આદિ નામની સાથે સંબંધવાળા હોય છે, તેથી તેઓ નામ રૂપ એટલે કે કર્મરૂપ જ હોય છે. તેથી નામ પદને સર્વત્ર કર્મ અર્થવાળું જ સમજવું જોઇએ. આ રીતે સ્થિતિ રૂપ જે નામ (કર્મ) છે, તે સ્થિતિનામ છે આ સ્થિતિરૂપ કર્મની સાથે જે આયુ નિધત્ત હોય છે તેને સ્થિતિનામનિધત્તાયુ કહે છે. આ પ્રકારનો આ ત્રીજો આયુબન્ધ છે.

અવગાહનાનામનિધત્તાયુ—જીવ જેમાં અવગાહિત (રહેલો) હોય છે, તે અવગાહના છે. એવી અવગાહના ઔદારિક આદિ શરીર રૂપ હોય છે.

निधत्तं यदायुस्तत् । इति चतुर्थः । प्रदेशनामनिधत्तायुः–प्रदेशानाम्=आयुष्कर्म-द्रव्याणां नाम=तथाविधः परिणामः प्रदेशनाम, यद्वा–प्रदेशरूपं नाम=कर्म-विशेषः प्रदेशनाम, तेन सह निधत्तं यदायुस्तदिति पञ्चमः । तथा–अनुभाव-नामनिधत्तायुः–अनुभावः=आयुर्द्रव्याणामेव विपाकः, तद्रूपो नाम=परिणामः–अनुभावनाम, यद्वा–अनुभावरूपं नाम=नामकर्म-अनुभावनाम, तेन सह निधत्तं यदायुस्तदिति षष्ठं आयुर्बन्धः । ननु किमर्थं जात्यादि नामकर्मणाऽऽयुर्विशिष्यते ?

नाम है, यह अवगाहना नाम औदारिक आदि शरीर नामकर्म रूप होता है, इस औदारिक शरीर नामकर्मके साथ निधत्त जो आयु है, वह अवगाहना नामनिधत्तायु है ४ प्रदेशनाम निधत्तायु–आयुष्क कर्म द्रव्यरूप प्रदेशोंका जो तथाविध परिणाम है, वह प्रदेश नाम है यद्वा–प्रदेशरूप जो नामकर्म विशेष है, वह प्रदेशनाम है, इसके साथ जो आयु निधत्त है, वह प्रदेशनाम निधत्तायु है ५ अनुभावनाम निधत्तायु ६–आयु द्रव्योंकाही जो विपाक है, उसका नाम अनुभाव है, इस अनुभाव रूप जो नाम परिणाम है, वह अनुभावनाम है, यद्वा–अनुभावरूप नाम नामकर्म है, वह अनुभावनाम है, इस अनुभाव नामके साथ निधत्त जो आयु है वह अनुभावनाम निधत्तायु है, इस प्रकारसे यह छट्ठा आयुबन्ध है ।

शंका—जात्यादि नाम कर्मद्वारा आयुको विशेषित क्यों किया गया है ? आयुके द्वाराही जात्यादि नामोंको विशेषित करना चाहिये था।

તેનું જે નામ (નામ કર્મ) છે તેનું નામ અવગાહના નામ છે. આ અવ-ગાહના નામ ઔદારિક આદિ શરીર નામકર્મ રૂપ હોય છે. આ ઔદારિક શરીર નામકર્મની સાથે નિધત્ત જે આયુ છે તેને અવગાહના નામ નિધત્તાયુ કહે છે.

પ્રદેશનામ નિધત્તાયુ—આયુષ્ક કર્મ દ્રવ્ય રૂપ પ્રદેશોનું જે તથાવિધ પરિણામ છે તેને પ્રદેશનામ કહે છે. તેની સાથે જે આયુ નિધત્ત છે તેને પ્રદેશનામ નિધત્તાયુ કહે છે.

અનુભાવ નામ નિધત્તાયુ—આયુ દ્રવ્યોનો જ જે વિપાક છે તેનું નામ અનુભાવ છે આ અનુભાવ રૂપ જે નામ (કર્મ) પરિણામ છે તેને અનુ-ભાવ નામ કહે છે અથવા અનુભાવ રૂપ જે કર્મ છે તેને અનુભાવ નામકર્મ કહે છે. તે અનુભાવ નામની સાથે નિધત્ત જે આયુ છે તેને અનુભાવ નામ નિધત્તાયુ કહે છે. આ પ્રકારનું છઠ્ઠા આયુબન્ધનું સ્વરૂપ છે.

શંકા—જાતિ આદિ નામકર્મ દ્વારા આયુને વિશેષિત શા માટે કરવામાં

आयुर्वैव जात्यादिनाम विशिष्यताम् ? इतिचेदाह—आयुषः प्राधान्यख्यापनार्थमेव जात्यादि नामकर्मणा तद् विशिष्यते । प्राधान्यं च तस्य नारकादि भवोपग्राहित्वात् । न हि नारकाद्यायुरुदयाभावे तज्जातिनामकर्मणाद्युदयसंभवः । अत एवोक्तं व्याख्याप्रज्ञप्त्याम्—(भग० श० ६ उ० ७)

" नेरइएणं भंते ! नेरइएसु उववज्जइ ? अनेरइए नेरइएसु उववज्जइ ? गोयमा ! नेरइए नेरइएसु उववज्जइ । नो अनेरइए नेरइएसु उववज्जइ । "

छाया—नैरयिकः खलु भदन्त ! नैरयिकेषूपपद्यते ? अनैरयिको नैरयिकेषु उपपद्यते ? गौतम ! नैरयिको नैरयिकेषूपपद्यते, नो अनैरयिको नैरयिकेषूपपद्यते इति ' अयं भावः—जीवो नरकायुः संवेदनप्रथमसमय एव नारक इत्युच्यते । तत्सहचारिणां च पञ्चेन्द्रिय जात्यादि नामकर्मणामप्युदयो भवतीति । इह आयु-

---

उ०—आयुकी प्रधानता दिखानेके लिये प्रकट करनेके लियेही जात्यादि नामकर्म द्वारा उसे विशेषित किया गया है, क्योंकि नारकादि भवोपग्राही होनेसे इसमें प्रधानता है, नारकादि आयुके उदयके अभावमें तज्जातिकर्मोंका उदय नहीं होता है, यही बात व्याख्याप्रज्ञप्तिमें इस प्रकारसे कही गई है (भग. श ६ उद्दे ८)

" नेरइएणं भंते ! नेरइएसु उववज्जइ ? अनेरइए नेरइएसु उववज्जइ ? गोयमा ! नेरइए नेरइएसु उववज्जइ नो अनेरइए नेरइएसु उववज्जइ " इसका भाव ऐसा है—जीव नरकायु संवेदनके प्रथम समयमेंही नारक ऐसा कहाने लगता है, क्योंकि उसके सहचारी जो पञ्चे-

---

કરવામાં આવ્યું છે ? આયુ દ્વારા જ જાતિ આદિ નામકર્મોને વિશેષિત કરવા જોઈતા હતા.

ઉત્તર—આયુની પ્રધાનતા પ્રકટ કરવાને માટે જ જાત્યાદિ નામકર્મ દ્વારા તેને વિશેષિત કરવામાં આવેલ છે, કારણ કે નારકાદિ ભવોપગ્રાહી હોવાથી તેમાં પ્રધાનતા છે. નારકાદિ આયુના ઉદયનો અભાવ હોય તો તજ્જાતિ (તે જાતિ) નામકર્મોનો ઉદય સંભવી શકતો નથી. આ વાતનું ભગવતી સૂત્રના છઠ્ઠા શતકના આઠમાં ઉદ્દેશામાં આ પ્રમાણે પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યું છે.—

" नेरइए णं भंते ! नेरइएसु उववज्जइ ? अनेरइए नेरइएसु उववज्जइ ? गोयमा ! नेरइए नेरइएसु उववज्जइ नो अनेरइए नेरइएसु उववज्जइ "

આ કથનનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે—જીવ નરકાયુ સંવેદનના પ્રથમ સમયે જ નારક તરીકે ઓળખાવા લાગે છે, કારણ કે તેના સહચારી જે

बन्धस्य षड्विधमुपक्रम्य यदायुषः षड्विधत्वमुच्यते, तद् आयुषोऽबन्धाव्यतिरेकाद् बद्धस्य चैवायुष आयुर्व्यपदेशविषयत्वादिति। इत्थं सामान्यतः षड्विधमायुर्बन्धमभिधाय सम्प्रति तमेव नारकादिजीवाश्रितत्वेन प्राह-'नेरइयाणं' इत्यादि। नैरयिकादि वैमानिकान्तानामेकैकस्य आयुर्बन्धः पूर्वोक्तः षड्विधो बोध्यः। तथा-नैरयिकाजीवाः नियमात् षण्मासावशेषायुष्काः-षण्मासा अवशेषाः=अवशिष्टा यस्मिंस्तादृशमायुर्येषां ते तथाभूताः सन्तः परभविकायुष्कं=परभवसम्बन्धिकम् आयुः प्रकुर्वन्ति=बध्नन्ति। एवमेव असुरकुमारादिस्तनितकुमारान्ता भवनवासिनो देवा अपि बोध्याः। असंख्येयवर्षायुष्काः संज्ञिपञ्चेन्द्रिय-

न्द्रिय जात्यादि नामकर्म हैं, उनकाभी उदय उस समय जीवको हो जाता है, आयुबन्धमें षट्विधताका उपक्रम करके जो आयुमें षट्विधता कही है, वह आयुबन्धसे अभिन्न होनेके कारण कही गई है, क्योंकि बद्ध आयुमेंही आयुका व्यपदेश होता है, इस प्रकार सामान्यतः छ प्रकारके आयुबन्धका कथन करके अब उसी बन्धका कथन नारकादि जीवोंका आश्रित करके सूत्रकार करते हैं " नेरइयाणं छव्विहे आउयबंधे० " इत्यादि। नैरयिकसे लेकर वैमानिक तकके एक २ जीवका आयुबन्ध पूर्वोक्त रूपसे ६ छह प्रकारका होताहै, तथा-नैरयिक जीव परिश्रमसे जब उनकी आयु ६ छहमासकी शेष रह जातीहै, तब परभवकी आयुका वे बन्ध करते हैं। इस तरहसे आयुबन्धका यह कथन असुर कुमारसे लेकर स्तनितकुमारों तकमें जानना चाहिये तथा असंख्यात वर्षकी आयुवाले संज्ञी पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च भी नियमसे जब उनकी आयु

પંચેન્દ્રિય જાત્યાદિ નામકર્મ છે તેમનો પણ તે સમયે જીવમાં ઉદય થઈ જાય છે. આયુબન્ધમાં ષટ્ વિધતા (છ પ્રકારતા) નો ઉપક્રમ કરીને આયુમાં જે ષટ્ વિધતા કહી છે તે આયુબન્ધથી અભિન્ન હોવાને કારણે કહી છે. કારણ કે બદ્ધ આયુમાં જ આયુનો વ્યપદેશ થય છે આ પ્રકારે છ પ્રકારના આયુબન્ધનું સામાન્ય રૂપે કથન કરીને હવે સૂત્રકાર નારકાદિ જીવોને આશ્રિત કરીને એ જ બન્ધનું કથન કરે છે.

" નેરઇયાણં છવ્વિહે આઉયબંધે " ઇત્યાદિ—

નારકથી લઈને વૈમાનિક પર્યન્તના પ્રત્યેક જીવનો આયુબન્ધ પૂર્વોક્ત છ પ્રકારનો હોય છે. જ્યારે નારક જીવનું છ માસનું આયુષ્ય બાકી રહે ત્યારે તે નિયમથી જ પરભવનો બન્ધ કરે છે આયુબન્ધનું આ પ્રકારનું કથન અસુરકુમારોથી લઈને સ્તનિતકુમારો સુધીના જીવોને પણ લાગુ પડે છે.

तिर्यग्योनिकाः पूर्ववदेव । असंख्येयवर्षायुष्काः संज्ञिन एव भवन्तीति संज्ञिग्रहणमत्र नियमार्थं बोध्यम्, न त्वसंज्ञिनां व्यवच्छेदार्थम्, असंज्ञिनामसंख्येयवर्षायुष्कत्वाभावादिति । एवमेव — युगलापेक्षया असंख्येयवर्षायुष्काः संज्ञि मनुष्या व्यन्तरा ज्योतिष्का वैमानिका अपि बोध्या इति ।

उक्तं चात्र गाथाद्वयम्—

" निरइसुरअसंखाऊ, तिरिमणुया सेसए उ छम्मासे ।
इगविगला निरुवक्कम,—तिरिमणुया आउयतिभागे ॥ १ ॥
अवसेसा सोवक्कम—तिभाग नवभाग सत्तवीसइमे ।
बंधंति परभवाउं, नियगभवे सव्वजीवा उ ॥ २ ॥ "

छाया—निरयिसुरा असंख्यायुषस्तिर्यग्मनुष्याः शेषके तु षण्मासे ।
एकविकलाः निरुपक्रमतिर्यग्मनुजाः आयुषस्त्रिभागे ॥ १ ॥
अवशेषाः सोपक्रमास्त्रिभागे नवभागे सप्तविंशतितमे ।
बध्नन्ति परभवायुः निजकभवे सर्वजीवास्तु ॥ २ ॥ इति ।

छह मासकी बाकी रहती है, तब परभवकी आयुका बन्ध करते हैं। असंख्यात वर्षकी आयुवाले संज्ञीही जीव होते हैं इसलिये "संज्ञिग्रहण" यह यहां नियमार्थ है, ऐसा जानना चाहिये असंज्ञियोंकी निवृत्तिके लिये नहीं क्योंकि असंज्ञियोंकी आयु असंख्यात वर्षकी नहीं होती है, इसी तरह युगलियोंकी अपेक्षासे असंख्यात वर्षकी आयुवाले संज्ञी मनुष्य व्यन्तर ज्योतिष्क और वैमानिक भी जानना चाहिये इस विषयमें दो गाथाएँ इस प्रकार कही गई हैं—

" निरइसुरअसंखाऊ " इत्यादि ।

અસંખ્યાત વર્ષના આયુષ્યવાળા સંજ્ઞી પંચેન્દ્રિય તિર્યંચો પણ જ્યારે તેમનું છ માસનું આયુષ્ય બાકી રહે છે ત્યારે પરભવના આયુનો બન્ધ કરે છે. સંજ્ઞી જીવોનું આયુષ્ય જ અસંખ્યાત વર્ષોનું હોય છે તેથી " संज्ञिग्रहण " આ પદ અહીં નિયમ દર્શાવવા માટે વપરાયું છે અસંજ્ઞીઓની નિવૃત્તિને માટે આ પદ વપરાયું નથી. કારણ કે અસંજ્ઞીઓનું આયુષ્ય અસંખ્યાત વર્ષનું હોતું નથી.

એ જ પ્રમાણે યુગલીયાઓ, અસંખ્યાત વર્ષના આયુવાળા સંજ્ઞી મનુષ્યો વ્યન્તર, જ્યોતિષ્કો, અને વૈમાનિકો વિષે પણ સમજવું. આ વિષયને અનુલક્ષીને નીચે પ્રમાણે બે ગાથાઓ આપવામાં આવી છે : " निरइसुरअसंखाऊ " ઇત્યાદિ. આ ગાથાઓનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે—

अयं भावः—नैरयिकाः सुरा असंख्यायुषस्तिर्यग्मनुष्याश्च आयुषः षण्मासे अवशिष्टे सति निजकभवे—अस्मिन् भवे परभविकायु बध्नन्ति। एकेन्द्रियाः विकलेन्द्रियाः निरुपक्रमास्तिर्यञ्चो मनुष्याश्च आयुषस्त्रिभागे=तृतीये भागेऽवशिष्टे सति निजकभवे परभविकायुर्बध्नन्ति। अवशेषाः=पूर्वोक्तेभ्योऽवशिष्टाः सोपक्रमा जीवास्तु आयुषस्तृतीये भागे नवमे भागे सप्तविंशतितमे भागे वा निजकभवे परभविकायुर्बध्नन्ति। इत्थं सर्वे जीवा निजकभवे परभविकायुर्बध्नन्तीति। केचित्तु अमुमेवार्थमेवं वदन्ति, तथाहि—इह तिर्यङ्मनुष्याः स्वकीयायुषस्तृतीयत्रिभागेऽवशिष्टे सति परभविकायुर्बद्धुं योग्या भवन्ति। देवा नारकास्तु स्वायुषः षण्मासेऽवशिष्टे सति तथा भवन्ति। तत्र तिर्यङ्मनुष्याः स्वायुषस्तृतीयत्रिभागेऽ

इनका भाव इस प्रकारसे है—नैरयिक सुर और असंख्यात वर्षकी आयुवाले तिर्यञ्च एवं मनुष्य अपने वर्तमान भवमेंही जब उनकी आयु ६ छह माहकी शेष रह जाती है, परभवकी आयुका बन्ध करतेहैं, तथा एकेन्द्रिय विकलेन्द्रिय निरुपक्रमायुवाले तिर्यञ्च और मनुष्य ये सब अवशिष्ट आयुके तृतीय भागमें परभवकी आयुका बन्ध करते हैं। तथा इनसे जो अवशिष्ट जीव हैं—सोपक्रमायुवाले जीव हैं वे तो आयुके तृतीय भागमें नौवे भागमें अथवा सत्ताईसवें भागमें परभवकी आयुका बन्ध करते हैं। कितनेक इस अर्थको इस प्रकारसे कहते हैं कि तिर्यञ्च एवं मनुष्य अपनी आयुके त्रिभागमें परभवकी आयुका बंध करनेके योग्य होते हैं, परन्तु देव और नारकी अपने आयुके ६ छह माह बाकी रहने पर परभवकी आयुको बांधनेके योग्य होते हैं, तिर्यञ्च और

નારકો, દેવો અને અસંખ્યાત વર્ષના આયુષ્યવાળા તિર્યંચો અને મનુષ્યોના વર્તમાન ભવનું છ માસનું આયુષ્ય બાકી રહે છે ત્યારે તેઓ પરભવના આયુનો બન્ધ કરે છે. એકેન્દ્રિયો, વિકલેન્દ્રિયો, નિરુપક્રમ આયુવાળા તિર્યંચો અને મનુષ્યો, આ બધા જીવો અવશિષ્ટ (બાકી રહેલા) આયુના ત્રીજા ભાગમાં પરભવના આયુનો બન્ધ કરે છે. તથા તે સિવાયના સોપક્રમાયુવાળા જે જીવો છે તેઓ આયુના ત્રીજા ભાગમાં, નવમાં ભાગમાં, અથવા સત્યાવીસમાં ભાગમાં પરભવના આયુનો બન્ધ કરે છે. કેટલાક આ વિષયને અનુલક્ષીને એવું કહે છે કે તિર્યંચો અને મનુષ્યો પોતાના આયુષ્યના ત્રીજા ભાગમાં પરભવના આયુનો બન્ધ કરે છે, પરન્તુ દેવો અને નારકોના આયુષ્યના છ માસ જ્યારે બાકી રહે છે ત્યારે તેઓ પરભવના આયુનો બન્ધ કરતા હોય છે. જો તિર્યંચ અને મનુષ્ય પોતાના આયુના

वशिष्टे यदि परभविकायुर्न बध्नन्ति, तदा पुनस्ते तृतीयत्रिभागस्य तृतीयत्रिभागेऽवशिष्टे सति परभविकायुर्बध्नन्ति। एवं तावत् संक्षिप्तं स्वायुर्यावत् सर्वजघन्योऽन्तर्मुहूर्त्तात्मक आयुर्बन्धकाल उत्तरकालश्च शेषस्तिष्ठति, इह तिर्यङ्मनुष्याः परभविकायुर्बध्नन्ति। अयं चासंक्षेपकाल उच्यते तदुत्तरं संक्षेपाभावात्। तथा—देवा नैरयिकाश्च स्वायुषः षण्मासे शेषे सति यदि परभविकायुर्न बध्नन्ति, तदा ते स्वकीयायुषः षण्मासशेषं तावत् संक्षिपन्ति यावत्सर्वजघन्योऽन्तर्मुहूर्त्तात्मक आयु-

मनुष्य यदि अपनी आयुके त्रिभागमें भी परभवकी आयुका बंध नहीं कर पाते हैं तो फिर वे उस अवशिष्ट त्रिभागके तृतीय भागमें परभवकी आयुका बंध करते हैं, इस तरहसे उनकी आयु तब तक संक्षिप्त होती जावेगी जबतक उनकी आयुका काल अन्तर्मुहूर्त्त कालमें नियमसे उन्हें परभवकी आयुका बंध होता है। इस कालको असंक्षेप काल कहा गया है, क्योंकि इसके बाद आयुके संक्षेप होनेका अभाव है, तथा—देव और नैरयिक अपनी आयुके ६ मास शेष रहने पर भी यदि परभवकी आयुका बंध नहीं कर पाते हैं, तो वे अपनी आयुके षण्मासरूप शेषको इतना संक्षिप्त करते हैं, कि जब तक उसमें सर्व जघन्य अन्तर्मुहूर्तात्मक आयुबन्ध काल बाकी बचा रहता है, इसमें वे नियमसे परभवकी आयुका बंध कर लेते हैं। तात्पर्य कहनेका यह है, कि तिर्यञ्च और मनुष्य अपनी आयुके त्रिभागमेंही आयुका बंध करते हैं, तथा देव एवं नारकी तथा असंख्यात वर्षवाले युगान्तिक मनुष्य अपनी

ત્રિભાગમાં પણ પરભવના આયુનો બન્ધ કરી લે નહીં તો તેઓ અવશિષ્ટ ત્રિભાગના તૃતીય ભાગમાં પરભવના આયુનો બન્ધ કરી લે છે. આ પ્રકારે તેમના આયુષ્યનો કાળ અન્તર્મુહૂર્ત પ્રમાણ બાકી રહી જાય ત્યાં સુધી તેમનું આયુષ્ય સંક્ષિપ્ત થતું જશે. આ બાકી રહેલા અન્તર્મુહૂર્ત પ્રમાણ કાળમાં તો તે પરભવના આયુનો બન્ધ અવશ્ય કરે છે. આ કાળને અસંક્ષેપ કાળ કહ્યો છે, કારણ કે ત્યાર બાદ આયુનો સંક્ષેપ થવાનો અભાવ રહે છે. તથા નારક અને દેવો જ્યારે તેમનું છ માસનું આયુષ્ય બાકી રહે ત્યારે પણ પરભવના આયુનો બન્ધ કરી ન લે, તો તેઓ પોતાના આયુના છ માસ રૂપ શેષકાળને એટલો સંક્ષિપ્ત કરી લે છે કે આખરે તેમાં ઓછામાં ઓછો અન્તર્મુહૂર્ત પ્રમાણ આયુબન્ધકાળ જ બાકી રહી જાય છે. ત્યારે તેઓ નિયમથી જ પરભવના આયુનો બન્ધ કરી લે છે. આ કથનનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે—

તિર્યંચ અને મનુષ્ય પોતાના આયુના ત્રિભાગમાં જ પરભવના આયુનો બન્ધ કરે છે, તથા દેવો, નારકો અને અસંખ્યાત વર્ષના આયુવાળા યુગ

बन्धकाल उत्तरकालश्च शेषो भवति। अत्र परभविकायुर्देवा नैरयिकाश्च बध्नन्तीत्ययमसंक्षेपकाल इति॥ सू० ६२॥

पूर्वसूत्रे आयुष्कर्मबन्ध उक्तः। आयुस्तु औदयिकभावहेतु भवतीत्यौदयिकं भावं, तत्साधर्म्याच्छेषान् भावांश्च निरूपयितुमाह—

मूलम्--छव्विहे भावे पण्णत्ते, तं जहा--ओदइए १, उवसमिए २, खइए ३, खओवसमिए ४, पारिणामिए ५, संनिवाइए ६॥ सू० ६३॥

छाया:—षड्विधो भावः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—औदयिकः १, औपशमिकः २, क्षायिकः ३, क्षयोपशमिकः ४, पारिणामिकः ५, सान्निपातिकः॥ सू० ६३॥

आयुके ६ छह मास शेष रहने पर परभवकी आयुका बंध करते हैं परन्तु यदि इतने पर भी परभवकी आयुका उन्हें बंध न हो पावे तो नियमसे आयुके अन्तर्मुहूर्त्त काल बाकी रहने पर वे उसमें परभवकी आयुका बन्ध कर लेते हैं॥ सू० ६२॥

इस ऊपरके सूत्रमें आयुष्क कर्मका बंध कहा आयुष्यकर्म औदयिक भाव है, हेतु जिसका ऐसा होता है, इसलिये अब सूत्रकार औदयिक भावकी और औदयिक भावके साधर्म्यसे शेष भावोंकी निरूपणा करते हैं

"छव्विहे भावे पण्णत्ते" इत्यादि सूत्र ६३॥

भाव छह प्रकारके कहे गये हैं, जैसे-औदयिक भाव १ औपशमिक भाव २ क्षायिक भाव ३ क्षायोपशमिक भाव ४ पारिणामिकभाव ५ और सन्निपातिक भाव ६।

કિંકો તેમના આયુષ્યના છ માસ બાકી રહે ત્યારે પરભવના આયુનો બન્ધ કરે છે. પરન્તુ જો તેઓ તે વખતે પરભવના આયુનો બન્ધ ન કરે, તો જ્યારે તેમનું અન્તર્મુહૂર્તપ્રમાણ આયુ બાકી રહે ત્યારે તો તેઓ પરભવના આયુનો બન્ધ અવશ્ય બાંધે જ છે. ॥ સૂ. ૬૨ ॥

આગલા સૂત્રમાં આયુષ્કકર્મના બન્ધનું નિરૂપણ કરવામાં આવ્યું. ઔદયિકભાવ આયુષ્કકર્મમાં કારણભૂત બને છે, તેથી હવે સૂત્રકાર ઔદાયિક ભાવની અને ઔદયિક ભાવના સાધર્મ્યની અપેક્ષાએ બાકીના ભાવોની પ્રરૂપણા કરે છે—" છવ્વિહે ભાવે પણ્ણત્તે " ઇત્યાદિ—

ભાવપરિણામના નીચે પ્રમાણે ૬ પ્રકાર કહ્યા છે—(૧) ઔદયિક ભાવ (૨) ઔપશમિક ભાવ, (૩) ક્ષાયિકભાવ, (૪) ક્ષાયોપશમિક ભાવ, (૫) પારિણામિક ભાવ અને (૬) સાન્નિપાતિક ભાવ.

टीका—' छव्विहे ' इत्यादि—

भावः—भवनं भावः पर्यायः—षड्विधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—औदयिकः, औपशमिक इत्यादि। तत्र—औदयिकः—उदय उदयनिष्पन्नश्चेति द्विविधः। तत्र—उदयः—अष्टानां ज्ञानावरणीयादि कर्मप्रकृतीनामुदयः—उपशान्तावस्थां परित्यज्य उदीरणावलिकामतिक्रम्य उदयावलिकायामात्मीयरूपेण विपाकइत्यर्थः। औदयिकनिष्पन्नस्तु कर्मोदयजनितो जीवस्य मनुष्यत्वादिपर्यायः ॥ १ ॥ तथा—औपशमिकः, अयम् उपशमोपशमनिष्पन्नभेदेन द्विविधः। तत्र—उपशमः—उपशमश्रेणीगतस्य जीवस्य अष्टाविंशतिविधमोहनीयकर्मोदयाभावः। उपशमनिष्पन्नस्तु उपशान्तक्रोधाद्युपशान्तकषायच्छद्मस्थवीतरागान्तः। अयं तु मोहनीयकर्मण उदयाभाव-

इनमें जो भाव कर्मोदयसे निष्पन्न होता है, वह औदयिक भाव है, यह औदयिक भाव उदयरूपसे और उदय निष्पन्न रूपसे दो प्रकारका है, इनमें जो आठ ज्ञानावरणीय आदि कर्म प्रकृतियोंका उदय है—उपशान्तावस्थाको छोडकर उदीरणावलिकाको अतिक्रमण कर उदयावलिकामें जो आत्मीयरूपसे विपाक है, वह उदय है, वह उदय रूप औदयिक भाव है, तथा कर्मोदय जन्य जो मनुष्यत्व आदि पर्याय हैं वे उदयनिष्पन्न औदयिक भाव हैं औपशमिक भावभी उपशमरूप और उपशम निष्पन्न रूपसे दो प्रकारका होता है, इनमें उपशम श्रेणी पर आरूढ हुए जीवके जो २८ प्रकृतिरूप मोहनीय कर्मके उदयका अभाव है, वह उपशमरूप औपशमिक भावहै, तथा उपशान्त कषायरूप ११ग्यारवां जो छद्मस्थ वीतराग भाव है, वह उपशम निष्पन्न औपशमिक भाव

જે ભાવ કર્મોદયથી નિષ્પન્ન થાય છે, તે ભાવને ઔદયિક ભાવ કહે છે. તે ઔદયિક ભાવના બે પ્રકાર છે—(૧) ઉદય રૂપ પ્રકાર, (૨) ઉદય નિષ્પન્ન રૂપ પ્રકાર જ્ઞાનાવરણીય આદિ આઠ કર્મપ્રકૃતિઓનો જે ઉદય છે-ઉપશાન્તાવસ્થા છોડીને ઉદીરણાવસ્થાનું અતિક્રમણ કરીને ઉદયાવલિકામાં જે આત્મીય રૂપે વિપાક છે, તેનું નામ ઉદય છે અને તે ઉદય રૂપ ઔદયિક ભાવ હોય છે. તથા કર્મોદય જન્ય જે મનુષ્યત્વ આદિ જે પર્યાયો છે, તેનું નામ ઉદય નિષ્પન્ન ઔદયિક ભાવ છે.

ઔપશમિક ભાવના પણ ઉપશમ રૂપ અને ઉપશમ નિષ્પન્ન રૂપ બે પ્રકાર હોય છે. ઉપશમ શ્રેણી પર આરૂઢ થયેલા જીવમાં જે ૨૮ પ્રકૃતિ રૂપ મોહનીય કર્મના ઉદયનો અભાવ છે, તે ઉપશમ રૂપ ઔપશમિક ભાવ છે. તથા ઉપશાન્ત કષાય રૂપ ૧૧ મો જે છદ્મસ્થ વીતરાગભાવ છે, તે ઉપશમ

फलरूप आत्मपरिणामो बोध्य इति ॥ २ ॥ तथा-क्षायिकः, अयं क्षयः क्षयनिष्पन्नश्चेति द्विविधः । तत्र-क्षयः-ज्ञानावरणादिभेदानाम् अष्टानां कर्मप्रकृतीनां नाशः, कर्माभाव इत्यर्थः । क्षयनिष्पन्नस्तु-ज्ञानावरणाद्यष्टकर्मप्रकृत्यभावजनितः केवलज्ञानदर्शनचारित्रादिरूपो विचित्रआत्मपरिणाम इति ॥ ३ ॥ तथा-क्षयोपशमिकः, अयं-क्षयोपशमः क्षयोपशमनिष्पन्नश्चेति द्विविधः । तत्र-क्षयोपशमः-केवलज्ञानप्रतिबन्धकानां ज्ञानावरणदर्शनावरणमोहनीयान्तरायाणां चतुर्णां घातिकर्मणां क्षयोपशमः । उदीर्णस्य क्षयोऽनुदीर्णस्य च विपाकमधिकृत्य उपशमः-क्षयोपशमो बोध्यः । ननु औपशमिकोऽप्येवमेव, ततः कोऽनयो र्भेदः ? इति चेदाह-औपश-

है, यह मोहनीय कर्मके उदयाभाव फलरूप होता है, और ऐसा यह आत्माका परिणाम होता है । क्षायिकभाव-क्षयरूप और क्षयनिष्पन्न रूपसे दो प्रकारका होता है, ज्ञानावरणादि रूप आठ प्रकारके कर्मोंका जो क्षय है, वह क्षयरूप क्षायिकभाव है, यह क्षय कर्मोंके अभावरूप होता है, तथा ज्ञानावरणादि अष्ट प्रकारके कर्मोंके क्षयसे जनित जो केवलज्ञान केवलदर्शन एवं चारित्र हैं वह क्षय निष्पन्न क्षायिक भाव है । क्षायोपशमिक भाव-यह क्षायोपशमरूप और क्षायोपशम निष्पन्न रूपसे दो प्रकारका होता है, इनमें केवलज्ञानको रोकनेवाले ज्ञानावरण दर्शनावरण मोहनीय और अन्तराय कर्मोंका जो क्षयोपशम है, वह क्षायोपशमरूप क्षायोपशमिक भाव है, उदीर्णका क्षय और विपाककी अपेक्षा अनुदीर्णका उपशम यही क्षायोपशम कहलाता है ।

નિષ્પન્ન ઔપશમિક ભાવ છે તે મોહનીય કર્મના ઉદયાભાવ ફલરૂપ હોય છે અને એવું તે આત્માનુ પરિણામ હોય છે.

ક્ષાયિકભાવ—ક્ષાયિકભાવના ક્ષયરૂપ અને ક્ષયનિષ્પન્ન રૂપ બે પ્રકાર પડે છે. જ્ઞાનાવરણાદિ રૂપ આઠ પ્રકારના કર્મોનો જે ક્ષય છે તે ક્ષયરૂપ ક્ષાયિક ભાવ હોય છે. આ ક્ષય કર્મોના અભાવ રૂપ હોય છે. તથા જ્ઞાનાવરણ આદિ આઠ પ્રકારના કર્મોના ક્ષયથી જનિત જે કેવલજ્ઞાન, કેવલદર્શન અને ચારિત્ર છે, તેને ક્ષયનિષ્પન્ન ક્ષાયિકભાવ કહે છે.

ક્ષાયોપશમિક ભાવ—તે ક્ષયોપશમ રૂપ અને ક્ષયોપશમ નિષ્પન્ન રૂપ એ પ્રકારનો હોય છે. કેવળજ્ઞાનને રોકનારા જ્ઞાનાવરણ, દર્શનાવરણ, મોહનીય અને અન્તરાય, આ કર્મોનો જે ક્ષયોપશમ થાય છે તેને ક્ષયોપશમ રૂપ ક્ષાયોપશમિક ભાવ કહે છે ઉદીર્ણના ક્ષય અને વિપાકની અપેક્ષાએ અનુદીર્ણનો જે ઉપશમ થાય છે તેનું નામ જ ક્ષયોપશમ છે.

मिके उपशान्तस्य प्रदेशानुभवतोऽप्यवेदनं भवति, क्षयोपशमिके तु वेदनमित्येवानयोर्भेद इति । क्षयोपशमो हि क्रियारूप एव बोध्य इति । क्षयोपशमनिष्पन्नस्तु आत्मन आभिनिबोधिकज्ञानादि लब्धिरूपः परिणाम इति ॥ ४ ॥ तथा=

शंका—औपशमिकभाव भी ऐसाही होता है, फिर इन दोनोंमें क्या अन्तर है ?

उत्तर—औपशमिक भावमें उपशान्त हुए प्रदेशोंका वेदन नहीं होता है, और क्षायोपशमिक भावमें उदितका वेदन होता है, तात्पर्य यह है कि औपशमिक भावमें कर्मोंका सत्तारूप उपशम होता है, अतः उसमें नीरस किये हुये कर्मदलिकोंका-दबे हुए कर्मदलिकोंका वेदन नहीं होता है, परन्तु क्षायोपशमिकमें देशघाति प्रकृतियोंका वेदन होता है, सर्व घातियोंमेंसे कितनेक सर्वघातियोंको उदयाभावी क्षय और कितनेक सर्वघातियोंका सदवस्थारूप उपशम रहता है, इसे दृष्टान्तसे यों समझना चाहिये किसी सेठके घर ९ नव चोर चोरी करनेके लिये चले इनमेंसे ४ चार तो आधे रास्ते तक आकर लौट गये और ५ पांच सेठके मकान तक आकर बैठ गये इनमेंसे १ एक चोर उठा और सेठके मकानके भीतर घुस गया और चोरी करने लगा अब यहां यों समझ लेना चाहिये जो चोर चोरी कर रहा है, वह देशघातिया प्रकृतिका

શંકા—ઔપશમિક ભાવ પણ એવો જ હોય છે, તો પછી તે બન્ને વચ્ચે શો તફાવત છે ?

ઉત્તર—ઔપશમિક ભાવમાં ઉપશાન્ત થયેલા પ્રદેશોનું વેદન થતું નથી અને ક્ષાયોપશમિક ભાવમાં ઉદિતનું વેદન થાય છે આ કથનનું તાત્પર્ય એ છે કે ઔપશમિક ભાવમાં કર્મોનો સત્તારૂપ ઉપશમ થાય છે, તેથી તેમાં નીરસ કરાયેલા કર્મદલિકોનું-દબાયેલા કર્મદલિકોનું વેદન થતું નથી. પરન્તુ ક્ષાયોપશમિકમાં દેશઘાતિ પ્રકૃતિઓનું વેદન થાય છે અને સર્વઘાતિ પ્રકૃતિઓમાંની કેટલીક સર્વઘાતિ પ્રકૃતિઓનો ઉદયભાવી ક્ષય અને કેટલીક સર્વઘાતિ પ્રકૃતિઓનો સદવસ્થારૂપ ઉપશમ રહે છે. આ વાતને એક દૃષ્ટાન્ત દ્વારા સમજાવવામાં આવે છે—

નવ ચોર કોઈ શેઠને ત્યાં ચોરી કરવા ઉપડયા. તેમાંથી ચાર ચોર તો માર્ગમાંથી પાછા ફરી ગયા. બાકીના પાંચ ચોર શેઠના મકાન પાસે આવીને બેસી ગયા. તેમાંથી એક ચોર ઉઠયો. તેણે મકાનમાં દાખલ થઈને ચોરી

उदयहै, ८ आठमें से जो चार साथ आकर भी रास्तेमेंसे लौट गयेहैं, वे सर्वघाति प्रकृतियोंमेंसे कितनेक प्रकृतियोंके उदयाभावी क्षयरूप है, क्योंकि उदयाभावी क्षय जो होता है, वह उदयमें आकर फल देनेरूप नहीं होता है, तथा चार और जो चोर हैं कि जो मकानके बाहरही बैठे हुए हैं, वे सदवस्था उपशम रूप हैं। इस समस्त कथनसे हम यही तात्पर्य निकालते हैं कि जिन भावोंके होनेमें कर्मका उपशम निमित्त होता है, वह औपशमिक भाव है, कर्मकी अवस्था विशेषका नाम उपशम है-जैसे कनकादि (निर्मली फल) द्रव्यके निमित्तसे जलमेंसे मल एक ओर हटकर बैठ जाता है, वैसेही परिणाम विशेषके कारण विवक्षित कालके कर्मनिषेकोंका अन्तर होकर उस कर्मका उपशम हो जाता है, क्षायोपशमिक भाव कर्मके क्षायोपशमसे होना है, जैसे-जलमें कुछ मलिनताके दब जाने पर और कुछ मलिनताके बने रहने पर उस जलमें मलकी क्षीणाक्षीणवृत्ति देखी जातीहै, जिससे जल पूरा निर्मल न होकर समल (मेलवाला) बना रहता है, वैसेही आत्मासे लगे हुए कर्मके क्षायोपशमके होने पर जो भाव प्रकट होना है, उसे क्षायोप

કરવા માંડી. આ દૃષ્ટાન્તને અહી આ પ્રમાણે ઘટાવી શકાય. જે ચોર ચોરી કરી રહ્યો છે તે દેશઘાતિકા પ્રકૃતિના ઉદયરૂપ છે, જે ચાર ચોર રસ્તામાંથી જ પાછાં ફરી ગયા છે તેઓ સર્વઘાતિ પ્રકૃતિઓમાંથી કેટલીક પ્રકૃતિઓના ઉદયાભાવી ક્ષયરૂપ છે, કારણ કે ઉદયાભાવી જે ક્ષય છે તે ઉદયમાં આવવા છતાં પણ ફલ આપવા રૂપ હોતો નથી. મકાનની બહાર બેસી રહેલા ચાર સદવસ્થા ઉપશમ રૂપ છે આ સમસ્ત કથનનો ભાવાર્થ એ છે કે જે ભવોની ઉત્પત્તિમાં કર્મનો ઉપશમ નિમિત્ત રૂપ હોય તે ભાવોને ઔપશમિક ભાવ કહે છે. કર્મની અવસ્થા વિશેષનું નામ ઉપશમ છે.

જેમ કતક (નિર્મલી ફળ), ફટકડી આદિ દ્રવ્યના પ્રભાવથી પાણીમાં રહેલો મળ અલગ પડી જઇને નીચે બેસી જાય છે, એ જ પ્રમાણે પરિણામ વિશેષને કારણે વિવક્ષિત કાળના કર્મનિષેકોનું અન્તર પડી જઇને તે કર્મનો ઉપશમ થઇ જાય છે. ક્ષાયોપશમિક ભાવ કર્મના ક્ષયોપશમથી થાય છે. જેમ પાણીમાં રહેલી કેટલીક મલિનતા નીચે બેસી જવાથી અને કેટલીક મલિનતા તે પાણીમાં કાયમ રહેવાથી તે જલમાં મેલની ક્ષીણાક્ષીણુતા જોવામાં આવે છે અને તેને કારણે તે પાણી પૂરેપૂરૂં નિર્મળ દેખાવાને બદલે મળવાનું (મેલુ) જ દેખાય છે, એ જ પ્રમાણે આત્માને લાગેલાં કર્મોના ક્ષયોપશમ

परिणामिकः-परिणमनम्=सर्वथाऽपरित्यक्तपूर्वावस्थस्य यद् रूपान्तरेण भवनं स परिणामः। तदुक्तम्—

" परिणामो ह्यर्थान्तरगमनं न च सर्वथा व्यवस्थानम् (स्थितिः)
न च सर्वथा विनाशः परिणामस्तद्विदामिष्टः ॥ १ " इति।

स एव पारिणामिकः। अयं च साद्यनादिभेदेन द्विविधः। तत्र सादिः परिणामो जीर्णघृतादीनाम्, तद्भावस्य सादित्वात्। अनादिपरिणामस्तु धर्मास्तिका-

शमिक भाव कहते हैं। इस तरहसे इन दोनोंमें भेद है, क्षायोपशम क्रियारूप ही होता है, और क्षायोपशम निष्पन्न रूप जो भाव है, वह आत्माका आभिनिबोधिक ज्ञानादि लब्धिरूप परिणाम होता है।

पारिणामिक भाव—जिसमें पूर्वावस्थाका सर्वथा परित्याग न होकर रूपान्तरसे जो परिगमन होना है, वह परिणाम है कहा भी है—

" परिणामोह्यर्थान्तर " इत्यादि।

सर्वथा एकसी स्थितिमें रहना यह परिणाम नहीं है, और न सर्वथा विनाश होना यह परिणाम है, किन्तु एक अवस्थासे दूसरी अवस्थामें आते रहना यही परिणाम है, यह परिणामही पारिणामिक है, यह पारिणामिक सादि और अनादिके भेदसे दो प्रकारका होता है, जीर्ण घृत आदिका जो परिणाम है, वह सादि परिणाम है, क्योंकि जीर्ण घृतादि होने रूप जो भाव है, अवस्था है, वह सादि है, तथा-

થવાથી જે ભાવ પ્રકટ થાય છે તેને ક્ષાયોપશમિક ભાવ કહે છે આ પ્રકારના તે બન્ને વચ્ચે ભેદ છે. ક્ષયોપશમ ક્રિયા રૂપ જ હોય છે. અને તે ક્ષયોપશમ નિષ્પન્ન ભાવ છે તે આત્માના આભિનિબોધિક જ્ઞાનાદિ લબ્ધિ રૂપ પરિણામ હોય છે.

પારિણામિક ભાવ—જેમાં પૂર્વાવસ્થાને સર્વથા પરિત્યાગ થયા વિના રૂપાન્તર રૂપ જે પરિણમન થાય છે તેનું નામ પણ પરિણામ છે. કહ્યું પણ છે કે: પરિણામો હ્યર્થાન્તર " ઈત્યાદિ—

સર્વથા એક સરખી સ્થિતિમાં રહેવું તેનું નામ પણ પરિણામ નથી, અને સર્વથા વિનાશ થવો તે પણ પરિણામ નથી પરન્તુ એક અવસ્થામાંથી બીજી અવસ્થામાં આવી જવું તેનું નામ જ પરિણામ છે. તે પરિણામ જ પારિણામિક છે. તે પારિણામિકના સાદિ અને અનાદિ નામના બે ભેદ પડે છે. જીર્ણઘૃત આદિનું જે પરિણામ છે તે સાદિ પરિણામ છે, કારણ કે જીર્ણઘતાદિ થવા રૂપ જે ભાવ-અવસ્થા છે તે સાદિ હોય છે.

यादीनाम् , तद्भावस्यानादित्वादिति ॥ ५ ॥ तथा—सान्निपातिकः—सन्निपतनम्= औदयिकादि पञ्चानां भावानां मिलनं सन्निपातः, तेन निर्वृत्तः सान्निपातिकः । अयं च औदयिकादीनां पञ्चानां भावानां संभवासंभवापेक्षापरित्यागेन द्विक–त्रिक–चतुष्क–पञ्चकसंयोगेन षड्विंशतिभङ्गरूपः । तत्र दश द्विकसंयोगे, दश त्रिक-संयोगे, पञ्च चतुष्कसंयोगे, एकः पञ्चकसंयोगे, एवं षड्विंशतिभङ्गाः । एषु षड्विं-

---

अनादि परिणाम रूप अवस्था धर्मास्तिकायादिकोंमें है क्योंकि धर्मास्ति-कायादिरूप जो अवस्था है वह उनमें अनादि कालसे है ५ ।

सान्निपातिक—औदयिक आदि पांच भावोंका जो मिलन है, वह सन्निपात है, इस सन्निपातसे जो निर्वृत्त होता है, वह सन्निपातिक है, ये पांच भाव समस्त संसारी जीवोंमें एक साथ पाया जावे ऐसा भी नियम नहीं है, और अजीवमें भी ये पांचो भाववाले पर्याय सम्भव नहीं है । समस्त मुक्त जीवोंमें क्षायिक और पारिणामिक ये दो भाव होते हैं । संसारी जीवोंमें कोई तीन भाववाला कोई चार भाववाला और पांच भाववाला होता है, पर दो भाववाला जीव नहीं होता है, इस तरह औदयिक आदि पांच भावोंके संभव होनेकी अपेक्षा और किसी जीवमें संभव नहीं होनेकी अपेक्षासे द्विक, त्रिक, चतुष्क एवं पञ्चकके संयोगसे यह सान्निपातिक भाव २६ भंगरूप होता है, इनमें द्विक संयोगमें १० त्रिक संयोगमें १० चतुष्क संयोगमें पांच और

ધર્માસ્તિકાયાદિકોમાં અનાદિ પરિણામ રૂપ ભાવ અવસ્થા હોય છે, કારણ કે ધર્માસ્તિકાયાદિ રૂપ જે અવસ્થા છે તેનો તેમનામાં અનાદિકાળથી સદ્‌ભાવ હોય છે.

સાન્નિપાતિક ભાવ—ઔદયિક આદિ પાંચ ભાવોનું જે મિલન છે તેનું નામ સન્નિપાત છે. આ સન્નિપાતથી જે નિવૃત્ત થાય છે તે સાન્નિપાતિક છે. આ પાંચે ભાવોનો સંસારી જીવોમાં એક સાથે સદ્‌ભાવ હોય છે, એવો કોઇ નિયમ નથી, અને અજીવોમાં પણ આ પાંચે ભાવવાળી પર્યાય સંભ-વિત હોતી નથી સમસ્ત મુક્ત જીવોમાં ક્ષાયિક અને પારિણામિક, એ બે ભાવ હોય છે. સંસારી જીવોમાં કોઈ જીવ ત્રણ ભાવવાળો, કોઈ ચાર ભાવ-વાળો અને કોઈ પાંચ ભાવવાળો હોય છે, પરન્તુ બે ભાવવાળો કોઇ જીવ હોતો નથી. આ રીતે ઔદયિક આદિ પાંચ ભાવોનો સંભવ હોવાની અપે-ક્ષાએ અને કોઈ જીવમાં સંભવ નહીં હોવાની અપેક્ષાએ દ્વિક, ત્રિક, ચતુષ્ક અને પંચકના સંયોગની અપેક્ષાએ આ સાન્નિપાતિક ભાવ ૨૬ ભંગ રૂપ (વિકલ્પ રૂપ) હોય છે. તેમાં દ્વિક સંયોગથી ૧૦, ત્રિક સંયોગથી ૧૦, ચતુષ્ક સંયોગથી પાંચ અને પાંચના સંયોગથી એક ભંગ (વિકલ્પ) અને

शतिविधेषु सान्निपातिकभेदेषु पञ्चदश अविरुद्धा भवन्ति । ते चेत्थम्—

" उदइय खओवसमिए, परिणामिक्केक्क गइचउक्के वि ।
खय जोगेण वि चउरो, तयभावे उवसमेणं पि ॥ १ ॥
उवसमसेढी एक्को केवलिणो वि य तहेव सिद्धस्स ।
अविरुद्ध संनिवाइय, भेया एमेव पंचदस ॥ २ ॥

छाया—औदयिकः क्षयोपशमिकः पारिणामिकः एकैको गतिचतुष्केऽपि ।
क्षययोगेनापि चत्वारस्तदभावे उपशमेनापि ॥ १ ॥
उपशमश्रेण्यामेकः केवलिनोऽपि च तथैव सिद्धस्य ।
अविरुद्ध सान्निपातिक भेदा एवमेव ॥ २ ॥ इति ॥

अयं भावः—औदयिकक्षयोपशमिकपारिणामिकेति त्रिकसंयोगनिष्पन्नः सान्निपातिको भावो गतिचतुष्केऽपि=नारकतिर्यङ्नरामरलक्षणो गतिचतुष्टयेऽपि एकैको भवति । तत्र नारकगतिमाश्रित्य–औदयिको नारकत्वं, क्षयोपशमिक इन्द्रियाणि, पारिणामिको जीवत्वमिति एको भेदः । एवं तिर्यङ्नरामरानाश्रित्य त्रयो भेदाः । इति चत्वारो भेदाः । ४ । तथा–औदयिक–क्षयोपशमिक–क्षायिक–

पांचके संयोगमें १ भंग होता है, इन २६ प्रकारके सांनिपातिक भेदोंमें पन्द्रह भेद अविरुद्ध होते हैं वे इस प्रकारसे हैं--
" उदइय खओवसमिए " इत्यादि ।

इन दोनों गाथाओंका भाव ऐसा है–औदयिक क्षायोपशमिक और पारिणामिक-इन तीनके संयोगसे निष्पन्न सांनिपातिक भाव नारक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव इन चार गतियोंमें एक२ होताहै, जैसे-नरकगतिको आजीवत्व (जहांतक रहे) यह पारिणामिक भाव है, यह एक भेद है, इसी तरहसे तिर्यञ्च गतिमें मनुष्यगतिमें और देवगतिको आश्रित करके तीन भेद कह लेना चाहिये इस प्रकारसे चारों गतियोंमें एक २ गतिकी अपेक्षा ये त्रिक संयोगमें ४ चार भेद होतेहैं। तथा औदयिक

છે આ ૨૬ પ્રકારના સાન્નિપાતિક ભેદોમાં ૧૫ ભેદ અવિરૂદ્ધ હોય છે. તે નીચે પ્રમાણે છે, " उदइय खओवसमिए " ઇત્યાદિ—

આ બન્ને ગાથાઓનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે—ઔદયિક, ક્ષાયોપશમિક અને પારિણામિક, આ ત્રણ ભવના સંયોગથી નિષ્પન્ન સાન્નિપાતિક ભાવ નારક, તિર્યંચ, મનુષ્ય અને દેવ આ ચાર ગતિઓમાં એક એક હોય છે. જેમકે નરક ગતિમાં આજીવત્વ પારિણામિક ભાવ છે. આ એક ભેદ થયો. એજ પ્રમાણે તિર્યંચ ગતિમાં, મનુષ્ય ગતિમાં અને દેવ ગતિમાં પણ એક એક ગતિની અપેક્ષાએ ત્રિક સંયોગમાં ચાર ભેદ થાય છે. તથા ઔદયિક,

पारिणामिकेति चतुष्कसंयोगनिष्पन्नाश्चतुर्गतिमाश्रित्य चत्वारः सान्निपातिकभेदाः। तथाहि-औदयिको नारकत्वं, क्षायोपशमिकइन्द्रियाणि, क्षायिकः सम्यक्त्वं, पारिणामिको जीवत्वमिति। एवं तिर्यङ् नरामरेष्वपि वक्तव्यम्। क्षायिकसम्यग्दृष्टयो नारकादिष्वपि भवन्तीति बोध्यम्। एवं पूर्वोक्तभेदचतुष्टयमेलनेन जाता अष्ट भेदाः।८। पुनरपि चतुष्कसंयोगिभेदानाह—'तयभावे' इत्यादि-तदभावे=क्षायिकाभावे 'च' शब्दाच्छेषत्रयभावेन च औपशमिकेन योगे अर्थात्-औदयिकक्षायोपशमिकौपशमिक-पारिणामिकेति चतुष्कसंयोगे सति चतुर्गतिमाश्रित्य चत्वारो भेदा बोध्याः। तथाहि-औदयिको नारकत्वं,

क्षायोपशमिक क्षायिक और पारिणामिक इन चार भावोंके संयोगसे निष्पन्न चार सांनिपातिक भेद चार गतियोंको आश्रित करके होते हैं जैसे-नारक पर्याय उनमें औदयिक भाव हैं, इन्द्रियां क्षायोप शमिक भाव हैं, क्षायिक सम्यक्त्व क्षायिक भाव है, और जीवत्व पारिणामिक भाव है, इसी तरहका कथन तिर्यञ्च गतिमें मनुष्य गतिमें और देवगतिमें भी कह लेना चाहिये नारकादिकोंमें भी क्षायिक सम्यग्दृष्टि होतेहैं। इस तरह पूर्वोक्त ४ चार भेद मिलानेसे ८ आठ भेद होते हैं, पुनः इस तरहसे भी चतुष्क संयोगी भेद बनते हैं-जैसे क्षायिकके अभावमें समझलेना और शेषत्रयके सद्भावमें औपशमिकके साथ योग करने पर अर्थात्-औदयिक, क्षायोपशमिक, औपशमिक और पारिणामिक-इस प्रकारसे संयोग होने पर चार गतिको आश्रित करके चार भेद होते हैं-नारक पर्याय औदयिक भाव है, इन्द्रियां क्षायोपशमिक

ક્ષાયોપશમિક, ક્ષાયિક અને પારિણામિક આ ચાર ભાવોના સંયોગથી નિષ્પન્ન ચાર સાંનિપાતિક ભેદ ચાર ગતિઓને આશ્રિત કરીને થાય છે. જેમકે નારક પર્યાય, તેઓમાં ઔદયિક ભાવ છે, ઇન્દ્રિયો ક્ષાયોપશમિક ભાવ છે, ક્ષાયિક સમ્યકત્વ ક્ષાયિકભાવ છે અને જીવત્વ પારિણામિક ભાવ છે. એ જ પ્રકારનું કથન તિર્યંચ ગતિમાં, મનુષ્ય ગતિમાં અને દેવ ગતિમાં પણ સમજી લેવું જોઇએ. નારકાદિકોમાં પણ ક્ષાયિક સમ્યગ્દષ્ટિ હોય છે. આ પ્રમાણેના ૪ ચાર ભેદો સાથે પૂર્વોક્ત ચાર ભેદો મેળવવાથી ૮ આઠ ભેદો થાય છે વળી આ પ્રકારે પણ ચતુષ્ક સંયોગી ભેદો બને છે-જેમકે ક્ષાયિકના અભાવમાં અને બાકીના ત્રણના સદ્ભાવમાં ઔપશમિકની સાથે યોગ કરવાથી એટલે કે ઔદયિક, ક્ષાયોપશમિક, ઔપશમિક, અને પારિણામિક આ પ્રકારે સંયોગ થવાથી ચાર ગતિને આશ્રિત કરીને ચાર ભેદ થાય છે, નારક પર્યાય ઔદયિક ભાવ છે,

क्षायोपशमिक इन्द्रियाणि, औपशमिकः सम्यक्त्वं, पारिणामिको जीवत्वमिति प्रथमो भेदः। एवमेव तिर्यङ्नरामरान् आश्रित्य भेदत्रयं बोध्यम्। इत्थं द्वादश-सान्निपातिकभेदाः भवन्ति। तथा-उपशमश्रेण्यामेक एव पञ्चकसंयोगी सान्निपातिकभेदो भवति, तस्या मनुष्येष्वेव सत्त्वात्। स च क्षायिकसम्यग्दृष्टेर्मनुष्यस्य उपशमश्रेणिप्रतिपन्नस्य भवति, तथाहि-औदयिको मनुष्यत्वं, क्षायोपशमिक इन्द्रियाणि, औपशमिकश्चारित्रं, क्षायिकं सम्यक्त्वं, पारिणामिको जीवत्वमिति जाता-स्त्रयोदशभेदाः।१३। तथा-केवलिन एक एव त्रिकसंयोगी भेदः, तथाहि—औदयिको मानुषत्वं, क्षायिकः सम्यक्त्वं, पारिणामिको जीवत्वमिति चतुर्दश।१४।

भाव है, सम्यक्त्व औपशमिक भाव है, और जीवत्व पारिणामिक भाव है, इस प्रकारसे यह प्रथम भेद है। इसी प्रकारका कथन तिर्यञ्चगतिमें मनुष्यगतिमें और देवगतिमें भी कर लेना चाहिये। इस तरहसे सान्निपातिक भावके ये १२ बारह भेद हो लेते हैं। तथा-उपशम श्रेणीमें एकही पंचक संयोगी सान्निपातिक भेद होता है, उपशमश्रेणी मनुष्योंमेंही होती है, यह पंचक संयोगी सान्निपातिक भावक्षायिक सम्यग्दृष्टि मनुष्यको जो कि उपशम श्रेणी पर चढा हुआ होता है जैसे-उसके मनुष्यत्व औदयिक भाव है, इन्द्रियाँ क्षायोपशमिक भाव है, चारित्र औपशमिक भाव है, सम्यक्त्व क्षायिक है, और जीवत्व पारिणामिक है, इस तरहसे १३ तेरह भेद हो जाते हैं। तथा-केवलिके एकही त्रिक संयोगी भेद होता है, जैसे मानुषत्व औदयिक सम्यक्त्व क्षायिक है, और जीवत्व

ઇન્દ્રિયો ક્ષાયોપશમિક ભાવ છે, સમ્યકત્વ ઔપશમિક ભાવ છે અને જીવત્વ પારિણામિક ભાવ છે. આ પ્રકારનો આ પ્રથમ ભેદ છે. એજ પ્રકારનું કથન તિર્યંચ ગતિમાં, મનુષ્ય ગતિમાં અને દેવ ગતિમાં પણ કરવું જોઇએ. આ રીતે સાંનિપાતિક ભાવના આ ૧૨ બાર ભેદ થઈ જાય છે.

તથા—ઉપશમ શ્રેણીમાં એક જ પંચક સંયોગી સાન્નિપાતિક ભેદ થાય છે. મનુષ્યમાં જ ઉપશમ શ્રેણીનો સદ્ભાવ હોય છે. આ પંચક સંયોગી સાન્નિપાતિક ભાવ ઉપશમ શ્રેણી પર આરૂઢ થયેલા ક્ષાયિક સમ્યગ્દૃષ્ટિ મનુષ્યમાં જ સંભવી શકે છે. જેમકે મનુષ્યત્વ તેનો ઔદયિક ભાવ છે, ઇન્દ્રિયો ક્ષાયોપશમિક ભાવ છે, ચારિત્ર ઔપશમિક ભાવ છે, સમ્યકત્વ ક્ષાયિક ભાવ છે અને જીવત્વ પારિણામિક ભાવ છે આ પ્રકારે અહીં સુધીમાં ૧૩ ભેદ બતાવવામાં આવ્યા. તથા કેવલીમાં એક જ ત્રિકસંયોગી ભેદ સંભવી શકે છે. જેમકે કેવલીમાં માનુષત્વ ઔદયિક ભાવ છે, સમ્યકત્વ ક્ષાયિકભાવ છે, અને

तथा-सिद्धस्याप्येक एव द्विक संयोगी भेदः तथाहि क्षायिकः सम्यक्त्वं पारिणामिको जीवत्वमिति पञ्चदश। इत्थमेते पञ्चदश भङ्गा भवन्ति। एते च पञ्चदश भङ्गा अविरुद्ध सान्निपातिकभेदा भवन्तीति। अपि च-त्रिपञ्चाशत् पञ्चानामपि भावानां भेदा भवन्ति। तथा हि—

"उवसमिए २ खइए विय ९ खय उवसम १८ उदय २१ परिणमे य ३।
दो नव अट्ठारसगं इगवीसा तिन्नि भेएणं ॥ १ ॥
सम्म चरित्ते पढमे, दंसणे नाणे य दाणलाभे य।
उवभोग भोग वीरिए, सम्मचरित्ते य तह बीए ॥ २ ॥
चउनाणऽन्नाणतियं दंसणतिय पंच दाणलद्धीओ।
सम्मत्तं चारित्तं च संजमासंजमे तइए ॥ ३ ॥
चउगइ चउक्कसाया लिंगतियं लेस छक्क अन्नाणं।
मिच्छत्तमसिद्धत्तं असंजमे तह चउत्थे ॥ ४ ॥
पंचमगम्मि य भावे जीव १ अभव्वत्त २ भव्वतामेव।
पंचण्हवि भावाणं भेया एमेव तेवन्ना ॥ ५ ॥

छाया—औपशमिकः २ क्षायिकोऽपि च ९ क्षायोपशमिक १८ औदयिकः २१ पारिणामिकश्च। ३
द्वौ नव अष्टादश एक विंशतिः त्रयश्च भेदेन ॥ १ ॥
सम्यक्त्व चारित्रे प्रथमे दर्शनं ज्ञानं च दानं लाभश्च।
उपभोगो भोगो वीर्यं सम्यक्त्वं चारित्रं च तथा द्वितीये ॥ २ ॥

पारिणामिक है, १३ में इन एक भेदको मिलानेसे १४ भेद हो जाते हैं। तथा-सिद्धके भी एकही द्विक संयोगी भेद होता है-जैसे-सम्यक्त्वरूप क्षायिकभाव और जीवत्वरूप परिणामिक भाव यहां तक ये १५ भेद होते हैं। ये १५ भङ्ग अविरुद्ध सांनिपातिक भेद होते हैं। अपि च

જીવત્વ પારિણામિક ભાવ છે. આગલા ૧૩ ભેદોમાં આ એક ભેદ ઉમેરવાથી ૧૪ ભેદ થાય છે તથા સિદ્ધમાં પણ એક જ દ્વિકસંયોગી ભેદ બની શકે છે. જેમકે સમ્યકત્વ રૂપ ક્ષાયિક ભાવ, અને જીવત્વ રૂપ પારિણામિક ભાવ. આગલા ૧૪ ભેદોમાં આ એક ભેદ ઉમેરવાથી કુલ ૧૫ ભેદ થઈ જાય છે આ ૧૫ ભાંગા રૂપ ભેદોને અવિરુદ્ધ સન્નિપાતિક ભેદો કહે છે. તથા પાંચે ભાવોના ૫૩ ત્રેપન ભેદો હોય છે જેમકે-સમ્યકત્વ રૂપ ક્ષાયિક ભાવ, અને જીવત્વ રૂપ પારિણામિક ભાવ અહીં સુધીમાં ૧૫ ભાંગાઓ પ્રકટ કરવામાં આવ્યા છે. આ ૧૫ ભાંગાઓ અવિરુદ્ધ સાન્નિપાતિક ભેદ રૂપ હોય છે. જો કે પાંચે ભાવોના કુલ ૫૩ ભેદ થાય છે. જેમકે:

चत्वारि ज्ञानानि अज्ञानत्रिकं दर्शनत्रिकं पञ्चदानलब्धयः।
सम्यक्त्वं चरित्रं संयमासंयमस्तथा ॥ ३ ॥
चतस्रो गतयः चत्वारः कषायाः लिङ्गत्रिकं लेश्याषट्कम् अज्ञानम्।
मिथ्यात्वमसिद्धत्वमसंयमस्तथा चतुर्थे ॥ ४ ॥
पञ्चमके च भावे जीवत्वम् अभव्यत्वं भव्यता चैव।
पञ्चानामपि भावानाम् भेदा एवमेत्रिपञ्चाशम् ॥५॥ इति।

अयं भावः-औपशमिकः क्षायिकः क्षायोपशमिकः औदयिकः पारिणामिकश्चेति पञ्च भावा भवन्ति। तेषु औपशमिकस्य सम्यक्त्वं चारित्रं चेति द्वौ भेदौ १। क्षायिकस्य-दर्शनं ज्ञानं दानं लाभ उपभोगो भोगो वीर्यं सम्यक्त्वं चारित्रं चेति नव भेदाः २। क्षायोपशमिकस्य-चत्वारि ज्ञानानि, त्रीणि अज्ञानानि, त्रीणि दर्श-

पांचो भावोंके भेद ५३ होते हैं जैसे-"उवसमिए २ खइएविय ए" इत्यादि। औपशमिक भावके दो भेद हैं-एक औपशमिक सम्यक्त्व और दूसरा औपशमिक चारित्र २ इनमें दर्शन मोहनीय कर्मके उपशमसे औपशमिक सम्यक्त्व होता है, और चारित्र मोहनीय कर्मके उपशमसे औपशमिक चारित्र होता है।

क्षायिक भावके नौ भेद हैं, क्षायिकज्ञान केवलज्ञान १ क्षायिकदर्शन केवलदर्शन२ क्षायिकलाभ ३ क्षायिकदान४ क्षायिक भोग५ क्षायिक उपभोग६ क्षायिक वीर्य ७ क्षायिक सम्यक्त्व ८ और क्षायिक चारित्र ९

क्षायोपशमिक भाव १८ प्रकारका होता है-चार ज्ञान, मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान-तीन अज्ञान-मत्यज्ञान, श्रुता-

"उवसमिए २ खइए विय ए" ઈત્યાદિ—

ઔપશમિક ભાવના બે ભેદ છે—(૧) ઔપશમિક સમ્યકત્વ અને (૨) ઔપશમિક ચારિત્ર. દર્શન મોહનીય કર્મના ઉપશમથી ઔપશમિક સમ્યકત્વ પ્રાપ્ત થાય છે અને ચારિત્ર મોહનીય કર્મના ઉપશમથી ઔપશમિક ચારિત્ર ઉત્પન્ન થાય છે.

ક્ષાયિકભાવના નીચે પ્રમાણે નવ ભેદો છે—(૧) ક્ષાયિક જ્ઞાન–કેવળ જ્ઞાન, (૨) ક્ષાયિક દર્શન–કેવળ દર્શન, (૩) ક્ષાયિક લાભ, (૪) ક્ષાયિક દાન, (૫) ક્ષાયિક ભોગ (૬) ક્ષાયિક ઉપભોગ, (૭) ક્ષાયિક વીર્ય, (૮) ક્ષાયિક સમ્યકત્વ અને (૯) ક્ષાયિક ચારિત્ર.

ક્ષાયોપશમિક ભાવના નીચે પ્રમાણે ૧૮ પ્રકાર કહ્યા છે—મતિજ્ઞાન, શ્રુતજ્ઞાન, અવધિજ્ઞાન અને મનઃપર્યવજ્ઞાન, આ ચાર જ્ઞાન-રૂપ ચાર પ્રકાર,

-नानि, पञ्च च दानलब्धयः, तथा-सम्यक्त्वं चारित्रं संयमासंयमश्चेति अष्टादश भेदाः ३। औदयिकस्य-चतस्रो गतयः, चत्वारः कषायाः, त्रीणि लिङ्गानि, षट्

ज्ञान, विभङ्गज्ञान तीन दर्शन चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन पांच दानकी लब्धियां दानलब्धि, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य-सम्यक्त्व चारित्र और संयमासंयम इनमें मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण और मनःपर्यय ज्ञानावरण के क्षयोपशम से मत्यादिक चार ज्ञान उत्पन्न होते हैं। मति अज्ञानावरण, श्रुत अज्ञानावरण और विभंगज्ञानावरण के क्षयोपशम से ३ तीन मत्यादिक अज्ञान होते हैं। चक्षुदर्शनावरण, अचक्षुदर्शनावरण, अवधिदर्शनावरण के क्षयोपशमसे चक्षुदर्शन आदि ३ तीन दर्शन होतेहैं। पांच प्रकारके अन्तराय के क्षयोपशम से दान, लोभ, भोग आदि पांच लब्धियां होती हैं, सम्यक्त्व प्रकृति के उदयसे क्षायोपशमिक सम्यक्त्व होता है, अनन्तानुबंधी आदि बारह प्रकारका कषाय के उदयाभावी क्षय और सद्वस्थारूप उपशम से तथा चार संज्वलनमें से किसी एकके और नौ नो-कषाय के यथासंभव उदय होने पर क्षायोपशमिक सर्वविरतिरूप चारित्र प्रकट होता है तथा अनन्तानुबन्धी आदि आठ प्रकार की कषाय

મત્યજ્ઞાન, શ્રુતાજ્ઞાન, અને વિભંગજ્ઞાન રૂપ ત્રણ અજ્ઞાન ચક્ષુદર્શન, અચક્ષુદર્શન, અને અવધિદર્શન રૂપ ત્રણ દર્શન, દાન, લાભ, ભોગ, ઉપભોગ અને વીર્ય, આ પાંચ લબ્ધિઓ. આ રીતે ૪ જ્ઞાન, ૩ અજ્ઞાન, ૩ દર્શન અને પાંચ લબ્ધિઓ મળીને ૧૫ પ્રકાર થયા. બાકીના ત્રણ પ્રકાર નીચે પ્રમાણે છે—(૧) સમ્યકત્વ, (૨) ચારિત્ર અને (૩) સંયમાસંયમ. આ રીતે ક્ષાયોપશમિક ભાવના કુલ ૧૮ પ્રકાર સમજવા. મતિજ્ઞાનાવરણ શ્રુતજ્ઞાનાવરણ, અવધિજ્ઞાનાવરણ, અને મનઃપર્યયજ્ઞાનાવરણના ક્ષયોપશમથી મતિજ્ઞાન આદિ ચાર જ્ઞાન ઉત્પન્ન થાય છે. મતિ અજ્ઞાનાવરણ, શ્રુત અજ્ઞાનાવરણ અને વિભંગજ્ઞાનાવરણના ક્ષયોપશમથી મત્યજ્ઞાન આદિ ત્રણ અજ્ઞાન ઉત્પન્ન થાય છે ચક્ષુદર્શનાવરણ, અચક્ષુદર્શનાવરણ, અને અવધિદર્શનાવરણના ક્ષયોપશમથી ચક્ષુદર્શન આદિ ત્રણ દર્શન ઉત્પન્ન થાય છે. પાંચ પ્રકારના અન્તરાયના ક્ષયોપશમથી દાન, લાભ, ભોગ આદિ પાંચ લબ્ધિઓ પ્રાપ્ત થાય છે. સમ્યકત્વ પ્રકૃતિના ઉદયથી ક્ષાયોપશમિક સમ્યકત્વ પ્રાપ્ત થાય છે અનન્તાનુબન્ધી આદિ ૧૨ પ્રકારના કષાયના ઉદયાભાવીક્ષય અને સદવસ્થારૂપ ઉપશમથી તથા ચાર સંજ્વલનમાંથી કોઈ એકનો અને નવ નોકષાયોનો યથાસંભવ ઉદય થવાથી ક્ષાયોપશમિક સર્વવિરતિ રૂપ ચારિત્ર પ્રકટ થાય છે. તથા અનન્તાનુબંધી આદિ ૮ પ્રકારના

के उदयअभावी क्षय और सदवस्थारूप उपशमसे एवं प्रत्याख्यानावरण एवं संज्वलनकषाय के और नोकषाय के यथासंभव उदय होने पर क्षायोपशमिक संयमासंयम भाव प्रकट होता है, इस प्रकार से अठारह प्रकार का क्षायोपशमिकभाव हैं।

शंका—संज्ञित्व सम्यग् मिथ्यात्व और योग भी क्षायोपशमिक भाव हैं, उनका यहां ग्रहण क्यों नहीं किया।

उत्तर—संज्ञीपना ज्ञान की अवस्थाविशेष है इसलिये उसे अलग से ग्रहण नहीं किया। सम्यग् मिथ्यात्व सम्यक्त्व का एक भेद है, इसलिये सम्यक्त्वके ग्रहण करनेसे ही सम्यक्त्व मिथ्यात्व का ग्रहण हो जाता है, योगका सम्बन्ध वीर्यलब्धिसेहै इसलिये उसेभी अलग नहीं कहा।

औदयिकभाव २१ इक्कीस प्रकार काहै-चारगति-नामकर्म के उदयसे नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव ये चार गतियां-चार कषाय मोहनीय के उदयसे क्रोध, मान, माया और लोभ ये चार कषाय वेद नोकषाय के उदयसे स्त्री पुरुष और नपुंसक ये ३तीन वेद कषाय के उदयसे अनुरंजित योगकी प्रवृत्ति रूप कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म और शुक्ल

કષાયોના ઉદયાભાવી ક્ષય અને સદવસ્થા રૂપ ઉપશમથી અને પ્રત્યાખ્યાનાવરણ અને સંજવલન કષાયનો યથાસંભવ ઉદય થવાથી ક્ષાયોપશમિક સંયમાસંયમ ભાવ પ્રકટ થાય છે. આ પ્રમાણે ૧૮ પ્રકારના ક્ષાયોપશમિકભાવ છે.

શંકા—સંજ્ઞિત્વ, સમ્યગ્ મિથ્યાત્વ અને યોગ પણ ક્ષાયોપશમિક ભાવ રૂપ જ છે. છતાં અહીં તેમને શા માટે ગ્રહણ કરવામાં આવ્યા નથી?

ઉત્તર—સંજ્ઞિત્વ જ્ઞાનની એક અવસ્થાવિશેષ રૂપ છે. તેથી અહીં તેને અલગ રૂપે ગ્રહણ કરવામાં આવેલ નથી સમ્યગ્મિથ્યાત્વ સમ્યકત્વના એક ભેદ રૂપ હોવાથી સમ્યકત્વમાં જે તેનો સમાવેશ થઇ જાય છે. યોગનો સંબંધ વીર્યલબ્ધિ સાથે હોવાથી તેને અહીં અલગ રૂપે ગણાવવાની જરૂર રહેતી નથી.

ઔદયિક ભાવના નીચે પ્રમાણે ૨૧ પ્રકાર છે—ચાર ગતિનામકર્મના ઉદયથી નરક તિર્યંચ, મનુષ્ય અને દેવ આ ચાર ગતિઓ રૂપ ચાર પ્રકાર કષાયમોહનીયના ઉદયથી ક્રોધ, માન, માયા અને લોભરૂપ ચાર કષાય, વેદ નોકષાયના ઉદયથી સ્ત્રી, પુરુષ અને નપુંસક રૂપ ત્રણ વેદ, કષાયના ઉદયથી અનુરંજિત યોગની પ્રવૃત્તિ રૂપ કૃષ્ણ, નીલ, કાપોત, પીત, પદ્મ અને શુકલ, આ ૬ લેશ્યાઓ. આ રીતે ૧૭ પ્રકાર થયા. (૧૮) જ્ઞાનાવરણના ઉદયથી

ये ६ लेश्या हैं। ज्ञानावरण के उदय से हुआ अज्ञान मिथ्यात्व मोहनीय के उदय से हुआ अतत्त्व श्रद्धानरूप मिथ्यादर्शन किसी भी कर्म के उदय से हुआ असिद्धत्व और चारित्रमोहनीय के सर्वघाति स्पर्द्धकों के उदयसे हुआ असंयम ये २१इक्कीस प्रकारके भाव औदायिक भावहैं।

शंका—दर्शनावरण के उदय से अदर्शन भाव भी होता है, उसको यहां अलग से क्यों नहीं गिनाया ?

उत्तर—मिथ्यादर्शन से ही अदर्शन भावका ग्रहण हो जाता है तथा निद्रा, निद्रा निद्रा आदि का भी इसीमें अन्तर्भाव कर लेना चाहिये क्योंकि ये भी अदर्शन के भेद हैं।

शंका—हास्य आदि के उदय से हास्य आदि औदयिक भाव भी होते हैं, अतः उन्हें तो अलग से गिनाना चाहिये ?

उत्तर—माना कि हास्य आदि स्वतन्त्र औदयिक भाव हैं–तब भी लिङ्ग के ग्रहण करने से इनका ग्रहण हो जाता है क्योंकि भाव लिङ्ग के सहचारी हैं।

शंका—अघातिया कर्मों के उदय से भी जाति आदि औदयिक भाव होते हैं सो उन्हें यहां अलग से क्यों नहीं गिनाया ?

પ્રકટ થતું અજ્ઞાન, (૧૯) મિથ્યાત્વ મોહનીયના ઉદયથી પ્રકટ થયેલું અતત્ત્વ શ્રદ્ધાનરૂપ મિથ્યાદર્શન, (૨૦) કોઇ પણ કર્મના ઉદયને લીધે જનિત અસિદ્ધત્વ અને (૨૧) ચારિત્ર મોહનીયના સર્વઘાતિ સ્પર્દ્ધકોના ઉદયથી જનિત અસંયમ. આ ૨૧ પ્રકારના ઔદયિક ભાવ કહ્યા છે.

શંકા—દર્શનાવરણના ઉદયથી અદર્શનભાવનો પણ સદ્ભાવ રહે છે. અહીં તેને અલગ રૂપે શા કારણે ગણાવેલ નથી ?

મિથ્યાદર્શનને ગ્રહણ કરવાથી અદર્શનભાવ પણ ગ્રહણ થઈ જાય છે તથા નિદ્રા, નિદ્રાનિદ્રા, આદિનો પણ તેમાં સમાવેશ કરી લેવો જોઇએ, કારણ કે તે પણ અદર્શનના ભેદો જ છે.

શંકા—હાસ્ય આદિના ઉદયથી હાસ્ય આદિ ઔદયિક ભાવ પણ હોઇ શકે છે, તેથી તેમને અલગ રૂપે ગણાવવા જ જોઇએ !

ઉત્તર—માની લઇએ કે હાસ્ય આદિ સ્વતંત્રભાવ છે. તો પણ લિંગને ગ્રહણ કરવાથી તેમનું ગ્રહણ પણ થઈ જાય છે, કારણ કે તે ભાવો લિંગના સહચારી છે.

શંકા—અઘાતિયા કર્મોના ઉદયથી પણ જાતિ આદિ ઔદયિક ભાવ સંભવી શકે છે તો તેમને અહીં અલગ રૂપે શા માટે ગણાવ્યા નથી ?

लेश्याः, अज्ञानं मिथ्यात्वम् असिद्धत्वम् असंयमश्चेति चत्वार इत्येकविंशतिभेदाः ४। पारिणामिकस्य—जीवत्वम् अभव्यत्वं भव्यताचेति त्रयोभेदाः ५। इत्थं पञ्चानां भावानां सर्वे त्रिपञ्चाशद् भेदाः भवन्तीति ॥ सू० ६३ ॥

उत्तर--अघातिया कर्मों के उदय से होने वाले जितने भी औदयिक भाव हैं उन सबका गति उपलक्षण है। इसके ग्रहण करने से उन सबका ग्रहण हो जाता है इसलिये अघातिया कर्मों के उदय से होनेवाले जाति आदि अन्य भावों को अलग से नहीं गिनाया।

शंका--उपशान्त कषाय क्षीण कषाय और सयोग केवली गुणस्थान में लेश्या का विधान तो किया है पर वहां कषाय का उदय नहीं पाया जाता अतः लेश्या मात्र को औदयिक मानना उचित नहीं है।

उत्तर--पूर्वभाव प्रज्ञापन नय की अपेक्षा वहां औदयिक पने का उपचार किया जाता है इसलिये लेश्या मात्र को औदयिक मानने में कोई आपत्ति नहीं है।

पारिणामिक भाव तीन हैं-जीवत्व, भव्यत्व और अभव्यत्व। इनमें जीवत्व का अर्थ चैतन्य है, यह शक्ति आत्मा की स्वाभाविक है इसमें कर्म के उदयादि की अपेक्षा नहीं पडती है इसलिये यह पारिणामिक है। यही बात भव्यत्व और अभव्यत्व के विषय में भी जाननी

ઉત્તર—અઘાતિયા કર્મોના ઉદયથી જનિત જેટલા ઔદયિક ભાવો છે તે સૌનું ઉપલક્ષણ ગતિ છે. ગતિનું ગ્રહણ થવાથી તે સૌનું ગ્રહણ પણ થઈ જાય છે. તેથી અઘાતિયા કર્મોના ઉદયથી જનિત જાતિ આદિ ભાવોને જુદા ગણાવ્યા નથી.

શંકા—ઉપશાન્ત કષાય, ક્ષીણ કષાય અને સયોગ કેવલી ગુણસ્થાનમાં લેશ્યાનું વિધાન તો કરવામાં આવ્યું છે પરન્તુ ત્યાં કષાયનો ઉદય જોવામાં આવતો નથી, તેથી લેશ્યા માત્રને ઔદયિક માનવાનું ઉચિત લાગતું નથી.

ઉત્તર—પૂર્વભાવ પ્રજ્ઞાપન નયની અપેક્ષાએ ત્યાં ઔદયિકપણાનો ઉપચાર કરવામાં આવે છે, તેથી લેશ્યા માત્રને ઔદયિક માનવામાં કોઈ દોષ નથી.

પારિણામિક ભાવ—ત્રણ છે—(૧) જીવત્વ, (૨) ભવ્યત્વ અને (૩) અભવ્યત્વ. જીવત્વનો અર્થ ચૈતન્ય છે. આ શક્તિ આત્માની ભાવિક શક્તિ છે. તેમાં કર્મના ઉદયાદિની અપેક્ષા રહેતી નથી, તેથી જ તેને પારિણામિક ભાવ રૂપે પ્રકટ કરવામાં આવેલ છે એ જ વાત ભવ્યત્વ અને અભવ્યત્વના

अनन्तरसूत्रे भावा अभिहिताः, तत्र च प्रशस्तेषु या अप्रवृत्तिः, अप्रशस्तेषु च या प्रवृत्तिः कृता, यच्च वा विपरीतश्रद्धानं विपरीतप्ररूपणं च कृतम्, तत्र साधवः प्रतिक्राम्यन्तीति प्रतिक्रमणमाह—

मूलम्—छव्विहे पडिक्कमणे पण्णत्ते, तं जहा—उच्चारपडिक्कमणे १, पासवणपडिक्कमणे २, इत्तरिए ३, आवकहिए ४, जं किंचि मिच्छा ५, सोमणंतिए ६॥ सू० ६४ ॥

छाया—षडविधं प्रतिक्रमणं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा-उच्चारप्रतिक्रमणं १, प्रस्रवणप्रतिक्रमणम् २, इत्वरिकं ३, यावत्कथिकम् ४, यत्किंचिन्मिथ्या ५, स्वापनान्तिकम् ६ ॥ सू० ६४ ॥

टीका—'छव्विहे' इत्यादि—

प्रतिक्रमणं—मिथ्यादुष्कृतकरणरूपम् प्रायश्चित्तस्य षड् भेदाः पूर्वं पञ्चदशसूत्रे प्रदर्शिताः, तद् यथा—आलोचनार्हम्, प्रतिक्रमणार्हम्, तदुभयार्हम् ३, विवे-

---

चाहिये, जिस आत्मा में रत्नत्रय प्रकट होने की योग्यता है वह भव्य और जिसमें इस प्रकार की योग्यता नहीं है वह अभव्य है, इस प्रकार से ५३ भाव जीव के होते हैं ॥ सू० ६३ ॥

इस ऊपर के सूत्र में भाव कहे गये हैं। इनमें प्रशस्त भावों में जो अप्रवृत्ति है और अप्रशस्त भावों में जो प्रवृत्ति है अथवा-जो विपरीत श्रद्धान हो गया है या विपरीत प्ररूपणा हो गई है सो इस स्थिति में साधु प्रतिक्रमण करते हैं अतः इसी बात को लेकर अब सूत्रकार प्रतिक्रमण का कथन करते हैं—

"छव्विहे पडिक्कमणे पण्णत्ते" इत्यादि सूत्र ६४ ॥

-मिथ्यादुष्कृत देने रूप प्रतिक्रमण नामका प्रायश्चित्त है। प्रायश्चित्त

વિષયમાં પણ સમજવી. જે આત્મામાં રત્નત્રય પ્રકટ થવાની યોગ્યતા હોય છે, તેને ભવ્યાત્મા કહે છે, જે આત્મામાં આ પ્રકારની યોગ્યતા હોતી નથી તેને અભવ્યાત્મા કહે છે. આ પ્રમાણે જીવમાં ૫૩ ભાવ હોય છે. ॥ સૂ. ૬૩ ॥

આગલા સૂત્રમાં ભાવની પ્રરૂપણા કરવામાં આવી. પ્રશસ્ત ભાવોમાં અપ્રવૃત્તિ થવાથી, અને અપ્રશસ્ત ભાવોમાં પ્રવૃત્તિ થવાથી, અથવા વિપરીત તત્ત્વમાં શ્રદ્ધા પ્રકટ થઇ જવાથી અથવા વિપરીત પ્રરૂપણા થઈ જવાથી તે દોષની નિવૃત્તિ માટે સાધુ પ્રતિક્રમણ કરે છે તેથી હવે સૂત્રકાર પ્રતિક્રમણનું નિરૂપણ કરે છે. "છવ્વિહે પડિક્કમણે પણ્ણત્તે" ઇત્યાદિ—

कार्हम् ४, व्युत्सर्गार्हम् ५, तपोऽर्हं ६ चेति, एषां व्याख्या तत्रैव द्रष्टव्या । तेषु यद् द्वितीयं प्रतिक्रमणार्हं प्रायश्चित्तं तत् षड्विधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—उच्चारप्रतिक्रमणम्-उच्चारोत्सर्गं कृत्वा यत् ऐर्यापथिकं प्रतिक्रमणं तत् ॥१॥ प्रस्रवणप्रतिक्रमणम्-प्रस्रवणं=मूत्रं, तदुत्सर्गं कृत्वा यत् ऐर्यापथिकं प्रतिक्रमणं तत् ॥२॥ उक्तंच—

" उच्चारं पासवणं, भूमीए वोसिरित्तु उवउत्तो ।
ओसरि ऊणं तत्तो, इरियावहियं पडिक्कमइ ॥१॥

वोसिरइ मत्तगे जइ, तो न पडिक्कमइ य मत्तगं जो उ ।
साहू परिट्ठवेई, नियमेण पडिक्कमइ सो उ ॥२॥

छह प्रकार का होता है, प्रायश्चित्त के छह भेद पहले पन्द्रहवें सूत्र में कहे गये हैं वे इस प्रकार हैं--आलोचनार्ह १, प्रतिक्रमणार्ह २, तदुभयार्ह ३, विवेकार्ह ४, व्युत्सर्गार्ह और तपोऽर्ह ६ ।
इनकी व्याख्या वहीं पन्द्रहवें सूत्रमें कही गई है, वहां देख लेना चाहिये उन छह प्रकारके प्रायश्चित्तोंमें यह प्रतिक्रमण नामका प्रायश्चित्त दूसरा है, यह छह प्रकारका होता है, जैसे-उच्चार प्रतिक्रमण १ प्रस्रवण प्रतिक्रमण २ इत्वरिक प्रतिक्रमण ३ यावत्कथिक प्रतिक्रमण ४ यत् किञ्चित् मिथ्या प्रतिक्रमण ५ और स्वापनान्तिक प्रतिक्रमण ६ उच्चार प्रतिक्रमण वह है, जो बहिर्भूमिसे आकर ऐर्यापथिकी क्रियाकी जाती है, प्रस्रवण प्रतिक्रमण वह है, जो प्रस्रवणके बाद ऐर्यापथिकी क्रियाकी जाती है। कहा भी है-" उच्चारं पासवणं " इत्यादि ।

મિથ્યાદુષ્કૃત દેવારૂપ પ્રતિક્રમણનું નામ પ્રાયશ્ચિત્ત છે. પ્રાયશ્ચિત્તના છ પ્રકાર પડે છે—(૧) આલોચનાર્હ, (૨) પ્રતિક્રમણાર્હ, (૩) તદુભયાર્હ, (૪) વિવેકાર્હ, (૫) વ્યુત્સર્ગાર્હ, અને (૬) તપોર્હ. પ્રાયશ્ચિત્તના આ છ પ્રકારોનું વિસ્તૃત નિરૂપણ ૧૫ માં સૂત્રમાં કરવામાં આવ્યું છે, તો ત્યાંથી વાંચી લેવું.

પ્રાયશ્ચિત્તનો પ્રતિક્રમણ નામનો જે બીજો ભેદ છે, તેના નીચે પ્રમાણે છ પ્રકાર પડે છે. (૧) ઉચ્ચાર પ્રતિક્રમણ, (૨) પ્રસ્રવણ પ્રતિક્રમણ, (૩) ઇત્વરિક પ્રતિક્રમણ, (૪) યાવત્કથિક પ્રતિક્રમણ, (૫) યત્કિંચિત્ મિથ્યાપ્રતિક્રમણ અને (૬) સ્વાપનાન્તિક પ્રતિક્રમણ.

બહિર્ભૂમિમાંથી આવીને (ઠલ્લે જઇને આવ્યા બાદ) ઐર્યાપથિકી ક્રિયા કરવામાં આવે છે તેનું નામ ઉચ્ચાર પ્રતિક્રમણ છે. પ્રસ્રવણ (મૂત્ર ત્યાગ) બાદ જે ઐર્યાપથિકી કરવામાં આવે છે તેનું નામ પ્રસ્રવણ પ્રતિક્રમણ છે.

કહ્યું પણ છે કે : " उच्चार पासवणं " ઇત્યાદિ—

छाया— उच्चारं प्रस्रवणं भूमौ व्युत्सृज्य उपयुक्तः ।
अवसृत्य तत ईर्यापथिकां प्रतिक्रामति ॥१॥
व्युत्सृजति मात्रके यदि ततो न प्रतिक्रामति च मात्रकं यस्तु ।
साधुः परिष्ठापयति नियमेन प्रतिक्रामति स तु ॥२॥ इति ।

इत्वरिकम्-स्वल्पकालिकं दैवसिकरात्रिकादिरूपम् ॥ ३ ॥ यावत्कथिकम्= यावज्जीविकं महाव्रतभक्तपरिज्ञादिरूपम् । प्रतिक्रमणत्वं चात्र विनिवृत्तिलक्षणान्वर्थयोगाद् बोध्यम् ॥४॥ तथा-यत्किंचिन्मिथ्या-खेलशिङ्घाणाविधिनिसर्गाभोगानाभोगसहसाकाराद्यसंयम-स्वरूपं यत्किंचित्=यत्किमपि मिथ्या=असम्यक्कृतं तद्विषयं यत् मिथ्येदमित्येवं प्रतिपत्तिपूर्वकं मिथ्यादुष्कृतकरणं तद् यत्किंचिन्मिथ्या प्रतिक्रमणमिति । उक्तं च--

" संजमजोगे अब्भुट्ठियस्स जं किंचि वितहमायरियं ।
मिच्छा एयं तु वियाणिऊण मिच्छत्ति कायव्वं ॥१॥"

दैवसिक रात्रिकादि रूप जो स्वल्पकालिक प्रतिक्रमण है, वह इत्वरिक प्रतिक्रमण है, महाव्रत भक्त परिज्ञादि रूप जो यावज्जीविक प्रतिक्रमण है. वह यावत्कथिक प्रतिक्रमण है, प्रतिक्रमणता विनिवृत्ति रूप सार्थक योगसे यहां आती है, खेल शरीरका मैल शिङ्घाण-नाकका मैल इनका अविधिपूर्वक छोडना आभोग अनाभोग (जानते अजानते) सहसाकार आदि रूप जो असंयम है, इन सबका सेवन करना सो इस असंयमके हो जाने पर " यह सब मेरा मिथ्या हो जावे" इस प्रकारसे जो मिथ्या दुष्कृति दिया जाता है, वह यत् किञ्चित् मिथ्या प्रतिक्रमण है। कहा भी है-" संजम जोगे अब्भुट्ठियस्स " इत्यादि ।

દૈવસિક, રાત્રિક આદિ રૂપ જે સ્વલ્પકાલિક પ્રતિક્રમણ છે તેને ઇત્વરિક પ્રતિક્રમણ કહે છે મહાવ્રત ભક્તપરિજ્ઞાદિ રૂપ જે યાવજ્જીવિક પ્રતિક્રમણ છે, તેને યાવત્કથિક પ્રતિક્રમણ કહે છે

વિનિવૃત્તિ રૂપ સાર્થક યોગથી અહીં પ્રતિક્રમણતા આવે છે. ખેલ (શરીરનો મેલ) અને સિંઘાણ (નાકમાંથી નીકળતો ચીકણો પદાર્થ) આદિને અવિધિપૂર્વક છોડવા રૂપ તથા આભોગ, અનાભોગ, સહસાકાર આદિ રૂપ જે અસંયમ છે, તેનું સેવન કરવાથી જે દોષ લાગે છે તેની નિવૃતિ નિમિત્તે " મારૂં એ કાર્ય મિથ્યા હો " આ પ્રકારે જે મિથ્યા દુષ્કૃતિ દેવામાં આવે છે તેનું નામ યત્કિંચિત્ મિથ્યાપ્રતિક્રમણ છે. કહ્યું પણ છે કે;

" संजमजोगे अब्भुट्ठियस्स " ઇત્યાદિ—

छाया--संयमयोगे अभ्युत्थितस्य यत् किंचिद् वितथमाचरितम् ।
मिथ्या एतत्तु विज्ञाय मिथ्येति कर्तव्यम् ॥१॥ इति ।

तथा--" खेलं सिंघाणं वा, अप्पडिलेहापमज्जिउं तहय ।
वोसरिय पडिक्कमई, तं पिय मिच्छुकडं देइ ॥१॥"

छाया--खेलं सिङ्घाणं वा, अप्रतिलेख्यापमृज्य तथा च ।
व्युत्सृज्य प्रतिक्राम्यति, तस्यापि मिथ्यादुष्कृतं ददाति ॥१॥ इति॥ ५॥

तथा--स्वापनान्तिकम्-स्वपनस्य=शयनक्रियया अन्तः=अवसानं स्वपनान्तः, तत्र भवं प्रतिक्रमणं स्वापनान्तिकम् । सुप्तोत्थिताहि साधव ईर्यां प्रतिक्रामन्त्ये-वेति । अथवा-' स्वाप्नान्तिकम् ' इतिच्छाया । तत्र-स्वप्नो=निद्रावशविकल्पः, तस्य अन्तो विभागः स्वप्नान्तः, तत्र भवं प्रतिक्रमणं स्वाप्नान्तिकम् । स्वप्न-विशेषेहि साधवः प्रतिक्रामन्त्येव । तदुक्तम्--

संयमयोगमें सावधान बने हुए जीवके द्वारा जो कुछभी असत्य सेवित हो जाता है, वह मेरा निष्फल हो इसके लिये जो मिथ्या दुष्कृत दिया जाता है, वह यत् किञ्चित् मिथ्या प्रतिक्रमण है । तथा-" खेलं सिंघाणं वा " इत्यादि । शयनक्रियाके अन्तमें जो प्रतिक्रमण किया जाता है, वह स्वापनान्तिक प्रतिक्रमण है । सुप्तोत्थित साधुजन ईर्या प्रतिक्रमण करतेही हैं । अथवा-" सोमणंतिए "की संस्कृत छाया " स्वाप्नान्तिकम् " ऐसी भी होती है, निद्रावश जो विकल्प है, उसका नाम स्वप्न है, इसका जो अन्त विभाग है, वह स्वप्नान्त है, इस स्वप्नान्तमें जो प्रतिक्रमण होता है, वह स्वाप्नान्तिक प्रतिक्रमण है, स्वप्नविशेषकी अवस्थामें साधुजन प्रतिक्रमण करतेही हैं । कहा भी

સંયમ યોગમાં સાવધાન રહેતા જીવ દ્વારા જે કોઇ પણ અસત્યનું સેવન થઈ જાય છે તે મિથ્યા હો-નિષ્ફલ હો, એવી ભાવનાપૂર્વક જે મિથ્યા દુષ્કૃત દેવામાં આવે છે તેને યત્કિંચિત્ મિથ્યાપ્રતિક્રમણ કહે છે.

કહ્યું પણ છે કે : " खेलं सिंघाणं वा " ઇત્યાદિ—

સ્વાપ્નાન્તિક પ્રતિક્રમણ—શયન ક્રિયાને અન્તે જે પ્રતિક્રમણ કરવામાં આવે છે તેને સ્વાપ્નાન્તિક પ્રતિક્રમણ કહે છે. ઊંઘ લઈને ઊઠતા સાધુ ઈર્યા પ્રતિક્રમણ તો કરે જ છે. અથવા " सोमणंतिए " આ પદની સંસ્કૃત છાયા " स्वाप्नान्तिकम् " પણ થાય છે. નિદ્રાને અધીન થવા રૂપ જે વિકલ્પ છે તેનું નામ સ્વપ્ન છે. તેનો જે અન્તવિભાગ છે તેનું નામ સ્વપ્નાન્ત છે. આ સ્વપ્નાન્તે જે પ્રતિક્રમણ થાય છે તેને સ્વાપ્નાન્તિક પ્રતિક્રમણ કહે છે. સ્વપ્ન વિશેષની અવસ્થામાં સાધુઓ પ્રતિક્રમણ કરે જ છે.

"गमणागमण विहारे, सुत्तं वा सुमिणदंसणे राओ ।
नावा नइ संतारे, इरियावहिया पडिक्कमणं ॥१॥"

छाया--गमनागमनविहारे सुप्ते वा स्वप्नदर्शने रात्रौ ।
नावा नदी सन्तारे ईर्यापथिका प्रतिक्रमणम् ॥१॥ इति ।

प्रतिक्रमणसूत्रेऽपि—"आउलमाउलाए, सोवणवत्तियाए" छाया--आकुलाकुलया स्वप्नप्रत्ययया, इत्यादिना स्वप्नविशेषे प्रतिक्रमणमुक्तम् । प्रतिक्रमणमत्र कायोत्सर्गरूपं, तच्च स्वप्नकृतप्राणातिपातादितो विनिवृत्तिरूपम् अन्वर्थं बोध्यम् । इति ॥ सू० ६४ ॥

अनन्तरं प्रतिक्रमणमुक्तम्, प्रतिक्रमणं चावश्यकमित्युच्यते । तच्च नक्षत्रोदयावसरे कुर्वन्तीति नक्षत्राणि षट्स्थानत्वेनाह--

---

"गमणा गमण विहारे" ईर्यापथिक प्रतिक्रमण साधु इतनी बातोंमें करते हैं गमनागमनमें विहारमें सुप्तावस्थासे प्रबुद्ध (जगनेपर) होने पर रात्रिमें नावसे नदी पार करने पर अथवा विना नावके नदी पार करने पर प्रतिक्रमण सूत्रमें भी "आउलमाउलाए सोवणवत्तियाए" इत्यादि पाठ द्वारा स्वप्नविशेषमें प्रतिक्रमण करना कहा गया है, प्रतिक्रमण यहां कायोत्सर्गरूप है, और वह स्वप्नकृत प्राणातिपात आदिसे विनिवृत्तिरूप है, इसलिये सार्थक है ॥ सू० ६४ ॥

इस ऊपरके सूत्रमें प्रतिक्रमण कहा यह प्रतिक्रमण आवश्यक रूप होता है, अतः यह नक्षत्रके उदय आदिके अवसरमें किया जाता है, इसलिये सूत्रकार अब नक्षत्रोंका कथन ६ स्थानकोंसे करते हैं—

કહ્યું પણ છે કે : ગમણાગમણ વિહારે" ઈત્યાદિ—

ઈર્યાપથિક પ્રતિક્રમણ સાધુ આટલી બાબતોમાં કરે છે--ગમનાગમનમાં વિહારમાં, ઊંઘમાંથી જાગૃત થાય ત્યારે, રાત્રે નાવમાં બેસીને નદી પાર કરવામાં આવે ત્યારે અથવા નાવ વિના નદી પાર કરવામાં આવે ત્યારે. પ્રતિક્રમણ સૂત્રમાં પણ "आउल माउलाए सोवणवत्तियाए" ઈત્યાદિ પાઠ દ્વારા સ્વપ્નવિશેષમાં પ્રતિક્રમણ કરવાનું કહ્યું છે. અહીં પ્રતિક્રમણ કાયોત્સર્ગ રૂપ છે, અને તે સ્વપ્નકૃત પ્રાણાતિપાત આદિમાંથી વિનિવૃત્ત થવા રૂપ હોવાથી સાર્થક છે. ॥ સૂ. ૬૪ ॥

ઉપરના સૂત્રમાં પ્રતિક્રમણનું નિરૂપણ કર્યું. પ્રતિક્રમણ આવશ્યક રૂપ હોય છે, તેથી નક્ષત્રના ઉદય આદિના અવસરે તે કરવામાં આવે છે. તેથી હવે સૂત્રકાર છ સ્થાનોની અપેક્ષાએ નક્ષત્રોનું કથન કરે છે--

मूलम्—कत्तियाणक्खत्ते छत्तारे पण्णत्ते। असिलेसा णक्खत्ते छत्तारे पण्णत्ते ॥ सू० ६५ ॥

छाया—कृत्तिकानक्षत्रं षट्तारं प्रज्ञप्तम्। अश्लेषानक्षत्रं षट्तारं प्रज्ञप्तम् ॥ सू० ६५ ॥

टीका—'कत्तिया णक्खत्ते' इत्यादि—

व्याख्या स्पष्टा ॥ सू० ६५ ॥

नक्षत्राणि चापि जीवरूपाण्येव। जीवानां नक्षत्ररूपता च कर्मपुद्गलचयादि सत्त्वे एव भवति चयादीनाह—

मूलम्—जीवा णं छट्ठाणणिव्वत्तिए पोग्गले पावकम्मत्ताए चिणिंसु वा चिणंति वा चिणिस्संति वा, तं जहा—पुढविकाइयनिव्वत्तिए जाव तसकाइयनिव्वत्तिए। एवं चिण उवचिण-बंधउदीरवेय तह निज्जरा चेव। छप्पएसिया णं खंधा अणंता पण्णत्ता। छप्पएसोगाढा पोग्गला अणंता पण्णत्ता। छ समयट्ठिइया पोग्गला अणंता पण्णत्ता। छ गुणकालगा पोग्गला जाव छ गुणलुक्खा पोग्गला अणंता पण्णत्ता ॥ सू० ६६ ॥

॥ छट्ठं ठाणं समत्तं

छाया—जीवाः खलु षट्स्थाननिर्वर्त्तितान् पुद्गलान् पापकर्मतया अचिन्वन् वा, चिन्वन्ति वा, चेष्यन्ति वा, तद्यथा—पृथिवीकायिकनिर्वर्त्तितान् यावत् त्रसकायिकनिर्वर्तितान्। एवं—चय उपचयोबन्ध उदीरो वेदस्तथा निर्जरा चैव। षट्प्रदेशिकाः खलु पुद्गला अनन्ताः प्रज्ञप्ताः। षड् प्रदेशावगाढाः पुद्गला अनन्ताः षट्समय स्थितिकाः पुद्गला अनन्ताः प्रज्ञप्ताः। षड्गुणकालकाः पुद्गला यावत् षड्गुणरूक्षाः पुद्गला अनन्ताः प्रज्ञप्ताः ॥ सू० ६६ ॥

॥ षष्ठं स्थानं समाप्तम् ॥

कत्तियाणक्खत्ते छत्तारे पण्णत्ते इत्यादि सूत्र ६५ ॥

कृत्तिका नक्षत्र छ तारावाला है आश्लेषा नक्षत्र छ तारावाला है। सू० ६५।

"कत्तियाणक्खत्ते छत्तारे पणत्ते" ઇત્યાદિ—

કૃતિકા નક્ષત્ર ૭ તારાવાળું છે, અશ્લેષા નક્ષત્ર પણ ૭ તારાવાળું છે. ॥ સૂ. ૬૫ ॥

टीका--' जीवा णं ' इत्यादि--

अस्य व्याख्या पूर्ववद् बोध्या। नवरं तस्मिन् तस्मिन् स्थाने तत्तत्स्थानकत्वेनोक्तम्, अत्र तु षट्स्थानकत्वेनेति ॥ सू० ६६ ॥

इति श्री विश्वविख्यात-जगद्वल्लभ-प्रसिद्धवाचक-पञ्चदशभाषाकलितललितकलापालापक-प्रविशुद्धगद्यपद्यनैकग्रन्थनिर्मापक-वादिमानमर्दक - श्रीशाहूछत्रपति कोल्हापुरराजप्रदत्त ' जैनशास्त्राचार्य ' पदभूषित-कोल्हापुरराजगुरु बालब्रह्मचारी- जैनाचार्य - जैनधर्मदिवाकर-पूज्यश्री -- घासीलालव्रतिविरचितायां ' स्थानाङ्गसूत्रस्य ' सुधाख्यायां व्याख्यायां षष्ठं स्थानम् सम्पूर्णम् ॥६-३ ॥

नक्षत्र भी जीवरूपही हैं, जीवोंमें नक्षत्र रूपता कर्मपुद्गलचय आदिके होने परही होती है, अतः अब सूत्रकार चय आदिका कथन करते हैं-

" जीवाणं छट्ठाणणिव्वत्तिए पोग्गले " इत्यादि सूत्र ६६ ॥

इस सूत्रकी भी व्याख्या स्पष्ट है, क्योंकि यह व्याख्या उस २ स्थानमें उस स्थानक रूपसे पहिलेकी जा चुकी है और अब यहां वह छह ६ स्थानक रूपसे कही गई है ॥ सू० ६६ ॥

श्री जैनाचार्य जैनधर्मदिवाकर श्री घासीलालजी महाराज रचित " स्थानाङ्ग सूत्र " की सुधा नामकी व्याख्याके छट्ठा स्थान समाप्त ॥ ६ ॥

નક્ષત્રો પણ જીવ રૂપ જ છે. કર્મપુદ્ગલમાં ચય આદિનો સદ્ભાવ હોવાથી જ જીવોમાં નક્ષત્રરૂપતા સંભવી શકે છે, તેથી હવે સૂત્રકાર ચય આદિનું કથન કરે છે.

" जीवाणं छट्ठाणणिव्वत्तिए पोग्गले " ઇત્યાદિ—

આ સૂત્રની વ્યાખ્યા સ્પષ્ટ છે, કારણ કે પ્રત્યેક સ્થાનમાં તે તે સ્થાનક રૂપે આ વ્યાખ્યા આગળ આપવામાં આવી ચુકી છે, અને અહીં છ સ્થાનક રૂપે તેનું કથન કરવામાં આવ્યું છે. ॥ સૂ. ૬૬ ॥

શ્રી જૈનાચાર્ય જૈનધર્મ દિવાકર શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ રચિત " સ્થાનાંગ સૂત્ર " ની સુધા નામની વ્યાખ્યાનું છઠ્ઠું સ્થાન સમાપ્ત ॥ ૬ ॥

॥ अथ सप्तमं स्थानकम् ॥

षष्ठं स्थानमुक्तं, सम्प्रति क्रमप्राप्तं सप्तममारभ्यते, अस्यतु पूर्वेण सहाय-मभिसम्बन्धः–पूर्वस्मिन् स्थाने पदार्थाः षट्स्थानकत्वेनोक्ताः, अत्र तु त एव पदार्थाः सप्तस्थानकत्वेन प्ररूप्यन्ते, इत्यनेन संबन्धेनायातस्यास्य स्थानस्येद-मादिमं सूत्रम्—

तथा–अनन्तरस्थानस्यान्तिमसूत्रेण सहास्य स्थानस्यादिमसूत्रस्यायमभि-संबन्धः–तत्र सूत्रे पुद्गलाः पर्यायतः प्रोक्ताः। अस्मिन् सूत्रेतु–पुद्गलविशेषाणां क्षयोपशमानन्तरं यो जीवकृतोऽनुष्ठानविशेषो भवति, तस्य सप्तविधत्वमुच्यते, इत्यनेन सम्बन्धेनायातमिदं सूत्रम्—

सातवां स्थानका प्रारंभ

छठा स्थान कहा जा चुका है, अब क्रम प्राप्त सप्तम स्थान प्रारंभ होता है, इस स्थानका पूर्व स्थानके साथ ऐसा सम्बन्ध है–कि पूर्व स्थानमें पदार्थ ६ स्थानक रूपसे कहे गये हैं, और यहां वेही पदार्थ सप्त स्थानकरूपसे कहे जावेंगे. तथा अनन्तर स्थानके अन्तिम सूत्रके साथ इस स्थानके प्रथम सूत्रका सम्बन्ध ऐसा है, कि उस सूत्रमें पुद्गल पर्यायकी अपेक्षासे कहे गये हैं, परन्तु सूत्रमें पुद्गल विशेषोंका क्षयोप-शमके अनन्तर जो जीव कृत अनुष्ठान विशेष होता है, उसमें सप्त-विधता कही जावेगी इसी अभिप्रायसे " सत्तविहे गणावक्कमणे " इत्यादि सूत्रपाठ कहा जाता है—

સાતમા સ્થાનનો પ્રારંભ—

છઠ્ઠા સ્નાનનું નિરૂપણુ પૂરૂં થયુ. હવે સાતમા સ્થાનનું નિરૂપણુ શરૂ કરવામાં આવે છે. પૂર્વસ્થાન સાથે સાતમાં સ્થાનનો સંબંધ આ પ્રકારનો છે.

પૂર્વ સ્થાનમાં પદાર્થોનું સ્થાનક રૂપે નિરૂપણુ કરવામાં આવ્યું છે, હવે અહીં એજ પદાર્થોનું સાત સ્થાનક રૂપે નિરૂપણુ કરવામાં આવશે. આગલા સ્થાનના છેલ્લા સૂત્ર સાથે આ સ્થાનના પહેલા સૂત્રનો સંબંધ આ પ્રકારનો છે–ત્યાં પર્યાયની અપેક્ષાએ પુદ્ગલેનું કથન કરવામાં આવ્યું છે, પરન્તુ આ સાતમાં સ્થાનના પહેલા સૂત્રમાં પુદ્ગલવિશેષોના ક્ષયોપશમ પૂર્વ જે જીવકૃત અનુષ્ઠાન વિશેષ થાય છે, તેમાં સપ્તવિધતા પ્રકટ કરવામાં આવશે. તેથી જ અહીં " सत्तविहे गणावक्कमणे " ઇત્યાદિ સૂત્રપાઠ મૂકયો છે—

मूलम्–सत्तविहे गणावक्कमणे पण्णत्ते, तं जहा–सव्वधम्मा रोएमि १, एगइया रोएमि एगइया णो रोएमि २, सव्वधम्मा वितिगिच्छामि ३, एगइया वितिगच्छामि एगइया नो वितिगच्छामि ४, सव्वधम्मा जुहुणामि ५, एगइया जुहुणामि एगइया णो जुहुणामि ६, इच्छामि णं भंते ! एगल्लविहारपडिमं उवसंपज्जित्ता णं विहरित्तए ॥ ७ ॥ सू० १ ॥

छाया–सप्तविधं गणापक्रमणं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा–सर्वधर्मान् रोचयामि १, एककान् रोचयामि एककान् नो रोचयामि २, सर्वधर्मान् विचिकित्सामि ३, एककान् विचिकित्सामि एककान् नो विचिकित्सामि ४, सर्वधर्मान् जुहोमि ५, एककान् जुहोमि एककान् नो जुहोमि ६, इच्छामि खलु भदन्त ! एकलविहारप्रतिमाम् उपसंपद्य खलु विहर्तुम् ॥ सू० १ ॥

टीका—'सत्तविहे गणावक्कमणे' इत्यादि—

गणापक्रमणम्–गणात्=गच्छात् अपक्रमणं=निर्गमनं सप्तविधं=प्रयोजनभेदेन भिन्नत्वात् सप्त प्रकारकं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा–सर्वधर्मान्–सर्वे च ते धर्माश्चेति सर्व-

---

'सत्तविहे गणावक्कमणे" इत्यादि सूत्र १

गणसे अपक्रमण–निर्गमन–प्रयोजनके भेदसे सात प्रकारका कहा गया है, गण नाम गच्छका है, जैसे–अपने गणमें बहुश्रुतका अभाव जब सर्व धर्मोंको रुचिका विषय बनानेवाला शिष्य–मुनि–देखता है, तो वह अपने गुरुसे ऐसी आज्ञा मांगता है, कि हे भदन्त ! मैं अपने गणसे निकलता हूँ, क्योंकि मैं समस्त धर्मका अभिलाषी हूं "सर्वे च

"सत्तविहे गणावक्कमणे" ઇત્યાદિ—

ગણમાંથી અપક્રમણ (નિર્ગમન) પ્રયોજનના ભેદને આધારે સાત પ્રકારનું કહ્યુ છે. ગણ એટલે ગચ્છ. કોઈ સાધુ નીચે દર્શાવવામાં આવેલા સાત કારણોને લીધે પોતાના ગણમાંથી નીકળી જઈને બીજા ગણમાં જઈ શકે છે—(૧) પોતાના ગણમાં બહુશ્રુતનો અભાવ જ્યારે કોઈ મુનિમાં સર્વ ધર્મ પ્રત્યે રુચિ જાગે અને તેને એમ લાગે કે પોતાના ગણમાં બહુશ્રુતનો અભાવ છે, ત્યારે તે પોતાના ગુરુ પાસે એવી આજ્ઞા માગે છે કે "હે ભગવન્! સમસ્ત ધર્મને (ધર્મના સમસ્ત તત્ત્વને) જાણવાની મારી અભિ-

धर्माः-निर्जराहेतुभूता अपूर्वग्रहणविस्मृतसन्धानपूर्वाधीतपरावर्तनरूपाः सूत्रार्थोभयविषयाः श्रुतभेदाः, क्षपणवैयावृत्त्यरूपाश्चारित्रभेदाः, तान् रोचयामि=रुचिविषयी करोमि-स्वीकर्तुमिच्छामीत्यर्थः। एते च स्वगणे प्राप्तुं न शक्यन्ते, बहुश्रुताभावात्, परगणे तु प्राप्तुं शक्यन्ते, तत्र बहुश्रुतानां सद्भावात्। अतो हे भदन्त ! स्वगणादहमपक्रमामि इत्येवं गुरुं पृष्ट्वा यत्स्वगणादपक्रमणं तत् प्रथमं गणापक्रमणं बोध्यम्।

ननु 'सर्वधर्मान् रोचयामि' इत्येतावन्मात्रोक्तौ 'गुरुपृच्छा गणादपक्रमणम्' इति कथं गम्यते ? इति चेदाह-सप्तमे भेदे-'इच्छामि णं भंते !' इत्याद्युक्तम्,

ते धर्माश्च इति सर्वधर्माः" इस व्युत्पत्तिके अनुसार अपूर्वका ग्रहण विस्मृतका सन्धान, और पूर्वमें पठित विषयका परावर्तन इस प्रकारके जो सूत्रके, अर्थके एवं सूत्रार्थ दोनोंके भेद हैं, उन्हें तथा क्षपण एवं वैयावृत्त्य रूप जो चारित्रके भेद हैं, वे यहां सर्वधर्म शब्दसे गृहीत हुए हैं-तथा जिस दूसरे गणमें वह जाना चाहता है-वहां वह बहुश्रुतका सद्भाव जान करही जाना चाहता है, अतः वे समस्त धर्म उसे वहां प्राप्त हो सकते हैं, इस प्रकार गुरुसे पूछकर जो अपने गणसे-गच्छसे बाहर होता है, वह प्रथम गणापक्रमण जानना चाहिये

शंका—"सर्व धर्मान् रोचयामि" सूत्रमें ऐसाही पाठ कहा गया है-अतः यह बात यहां कैसे जानी जाती है-कि वह गुरुसे पूछकर

લાષા છે. આપણા ગણુમાં બહુશ્રુતનો અભાવ હોવાથી મને આ ગણુ છોડવાની રજા આપો.

"सर्वे च ते धर्माश्च इति सर्वधर्माः" આ વ્યુત્પત્તિ અનુસાર અપૂર્વનું ગ્રહણુ, વિસ્મૃતનું સંધાન, પૂર્વપઠિત વિષયનું પરાવર્તન, આ પ્રકારના જે સૂત્રના, અર્થના અને સૂત્રાર્થના ભેદ છે તેમને તથા ક્ષપણુ અને વૈયાવૃત્ય-રૂપ જે ચારિત્રના ભેદ છે તેમને અહીં 'સર્વધર્મ' પદ દ્વારા ગ્રહણુ કરવામાં આવેલ છે. તથા જે અન્ય ગણુમાં તે જવા માગે છે ત્યાં બહુશ્રુતનો સદ્‌ભાવ છે એવું જાણીને જ તે ત્યાં જવા માગે છે, તેથી તે સમસ્ત ધર્મની તેને ત્યાં પ્રાપ્તિ થઈ શકવાનો સંભવ છે આ પ્રકારના કારણુને લીધે ગુરુની આજ્ઞા લઈને તે ગણુમાંથી અપક્રમણુ કરી શકે છે. ગણુાપક્રમણુ માટે સમસ્ત ધર્મની પ્રાપ્તિ રૂપ આ પહેલું પ્રયોજન સમજવું.

શંકા—"सर्वधर्मान् रोचयामि" આ સૂત્રમાં ગુરુની આજ્ઞા લઈને ગણુાપક્રમણુ કરવાનું તો લખ્યું નથી, છતાં આપ શા કારણે એવું કહો છો

तत्र गुरुपृच्छापूर्वकमेव एकलविहारप्रतिमार्थं गणादपक्रमणम् वक्ष्यते, तत्साधर्म्यादत्रापि गुरुपृच्छापूर्वकमेव गणादपक्रमणं बोध्यमिति।

तथा–एककान् काँश्चन धर्मान् श्रुतरूपान् चारित्ररूपान् वा स्वगणेऽनवस्थितान् रोचयामि=रुचिविषयी करोमि–एककान् काँश्चित् श्रुतधर्मान् चारित्रधर्मान् वा स्वगणेऽवस्थितान् न रोचयामि, याँश्च धर्मान् रोचयामि ते धर्माः स्वगणे प्राप्तुं न शक्यन्ते, तथाविधसामग्र्यभावात्। इति द्वितीयम्। तथा–सर्वधर्मान्–

गणसे अपक्रमण (गणको छोड़ता है) करता है ?

उत्तर—आगे सातवे भेदमें "इच्छामि णं भंते!" ऐसा कहा गया है, अतः इससे वहां युक्त पृच्छापूर्वकही एकल विहार प्रतिमाके लिये गणसे अपक्रमण कहा जावेगा सो उसके साधर्म्यसे यहां पर भी गुरुपृच्छापूर्वकही गणसे निर्गमन (जाना) होता है ऐसा जानना चाहिये–तथा–"एगइया रोएमि एगइया णो रोएमि" २–कितनेक श्रुतरूप अथवा चारित्ररूप धर्मोंको मैं जो कि अपने गणमें अवस्थित नहीं हैं, रुचिका विषय बनाता हूं तथा–कितनेक श्रुतरूप अथवा चारित्र रूप धर्मोंको मैं जो कि अपने गणमें अवस्थित हैं, अपनी रुचिका विषय नहीं बनाता हूं–इस तरह स्व गणमें अवस्थित धर्मोंको मैं नहीं चाहता हूं, और जो धर्म स्वगणमें अवस्थित नहीं हैं, उन्हें मैं चाहता हूं–वे स्वगणमें तथाविध सामग्रीके अभावसे प्राप्त नहीं हो सकते हैं–अतः

કે તે ગુરુની આજ્ઞા લઇને ગણાપક્રમણ કરે છે ?

ઉત્તર—હવે પછી આવનારા સાતમાં ભેદમાં એવો સૂત્રપાઠ આવે છે કે "इच्छा मिणं भंते !" ઇત્યાદિ. ત્યાં ગુરુની આજ્ઞા લઇને જ ગણમાંથી નીકળવાની શિષ્યની ઇચ્છા પ્રદર્શિત થઇ છે. તે પ્રયોજન સાથેના સાધર્મ્યને લીધે અહીં પણ ગુરુની અનુજ્ઞાપૂર્વક જ ગણમાંથી શિષ્યનું નિર્ગમન થહણુથવું જોઇએ.

બીજું કારણ—"एगइया रोएमि, एगइया णो रोएमि" કેટલાક શ્રુતરૂપ અથવા ચારિત્રરૂપ ધર્મો કે જે આપણા ગણમાં અવસ્થિત (વિદ્યમાન) નથી, તે મારી રુચિને અનુકૂળ લાગે છે, અને કેટલાક શ્રુતરૂપ અથવા ચારિત્રરૂપ ધર્મો કે જે આપણા ગણમાં અવસ્થિત છે, તે મારી રુચિને અનુકૂળ લાગતા નથી. આ રીતે આપણા ગણમાં અવસ્થિત ધર્મોને હું ચાહતો નથી અને જે ધર્મો આપણા ગણમાં અવસ્થિત નથી તેને હું ચાહું છું. જે ધર્મો મને ગમે છે તેમની સ્વગણમાં પ્રાપ્તિ થવાનું શક્ય નથી, કારણ કે સ્વગણમાં તથ વિધ સામગ્રીનો અભાવ છે. તો 'હે ગુરુદેવ ! જો આપ અનુજ્ઞા આપો તો હું

श्रुतभेदान् चारित्रभेदांश्च समस्तानपि धर्मान् विचिकित्सामि=सन्दिहामि-संशयविषयी करोमि, तेषां सन्देहानां निराकरणं स्वगच्छे न संभवति, तथाविधबहुश्रुताभावात्, परगच्छे तु तथाविधसाधूनां सद्भावात् सन्देहनिराकरणं भवितुमर्हति। इति तृतीयम्। तथा-एककान् काँश्चन श्रुतधर्मान् चारित्रधर्मान् वा विचिकित्सामि, एककान् काँश्चन श्रुतधर्मान् चारित्रधर्मान् वा नो विचिकित्सामि। यद्विषयिणी मम विचिकित्सा वर्त्तते तदपनयने नास्ति कश्चित्समर्थः स्वगणे,

---

मैं आपसे आज्ञा प्राप्त कर इस गणसे निकलना चाहता हूं यह गणसे बाहर होनेका दूसरा कारण है २

" सव्वधम्मा वितिगिच्छामि " तथा मुझे समस्त धर्मों पर श्रुतभेदों पर और चारित्र भेदों पर संशय है, सो उनके संदेहोंका निराकरण होना स्वगच्छमें संभवित नहीं होता है, क्योंकि यहां पर तथाविध बहुश्रुत रूप सामग्रीका अभाव है, दूसरे गच्छमें तथाविध साधुओंके सद्भावसे सामग्रीका सद्भाव है अतः वहां पर उन संदेहोंका निराकरण संभवित है-इसलिये मैं गच्छसे हे गुरो ! आपकी आज्ञा लेकर जाता हूं ऐसा यह तृतीय कारण है ३।

" एगइया वितिगिच्छामि, एगइया नो वितिगिच्छामि " ४ तथा कितनेक श्रुत धर्मोंके ऊपर अथवा-चारित्र धर्मोंके ऊपर मुझे सन्देह है; और कितनेक श्रुत धर्मोंके ऊपर अथवा चारित्र धर्मोंके ऊपर

ગણમાંથી નીકળી જવા માગું છું.' કોઈ પણ સાધુ આ પ્રકારના કારણને લીધે પોતાના ગણનો ત્યાગ કરીને બીજા ગણમાં જઈ શકે છે.

ત્રીજું કારણ—" सव्वधम्मा वितिगिच्छामि " મને સમસ્ત ધર્મો પર શ્રુત ભેદો પર અને ચારિત્ર ભેદો પર-સંશય ઉદ્ભવ્યો છે. તે સંશયનું સ્વગણમાં નિવારણ થઈ થઈ શકે તેમ નથી, કારણ કે આપણા ગણમાં તે સંશયોનું નિવારણ કરી શકે એવા બહુશ્રુત સાધુઓનો અભાવ છે, અન્ય ગણ કે જ્યાં હું જવા માગું છું, ત્યાં મારા સંશયોનું નિવારણ કરે એવા બહુશ્રુત સાધુઓનો સદ્ભાવ છે. તેથી ત્યાં જવાથી મારા સંશયોનું નિવારણ થઈ શકશે માટે હે ગુરુ મહારાજ ! મને આપણા ગણમાંથી અન્ય ગણમાં જવાની અનુજ્ઞા પ્રદાન કરો.

ચોથું કારણ—" एगइया वितिगिच्छामि, एगइया नो वितिगिच्छामि " તથા કેટલાક શ્રુતધર્મો પ્રત્યે અથવા ચારિત્ર ધર્મો પ્રત્યે મારા મનમાં સંદેહ છે અને કેટલાક શ્રુતધર્મો પ્રત્યે અથવા ચારિત્ર ધર્મો પ્રત્યે મારા મનમાં

परगणे त्वस्ति तथाविधः इति चतुर्थम् । तथा-सर्वधर्मान्-श्रुतभेदाश्चारित्रभेदाश्च ये धर्मा मया ज्ञायन्ते, तान् सकलानपि धर्मान् जुहोमि=अन्येभ्यो दातु मिच्छामि। न चास्ति स्वगणे कश्चित्तद्ग्रहण समर्थः, परगणे तु तथाविधोऽस्ति । इति पञ्चमम् । तथा-एककान् कांश्चिद् धर्मान् जुहोमि । यान् धर्मान् अन्येभ्यो दातु

सन्देह नहीं है, अतः जिस विषयके ऊपर मुझे विचिकित्सा है, उसे हटानेके लिये इस गणमें कोई समर्थ नहीं है, पर गणमें तो ऐसा समर्थ विद्वान् है-अतः मैं आपसे आज्ञा चाहता हूँ कि मैं इस गगसे बाहर चला जाऊं अतः इस प्रयोजन वश वह गणको छोडकर दूसरे गणमें चला जाता है, ऐसा यह अपने गणको छोडनेका चतुर्थ कारण है ४।

"सव्व धम्मा जुहुणामि" ऐसा यह पांचवां कारण है-इसमें शिष्य ऐसा अपना अभिप्राय प्रकट करता है कि हे भदन्त ! समस्त धर्मश्रुत धर्म और चारित्र धर्म-जिन्हें मैं जानता हूँ मैं उन समस्त धर्मोंको दूसरोंके लिये देना चहता हूँ परन्तु अपने इस गणमें कोई ऐसा समर्थ नहीं है-जो उन धर्मोंको ग्रहण कर सके हां परगणमें तो ऐसा समर्थ व्यक्ति है-इस प्रकारसे अपना प्रयोजन उससे कहकर और उनसे आज्ञा लेकर वह गणसे बाहर हो जाता है-यह गणसे बाहर होनेका पांचवां कारण है ५।

સંદેહ નથી. જે વિષય પ્રત્યે મારા મનમાં વિચિકિત્સા (આ ખરૂ કે પેલું ખરૂં એ ગડમથલને વિચિકિત્સા કહે છે) છે, તેનું નિરાકરણ કરી શકવાને સમર્થ એવા વિદ્વાન સાધુની સ્વગણમાં ઉણપ છે, પણ પરગણમાં તો એવા વિદ્વાન સાધુઓ વિદ્યમાન છે કે જેઓ મારા તે સંદેહોને દૂર કરી શકે. હે ગુરુદેવ ! આ કારણે હું આ ગણને છોડવા માટે આપની અનુજ્ઞા માગું છું. આ રીતે ધર્મવિષયક વિચિકિત્સા રૂપ કારણને વશ થઈને કોઈ પણ સાધુ સ્વગણમાંથી નીકળી જઈ શકે છે.

પાંચમું કારણ—"સવ્વધમ્મા જુહુણામિ" શિષ્ય ગુરુને વિનંતિ કરે છે કે હે ગુરુ મહારાજ ! સમસ્ત ધર્મને અને ચારિત્રને મેં જાણી લીધાં છે. હવે હું તે ધર્મોનું કોઇ યોગ્ય સાધુને પ્રદાન કરવા માગું છું, પરન્તુ તે ધર્મોને મારી પાસેથી ગ્રહણ કરી શકે એવો કોઇ પણ સમર્થ સાધુ આપણા ગણમાં નથી. પરગણમાં તેને ગ્રહણ કરી શકે એવા સમર્થ સાધુઓની ખોટ નથી, તો હે ગુરૂદેવ ! આપ મને સ્વગણ છોડવાની અનુજ્ઞા આપવાની મહેરબાની કરો. આ પ્રમાણે પ્રયોજન પ્રકટ કરીને ગુરુની આજ્ઞા લઈને કોઈ પણ સાધુ સ્વગણમાંથી પરગણમાં જઈ શકે છે.

मिच्छामि, तद्ग्रहणाधिकारी स्वगणे कश्चिन्नास्ति, परगणेत्वस्ति । इति षष्ठम् । तथा—हे भदन्त ! इच्छामि खलु अहम् एकलविहारप्रतिमाम्—एकलस्य=एकाकिनो गच्छनिर्गतत्वाद् जिनकल्पिकतया यो विहारो=विचरणं तस्य प्रतिमा=अभिग्रहः, ताम् उपसम्पद्य स्वीकृत्य विहर्त्तुम् । अतो भवदाज्ञामादाय गणादपक्रमितुमिच्छामीति सप्तमं गणापक्रमणम् ।

" एगइया जुहुणामि, एगइया नो जुहुणामि " में कितनेक धर्मोंको दूसरोंके लिये देना चाहता हूँ, और कितनेक धर्मोंको मैं दूसरोंको नहीं देना चाहता हूँ, अतः जिन धर्मोंको मैं दूसरोंके लिये देना चाहता हूँ—उन धर्मोंको ग्रहण करनेके योग्य अपने गणमें मुझे कोई दिखाता नहीं है, परगणमें तो ऐसा व्यक्ति है, अतः इस प्रयोजनके वशवर्ती होकर छोडना चाहता हूँ इस प्रकार कहकर यह गणको छोड देता है, यह गणको छोडनेका छट्ठा कारण है ६ ।

" इच्छामि णं भंते ! एगल्लविहारपडिमं उवसंपज्जित्ता णं विहरित्तए " ऐसा यह सातवां कारण है—इसमें वह इस प्रकारका अपना प्रयोजन प्रकट करता है, कि हे भदन्त ! मैं एकल विहार अभिग्रहको स्वीकार करके गच्छनिर्गत होनेसे जिनकल्पके समान विहार करना चाहता हूँ—इसलिये मैं आपसे आज्ञा लेकर इस गणसे निकलना चाहता हूँ—ऐसा यह गणसे बाहर होनेका सातवां कारण है ७ ।

छठुं कारण—" एगइयाजुहुणामि, एगइया नो जुहुणामि " शिष्य गुरुने कहे छे के हे गुरुदेव ! केटलाक धर्मो (धर्मतत्त्वनुं ज्ञान) अन्यने प्रदान करवानी अने केटलाक धर्मो अन्यने प्रदान करवानी मारी ईच्छा छे. जे धर्मो हुं अन्यने प्रदान करवा मागुं छुं, ते धर्मोने ग्रहण करवाने योग्य व्यक्ति आपणा गणमां मने कोई देखाती नथी, परन्तु परगणमां एवी व्यक्तिओ जरूर मोजूद छे. तो आ प्रयोजनने लीधे आपनी आज्ञा लईने हुं आ गण छोडवा मागुं छुं. आ प्रकारे गुरुनी आज्ञा लईने कोई पण साधु पोताना गणमांथी नीकळी जई शके छे.

सातमुं कारण—" इच्छामि णं भंते ! एगल्ल विहारपडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए " शिष्य गुरु पासेथी गण छोडवा माटे आ प्रमाणे कहीने आज्ञा मागे छे—" हे गुरु महाराज ! हुं एकलविहार अभिग्रहनो स्वीकार करीने, गच्छमांथी नीकळीने जिनकल्प साधुनी जेम विहार करवा मागुं छुं. तो हे गुरुदेव ! हुं आ गणमांथी नीकळी जवा माटे आपनी अनुज्ञा मागुं छुं. स्वगणमांथी नीकळी जवानुं आ सातमुं कारण समजवुं.

यद्वा-अत्र आद्यपदद्वयेन सम्यग्दर्शनार्थं गणापक्रमणमुक्तम् २। तृतीय-चतुर्थपदद्वयेन सम्यग्ज्ञानार्थम्। पञ्चमषष्ठपदद्वयेन च सम्यक्चारित्रार्थम्। तथाहि-सर्वधर्मान् रोचयामि=श्रद्दधामि अहमिति तेषां स्थिरीकरणार्थं गणादपक्रमामीति प्रथमम् ।१। तथा-एककान् धर्मान् रोचयामि एककांस्तु न रोचयामि-इति श्रद्धानाविषयीभूतानां धर्माणां श्रद्धानार्थं गणादपक्रमामीति द्वितीयम् ।२। इत्यनेन पदद्वयेन सर्वविषयं देशविषयं च सम्यग्दर्शनं श्रद्धातुं गणादपक्रमणमुक्तम् ॥२॥

यद्वा—यहां सूत्रमें आदिके दो पदों द्वारा सम्यग्दर्शनके लिये गणसे अपक्रमण कहा गया है, तृतीय और चतुर्थ पदसे सम्यग्ज्ञानके लिये गणसे अपक्रमण (बाहर निकलना) कहा गया है, पंचम छट्ठे पद द्वयसेसम्यक् चारित्रके लिये गणसे अपक्रमण कहा गयाहै, जैसे–" सर्व धर्मान् रोचयामि " में समस्त श्रुतचारित्र धर्मों पर श्रद्धा करता हूँ इसलिये उनकी स्थिरताके लिये मैं गणसे निकलता हूँ १ ऐसा यह प्रथम कारण है–तथा जो धर्म मेरे श्रद्धानके विषयभूत नहीं हैं, उन्हें श्रद्धानका विषयभूत बनानेके लिये मैं इस गणसे निकलता हूँ–ऐसा यह द्वितीय कारण है २ इस तरह इन दो पदोंसे सर्व विषयवाले अथवा देश विषयवाले सम्यग्दर्शन पर विश्वास करनेके लिये गणसे अपक्रमण कहा गया है २ तथा–सर्व धर्म विषयक अथवा देश धर्म विषयक

અથવા—આ સૂત્રમાં પહેલાં બે પ્રયોજનો દ્વારા એ વાત પ્રકટ કરવામાં આવી છે કે સમ્યગ્દર્શનની પ્રાપ્તિને માટે સાધુ પોતાના ગણુમાંથી અપક્રમણ કરી શકે છે. ત્રીજા અને ચોથા પદ દ્વારા એ વાત સૂચિત થાય છે કે સમ્યગ્દર્શનની પ્રાપ્તિને માટે સાધુ પોતાના ગણુમાંથી નીકળી જઈ શકે છે પાંચમાં અને છઠ્ઠા પદ દ્વારા એ વાત સૂચિત થાય છે કે સમ્યક્ ચારિત્રને માટે સાધુ સ્વગણુમાંથી નિર્ગમન કરી શકે છે.

" सर्वधर्मान् रोचयामि " આ સૂત્રપાઠ દ્વારા ગણુમાંથી નીકળી જવાનું આ પ્રકારનું કારણુ બતાવવામાં આવ્યું છે–" મને સમસ્ત શ્રુતચારિત્ર રૂપ ધર્મો પર શ્રદ્ધા છે તેની સ્થિરતા ટકાવી રાખવા માટે હું ગણુમાંથી નીકળવા માગુ છું "

બીજું કારણુ આ પ્રમાણે છે—" જે ધર્મતત્ત્વો પ્રત્યે મને શ્રદ્ધા નથી તેમાં શ્રદ્ધા સ્થિર કરવાને માટે હું સ્વગણુમાંથી નીકળી જવા માગું છું. " આ બે કારણો દ્વારા સર્વ વિષયવાળા અથવા દેશ વિષયવાળા સમ્યગ્દર્શન પર વિશ્વાસ સ્થિર કરવાને માટે સ્વગણુમાંથી નીકળી જવાની ઇચ્છા પ્રકટ કરવામાં આવી છે.

तथा-सर्वधर्मविषयक — देशधर्मविषयकसन्देहविनिवृत्तिसमर्थं सम्यग्ज्ञानमधिगन्तुं गणापक्रमणमिति 'सर्वधर्मान् विचिकित्सामि ।३। एककान् विचिकित्सामि ॥४॥ इति तृतीय-चतुर्थपदद्वयेन सूचितम्। तथा-धातूनामनेकार्थत्वात् 'जुहोमि' इत्यस्य आसेवे-इत्यर्थः। ततश्च-" सर्वधर्मान् जुहोमि (५) तथा-एककान् जुहोमि एककान् नो जुहोमि (६)" इति पञ्चमषष्ठपदद्वयेन सम्यक्चारित्रार्थं गणापक्रमणमिति सूचितम् ॥ सू० १ ॥

एवं श्रद्धास्थैर्यार्थमन्यथा वा गणादपक्रान्तस्य कस्यचिद् विभङ्गज्ञानमुत्पद्यते इति तस्य भेदानाह—

मूलम्-सत्तविहे विभंगणाणे पण्णत्ते, तं जहा-एगदिसिलोगाभिगमे १, पंचदिसिलोगाभिगमे २, किरियावरणे जीवे ३, मुदग्गे जीवे ४, अमुदग्गे जीवे ५, रूवी जीवे ६, सव्वमिणं

सन्देहको हटानेमें समर्थ जो सम्यग्ज्ञान है, उसे प्राप्त करनेके लिये गणसे अपक्रमण तृतीय चतुर्थ पदद्वयसे सूचित किया गया है, तथा-धातुओंके अनेक अर्थ होते हैं-इस कथनके अनुसार "जुहोमि" इस क्रिया पदका अर्थ-"आसेवे" ऐसा होता है-अतः इसके अनुसार मैं समस्त धर्मोंका अच्छी तरहसे सेवन करता हूँ ६ ठे पदसे किन्हीं श्रुतचारित्र धर्मोंका मैं सेवन करता हूँ-किन्हींका सेवन नहीं करता हूँ-इस तरहके पांचवें और छठे पदद्वयसे वह सम्यक् चारित्रके लिये गणसे अपक्रमण (गणको छोडता है) करता है ऐसा सूचित किया गया है ॥ सू० १ ॥

સર્વ ધર્મ વિષયક અથવા દેશધર્મ વિષયક સન્દેહને દૂર કરવાને સમર્થ એવા સમ્યગ્જ્ઞાનની પ્રાપ્તિને માટે સ્વગણમાંથી અપક્રમણ કરવાની વાત ત્રીજા અને ચોથા પદ દ્વારા પ્રકટ કરવામાં આવી છે.

ધાતુઓના અનેક અર્થ થાય છે. "जुहोमि" આ ક્રિયાપદનો અર્થ "आसेवे" પણ થાય છે. આ પ્રકારે તે ક્રિયાપદનો અર્થ લેવામાં આવે તો પાંચમાં પદનો અર્થ આ પ્રમાણે થશે-"હું સમસ્ત ધર્મોનું સારી રીતે સેવન કરું છું," છઠ્ઠા પદનો આ પ્રમાણે અર્થ થઈ શકે-"હું કેટલાક શ્રુત ચારિત્ર ધર્મોનું સેવન કરું છું અને કેટલાકનું સેવન કરતો નથી. આ રીતે પાંચમાં અને છઠ્ઠા પદ દ્વારા એ વાત સૂચિત થાય છે કે તે સમ્યક્ ચારિત્રને માટે ગણમાંથી નીકળી જવા માગે છે. ॥ સૂ. ૧ ॥

जीवे ७। तत्थ खलु इमे पढमे विभंगनाणे जया णं तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा विभंगणाणे समुप्पज्जइ, से णं तेणं विभंगणाणेणं समुप्पन्नेणं पासइ–पाईणं वा पडीणं वा दाहिणं वा उदीणं वा उड्ढं वा जाव सोहम्मे कप्पे। तस्स णं एवं हवइ अत्थि णं मम अइसेसे णाणदंसणे समुप्पण्णे एगदिसिं लोगाभिगमे। संतेगइया समणा वा माहणा वा एवमाहंसु–पंचदिसिं लोगाभिगमे। जे ते एवमाहंसु–मिच्छं ते एवमाहंसु। पढमे विभंगणाणे॥ १॥अहावरे दोच्चे विभंगनाणे, जया णं तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा विभंगणाणे समुप्पज्जइ, से णं तेणं विभंगणाणेणं समुप्पन्नेणं पासइ पाईणं वा पडीणं वा दाहिणं वा उदीणं वा उड्ढं वा जाव सोहम्मे कप्पे, तस्स णं एवं हवइ–अत्थिणं मम अइसेसे णाणदंसणे समुप्पन्ने पंचदिसिं लोगाभिगमे। संतेगइया समणा वा माहणा वा एवमाहंसु एगदिसिं लोगाभिगमे। जे ते एवमाहंसु मिच्छं ते एवमाहंसु। दोच्चे विभंगनाणे॥ २॥अहावरे तच्चे विभंगनाणे–जया णं तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा विभंगनाणे समुप्पज्जइ, से णं तेणं विभंगनाणेणं समुप्पन्नेणं पासइ-पाणे अइवाएमाणे, मुसं वएमाणे. अदिन्नमादियमाणे, मेहुणं पडिसेवमाणे, परिग्गहं परिगिण्हमाणे, राइभोयणं भुंजमाणे वा, पावं च णं कम्मं कीरमाणं णो पासइ, तस्स णमेवं हवइ–अत्थि णं मम अइसेसे णाणदंसणे समुपन्ने, किरियावरणे जीवे,

संतेगइया समणा वा माहणा वा एवमाहंसु–नो किरियावरणे जीवे। जे ते एवमाहंसु मिच्छं ते एवमाहंसु। तच्चे विभंगनाणे।३। अहावरे चउत्थे विभंगनाणे–जया णं तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा जाव समुप्पज्जइ, से णं तेणं विभंगनाणेणं समुप्पन्नेणं देवामेव पासई, बाहिरब्भंतरए पोग्गले परियाइत्ता पुढेगत्तं णाणत्तं फुसिया फुरेत्ता फुट्टित्ता विउव्वित्ता णं विउव्वित्ता णं चिट्टित्तए, तस्स णं एवं हवइ–अत्थि णं मम अइसेसे णाणदंसणे समुप्पण्णे–मुयग्गे जीवे। संतेगइया समणा वा माहणा वा एवमाहंसु–अमुयग्गे जीवे। जे ते एवमाहंसु मिच्छं ते एवमाहंसु। चउत्थे विभंगमाणे ॥४॥ अहावरे पंचमे विभंगनाणे,–जया णं तहारूवस्स समणस्स वा जाव समुप्पज्जइ, से णं तेणं विभंगणाणेणं समुप्पणेणं देवामेव पासइ, बाहिरब्भंतरए पोग्गले अपरियाइत्ता पुढेगत्तं णाणत्तं जाव विउव्वित्ता णं २ चिट्टित्तए, तस्स णं एवं हवइ–अत्थि जाव समुप्पन्ने अमुयग्गे जीवे। संतेगइया समणा वा माहणा वा एवमाहंसु–मुयग्गे जीवे। जे ते एवमाहंसु मिच्छं ते एवमाहंसु। पंचमे विभंगनाणे ॥५॥ अहावरे छट्ठे विभंगनाणे, जयाणं तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा जाव समुप्पज्जइ। से णं ते णं विभंगनाणेणं समुप्पन्नेणं देवामेव पासइ–बाहिरब्भंतरिए पोग्गले परियाइत्ता वा अपरियाइत्ता वा पुढेगत्तं णाणत्तं फुसेत्ता जाव विउव्वित्ता णं २ चिट्टि-

सए। तस्स णं एवं हवइ-अत्थि णं मम अइसेसे णाणदंसणे समुप्पण्णे रूवी जीवे। संतेगइया समणा वा माहणा वा एवमाहंसु--अरूवी जीवे। जे ते एवमाहंसु मिच्छं ते एवमाहंसु। छट्ठे विभंगनाणे ॥ ६ ॥ अहावरे सत्तमे विभंगनाणे जया णं तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा विभंगनाणे समुप्पज्जइ, से णं तेणं विभंगनाणेणं समुप्पन्नेणं पासइ—सुहुमेणं वाउकाएणं फुडं पोग्गलकायं एयंतं वेयंतं चलंतं खुब्भंतं फंदंतं घट्टंतं उदीरेंतं तं तं भावं परिणमंतं। तस्स णं एवं हवइ-अत्थि णं मम अइसेसे णाणदंसणे समुप्पण्णे, सव्वमिणं जीवा। संतेगइया समणा वा माहणा वा एवमाहंसु—जीवा चेव अजीवा चेव। जे ते एवमाहंसु मिच्छं ते एवमाहंसु, तस्स णं इमे चत्तारि जीवनिकाया णो सम्ममुवगया भवंति, तं जहा--पुढविकाइया, आऊ, तेऊ, वाउकाइया, इच्चएहिं चउहिं जीवनिकाएहिं मिच्छा दंडं पवत्तेइ। सत्तमे विभंगनाणे ॥सू० २ ॥

छाया--सप्तविधं विभङ्गज्ञानं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—एकदिशि लोकाभिगमः १, पञ्चदिशि लोकाभिगमः २, क्रियावरणो जीवः ३, मुदग्रो जीवः ४, अमुदग्रो जीवः ५, रूपी जीवः ६, सर्वमिदं जीवाः ७। तत्र खलु इदं प्रथमं विभङ्गज्ञानम् यदा खलु तथारूपस्य श्रमणस्य वा माहनस्य वा विभङ्गज्ञानं समुत्पद्यते, स खलु तेन विभङ्गज्ञानेन समुत्पन्नेन पश्यति—प्राचीनां वा प्रतीचीनां वा दक्षिणां वा उदीचीनां वा ऊर्ध्वां वा यावत् सौधर्मं कल्पम्। तस्य खलु एवं भवति—अस्ति खलु मम अतिशेषं ज्ञानदर्शनं समुत्पन्नम् एकदिशि लोकाभिगमः। सन्ति एकके वा माहना वा एवमाहुः—पञ्चदिशि लोकाभिगमः। ये ते एवमाहुः, मिथ्या ते एवमाहुः। प्रथमं विभङ्गज्ञानम् १। अथापरं द्वितीयं विभङ्गज्ञानम्—यदा खलु तथारूपस्य श्रमणस्य वा माहनस्य वा विभङ्गज्ञानं समुत्पद्यते, स खलु तेन विभङ्ग-

ज्ञानेन समुत्पन्नेन पश्यति–प्राचीनां वा प्रतीचीनां वा दक्षिणां वा उदीचीनां वा ऊर्ध्वां वा यावत् सौधर्मं कल्पम्। तस्य खलु एवं भवति–अस्ति खलु मम अतिशेषं ज्ञानदर्शनं समुत्पन्न–पञ्चदिशि लोकाभिगमः। सन्ति एकके श्रमणा वा माहना वा एवमाहुः–एकदिशि लोकाभिगमः। ये ते एवमाहुः मिथ्या ते एवमाहुः। द्वितीयं विभङ्गज्ञानम्। अथापरं तृतीयं विभङ्गज्ञानम्–यदा खलु तथारूपस्य श्रमणस्य वा माहनस्य वा विभङ्गज्ञानं समुत्पद्यते, स खलु तेन विभङ्गज्ञानेन समुत्पन्नेन पश्यति–प्राणान् अतिपातयमानान् मृषावदतः, अदत्तमाददानान्, मैथुनं प्रतिसेवमानान् परिग्रहं परिगृह्णतो, रात्रिभोजनं भुञ्जानान् वा, पापं खलु कर्म क्रियमाणं नो पश्यति। तस्य खलु एवं भवति–अस्ति खलु मम अतिशेषं ज्ञानदर्शनं समुत्पन्नम्–क्रियावरणो जीवः। सन्ति एकके श्रमणा वा माहना वा एवमाहुः–नो क्रियावरणो जीवः। ये ते एवमाहुः, मिथ्या ते एवमाहुः। तृतीयं विभङ्गज्ञानम् ३। अथापरं चतुर्थं विभङ्गज्ञानम्–यदा खलु तथारूपस्य श्रमणस्य वा माहनस्य वा यावत् समुत्पद्यते, स खलु तेन विभङ्गज्ञानेन समुत्पन्नेन देवानेव पश्यति बाह्याभ्यन्तरकान् पुद्गलान् पर्यादाय पृथक् एकत्वं नानात्वं वा स्फोरयित्वा स्फोटयित्वा विकुर्वित्वा खलु विकुर्वित्वा खलु स्थातुम्। तस्य खलु एवं भवति–अस्ति खलु मम अतिशेषं ज्ञानदर्शनं समुत्पन्नम्, मुदग्रो जीवः। सन्ति एकके श्रमणा वा माहना वा एवमाहुः–अमुदग्रो जीवः। ये एवमाहुः मिथ्या ते एवमाहुः। चतुर्थं विभङ्गज्ञानम् ४। अथापरं पञ्चमं विभङ्गज्ञानम्–यदा खलु तथारूपस्य श्रमणस्य वा यावत् समुत्पद्यते, स खलु तेन विभङ्गज्ञानेन समुत्पन्नेन देवानेव पश्यति, बाह्याभ्यन्तरान् पुद्गलान् अपर्यादाय पृथक् एकत्वं नानात्वं यावद् विकुर्वित्वा खलु २ स्थातुम्। तस्य खलु एवं भवति–अस्ति यावत् समुत्पन्नम् अमुदग्रो जीवः। सन्ति एकके श्रमणा वा माहना वा एवमाहुः मुदग्रो जीवः। ये ते एवमाहुः, मिथ्या ते एवमाहुः। पञ्चमं विभङ्गज्ञानम् ५। अथापरं षष्ठं विभङ्गज्ञानम्–यदा खलु तथारूपस्य श्रमणस्य वा माहनस्य वा यावत् समुत्पद्यते, स खलु तेन विभङ्गज्ञानेन समुत्पन्नेन देवानेव पश्यति–बाह्याभ्यन्तरान् पुद्गलान् पर्यादाय वा अपर्यादाय वा पृथक् एकत्वं नानात्वं स्पृष्ट्वा यावत् विकुर्वित्वा खलु २ स्थातुम्। तस्य खलु एवं भवति–अस्ति मम अतिशेषं ज्ञानदर्शनं समुत्पन्नम्, रूपी जीवः। सन्ति एकके श्रमणा वा माहना वा एवमाहुः–अरूपी जीवः। ये ते एवमाहुः, मिथ्या ते एवमाहुः। षष्ठं विभङ्गज्ञानम् ६। अथापरं सप्तमं विभङ्गज्ञानम्–यदा खलु तथारूपस्य श्रमणस्य वा माहनस्य वा विभङ्गज्ञानं समुत्पद्यते, स खलु तेन विभङ्गज्ञानेन समुत्पन्नेन पश्यति–सूक्ष्मेण वायुकायेन स्पृष्टं

पुद्गलकायम् एजमानं व्येजमानं चलन्तं क्षुभ्यन्तं स्पन्दमानं घट्टयन्तम् उदीरयन्तं तं तं भावं परिणमन्तम्। तस्य खलु एवं भवति-अस्ति खलु मम अतिशेषं ज्ञान-दर्शनं समुत्पन्नम्-सर्वमिदं जीवाः। सन्ति एकके श्रमणा वा माहना वा एवमाहुः-जीवाश्चैव अजीवाश्चैव। ये ते एवमाहुः मिथ्या ते एवमाहुः। तस्य खलु इमे चत्वारो जीवनिकायाः नो सम्यगुपगता भवन्ति, तद्यथा-पृथिवीकायिका, आपः, तेजांसि, वायुकायिकाः। इत्येतैश्चतुर्भिर्जीवनिकायैः मिथ्यादण्डं प्रवर्तयति। सप्तमं विभङ्गज्ञानम् ।। सू० २ ।।

टीका—'सत्तविहे विभंगनाणे' इत्यादि—

विभङ्गज्ञानम्-वि=विरुद्धो वितथः-अन्यथा वा भङ्गः=वस्तुभङ्गो=वस्तुविकल्पो यस्मिंस्तद् विभङ्गम्, तच्च तज्ज्ञानं चेति विभङ्गज्ञानम्-मिथ्यात्वसहितोऽवधिरित्यर्थः, तत् सप्तविधं=सप्तप्रकारं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा-एकदिशि-एकस्यां दिशि-पूर्वादिकया कदाचिदेकया दिशा लोकाभिगमः=लोकावबोधः। विभङ्गता चास्य शेष-

---

इस तरह श्रद्धाकी स्थिरताके लिये या और किसी कारणसे गच्छसे बाहर हुए किसी साधुको विभङ्गज्ञान उत्पन्न हो जाता है अतः अब सूत्रकार उसके भेदोंका कथन करते हैं—

"सत्तविहे विभंगनाणे पण्णत्ते" इत्यादि सूत्र २ ।।

टीकार्थ-विभंगज्ञान सात प्रकारका कहा गयाहै, वि-विरुद्ध वितथ-अन्यथा है, भङ्ग-वस्तुका भङ्ग-वस्तुका विकल्प जिसमें ऐसा वह विभंग है, विभंग रूप जो ज्ञान वह विभंग ज्ञान है-मिथ्यात्व सहित अवधिज्ञानका नाम विभंगज्ञान है, यह विभंग ज्ञान सात प्रकारका होता है, इनमें कोई एक विभङ्ग ज्ञान ऐसा होता है, जो किसी एक दिशासे-

---

આ પ્રકારે શ્રદ્ધાની સ્થિરતાને માટે અથવા બીજા કોઈ કારણને લીધે ગણમાંથી નીકળી જતા કોઇ સાધુને ક્યારેક વિભંગજ્ઞાન ઉત્પન્ન થઈ જાય છે, તેથી હવે સૂત્રકાર વિભંગજ્ઞાનના ભેદોનું કથન કરે છે.

"સત્તવિહે વિભંગનાણે પણ્ણત્તે" ઈત્યાદિ—

ટીકાર્થ-વિભંગજ્ઞાન સાત પ્રકારનું કહ્યું છે. 'વિ' એટલે વિરૂદ્ધ અથવા વિપરીત, અને "ભંગ" એટલે વસ્તુનો વિકલ્પ. જેમાં વસ્તુનો વિપરીત વિકલ્પ હોય છે તેને વિભંગ કહે છે. એવા વિભંગ રૂપ જે જ્ઞાન છે તેને વિભંગજ્ઞાન કહે છે. અથવા મિથ્યાત્વયુક્ત અવધિજ્ઞાનને વિભંગજ્ઞાન કહે છે. તેના નીચે પ્રમાણે સાત પ્રકાર કહ્યા છે—

(૧) કોઇ એક વિભંગજ્ઞાન એવું હોય છે કે જે લોકની કોઈ એક દિશામાં-પૂર્વાદિ એક જ દિશામાં રહેલા પદાર્થનો અભિગમ (બોધ) કરાવે

दिक्षु लोकस्यानवबोधेन तस्य प्रतिबोधादिति प्रथमं विभङ्गज्ञानम् १। तथा-पञ्चदिशि=पञ्चसु दिक्षु लोकाभिगमो भवति, कस्यांचिदेकस्यां लोकाभिगमो न भवति। विभङ्गता चात्रापि एकस्यां दिशि लोकावबोधप्रतिषेधनाद् बोध्या। इति द्वितीयं विभङ्गज्ञानम् २। तथा-क्रियावरणः-क्रियैव आवरणं=ज्ञानादि स्वरूपाच्छादकं यस्य स तादृशो जीवो, न तु कर्मावरणो जीवः इत्यभ्युपगमपरं विभङ्गज्ञानम्। एवंविधविभङ्गज्ञानवान् जीवैः क्रियमाणप्राणातिपातादिकं क्रियामात्रमेव पश्यति न तु तद्धेतुकर्म। कर्मणाम दर्शनेन अनभ्युपगमादत्र विभङ्गता इति तृतीयं विभङ्गज्ञानम् ३।

पूर्वादि दिशासे लोकका अभिगम बोध करता है, इसमें विभङ्गता शेष दिशाओंमें लोकके अनवबोधसे है, क्योंकि शेष दिशाओंमें वह उसका प्रतिषेध करताहै, ऐसा यह प्रथम विभङ्ग ज्ञानहै१ कोई एक विभङ्ग ज्ञान ऐसा होताहै, कि जिससे पांच दिशाओंमें लोकाभिगम(लोकका ज्ञान होता है, किसी एक दिशामें लोकाभिगम नहीं होना है, यहां पर भी विभङ्गता एक दिशामें लोकके अवबोधका प्रतिषेध होनेसे है, ऐसा यह द्वितीय विभङ्ग ज्ञान है २।

क्रियावरण—क्रियारूप आवरणवालाही जीव है, अर्थात् ज्ञानादि निज स्वरूपकी आच्छादक क्रियाही है-कर्मरूप आवरणवाला जीव नहीं है-कर्म रूप आवरण जीवके ज्ञानादि निजस्वरूपका आच्छादक नहीं है ऐसी मान्यता जिस विभङ्ग ज्ञानकी है, ऐसा वह तृतीय विभङ्ग

છે. બાકીની દિશાઓમાં રહેલા પદાર્થનો બોધ તે કરાવી શકતું નથી, તે કારણે જ તેમાં વિભંગતા સમજવી. કારણ કે લોકની બાકીની દિશાઓમાં રહેલા પદાર્થોનો અભિગમ (બોધ) થવાનો અહીં પ્રતિષેધ (નિષેધ) કહ્યો છે.

(૨) કોઈ એક વિભંગજ્ઞાન એવું હોય છે કે જેના દ્વારા લોકની પાંચ દિશાઓમાં રહેલા પદાર્થોનો બોધ થાય છે, પણ બાકીની એક દિશામાં રહેલા પદાર્થનો અભિગમ (બોધ) તેના દ્વારા થતો નથી. અહીં પણ એક દિશામાં લોકના અવબોધના પ્રતિષેધને કારણે તે જ્ઞાનમાં વિભંગતા સમજવી જોઈએ.

(૩) ક્રિયાવરણ—"ક્રિયા રૂપ આવરણવાળો જ જીવ છે. એટલે કે જ્ઞાનાદિ નિજસ્વરૂપની આચ્છાદક ક્રિયા જ છે. કર્મરૂપ આવરણવાળો જીવ નથી એટલે કે કર્મરૂપ આવરણ જીવના જ્ઞાનાદિ નિજસ્વરૂપનું આચ્છાદક નથી." આ પ્રકારની માન્યતાવાળું જે વિભંગજ્ઞાન છે તેને વિભંગજ્ઞાનના ત્રીજા ભેદ રૂપ સમજવું. આ પ્રકારના વિભંગજ્ઞાનવાળો જીવ જીવો દ્વારા

तथा–मुदग्रो जीवः–बाह्याभ्यन्तररचितशरीरो जीव इत्यभ्युपगमपरं विभङ्ग-ज्ञानम्। बाह्याभ्यन्तरपुद्गलानादाय वैक्रियं कुर्वतो भवनपत्यादीन् देवान् दृष्ट्वा एवं विभङ्गज्ञानमुत्पद्यते। इति चतुर्थं विभङ्गज्ञानम्।

तथा–अमुदग्रो जीवः–भवधारणीयापेक्षया बाह्याभ्यन्तरपुद्गलादानं विनैव रचितशरीरो जीव इत्यभ्युपगमपरं विभङ्गज्ञानम्। बाह्याभ्यन्तरपुद्गलान् अनादायैव वैक्रियकरणेन रचितशरीरान् देवान् दृष्ट्वा एवंविधं विभङ्गज्ञानमुत्पद्यते

ज्ञान है। इस प्रकारके विभङ्ग ज्ञानवाला जीव जीवों द्वारा क्रियमाण प्राणातिपातादिक क्रियामात्रकोही जानताहै-देखताहै उसके हेतुभूत कर्मको नही देखताहै, यहां पर विभङ्गता कर्मोंके नहीं दिखनेके कारण उसकी अनभ्युपगमतासे(नहीं जाननेसेहै)जो विभङ्गज्ञान ऐसा मानताहै, कि बाह्य और आभ्यन्तर पुद्गलोंसे रचित शरीरवालाही जीव है, विभङ्ग ज्ञानीको बाह्य आभ्यन्तर पुद्गलोंको ग्रहण करके वैक्रियकी उत्तर वैक्रिय शरीरकी रचना करते हुए भवनपत्यादिक देवोंको देखकर ऐसा यह विभङ्ग ज्ञान उत्पन्न होता है। यह चौथे प्रकारका मुदग्रनामका विभङ्गज्ञान है। अमुदग्रोजीव भवधारणीय शरीरकी अपेक्षासे पांचवें नम्बरवाला विभङ्गज्ञान ऐसा मान्यतावाला होता है, कि जीव बाह्य आभ्यन्तर पुद्गलोंको ग्रहण किये विनाही रचित शरीरवाला होता है, अर्थात्– बाह्य एवं आभ्यन्तर पुद्गलोंको विना ग्रहण कियेही रचित शरीरवाला देवोंको देखकर इस प्रकारका यह विभङ्ग ज्ञान उत्पन्न होता है

કરાતી પ્રાણાતિપાદિક ક્રિયા માત્રને જ જાણે છે–દેખે છે, પરન્તુ તેના હેતભૂત કર્મને દેખતો નથી. અહીં કર્મોને નહીં દેખવાને કારણે–તેની અનભ્યુપગમતાને લીધે વિભંગતા સમજવી.

(૪) મુદગ્ર નામનું વિભંગજ્ઞાન—જે વિભંગજ્ઞાન એવું માને છે કે બાહ્ય અને આભ્યન્તર પુદ્ગલોથી રચિત શરીરવાળો જ જીવ છે, તે વિભંગ-જ્ઞાનને ચોથા પ્રકારનું વિભંગજ્ઞાન કહે છે ભવનપતિ આદિ દેવોને બાહ્ય અને આભ્યન્તર પુદ્ગલોને ગ્રહણ કરીને ઉત્તર વૈક્રીય શરીરની રચના કરતા જોઈને વિભંગજ્ઞાનીમાં આ પ્રકારનું વિભંગજ્ઞાન ઉત્પન્ન થઈ જાય છે. આ ચોથા પ્રકારનું મુદગ્ર નામનું વિભંગજ્ઞાન છે.

(૫) અમુદગ્ર વિભંગજ્ઞાન—બાહ્ય અને આભ્યન્તર પુદ્ગલોને ગ્રહણ કર્યા વિના જ રચિત શરીરવાળા દેવોને જોઈને એવું વિભંગજ્ઞાન કોઈ જીવમાં ઉત્પન્ન થઈ જાય છે અને આભ્યન્તર પુદ્ગલોને ગ્રહણ કર્યા વિના જ રચિત શરીરવાળો થઈ જાય છે. ભવધારણીય શરીરની અપેક્ષાએ પાંચમા પ્રકારનું વિભંગજ્ઞાન આ પ્રકારની માન્યતા ધરાવે છે.

इति पञ्चमं विभङ्गज्ञानम् । ५ । तथा-रूपी जीवः-वैक्रियशरीरवतो देवान् दृष्ट्वा रूप्येव जीव इति यदभ्युपगच्छति तत् षष्ठं विभङ्गज्ञानम् ।६।

तथा-सर्वमिदं जीवाः-वायुना चलन्तं पुद्गलकायं दृष्ट्वा 'इदं सर्वं वस्तु जीवा एव, चलनधर्मत्वात्' इति निश्चयतो यदभ्युपगच्छति, तत् सप्तमं विभङ्गज्ञानम् ७ इति । इत्थं सामान्यतः सप्तविधं विभङ्गज्ञानमुद्दिश्य सम्प्रति तदेव विशेषतो विवरीतुमाह-'तत्थ' इत्यादि ।

तत्र=तेषु सप्तसु विभङ्गज्ञानेषु मध्ये खलु इदं वक्ष्यमाणं प्रथमं विभङ्ग ज्ञानम्, तथाहि-यदा=यस्मिन् काले तथारूपस्य=तथाविधस्य श्रमणस्य=निर्ग्रन्थ मुनेर्वा, माहनस्य=मूलगुणधरस्य वा, विभङ्गज्ञानं समुत्पद्यते, स खलु विभङ्गज्ञानवान् श्रमणो माहनो वा समुत्पन्नेन तेन विभङ्गज्ञानेन प्राचीनां=पूर्वादिशं, वा-अथवा-

"रूपीजीवः" वैक्रिय शरीरवाले देवोंको देखकर रूपीही जीवहैं ऐसा जो मानता है, वह छठे नम्बरका विभंग ज्ञान है। "सर्वमिदं जीवाः" वायुसे चलित पुद्गलकायको देखकर ये सब वस्तुएँ जीव स्वरूप है, क्योंकि ये सब चलन धर्मवाली है, ऐसी मान्यतावाला जो विभङ्ग ज्ञान होता है, वह सातवें प्रकारका विभंगज्ञान है । इस प्रकारसे सामान्यप्रकारके विभङ्गज्ञानका कथन करके अब सूत्रकार विशेषरूपसे इसका कथन करते हैं-"तत्थ" इत्यादि-जब इन सात प्रकार विभंगज्ञान तथाविध श्रमणके निर्ग्रन्थ मुनिके अथवा-माहनके मूल गुण धारीके उत्पन्न होता है-तब वह विभंग ज्ञानवाला श्रमण अथवा माहन समु-

(६) "रूपी जीवः" वैक्रिय शरीरवाळा देवोने जोईने "रूपी ज जीव छे," आ प्रकारनी मान्यता जे विभंगज्ञानवाळो जीव धरावे छे, ते जीवना विभंगज्ञानने छठ्ठा प्रकारनुं विभंगज्ञान कहे छे.

(७) "सर्वमिदं जीवाः" वायुथी कंपायमान थतां पुद्गलकायने जोईने "सघळी वस्तुओ जीव रूप ज छे, कारण के तेओ चलन धर्मवाळी छे," आ प्रकारनी मान्यतावाळुं जे विभंगज्ञान छे तेने सातमां प्रकारनुं विभंगज्ञान कहे छे.

आ प्रकारे विभंगज्ञानना सात प्रकारोनुं सामान्य कथन करीने हवे सूत्रकार तेमनुं विस्तृत निरूपण करे छे. "तत्थ" ईत्यादि—

उपर दर्शावेला सात प्रकारना विभंगज्ञानमांथी पहेला प्रकारनुं विभंगज्ञान ज्यारे कोई श्रमण निर्ग्रंथने अथवा माहणने (मूल गुणधारीने) उत्पन्न थाय छे, त्यारे ते विभंगज्ञानवाळो ते श्रमण अथवा माहण तेना ते

प्रतीचीनां=पश्चिमां दिशं, दक्षिणां वा दिशम्, उदीचीनाम्=उत्तरां वा दिशम्, ऊर्ध्वां वा दिशं यावत्सौधर्मं कल्पं पश्यति। अधोदिक् तु विभङ्गज्ञानिनां दृश्यत्वेन नोक्ता। सा तु अवधिज्ञानिनामपि दुरधिगमा भवति, विभङ्गज्ञानिनां तु सुतरामेवेति त्रिस्थानके चतुर्थोद्देशे प्रपञ्चितं, तत एव बोध्यमिति। ततस्तस्य=पूर्वदिगाद्यन्यतमदर्शिनो विभङ्गज्ञानिन एवं भवति=एवंविधो विकल्पो जायते-यत् मम अतिशेषम् शेषाण्यतिक्रान्तम्-अतिशेषं-अतिशयं ज्ञानदर्शनम्-ज्ञानं च दर्शनं चेति ज्ञानेन सहितं दर्शनं चेति समुत्पन्नम्। किमात्मकं ज्ञानदर्शनं समुत्प-

त्पन्न उस विभंग ज्ञानसे पूर्व दिशाको अथवा उत्तर दिशाको अथवा ऊर्ध्व दिशाको यावत् सौधर्मकल्पको देखता है, विभंग ज्ञानियोंको अधोदिशाका अवलोकन नहीं कहा गया है, क्योंकि अवधिज्ञानियोंको भी उसका देखना जानना दुरधिगम रूप कहा गया है, अतः जब वह अवधिज्ञानियों द्वारा भी दुरधिगम है, तब विभंग ज्ञानियोंके लिये तो दुरधिगम है ही यह बात अपने आपही सध जाती है, इस विषयको यदि अच्छी तरहसे देखना हो तो यह हमने त्रिस्थानकके चतुर्थ उद्देशकमें विस्तारके साथ विवेचित किया है, सो वहांसे देख लेना चाहिये अत जब वह विंभगज्ञानी पूर्व दिशा आदिमेंसे किसी एक दिशाका अवलोकन करता है-तब उसका ऐसा विचार होता है-उसके मनमें ऐसा विकल्प उठता है-कि मुझे अतिशय ज्ञान एवं दर्शन-अथवा

વિભંગજ્ઞાનના પ્રભાવથી કોઇ પણ એક દિશામાં રહેલા લોકગત પદાર્થોને જોઇ શકે છે. વિભંગજ્ઞાની અધોદિશાનું અવલોકન કરી શકતો નથી, પરન્તુ પૂર્વ, પશ્ચિમ, ઉત્તર, દક્ષિણ અથવા ઉર્ધ્વ દિશાનું અવલોકન કરી શકે છે ઉર્ધ્વ દિશામાં સૌધર્મકલ્પ પર્યન્તના પદાર્થો તે જોઇ શકે છે. વિભંગજ્ઞાનીઓ અધોદિશાનું અવલોકન કરી શકતા નથી. અવધિજ્ઞાનીઓને માટે પણ અધોદિશામાં દેખવાનું દુરાધિગમ રૂપ કહ્યું છે. જે અધોદિશાનું અવલોકન અવધિજ્ઞાનીઓ માટે પણ દુરધિગમ રૂપ કહ્યું છે, તે વિભંગજ્ઞાનીઓ માટે દુરાધિગમ રૂપ હોય એમાં નવાઇ શી!

ત્રિસ્થાનકના ચોથા ઉદ્દેશામાં આ વિષયનું વિસ્તારપૂર્વક નિરૂપણ કરવામાં આવ્યું છે, તો જિજ્ઞાસુ પાઠકોએ તે ત્યાંથી વાંચી લેવું.

પહેલા પ્રકારના વિભંગજ્ઞાનવાળો પુરુષ પૂર્વાદિ કોઇ પણ એક દિશામાં રહેલા પદાર્થોને જ જાણી-દેખી શકે છે. તેથી આ વિભંગજ્ઞાન પ્રકટ થતાં જ તેના મનમાં એવો વિચાર થાય છે-એવો વિકલ્પ ઉઠે છે કે મને અતિશય

न्नम् ? इत्याह–एकदिशि लोकाभिगमः–एकस्यामेव दिशि लोकोपलम्भो नत्वन्यासु दिक्षु इति। सन्ति पुनरेके श्रमणा वा माहना वा, ये एवमाहुः–पञ्चदिशि लोकाभिगमः–पञ्चसु दिक्षु लोकोपलम्भ इति। ये ते एवमाहुः, मिथ्या ते एवमाहुः, यत एकदिश्येव लोकोपलम्भ इति प्रथमं विभङ्गज्ञानमिति १। द्वितीयं विभङ्गज्ञानमपि विभङ्गज्ञानवद् व्याख्येयम्। नवरमत्र वा शब्दाः समुच्चयार्थकाः बोध्याः। प्रथमभङ्गे एकदिशि लोकाभिगमः, अत्र तु पञ्चदिशीति। इति द्वितीयम् २। यदा

ज्ञान सहित दर्शन उत्पन्न हो चुका है, इससे मुझे ऐसा जानना देखना होता है–मैं ऐसा जानता देखता हूं–कि एकही दिशामें लोकका उपलम्भ है, अन्य दिशाओंमें नहीं है, अर्थात् लोक किसी एकही दिशामें है, सब दिशाओंमें नहीं है, ऐसाही बतानेवाले ज्ञान दर्शन मुझे उत्पन्न हुए हैं, अतः मेरा यही पूर्वोक्त विचार ठीक है, इस प्रकारकी मान्यतावाला जो उसे ज्ञान उत्पन्न हुआ है, वह विभंग इसलिये कहा गया है, कि उसने शेष दिशाओंमें लोकके होनेका निषेध किया है, क्योंकि ऐसा तो नहीं कि लोक एकही दिशामें हो–अन्य दिशाओंमें नहीं हो– तथा कितनेक श्रमण अथवा माहन ऐसे होते हैं जो ऐसा कहते हैं कि–पांच दिशाओंमेंही लोकका उपलब्धि है, यह विभंगज्ञान इसलिये है, कि यहां एक दिशामें लोकका उपलम्भ (देखना) उसने निषिद्ध किया है; यही बात–"ये ते एवमाहुः मिथ्या ते एवमाहुः" इस

જ્ઞાન અને દર્શન–અથવા જ્ઞાનસહિત દર્શન ઉત્પન્ન થઇ ગયું છે. તેના પ્રભાવથી હું એવું જાણી અને દેખી શકું છું કે એક જ દિશામાં લોકનું અસ્તિત્વ છે, અન્ય દિશાઓમાં લોકનું અસ્તિત્વ જ નથી. આ વિભંગજ્ઞાનના પ્રભાવથી તે વિભંગજ્ઞાનીમાં આ પ્રકારની માન્યતા ઘર કરે છે, તે કારણે બાકીની દિશાઓમાં લોકનું અસ્તિત્વ હોવાનો જ તે નિષેધ કરે છે. તેની આ માન્યતા ખોટી જ છે લોકનું અસ્તિત્વ તો બધી જ દિશામાં હોય છે. એક જ દિશામાં લોકનું અસ્તિત્વ સ્વીકારવાને કારણે તેના તે જ્ઞાનને વિભંગજ્ઞાન કહે છે.

કેટલાક શ્રમણો અથવા માહણોમાં બીજા પ્રકારનું વિભંગજ્ઞાન ઉત્પન્ન થઇ જાય છે. તેઓ લોકની અંદર કોઇ પાંચ દિશાઓમાં રહેલા પદાર્થોને જાણી દેખી શકે છે, પરન્તુ બાકીની એક દિશામાં રહેલા પદાર્થોને જોઇ શકતા નથી. તેથી તેઓ તે પાંચ દિશાઓમાં જ લોકનું અસ્તિત્વ માની લે છે. બાકીની એક દિશામાં લોકના અસ્તિત્વને તેઓ સ્વીકારતા નથી, તેથી જ તેમના જ્ઞાનને વિભંગજ્ઞાન કહ્યું છે. એ જ વાત સૂત્રકારે "ये ते एवमाहुः

च तथाविधस्य श्रमणस्य वा माहनस्य वा तृतीयं विभङ्गज्ञानमुत्पद्यते, तदा स प्राणातिपातान् मृषावादान् अदत्तादानानि, मैथुनसेवां, परिग्रहसंग्रहं, रात्रिभोजनं वा कुर्वतो जीवान् पश्यति, क्रियमाणं पापं कर्म च न पश्यति। ततः स क्रियावरणो जीव इति प्रतिपद्यते, कर्मावरणो जीव इति न प्रतिपद्यते। इति तृतीयं विभङ्गज्ञानम् ३। तथा-यस्य तथाविधस्य श्रमणस्य वा माहनस्य वा चतुर्थं विभङ्गज्ञानमुत्पद्यते, ततः स तेन विभङ्गज्ञानेन देवान् पश्यति, कर्मभूतान् देवान् पश्यति? इत्याह-'बाहिरब्भंतरए' इत्यादि।

सूत्र पाठ द्वारा प्रकट की गई, जब तथाविध श्रमणको अथवा माहनको तृतीय विभंग ज्ञान उत्पन्न होता है, तब वह प्राणातिपातोंको-मृषावादोंको, अदत्तादानोंको, मैथुन सेवाको, परिग्रहके संग्रहको, और रात्रिभोजनको करते हुए जीवोंको देखता है, क्रियमाण पाप कर्मको नहीं देखता है, इससे जीव क्रियावरणवाला है, ऐसी उसकी मान्यता हो जाती है, कर्मरूप आवरणवाला जीव है-ऐसी उसकी मान्यता नहीं रहती है, ऐसा उसका ज्ञान विभंग इसलिये कहा गया है, कि वह जीवको जो कि वास्तविक रूपमें कर्मावरणवाला है, ऐसा न मानकर विपरीत रूप क्रियावरणवाला मानता है, ऐसा यह तृतीय विभंग ज्ञान है, तथा जिस तथाविध श्रमणको अथवा माहनको चतुर्थ विभंगज्ञान उत्पन्न होता है, उससे वह इस प्रकारसे देवोंको देखता है-कि ये

मिथ्या ते एवमाहु." આ સૂત્રપાઠ દ્વારા પ્રકટ કરી છે. પાંચ જ દિશામાં લોકનું અસ્તિત્વ સ્વીકારતી તેમની આ માન્યતા પણ ખોટી જ છે.

જે શ્રમણ અથવા માહણમાં ત્રીજા પ્રકારનું વિભંગજ્ઞાન ઉત્પન્ન થઈ જાય છે, તે પ્રાણાતિપાત, મૃષાવાદ, અદત્તાદાન, મૈથુન સેવન, પરિગ્રહ અને રાત્રિભોજન કરતાં જીવોને દેખે છે, પણ ક્રિયમાણ પાપકર્મને દેખતો નથી. તે કારણે તે વિભંગજ્ઞાની એવું માનતો થાય છે કે જીવ ક્રિયાવરણવાળો જ છે, તે જીવને કર્મરૂપ આવરણવાળો માનતો નથી. તેના આ જ્ઞાનને વિભંગજ્ઞાન કહેવાનું કારણ એ છે કે જીવ વાસ્તવિક રીતે તો કર્માવરણવાળો હોવા છતાં પણ તે તેને ક્રિયાવરણવાળો માને છે આ પ્રકારની વિપરીત માન્યતા તે જ્ઞાનને કારણે જ તેનામાં આવી હોય છે, તેથી જ તેના તે પ્રકારના જ્ઞાનને વિભંગજ્ઞાન કહે છે

ચોથા પ્રકારના વિભંગજ્ઞાનનું વિવેચન—જે કોઈ શ્રમણ અથવા માહણને ચોથા પ્રકારનું વિભંગજ્ઞાન ઉત્પન્ન થાય છે, તે એવું માનતો થઈ જાય

बाह्याभ्यन्तरान् बाह्याः शरीरावगाहक्षेत्राद् बहिर्भूताश्च ते आभ्यन्तराः= शरीरावगाहक्षेत्रान्तरालवर्तिनश्च ते तथा, तान् पुद्गलान्=वैक्रियवर्गणारूपान् तद्भिन्नान् वा पर्यादाय=वैक्रियसमुद्घातेन समन्ताद् गृहीत्वा, स्पृष्ट्वा=तानेव पुद्गलान् स्पर्शविषयीकृत्य, स्फोरयित्वा स्पन्दयित्वा, स्फोटयित्वा=विकसितीकृत्य पृथक्-देशकालभेदेन पृथक्-क्वचित् कदाचिदित्यर्थः, एकत्वम्=एकरूपत्वं नानात्वं=नानारूपत्वं विकुर्व्य विकुर्व्य उत्तरवैक्रियतया किञ्चित्कालं स्थातुं प्रवृत्तान् देवान् पश्यति। एवंविधान् देवान् पश्यतस्तस्य एवंविधो विकल्पो जायते यद्-मुदग्रः=बाह्याभ्यन्तरपुद्गलरचितशरीरो जीव इति। इति चतुर्थं विभङ्गज्ञानम् ४। तथा-यस्य तथाविधस्य श्रमणस्य माहनस्य वा पञ्चमं विभङ्गज्ञान

देव बाह्य-शरीरावगाह क्षेत्रसे बहिर्भूत, एवं आभ्यन्तर शरीरावगाह क्षेत्रके अन्तरालवर्ती-वैक्रिय वर्गणारूप पुद्गलोंको अथवा तद्भिन्न पुद्गलोंको वैक्रिय समुद्घात द्वारा चारों ओरसे ग्रहण करके उन्होंने स्पर्श करके, उन्हें ही स्पन्दित करके उन्हें ही विकसित करके देशकालके अनुसार कदाचित् एक रूपसे कदाचित् नाना रूपसे विक्रिया करके उत्तर विक्रियामें कुछकाल तक स्थित रहते हैं, अतः इस प्रकारके देवोंको देखकर उसके मनमें ऐसा विकल्प उत्पन्न हो जाता है, कि जीव बाह्य एवं आभ्यन्तर पुद्गलोंसे रचित शरीरवाला है, ऐसा यह ज्ञान विभंग इसलिये कहा गया है, कि इस ज्ञानमें यह शरीर नामकर्मके द्वारा रचा गया है, इस बातको छोड़ दियागया है, ऐसा यह विभंग ज्ञान चतुर्थ-प्रकारका है, तथा-जिस तथाविध श्रमणको अथवा माहनको पांचवां

છે કે દેવ બાહ્ય અને આભ્યન્તર પુદ્ગલો વડે રચિત શરીરવાળો હોય છે. તેની આ પ્રકારની માન્યતાનું કારણ નીચે પ્રમાણે છે—

તે દેવોને બાહ્ય (શરીરાવગાહ ક્ષેત્રની બહારના) અને આભ્યન્તર (શરીરાવગાહ ક્ષેત્રની અંદરના) વૈક્રિય વર્ગણારૂપ પુદ્ગલોને અથવા તેના કરતાં ભિન્ન પુદ્ગલોને વૈક્રિય સમુદ્ઘાત વડે ચોમેરથી ગ્રહણ કરીને, તેમનો સ્પર્શ કરીને, તેમને જ સ્પન્દિત કરીને, તેમને જ વિકસિત કરીને દેશકાળ અનુસાર ક્યારેક એક રૂપે અને ક્યારેક વિવિધ રૂપે વિક્રિયા કરીને ઉત્તર વિક્રિયામાં અમુક કાળ સુધી સ્થિત રહેતા જોવે છે. દેવોને આ પ્રકારે ઉત્તર વૈક્રીય શરીરની રચના કરતા જોઇને તેઓ એવું માની લે છે કે જીવ બાહ્ય અને આભ્યન્તર પુદ્ગલોથી રચિત શરીરવાળો હોય છે. વાસ્તવિક રીતે જોઇએ તો આ શરીર નામકર્મ દ્વારા રચાયું છે. તેથી ઉપર્યુક્ત વિપરીત માન્યતાવાળા તે જ્ઞાનને વિભંગજ્ઞાન કહેવામાં આવ્યું છે

मुत्पद्यते। ततः स तेन विभङ्गज्ञानेन देवान् पश्यति, कीदृशान् देवान् पश्यति ? इत्याह-' बाहिरब्भंतरए ' इत्यादि।

बाह्याभ्यन्तरान् पुद्गलान् अपर्यादाय=वैक्रियसमुद्घातापेक्षया अगृहीत्वा उत्पत्तिक्षेत्रस्थांस्तूत्पत्तिकाले गृहीत्वा, स्पृष्ट्वा=उत्पत्तिक्षेत्रस्थान्-पुद्गलान् स्पर्शविषयीकृत्य, स्फोरयित्वा, स्फोटयित्वा पृथक्=क्वचित् कदाचित् एकत्वम्=एकरूपत्वम्-भवधारणीयशरीरस्य एकत्वम् एकदेशापेक्षया कण्ठाद्यवयवापेक्षया वा, नानात्वं=नानारूपत्वम्-अनेकदेशापेक्षया हस्ताङ्गुलाद्यवयवापेक्षया वा विकुर्व्य विकुर्व्य स्थातुं प्रवृत्तान् देवान् पश्यति। ततस्तस्य एवं विकल्पो जायते यत्-अमुदग्रः=अबाह्याभ्यन्तरपुद्गलरचितशरीरो जीवो न तु मुदग्रोजीव इति। इति पञ्चमं विभङ्गज्ञानम्।

विभंग ज्ञान उत्पन्न होता है-तब वह उस विभंग ज्ञानसे इस प्रकार देवोंको देखता है, और उन्हें देखकर वह ऐसा विचार करता है-कि ये देव बाह्य एवं आभ्यन्तर पुद्गलोंको वैक्रिय समुद्घातकी अपेक्षा नहीं ग्रहण करके तथा उत्पत्ति क्षेत्र स्थित पुद्गलोंको तो उत्पत्ति कालमेंही ग्रहण करके, एवं उत्पत्ति क्षेत्र स्थित पुद्गलोंको स्पर्शेन्द्रियका विषयभूत करके उन्हें स्पन्दित करके क्वचित् एकरूपसे-भवधारणीय शरीरकी अपेक्षासे अथवा कण्ठ आदि अवयवकी अपेक्षासे-एक रूपवाली-अथवा-नाना रूपसे अनेक देवोंकी अपेक्षासे या हस्त-अङ्गुलि आदि अवयवोंकी अपेक्षासे अनेक रूपवाली-बार २ विक्रिया करते हैं, और इसी विक्रियामें इस समय रहते हैं, अतः जीव अमुदग्र है-

પાંચમાં પ્રકારનું વિભંગજ્ઞાન—જે શ્રમણુ અથવા માહણુને પાંચમાં પ્રકારનું વિભંગજ્ઞાન ઉત્પન્ન થઈ જાય છે. તે એમ માનતો થઈ જાય છે કે જીવ અમુદગ્ર છે-એટલે કે જીવ બાહ્ય અને આભ્યન્તર પુદ્ગલો વડે રચિત શરીરવાળો નથી. તેની આ માન્યતાનું કારણુ આ પ્રમાણે છે—

તે તેના વિભંગજ્ઞાનથી એવું દેખે છે કે-દેવો બાહ્ય અને આભ્યન્તર પુદ્ગલોને વૈક્રીય સમુદ્ઘાતની અપેક્ષાએ ગ્રહણુ ન કરીને તથા ઉત્પત્તિક્ષેત્રસ્થિત પુદ્ગલોને તે ઉત્પત્તિકાળમાં જ ગ્રહણુ કરીને, અને ઉત્પત્તિ ક્ષેત્રસ્થિત પુદ્ગલોને સ્પર્શેન્દ્રિના વિષયભૂત કરીને, તેમને સ્પન્દિત કરીને કયારેક એક રૂપે-ભવધારણીય શરીરની અપેક્ષાએ અથવા કંઠ આદિ અવયવની અપેક્ષાએ એક રૂપવાળી અથવા વિવિધ રૂપે-અનેક દેવોની અપેક્ષાએ અથવા હાથ, આંગળી આદિ અવયવોની અપેક્ષાએ અનેક રૂપવાળી વિક્રિયામાં તેઓ આ સમયે

तथा-यस्य तथारूपस्य श्रमणस्य वा माहनस्य वा षष्ठं विभङ्गज्ञानमुत्पद्यते, स समुत्पन्नेन तेन ज्ञानेन पश्यति-बाह्याभ्यन्तरपुद्गलान् पर्यादाय-अपर्यादाय वा पूर्ववत् एकरूपत्वम् अनेकरूपत्वं वा विकुर्व्य विकुर्व्य स्थातुं प्रवृत्तान् देवान्। एवंविधदेवदर्शनेन स 'रूपी एकजीवः' इति प्रतिपद्यते। रूपभिन्नस्य कदाचिदप्यदर्शनात् 'अरूपी जीवः' इति तु न प्रतिपद्यते इति षष्ठं विभङ्ग ज्ञानम् ६। तथा-यस्य तथारूपस्य श्रमणस्य माहनस्य वा सप्तमं विभङ्गज्ञानमुत्पद्यते, स समुत्पन्नेन तेन विभङ्गज्ञानेन पुद्गलकायं पश्यति, कीदृशं पुद्गलकायं पश्यति?

बाह्याभ्यन्तर पुद्गलोंसे रचित शरीरवाला नहीं है, ऐसा यह पांचवां विभङ्ग ज्ञान है, तथा-जिस तथा रूपवाले श्रमणको अथवा माहनको छठा विभङ्ग ज्ञान उत्पन्न होता है, वह उस समय उस ज्ञानसे देवोंको इस प्रकारसे देखता है-कि बाह्य और आभ्यन्तर पुद्गलोंको ग्रहण करके और नहीं ग्रहण करके ये देव एक रूपवाली अथवा अनेक रूपवाली विक्रिया बार २ करते हैं, और अब भी ये इसी प्रकारकी विक्रियामें स्थित हैं, अतः जीवरूपी है, ऐसा वह देवोंको उस विभंग ज्ञानसे देखकर मानने लगता है, ऐसा यह छठा विभङ्ग ज्ञान है, इस ज्ञानमें विभङ्गता इस लिये कही गई है, कि जीव मूल रूपमें रूपी नहीं है, अरूपी है, परन्तु ऐसा दर्शन उसे कभी होता नहीं है। तथा जिस श्रमणको तथा माहनको सातवां विभङ्ग ज्ञान उत्पन्न होता है, वह उत्पन्न हुए

રહેલાં છે. તેથી જીવ અમુદ્રશ્ય છે-બાહ્ય અને આભ્યન્તર પુદ્ગલો વડે રચિત શરીરવાળો નથી. આ પ્રકારનું આ પાંચમું વિભંગજ્ઞાન છે.

છઠ્ઠા પ્રકારનું વિભંગજ્ઞાન—જે શ્રમણ અથવા માહણને છઠ્ઠા પ્રકારનું વિભંગજ્ઞાન ઉત્પન્ન થઈ જાય છે. તે પોતાના તે જ્ઞાનના પ્રભાવથી દેવોને બાહ્ય અને આભ્યન્તર પુદ્ગલોને ગ્રહણ કરીને અને ગ્રહણ કર્યા વિના એક રૂપવાળી અથવા અનેક રૂપવાળી વિક્રિયા કરતાં, અને તે કાળે પણ એ જ પ્રકારની વિક્રિયામાં સ્થિત રહેલા નિહાળે છે. તેથી તે હાલતમાં દેવોને (પોતાના વિભંગજ્ઞાન) વડે જોઈને તે એવું માનતો થઈ જાય છે કે જીવ રૂપી જ છે. આ જ્ઞાનમાં વિભંગતા માનવાનું કારણ એ છે કે જીવ મૂળ રૂપે વાસ્તવિક રૂપે-નથી પણ અરૂપી જ છે. પરન્તુ વિભંગજ્ઞાનીને એવું દર્શન કદી થતું જ નથી.

સાતમા પ્રકારનું વિભંગજ્ઞાન—જે શ્રમણ અથવા માહણને સાતમાં પ્રકારનું વિભંગજ્ઞાન ઉત્પન્ન થઈ જાય છે તે તેના તે વિભંગજ્ઞાન વડે તે

इत्याह–' सुहुमेणं वाउकाएणं ' इत्यादि । सूक्ष्मेण=मन्देन, नतु सूक्ष्मनामकर्मोदयवर्तिना, तस्य वस्तु चालनासमर्थत्वात्, वायुकायेन स्पृष्टम् अतएव–एजमानं=कम्पमानं, व्येजमानं=विशेषेण कम्पमानं, चलन्तम्=स्थानान्तरे संक्रमन्तम्, क्षुभ्यन्तम्=अधो निमज्जन्तम्, स्पन्दमानम्=ईषच्चलन्तं घट्टयन्तं=वस्त्वन्तरं स्पृशन्तम्, उदीरयन्तं=वस्त्वन्तरं, प्रेरयन्तं, तथा–तं तम्=निर्वक्तुमशक्यमनेकविधं भावं=पर्यायं परिणमन्तं=गच्छन्तं पश्यतीति ।

ततः आत्मानमतिशयज्ञानसम्पन्नं मन्यमानः स विभङ्गज्ञानी मन्यते–इदं प्रत्यक्षं सर्वं पुद्गलजातं जीवाः–कम्पनादि लक्षणधर्मवत्त्वात् । ये तु श्रमणा माहनाः कम्पनादि–धर्म–विशिष्टमपि पुद्गलजातं जीवा अजीवाश्चेति प्राहुः, ते

उस विभङ्ग ज्ञानसे पुद्गलकायको इस प्रकारसे देखता है, कि मन्द वायुसे (सूक्ष्म नामकर्मके उदयवर्ती सूक्ष्म वायुसे नहीं, क्योंकि सूक्ष्मनाम कर्मोदय वशवर्ती वायुद्वारा किसीमें भी कंपन उत्पन्न नहीं किया जाता है) ये वस्तुएँ हलाई जाती हैं, विशेष रूपसे कंपाई जाती हैं, एक स्थानसे दूसरे स्थान पर पहुंचा दी जाती हैं, ऊपरसे नीचे गिरा दी जाती हैं एक वस्तुको दूसरी वस्तुके साथ मिला दिया जाता है, इत्यादि और भी रूपसे कहनेके लिये अशक्य स्थितिवाला जब वह पुद्गलकायको देखता है–तब वह अपने आपको अतिशय ज्ञानवाला मानता हुआ वह विभंग ज्ञानी ऐसा मानने लगता है, कि ये सब प्रत्यक्षभूत पुद्गलजात जीवस्वरूप हैं।

क्योंकि कम्पनादिरूप धर्मवाले ये सब पुद्गल जात हैं, जिन श्रमणोंने अथवा माहनोंने कम्पनादि धर्म विशिष्ट भी पुद्गल जातको जीव

પુદ્ગલકાયના વિષયમાં એવું જોવે છે કે મન્દવાયુ વડે (સૂક્ષ્મ નામકર્મના ઉદયવર્તી સૂક્ષ્મવાયુ વડે નહીં, કારણ કે સૂક્ષ્મ નામકર્મોદય વશવર્તી વાયુ દ્વારા કોઇ પણ વસ્તુમાં કંપન ઉત્પન્ન કરાતું નથી) આ વસ્તુઓ થોડી થોડી કંપાવવામાં આવે છે, વિશેષ રૂપે કંપાવવામાં આવે છે, એક સ્થળેથી બીજે સ્થળે લઇ જવામાં આવે છે, ઉપરથી નીચે પાડી નાખવામાં આવે છે, એક વસ્તુ સાથે બીજી વસ્તુને અથડાવવામાં આવે છે, ઇત્યાદિ બીજી પણ ઘણી સ્થિતિવાળા પુદ્ગલકાયને જોઇને, પોતાને અતિશય જ્ઞાની માનતો એવો તે વિભંગજ્ઞાની એવું માનવા લાગે છે કે "આ બધાં પ્રત્યક્ષભૂત પુદ્ગલો જીવ રૂપ છે, કારણ કે તે પુદ્ગલોમાં કંપનાદિ જીવના ધર્મોનો સદ્ભાવ છે, જે શ્રમણોએ અથવા માહણોએ કંપનાદિ ધર્મવાળાં પુદ્ગલોને પણ જીવરૂપ અને અજીવરૂપ કહ્યાં છે, તેમણે એ બધું જૂઠું જ કહ્યું છે."

मिथ्या प्राहुरिति स प्रतिपद्यते । तस्यैवंविधविभङ्गज्ञानिनः पृथिव्यप्तेजो वायुकायिकाश्चत्वारो जीवनिकायाः=जीवसमूहा न सम्यक् उपगताः=अचलनावस्थायां पृथिव्यादयो जीवत्वेन ज्ञाता भवन्ति ।

अयं भावः—एवंविधविभङ्गज्ञानी चलनदोहदादिधर्मवतस्त्रसानेव दोहदादि-त्रसधर्मवतो वनस्पतीनेव च जीवत्वेनाभ्युपगच्छति । पृथिव्यप्तेजोवायुकायिकांस्तु वायुचलनेन स्वतश्चलनेन च स त्रसत्वेनैव जानाति, स्थावरजीवत्वेन तु तान्न जानातीति । इति हेतोः=अचलत्सु पृथिव्यादिकायेषु जीवत्वानभ्युपगमाद् हेतोः स पृथिव्यादिषु चतुर्षु जीवनिकायेषु मिथ्यादण्डं—मिथ्यात्वपूर्वो दण्डो

रूपसे एवं अजीव रूपसे कहा है, उन्होंने वह सब झूठा—मिथ्या कहा है, ऐसा वह विभंग ज्ञानी विभंग ज्ञानके जोरसे मानता है, इस प्रकारके उस विभंगज्ञानीके पृथिवी, अप् तेज और वायुकायिक जो चार जीवनिकाय हैं वे ठीक नहीं माने गये हैं—अचलनावस्थामें पृथिव्यादिक जीव रूपसे उसके द्वारा ज्ञात नहीं होते हैं, इसका भाव यह है—इस प्रकारका विभंग ज्ञानी चलन दोहद आदि धर्मवाले त्रसोंकोही और दोहद आदि त्रस धर्मवाले वनस्पतियोंकोही जीव रूपसे स्वीकार करता है, पृथिवी, अप्, तेज और वायुकायिकोंको तो वह वायुसे चलने आदिके कारणसे और स्वतः चलने आदिके कारणसे त्रस रूपसेही जानता है, स्थावर जीवरूपसे उन्हें नहीं जानता है । इसलिये वह जब वे अचलन धर्मवाले रहते हैं, तब वह उनमें जीवरूपता नहीं मानता है । इस

તેના તે વિભંગજ્ઞાનના પ્રભાવથી તે વિભંગજ્ઞાની આ પ્રકારની ખોટી માન્યતા ધરાવતો થઇ જાય છે. આ પ્રકારના વિભંગજ્ઞાનવાળો તે શ્રમણુ અથવા માહણુ પૃથ્વીકાય, અપ્કાય, તેજસ્કાય અને વાયુકાયિક, આ ચાર જે જીવનિકાયો છે તેમને જીવ રૂપે જ માનતો નથી-અચલનાવસ્થામાં પૃથ્વીકાય આદિને તે જીવ રૂપે સ્વીકારતો નથી. આ કથનનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે

આ પ્રકારના વિભંગજ્ઞાનવાળો તે શ્રમણુ અથવા માહણુ, ચલન, દોહદ આદિ ધર્મવાળા ત્રસોને જ અને દોહદ આદિ ત્રસ ધર્મવાળા વનસ્પતિકાયિકોને જ જીવ રૂપે સ્વીકારે છે. પૃથ્વી, અપ્, તેજ, અને વાયુકાયિકોને તો તે વાયુથી કંપવા આદિ કારણોને લીધે અને સ્વતઃ (આપમેળે) ચાલવા આદિને કારણે ત્રસ રૂપે જ જાણે છે-સ્થાવર જીવ રૂપે તેમને માનતો નથી. તેથી જ્યારે તેઓ અચલન ધર્મવાળાં રહે છે ત્યારે તો તે તેમને જીવરૂપ માનતો જ નથી. તે કારણે તે પૃથ્વીકાય આદિ ચાર જીવનિકાયોની મિથ્યાત્વ

मिथ्यादण्डस्तं विभङ्गज्ञानवशात् हिंसां प्रवर्त्तयति-पृथिव्यादि चतुर्जीवनिकायरूपानभिज्ञःसँस्तान् हिनस्ति, तेषां जीवत्वं चापलपति, इति सप्तमं विभङ्गज्ञानम् ७ ॥ सू० २ ॥

मिथ्यादण्डं प्रवर्त्तयतीत्युक्तम्, दण्डश्च जीवेषु भवतीति योनिसंग्रहतो जीवान् सप्तविधत्वेन प्ररूपयितुमाह—

मूलम्—सत्तविहे जोणिसंगहे पण्णत्ते, तं जहा—अंडया १ पोयया २, जराउया ३, रसया ४, संसेइमा ५ संमुच्छिमा ६, उब्भिया ७। अंडया सत्तगइया सत्तागइया पण्णत्ता, तं जहा—अंडए अंडएसु उववज्जमाणे अंडएहिंतो वा पोयएहिंतो वा जाव उब्भिएहिंतो वा उववज्जेज्जा। से चेव णं से अंडए अंडयत्तं विप्पजहमाणे अंडयत्ताए वा पोययत्ताए वा जाव उब्भियत्ताए वा गच्छेज्जा। पोयया सत्तगइया सत्तागइया। एवं चेव सत्तण्हं गई आगई भाणियव्वा जाव उब्भियत्ति ॥सू०३॥

कारण पृथिवी आदि चार जीवनिकायोंके वह मिथ्यात्वपूर्वक दण्डको विभंग ज्ञानवश हिंसाको करता है, अर्थात्-पृथिव्यादि चार जीव निकायके स्वरूपसे अनभिज्ञ हुआ वह उनकी हिंसा करता है, और उनमें जीवत्वका अपलाप (छिपाता है) करताहै, इस प्रकारका यह सातवां विभंगज्ञानहै ७ ॥ सू०२ ॥

पृथिवी आदि जीवके स्वरूपसे अनभिज्ञ हुआ जीव उनकी मिथ्यात्वपूर्वक हिंसा करता है, ऐसा कहा—सो यह मिथ्यादण्ड जीवोंमें होता है, इसलिये योनिके संग्रहसे अब सूत्रकार जीवोंमें सप्तविधताका प्रति-

પૂર્વક હિંસા કરે છે. આ બધું તેના વિભંગજ્ઞાનને લીધે બને છે કહેવાનું તાત્પર્ય એ છે કે પૃથ્વીકાય આદિ ચાર જીવનિકાયના વાસ્તવિક સ્વરૂપથી અનભિજ્ઞ એવો તે વિભંગજ્ઞાની તેમની હિંસા કરે છે અને તેમનામાં જીવત્વનો અપલાપ કરે છે એટલે કે તેમનામાં જીવ હોવાની વાતને જ માન્ય કરતો નથી. આ પ્રકારનું સાતમું વિભંગજ્ઞાન છે. ॥ સૂ. ૨ ॥

આગલા સૂત્રમાં એવું કહેવામાં આવ્યું છે કે " પૃથ્વી આદિ જીવના સ્વરૂપથી અનભિજ્ઞ હોય એવો જીવ મિથ્યાત્વપૂર્વક તેમની હિંસા કરે છે." આ મિથ્યાદંડનો સદ્ભાવ જીવોમાં હોય છે. તે કારણે યોનિના નિરૂપણ

छाया—सप्तविधो योनिसंग्रहः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—अण्डजाः १ पोतजाः २ जरायुजाः ३ रसजाः ४ संस्वेदिमाः ५ संमूर्च्छिमाः ६ उद्भिज्जाः ७। अण्डजाः सप्तगतिकाः सप्तागतिकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—अण्डेषु अण्डजेषु उत्पद्यमानः अण्डजेभ्यो वा पोतजेभ्यो वा यावत् उद्भिज्जेभ्यो वा उत्पद्येत। स एव खलु सः अण्डजः अण्डजत्वं विप्रजहत् अण्डजतया वा पोतजतया वा यावत् उद्भिज्जतया वा गच्छेत्। पोतजाः सप्तगतिकाः सप्तागतिकाः। एवमेव सप्तानां गत्यागती भणितव्ये यावत् उद्भिज्जा इति ॥ सू० ३॥

टीका—' सत्तविहे जोणिसंगहे ' इत्यादि।

योनिसंग्रहः-योनिभिः=उत्पत्तिस्थानविशेषैः संग्रहः=जीवानां समूहः, सप्तविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—अण्डजाः-अण्डे=पक्ष्यादि प्रादुर्भावककोषे जायन्ते=उपपद्यन्ते इत्यण्डजाः-पक्षिसर्पादयः १, पोतजाः-पोता एव जाताः पोतजाः-न जरायवादिना वेष्टिताः पूर्णावयवा योनिनिर्गतमात्रा एव परिस्पन्दादिसामर्थ्योपेताः

पादन करते हैं—' सत्तविहे जोणिसंगहे पण्णत्ते ' इत्यादि। सू० ३।

टीकार्थ-उत्पत्ति स्थानरूप योनि विशेषोंको लेकर जीवोंका समूह सात प्रकारका कहा गया है-जैसे-अण्डज १ पोतज २, जरायुज ३, रसज ४, संस्वेदिम ५, संमूर्च्छिम ६, और उद्भिद ७, पक्षि आदि जिसमें उत्पन्न होते हैं, ऐसे कोषका नाम अण्डा है, इस अण्डेसे जो पैदा होते हैं वे अण्डज हैं, ऐसे वे अण्डज पक्षी सर्प आदि हैं। १।

जो उत्पत्तिके समय जरायु आदिसे वेष्टित नहीं होतेहैं, पूर्ण अवयववाले होतेहैं, और योनिसे निकलतेही परिस्पन्द (चलन) आदि सामर्थ्य-

---

દ્વારા સૂત્રકાર જીવોમાં સપ્તવિધતાનું હવે પ્રતિપાદન કરે છે.

" सत्तविहे जोणीसंगहे पण्णत्ते " ઇત્યાદિ—

ઉત્પત્તિ સ્થાનરૂપ યોનિવિશેષોની અપેક્ષાએ જીવોનો સમૂહ સાત પ્રકારનો કહ્યો છે. તે સાત પ્રકારો નીચે પ્રમાણે છે—(૧) અંડજ (૨) પોતજ (૩) જરાયુજ, (૪) રસજ, (૫) સંસ્વેદિમ, (૬) સંમૂર્ચ્છિમ અને (૭) ઉદ્ભિજ્જ

(૧) પક્ષી આદિ જેમાં ઉત્પન્ન થાય છે એવા કોષનું નામ ઇંડું છે. આ ઇંડામાંથી પેદા થતા જીવોને અંડજ કહે છે. એવા પક્ષી, સર્પ આદિને અંડજ જીવો કહેવામાં આવે છે.

(૨) જે જીવો ઉત્પત્તિના સમયે જરાયુ આદિ વડે વેષ્ટિત હોતાં નથી, પૂર્ણ અવયવોવાળાં હોય છે અને યોનિમાંથી બહાર આવતાની સાથે જ પરિસ્પન્દન આદિ સામર્થ્યવાળાં હોય છે, તેમને પોતજ કહે છે. અથવા વસ્ત્રને

पोतजाः यद्वा–पोतो वस्त्रम्, तत्सम्मार्जिता इव जायन्ते गर्भवेष्टनचर्माऽनावृतत्वाद् ये ते पोतजाः, यद्वा–पोताद्=गर्भवेष्टनचर्मरहितगर्भाशयात् जायन्ते इति पोतजाः कुञ्जरशल्लकशशनकुलमूषिकचर्मचटिकावल्गुलिकादयः २। जरायुजाः–जरा-मेति=गच्छतीति जरायुः=गर्भवेष्टनचर्म, तस्माज्जायन्ते ये ते तथा–नरमहिष-गवादयः ३। रसजाः–रसे=मद्ये जायन्ते इति रसजाः–मद्यकीटाः, "रसजो मद्य-कीटः" इति हैमात्। यद्वा–रसे=विकृतमधुरादौ जायन्ते इति रसजाः ४। संस्वे-दिमाः–संस्वेदद्=घर्माद् जायन्ते ये ते तथा, यूकालिक्षा–मत्कुणप्रमुखाः ५।

वाले होते हैं–वे पोतज हैं, अथवा–पोत नाम वस्त्रका है, इस वस्त्रसे पोंछे हुएकी तरह जो गर्भवेष्टन चर्मसे अनावृत होनेके कारण उत्पन्न होते हैं, वे पोतज हैं, अथवा–पोतसे–गर्भवेष्टन चर्मसे रहित गर्भा शयसे जो उत्पन्न होतेहैं, वे पोतजहैं, ऐसे वे पोतज कुंजर, शल्लक, शश–खरगोश, नकुल, मूषिक, चमगादड़, और वल्गुलिका आदि जीव हैं।२।

गर्भवेष्टन चर्मका नाम जरायु है। इस जरायुसे जो जीव पैदा होते हैं, वे जरायुज हैं, ऐसे वे जरायुज जीव नर–मनुष्य, महिष एवं गाय आदि हैं।३।

जो जीव रसमें उत्पन्न होते हैं, वे रसज हैं–ऐसे ये रसज मद्यकीट (कीडे) होतेहैं। "रसजो मद्यकीटः" ऐसा हैमकोषमें कहा गया है। अथवा–विकृत मधुर (बिगडी मिठाई)आदि रसमें जीव उत्पन्न होतेहैं वे रसज हैं।४।

जो जीव पसीनेसे उत्पन्न होते हैं, वे संस्वेदिम हैं जैसे–यूक, (जू) लीख एवं मत्कुण–खटमल वगैरह।५।

પોત કહે છે. તે વસ્ત્ર વડે લૂછવામાં આવ્યા હોય એવી રીતે–ગર્ભવેષ્ટન ચર્મ વડે અનાવૃત (અનાચ્છદિત હોવાને કારણે) ઉત્પન્ન થાય છે તેમને પોતજ કહે છે અથવા પોતમથી ગર્ભવેષ્ટન ચર્મરહિત ગર્ભાશયમાંથી જેઓ ઉત્પન્ન થાય છે તેનને પોતજ કહે છે. હાથી, સસલાં, નોળિયાં, મૂષક.

આદિ પ્રાણીઓનો આ પ્રકારમાં સમાવેશ થાય છે.

(૩) ગર્ભવેષ્ટન ચર્મને જરાયુ કહે છે. આ જરાયુમાંથી જે જીવો ઉત્પન્ન થાય છે તેને જરાયુજ કહે છે. એવા જરાયુજ જીવો મનુષ્ય, ગાય, ભેંસ આદિ છે.

(૪) જે જીવો રસમાં ઉત્પન્ન થાય છે તેમને રસજ કહે છે. મદ્યકીટોને એવાં રસજ જીવો કહે છે. " रसजो मद्यकीटः " આ પ્રકારનું કથન રસજ જીવો વિષે હૈમકોશમાં કરવામાં આવ્યું છે તેમને રસજ કહે છે.

सम्मूर्च्छिमाः-सम्मूर्च्छनं सम्मूर्छः-गर्भाधानमन्तरेणैव स्वयं समुत्पत्तिः, यद्वा-समन्ततो देहस्य मूर्च्छनम्=अवयवसंयोगः सम्मूर्छः, तेन निर्वृत्ताः सम्मूर्च्छिमाः=मातापितृसंयोगं विनैव स्वयमुत्पन्नाः=पिपीलिका मक्षिका-मत्कोटकादयः ६। उद्भिज्जाः-उद्भिद्य=भूमिं भित्त्वा जायन्ते ये ते तथा-शलभादय इति। सम्प्रति एतेषामण्डजादीनां सप्तगतिकत्वं सप्तागतिकत्वं च निरूपयितुमाह-' अंडया सत्त-गइया ' इत्यादि। अंडजाः=पक्षिसर्पादयः सप्तगतिकाः-सप्तसु योनिषु गतिः=मृत्वा गमनं येषां ते तथा-सप्तसु योनिषु गमनशीलाः सप्तागतिकाः-सप्तभ्यो योनिभ्य आगतिः=आगमनं येषां ते तथाभूताश्च प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-अण्डजाः=

गर्भाधानके विनाही जिनकी स्वयं उत्पत्ति हो जाती है, ऐसे जीव सम्मूर्च्छिम हैं। अथवा-सब तरफसे देहका जो मूर्च्छन-अवयव संयोग है वह सम्मूर्च्छ है, इस सम्मूर्छसे जो उत्पन्न होते हैं वे सम्मूर्च्छिम हैं मातापिताके संयोग हुए विनाही जो अपने आप उत्पन्न हो जाते हैं-ऐसे पिपीलिका, (चूंटी) मक्षिका, मकोडा आदि जीव सम्मूर्छिम हैं।६।

जो भूमिको भेद करके उत्पन्न होते हैं ऐसे शलभ आदि जीव या वनस्पति उद्भिज्ज हैं।७।

अब सूत्रकार इन अण्डज आदिकों की सातगतिकता और सात आगतिकताका निरूपण करनेके निमित्त " अंडया सत्त गइया " इत्यादि रूपसे कथन करते हैं-इन सातमें जो अण्डज हैं-पक्षी, सर्प आदि हैं वे मरकर इन सातोंमें उत्पन्न हो सकते हैं,

(५) જે જીવો પરસેવામાંથી ઉત્પન્ન થાય છે તેને સંસ્વેદિમ કહે છે. જૂ, લીખ, માકડ વગેરે આ પ્રકારના જીવો છે.

(૬) ગર્ભાધાન વિના જ જેમની આપોઆપ ઉત્પત્તિ થઇ જાય છે, એવાં જીવોને સંમૂર્છિમ કહે છે. અથવા-બધી તરફથી દેહનો જે મૂર્છન (અવયવ સંયોગ) છે તેને સંમૂર્છ કહે છે. આ સંમૂર્છ વડે જેઓ ઉત્પન્ન થાય છે તેમને સમ્મૂર્છિમ કહે છે. માતાપિતાના સંયોગ વિના જ જે જીવો પોતાની જાતે જ ઉત્પન્ન થઇ જાય છે એવા કીડી, મંકોડા, માખી આદિ જીવોને સમ્મૂર્ચ્છિમ કહે છે.

(૭) જે જીવો ભૂમિને ભેદીને ઉત્પન્ન થાય છે એવા શલભ આદિ જીવોને અથવા વનસ્પતિને ઉદ્ભિજ્જ કહે છે.

હવે સૂત્રકાર આ અંડજાદિકોની સાત ગતિકતાનું અને સાત આગતિકતાનું નિરૂપણ કરે છે. " अंडया सत्त गइया " ઇત્યાદિ—

સર્પ, પક્ષી, આદિ જે અંડજ જીવો છે તેઓ મરીને અંડજ આદિ સાતેમાં ઉત્પન્ન થઈ જાય છે, એટલે કે અંડજ જીવો મરીને ફરીથી અંડજમાં

निबद्धाण्डजनामकर्मा अतएव अण्डजेषु उत्पद्यमानो जीवः अण्डजेभ्यो वा पोतजेभ्यो वा यावद् उद्भिज्जेभ्यो वा आगत्य उत्पद्येत-इति सप्तागतिकत्वमाश्रित्योक्तम्। सम्प्रति सप्तगतिकत्वमाश्रित्याह-' से चेव णं ' इत्यादि। स एव खलु अण्डजः-योऽण्डजादेः कस्माच्चिदपि योनिविशेषात् समागत्य अण्डजत्वेनोत्पन्नः स एव अण्डजो जीवः अण्डजत्वं विप्रजहत्=परित्यजन् अण्डजतया वा पोतजतया वा यावत् उद्भिज्जतया वा गच्छेदिति। एवमेव पोतजा अपि सप्तगतिकाः सप्ता-

अर्थात् अण्डज मरकर पुनः अण्डज हो सकता है, अण्डज मरकर पोतज हो सकता है, अण्डज मरकर जरायुज हो सकता है, अण्डज मरकर रसज हो सकता है, अण्डज मरकर संस्वेदिम हो सकता है, अण्डज मरकर सम्मूर्च्छिम हो सकता है, और अण्डज मरकर उद्भिज्ज हो सकता है। इसी तरहसे वह सात इन जगहोंसे आकर इनमें उत्पन्न हो सकता है, अण्डज-निबद्ध अण्डज नामकर्मवाला जीव अण्डजोंमें उत्पन्न होता हुआ अण्डजोंसे अथवा पोतजोंसे यावत् उद्भिज्जोंसे आकर उत्पन्न होता है, इसी तरह वही अण्डज-जो अण्डज आदि किसी भी योनि विशेषसे आकर अण्डज रूपसे उत्पन्न होता है, ऐसा वह अण्डज जीव अंडजत्वरूप पर्यायको छोड़ता हुआ पुनः अण्डज रूपसे अथवा पोतज रूपसे यावत् उद्भिज्ज रूपसे जन्म धारण कर लेता है,

ઉત્પન્ન થઇ શકે છે. અથવા અંડજ જીવો મરીને પોતજોમાં પણ ઉત્પન્ન થઈ શકે છે. અથવા અંડજ જીવો મરીને જરાયુજમાં પણ ઉત્પન્ન થઇ શકે છે. અથવા અંડજ જીવો મરીને રસજમાં પણ ઉત્પન્ન થઈ શકે છે, અથવા અંડજ જીવો મરીને સસ્વેદિમમાં પણ ઉત્પન્ન થઇ શકે છે, અથવા અંડજ જીવો મરીને સંમ્મૂર્ચ્છિમોમાં પણ ઉત્પન્ન થઈ શકે છે, અથવા અંડજ જીવો મરીને ઉદ્ભિજ્જોમાં પણ ઉત્પન્ન થઇ શકે છે. એ જ પ્રમાણે ઉપર્યુક્ત સાતે પ્રકારના જીવો મરીને ઉપર્યુક્ત અંડજ આદિ સાતે પ્રકારના જીવો રૂપે ઉત્પન્ન થઇ શકે છે.

અંડજ—નિબદ્ધ અંડજ નામકર્મવાળો જીવ અંડજોમંથી, અથવા પોતજોમાંથી, અથવા જરાયુજોમાંથી, અથવા રસજોમાંથી, અથવા સંસ્વેદિમોમાંથી અથવા સમ્મૂર્ચ્છિમોમાંથી, અથવા ઉદ્ભિજ્જોમાંથી આવીને અંડજોમાં ઉત્પન્ન થઈ જાય છે. એ જ પ્રમાણે એજ અંડજ કે જે અંડજ આદિ કોઇ પણ યોનિવિશેષમાંથી આવીને અંડજ રૂપે ઉત્પન્ન થયેલો છે, તે અંડજ જીવ અંડજ રૂપ પર્યાયને છોડીને ફરીથી અંડજ રૂપે અથવા પોતજ રૂપે, અથવા જરાયુજ રૂપે અથવા રસજ રૂપે જન્મ ધારણ કરી લે છે. આ પ્રકા-

गतिका बोध्यः। एवमेव=अनेन प्रकारेणैव सप्तानामपि-अण्डजपोतजयोः संग्रहात् सप्तानामिति-अण्डजादि सप्तानामपीत्यर्थः, ततश्च जरायुजमारभ्योद्भिज्जपर्यन्तानां पञ्चानामपि गत्यागती भणितव्ये इति भावः ॥ सू० ३ ॥

अनन्तरसूत्रे योनिसंग्रह उक्तः इति संग्रहप्रस्तावात् संग्रहस्थानसूत्रमाह—

मूलम्—आयरियउवज्झायस्स णं गणंसि सत्त संगहट्ठाणा पण्णत्ता, तं जहा-आयरियउवज्झाए गणंसि आणं वा धारणं वा सम्मं पउंजित्ता हवइ, एवं जहा पंचट्ठाणे जाव आयरियउवज्झाए गणंसि आपुच्छियचारी यावि हवइ, णो अणापुच्छियचारी यावि भवइ, आयरियउवज्झाए गणंसि अणुप्पन्नाइं उवगरणाइं सम्मं उप्पाइत्ता हवइ, आयरियउवज्झाए गणंसि पुवुप्पन्नाइं उवगरणाइं सम्मं सारक्खेत्ता संगोवित्ता भवइ, णो असम्मं सारक्खेत्ता संगोवित्ता भवइ। आयरियउवज्झायस्स णं गणंसि सत्त असंगहट्ठाणा पण्णत्ता, तं जहा--आयरियउवज्झाए गणंसि आणं वा धारणं वा नो सम्मं पउंजित्ता भवइ, एवं जाव उवगरणाणं नो सम्मं सारक्खेत्ता संगोवेत्ताभवइ॥सू०४॥

इसी प्रकारकी गति आगतिका कथन पोतज जीवोंके सम्बन्धमें भी कर लेना चाहिये, अर्थात् पोतज जीव भी सात गतिवाले और सातही आगतिवाले होते हैं। इसी तरह जरायुजसे लेकर उद्भिज्ज तकके पांचों जीव भी सात गतिवाले और सात आगतिवाले होते हैं, ऐसा जानना चाहिये ॥ सू० ३ ॥

રનું ગતિ અને આગતિ વિષયક કથન પોતજ જીવોમાં પણ સમજી લેવું જોઇએ. એટલે કે પોતજ જીવ પણ સાત પ્રકારની ગતિવાળો અને સાત પ્રકારની આગતિવાળો હોય છે, એમ સમજવું. એ જ પ્રમાણે જરાયુજથી લઈને ઉદ્ભિજ્જ પર્યન્તના પાંચે પ્રકારના જીવો પણ સાત ગતિવાળા અને સાત આગતિવાળા હોય છે એવું સમજવું જોઇએ ॥ સૂ. ૩ ॥

छाया—आचार्योपाध्यायस्य खलु गणे सप्त संग्रहस्थानानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-आचार्योपाध्यायो गणे आज्ञां वा धारणां वा सम्यक् प्रयोक्ता भवति, एवं यथा पञ्चमस्थाने यावत् आचार्योपाध्यायो गणे आपृच्छयचारी चापि भवति, नो अनापृच्छयचारी चापि भवति। आचार्योपाध्यायो गणे अनुत्पन्नानि उपकरणानि सम्यक् उत्पादयिता भवति। आचार्योपाध्यायो गणे पूर्वोत्पन्नानि उपकरणानि सम्यक् संरक्षिता, संगोपिता भवति नो असम्यक् संरक्षिता संगोपिता भवति। आचार्योपाध्यायस्य खलु गणे सप्त असंग्रहस्थानानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-आचार्योपाध्यायो गणे आज्ञां वा धारणां वा नो सम्यक् प्रयोक्ता भवति, एवं यावत् उपकरणानां नो सम्यक् संरक्षिता संगोपिता भवति ॥ सू० ४ ॥

टीका—'आयरिय उवज्झायस्स' इत्यादि—

आचार्योपाध्यायस्य-आचार्यश्चासौ उपाध्यायश्चेति कर्मधारयः, आचार्यश्च उपाध्यायश्चेति समाहारो वा, तस्य तथाभूतस्य-गणे=गच्छे संग्रहस्थानानि-

---

इस ऊपरके सूत्रमें योनिका संग्रह कहा गया है, इस कारण संग्रहके प्रकरणसे अब सूत्रकार संग्रह सूत्रका कथन करते हैं—

"आयरिय उवज्झायस्स णं गणंसि सत्त संगहट्ठाणा पण्णत्ता" इत्यादि। सूत्र ४॥

आचार्य एवं उपाध्यायके गणमें सात संग्रहस्थान कहे गये हैं। यहां आचार्योपाध्यायमें आचार्य रूप उपाध्याय अथवा आचार्य एवं उपाध्याय ऐसा अर्थ लिया गया है, आचार्यरूप उपाध्याय जब ऐसा लिया जाता है, तब तो वहां कर्मधारय समास हो जाता है, और जब आचार्य और उपाध्याय ऐसा अर्थ लिया जाता है, तब वहां समाहार द्वन्द्व समास हो जाता है, ज्ञानादिकोंका अथवा शिष्योंका जो संचय

ઉપરના સૂત્રમાં યોનિના સંગ્રહનું પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યું. આ સંગ્રહ પદથી સૂચિત થતાં સંગ્રહસૂત્રનું હવે સૂત્રકાર કથન કરે છે.

"आयरिय उवज्झायस्स णं गणंसि सत्त संगहट्ठाणा पण्णत्ता" ઇત્યાદિ—

આચાર્ય અને ઉપાધ્યાયના ગણમાં સાત સંગ્રહસ્થાન કહ્યાં છે. અહીં આચાર્યોપાધ્યાય પદને અર્થ આચાર્ય રૂપ ઉપાધ્યાય અથવા આચાર્ય અને ઉપાધ્યાય થાય છે જો આ પદનો અર્થ આચાર્ય રૂપ લેવામાં આવે, તો અહીં કર્મધારય સમાસ બને છે. પણ જો આચાર્ય અને ઉપાધ્યાય, આ અર્થ લેવામાં આવે, તો સમાહાર દ્વન્દ્વ સમાસ થાય છે. જ્ઞાનાદિકોનો અથવા શિષ્યોનો જે સંચય છે તેને સંગ્રહ કહે છે. તે સંગ્રહના સાત સ્થાન નીચે પ્રમાણે છે—

संग्रहः=ज्ञानादीनां शिष्याणां वा संचयः, तस्य स्थानानि सप्त प्रज्ञप्तानि, तद्यथा- आचार्योपाध्यायो गणे आज्ञां=' हे मुने ! भवतेदं विधेयम् ' इति विधिरूपां, धारणां=' नेदं विधेयम् ' इति निषेधरूपां वा सम्यक् यथौचित्येन प्रयोक्ता= प्रवर्त्तको भवति ? । एवं करणे शिष्यसंग्रहो ज्ञानादिसंग्रहश्च भवति, अन्यथा गण- ध्वंस एव भवति । उक्तं च—

" जहि नत्थि सारणा वारणा पडिचोयणा य गच्छम्मि ।
सो उ अगच्छो गच्छो, मोत्तव्वो संजमत्थीहिं " ॥ १ ॥

छाया—यत्र नास्ति स्मारणा वारणा प्रतिनोदना च गच्छे ।
स तु अगच्छो गच्छो मोक्तव्यः संयमार्थिभिः ॥ १ ॥ इति ।

अयं भावः-यत्र गच्छे स्मरणा=विस्मृते क्वचित् कर्त्तव्ये ' भवतेदं न कृतम् ' इत्येवं रूपा, वारणा=कस्मिंश्चिदकर्तव्ये प्रवृत्तस्य ' भवतेदं न कर्तव्यम् ' इत्येवं-

है, वह संग्रह है, इस संग्रहके सात स्थान इस प्रकारसे हैं-जब आचार्य या उपाध्याय अपने गणमें-गच्छमें-हे मुने ! तुम्हें यह करना चाहिये इस प्रकारकी विधिरूप आज्ञाका अथवा हे मुने ! तुम्हें यह नहीं करना चाहिये इस प्रकारकी विधिरूप आज्ञाका यथोचित रूपसे प्रयोक्ता- प्रवर्तक होता है, तब वह शिष्य संग्रह करनेवाला और ज्ञानादिका संग्रह करनेवाला होता है, यदि वह अपने गणमें इस प्रकारकी आज्ञा और धारणाका प्रवर्तक नहीं होता है, तो उसके गणका विनाशही हो जाता है कहा भी है " जहि नत्थि सारणा " इत्यादि—

जिस गणमें स्मारणा-किसी कर्तव्यके भूल जाने पर आपने यह नहीं किया इस प्रकारकी भूले हुए कर्त्तव्यको याद दिलानेवाली प्रणाली-

(१) જે આચાર્ય પોતાના ગણુમાં ઉચિત રૂપે આજ્ઞાના પ્રયોક્તા (પ્રવર્તક) હોય છે, તેઓ શિષ્યોના સમૂહાયની વૃદ્ધિ કરવાને અને જ્ઞાના-દિનો સંગ્રહ કરવાને સમર્થ બને છે. ' હે મુને ! તમારે આ પ્રમાણે કરવું જોઈએ, " આ પ્રકારની વિધિ રૂપ આજ્ઞાના પ્રવર્તક અથવા " હે મુનિ ! તમારે આ પ્રમાણે ન કરવું જોઈએ, " આ પ્રકારની ધારણાના પ્રવર્તક આચાર્ય પોતાના ગણુમાં સાધુઓનો સમુદાય વધારનારા અને જ્ઞાનની વૃદ્ધિ કરનારા હોય છે. પરન્તુ જે આચાર્ય પોતાના ગચ્છમાં આ પ્રકારની આજ્ઞા અને ધારણાના પ્રવર્તક હોતા નથી, તેમના ગણુનો વિનાશ જ થાય છે.

કહ્યું પણ છે કે " जहि नत्थि सारणा " ઈત્યાદિ—

જે ગણુમાં સ્મારણા-કોઈ કર્તવ્ય બજાવવાનું ભૂલી જનાર શિષ્યને " તમે આ કર્યું નહીં-આ કર્તવ્ય બજાવવાનું તમે ભૂલી ગયા, " આ પ્રકા-

रूपा निषेधना, प्रतिनोदना=असकृत्स्खलितादौ-' धिक् ते जन्म ' इत्यादि निष्ठुरवाक्यैर्गाढतरप्रेरणा च नास्ति स तु गच्छः अगच्छो भवति। अत एव संयमार्थिभिः स गच्छो मोक्तव्यः=परित्याज्य इति ॥ १ ॥

एवं यथा पञ्चमस्थाने=पञ्चमस्थानकस्य प्रथमोद्देशे उक्तं, तथैवात्रापि वक्तव्यं यावत्-(२-३-४) आचार्योपाध्यायो गणे आपृच्छ्यचारी चापि भवति, नो अनापृच्छ्यचारी चापि भवतीति। तत्र यावत्पदेन-त्रीणि स्थानानि पञ्चम-स्थानोक्तानि संग्राह्याणीति तान्याह-आचार्योपाध्यायः खलु गणे यथारात्निक-

वारणा-किसी अकर्त्तव्यमें प्रवृत्त हुएको तुम्हें यह नहीं करना चाहिये" इस प्रकारसे निषेध करनेकी पद्धति, और प्रतिनोदना-बार २ गल्ती करने पर " तेरे जन्मको धिक्कार है " इत्यादि रूप निष्ठुर वाक्योंसे प्रताड़ना नहीं है, ऐसा गच्छ अगच्छ हो जाता है, और संयमार्थी पुरुषों द्वारा, वह गच्छ परित्याज्य हो जाता है ।१।

इस तरहसे जैसा पंचम स्थानमें-पंचम स्थानकके प्रथम उद्देशकमें कथन किया गया है, वैसाही यहां पर भी कथन कर लेना चाहिये यावत् (२-३-४) आचार्योपाध्याय गणमें आपृच्छ्यचारी-पूंछकर बाहर जानेके योग्य होता है, अनापृच्छ्यचारी होता है, यहां यावत् शब्दसे पंचम स्थानोक्त ३ स्थान ग्रहण किये गये हैं। जो इस प्रकारसे हैं-जो आचार्य उपाध्याय अपने गणमें पर्यायज्येष्ठ अनुसार कृतिकर्मका

રની ભૂલાઈ ગયેલા કર્તવ્યને યાદ કરાવનારી પ્રણાલી, અને કોઈ અકર્તવ્યમાં પ્રવૃત્ત થયેલાને " તમારે આવું કરવું જોઈએ નહીં " આ પ્રકારના નિષેધ રૂપ વારણા કરવાની પ્રણાલી, તથા પ્રતિનોદના-વારંવાર ભૂલ કરનારને " ધિક્કાર છે તને " ઇત્યાદિ કઠોર (નિષ્ઠુર વાકયો વડે તેને ઠપકો આપવાની પ્રણાલી નથી એવા ગચ્છનો વિનાશ થઈ જાય તે ગચ્છ ખરા અર્થમાં ગચ્છ કહેવાને યોગ્ય નહીં રહેવાને કારણે સંયમાર્થી પુરુષો દ્વારા પરિત્યાજ્ય બની જાય છે. । ૧ ।

આ પ્રકારે જેવું પાંચમાં સ્થાનકના પહેલા ઉદ્દેશામાં કથન કરવામાં આવ્યું છે, એવું જ કથન અહીં પણ ગ્રહણ કરવું જોઈએ તે કથન અહીં કયાં સુધી ગ્રહણ કરવાનું છે તે નીચે દર્શાવવામાં આવ્યું છે—

" આચાર્યોપાધ્યાય ગણમાં આપૃચ્છ્યચારી-પૂછીને બહાર ગમન (વિહાર) કરનારા હોવા જોઈએ " અહીં સુધીના કથન દ્વારા ત્યાં ત્રણ સ્થાનોનું કથન થયું છે. પાંચમાં સ્થાનકમાં પ્રતિપાદિત તે ત્રણ સ્થાનો નીચે પ્રમાણે છે—

तया कृतिकर्म सम्यक् प्रयोक्ता भवति १, आचार्योपाध्यायो गणे यानि श्रुतपर्यवजातानि धारयति तानि काले काले सम्यक् अनुप्रवाचयिता भवति २, आचार्योपाध्यायो गणे ग्लानशैक्षवैयावृत्त्यं सम्यक् अभ्युत्थाता भवति ३। अत्र-मूलोक्तप्रथमस्थानसंमेलनेन जातानि चत्वारि ४। अथ पञ्चममाह-आचार्योपाध्यायो गणे आपृच्छचारी चापि भवति नो अनापृच्छ्यचारी चापि भवति। व्याख्या सुगमा।

नवरम्-'गणे आपृच्छ्यचारी' इति यदुक्तम्, तत्र-गणशब्देन साधु-सङ्घो ग्राह्यस्तेन गणे=साधुसङ्घे इत्यर्थः, ततोऽत्र-आपृच्छनं साधुसङ्घस्य बोध्यम्।

सम्यक् प्रयोक्ता होता है, वह तथा जितने श्रुत पर्यवजात हैं-उन्हें धारण करनेवाला जो आचार्योपाध्याय उन्हें समय २ पर अपने शिष्योंको सिखाता है, वह २ तथा जो आचार्योपाध्याय अपने गणमें ग्लान शैक्षकी वैयावृत्ति सम्यक् प्रकारसे करने करानेवाला होता है, वह शिष्य संग्रह और ज्ञानादिका संग्रह करनेवाला होता है, इस प्रकारके इन तीन स्थानोंको और मूलोक्त (मूलमें कहे हुवे) प्रथम स्थानको मिलाकर ये ४ स्थान हो जाते हैं। तथा-" आचार्योपाध्यायो गणे आपृच्छ्य चारी " इत्यादि रूप यह पांचवां स्थान है, यहां पर जो " आपृच्छ्यचारी " ऐसा कहा है, सो यहां गण शब्दसे साधु संघ ग्राह्य है, अतः " साधुसंघसे पूछना " ऐसा इसका अर्थ होता है,

---

(૧) જે આચાર્ય અને ઉપાધ્યાય પોતના ગણુમાં પર્યાય જ્યેષ્ઠના અનુસાર કૃતિકર્મના (પર્યાય જ્યેષ્ઠ સાધુઓને લઘુપર્યાયવાળા સાધુઓ દ્વારા વન્દના અપાવવાના) સમ્યક્ પ્રયોક્તા (પ્રવર્તક) હોય છે, તેઓ શિષ્યસંગ્રહ અને જ્ઞાનાદિનો સંગ્રહ કરનારા હોય છે. (૨) જે આચાર્ય પોતાના શિષ્યોને સમય સમય પર શ્રુતનું અધ્યયન, પુનરાવર્તન આદિ કરાવે છે, તે શિષ્યસંગ્રહ અને જ્ઞાનાદિનો સંગ્રહ કરનાર હોય છે (૩) જે આચાર્યોપાધ્યાય પોતાના ગણુના ગ્લાન (બિમાર), શૈક્ષ (નવદીક્ષિત) આદિનું વૈયાવૃત્ય સારી રીતે કરતા કરાવતા હોય છે, તેઓ શિષ્યસંગ્રહ અને જ્ઞાનાદિનો સંગ્રહ કરનાર હોય છે. આ ત્રણ સ્થાન અને મૂલસૂત્રોક્ત એક સ્થાન મળીને ચાર સ્થાન અહીં સુધીમાં પ્રકટ કરવામાં આવ્યાં છે. હવે પાંચમું સ્થાન પ્રકટ કરવામાં આવે છે—" आचार्योपाध्यायो गणे आपृच्छ्यचारी ", ઇત્યાદિ—

આ સૂત્રપાઠમાં ' ગણુ ' પદ સાધુસંઘના અર્થમાં વપરાયું છે. " સાધુ સંઘને પૂછવું, " આ પ્રકારનો તેનો અર્થ થાય છે.

अथ-षष्ठं संग्रहस्थानम्-आचार्योपाध्यायो गणे अनुत्पन्नानि=अलब्धानि उपकरणानि=वस्त्रपात्रादीनि सम्यक्=एषणादि शुद्धया उत्पादयिता=उपार्जको भवतीति ६। सप्तमं तु-आचार्योपाध्यायो गणे पूर्वोत्पन्नानि=पूर्वकालोत्पादितानि उपकरणानि=वस्त्रपात्रादीनि सम्यक् संरक्षिता=प्रयत्नतो रक्षणकर्त्ता, संगोपिता वा भवति, न तु असम्यक् संरक्षिता संगोपिता भवतीति ७। एतद्वैपरीत्येन आचार्योपाध्यायस्य सप्त असङ्ग्रहस्थानानि विज्ञेयानि। एतदेव सूचयितुमाह—

" आयरिय उवज्झायस्स णं गणंसि सत्त असंगहट्ठाणा पण्णत्ता " इत्यादि। व्याख्याऽस्य संग्रहस्थानवैपरीत्येन बोध्येति ॥ सू० ४ ॥

छठा स्थान इस प्रकारसे है—" आयरियउवज्झाए गणंसि अणुप्पन्नाइं " इत्यादि-जो आचार्य उपाध्याय गणमें अलब्ध उपकरणोंका-वस्त्र पात्रादिकोंका-एषणा शुद्धिसे उपार्जक होता है, वह आचार्य शिष्यका संग्राहक और ज्ञानादिका संग्राहक होता है।

सातवां स्थान इस प्रकारसे है-" आयरियउवज्झाए " इत्यादि-जो आचार्योपाध्याय पूर्वकालोत्पादित वस्त्र पात्रादि उपकरणोंका प्रयत्नपूर्वक रक्षण करता होता है, असम्यक् रूपसे उनका रक्षण करनेवाला नहीं होता है, ऐसा वह आचार्योपाध्याय शिष्यका संग्राहक और ज्ञानादिकोंका संग्राहक होता है, इन सातों संग्रह स्थानोंसे विपरीत जो स्थान हैं-वे सात असंग्रह स्थान हैं। यही बात " आयरिय उवज्झायस्स णं गणंसि सत्त असंगहट्ठाणा पण्णत्ता " इस सूत्रपाठ द्वारा प्रकट की गई है, यहांके पदोंकी व्याख्या संग्रहस्थान गत पदोंकी व्याख्यासे विपरीत होती है, ऐसा जानना चाहिये ॥ सूत्र ४ ॥

છઠ્ઠું સ્થાન—" आयरियउवज्झाए गणंसि अणुप्पन्नाइं " ઇત્યાદિ—જે આચાર્ય અલબ્ધ ઉપકરણોના (વસ્ત્રપાત્રાદિકના) એષણા શુદ્ધિપૂર્વક ઉપાર્જક હોય છે, તેઓ શિષ્યનો તથા જ્ઞાનાદિનો સંગ્રહ કરી શકે છે.

સાતમું સ્થાન—" आयरियउवज्झाए " ઇત્યાદિ—જે આચાર્યોપાધ્યાય પૂર્વકાલોત્પાદિત વસ્ત્ર, પાત્રાદિ રૂપ ઉપકરણોનું પ્રયત્નપૂર્વક રક્ષણ કરનારા હોય છે, તેઓ શિષ્યોનો અને જ્ઞાનાદિનો સંગ્રહ કરી શકે છે સંગ્રહના આ સાત સ્થાનો કરતાં જે વિપરીત પ્રકારના સ્થાનો છે, તેમને અસંગ્રહના અથવા ગણના વિનાશનાં સ્થાનો સમજવા જોઈએ. એ જ વાત " आयरियउवज्झायस्स णं गणंसि सत्त असंगहट्ठाणा पण्णत्ता " આ સૂત્રપાઠ દ્વારા પ્રકટ કરવામાં આવી છે. સંગ્રહના સ્થાનો કરતાં અસંગ્રહનાં સ્થાનો વિપરીત હોવાથી સંગ્રહના સ્થાનોનાં પદોની વ્યાખ્યા કરતાં અસંગ્રહના સ્થાનોનાં પદોની વ્યાખ્યા વિપરીત સમજવી. ॥ સૂ. ૪ ॥

अनन्तरसूत्रे 'आज्ञादिकं न सम्यक् प्रयोक्ता भवति' इत्युक्तम् । आज्ञा च पिण्डैषणादिविषयेति पिण्डैषणादीनि निरूपयति—

मूलम्—सत्त पिंडेसणाओ पण्णत्ताओ । सत्त पाणेसणाओ पण्णत्ताओ । सत्त उग्गहपडिमाओ पण्णत्ताओ । सत्त सत्तिक्कया पण्णत्ता । सत्तमहज्झयणा पण्णत्ता । सत्त सत्तमिया णं भिक्खुपडिमा एकूणपण्णयाए राइंदिएहिं एगेण य छण्णउएणं भिक्खासएणं अहासुत्तं अहाकप्पं अहामग्गं अहातच्चं अहासम्मं काएणं फासिया पालिया सोहिया तीरिया किट्टिया आराहिया आणाए अणुपालियावि भवइ ॥ सू० ५ ॥

छाया—सप्त पिण्डैषणाः प्रज्ञप्ताः । सप्त पानैषणाः प्रज्ञप्ताः । सप्त अवग्रहप्रतिमाः प्रज्ञप्ताः । सप्त सप्तैककानि प्रज्ञप्तानि । सप्त महाध्ययनानि प्रज्ञप्तानि । सप्त सप्तमिका खलु भिक्षुप्रतिमा एकोनपञ्चाशता रात्रिन्दिवैः एकेन च षण्णवत्या भिक्षाशतेन यथासूत्रं यथाकल्पं यथामार्गं यथातत्त्वं यथासाम्यं कायेन स्पृष्टा पालिता शोधिता तीरिता कीर्त्तिता आराधिता आज्ञया अनुपालिताऽपि भवति ॥ सू० ५ ॥

टीका—'सत्त पिंडेसणाओ' इत्यादि—

पिण्डैषणाः—पिण्डः=भक्तम्, तस्य एषणाः=ग्रहणप्रकाराः सप्त प्रज्ञप्ताः । ताश्च—

इस ऊपरके सूत्रमें अन्तमें "आज्ञादिकका वह सम्यक् प्रयोक्ता नहीं होता है" ऐसा कहा गया है, सो आज्ञा पिण्डैषणादि विषयवाली होती है—अतः अब सूत्रकार पिण्डैषणादिकका निरूपण करते हैं—

"सत्त पिंडेसणाओ पण्णत्ताओ" इत्यादि । सूत्र ५ ॥

टीकार्थ—पिण्डैषणा—पिण्ड—आहारको जो एषणा हैं—ग्रहण करनेके प्रकार हैं—वे पिण्डैषणा हैं—ये सात प्रकारकी कही गई हैं, जैसे—असं-

---

ઉપરનાં સૂત્રને અન્તે એવું લખાણું આવ્યું છે કે "તેઓ આજ્ઞાદિકના સમ્યક્ પ્રયોક્તા (પ્રવર્તક) હોતા નથી" આજ્ઞા પિંડૈષણાદિ વિષયવાળી હોય છે, તેથી હવે સૂત્રકાર પિંડૈષણાદિકનું નિરૂપણ કરે છે.

"सत्त पिंडेसणाओ पण्णत्ताओ" ઇત્યાદિ—

ટીકાર્થ—પિંડૈષણા એટલે પિંડને (આહારને) ગ્રહણ કરવાનો પ્રકાર. આહારને ગ્રહણ કરવાના પ્રકાર રૂપ પિંડૈષણાના નીચે પ્રમાણે સાત પ્રકાર કહ્યા છે—

असंसृष्टा १ संसृष्टा २ उध्धृता ३, अल्पलेपिका ४ अवगृहीता ५ प्रगृहीता ६ उज्झितधर्मा ७ चेति । तत्र-यत्र पिण्डैषणायां हस्तः पात्रं चेति द्वयमप्यसंसृष्टम् सा-असंसृष्टा=अखरण्टितहस्तपात्रा भर्जितचणकादि ग्रहणरूपेत्यर्थः ।१। संसृष्टा=खरण्टितहस्तपात्रा-कृशरादि ग्रहणरूपेत्यर्थः ॥ २ ॥ उध्धृता=गृहस्थेन स्वार्थं स्थाल्यादौ भोजनजातमुद्धृतम् तदेवंविधं भोजनजातम् संसृष्टहस्ततः असंसृष्टपात्रतः संसृष्टपात्रतः असंसृष्टहस्ततो वा गृह्णतः । अस्याः संसृष्टाऽसंसृ-

सृष्ट १ संसृष्ट २ उद्धृत ३ अल्पलेपिका ४, अवगृहीत ५ प्रगृहीत ६, और उज्झितधर्मा ७, जिस पिण्डैषणामें हाथ और पात्र ये दोनों भी असंसृष्ट होते हैं ऐसी वह पिण्डैषणा असंसृष्टपिण्डैषणा है, ऐसी यह पिण्डैषणा भुंजे हुए चनों आदिको ग्रहण करने रूप होती है-क्योंकि ये न हाथमें चिपकते हैं, और न पात्रमेंही चिपकते हैं । जिस पिण्डैषणामें हाथ और पात्र दोनों खरण्टित-संसक्त हो जाते है, ऐसी वह पिण्डैषणा संसृष्ट पिण्डैषणा है, यह पिण्डैषणा कृशरादि-खीचडी आदिको ग्रहण करनेरूप होती है । उद्धृत-गृहस्थने अपने निमित्त जिस भाजनसे भोजनको स्थाली आदिमें निकाल कर रख लिया हो ऐसे भोजनको संसृष्ट हाथसे, असंसृष्ट पात्र अथवा संसृष्ट पात्रसे असंसृष्ट हाथसे लेनेवालेकी यह उद्धृत पिण्डैषणा होती है, इसका दूसरा नाम संसृष्टासंसृष्ट पिण्डैषणा भी है । स्वल्पलेप युक्त ऐसी जो पुराने

(१) અસંસૃષ્ટ, (૨) સંસૃષ્ટ, (૩) ઉદ્ધૃત, (૪) અલ્પલેપિકા, (૫) અવગૃહીત, (૬) પ્રગૃહીત અને (૭) ઉજ્ઝિતધર્મા.

જે પિંડૈષણામાં હાથ અને પાત્ર, એ બન્ને અસંસૃષ્ટ (ખરડાયા વિનાના) રહે છે, તે પ્રકારની પિંડૈષણાને અસંસૃષ્ટ પિંડૈષણા કહે છે. પલાળેલા ચણા આદિને ગ્રહણ કરવા રૂપ આ પિંડૈષણા હોય છે, કારણ કે તે હાથ સાથે પણ ચોંટી જતાં નથી અને પાત્ર સાથે પણ ચોંટી જતાં નથી. જે પિંડૈષણામાં હાથ અને પાત્ર, બન્ને સંસક્ત-ખરડાયેલા થાય છે, તે પ્રકારની પિંડૈષણાને અસંસૃષ્ટ પિંડૈષણા કહે છે. તે પિંડૈષણા ખીચડી આદિને ગ્રહણ કરવા રૂપ હોય છે, કારણ કે તે વસ્તુ હાથ અને પાત્ર સાથે ચોંટી જાય છે.

ઉદ્ધૃત પિંડૈષણા—ગૃહસ્થે પોતાને નિમિત્તે જે ભોજનને કોઇ ભોજન (પાત્ર) માંથી થાળી આદિમાં કાઢેલું હોય એવા ભોજનને સંસૃષ્ટ હાથ વડે અથવા અસંસૃષ્ટ હાથ વડે અને અસંસૃષ્ટ પાત્ર વડે અથવા સંસૃષ્ટ પાત્ર વડે ગ્રહણ કરવા રૂપ જે પિંડૈષણા છે તેને ઉદ્ધૃત પિંડૈષણા કહે છે. તેનું બીજું નામ સંસૃષ્ટાસંસૃષ્ટ પિંડૈષણા પણ છે.

ष्टेत्यपि नाम ॥ ३ ॥ अल्पलेपिका-स्वल्पलेपयुक्ता पुराणशालिभक्तग्रहणरूपा ॥ ४ ॥ अवगृहीता-भोजनकाले शरावादिषु यद् भोजनजातमुपहृतं ततो गृह्णतः ॥ ५ ॥ प्रगृहीता-भोजनवेलायां दातुमभ्युद्यतेन हस्तादिना गृहीतं यद् भोजनजातं, भोक्तुं वा हस्तादिना गृहीतं, ततो गृह्णतः । ६ । तथा-उज्झितधर्मा-यद् भोजनजातं नीरसतया परित्यागयोग्यमन्तप्रान्तलक्षणं यदन्ये द्विपदादयो नाभिलषन्ति, तद् गृह्णतः, ॥ ७ ॥ इति । पानैषणाऽपि एवमेव सप्तविधा विज्ञेया ।

शालीके चावलोंके भातको ग्रहण करनेरूप पिण्डैषणा है, वह अल्पलेपिका पिण्डैषणा है । भोजन कालमें शराव-सकोरा-आदिमें जो भोजन आदि निकाल कर रखा गया हो उसे ग्रहण करनेवालेकी यह अवगृहीता पिण्डैषणा होती है, भोजनके समय देनेको अभ्युद्यत हुए हाथ आदिसे जो भोजन गृहीत हुआ होता है, वह अथवा खानेके लिये हाथ आदिसे गृहीत हुआ जो भोजन है, उसे लेनेवालेकी यह प्रगृहीत पिण्डैषणा होती है । उज्झित धर्मा-जो भोजन नीरस होनेसे परित्याग करनेके योग्य होता है, ऐसे उस अन्त प्रान्तरूप भोजनको कि जिसे दूसरे द्विपद आदि भी नहीं चाहते हैं, ग्रहण करनेवालेकी यह उज्झित धर्मा पिण्डैषणा होती है । पानैषणा भी इसी प्रकारसे सात प्रकारकी है, चतुर्थ पानैषणामें नानात्व है, अनेक प्रकारता है,

અલ્પલેપિકા પિંડૈષણા—સ્વલ્પ લેપયુક્ત એવા જૂની શાલીના (એક પ્રકારની ડાંગરના) ભાતને ગ્રહણ કરવા રૂપ જે પિંડૈષણા છે તેને અલ્પલેપિકા પિંડૈષણા કહે છે.

અવગૃહીતા પિંડૈષણા—ભોજનકાળે શકોરા આદિમાં જે ભોજનાદિને કાઢી રાખવામાં આવેલ હોય તેને ગ્રહણ કરનારની પિંડૈષણાને અવગૃહીતા પિંડૈષણા કહે છે.

પ્રગૃહીત પિંડૈષણા—ભોજનને સમયે દેવાને માટે (અર્પણ કરવાને માટે) ઊંચા થયેલા હાથ આદિ વડે જે ભોજન ગ્રહણ કરવામાં આવે છે તેને, અથવા ખાવાને માટે હાથ આદિ વડે જે ભોજન ગ્રહણ કરવામાં આવેલું હોય તેને ગ્રહણ કરનારની પિંડૈષણાને પ્રગૃહીત પિંડૈષણા કહે છે.

ઉજ્ઝિતધર્મા પિંડૈષણા—જે ભોજન નીરસ હોવાને લીધે નાખી દેવાને યોગ્ય હોય છે અને જે ભોજન ગ્રહણ કરવાની બીજા કોઇ પણ માણસને ઇચ્છા થતી નથી એવા અન્ત પ્રાન્ત રૂપ ભોજનને ગ્રહણ કરનાર સાધુની પિંડૈષણાને ઉજ્ઝિતધર્મા પિંડૈષણા કહે છે. પાનૈષણા પણ એ જ પ્રમાણે સાત

नवरं–चतुर्थी पानैषणायां नानात्वं अल्पलेपं तु तत्र अवस्रावणसौवीरकादि विज्ञेयमिति ७।

अथ प्रतिमायाः सप्तविधत्वमाह–'उग्गहपडिमा' इत्यादि। अवग्रहप्रतिमाः–अवगृह्यते=आश्रीयते इत्यवग्रहो वसतिः, तस्य–प्रतिमाः=अभिग्रहाः सप्त प्रज्ञप्ताः। तत्र–'अहमेवंविधमेव उपाश्रयं ग्रहीष्ये, नान्यद्विधम्' इत्येवं पूर्वम् अभिगृह्य य उपाश्रयं गृह्णाति तस्य प्रथमा अवग्रहप्रतिमा ॥ १ ॥ तथा–"अहमेषां साधूनां कृतेऽवग्रहं ग्रहीष्यामि, अन्यैश्च अवग्रहे गृहीते सति स्वयं वत्स्यामि' एवमभिग्रहवतो द्वितीया। इयं तु गच्छान्तर्गतानां सांभोगिकानाम् असांभोगिकानां चोद्यत-

---

अल्प लेपता तो वहां अवस्रावण–ओसामण–सौवीरक आदिरूप है, ऐसा जानना चाहिये।७।

अब सूत्रकार प्रतिमाकी सप्तविधता कहते हैं–"उग्गहपडिमा" इत्यादि–अवग्रह प्रतिमा–"अवगृह्यते आश्रीयते इति अवग्रहः" इस व्युत्पतिके अनुसार साधुजन जिसे ठहरनेके लिये अपना आश्रयभूत बनाते हैं, वह अवग्रह है, ऐसा वह अवग्रह वसतिरूप होता है, इस अवग्रहकी जो प्रतिमा है–अभिग्रह है–वह अवग्रह प्रतिमा है, इनमें "मैं इस प्रकारकेही उपाश्रयमें ठहरूंगा–और किसी प्रकारके उपाश्रयमें नहीं ठहरूंगा" इस प्रकारका पहिले अभिग्रह करके जो संकल्पित उपाश्रयमें ठहरता है, उसको पहिली अवग्रह प्रतिमा होती है।१।

પ્રકારની કહી છે. ચતુર્થ પાનૈષણામાં અનેક પ્રકારતા છે. અલ્પલેપતા તો ત્યાં ઓસામણ આદિ રૂપ સમજવી.

હવે સૂત્રકાર પ્રતિમાના સાત પ્રકારનું નિરૂપણ કરે છે––

"उग्गहपडिमा" ઇત્યાદિ––

"अवगृह्यते–आश्रीयते इति अवग्रहः" આ વ્યુત્પત્તિ અનુસાર સાધુ પોતાને રહેવાને માટે જે સ્થાનનો આશ્રય લે છે તેને અવગ્રહ કહે છે તે અવગ્રહ વસતિ ઉપાશ્રય રૂપ હોય છે આ અવગ્રહ વિષયક જે પ્રતિમા (અભિગ્રહ) છે તેને અવગ્રહ પ્રતિમા કહે છે. હવે તેના સાત પ્રકારો પ્રકટ કરવામાં આવે છે—

"હું આ પ્રકારના ઉપાશ્રયમાં જ રહીશ–બીજા કોઈ પણ પ્રકારના ઉપાશ્રયમાં નહીં રહુ," આ પ્રકારનો અભિગ્રહ પહેલાં કરીને જે સાધુ સંકલ્પિત ઉપાશ્રયમાં આશ્રય સ્વીકારે છે, તેના આ પ્રકારના અવગ્રહ અભિગ્રહને પહેલા પ્રકારની અવગ્રહ પ્રતિમા કહે છે.

विहारिणां भवति, यतस्ते परस्परार्थं याचन्ते इति ॥ २ ॥ तथा-'अन्यार्थमवग्रहं याचिष्ये, अन्यावगृहीतायां च वसतौ न निवत्स्यामि' इति तृतीया । इयमवग्रहप्रतिमा तु गच्छप्रतिबद्धा-प्रतिबद्धानां यथालन्दिकानां मध्ये गच्छप्रतिबद्धानां यथालन्दिकानां भवति । ते हि वाचनावशिष्टं सूत्रजातं गुरोः सकाशादध्येतुमनसो गुरोरर्थे वसतिं याचन्ते इति ॥ ३ ॥ तथा-'अहमन्यार्थमवग्रहं न ग्रहीष्यामि, अन्येनावगृहीतेऽवग्रहे तु स्थास्यामि' इति चतुर्थी । इयन्तु गच्छ-

तथा—मैं "इन साधुओंके लिये अवग्रह ग्रहण करूंगा तथा अन्योंके द्वारा अवग्रह गृहीत होने पर मैं स्वयं भी उसमें रहूंगा" इस प्रकारके अभिग्रहवालेके द्वितीया अवग्रह प्रतिमा होती है, यह द्वितीय अभिग्रह प्रतिमा गच्छान्तर्गत सांभोगिकोंको और असांभोगिकोंके कि जो उद्यत विहारी होते हैं-होती है, क्योंकि वे परस्परके लिये मांगते है २ अन्यके लिये मैं अवग्रह मांगूगा और अन्यके द्वारा अवगृहीत वसति उपाश्रयमें मैं रहूंगा नहीं" ऐसी यह तृतीय अवग्रह प्रतिमा है, यह अवग्रह प्रतिमा गच्छ प्रतिबद्धोंके अप्रतिबद्धोंके तथा यथालन्दिकोंके मध्यमें गच्छ प्रतिबद्ध यथालन्दिकोंके होती है। क्योंकि वे वाचनासे बाकी बचे हुए सूत्रको गुरुसे पढनेकी अभिलाषावाले होते हुए गुरुके लिये वसतिकी याचना करते है । ३ ।

"मैं अन्यके लिये अवग्रह ग्रहण नहीं करूंगा परन्तु अन्यसे अवगृहीत अवग्रह होगा तो उसमें ठहर जाऊंगा" ऐसी यह चौथी

"હું આ સાધુઓને માટે અવગ્રહ (આશ્રયસ્થાન) ગ્રહણ કરીશ. તથા અન્યના દ્વારા અવગ્રહ ગૃહીત થયા પછી હું પણ તેમાં રહીશ" આ પ્રકારનો અભિગ્રહ ધારણ કરીને સંકલ્પિત ઉપાશ્રયમાં આશ્રય સ્વીકારનાર સાધુના આ અવગ્રહ અભિગ્રહને બીજા પ્રકારની અવગ્રહ પ્રતિમા કહે છે. આ બીજા પ્રકારની અવગ્રહ પ્રતિમાનો ઉદ્યત વિહારી ગચ્છાન્તર્ગત સાંભોગિકોમાં અને અસાંભોગિકોમાં સદ્‌ભાવ હોય છે, કારણ કે તેઓ પરસ્પરને માટે માંગે છે.

"અન્યને માટે હું અવગ્રહ (આશ્રયસ્થાન) માગીશ અને અન્યના દ્વારા અવગૃહીત (ઉપાશ્રયમાં) હું રહીશ" આ પ્રકારની ત્રીજી અવગ્રહ પ્રતિમા છે. આ પ્રતિમાનો સદ્‌ભાવ ગચ્છપ્રતિબદ્ધોમાં, અપ્રતિબદ્ધોમાં યથાલન્દિકોમાંના ગચ્છપ્રતિબદ્ધ યથાલન્દિકોમાં હોય છે, કારણ કે જે સૂત્રોની વાચના બાકી રહી ગઈ હોય તે સૂત્રોને ગુરુ પાસેથી શીખવાની અભિલાષાવાળા તેઓ ગુરુને માટે વસતિ (ઉપાશ્રય) ની યાચના કરે છે.

स्थितानामभ्युद्यतविहारिणां जिनकल्पिकत्वप्राप्तये परिकर्मकुर्वतां भवतीति ॥ ४ ॥ तथा–'अहं स्वार्थमवग्रहं याचिष्ये, न चान्येषां द्वित्रिचतुः पञ्चाना'–मिति पञ्चमी। इयं तु जिनकल्पिकस्य बोध्येति ॥ ५ ॥ तथा–'यदीयमवग्रहमहं ग्रहीष्यामि, तदीयमेव चेत् तृणादिसंस्तारकं भवेत् तदा तद् ग्रहीष्यामि। अन्यथा उत्कुडुको वा निषण्णो वा रात्रिं नेष्यामीति षष्ठी। इयमपि जिनकल्पिकादेरेवेति ॥ ६ ॥ तथा–सप्तम्यपि षष्ठीवदेव बोध्या। नवरं यथाऽऽस्तृतमेव शिलादिकं ग्रहीष्यामि नान्यदिति ॥ ७ ॥ इति–सप्तावग्रहप्रतिमाः ॥ ७ ॥

अवग्रह प्रतिमा है। यह अवग्रह प्रतिमा है, यह अवग्रह प्रतिमा गच्छस्थित अभ्युद्यत विहारी साधुओंके कि जो जिनकल्पिकत्वकी प्राप्तिके लिये परिकर्म करते हैं होती है, तथा–मैं अपने लिये अवग्रहकी याचना करूंगा अन्य–दो–तीन–चार और पांचके लिये अवग्रहकी याचना नहीं करूंगा ऐसी यह पांचवी अवग्रह प्रतिमा है, यह पांचवी प्रतिमा जिनकल्पिकके होती हैं ऐसा जानना चाहिये मैं जिसका अवग्रह ग्रहण करूंगा उसीका यदि तृणादि संस्तारक होगा तो उसे लूंगा–नहीं तो मैं उत्कुडुक होकर या बैठकरही रात्रिको व्यतीत करूंगा ऐसी यह छठी प्रतिमा है, यह प्रतिमा भी जिनकल्पिक आदिकेही होती है। तथा सप्तमी प्रतिमा भी छठी प्रतिमाके जैसीही होती है। सिर्फ इसमें यही अन्तर है, कि इसमें वह प्रतिमाधारी साधु "यथास्तृत शिलादिकही मैं ग्रहण करूंगा" अन्यका नहीं ऐसा अभिग्रह करता है। इस प्रका-

---

"અન્યને માટે હું અવગ્રહ ગ્રહણ કરીશ નહીં, પરન્તુ અન્ય દ્વારા અવગૃહીત અવગ્રહ (ઉપાશ્રય) હશે તો તેમાં હું રહીશ," આ પ્રકારની ચોથી અવગ્રહ પ્રતિમા હોય છે. ગચ્છસ્થિત અભ્યુદ્યત વિહારી સાધુઓ કે જે જિનકલ્પિકત્વની પ્રાપ્તિને માટે પરિકર્મ કરતા હોય છે, તે સાધુઓમાં આ પ્રકારની અવગ્રહ પ્રતિમાનો સદ્‌ભાવ હોય છે.

"હું મારે માટે અવગ્રહની યાચના કરીશ, અન્ય બે, ત્રણ, ચાર અને પાંચને માટે અવગ્રહની યાચના નહીં કરૂ" આ પ્રકારની પાંચમી અવગ્રહ પ્રતિમા છે, આ અવગ્રહ પ્રતિમાનો જિનકલ્પિકમાં સદ્‌ભાવ હોય છે. "જે ગૃહસ્થ પાસેથી અવગ્રહ–આશ્રયસ્થાન ગ્રહણ કરીશ તેની પાસેથી જ જો તૃણાદિ સંસ્તારક મળશે તો લઇશ, નહીં તો બેઠાં બેઠાં જ રાત્રિ વ્યતીત કરીશ," આ પ્રકારની છઠ્ઠી અવગ્રહ પ્રતિમા સમજવી, જિનકલ્પિક આદિમાં આ પ્રતિમાનો સદ્‌ભાવ હોય છે. સાતમી પ્રતિમા પણ છઠ્ઠી પ્રતિમા જેવી જ છે, ફક્ત છઠ્ઠી કરતાં સાતમી પ્રતિમામાં આટલો જ તફાવત છે–સાતમી પ્રતિમા-

तथा-सप्तैककाः-उद्देशवर्जितत्वेन एकसरतया एककाः-आचाराङ्गद्वितीयश्रुतस्कन्धस्थिता द्वितीयचूडारूपा अध्ययनविशेषाः, ते च समुदायतः सप्तेति कृत्वा सप्तैकका उच्यन्ते, तेषामेकोऽपि सप्तैकक इति व्यपदिश्यते, तथैव संकेतितत्वात् । ते च सप्तैककाः सप्तसंख्यकाः प्रज्ञप्ताः । तथाहि-प्रथमः स्थानसप्तैककः १, द्वितीयो नैषेधिकी सप्तैककः २, तृतीय उच्चारप्रस्रवणविधिसप्तैककः ३, चतुर्थः शब्दसप्तैककः ४, पञ्चमो रूपसप्तैककः ५, षष्ठः परक्रियासप्तैककः ६, सप्तमः-अन्योऽक्रियासप्तैककः ७ इति । तथा-महाध्ययनानि-महान्ति=सूत्रकृताङ्गस्य प्रथमश्रुतस्कन्धापेक्षया विशालानि च तानि अध्ययनानि=द्वितीयश्रुतस्कन्धस्य प्रकरणविशेषाश्चेति, तानि च-पुण्डरीकं १, क्रियास्थानम्

रूकी ये सात अवग्रह प्रतिमाएँ हैं । तथा सप्तैकक—आचाराङ्गके द्वितीय श्रुतस्कन्धमें स्थित द्वितीय चूडारूप अध्ययन विशेष सप्तैकक सात कहे गये हैं, ये समुदायसे सात होते हैं, ऐसा समझकर ही इन्हें सप्तैकक कहा गया है, इसलिये इनमेंका जो एकभी एकक होगा वह भी सप्तैकक ऐसा कहलावेगा । पहिला स्थान सप्तैकक है १ द्वितीय नैषेधिकी सप्तैकक है २ तृतीय उच्चार प्रस्रवण विधि सप्तैकक है ३, चतुर्थ शब्द सप्तैकक है ४-पांचवा रूप सप्तैकक है ५. छठा परिक्रिया सप्तैकक है ६ और सातवां अन्योन्य क्रिया सप्तैकक है ७ तथा महाध्ययन—सूत्रकृताङ्गके प्रथम श्रुतस्कन्धकी अपेक्षासे द्वितीय श्रुतस्कन्धके जो प्रकरण विशेषरूप अध्ययन हैं वे महाध्ययन हैं—ये महाध्ययन भी सात हैं—इनमें प्रथम महाध्ययन पुण्डरीक है १ द्वितीय महाध्ययन

ધારી સાધુ “યથાસ્તૃત શિલાદિક જ હું ગ્રહણ કરીશ,” અન્યનો નહીં, એવો અભિગ્રહ કરે છે. આ પ્રકારની સાત અવગ્રહ પ્રતિમાઓ હોય છે.

તથા સપ્તૈકક–આચારાંગના બીજા શ્રુત સ્કન્ધમાં સ્થિત દ્વિતીય ચૂડારૂપ અધ્યયન વિશેષ સાત કહ્યાં છે તે સમુદાયની અપેક્ષાએ સાત હોય છે, એવું સમજીને જ તેમને સપ્તૈકક કહ્યાં છે, અને તે કારણે તેમનામાંથી જે એક પણ એકક હશે તેને પણ સપ્તૈકક કહેવામાં આવશે. (૧) પહેલું સ્થાન સપ્તૈકક છે (૨) બીજું નૈષેધિકી સપ્તૈકક છે. (૩) ત્રીજું ઉચ્ચાર પ્રસ્રવણ વિધિ સપ્તૈકક છે. (૪) ચોથું શબ્દ સપ્તૈકક છે. (૫) પાંચમું રૂપ સપ્તૈકક છે. (૬) છઠ્ઠું પરક્રિયા સપ્તૈકક છે અને સાતમું અન્યોન્ય ક્રિયા સપ્તૈકક છે.

તથા મહાધ્યયન પણ સાત છે. સૂત્રકૃતાંગના પહેલા શ્રુતસ્કન્ધ કરતાં મોટા એવા બીજા શ્રુતસ્કન્ધના પ્રકરણ વિશેષરૂપ જે અધ્યયનો છે તેમને મહાધ્યયન કહે છે. તે મહાધ્યયન પણ નીચે પ્રમાણે સાત જ છે-તેમાં પહેલું

२, आहारपरिज्ञा ३, प्रत्याख्यानक्रिया ४, अनाचारश्रुतम् ५, आर्द्रकुमारीयं ६, नालन्दीयं ७ चेति सप्तसंख्यकानि प्रज्ञप्तानि। तथा–सप्तसप्तमिका–सप्त= सप्तसंख्यकानि सप्तमानि दिनानि यस्यां सा–सप्तमिः दिनसप्तकैर्निष्पद्यमाना

क्रियास्थान है २ तृतीय महाध्ययन आहार परिज्ञा है ३ चौथा महाध्ययन प्रत्याख्यान क्रिया है ४. पांचवां महाध्ययन अनाचार श्रुत है, छठा महाध्ययन आर्द्रकुमारका है ६ और सातवां महाध्ययन नालन्दीय है, तथा–सात सप्ताहमें ४९ दिनरातमें–समाप्त होनेवाली भिक्षु प्रतिमा है, यह भिक्षु प्रतिमा ४९ दिनरात तक आराधित होती है, इसमें प्रथम सप्ताहमें एक दत्ति आहारकी एक दत्ति पानीकी ग्रहण की जाती है, द्वितीय सप्ताहमें भक्तकी दो पानीकी दो दत्तियां प्रतिदिन ग्रहण की जाती हैं, तृतीय सप्ताहमें प्रतिदिन भक्तकी ३–और पानकी ३ दत्तियां ग्रहण की जाती हैं, चतुर्थ सप्ताहमें प्रतिदिन भक्तकी ४ दत्तियां और पानकी ४ दत्तियां ग्रहण की जाती हैं, पंचम सप्ताहमें प्रतिदिन भक्तकी ५ दत्तियां और पानकी ५ दत्तियां ग्रहण की जाती हैं, छट्ठे सप्ताहमें भक्तकी ६ दत्तियां और पानकी ६ दत्तियां प्रतिदिन ग्रहण की जाती हैं, और ७ वें सप्ताहमें भक्तकी ७ दत्तियां और पानकी

મહાધ્યયન પુંડરીક છે, બીજું મહાધ્યયન ક્રિયાસ્થાન છે, ત્રીજું મહાધ્યયન આહારપરિજ્ઞા છે, ચોથું મહાધ્યયન પ્રત્યાખ્યાન ક્રિયા છે, પાંચમું મહાધ્યયન અનાચારશ્રુત છે, છઠું મહાધ્યયન આર્દ્રકુમારનું છે અને સાતમું મહાધ્યયન નાલન્દીય છે.

સાત સપ્તાહમાં–૪૯ દિનરાતમાં સમાપ્ત થનારી ભિક્ષુપ્રતિમા છે. ૪૯ દિનરાત પર્યન્ત આ ભિક્ષુપ્રતિમાની આરાધના કરાય છે આ ભિક્ષુપ્રતિમાની આરાધના કરનાર સાધુ પ્રથમ સપ્તાહમાં પ્રતિદિન એક દત્તિ આહારની અને એક દત્તિ પાણીની ગ્રહણ કરે છે. બીજા સપ્તાહમાં પ્રતિદિન બે દત્તિ આહારની અને બે દત્તિ પાણીની ગ્રહણ કરાય છે. ત્રીજા સપ્તાહમાં ત્રણ દત્તિ આહારની અને ત્રણ દત્તિ પાણીની ગ્રહણ કરાય છે. ચોથા સપ્તાહમાં પ્રતિદિન ચાર દત્તિ આહારની અને ચાર દત્તિ પાણીની ગ્રહણ કરાય છે. પાંચમાં સપ્તાહમાં પ્રતિદિન આહારની પાંચ દત્તિ અને પાણીની પાંચ દત્તિ ગ્રહણ કરાય છે. છઠ્ઠા સપ્તાહમાં પ્રતિદિન આહારની ૬ દત્તિ અને પાણીની ૬ દત્તિ ગ્રહણ કરાય છે સાતમા સપ્તાહમાં પ્રતિદિન આહારની સાત દત્તી અને

खलु भिक्षुप्रतिमा एकोनपञ्चाशता रात्रिन्दिवैः=अहोरात्रैः, एकेन च षण्णवत्या भिक्षागतेन षण्णवत्यधिकैकशतसंख्याभि र्दत्तिरूपाभिः भिक्षाभिः यथासूत्रम्=सूत्र निर्दिष्टविध्यनुसारं, यथाकल्पम्-कल्पं=स्थविरादिकल्पमतिक्रम्य, कल्पानुसारमित्यर्थः, यथामार्गम्-ज्ञान-दर्शनचारित्रलक्षणमोक्षमार्गानतिक्रमेण क्षयोपशमभावानतिक्रमेण वा, यथातत्त्वं-तत्त्वानतिक्रमेण 'याथातथ्यम्' इतिच्छाया पक्षे-सत्यानुसार, यथासाम्यम्-समभावमनतिक्रम्य-सुष्ठुप्रकारेण कर्मनिर्जरणभावनयेत्यर्थः, कायेन=शरीरेण न पुनरभिलापमात्रेण स्पृष्टा=समुचितकाले सविधिग्रहणात्, पालिता=वारंवारमुपयोगेन तत्परत्वात्, शोधिता-पारणकदिने गुर्वादि

७-दत्तियां ग्रहण की जाती हैं। इस प्रकार इन सब भक्तकी दत्तियोंकी संख्या १९६ हो जाती हैं। इसी प्रकारसे पानककी दत्तियोंके सम्बन्धमें भी जानना चाहिये इस प्रकारसे प्रवर्द्धमान भक्तपान दत्तियोंसे यह भिक्षु प्रतिमा ४९ रातदिनमें पूर्ण होती है "यथा सूत्रं यथा कल्पं" इत्यादि क्रिया विशेषणोंसे सूत्रकारने यह प्रकट किया है, कि इस भिक्षा प्रतिमाको यथासूत्र में पालन करनेकी जैसी विधि प्रकट की गई है, उसी विधिके अनुसार यथाकल्प-स्थविर आदि कल्पके अनुसार, यथामार्ग-ज्ञान, दर्शन, एवं चारित्ररूप मुक्तिमार्गके अनुसार, अथवा अपने क्षयोपशम भावके अनुसार यथातत्त्व-तत्त्वके अनुसार-अथवा याथा तथ्य-सत्यके अनुसार-और यथासाम्य-समताभावके अनुसार जो भिक्षु शरीरसे-मनोरथसे नहीं-अभिलाषा मात्रसे नहीं स्पृष्ट करता है-समुचित कालमें विधिपूर्वक ग्रहण करता है, पालता है-

પાણીની સાત દત્તિ ગ્રહણ કરાય છે. આ પ્રકારે ૪૯ રાત દિવસમાં આહારની કુલ ૧૯૬ દત્તિયો થાય છે. એ જ પ્રમાણે પાણીની દત્તિયો વિષે પણ સમજવું. આ પ્રકારે આહાર પાણીની દત્તિઓમાં પ્રત્યેક સપ્તાહમાં વધારો કરતાં કરતાં ૪૯ દિનરાત પર્યન્ત આ ભિક્ષુપ્રતિમાની આરાધના કરાય છે.

"યથાસૂત્રં યથાકલ્પં" ઇત્યાદિ—

ક્રિયાવિશેષણોના પ્રયોગ દ્વારા સૂત્રકારે એ વાત પ્રકટ કરી છે કે— સૂત્રમાં ભિક્ષુપ્રતિમાના પાલનની જે પ્રકારની વિધિ બતાવવામાં આવી છે તે વિધિ પ્રમાણે, યથામાર્ગ-જ્ઞાન, દર્શન અને ચારિત્ર રૂપ મુક્તિમાર્ગ અનુસાર અથવા પોતાના ક્ષયોપશમભાવ અનુસાર, યથાતત્ત્વ-તત્ત્વ અનુસાર અથવા તથા તથ્ય (સત્યને અનુસાર), યથાસામ્ય-સમતાભાવને અનુસરીને, આ પ્રકારે જે ભિક્ષુ શરીર વડે-મનોરથ વડે નહીં (અભિલાષા માત્ર વડે નહીં) સ્પૃષ્ટ કરે છે, સમુચિતકાળમાં વિધિપૂર્વક ગ્રહણ કરે છે, પાલન કરે છે,

दत्तावशिष्ट भोजनात् अतीचारपङ्कक्षालनाद् वा, तीरिता=पूर्णेऽपि तदवधौ स्वल्पकालावस्थानेन, कीर्तिता=पारणादिने 'अयमयं च अभिग्रहविशेषकृत आसीत् अस्यां प्रतिमायां स चाराधित एवाधुना पारितप्रतिमोऽह' मिति गुरुसमक्षं कीर्तनात् एवं च=आराधिता=एभिः समस्तैः प्रकारैर्निष्ठां नीता, अत एव आज्ञया=जिनाज्ञया अनुपालिताऽपि भवतीति। अत्र–भक्तदत्तयः षण्णवत्यधिकैकशत (१९६) संख्यका उक्ताः। तद्ग्रहणप्रकारश्चैवम्, तथाहि प्रथमे सप्तके प्रतिदिनमेकैकाभिक्षादत्तिर्गृह्यते १, द्वितीयसप्तके तु प्रतिदिनं दत्तिद्वयम् २। एवम् उत्तरोत्तरं प्रतिसप्तकमेकैकदत्तिवृद्धया सप्तमे सप्तके प्रतिदिनं सप्त दत्तयो गृह्यन्ते ७। एवं पानकदत्ति विषयेऽपि बोध्यम्। इत्थं प्रवर्द्धमानभक्तपानदत्तिभिरियं भिक्षुप्रतिमा एकोनपञ्चाशता रात्रिन्दिवैः पूर्णा भवति। अत्र यद्यपि

इसकी उपयोगपूर्वक बार २ आराधना करता है, शोधित करता है–पारणाके दिन गुर्वादि द्वारा प्रदत्त अवशिष्ट भोजनसे अथवा–अतिचार रूप कीचडके प्रक्षालनसे इसकी शुद्धि करता है, उसे तीरित करता है–जितनी अवधि उसके पालन करनेकी है, उस अवधि तक उसे पालन कर समाप्त कर देता है–कीर्तित करता है–पारणाके दिन यह अभिग्रह विशेष मैंने धारण किया था सो वह अब इस प्रतिमामें अच्छी तरहसे आराधित हो चुका है–अतः मैं अब इस प्रतिमाका पूर्णरूपसे आराधक बन चुका हूं, इस प्रकारसे गुरुके समक्ष प्रकट करता है, इस प्रकारसे पालित हुई, शोधित हुई, तीरित हुई, कीर्तित हुई, और आराधित हुई, यह भिक्षु प्रतिमा सर्वज्ञ भगवान्की आज्ञाके अनुसार समस्त प्रकारोंसे पालित हुई मानी जाती है, यद्यपि यहां भक्त पानकी संख्या

ઉપયોગપૂર્વક તેની વારંવાર આરાધના કરે છે, શોધિત કરે છે–પારણાને દિવસે ગુર્વાદિક દ્વારા પ્રદત્ત અવશિષ્ટ ભોજન વડે અથવા અતિચાર રૂપ કીચડના પ્રક્ષાલન દ્વારા તેની શુદ્ધિ કરે છે, તેને તીરિત કરે છે–તે પ્રતિમાની આરાધના કરવાની જેટલા સમયની અવધિ હોય છે, એટલા સમય સુધી તેનું પાલન કરીને તેને પૂર્ણ કરીનાખે છે, કીર્તિત કરે છે–" પારણાને દિવસે આ પ્રકારનો અભિગ્રહ મેં ધારણ કર્યો હતો અને હવે આ પ્રતિમા મારા દ્વારા સમ્યગ્ રીતે આરાધિત થઇ ચુકી છે, તેથી હવે હું આ પ્રતિમાનો પૂર્ણરૂપે આરાધક બની ચુકયો છુ." આ પ્રમાણે ગુરુની સમક્ષ પ્રકટ કરે છે, આ પ્રમાણે પાલિત થયેલી, શોધિત થયેલી, કીર્તિત થયેલી અને આરાધિત થયેલી ભિક્ષુપ્રતિમાને સર્વજ્ઞ ભગવાનની આજ્ઞા અનુસાર સમસ્ત પ્રકારે પાલિત થયેલી માનવામાં આવે છે. જો કે ભક્તપાનની કુલ દત્તિઓની સંખ્યા

भक्तस्य पानस्य सङ्कलिता दत्तयो द्विनवत्यधिकत्रिशत (३९२) संख्यका भवन्ति, तथापि पानस्य दत्तिसंख्याया अविवक्षयाऽत्र षण्णवत्यधिकैकशत संख्यका दत्तयः प्रोक्ता इति ॥ सू० ५ ॥

सप्त सप्तमिकादिप्रतिमाश्च पृथिव्यामेव क्रियन्ते इति पृथ्वीं प्रतिपादयितुमाह—

मूलम्—अहेलोगे णं सत्त पुढवीओ पण्णत्ताओ। सत्त घणोदही पण्णत्ता। सत्त घणवाया सत्त तणुवाया पण्णत्ता। सत्त उवासंतरा पण्णत्ता। एएसु णं सत्तसु उवासंतरेसु सत्त तणुवाया पइट्टिया। एएसु णं सत्तसु तणुवाएसु सत्त घणवाया पइट्ठिया। एएसु णं सत्तसु घणवाएसु सत्त घणोदही पइट्ठिया। एएसु णं सत्तसु घणोदहीसु पिंडलगपिहुलसंठाणसंठियाओ सत्त पुढवीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—पढमा जाव सत्तमा। एयासि णं सत्तण्हं, पुढवीणं सत्त णामधेज्जा पण्णत्ता तं जहा—घम्मा १ वंसा २ सेला ३ अंजणा ४ रिट्ठा ५ मघा ६ माघवई ७। एयासि णं सत्तण्हं पुढवीणं सत्त गोत्ता पण्णत्ता तं जहा—रयणप्पभा १, सक्करप्पभा २, वालुअप्पभा ३, पंकप्पभा ४, धूमप्पभा ५, तमा ६, तमतमा ७ ॥ सू० ६ ॥

छाया—अधोलोके खलु सप्त पृथिव्यः प्रज्ञप्ताः। सप्त घनोदधयः प्रज्ञप्ताः। सप्त घनवाताः सप्त तनुवाताः प्रज्ञप्ताः। सप्त अवकाशान्तराणि प्रज्ञप्तानि। एतेषु खलु सप्तसु अवकाशान्तरेषु सप्त तनुवाताः प्रतिष्ठिताः। एतेषु खलु सप्तसु तनुवातेषु सप्त घनवाताः प्रतिष्ठिताः। एतेषु खलु सप्तसु घनवातेषु

लित दत्तियां ३९२ होती हैं, परन्तु पानकी दत्तियोंकी संख्या यहां अविवक्षित होनेके कारण १९६ दत्तियांही कही गई हैं ॥ सू० ५ ॥

અહીં ૩૯૨ થાય છે, પરન્તુ પનની (પાણીની) દત્તિઓની સંખ્યા અહીં અવિવક્ષિત હોવાથી કુલ દત્તિઓ ૧૯૬ કહેવામાં આવી છે. ॥ સૂ. ૫ ॥

सप्त घनोदधयः प्रतिष्ठिताः । एतेषु खलु सप्तसु घनोदधिषु पिण्डलक पृथुल संस्थानसंस्थिताः सप्त पृथिव्यः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-प्रथमा यावत् सप्तमी । एतासां खलु सप्तानां पृथिवीनां सप्त नामधेयानि प्रज्ञप्तानि तद्यथा-घर्मा १ वंशा २, शैला ३, अञ्जना ४, रिष्टा ५, मघा ६, माघवती ७। एतासां खलु सप्तानां पृथिवीनां सप्त गोत्राणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-रत्नप्रभा १, शर्कराप्रभा २, वालुकाप्रभा ३, पङ्कप्रभा ४, धूमप्रभा ५, तमा ६, तमस्तमा ७ ॥सू० ६॥

टीका—' अहोलोगे ' इत्यादि—

अधोलोके खलु सप्त पृथिव्यः सन्ति । ' अधोलोके ' इत्युक्तम् , तेनोर्ध्वलोकेऽपि पृथिवीसत्ता गम्यते । तत्र च ' ईषत्प्राग्भारा ' नामैकैव पृथिवी बोध्या । ननु प्रथमपृथिव्या उपरिभागस्थितानि नव शतानि योजनानि तिर्यग्लोके स्थितानि, कथं तर्हि अधोलोके सप्त पृथिव्य उक्ताः ?-इति चेत्, आह-देशोनापि पृथिवी पृथिव्येव भवति न तु पृथिवीतो भिन्ना । अत एव-अधोलोके सप्त

सप्त सप्तमिका आदि प्रतिमाएँ पृथिवी परही रहकर की जाती हैं-अतः अब सूत्रकार पृथिवीका प्रतिपादन करते हैं—

" अहेलोगेणं सत्त पुढवीओ पण्णत्ताओ " इत्यादि सू० ६ ॥

टीकार्थ—अधोलोकमें सात पृथिवियां कही गई हैं, इस कथनसे ऊर्ध्वलोकमें भी पृथिवी की कही गई जानी जाती है, वहां " ईषत्प्राग्भारा " इस नामकी एकही पृथिवी है.

शंका—प्रथम पृथिवीके उपरि भागमें स्थित नौसौ योजन तिर्यग्लोकमें स्थितहैं, तो फिर आपने अधोलोकमें सात पृथिवियां कैसे कहीं ?

उत्तर—कुछ कम भी पृथिवी पृथिवीही होती है, वह पृथिवीसे भिन्न नहीं होती है, इसीलिये अधोलोकमें सात पृथिवियां कही गई

સપ્ત સપ્તમિકા આદિ પ્રતિમાઓની આરાધના પૃથ્વી પર રહીને જ કરવામાં આવે છે, તેથી હવે સૂત્રકાર પૃથ્વીનું પ્રતિપાદન કરે છે.

" अहे लोगेणं पुढवीओ पण्णत्ताओ " ઇત્યાદિ—

ટીકાર્થ–અધોલોકમાં સાત પૃથ્વીઓ આવેલી છે. આ કથન દ્વારા ઉર્ધ્વલોકમાં પણ પૃથ્વી હોવી જોઇએ એવું સૂચિત થાય છે. ઉર્ધ્વલોકમાં " ઇષત્પ્રાગ્ભારા " નામની એક જ પૃથ્વી છે.

શંકા—પહેલી પૃથ્વીનો ઉપરનો ભાગ તિર્યગ્લોકમાં ૯૦૦ યોજન સુધી વ્યાપ્ત હોવા છતાં પણ આપ શા કારણે એવું કહો છો કે " અધોલોકમાં સાત પૃથ્વીઓ છે ? "

ઉત્તર—પૃથ્વીનો અમુક ભાગ ઓછો થવા છતાં પણ બાકીનો ભાગ પૃથ્વી રૂપ જ ગણાય છે-પ્રથમ પૃથ્વીનો જેટલો ભાગ અધોલોકમાં છે તેટલો

पृथिव्य उक्ता इति न कश्चिद्दोष इति। एतासां वाहल्यप्रमाणमेवं विज्ञेयम्, तथाहि–प्रथमपृथिव्या वाहल्यं अशीतिसहस्राधिकैकलक्षयोजनात्मकम् १, द्वितीयायाः पृथिव्या द्वात्रिंशत्सहस्राधिकैकलक्षयोजनप्रमाणम् २, तृतीयस्याः पृथिव्याः अष्टाविंशतिसहस्राधिकैकलक्षयोजनानि ३, चतुर्थ्याः त्रिंशतिसहस्राधिकैकलक्षयोजनानि ४, पञ्चम्याः अष्टादशसहस्राधिकैकलक्षयोजनानि ५, षष्ठयाः षोडशसहस्राधिकैकलक्षयोजनानि ६, सप्तम्यास्तु पृथिव्याअष्टसहस्राधिकैकलक्षयोजनानि ७। तदुक्तम्—

" पढमा असीइ सहस्सा १, वत्तीसा २ अट्ठवीस ३ वीसा ४ य।
अट्ठार ५ सोल ६ अट्ठ ७ य, सहस्स लक्खोवरिं कुज्जा ॥ १ ॥ "

छाया—प्रथमायाम् अशीति सहस्राणि, द्वात्रिंशत्, अष्टाविंशतिः त्रिंशतिश्च।
अष्टादश षोडश अष्ट च सहस्राणि लक्षोपरि कुर्यात् ॥१॥ इति।

हैं। इस प्रकारके कथनमें कोई दोष नहीं हैं। प्रथम पृथिवीकी मोटाई १ लाख ८० हजार योजन की है, द्वितीय पृथिवीकी मोटाई १ लाख बत्तीस हजार योजनकी है, तीसरीकी मोटाई १ लाख २८ हजार योजनकी है, चौथीकी मोटाई १ लाख २० हजार योजनकी है, पांचवींकी मोटाई १ लाख १८ हजार योजनकी है, छठीकी मोटाई १ लाख १६ हजार योजनकी है, और सातवींकी मोटाई १ लाख आठ हजार योजनकी है, कहा भी है—" पढमा असीइ सहस्सा " इत्यादि।

१ लाखके ऊपर ८० हजार योजन करनेसे प्रथम पृथिवीकी मोटाई आ जाती है, इसी तरहसे आगे भी जानना चाहिये।

ભાગ પણ પૃથ્વી રૂપ જ ગણી શકાય. તેથી અધોલોકમાં સાત પૃથ્વીઓ છે, એમ કહેવામાં કોઇ દોષ નથી

પહેલી પૃથ્વીનો (રત્નપ્રભા પૃથ્વીનો) વિસ્તાર ઊંડાઇની અપેક્ષાએ એક લાખ એંશી હજાર યોજનનો છે. બીજી પૃથ્વીનો (શર્કરાપ્રભાનો) વિસ્તાર ૧ લાખ ૩૨ હજાર યોજનનો, ત્રીજીનો ૧ લાખ ૨૮ હજાર યોજનનો, ચોથીનો ૧ લાખ ૨૦ હજાર યોજનનો, પાંચમીનો ૧ લાખ ૧૮ હજાર યોજનનો, છઠ્ઠીનો ૧ લાખ ૧૬ હજાર યોજનનો અને સાતમીનો ૧ લાખ ૮ હજાર યોજનનો વિસ્તાર છે. કહ્યું પણ છે કે:

" પઢમા અસીઇ સહસ્સા " ઇત્યાદિ—

પહેલી પૃથ્વીનો વિસ્તાર એક લાખ એંશી હજાર યોજનનો છે બીજી પૃથ્વીઓનો જે વિસ્તાર આ ગાથામાં બતાવવામાં આવ્યો છે તેમનું કથન ઉપર કહ્યા પ્રમાણે જ સમજવું.

अधोलोकाधिकारात्तद्गतवस्तूनि प्रतिपादयितुमाह–' सत्त घणोदही ' इत्यादि । व्याख्या स्पष्टा । नवरं–घनोदधीनां बाहल्यं विंशतिसहस्रयोजनानि, घनवातानां तनुवातानाम् अवकाशान्तराणाम्–पृथिवीद्वयान्तरालस्थितानामाकाशखण्डानां तु असंख्यातसहस्रयोजनानि । तदुक्तम्—

" सव्वे वीससहस्सा, बाहल्लेणं घणोदही नेया ।
सेसाणं तु असंखा, अहो अहो जाव सत्तमिया " ॥ १ ॥

छाया—सर्वे विंशति सहस्राणि बाहल्येन घनोदधयो ज्ञेयाः ।
शेषाणां तु असंख्यानि अधोऽधो यावत् सप्तम्याम् ॥ १ ॥ इति ।

एताः सप्तापि पृथिव्यः पिण्डलकपृथुलसंस्थानसंस्थिताः पिण्डलकं=पटलकं–चङ्गेरीति भाषाप्रसिद्धं पुष्पभाजनमिति यावत्, तद्वत् पृथुलसंस्थानेन=पृथु-

---

अब सूत्रकार अधोलोकके अधिकारको लेकर अधोलोकगत वस्तुओंका प्रतिपादन करनेके निमित्त " सत्तघणोदही " इत्यादि रूपसे प्रतिपादन करते हैं—

सात घनोदधि हैं, इन घनोदधियोंकी मोटाई बराबर अर्थात् २०–२० हजार योजनकी है, एवं जो सात घनवात तथा सात तनुवातवलय हैं, और अवकाशान्तर हैं–पृथिवीद्वयके अन्तरालमें स्थित आकाशखण्ड हैं–सो ये सब मोटाईमें असंख्यात हजार योजनके हैं कहा भी है–

" सव्वे वीससहस्सा " इत्यादि—

इस गाथाका अर्थ पूर्वोक्त जैसाही है । ये सातों पृथिवियाँ यद्यपि मोटाईमें पहिली भूमिकी अपेक्षा दूसरी, दूसरीकी अपेक्षा तीसरी–

અધોલોકનો અધિકાર ચાલી રહ્યો છે, તેથી હવે સૂત્રકાર અધોલોકગત વસ્તુઓનું " सत्त घणोदही " ઇત્યાદિ સૂત્રો દ્વારા પ્રતિપાદન કરે છે.

સાત ઘનોદધિઓ છે. તે સાતેનો વિસ્તાર ૨૦–૨૦ હજાર યોજનનો કહ્યો છે. જે સાત ઘનવાત તથા જે સાત તનુવાતવલય છે અને જે સાત અવકાશાન્તર–બે પૃથ્વીની વચ્ચે આવેલા આકાશખંડો છે, તેમનો વિસ્તાર પણ અસંખ્યાત હજાર યોજનનો કહ્યો છે. કહ્યું પણ છે કે " सव्वे वीससहस्सा " ઇત્યાદિ. આ ગાથાનો અર્થ ઉપર કહ્યા પ્રમાણે જ સમજવો.

જો કે ઊંડાણની અપેક્ષાએ પહેલી કરતાં બીજી ઓછી ઊંડાઇવાળી અને એ પ્રમાણે પછીની પ્રત્યેક પણ એક બીજી કરતાં ઓછી ઊંડાઇવાળી છે,

लाकारेण संस्थिताः विज्ञेयाः। यद्वा-'छत्रातिच्छत्र-संस्थानसंस्थिताः' इति पाठः, तत्र-छत्रमतिक्रम्य छत्रं छत्रातिच्छत्रं, तस्य संस्थानम्=आकारः-छत्रस्य अधस्तनो भागो महान्, उपरितनश्च लघुरिति तेन संस्थिताः, अयं भावः-सप्तमीसप्तरज्जुविस्तृता, षष्ठी षड्रज्जुप्रमितेत्येकैकरज्जुहान्या प्रथमा एकरज्जुप्रमाणेति। एतासां नामानि 'घर्मा वंशा शैला'-इत्यादीनि सप्त, तथा-गोत्राणि-

---

इत्यादि रूपसे कम २ मोटाईवाली हैं-फिर विष्कंभ और आयामकी अपेक्षा इनका विस्तार अधिक २ बढता गया है-इसलिये ये पिण्डलक पृथुलसंस्थान संस्थित कही गई हैं। पिंडलक नाम पटलकका है, पटलकको भाषामें चङ्गेरी कहते हैं, यह पुष्पोंको रखनेका एक भाजन विशेष है। इस पटलकका जैसा पृथुल आकार होता है, इसी तरहका इनका आकार है अथवा-छत्राति छत्रके समान इनका संस्थान आकार उत्तरोत्तर पृथु-विस्तीर्ण पृथुतर कहा गया है, छत्रका अधस्तन भाग महान् होता है, और उपरि तन भाग लघु होता है, ऐसाही संस्थान इनका है, तात्पर्य ऐसा है-सप्तमी पृथिवी सात राजूकी विस्तारवाली है, छठी पृथिवी ६ राजू विस्तारवाली है, पांचवी पृथिवी ५ राजू विस्तारवाली है, चौथी पृथिवी ४ राजू विस्तारवाली है, तीसरी पृथिवी ३ राजू विस्तारवाली है, दूसरी पृथिवी २ राजू विस्तारवाली है, और पहिली पृथिवी १ राजू विस्तारवाली है। इनका नाम घर्मा, वंशा, शैला

છતાં પણ વિષ્કંભ અને આયામ (લંબાઈ અને પહોળાઈ) ની અપેક્ષાએ તેમને વિસ્તાર ઉત્તરોત્તર વધતો જ જાય છે. તેથી તેમને "પિંડલક પૃથુ સંસ્થાન સંસ્થિત" કહેવામાં આવી છે. પિંડલક એટલે પટલક, તેને હિન્દીમાં "ચંગેરી" કહે છે. ફુલ ભરવા માટેની વાંસની બનાવેલી ફૂલછાબ માટે અહીં આ શબ્દ વપરાયો છે. તે પટલકને (ફૂલછાબને) જેવો પૃથુલ આકાર હોય છે, એ જ પ્રકારને આ પૃથ્વીઓને આકાર હોય છે. અથવા છત્રાતિછત્રના સમાન તેમને ઉત્તરોત્તર પૃથુ (વિસ્તીર્ણ) અને પૃથુતર કહ્યો છે. છત્રને અધસ્તન ભાગ વીસ્તીર્ણ અને ઉપરિતન ભાગ લઘુ હોય છે. એવું જ સંસ્થાન (આકાર) તે પૃથ્વીઓનું છે. તે કારણે સાતમી પૃથ્વીને વિસ્તાર સૌથી વધારે છે. સાતમી પૃથ્વીને વિસ્તાર સાત રાજૂપ્રમાણ, છઠ્ઠી પૃથ્વીને વિસ્તાર છ રાજૂ પ્રમાણ, પાંચમીને વિસ્તાર પાંચ રાજૂપ્રમાણ, ચોથીને ચાર રાજૂપ્રમાણ, ત્રીજીને ત્રણ રાજૂપ્રમાણ, બીજીને બે રાજૂપ્રમાણ અને પહેલીને એક રાજૂપ્રમાણ વિસ્તાર છે.

'रत्नप्रभा शर्करप्रभा'–इत्यादीनि सप्त। ननु नामगोत्रयोः को भेदः? इति चेत् आह–अन्वर्थं गोत्रं, तद्भिन्नं तु नामेति ॥ सू० ६ ॥

अवकाशान्तराणि च सप्तेति पूर्वमुक्तम्, तेषु च बादरा वायवो विद्यन्ते इति तान् प्ररूपयितुमाह—

मूलम्--सत्तविहा बायरवाउकाइया पण्णत्ता, तं जहा–पाईणवाए १, पडीणवाए २, दाहिणवाए ३, उदीणवाए ४, उड्ढवाए ५, अहोवाए ६, विदिसवाए ७ ॥ सू० ७ ॥

छाया—सप्तविधाः बादरवायुकायिकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–प्राचीनवातः १, प्रतीचीनवातः २, दक्षिणवातः ३, उदीचीनवातः ४, ऊर्ध्ववातः ५ अधोवातः ६, विदिग्वातः ७ ॥ सू० ७ ॥

इत्यादि सात हैं। तथा–रत्नप्रभा शर्करा प्रभा इत्यादि सात गोत्र हैं। अन्वर्थ गोत्र होता है, और इससे भिन्न नाम होता है। सू० ६।

अवकाशान्तर ७ जो कहे हैं, उनमें बादर वायुकाय होते हैं–अतः सूत्रकार उनकी प्ररूपणा करते हैं—

"सत्तविहा बायरवाउकाइया पण्णत्ता" इत्यादि सू० ७॥

टीकार्थ–बादर वायुकायिक सात प्रकारके कहे गये हैं, जैसे–प्राचीन वात (पूर्वका वायु) १ प्रतीचीन वात (पश्चिमका वायु) २ दक्षिण वात ३, उदीचीन वात (उत्तरका वायु) ४, उर्ध्व वात (ऊपरका वायु) ५, अधोवात (नीचेका वायु) ६, और विदिग्वात (विदिशाका वायु) ७, इसकी

તે પૃથ્વીનાં ઘર્મા, વંશા, શૈલા ઇત્યાદિ સાત નામ છે. તથા તેમના રત્નપ્રભા, શર્કરાપ્રભા ઇત્યાદિ સાત ગોત્ર છે. ગોત્ર અન્વર્થ (અર્થ પ્રમાણે) હોય છે અને તેનાથી ભિન્ન નામ હોય છે. ॥ સૂ. ૬ ॥

જે સાત અવકાશાન્તરો કહ્યાં છે, તેમાં બાદર વાયુકાયિકો રહેલાં હોય છે, તેથી હવે સૂત્રકાર તેમની પ્રરૂપણા કરે છે.

"सत्तविहा बायरवाउकाइया पण्णत्ता" ઇત્યાદિ—

ટીકાર્થ–બાદર વાયુકાયિક સાત કહ્યાં છે તે નીચે પ્રમાણે છે—(૧) પ્રાચીનવાત (પૂર્વનો વાયુ), (૨) પ્રતીચીનવાત (પશ્ચિમનો વાયુ), (૩) દક્ષિણવાત, (૪) ઉદીચીનવાત (ઉત્તરનો વાયુ), (૫) ઉર્ધ્વવાત, ઉપરનો વાયુ (૬) અધોવાત (નીચેનો વાયુ), (૭) વિદિગ્વાત (વિદિશાનો વાયુ) આ પદોની વ્યાખ્યા સુગમ છે.

टीका—'सत्तविहा बायरवाउकाइया' इत्यादि—

व्याख्या सुगमा। नवरं—बादरेति विशेषणोपादानं सूक्ष्मनिवृत्त्यर्थम्। तेषां सर्वव्यापित्वात्। इति ॥ सू० ७ ॥

वायवश्च यद्यप्यदृश्यास्तथापि ते संस्थानसम्पन्ना भयसम्पन्नाश्च भवन्तीति संस्थानानि भयानि च सूत्रद्वयेन प्ररूपयति—

मूलम्—सत्त संठाणा पण्णत्ता, तं जहा—दीहे १ रहस्से २ वट्टे ३ तंसे ४ चउरंसे ५ पिहुले ६ परिमंडले ७ ॥ सू० ८ ॥

छाया—सप्त संस्थानानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—दीर्घं १ ह्रस्वं २ वृत्तं ३ त्र्यस्रं ४ चतुरस्रं ५ पृथुलं ६ परिमण्डलम् ७ ॥ सू० ८ ॥

टीका—'सत्तसंठाणा' इत्यादि—

संस्थानानि दीर्घादीनि अन्यत्र व्याख्यातानीति ततोऽवसेयम् ॥ सू० ८ ॥

व्याख्या सुगम है, वायुकायके बादर विशेषणसे सूक्ष्म वायुकायिक सर्वत्र व्यापक होता है ॥ सूत्र ७ ॥

वायुकायिक यद्यपि अदृश्य है—तब भी वे संस्थानसे एवं भयसे युक्त होते हैं, इसलिये अब सूत्रकार संस्थान और भयका कथन दो रूपसे करते हैं—"सत्त संठाणा पण्णत्ता" इत्यादि सूत्र ८ ॥

टीकार्थ—संस्थान सात कहे गये हैं जैसे—दीर्घ संस्थान एक ह्रस्व संस्थान २ वृत्त संस्थान ३ त्र्यस्र संस्थान ४, चतुरस्र संस्थान ५, पृथुल संस्थान ६ और परिमण्डल संस्थान ७ इन दीर्घादिक संस्थानोंका व्याख्यान अन्यत्र किया गया है—अतः वहींसे इन्हें समझ लेना चाहिये। सूत्र "८"

વાયુકાયિકની આગળ બાદર વિશેષણ લગાડીને સૂક્ષ્મ વાયુકાયિકની નિવૃત્તિ કરવામાં આવી છે, કારણ કે સૂક્ષ્મ વાયુકાયિક તો સર્વત્ર વ્યાપેલા છે. ॥ સૂ. ૭ ॥

જો કે વાયુકાયિક અદૃશ્ય છે, છતાં પણ તેઓ સંસ્થાન અને ભયથી યુક્ત હોય છે. તેથી હવે સૂત્રકાર બે સૂત્રો દ્વારા સંસ્થાન અને ભયનું નિરૂપણ કરે છે "सत्त संठाणा पण्णत्ता" ઇત્યાદિ—

ટીકાર્થ–સંસ્થાન (આકાર) સાત પ્રકારના કહ્યા છે—(૧) દીર્ઘ સંસ્થાન, (૨) હ્રસ્વ સંસ્થાન, (૩) વૃત્ત સંસ્થાન, (૪) ત્ર્યસ્ર સંસ્થાન, (૫) ચતુરસ્ર સંસ્થાન (૬) પૃથુલ સંસ્થાન, અને (૭) પરિમંડલ સંસ્થાન

આ દીર્ઘાદિક સંસ્થાનોની વ્યાખ્યા આ ગ્રન્થના અન્ય સ્થાનકોમાં આપવામાં આવી છે, તો ત્યાંથી જ સમજી લેવાની ભલામણ કરવામાં આવે છે. ॥ સૂ. ૮ ॥

तथा—

मूलम्—सत्त भयट्ठाणा पण्णत्ता, तं जहा—इहलोगभए १, परलोगभए २, आदाणभए ३, अकम्हाभए ४, वेयणभए ५, मरणभए ६, असिलोगभए ७ ॥ सू० ९ ॥

छाया—सप्त भयस्थानानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—इहलोकभयं १, परलोकभयम् २, आदानभयम् ३, अकस्माद्भयम् ४, वेदनभयं ५ मरणभयम् ६, अश्लोकभयम् ७ ॥ सू० ९ ॥

टीका—'सत्त भयट्ठाणा' इत्यादि—

भयस्थानानि–भयं=मोहनीयप्रकृतिसमुद्भूतआत्मपरिणामः, तस्य स्थानानि=आश्रयाः सप्त प्रज्ञप्तानि, तद्यथा–इहलोकभयम्–इहलोकः=सजातीयो लोकः, ततो यद् भयं तत्,–सजातीयस्य सजातीयाद् भयमित्यर्थः। यथा–मनुष्याणां मनुष्येभ्यः, तिरश्चां तिर्यग्भ्यः, इत्यादि। १। परलोकभयम्–विजातीयस्य विजा-

"सत्तभयट्ठाणा पण्णत्ता" इत्यादि ॥ सूत्र ९ ॥

टीकार्थ–भयस्थान ७ कहे गये हैं, जैसे–इहलोक भयस्थान १, परलोक भयस्थान २ आदान भयस्थान ३ अकस्माद्भयस्थान ४, आजीवभयस्थान ५, मरणभयस्थान ६ और अश्लोक भयस्थान ७ भय मोहनीय प्रकृतिके उदयसे उत्पन्न हुआ जो आत्मपरिणाम है, वह भय है, उस भयके सात आश्रय (भेद) कहे गये हैं। उनमें जो सजातीयको सजातीयसे भय होता है, वह इहलोक भय है, इहलोकसे यहां सजातीय लोक लिया गया है। जैसे–मनुष्योंको मनुष्यों से भय होता है, तिर्यञ्चोंको तिर्यञ्चोंसे भय होता है इत्यादि १।

"सत्त भयट्ठाणा पण्णत्ता" ઇત્યાદિ—

ટીકાર્થ–સાત પ્રકારનાં ભયસ્થાનો કહ્યાં છે—(૧) ઈહલોક ભયસ્થાન, (૨) પરલોક ભયસ્થાન, (૩) આદાન ભયસ્થાન, (૪) અકસ્માદ્ભયસ્થાન, (૫) આજીવ ભયસ્થાન, (૬) મરણ ભયસ્થાન અને (૭) અશ્લોક ભયસ્થાન.

ભયમોહનીય પ્રકૃતિના ઉદયથી ઉત્પન્ન થયેલું જે આત્મપરિણામ છે તેનું નામ ભય છે.

(૧) ઈહલોક ભય—સજાતીયને સજાતીયનો જે ભય લાગે છે તેને ઈહલોક ભય કહે છે. 'ઇહલોક' પદ દ્વારા અહીં 'સજાતીય લોક' ગૃહીત કરાયેલ છે. જેમકે મનુષ્યોને મનુષ્યોનો ભય હોય છે અને તિર્યંચોને તિર્યંચોનો ભય હોય છે.

तीयाद् भयम्, यथा-मनुष्यस्य तिर्यग्देवादिभ्यः ।२। आदानभयम्-आदीयते= गृह्यते यत्तदादानं धनादिकम्, तद्धेतुकं यच्चौरादिसकाशाद्भयं तत् । ३ । अकस्माद्भयम्-अकस्मादेव=बाह्यनिमित्तानपेक्षं गृहादिष्वेव स्थितस्य रात्र्यादौ यद् भयं तत् ४। ' वेयणं-वेतनं-आजीविका, आजीवभयम्-आजीवो-जीविका तस्मात्तदर्थे वा भयं,-' निर्धनोऽहं दुर्भिक्षादौ कथं प्राणान् धारयिष्यामि ' इति, ' कथं वा मम जीविकासुदृढा भविष्यतीति ५। मरणभयं प्रतीतम् ६। अश्लोकभयम् । अश्लोकः=अकीर्तिः, तस्य भयम् ७। इति ॥ सू० ९ ॥

परलोक भय—विजातीयसे विजातीयको जो भय होता है, वह परलोक भय है, जैसे-मनुष्यको तिर्यञ्चसे या देव आदिसे भय होता है २। आदान भय-धनादिकके निमित्तको लेकर जो चोर आदिसे भय होता है, वह आदान भय है ३। बाह्य निमित्तकी अपेक्षा विना घरआदिमेंही स्थित हुए प्राणीको जो रात्रि आदिमें भय होता है, वह अकस्माद्भय है ४। आजीव भय-आजीव नाम जीविकाका है-इस जीविकासे या इस जीविकाके लिये जो भय होता है, वह आजीव भय है ५। जैसे-मैं निर्धन हूं, दुर्भिक्ष आदिके समयमें कैसे मैं प्राणोंको बचाऊंगा, अथवा-कैसे मेरी आजीविका सुदृढ होगी इत्यादि।

मरण भय—मृत्युका जो भय है, वह मरण भय है ६, अश्लोक नाम अपयश है, इस अकीर्ति होनेका जो भय है, वह अश्लोक भय है ७। सू० ९ ॥

(२) પરલોક ભય—વિજાતીયનો વિજાતીયને જે ભય રહે છે તેને પરલોક ભય કહે છે. જેમકે મનુષ્યોને તિર્યંચોનો અથવા દેવાદિકોનો ભય લાગે છે.

(૩) આદાન ભય—ધનાદિકના વિષયમાં જે ચોરાદિકનો ભય રહે છે તેને આદાન ભય કહે છે.

(૪) અકસ્માદ્ભય—બાહ્ય નિમિત્તોની અપેક્ષા વિના ગૃહાદિમાં રહેલા મનુષ્ય આદિ જીવોને રાત્રિ આદિમાં જે ભય લાગે છે તેને અકસ્માદ્ભય કહે છે.

(૫) આજીવ ભય—આજીવિકા અથવા નિર્વાહના સાધનનું નામ આજીવ છે. આ આજીવિકાના વિષયમાં જે ભય રહે છે તેને આજીવ ભય કહે છે. જેમકે નિર્ધન માણસને એવો ભય રહે છે કે દુષ્કાળ આદિમાં મારી આજીવિકા કેવી રીતે ચલાવી શકીશ !

(૬) મરણ ભય—મૃત્યુનો ભય છે તેને મરણ ભય કહે છે.

(૭) અશ્લોક ભય—અશ્લોક એટલે અપકીર્તિ. પોતાની અપકીર્તિ થવાના ભયને અશ્લોક ભય કહે છે ॥ સૂ. ૯ ॥

भययुक्ताश्च छद्मस्था एव, ते च यैर्ज्ञायन्ते तान्याह—

मूलम्—सत्तहिं ठाणेहिं छउमत्थं जाणेज्जा, तं जहा—पाणे अइवाएत्ता भवइ १, मुसं वइत्ता भवइ २, अदिन्नमादित्ता भवइ ३, सद्दफरिसरसरूवगंधे आसाएत्ता भवइ ४, पूयासक्कारमणुवूहेत्ता भवइ ५, इमं सावज्जं ति पण्णवेत्ता पडिसेवेत्ता भवइ ६, णो जहावाई तहाकारी भवई ७ ॥ सू० १० ॥

छाया—सप्तभिः स्थानैः छद्मस्थं जानीयात्, तद्यथा-प्राणान् अतिपातयिता भवति १, मृषा वदिता भवति २, अदत्तमादाता भवति ३ शब्दस्पर्शरसरूपगन्धान् आस्वादयिता भवति४, पूजासत्कारमनुबृंहयिता भवति५, इदं सावद्यमिति प्रज्ञाप्य प्रतिसेविता भवति ६, नो यथावादी तथाकारी भवति ७॥सू० १०॥

टीका—'सत्तहिं ठाणेहिं' इत्यादि—

सप्तभिः स्थानैः=कारणैः छद्मस्थं जानीयात्—'अयं छद्मस्थः'—इत्यवबुध्येत, तद्यथा—प्राणान्=एकेन्द्रियादीन् अतिपातयिता=उपमर्दिता भवति। प्राणातिपातनादयं छद्मस्थ इत्यनुमीयते। एवमग्रेऽपि मृषावादादिभ्यश्छद्मस्थोऽ-

---

इन भयोंसे युक्त छद्मस्थही होते हैं, ये छद्मस्थ जिन स्थानोंसे जाने जाते हैं-अब सूत्रकार उन स्थानोंका कथन करते हैं—

"सत्तहिं ठाणेहिं छउमत्थं जाणेज्जा" इत्यादि सू० १० ॥

टीकार्थ-सात स्थानोंसे छद्मस्थ जाने जाते हैं, जैसे—जो प्राणोंका-एकेन्द्रियादिक जीवोंका - अतिपातयिता-नाश करने वाला होताहै, इससे यह अनुमान होताहै कि यह छद्मस्थहैं, इसी तरहसे यह भी समझना चाहिये कि जो मृषावादका सेवन करता है, वह छद्मस्थ है,

---

છદ્મસ્થ જીવો જ આ પ્રકારના ભયથી યુક્ત હોય છે તેથી તે છદ્મસ્થોને જે સ્થાનો (લક્ષણો) વડે જાણી શકાય છે તે સ્થાનોનું હવે સૂત્રકાર નિરૂપણ કરે છે. "सत्त हिं ठाणेहि छउमत्थं जाणेज्जा" ઇત્યાદિ—

ટીકાર્થ—નીચેનાં સાત સ્થાનો (લક્ષણો) વડે છદ્મસ્થોને ઓળખી શકાય છે. (૧) જે જીવ પ્રાણોનું—એકેન્દ્રિયાદિક જીવોનું વ્યાપાદન કરનાર હોય છે, તેને છદ્મસ્થ માની શકાય છે—એવું અનુમાન કરી શકાય છે કે તે છદ્મસ્થ છે. (૨) મૃષાવાદનું સેવન કરનાર—અસત્ય બોલનાર માણસને જોઈને પણ એવું

नुमीयते १। तथा—मृषावादिता=असत्यभाषी भवति २। अदत्तम् आदाता भवति—अदत्तादानकारको भवति ३। शब्दस्पर्शरूपरसगन्धान्=शब्दादीन् कामभोगान् आस्वादयिता=उपभोक्ता भवति। ४। पूजासत्कारम्=पूजा=अभ्युत्थानादिना, सत्कारः=वस्त्रादिप्रदानं, द्वयोः समाहारः, तत् अनुबृंहयिता—परेण क्रियमाणं स्वस्य पूजासत्कारम् अनुमोदयिता भवति। पूजासत्कारसद्भावे हृष्टो भवतीत्यर्थः। ५। इदम् आधाकर्मादिकं सावद्यम्=सपापम् इति प्रज्ञाप्य=प्ररूप्य पुनस्तदेव प्रतिसेविता भवति। ६। तथा—नो यथावादी तथाकारी चापि भवति—सामान्यतः स यथा वदति न तथा करोतीत्यर्थः। ७। इह यद्यपि प्राणा-

ऐसा अनुमानसे जाना जाता है, इसी प्रकारसे जो अदत्तका आदाता होता है, २ शब्द, रूप, स्पर्श, रस, और गन्ध इनका आस्वादयिता उपभोक्ता होता है, पूजा सत्कारकी परके द्वारा की गई अपनी पूजाकी अभ्युत्थान आदिकी—एवं सत्कारकी—वस्त्रादि देनेकी अनुमोदना करनेवाला होता है, अर्थात् पूजा सत्कारके सद्भावमें जो हर्षित होता है, ये आधाकर्म आदि सावद्य हैं, ऐसी प्ररूपणा करके भी जो उनका सेवन करता है ६ तथा जो जैसा कहता है, वैसा नहीं करता है, ऐसा वह व्यक्ति छद्मस्थ है ऐसा अनुमानसे जाना जाता है, साधनसे साध्यके ज्ञानको अनुमान कहते हैं, ऐसा अनुमानसे जाना जाता है, साधनके ज्ञानको अनुमान कहते है, ऐसा अनुमानका लक्षण है, अतः छद्मस्थ यह साध्य है, और प्राणातिपात आदि सब हेतुरूप है।--यहां यद्यपि

અનુમાન કરી શકાય છે કે તે છદ્મસ્થ છે. (૩) અદત્તને ગ્રહણ કરનારને પણ છદ્મસ્થ માની શકાય છે. (૪) શબ્દ, રૂપ, રસ, ગન્ધ અને સ્પર્શનું આસ્વાદન (ઉપભોગ) કરનારને પણ છદ્મસ્થ માની શકાય છે. (૫) પૂજા સત્કારની અનુમોદના કરનારને અને પૂજા સત્કાર વડે ખુશ થનાર વ્યક્તિને પણ છદ્મસ્થ કહે છે અન્યના દ્વારા અભ્યુત્થાન આદિ દ્વારા જે સન્માન થાય છે તેનું નામ પૂજા છે, અને વસ્ત્રાદિ પ્રદાન કરવા રૂપ સત્કાર હોય છે. (૬) "આધાકર્મ આદિ સાવદ્ય છે," એવી પ્રરૂપણા કરવા છતાં પણ જે પોતે જ તેનું સેવન કરનાર હોય છે તેને પણ છદ્મસ્થ માની શકાય છે. (૭) જે કહે છે કંઈ અને કરે છે કંઈ, આ પ્રકારે જેની વાણી અને વર્તનમાં ભેદ હોય છે, તે વ્યક્તિ પણ છદ્મસ્થ હોવાનું અનુમાન કરી શકાય છે. સાધન દ્વારા સાધ્યનું જ્ઞાન થવું તેનું નામ અનુમાન છે અથવા સાધનના જ્ઞાનને અનુમાન કહે છે. આ પ્રકારનું અનુમાનનું લક્ષણ છે તેથી છદ્મસ્થ આ સાધ્ય છે અને પ્રાણાતિપાત આદિ ઉપર્યુક્ત સાતેને હેતુરૂપ માનવામાં આવેલ છે. અહીં જો કે પ્રાણા-

तिपातमृषावादादि रूपेण धर्मो निर्देष्टव्यस्तथापि धर्मधर्मिणोरभेदोपचाराद् धर्म एव निर्दिष्ट इति ॥ सू० १० ॥

यैः स्थानैश्छद्मस्थो ज्ञायते, तानि प्रोक्तानि। सम्प्रति यैः स्थानैः केवली ज्ञायते तानि स्थानान्याह—

मूलम्—सत्तहिं ठाणेहिं केवली जाणेज्जा, तं जहा--णो पाणे अइवाइत्ता भवइ १, जाव जहावाई तहाकारी यावि भवइ ७ ॥ सू० ११ ॥

छाया—सप्तभिः स्थानैः केवलिनं जानीयात्, तद्यथा–नो प्राणान् अतिपातयिता भवति, यावद् यथावादी भवति तथाकारी चापि भवति ॥ सू० ११ ॥

टीका—'सत्तहिं ठाणेहिं' इत्यादि—

छद्मस्थवैपरीत्येनेदं सूत्रं व्याख्येयम् ॥ सू० ११ ॥

प्राणातिपात, मृषावाद आदि रूपसे धर्मका निर्देश करना चाहिये-परन्तु ऐसा न कर जो धर्मका ही निर्देश कियाहै, वह धर्म और धर्मीमें अभेदका उपचार करके किया है। ॥ सू० १० ॥

जिन स्थानोंसे छद्मस्थ जाना जाता है–उन स्थानोंको कहकर अब सूत्रकार जिन स्थानोंसे केवली जाना जाताहै उन स्थानोंका कथन करतेहैं "सत्तहिं ठाणेहिं केवली जाणेज्जा" इत्यादि सू० ११ ॥

टीकार्थ–सात स्थानोंसे "ये केवली हैं" ऐसा जाना जाता है वे सात स्थान इस प्रकारसे हैं–जो प्राणोंका अतिपातयिता नहीं होता है, यावत् जो जैसा कहताहै, वैसा करता है–वह केवलीहै, ऐसा जाना जाता

તિપાત, મૃષાવાદ આદિ રૂપે ધર્મનો નિર્દેશ કરવો જોઈએ, પરન્તુ એવું ન કરતાં જે ધર્મીનો જ નિર્દેશ કરવામાં આવ્યો છે, તે ધર્મ અને ધર્મીમાં અભેદનો ઉપચાર કરીને કરવામાં આવ્યો છે, એમ સમજવું ॥ સૂ. ૧૦ ॥

જે સ્થાનો વડે છદ્મસ્થોને જાણી શકાય છે, તે સ્થાનોનું કથન કરીને હવે સૂત્રકાર જે સ્થાનો વડે કેવલીને જાણી શકાય છે તે સ્થાનોનું કથન કરે છે. "सत्तहिं ठाणेहिं केवली जाणेज्जा" ઈત્યાદિ—

સાત સ્થાનો વડે એવું જાણી શકાય છે કે "આ કેવલી છે" તે સાત સ્થાનો આ પ્રમાણે છે—(૧) જે વ્યક્તિ પ્રાણાતિપાત કરતી નથી તેને કેવલી માની શકાય છે. અહીં ઉપરના સૂત્રમાં દર્શાવેલાં કારણો કરતાં વિપરીત કારણો સમજવા જોઈએ. (૭) જે કહે છે તે પ્રમાણે જ કરે છે, તેને કેવલી માની શકાય છે, આ પ્રમાણે સાતમાં સ્થાન સુધીના સ્થાનો અહીં ગ્રહણ

केवलिनश्च गोत्रविशेषोत्पन्ना एव भवन्तीति सप्त मूलगोत्राणि सभेदमाह—

मूलम्-सत्त मूलगोत्ता पण्णत्ता, तं जहा—कासवा १, गोयमा २ वच्छा ३ कोच्छा ४ कोसिया ५ मंडवा ६ वासिट्ठा ७। जे कासवा ते सत्तविहा पण्णत्ता, तं जहा--ते कासवा १ ते संडेल्ला २ ते गोल्ला ३ ते वाला ४ ते मुंजइणो ५ ते पव्वपेच्छइणो ६ ते वरिसकण्हा। ७। जे गोयमा ते सत्तविहा पण्णत्ता, तं जहा--ते गोयमा १ ते गग्गा २ ते भारद्दाया ३ ते अंगिरसा ४ ते सक्काराभा ५ ते भक्काराभा ६ ते उदगत्ताभा ७। जे वच्छा ते सत्तविहा पण्णत्ता, तं जहा--ते वच्छा १ ते अग्गेया २ ते मित्तिया ३ ते सामिलिणो ४ ते सेलयया ५ ते अट्ठिसेणा ६ ते वीयकम्हा ७। जे कोच्छा ते सत्तविहा पण्णत्ता, तं जहा--ते कोच्छा १ ते मोग्गलायणा २ ते पिंगलायणा ३ ते कोडीणा ४ ते मंडलिणो ५ ते हारिया ६ ते सोमया ७। जे कोसिया ते सत्तविहा पण्णत्ता, तं जहा--ते कोसिया १ ते कच्चायणा २, ते सालंकायणा ३ ते गोलिकायणा ४, ते पक्खिकायणा ५, ते अग्गिच्चा ६, ते लोहिया ७। जे मंडवा ते सत्तविहा पण्णत्ता, तं जहा--ते मंडवा १, ते अरिट्ठा २, ते संमुत्ता ३ ते तेला ४, ते एलावच्चा ५, ते कंडिल्ला ६ ते खारायणा ७। जे वासिट्ठा ते सत्तविहा पण्णत्ता, तं जहा--ते वासिट्ठा १, ते उंजायणा २, ते जारे कण्हा ३, ते वग्घावच्चा ४, ते कोडिन्ना ५ ते सण्णी ६। ते पारासरा ७ ॥सू०१२॥

है, छद्मस्थ सूत्रसे इस सूत्रकी व्याख्या विपरीत कर लेनी चाहिये सू. ११

કરવા જોઈએ. છદ્મસ્થ સૂત્ર કરતાં અહીં વિપરીત સ્થાનો કહેવા જોઈએ । સૂ. ૧૧ ।

छाया—सप्त मूलगोत्राणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-काश्यपाः १ गौतमाः २, वत्साः ३, कौत्साः ४ कौशिकाः ५ माण्डव्याः ६ वाशिष्ठाः ७। ये काश्यपास्ते सप्तविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-ते काश्यपाः १, ते शाण्डिल्याः २ ते गौल्याः ३, ते बालाः ४, ते मुञ्जतृणाः ५ ते वर्षप्रेक्षक्रियः ६, ते वर्षकृष्णाः ७। ये गौतमास्ते सप्तविधाः प्रज्ञप्ताः तद्यथा ते गौतमाः १, ते गार्ग्याः २, ते भारद्वाजाः ३, ते आङ्गिरसाः ४, ते शर्कराभाः ५, ते भास्कराभाः ६, ते उदगर्त्ताभाः ७। ये वत्सास्ते सप्तविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-ते वत्साः १, ते आग्नेयाः २, ते मैत्रेयाः ३, ते स्वामिलिनः ४, ते शैलकजाः ५, ते अस्थिषेणाः ६, ते वीतकश्माः ७। ये कौत्सास्ते सप्तविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-ते कौत्सा १, ते मौद्गल्यायनाः २, ते पिङ्गलायनाः ३, ते कोडीनाः ४, ते मण्डलिनः ते हारीताः ६, ते सोमकाः ७। ये कौशिकास्ते सप्तविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-ते कौशिकाः १, ते कात्यायनाः २, ते शालङ्कायना ३, ते गौलिकायनाः ४, ते पक्षिकायनाः ५, ते आग्नेयाः ६, ते लोहिताः ७। ये माण्डव्यास्ते सप्तविधाः, प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-ते माण्डव्याः ते आरिष्टाः २ ते सम्मुक्ताः ३, ते तैलाः ४, ते ऐलापत्याः ५, ते काण्डिल्याः ६, ते खारायणाः ७। ये वाशिष्ठास्ते सप्तविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-ते वाशिष्ठाः १, ते उञ्जायनाः २, ते जारेकृष्णाः ३ ते व्याघ्रापत्याः ४, ते कौण्डिन्याः ५, ते संज्ञिनः ६, ते पाराशराः ७ ॥ सू० १२ ॥

टीका—' सत्त मूलगोत्ता ' इत्यादि—

व्याख्या सुगमा। नवरम्-मूलगोत्राणि-मूलम्=आदि, आदित्वं चोत्तरापेक्षया, मूलभूतानि यानि गोत्राणि=गोत्रप्रवर्त्तकतथाविधैकपुरुषप्रभवसन्तानपर-

" सत्त मूलगोत्ता पण्णत्ता " इत्यादि ॥ सूत्र १२ ॥

टीकार्थ-सात मूल गोत्र कहे गये हैं-जैसे-काश्यप १ गौतम २ वत्स ३ कौत्स ४ कौशिक ५, माडव्य ६ और वाशिष्ठ ७। जो काश्यप हैं-वे सात प्रकारके कहे गये हैं-जैसे-ते काश्यप १ ते शाण्डिल्य २ ते गौल्य ३ ते वाल ४ ते मुञ्जतृण ५ ते पर्वप्रेक्षकी ६ और ते वर्षकृष्ण ७ इत्यादि रूपसे इस सूत्रकी व्याख्या सुगम है। मूल शब्दका अर्थ आदि

" सत्त मूलगोत्ता पण्णत्ता " ઇત્યાદિ—

ટીકાર્થ-સાત મૂળગોત્ર કહ્યાં છે. તેમનાં નામ નીચે પ્રમાણે છે—(૧) કાશ્યપ, (૨) ગૌતમ, (૩) વત્સ, (૪) કૌત્સ, (૫) કૌશિક, (૬) માંડવ્ય અને (૭) વાશિષ્ઠ કાશ્યપોના સાત પ્રકાર કહ્યા છે—(૧) તે કાશ્યપ, (૨) તે શાંડિલ્ય (૩) તે ગૌલ્ય, (૪) તે વાલ, (૫) તે મુંજતૃણ, (૬) તે પર્વપ્રેક્ષકી અને (૭) તે વર્ષકૃષ્ણ.

म्परास्तानि तथा। तानि च कानि? इत्याह–'कासवा' इत्यादि। तत्र–काशे= तृणविशेषे भवः काश्यः=काशोत्पन्नो रसः, तं पिबतीति काश्यपाः=तदपत्यानि काश्यपाः। मुनिसुव्रतनेमिनाथातिरिक्ता जिनाः, चक्रवर्त्यादयश्च क्षत्रियाः सुप्रभगणधरादयश्च ब्राह्मणाः जम्बूस्वामिप्रभृतयश्च गृहपतयः काश्यपगोत्रीया बोध्याः। गोत्रगोत्रवतोरभेदादिह गोत्रवन्त एव गोत्रत्वेनोक्ताः। अन्यथा तु काश्यपमिति नपुंसकमेव वाच्यम्। एवमग्रेऽपि बोध्यम्। तथा–गौतमाः–गौत-

है आदिता उत्तरकी अपेक्षासे आती है, गोत्र प्रवर्त्तक तथाविध एक पुरुषसे उत्पन्न हुई जो सन्तानकी परम्परा है, वह गोत्र है, इस तरह मूलभूत जो गोत्र हैं वे मूलगोत्र हैं। काश नाम तृण विशेषका है, इस काशमें जो होता है, वह काश्य है–अर्थात् काशका जो रस है वह काश्य है इस काशोत्पन्न रसको जो पीता है, वह काश्यप है, इस काश्यपके जो अपत्य हैं वे काश्यप हैं। मुनि सुव्रत, नेमिनाथसे अतिरिक्त समस्त जिन चक्रवर्ती आदि क्षत्रिय, सप्तम गणधर आदि ब्राह्मण, और जम्बूस्वामी आदि गृहपति–वैश्य ये सब काश्यप गोत्रीय हुए हैं। गोत्रवालोंके अभेद सम्बन्धसे यहां गोत्रवालेही गोत्र रूपसे कहे गये हैं। यदि ऐसा न कहा होता तो "काश्यपाः" न कहकर सूत्रकार "काश्यपम्" ऐसा नपुंसक लिङ्गकाही निर्देश करते इसी तरहका कथन आगे

'મૂળ' એટલે આદિ. આ આદિતા આદિપણુ આગળ ઉત્પન્ન થવાને કારણે સમજવાની છે. ગોત્રપ્રવર્તક તથાવિધ એક પુરુષના વંશમાં ઉત્પન્ન થયેલી સંતાન પરંપરાને ગોત્ર કહે છે. આ પ્રકારે મૂળભૂત જે ગોત્ર છે તેમને મૂળગોત્ર કહે છે. એક પ્રકારના તૃણવિશેષને કાશ કહે છે. તે કાશના રસને કાશ્ય કહે છે. આ કાશોત્પન્ન કાશ્ય રસનું પાન કરનારને કાશ્યપ કહે છે. આ કાશ્યપના જે સંતાનો છે–વંશજો છે, તેમને કાશ્યપો કહે છે. મુનિસુવ્રત અને નેમિનાથ સિવાયના જિનેશ્વરો, ચક્રવર્તી આદિ ક્ષત્રિય, સપ્તમ ગણધર આદિ બ્રાહ્મણ અને જમ્બૂસ્વામી આદિ ગૃહપતિ–વૈશ્ય, આ બધા કાશ્યપ ગોત્રીય હતા. ગોત્ર અને ગોત્રવાળા વચ્ચે અભેદ માનીને અહીં ગોત્રવાળાને ગોત્ર રૂપે પ્રકટ કરવામાં આવ્યા છે. જો એ પ્રકારે માનવાનું ન હોત તો "काश्यपाः" આ પદનો પ્રયોગ કરવાને બદલે સૂત્રકારે "काश्यपम्" આ નાન્યતર જાતિના જ પદનો પ્રયોગ કર્યો હોત. એ જ પ્રકારનું કથન ગૌતમ આદિ વિષે પણ સમજવું.

मस्यापत्यानि, तत्र क्षत्रिया-मुनिसुव्रतनेमिनाथौ जिनौ, रामलक्ष्मणवर्जाः बलदेववासुदेवाः, ब्राह्मणाश्च-इन्द्रभूत्यादयस्त्रयो गणधरा वज्रस्वामी चैते गौतमगोत्रीयाः तथा-वत्साः-वत्सस्यापत्यानि शय्यम्भवादयः। कौत्साः=शिवभूत्यादयः-'कोच्छं सिवभूइंपिय' इतिवचनात्। एवं कौशिकाः=षडुलूकादयः। माण्डव्याः=मण्डोरपत्यानि। वाशिष्ठा-वशिष्ठस्यापत्यानि-षष्ठगणधरार्यसुहस्त्यादयः। तत्र काश्यपादिषु सप्तसु मूलगोत्रेषु प्रत्येकं गोत्रं सप्तविधम्। तत्र ये काश्यपशब्दव्यपदेश्यत्वेन विवक्षितास्ते काश्यपा उच्यन्ते। ये तु काश्यप गोत्रोत्पन्नशाण्डिल्यादि पुरुषापत्यानि ते शाण्डिल्यादय उच्यन्ते। एवं गौतमादि विषयेऽपि बोध्यम्। ॥ सू० १२ ॥

भी समझना चाहिये, गौतमके जो अपत्य-सन्तान हैं वे गौतम हैं। मुनिसुव्रत एवं नेमिनाथ ये दो जिन राम लक्ष्मणको छोड़कर बलदेव और वासुदेव ये क्षत्रिय, इन्द्रभूति आदि तीन गणधर एवं वज्रस्वामी ये ब्राह्मण, गौतम गोत्रीय हैं।

तथा-वत्सके अपत्य शय्यंभव आदि वत्स हैं। "कोच्छं सिवभूइं पि य" इस वचनके अनुसार शिवभूति आदि कौत्स हैं। षडू उलूक आदि कौशिक हैं। मण्डुकके अपत्य माण्डव्य हैं। छठे गणधर और आर्य सुहस्ती आदि वशिष्ठके अपत्य होनेसे वाशिष्ठ हैं। इन सात मूल गोत्रमेंसे प्रत्येक मूलगोत्र सात प्रकारका कहा गया है। जो "काश्यप" इस शब्दसे विवक्षित होते हैं वे काश्यप कहलाते हैं और जो काश्यप गोत्रमें उत्पन्न शाण्डिल्य आदि कहलाते हैं। इसी तरहका कथन गौतम आदिके विषयमें भी जानना चाहिये। ॥ सूत्र १२ ॥

ગૌતમના જે સંતાનો છે તેમને ગૌતમ કહે છે મુનિસુવ્રત અને નેમિનાથ ભગવાન, રામલક્ષ્મણ સિવાયના બળદેવો અને વાસુદેવો વગેરે ક્ષત્રિયો, ઇન્દ્રભૂતિ આદિ ત્રણ ગણધર અને વજ્રસ્વામી વગેરે બ્રાહ્મણો, ગૌતમ ગોત્રીય હતા.

શય્યંભવ આદિ વત્સના સંતાનોને વત્સગોત્રીય કહે છે. "कोच्छं सिव भूइं पि य" આ કથન અનુસાર શિવભૂતિ આદિને કૌત્સ ગોત્રીય કહે છે. ષટ્ ઉલૂક આદિ કૌશિક ગોત્રીય હતા મંડુકના સંતાનોને માંડવ્ય કહે છે છઠ્ઠા ગણધર અને આર્ય સુહસ્તી આદિ વશિષ્ઠના સંતાનો હોવાથી તેમને વાશિષ્ઠો કહે છે. આ સાત મૂલગોત્ર છે પ્રત્યેક ગોત્રના સાત પ્રકારો પડે છે. જે઼ઓ "કાશ્યપ" આ શબ્દથી વિવક્ષિત થાય છે, તેમને કાશ્યપો કહેછે, અને જેઓ કાશ્યપ ગોત્રમાં ઉત્પન્ન થયેલા શાંડિલ્યના સંતાનોને શાંડિલ્યો કહે છે એજ પ્રકારનું કથન ગૌતમ આદિ વિષે પણ સમજી લેવું. ॥ સૂ. ૧૨ ॥

अयं च मूलगोत्रशाखागोत्रविभागो नयविशेषमताद् भवतीति नयविभागमाह—

मूलम्—सत्त मूलनया पण्णत्ता, तं जहा-नेगमे १, संगहे २, ववहारे ३ उज्जुसुत्ते ४ सद्दे ५ समभिरूढे ६ एवंभूए ७ ॥ सू० १३ ॥

छाया—सप्तमूलनयाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-नैगमः १ संग्रहो २ व्यवहारः ३ ऋजुसूत्रः ४ शब्दः ५ समभिरूढः ६ एवम्भूतः ७ ॥ सू० १३ ॥

टीका—'सत्त मूलनया' इत्यादि—

अनेकधर्मकदम्बकोपेतस्य प्रमाणप्रतिपन्नस्य पदार्थस्य एकेन धर्मेण उन्नयनम् अवधारणात्मकं 'नित्य एव अनित्य एव' इत्येवंविधं नयव्यपदेशमास्कन्दति यः सोऽध्यवसायविशेषो नयः स नयो द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिकभेदेन

यह मूल गोत्र और शाखा गोत्रका विभाग नय विशेषण मतसे होता है, अतः अब सूत्रकार नय विभागका कथन करते हैं—

"सत्त मूलनया पण्णत्ता" इत्यादि ॥ सूत्र १३ ॥

टीकार्थ—सात मूलनय कहे गये हैं, जैसे नैगम १ संग्रह २ व्यवहार ३ ऋजु सूत्र ४, शब्द ५, समभिरूढ ६, और एवंभूत ७।

प्रमाणसे गृहीत हुई ऐसी अनेक धर्मात्मक वस्तुका किसी एक धर्मसे लेकर निश्चय करनेवाला जो प्रमाताका विचार है-जैसे कि यह नित्य ही है, अनित्यही है-वह नय है, यह नय द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिकके भेदसे दो प्रकारका होता है। पदार्थ द्रव्य पर्याय रूप है, एक और अनेक धर्मात्मक है, इसीका नाम अनेकान्त है, यह अनेकान्ता-

---

આ મૂળગોત્ર અને શાખાગોત્રનો વિભાગ જુદા જુદા નયો (મતો) ને આધારે થાય છે. તેથી હવે સૂત્રકાર નયના પ્રકારોનું કથન કરે છે

"સત્ત મૂલનયા પણ્ણત્તા" ઇત્યાદિ—

ટીકાર્થ-મૂળનય સાત કહ્યાં છે—(૧) નૈગમ, (૨) સંગ્રહ, (૩) વ્યવહાર, (૪) ઋજુ સૂત્ર, (૫) શબ્દ, (૬) સમભિરૂઢ અને (૭) એવંભૂત.

પ્રમાણ દ્વારા ગૃહીત થયેલી એવી અનેક ધર્માત્મક વસ્તુનો કોઇ એક ધર્મને આધારે નિશ્ચય કરનારો જે પ્રમાતાનો વિચાર (મત) હોય છે તેને નય કહે છે જેમકે "આ નિત્ય જ છે, આ અનિત્ય જ" આ પ્રકારની માન્યતાનું નામ નય છે આ નયના દ્રવ્યાર્થિક નય અને પર્યાયાર્થિક નય નામના બે મુખ્ય ભેદ પડે છે. પદાર્થ દ્રવ્ય પર્યાય રૂપ છે, એક અને અનેક

द्विविधः । तत्र-द्रव्यार्थिकनयः-द्रव्यपर्यायरूपमेकानेकात्मकमनेकान्त प्रमाणप्रतिपन्नमर्थं विभज्य पर्यायार्थिकनयविषयस्य भेदस्योपसर्जनभावेनावस्थानमात्रमभ्यनुजानन् स्वविषयं द्रव्यभेदमेव व्यवहारयति, ' नयान्तरविषयसापेक्षः सन्नयः ' इत्यभिधानात् । यथा सुवर्णमानयेति । अत्र द्रव्यार्थिकनयाभिप्रायेण सुवर्णद्रव्यानयननोदनायां कटकं कुण्डलं केयूरं चोपनयन्नुपनेता कृती भवति, सुवर्णरूपेण

त्मक पदार्थ प्रमाणका विषय है, नयका नहीं अनेक है-अन्त-धर्म जिसमें वह अनेकान्त है। द्रव्यार्थिक नय केवल द्रव्यकोही विषय करता है, और पर्यायार्थिक नयका जो विषय भेद है, उसे गौण करता है-उसका खण्डन नहीं करता है-उसमें गज निमीलिका-उपेक्षा भाव धारण करता है, अर्थात् अपने विषयको मुख्य करता है, और पर्यायार्थिक नयके विषयको गौण करता है, इस तरह दूसरे नयके विषयको गौण करके अपने विषयको मुख्य रूपसे-द्रव्य रूपसे जाननेवाला जो नय है, वह द्रव्यार्थिक नय है। " नयान्तरसापेक्षः सन्नयः " इस कथनसे यही समझाया गया है-अन्य नयके विषयकी अपेक्षा रखता हुआ अपने विषयकी पुष्टि करनेवाला जो नय है, वही सन्नय है, इससे विपरीत दुर्नय है, जैसे-किसीने कहा कि " सुवर्णमानय " सुवर्ण लाओ-यहां द्रव्यार्थिक नयके अभिप्रायसे कटक, कुण्डल, केयूर,

ધર્માત્મક છે, આ પ્રકારની માન્યતાને અનેકાન્તવાદ કહે છે. આ અનેકાન્તાત્મક પદાર્થ નયનો વિષય નથી પણ પ્રમાણનો વિષય છે. અનેક છે અન્ત (ધર્મ) જેમાં તેને અનેકાન્ત કહે છે. દ્રવ્યાર્થિક નય કેવળ દ્રવ્યનો જ વિચાર કરે છે અને પર્યાયાર્થિક નયનો જે વિષયભેદ છે તેને ગૌણ કરે છે, તેનું ખંડન કરતો નથી, તેમાં ગજનિમીલિકા ભાવ (ઉપેક્ષા ભાવ) ધારણ કરે છે એટલે કે પોતાના વિષયને પ્રાધાન્ય આપે છે અને પર્યાયાર્થિક નયના વિષયને ગૌણ રૂપ આપી દે છે. આ પ્રકારે અન્ય નયના વિષયને ગૌણ કરીને પોતાના વિષયને મુખ્ય રૂપે, દ્રવ્ય રૂપે જાણનારો જે નય છે તેને દ્રવ્યાર્થિક નય કહે છે. " नयान्तरसापेक्षः सन्नयः " આ સૂત્રપાઠ દ્વારા એ જ વાત સમજાવવામાં આવી છે. અન્ય નયના વિષયની અપેક્ષા રાખતો થકો પોતાના વિષયની પુષ્ટિ કરનારો જે નય છે તેને જ સન્નય (સાચા અર્થમાં નય) કહે છે. તેનાથી વિપરીત લક્ષણવાળો જે નય છે તેને દુર્નય કહે છે. જેમકે કોઇ આ પ્રમાણે કહે કે " सुवर्णमानय " " સુવર્ણ લાવો " અહીં દ્રવ્યાર્થિક નય અનુસાર કડાં, કુંડળ, હાર આદિ સોનાની વસ્તુને

कटकादीनां भेदाभावात्। द्रव्यार्थिकनयमुपसर्जनीकृत्य प्रवर्तमानं पर्यायार्थिकनयमवलम्ब्य कुण्डलमानय इत्युक्ते न कटकादौ प्रवर्तते, कटकादि पर्यायस्य ततो भिन्नत्वात्। ततो द्रव्यार्थिकनयाभिप्रायेण सुवर्णं स्यादेकमेव, पर्यायार्थिकनयाभिप्रायेण स्यादनेकमेव। क्रमेणोभयनयाभिप्रायेण स्यादेकमनेकं च। द्रव्यार्थिक-

इनमेंसे किसी एकको या सबको लानेवाला व्यक्ति कृती होता है, क्योंकि उसकी दृष्टिमें सुवर्ण रूपसे कटकादिकोंमें भेद नहीं हैं-द्रव्य-रूप सुवर्णकी दृष्टिसे वे सब सुवर्णरूप ही हैं, और जब द्रव्यार्थिक नयको गौण कर दिया जाता है, और पर्यायार्थिक नयको प्रधान कर दिया जाता है, उस समय "कुण्डललाओ" ऐसा कहने पर श्रोता कटक (कड़ा) आदिके लानेमें प्रवृत्ति नहीं करता है, क्योंकि कुण्डलसे कटकपर्याय भिन्न है, अतः द्रव्यार्थिक नयके अभिप्रायसे सुवर्ण किसी अपेक्षा एकही है, और पर्यायार्थिक नयके अभिप्रायसे वह किसी अपेक्षा अनेकही है, इस तरह द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक इन दोनों नयोंके अभिप्रायसे यहां दो भंग हो जाते हैं-सुवर्णस्याद् एकमेव १ सुवर्णस्यादनेकमेव २। दोनों नयोंके अभिप्रायसे-क्रमसे दोनोंकी प्रधानतासे-वह सुवर्ण द्रव्य कथंचित् एकभी है, और अनेक भी है, इस प्रकारका यह तृतीय भंग है। द्रव्यार्थिक नय नैगम १ संग्रह २

સોના રૂપ માનીને એ બધી વસ્તુઓને અથવા તેમાંથી કોઇ પણ એક જ વસ્તુને લાવનાર માણુસ પણ સોનું જ લાવ્યો કહેવાય. કારણ કે તેની દૃષ્ટિએ તો સોનામાં અને સોનાની વસ્તુઓમાં કોઇ ભેદ નથી-દ્રવ્યરૂપ સુવર્ણની દૃષ્ટિએ તો તે સઘળી વસ્તુઓ સુવર્ણરૂપ જ છે પરન્તુ જો દ્રવ્યાર્થિક નયને ગૌણ કરી નાખવામાં આવે અને પર્યાયાર્થિક નયને પ્રાધાન્ય આપવામાં આવે તો "કુંડળ લાવો" આ પ્રમાણે કહેવામાં આવે ત્યારે શ્રોતા કડાં આદિ લાવતો નથી પણ કુંડળ જ લાવે છે, કારણ કુંડળ કરતાં કટકપર્યાય ભિન્ન હોય છે. તેથી દ્રવ્યાર્થિક નયની અપેક્ષાએ સુવર્ણ કોઇ પણ ઘાટ રૂપે હોવા છતાં પણ એક જ છે-સુવર્ણરૂપ જ છે, અને પર્યાર્થિક નય અનુસાર તે કડાં, કુંડળ, હાર આદિ અનેક રૂપ છે. આ પ્રકારે દ્રવ્યાર્થિક અને પર્યાયાર્થિક આ બે નયોની અપેક્ષાએ અહીં બે ભંગ બની જાય છે—(૧) सुवर्णस्याद् एकमेव અને (૨) सुवर्णस्यादनेकमेव બન્ને નયોના અભિપ્રાય અનુસાર બન્નેની પ્રધાનતાની અપેક્ષાએ "તે સુવર્ણ દ્રવ્ય અમુક દૃષ્ટિએ એક પણ છે અને અમુક દૃષ્ટિએ અનેક પણ છે," આ પ્રકારનો ત્રીજો ભંગ બને છે.

नयस्तु नैगमः सग्रहो व्यवहारश्चेति त्रिविधः। पर्यायार्थिकश्च-ऋजुसूत्रः शब्दः समभिरूढः एवम्भूतश्चेति चतुर्विधः। अतएवात्र मूलनयशब्देनोच्यन्ते। मूलभूता नया मूलनयाः। मूलत्वं चैषां नैगमादीनां सप्तानामुत्तरनयापेक्षया बोध्यम्। उत्तरनयास्तु सप्तशतानि, केषांचिन्मते पञ्चशतानि।

तदुक्तम्—एक्केको य सयविहो, सत्त नयसया हवंति एवं तु।
अन्नो वि य आएसो, पंचेव सया नयाणं तु॥ १॥"

छाया—एकैकश्च शतविधः, सप्त नयशतानि भवन्ति एवं तु।
अन्योऽपि च आदेशः पञ्चैव शतानि नयानां तु॥ १॥ इति।

तथा—जावइया वयणपहा, तावइया चेव हुंति नयवाया।
जावइया नयवाया तावइया चेव परसमया॥ १॥"

छाया—यावन्तो वचनपथाः तावन्तश्चैव भवन्ति नयवादाः।
यावन्तो नयवादा स्तावन्तश्चैव परसमयाः॥ १॥ इति।

और व्यवहार नयके भेदसे तीन प्रकारका है, एवं पर्यायार्थिक नय ऋजु सूत्र, शब्द, समभिरूढ और एवंभूतनयके अभिप्रायसे चार प्रकारका है, ये यहां मूलनय शब्दसे कहे गये हैं। मूलभूत जो नय हैं, वे मूल नय हैं, नैगमादि सातों नयों उत्तरनयोंकी अपेक्षासे मूल नयता जाननी चाहिये, उत्तर नय सातसौ हैं, किसी २ के मतानुसार उत्तर नय पांचसौ हैं कहा भी है—

" एक्केक्कोय सयविहो " इत्यादि।

एक एक नयके सौ सौ (१००) भेद होते हैं, इस तरह सात नयोंके सातसौ भेद हो जाते हैं, कोईका ऐसा कहना है, कि नयोंके उत्तर भेद ५०० होते हैं। तथा—

દ્રવ્યાર્થિક નયના નીચે પ્રમાણે ત્રણ પ્રકાર છે—(૧) નૈગમ નય (૨) સંગ્રહ નય અને (૩) વ્યવહાર નય. પર્યાયાર્થિક નયના નીચે પ્રમાણે ચાર પ્રકાર છે—(૧) ઋજુ સૂત્ર, (૨) શબ્દ, (૩) સમભિરૂઢ અને (૪) એવંભૂત નય.

મૂળભૂત જે સાત નયો છે તેમને મૂલનય કહે છે. નૈગમ આદિ સાતે નયોમાં ઉત્તરનયોની અપેક્ષાએ મૂલનયતા ગ્રહણ કરવી જોઈએ. કેટલાકની માન્યતા અનુસાર ઉત્તરનયો ૭૦૦ છે અને કેટલાકની માન્યતા પ્રમાણે ઉત્તરનયો ૫૦૦ છે કહ્યું પણ છે કે : एक्केक्को य सयविहो " ઈત્યાદિ—

પ્રત્યેક નયના ૧૦૦–૧૦૦ ભેદ પડે છે. આ રીતે સાત નયોના ૭૦૦ ભેદો થઈ જાય છે. ત્યારે કેટલાક લોકોની માન્યતા પ્રમાણે નયોના ઉત્તરભેદો ૫૦૦ છે. તથા " जावइया वयणपहा " ઈત્યાદિ—

तत्र सप्तसु मूलनयेषु प्रथमो नैगमः । तस्य चेयं व्युत्पत्तिः-नैकैर्मानैर्महासत्ता सामान्यविशेषविशेषज्ञानैर्मिमीते, मिनोति=परिच्छिनत्तीति नैकमः निरुक्तविधिना स एव नैगमः । तदुक्तम्—

" णेगाइं माणाइं, सामन्नोभयविसेसनाणाइं ।
जं तेहिं मिणइ तो, णेगमो णओ णेगमाणोत्ति ॥ १ ॥"

छाया—नैकानि मानानि सामान्योभयविशेषज्ञानानि ।
यत्तैर्मिनोति ततो नैगमो नैकमान इति । १ ॥

अथवा—निगमेषु=अर्थबोधेषु कुशलो भवो वा नैगमः यद्वा=नैके गमाः पन्थानो यस्य स नैकगमः, निरुक्तत्वेन स एव नैगमः । तदुक्तम्—

" लोगत्थनिबोहा वा, निगमा तेसु कुसलो भवोवाऽयं ।
अहवा जं णेगगमो, णेगपहा णेगमोतेणं ॥ १ ॥"

" जावइया वयणपहा " इत्यादि ।

जितने वचनपथ हैं, उतनेही नयवाद हैं, और जितने नयवाद हैं, उतनेही पर समय हैं, इन सात मूल नयोंमें प्रथम नैगम नय है, इसकी व्युत्पत्ति इस प्रकारसे है—

" नैकैः मानैः मिनोति इति नैकमः-नैकम एव नैगमः " जो नय महासत्ता सामान्य, एवं विशेष इनके द्वारा पदार्थको जानता है, उस नयका नाम नैकम या नैगम है कहा भी है—

" णेगाइं माणाइं " इत्यादि ।

अथवा-अर्थबोधमें जो विचार कुशल होता है, वह अथवा अर्थबोधमें जो विचार होता है, वह नैगम है, अथवा अर्थबोध करानेके जिसके अनेक मार्ग है वह नैकगम-नैगम हैं, कहा भी है—

જેટલા વચનપથ છે, એટલાં જ નયવાદ છે, અને જેટલા નયવાદ છે એટલા જ પર સમય (અન્ય મતો-અન્ય સંપ્રદાયો) છે. સાત નયોમાં પહેલો નય નૈગમનય છે. નૈગમની વ્યુત્પત્તિ આ પ્રમાણે થાય છે— " नैकैः मानैः मिनोति इति नैकमः-नैकम एव नैगमः " જે નય મહા સતા સામાન્ય અને વિશેષ દ્વારા પદાર્થને જાણે છે, તે નયનું નામ નૈકમ અથવા નૈગમ છે. કહ્યું પણ છે કે " णेगाइं माणाइं " ઈત્યાદિ—

અથવા—અર્થબોધમાં જે વિચાર કુશલ હોય છે તેને, અથવા અર્થબોધમાં જે વિચાર થાય છે તેને નૈગમ કહે છે. અથવા અર્થબોધ કરાવવાના જેના અનેક માર્ગ છે તે " નૈક ગમ " અથવા નૈગમ છે.

छाया—लोकार्थनिबोधा वा निगमास्तेषु कुशलो भवोवाऽयम् ।
अथवा यत् नैकगमो नैकपथो नैगमस्तेन ॥ १ ॥ इति ।

अयं नैगमः सर्वाविशुद्धो विशुद्धाविशुद्धः सर्वविशुद्धश्चेति त्रिभेदः । तत्र—प्रथमो—निर्विकल्पकमहासत्ताऽऽख्यकेवलसामान्यवादी १। गोत्वादिसामान्यविशेषवादी द्वितीयः २। विशेषवादी तु तृतीयः ३। तत्र प्रथमो द्वयोर्धर्मयोः प्रधा०

"लोगत्थनिबोहा वा" इत्यादि ।

यह नैगम सर्वाविशुद्ध, विशुद्धाविशुद्ध और सर्व विशुद्धके भेदसे तीन प्रकारका है ।

इनमें निर्विकल्पक महासत्तारूप केवल सामान्यका कथन करनेवाला जो नय है, वह सर्वाविशुद्ध नैगम नयका प्रथम भेद है, गोत्व आदिरूप सामान्य विशेषका प्रतिपादन करनेवाला जो नय है, वह नैगम नयका विशुद्धाविशुद्ध द्वितीय भेद है, और केवल विशेषका कथन करनेवाला जो नय है, वह नैगम नयका सर्व विशुद्ध रूप तृतीय भेद है, नैगमनय के द्वितीय भेद में जो सामान्य विशेष विषय कहा गया है वह "सामान्य और विशेष" इस रूप से नहीं समझना चाहिये, किन्तु सामान्य रूप विशेष इस रूप से समझना चाहिये, क्योंकि सामान्य परसत्ता और अपरसत्ता के भेद से दो प्रकार का होता है, इनमें परसत्ता महा सामान्य रूप होती है और अपरसत्ता

કહ્યું પણ છે કે : "लोगत्थ निबोहा वा" ઇત્યાદિ—

તે નૈગમના નીચે પ્રમાણે ત્રણ ભેદ છે—(૧) સર્વા વિશુદ્ધ, (૨) વિશુદ્ધા વિશુદ્ધ, અને (૩) સર્વ વિશુદ્ધ

નિર્વિકલ્પ મહા સત્તારૂપ કેવળ સામાન્યનું જ કથન કરનારો જે નય છે તે સર્વાવિશુદ્ધ નામનો નૈગમ નયનો પહેલો ભેદ છે. ગોત્વ આદિ રૂપ સામાન્ય વિશેષનું પ્રતિપાદન કરનારો જે નય છે તે વિશુદ્ધાવિશુદ્ધ નામનો નૈગમ નયનો બીજો ભેદ છે. કેવળવિશેષનું જ પ્રતિપાદન કરનારો જે નય છે, તેને સર્વવિશુદ્ધ નામનો નૈગમનો ત્રીજો ભેદ કહે છે. નૈગમનયના બીજા ભેદમાં જે "સામાન્ય વિશેષ" રૂપ શબ્દપ્રયોગ કરવામાં આવ્યો છે તેને "સામાન્ય અને વિશેષ" આ રૂપે ગ્રહણ કરવાનો નથી, પરન્તુ "સામાન્ય રૂપ વિશેષ" આ પ્રકારનો તેનો અર્થ ગ્રહણ કરવાનો છે, કારણ કે પરસત્તા અને અપરસત્તાના ભેદથી સામાન્યના બે પ્રકાર પડે છે. તે બન્નેમાંથી પરસત્તા મહાસામાન્ય રૂપ હોય છે અને અપરસત્તા સામાન્ય વિશેષ

नोपसर्जनभावेन यद्विवक्षणं सः, यथा—सच्चैतन्यमात्मनीति । तथा—द्वयोर्धर्मिणोः प्रधानोपसर्जनभावेन यद्विवक्षणं स द्वितीयः, यथा—पर्यायवद् वस्तु द्रव्यमिति २। तथा—धर्मधर्मिणोः प्रधानोपसर्जनभावेन यद् विवक्षणं स तृतीयः, यथा—क्षणमेकं सुखी विषयासक्तजीव इति ।

सामान्य विशेषरूप होती है, इन में दो धर्मों का प्रधान और उपसर्जन भाव से—गौण रूप से—जो विवक्षण है वह प्रथम नैगमनयका भेद है, जैसे—"सच्चैतन्यात्मनि" आत्मा में सद्विशिष्ट चैतन्य है यहां चैतन्य का विशेषण सत् है अतः वह गौण है और चैतन्य धर्म मुख्य है, दो धर्मियों की प्रधान उपसर्जन भाव से जो विवक्षा है वह नैगमनयका द्वितीय भेद है, जैसे—पर्यायवाली वस्तु द्रव्य है, यहां वस्तु और द्रव्य ये दो धर्मी हैं परन्तु पर्यायवद् वस्तु यह द्रव्य का विशेषण है, इसलिये यह गौण है और द्रव्य यह विशेष्य है इसलिये वह प्रधान है, धर्म और धर्मी का प्रधान उपसर्जन भाव से जो विवक्षण—कथन—करना है वह नैगमनय का तृतीय भेद है, जैसे—"क्षणमेकं सुखी विषयासक्तजीवः" विषयासक्त जीव एक क्षण तक सुखी रहता है, यहां धर्म धर्मी की प्रधान उपसर्जन भावसे विवक्षा हुई है, क्योंकि जब विषयासक्त जीव का विशेषण सुखी बनाया जाता है तब वह

રૂપ હોય છે નૈગમનયના પ્રથમ ભેદમાં બે ધર્મોનું પ્રધાન રૂપે અને ઉપસર્જન રૂપે, ગૌણ રૂપે પ્રતિપાદન થાય છે. જેમકે "सच्चैतन्यात्मनि" "આત્મમાં સદ્વિશિષ્ટ ચૈતન્ય છે." અહીં ચૈતન્યનું વિશેષણ સત્ છે, તેથી સત્ ગૌણરૂપ છે અને ચૈતન્ય ધર્મ પ્રધાનરૂપ છે.

બે ધર્મીઓની જે પ્રધાનભાવે અને ઉપસર્જન ભાવે-ગૌણભાવે વિવક્ષા છે, તેને નૈગમનયના બીજા ભેદ રૂપ ગણવામાં આવે છે. જેમકે—"પર્યાયવાળી વસ્તુ દ્રવ્ય છે" અહીં વસ્તુ અને દ્રવ્ય, આ બે ધર્મી છે પરન્તુ 'પર્યાયવાળી વસ્તુ' આ પદ દ્રવ્યના વિશેષણ રૂપ છે, તેથી તે ગૌણ છે અને દ્રવ્ય વિશેષ હોવાને કારણે તેને પ્રાધાન્ય અપાયું છે.

નૈગમ નયના ત્રીજા ભેદમાં ધર્મ અને ધર્મીનું પ્રધાન અને ઉપસર્જન ભાવે ગૌણ રૂપે પ્રતિપાદન કરવામાં આવે છે, જેમકે "क्षणमेकं सुखी विषयासक्तजीवः" "વિષયાસક્ત જીવ એક ક્ષણ જ સુખી રહે છે" અહીં ધર્મ અને ધર્મીની પ્રધાન અને ગૌણ રૂપે વિવક્ષા થઈ છે. કારણ કે જો વિષયાસક્ત જીવના વિશેષણ રૂપે સુખીને લેવામાં આવે તો તે વિશેષણ હોવાને

नन्वेवं सामान्यविशेषाभ्युपगमपरत्वादयं नैगमनयः सम्यग्दृष्टिरेव साधुवत्? इति चेत्, आह—

अयं नयो हि सामान्यविशेषवस्तूनि अत्यन्तभेदेनाभ्युपगच्छति, अतो नायं साधुवत् सम्यग्दृष्टिः। तदुक्तम्—

" जं सामन्नविसेसे, परोप्परं वत्थओ य सो भिन्ने।
मन्नइ अच्चंतमओ, मिच्छादिट्ठी कणादोव्व॥ १॥
दोहिवि नयेहि नीयं, सत्थमुलूएण तहवि मिच्छत्तं।
जं सविसय पहाणत्तणेण अन्नोन्ननिरवेक्खा॥ २॥ "

छाया—यत् सामान्यविशेषं परस्परं वस्तुनश्च तद् भिन्नम्।
मन्यते अत्यन्तमतो मिथ्यादृष्टिः कणाद इव॥ १॥
द्वाभ्यां नयाभ्यां नीतं शास्त्रमुलूकेन तथापि मिथ्यात्वम्।
यत् स्वविषयप्रधानत्वेन अन्योन्यनिरपेक्षौ॥ २॥ इति।

विशेषण होने से गौण हो जाता है और विषयासक्त जीव रूप धर्मी मुख्य हो जाता है, और जब विषयासक्त जीव को सुखी का विशेषण बनाया जाताहै तब वह गौण हो जाताहै और सुखी प्रधान हो जाताहै.

शंका—पदार्थ सामान्य विशेषात्मक है और सामान्य विशेष को जानने वाला नैगमनय है अतः यह नय साधु की तरह सम्यग्दृष्टि-वाला ही है?

उत्तर—यह नय सामान्य विशेष रूप वस्तुओं को अत्यन्त भेद रूप से स्वीकार करता है, क्योंकि यह इन दोनों को परस्पर सापेक्ष नहीं मानता है, अतः यह सम्यग्दृष्टि साधु की तरह सम्यग्दवाला नहीं है, कहा भी है—" जं सामन्नविसेसे " इत्यादि।

કારણુ ગૌણુ બની જાય છે અને વિષયાસક્ત રૂપ ધર્મી મુખ્ય બની જાય છે. પરન્તુ વિષયાસક્ત જીવને જ્યારે સુખીનું વિશેષણુ બનાવવામાં આવે છે ત્યારે સુખી પ્રધાન બની જાય છે અને વિષયાસક્ત ગૌણુ બની જાય છે.

શંકા—પદાર્થ સામાન્ય વિશેષાત્મક છે અને સામાન્ય વિશેષને જાણુ-નારો નૈગમનય છે, તેથી શું આ નય સાધુની જેમ સમ્યગ્દૃષ્ટિવાળો જ છે?

ઉત્તર—આ નય સામાન્ય વિશેષ રૂપ વસ્તુઓને અત્યન્ત ભેદ રૂપે સ્વીકારે છે કારણુ કે તે બન્નેને પરસ્પર સાપેક્ષ માનતો નથી, તેથી તે સમ્ય-ગ્દૃષ્ટિ સાધુની જેમ સમ્યગ્દૃષ્ટિવાળો નથી.

કહ્યું પણુ છે કે " जं सामन्नविसेसे " ઇત્યાદિ—

अयं भावः—नैगमनयो यत् सामान्यविशेषं यत् परस्परम्=अन्योऽन्यं तथा वस्तुनश्च अत्यन्तं भिन्नं मन्यते, अतो नैगमनयः कणाद इव मिथ्यादृष्टिर्विज्ञेयः ॥ १ ॥ यद्यपि उलूकेन=कणादेन द्वाभ्यां=द्रव्यार्थिकपर्यायार्थिकाभ्यां नयाभ्यां शास्त्रं=वैशेषिकदर्शनं नीतं=मोक्तम् तथापि-तस्य मिथ्यात्वम् । यत्=यस्मात् कारणात् वैशेषिकदर्शने तौ उभावपि नयौ स्वविषयप्रधानत्वेन अन्योऽन्यनिरपेक्षौ । वैशेषिकशास्त्रप्रणेत्रा कणादेन तत्र द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायात्मकस्य पदार्थषट्कस्य नित्यैकान्तस्य प्रतिपादनात् उभावपि नयौ परस्परनिरपेक्षतया स्थितौ, अतः कणादस्य मिथ्यादृष्टित्वं बोध्यमिति भावः । इति प्रथमो नयः ।

तात्पर्य इन गाथाओं का ऐसा है कि—सामान्य और विशेष ये दोनों परस्पर में अत्यन्त भिन्न हैं और वस्तु से भी अत्यन्त भिन्न हैं ऐसी मान्यता इस नैगमननय की है, अतः यह नय कणाद की तरह मिथ्यादृष्टि वाला है—सम्यग्दृष्टि वाला नहीं है, यद्यपि कणादने द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक नयों को लेकर वैशेषिक दर्शन का कथन किया है—फिर भी वह कथन सम्यक्—निर्दोष नहीं है—क्योंकि—वैशेषिक दर्शन में ये दोनों नय अन्योन्य निरपेक्ष होकर अपने २ विषय का प्रतिपादन करते हैं वैशेषिक शास्त्र प्रणेता कणादने द्रव्य, गुण, कर्म सामान्य, विशेष, और समवाय में ६ पदार्थ नित्यैकान्त रूप से कहे हैं—इस लिये दोनों नय परस्पर निरपेक्ष रूप उनकी मान्यता के अनुसार साबित हो जाते हैं, अतः कणाद में मिथ्यादृष्टिपन इस प्रकार के कथन से प्रमाणित हो जाता है, इस प्रकार का यह कथन प्रथमनय के सम्बन्ध में प्रकट किया अब संग्रह नयका स्वरूप कथन इस प्रकार से हैं—

આ ગાથાઓનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે—સામાન્ય અને વિશેષ એ બન્ને પરસ્પરથી અત્યન્ત ભિન્ન છે, અને વસ્તુની દૃષ્ટિએ પણ અત્યન્ત ભિન્ન છે, આ પ્રકારની નૈગમનયની માન્યતા છે. તેથી આ નય (આ નયને માનનારો) કણાદની જેમ મિથ્યાદૃષ્ટિવાળો છે—સમ્યગ્દૃષ્ટિવાળો નથી. જો કે કણાદે દ્રવ્યાર્થિક અને પર્યાયાર્થિક નયને આધારે વૈશેષિક દર્શનનું કથન કર્યું છે, પરન્તુ તે કથન સમ્યક્ (નિર્દોષ) નથી, કારણ કે વૈશેષિક દર્શનમાં આ બન્ને નય પરસ્પર નિરપેક્ષ રહીને પોતપોતાના વિષયનું પ્રતિપાદન કરે છે. વૈશેષિક શાસ્ત્રના પ્રણેતા કણાદે દ્રવ્ય, ગુણ, કર્મ, સામાન્ય, વિશેષ અને સમવાયમાં પદાર્થ નિત્યૈકાન્ત રૂપે જ પ્રતિપાદિત કરેલ છે તેથી તેની માન્યતા પ્રમાણે તો બન્ને નય પરસ્પર નિરપેક્ષ રૂપ સાબિત થઈ જાય છે. આ પ્રકારના કથન દ્વારા કણાદમાં મિથ્યાદૃષ્ટિતા સિદ્ધ થઈ જાય છે પ્રથમ નયના

तथा—संग्रहः–संग्रहणं भेदानामिति संग्रहः, सगृह्णाति वा भेदान् संगृह्यन्ते वा भेदा येन स संग्रहः। तदुक्तम्—

"संहणं संगगिण्हइ, संगिज्झंते व तेण जे भेया। तो संगहो—"

छाया—संग्रहणं संगृह्णाति संगृह्यन्ते वा तेन ये भेदाः। ततः संग्रहः–इति।

यद्वा–सामान्यमात्रम् अशेषविशेषरहितं सत्त्वद्रव्यत्वादिकं संगृह्णातीत्येवंशीलः, सम्=एकीभावेन पिण्डीभूततया विशेषराशिं गृह्णातीति वा संग्रहः। तदुक्तम्—"सामान्यमात्रग्राही परामर्शः संग्रहः" इति। अयमर्थः–स्वजाते दृष्टेष्टाभ्यामविरोधेन विशेषाणामेकतया यद् ग्रहणं स संग्रहः, इति। अत्रेदं बोध्यम्–सामान्यप्रतिपादनपरोऽयं नयः सामान्यमेव गृह्णाति न विशेषम्। अयं चैवं विप्रतिपद्यते–विशेषाः सामान्यतोऽर्थान्तरभूताः स्युरनर्थान्तरभूता वा? यद्यर्थान्तरभूताः, तर्हि

भेदों का ग्रहण करना, अथवा जो भेदों को ग्रहण करता है, या जो भेदों को ग्रहण करता है अथवा–भेद जिसके द्वारा गृहीत होते हैं वह संग्रह हैं–कहा भी है––"संगहणं संगिण्हइ" इत्यादि।

यद्वा अशेष विशेष रहित सत्व, द्रव्यत्वादि रूप सामान्य मात्र को जो ग्रहण करता है वह–संग्रह है, अर्थात्–समरूप से–पिण्डीभूत रूप से–जो विशेष राशि को ग्रहण करता है–तदुक्तम्–"सामान्यमात्र ग्राही परामर्शः संग्रहः" प्रत्यक्ष एवं अनुमान से जहां विरोध न आवे इस रूप से अपनी जाति के विशेषों का एक रूप से जो ग्रहण किया जाता है–वह संग्रह है, यह नय केवल सामान्य मात्र का कथन करता है–क्योंकि यह उसे ही ग्रहण करता है–विशेष को नहीं इस विषय

વિષયમાં આ પ્રકારનું સ્પષ્ટીકરણ કરીને હવે સૂત્રકાર સંગ્રહનય નામના બીજા નયનાસ્વરૂપનું સ્પષ્ટીકરણ કરે છે—

ભેદોને ગ્રહણ કરવા, અથવા જે ભેદોને ગ્રહણ કરવાનું થાય છે, અથવા જે ભેદોને ગ્રહણ કરે છે અથવા ભેદ જેના દ્વારા ગૃહીત થાય છે તે નયનું નામ સંગ્રહનય છે. કહ્યું પણ છે કે: "संगहणं सगिण्हइ" ઇત્યાદિ—

અથવા—અશેષ વિશેષ રહિત સત્વ, દ્રવ્યત્વાદિ રૂપ સામાન્ય માત્રને જે ગ્રહણ કરે છે તે સંગ્રહનય છે. એટલે કે સમરૂપે–પિંડીભૂત રૂપે–જે વિશેષ રાશિને ગ્રહણ કરે છે–"सामान्यमात्रग्राही परामर्शः संग्रहः" પ્રત્યક્ષ અનુમાન દ્વારા જ્યાં વિરોધ ન આવે તે પ્રકારે પોતાની જાતિના વિશેષોને જે એક રૂપે ગ્રહણ કરવામાં આવે છે, તેનું નામ સંગ્રહ છે. આ નય કેવળ સામાન્ય માત્રનું જ કથન કરે છે, કારણ કે તે તેને જ ગ્રહણ કરે છે–વિશેષને ગ્રહણ

न सन्ति ते, सामान्यादर्थान्तरत्वात् खपुष्पवत् । अथानर्थान्तरभूताः, तर्हि सामान्यमात्रं ते, तदव्यतिरिक्तत्वात् तत्स्वरूपवदिति । तदुक्तम्—

" सदिति भणियम्मि जम्हा सव्वत्थाणुप्पवत्तए बुद्धी ।
तो सव्वं तम्मत्तं, नत्थि तदत्थंतरं किंचि ॥ १ ॥
कुंभो भावाऽणन्नो, जइ तो भावो अहन्नहाऽभावो ।
एवं पडादयो वि हु, भावाऽनन्नंति तम्मत्तं ॥ २ ॥

छाया—सदिति भणिते यस्मात् सर्वत्रानुप्रवर्तते बुद्धिः ।
ततः सर्वं तन्मात्रं नास्ति तदर्थान्तरं किंचित् ॥ १ ॥
कुंभो भावादनन्यो, यदि ततो भावोऽथान्यथा अभावः ।
एवं पटादयोऽपि खलु भावादनन्या इति तन्मात्रम् ॥ २ ॥ इति ।

अयमर्थः—' सत् ' इति भणिते-उक्ते सति यस्मात् सर्वत्र=सर्वेषु पदार्थेषु बुद्धिः अनुप्रवर्त्तते, सर्वोऽपि पदार्थः सत्तात्वेनानुगतो भवतीति भावः । ततः=

में इस नय का ऐसा कहना है-कि विशेष सामान्य से भिन्न हैं या-अभिन्न हैं, यदि सामान्य से वे भिन्न होने के कारण स्वतंत्र सत्ता ही सिद्ध नहीं हो सकती है-और यदि वे सामान्य से अभिन्न हैं-तो इस स्थिति में वे विशेष न कहलाकर सामान्य ही कहलावेंगे-जैसे सामान्यका स्वरूप सामान्य से अभिन्न होने के कारण सामान्य कहलाता है । कहा भी है—" सदिति भणियम्मि " इत्यादि ।

जब " सत् " इस प्रकार कहा जाता है तब समस्त पदार्थों में सत्ता होने के कारण उनका " सत " इस पद से ग्रहण हो जाता है

કરતો નથી. આ વિષયને અનુલક્ષીને આ નયની એવી માન્યતા છે કે વિશેષ સામાન્ય કરતાં ભિન્ન છે, કે અભિન્ન છે તે પ્રશ્નનો વિચાર કરવો જોઇએ. જો સામાન્ય કરતાં તે ભિન્ન હોય તો તેમની જે સ્વતંત્ર સત્તા હોવી જોઇએ, તે સિદ્ધ થવી જોઇએ, પરન્તુ તેમની સ્વતંત્ર સત્તા (અસ્તિત્વ) તો સિદ્ધ થતી નથી, અને જો તેઓ સામાન્ય કરતાં અભિન્ન હોય, તો આ સ્થિતિમાં તેમને વિશેષ રૂપે ઓળખવાને બદલે સામાન્ય રૂપે જ ઓળખવા જોઇએ. જેવી રીતે સામાન્યનું સ્વરૂપ સામાન્ય કરતાં અભિન્ન હોવાને કારણે તેમને સામાન્ય જ કહેવાય છે એ જ પ્રમાણે વિશેષોને પણ સામાન્ય રૂપ જ માનવું જોઇએ. કહ્યું પણ છે કે " सदिति भणियम्मि " ઇત્યાદિ—

જ્યારે " सत् " આ પ્રકારે કહેવામાં આવે ત્યારે સમસ્ત પદાર્થોમાં સત્તા (અસ્તિત્વ) હોવાને કારણે તેમનું ' सत् ' આ પદ દ્વારા ગ્રહણ થઇ

तस्मात् कारणात् सर्वं वस्तु तन्मात्रं=सत्तामात्रमस्ति। तत् अर्थान्तरम्=सत्ता-पदार्थाद् भिन्नं किंचित्=किमपि नास्ति। सत्तारूपमेव सर्वं वस्त्विति भावः ॥ १ ॥ अमुमेवार्थं स्पष्टप्रतिपत्तये प्राह–'कुंभो' इत्यादि। कुम्भो यदि भावात्=सत्त्वात् अनन्यः=अभिन्नः, ततः स भाव एव। अन्यथा=कुम्भस्य भावत्वानङ्गीकारे तु तस्य अभाव एव स्यात्। एवं पटादयोऽपि पदार्थाः भावादनन्या इति सर्वं वस्तु तन्मात्रं=भावमात्रं विज्ञेयमिति। अयं संग्रहो द्विविधः परोऽपरश्चेति। तत्र–अशेषविशेषेष्वौदासीन्यं भजमानः शुद्धद्रव्यं सन्मात्रमभिमन्यमानः परसंग्रहः,

---

अतः समस्त वस्तुएँ सत्ता मात्र रूप है, इसलिये इस सत्ता से अतिरिक्त और कोई विशेष रूप–पदार्थ नहीं है, कुम्भ यदि सत्त्व रूप धर्म से भिन्न माना जावे तो वह सद्विशिष्ट न होने के कारण अभाव रूप ही हो जावेगा, और यदि वह सत्त्व रूप धर्म से अभिन्न माना जावे तो फिर उससे अभिन्न होने के कारण वह स्वयं सद्रूप हो जाता है, इसी प्रकार से पटादि के सम्बन्ध में भी समझ लेना चाहिये. अतः यह मानना ही पड़ता है कि "सत्" इस प्रकार के कहने पर समस्त पदार्थों में "यह सत् है यह सत् है" इस प्रकारका सत्तानुगत प्रत्यय होता है और वह समस्त पदार्थ सतात्मक है इस बात की पुष्टि कराता है, यह सत्ता सामान्य रूप संग्रह–दो प्रकार का है–एक पर संग्रह और दूसरा अपर संग्रह; इनमें जो–संग्रह अशेष विशेषों में उदासीन बनकर सत्मात्र शुद्ध द्रव्य को मानता है ग्रहण करता है–

જાય છે, તેથી સમસ્ત વસ્તુઓ સત્તા માત્ર રૂપ છે, તે કારણે આ સત્તા વિનાનો કોઈ પણ વિશેષ રૂપ પદાર્થ નથી. જો ઘડાને સત્વ રૂપ ધર્મથી રહિત માનવામાં આવે તો તે સદ્વિશિષ્ટ (સત્‌યુક્ત) નહીં હોવાને કારણે અભાવ રૂપ જ થઈ જશે. અને જો તેને સત્વ રૂપ ધર્મથી અભિન્ન (યુક્ત) માનવામાં આવે તો તે તેનાથી અભિન્ન હોવાને કારણે સ્વયં સદ્રૂપ થઈ જશે. એ જ પ્રમાણે પટાદિના વિષયમાં પણ સમજી લેવું. તેથી એ વાત માનવી જ પડે છે કે 'સત્" આ પ્રકારે કહેતા સમસ્ત પદાર્થોમાં "આ સત્ છે, આ સત્ છે" આ પ્રકારનો સત્તાનુગત પ્રત્યય (અનુભવ) થાય છે અને તે સમસ્ત પદાર્થ સત્તાત્મક (અસ્તિત્વ યુક્ત) છે એ વાતની પુષ્ટિ કરાવે છે. આ સત્તા સામાન્ય રૂપ સંગ્રહનયના નીચે પ્રમાણે બે પ્રકારો છે (૧) પર સંગ્રહ અને (૨) અપર સંગ્રહ.

જે સંગ્રહ અશેષ વિશેષોમાં ઉદાસીન બનીને સત્માત્ર શુદ્ધ દ્રવ્યને માને છે, ગ્રહણ કરે છે, તેને પર સંગ્રહનય કહે છે. જેમકે—"સત્‌ની અવિશેષતાની અપેક્ષાએ આ વિશ્વ એક સત્તા રૂપ છે," આ કથન તથા

यथा-विश्वमेकं सत् अविशेषादिति । तथा-द्रव्यत्वादीन्यवान्तरसामान्यानि मन्वानस्तद्भेदेषु गजनिमीलिकामवलम्बमानोऽपरसंग्रहः, यथा-धर्माधर्माकाश कालपुद्गलजीवद्रव्याणामैक्यं द्रव्यत्वाभेदादिति । इति द्वितीयो नयः २।

तथा-व्यवहारः-व्यवहरणं, व्यवहरतीति वा व्यवहारः, व्यवह्रियते=अपलप्यते सामान्यमनेनेति वा व्यवहारः, विशेषान् वा आश्रित्य व्यवहारपरो नयो व्यवहारः । तदुक्तम्—

" ववहरणं ववहरए, स तेण ववहीरए व सामन्नं ।
ववहारपरो य जओ, विसेसओ तेण ववहारो ॥ १ ॥ "

छाया—व्यवहरणं व्यवहरते स तेन व्यवह्रियते वा सामान्यम् ।
व्यवहारपरश्च यतो विशेषतस्तेन व्यवहारः ॥ १ ॥ इति ।

परसंग्रहनय है, जैसे-सत् की अविशेषता से यह विश्व एक सत्ता रूप है ऐसा कथन तथा-जो संग्रह-द्रव्यत्व आदि अवान्तर सामान्यों को मानता हुआ उनके भेदों में गजनिमीलिका-उपेक्षा भाव रखता है उन्हें गौण करता है वह अपर संग्रहनय है, जैसे-द्रव्यत्व रूप अवान्तर सामान्य की अविशेषता से-अभेद से धर्म, अधर्म, आकाश, काल पुद्गल और जीव इन सब में एकता है ऐसा कथन करना. २ संग्रहनय के विषयभूत सामान्य में भेद का कथन करने वाला जो नय है वह अथवा सामान्य का अपलाप करनेवाला जो नय है वह व्यवहार नय है, अथवा-विशेषों को लेकर वस्तु को व्यवहारपथ में लाने वाला जो नय है-वह व्यवहार नय है कहा भी है—

" ववहरणं ववहरए ' इत्यादि ।

જે સંગ્રહનય દ્રવ્યત્વ આદિ અવાન્તર સામાન્યોને માનતો થકો તેમના ભેદોમાં ગજનિમીલિકાભાવ (ઉપેક્ષા ભાવ) રાખે છે, તેમને ગૌણ માને છે, તે સંગ્રહનયને અપર સંગ્રહનય કહે છે. જેમકે—" અભેદની અપેક્ષાએ ધર્મ, અધર્મ, આકાશ, કાળ, પુદ્ગલ અને જીવ એ બધામાં એકતા છે, " આ પ્રકારનું કથન સંગ્રહનયના વિષયભૂત સામાન્યમાં ભેદનું કથન કરનારો જે નય છે તેને વ્યવહારનય કહે છે અથવા સામાન્યનો અપલાપ કરનારો જે નય છે તેને વ્યવહારનય કહે છે અથવા વિશેષોનો આધાર લઇને વસ્તુને વ્યવહારપથમાં લાવનારો જે નય છે તેને વ્યવહારનય કહે છે.

કહ્યું પણ છે કે " ववहरणं ववहरए " ઈત્યાદિ—

सोऽयं व्यवहारः संग्रहेण गोचरीकृतान सत्त्वादिरूपानर्थान् स्वीकृत्यैव विशेषान् गृह्णाति । यथा-यत्सत् तद् द्रव्यं पर्यायो वा, इत्यादि । अयं भावः-व्यवहारनयो हि विशेषप्रतिपादनपरः । ततश्च संग्रहनयेन 'सत्' इत्युक्ते व्यवहारनयो विशेषानेव घटपटादीन् प्रतिपद्यते, तेषामेव व्यवहारप्रयोजकत्वात्, न तु तदतिरिक्तं सामान्यम्, तस्य व्यवहारायोग्यत्वादिति । तथा च-किं सामान्यं विशेषेभ्यो भिन्नमभिन्नं वा स्यात् ? यदि भिन्नं तर्हि विनापि विशेषानुपलभ्येत ?,

यह व्यवहार नय संग्रह नय के द्वारा विषयभूत किये गये सत्तादिरूप अर्थों को स्वीकार करके ही विशेषों को ग्रहण करता है. जैसे-जो सत् है वह द्रव्य है या पर्याय है ? इत्यादि-व्यवहार नय विशेष के प्रतिपादन करने में तत्पर होता है, अतः जब संग्रह नय यह सत् है ऐसा कहता है-तब व्यवहार नय उससे पूछता है-सत् कौन है-द्रव्य है या पर्याय ? द्रव्यत्व सामान्य या पर्याय सामान्य से व्यवहार चलता नहीं हैं-व्यवहार तो विशेष से चलता है, अतः व्यवहार चलाने के लिये घट पटादिरूप विशेष पदार्थ मानना चाहिये सामान्य तो व्यवहार के अयोग्य हैं । तथा-सामान्य विशेषों से भिन्न है या अभिन्न है ? यदि विशेषों से सामान्य भिन्न है ऐसा कहा जावे-तो विशेषों के विना भी सामान्य की उपलब्धि होनी चाहिये, परन्तु ऐसा होता नहीं है, यदि सामान्य विशेषों से अभिन्न है ऐसा

આ વ્યવહારનય સંગ્રહનય દ્વારા વિષયભૂત કરવામાં આવેલા સત્તાદિ રૂપ અર્થોનો સ્વીકાર કરીને જ વિશેષોને ગ્રહણ કરે છે. જેમકે આ નય એવી દલીલ કરે છે કે "જે સત્ છે તે દ્રવ્ય છે કે પર્યાય છે ?" ઇત્યાદિ.

વ્યવહારનય વિશેષોનું પ્રતિપાદન કરવાને તત્પર રહે છે. તેથી જ્યારે સંગ્રહનય "આ સત્ છે" એવું પ્રતિપાદન કરે છે, ત્યારે વ્યવહારનય (તે નયવાદી) એવી દલીલ કરે છે કે "સત કોણ છે-દ્રવ્ય સત્ છે કે પર્યાય સત્ છે ?"

દ્રવ્યત્વ સામાન્ય કે પર્યાય સામાન્ય વડે વ્યવહાર ચાલતો નથી, વ્યવહાર તો વિશેષ વડે ચાલે છે, તેથી વ્યવહાર ચલાવવાને માટે ઘટ, પટાદિ રૂપ વિશેષ પદાર્થને માનવા જોઈએ, સામાન્ય તો વ્યવહારને યોગ્ય નથી, અયોગ્ય છે તથા બીજો એવો પ્રશ્ન કરવામાં આવે છે કે-"સામાન્ય વિશેષો કરતાં ભિન્ન છે કે અભિન્ન છે ? જો એવું કહેવામાં આવે કે સામાન્ય વિશેષો કરતાં ભિન્ન છે, તો વિશેષો વિના પણ સામાન્યની ઉપલબ્ધિ (પ્રાપ્તિ) થવી

न चोपलभ्यते । अथाभिन्नं तर्हि विशेषमात्रं तत् तदव्यतिरिक्तत्वात् तत्स्वरूपवदिति ।
तदुक्तम्—" उवलंभव्ववहारा भावाओ निव्विसेसभावाओ ।
तं नत्थि खपुप्फंपिव संति विसेसा सपच्चक्खं ॥ १ ॥ "
छाया—उपलम्भव्यवहाराभावात् निर्विशेषभावात् ।
तन्नास्ति खपुष्पमिव सन्ति विशेषाः स्वप्रत्यक्षम् ॥ १ ॥ इति ।

तथा—लोकसंव्यवहारपरोऽयं व्यवहारनयः । लोकसंव्यवहारो हि प्राचुर्येणैव भवति यथा—कस्यांचिद् वाटिकायां जम्बूपनसादीनां वृक्षाणां सद्भावेऽप्या-

---

कहा जावे तो वह विशेषों से अभिन्न होने के कारण वह सामान्य नहीं कहला सकता है-वह तो विशेष के स्वरूप की तरह विशेष ही कहलावेगा कहा भी है-" उवलंभव्ववहाराभावाओ " इत्यादि ।

विशेष रहित सामान्य की कहीं पर भी उपलब्धि नहीं होती है, तथा सामान्य से कोई भी व्यवहार सधता नहीं है, अतः सामान्य की स्वतंत्र रूप से ख पुष्प की तरह कोई सत्ता नहीं है, जो प्रत्यक्ष में दिखलाई पड़ता है वह सब विशेष है, यह नय जैसे भी लोक व्यवहार चल सकता है उसके अनुसार वस्तु का भेद प्रभेद पूर्वक वस्तुको व्यवहार पथ में लाता है, इसी लिये यह नय लोक संव्यवहारपरक माना गया है, लोक का व्यवहार अधिकता के अनुसार चलता है, जैसे किसी वाटिका में जामुन, पनस आदि के वृक्षों के होने पर

જોઈએ, પરન્તુ એવું બનતું નથી જો એવું કહેવામાં આવે કે સામાન્ય વિશેષો કરતાં અભિન્ન છે, તો તે વિશેષોથી અભિન્ન હોવાને કારણે તેને સામાન્ય કહી શકાય નહીં-તેને તો વિશેષના સ્વરૂપની જેમ વિશેષ જ કહેવાશે.

કહ્યું પણ છે કે " ઉવલંભવ્વવહારાભાવાઓ " ઈત્યાદિ.

વિશેષ રહિત સામાન્યની ઉપલબ્ધિ કોઈ પણ જગ્યાએ સંભવી શકતી નથી તથા સામાન્ય વડે કોઈ પણ વ્યવહાર સાધી શકાતો નથી, તેથી આકાશ પુષ્પની જેમ સામાન્યની સ્વતંત્ર રૂપે કોઈ પણ સત્તા જ સંભવી શકતી નથી. જે પ્રત્યક્ષ દેખાય છે તે તો સઘળું વિશેષ રૂપ જ હોય છે. લોકોનો વ્યવહાર જેવી રીતે ચાલી શકે એવી જ રીતે આ નય વસ્તુનાં ભેદ પ્રભેદપૂર્વક વસ્તુને વ્યવહારપથમાં લાવે છે. તેથી જ આ નયને લોક સંવ્યવહારપરક માનવામાં આવ્યો છે લોકવ્યવહાર અધિકતા અનુસાર ચાલે છે. જેમકે કોઈ ઉપવનમાં જાંબૂ, ફણસ વગેરેનાં વૃક્ષો થોડાં થોડાં હોય અને આંબા

म्राणां बहुतरत्वेनाम्रवाटिकेति व्यवहारो भवति । यथा भ्रमरादीनां पञ्चवर्णात्मकत्वेऽपि कृष्णवर्णस्य बहुतरत्वात्तेनैव तत्र व्यवहारो भवति । अत-एवायं नयः बहुतरपक्षपाती, तदतिरिक्तांस्तु सतोऽपि मुञ्चति । तदुक्तम्—

" बहुतरओत्ति य तं चियं, गमेइ संते वि सेसए मुयइ ।
संववहारपरतया, ववहारो लोगमिच्छंतो ॥ १ ॥ "

छाया—बहुतरक इति च तमेव गमयति सतोऽपि शेषकान् मुञ्चति ?
संव्यवहारपरतया व्यवहारो लोकमिच्छन् ॥ १ ॥ इति तृतीयो नयः ३।

तथा—ऋजुसूत्रः–ऋजु=अतीतानागतकालपरित्यागाद् वर्त्तमानं वस्तु सूत्रयति=गमयतीति ऋजुसूत्रः । अत्रेदं बोध्यम्–अतीतानागतकालिकवस्तूनां योऽ-

---

भी यदि उसमें आम्र के वृक्ष अधिक हैं तो वह वाटिका उन आम्र वृक्षों की अधिकता को लेकर " आम्रवाटिका " इस रूप से व्यवहृत होने लगती है, तथा जैसे भ्रमर आदिकों में पांचों वर्णों का सद्भाव पाया जाता है, परन्तु कृष्ण वर्ण की इसमें प्रचुरता रहती है तो लोग " भ्रमर काला है " इस रूप से उसे व्यवहृत करते हैं, इसी प्रकार से यह व्यवहारनय भी बहुतर में पक्षपात वाला होता है, बहुतर से अतिरिक्तों को होने पर भी छोड़ देता है–कहा भी है—

" बहुतर ओत्तियतं चिय " इत्यादि ।

ऋजुसूत्रनय—अतीत और अनागत काल को छोड़कर जो केवल वर्तमान क्षणालिङ्गित वस्तु का प्रतिपादन करता है उसे कहता है–वह नय ऋजुसूत्रनय है, अतीत अनागतकाल सम्बन्धी वस्तु की मान्यता

ઘણાં જ હોય તો તે ઉપવનને ‘ આમ્રવાટિકા ’ કહેવામાં આવે છે. આમ્રવૃક્ષોની અધિકતાને કારણે આ પ્રકારનો લોકવ્યવહાર ચાલે છે. વળી ભ્રમર આદિકોમાં પાંચે વર્ણોનો સદ્‌ભાવ હોવા છતાં તેમાં કૃષ્ણવર્ણની પ્રચુરતા હોવાને કારણે લોકો કહે છે કે ‘ ભ્રમરનો રંગ કાળો છે ” આ પ્રકારે આ વ્યવહાર નય બહુતરનો (અધિકતરનો) પક્ષપાતી હોય છે. બહુતર સિવાયનાનો સદ્‌ભાવ હોવા છતાં પણ આ નય તેમની ગણુના કરતો નથી.

કહ્યું પણ છે કે " बहुतरओत्तिय त चिय " ઇત્યાદિ—

ઋજુ સૂત્રનય—આ નય અતીત (ભૂતકાલિન) અને અનાગત (ભવિષ્ય) કાળની વસ્તુનું પ્રતિપાદન કરતો નથી, પરન્તુ માત્ર વર્તમાનકાલિન વસ્તુનું જ પ્રતિપાદન કરે છે. અતીત અને અનાગતકાળ સંબંધી વસ્તુની જે માન્યતા

भ्युपगमः, स एव कौटिल्यं, तत्परिहारेण ऋजु=वर्तमानकालिकमेव वस्तु सूत्रयतीति-ऋजुसूत्रः। अथवा-'ऋजुश्रुतः' इतिपक्षे-ऋजु=तथाविधोपकारपरायणत्वात् शेषज्ञानोपेक्षया प्राधान्यात् अकुटिलं श्रुतं=श्रुतज्ञानं यस्य सः। इति। अयं नयो हि वर्तमानकालिकमेव वस्तु आत्मीयत्वेन मनुते। अतीतकालिकवस्तुनो विनष्टत्वात्, अनागतस्य चानुत्पन्नत्वात् दर्शनपथागोचरतयाऽऽकाशकुसुमवत् तदसत्तामेव मनुते। तथा-भिन्नलिङ्गैर्भिन्नवचनैश्चाभिधीयमानमप्येकं वस्तु मनुते। यथा

जो है वह इस नय की दृष्टि से कुटिलता है, इस कुटिलता के परिहार से जो केवल वर्तमान कालिक ही वस्तु है-ऐसी जो प्ररूपणा करता है वही ऋजु सूत्रनय है, जिस क्षण में रसोईया रोटी पका रहा हो उसी क्षण में वह पाचक है-अन्य समय में जब कि वह इस क्रिया को नहीं करता हो तब वह इस नय की मान्यता के अनुसार पाचक नहीं है। अथवा "ऋजुश्रुतः" इस संस्कृत छाया पक्ष में जिस का ज्ञान-श्रुतज्ञान-तथाविध उपकार में परायण होने से शेष ज्ञानों की अपेक्षा प्रधानरूप से अकुटिल है वह ऋजुश्रुत है, यह नय वर्तमान कालिक ही वस्तु को आत्मीयरूप से मानता है, क्योंकि-अतीत कालिक वस्तु को विनष्ट हो जाने के कारण एवं अनागत वस्तु को अनुत्पन्न होने के कारण वह प्रत्यक्ष का विषय नही मानता है किन्तु आकाश कुसुम की तरह उसकी असत्ता ही मानता है, तथा-भिन्न

છે, તે આ નયની દૃષ્ટિએ કુટિલતા છે આ કુટિલતાના પરિત્યાગપૂર્વક જે વર્તમાનકાલિક વસ્તુની જ પ્રરૂપણા કરે છે તે નયને ઋજુ સૂત્રનય કહે છે. જેમકે રસોયો જે ક્ષણે રસોઇ બનાવતો હોય એ જ ક્ષણે તેને રસોયો કહી શકાય છે, અન્ય સમયે જ્યારે તે રસોઇ બનાવતો ન હોય ત્યારે તેને રસોયો કહી શકાય નહી, એવી આ નયની માન્યતા છે. જો ઋજુસૂત્રની સંસ્કૃત છાયા "ઋજુશ્રુતઃ" લેવમાં આવે તો તે પદનો અર્થ આ પ્રમાણે થાય છે— જેનું જ્ઞાન શ્રુતજ્ઞાન-તથાવિધ ઉપકારમાં પરાયણ હોવાથી બાકીના જ્ઞાનોની અપેક્ષાએ પ્રધાનરૂપે અકુટિલ છે, તેનું નામ ઋજુશ્રુત છે. આ નય વર્તમાનકાલિક વસ્તુને જ આત્મીય રૂપ માને છે, કારણ કે અતીતકાલિન વસ્તુને વિનષ્ટ થઈ જવાને કારણે અને ભવિષ્યકાલિન વસ્તુને તે અનુત્પન્ન હોવાને કારણે આ નય પ્રત્યક્ષનો વિષય માનતો નથી, પણ આકાશપુષ્પની જેમ તેની અસત્તા (અવિદ્યમાનતા) જ માને છે. તથા જુદા જુદા લિંગવાળા અને

तटः, तटी, तटम् इति । गुरुर्गुरव इति च । अयं लिङ्गभेदेन तटरूपस्य वस्तुनो वचनभेदेन गुरुरूपस्य च वस्तुनो नानात्वं न मनुते, किन्त्वेकमेव । तथा-नामस्थापनाद्रव्यभावभेदादिकं भिन्नं मनुते । नामादींश्चतुरोऽपि निक्षेपान् सामान्यतो मनुत इति भावः । तदुक्तम्—

"तम्हा निजगं संपयकालीणं लिंगवयणभिन्नं पि ।
नामाइयभेय विहियं, पडिवज्जइ वत्थुउज्जुसुओ ॥ १ ॥"

छाया—तस्मात् निजकं साम्प्रतकालीनं लिङ्गवचनभिन्नमपि ।
नामादिभेदविहितं प्रतिपद्यते वस्तु ऋजु सूत्रः ॥ १ ॥ इति ।

इति चतुर्थो नयः ४ ।

लिङ्गवाले एवं भिन्न वचनवाले शब्दों का यह एक ही अर्थ मानता है जैसे पुल्लिङ्ग तट शब्द का जो अर्थ है वही अर्थ "तटम्" इस नपुंसक लिङ्गवाले तट शब्द का है, और वही अर्थ "तटी" इस स्त्री लिङ्ग वाले तटी शब्द का है, तथा-गुरु इस एक वचनवाले गुरु शब्द का जो अर्थ है-वही द्विवचनवाले और बहुवचनवाले गुरु शब्द का अर्थ है, इस तरह यह ऋजु सूत्रनय लिङ्ग के भेद से और वचन के भेद से उनके वाच्यार्थ में भिन्नार्थता नहीं मानता है, किन्तु इनमें एकार्थता ही मानता है, तथा-नाम इन्द्र, स्थापना इन्द्र, द्रव्य इन्द्र और भाव इन्द्र इन सब में यह इन्द्रादिरूप उनके अर्थ को भिन्न २ मानता है-नामादिक चारों ही निक्षेपों को यह सामान्य रूप से मानता है कहा भी है—"तम्हा निजगं" इत्यादि—

જુદા જુદા વચનવાળા શબ્દોનો આ નય એક જ અર્થ માને છે જેમકે પુલ્લિંગ "તટ" શબ્દનો જે અર્થ થાય છે એજ અર્થ નપુંસક લિંગના "तटम्" શબ્દનો પણ થાય છે અને સ્રીલિંગના "तटी" શબ્દનો પણ એ જ અર્થ થાય છે. એક વચનવાળા ગુરુ પદનો જે અર્થ થાય છે, એ જ અર્થ દ્વિવચન અને બહુવચનવાળા ગુરુ શબ્દનો પણ થાય છે. આ પ્રકારે આ નય લિંગના ભેદથી તથા વચનના ભેદથી તેમના વાચ્યાર્થમાં ભિન્નતાને સ્વીકારતો નથી, પરન્તુ તેમના વાચ્યાર્થમાં એકાર્થતાનો જ સ્વીકાર કરે છે. તથા-નામ ઇન્દ્ર, સ્થાપના ઇન્દ્ર, દ્રવ્ય ઇન્દ્ર અને ભાવ ઇન્દ્ર, એ બધામાં ઇન્દ્રાદિ રૂપ તેમના અર્થને ભિન્ન ભિન્ન માને છે-નામાદિક ચાર નિક્ષેપોને જ આ નય સામાન્ય રૂપે માને છે.

કહ્યું પણ છે કે "तम्हा निजगं" ઇત્યાદિ—

तथा—शब्दः-शपनम्, शपति अर्थं प्रकटीकरोति वाऽसौ शब्दः, शप्यते वस्त्वनेनेति वा शब्दः। तस्यार्थपरिग्रहात् अभेदोपचारात् नयोऽपि शब्द एवोच्यते, यथा-कृतकत्वादिलक्षणहेत्वर्थप्रतिपादकं पदं हेतुरेवोच्यते इति।
तदुक्तम्—" सपणं सवइ स तेणं, व सप्पए वत्थु जं तओ सद्दो।
तस्सत्थ परिग्गहओ, नओवि सद्दोत्ति हेउव्व ॥ १ ॥ "
छाया—शपनं शपति स तेन वा शप्यते वस्तु यत्ततः शब्दः।
तस्यार्थपरिग्रहतो नयोऽपि शब्द इति हेतुरिव ॥ १ ॥ इति।

अयं नयोहि—भावघटमेव घटत्वेन मनुते, तस्यैव जलाहरणोपयोगित्वात्। नामस्थापनाद्रव्यघटानां तु सत्तां न मनुते, जलाहरणकार्यानुपयोगित्वात् खपुष्पवत्। तथा-' तटस्तटी तटम् ' इत्यादि भिन्नलिङ्गान्, ' गुरुर्गुरवः ' इत्यादि-

---

इस गाथा का अर्थ पूर्वोक्त जैसा ही है, जो अर्थ को प्रकट करता है वह अथवा-अर्थ जिसके द्वारा प्रकट किया जाता है वह शब्द है, यहां शब्द के अर्थ के परिग्रहसे एवं शब्द और अर्थ में अभेद के उपचार से नय को भी शब्द रूप ही कह दिया गया है, जैसे कृतकत्व आदि रूप हेतु के अर्थ के प्रतिपादक पदको हेतु ही कह दिया जाता है। कहा भी है—" सवणं सवइ स तेणं " इत्यादि।

यह नय भाव घट को ही घटरूप से मानता है, क्योंकि नाम घट, या स्थापना घट या द्रव्य घट जलाहरण आदि क्रिया में उपयोगी नहीं होते हैं, जलाहरण आदि क्रिया में उपयोगी तो केवल भावघट ही होता है-अतः भावघट ही वास्तविक घट है ऐसी ही मान्यता इस

આ ગાથાનો અર્થ ઉપરના કથનમાં જ સ્પષ્ટ થઇ જાય છે.

શબ્દનય—જે અર્થને પ્રકટ કરે છે તેને શબ્દ કહે છે. અથવા જેના જેના દ્વારા અર્થ પ્રકટ કરાય છે તેનું નામ શબ્દ છે. અહીં શબ્દના અર્થના પરિગ્રહ વડે અને શબ્દ તથા અર્થમાં અભેદના ઉપચારની અપેક્ષાએ નયને પણ શબ્દ રૂપ જ કહી દેવામાં આવ્યો છે. જેમ કૃતકત્વ આદિ રૂપ હેતુના અર્થના પ્રતિપાદક પદને હેતુ જ કહી દેવામાં આવે છે, તેમ નયને પણ અહીં શબ્દ રૂપ કહી દેવામાં આવ્યો છે. કહ્યું પણ છે કે:

" सवणं सवइ स तेण " ઈત્યાદિ—

આ નય ભાવઘટને જ ઘટ રૂપ માને છે, કારણ કે નામઘટ અથવા સ્થાપનાઘટ અથવા દ્રવ્યઘટ પાણી લાવવાની ક્રિયા આદિમાં ઉપયોગી થતો નથી. પાણી ભરી લાવવાની ક્રિયા આદિમાં તો ભાવઘટ જ વાસ્તવિક ઘટ છે, એવી આ નયની માન્યતા છે.

भिन्नवचनांश्च शब्दान् एकत्वेन न मनुते, लिङ्गवचनभेदादेव–स्त्रीपुरुषवत्, कुटा वृक्ष इत्यादिवत्। तथा–' घटः कुटः कुम्भः ' इति स्वपर्यायवाचकशब्दवाच्यमेकमेवमनुते। तदुक्तम्—

" तं चिय रिउसुत्तमयं, पच्चुप्पन्नं विसेसियतरं सो।
इच्छइ भावघडंचिय, जं न उ नामादओ तिन्नि ॥ १ ॥ "

छाया—तदेव ऋजुसूत्रमतं प्रत्युत्पन्नं विशेषिततरं सः।
इच्छति भावघटमेव यत् न तु नामादींस्त्रीन् ॥ १ ॥ इति।

इति पञ्चमो नयः ५।

नय की है, तथा–" तटः तटी, तटम् " इन शब्दों का यह नय एक अर्थ है ऐसा नहीं मानता है, किन्तु एक ही लिङ्गवाले पर्यायवाची शब्दों का एक अर्थ है ऐसा मानता है, भिन्न लिङ्गवाले पर्यायवाची शब्दों का अर्थ भिन्न २ है ऐसा मानता है, तथा एक लिङ्गवाले पर्यायवाची शब्द यदि भिन्न २ विभक्ति वाले हैं–तो इनका भी अर्थ भिन्न २ है, किन्तु यदि वे समानवचन वाले हैं तो इनका अर्थ एक है ऐसा कथन इस नय का है, तात्पर्य इस कथन का ऐसा है–कि भिन्न लिङ्गवाले, भिन्न वचन वाले जो शब्द है, उनका तो अर्थ भिन्न है, और जो शब्द समान लिङ्गवाले और समान वचनवाले है उनका अर्थ एक है, स्त्री पुरुष शब्दों में लिङ्ग भेद से भिन्नता है और " कुटा वृक्षः " इन में वचन भेद से भिन्नता है, परन्तु घटः कुंभः, कुटः " इन में

તથા—" તટ. તટી, તટમ્ " આ ત્રણ જુદા જુદા લિંગવાળા શબ્દોનો એક જ અર્થ થાય છે, એવું આ નય માનતો નથી, પરન્તુ આ નય એવું માને છે કે એક જ લિંગવાળા પર્યાયવાચી શબ્દોનો એક જ અર્થ થાય છે, અને જુદાં જુદાં લિંગવાળા પર્યાયવાચી શબ્દોનો જુદો જુદો અર્થ થાય છે. વળી આ નય એવું માને છે કે એક જ લિંગવાળા પર્યાયવાચી શબ્દો જો જુદી જુદી વિભક્તિવાળા હોય, તો તેમનો અર્થ જુદો જુદો થાય છે, પરન્તુ જો તેઓ સમાન વચનવાળા હોય, તો તેમનો અર્થ એક જ થાય છે. આ કથનનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે—

જુદા જુદા લિંગવાળા અને જુદા જુદા વચનવાળા જે શબ્દો છે તેમનો અર્થ તો જુદો જુદો જ થાય છે, પરન્તુ સમાન લિંગવાળા અને સમાન વચનવાળા શબ્દોનો અર્થ સમાન જ થાય છે. " સ્ત્રી અને પુરુષ " આ બે શબ્દોમાં લિંગભેદને કારણે ભિન્નતા છે, પરન્તુ " ઘટઃ, કુંભઃ, કુટઃ " આ ત્રણે પદો સમાન લિંગવાળા અને સમાન વચનવાળા હોવાથી તેમના અર્થમાં

तथा—समभिरूढः-पर्यायशब्देषु निरुक्तिभेदेन भिन्नमर्थं समभिरोहति यः स समभिरूढः, नानार्थेषु नानासंज्ञासमभिरोहणपरो नयविशेष इत्यर्थः। उक्तं च—" जं जं सन्नं भासइ, तं तं चिय समभिरोहए जम्हा।
सन्नंतरत्थ विमुहो, तओ नओ समभिरूढोत्ति ॥ १ ॥ "
छाया—यां यां संज्ञां भाषते तां तामेव समभिरोहति यस्मात्।
संज्ञान्तरस्थ विमुखस्ततो नयः समभिरूढ इति ॥ १ ॥ इति।

अयं नयो हि घटपटादिवत् घटकुटादीन् शब्दान् भिन्नप्रवृत्तिनिमित्तत्वात् भिन्नार्थगोचरान् मन्यते। अयं भावः-' घट ' शब्दस्य ' घट चेष्टायाम् ' इति

कोई भिन्नता नहीं है, क्योंकि ये समान लिङ्गवाले और समान वचनवाले शब्द है। कहा भी है—" तं चिय रिउसुत्तमयं " इत्यादि—

इस प्रकार के स्वरूपवाला यह ५ वां नय है। जैसे कि समान लिङ्गवाले और समान वचन वाले शब्दों में एकता का प्रतिपादन शब्द नय करता है-ठीक इससे विपरीत कथन समभिरूढ नयका है इस नय का ऐसा कहना है कि निरुक्ति के भेद से समान लिङ्गवाले और समान वचनवाले शब्दों में भी भिन्नता है जितने शब्द हैं उतने ही उनके अर्थ हैं—ऐसा ही कथन इस नय का है, कहा भी है—

" जं जं सन्नं भासइ " इत्यादि—

यह नय घट पट आदि शब्दों की तरह घट कुट आदि शब्दों को भी भिन्न २ प्रवृत्ति के निमित्तवाले होने से भिन्न २ अर्थवाले

કોઈ ભિન્નતા નથી. " કુટાઃ અને વૃક્ષઃ " આ બે પદોના અર્થમાં વચનભેદને કારણે ભિન્નતા છે. કહ્યું પણ છે કે :

" तं चिय रिउ सुत्तमयं " ઈત્યાદિ—

આ પ્રકારના સ્વરૂપવાળો આ પાંચમો નય છે.

સમાન લિંગ (જાતિ) વાળા અને સમાન વચનવાળા શબ્દોમાં એકતા (અભિન્નતા) નું પ્રતિપાદન કરનારો શબ્દનય છે.

સમભિરુઢ નય—શબ્દનય કરતાં વિપરીત માન્યતાવાળો સમભિરુઢ નય આ નયની એવી માન્યતા છે કે નિરુક્તિના ભેદની અપેક્ષાએ સમાન લિંગ-વાળા અને સમાન વચનવાળા શબ્દોમાં પણ ભિન્નતા હોય છે-જેટલા શબ્દ છે એટલા જ તેમના અર્થ છે, એવું આ નય પ્રતિપાદન કરે છે.

કહ્યું પણ છે કે " जं जं सन्नं भासइ " ઈત્યાદિ—

આ નય, ઘટ, પટ આદિ શબ્દોની જેમ ઘટ, કુટ આદિ શબ્દોને પણ જુદા જુદા અર્થવાળા માને છે, કારણ કે ઘટ, કુટ આદિ શબ્દો જુદી જુદી

धातोर्निष्पन्नत्वाद् विशिष्टचेष्टावत्त्वं प्रवृत्तिनिमित्तम्, 'कुट' शब्दस्य 'कुट कौटिल्ये' इति धातोर्निष्पन्नत्वात् कौटिल्यं प्रवृत्तिनिमित्तम्, इति प्रवृत्तिनिमित्त-भेदात् 'घटोऽन्यः कुटोऽप्यन्य एव' इति समभिरूढनयो मन्यते इति। इति षष्ठो नयः ६।

तथा—एवम्भूतः—यत्क्रियाविशिष्टोऽर्थः शब्देनोच्यते तां क्रियां कुर्वद् वस्त्वेवम्भूतम् उच्यते, तत्प्रतिपादको नयोऽप्येवम्भूतः। अयं भावः—घटते=

मानता है, उसका कहना है कि घट और कुट इनका एक अर्थ नहीं होता है-क्योंकि "घट" यह शब्द पदार्थ में तब ही व्यवहृत हो सकता है-कि जब वह घट अर्थ विशेष चेष्टावाला होता है अतः घट अर्थ में "घट शब्द" की प्रवृत्ति का निमित्त उसमें विशिष्ट चेष्टावत्ता है। तथा-घट अर्थ में कुट शब्द की प्रवृत्ति तब ही हो सकती है कि जब वह घट कुटिलता संपन्न होता है, चेष्टार्थक घट धातु से घट शब्द बनता है और "कौटिल्यार्थक कुट धातु से कुट शब्द बनता है, इसलिये घट कुट शब्द की प्रवृत्ति के निमित्त में जब भेद है तो उनके अर्थों में भी भेद है, अतः घट शब्द का अर्थ भिन्न है और कुट शब्द का अर्थ भिन्न है, ६ तथा—जिस क्रिया से विशिष्ट वस्तु जिस शब्द के द्वारा कही जाती है उस क्रिया को करती हुई वस्तु एवंभूत कहलाती है, इस वस्तु का प्रतिपादक जो नय है वह नय भी एवंभूत है, यह नय ऐसा कहता है कि जब घट स्त्री

પ્રવૃત્તિના નિમિત્તવાળા હોય છે. આ નય એવું પ્રતિપાદન કરે છે કે 'ઘટ' અને 'કુટ' આ બન્ને પદો એક જ અર્થના વાચક નથી, કારણુ કે ઘટ નામના પદાર્થમાં ઘટ શબ્દનો વ્યવહાર ત્યારે જ થઈ શકે છે કે જ્યારે તે ઘટ અર્થ વિશેષ ચેષ્ટાવાળો હોય છે. તેથી ઘટ અર્થમાં 'ઘટ શબ્દ" ની પ્રવૃત્તિનું નિમિત્ત તેમાં વિશિષ્ટ ચેષ્ટાવત્તા છે. તથા ઘટ અર્થમાં કુટ શબ્દની પ્રવૃત્તિ ત્યારે જ હોઇ શકે છે કે જ્યારે તે ઘટ કુટિલતા સંપન્ન હોય છે. ચેષ્ટાર્થક 'घट्' ધાતુમાંથી 'ઘટ' શબ્દ બને છે અને કૌટિલ્યાર્થક 'कुट्' ધાતુમાંથી 'કુટ' શબ્દ બને છે. આ રીતે ઘટ અને કુટ શબ્દોની પ્રવૃત્તિના નિમિત્તમાં ભેદ હોવાને કારણે તેમના અર્થોમાં પણુ ભેદ છે. તે કારણે ઘટ શબ્દનો અર્થ કુટ શબ્દના અર્થ કરતાં ભિન્ન થાય છે.

એવંભૂત નય—જે ક્રિયાથી યુક્ત વસ્તુનું જે શબ્દ દ્વારા કથન થાય છે, તે ક્રિયા કરતી વસ્તુને એવંભૂત કહેવાય છે. આ વસ્તુનું પ્રતિપાદન કરનારો જે નય છે તેને એવંભૂત નય કહે છે. આ નય એવું કહે છે કે જ્યારે

योषिन्मस्तकाद्यारूढः संश्चेष्टते इति घटः, इति योषिन्मस्तकारोहणपूर्वकं चेष्टावान् इति घटशब्दार्थः। ततश्च यथा शब्दार्थस्तथाभूत एव पदार्थः सन्, अन्यथाभूतस्त्वसन्नित्ययं नयो मनुते। एवं चायं नयो विशेषेण शब्दार्थपरो भवति।
तदुक्तम्—

"एवं जहसद्दत्थो, संतो भूओ तयऽन्नहाऽभूओ।
तेणेवंभूयनओ, सद्दत्थपरो विसेसेणं ॥ १ ॥"

छाया—एवं यथा शब्दार्थः सन् भूतः, ततोऽन्यथा अभूतः।
तेन एवम्भूतनयः शब्दार्थपरो विशेषेण ॥ १ ॥ इति।

इति सप्तमो नयः ७।

एते सप्तापि नयाः निरपेक्षा। मिथ्यानया भवन्ति, सापेक्षास्तु सन्नयाः।

के मस्तक पर आरोहण रूप चेष्टा वाला होता है तभी वह घट शब्द का वाच्य होता है, अतः जैसा पट का अर्थ है उसी अर्थवाली यदि वह वस्तु है-तो ही वह उस शब्द के द्वारा कही जा सकती है-उस शब्द का वह वाच्य हो सकती है-इसके विना नहीं हो सकती है, इस तरह से यह नय जिस शब्द का जिस क्रिया रूप अर्थ है उस क्रिया से परिणत समय में ही उस शब्द का अर्थ हो सकता है-अन्य समय में नहीं, कहा भी है—"एवं जह सद्दत्थो" इत्यादि।

इस प्रकार के स्वरूपवाला यह सातवां नय है ७ ये सातों ही नय जब अपने विषय के कथन करने में निरपेक्ष होते हैं अन्यनयों के विषयों का खण्डन करते हैं-और अपने ही विषय का प्रतिपादन

ઘટ (ઘડો) સ્રીના મસ્તક પર આરોહણ રૂપ ચેષ્ટાવાળો હોય છે ત્યારે જ તે ઘટ શબ્દના વાચ્ય રૂપ હોઈ શકે છે. તેથી જેવો પદનો અર્થ હોય, એવા જ અર્થવાળી જો તે વસ્તુ હોય, તો જ તેને એ શબ્દ દ્વારા કહી શકાય છે-તે શબ્દનો તે વાચ્ય હોઈ શકે છે. તેના વિના તે શબ્દનો તે વાચ્ય હોઈ શકતી નથી. આ પ્રકારે જે શબ્દનો જે ક્રિયારૂપ અર્થ છે, તે ક્રિયાથી પરિણત સમયમાં જ તે શબ્દનો અર્થ થઈ શકે છે, અન્ય સમયમાં થઈ શકતો નથી. કહ્યું પણ છે કે "एवं जह सद्दत्थो" ઈત્યાદિ—

આ પ્રકારના સ્વરૂપવાળો આ સાતમો નય છે.

આ સાતે નયો જ્યારે પોતાના વિષયનું કથન કરવામાં નિરપેક્ષ હોય છે-અન્ય નયોના વિષયનું ખંડન કરે છે અને પોતાના જ વિષયનું પ્રતિપાદન

ननु प्रत्येकं नयो मिथ्या, तर्हि तेषां समूहोऽपि मिथ्यैव भवेत्, न हि गर्दभानां समूहोऽश्वो भवति, ततश्च परस्परापेक्षा नयाः सन्नया भवन्तीति यदुक्तं तत्कथं संगच्छेत ? इति चेत्, आह—

अस्माकं मते नयानां मिथ्यात्वमेकान्तेन चाङ्गीक्रियते इति निरपेक्षतावस्थायां मिथ्याभूता अपि नयाः सापेक्षतावस्थायां सन्नया भवन्ति।

तदुक्तम्—"मिथ्यासमूहो मिथ्याचेन्न मिथ्यैकान्तताऽस्ति नः।
निरपेक्षा नया मिथ्या, सापेक्षा अर्थसाधकाः" ॥१॥ इति।

इति न कश्चिद्दोष इति ॥ सू० १३ ॥

यथा शतसंख्यका असंख्यका वा नयाः सप्तस्वेव मूलनयेष्वन्तर्भवन्ति, तथैव वक्तृविशेषात् असंख्येयाः स्वरा अपि सप्तसु स्वरेष्वन्तर्भवन्तीति सप्त स्वरान् प्ररूपयति--

मूलम्—सत्त सरा पण्णत्ता, तं जहा—

सज्जे १, रिसभे २, गंधारे ३, मज्झिमे ४ पंचमे ५ सरे।
धेवए ६ चेव णिसाए ७ सरा सत्त वियाहिया ॥ १ ॥

करते हैं-तब एकान्त प्रतिपादक होने से-ये मिथ्या कहलाते हैं, अर्थात् सापेक्षवाद में ये नय सम्यक् हैं और निरपेक्षवाद में ये नय मिथ्या होते हैं।

शंका—जब निरपेक्षता में मिथ्या ये नय कहे गये हैं-तो फिर सापेक्षावस्था में ये नय मिथ्या नय नहीं कहे जावेंगे ?

उ०—बात तो ठीक है, पर हमारे मत में नयों को एकान्तरूप से मिथ्यारूप नहीं कहा गया है, इस तरह से निरपेक्षावस्था में मिथ्यारूप होने पर भी सापेक्षावस्था में सम्यक् रूप कहे गये हैं। कहा भी है- "मिथ्या समूहो मिथ्या, चेत्" इत्यादि। सू० १३

કરે છે, ત્યારે એકાન્ત પ્રતિપાદક હોવાને કારણે મિથ્યા કહેવાય છે. એટલે સાપેક્ષવાદમાં તે નયો સમ્યક્ ગણાય છે અને નિરપેક્ષવાદમાં તેમને મિથ્યા ગણવામાં આવે છે.

શંકા—જો નિરપેક્ષાવસ્થામાં આ નયોને મિથ્યા કહેવામાં આવ્યા છે, તો સાપેક્ષાવસ્થામાં પણ આ નયોને મિથ્યા શા માટે ન કહેવાય ?

ઉત્તર—જૈન સિદ્ધાંતોએ નયોને એકાન્ત રૂપે મિથ્યારૂપ કહ્યા નથી. આ કારણે નિરપેક્ષાવસ્થામાં મિથ્યારૂપ હોવા છતાં પણ સાપેક્ષાવસ્થામાં તેમને સમ્યક્ રૂપ જ કહ્યા છે કહ્યું પણ છે કે :

"મિથ્યા સમૂહો મિથ્યાચેત્" ઈત્યાદિ. ॥ સૂ. ૧૩ ॥

एएसि णं सत्तण्हं सराणं सत्त सरट्ठाणा पण्णत्ता तं जहा–

सज्जं तु अग्गजिब्भए, उरेण रिसभं सरं ।
कंठुग्गएण गंधारं, मज्झजिब्भाए मज्झिमं ॥ २ ॥
णासाए पंचमं बूया दंतोट्ठेण य धेवयं ।
मुद्धाणेण य णेसायं, सरट्ठाणा वियाहिया ॥ ३ ॥

सत्त सरा जीव निस्सिया पण्णत्ता, तं जहा–

सज्जं रवइ मऊरो, कुक्कुडो रिसहं सरं ।
हंसो णदइ गंधारं, मज्झिमं तु गवेलगा ॥ ४ ॥
अह कुसुमसंभवे काले कोइला, पंचमं सरं ।
छट्ठं च सारसा कोंचा, णिसायं सत्तमं गया ॥ ५ ॥

सत्त सरा अजीवनिस्सिया पण्णत्ता, तं जहा—

सज्जं रवइ मुइंगो, गोमुही रिसहं सरं ।
संखो णदइ गंधारं, मज्झिमं पुण झल्लरी ॥ ६ ॥
चउचलण पइट्ठाणा, गोहिया पंचमं सरं ।
आडंबरो रेवइयं, महाभेरी य सत्तमं ॥ ७ ॥

एएसि णं सत्तसराणं सत्त सरलक्खणा पण्णत्ता, तं जहा–

सज्जेण लभए वित्तिं, कयं च ण विणस्सइ ।
गावो मित्ता य, पुत्ता य, णारीणं चेव वल्लहो ॥ ८ ॥
रिसभेण उ एसज्जं, सेणावच्चं धणाणि य ।
वत्थगंधमलंकारं, इत्थीओ सयणाणि य ॥ ९ ॥

गंधारे गीयजुत्तिण्णा, वज्जवित्ती कलाहिया ।
भवंति कइणो पण्णा, जे अन्ने सत्थपारगा ॥ १० ॥
मज्झिमस्सरसंपन्ना, भवंति सुहजीविणो ।
खायई पीयई देई, मज्झिमं सरमस्सिओ ॥ ११ ॥
पंचमस्सरसंपन्ना, भवंति पुढवीवई ।
सूरा संगहकत्तारो, अणेगगणणायगा ॥ १२ ॥
धेवतस्सरसंपण्णा, भवंति कलहप्पिया ।
साउणिया वग्गुरिया, सोयरिया मच्छबंधाय ॥ १३ ॥
चंडाला मुट्ठिया सेया, जे अन्ने पावकम्मिणो ।
गोघातगा य जे चोरा, णिसायं सरमस्सिया ॥ १४ ॥

एएसिं सत्तण्हं सराणं तओ गामा पण्णत्ता, तं जहा—सज्जगामे १ मज्झिमगामे २ गंधारगामे ३। सज्जगामस्स णं सत्त मुच्छणाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

भंगी १ कोरव्वीया २ हरी ३ य रयणी ४ य सारकंता ५ य ।
छट्ठी य सारसी ६ णाम, सुद्धसज्जा य सत्तमा ॥ १५ ॥

मज्झिमगामस्स णं सत्त मुच्छणाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

उत्तरमंदा १ रयणी २, उत्तरा ४ उत्तरासमा ४ ।
समोकंता ५ य सोवीरा ६ अवभीरू ७ हवइ सत्तमा ॥१६॥

गंधारगामस्सणं सत्त मुच्छणाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

णंदी य खुड्डिया पूरिमा य चउत्थी य सुद्धगंधारा ।
उत्तरगंधारावि य, पंचमिया हवइ मूच्छा उ ॥ १७ ॥

सुद्धुतरमायामा, सा छट्टी णियमत्तो उ णायव्वा ।
अह उत्तरायता कोडिमा य सा सत्तमी मुच्छा ॥ १८ ॥
सत्त सराओ कओ, संभवंति गेयस्स का भवंति जोणी ?।
इसमया उस्सासा कइ वा गेयस्स आगारा ? ॥ १९ ॥
सत्त सरा णाभीओ, भवंति गीयं च रुइयजोणीयं ।
कपादसमा ऊसासा, तिन्नि य गीयस्स आगारा ॥ २० ॥
आइमिउ आरभंता, समूव्वहंता य मज्झगारम्मि ।
अवसाणे तज्ज विंतो, तिन्नि य गेयस्स आगारा ॥ २१ ॥
छद्दोसे अट्ठगुणे तिन्नि य वित्ताइं दोय भणिईओ ।
जाणाहिइ सो णाहिइ, सुसिक्खिओ रंगमज्झम्मि ॥ २२ ॥
भीयं दुयं रहस्सं, गायंतो मा य गाहि उत्तालं ।
काकस्सरमणुमासं, च होंति गेयस्स छद्दोसा ॥ २३ ॥
पुन्नं १ रत्तं २ च अलंकियं ३ च वत्तं ४ तहा अविग्घुट्ठं ५ ।
मधुरं ६ समं ८ सुललियं ८, अट्ठ गुणा होंति गेयस्स ॥२४॥
उरकंठसिरपसत्थं, च गिज्जई मउरिभिअपद्‌बद्धं ।
समतालपडुक्खेवं, सत्तसरसीहरं गीयं ॥ २५ ॥
निद्दोसं सारवंतं च, हेउजुत्तमलंकियं ।
उवणीयं सोवयारं च, मियं महुरमेव य ॥ २६ ॥
सममद्धसमं चेव, सव्वत्थ विसमं च जं ।
तिन्नि वित्तप्पयाराइं, चउत्थं नोवलब्भई ॥ २७ ॥

सक्कया पागया चेव, दुहा भणिईओ आहिया ।
सरमंडलम्मि गिज्जंते, पसत्था इसिभासिया ॥ २८ ॥
केसी गायइ महुरं ?, केसी गायइ खरं च रुक्खं च ? ।
केसी गायइ चउरं ?, केसि विलंबं ? दुतं केसी ॥ २९ ॥
विस्सरं पुण केरिसी ? ॥
सामा गायइ महुरं, काली गायइ खरं च रुक्खं च ।
गोरी गायइ च उरं, काण विलंवं दुतं च अंधा ॥ ३० ॥
विस्तरं पुण पिंगला ॥
तंतिसमं तालसमं, पादसमं लयसमं गहसमं च ।
नीससिऊ ससियसमं, संचारसमं सरा सत्त ॥ ३१ ॥
सत्त सरा य तओ गामा, मुच्छणा एगवीसंई ।
ताणा एगूण पण्णासा, समत्तं सरमंडलं ॥ ३२ ॥
इइ सरमंडलं समत्तं ॥ सू० १४ ॥

छाया—सप्त स्वराः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—

षड्ज ऋषभो गान्धारो मध्यमः पञ्चमः स्वरः ।
धैवतश्चैव निषादः स्वराः सप्त व्याख्याताः ॥ १ ॥

एतेषां खलु सप्तानां स्वराणां सप्त स्वरस्थानानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—

षड्जं तु अग्रजिह्वया, उरसा ऋषभं स्वरम् ।
कण्ठोद्गतेन गान्धारं, मध्यजिह्वया मध्यमम् ॥ २ ॥
नासया पञ्चमं ब्रूयाद् दन्तोष्ठेन च धैवतम् ।
मूर्ध्ना च निषादं, स्वरस्थानानि व्याख्यातानि ॥ ३ ॥

सप्त स्वरा जीवनिश्रिताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—

षड्जं रौति मयूरः, कुक्कुटः ऋषभं स्वरम् ।
हंसो नदति गान्धारं, मध्यमं तु गवेलकाः ॥ ४ ॥
अथ कुसुमसंभवे काले, कोकिलाः पञ्चमं स्वरम् ।
षष्ठं च सारसाः क्रौञ्चाः, निषादं सप्तमं गताः ॥ ५ ॥

सप्त स्वरा अजीवनिश्रिताः प्रज्ञप्ताः तद्यथा—

षड्जं रौति मृदङ्गो, गोमुखी ऋषभं स्वरम् ।
शङ्खो नदति गन्धारं, मध्यमं पुनर्झल्लरी ॥ ६ ॥
चतुश्चरणप्रतिष्ठाना, गोधिका पञ्चमं स्वरम् ।
आडम्बरो धैवतिकं, महाभेरी च सप्तमम् ॥ ७ ॥

एतेषां खलु सप्तस्वराणां सप्तस्वरलक्षणानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—

षड्जेन लभते वृत्तिं, कृतं च न विनश्यति ।
गावो मित्राणि च पुत्राश्च, नारीणां चैव वल्लभः ॥ ८ ॥
ऋषभेण तु ऐश्वर्यं, सेनापत्यं धनानि च ।
वस्त्रं गन्धमलङ्कारं स्त्रियः शयनानि च ॥ ९ ॥
गान्धारे गीतयुक्तिज्ञाः, वर्यवृत्तयः कलाधिकाः ।
भवन्ति कृतिनः प्राज्ञाः, ये अन्ये शास्त्रपारगाः ॥ १० ॥
मध्यमस्वरसम्पन्नाः, भवन्ति सुखजीविनः ।
खादति पिबति ददाति, मध्यमं स्वरमाश्रितः ॥ ११ ॥
पञ्चमस्वरसम्पन्ना भवन्ति पृथिवीपतयः ।
शूराः संग्रहकर्तारः, अनेकगणनायकाः ॥ १२ ॥
धैवतस्वरसम्पन्ना भवन्ति कलहप्रियाः ।
शकुनिका वागुरिकाः, शौकरिका मत्स्यबन्धाश्च ॥ १३ ॥
चाण्डाला मौष्टिकाः सेयाः, ये अन्ये पापकर्मिणः ।
गोघातकाश्च ये चौराः, निषादं स्वरमाश्रिताः ॥ १४ ॥

एतेषां सप्तानां स्वराणां त्रयो ग्रामाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–षड्जग्रामः मध्यमग्रामः गान्धारग्रामः षड्जग्रामस्य खलु सप्तमूर्च्छनाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—

मङ्गी कौरवीया, हरिश्च रजनी च सारकान्ता च ।
षष्ठी च सारसी नाम, शुद्धषड्जा च सप्तमी ॥ १५ ॥

मध्यमग्रामस्य खलु सप्त मूर्च्छनाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—

उत्तरमन्दा रजनी, उत्तरा उत्तरासमा ।
समवक्रान्ता च सौवीरा अभीरुर्भवति सप्तमी ॥ १६ ॥

गान्धारग्रामस्य खलु सप्त मूर्च्छनाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—

नन्दी च क्षुद्रिका पूरिमा च चतुर्थीव शुद्धगान्धारा ।
उत्तरगान्धारापि च, पञ्चमिका भवति मूर्च्छा तु ॥ १७ ॥
सुष्ठुतरायामा सा, षष्ठी नियमशस्तु ज्ञातव्या ।
अथ उत्तरायता कोटिमा च सा सप्तमी मूर्च्छा ॥ १८ ॥

सप्त स्वराः कुतः सम्भवन्ति ?, गेयस्य का भवन्ति योनयः ? ।
कति समया उच्छ्वासाः ?, कति वा गेयस्य आकाराः ? ॥ १९ ॥
सप्तस्वरा नाभितो भवन्ति, गीतं च रुदितयोनिकम् ।
पादसमा उच्छ्वासाः, त्रयश्च गीतस्य आकाराः ॥ २० ॥
आदिमृदुम् आरभमाणाः, समुद्वहन्तश्च मध्यकारे ।
अवसाने क्षपयन्तः, त्रयश्च गेयस्य आकाराः ॥ २१ ॥
षड् दोषान् अष्ट गुणान्, त्रीणि च वृत्तानि द्वे च भणिती ।
ज्ञास्यति स गास्यति, सुशिक्षितो रङ्गमध्ये ॥ २२ ॥
भीतं द्रुतं ह्रस्वं गायन्, मा च गाय उत्तालम् ।
काकस्वरमनुनासंच, भवन्ति गेयस्य षड् दोषाः ॥ २३ ॥
पूर्णं रक्तं च अलङ्कृतं च, व्यक्तं तथा अविघुष्टम् ।
मधुरं समं सुललितम्, अष्टगुणा भवन्ति गेयस्य ॥ २४ ॥
उरः कण्ठ शिरः प्रशस्तं च, गीयते मृदुरिभितपदबद्धम् ।
समतालप्रत्युत्क्षेपं, सप्तस्वरसीभरं गीतम् ॥ २५ ॥
निर्दोषं सारवच्च, हेतुयुक्तमलङ्कृतम् ।
उपनीतं सोपचारं च, मितं मधुरमेव च ॥ २६ ॥
सममर्द्धसमं चैव, सर्वत्रविषमं च यत् ।
त्रयो वृत्त प्रकाराश्चतुर्थं नोपलभ्यते ॥ २७ ॥
संस्कृताः प्राकृताश्चैव द्विविधा भणितय आख्याताः ।
स्वरमण्डले गीयन्ते, प्रशस्ता ऋषिभाषिताः ॥ २८ ॥
कीदृशी गायति मधुरं ?, कीदृशी गायति खरं च रूक्षं च ? ।
कीदृशी गायति चतुरं ?, कीदृशी विलम्बं ? द्रुतं कीदृशी ? ॥ २९ ॥

विस्वरं पुनः कीदृशी ? ॥

श्यामा गायति मधुरं, काली गायति खरं च रूक्षं च ।
गौरी गायति चतुरं, काणा विलम्बं द्रुत च अन्धाः ॥ ३० ॥

विस्वरं पुनः पिङ्गला ॥

तन्त्रीसमं तालसमं, पादसमं लयसमं ग्रहसमं च ।
निःश्वसितोच्छ्वसितसमं, संचारसमं स्वराः सप्त ॥ ३१ ॥
सप्तस्वराश्च त्रयो ग्रामाः, मूर्च्छना एकविंशतिः ।
तानाश्च एकोनपञ्चाशत्, समाप्तं स्वरमण्डलम् ॥ ३२ ॥

इति स्वरमण्डलं समाप्तम् ॥ सू० १४ ॥

टीका—' सत्त सरा ' इत्यादि--

स्वराः=ध्वनिविशेषाः सप्त प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-' षड्ज ' इत्यादि ।

तत्र-षड्जः-षड्भ्यो नासिकाकण्ठोरस्तालुजिह्वादन्तेभ्यः स्थानेभ्यो जातः स्वरः। तदुक्तम्-" नासां कण्ठमुरस्तालु, जिह्वां दन्तांश्च संश्रितः ।

षड्भिः संजायते यस्मात्, तस्मात् षड्ज इति स्मृतः ॥ १ ॥ इति ।

तथा-ऋषभः-ऋषभो=वृषभः, तद्वद् यो वर्तते स ऋषभः । तदुक्तम्—

जिस प्रकार शत संख्यक नय अथवा असंख्यक नय सातों ही मूलनयों में अन्तर्भूत हो जाते हैं उसी प्रकार से वक्ता विशेष की अपेक्षा से असंख्यात स्वर भी सातों स्वरों में ही अन्तर्भूत हो जाते हैं. यही प्रकट करने के लिये अब सूत्रकार सात स्वरों का कथन करते हैं-

" सत्त सरा पण्णत्ता "-इत्यादि ।-सूत्र १४

टीकार्थ-ध्वनि विशेष रूप स्वर सात कहे गये हैं-जैसे-षड्ज १ ऋषभ २ गान्धार ३ मध्यम ४, पंचम ५ धैवत ६ और निषाद ७ ॥ १ इन में जो षड्ज स्वर होता है-वह नासिका, कंठ, उर, तालु, जिह्वा और दन्त इन ६ स्थानों से उत्पन्न होता है, कहा भी है—

" नासां कंठ-मुरस्तालुं " इत्यादि ।

ऋषभ नाम बैल का है, इस बैल के स्वर के समान जो स्वर होता है वह ऋषभ स्वर है-कहा भी है—

જેવી રીતે શત સંખ્યક નય અથવા અસંખ્યક નયનો ઉપર્યુક્ત સાત મૂળનયોમાં સમાવેશ થઈ જાય છે, એજ પ્રમાણે વક્તા વિશેષની અપેક્ષાએ અસંખ્યાત સ્વરોનો પણ સાત સ્વરોમાં જ સમાવેશ થઈ જાય છે. એ જ વાત પ્રકટ કરવા માટે સૂત્રકાર હવે સાત પ્રકારના સ્વરોનું નિરૂપણ કરે છે.

" सत्त सरा पण्णत्ता " ઇત્યાદિ—

ટીકાર્થ-ધ્વનિવિશેષ રૂપ સ્વરના સાત પ્રકાર કહ્યા છે-(૧) ષડ્જ, (૨) ઋષભ (૩) ગાન્ધાર, (૪) મધ્યમ, (૫) પંચમ, (૬) ધૈવત અને (૭) નિષાદ.

ષડ્જ સ્વર નાસિકા, કંઠ, ઉર, તાળવું, જીભ અને દાંત, આ ૬ સ્થાનોમાંથી ઉત્પન્ન થાય છે.

કહ્યું પણ છે કે " नासां कंठमुरस्तालुं " ઇત્યાદિ.

બળદને ઋષભ કહે છે. તે ઋષભના સૂર જેવો સ્વર હોય છે, તેને ઋષભસ્વર કહે છે. કહ્યુ પણ છે કે " वायुः समुत्थितो नाभेः " ઇત્યાદિ.

" वायुः समुत्थितो नाभेः कण्ठ शीर्षसमाहतः ।
नर्दत्यृषभवद् यस्मात्तस्मादृषभ उच्यते ॥ १ ॥ इति ।

तथा–गान्धारः–गन्धप्रापकः स्वरविशेषः । तदुक्तम्––

" वायुः समुत्थितो नाभे हृदि कण्ठे समाहतः ।
नानागन्धवहः पुण्यो, गान्धारस्तेन हेतुना " १ ॥ इति ।

तथा––मध्यमः–मध्ये कायस्य भवो मध्यमः । उक्तं च––

" वायुः समुत्थितो नाभे रुरो हृदि समाहतः ।
नाभिं प्राप्तो महानादो, मध्यमत्वं समश्नुते ॥ " १ ॥ इति ।

" वायुः समुत्थितो नाभेः " इत्यादि ।

नाभिस्थान से उत्थित हुआ वायु जब कंठ एवं शीर्ष स्थान से टकराता है तब वह बैल की तरह आवाज करता है, इस कारण इसे ऋषभ कहा जाता है, गन्ध प्रापक जो स्वर विशेष होता है वह गन्धार कहा गया है, कहा भी है––" वायुः समुत्थितो " नाभेः इत्यादि ।

नाभि से उत्पन्न हुई वायु जब हृदय और कंठ में टकरातीहै, तब उस वायु में अनेक प्रकार की गन्ध होती है. इस कारण इस स्वर को गान्धार कहा गया है, जो स्वर शरीर के मध्य में उत्पन्न होता है वह मध्यम स्वर कहा गया है, कहा भी है—

" वायु समुत्थितो नाभेः " इत्यादि ।

नाभि से उत्पन्न हुई वायु उरःस्थान और हृदय स्थानमें जब टकराती है तब वह नाभि स्थान को प्राप्त होकर बहुत बड़ी आवाज को

નાભિ સ્થાનમાંથી ઉત્થિત થયેલો વાયુ જ્યારે કંઠ અને શીર્ષસ્થાનની સાથે અથડાય છે, ત્યારે તે બળદના જેવો અવાજ કરે છે, તે કારણે તે પ્રકારના સ્વરને ઋષભસ્વર કહે છે.

ગન્ધપ્રાપક જે સ્વર હોય છે તેને ગાન્ધાર કહે છે કહ્યું પણ છે કે:
" વાયુઃ સમુત્થિતો નાભે " ઇત્યાદિ.

નાભિમાંથી ઉત્પન્ન થયેલો વાયુ જ્યારે હૃદય અને કંઠ સાથે અથડાય છે, ત્યારે તે વાયુમાં અનેક પ્રકારની ગન્ધ હોય છે. તે કારણે તે સ્વરને ગાન્ધાર સ્વર કહે છે.

જે સ્વર શરીરની મધ્યમાથી ઉત્પન્ન થાય છે તેને મધ્યમસ્વર કહે છે કહ્યું પણ છે કે " વાયુઃ સમુત્થિતો નાભે " ઇત્યાદિ.

નાભિમાંથી ઉત્પન્ન થયેલો વાયુ જ્યારે ઉરસ્થાન અને હૃદયસ્થાન સાથે અથડાય છે, ત્યારે તે વાયુ નાભિસ્થાનને પ્રાપ્ત કરીને ઘણો જ મોટો અવાજ

यद्वा—" तद्वदेवोत्थितो वायुरुरः कण्ठसमाहतः ।
नाभिं प्राप्तो महानादो मध्यस्थस्तेन मध्यमः ॥ १ ॥ " इति ।

तथा—पञ्चमः–पञ्चानां=षड्जादिस्वरानुसारेण पञ्चसंख्यकानां स्वराणां पूरणः स्वरः पञ्चमः । यद्वा–पञ्चसु=नाभ्यादिस्थानेषु मातीति पञ्चमः । तदुक्तम्–

" वायुः समुद्गतो नाभेरुरोहृत्कण्ठमूर्धसु ।
विचरन् पञ्चमस्थानं प्राप्त्या पञ्चम उच्यते ॥ १ ॥ " इति ।

तथा–धैवतः–धावत्यूर्ध्वमिति निरुक्तिवशाद् धैवतः ।

उत्पन्न करती है, इस आवाज का नाम मध्यम स्वर है–अथवा—
" तद्वदेवो त्थितो वायुः " इत्यादि ।

षड्ज आदि स्वरों के अनुसार पांच स्वरों का जो पूरण करने वाला स्वर है वह पंचम स्वर है, अथवा–नाभि आदि पांच स्थानों में जो स्वर समाजाता है वह पंचम स्वर है–कहा भी है–

" वायुः समुद्गतो नाभेः " इत्यादि ।

नाभि से उत्पन्न हुआ वायु जब उरः स्थान, हृदय स्थान, कण्ठस्थान, और मूर्धा स्थान में विचरता हुआ पांचवें स्थान पर आ जाता है–तब वह पंचम स्वर कहा गया है, जो स्वर ऊपर की ओर दौड़ता है–वह धैवत है, तथा जिसमें अन्य स्वर विश्राम पाते हैं वह निषाद स्वर है, धैवत स्वर के विषय में ऐसा कहा गया है––

ઉત્પન્ન કરે છે. આ અવાજનું નામ મધ્યમસ્વર છે. અથવા —
" तद्वदेवोत्थितो वायुः " ઇત્યાદિ

ષડ્જ આદિ સ્વરો પ્રમાણે પાંચ સ્વરોને પૂરણ કરનારો જે સ્વર છે તેને પંચમસ્વર કહે છે. અથવા નાભિ આદિ પાંચ સ્થાનોમાં જે સ્વર સમાઈ જાય છે તેને પંચમસ્વર કહે છે. કહ્યું પણ છે કે :

" वायुः समुद्गतो नाभेः " ઇત્યાદિ.

નાભિમાંથી ઉત્પન્ન થયેલો વાયુ જ્યારે ઉરસ્થાન, હૃદયસ્થાન, કંઠસ્થાન અને મૂર્ધાસ્થાનમાં વિચરતો વિચરતો પાંચમાં સ્થાન પર આવી જાય છે, ત્યારે તેને પંચમ સ્વર કહે છે.

જે સ્વર ઉપરની બાજુએ દોડે છે તેને ધૈવતસ્વર કહે છે. જે સ્વરમાં અન્ય સ્વરો વિશ્રામ પામે છે, તે સ્વરને નિષાદ સ્વર કહે છે.

ધૈવતસ્વરના વિષયમાં એવું કહ્યું છે કે :

उक्तं च—" गत्वा नाभेरधोभागं, बस्तिं प्राप्योर्ध्वगः पुनः ।
धावन्निह च यो याति, कण्ठदेशं स धैवतः ॥ १ ॥ इति ।

तथा-निषादः-निषीदन्ति स्वरा यस्मिन् स निषादः । उक्तं च—
" निषीदन्ति स्वरा यस्मिन्, निषादस्तेन हेतुना ।
सर्वांश्चाभिभवत्येष निषादस्तेन हेतुना ॥ १ ॥ " इति ।

तदेवं सप्त=सप्तसंख्यकाः स्वराः=जीवाजीवाश्रया ध्वनिविशेषाः व्याख्याताः= तीर्थङ्करगणधरैः कथिता इति ।

ननु कार्यं कारणाधीनं, जिह्वा च स्वरस्य कारणम्, सा तु द्वीन्द्रियादित्रस-जीवानामसंख्येयत्वात् असंख्येया, ततश्च स्वराणामप्यसंख्येयत्वं वक्तव्यमिति सप्त-

---

" गत्वा नाभेरधो भागं " इत्यादि ।

नाभिके अधोभाग पर पहुँच कर और फिर बस्ति पर आकर जो वायु कण्ठदेश पर आता है वह धैवत है । निषाद स्वर के विषय में ऐसा कहा गया है--" निषीदन्ति स्वरा यस्मिन् " इत्यादि ।

जिसमें अन्य स्वर ठहरते हैं-विश्राम पाते हैं-और जो अन्य स्वरों को पराभूत कर देता है-वह विषाद स्वर है । इस प्रकार के ये सात स्वर जीव और अजीव के आश्रय भूत ध्वनि विशेष रूप होते हैं । ऐसा तीर्थंकर एवं गणधरोंने कहा है ।

शंका--कारण के आधीन कार्य होता है इस नियम के अनुसार जिह्वा जब स्वर का कारण है तो फिर वे जिह्वाएँ दो इन्द्रिय आदि त्रस जीवो में की असंख्यातता होने के कारण, असंख्यात होनी है, अतः

" गत्वा नाभेरधोभागं " ઇત્યાદિ.

નાભિના-અધોભાગ પર પહોંચીને અને પછી બસ્તિ પર આવીને જે વાયુ કંઠ પ્રદેશ પર આવીને જે સ્વર ઉત્પન્ન કરે છે તેને ધૈવતસ્વર કહે છે. નિષાદ સ્વરના વિષયમાં એવું કહ્યું છે કે :

" निषीदन्ति स्वरा यस्मिन् " ઇત્યાદિ.

જેમાં અન્ય સ્વરો વિશ્રામ પામે છે અને જે અન્ય સ્વરોને પરાભૂત કરી નાખે છે, તે સ્વરનું નામ નિષાદ સ્વર છે.

આ પ્રકારના આ સાત સ્વર જીવો અને અજીવોમાં આશ્રયભૂત ધ્વનિ-વિશેષ રૂપ હોય છે

શંકા—કાર્ય કારણને આધીન હોય છે, આ નિયમ અનુસાર જિહ્વા જો સ્વરમાં કારણભૂત હોય તો દ્વીન્દ્રિય આદિ ત્રસ જીવો અસંખ્યાત હોવાને કારણે જિહ્વાઓ પણ અસંખ્યાત જ હોવી જોઇએ જો જિહ્વાઓ અસં-

स्वरकथनं विरुध्यते ? इति चेद् आह—

विशेषतो यद्यप्यसंख्याताः स्वरास्तथापि ते सामान्यतः सप्तस्वेवान्तर्भवन्तीति-सप्तस्वरा उक्ताः, अथवा-स्थूलस्वरान् गीतं चाश्रित्य सप्त स्वरा उक्ता इति न कश्चिद्विरोधः। उक्तं चात्र—

" कज्जं करणायत्तं, जीहा य सरस्स सा असंखेज्जा।
सरसंखमसंखेज्जा, करणस्स संखयत्ताओ ॥ १ ॥
सत्त य सुत्तनिवद्धा, कह न विरोहो ? तओ गुरू आह।
सुत्ताणुवाई सव्वे, बायरगहणं च गेयं वा ॥ २ ॥"

छाया—कार्यं कारणायत्तं जिह्वा च स्वरस्य सा असंख्येया।
स्वरसंख्या असंख्येया कारणस्या संख्येयत्वात् ॥ १ ॥
सप्त च सूत्रनिबद्धाः, कथं न विरोधः ? ततो गुरुराह।
सूत्रानुपातिनः सर्वे बादरग्रहणं च गेयं वा ॥ २ ॥ इति।

इत्थं स्वरान्नामतो निरूप्य सम्प्रति तत्स्थानान्याह—' एएसि णं सत्तण्हं सराणं' इत्यादि।

स्वरो में भी असंख्यातता होनी चाहिये, फिर यहां स्वरो में सात प्रकारता ही क्यों कही गई है ?

उत्तर—शंका ठीक है, विशेष रूप से यद्यपि स्वर असंख्यात ही है-तब भी वे सामान्य रूप से सात ही जो कहे गये हैं सो उसका कारण यह है कि वे सब सात स्वरों में ही अन्तर्भूत हो जाते हैं। अथवा-स्थूल स्वरों को और गीतों को आश्रित करके स्वर सात कहे गये हैं। इस तरह इस कथन में कोई विरोध नहीं आता है। कहा भी है—

" कज्जं करणायत्तं " इत्यादि।

इन दोनों गाथाओं का अर्थ शंका और उत्तर के अनुसार ही

ખ્યાત હોય તો સ્વરોમાં પણ અસંખ્યાતતા જ હોવી જોઈએ છતાં આપે અહીં સ્વરોના અસંખ્યાત પ્રકારો કહેવાને બદલે સાત જ પ્રકારો શા કારણે કહ્યા છે ?

ઉત્તર—વિશેષ રૂપે તો સ્વરો અસંખ્યાત જ છે, પરન્તુ સામાન્ય રૂપે તો સાત જ સ્વરો કહેવાનું કારણ એ છે કે તે બધાં સ્વરોનો તે સાત સ્વરોમાં સમાવેશ થઈ જાય છે અથવા સ્થૂલ સ્વરોને અને ગીતોને આશ્રિત કરીને સ્વર સાત જ કહ્યા છે. તેથી આ પ્રકારના કથનમાં કોઈ દોષને અવકાશ નથી. કહ્યું પણ છે કે " कज्जं करणायत्तं " ઈત્યાદિ.

एतेषां सप्तानां स्वराणां सप्त स्वरस्थानानि प्रज्ञप्तानि। नाभेरुत्थितोऽविकारी स्वर आभोगतोऽनाभोगतो वा जिह्वादि स्थानं प्राप्य विशेषमासादयतीति स्वरस्थापकारकमिति तत् स्वरस्थानमुच्यते इति। तान्येव स्थानानि दर्शयति-तद्यथा-षड्जं स्वरम् अग्रजिह्वया-अग्रभूता जिह्वाअग्रजिहा तया-जिह्वाग्रभागेन ब्रूयात्। षड्जस्वरस्य स्थानं जिह्वाग्रभाग इत्यर्थः। तथा-उरसा=वक्षःस्थलेन ऋषभस्वरं ब्रूयात्। ऋषभस्वरस्य स्थानं वक्षस्थलं बोध्यम्। तथा-कण्ठोद्गतेन-कण्ठात् उद्गतम्=उद्गतिः-स्वरनिष्पत्ति हेतुभूता क्रिया, तेन गान्धारस्वरं ब्रूयात्। गान्धारस्वरस्य स्थानं कण्ठो बोध्यम्। तथा-मध्यजिह्वया-जिह्वाया मध्यो मध्यजिह्वा तया-मध्यमं स्वरं ब्रूयात्। जिह्वाया मध्यभागो मध्यमस्वरस्य स्थानं

है। इस प्रकार से स्वरों के नामों का निरूपण करके अब सूत्रकार उन स्वरों के स्थानों का कथन करते हैं-नाभि से उत्थित हुआ अविकारी स्वर आभोग अथवा अनाभोग से जिह्वा आदि स्थान को प्राप्त होकर विशेषता को प्राप्त कर लेता है, इसलिये वह स्वर का उपकारक होता है-अतः उसे स्वर का स्थान कहा गया है, षड्ज स्वरको अग्रजिह्वा से बोलना चाहिये-अर्थात् स्वर का स्थान जिह्वा का अग्रभाग है, इसलिये षड्ज स्वर को जिह्वा के अग्रभाग से बोलना चाहिये, गान्धार स्वरका स्थान कण्ठ है, इसलिये गान्धार स्वर को कण्ठ से बोलना चाहिये जिह्वा का मध्य भाग मध्यम स्वर का स्थान है इसलिये मध्यम स्वर को जिह्वा के मध्यभाग से बोलना चाहिये॥ २॥ पंचम स्वर का

આ બન્ને ગાથાઓનો અર્થ ઉપર્યુક્ત શંકા અને ઉત્તરમાં પ્રકટ થઈ ગયો છે. આ પ્રમાણે સ્વરોનાં નામોનું નિરૂપણ કરીને હવે સૂત્રકાર તે સ્વરોનાં સ્થાનોનું કથન કરે છે—

નાભિમાંથી ઉત્થિત થયેલો (ઉત્પન્ન થયેલો) અવિકારી સ્વર અભોગ અથવા અનાભોગ પૂર્વક જિહ્વા આદિ સ્થાનોએ પહોંચીને વિશેષતાને પ્રાપ્ત કરી લે છે, તેથી તે સ્વરનો ઉપકારક થાય છે. તેથી તેને સ્વરનું સ્થાન કહ્યું છે. ષડ્જ સ્વરને જિહ્વાગ્રમાંથી બોલવો જોઈએ. એટલે કે સ્વરનું સ્થાન જિહ્વાનો અગ્રભાગ છે, તેથી ષડ્જ સ્વરને જીભના અગ્રભાગ વડે બોલવો જોઈએ. ગન્ધારસ્વરનું સ્થાન કંઠ છે, તેથી ગન્ધાર સ્વરનું ઉચ્ચારણ કંઠમાંથી થવું જોઈએ. મધ્યમ સ્વરનું સ્થાન જીભનો મધ્યભાગ છે, તેથી જીભના મધ્ય ભાગમાંથી મધ્યમ સ્વરનું ઉચ્ચારણ થવું જોઈએ. પંચમસ્વરનું સ્થાન નાસિકા છે તેથી નાસિકા વડે પંચમસ્વરનું ઉચ્ચારણ થવું જોઈએ.

बोध्यम् ॥ २ ॥ तथा-नासा=नासिकया पञ्चमं स्वरं ब्रूयात्। पञ्चमस्वरस्य नासिका स्थानं बोध्यम्। तथा-दन्तोष्ठेन-दन्तोष्ठक्रियया धैवतं ब्रूयात्। धैवतस्वरस्य स्थानं दन्तोष्ठं बोध्यम्। तथा-मूर्ध्ना=मूर्धस्थानेन निषादं स्वरं ब्रूयात्। निषादस्वरस्य स्थानं मूर्धा बोध्यम्। एतानि जिह्वाग्रभागादीनि सप्त स्वरस्थानानि भगवता व्याख्यातानि।

ननु षड्जस्वरोच्चारणे कण्ठादीन्यपि स्थानान्याश्रीयन्ते अग्रजिह्वा च स्वरान्तरेष्वप्याश्रीयते, तत्कथं षड्जादिष्वेकैकस्य स्वरस्य अग्रजिह्वादिरूपमेकैकं स्थानमुक्तम्? इति चेदाह-यद्यपि षड्जादयः सर्वेऽपि स्वराः जिह्वाग्रभागादीनि सर्वाण्यपि स्थानान्यपेक्षन्ते, तथापि विशेषत एकैकस्वरो जिह्वाग्रभागादिष्वेकैकं स्थानमादायैव व्यज्यते इति तत्तत्स्वरस्य तत्तत्स्थानमुक्तमिति ॥ ३ ॥

स्थान नासिका है, पंचम स्वर को नासिका से बोलना चाहिये, धैवत स्वर का स्थान दंतोष्ठ है, इसलिये धैवत स्वर को दंतोष्ठ से बोलना चाहिये, निषाद स्वर का स्थान मूर्धा है, इसलिये निषाद स्वर को मूर्धा (मस्तक) से बोलना चाहिये ॥ ३ ॥ ये जिह्वाग्रभाग आदि सात स्थान सात स्वरों के हैं-ऐसा भगवान्ने कहा है।

शंका—षड्ज स्वर के उच्चारण करने में कण्ठ आदि स्थानों का भी आश्रय किया जाता है तथा अग्रजिह्वा रूप स्थान अन्य स्वरों में भी आश्रित होता है-तो फिर षड्ज आदि स्वरों में से एक स्वर का अग्रजिह्वादि रूप स्थान कैसे कहा गया है ?

उत्तर—यद्यपि षड्ज आदि समस्त भी स्वर जिह्वाग्र भाग आदि समस्त स्थानों की अपेक्षा करते हैं, तब भी विशेषरूप से एक एक

ધૈવત સ્વરનું સ્થાન દંતોષ્ઠ છે, તેથી ધૈવત સ્વરનું દંતોષ્ઠમાંથી ઉચ્ચારણ કરવું જોઈએ. નિષાદ સ્વરનું સ્થાન મૂર્ધા (તાળવું) છે, તેથી તેનું ઉચ્ચારણ મૂર્ધામાંથી જ થવું જોઈએ.

સાત સ્વરોના જિહ્વાગ્રભાગ આદિ આ સાત સ્થાનો તીર્થંકર ભગવાનોએ જ કહ્યા છે.

શંકા—ષડ્જ સ્વરના ઉચ્ચારણમાં કંઠ આદિ સ્થાનોનો પણ આશ્રય લેવામાં આવે છે, તથા અગ્રજિહ્વા રૂપ સ્થાનનો અન્ય સ્વરોના ઉચ્ચારણમાં પણ આશ્રય લેવામાં આવે છે. છતાં પણ ષડ્જ આદિ સ્વરોનું જિહ્વાગ્ર આદિ એક એક સ્થાન જ શા માટે કહેવમાં આવ્યું છે?

ઉત્તર—જો કે ષડ્જ આદિ સાતે સ્વરો જિહ્વાગ્રભાગ આદિ સમસ્ત સ્થાનોની અપેક્ષા રાખે છે, છતાં પણ પ્રત્યેક સ્વર વિશેષ રૂપે તો જિહ્વાગ્ર

इत्थं स्वरस्थानान्युक्त्वा सम्प्रति 'को जीवः कं स्वरं ब्रूते' इतिदर्शयति–'सत्त सरा जीव निस्सिया' इत्यादिना 'णिसायं सत्त भंगया' इत्यन्तेन। अर्थः स्पष्टः। नवरम्–गवेलकाः=मेषाः। कुसुमसंभवे काले=वसन्तसमये।

अथ यस्माद् यस्माद् वाद्याद् यो यः स्वरो निर्गच्छति तद्दर्शयति–'सत्त सरा अजीवनिस्सया' इत्यादिना 'महाभेरी य सत्तमं' इत्यन्तेन। अर्थः स्पष्टः। नवरं–गोमुखी–'काहला' इति नामकवाद्यविशेषः। चतुश्चरणप्रतिष्ठाना गोधिका–चतुर्भिश्चरणैः प्रतिष्ठानं भुवि यस्याः सा तथाभूता गोधिका–गोधेव गोधिका–

स्वर जिह्वाग्रभाग आदि स्थानों में से एक एक स्थान को लेकर ही प्रकट होता है इसलिये प्रकट होने की अपेक्षा से उस उस स्वर का वह वह स्थान कहा गया है, इस प्रकार से स्वर स्थान प्रकट करके अब कौन जीव किस स्वर को बोलता है यह बात सूत्रकार प्रकट करते हैं–मयूर षड्ज स्वर को बोलता है, कुक्कूट–मुर्गा–ऋषभस्वर को बोलता है, हँस गान्धार स्वर को बोलताहै, मेष (घेटा)–मध्यम स्वर को बोलता है ॥ ४ ॥ वसन्त के समय कोयल पंचमस्वर को बोलती है, सारस धैवत स्वर को बोलता है, और क्रौंच सातवें निषाद स्वर को बोलता है ॥ ५ ॥ अब सूत्रकार जिस २ बाजों से जो २ स्वर निकलता है–उस २ बाजों का नाम प्रकट करते हैं–मृदङ्ग से षड्ज स्वर निकलता है. गोमुखी (काहला) से ऋषभ स्वर निकलता है, शंख से गान्धार स्वर निकलता है, झल्लरी से मध्यम स्वर निकलता है ॥ ६ ॥

ભાગ આદિ સ્થાનોમાંના કોઈ એક જ સ્થાનમાંથી જ પ્રકટ થાય છે તેથી પ્રકટ થવ.ની અપેક્ષાએ તે પ્રત્યેક સ્વરનું ઉપર બતાવ્યા અનુસારનું જ સ્થાન સમજવું જોઈએ

આ પ્રમાણે સાતે સ્વરોનાં સ્થાન પ્રકટ કરીને હવે સૂત્રકાર એ વાત પ્રકટ કરે છે કે કયા કયા જીવો કયા કયા સ્વરનું ઉચ્ચારણ કરે છે—

મોર ષડ્જ સ્વરમાં બોલે છે. કૂકડો ઋષભ સ્વરમાં બોલે છે. હંસ ગાન્ધાર સ્વરે બોલે છે. ઘેટું મધ્યમ સ્વરે બોલે છે વસંતમાં કોયલ પંચમ સ્વરે બોલે છે સારસ ધૈવત સ્વરે બોલે અને ક્રૌંચ પક્ષી નિષદ સ્વરે બોલે છે.

કયા કયા વાજિંત્રોમાંથી કયા કયા પ્રકારના સ્વરો નીકળે છે, તે હવે સૂત્રકાર પ્રકટ કરે છે—

મૃદંગમાંથી ષડ્જ સ્વર નીકળે છે. ગોમુખીમાંથી ઋષભ સ્વર નીકળે છે, શંખમાંથી ગાન્ધાર સ્વર નીકળે છે, ઝાલરમાંથી મધ્યમ સ્વર નીકળે છે,

चर्मावनद्धा दर्दरिकेत्यपरनाम्ना प्रसिद्धा । आडम्बरः=पटहः । सप्तमं=निषादम् । अत्रेदं बोध्यम्—यद्यपि मृदङ्गादिजनितेषु स्वरेषु नाभ्युरःकण्ठाद्युत्पद्यमानता रूपो व्युत्पत्त्यर्थों न घटते, तथापि मृदङ्गादिवाद्येभ्यः षड्जादिस्वरसदृशस्वरा उत्पद्यन्ते, अत एव तेषां मृदङ्गाद्यजीवनिश्रितत्वमुक्तम् ।

अथैतेषां सप्तस्वराणां लक्षणान्याह—'एएसि णं सत्त सराणं' इत्यादिना 'णिसायं सरमस्सिया' इत्यन्तेन सन्दर्भेण । तथाहि—एतेषां सप्तानां स्वराणां सप्त स्वरलक्षणानि=तत्तत्फलप्रापकाणि स्वरतत्त्वानि प्रज्ञप्तानि=कथितानि । तान्येव फलत आह—'तद्यथा—षड्जेन लभते वृत्तिम्' इत्यादिभिः श्लोकैः । तत्र षड्जस्वरस्य फलमाह—षड्जेन स्वरेण जनो वृत्तिं=जीविकां लभते । तथा—षड्जस्वरवतो जनस्य कृतं कर्म विनष्टं न भवति, सफलमेव भवतीत्यर्थः । तस्य-गावो मित्राणि पुत्राश्च भवन्ति । तथा स स्त्रीणां वल्लभः=प्रियश्च भवति ॥ ८ ॥

चमड़े से मढी हुई दर्दरिका से पंचमस्वर निकलता है, पटह से धैवत स्वर निकलता है और महाभेरी से सप्तम निषाद स्वर निकलता है ॥ ७ ॥ यहां ऐसा समझना चाहिये कि यद्यपि मृदङ्गादि जनित स्वरों में नाभि, उरः आदि स्थानों से उत्पद्यमानता रूप व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ घटित नहीं होता है, फिर भी मृदङ्ग आदि वाद्यों से षड्ज आदि स्वरों के जैसे स्वर उत्पन्न होते हैं इसलिये इन्हें मृदङ्गादिरूप अजीवों से आश्रित कहा गया है । इस सात स्वरों के फल की अपेक्षा लक्षण इस प्रकार से कहे गये हैं—षड्ज स्वर से मनुष्य आजीविका को प्राप्त करता है, और षड्ज स्वरवाले मनुष्य का किया हुआ काम कभी भी नष्ट नहीं होता है, किन्तु सफल ही होता है, उसके घर पर अनेक

ચામડાથી મઢેલી દર્દરિકામાંથી પંચમ સ્વર નીકળે છે, પટહ (પડઘમ) માંથી ધૈવત સ્વર નીકળે છે અને મહાભેરીમાંથી નિષાદ સ્વર નીકળે છે.

અહીં એવું સમજવું જોઈએ કે મૃદંગ આદિમાં નાભિ, ઉર આદિ સ્થાનોનો સદ્ભાવ હોતો નથી. તેથી મૃદંગાદિ જન્ય સ્વરોમાં નાભિ, ઉર આદિ સ્થાનોમાંથી ઉત્પદ્યમાનતા રૂપ વ્યુત્પત્તિલભ્ય અર્થ ઘટિત થતો નથી. છતાં પણ મૃદંગ આદિ વાદ્યોમાંથી ષડ્જ આદિ સ્વરોના જેવાં સ્વરો ઉત્પન્ન થાય છે, તે કારણે તેમને મૃદંગાદિ રૂપ અજીવોને આશ્રિત કહેવામાં આવેલ છે.

હવે સૂત્રકાર આ સાતે સ્વરોના લક્ષણોનું ફળની અપેક્ષાએ નિરૂપણ કરે છે—ષડ્જ સ્વર વડે મનુષ્ય પોતાની આજીવિકા પ્રાપ્ત કરે છે. ષડ્જ સ્વર-વાળા મનુષ્ય વડે કરાતું કામ કદી નિષ્ફળ જતું નથી-તેના કામમાં સદા

ऋषभस्वरस्य फलमाह-ऋषभेण स्वरेण तु-ऐश्वर्यम्, सैनापत्यं=सेनापतित्वं, धनानि, वस्त्रगन्धम्=वस्त्राणि गन्धांश्च, अलङ्कार. स्त्रियः, शयनानि च लभते इति ॥ ९ ॥ गान्धारस्वरस्य फलमाह-गान्धारे=गान्धारस्वरे गीतयुक्तिज्ञाः= गीतयोजनायां कुशलाः-गान्धारस्वरगानकर्त्तार-इत्यर्थः, वर्यवृत्तयः-वर्या=श्रेष्ठा वृत्तिर्येषां ते तथा-श्रेष्ठ जीविकावन्तः, कलाधिकाः-कलाभिरधिकाः-कलाज्ञेषु प्रधानाश्च भवन्ति । तथा-कवयः=काव्यकर्त्तारः, 'कृतिनः' इतिच्छायापक्षे- कर्त्तव्यशीलाः, प्राज्ञाः=सद्बोधाश्च भवन्ति । ये अन्ये=पूर्वोक्तेभ्यो गीतयुक्तिज्ञा- दिभ्यो ये भिन्ना भवन्ति ते शास्त्रपारगाः=सकलशास्त्रनिष्णाता भवन्तीति ॥ १० ॥

गायें होती है और उसके अनेक मित्र होते हैं । पुत्रों से भी उसका घर शूना नहीं रहता है, वह स्त्रियों का प्यारा है ॥ ८ ॥ ऋषभ स्वर वाला मनुष्य ऐश्वर्य को प्राप्त करता है, वस्त्रों को प्राप्त करता है, सुगं- धित पदार्थों को प्राप्त करता है, अलङ्कारों को प्राप्त करता है, शयनों को सुन्दर २ पल्यङ्क आदि पदार्थों को-प्राप्त करता है, और वह सुन्दर २ स्त्रियों का वल्लभ (पति) भी होता है ॥ ९ ॥ गान्धार स्वर वाला मनुष्य गीतो की योजना करने में कुशल होता है, श्रेष्ठ आजीवि का वाला होता है । कलाओं के जानने वालों में प्रधान होता है । काव्य की रचना करने में कुशल मति वाला होता है-अथवा-कृति-कर्तव्य- शील होता है । सद्बोध संपन्न होता है, तथा-जो गीत युक्तिज्ञ आदि से भिन्न होता है तो ऐसा वह गान्धार स्वरवाला व्यक्ति सकल शास्त्रों का पूर्ण ज्ञाता होता है । १० ॥ "मध्यम" इत्यादि—जो मनुष्य

સફળતા જ પ્રાપ્ત થાય છે તેને ઘેર અનેક ગાયો હોય છે, તેને અનેક મિત્રો હોય છે, તેનું ઘર કદી પણ પુત્રોથી રહિત હોતું નથી. આ સ્વરવાળો માણસ સ્ત્રીઓમાં પ્રિય થઇ પડે છે.

ઋષભ સ્વરવાળો મનુષ્ય ઐશ્વર્ય સંપન્ન હોય છે, તે સેનાપતિના પદની પ્રાપ્તિ કરે છે, ધન, વસ્ત્ર, સુગંધિત પદાર્થો, અલંકારો, સુંદર પલંગો, સોફા આદિ પદાર્થોની તેને પ્રાપ્તિ થાય છે, અને અનેક સુંદર સ્ત્રીઓને તે પુરુષ પોતાની ભાર્યા રૂપે પ્રાપ્ત કરે છે.

ગાન્ધાર સ્વરવાળો મનુષ્ય ગીતોનું આયોજન કરવામાં નિપુણ હોય છે, તે શ્રેષ્ઠ આજીવિકા સંપન્ન હોય છે. કલાનિપુણ પુરુષોમાં તે અગ્રસ્થાન પ્રાપ્ત કરે છે, તે કાવ્યની રચના કરવામાં નિપુણ હોય છે, કર્તવ્યશીલ હોય છે. સદ્બોધ સંપન્ન હોય છે. તે સામાન્ય કવિ, ગાયક, કલાકાર આદિ કરતાં પ્રતિભાવાળો હોય છે અને સકળ શાસ્ત્રોનો પૂર્ણ જ્ઞાતા હોય છે. મધ્યમ

मध्यमस्वरस्य फलमाह—तथा – मध्यमस्वरसम्पन्नास्तु सुखजीविनः=सुखेन जीवितुं शीला भवन्ति । सुखजीवित्वमेव प्रकटयति–'खायई' इत्यादिना । मध्यमस्वरमाश्रितो जनो हि खादति=सुस्वादुं भोजनं भुङ्क्ते, पिबति=दुग्धादि-पानं करोति, ददाति=अन्यानपि भोजयति पाययति चेति ॥ ११ ॥ पञ्चमस्वरस्य फलमाह—पञ्चमस्वरसम्पन्नास्तु पृथिवीपतयो भवन्ति, तथा–शूराः संग्रहकर्त्तारः अनेकगणनायकाश्च भवन्तीति ॥ १२ ॥ धैवतस्वरस्य फलमाह–धैवतस्वरसम्पन्ना-स्तु कलहप्रियाः=क्लेशकारका भवन्ति । तथा–शाकुनिकाः–शकुनेन=श्येनेन चरन्ति=पक्षिणां वधार्थं पर्यटन्ति, शकुनान्=पक्षिणो घ्नन्ति वा शकुनिकाः=पक्षि-घातका लुब्धकविशेषाः, वागुरिकाः–वागुरा=मृगबन्धनी, तया चरन्तीति वागु-रिकः–हरिणघातका लुब्धकविशेषाः, शौकरिकाः–शूकरेण शूकरवधार्थं चरन्ति, शूकरान् घ्नन्ति वा शौकरिकाः–शूकरघातिनो लुब्धकविशेषाः, तथा–मत्स्य-बन्धाः=मत्स्यघातिनश्च भवन्तीति ॥ १३ ॥ निषादस्वरस्य फलमाह—तथा–

मध्यम स्वर से संपन्न होते हैं–वे सुख पूर्वक अपने जीवन को यापन करने के स्वभाव वाले होते हैं–जैसे–वे सुस्वादु भोजन करते हैं, दुग्धादि का पान करते है, दूसरों को भी अपने ही जैसा भोजन कराते हैं और अपने ही जैसा दुग्धादिका पान कराते हैं ॥ ११ ॥ पंचम स्वर से युक्त जो प्राणी होते हैं–वे पृथ्वीपति होते हैं, शूरवीर होते हैं, संग्रह शील होते हैं, और अनेक गणों के नायक होते हैं। ॥ १२ ॥ जो मनुष्य धैवत स्वर वाले होते हैं वे कलहप्रिय होते हैं, शिकारी होते हैं, मृग की विशेष रूप से शिकार करने वाला होते हैं, शूकर की भी वे शिकार किया करते हैं, और मछलियो को भी मार २ कर खाते रहते हैं । ॥ १३ ॥ निषाद स्वरवाले जो मनुष्य

સ્વરવાળો મનુષ્ય સુખપૂર્વક પોતાના જીવનને વ્યતીત કરવાના સ્વભાવવાળો હોય છે. જેમકે તે સ્વાદિષ્ટ ભોજન કરાવનારો અને પોતાના જેવાં જ દૂધ આદિ પદાર્થોનું પાન કરાવનારો હોય છે.

જે માણસ પંચમ સ્વરથી યુક્ત હોય છે તે પૃથ્વીપતિ બને છે, શૂરવીર હોય છે, સંગ્રહશીલ હોય છે અને અનેકગણોનો નાયક હોય છે.

જે માણસો ધૈવત સ્વરવાળા હોય છે તેઓ કલહપ્રિય હોય છે, શિકાર કરવાના શોખીન હોય છે. તેઓ સૂવરનો શિકાર પણ કરતા હોય છે અને માછલીઓને પણ મારી મારીને ખાનારા હોય છે.

ये चाण्डालाः=चण्डकर्माणः, मौष्टिकाः-मुष्टिः प्रहरणं येषां ते तथा, मुष्टिभिः प्रहरणशीला इत्यर्थः, तथा-मल्लाः, सेयाः-अधमजातीया मनुष्याश्च सन्ति, एभ्योऽन्ये च ये पापकर्माणः=पापकर्मपरायणाः सन्ति, तथा च-ये गोघातकाः सन्ति, ये च चौराः सन्ति, ते सर्वे निषादस्वरमाश्रिता विज्ञेयाः ॥ १४ ॥ इति ।

अथैतेषां स्वराणां ग्रामान्, एकैकग्रामस्य मूर्च्छाश्च प्राह—'एएसि णं सत्ताण्हं सराणं तओ गामा पण्णत्ता' इत्यादिना 'कोडिमा य सा सत्तमी मुच्छा'

होते हैं, वे चाण्डाल होते हैं-चण्ड कर्म करनेवाले होते है-मौष्टिक-मुष्टि से प्रहार करने के स्वभाववाले-होते हैं. सेय-अधम जाति के-होते हैं, तथा इनसे भी भिन्न जो पापकर्म करने में परायण होते हैं, गाय की हत्या करनेवाले होते हैं, और जो चोर-परधनहरण करनेवाले-होतेहैं वे सब निषाद स्वरवाले होतेहैं-ऐसा जानना चाहिये ॥१४॥

अब सूत्रकार इन स्वरों के ग्रामों का और एक २ स्वर की मूर्च्छना का कथन करते हैं-इन सात स्वरों के तीन ग्राम कहे गये हैं-जैसे-षड्ज ग्राम १ मध्यम ग्राम २ और गान्धार ग्राम ३. इनमें षड्ज ग्राम की सात मूर्च्छनाएँ कही गई हैं-जैसे-मङ्गी १, कवौरीया २, हरि ३, रजनी ४, सारकान्ता ५, सारसी ६ और शुद्ध षड़ज ७ ॥ १५ ॥

मध्यम ग्राम की सात मूर्छनाएँ इस प्रकार से हैं-उत्तरमन्दा १ रजनी २ उत्तरा ३ उत्तरासमा ४, समवक्रान्ता ५ सौवीरा ६ और अभीरु ७ ॥ १६ ॥

નિષાદ સ્વરવાળા મનુષ્યો ચાંડાલ હોય છે-ભયંકરમાં ભયંકર કૃત્ય કરનારા હોય છે, મૌષ્ટિક (મુઠ્ઠી વડે પ્રહાર કરનારા) હોય છે, સેય (અધમ જાતિના) હોય છે, તેઓ જાત જાતના પાપકર્મો કરવામાં પરાયણ હોય છે, ગૌહત્યા કરનારા હોય છે, અને પારકાના ધનનું અપહરણ કરનારા ચોર હોય છે.

હવે સૂત્રકાર આ સ્વરોના ગ્રામોનું અને પ્રત્યેક સ્વરની મૂર્ચ્છનાનું નિરૂપણ કરે છે—

આ સાત સ્વરોના નામ નીચે પ્રમાણે છે—(૧) ષડ્જ ગ્રામ, (૨) મધ્યમ ગ્રામ અને (૩) ગાન્ધાર ગ્રામ.

ષડ્જ ગ્રામની સાત મૂર્ચ્છના કહી છે—(૧) મંગી, (૨) કૌરવીયા, (૩) હરિ, (૪) રજની, (૩) સારકાન્તા, (૬) સારસી અને (૭) શુદ્ધ ષડ્જા.

મધ્યમ ગ્રામની સાત મૂર્ચ્છનાઓ નીચે પ્રમાણે છે—(૧) ઉત્તરમન્દા, (૨) રજની, (૩) ઉત્તરા, (૪) ઉત્તરાસમા, (૫) સમવક્રાન્તા, (૬) સૌવીરા અને (૭) અભીરુ.

इत्यन्तेन सन्दर्भेण। व्याख्या स्पष्टा। अत्र पुराणमुनि व्याख्यातगाथाद्वयमेव-मस्ति: तथाहि—

" सज्जाइ तिहा गामो ससमूहो मुच्छणाण विन्नेओ।
ता सत्त एक्कमेक्के, तो सत्तसराण इगवीसा ॥ १ ॥
अन्नन्न सरविसेसे, उपायंतस्स मुच्छणा भणिया।
कत्ता व मुच्छिओ इव, कुणइ, मुच्छंव सोवत्ति ॥ २ ॥ "

छाया—षड्जादिस्त्रिधा ग्रामः स समूहो मूर्च्छनानां विज्ञेयः।
ताः सप्त एकैकस्मिन् ततः सप्तस्वराणाम् एकविंशतिः ॥ १ ॥
अन्यान्यस्वरविशेषान् उत्पादयतो मूर्च्छना भणिताः।
कर्त्ता वा मूर्च्छित इव करोति मूर्च्छेन्निव स वेति ॥ २ ॥

अयं भावः—मूर्च्छनानां स समूहः=मूर्च्छना समूहसहितः षड्जादिस्त्रिधा ग्रामो विज्ञेयः। एकैकस्मिन् ग्रामे तु सप्त सप्तमूर्च्छना भवन्ति। ततः सप्तस्वराणाम् अन्यान्यस्वरविशेषान् उत्पादयतो गायकस्य एकविंशति मूर्च्छना भणिताः।

गान्धार ग्राम की सात मूर्च्छनाएँ कही गई हैं-जैसे-नन्दी १ क्षुद्रिका २ पूरिमा ३, शुद्ध गान्धारा ४ उत्तर गान्धारा ५ ॥ १७ ॥ सुष्ठुतरायामा ६, और उत्तरायत्ता कोटिमा ७ ॥ १८ ॥

यहां पुराने मुनियों द्वारा व्याख्यात गाथा द्वय इस प्रकार से हैं—
" सज्जाइ तिहा गामो " इत्यादि।

मूर्च्छनाओं का समूह सहित षड्जादि ग्राम तीन प्रकार का कहा गया है, एक २ ग्राम में सात २ मूर्च्छनाएँ होती हैं। इस तरह तीन ग्रामों की कुल मूर्च्छना २१ होती हैं-अर्थात् सात स्वरों के अन्य २ स्वर विशेषों को उत्पन्न करनेवाले गायक के वे २१ मूर्च्छनाएँ होती

ગાન્ધાર ગ્રામની સાત મૂર્ચ્છનાઓ નીચે પ્રમાણે છે—(૧) નન્દી, (૨) ક્ષુદ્રિકા, (૩) પૂરિમા, (૪) શુદ્ધ ગાન્ધારા, (૫) ઉત્તર ગાન્ધારા, (૬) સુષ્ઠુ તરાયામા અને (૭) ઉત્તરાયત્તા કોટિમા.

અહીં પ્રાચીન મુનિઓ દ્વારા વ્યાખ્યાત બે ગાથાઓ નીચે પ્રમાણે છે.
" સજ્જાઇ તિહા ગામો " ઇત્યાદિ—

મૂર્ચ્છનાઓના સમૂહ સહિત ષડ્જાદિ ગ્રામ ત્રણ પ્રકારના કહ્યા છે. પ્રત્યેક ગ્રામમાં સાત સાત મૂર્ચ્છનાઓ હોય છે. આ રીતે ત્રણે ગ્રામોની કુલ મૂર્ચ્છના ૨૧ થાય છે. એટલે કે સાત સ્વરોના અન્ય અન્ય સ્વરવિશેષોને ઉત્પન્ન કરનારા ગાયકમાં આ ૨૧ મૂર્ચ્છનાઓનો સદ્ભાવ હોય છે તેમને

यतः कर्त्ता मूर्च्छित इव ताः करोति, अतस्ता मूर्च्छना उच्यन्ते, मूर्च्छन्निव वा कर्त्ता ताः करोतीति हेतोस्ता मूर्च्छना उच्यन्ते इति। भंङ्गीप्रभृतीनामेकविंशति मूर्च्छनानां स्वरविशेषाः पूर्वगते स्वरप्राभृते भणिताः। इदानीं ते तद्विनिर्गतेभ्यो भरतादिनिर्मित शास्त्रेभ्यो विज्ञेया इति॥ १५, १६, १७, १८॥

एते सप्त स्वराः कुतो भवन्ति? इत्यादि प्रश्न चतुष्टयं तदुत्तरं च प्रोच्यते– 'सत्तसरा कओ हवंति' इत्यादिना 'तिन्नि त्रिगीयस्स अगारा' इत्यन्तेन सन्दर्भेण। एते षड्जादि सप्तस्वराः कुतः संभवन्ति=कुतः उत्पद्यन्ते? (१) तथा–गेयस्य=गीतस्य का योनयो=जातयो भवन्ति? (२), तथा–गेयस्य कतिसमयाः= कियत्काल प्रमाणा उच्छ्वासा भवन्ति? (३), तथा–गेयस्य कति वा=कियन्तो या आकाराः=आकृतयो भवन्ति? (४)॥ १९॥ इति चत्वारः प्रश्नाः। उत्तरयति–षड्जादयः सप्त स्वरा नाभितो भवन्ति=जायन्ते (१)। गीतं च रुदितयो-

---

हैं क्योंकि जो कर्त्ता होता है वह मूर्च्छित की तरह होकर इन्हें करता है–इसलिये मूर्च्छनाएँ कही गई हैं।

भंगी आदि २१ मूर्च्छनाओं के, स्वर विशेष पूर्व गत स्वर प्राभृत में कहे गये हैं, इस समय स्वर विशेष उस स्वर प्राभृत से विनिर्गत भरतादि निर्मित ग्रन्थों से जान लेना चाहिये,

ये सात स्वर कहां से उत्पन्न होते हैं? गेय–गीत की क्या २ जातियां हैं? गेय के कितने काल प्रमाणवाले उच्छ्वास होते है? गेय की कितनी आकृतियां होती हैं?॥ १९॥ इन चार प्रश्नों का उत्तर देते हुए सूत्रकार कहते हैं–कि–षड्ज आदि जो सात स्वर हैं वे नाभि से उत्पन्न होते हैं। इस गीत का योनि रोदन है, अर्थात् गीत रोदन

મૂર્ચ્છના કહેવાનું કારણ એ છે કે જે કર્ત્તા હોય છે તે મૂર્ચ્છિતના જેવો થઇને તે મૂર્ચ્છનાઓ કરતો હોય છે.

મંગી આદિ ૨૧ મૂર્ચ્છનાઓના સ્વરવિશેષોનું પૂર્વગત સ્વરપ્રાભૃતમાં પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યું છે. તે સ્વરપ્રાભૃતને આધારે રચાયેલા ભરતાદિ નિર્મિત ગ્રન્થોમાંથી આ સ્વર વિશેષોના વિષયમાં વિશેષ માહિતી મેળવી લેવી.

હવે સૂત્રકાર નીચેના ચાર પ્રશ્નોનો ઉત્તર આપે છે—(૧) તે સાત સ્વર કયાંથી ઉત્પન્ન થાય છે? (૨) ગેયના (ગીતના) કયા કયા પ્રકારો છે? (૩) ગેયના કેટલા કાળપ્રમાણવાળા ઉચ્છ્વાસ હોય છે? (૪) ગેયની કેટલી આકૃતિઓ (આકારો) હોય છે?

निकं—रुदितं योनिः=समानरूपतया जाति र्यस्य तत्तथाविधं भवति। गीतं रोदनसमानं भवतीत्यर्थः। (२) उच्छ्वासाश्च पादसमा भवन्ति। यावता समयेन वृत्तस्य पादः समाप्यते तावत्समया गीते उच्छ्वासा भवन्तीत्यर्थः (३)। तथा—गीतस्य आकाराश्च त्रयो भवन्ति॥ २०॥ तानेवाह—आदिमृदुम्=आदौ—प्रारम्भे मृदुं गीतध्वनिम् आरभमाणाः, मध्यकारे=मध्यभागे समुद्वहन्तः=महतीं गीतध्वनिं कुर्वन्तः, च=पुन अवसाने=अन्ते क्षपयन्तः=गीतध्वनिं मन्दीकुर्वन्तश्च गायका गीतं गायन्ति। अतो गाने स्वर आदौ मृदुः, मध्ये तारः, अन्ते च मन्द्रो भवति। ततश्च मृदुतारमन्द्रध्वनि रूपा स्त्रयआकारा गीतस्य विज्ञेया (४) इति॥२१॥

सम्प्रति गीतस्य हेयोपादेयादिकं 'छद्दोसे' इत्यादिना प्रदर्शयन्, सूत्रं समापयति 'समत्तं सरमंडलं' इत्यन्तेन ग्रन्थेन। तथाहि—गीतेहि षड्दोषाः,

के समान होता है। जितने समय में १ वृत्त समाप्त होता है उतने ही समय प्रमाण गीत में उच्छ्वास होते हैं।॥ २०॥ तथा—गीत के आकार तीन होतेहै—आदि में मृदु मध्यमें महान् और अन्त में मन्द अर्थात् जब गायक (गानेवाला) गीत गातेहैं तब वे प्रारम्भ में मृदु गीतध्वनि से उसे प्रारम्भ करते हैं, मध्य में जोर की गीतध्वनि करते हैं और अन्त में फिर उसे मन्द्र ध्वनिसे समाप्त करते हैं। इस तरह गानमें आदि में स्वर मृदु होता है, मध्यमें स्वर तार होता है, और अन्तमें मन्द्र होता है। ये मृदु तार और मन्द्र स्वरही तीन आकार गीतके हैं—ऐसा जानना चाहिये॥ २१॥

अब सूत्रकार गीतके हेय उपादेय आदिका कथन "छद्दोसे"

ષડ્જ આદિ જે સાત સ્વરો છે, તેઓ નાભિમાંથી ઉત્પન્ન થાય છે. આ ગીત રોદન (રુદન)ના જેવું હોય છે. જેટલા સમયમાં ૧ વૃત્ત સમાપ્ત થાય છે એટલા જ સમયપ્રમાણ ઉચ્છ્વાસો ગીતમાં થાય છે. ગીતના આકાર ત્રણ હોય છે—આદિમાં (પ્રારંભે) મૃદુ, મધ્યમાં મહાન્ અને અન્તે મન્દ્ર આ કથનનો ભાવાર્થ એ છે કે જ્યારે ગાયક ગીત ગાય છે ત્યારે મૃદુ ગીત ધ્વનિ વડે તેનો પ્રારંભ કરે છે, મધ્યમાં મોટો ગીતધ્વનિ કરે છે અને અન્તે તેને મન્દ્રધ્વનિથી સમાપ્ત કરે છે. આ રીતે ગીતના પ્રારંભકાળે સ્વર મૃદુ હોય છે, મધ્યમાં સ્વર તાર (મોટો) હોય છે અને ગીતને અન્તે સ્વર મન્દ્ર હોય છે. આ રીતે અહીં ગીતના આ પ્રમાણે આકાર બતાવવામાં આવ્યા છે—(૧) મૃદુ, (૨) તાર અને (૩) મન્દ્ર સ્વર.

હવે સૂત્રકાર ગીતના હેય, ઉપાદેય આદિનું કથન કરે છે—"છદ્દોસે"

अष्ट गुणाः, त्रीणि वृत्तानि, द्वे भणिती च भवन्ति। यो जन एतान् यथावद् ज्ञास्यति, स एव सुशिक्षितः सन् रङ्गमध्ये=नाटयशालायां गास्यति ॥ २२ ॥ तानेवाह—' भीयं ' इत्यादिना—हे गायक! गीतं गायंश्च त्वं-भीतम्=भयपूर्वकं मा गाय=गानं मा कुरु, द्रुतं=त्वरितं च मा गाय, ह्रस्वम्=अल्पस्वरेण च मा गाय, उत्तालम्—उद्गतः=औचित्यादूर्ध्वंगतस्तालो यत्र तत्—उत्तालम्—अतितालम्

इत्यादि गाथा द्वारा प्रकट करते हैं—गीतमें छह दोष, आठ गुण, तीन वृत्त एवं दो भणतियाँ होती हैं। जो मनुष्य इनका यथावत् ज्ञाता होगा वही सुशिक्षित गायक नाटयशालामें सफलःगायक सिद्ध होता है॥२२॥

गीतके ये छ दोष हैं—० भीत—जो गायक गीतको भयसे युक्त हुआ गाता है, वह गीतका भीत दोष है, इसलिये हे गायक! तुम गीतको गाते समय डरो मत निडर होकर गाओ। द्रुत २—गीतका जल्दी २ गाना यह द्रुत दोष है, इसलिये गाते समय गीतको जल्दी २ नहीं गाना चाहिये गानेकी जैसी पद्धति है, उस पद्धतिके अनुसारही गाना चाहिये २, गीतको जिस स्वरसे गाना योग्य हो—यदि उस स्वरसे वह नहीं गाया जाते और ह्रस्व स्वरसे गाया जाये तो वह उसका दोष है, इसलिये हे गायक! तुम गीतको ह्रस्व स्वरसे मत गाओ गीतको उत्ताल से गाना—जहां जितनी मात्रामें ताल देना हो—उतनी मात्रामें वहां ताल

ઇત્યાદિ ગાથા દ્વારા આ વિષય અહીં પ્રકટ કરવામાં આવ્યો છે--ગીતમાં ૬ દોષ, આઠ ગુણ, ત્રણ વૃત્ત અને બે ભણિતિઓ હોય છે જે મનુષ્ય તેમનો સંપૂર્ણ જ્ઞાતા હોય છે, એ મનુષ્ય જ સુશિક્ષિત ગાયક નાટયશાલામાં સફલ ગાયક સિદ્ધ થાય છે

ગીતના છ દોષ નીચે પ્રમાણે કહ્યા છે--(૧) ભીત--ગાયક ભયથી યુક્ત થઈને જે ગીત ગાય છે, તે ગીતને ભીતદેષયુક્ત ગીત કહે છે, તેથી હે ગાયક! તમે ગીત ગાતી વખતે નિડર બનીને ગાઓ.

દ્રુત--ગીતને જલ્દી જલ્દી ગાઈ નાખવું, તેને દ્રુતદેષ કહે છે. તેથી ગીત બહુ જલ્દી જલ્દી ગાવું જોઈએ નહીં, પરન્તુ તેના ગાવાની જે પદ્ધતિ હોય તે પદ્ધતિ અનુસાર ગાવું જોઈએ

(૩) ગીતને જે સ્વરમાં ગાવાનું હોય તે સ્વરમાં જ તે ગીત ગાયકે ગાવું જોઈએ એટલે કે ગીતને દીર્ઘ સ્વરમાં ગાવાનું હોય તેને બદલે હ્રસ્વ સ્વરમાં ગાવામાં આવે તો તે દોષ ગણાય છે.

તેથી હે ગાયક! તમે ગીતને હ્રસ્વ સ્વરે ગાશો નહીં, પરન્તુ તમે ગીતને ઉત્તાલમાં ગાઓ-એટલે કે જ્યાં જેટલી માત્રામાં તાલ દેવાતો હોય

अवस्थानताल चेत्यर्थः, तथा मा गाय। तालस्तु कांस्यादि शब्दो बोध्यः। तथा-काकस्वरम्-काकस्य स्वर इव स्वरो यस्मिंस्तत् काक स्वरम् श्लक्ष्णाश्रव्यस्वरमित्यर्थः, तथा मा गाय। अनुनासम्=सानुनासिकं च मा गाय। यत एते गीतादयः षट् गेयस्य दोषा भवन्तीति ॥ २३ ॥ इत्थं दोषानुक्त्वा गुणानाह-'पुन्नं' इत्यादिना। पूर्णम्-यत्र गीते सर्वाः स्वरकला गायकैः प्रदर्श्यन्ते तत्र 'पूर्ण'-नामा गुणो भवति १। रक्तम्-गायको गीतरागेण रक्तः=भावितः सन् यद् गीतं गायति तत्र 'रक्त'-नामा गुणो भवति २। अलङ्कृतम्-यत्र गाने गायकोऽन्यान्यस्फुट-

दो-कमती-बढती-ताल मत दो-कमती-बढती ताल देना यह गीतका दोष है, कांसी आदिका जो शब्द है, वह ताल है। काक स्वरसे गाना-अर्थात् जिस गीतमें काकके स्वर जैसा स्वर होता है-वह गीत काक स्वर गीत है, गीतमें काक स्वरका होना गीतका दोष है। इसलिये हे गायक! तुम श्लक्ष्ण अश्राव्य स्वरसे गीत मत गाओ। गीतको सानुनासिक (नाकमें) होकर गाना यह दोष है, इसलिये हे गायक! गीतको सानुनासिक मत गाओ। इस प्रकारसे ये भीतादिक दोष, गीतकेहैं ॥२३॥

अब गीतके जो गुण हैं-वे इस प्रकारसे हैं-यही बात सूत्रकार "पूर्ण रक्तं च" इत्यादि द्वारा प्रकट करते हैं-जिस गीतमें समस्त स्वर कलाएँ गायको द्वारा दिखलाई जाती हैं वह गीत "पूर्ण" गुणवाला होता है १, गीत रागके भावित होता हुआ गायक जिस गीतको

ત્યાં તેટલી માત્રામાં જ તાલ દો-વધુ ઓછી માત્રામાં તાલ દેવો તે ગીતનો દોષ ગણાય છે. કાંસી (મંજીરા) આદિના સૂરને તાલ કહે છે.

(૪) ગીતને કાકસ્વરે ગાવું જોઈએ નહીં. જે ગીતમાં કાગડાના જેવો અવાજ નીકળે છે તે ગીતને કાકસ્વર ગીત કહે છે.

(૫) ગીતને શ્લક્ષ્ણ (અશ્રાવ્ય) સ્વરે ગાવું એ પણ એક દોષ ગણાય છે. હે ગાયક! તું અશ્રાવ્ય-અસ્પષ્ટ સ્વરે ગીત ગાઈશ મા.

(૬) ગીતને સાનુનાસિક સ્વરે ગાવું તે પણ એક દોષ ગણાય છે, તેથી હે ગાયક! તું સાનુનાસિક સ્વરે ગીત ગાઈશ મા. આ પ્રમાણે ગીતના ભીતાદિક ૬ દોષો સમજવા.

હવે સૂત્રકાર ગીતના આઠ ગુણો પ્રકટ કરે છે "पूर्णं रक्तं च" ઈત્યાદિ.

(૧) જે ગીતમાં ગાયકો દ્વારા સમસ્ત સ્વરકલાઓ બતાવવામાં આવે છે તે ગીતને 'પૂર્ણ' ગુણવાળું કહે છે.

(૨) ગીતરાગથી ભાવિત થયેલો ગાયક જે ગીત ગાય છે તે ગીતને 'રક્ત' નામના ગુણથી અલંકૃત ગીત કહે છે.

शुभस्वरविशेषैर्गीतमलङ्करोति तत्र 'अलङ्कृत'-नामको गुणः ३। व्यक्तम्-यत्र गाने गायकोऽक्षरान् स्वरांश्च स्फुटतयोच्चारयति तत्र 'व्यक्त'-नामा गुणः ४। अविघुष्टम्-विक्रोशनमिव यद् विस्वरं भवति, तद् विघुष्टमुच्यते यत्र विघुष्टं न भवति तत्र 'अविघुष्ट'-नामागुणो बोध्यः ५। मधुरस्वरम्-मधुमत्तकोकिलकलकाकलीवत् यत्र गाने गायकस्य मधुरः स्वरो भवति तत्र 'मधुर' नामा गुणः ६। समम्-तालवंशस्वरादि समनुगतो यत्र स्वरो भवति तत्र 'सम'-नामको गुणः ७। सुललितम्-स्वरघोलना प्रकारेण शुद्धातिशयेन, शब्दस्पर्शनेन श्रोत्रेन्द्रियस्य सुखोत्पादनाद्वा ललतीव यत् तत् सुललितम्-सुकुमारमित्यर्थः। अयं च गेयस्याष्टमो गुणः ८। एते पूर्णादि सुललितान्ता अष्ट गुणा गेयस्य भवन्ति।

गाता है, वह गीत रक्त नामक गुणसे अलंकृत होता है २, गायक जिस गीतको स्फुट स्वर विशेषोंसे अलंकृत करता हुआ गाता है, वह गीत अलंकृत गुणसे युक्त कहा गया है ३, जिस गीतको गायक गानेवाला अक्षरोंको एवं स्वरोंको स्फुट रूपसे उच्चरित करता हुआ गाताहै, वह गीत व्यक्त गुणवाला होताहै, जो गीत चिल्लानेकी जैसी आवाजसे विस्वर हुआ होकर गानेवालेके द्वारा गाया जाताहै, वह गीत विघुष्ट कहलाताहै-जो विघुष्ट नहीं होताहै, वह अविघुष्ट गुणवाला गीत होताहै, जिस गीतमें मधुमत्त कोकिल की कलकाकली की तरह गायकका मधुर स्वर होता है, वह गीत सम गुणवाला कहा गया है, जो गीत स्वर घोलनाके प्रकारसे एवं स्पर्शन द्वारा श्रोत्रेन्द्रियको सुखोत्पादनसे, क्रीडा जैसी करता है, वह गीत सुललित है-सुकुमार है, यह गीतका आठवां गुण है, ये आठ

---

(૩) ગાયક જે ગીતને સ્ફુટ (સ્પષ્ટ) સ્વરવિશેષો વડે અલંકૃત કરીને ગાય છે તે ગીતને 'અલંકૃત' ગુણુથી યુક્ત ગીત માનવામાં આવે છે.

(૪) અક્ષરો અને સ્વરોના સ્ફુટ (સ્પષ્ટ) ઉચ્ચારણુપૂર્વક ગાયક જે ગીત ગાય છે, તે ગીતને 'વ્યક્ત' ગુણુવાળું કહે છે.

(૫) જે ગીત ગાયક દ્વારા ચિચિયારી જેવા અવાજે વિસ્વર થઈને ગવાય છે તે ગીતને વિઘૃષ્ટ કહે છે

(૬) જે ગીત વિઘૃષ્ટ હોતું નથી તેને અવિઘૃષ્ટ ગુણુવાળું કહે છે.

(૭) જે ગીત મસ્ત કોયલના જેવા ગાયકના મધુર સ્વર વડે ગવાતું હોય છે તે ગીતને સમગુણુવાળું કહે છે.

(૮) જે ગીતમાં ઘુંટાઈ ઘુંટાઈને સ્વર આવતો હોય, અને શબ્દના સ્પર્શ દ્વારા શ્રોત્રેન્દ્રિયને સુખ પ્રાપ્ત થતું હોય, જાણે કે સૂર કોઈ ક્રીડા ખેલી રહ્યો હોય એવો અનુભવ જે ગીતમાં થતો હોય છે તે ગીતને સુલલિત

एतद्विरहितं गीतं तु गीतमेव न भवति, तत्तु गीताभासं विज्ञेयम् ॥ २४ ॥ इतोऽन्येऽपि गीतगुणाः सन्ति, तान् प्रदर्शयितुमाह-' उरकंठ ' इत्यादि। च=पुनः उरःकण्ठ शिरः प्रशस्तम्-उरःकण्ठशिरसां द्वन्द्वः, ततः प्रशस्तेन सह तृतीयातत्पुरुषः। एवं च-उरःप्रशस्तम्, कण्ठप्रशस्तम्, शिरःप्रशस्तमिति पदत्रयं लभ्यते। तत्र-उरसि यदा विशालः स्वरो भवति तदा-उरःप्रशस्तं विज्ञेयम्। यदा च कण्ठे स्वरोवर्त्तितोऽतिस्फुटितश्च तदा कण्ठप्रशस्तम्। यदा च शिरसि प्राप्तः स्वरः स चेदनुनासिक्य रहितस्तदा शिरःप्रशस्तम्। यद्वा-उरः-कण्ठशिरस्सु कफरहितेषु सत्सु यत् प्रशस्तं गीतं भवति, तत् उरःकण्ठशिरःप्रशस्तम्। तथा-मृदुक-

---

गुण गीतके होते हैं। इन गुणोंसे रहित जो गीत होता है, वह वास्तविक रूपसे गीत नहीं कहा गया है ॥ २४ ॥

इनसे भी अतिरिक्त और भी गीतके गुण हैं-जो "उरःकंठ" इत्यादि गाथा द्वारा प्रकट किये गये हैं—

जो गीत उरः प्रशस्त होता है-जब उरःस्थानमें स्वर विशाल होता है, तब वह गीत उरःप्रशस्त कहा जाता है, कण्ठप्रशस्त जब कण्ठमें स्वरवर्तित होता हुआ अति स्फुट होता है, तब वह गीतकंठ प्रशस्त कहा जाता है, शिरः प्रशस्त-जब शिरमें प्राप्त स्वर अनुनासिकसे रहित होता है, तब वह गीत शिरःप्रशस्त कहा जाता है, अथवा-जब उरः कंठ, शिर ये एकरहित होते हैं, तब उस समय गाये हुए गीतसे जो प्रशस्तता होती है, तब वह गीत क्रमशः उरःप्रशस्त कण्ठप्रशस्त एवं शिरःप्रशस्त कहलाता है, ऐसा जानना चाहिये "मृदुकरिभित-

---

અથવા સુકુમાર ગીત કહે છે. આ પ્રમાણે ગીતના આઠ ગુણો સમજવા. આ ગુણોથી રહિત જે ગીત હોય છે તેને ખરી રીતે તો ગીતજ કહી શકાય નહીં. આ સિવાય પણ ગીતના બીજા અનેક ગુણો કહ્યા છે. "ઉરકંઠ" ઈત્યાદિ ગાથાઓ દ્વારા તે ગુણોને પ્રકટ કરવામાં આવ્યા છે—

જ્યારે ઉરઃસ્થાનમાં સ્વર વિશાળ હોય છે, ત્યારે તે ગીતને ઉરઃ પ્રશસ્ત કહે છે. જ્યારે કંઠમાંથી નીકળતો સ્વર અતિ સ્ફુટ હોય છે, ત્યારે તે ગીતને કંઠપ્રશસ્ત કહે છે. જ્યારે શિરમાં પ્રાપ્ત સ્વર અનુનાસિકથી રહિત હોય છે, ત્યારે તે ગીતને શિરપ્રશસ્ત કહે છે. અથવા-જ્યારે ઉર, કંઠ અને શિર, આ અંગો એક રહિત હોય છે, તે સમયે ગવાતા ગીતમાં જે પ્રશસ્તતા હોય છે, તે પ્રશસ્તતાવાળા ગીતને અનુક્રમે ઉર પ્રશસ્ત, કંઠ પ્રશસ્ત અને શિર પ્રશસ્ત કહે છે.

रिभितपदबद्धम्-मृदुना=कोमलेन स्वरेण यद्गीयते तद् मृदुकम्, यत्र अक्षरेषु घोलनया संचरन् स्वरो रङ्गतीव तद् घोलनाबहुलं रिभितम्, पदबद्धम्=पदैः=गेयपदैः बद्धम्=विशिष्टरचनया रचितम् पदत्रयस्य कर्मधारयः। तथा च-समतालप्रत्युत्क्षेपम्-तालः=हस्ततालसमुत्थः शब्दः, प्रत्युत्क्षेपः=मृदङ्गकांस्यादीनां गीतोपकारकाणां ध्वनिः, नर्तकी पद प्रक्षेपलक्षणो वा, समौ तालप्रत्युत्क्षेपौ यत्र तत्। तथा-सप्तस्वरसीभरम्-सप्तस्वराः सीभरन्ति=अक्षरादिभिः समा भवन्ति यत्र तत्। एवंविध यद् गीतं गीयते तदेव सुगीतं भवति। इत्थं च उरःकण्ठशिरोविशुद्धत्वादयोऽपि गीतगुणा बोध्याः ॥ 'सप्तस्वरसीभरम्' इत्युक्तम्, तत्र सप्तस्वराः अन्यत्र अमुना प्रकारेणोक्ताः, तथाहि—

"अक्खरसमं १ पदसमं २ तालसमं ३ लयसमं च गहसमं ५।
नीससिओससियसमं ६ संचार समं ७ सरा सत्त ॥ १ ॥"

पदबद्धम्" जो गाना कोमल स्वरसे गाया जाता है, वह मृदुक है, जहाँ अक्षरोंमें घोलनासे संचार करता हुआ स्वर खेलता जैसा प्रतीत होता है, वह घोलना बहुल गीत रिभित है, जो विशिष्ट रचनावाले गेय पदोंसे बद्ध होता है, वह गेय पदबद्ध है, जिस गेयमें हस्त तालसे समुत्थ शब्दरूप ताल एवं गीतोपकारक मृदङ्ग कांसी आदिकोंकी ध्वनिरूप प्रत्युत्क्षेप अथवा नर्तकीका पद प्रक्षेपरूप प्रत्युत्क्षेप समान होते हैं वह गेय समताल प्रत्युत्क्षेप है, जिस गेयमें अक्षरादिकोंके साथ सात स्वर सम होते हैं-वह गेय सप्तस्वर सीभर है। इस प्रकारसे ये गीतके उरः विशुद्ध आदि गुण होते हैं ॥२५॥

"मृदुकरिभितपदबद्धम्" જે ગાયન કોમળ સૂરે ગવાય છે તેને મૃદુક કહે છે. જ્યારે અક્ષરો ઘુંટાવાને કારણે સૂર જાણે કે ક્રીડા કરતો હોય એવું લાગે છે, તે ગીતને રિભિત ગીત કહે છે. જે ગીત વિશિષ્ટ રચનાવાળા ગેય પદો વડે બદ્ધ હોય છે તે ગીતને પદબદ્ધ કહે છે. જે ગીતમાં હાથનો તાલ ગીતોપકારક મૃદંગ, કાંસી આદિના ધ્વનિ રૂપ પ્રત્યુત્ક્ષેપ અથવા નર્તકીના પદપ્રક્ષેપ રૂપ પ્રત્યુત્ક્ષેપ સમાન હોય છે, તે ગેયને સમતાલ પ્રત્યુત્ક્ષેપ કહે છે. જે ગેયમાં (ગીતમાં) અક્ષરાદિની સાથે સાત સ્વર સમ હોય છે, તે ગેયને 'સપ્તસ્વરસીભર' કહે છે.

આ પ્રકારના ગુણોવાળું જે ગીત ગવાય છે તેને જ સુગીત કહે છે. આ પ્રકારના ગીતના ઉરવિશુદ્ધિ આદિ ગુણો કહ્યા છે.

छाया-अक्षरसमं १ पदसमं २ तालसमं ३ लयसम ४ ग्रहसमम् ५ ।
निःश्वसितोच्छ्वसितसमं संचारसमं स्वराः सप्त ॥ १ ॥ इति ।

अयमर्थः-अक्षरसमम्-यत्र दीर्घेऽक्षरे दीर्घः स्वरः क्रियते, ह्रस्वे ह्रस्वः, प्लुते प्लुतः, सानुनासिके सानुनासिकः, तदक्षरसमम् ॥१॥ पदसमम्-यत् पदं=गीतपदं यत्र स्वरे आनुपाति भवति तत्रैव यदा गीयते तदा पदसमं भवति ।२॥ तालसमम्-यत्परस्पराभिहतहस्ततालस्वरानुसारिणा स्वरेण गीयते तत्तालसमम् ॥३॥ लयसमम्-शृङ्गदारुदन्यतममयेनाङ्गुलीकोशेन समाहते तन्त्र्यादौ यस्तत्स्वरप्रकारः स लयः, तमनुसरता स्वरेण यद् गीयते तद् लयसमम् ॥४॥ ग्रहसमम्-प्रथमतो वंशतन्त्र्यादिभिर्यः स्वरो गृहीतः स ग्रहः, तत्समेन स्वरेण

अन्यत्र सात स्वर इस प्रकारसे भी कहे गये हैं-जैसे-"अक्खरसमं १ पदसमं" इत्यादि ।

जिस गेयमें दीर्घ अक्षर पर दीर्घ स्वर, ह्रस्व अक्षर पर ह्रस्व स्वर, प्लुत अक्षर पर प्लुत स्वर एवं सानुनासिक अक्षर पर सानुनासिक स्वर किया जाता है, वह अक्षरसम स्वर है, जो गीतपद जिस स्वरमें अनुपाति होता है-गाने योग्य होता है, वह पदसम होता है, जो परस्पर अभिहत हस्ततालके स्वरके अनुसारी स्वरसे गाया जाता है, वह तालसम है, शृंगके बने हुए या लकड़ीके बने हुए किसी एक अङ्गुली कोशसे तन्त्री आदिके बजाने पर जो स्वर निकलता है, वह लय है, उस लयको अनुसरण करनेवाले स्वरसे जो गेय गाया जाता है, वह लयसम है ४. जो स्वर पहिले वंश तंत्री आदिसे मिला लिया

અન્યત્ર સાત સ્વર આ પ્રમાણે પણ કહ્યા છે—

" अक्खरसमं पदसमं " ઈત્યાદિ—

(૧) જે ગેયમાં દીર્ઘ અક્ષર પર દીર્ઘ સ્વર, હ્રસ્વ અક્ષર પર હ્રસ્વ સ્વર, પ્લુત અક્ષર પર પ્લુત સ્વર, અને સાનુનાસિક અક્ષર પર સાનુનાસિક સ્વર કરાય છે તે અક્ષર સમસ્વર ગીત કહેવાય છે.

(૨) જે ગીતપદ જે સ્વરમાં અનુપાતિ હોય છે-ગાવા યોગ્ય હોય છે તે સ્વરમાં ગવાય તો તેને પદસમ કહે છે.

(૩) જે ગીત પરસ્પર અભિહત હસ્તતાલના સ્વરાનુસારી સૂરે ગાવામાં આવે છે, તે ગીતને તાલસમ કહે છે.

(૪) શિંગડામાંથી બનેલી અથવા લાકડાના બનેલા કોઇ એક અંગુલી કોશ વડે તંત્રી આદિને વગાડવાથી જે સ્વર નીકળે છે તેને લય કહે છે. તે લયનું અનુસરણ કરનારા સ્વરથી જે ગીત ગવાય છે તેને લયસમ કહે છે.

यद् गीयते तद् ग्रहसमम् ॥५॥ निःश्वसितोच्छ्वसितसमम्-निःश्वसितोच्छ्वसित-मानमनतिक्रमेण यद् गेयं तद् निःश्वसितोच्छ्वसितसमम् ॥६॥ संचारसमम्-वंशतन्त्र्यादिष्वेव अङ्गुली संचारसमं यद् गीयते तत् संचारसमम् ।७। एवमेते सप्त स्वरा भवन्ति। अत्रेदं बोध्यम्-एकोऽपि गीतस्वरोऽक्षरपदादिभिः सप्तभिः स्थानैः सह समत्वं प्रतिपद्यमानः सप्तविधत्वं भजते, अतोऽक्षरसमादयः सप्तस्वरा भवन्तीति। अत्र तु सूत्रोपान्ते 'तन्तिसमं तालसमं' इति गाथया सप्तस्वरा उच्यन्ते इति बोध्यम्। तथा-गीते यः सूत्रबन्धः सोऽष्टगुण एव कर्त्तव्य इति तानाह-'निदोसं' इत्यादि-निर्दोषम्='अलियमुवघायजणयं'

जाता है-और बादमें फिर उसी स्वर जैसे स्वरसे जो गाना गाया जाता है, वह ग्रहसम है। निश्वास उच्छ्वासके प्रमाणको उल्लंघन नहीं करके जो गेय गाया जाता है, वह निःश्वसितोच्छ्वसितसम है ६। वंशतन्त्री आदिके ऊपरही अंगुलीको फेरनेके साथ २ जो गाना गाया जाता है, वह संचारसम है ७। इस प्रकारसे ये सात स्वर होते हैं। यहां यह समझना चाहिये-एक भी गीत स्वर अक्षर पद आदि सात स्थानोंके साथ समताको पाता हुआ सप्त प्रकारताको प्राप्त होता है, इसलिये अक्षसम आदि सात स्वर कहे गये हैं। यहां सूत्रके उपान्तमें "तन्तिसमं तालसमं" इस गाथा द्वारा तो सात स्वर कहे गये हैं। तथा-गीतमें जो सूत्रबन्ध है, वह आठ गुणोंवालाही करनेके योग्य है-वे आठ गुण "निदोसं" इत्यादि गाथा द्वारा इस प्रकारसे प्रकट किये

---

(५) જે સ્વર પહેલાં વાંસની વાંસળી આદિ સાથે મેળવી લેવામા આવે છે, અને ત્યાર બાદ તે સ્વર જેવા જ સ્વર વડે જે ગીત ગવાય છે, તેને ગ્રહસમ ગીત કહે છે.

(૬) નિઃશ્વાસ ઉચ્છ્વાસના પ્રમાણનું ઉલ્લંઘન કર્યા વિના જે ગીત ગવાય છે તેને 'નિશ્વસિતોચ્છ્વસિત સમ' કહે છે.

(૭) વાંસળી આદિ વાદ્યો પર આંગળીનુ સચરણ કરીને જે ગીત ગવાય છે તેને સંચરણસમ કહે છે. આ પ્રકારના આ સાત સ્વર હોય છે. અહીં એવું સમજવું જોઈએ કે કોઇ પણ ગીત સ્વર, અક્ષર, પદ આદિ સાત સ્થાનોની સાથે સમતાને પામતું થકુ સપ્તપ્રકારતા પ્રાપ્ત કરે છે. તેથીજ અક્ષરસમ આદિ સાત પ્રકારના સ્વરો કહ્યા છે. અહીં સૂત્રને ઉપાન્તે "तन्ति-समं तालसमं" આ ગાથા દ્વારા તે સાત સ્વર કહેવામા આવ્યા છે.

તથા ગીતમાં જે સૂત્રબન્ધ હોય છે તે આઠ ગુણોવાળો હોય છે. તે આઠ ગુણો "निद्दोसं" ઇત્યાદિ ગાથા દ્વારા આ પ્રમાણે પ્રકટ કરવામાં આવ્યા છે—

इत्यादि द्वात्रिंशद्दोषरहितम् १, सारवत्=विशिष्टयुक्तम् २, हेतुयुक्तम्=गीतानामर्थबोधोऽनायासेन श्रोतॄणां भवत्विति हेतुमुपलक्ष्य यद् रचितं गीतं तत्, प्रसादगुणयुक्त मित्यर्थः ३, अलङ्कृतम्=उपमाद्यलङ्कारयुक्तम् ४, उपनीतम्=उपनयनिगमनयुक्तम्-उपसंहार - युक्तमित्यर्थः ५, सोपचारम्-क्लिष्टविरुद्ध-लज्जास्पदार्थावाचकं सानुप्रासं वा गीतम् ६, मितम्-अतिवचनविस्तररहितं-संक्षिप्ताक्षरमित्यर्थः ७, तथा-मधुरम्-माधुर्यगुणसमन्वितम् - सुश्राव्यशब्दार्थ-

गये हैं-"अलियमुवघायजणयं" के अनुसार जो गीत ३२ दोषोंसे रहित होता है, वह निर्दोष गुणवाला गीत है, जो गीत विशिष्ट अर्थसे युक्त होता है, वह "सारवत्" गुणवाला गीत है, जो गीत इस अभिप्रायसे कि श्रोताओंको गीतका अर्थज्ञान सरलतासे हो जाय रचा जाता है, ऐसा वह प्रसाद गुणयुक्त गीत हेतुयुक्त गीत है, जो गीत उपमा आदि अलंकारोंसे युक्त होता है, वह अलकृत गीत है, जो गीत उपनय और निगमनसे युक्त होता है, वह उपनीत गीत है। उपनय और निगमनसे यहां उपसंहार अर्थ किया गया है। जो गीत क्लिष्ट अर्थका विरुद्ध अर्थका और लज्जास्पद अर्थका वाचक नहीं होता है, वह अथवा अनुप्रास युक्त जो गीत होता है, वह सोपचार गीत है-जो गीत अतिवचनके विस्तारसे रहित है-अर्थात् संक्षिप्त अक्षरोंसे होता है, वह मित गीत है-जो गीत माधुर्य गुणसे युक्त होता है, वह

"અલિયમુવઘાયજણયં" આ કથન અનુસાર જે ગીત ૩૨ દોષોથી રહિત હોય છે તેને નિર્દોષ ગુણવાળું ગીત કહે છે જે ગીત વિશિષ્ટ અર્થથી યુક્ત હોય છે તેને "सारवत्" સારયુક્ત ગુણવાળું ગીત કહે છે શ્રોતાઓને ગીતના અર્થનું જ્ઞાન સરળતાથી પ્રાપ્ત થઇ જાય, એવા હેતુપૂર્વક રચાયેલા પ્રસાદગુણયુક્ત ગીતને હેતુયુક્ત ગીત કહે છે જે ગીત ઉપમા આદિ અલંકારોથી યુક્ત હોય છે તેને અલંકૃત ગીત કહે છે. જે ગીત ઉપનય અને નિગમનથી યુક્ત હોય છે તેને ઉપનીત ગીત કહે છે. ઉપનય અને નિગમનનો અર્થ અહીં ઉપસંહાર લેવામાં આવ્યો છે. જે ગીત ક્લિષ્ટ અર્થનું, વિરૂદ્ધ અર્થનું અને લજ્જાસ્પદ અર્થનું વાચક હોતું નથી, તેને સોપચાર ગીત કહે છે અથવા અનુપ્રાસયુક્ત જે ગીત હોય છે તેને સોપચાર ગીત કહે છે. જે ગીત અતિવચનથી (નકામા વિસ્તારથી) રહિત હોય છે એટલે કે સંક્ષિપ્ત અક્ષરોવાળું જે ગીત હોય છે તેને મિતગીત કહે છે. જે ગીત માધુર્ય ગુણથી

मित्यर्थः ८, एतादृशं यद्गीतं तदेव गानयोग्यं भवति ॥२६॥ अथ यदुक्तं 'त्रीणि वृत्तानीति तान्याह–' सम० ' इत्यादि । यत्र वृत्ते चतुर्ष्वपि चरणेषु समान्यक्षराणि भवन्ति तद्वृत्तं समम् १, यत्र वृत्ते प्रथमतृतीययोर्द्वितीयचतुर्थयोश्च चरणयोः समान्याक्षराणि भवन्ति तदर्धसमम् २, तथा–यत्र वृत्ते सर्वत्र=चतुर्ष्वपि चरणेषु अक्षराणां वैषम्यं भवति तद्वृत्तं विषमम् । एते त्रय एव वृत्तप्रकारा भवन्ति, चतुर्थं वृत्तं तु नोपलभ्यते॥२७॥ तथा–भणितयः=भाषा· संस्कृताः प्राकृताश्च द्विविधाः= द्विप्रकारा एव आख्याता=उक्ताः । एताः ऋषिभाषिताः, अतएव प्रशस्ताः भाषा बोध्याः । अतएव एताः स्वरमण्डले=षड्जादि स्वर समूहे गीयन्ते ॥२८॥ अत्र

गीत मधुर गुण युक्त है, एसा जो गीत होता है वही गानेके योग्य होता है ॥ २६ ॥ जो ३ वृत्त कहे गये हैं वे इस प्रकारसे हैं-जिस वृत्तमें चारों चरणोंमें-समान अक्षर होते हैं-ऐसा वह वृत्त समवृत्त कहा गया है, जिस वृत्तमें प्रथम और तृतीय चरणोंमें एवं द्वितीय और चतुर्थ चरणोंमें समान अक्षर होते हैं, वह अर्ध समवृत्त है, जिस वृत्तमें चारों चरणोंमें अक्षरोंकी विषमता रहती है, वह वृत्त विषमवृत्त है, ये तीनही वृत्तके प्रकार होते हैं–चौथा वृत्त उपलब्ध नहीं होता है। ॥ २७ ॥ भणिति दो प्रकारकी होती है–भणिति शब्दका अर्थ भाषा है, संस्कृत भाषा और प्राकृत भाषा ये दोनों भाषाएँ ऋषियों द्वारा कही गई हैं–इसलिये ये भाषाएँ प्रशस्त भाषाएँ हैं। इसलिये ये षड्ज आदि स्वरसमूहके बीचमें गाई जाती हैं ॥ २८ ॥

યુક્ત હોય છે તેને મધુરગીત કહે છે. આ આઠ ગુણોથી યુક્ત જે ગીત હોય છે, એ જ ગાવાને યોગ્ય હોય છે.

હવે વૃત્તના ત્રણ પ્રકાર પ્રકટ કરવામાં આવે છે—(૧) સમવૃત્ત—જે વૃત્તમાં ચારે ચરણોમાં સમાન અક્ષરો હોય છે તે વૃત્તને સમવૃત્ત કહે છે. (૨) અર્ધસમવૃત્ત—જે વૃત્તમાં પહેલા અને ત્રીજા ચરણમાં અને બીજા અને ચોથા ચરણમાં સમાન અક્ષરો હોય છે તે વૃત્તને અર્ધસમવૃત્ત કહે છે (૩) વિષમવૃત્ત—જે વૃત્તના ચારે ચરણોમાં અક્ષરોની સંખ્યા વિષમ (અસમાન) હોય છે તે વૃત્તને વિષમવૃત્ત કહે છે. વૃત્તના આ પ્રમાણે ત્રણ પ્રકાર છે.

ભણિતિ એટલે ભાષા. તે ભણિતિના બે પ્રકાર કહ્યા છે—(૧) સંસ્કૃત ભાષા, અને (૨) પ્રાકૃત ભાષા. આ બન્ને ભાષાઓ ઋષિઓ દ્વારા કહેવામાં આવી હોવાને લીધે પ્રશસ્ત છે તે કારણે તેમને ષડ્જ આદિ સ્વર સમૂહોમાં

गीयमाना एकोनपञ्चाशदेव ताना भवन्ति। इत्थमिदं स्वरमण्डलं समाप्तम्=सम्पूर्णम् ॥३२॥ इति स्वरमण्डलं समाप्तम् ॥ सू० १४ ॥

गाने हि कायक्लेशो भवति, स च लौकिकः कायक्लेशः, स पूर्वसूत्रे प्रोक्तः, अधुना लोकोत्तरं कायक्लेशमाह—

मूलम्—सत्तविहे कायकिलेसे पण्णत्ते, तं जहा—ठाणाइए १ उक्कुडुयासणिए २ पडिमठाई ३, वीरासणिए ४ णेसज्जिए ५, दंडाइए ६, लगंडसाई ७ ॥ सू० १५ ॥

छाया—सप्तविधः कायक्लेशः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—स्थानातिगः १, उत्कुटुकासनिकः २, प्रतिमास्थायी ३, वीरासनिकः ४, नैषधिकः ५, दण्डायतिकः ६, लगण्डशायी ७ ॥ सू० १५ ॥

टीका—'सत्तविहे' इत्यादि—

कायक्लेशः—कायस्य=शरीरस्य क्लेशः=खेदः—बाह्यतपोविशेषः सप्तविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—स्थानातिगः—स्थानं=कायोत्सर्गादिकमतिशयेन गच्छतीति स्थाना-

---

वीणामें अथवा तीन तन्त्रिकावाली वीणामें कण्ठसे भी गाई जाती तानें ४९ ही होती हैं ॥ ३२ ॥

इस तरहसे यह स्वरमण्डल समाप्त हुआ ॥ सूत्र १४ ॥

गानमें जो कायक्लेश होता है, वह लौकिक कायक्लेश होता है, और यह लौकिक कायक्लेश इस पूर्वके सूत्रमें प्रकटही किया जा चुका है—अतः अब जो लोकोत्तर कायक्लेश है उसे सूत्रकार प्रकट करते हैं—

"सत्तविहे कायकिलेसे पण्णत्ते" इत्यादि। सूत्र ॥ १५ ॥

टीकार्थ—बाह्यतपो विशेषरूप जो कायक्लेशहै—वह सात प्रकारका कहा गया है, जैसे स्थानातिग १ कायोत्सर्ग आदिरूप स्थानको जो अच्छी

ત્રણ તારવાળી વીણામાં ગવાતાં તાન ૪૯ જ છે અને કંઠથી ગવાતાં તાન પણ ૪૯ છે આ પ્રકારે સ્વરમંડળનું નિરૂપણ અહીં કરવામાં આવ્યું છે ॥ સૂ. ૧૪ ॥

ગાયનમાં જે કાયકલેશ થાય છે તેને લૌકિક કાયકલેશ કહી શકાય. તે લૌકિક કાયકલેશનું નિરૂપણ આગલા સૂત્રમાં કરવામાં આવ્યું છે. હવે સૂત્રકાર લોકોત્તર કાયકલેશનું નિરૂપણ કરે છે.

"સત્તવિહે કાયકિલેસે પણ્ણત્તે" ઇત્યાદિ—

ટીકાર્થ—બાહ્ય તપોવિશેષ રૂપ જે કાયકલેશ છે તેના સ્થાનાતિગ આદિ સાત પ્રકારો કહ્યા છે. કાયોત્સર્ગ આદિ રૂપ સ્થાનની જે સમ્યક્ રીતે આરાધના કરે છે તેમને

तिग|-कायोत्सर्गकारीत्यर्थः। कायक्लेशे निर्देश्ये कायक्लेशवतो निर्देशो धर्म-धर्मिणोरभेदोपचाराद् बोध्यः। एवमग्रेऽपि। 'स्थानातिदः' इतिच्छायापक्षे-स्थानमति ददातीति विग्रहः। 'स्थानायतिकः' इतिच्छाया पक्षे तु स्थानार्थम् आयतिः-आ=समन्तात् यतिः=यत्नो यस्य स तथा। अर्थस्तूभयत्र कायोत्सर्गकारीत्येव ॥१॥ उत्कुटुकासनिकः-उत्कुटुकासनम्=पुतस्य भूमावलगनेन उपवेशनम्, तत् अस्त्यस्येति-उत्कुटुकासनिकः ॥२॥ प्रतिमास्थायी=भिक्षुप्रतिमाकारी ॥३॥ वीरासनिकः-वीरासनम्=निरालम्बेऽपि सिंहासनोपविष्टवद् भूम्यस्त

तरहसे करता है-ऐसा कायोत्सर्गकारी स्थानातिग है, यहां यद्यपि कायक्लेश निर्देश्य है, परन्तु कायक्लेशवालेका जो निर्देश्य किया गया है, वह धर्म और धर्मिके अभेद उपचारसे किया गया है। इसी प्रकारका कथन आगेके सूत्रोंमें उत्कुटुकासनिक आदिकोंमें भी जानना चाहिये "ठाणाइए" की संस्कृत छाया जब स्थानातिगके बजाय स्थानातिद अथवा स्थानायतिक ऐसी होती है, तब वहां भी "कायोत्सर्ग कारी" ऐसाही अर्थ होता है "उत्कुटुकासनिक" जिस बैठनेमें दोनों पुत जमीन पर नहीं लगते हैं, इस प्रकारसे बैठना इसका नाम उत्कुटुक है, यह उत्कुटुक जिसको होता है, वह उत्कुटुकासनिक है २ भिक्षु प्रतिमाका जो सेवन करनेवाला होता है, वह प्रतिमा स्थायी है, अर्थात् अभिग्रह में रहने वाला है आलम्बन के विना भी जो जमीन पर चरणोंको टेक कर बैठा जाता है,

જે કાયક્લેશ સહન કરવો પડે છે તેને સ્થાનાતિગ કાયક્લેશ કહે છે અહીં જો કે કાયક્લેશનો નિર્દેશ થયેલો છે છતાં પણ અહીં જે કાયક્લેશવાળાનો નિર્દેશ કરવામાં આવ્યો છે તે ધર્મ અને ધર્મીમાં અભેદના ઉપચારની અપેક્ષાએ કરવામાં આવ્યો છે. એ જ પ્રકારનું કથન ઉત્કુટાસનિક આદિ પદોમાં પણ સમજવાનું છે.

"ઠાણાइए" આ પદની સંસ્કૃત છાયા 'સ્થાનાતિગ' ને બદલે 'સ્થાનાતિદ' અથવા "સ્થાનાયતિક" લેવામાં આવે તો પણ તેમનો અર્થ "કાયોત્સર્ગકારી" જ થાય છે.

(૨) ઉત્કુટુકાસનિક—જે આસનમાં બન્ને પુત (કુલા) જમીનને અડકે નહીં એવી રીતે ઉભડક આસને બેસવામાં આવે છે તે આસનને ઉત્કુટુક કહે છે. આ પ્રકારના આસને બેસનારના કાયક્લેશને ઉત્કુટુકાસનિક કાયક્લેશ કહે છે. (૩) પ્રતિમાસ્થાયી—ભિક્ષુપ્રતિમાની આરાધના કરનારને પ્રતિમાસ્થાયી કહે છે. તેના કાયક્લેશને પ્રતિમાસ્થાયી કાયક્લેશ કહે છે. (૪) વીરાસનિક—કોઈ પણ જાતના અવલંબન વિના, ચરણોને ભૂમિ પર ટેકવીને જે આસને

चरणं मुक्तनाञ्जनमुपवेशनम्, तदस्त्यस्येति तथा ॥४॥ नैषधिका–निषद्या=आसन विशेषः, सा समपादपुता १, गोनिषद्या २, हस्तिशुण्डिका ३, पर्यङ्का ४, अर्ध-पर्यङ्का ५। चेति पञ्चविधा, एतदर्थः पञ्चमस्थानस्य प्रथमोद्देशे नवमसूत्रे द्रष्टव्यः। तया चरति सः ॥ ५ ॥ दण्डायतिकः–पादाग्रादि प्रसारणेन दण्डव-त्पाती ॥ ६ ॥ तथा–लगण्डशायी–लगंडं=वक्रकाष्ठम्, तद्वच्छयनशीलः। अयं भावः–मस्तक पार्ष्ण्यादिभागानां भूमिसम्बन्धेन पृष्ठस्य च तदसम्बन्धेन शयन शीलः ॥७॥ एते यद्यपि पूर्वं पञ्चमस्थानस्य प्रथमोद्देशे व्याख्यातप्रायास्तथापि विनेयानां सौकर्यार्थमत्रापि किंचिद् व्याख्यात इति ॥ सू० १५ ॥

वह वीरासन है, इस वीरासनमें बैठनेवालेका आकार कुर्सीके जैसा हो जाता है, यह आसन जिसको होताहै, वह वीरासनिक है, निषद्या नाम आसन विशेषका है, यह आसन विशेषरूप निषद्या–समपाद पुता '१' गोनिषद्या '२' हस्तिशुण्डिका '३' पर्यङ्का '४' और अर्ध पर्यङ्काके भेदसे '५' पांच प्रकारकी होतीहै, इनका अर्थ पंचम स्थानके प्रथम उद्देशमें नौवें सूत्रमें देख लेना चाहिये. इस निषद्यासे जो रहता है, वह नैषधिक है, दण्डायतिक–पादाग्र आदिके पसारनेसे जो दण्डके समान हो जाना होता है वह दण्डायतिक है, लगण्डशायी–मस्तक और पार्ष्णी आदि भागोंको भूमिमें लगाकर और पृष्ठ भागको भूमिमें नहीं लगाकर जो शयन करनेके स्वभाववाला होता है, वह लगण्डशायी

બેસવામાં આવે છે તે આસનનું નામ વીરાસન કહે છે. આ આસને બેસનારનો આકાર ખુરશીના જેવો હોય છે. આ વીરાસનિકને જે કાયકલેશ થાય છે તેનું નામ વીરાસનિક કાયકલેશ છે.

(૫) નૈષધિક—નિષદ્યા એક આસન વિશેષનું નામ છે તેના નીચે પ્રમાણે પાંચ પ્રકાર કહ્યા છે—(૧) સમપાદપુતા, (૨) ગોનિષદ્યા, (૩) હસ્તિ-શુંડિકા, (૪) પર્યંકા અને (૫) અર્ધપર્યંકા. આ પાંચે પ્રકારના આસન વિશેષોનું વર્ણન પાંચમાં સ્થાનના પહેલા ઉદ્દેશાના નવમાં સૂત્રમાં આપવામાં આવ્યું છે, તો ત્યાંથી વાંચી લેવું. આ નિષદ્યા રૂપ આસન વિશેષમાં બેસ-નારને નૈષધિક કહે છે. તે નૈષધિકને જે કાયકલેશ સહન કરવો પડે છે તેને નૈષધિક કાયકલેશ કહે છે.

(૬) દંડાયતિક—પાદાગ્રને ફેલાવવાથી જે દંડના જેવા આકારનું આસન થઈ જાય છે તે આસને બેસનારને દંડાયતિક કહે છે. તેને જે કાયકલેશ સહન કરવો પડે છે તેનું નામ દંડાયતિક કાયકલેશ છે.

पूर्वोक्तं कायक्लेशरूपं तपो मनुष्यलोके एव भवतीति मनुष्यलोकं, तत्र तान् वर्षधरपर्वतादींश्च प्ररूपयति—

मूलम्—जंबुद्दीवे दीवे सत्तवासा पण्णत्ता, तं जहा—भरहे १, एरवए २, हेमवए ३, हेरन्नवए ४ हरिवासे ५, रम्मगवासे ६, महाविदेहे ७। जंबुद्दीवे दीवे सत्त वासहरपव्वया पण्णत्ता, तं जहा—चुल्लहिमवंते १, महाहिमवंते २, निसढे ३, नीलवंते ४, रुप्पी ५, सिहरी ६ मंदरे ७। जंबुद्दीवे दीवे सत्त महानईओ पुरत्थाभिमुहीओ लवणसमुद्दं समप्पेंति, तं जहा—गंगा १ रोहिता २ हिरी ३ सीता ४ परकंता ५ सुवण्णकूला ६ रत्ता ७। जंबुद्दीवे दीवे सत्त महानईओ पच्चत्थाभिमुहीओ लवणसमुद्दं समप्पेंति, तं जहा—सिंधू १ रोहितंसा हरिकंता २३ सीतोदा नारीकंता ५४ रुप्पकूला ६ रत्तवई ७ ॥ १ ॥ धायइसंडदीवपुरत्थिमद्धे णं सत्तवासा पण्णत्ता, तं जहा—भरहे १ जाव महाविदेहे ७। धायइसंडदीवपुरत्थिमद्धे णं सत्त वासहर-

---

है, ये यद्यपि पहिले पंचम स्थानके प्रथम उद्देशमें व्याख्यातप्राय हुए हैं—फिर भी यहां जो पुनः इन पर कुछ कुछ प्रकाश डाला गया है, वह शिष्यजनोंको बोध होनेके निमित्त डाला गया है ॥ सूत्र १५ ॥

---

(७) લગંડશાયી—મસ્તક અને એડી આદિ ભાગોને ભૂમિ પર જમાવીને અને પૃષ્ઠ ભાગનો ભૂમિને સ્પર્શ ન થાય એવી રીતે શયન કરવાનો જેનો સ્વભાવ હોય છે, તેને લગંડશાયી કહે છે તે લગંડશાયીના કાયકલેશને લગંડશાયી કાયકલેશ કહે છે. આ આસનોનું પાંચમાં સ્થાનના પહેલા ઉદ્દેશામાં પ્રતિપાદન થઇ ચૂકયું છે, 'છતાં પણ અહીં' તે આસનો પર ફરી જે પ્રકાશ પાડવામાં આવ્યો છે તે શિષ્યોને બોધ આપવાને નિમિત્તે જ પાડવામાં આવ્યો છે. ॥ સૂ. ૧૫ ॥

पव्वया पण्णत्ता, तं जहा—चुल्लहिमवंते १, जाव मंदरे ७। धायइसंडदीवपुरत्थिमद्धे णं सत्तमहानईओ पुरत्थाभिमुहीओ कालोयसमुद्दं समुप्पेंति, तं जहा—गंगा १ जाव रत्ता ७। धायइसंडदीवपुरत्थिमद्धे णं सत्त महानईओ पच्चत्थाभिमुहीओ लवणसमुद्दं समप्पेंति, तं, जहा—सिंधू १ जाव रत्तवई ७ ॥ २ ॥ धायइसंडदीवपच्चत्थिमद्धे णं सत्त वासा एवं चेव, णवरं-पुरत्थाभिमुहीओ लवणसमुद्दं समप्पेंति, पच्चत्थाभिमुहीओ कालोयं समुद्दं समप्पेंति। सेसं तं चेव ॥ ३ ॥ पुक्खरवरदीवड्ढपुरत्थिमद्धे णं सत्त वासा तहेव, णवरं पुरत्थाभिमुहीओ पुक्खरोदं समुद्दं समप्पेंति पच्चत्थाभिमुहीओ कालोदं समुद्दं समप्पेंति। सेसं तं चेव ॥ ४ ॥ एवं पच्चत्थिमद्धे वि, णवरं पुरत्थाभिमुहीओ कालोदं समुद्दं समप्पेंति। सव्वत्थ वासा वासहरपव्वया णइओ य भाणियव्वा ॥ सू० १६ ॥

छाया—जम्बूद्वीपे द्वीपे सप्त वर्षाणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—भरतम् १, ऐरवतम् २, हैमवतम् ३, हैरण्यवतम् ४, हरिवर्षम् ५, रम्यकवर्षम् ६, महाविदेहः

यह पूर्वोक्त कायक्लेशरूप तप मनुष्य लोकमेंही होता है, इसलिये अब सूत्रकार मनुष्य लोककी और मनुष्यलोक गत वर्षधर पर्वत आदिकोंकी प्ररूपणा करते हैं—"जंबुदीवे दीवे सत्त वासा पण्णत्ता"

सूत्रार्थ—जम्बूद्वीप नामके द्वीपमें सात वर्ष क्षेत्र कहे गयेहैं—जैसे भरत क्षेत्र १, ऐरवत क्षेत्र २, हैमवत क्षेत्र ३, हैरण्यवत क्षेत्र ४, हरिवर्ष क्षेत्र ५, रम्यक

આગલા સૂત્રમાં જે કાયકલેશ રૂપ તપનું નિરૂપણ કર્યું તેનો સદ્‌ભાવ મનુષ્યલોકમાં જ હોય છે, તેથી હવે સૂત્રકાર મનુષ્યલોકની અને મનુષ્યલોકના વર્ષધર પર્વતો આદિની પ્રરૂપણા કરે છે.

"જંબુદીવે દીવે સત્તવાસા પણ્ણત્તા" ઇત્યાદિ—

સૂત્રાર્થ—જંબૂદ્વીપ નામના દ્વીપમાં સાત વર્ષક્ષેત્ર કહ્યાં છે—(૧) ભરતક્ષેત્ર, (૨) એરવતક્ષેત્ર, (૩) હૈમવતક્ષેત્ર, (૪) હૈરણ્યવતક્ષેત્ર, (૫) હરિવર્ષક્ષેત્ર, (૬)

७। जम्बूद्वीपे द्वीपे सप्त वर्षधरपर्वता: प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–क्षुद्रहिमवान् १, महाहिमवान् २, निषधः ३, नीलवान् ४, रुक्मी ५, शिखरी ६, मन्दरः ७। जम्बूद्वीपे द्वीपे सप्त महानद्यः पूर्वाभिमुख्यो लवणसमुद्रं समर्पयन्ति, तद्यथा–गङ्गा १, रोहिता २, ह्रीः ३, सीता ४, नरकान्ता ५, सुवर्णकूला ६, रक्ता ७। जम्बूद्वीपे द्वीपे सप्त महानद्यः, पश्चिमाभिमुख्यो लवणसमुद्रं समर्पयन्ति, तद्यथा–सिन्धुः १,

---

वर्ष क्षेत्र ६, महाविदेह क्षेत्र ७, जम्बूद्वीपमें सात वर्षधर पर्वत कहे गये हैं। जैसे–क्षुद्र हिमवान् १, महा हिमवान् २, निषध ३, नीलवान् ४, शिखरी ६, और मन्दर ७, जम्बूद्वीप नामके द्वीपमें सात महानदियां कही गई है जो पूर्वाभिमुखी होकर लवणसमुद्रमें जाती हैं। जैसे–सिन्धु १, रोहितांशा २, हरिकान्ता ३, सीतोदा ४, नारीकान्ता ५, रुक्मकूला ६, और रक्तावती ७, पौरस्त्यार्द्ध धातकीखण्ड द्वीपमें सात वर्ष कहे गये हैं–जैसे–भरत यावत् महाविदेह पौरस्त्यार्द्ध धातकीखण्डद्वीपमें सात वर्षधर पर्वत कहे गयेहैं–जैसे–क्षुद्र हिमवान् १, महा हिमवान् २, निषध ३, नीलवान् ४, रुक्मी ५, शिखरी ६, पूर्व मन्दर ७, धातकी खण्ड द्वीपमें सात महानदियां पूर्वाभिमुखी होकर कालोदसमुद्रमें जाती हैं–जैसे–गङ्गा १, रोहिता २, ह्री ३, सीता ४, नरकान्ता ५, सुवर्णकूला ६, रक्ता ७, पौरस्त्यार्द्ध धातकीखण्डद्वीपमें सात महानदियां पश्चिमाभिमुखी होकर लवणसमुद्रमें जाती हैं–जैसे–सिन्धु १, रोहितांशा २,

---

રમ્યકવર્ષક્ષેત્ર, અને (૭) મહાવિદેહક્ષેત્ર

જંબૂદ્વીપમાં સાત વર્ષધર પર્વતો આવેલા છે—(૧) ક્ષુદ્ર હિમવાન્ (૨) મહાહિમવાન્ (૩) નિષધ, (૪) નીલવાન્ (૫) શિખરી, (૬) અને મન્દર (૭)—

જંબૂદ્વીપમાં સાત મહાનદીઓ કહી છે, જે પૂર્વમાં વહીને લવણસમુદ્રને મળે છે. તેમનાં નામ આ પ્રમાણે છે—(૧) સિંધુ, (૨) રોહિતાંશા, (૩) હરિકાન્તા, (૪) સીતોદા, (૫) નારીકાન્તા, (૬) રુકમકૂલા અને (૭) રક્તાવતી

ધાતકીખંડ દ્વીપના પૂર્વાર્ધમાં સાત વર્ષક્ષેત્ર કહ્યાં છે-ભરતથી લઇને મહાવિદેહ પર્યન્તના સાત ક્ષેત્રો અહીં ગ્રહણ કરવા. ધાતકીખંડ દ્વીપના પૂર્વાર્ધમાં સાત વર્ષધર પર્વતો આવેલા છે—(૧) ક્ષુદ્ર હિમવાન્ (૨) મહા હિમવાન્ (૩) નિષધ, (૪) નીલવાન્ (૫) રુકમી, (૬) શિખરી અને (૭) પૂર્વમન્દર.

ધાતકીખંડ દ્વીપમાં સાત મહાનદીઓ પૂર્વમાં વહીને કાલોદ સમુદ્રને જઈ મળે છે. તેમનાં નામ—(૧) ગંગા, (૨) રોહિતા, (૩) હ્રી, (૪) સીતા (૫) નરકાન્તા, (૬) સુવર્ણકૂલા અને (૭) રક્તા ધાતકીખંડ દ્વીપના પૂર્વાર્ધની આ સાત મહાનદીઓ પશ્ચિમ તરફ વહીને લવણ સમુદ્રને જઇ મળે છે—

रोहितांशा २, हरिकान्ता ३, सीतोदा ४, नारीकान्ता ५, रुक्मकूला ६, रक्तावती ७ ॥१॥ धातकीखण्डद्वीपपौरस्त्यार्द्धे खलु सप्त वर्षाणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा–भारतं १ यावद् महाविदेहः ७। धातकीखण्डद्वीपपौरस्त्यार्द्धे सप्त वर्षधरपर्वताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–क्षुद्रहिमवान् १ यावद् मन्दर ७। धातकीखण्डद्वीपपौरस्त्यार्द्धे खलु सप्त महानद्यः पूर्वाभिमुख्यः कालोदसमुद्रं समर्पयन्ति, तद्यथा–गङ्गा १, यावद् रक्ता ७। धातकीखण्डद्वीपपौरस्त्यार्द्धे खलु सप्त महानद्यः पश्चिमाभिमुख्यः लवणसमुद्रं समर्पयन्ति, तद्यथा–सिन्धुः १, यावद् रक्तावती ७। धातकीखण्डद्वीपपाश्चात्यार्द्धे खलु सप्त वर्षाणि एवमेव, नवरं पूर्वाभिमुख्यो लवणसमुद्रं समर्पयन्ति, पश्चिमाभिमुख्यः कालोदं समुद्रं समर्पयन्ति। शेषं तदेव ॥२॥ पुष्करवरद्वीपार्द्ध-पौरस्त्यार्द्धे खलु सप्त वर्षाणि तथैव, नवरं पूर्वाभिमुख्यः पुष्करोदं समर्पयन्ति,

---

हरिकान्ता ३, सीतोदा ४, नारीकान्ता ५, रुक्मकूला ६, रक्तावती ७, पाश्चात्यार्ध धातकी खण्डमें सात वर्ष क्षेत्र–भरत क्षेत्र १, ऐरवत क्षेत्र २, हैमवत क्षेत्र ३, हैरण्यवत क्षेत्र ४, हरिवर्ष क्षेत्र ५, रम्यकवर्षक्षेत्र ६, और महाविदेह क्षेत्र ७, कहे गयेहैं–यहां जो पूर्वाभिमुखी सात नदियां हैं, वे लवण समुद्रमें जातीहैं, और जो पश्चिमाभिमुखी सात महानदियां हैं, वे कालोदसमुद्रमें जाती हैं। बाकीका और सब कथन पूर्व जैसा ही जानना चाहिये पौरस्त्यार्ध पुष्करवरद्वीपार्धमें सात सात वर्ष पूर्वोक्त नामवाले ही कहे गये है, यहां जो पूर्वाभिमुखी नदियां हैं वे पुष्करोदसमुद्रमें जाती हैं, और जो पश्चिमाभिमुखी नदियांहैं वे कालोदसमुद्रमें जाती हैं। बाकीका और सब कथन पूर्वोक्त जैसा ही है। इसी तरहका

---

(૧) સિંધુ, (૨) રોહિતાંશા, (૩) હરિકાન્તા, (૪) સીતોદા, (૫) નારીકાન્તા (૬) રુક્મકૂલા અને (૭) રક્તાવતી.

ધાતકીખંડ દ્વીપના પશ્ચિમાર્ધમાં નીચે પ્રમાણે સાત વર્ષક્ષેત્ર છે—(૧) ભરતક્ષેત્ર, (૨) ઐરવત ક્ષેત્ર, (૩) હૈમવતક્ષેત્ર, (૪) હૈરણ્યવતક્ષેત્ર, (૫) (૬) રમ્યકવર્ષક્ષેત્ર અને (૫) મહાવિદેહક્ષેત્ર. અહીં જે પૂર્વમાં વહેતી મહા નદીઓ કહી છે તે લવણસમુદ્રમાં જઈ મળે છે, અને પશ્ચિમ તરફ વહેતી સાત મહાનદીઓ કાલોદ સમુદ્રમાં જઈ મળે છે. બાકીનું સમસ્ત કથન આગળના કથન પ્રમાણે સમજવું. પુષ્કરવરદ્વીપાર્ધના પૂર્વ ભાગમાં સાત સાત વર્ષક્ષેત્રનાં નામો ઉપર પ્રમાણે જ સમજવા. અહીં જે મહાનદીઓ પૂર્વ તરફ વહે છે, તેઓ પુષ્કરોદ સમુદ્રમાં જઈ મળે છે અને જે મહાનદીઓ પશ્ચિમ તરફ વહે છે, તેઓ કાલોદ સમુદ્રમાં જઈ મળે છે. બાકીનું સમસ્ત કથન પૂર્વોક્ત કથન પ્રમાણે જ સમજી લેવું. એજ પ્રકારનું કથન તેના પશ્ચિમાર્ધ

पश्चिमाभिमुख्यः कालोदं समुद्रं समर्पयन्ति । शेषं तदेव ॥४॥ एवं पाश्चात्यार्द्धेऽपि, नवरं पूर्वाभिमुख्यः कालोदं समुद्रं समर्पयन्ति, पश्चिमाभिमुख्यः पुष्करोदं समुद्रं समर्पयन्ति । सर्वत्र वर्षाणि वर्षधरपर्वताः नद्यश्च भणितव्याः ॥ सू० १६ ॥

टीका—'जंबुद्दीवे दीवे' इत्यादि ।

व्याख्या निगदसिद्धा । नवरं समर्पयन्ति, समुद्रे मिलन्तीत्यर्थः ॥ सू० १६ ॥

मनुष्यक्षेत्राधिकारात् सम्प्रति तत्सम्बन्धित्वेन अतीतायामुत्सर्पिण्याम् अस्यामवसर्पिण्यां च जातानां कुलकराणाम्, एतदवसर्पिणी समुत्पन्नकुलकरभार्याणाम्, आगमिष्यन्त्यामुत्सर्पिण्यां समुत्पत्स्यमानानां कुलकराणाम्, वृक्षाणां, नीतीनाम्, चक्रवर्तिसम्बन्धिनामेकेन्द्रियपञ्चेन्द्रियरत्नानां, दुष्षमासुषमालक्षणस्य च वक्तव्यतां चतुर्भिः सूत्रैराह—

मूलम्—जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे तीयाए उस्सप्पिणीए सत्त कुलगराहुत्था, तं जहा—मित्तदामे १ सुदामे २ य सुपासे ३ य सयंपभे ४। विमलघोसे ५ सुघोसे ६ य, महाघोसे ७ य सत्तमे ॥ १ ॥ जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए सत्त कुलगरा होत्था, तं जहा—पढमित्थविमलवाहण १ चक्खुम २ जसमं ३ चउत्थमभिचंदे ४। तत्तो य पसेणई ५ पुण, मरुदेवे ६ चेवनाभी ७ य ॥ १ ॥ एएसि णं सत्तण्हं, कुलगराणं सत्त भारियाओ हुत्था, तं जहा—चंदजसा १ चंद-

कथन पाश्चात्यार्द्धमें भी जानना चाहिये. विशेषता यहां ऐसी हैं—कि जो यहां पूर्वाभिमुखी नदियां हैं, वे कालोदसमुद्रमें जाती हैं, और जो पश्चिमामुखी नदियां हैं, वे पुष्करोदसमुद्रमें जाती हैं। सर्वत्र वर्ष वर्षधर पर्वत, और नदियां कह लेना चाहिये "समर्पयन्ति" का अर्थ है समुद्रमें मिलती हैं ॥ सू० १६ ॥

વિષે પણ ગ્રહણ કરવું જોઈએ આ કથનમા વિશેષતા એટલી જ છે કે અહીં પૂર્વ તરફ વહેતી નદીઓ કાલોદ સમુદ્રમા જઈ મળે છે અને પશ્ચિમ તરફ વહેતી નદીઓ પુષ્કરોદ સમુદ્રમાં જઈ મળે છે સર્વત્ર વર્ષક્ષેત્રો, વર્ષધર પર્વતો અને નદીઓનું કથન કરવું જોઈએ. "समर्पयन्ति" આ પદનો અર્થ "સમુદ્રને મળે છે," એવો થાય છે. ॥ સૂ. ૧૬ ॥

कंता २ सुरूव ३ पडिरूव ४ चक्खुमंता ५ य। सिरिकंता ६ मरुदेवी ७, कुलगरइत्थीणनामाइं ॥ २ ॥ जंबुदीवे दीवे भारहे वासे आगमिस्साए उस्सप्पिणीए सत्त कुलगरा भविस्संति, तं जहा–मियवाहण १ सुभोमे २ य सुप्पभे ३ य सयंपभे ४। दत्ते ५ सुहुमे ६ सुबंधू ७ य, आगमिस्सेण होस्सइ ॥ १ ॥ विमलवाहणे णं कुलगरे सत्तविहा रुक्खा उवभोगत्ताए हव्वमागच्छिंसु, तं जहा–मत्तंगया १ य भिंगाय २ चित्तंगा ३ चेव होंति चित्तरसा ४। मणियंगा ५ य अणियणा ६ सत्तमगा कप्परुक्खा ७ य ॥ १ ॥ सू० १७ ॥

छाया–जम्बूद्वीपे द्वीपे भारते वर्षे अतीतायां अवसर्पिण्यां सप्त कुलकराः अभवन्, तद्यथा–मित्रदामा १, सुदामा २ च, सुपार्श्वश्च ३ स्वयम्प्रभः ४। विमलघोषः ५ सुघोषश्च

मनुष्यक्षेत्रके अधिकारको लेकर अब सूत्रकार मनुष्यक्षेत्र सम्बन्धी होनेसे अतीत उत्सर्पिणीमें और इस अवसर्पिणीमें उत्पन्न हुए कुलकरोंकी, तथा इस अवसर्पिणीमें उत्पन्न हुए कुलकरकी भार्याओंकी, तथा आगामी उत्सर्पिणीकालमें उत्पन्न होनेवाले कुलकरोंकी वृक्षोंकी, चक्रवर्ती सम्बन्धी नीतियोंकी, एकेन्द्रिय, एवं पंचेन्द्रिय रत्नोंकी, और दुषमा सुषमारूप कालकी वक्तव्यता चार सूत्रों द्वारा कहते हैं–
" जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे तीयाए उस्सप्पिणीए " इत्यादि सू० १७ ॥
सूत्रार्थ–जम्बूद्वीप नामके द्वीपमें भरतवर्षमें अतीत उत्सर्पिणीकालमें सात

મનુષ્યક્ષેત્રનો અધિકાર ચાલી રહ્યો છે તેથી હવે સૂત્રકાર મનુષ્યક્ષેત્રમાં જેનો સદ્‌ભાવ છે એવા ભૂતકાલિન ઉત્સર્પિણીમાં ઉત્પન્ન થયેલા અને આ અવસર્પિણીમાં ઉત્પન્ન થયેલા કુલકરોની તથા આ અવસર્પિણીમાં ઉત્પન્ન થયેલી કુલકરોની ભાર્યાઓની, તથા આગામી ઉત્સર્પિણીકાળમાં ઉત્પન્ન થનારા કુલકરોની, વૃક્ષોની, ચક્રવર્તી સંબંધી નીતિઓની, એકેન્દ્રિય અને પંચેન્દ્રિય રત્નોની અને દુષ્ષમા સુષમા રૂપ કાળની વક્તવ્યતાનું ચાર સૂત્રો દ્વારા નિરૂપણ કરે છે." जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे तीयाए उस्सप्पिणीए " ઈત્યાદિ–

સૂત્રાર્થ–જંબૂદ્વીપ નામના દ્વીપના ભરતવર્ષમાં અતીત ઉત્સર્પિણીકાળમાં નીચે

६ महाघोषश्च ७ सप्तम : ॥१॥ जम्बूद्वीपे द्वीपे भारते वर्षे अस्यामवसर्पिण्याम् सप्त कुलकराः अभवन्, तद्यथा–प्रथमोऽत्र विमलवाहनः १ चक्षुष्मान् २ यशस्वान् ३, चतुर्थोऽभिचन्द्रः ४। ततश्च प्रसेनजित् ५ पुनर्मरुदेवश्चैव ६ नाभिश्च ७ ॥१॥ एतेषां खलु सप्तानां कुलकराणां सप्त भार्या अभवन्, तद्यथा–चन्द्रयशाः १, चन्द्रकान्ता २ सुरूपा ३, प्रतिरूपा ४ चक्षुःकान्ता ५ च। श्रीकान्ता ६ मरुदेवी ७ कुलकरस्त्रीणां नामानि ॥२॥ जम्बूद्वीपे द्वीपे भारते वर्षे आगमिष्यन्त्यामुत्सर्पिण्यां सप्त कुलकरा भविष्यन्ति, तद्यथा–मितवाहनः १ सुभौमश्च २ सुप्रभश्च ३ स्वयंप्रभः ४। दत्तः ५ सूक्ष्मः ६ सुबन्धुश्च ७ आगमिष्यति भविष्यति ॥१॥ विमलवाहने खलु कुलकरे सप्तविधा वृक्षा उपभोग्यतया हव्यमागच्छन् तद्यथा–मत्ताङ्गकाश्च १

कुलकर हुए हैं। जैसे–मित्रदामा १, सुदामा २, सुपार्श्व ३, स्वयंप्रभ ४, विमलघोष ५, सुघोष ६, और सप्तम महाघोष ७। १।

जम्बूद्वीपमें भरतवर्षमें इस अवसर्पिणीमें सात कुलकर हुए हैं–जैसे–विमलवाहन् १, चक्षुष्मान २, यशस्वान् ३, अभिचन्द्र ४, प्रसेनजित् ५, मरुदेव ६, और नाभि ७ इस सात कुलकरोंकी सात भार्याएँ हुई हैं–जिनके नाम इस प्रकारसे हैं–चन्द्रयशा १, चन्द्रकान्ता २, सुरूपा ३, प्रतिरूपा ४, चक्षुकान्ता ५ श्रीकान्ता ६, एव मरुदेवी ७–२

जम्बूद्वीपमें भरतवर्षमें आगामी उत्सर्पिणीमें सात कुलकर होंगे–जिनके नाम इस प्रकारसे हैं–मितवाहन १, सुभौम २, सुप्रभ ३, स्वयंप्रभ ४, दत्त ५, सूक्ष्म ६, और सुबन्धु ७, विमलवाहन कुलकरके होने पर सात प्रकारके वृक्ष उपभोग्य रूपसे काममें आये–जैसे–मत्ताङ्गक १,

---

પ્રમાણે સાત કુલકરો થઈ ગયા છે—(૧) મિત્રદામા, (૨) સુદામા, (૩) સુપાર્શ્વ (૪) સ્વયંપ્રભ, (૫) વિમલઘોષ, (૬) સુઘોષ અને (૭) મહાઘોષ. । ૧ ।

જંબૂદ્વીપના ભરતવર્ષમાં આ અવસર્પિણીકાળમાં સાત કુલકરો થઈ ગયા છે તેમનાં નામ આ પ્રમાણે હતાં—(૧) વિમલવાહન, (૨) ચક્ષુષ્માન, (૩) યશસ્વાન, (૪) અભિચન્દ્ર, (૫) પ્રસેનજિત (૬) મરુદેવ અને (૭) નાભિ આ સાત કુલકરોની સાત ભાર્યાઓનાં નામ આ પ્રમાણે હતાં—(૧) ચન્દ્રયશા (૨) ચન્દ્રકાન્તા, (૩) સુરૂપા, (૪) પ્રતિરૂપા, (૫) ચક્ષુકાન્તા, (૬) શ્રીકાન્તા અને (૭) મરુદેવી. । ૨ ।

જંબૂદ્વીપના ભરતવર્ષમાં આગામી ઉત્સર્પિણીકાળમાં આ સાત કુલકરો થશે—(૧) મિતવાહન, (૨) સુભૌમ, (૩) સુપ્રભ, (૪) સ્વયંપ્રભ, (૫) દત્ત (૬) સૂક્ષ્મ અને (૭) સુબન્ધુ.

વિમલવાહન કુલકરના સમયમા સાત પ્રકારના વૃક્ષો લોકોને ઉપભોગ્ય રૂપે કામ આવ્યા. તે સાત પ્રકારનાં વૃક્ષોનાં નામો આ પ્રમાણે સમજવા—

भृङ्गाश्च २ चित्राश्चैव ३ भवन्ति चित्ररसाः ४। मण्यङ्गाश्च ५ अनग्नाश्च ६ सप्तमकाः कल्पवृक्षाश्च ७ ॥ १ ।' सू० १७ ॥

टीका—' जंबुद्दीवे दीवे इत्यादि—

अतीतायामुत्सर्पिण्यां मध्यजम्बूद्वीपस्थ भारतवर्षे मित्रदामादयः सप्त कुलकराः=नीतिमर्यादाकराः अभवन्। वर्तमानायामवसर्पिण्यां जम्बूद्वीपस्थभारतवर्षे विमलवाहनादयः सप्तकुलकरा अभवन्। विमलवाहनादीनां कुलकराणां क्रमेण चन्द्रयशाः प्रभृतयः सप्त भार्या अभवन्। जम्बूद्वीपस्थभारते वर्षे आगामिन्यामुत्सर्पिण्यां मित्रवाहनादयः सप्त कुलकरा भविष्यन्ति। तदाह—' मियवाहणे सुभोमे य ' इत्यादिना। अर्थः स्पष्टः। नवरम्—' आगमिस्सेण ' आगमिष्यति=भविष्यति काले। तथा—विमलवाहने प्रथमकुलकरे वर्तमाने सप्तप्रकारका वृक्षा उपभोग्यतया=तात्कालिकमनुष्याणां भोजनाद्युपभोगसंपादकतया इत्थमिति वाक्यालङ्कारे आगच्छन्=उदपद्यन्त, तद्यथा—मत्ताङ्गकाः—मत्तं=मदो=हर्षः, तत्कारणभूतः

भृङ्ग २, चित्राङ्ग ३, चित्ररस ४, मण्यङ्ग ५, अनग्न ६, और कल्पवृक्ष ७ तात्पर्य इसका ऐसा है कि अतीत उत्सर्पिणीमें मध्य जम्बूद्वीपमें स्थित भरतवर्षमें मित्रदाम आदि कुलकर नीतिमर्यादाके कर्ता हुए, जम्बूद्वीपस्थ भरतवर्षमें वर्तमान अवसर्पिणीमें विमलवाहनादि सात कुलकर हुए विमलवाहनादिक कुलकरोंकी क्रमशः चन्द्रयशा आदि सात भार्याएँ हुई हैं। जम्बूद्वीपस्थ भरतवर्षमें आगामी उत्सर्पिणीमें मित्रवाहनादिक सात कुलकर होंगे। प्रथम कुलकर विमलवाहनके रहने पर सात प्रकारके कल्पवृक्ष तात्कालिक मनुष्योंके भोजन आदि उपभोगके संपादक हुए मत्ताङ्गक हर्षके कारणभूत पेय पदार्थ यहां मत्त शब्दसे गृहीत हुए हैं। अथवा—आनन्दजनक पेय वस्तु ही अवयव जिनका है, ऐसे

---

(૧) મત્તાંગક, (૨) ભૃંગ, (૩) ચિત્રાંગ, (૪) ચિત્રરસ, (૫) મણ્યંગ, (૬) અનગ્ન અને (૭) કલ્પવૃક્ષ આ સૂત્રોનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે—

નીતિમર્યાદાના સ્થાપનારને કુલકર કહે છે. અતીત ઉત્સર્પિણીકાળમાં મધ્ય જંબૂદ્વીપના ભરતવર્ષમાં મિત્રદામ આદિ સાત કુલકરો થયા હતા. જંબૂદ્વીપના ભરતક્ષેત્રમાં વર્તમાન અવસર્પિણીકાળમાં વિમલવાહન આદિ સાત કુલકરો થઈ ગયા છે તે વિમલવાહન આદિ સાત કુલકરોની સાત ભાર્યાઓનાં નામ અનુક્રમે ચન્દ્રયશા વગેરે હતા જંબૂદ્વીપમાં આવેલા ભરતવર્ષમાં આગામી ઉત્સર્પિણીકાળમાં મિત્રવાહન આદિ સાત કુલકરો થશે

વિમલવાહન કુલકરના કાળમા રહેતા લોકોને ભોજનાદિ ઉપભોગને માટે ઉપયોગી એવાં સાત પ્રકારના કલ્પવૃક્ષોની પ્રાપ્તિ થઈ.

(૧) મત્તાંગક—આનંદજનક પેયપદાર્થો અહીં ' મત્ત ' પદ વડે ગૃહીત થયા છે. અથવા આનંદદાયક પેય વસ્તુ જ જેમના અવયવો છે એવાં આનં-

पेयपदार्थ इह मत्तशब्देनोच्यते, तस्य अङ्गका=हेतुभूताः, अथवा मत्तं=आनन्द-जनकं पेयवस्तु, तदेवाङ्गम्=अवयवो येषां ते तथा, आनन्दप्रदपेयपदार्थदायका वृक्षा इत्यर्थः १। भृङ्गाः=भृङ्गारादिविविधपात्रदायका वृक्षविशेषा २। चित्राङ्गाः=विविधमाल्यसम्पादका वृक्षाः ३। चित्ररसाः-चित्राः=मधुरादिभेदभिन्ना अनेक-रूपा रसा येभ्यः समुपलभ्यन्ते तथाभूताः ४। मण्यङ्गाः-मणीनाम्=मणिमयभूष णानाम् अङ्गभूताः=हेतुभूता मण्यङ्गाः, अथवा-मणयोऽङ्गानि येषां ते तथा-मणि-मयभूषणदायकाः ५। अनग्नाः=विविधवस्त्रदायकाः वृक्षाः। वस्त्रप्रदानेन जनानां नग्नत्वपरिहरणात् अनग्नेति संज्ञा बोध्या ६। तथा-कल्पवृक्षाः-उक्तव्यतिरिक्तानां सकलमनोरथानां पूरका वृक्षविशेषाः। एते सप्तापि कल्पवृक्षा युगजनानामुपभोग-पूरकाः विमलवाहननामप्रथमकुलकरसमये प्रादुर्भूता इति विज्ञेयम् ॥सू० १७॥

आनन्ददायक पदार्थके देनेवाले जो वृक्ष हैं, वे मत्ताङ्गक हैं। विविध प्रकारके भृङ्गार आदि पात्रोंके देनेवाले जो वृक्ष विशेष हैं, वे यहां भृङ्ग शब्द से लिये गये हैं। विविध माल्योंके सम्पादक जो वृक्ष विशेष हैं वे चित्राङ्ग शब्दसे लिये गये हैं। मधुरादि भेदसे भिन्न अनेक रस जिनसे प्राप्त होते हैं वे यहां चित्र शब्दसे लिये गये हैं। मणिमय भूषणोंके जो कारण होते हैं वे, अथवा मणिमय भूषणोंके देनेवाले जो होते हैं वे वृक्ष यहां मण्यङ्ग शब्दसे लिये गये हैं। विविध वस्त्रोंके देनेवाले जो विविध वृक्ष हैं, वे अनग्न शब्दसे लिये गये हैं। इनकी अनग्न ऐसी संज्ञा इसलिये हुई है, कि ये वस्त्रोंके देनेसे मनुष्योंकी नग्नताको दूर करते हैं। उक्त इन वृक्षोंसे भिन्न जो वृक्ष सकल मनोरथोंके पूरक होते हैं वे कल्पवृक्ष हैं। ये सात प्रकारके कल्पवृक्ष युग जनोंके उपभोगके

દદાયક પદાર્થો ઉત્પન્ન કરનારા વૃક્ષોને મત્તાંગક કહે છે. (૨) વિવિધ પ્રકારના ભૃંગાર આદિ પાત્રો આપનારાં વૃક્ષોને ભૃંગવૃક્ષો કહે છે. (૩) વિવિધ માલાઓ જેમાંથી બને છે એવાં વૃક્ષોને ચિત્રાંગ વૃક્ષો કહે છે (૪) જે વૃક્ષો મધુરાદિ વિવિધ રસોના પ્રદાતા હોય છે તેમને ચિત્રરસ કહે છે (૫) મણિ-મય ભૂષણોમાં જેઓ કારણભૂત હોય છે તેમને, અથવા મણિમય ભૂષણો દેનારાં જે વૃક્ષો હોય છે તેમને અહીં ‘મણ્યંગ’ પદ વડે ગ્રહણ કરવામાં આવ્યા છે (૬) વિવિધ વસ્ત્રો પ્રદાન કરનારા વૃક્ષોને ‘અનગ્ન’ પદ દ્વારા ગ્રહણ કરવામાં આવ્યા છે તેમને અનગ્ન કહેવાનુ કારણ એ છે કે તેઓ મનુષ્યોને વસ્ત્રનું પ્રદાન કરીને તેમની નગ્નતાને ઢાંકવામાં મદદરૂપ બને છે. (૭) જે વૃક્ષો સકલ મનોરથો પૂર્ણ કરનારા હોય છે. ઇચ્છિત વસ્તુ આપ-નારાં હોય છે, તે વૃક્ષોને કલ્પવૃક્ષો કહે છે. આ સાતે પ્રકારના કલ્પવૃક્ષો તે

सत्स्वपि कुरुकरेषु सत्यपराधे कस्यचिद् दण्डो भवति इति दण्डनीतिमाह—

मूलम्—सत्तविहा दंडनीई पण्णत्ता, तं जहा—हक्कारे १, मक्कारे २, धिक्कारे ३, परिभासे ४, मंडलबंधे ५, चारए ६, छविच्छेए ७॥ सू० १८॥

छाया—सप्तविधा दण्डनीतिः प्रज्ञप्ता, तद्यथा—हक्कारो १, माकारो २, धिक्कारः ३ परिभाषा ४, मण्डलबन्धः ५, चारकः ६ छविच्छेदः ७॥ सू० १८॥

टीका—' सत्तविहा ' इत्यादि—

दण्डनीतिः—दण्डनम्—दण्डः=अपराधिनामनुशासनं, तत्र, तस्य, तद्रूपा वा नीतिः, दण्डनीतिः, सा सप्तविधा प्रज्ञप्ता। तद्यथा—हकारः—' हक् ' इत्यधिक्षेपार्थः,

---

पूरक होते हैं, सो ये सातोंही प्रकारके कल्पवृक्ष विमलवाहन नामके प्रथम कुलकरके समय उत्पन्न हुए कुलकरोंके मौजूद होने पर भी किसीसे अपराध हो जाता है, और उसका दण्ड दिया जाता है, अतः दण्ड नीति कहते हैं॥ सू० १७॥

" सत्त विहा दंडनीई पण्णत्ता " इत्यादि॥ सू० १८॥

टीकार्थ—दण्डनीति सात प्रकारकी कही गईहै। जैसे१ हक्कार,२ माकार, ३ धिक्कार, ४ परिभाषा, ५ मण्डलबन्ध, ६ चारक और छविच्छेद ७।

अपराधियोंको अनुशासित करना इसका नाम दण्ड है, दण्डकी, अथवा दण्डरूप जो नीति है, वह दण्डनीति है, यह दण्डनीति सात प्रकारकी जो पूर्वोक्त रूपसे कही गई है, सो उसका तात्पर्य ऐसा है—

યુગના લોકોના ઉપભોગની સામગ્રી પૂરી પાડનારાં હતાં. આ સાતે પ્રકારના કલ્પવૃક્ષોની ઉત્પત્તિ વિમલવાહન નામના પહેલા કુલકરના સમયમાં થઇ હતી ॥ સૂ ૧૭ ॥

કુલકરો મોજૂદ હોય ત્યારે પણ કોઇને કોઇ વ્યક્તિ દ્વારા અપરાધ થઈ જાય છે. અપરાધીને શિક્ષા કરવામાં આવે છે, તેથી હવે સૂત્રકાર દંડ-નીતિનું કથન કરે છે. " सत्तविहा दंडनीई पण्णत्ता " ઇત્યાદિ—(સૂ ૧૮)

દંડનીતિ ૭ પ્રકારની કહી છે—(૧) હક્કાર, (૨) આકાર, (૩) ધિક્કાર, (૪) પરિભાષા, (૫) મંડલબન્ધ, (૬) ચારક અને (૭) છવીચ્છેદ.

અપરાધીઓને શિક્ષા કરવી તેનું નામ દંડ છે. દંડમાં, દંડની અથવા દંડ રૂપ જે નીતિ છે, તેનું નામ દંડનીતિ છે. તે દંડનીતિના હક્કાર આદિ પૂર્વોક્ત સાત પ્રકાર કહ્યા છે.

तस्य करणं हक्कारः, अयं भावः=प्रथमद्वितीयकुलकरसमये कृतापराधस्य जनस्य दण्डो हक्कारमात्रमासीत् । तेनैवापराधको हृतसर्वस्वमिव आत्मानं मन्यमानो नापराधस्थाने पुनः प्रवर्तते, इति । १ । माकारः–माकरणं माकारः–' माकुरु ' इति प्रतिषेधार्थकस्य वचनस्य उच्चारणम् । अयं दण्डस्तृतीयचतुर्थकुलकरकाले महत्यपराधे प्रवर्त्तते । सामान्यापराधे तु पूर्वोक्त एव दण्ड इति ॥ २ ॥ धिक्कारः–धिगित्यधिक्षेपे, तस्य करणं=कथनं धिक्कारः । पञ्चमषष्ठसप्तमकुलकरकाले मह-

अधिक्षेप अर्थमें हक् धातु है, इस हक्का करना सो हक्कार है, तात्पर्य यह है कि प्रथम द्वितीय कुलकरके समय जो मनुष्य अपराध करता था, उसके लिये हक्कार मात्र दण्ड था, इस दण्डसे ही वह अपने आपको सब-कुछ हर लिया गया है, जिसका ऐसा मानता था और फिर वह अपराध नही करता था १ माकार २ " मा " ऐसा करना इसका नाम माकार है–मत करो इस प्रकारके प्रतिषेधक वचनका उच्चारण करना–सो माकार है, यह दण्ड चतुर्थ कुलकरके समयमें बडे भारी अपराधके होने पर दिया जाता था सामान्य अपराध होने पर तो पूर्वोक्त हक्कार रूपही दण्ड दिया जाता था " धिग् "–यह शब्द अधिक्षेप अर्थमें आता है । धिक्कारका देना यह धिक्कार है, यह दण्ड पंचम और छठें तथा सातवें कुलकरके समयमें बडे भारी अपराध हो जाने पर प्रचलित

(૧) હક્કાર—" हक् " ધાતુ અધિક્ષેપ અર્થનો વાચક છે આ હક્ કરવો તેનું નામ હક્કાર છે. " તમે આવું અનુચિત કાર્ય કર્યું ! " આ પ્રકારે કહેવું તેનું નામ હક્કાર દંડ છે પહેલા અને બીજા કુલકરના સમયમાં અપરાધીને હક્કાર દંડ જ દેવામાં આવતો હતો તે દંડને પાત્ર બનનાર વ્યક્તિને એવું લાગતું હતું કે જાણે તેનું સર્વસ્વ હરી લેવામાં આવ્યું છે. આટલો જ દંડ સહન કરનાર વ્યક્તિ ફરી અપરાધ કરવાની હિંમત કરતી નહીં.

(૨) માકાર—" મા " આ પદ નિષેધવાચક છે. " આ પ્રકારનું કૃત્ય ન કરો. " આ પ્રકારના પ્રતિષેધક વચનનું ઉચ્ચારણ કરવું તેનું નામ 'મકાર' છે. ત્રીજા અને ચોથા કુલકરના સમયમાં આ પ્રકારનો દંડ પ્રચલિત હતો. ઘણો ભારે અપરાધ કરનારને જ આ દંડને પાત્ર બનવું પડતું હતું. સામાન્ય અપરાધ કરનારને તો ત્યારે પણ હક્કાર દંડ જ દેવામાં આવતો હતો.

(૩) ધિક્કાર—" धिग् " આ ધાતુ અધિક્ષેપના અર્થમાં વપરાય છે. કોઇ અપરાધીને " ધિક્કાર છે તને, આવું કામ કરતાં તને શરમ પણ ન આવી ? ", આ પ્રમાણે ધિક્કારવો તેનું નામ ધિક્કાર દંડ છે, પાંચમાં, છઠ્ઠા

त्यपराधे धिक्कारो दण्डः, मध्यमापराधे माकारो दण्डः, जघन्यापराधे तु हकारो दण्ड इति बोध्यम्। उक्तं च हक्कारादिविषये—

" पढमबीयाणपढमा, तइयचउत्थाण अभिनवा बीया।
पंचम छट्ठस्स य सत्तमस्स तइया अभिणवा उ ॥ १ ॥ "

छाया—प्रथमद्वितीययोः प्रथमा तृतीयचतुर्थयोरभिनवा द्वितीया।
पञ्चमषष्ठयोश्च सप्तमस्य तृतीया अभिनवा तु ॥ १ ॥ इति ॥ ३ ॥

तथा—परिभाषा-परिभाषणं परिभाषा-अपराधिनं प्रति 'माकुरु' इत्येवं सकोपकथनम् ॥ ४ ॥ तथा-मण्डलबन्धः-मण्डलं=निर्दिष्टं क्षेत्रं, तत्र बन्धः= 'नातः प्रदेशाद् गन्तव्य'-मित्याज्ञाकरणम्। यद्वा-पुरुषा मण्डलरूपेण= समुदायरूपेण समुदिता मा भवन्त्वित्याज्ञा करणं मण्डलबन्धः ॥ ५ ॥ चारकः-

था मध्यम अपराधमें जो माकार रूप ही दण्ड था, एवं जघन्य अपराध में हक्कार रूप दण्ड था, हकार आदिके विषयमें ऐसा कहा गया है-

" पढम बीयाण पढमा " इत्यादि।

अपराधीके प्रति ऐसा कुपित होकर कहना कि तुम अमुक काम मत करो मण्डल नाम क्षेत्रका है, निर्दिष्ट क्षेत्रमें अपराधीको रोक कर रखना यह मण्डल बन्ध है-इस स्थानसे तुम आगे नहीं जाना इस प्रकारकी आज्ञा करना सो यही मण्डल बन्ध है। अथवा-पुरुष मण्डल रूपसे समुदाय रूपसे एकत्रित नहीं हो ऐसी आज्ञा करना सो यह भी मण्डलबन्ध है। अपराधीको कारागारमें डाल देना सो चारक है,

અને સાતમાં કુલકરના સમયમાં ઘણો જ ભારે અપરાધ કરનારને આ પ્રકારના દંડને પાત્ર બનવું પડતું તે કુલકરોના સમયમાં મધ્યમ અપરાધ કરનારને માકાર રૂપ દંડને પાત્ર બનવું પડતું અને સામાન્ય અપરાધ કરનારને હક્કાર રૂપ દંડને પાત્ર બનવું પડતું. હક્કાર આદિના વિષયમાં એવું કહ્યું છે કે—"પઢમ બીયાણ પઢમા " ઇત્યાદિ.

(૪) " અપરાધી પ્રત્યે કોપાયમાન થઇને એવું કહેવું કે તું આ પ્રકારનું કૃત્ય મા કર." ઇત્યાદિનું નામ પરિભાષા દંડ છે.

(૫) મંડલ એટલે ક્ષેત્ર અપરાધીને કોઇ નિર્દિષ્ટ ક્ષેત્રમાં જ રોકી રાખવો તેનું નામ મંડલબન્ધ છે. " તમારે આ સ્થાન છોડીને જવું નહી—અમુક મર્યાદિત સ્થાનમાં જ તમારે રહેવું " આ પ્રકારની આજ્ઞાનું નામ મંડલબન્ધ છે. અથવા પુરુષ મંડલરૂપે અથવા સમુદાય રૂપે એકત્રિત ન થવું, એવી આજ્ઞાનું નામ મંડલ બન્ધ છે.

(૬) અપરાધીને જેલમાં પૂરવો તેનું નામ ચારક દંડ છે.

कारागारः ॥ ६ ॥ छविच्छेदः—करचरणनासाकर्णोष्ठाद्यवयवकर्त्तनम् ॥ ७॥ परिभाषादयश्चतस्रो दण्डनीतयो भरतस्य काले समभवन्। तदुक्तम्—

"परिभापणा उ पढमा मंडलबंधो पुण होइ बिइया।
चारग छविच्छेदादि भरहस्य चउव्विहा नीई ॥ १ ॥"

छाया—परिभाषणा तु प्रथमा मण्डलबन्धः पुनर्भवति द्वितीया।
चारकश्छविच्छेदादि भरतस्य चतुर्विधा नीतिः ॥ १ ॥ इति ॥सू० १८॥

मूलम्–एगमेगस्स णं रन्नो चाउरंतचक्कवट्टिस्स सत्त एगिंदियरयणा पण्णत्ता, तं जहा–चक्करयणे १, छत्तरयणे २, चम्मरयणे ३, दंडरयणे ४, असिरयणे ५, मणिरयणे ६, काकणिरयणे ७। एगमेगस्स णं रन्नो चाउरंतचक्कवट्टिस्स सत्त पंचिंदियरयणा पण्णत्ता, तं जहा–सेणावइरयणे १, गाहावइरयणे २, वड्ढइरयणे ३ पुरोहियरयणे ४, इत्थीरयणे ५, आसरयणे ६, हत्थिरयणे ७ ॥ सू० १९ ॥

छाया—एकैकस्य खलु राज्ञश्चातुरन्तचक्रवर्त्तिनः सप्त एकेन्द्रियरत्नानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा–चक्ररत्नम् १, छत्ररत्नम् २, चर्मरत्नम् ३, दण्डरत्नम् ४, असि-

---

एवं हाथ-पैर, नाक कान आदि अवयवोंका काट लेना सो यह छविच्छेद दण्ड है, ये परिभाषा आदि चार दण्डनीतियां भरतके कालमें हुई हैं कहा भी है—" परिभासणाउ पढमा " इत्यादि।

भरतकी मान्यतानुसार ये चार प्रकारकी नीतियां हैं–परिभाषणा मण्डलबन्ध २ चारक ३ और छविच्छेद ॥ सूत्र १८ ॥

" एगमेगस्स णं रन्नो चउरंतचक्कवट्टिस्स " इत्यादि ॥ सूत्र १९॥

सूत्रार्थ–एक २ चातुरन्त चक्रवर्ती राजाके सात एकेन्द्रिय रत्न कहे गये

---

(૭) અપરાધીના હાથ, પગ, કાન, નાક આદિ અવયવોને છેદી નાખવા તેનું નામ છવિચ્છેદ દંડ છે.

પરિભાષા આદિ છેલ્લી ચાર દંડનીતિઓ ભરતના કાળમાં પ્રચલિત થઇ હતી. કહ્યું પણ છે કે—" परिभासणाउ पढमा "

ભરતની માન્યતા પ્રમાણે આ ચાર પ્રકારની દંડનીતિઓ છે—
(૧) પરિભાષણા, (૨) મંડલબન્ધ, (૩) ચારક અને (૪) છવિચ્છેદ. ॥ સૂ. ૧૯ ॥

" एगमेगस्स णं रन्नो चउरंतचक्कवट्टिस्स " ઇત્યાદિ—(સૂ. ૧૮)

સૂત્રાર્થ–પ્રત્યેક ચાતુરન્ત ચક્રવર્તી રાજા પાસે સાત એકેન્દ્રિય રત્નો હોય છે. તે

रत्नम् ५, मणिरत्नम् ६, काकिणीरत्नम् ७। एकैकस्य खलु राज्ञश्चातुरन्तचक्रवर्तिनः सप्त पञ्चेन्द्रियरत्नानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-सेनापतिरत्नम् १, गाथापतिरत्नम् २, वर्द्धकिरत्नम् ३, पुरोहितरत्नम् ४, स्त्रीरत्नम् ५, अश्वरत्नम् ६ हस्तिरत्नम् ७ ॥ सू० १९ ॥

टीका—' एगमेगस्स णं इत्यादि—

एकैकस्य-चातुरन्तचक्रवर्तिनो राज्ञः सप्तसंख्यकानि एकेन्द्रियरत्नानि= पृथिवीपरिणामरूपाणि रत्नानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-चक्ररत्नम्-इत्यादि। रत्नत्वं चैषां स्वस्वजातावुत्कृष्टत्वात्। तदुक्तम्—

" रत्नं निगद्यते तत्र जातौ जातौ यदुत्कृष्टम् " इति।

एकेन्द्रियरत्नादीनां प्रमाणं त्वेवमुक्तं, तथाहि—

" चक्कं छत्तं दंडो, तिन्निवि एयाइं वामतुल्लाइं ।
चम्मं दुहत्थदीहं, बत्तीसं अंगुलाइं असी ॥ १ ॥
चउरंगुलो मणी पुण, तस्सद्धं चेव होइ वित्थिण्णो।
चउरंगुलप्पमाणा, सुवन्नवरकागणी नेया ॥ २ ॥ "

छाया—चक्रं छत्रं दण्डः त्रीण्यप्येतानि व्यामतुल्यानि ।
चर्म द्विहस्त दीर्घं द्वात्रिंशदङ्गुलानि असिः ॥ १ ॥
चतुरङ्गुलो मणिः पुनस्तस्यार्द्धंचैव भवति विस्तीर्णः ।
चतुरङ्गुलप्रमाणा सुवर्णवरकाकिणी ज्ञेया ॥ २ ॥ इति ।

हैं-जैसे-चक्ररत्न १, छत्ररत्न २, चर्मरत्न ३, दण्डरत्न ४, असिरत्न ५, मणिरत्न ६, और काकिणी रत्न ७ ये सब पृथिवीके परिणाम रूप हैं, एवं इन्हें अपनी २ जातिमें उत्कृष्ट होनेके कारण रत्न कहा गया है कहा भी है—" रत्नं निगद्यते तत् " इत्यादि ।

एकेन्द्रिय रत्नादिकोंका प्रमाण ऐसा कहा गया है—

" चक्कं छत्तं दंडो " इत्यादि ।

સાત એકેન્દ્રિય રત્નોનાં નામ આ પ્રમાણે છે—(૧) ચક્રરત્ન, (૨) છત્રરત્ન, (૩) ચર્મરત્ન, (૪) દંડરત્ન, (૫) અસિરત્ન, (૬) મણિરત્ન અને (૭) કાકિણી-રત્ન. આ સાતે રત્નો પૃથ્વીના પરિણામ રૂપ હોવાથી તથા પોત પોતાની જાતિમાં સર્વોત્તમ હોવાથી તેમને રત્ન રૂપ કહેવામાં આવેલ છે. કહ્યું પણ છે કે—" રત્ન નિગદ્યતે તત " ઈત્યાદિ

એકેન્દ્રિય રત્નાદિકોનું પ્રમાણ નીચે પ્રમાણે કહ્યુ છે—" ચક્કં છત્તં દંડો " ઈત્યાદિ—

व्यामतुल्यानि-तिर्यग्बाहुद्वयप्रसारणप्रमाणानि चतुर्हस्तप्रमाणानीत्यर्थः। तथा-प्रत्येकचातुरन्तचक्रवर्त्तिनो राज्ञः सेनापतिरत्नादीनि सप्त पञ्चेन्द्रियरत्नानि बोध्यानि । तत्र-सेनापतिः = सेनानायकः, गाथापतिः = कोष्ठागारनियुक्तः, वर्द्धकिः=रथकारः, पुरोहितः=शान्तिकर्मकर्त्ता । एतेषु चतुर्दशसु रत्नेषु प्रत्येकं यक्षसहस्राधिष्ठितं बोध्यमिति ॥ सू० १९ ॥

मूलम्—सत्तहिं ठाणेहिं ओगाढं दुस्समं जाणेज्जा, तं जहा-अकाले वरिसइ १, काले ण वरिसइ २, असाहू पुज्जंति ३, साहू न पुज्जंति ४, गुरुहिं जणो मिच्छं पडिवन्नो ५, मणोदुहिया ६, वइदुहिया ७। सत्तेहि ठाणेहिं ओगाढं सुसमं जाणेज्जा, तं जहा अकाले न वरिसइ १, काले वरिसइ २ असाहू ण पुज्जंति ३ साहू पुज्जंति ४, गुरूहिं जणो सम्मं पडिवन्नो ५, मणोसुहिया ६ वई सुहिया ७ ॥ सू० २० ॥

चक्र, छत्र, एवं दण्ड ये तीन रत्न चार हाथ प्रमाणवाले हैं। तिर्यग् फैलाये हुए जो दोनों हाथ है, उनका नाम व्याम है। चर्मरत्न दो हाथ प्रमाण लम्बा है। एवं ३२ अंगुलको तलवार है। चार अंगुलका मणिरत्न है। इसकी चौड़ाई दो अंगुलकी है। काकिणी रत्न भी चार अंगुलका ही है। सेनापति १-सेनानायक, गाथापति-कोष्ठागारका अधिकारी वर्द्धकि-सारथी-रथकार, पुरोहित-शान्ति कर्मकर्त्ता स्त्रीरत्न ५, अश्वरत्न ६ हस्तिरत्न सात ये सात रत्न पंचेन्द्रिय रत्न हैं। इन१४ रत्नोंमेंसे प्रत्येक रत्न एक-एक हजार यक्षसे अधिष्ठित होतेहैं॥सू.१९॥

ચક્ર છત્ર અને દંડ, આ ત્રણ રત્નો ચાર હાથ પ્રમાણવાળા છે. તિર્યગ્ ફેલાવેલા જે બન્ને હાથ છે તેમનું નામ વ્યામ છે. ચર્મરત્નની લંબાઇ બે હાથ પ્રમાણ કહી છે, તલવાર (અસિરત્ન) લંબાઇ ૩૨ આંગળ પ્રમાણ છે. મણિરત્ન ચાર અંગુલ પ્રમાણ, અને કાકિણી રત્ન પણ ચાર અંગુલ પ્રમાણ માપનું હોય છે ચતુરન્ત ચક્રવર્તીના સાત પંચેન્દ્રિય રત્નો નીચે પ્રમાણે હોય છે—(૧) સેનાપતિ, (૨) ગાથાપતિ-કોઠારનો અધિકારી, (૩) સારથી-રથકાર, (૪) પુરોહિત, (૫) સ્ત્રીરત્ન (૬) અશ્વરત્ન અને (૭) હસ્તિરત્ન.

આ પ્રકારના કુલ ૧૪ રત્નો ચક્રવર્તી પાસે હોય છે. આ પ્રત્યેક રત્ન એક-એક હજાર યક્ષો વડે અધિષ્ઠિત હોય છે. ॥ સૂ ૧૯ ॥

छाया— सप्तभिः स्थानैरवगाढां दुष्षमां जानीयात्, तद्यथा-अकाले वर्षति १, काले न वर्षति २, असाधवः पूज्यन्ते ३, साधवो न पूज्यन्ते ४, गुरुषु जनो मिथ्याप्रतिपन्नः ५, मनोदुःखिता ६, वाग्दुःखिता ७। सप्तभिः स्थानैः अवगाढां सुषमां जानीयात्, तद्यथा-अकाले न वर्षति १, काले वर्षति २, असाधवो न पूज्यन्ते ३, साधवः पूज्यन्ते ४, गुरुषु जनः सम्यक् प्रतिपन्नः ५, मनःसुखिता ६, वाक्सुखिताः ७ ॥ सू० २१ ॥

टीका— ' सत्तहिं ठाणेहिं ' इत्यादि—

सप्तभिः स्थानैः=कारणैः दुष्षमाम्=दुष्षमकालं अवगाढाम्=अवतीर्णाम् उत्कर्षावस्थां प्राप्तां जानीयात्, तद्यथा-अकाले वर्षतीत्यादि । सुगमम् । नवरम्-गुरुषु=मातापितृधर्माचार्येषु जनो-लोको मिथ्या=मिथ्याभावं-विनयभ्रंशं प्रतिपन्नः=प्राप्तः । मनोदुःखिता-मनसो मनसा वा दुःखिता=दुखितत्वं दुःखकारित्वं वा मानसं दुःखमित्यर्थः । वाग्दुःखिता=वाचिकं दुःखमित्यर्थः । तथा-सप्तभिः

" सत्तहिं ठाणेहिं ओगाढं " इत्यादि । सू० २० ॥

टीकार्थ-दुष्षमकाल इन सात स्थानोंसे उत्कर्षावस्थावाला होताहै । जैसे-अकालमें वर्षा होना १, कालमें वर्षा नहीं होना २, असाधुओंकी पूजा ही होना ३, साधुओंकी पूजा नहीं होना ४, गुरुजनोंमें मिथ्या भाव रखना ५, मनका दुःखित रहना ६, एवं वाचिक दुःखका होना ७ सुषमा काल इन सात स्थानोंसे उत्कर्षावस्थावाला होता है-जैसे-अकालमें वृष्टिका नहीं होना १ समय पर वृष्टिका होना २, असाधुओंकी पूजा-सत्कार नहीं होना ३, साधुजनोंकी पूजा-सत्कार होना ४, गुरुजनों पर सच्चा भाव होना ५, मनको दुःखित नहीं होता ६, एवं

"सत्तहिं ठाणेहिं ओगाढ " ઇત્યાદિ—

ટીકાર્થ-દુષમકાળ આ સાત સ્થાનોની અપેક્ષાએ ઉત્કર્ષાવસ્થાવાળો હોય છે-(૧) ત્યારે યોગ્ય કાળે (વર્ષા ઋતુમાં) વર્ષા થતી નથી, (૨) અકાળે વર્ષા થાય છે. (૩) અસાધુઓની પૂજા થાય છે, (૪) સાધુઓની પૂજા થતી નથી, (૫) ગુરુજનો પ્રત્યે મિથ્યભાવ વધતો જાય છે, (૬) મન સંતાપથી યુક્ત રહે છે અને (૭) વાચિક દુઃખનો પણ સદ્ભાવ રહે છે.

સુષમકાળ આ સાત સ્થાનોની અપેક્ષાએ ઉત્કર્ષાવસ્થાવાળો હોય છે-(૧) અકાળે વૃષ્ટિનો અભાવ (૨) ઉચિત સમયે વૃષ્ટિનો સદ્ભાવ. (૩) અસાધુઓના પૂજાસત્કારનો અભાવ, (૪) સાધુઓના પૂજાસત્કારનો સદ્ભાવ, (૫) ગુરુજનો પ્રત્યે સાચા ભાવનો સદ્ભાવ (૬) માનસિક દુઃખનો અભાવ અને

स्थानैः अवगाढां सुषमां जानीयात्, तद्यथा–अकाले न वर्षति इत्यादि सुगमम्। नवरं–सम्यक्=सम्यग्भावं–विनयमिति यावत् ॥ सू० २० ॥

दुष्षमा सुषमालक्षणं कालद्वयं सांसारिकजीवानां क्रमेण दुःखसुखप्रयोजकं भवतीति सांसारिकजीवान् प्ररूपयितुमाह—

मूलम्–सत्तविहा संसारसमावन्नगा जीवा पण्णत्ता, तं जहा–नेरइया १, तिरिक्खजोणिया २ तिरिक्खजोणिणीओ ३, मणुस्सा ४, मणुस्सीओ ५ देवा ६, देवीओ ७ ॥ सू० २१ ॥

छाया—सप्तविधाः संसारसमापन्नका जीवाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–नैरयिकाः १, तिर्यग्योनिकाः २, तिर्यग्योनिकाः ३, मनुष्याः ४, मनुष्यः ५, देवाः ६, देव्यः ७ ॥ सू० २१ ॥

टीका–'सत्तविहा' इत्यादि—

वाचनिक दुःख नहीं होना ७ गुरुजनसे माता पिता एवं धर्माचार्य ये सब गृहीत हुए हैं ॥ सू० २० ॥

दुष्षमा सुषमा ये दोनों काल सांसारिक जीवोंको क्रमशः दुःख, सुखके प्रयोजक होतेहैं–अतः अब सूत्रकार सांसारिक जीवों की प्ररूपणा करतेहैं "सत्त विहा संसार समावन्नगा जीवा पण्णत्ता" इत्यादि ॥सू०२१॥

टीकार्थ–संसार समापन्नक जीव–संसारी जीव–सात प्रकारके कहे गये हैं–जैसे–नैरयिक १, तिर्यग्योनिक २, तिर्यञ्चस्त्रियां ३, मनुष्य ४, मनुष्यस्त्रियां ५, देव एवं देवियां ७. यहां तिर्यञ्च एवं मनुष्य तथा देवोंमें पुल्लिङ्ग, एवं स्त्रीलिंगके होनेसे द्विविधता होती है, और नैर-

---

(७) વાચિક દુઃખનો અભાવ. આ સૂત્રમાં 'ગુરુજન' પદ માતા, પિતા, ધર્માચાર્ય આદિનું વાચક છે. ॥ સૂ૦ ૨૦ ॥

દુષ્ષમા અને સુષમાકાળ સાંસારિક જીવોને અનુક્રમે દુઃખ અને સુખનો અનુભવ કરાવનારા હોય છે, તેથી હવે સૂત્રકાર સાંસારિક જીવોની પ્રરૂપણા કરે છે–"સત્તવિહા સંસારસમાવન્નગા જીવા પણ્ણત્તા" ઇત્યાદિ–(સૂ. ૨૧)

ટીકાર્થ–સંસાર સમાપન્નક જીવના (સંસારી જીવના) નીચે પ્રમાણે સાત પ્રકાર કહ્યા છે–(૧) નૈરયિક, (૨) તિર્યગ્યોનિકનર, (૩) તિર્યગ્યોનિક સ્ત્રીઓ, (૪) મનુષ્ય, (૫) મનુષ્ય જાતિની સ્ત્રીઓ, (૬) દેવો અને (૭) દેવીઓ. મનુષ્ય, તિર્યંચ અને દેવોમાં નર અને નારી જાતિનો સદ્ભાવ હોય છે, તે કારણે પ્રત્યેકમાં દ્વિવિધતા બતાવી છે. નારકોમાં માત્ર નપુંસકલિંગતા (નાન્યેતર જાતિ) જ

व्याख्या स्पष्टा। नवरम्-नैरयिकाणामेकविधत्वेन, तिर्यङ्मनुष्यदेवानां प्रत्येकं पुंस्त्री भेदेन द्वैविध्येन, सप्तविधत्वमिति ॥ सू० २१ ॥

संसारिणां संसरणं च आयुर्भेदे सति भवतीति आयुर्भेदं प्ररूपयति—

मूलम्-सत्तविहे आउभेए पण्णत्ते, तं जहा-अज्झवसाणं १, निमित्तं २, आहारे ३ वेयणा ४, पराघाए ५। फासे ६ आणापाणू ७। सत्तविहं भिज्जए आऊ ७ ॥ सू० २२ ॥

छाया —सप्तविध आयुर्भेदः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-अध्यवसानम् १ निमित्तम् २ आहारो ३ वेदना ४ पराघातः ५। स्पर्शः ६ आनप्राणं ७ सप्तविधं भिद्यते आयुः ॥ सू० २२ ॥

टीका—' सत्तविहे ' इत्यादि—

आयुर्भेदः-आयुषो=जीवनस्य भेदः=विनाशः सप्तविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथाः-अध्यवसानं=रागस्नेहभयात्मक आत्मपरिणामः १, तथा-निमित्तम्=दण्डकशा-

---

यिकोंमें केवल नपुंसक लिङ्गता होनेसे एकविधताही होती है-इस प्रकारसे संसारी जीव सात प्रकारके होते कहे गये हैं ॥ सूत्र २१ ॥

संसारी जीवोंका संसारमें परिभ्रमण आयुके होने पर ही होता है, अतः अब सूत्रकार आयुके भेदोंका निरूपण करते हैं—

" सत्तविहे आउभेए पण्णत्ते " इत्यादि सूत्र २२ ॥

टीकार्थ-आयुका भेद सात प्रकारका कहा गया है-जैसे-अध्यवसान १, निमित्त २, आहार ३, वेदना ४, पराघात ५ स्पर्श ६ और आनप्राण ७ आयुभेदसे यहां जीवनका विनाश कहा गयाहै, यह जो सात प्रकारका कहा गया है, सो उसका तात्पर्य ऐसा है-राग, स्नेह एवं भयरूप जो

સંભવી શકે છે તેથી તેમનો એક જ પ્રકાર પડે છે. આ પ્રકારે અહીં સંસારી જીવોના સાત પ્રકારો બતાવવામાં આવ્યા છે. ॥ સૂ ૨૧ ॥

આયુના સદ્‌ભાવમાં જ સંસારી જીવોનું સંસારમાં પરિભ્રમણ થાય છે. તેથી હવે સૂત્રકાર આયુભેદોનું (આયુના વિનાશનું) નિરૂપણ કરે છે—

' सत्तविहे आउभेए पण्णत्ते " ઇત્યાદિ—(સૂ ૨૨)

આયુના ભેદ સાત પ્રકારના કહ્યા છે. તે પ્રકારો નીચે પ્રમાણે છે—(૧) અધ્યવસાન, (૨) નિમિત્ત, (૩) આહાર, (૪) વેદના, (૫) પરાઘાત, (૬) સ્પર્શ અને (૭) આનપ્રાણ.

ટીકાર્થ-"આયુભેદ" આ પદ દ્વારા આયુનો વિનાશ" અહીં અર્થ સમજવાનો છે. તે આયુવિનાશના સાત ભેદોનું હવે સ્પષ્ટીકરણ કરવામાં આવે છે.

शस्त्रादीनि २। यद्यप्यनयोरायुर्भेदं प्रति कारणत्वं, तथापि कारणे कार्योपचारादेव-मुक्तम् । आहारः=प्रमाणाधिकभोजनम् ३, वेदना=हृदयशूलादिका ४, पराघातः=गर्तकूपादिषु पतनम् ५, स्पर्शः=कृष्णसर्पादिदंशः ६, आनपाणम्-श्वासोच्छ्वासौ-श्वासोच्छ्वासनिरोध इत्यर्थ ७, इति सप्तविधं यथा भवति तथा आयुः=जीवितं भिद्यते=निच्छिद्यते । अत्रेदं बोध्यम्, अयमायुर्भेदः सोपक्रमायुषामेव भवति न तु निरुपक्रमायुषाम् । ननु येन शतं संवत्सरानायुरुपनिबद्धं, तस्य तदायुषोऽन्तराल

आत्माका परिणाम है, वह अध्यवसान है, दण्डकशास्त्र आदि ये निमित्त हैं । यद्यपि इनमें आयुविनाशके प्रतिकारणता है, परन्तु इन्हें जो स्वय आयुर्भेदरूप कहा गया है, वह कारणमें कार्यके उपचारसे कहा गया है, प्रमाणसे अधिक भोजन करना आहार है, हृदयशूल आदिका नाम वेदना है, गर्तकूप आदिमें गिरना पराघात है, कृष्ण सर्प आदि द्वारा काट लिया जाना स्पर्श है, तथा श्वासोच्छ्वासका निरोध होना इसका नाम आण प्राण है, इन सात प्रकारके कारणोंसे आयुका-जीवितका विनाश होना है। यहां इस प्रकारसे समझना चाहिये-यह आयुर्भेद सोपक्रम आयुवालोंकोही होता है निरुपक्रम आयुवालोंको नहीं होता है ।

शंका—जिस जीवने १०० वरसकी आयुका बन्ध किया है, और उसकी आयु बीचहीमें समाप्त हो जाती है, तो इससे कृत विनाश

રાગ, સ્નેહ અને ભય રૂપ આત્માના પરિણામને અધ્યવસાન કહે છે દંડક શાસ્ત્ર આદિને નિમિત્ત કહે છે. જો તે બન્ને આયુવિનાશમાં કારણભૂત બને છે, છતાં પણ તેમને પોતાને જ અહીં જે આયુભેદરૂપ કહેવામાં આવ્યાં છે તે કારણમાં કાર્યના ઉપચારની અપેક્ષાએ કહેવામાં આવેલ છે. પ્રમાણથી વધારે ખાવું તેનું નામ આહાર (આહાર રૂપ કારણ) છે હૃદયશૂલ આદિનું નામ વેદના (વેદના રૂપ કારણ) છે. કૂવા કે ખાડામાં પડવુ તેનું નામ પરાઘાત (પરાઘાત રૂપ કારણ) છે, કાળા નાગ આદિનો દંશ (ડંખ) લાગવો તેનું નામ સ્પર્શ (સ્પર્શરૂપ કારણ) છે અને શ્વાસોચ્છ્વાસનો નિરોધ થવો તેનુ નામ આણપાણ (આણપાણ રૂપ કારણ) છે. આ સાત પ્રકારના કારણોને લીધે આયુનો (જીવનનો) અન્ત આવી જાય છે. અહીં એવું સમજવું જોઈએ કે આ પ્રકારનો આયુભેદ સોપક્રમ આયુવાળાઓમાં જ સંભવી શકે છે. નિરુપક્રમઆયુવાળામાં આ પ્રકારના આયુભેદનો સદ્ભાવ હોતો નથી.

શંકા—ધારો કે કોઈ જીવે ૧૦૦ વર્ષના આયુનો બન્ધ કર્યો છે. જો તેનું આયુષ્ય વચ્ચે જ સમાપ્ત થઈ જાય, તો એ પ્રકારની માન્યતામાં કૃત-

युत्र व्युपक्रमात् कृतविनाशो, येन च कर्मणाऽऽयुर्विगमस्तत्यत्यापरयाऽकृतागमश्च भवतीति कृतनाशाकृतागमप्रसक्तया मोक्षेऽविश्वासश्चारित्रादावप्रवृत्तिश्च स्यात्? उक्तं च—

" कम्मोवक्कमिज्जइ, अपत्तकालम्मि जइ तओ पत्ता।
अकयागमकयनासा, मोक्खाणासासओ दोसा ॥ १ ॥ "

छाया—कर्म उपक्रम्यते अप्राप्तकाले यदि ततः प्राप्ताः।
अकृतागमकृतनाशात् मोक्षानाश्वासतो दोषाः ॥ इति।

इति चेत्, आह—वर्षशतभोग्यमपि भक्तं भस्मकव्याधिना समाक्रान्तस्य जनस्याल्पेनैव कालेन भुञ्जानस्य यथा न कृतनाशो न चाकृतागमो भवति,

---

नाशका दोष आता है, और अकृतके अभ्यागमका प्रसंग प्राप्त होता है, क्योंकि जो कर्म उसने नहीं किया है-उससे उसकी आयुका विगम हुआ है, इन दोनों दोषोंके सद्भावसे मोक्षमें अविश्वास और चारित्र आदिमें अप्रवृत्ति जीवको हो जायगी।

" कम्मोवक्कमिज्जइ " इत्यादि।

इस गाथा द्वारा यही समझाया गया है, कि यदि आयु अकालमें नष्ट हो जाती है, तो इस स्थितिमें कृत प्रणाश और अकृताभ्यागम ये दोष उपस्थित होते हैं आदि।

उ०—सो वरस तक भी खाया जा सके ऐसे भी भोजनको, जिसको भस्मक व्याधि हो गई है, ऐसो व्यक्ति जब एकही बारमें उस भोजनको खा लेता है, तो वह उस भोजनको बहुतही जल्दी पचा जाता है-तो

વિનાશ નામના દોષનો પ્રસંગ ઉપસ્થિત થાય છે અને અકૃતના અભ્યાગમનો પ્રસંગ પ્રાપ્ત થાય છે, કારણ કે જે કર્મ તેણે કર્યું નથી તેના દ્વારા તેની આયુનો વિનાશ થયો છે. આ બન્ને પ્રકારના દોષોના સદ્ભાવે કરીને જીવને મોક્ષમાં અવિશ્વાસ ઉત્પન્ન થશે અને ચારિત્રાદિની આરાધનાની જીવની પ્રવૃત્તિ બંધ પડી જશે.

" कम्मोवक्कमिज्जइ " ઇત્યાદિ—

આ ગાથામાં એ જ વાત પ્રકટ કરવામાં આવી છે કે " જો આયુનો અકાળે નાશ થવાની વાત સ્વીકારવામાં આવે, તો કૃતપ્રણાશ અને અકૃતાભ્યાગમ આ બે દોષ ઉપસ્થિત થાય છે, " ઇત્યાદિ—

ઉત્તર—જે માણસને ભસ્મક વ્યાધિ થયો હોય એવો માણસ અન્ય માણસ દ્વારા ૧૦૦ વર્ષમાં ખાઈ શકાય તેટલા ભોજનને પણ એક જ વખતમાં ખાઈ જાય છે, એટલું જ નહીં પણ એ ભોજનને તે પચાવી પણ શકે

तथैवात्रापि न कृतनाशो न चाकृतागमो भवतीति बोध्यम् ।
उक्तं च-" न हि दीहकालियस्सवि, णासो तस्साणुभूइओ खिप्पं ।
बहुकालाहारस्स व, दुयमग्गियरोगिणो भोगो ॥ १ ॥
सव्वं च पएसतया, भुज्जइ कम्ममणुभागओ भइयं ।
तेणावस्साणुभवे, केकयनासादओ तस्स ? ॥ २ ॥
किंचिदकाले विफलं, पाइज्जइ पच्चए य कालेणं ।
तह कम्मं पाइज्जइ कालेण वि पच्चए अन्न ॥ ३ ॥
जह वा दीहा रज्जू डज्जइ कालेण पुंजिया खिप्पं ।
वितओ पडो उ सुस्सइ, पिंडीभूओ उ कालेणं ॥ ४ ॥
छाया—नहि दीर्घकालिकस्यापि नाशस्तस्यानुभूतितः क्षिप्रम् ।
बहुकालाहारस्येव द्रुतमग्निरोगिणो भोगः ॥ १ ॥
सर्वं च प्रदेशतया भुज्यते कर्म अनुभागतो भक्तम् ।
तेनावश्यानुभवे, के कृतनाशादयस्तस्य ॥ २ ॥
किंचिदकालेऽपि फलं, पाच्यते पच्यते च कालेन ।
तथा कर्म पाच्यते कालेनापि पच्यते अन्यत् ॥ ३ ॥
यथा वा दीर्घा रज्जुः दह्यते कालेन पुञ्जिता क्षिप्रम् ।
विततः पटस्तु शुष्यति पिण्डीभूतस्तु कालेन ॥ ४ ॥ इति ॥ सू० २२ ॥

जिस प्रकार इसे कृत प्रणाश और अकृताभ्यगम दोष प्रसक्त नहीं होते हैं, इसी प्रकारसे यहां पर भी ये दोनों दोष प्रसक्त नहीं होते हैं-ऐसे जानना चाहिये । कहा भी है—

" न हि दीहकालियस्स " इत्यादि ।

तात्पर्य इन गाथाओंका यही है, कि दीर्घकालिक कर्मका भी शीघ्र नाश उसकी इकदम अनुभूति हो जानेसे हो जाता है-इसमें कोई आपत्ति जैसी बात नहीं है, क्योंकि जो भोजन बहुत कालमें पचानेके

છે. તો જે પ્રકારે તેને કૃતપ્રણાશ અને અકૃતાભ્યાગમ દોષનો પ્રસંગ પ્રાપ્ત થતો નથી એજ પ્રમાણે અહીં પણ તે બન્ને પ્રકારના દોષો લાગવાનો પ્રસંગ પ્રાપ્ત થતો નથી કહ્યુ પણ છે કે—

" न हि दीहकालियस्स " ઇત્યાદિ—

આ ગાથાઓનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે—દીર્ઘકાલિક કર્મની પણ જલ્દી અનુભૂતિ થઇ જવાથી તેનો શીઘ્ર નાશ થઇ જાય છે, આ વાતને સ્વીકારવામાં કોઈ પણ વાંધો રહેતો નથી. એ જ વાતને નીચેના દૃષ્ટાંતો

अयं चायुर्भेदः कथंचित् सर्वजीवानां भवतीति तान् सप्तविधत्वेनाह—

मूलम्--सत्तविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा--पुढविकाइया १ आउकाइया २ तेउकाइया ३ वाउकाइया ४ वणस्सकाइया ५ तसकाइया ६ अकाइया ७। अहवा—सत्तविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा—कण्हलेसा १ जाव सुक्कलेसा ६ अलेसा ७ ॥ सू० २३ ॥

योग्य होता है–वही भोजन भस्मक व्याधिवालेके द्वारा शीघ्रतासे पचा लिया जाता है, जो फल वृक्षके ऊपर लगा रहने पर पकनेमें बहुत समय लेता है–वही फल पाकमें जब डाल दिया जाता है, तो बहुतही शीघ्र पक जाता है–यह बहुतही शीघ्र उसका पक जाना अकालमें पक जाना है, इसी तरह रस्सी बिखरी हुई पड़ी हो तो उसके जलनेमें देर लगती है, और वही रस्सी जब पिण्डित अवस्थामें जलाई जाती है–तो बहुत ही जल्दी भस्म हो जाती है, इसी प्रकार पसारा हुआ वस्त्र जल्दी सूख जाता है, और घरी किया हुआ वस्त्र देरमें सूखता है–इसी प्रकारसे निमित्त मिलने पर हरएक कर्मका अकालमें भी विनाश हो जाता है, इसमें अकृताभ्यागम और कृत प्रणाश जैसे दोषोंको आनेकी संभावना ही नहीं है ॥ सूत्र० २२ ॥

દ્વારા સ્પષ્ટ કરવામાં આવે છે—જે ભોજન અન્ય માણુસ દ્વારા ઘણા લાંબા કાળે પચાવી શકાય એવું હોય છે એ જ ભોજનને ભસ્મક વ્યાધિવાળો જલ્દી પચાવી શકે છે. જે ફળ વૃક્ષની ઉપર જ લાગેલું રહે તેને પાકવાને માટે લાંબો સમય લાગે છે, પરન્તુ એ જ ફળને જ્યારે ઘાસ આદિમાં રાખી મૂકવામાં આવે છે ત્યારે તે જલ્દી પાકી જાય છે–આ પ્રકારે તેનું જલ્દીથી પાકવું તેનું નામ જ 'અકાલે પાકવું' છે એ જ પ્રમાણે વિખરાઈને પડેલા દોરડાને બળી જતા વાર લાગે છે, પણ જો એ જ દોરડાનો વીંટો કરીને તેને બળવામા આવે તો જલ્દી બળીને ભસ્મ થઈ જાય છે એ જ પ્રમાણે એકવડું વસ્ત્ર જલ્દી સૂકાય છે પણ ઘડી કરેલું વસ્ત્ર સૂકાતાં વાર લાગે છે. એ જ પ્રમાણે જ્યારે નિમિત્ત મળે ત્યારે દરેક કર્મનો અકાલે પણ વિનાશ થઈ શકે છે. તો આ પ્રકારની માન્યતા સ્વીકારવામાં અકૃતાભ્યાગમ અને કૃત-પ્રણાશ જેવા દોષોનો પ્રસંગ પ્રાપ્ત થતો નથી ॥ સૂ. ૨૨ ॥

छाया—सप्तविधाः सर्वजीवाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-पृथिवीकायिकाः १, अप्कायिकाः २, तेजस्कायिकाः ३, वायुकायिकाः ४, वनस्पतिकायिकाः ५, त्रसकायिकाः ६, अकायिकाः ७ अथवा-सप्तविधाः सर्वजीवाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-कृष्णलेश्याः १ यावत् शुक्ललेश्याः ६ अलेश्याः ७ ॥ सू०२३ ॥

टीका—'सत्तविहा' इत्यादि—

व्याख्या सुगमा। नवरम्-सर्वजीवाः-सर्वे च ते जीवाश्चेति, संसारिणो मुक्ताश्चेत्यर्थः। अकायिकाः=सिद्धाः-तेषां षड्विधकायव्यपदेशत्वाभावात्। अलेश्याः=सिद्धा अयोगिनो वेति ॥ सू० २३ ।

यह आयुभेद कथंचित् समस्त जीवोंकी होता है-इसलिये सूत्रकार अब जीवोंमें सप्तविधताका कथन करते हैं—

"सत्तविहा सव्वजीवा पण्णत्ता" इत्यादि ॥ सू० २३ ॥

टीकार्थ-समस्त जीव सात प्रकारके कहे गये हैं-जैसे-पृथिवीकायिक १, अप्कायिक २, तेजस्कायिक ३, वायुकायिक ४, वनस्पतिकायिक ५, त्रसकायिक ६, और अप्कायिक ७ अथवा-इस प्रकारसे भी जीव सात प्रकारके कहे गये हैं-कृष्णलेश्यावाले यावत् शुक्ल लेश्यावाले ६ और अलेश्यावाले ७ यहां "समस्त जीव" इस प्रकारके कथनसे संसारी जीव और मुक्त जीव ये दोनों प्रकारके जीव गृहीत हो जाते हैं। अप्कायिकसे सिद्ध जीवोंका ग्रहण हो जाता है-क्योंकि उनमें ६ प्रकारके कायका व्यपदेश नहीं होता है, इसी तरहसे अलेश्य पदसे इसका ग्रहण हो जाता है, अथवा अयोगियोंका ग्रहण हो जाता है सू०२३

આ આયુભેદ ક્યારેક સમસ્ત જીવોમા હોય છે તેથી હવે સૂત્રકાર જીવોના સાત પ્રકારોનું કથન કરે છે—

"सत्तविहा सव्व जीवा पण्णत्ता" ઇત્યાદિ—(સૂ. ૨૩)

ટીકાર્થ-સમસ્ત જીવોના નીચે પ્રમાણે સાત પ્રકાર કહ્યા છે—(૧) પૃથ્વીકાયિક, (૨) અપ્કાયિક, (૩) તેજસ્કાયિક, (૪) વાયુકાયિક, (૫) વનસ્પતિકાયિક, (૬) ત્રસકાયિક અને (૭) અકાયિક અથવા જીવોના આ પ્રમાણે સાત પ્રકાર પણ કહ્યા છે—(૧) કૃષ્ણલેશ્યાવાળા, (૨) નીલલેશ્યાવાળા, (૩) કાપોતલેશ્યા વાળા, (૪) પીતલેશ્યાવાળા, (૫) પદ્મલેશ્યાવાળા, (૬) શુક્લલેશ્યાવાળા અને (૭) અલેશ્યાવાળા.

અહીં 'સમસ્ત જીવો' આ પ્રકારના કથન દ્વારા સંસારી જીવો અને મુક્ત જીવોને ગ્રહણ કરવામાં આવ્યા છે સિદ્ધ જીવોને અકાયિક કહે છે, કારણ કે તેમનામા ૬ પ્રકારના શરીરોનો સદ્ભાવ હોતો નથી "અલેશ્ય" આ પદ વડે સિદ્ધ જીવોને અથવા અયોગીઓને (મન, વચન અને કાયાના યોગથી રહિત જીવોને) ગ્રહણ કરવામાં આવ્યા છે. ॥ સૂ. ૨૩ ॥

पूर्वसूत्रे कृष्णलेश्यादिमन्तो जीवभेदा उक्ताः, तत्र च कृष्णलेश्यवान् मनारको ऽप्युत्पद्यते ब्रह्मदत्तवदिति ब्रह्मदत्तस्वरूपमभिधातुमाह—

मूलम्—बंभदत्ते णं राया चाउरंतचक्कवट्टी सत्त धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं सत्त य वाससयाइं परमाउं पालइत्ता कालमासे कालं किच्चा अहे सत्तमाए पुढवीए अप्पइट्ठाणे णरए णेरइत्ताए उववन्ने ॥ सू० २४ ॥

छाया--ब्रह्मदत्तः खलु राजा चातुरन्तचक्रवर्ती सप्त धनूंषि ऊर्ध्वमुच्चत्वेन सप्त च वर्षशतानि परमायुः पालयित्वा कालमासे कालं कृत्वा अधः सप्तम्यां पृथिव्याम् अप्रतिष्ठाने नरके नैरयिकतया उपपन्नः ॥ सू० २५ ॥

टीका—'बंभदत्ते णं' इत्यादि—

व्याख्या सुगमा ॥ सू० २४ ॥

ऊपरके सूत्रमें कृष्णलेश्या आदिवाले जीव भेद कहे गये हैं-इनमें जो जीव कृष्ण लेश्यावाला होता है, वह मरकर नारक भी हो जाता है-जैसे ब्रह्मदत्त हुआ है, अतः अब सूत्रकार इसी ब्रह्मदत्तके सम्बन्धमें कथन करते हैं-" बंभदत्ते णं राया चाउरंत " इत्यादि ॥ सूत्र २५ ॥

टीकार्थ-ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती ऊँचाईमें सात धनुषका था, ७०० सौ वर्षकी इसकी उत्कृष्ट आयु थी, उतनी पूरी आयुको भोग कर यह काल मासमें मरण कर नीचे सप्तम पृथिवीमें अप्रतिष्ठान नरकमें नैरयिककी पर्यायसे उत्पन्न हुआ है ॥ सूत्र २४ ॥

આગલા સૂત્રમાં કૃષ્ણાદિ લેશ્યાવાળા જીવોની વાત કરવામાં આવી. કૃષ્ણ લેશ્યાવાળા જીવો મરીને નારકોમાં પણ ઉત્પન્ન થઈ જાય છે, જેમ કે બ્રહ્મદત્ત ચક્રવર્તીની બાબતમાં એવું જ બન્યું હતુ. આ પ્રકારના પૂર્વસૂત્ર સાથેના સંબંધને લીધે હવે સૂત્રકાર બ્રહ્મદત્તના વિષયમાં કથન કરે છે—

" बंभदत्तेण राया चाउरंत " ઈત્યાદિ—(સૂ. ૨૫)

ટીકાર્થ-બ્રહ્મદત્ત ચક્રવર્તીના શરીરની ઊંચાઈ સાત ધનુપ્રમાણ હતી તેનું ઉત્કૃષ્ટ આયુષ્ય ૭૦૦ વર્ષનું હતું. તેટલા પૂરા આયુષ્યને ભોગવીને કાળનો અવસર આવતા કાળધર્મ પામીને, તે નીચે સાતમી નરકમાં અપ્રતિષ્ઠાન નામના નરકાવાસમાં નારકની પર્યાયે ઉત્પન્ન થયો છે. ॥ સૂ. ૨૪ ॥

ब्रह्मदत्त उत्तमपुरुष इति उत्तमपुरुषाधिकाराद्दुत्तमपुरुषविशेषस्थानीयमल्लि-वक्तव्यतामाह—

सूत्रम्--मल्ली णं अरहा अप्पसत्तमे मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए, तं जहा--मल्ली विदेहरायवरकन्नगा १, पडिबुद्धी इक्खागराया २, चंदच्छाए अंगराया ३, रुप्पीकुणालाहिवई ४, संखे कासीराया ५, अदीणसत्तू कुरुराया ६, जियसत्तू पंचालराया ७ ॥ सू० २५ ॥

छाया—मल्ली खलु अर्हन् आत्मसप्तमो मुण्डो भूत्वा अगारादनगारितां प्रव्रजितः, तद्यथा—मल्ली विदेहराजवरकन्यका १, प्रतिबुद्धिरिक्ष्वाकुराजः २, चन्द्रच्छायोऽङ्गराजः ३, रुक्मी कुणालाधिपतिः ४, शङ्खः काशीराजः ५, अदीनशत्रुः कुरुराजः ६ जितशत्रुः पञ्चालराजः ७ ॥ सू० २५ ॥

टीका—' मल्ली णं ' इत्यादि । व्याख्या सुगमा नवरम्—मल्लीनामा अर्हन् खलु आत्मसप्तमः=आत्मना सप्तमः=सप्तसंख्यापूरणः=प्रतिबुद्धिप्रभृतिभिः षड्भिः सह सप्तमः स्वयं मुण्डो=द्रव्यतो भावतश्च मुण्डितो भूत्वा अगारात् अनगारितां प्रव्रजितः, तद्यथा—मल्ली विदेहराजवरकन्यका—इत्यादि । तत्र—विदेह-

---

ब्रह्मदत्त यह उत्तम पुरुष था—इस अभिप्रायको लेकर अब सूत्रकार उत्तम पुरुष विशेषके स्थानापन्न मल्लीकी वक्तव्यताका कथन करते हैं—

" मल्लीणं अरहा " इत्यादि ॥ सूत्र २५ ॥

टीकार्थ—मल्ली अर्हन्त प्रतिबुद्धि आदि ६ राजाओंके साथ स्वयं सप्तम होकर द्रव्यसे और भावसे मुण्डित होकर अगारसे अनगार अवस्थावाले बने हैं। मल्ली यह विदेह राजाकी उत्तम कन्या थी १

બ્રહ્મદત્ત ચક્રવર્તી હોવાને કારણે ઉત્તમ પુરુષ રૂપ હતો. પૂર્વસૂત્રની સાથે ઉત્તમ પુરુષ વિશેષ રૂપ સમાનતાના સંબંધને લીધે હવે સૂત્રકાર મલ્લિ (મલ્લિનાથ અહંત) ની પ્રરૂપણા કરે છે—

"મલ્લીણં અરહા " ઇત્યાદિ—(સૂ ૨૫)

ટીકાર્થ—પ્રતિબુદ્ધિ આદિ ૬ રાજાઓની સાથે સાતમાં મલ્લિ અહંન્તે (મલ્લિ વિદેહ રાજાની કુંવરી હતી) દ્રવ્ય અને ભાવની અપેક્ષાએ મુંડિત થઈને આગારાવસ્થા (ગૃહસ્થાવસ્થા) ના ત્યાગ પૂર્વક અણુગારાવસ્થા અંગીકાર કરી હતી.

राजवरकन्यका-विदेहो मिथिलापरपर्यायः प्रसिद्धो जनपदः, तस्य यो राजा तस्य वरा=श्रेष्ठ कन्यका=पुत्री एकोनविंशतितमो जिन इत्यर्थः १। इक्ष्वाकुराजः= अयोध्याधिपतिः २। अङ्गराजः=अङ्गो नाम देशः, यस्य चम्पा राजधान्यासीत्, तस्याधिपतिः ३। कुणालाधिपतिः-कुणालो नाम देशः, यस्य राजधानी श्रावस्ती, तस्याधिपतिः ४। काशीराजः-काशीनाम देशः, यस्य राजधानी वाराणसी, तस्य राजा ५। कुरुराजः-कुरुनामा देशः, यस्य राजधानी हस्तिनापुरम्, तस्य राजा ६। पञ्चालराजः-पञ्चालो नाम देशः, यस्य राजधानी काम्पिल्यनगरमासीत्, तस्य राजा ७। प्रव्रज्यायां भगवत् आत्मसप्तमत्वं प्रतिबुद्ध्यादिप्रधानपुरुष-

मिथिला नामका जनपद विदेह कहलाता है, यह १९ वें तीर्थंकर रूपसे हुई है, प्रतिबुद्धि ये अयोध्याके अधिपति थे। अङ्ग नामका देश था, इसकी राजधानी चम्पा थी, चन्द्रच्छाय इसी अङ्ग देशके अधिपति थे, कुणाल नामका भी देश था जिसकी राजधानी श्रावस्ती थी, रुक्मी इसी कुणालके अधिपति थे। काशी इस नामका देश था, जिसकी राजधानी वाराणसी थी। शङ्ख इसी काशीके अधिपति थे। कुरु नामका देश था जिसकी राजधानी हस्तिनापुर थी। अदीन शत्रु इसी कुरु देशके राजा थे। पाञ्चाल नामका देश था इसकी राजधानी काम्पिल्यनगर थी, जितशत्रु इसी पांचाल देशके राजा थे, यहां प्रव्रज्यामें जो मल्ली अर्ह-

મલ્લી વિદેહરાજની ઉત્તમ કન્યા હતી મિથિલા નામના જનપદને વિદેહ કહેતા હતા મલ્લીનાથ ૧૯ મા તીર્થંકર થઈ ગયા. તેમણે પ્રતિબુદ્ધિ આદિ ૬ રાજાઓની સાથે પ્રવ્રજ્યા લીધી હતી

પ્રતિબુદ્ધિ અયોધ્યાનો અધિપતિ હતો. ચન્દ્રચ્છાય નામનો રાજા અંગ દેશનો અધિપતિ હતો. અંગદેશની રાજધાની ચમ્પા નગરી હતી.

રુકમી-નામનો રાજા કુણાલ નામના જનપદનો અધિપતિ હતો. તેની રાજધાની શ્રાવસ્તી હતી.

શંખનામનો રાજા કાશી નામના જનપદનો અધિપતિ હતો. તેની રાજધાની વારાણસી હતી.

અદીનશત્રુ-કુરુદેશનો અધિપતિ હતો. તેની રાજધાની હસ્તિનાપુર હતી.

જિતશત્રુ-પાંચાલ દેશનો અધિપતિ હતો. તેની રાજધાની કામ્પિલ્ય નગર હતું.

મલ્લીએ પ્રતિબુદ્ધિ ચન્દ્રચ્છાય રુકમી, શંખ, અદીનશત્રુ અને જિતશત્રુ, આ ૭ રાજાઓ સાથે પ્રવ્રજ્યા ગ્રહણ કરી હતી. અહીં પ્રવ્રજ્યામાં

प्रव्रज्याग्रहणापेक्षया बोध्यम्। अन्यथा तु तदसंभवि, यतस्त्रिभिः पुरुषशतैर्बाह्यपरिषदा त्रिभिश्च स्त्रीशतैरभ्यन्तरपरिषदा स भगवान् प्रव्रजित इति ज्ञातासूत्रे प्रोक्तम्। उक्तं च समवायाङ्गे-" पासो मल्ली तिहिं तिहिं सएहिं " इति। छाया-पार्श्वो मल्ली त्रिभिस्त्रिभिः शतैः-इति। इदं तु पुरुषापेक्षया बोध्यम्' मल्लिचरितं तु ज्ञातासूत्रे विस्तरशः प्रोक्तम्। 'प्रव्रजितः' इति पुंस्त्वेन निर्देशस्तु अर्हच्छब्दापेक्षया बोध्यः ॥ सू० २५ ॥

न्तको आत्मससता प्रकट की गई है, वह प्रतिबुद्ध आदि प्रधान पुरुषोंकी प्रव्रज्या ग्रहण की अपेक्षासे प्रकट की गई है, यदि ऐसी बात न मानी जावे तो-वह बन नहीं सकती है-क्योंकि बाह्य परिषदाके ३ सौ पुरुषोंके साथ एवं आभ्यन्तर परिषदा की ३ सौ पुरुषोंके साथ एवं आभ्यन्तर परिषदा की ३ सौ स्त्रियोंके साथ मल्ली भगवान् प्रव्रजित हुए हैं, ऐसा ज्ञातासूत्रमें कहा गया है। समवायाङ्गमें भी ऐसा ही कहा गया है-" पासो मल्ली तिहिं २ सएहिं " पार्श्वनाथने एवं मल्लीने ३ सौ ३ सौके साथ भागवती दीक्षा धारण कीहै। यह तो पुरुषोंकी अपेक्षा कथनहै, ज्ञाता सूत्रमें मल्लिका चरित्र विस्तारसे कहा गयाहै। "प्रव्रजित" ऐसा जो पुल्लिङ्ग निर्देश है, वह " अर्हत् " शब्दकी अपेक्षासे किया गया है, ऐसा जानना चाहिये ॥ सूत्र २५ ॥

મલ્લિ અર્હંત અને બીજા ૬ રાજાઓ મળીને જે સમક પ્રકટ કરવામા આવ્યું છે, તે પ્રતિબુદ્ધિ આદિ પ્રધાન (ઉત્તમ) પુરુષોની અપેક્ષાએ જ પ્રકટ કરવામાં આવ્યું છે, એમ સમજવું જો એ પ્રમાણે માનવામાં ન આવે તો જ્ઞાતાસૂત્ર અને સમવાયાંગસૂત્રના કથન કરતાં આ કથન વિરુદ્ધ પડે છે. જ્ઞાતાસૂત્રમાં એવું કહ્યું છે કે-" બાહ્ય પરિષદાના ૩૦૦ પુરુષોની સાથે, અભ્યન્તર પરિષદાના ૩૦૦ પુરુષોની સાથે અને આભ્યન્તર પરિષદાની ૩૦૦ સ્ત્રીઓ સાથે મલ્લિ ભગવાને પ્રવ્રજ્યા લીધી હતી "

સમવાયાંગ સૂત્રમાં પણ એવું જ કહ્યું છે કે-" पासो मल्ली तिहिं २ सएहिं " " પાર્શ્વનાથ ભગવાન અને મલ્લિનાથ ભગવાને ૩૦૦-૩૦૦ પુરુષોની સાથે પ્રવ્રજ્યા લીધી હતી " આ કથન તો માત્ર પુરુષોની અપેક્ષાએ જ કરવામાં આવ્યું છે જ્ઞાતા સૂત્રમાં મલ્લિના ચરિત્રનું સવિસ્તર વર્ણન કરવામાં આવ્યું છે " प्रव्रजित " આ પુલ્લિંગ વાચક શબ્દનો જે પ્રયોગ અહીં કરાયો છે, તે અર્હંતની અપેક્ષાએ કરાયો છે, એમ સમજવું. ॥સૂ. ૨૫॥

एते च सम्यग्दर्शने सति प्रव्रजिता इति सामान्यतो दर्शनं निरूपयितुमाह—

मूलम्—सत्तविहे दंसणे पण्णत्ते, तं जहा--सम्मदंसणे १ मिच्छदंसणे २ सम्मामिच्छदंसणे ३ चक्खुदंसणे ४ अचक्खुदंसणे ५ ओहिदंसणे ६ केवलदंसणे ७ ॥ सू० २६ ॥

छाया--सप्तविधं दर्शनं प्रज्ञप्तं, तद्यथा-सम्यग्दर्शनं १ मिथ्यादर्शनं २, सम्यग्मिथ्यादर्शनं ३ चक्षुर्दर्शनम् ४, अचक्षुर्दर्शनम् ५, अवधिदर्शनम् ६ केवलदर्शनम् ७ ॥ सू० २६ ॥

टीका—'सत्तविहे दंसणे' इत्यादि--

दर्शनं-दृश्यन्ते-श्रद्धीयन्ते ज्ञायन्ते वा अर्था अनेन अस्मात् अस्मिन् वेति दर्शनं-तत् सप्तविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा-सम्यग्दर्शनं=सम्यक्त्वम्, मिथ्यादर्शनं=मिथ्यात्वम्, सम्यङ्मिथ्यादर्शनम्=मिश्रम्। एतच्च त्रिविधमपि दर्शनं दर्शनमोह-

---

ये सब जो प्रव्रजित हुए हैं-वे सम्यग्दर्शनके होने पर ही प्रव्रजित हुए हैं-अतः अब सूत्रकार सामान्यरूपसे दर्शनका निरूपण करते हैं-

"सत्तविहे दंसणे पण्णत्ते' इत्यादि ॥ सूत्र २६ ॥

टीकार्थ-दर्शन सात प्रकारका गया है-श्रद्धाके विषय बनाये जाते हैं, या जाने जाते है, पदार्थ जिसके द्वारा या जिससे या जिसके होने पर वह दर्शन है-ऐसा वह दर्शन सात प्रकारका कहा गया है-जैसे-सम्यग्दर्शन १, मिथ्यादर्शन २ सम्यग्मिथ्यादर्शन ३, चक्षुर्दर्शन ४, अचक्षुर्दर्शन ५, अवधिदर्शन ६, और केवलदर्शन ७ इनमें-सम्यग्दर्शन सम्यक्त्व, मिथ्यादर्शन-मिथ्यात्व, और सम्यङ् मिथ्यादर्शन-

---

ઉપરના સૂત્રમાં મલ્લિ આદિ પ્રવ્રજિત થયાની વાત કરી. તેમને સમ્યગ્દર્શન થવાથી જ તેઓ પ્રવ્રજિત થયા હતા. પૂર્વસૂત્ર સાથે આ પ્રકારના સંબંધને લીધે હવે સૂત્રકાર દર્શનનું નિરૂપણ કરે છે--

"सत्तविहे दंसणे पण्णत्त" ઇત્યાદિ--(સૂ ૨૬)

ટીકાર્થ-દર્શનના સાત પ્રકાર કહ્યા છે જેના દ્વારા અથવા જેના સદ્ભાવમાં પદાર્થને શ્રદ્ધાનો વિષય બનાવી શકાય છે, અથવા જાણી શકાય છે, તેનું નામ દર્શન છે તે દર્શનના નીચે પ્રમાણે ૭ પ્રકાર કહ્યા છે--

(૧) સમ્યગ્દર્શન, (૨) મિથ્યાદર્શન, (૩) સમ્યગ્ મિથ્યાદર્શન, (૪) ચક્ષુર્દર્શન, (૫) અચક્ષુર્દર્શન, (૬) અવધિદર્શન અને (૭) કેવલદર્શન.

સમ્યગ્દર્શન (સમ્યક્ત્વ), મિથ્યાદર્શન (મિથ્યાત્વ), અને સમ્યગ્-મિથ્યાદર્શન (મિશ્રદર્શન), આ ત્રણે દર્શન દર્શન મોહનીય કર્મના ભેદોના

नीयभेदानां क्षयक्षयोपशमोदयेभ्यः समुत्पद्यन्ते तथाविधरुचिस्वभावंचेति । चक्षुर्दर्शनादिचतुष्टयं तु दर्शनावरणीयभेदचतुष्टयस्य क्षयोपशमक्षयाभ्यां समुत्पद्यन्ते सामान्यग्रहणस्वभावं चेति । अत्र श्रद्धानसामान्यग्रहणयोर्दर्शनशब्दप्रतिपाद्यत्वाद् दर्शनं सप्तविधमुक्तमिति बोध्यम् ॥ सू० २६ ॥

अनन्तरं केवलदर्शनमुक्तं, तच्च छद्मस्थावस्थायां अनन्तरं भवतीति छद्मस्थप्रतिबद्धं सूत्रमाह—

मूलम्- छउमत्थवीयरागे णं मोहणिज्जवज्जाओ सत्त कम्मपयडीओ वेएइ, तं जहा--णाणावरणिज्जं १ दंसणावरणिज्जं २, वेयणियं ३ आउयं ४, नामं ५ गोयं ६ अंतराइयं ७ ॥सू०२७॥

छाया—छद्मस्थवीतरागः खलु मोहनीयवर्जाः सप्त कर्मप्रकृतीर्वेदयति, तद्यथा-ज्ञानावरणीयं १, दर्शनावरणीयं २, वेदनीयम् ३, आयुः ४ नाम ५, गोत्रम् ६ अन्तरायिकम् ७ ॥ सू० २७ ॥

मिश्र ये तीनों भी दर्शन दर्शनमोहनीय कर्मके भेदोंके क्षयसे क्षयोपशमसे और उदयसे उत्पन्न होते हैं । क्योंकि इनका स्वभाव तथाविध रुचि रूप होता है । तथा-चक्षुदर्शनादि चतुष्टय तो दर्शनावरणीय कर्मके जो चार भेद हैं, उनके क्षय और उपशमसे उत्पन्न होते हैं, इनका स्वभाव सामान्य रूपसे पदार्थों को ग्रहण करनेका होता है । यहांपर श्रद्धान एवं सामान्य ग्रहण ये दोनों दर्शन शब्दके द्वारा कहेजातेहैं इसलिये दर्शन सात प्रकारका कहा गया है ऐसा जानना चाहिये ॥सू०२७॥

ऊपरके सूत्रमें अन्तमें केवल दर्शन कहा गया है-सो वह छद्मस्थावस्थाके जानेके बाद यहां होताहै, इसलिये सूत्रकार अब छद्मस्थावस्थासे

ક્ષયથી, ક્ષયોપશમથી અને ઉદયથી ઉત્પન્ન થાય છે, કારણ કે તેમનો સ્વભાવ તથાવિધ (તે પ્રકારની) રુચિ રૂપ હોય છે. તથા ચક્ષુદર્શનાદિ બાકીના ચાર દર્શન તો દર્શનાવરણીય કર્મના જે ચાર ભેદ છે તેમના ક્ષય અને ઉપશમથી ઉત્પન્ન થાય છે તેમનો સ્વભાવ સામાન્ય રૂપે પદાર્થોને ગ્રહણ કરવાનો હોય છે અહીં 'દર્શન' પદ શ્રદ્ધા અને સામાન્ય ગ્રહણનું વાચક છે, તેથી દર્શન સાત પ્રકારનું કહેવામાં આવ્યું છે, એમ સમજવું. ॥ સૂ ૨૭॥

આગલા સૂત્રના અન્ત ભાગમાં કેવલદર્શનનો ઉલ્લેખ થયો છે. છદ્મસ્થાવસ્થા દૂર થયા બાદ જ કેવલદર્શનની પ્રાપ્તિ થાય છે. તેથી હવે સૂત્રકાર છદ્મસ્થાવસ્થા સાથે સંબંધ ધરાવતા સૂત્રનું કથન કરે છે—

टीका—' छउमत्थवीयरागे ' इत्यादि—

छद्मस्थवीतरागः–छद्मानि=ज्ञानावरणदर्शनावरणरूपे आवरणद्वये, अन्तराये च कर्मणि तिष्ठतीति छद्मस्थः=अनुत्पन्नकेवलज्ञानदर्शनः, वीतरागः=वितरागोदयः–उपशान्तमोहत्वात् क्षीणमोहत्वाद् वा, स खलु मोहनीयवर्जाः–मोहस्य क्षयादुपशमाद् वा मोहनीयकर्मप्रकृतिरहिताः सप्त कर्मप्रकृतीर्वेदयति=अनुभवति, तद्यथा–ज्ञानावरणीयमित्यादि ॥ सू० २७ ॥

सम्प्रति छद्मस्थकेवलिवक्तव्यता प्रतिबद्धमेकं सूत्रमाह—

मूलम्—सत्त ठाणाइं छउमत्थे सव्वभावेणं न पासइ, तं जहा--धम्मत्थिकायं १ अधम्मत्थिकायं २ आगासत्थिकायं ३,

---

प्रतिबद्ध सूत्रका कथन करते हैं—

" छउमत्थ वीयरागेणं " इत्यादि ॥ सूत्र २७ ॥

टीकार्थ–ज्ञानावरण, दर्शनावरण रूप आवरण द्वयमें और अन्तराय कर्ममें जो रहता है, वह छद्मस्थ है, ऐसा छद्मस्थ अनुत्पन्न केवलज्ञान दर्शनवाला होताहै, छद्मस्थको जो वीतराग कहा गयाहै–वह वितरागोदयवाला होनेसे कहा गया है–ऐसा यह छद्मस्थ वीतराग उपशान्त मोह होनेसे अथवा–क्षीण मोह होनेसे होताहै, यह छद्मस्थ वीतराग मोहनीय कर्मकी प्रकृतियोंके क्षय हो जानेके अथवा उपशम हो जानेके कारण मोहनीय कर्मकी प्रकृतियोंको छोड़कर सात कर्मोंकी प्रकृतियोंका वेदन करता है, वे सात कर्म प्रकृतियां ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, आयु, नाम गोत्र और अन्तराय हैं ॥ सू० २७ ॥

" छउमत्थ वीयरागेणं " ઇત્યાદિ--(સૂ. ૨૭)

ટીકાર્થ–જ્ઞાનાવરણ, અને દર્શનાવરણ રૂપ બે આવરણો જેની પર વ્યાપેલાં છે અને જેના અન્તરાય કર્મનો ઉદય છે, એવા જીવને છદ્મસ્થ કહે છે. એવો છદ્મસ્થ મનુષ્ય અનુત્પન્ન કેવળજ્ઞાન અને અનુત્પન્ન કેવળદર્શનવાળો હોય છે. અહીં છદ્મસ્થને જે વીતરાગ કહ્યો છે, તે વીતરાગોદયવાળો હોવાથી કહ્યો છે. ઉપશાન્ત મોહ અને ક્ષીણમોહની અવસ્થાના સદ્ભાવમાં જીવ છદ્મસ્થ–વીતરાગ બને છે. મોહનીયકર્મની પ્રકૃતિઓનો ક્ષય અથવા ઉપશમ થઈ જવાને કારણે તે છદ્મસ્થ વીતરાગ મોહનીય કર્મની પ્રકૃતિઓને છોડીને સાત કર્મોની પ્રકૃતિઓનું વેદન કરે છે. તે સાત કર્મપ્રકૃતિઓ નીચે પ્રમાણે સમજવી--

(૧) જ્ઞાનાવરણીય, (૨) દર્શનાવરણીય, (૩) વેદનીય, (૪) આયુ, (૫) નામ, (૬) ગોત્ર અને (૭) અન્તરાય. ॥ સૂ. ૨૭ ॥

जीवं असरीरपडिबद्धं ४ परमाणुपोग्गलं ५, सद्दं ६ गंधं ८ एयाणि चेव उप्पन्नवरनाणदंसणधरे जाव जाणइ पासइ, तं जहा--धम्मत्थिकायं १ जाव गंधं ८ ॥ सू० २८ ॥

छाया-सप्त स्थानानि छद्मस्थः सर्वभावेन न जानाति न पश्यति, तद्यथा—धर्मास्तिकायम् १ अधर्मास्तिकायम् २ आकाशास्तिकायं ३ जीवमशरीरप्रतिबद्धम् ४ परमाणुपुद्गलम् ५ शब्दं ६ गन्धम् ७। एतान्येव उत्पन्नवरज्ञानदर्शनधरः यावत् जानाति पश्यति, तद्यथा—धर्मास्तिकायं यावद् गन्धम् ॥ सू० २८ ॥

टीका—'सत्त ठाणाइं' इत्यादि—

अस्य व्याख्या पञ्चमस्थानकस्य तृतीयोद्देशे दशमसूत्रे द्रष्टव्या ॥ सू० २८ ॥

धर्मास्तिकायादीनि सप्तस्थानानि उत्पन्नवरज्ञानदर्शनधरो जिनो जानाति, स च वर्तमाने तीर्थे भगवान् महावीरस्वामीति तत्स्वरूपं प्रदर्शयति—

मूलम्—समणे भगवं महावीरे वयरोसभनारायसंघयणे समचउरंससंठाणसंठिए सत्त रयणीओ उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था ॥ सू० २९ ॥

अब सूत्रकार छद्मस्थ और केवलिकी वक्तव्यतासे प्रतिबद्ध एक सूत्रका कथन करते हैं-

"सत्त ठाणाइं छउमत्थे सव्वभावेणं न जाणइ" इत्यादि ॥ सू० २८ ॥

टीकार्थ—छद्मस्थ सात स्थानोंको सर्व भावसे न जानता है, और न देखता है, वे सात स्थान ये हैं, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, अशरीर प्रतिबद्ध जीव, परमाणु पुद्गल शब्द और गन्ध इन सात स्थानोंसे उत्पन्न होनेवालेको श्रेष्ठ ज्ञानवाले और श्रेष्ठ दर्शनवाले केवली भगवान् जानते हैं, और देखते हैं। इसकी व्याख्या पञ्चम स्थानकके तृतीय उद्देशेमें दशवें सूत्रमें देख लेना चाहिये ॥ सूत्र२८ ॥

હવે સૂત્રકાર છદ્મસ્થ અને કેવલીની વક્તવ્યતા વાળા એક સૂત્રનું કથન કરે છે-"सत्त ठाणाइं छउमत्थे सव्व भावेणं न जाणइ" ઇત્યાદિ (સૂ ૨૯)

ટીકાર્થ—છદ્મસ્થ નીચેના સાત સ્થાનોને સર્વ ભાવે (પ્રત્યક્ષ રૂપે) જાણતો નથી અને દેખતો પણ નથી-(૧) ધર્માસ્તિકાય, (૨) અધર્માસ્તિકાય, (૩) આકાશાસ્તિકાય, (૪) અશરીર પ્રતિબદ્ધ જીવ, (૫) પરમાણુ પુદ્ગલ, (૬) શબ્દ અને (૭) ગન્ધ. પરન્તુ ઉત્પન્ન શ્રેષ્ઠ કેવળજ્ઞાન અને શ્રેષ્ઠ કેવળદર્શનવાળા કેવલી ભગવાન એ સાત સ્થાનોને પ્રત્યક્ષ રૂપે જાણી શકે છે અને દેખી શકે છે. પાંચમા સ્થાનકના ત્રીજા ઉદ્દેશાના દસમા સૂત્રમાં આ બધા પદોની વ્યાખ્યા આપવામાં આવી છે, તો તે વ્યાખ્યા ત્યાંથી વાંચી લેવી. ।।સૂ. ૨૮।।

छाया—श्रमणो भगवान् महावीरो वज्रऋषभनाराचसंहननः समचतुरस्र-संस्थानसंस्थितः सप्त रत्नीरूर्ध्वमुच्चत्वेन अभवत् ॥ सू० ३० ॥

टीका—'समणे भगवं' इत्यादि—

व्याख्या स्पष्टा ॥ सू० २९ ॥

अथ भगवत्प्ररूपिताः सप्त विकथाः प्ररूपयति—

मूलम्—सत्त विकहाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—इत्थीकहा १, भत्तकहा २, देसकहा ३, रायकहा ४, मिउकालुणिया ५, दंसणभेयणी ६, चरित्तभेयणी ७ ॥ सू० ३० ॥

छाया—सप्त विकथाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा स्त्रीकथा १, भक्तकथा २, देशकथा ३, राजकथा ४, मृदुकारुणिकी ५, दर्शनभेदिनी ६, चारित्रभेदिनी ७॥ ॥ सू० ३० ॥

धर्मास्तिकायादिक सात स्थानोंसे उत्पन्न श्रेष्ठ ज्ञान दर्शनधारी जिन जानते हैं, ऐसे वे जिन वर्तमान तीर्थमें भगवान् महावीर स्वामी है, इसलिये अब सूत्रकार भगवान् महावीर स्वामीके स्वरूपको दिखलाते हैं।

"समणे भगवं महावीरे" इत्यादि ॥ सूत्र २९ ॥

टीकार्थ—श्रमण भगवान् महावीर वज्रऋषभनाराच संहननवाले और समचतुरस्र-संस्थानवाले थे इनके शरीरकी ऊँचाई सात हाथ थी सू० २९

भगवानके द्वारा प्ररूपित सात विकथाओंका कथन अब सूत्रकार करते हैं—"सत्त विकहाओ पणत्ताओ" इत्यादि ॥ सू० ३० ॥

ધર્માસ્તિકાય આદિ સાત સ્થાનોને, ઉત્પન્ન શ્રેષ્ઠ જ્ઞાન દર્શનધારી જિનેશ્વર ભગવાન જાણી-દેખી શકે છે. એવા જિનેશ્વર વર્તમાન તીર્થમાં મહાવીર પ્રભુ થઇ ગયા છે, તેથી હવે સૂત્રકાર મહાવીર સ્વામીના સ્વરૂપનું વર્ણન નીચેના સૂત્રમાં કરે છે

"समणे भगवं महावीरे" ઈત્યાદિ—(સૂ. ૨૯)

ટીકાર્થ—શ્રમણ ભગવાન મહાવીર વજ્રઋષભનારાચ સંહનનવાળા અને સમચતુરસ્ર સંસ્થાનવાળા હતા તેમના શરીરની ઊંચાઈ સાત હાથ પ્રમાણ હતી ॥ સૂ ૨૦ ॥

હવે સૂત્રકાર ભગવાન દ્વારા પ્રરૂપિત સાત વિકથાઓનું કથન કરે છે,

"सत्त विकहाओ पण्णत्ताओ" ઈત્યાદિ—(સૂ. ૩૦)

टीका—' सत्त विकहाओ ' इत्यादि—

विकथा-विरुद्धा संयमबाधकत्वेन कथाः-वचनपद्धतयो विकथाः, ताः सप्त प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—स्त्रीकथा—इत्यादि । तत्राद्याश्चतस्रश्चतुर्थस्थानके व्याख्याताः, अपरास्त्वत्र व्याख्यायन्ते, तथाहि-मृदुकारुणिकी-मृद्वी श्रोतृहृदये मृदुभावजननात् सा चासौ कारुणिकी=करुणरसवती चेति, पुत्रादिमरणजनितदुःखार्त्तजनन्यादीनां करुणरससंवलितप्रलापप्रधानेत्यर्थः,

यथा—" हा पुत्त पुत्त ! हा वच्छ वच्छ ! मुक्काऽम्हि कहमणाहाऽहं ।

एवं कलुणविलावा, जलंत जलणेऽज्ज सा पडिया ॥ १ ॥ "

छाया—हा पुत्र पुत्र ! हा वत्स वत्स ! मुक्तास्मि कथमनाथाऽहम् ।

एवं करुणविलापा, ज्वलज्ज्वलनेऽद्य सा पतिता ॥ १ ॥ इति ।

टीकार्थ—सात विकथाएँ कही गई हैं—जैसे—स्त्री कथा १, भक्त कथा २, देश कथा ३, राज कथा ४, मृदुकारुणिकी ५, दर्शन भेदनी ६, और चारित्र भेदनी ७ ।

संयमकी बाधक होनेके कारण विरुद्ध जो कथाएँ हैं—बोलनेकी पद्धति हैं—वे विकथा हैं, ये विकथाएँ सात कही गई हैं—जैसे स्त्री कथा आदि—इनमें आदिकी जो चार हैं—वे चतुर्थ स्थानकमें व्याख्यात हो चुकी हैं। बाकीके विषयका व्याख्यान इस प्रकारसे हैं—जो कथा-श्रोताके हृदयमें मृदु भावको उत्पन्न कर देती है, और करुण रसवाली होती है, ऐसी वह कथा—विकथा है, ऐसी वह कथा पुत्रादिके मरणसे जनित दुःखसे पीडित हुए मातापिता आदि जनके करुण रससे मिली हुई प्रलापकी प्रधानतावाली होती है यथा—

ટીકાર્થ—વિકથાઓ સાત કહી છે. તે સાત પ્રકારો નીચે પ્રમાણે છે-(૧) સ્રીકથા (૨) ભક્તકથા, (૩) દેશકથા, (૪) રાજકથા, (૫) મૃદુકારુણિકી કથા, (૬) દર્શન ભેદની કથા અને (૭) ચારિત્ર ભેદની કથા

સંયમની બાધક હોવાને કારણે વિરુદ્ધ જે કથાઓ છે—બોલવાની પદ્ધતિ છે, તેમને વિકથા કહે છે એવી વિકથા સાત કહી છે. પહેલી ચાર વિકથાનું ચોથા સ્થાનકમાં વિવેચન કરવામાં આવ્યું છે, હવે બાકીની ત્રણ વિકથાઓનું સ્વરૂપ બતાવવામાં આવે છે-જે કથા શ્રોતાના હૃદયમા મૃદુભાવ ઉત્પન્ન કરી નાખે છે અને કરુણ રસવાળી હોય છે તેને મૃદુકારુણિકી વિકથા કહે છે પુત્રાદિકના મરણને કારણે જનિત દુઃખથી પીડાતા માતાપિતા આદિ દ્વારા કરાતા કરુણ પ્રલાપથી પ્રધાનતાવાળી આ વિકથા હોય છે. જેમ કે—

तथा—दर्शनभेदिनी-दर्शनं=श्रद्धानं तद् भेत्तुं शीलं यस्याः सा,-कुतीर्थिकानां ज्ञानाद्यतिशयप्रशंसनपरा कथा।

यथा—"सूक्ष्मयुक्ति शतोपेतं, सूक्ष्मबुद्धिकरं परम्।

सूक्ष्मार्थदर्शिभिर्दृष्टं, श्रोतव्यं बौद्धशासनम् ॥ १ ॥ इति।

एवंविधकथया श्रोतॄणां बुद्धेऽनुरागः स्यात्ततश्च दर्शनभेदः स्यादिति। तथा-

"हा पुत्त! पुत्त! हा वच्छ! वच्छ!' इत्यादि।

"हे पुत्र! हे वत्स! तुम मुझको छोड़कर चले गये हो अब मैं किसके सहारे रहूंगी जीऊंगी"-इस प्रकारकी यह मृत पुत्रवाली किसी अनाथिनी स्त्रीकी प्रलाप प्रधानतावाली एवं सुननेवालोंके हृदयमें करुण रसको उत्पन्न करनेवाली रोदन क्रिया रूप उक्ति है, कुतीर्थिक जनोंके ज्ञानादिके अतिशयकी प्रशंसा करनेवाली जो कथा है, वह दर्शन भेदिनी विकथा है। यथा-"सूक्ष्म युक्तिशतोपेतं", इत्यादि।

"बौद्धशासन-बुद्धसिद्धान्त-सैकड़ों सूक्ष्म युक्तियोंसे युक्त है, इसके अध्ययनसे बुद्धिमें अद्भुत प्रखरता आ जाती है, जिनकी बुद्धि सूक्ष्म तत्त्वोंको अवगाहन करनेवाली है, उन्होंनेही इस सिद्धान्तको देखा है-रचा है-अतः ऐसे बुद्ध सिद्धान्तका श्रवण मनन अवश्य करना

"हा पुत्त! पुत्त! हा वच्छ! वच्छ!" ઈત્યાદિ—

"હે પુત્ર! હે વત્સ! તુ મને છોડીને ચાલ્યો ગયો! હવે હું કોને આધારે રહીશ! હવે હું કેવી રીતે જીવી શકીશ!"

આ પ્રકારના વિલાપની પ્રધાનતા વાળી અને સાંભળનારના હૃદયમાં પણ કરુણાભાવ ઉત્પન્ન કરનારી કરુણ રુદન સહિતની ઉક્તિને મૃદુકારુણિકી વિકથા કહે છે. જેનો પુત્ર મરણ પામ્યો છે એવી માતાની "હે પુત્ર" ઈત્યાદિ રૂપ જે દુઃખ જે દુઃખપૂર્ણ અને કરુણાભાવજનક વાણી હોય છે તેને મૃદુકારુણિકી વિકથા કહે છે.

કુતીર્થિકોના જ્ઞાનાદિના અતિશયની પ્રશંસા કરનારી જે કથા છે તેને દર્શન ભેદિની કથા કહે છે. જેમ કે—

"सूक्ष्मयुक्तिशतोपेतं" ઈત્યાદિ—

"બૌદ્ધશાસન (બુદ્ધસિદ્ધાન્ત) સેંકડો સૂક્ષ્મ યુક્તિઓથી યુક્ત છે. તેનો અભ્યાસ કરવાથી બુદ્ધિમાં અદ્ભુત પ્રખરતા આવી જાય છે. જેમની બુદ્ધિ તત્ત્વોનું અવગાહન કરનારી છે તેમણે જ આ સિદ્ધાન્તની રચના કરી છે તેથી એવા બૌદ્ધ સિદ્ધાન્તનું શ્રવણ અને મનન અવશ્ય કરવું જોઈએ" આ પ્રકારની

चारित्रभेदिनी—चारित्रं=क्रिया, तद् भेत्तुं शीला। यथा—अस्मिन् काले महाव्रतानि न संभवन्ति, यतः साधवः प्रमादिनोऽतीचारप्रचुराश्च जाताः. न चोपलभ्यन्तेऽतिचारशोधकाः आचार्याः, तेषामभावेऽतीचारकर्त्तृसाधूनां शुद्धेः का कथा? अतोऽधुना ज्ञानदर्शनाभ्यामेव तीर्थं प्रवर्त्तते इति ज्ञानदर्शनकर्त्तव्येष्वेव यत्नो विधेय इति। उक्तं च—

" सोही य नत्थि नवि दिंत करेंता नवि य केइ दीसंति।
तित्थं च नाणदंसण निज्जवगा चेव वोच्छिन्ना॥ १ ॥"

छाया—शोधिश्च नास्ति नापि दातारः कर्त्तारो नापि च केचिद् दृश्यन्ते।
तीर्थं च ज्ञानदर्शनाभ्यां निर्यापका (नियामका) श्चव व्युच्छिन्नाः॥१॥इति।

चाहिये " इस प्रकारकी कथासे श्रोताओंका अनुराग बुद्धमें हो सकता है, इससे दर्शनमें भेद शिथिलता—आ जाती है, चरित्र नाम क्रियाका है, इस क्रिया रूप चारित्रको भेदन करनेके स्वभाववाली जो कथा है, वह चारित्र भेदिनी कथा है, जैसे—इस कालमें महाव्रत नहीं हो सकते हैं—क्योंकि साधुजन प्रमादशील होते हैं, और अतिचार प्रचुर होते हैं. अतिचारोंकी शुद्धि करनेवाले आचार्यजन मिलते नहीं हैं, अतः इनके अभावमें अतिचार करनेवाले साधुजनोंकी शुद्धि कैसे हो सकती है? नहीं हो सकती है, इसलिये इस कालमें केवलज्ञान एवं दर्शन इन—दोनोंसेही तीर्थ चलता है, अतः ज्ञानदर्शन रूप कर्तव्योंमेंही प्रयत्न विधेय है, चारित्रमें नहीं उक्तं च—

" सोही य नत्थि नविदिंत " इत्यादि।

કથાથી શ્રોતાઓમાં બુદ્ધ પ્રત્યે અનુરાગ ઉત્પન્ન થઇ શકે છે. તે કારણે દર્શનમાં ભેદ-શિથિલતા આવી જાય છે તેથી આ પ્રકારની કથાને દર્શન ભેદની વિકથા કહે છે.

ચારિત્ર ભેદિની વિકથા—ક્રિયાને ચારિત્ર કહે છે આ ક્રિયા રૂપ ચારિત્રનું ભેદન કરવાના સ્વભાવવાળી જે કથા છે તેને ચારિત્ર ભેદિની વિકથા કહે છે. જેમ કે—" આ જમાનામાં મહાવ્રતોની આરાધના તો થઇ શકતી જ નથી, કારણ કે સાધુઓ પ્રમાદી હોય છે, અને તેમના અતિચારોની પણ પ્રચુરતા હોય છે. તે અતિચારોની શુદ્ધિ કરાવનારા આચાર્યો પણ મળતા નથી એવા આચાર્યોને અભાવે અતિચારોનું સેવન કરનાર સાધુઓની શુદ્ધિ પણ કેવી રીતે થઈ શકે? એટલે કે તેમના અતિચારોની શુદ્ધિ જ થઇ શકતી નથી તે કારણે આ જમાનામાં તો કેવળજ્ઞાન અને દર્શનવડે જ તીર્થ ચાલે છે તેથી જ્ઞાનદર્શન રૂપ કર્તવ્યોમાં જ પ્રયત્ન કરવા યોગ્ય છે—ચારિત્રમાં નહીં" કહ્યું પણ છે કે—

" सोही य नत्थि नविदिंत " ઇત્યાદિ—

एवंविधकथया गृहीतचारित्रा अपि चारित्राद् वैमुख्यमाभजन्ते, का कथा तर्हि चारित्रग्रहणोत्सुकानाम्, ते तु सुतरामेव वैमुख्यमापद्यन्ते। अत एवंविधा कथा चारित्रभेदिनीत्युच्यत इति ॥ सू० ३० ॥

विकथासु च वर्तमानान् साधून् आचार्या वारयन्ति, आचार्याश्च सातिशया भवन्तीति तेषामतिशयानाह—

मूलम्—आयरियउवज्झायस्स णं गणंसि सत्त अइसेसा पण्णत्ता, तं जहा—आयरियउवज्झाए अंतो उवस्सयस्स पाए गिगिज्झिय णिगिज्झिय पप्फोडेमाणे वा पमज्जमाणे वा णाइक्कमइ १, एवं जहा--पंचमट्ठाणे जाव बाहिं उवस्सयस्स एगरायं वा दुरायं वा वसमाणे वा नाइक्कमइ ५, उवकरणाइसेसे ६ भत्तपाणाइसेसे ८ ॥ सू० ३१ ॥

छाया—आचार्योपाध्यायस्य खलु गणे सप्त अतिशेषाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा— आचार्योपाध्यायः अन्तरुपाश्रयस्य पादौ निगृह्य निगृह्य प्रस्फोटयन् वा प्रमार्जयन् वा नातिक्रामति १, एवं यथा पञ्चमस्थाने यावत् बहिरुपाश्रयात् एकरात्रं वा द्विरात्रं वा वसन् नातिक्रामति ५, उपकरणातिशेषः ६, भक्तपानातिशेषः ७ ॥ सू० ३१ ॥

"चारित्रकी शुद्धि करनेवाले और चारित्रकी शुद्धि करानेवाले ऐसे हमें कोई भी जन दिखते नहीं हैं अतः तीर्थ ज्ञान दर्शनसेही चल सकता है।"

इस प्रकारकी कथासे गृहीत चारित्रवाले भी जन चारित्रसे विमुख हो जाते हैं-तो फिर जो चारित्रको ग्रहण करनेके प्रति उत्कण्ठित हैं, उनकी बातही क्या कहनी वे तो अपने आपही विमुख हो जाते हैं। इसलिये इस प्रकारकी जो कथा है, वह चारित्रको भेद करनेवाली है। सू० ३०।

"ચારિત્રની શુદ્ધિ કરનારી અને ચારિત્રની શુદ્ધિ કરાવનારી કોઇ પણ વ્યક્તિ અમને દેખાતી જ નથી, તેથી તીર્થ જ્ઞાનદર્શન વડે જ ચાલે છે" આ પ્રકારની વાત સાંભળીને ગૃહીત ચારિત્રવાળા માણસ પણ ચારિત્રથી વિમુખ થઇ જાય છે, તો ચારિત્રગ્રહણ કરવાની (પ્રવ્રજ્યા અંગીકાર કરવાની) ઉત્કંઠાવાળા માણસની તો વાત જ શી કરવી! તેઓ ચારિત્રગ્રહણ કરવાનો વિચાર જ માંડી વાળે, તેમાં કશું નવાઇ પામવા જેવું નથી. તે કારણે આ પ્રકારની કથાને ચારિત્રને ભેદનારી વિકથા કહી છે. ॥ સૂ. ૩૦ ॥

टीका--' आयरिय उवज्झायस्स ' इत्यादि—

आचार्योपाध्यायस्य-आचार्यः-केषांचिदर्थप्रदातृत्वात्, स एव उपाध्यायः केषांचित् सूत्रप्रदातृत्वात्, आचार्यश्चासौ उपाध्यायश्चेति आचार्योपाध्यायः, यद्वा-आचार्योऽन्यः, उपाध्यायश्चान्यः, उभयोः समाहारे आचार्योपाध्यायं, तस्य खलु गणे सप्त अतिशेषा =अतिशेषाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-आचार्योपाध्यायः उपाश्रयस्य=वसतेः अन्तः=मध्ये निगृह्य निगृह्य=प्रस्फोटनेन उड्डीयमानैश्चरणरजोभिरन्ये मा भ्रियेरन्निति हेतोर्वचनेन शिष्यं भूयो भूयो निवार्य पादौ प्रस्फोटयन्=आभिग्रहिकेन (अभिग्रहधारिणा) अन्येन वा साधुना-स्वकीयरजोहरणादिना चरणयोः प्रस्फोटनं कारयन् वा, प्रमार्जयन्=यतनया शनैः शनैः शोधयन् वा नातिक्रामति जिनाज्ञामिति प्रथमम् १। तथा-आचार्योपाध्यायः अन्तरुपाश्रयस्य

इन विकथाओंमें निरत साधुजनोंको आचार्य रोकते हैं, क्योंकि वे आचार्य सातिशय होते हैं, अतः अब सूत्रकार उनके अतिशयोंका कथन करते हैं-" आयरियउवज्झायस्स णं गणंसि " इत्यादि ॥सूत्र३२॥

टीकार्थ—किन्हीं २ साधुजनोंको अर्थ प्रदाता होनेसे आचार्यरूप उपाध्यायके-गणमें-अथवा आचार्य एवं उपाध्यायके गणमें सात अतिशेष कहे गये हैं-जैसे-आचार्योपाध्याय " उपाश्रयके मध्यमें पैरोंके झटकारनेसे उड़ी हुई चरण रज दूसरेके ऊपर नहीं पडे इस प्रकारसे शिष्यको बार २ मना करके स्वयं पैरोंको अभिग्रहिक-अभिग्रहधारीसे या अन्य साधुजनसे अपने रजोहरण द्वारा यतनापूर्वक प्रमार्जन करता

આગલા સૂત્રમાં વિકથાઓનું વર્ણન કર્યું. આ વિકથાઓમા નિરત સાધુએને આચાર્ય રોકે છે, કારણ કે આચાર્ય સાતિશય હોય છે. તેથી હવે સૂત્ર કાર આચાર્યોના અતિશયોનું કથન કરે છે.-

" आयरियउवज्झायस्स णं गणंसि " ઇત્યાદિ—(સૂ ૩૨)

ટીકાર્થ-કેટલાક સાધુઓના અર્થપ્રદાતા હોવાને કારણે આચાર્ય રૂપ ઉપાધ્યાયના ગણમાં અથવા આચાર્ય અને ઉપાધ્યાયના ગણના નીચે પ્રમાણે સાત અતિશેષો અતિશયો કહ્યા છે-

" ઉપાશ્રયની અંદર પગને ઝટકારવાથી (ઝાપટવાથી) ચરણરજ ઉપાશ્રયમાં બેઠેલા માણસો પર પડવાનો સંભવ રહે છે," તે કારણે આચાર્ય શિષ્યોને એવી રીતે પગને ઝટકારવાની વારંવાર મના કરે છે પરન્તુ આચાર્ય પોતે જ જો અભિગ્રહિક-અભિગ્રહધારી પાસે અથવા અન્ય સાધુ પાસે પોતાના રજોહરણ વડે યતનાપૂર્વક પોતાના પગની પ્રમાર્જન કરાવે, તો તેઓ જિનાજ્ઞાના વિરાધક ગણાતા નથી.

उच्चारप्रस्रवणं विवेचयन् वा विशोधयन् नातिक्रामतीति द्वितीयः २। आचार्योपाध्यायः प्रभुः-समर्थः स्वेच्छावान् भवति, अत इच्छा वैयावृत्त्य कुर्यात् इच्छा न कुर्यादिति तृतीय ३। आचार्योपाध्यायः अन्तरुपाश्रयस्य एकरात्रं वा द्विरात्रं वा एकाकी वसन नातिक्रामतीति चतुर्थः ४। आचार्योपाध्यायो बहिरुपाश्रयादेकरात्रं वा द्विरात्र वा वसन्नातिक्रामतीति पञ्चमः ५। एतेषां पञ्चानामपि व्याख्या पञ्चमे स्थाने द्वितीयोद्देशेऽष्टाविंशतितमे सूत्रे कृता तत एव गम्या। अत एवाह मूलकारः-'एवं जहा पंचमट्ठाणे जाव बाहिं' इत्यादि। तथा-उपकरणातिशेषः= शेषसाध्वपेक्षया प्रधानोऽज्ज्वलवस्त्राद्युपकरणवत्ता, उक्तं च—

हुआ जिनाज्ञाका विराधक नहीं होता है १ तथा आचार्योपाध्याय उपाश्रयके भीतर उच्चारप्रस्रवण करता हुआ जिनाज्ञाका विराधक नहीं होता है २, आचार्योपाध्याय समर्थ होता है, अतः उसकी इच्छा होती है, तो वह अन्य साधुजनोंकी वैयावृत्ति करता है-और यदि इच्छा नहीं होती है तो नहीं करता है, इस तरहकी प्रवृत्तिसे वह जिनाज्ञाका विराधक नहीं होता है ३, आचार्योपाध्याय उपाश्रयके भीतर एक रात या दो रात अकेला यदि रहते हैं, तो वह जिनाज्ञाका विराधक नहीं होते हैं ४। आचार्योपाध्याय यदि उपाश्रयके बाहर एक रात तक या दो रात तक रहता है-तो वह जिनाज्ञाका विराधक नहीं होता है ५। इन पांचों स्थानोंकी व्याख्या पांचवे स्थानमें द्वितीय उद्देशक में २८ वें सूत्रमें की जा चुकी है, अतः वहींसे देख लेना चाहिये इसलिये सूत्रकारने ऐसा कहा है-"एवं जहा पंचमट्ठाणे जाव बाहिं"

(२) આચાર્યોપાધ્યાય ઉપાશ્રયમા જ ઉચ્ચાર પ્રસ્રવણુ (મળમૂત્રનો નિકાલ) કરે તો તેમના દ્વારા જિનાજ્ઞાનું ઉલ્લંઘન થયું ગણાતું નથી. (૩) આચાર્યોપાધ્યાય સમર્થ હોય છે જો તેમની ઇચ્છા થાય તો તેઓ અન્ય સાધુઓનું વૈયાવૃત્ય કરે છે, અને જો ઇચ્છા ન થાય તો વૈયાવૃત્ય કરતા નથી. આ પ્રકારે વૈયાવૃત્ય કરવાથી કે ન કરવાથી તેઓ જિનાજ્ઞાના વિરાધક ગણાતા નથી. (૪) આચાર્યોપાધ્યાય જો એક બે રાત એકલા રહે, તો તેઓ જિનાજ્ઞાના વિરાધક ગણાતા નથી. (૫) કોઈ આચાર્યોપાધ્યાય એક બે રાત્રિ પર્યન્ત ઉપાશ્રયની બહાર રહે, તો તેઓ જિનાજ્ઞાના વિરાધક ગણાતા નથી. આ પાંચે સ્થાનોની વિસ્તૃત વ્યાખ્યા પાંચમાં સ્થાનકના બીજા ઉદ્દેશાના ૨૮ મા સૂત્રમાં આપવામાં આવી છે, ત્યાંથી વાંચી લેવી. તેથી જ સૂત્રકારે અહીં આ પ્રમાણે કહ્યુ છે-"एवं जहा पंचमट्ठाणे जाव बाहिं"

" आयरिय गिलाणाणं, मइला मइला पुणो य धोवंति ।
माहु गुरूण अवण्णो नावि गिलाणीय इयरेसिं ॥ १ ॥ "
छाया--आचार्यग्लानानां मलिनानि मलिनानि पुनरपि धाव्यन्ते ।
मा खलु गुरूणामवर्णो नापि ग्लानि श्च इतरेषाम् ॥ १ ॥ इति ॥

इति षष्ठः ६। तथा-भक्तपानातिशेषः-विशिष्ठतरभक्तपानोपभोगवत्ता ।
उक्तं च--" कालभोयणो उ पयसा, परिहाणी जाव कोद्दवुग्भज्जी ।
तत्थ मिउ तुप्पतरं, जत्थ य जं अच्चियं दोसु ॥ १ ॥ "
छाया--कलमौदनस्तु पयसा परिहानि (परिहान्येत्यर्थः) यावत्कोद्रवोद्भाजी
(कोद्रवान्ने)
तत्रापि मृदु तुप्पतरं (घृतयुक्तं) यत्र च यत् अचित्तं (प्राप्तं) द्वयोः
(क्षेत्रकालयोः) ॥ १ ॥ इति ।

आचार्योपाध्याय विशिष्टतरभक्तपानदाने चैते गुणाः, तथाहि--
" सुत्तत्थथिरीकरणं, विणओ गुरुपूय सेहबहुमाणो ।
दाणवइ सुद्धवुड्ढी, वुद्धी बलवद्धणं चेव ॥ १ ॥ "
छाया--सूत्रार्थस्थिरीकरणं विनयो गुरुपूजा शैक्षबहुमानः ।
दानपति श्रद्धावृद्धि र्बुद्धिबलवर्द्धनं चैव ॥ १ ॥ इति ॥ सू० ३१ ॥

उपकरणातिशेष-शेष साधुजनोंकी अपेक्षा जो आचार्योपाध्यायमें प्रधान उज्ज्वल वस्त्रादिमत्ता होती है वह उपकरणातिशेष है उक्तं च—
" आयरियगिलाणाणं " इत्यादि ।

" भक्तपानातिशेष "-आचार्योपाध्यायका जो इतर साधुजनोंकी अपेक्षा विशिष्टतर भक्तपानोपभोग वत्ता होती है, वह भक्तपानातिशेष है-उक्तं च—' कलभोयणो उ पयसा ' इत्यादि ।

आचार्योपाध्यायको विशिष्ट भक्तपानके देनेमें ये गुण हैं-जैसे
" सत्तत्थथिरीकरणं " इत्यादि । सूत्र ३१ ॥

---

(६) ઉપકરણાતિશેષ-અન્ય સાધુઓ કરતાં આચાર્યોપાધ્યાય વધારે સારાં ઉજ્જવલ વસ્ત્રાદિનો ઉપયોગ કરતા હોય, તો તેઓ જિનાજ્ઞાના વિરાધક ગણાતા નથી" કહ્યું પણ છે કે-" आयरिय गिलाणाणं ઇત્યાદિ "—

(૭) ભક્તપાનાતિશેષ-અન્ય સાધુઓ કરતાં વિશિષ્ટ તર ભક્તપાનનો ઉપભોગ કરવાની પણ આચાર્યોપાધ્યાયને છૂટ હોય છે. તેમના આ અતિશેષને કારણે અન્ય સાધુઓ કરતાં વિશિષ્ટ પ્રકારના આહારપાનનો ઉપભોગ કરનારા આચાર્યોપાધ્યાય જિનાજ્ઞાના વિરાધક ગણાતા નથી કહ્યું પણ છે-" कलु भोयणो उ पयसा " ઇત્યાદિ આચાર્યોપાધ્યાયને વિશિષ્ટતર આહારપાણી દેવામાં આ ગુણો છે-" सत्तत्थथिरीकरण " ઇત્યાદિ--॥ સૂ ૩૧ ॥

एते चाचार्यातिशयाः संयमोपकारायैव विधीयन्ते, न तु रागादिवशेनेति संयमान्, ततश्च संयमप्रतिपक्षानसंयमान, तद्भेदांश्चारम्भादीन् तत्प्रतिपक्षाननारम्भादींश्च प्ररूपयति—

मूलम्—सत्तविहे संजमे पण्णत्ते, तं जहा--पुढविकाइय संजमे, जाव तसकाइयसंजमे ६ अजीवकायसंजमे ७। सत्तविहे असंजमे पण्णत्ते, तं जहा--पुढविकाइय असंजमे १ जाव तसकाइय असंजमे ६, अजीवकाय असंजमे ७। सत्तविहे आरंभे पण्णत्ते, तं जहा--पुढविकाइय आरंभे १ जाव अजीवकाय-आरंभे ७। एवमणारंभे वि ७, एवं सारंभे वि ७ एवमसमारंभे वि ७, एवं समारंभे वि ७, एवमसमारंभे वि ७, जाव अजीवकाय असमारंभे ७ ॥ सू० ३२ ॥

छाया—सप्तविधः संयमः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—पृथ्वीकायिकसंयमो १ यावत् त्रसकायिकसंयम ६, अजीवकायसंयमः ७। सप्तविधोऽसंयमः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—पृथ्वीकायिकासंयमो १ यावत् त्रसकायिकासंयमः ६, अजीवकायासंयमः ७। सप्तविध आरम्भः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—पृथ्वीकायिकारम्भो १ यावत् अजीवकायारम्भः ७। एवमनारम्भोऽपि ७, एवं संरम्भोऽपि ७, एवमसंरम्भोऽपि ७, एवं समारम्भोऽपि ७, एवमसमारम्भोऽपि ७, यावत् अजीवकायासमारम्भः ७ ॥ सू० ३२ ॥

टीका—' सत्तविहे ' इत्यादि—

संयमः-संयमनं=सावद्ययोगात्सम्यगुपरमणं-निवृत्तिकरणं इति संयमः-पृथिव्यादीनां संघट्टपरितापनोपद्रावणेभ्य उपरमो निवृत्तिरित्यर्थः, स सप्तविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-पृथ्वी-

ये आचार्यातिशय संयमके उपकारके लिये ही विहित हुए हैं, रागादिके वशसे नहीं-इसलिये अब सूत्रकार संयमोंका, संयमके प्रतिपक्षभूत असंयमोंका उनके भेदरूप आरम्भादिकोंको एवं इनके प्रतिपक्षभूत अनारम्भादिकोंका प्ररूपण करते हैं—

ઉપરના સૂત્રમાં આચાર્યોના અતિશયોનું નિરૂપણ કર્યું. રાગાદિકની વૃદ્ધિ કરવાને નિમિત્તે તેમના તે અતિશયો વિહિત થયા નથી. પરન્તુ સંયમના ઉપકારક હોવાને કારણે જ વિહિત થયેલા છે તેથી હવે સૂત્રકાર સંયમનું,

कायिकसंयमः-पृथ्वीकायिकजीवानां संघट्टपरितापनोपद्रावणाकरणम् १।यावत्पदात्-अप्कायिकः तेजस्कायिकः३ वायुकायिकः४ वनस्पतिकायिकः५ संयमा ग्राह्याः। तथा-त्रसकायिकसंयमः-त्रसकायिकानां द्वीन्द्रियादीनां संयमः ६। अजीवकाय-संयमः-अजीवकायानां=वस्त्रपात्रादीनाम् अयतनया ग्रहणादुपभोगाच्च निवृत्तिरिति ७। असंयम=पृथिव्यादीनां संघट्टपरितापनोपद्रावणेभ्योऽनुपरमः, सोऽपि पृथ्वी-कायिकासंयमादिभेदेन सप्तविधो बोध्यः। तथा-आरम्भः=उपद्रावणं पृथ्वीकाया-

"सत्तविहे संजमे पण्णत्ते" इत्यादि ॥ सूत्र ३१ ॥

टीकार्थ-संयम सात प्रकारका कहा गया है-सावद्य योगसे होना इसका नाम संयम है, यह संयम पृथिव्यादिकोंके संघट्टन, परितापन एवं उपद्रावण इनसे उपरम होने रूप होना है, यहां यावत्पदसे अप्-कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, और वनस्पतिकायिक" इनके संयम गृहीत हुए हैं। इस प्रकारसे ५ भेद एकेन्द्रिय जीवोंके संयमके हैं। तथा त्रस जीव सम्बन्धी संयमका एक भेद है, त्रसकायिकमें दो इन्द्रियसे लेकर पंचेन्द्रिय तकके जीव आ जाते हैं। संयमका ७ वां भेद है-अजीवकाय संयम इस संयममें अजीवकाय जो वस्त्र पात्रादिक हैं उनके यतनासे ग्रहण करनेका और रखनेपूर्वक उपभोग करनेका है-

असंयम—पृथिव्यादिक जीवोंका संघट्टन करना, परितापन करना एवं उपद्रवण करना इसका नाम असंयम है, यह असंयम भी पृथिवी-

સંયમથી વિપરીત એવા અસંયમનું, તેમના ભેદ રૂપ આરમ્ભાદિનું અને આરંભથી વિપરીત એવાં અનારંભાદિકોનું નિરૂપણ કરે છે-

"સત્તવિહે સંજમે પણ્ણત્તે" ઇત્યાદિ—(સૂ ૩૨)

સાવદ્યયોગોથી નિવૃત થવું તેનું નામ સંયમ છે તે સંયમના નીચે પ્રમાણે સાત પ્રકાર છે-(૧) પૃથ્વીકાયિક (૨) અપ્કાયિક, (૩) વાયુકાયિક, (૪) તેજસ્કાયિક અને (૫) વનસ્પતિકાયિકસંયમ. અહીં પૃથ્વીકાયિક આદિના સંઘટન, પરિતાપન અને ઉપદ્રાવણુથી વિરમવા રૂપ આ સંયમ સમજવો એકેન્દ્રિય જીવોની અપેક્ષાએ સંયમના પંચ ભેદ પડે છે (૬) ત્રસકાયિક સંયમ-દ્વીન્દ્રિયોથી લઈને પંચેન્દ્રિય પર્યંતના ત્રસકાયિક કહે છે. (૭) અજીવકાય સંયમ-વસ્ત્ર પ્રાત્રાદિક જે વસ્તુઓ છે તેને અજીવકાય કહે છે તેમને યતના પૂર્વક ગ્રહણ કરવી અને મૂકવી તથા યતના પૂર્વક તેમનો ઉપભોગ કરવો તેનું નામ અજીવ કામ સંયમ છે.

અસંયમ-પૃથ્વીકાય આદિ જીવોનું સંઘટ્ટન કરવું, પરિતાપન કરવું અને ઉપદ્રવણ કરવું તેનું નામ અસંયમ છે. તે અસંયમને પણ પૃથ્વીકાયિક અસં-

रम्भादिभेदेन सप्तविधः। एवमनारम्भोऽपि सप्तविधो बोध्यः। तथा-संरम्भः-हिंसाविषयः सङ्कल्प पृथ्वीकायिक संरम्भादिभेदेन सप्तविधः। एवमसंरम्भोऽपि सप्तविधो बोध्यः। तथा-समारम्भः=परिताप -पृथ्वीकायिक समारम्भादिभेदेन सप्तविधः एवमसमारम्भोऽपि सप्तविधो बोध्यः। आरम्भादीनामुपद्रावणादिरूपा अर्था अन्यत्राप्युक्ताः,

तथाहि—" आरंभो उद्दवओ, परितावकरो भवे समारंभो।
संकप्पो संरंभो, सुद्ध नयाणं तु सव्वेसिं ॥ १ ॥

छाया—आरम्भ उपद्रवतः परितापकरो भवेत् समारम्भः।
संकल्पः संरम्भः शुद्धनयानां तु सर्वेषाम् ॥ १ ॥ इति।

कायिक असंयम आदिके भेदसे सात प्रकारका होता है। इसी प्रकारसे आरम्भ भी पृथिवीकायारम्भ आदिके भेदसे सात प्रकारका होता है, इसी प्रकारसे अनारम्भ भी सात प्रकारका होता है, तथा हिंसा-विषयक संकल्प रूप संरम्भ पृथिवीकायिक संरम्भ आदिके भेदसे सात प्रकारका होता है, इसी तरहसे असंरम्भ भी सात प्रकारका होता है, तथा समारम्भ भी-परिताप भी-पृथिवीकायिक समारम्भादिके भेदसे सात प्रकारका होता है, इसी तरहसे असमारम्भ भी सात प्रकारका होता है, आरम्भ आदिकोंके उपद्रावण आदि रूप अर्थ अन्यत्र भी कहे गये हैं, जो इस प्रकारसे हैं--

" आरम्भो उद्दवओ " इत्यादि।

एकेन्द्रियादिक जीवोंका उपद्रवण करना यह आरम्भ है, उन्हें संतापयुक्त करना यह समारम्भ है, तथा उन्हें कष्ट आदि पहूंचानेका

यम આદિ સાત ભેદ કહ્યા છે. એ જ પ્રમાણે અનારંભના પણ પૃથ્વીકાયિક અનારંભ આદિ સાત ભેદ પડે છે.

તથા હિંસાવિષયક સંકલ્પરૂપ સંરંભના પણ પૃથ્વીકાયિક સંરંભ આદિ સાત ભેદ કહ્યા છે અસંરંભના પણ પૃથ્વીકાયિક અસંરંભ આદિ સાત ભેદ કહ્યા છે સમારંભન (પરિતાપ)ના પણ પૃથ્વીકાયિક સમારંભ આદિ સાત ભેદ કહ્યા છે એ જ પ્રમાણે અસમારંભના પણ પૃથ્વીકાયિક અસમારંભ આદિ સાત ભેદ કહ્યા છે, આરંભાદિકોના ઉપદ્રાવણ આદિ રૂપ અર્થ અન્યત્ર પણ પ્રકટ કરવમાં આવેલ છે, જે નીચે પ્રમાણે છે-

" आरभो उद्दवओ " ઇત્યાદિ—

એકેન્દ્રિયાદિક જીવોનું ઉપદ્રાવણ કરવું તેનું નામ આરંભ છે. તેમને સંતાપયુક્ત કરવા તેનું નામ સમારભ છે, તથા તેમને કષ્ટ આદિ પહોચાડવાને

ननु आरम्भादीनामुपद्रावणादयोऽर्था अभिहिताः अजीवेषु च तदसंभवात् अजीवकायारम्भादयोऽसंभविनः, ततश्च आरम्भादीनां यत् सप्तविधत्वमुक्तं तदसंगतम् ? इतिचेत्, आह-अजीवेषु वस्त्रपात्रादिषु समाश्रिता ये जीवास्तदपेक्षया आरम्भादय संभवन्ति, अथवा-अयतनया ग्रहणे स्थापने च पात्रादीनां वायुकायोदीरणात् अवश्यं जीवविराधना संभवति। जीवाश्च अजीवाश्रिता इति अजीवस्य प्राधान्यात् अजीवकायारम्भाद्युक्तिर्न विरुध्यते इति आरम्भादीनां सप्तविधत्वं निरवद्यमेवेति ॥ सू० ३२ ॥

विचार करना यह सङ्कल्प रूप संरम्भ है।

शंका—आरम्भ आदिकोंके जो ये उपद्रावण आदि रूप अर्थ प्रकट किये गये हैं-सो अजीवोंमें ये घटित नहीं होते हैं-अतः अजीव कायारम्भ आदि वहां नहीं बन सकतेहैं, इसलिये वहां नहींबन सकनेके कारण आरम्भ आदिकोंमें जो सप्तविधता कही गई है, वह ठीक नहीं बैठती है ?

उत्तर--ऐसा कहना ठीक नहीं है, क्योंकि अजीव जो वस्त्रपात्रादिक हैं, इनमें समाश्रित जो जीव हैं, सो उनकी अपेक्षासे आरम्भ आदिक होते हैं, अजीवाश्रित जीव होते हैं, इसलिये अजीवकी प्रधानता लेकर अजीव कायारम्भ आदिका कथन विरुद्ध नहीं पड़ताहै, इस तरह आरम्भ आदिकोंमें सप्त प्रकारताका प्रतिपादन निर्दोषही है, अथवा अयतनासे लेनेमें और रखनेमें वायुकायादिककी अवश्य विराधना होतीहै ॥सू०३२॥

વિચાર કરવા રૂપ સંકલ્પનું નામ સંરંભ છે,

શંકા—આરંભાદિકોના જે ઉપદ્રાવણ આદિ રૂપ અર્થ પ્રકટ કરવામાં આવ્યા છે, તેમને અજીવોમાં ઘટાવી શકાતા નથી. તેથી અહીં અજીવકાય આરંભાદિ રૂપ પ્રકાર સંભવી શકતો નથી. તે કારણે આરંભ આદિકોના સાત પ્રકાર કહેવાને બદલે ૬ પ્રકાર જ કહેવા જોઈએ.

ઉત્તર—આ પ્રકારની શંકા અસ્થાને છે, કારણ કે વસ્ત્રાદિક અજીવોમાં અનેક જીવો આશ્રય લઈને રહેલા હોય છે જો વસ્ત્રપાત્રાદિકને યતનાપૂર્વક તેમનો ઉપભોગ કરવામાં ન આવે, તો તેમને આશ્રયે રહેલા જીવોનું ઉપમર્દન આદિ થવાનો સંભવ રહે છે. અજીવાશ્રિત જીવ હોય છે, તેથી અજીવની પ્રધાનતાને લીધે અજીવકાયારંભ આદિનું કથન વિરુદ્ધ પડતું નથી. આ પ્રકારે આરંભ આદિકોના સાત પ્રકાર કહેવામાં કોઈ દોષ નથી અથવા અયતના પૂર્વક વસ્ત્રાદિકને લેવા મૂકવાથી વાયુકાયિકોની અવશ્ય વિરાધના થાય છે. ॥ સૂ. ૩૨ ॥

अनन्तरसूत्रे संयमादयो जीवविषयत्वेन उक्ता इति जीवविशेषस्य स्थितिं प्ररूपयति—

मूलम्–अह भंते! अयसिकुसुंभकोद्दवकंगुरालगकोदूसगसणसरिसवमूलबीयाणं एएसि णं धन्नाणं कोट्ठाउत्ताणं पल्लाउत्ताणं जाव पिहियाणं मुद्दियाणं लंछियाणं केवइयं कालं जोणी संचिट्ठइ ? गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं सत्त संवच्छराइं, तेण परं जोणी पमिलायइ जाव जोणीवोच्छेए पण्णत्ते ॥ सू० ३३ ॥

छाया—अथ भदन्त! अतसीकुसुम्भकोद्रवकङ्गुरालककोदूषकसणसर्षपमूलबीजानाम् एतेषां खलु धान्यानां कोष्ठागुप्तानां पल्यागुप्तानां यावत् पिहितानां मुद्रितानां लाञ्छितानां कियन्तं कालं योनिः संतिष्ठते ? गौतम! जघन्येन अन्तर्मुहूर्त्तम् उत्कर्षेण सप्त संवत्सरान्, ततः परं योनिः प्रम्लायति यावद् योनिव्युच्छेदः प्रज्ञप्तः ॥ सू० ३३ ॥

टीका—'अह भंते' इत्यादि—

अथेति प्रश्ने, भदन्तेति भगवदामन्त्रणे हे भदन्त! अतसीकुसुम्भकोद्रवकङ्गुरालककोदूषकसणसर्षपमूलबीजानाम्–तत्र अतसी='अलसी' इति भाषाप्रसिद्धो धान्यविशेषः, कुसुम्भम्=कुसुम्भाख्यधान्यविशेषः, कोद्रवः='कोदो' इति भाषा

इस ऊपरके सूत्रमें संयम आदिके जीव विषयवाले कहे गये हैं, सो अब सूत्रकार जीव विशेषकी स्थितिकी प्ररूपणा करते हैं––

" अहं भंते! अयसिकुसुंभ " इत्यादि ॥ सूत्र ३३ ॥

टीकार्थ–यहां " अथ " यह शब्द प्रश्नमें आया है, शिष्य प्रश्न करता है–हे भदन्त! अतसी–अलसी, कुसुम्भ–इस नामका धान्य विशेष, कोद्रव–कोदों, कङ्गु–कांगणी, रालक–कागनीकाही एक भेद

આગલા સૂત્રમાં સંયમ આદિને જીવવિષયક કહેવામાં આવેલ છે. પૂર્વ સૂત્ર સાથેના આ પ્રકારના સંબંધને લઈને હવે સૂત્રકાર જીવવિશેષની સ્થિતિની પ્રરૂપણા કરે છે–" अह भंते! अयसि कुसुंभ " ઈત્યાદિ—(સૂ ૩૩)

સૂત્રની શરૂઆતમાં જે " अह " પદ આવ્યું તે પ્રશ્નાર્થ વાચક છે. અહીં શિષ્ય ગુરુને આ પ્રમાણે પ્રશ્ન પૂછે છે–હે ભગવન્! અળસી કુસુંભ (એક પ્રકારનું ધાન્યવિશેષ), કોદરા, કાંગ (એક જાતનું ધાન્ય), રાલક (કાંગનો જ

प्रसिद्धो धान्यविशेषः 'कङ्गुः '=' कागणी ' इति भाषाप्रसिद्धः, रालकः कङ्गुभेदः, कोदूषकः=कोद्रवभेदः, सणः-प्रसिद्धः, सर्षपः-प्रसिद्धः, मूळबीजानि=मूलस्य=' मूळा ' इति प्रसिद्धस्य बीजानि, एतेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः, तेषां तथाभूतानाम्, एतेषां खलु धान्यानां कोष्ठागुप्तानाम्-कोष्ठे=' कोठा ' इति प्रसिद्धे धान्याधारे आगुप्तानि=प्रक्षेपेण संरक्षितानि कोष्ठागुप्तानि तेषां तथोक्तानां, तथा पल्यागुप्तानाम्-पल्यं=वंशकटकादिकृतो धान्याधारपात्रविशेषः, तत्र आगुप्तानाम्, यावत्पदेन-मञ्चागुप्तानाम्, मालागुप्तानाम् अवलिप्तानाम्, लिप्तानाम्-इति संग्रहः। तत्र-मञ्चागुप्तानाम्-मञ्चः=स्थूणानामुपरिस्थापितवंशकटकादिमयो लोकप्रसिद्धः, तत्रागुप्तानाम्, मालागुप्तानाम्, मालो-मालकः-गृहोपरितनभागः, तत्र आगुप्तानाम्, अवलिप्तानाम्=द्वारदेशं पिधाय गोमयादिनाऽवलिप्तानाम्, लिप्तानाम्=सर्वतः कृतलेपानाम् पिहितानाम्=आच्छादितानाम् मुद्रितानाम्=मृत्तिकादिभिर्मुद्रितानां, लाञ्छितानाम्=रेखादिभिः कृतलाञ्छनानां कियन्तं कालं योनिः=उत्पत्तिशक्तिः सन्तिष्ठते=भवति? इति शिष्यप्रश्नः।

कोदूषक-कोदोंका एक भेद-' सण-सनसर्षप-सरसो और मूलाके बीज ये जब कोष्ठागारमें सुरक्षित रखे हुए हों-धान्यके आधारभूत कोठेसे बनाये हुए पिटारेमें भरकर सुरक्षित रखे हुए हों, यावत्-मञ्चागुप्त हों-खंभोंके ऊपर स्थापित वंश कटक आदिसे बनाये गये मञ्चोंमें भरकर रखे हुए हों, अवलिप्त हों-द्वारदेशको ढंककर गोमय आदिसे लीप पोतकर किसी कुठिया आदिमें भरकर रखे हुए हों लिप्त हों चारों तरफसे लेप करके एक स्थान पर एकत्रित करके ढककर रखे हुए हों पिहित हों-सामान्य रूपसे ढंककर रखे गये हों, मुद्रित हों-मिट्टी आदिसे छाबकर किसी पात्र विशेषमें बन्द करके रखे हुए हों, एवं

એક ભેદ), કોદ્રૂષક (કોદરાના જ એક ભેદ), શણુ, સરસવ અને મૂળાનાં બીજોને કોઈ કોઠારમાં ભરી રાખવામાં આવેલ હોય, અથવા પલ્યાગુપ્ત હોય-વાંસની ચટ્ટાઇઓમાથી બનાવેલા પટારામાં ભરીને સુરક્ષિત રાખવામાં આવેલ હોય, મંચાગુપ્ત હોય-થાંભલાઓને આધારે ઊભા કરેલા કોઈ ઊંચા માંચડા પર સંગ્રહ કરવામાં આવેલ હોય, અવલિપ્ત હોય-કોઈ કોઠી આદિમાં ભરીને તેના ઢાંકણાને છાણુ, માટી આદિ વડે લીપીને બંધ કરવામાં આવેલ હોય-સામાન્ય રૂપે ઢાંકીને રાખેલ હોય, મુદ્રિત હોય, માટી આદિ વડે લીંપી લઈને કોઈ પાત્ર વિશેષમાં બંધ કરીને રાખેલ હોય, અને લાંછિત હોય-લાખ આદિ વડે સીલમહોર કરીને કોઈ પણુ પાત્ર વિશેષમાં ભરી રાખ્યા

उत्तरयति-गौतम ! जघन्येन अन्तर्मुहूर्त्तम्, उत्कर्षेण सप्त संवत्सरान् योनिः सन्तिष्ठते, ततः परं योनिः प्रम्लायति=वर्णादिना हीयते, यावत्पदेन-ततः परं योनि, विध्वंसते=विनाशाभिमुखी भवति, ततः परं बीजम् अबीजं भवति=उप्तमपि तद् नाङ्कुरम् उत्पादयति, इत्येषां संग्रहः, ततः परं योनिव्युच्छेदः जननशक्तिविनाशः प्रज्ञप्त इति ॥ सू० ३२ ॥

पुनरपि जीवविशेषाणां स्थितिं प्ररूपयति—

मूलम्—बायर आउकाइयाणं उक्कोसेणं सत्त वाससहस्साइं ठिई पण्णत्ता । तच्चाए णं वालुयप्पभाए पुढवीए उक्कोसेणं नेरइयाणं सत्त सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता । चउत्थीए णं पंक-

---

लाञ्छित हो शीलमुहर करके कहीं भी भरकर रखे हुए हों तो इन सबकी कितने काल तक योनि-अङ्कुरोत्पादक शक्ति रहती है ?

उत्तर—हे गौतम ! इनकी योनि जघन्यसे एक अन्तर्मुहूर्त तक रहती है, और उत्कृष्टसे सात साल वर्ष रहती है । इसके बाद योनि म्लान हो जाती है, वर्णादिसे हीन हो जाती है-यावत् अङ्कुरोत्पादन शक्तिका विनाश हो जाता है, यहां यावत्शब्दसे-" ततः परं योनिः विध्वंसते " इसके बाद योनि विनाशके अभिमुख हो जाती है " ततः परं बीजं अबीजं भवति " बोये जाने पर भी वह बीज अङ्कुरको उत्पन्न नहीं करता है " इस पाठका संग्रह हुआ है, अर्थात् कहे हुए अलसी आदि सात वर्षके बाद अचित्त हो जाते हैं ॥ सू० ३३ ॥

હોય, તો તે બીજોમાં કેટલા કાળ સુધી બીજોત્પાદન શક્તિ રહે છે? એટલે કે કેટલા વર્ષ સુધી તેમની યોનિનો વિચ્છેદ થતો નથી?

ઉત્તર–હે ગૌતમ ! ઓછામાં ઓછા એક અન્તર્મુહૂર્ત સુધી અને વધારેમાં વધારે સાત વર્ષ સુધી તેમની યોનિ રહે છે, અર્થાત્ ઉત્પાદનશકિત બની રહે છે. ત્યાર બાદ તેમની યોનિ મ્લાન થઈ જાય છે, વર્ણાદિથી વિહીન થઈ જાય છે, (यावत्) અને આખરે તે બીજની અંકુરોત્પાદન શક્તિનો વિનાશ થઈ જાય છે, અહીં "यावत्" પદ દ્વારા નીચેનો સૂત્રપાઠ ગ્રહણ કરવાનો છે-"तत. परं योनिः विध्वंसते" ત્યાર બાદ યોનિનો વિનાશ થવા માંડે છે. "तत्र परं बीजं अबीजं भवति,' ત્યાર બાદ વાવવામાં આવે તો પણ તે બીજ અંકુરોત્પાદન કરી શકતું નથી. આ કથનનો ભાવાર્થ એ છે કે ઉપર્યુક્ત અળસી આદિ ધાન્યોમાં વધારેમાં વધારે સાત વર્ષ સુધી અંકુરોત્પાદન શક્તિ રહે છે ત્યાર બાદ તો તેઓ અચિત્ત જ બની જાય છે ॥ સૂ. ૩૩ ॥

प्पभाए पुढवीए जहन्नेणं नेरइयाणं सत्त सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता ॥ सू० ३४ ॥

छाया—बादराप्कायिकानाम् उत्कर्षेण सप्त वर्षसहस्राणि स्थितिः प्रज्ञप्ता। तृतीयस्यां खलु वालुकाप्रभायां पृथिव्याम् उत्कर्षेण नैरयिकाणां सप्त सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता। चतुर्थ्यां खलु पङ्कप्रभायां पृथिव्यां जघन्येन नैरयिकाणां सप्त सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता ॥ सू० ३४ ॥

टीका—' बायर आउकाइयाणं ' इत्यादि—

व्याख्या सुगमा। नवरम्—बादराणामप्कायिकानां जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तम्। सूक्ष्माणां तु जघन्योत्कर्षेणान्तर्मुहूर्त्तम्। वालुकाप्रभास्थितनैरयिकाणां जघन्येन त्रीणि सागरोपमाणि। पङ्कप्रभास्थितनैरयिकाणाम् उत्कर्षेण दश सागरोपमाणीति ॥ सू० ३४ ॥

अब सूत्रकार पुनः जीव विशेषोंकी स्थितिकी प्ररूपणा करते हैं—

" बायर आउकाइयाणं उक्कोसेण सत्तवाससहस्साइं इत्यादि सू०३४ ॥

टीकार्थ—बादर अप्कायिक जीवोंकी उत्कृष्ट स्थिति हजार वर्षकी है। तीसरी वालुका प्रभामें उत्कृष्टसे नैरयिकोंकी सात सागरोपमकी स्थिति कही गई है, चौथी पङ्कप्रभा पृथिवी में जघन्य से नैरयिकों की स्थिति सात सागरोपम की कही गई है। इसकी व्याख्या सुगम है, बादर अप्कायिक जीवोंकी जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की है, तथा सूक्ष्म अप्कायिक जीवों की उत्कृष्ट स्थिति और जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की है। वालुकाप्रभास्थित नैरयिक जीवों की जघन्य स्थिति तीन सागरोपम की है, एवं पङ्कप्रभास्थित नैरयिकों की उत्कृष्ट स्थिति १० सागरोपम की है ॥ सू० ३४ ॥

સૂત્રકાર હવેના સૂત્રમાં પણ કેટલાક જીવવિશેષોની સ્થિતિ પ્રરૂપણા કરે છે.—" बायर आउ काइयाणं उक्कोसेण सत्तवास सहस्साइं " ઇત્યાદિ–(સૂ ૩૪)

બાદર અપ્કાયિક જીવોની ઉત્કૃષ્ટ સ્થિતિ સાત હજાર વર્ષની કહી છે. ત્રીજી વાલુકાપ્રભા નામની નરકપૃથ્વીના નારકોની ઉત્કૃષ્ટ સ્થિતિ સાગરોપમની કહી છે. ચોથી પંકપ્રભા નામની જઘન્ય સાત સાગરોપમની કહી છે. આ સૂત્રની વ્યાખ્યા સુગમ છે

બાદર અપ્કાયિક જીવેની જઘન્ય સ્થિતિ અન્તર્મુહૂર્તની કહી છે. સૂક્ષ્મ અપ્કાયિક જીવોની જઘન્ય સ્થિતિ અને ઉત્કૃષ્ટસ્થિતિ, બન્ને અન્તર્મુહૂર્ત જ કહી છે. વાલુકાપ્રભાના નારકોની જઘન્ય સ્થિતિ ત્રણ સાગરોપમની કહી છે અને પંકપ્રભાના નારકોની ઉત્કૃષ્ટ સ્થિતિ ૧૦ સાગરોપમની કહી છે ॥ સૂ. ૩૪ ॥

अनन्तरसूत्रे नारकाणां स्थितिरुक्ता, इति स्थितिशरीरादिभिस्तत्साधर्म्यात् षड्भिः सूत्रैर्देववक्तव्यतामाह—

मूलम्—सक्कस्स णं देविंदस्स देवरन्नो वरुणस्स महारन्नो सत्त अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ। ईसाणस्स णं देविंदस्स देवरन्नो सोमस्स महारन्नो सत्त अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ। ईसाणस्स णं देविंदस्स देवरन्नो जमस्स महारन्नो सत्त अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ ॥ सू० ३५ ॥

छाया—शक्रस्य खलु देवेन्द्रस्य देवराजस्य वरुणस्य महाराजस्य सप्त अग्रमहिष्यः प्रज्ञप्ताः। ईशानस्य खलु देवेन्द्रस्य देवराजस्य सोमस्य महाराजस्य सप्त अग्रमहिष्यः प्रज्ञप्ताः। ईशानस्य खलु देवेन्द्रस्य देवराजस्य यमस्य महाराजस्य सप्त अग्रमहिष्यः प्रज्ञप्ताः ॥ सू० ३५ ॥

टीका—' सक्कस्स णं ' इत्यादि—

देवेन्द्रस्य=देवानां मध्ये ऐश्वर्यसम्पन्नस्य अत एव देवराजस्य=देवानामधिपस्य शक्रस्य=सौधर्मकल्पाधिपस्य दाक्षिणात्येन्द्रविशेषस्य आज्ञायां स्थितस्य

ऊपर के सूत्र में नारकों की स्थिति कही गई है-सो अब सूत्रकार स्थिति और शरीर आदि के द्वारा नारकों के साधर्म्य को लेकर ६ सूत्रों से देववक्तव्यता का कथन करते हैं—

सक्कस्स णं देविंदस्स देवरन्नो ' इत्यादि। सू० ३५॥

सूत्रार्थ—देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल वरुण महाराज की सात अग्रमहिषियां कही गई हैं, देवेन्द्र देवराज ईशान के लोकपाल सोम महाराज की सात अग्रमहिषियां कही गई हैं। देवेन्द्र देवराज ईशान के लोकपाल यम महाराज की सात अग्रमहिषियां कही गई हैं।

ઉપરના સૂત્રમાં નારકોની સ્થિતિની પ્રરૂપણા કરવામાં આવી છે. હવે સ્થિતિ અને શરીર આદિ દ્વારા નારકોના સાધર્મ્યને લીધે છ સૂત્રો વડે દેવ વક્તવ્યતાનું સૂત્રકાર કથન કરે છે–

"સક્કસ્સ ણં દેવિંદસ્સ દેવરણ્ણો" ઈત્યાદિ—(સૂ ૩૫)

સૂત્રાર્થ–દક્ષિણનિકાયનો ઇન્દ્ર છે. તે દેવેન્દ્ર દેવરાજ શક્રના લોકપાલ વરુણ મહારાજને સાત અગ્રમહિષીઓ છે. દેવેન્દ્ર દેવરાજ ઈશાનના લોકપાલ સોમ મહારાજને પણ સાત અગ્રમહિષીઓ છે.

वरुणस्य=पश्चिमदिक्पालस्य महाराजस्य=प्रचुरशोभाशालिनः सप्त अग्रमहिष्यो बोध्याः। तथा-देवेन्द्रस्य देवराजस्य ईशानस्य=ईशानकल्पाधिपस्य औदीच्येन्द्रविशेषस्य आज्ञायां स्थितस्य सोमस्य=पूर्वदिक्पालस्य सप्ताग्रमहिष्यो बोध्याः। तथा-ईशानेन्द्राज्ञावर्तिनो यमस्य=दक्षिणदिक्पालस्य सप्ताग्रमहिष्यो बोध्याः ॥सू०३५॥

मूलम्-ईसाणस्स णं देविंदस्स देवरन्नो अब्भितरपरिसाए देवाणं सत्त पालिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। सक्कस्स णं देविंदस्स देवरन्नो अग्गमहिसीणं देवीणं सत्त पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। सोहम्मे कप्पे परिग्गहियाणं देवीणं उक्कोसेणं सत्त पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता ॥ सू० ३६ ॥

टीकार्थ-देवों के बीच में ऐश्वर्य सम्पन्न होने से देवेन्द्र एवं देवों के अधिपति होने से देवराज ऐसे सौधर्म कल्प के अधिपति दाक्षिणात्येन्द्र विशेष की आज्ञा में स्थित पश्चिम दिक्पाल वरुण हैं, ये प्रचुर शोभाशाली हैं अतः इन्हें महाराज कहा गया है, ईशानकल्प के अधिपति ईशान हैं ये उत्तर दिशा के इन्द्र हैं, इनकी आज्ञा में-सोम महाराज रहते हैं, ये पूर्व दिशा के अधिपति हैं। दक्षिण दिशा के अधिपति यमलोकपाल हैं, ये भी ईशानेन्द्र की आज्ञा में रहते हैं। इन सब लोकपालों की ७-७ अग्रमहिषियां कही गई हैं ॥ सूत्र ३५ ॥

ટીકાર્થ-દેવેન્દ્ર દેવરાજ ઈશાનના લોકપાલ યમ મહારાજને પણ સાતઅગ્રમહિષીઓ છે. શક્ર દક્ષિણનિકાયના દેવાને અધિપતિ હાવાથી તેને 'દેવરાજ' તે' દક્ષિણનિકાયના દેવાને અધિપતિ હોવાથી તેને 'દેવરાજ' વિશેષણલગાડયું છે. વળી બધા દેવામાં તે વિશેષ ઐશ્વર્યસંપન્ન હોવાથી તેને 'દેવેન્દ્ર' વિશેષણ લગાડયું છે. ઇશાન કલ્પને અધિપતિ ઈશાન છે. તે ઉત્તરનિકાયના દેવાને અધિપતિ છે. તેને 'દેવેન્દ્ર' અને 'દેવરાજ' આ વિશેષણો લગાડવાનું કારણ પણ ઉપર પ્રમાણે જ સમજવું. દક્ષિણનિકાયના અધિપતિ શક્રની આજ્ઞામા સ્થિત એવા પશ્ચિમ દિશાના જે દિક્પાલ છે તેનું નામ વરુણ છે તે અત્યંત શોભાશાલી હાવાથી તેને અહીં 'વરુણ મહારાજ' કહેવામાં આવેલ છે. દેવેન્દ્ર દેવરાજ ઈશાનના એક લોકપાલનું નામ સોમ મહારાજ છે. તેઓ પૂર્વ દિશાના અધિપતિ છે. તેમના બીજા લોકપાલનું નામ યમ મહારાજ છે. તેઓ દક્ષિણ દિશાના અધિપતિ છે આ વરુણ, સોમ અને યમ નામના લોકપાલોને સાત સાત અગ્રમહિષીઓ છે. ॥ સૂ. ૩૫ ॥

छाया—ईशानस्य खलु देवेन्द्रस्य देवराजस्य आभ्यन्तरपरिषदि देवानां सप्त पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता। शक्रस्य खलु देवेन्द्रस्य देवराजस्य अग्रमहिषीणां देवीनां सप्त पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता। सौधर्मे कल्पे परिगृहीतानां देवीनाम् उत्कर्षेण सप्त पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता ॥ सू० ३६ ॥

टीका—'ईसाणस्स णं' इत्यादि—

व्याख्या स्पष्टा। नवरं-परिगृहीतानां=भार्यात्वेन स्वीकृतानामिति भावः ॥ सू० ३६ ॥

मूलम्—सारस्सयमाइच्चाणं सत्त देवा सत्त देवसया पण्णत्ता। गद्दतोयतुसियाणं देवाणं सत्त देवा सत्त देवसहस्सा पण्णत्ता ॥ सू० ३७ ॥

छाया—सारस्वतादित्यानां सप्त देवाः सप्त देवशतानि प्रज्ञप्तानि। गर्दतोयतुषितानां देवानां सप्त देवाः सप्तदेवसहस्राणि प्रज्ञप्तानि ॥ सू० ३७ ॥

टीका—'सारस्सय' इत्यादि—

सारस्वता आदित्याः गर्दतोयास्तुषिताश्च लोकान्तिका देवाः। तेषु सारस्वतादित्यानां सप्त देवाः प्रधानाः, तदितरे च सप्त शतानि देवाः। गर्दतोयतुषितानां मध्ये सप्त देवाः प्रधानाः, तदितरे च सप्तसहस्राणि ॥ सू० ३७ ॥

"ईसाणस्स णं देविंदस्स देवरन्नो" इत्यादि ॥ सू० ३६ ॥

टीकार्थ—देवेन्द्र देवराज ईशानकी आभ्यन्तर परिषदामें वर्तमान देवोंकी ७ पल्योपम की स्थिति कही गई है। देवेन्द्र देवराज शक्र की अग्रमहिषियों की स्थिति सात पल्योपम की कही गई है। सौधर्मकल्प में भार्या रूप से स्वीकृत हुई देवियों की स्थिति उत्कृष्ट से सात पल्योपम की कही गई है। ३६।

"सारस्सयमाइच्चाणं सत्त देवा" इत्यादि। सू० ३७ ॥

टीकार्थ—सारस्वत आदित्य, गर्दतोय, और तुषित ये लोकान्तिक देव हैं। इन में सारस्वत और आदित्य इनके सात देव प्रधान हैं। और इन

"ईसाणस्स ण देविंदस्स देवरण्णो" ઇત્યાદિ—(સૂ ૩૬)

ટીકાર્થ–દેવેન્દ્ર દેવરાજ ઈશાનની આભ્યન્તર પરિષદના દેવોની સાત પલ્યોપમની સ્થિતિ કહી છે દેવેન્દ્ર દેવરાજ શક્રની અગ્રમહિષીઓની સ્થિતિ સાત પલ્યોપમની કહી છે સૌધર્મ કલ્પમાં ભાર્યા રૂપે સ્વીકૃત થયેલી દેવીઓની ઉત્કૃષ્ટ સ્થિતિ સાત પલ્યોપમની કહી છે ॥ સૂ ૩૬ ॥

"સારસ્સયમાઇચ્ચાણં સત્ત દેવા" ઇત્યાદિ—(સૂ ૩૭)

ટીકાર્થ–સારસ્વત, આદિત્ય, ગર્દતોય, અને તુષિત, એ લોકાન્તિક દેવો છે. તેમાંથી સારસ્વત અને આદિત્ય દેવોમાં સાત દેવો પ્રધાન (મુખ્ય)

मूलम्—सणंकुमारे कप्पे उक्कोसेणं देवाणं सत्त सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। माहिंदे कप्पे उक्कोसेणं देवाणं सातिरेगाइं सत्त सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। बंभलोगे कप्पे जहण्णेणं देवाणं सत्त सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता ॥ सू० ३८ ॥

छाया—सनत्कुमारे कल्पे उत्कर्षेण देवानां सप्त सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता। माहेन्द्रे कल्पे उत्कर्षेण देवानां सातिरेकाणि सप्त सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता। ब्रह्मलोके कल्पे जघन्येन देवानां सप्त सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता ॥ सू० ३८ ॥

टीका—'सणंकुमारे कप्पे' इत्यादि—

व्याख्या सुगमा ॥ सू० ३८ ॥

मूलम्—बंभलोयलंतएसु णं कप्पेसु विमाणा सत्त जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता ॥ सू० ६९ ॥

से भिन्न और भी सात सौ देव हैं। इसी तरह गर्दतोय और तुषित इनके मध्य में सात देव प्रधान हैं और इनसे भिन्न सात हजार और भी देव हैं ॥ सूत्र ३७ ॥

"सणंकुमारे कप्पे उक्कोसेणं देवाणं" इत्यादि। सू० ३८ ॥

टीकार्थ—सनत्कुमार कल्पमें देवों की उत्कृष्ट स्थिति सात सागरोपमकी कही गई है। माहेन्द्र कल्प में देवों की उत्कृष्ट स्थिति सात सागर से कुछ अधिक कही गई है। ब्रह्मलोक कल्प में देवों की जघन्य स्थिति सात सागरोपम की कही गई है। सूत्र ३८ ॥

છે, અને તે સિવાયના બીજા ૭૦૦ સામાન્ય દેવો છે. એજ પ્રમાણે ગર્દતોય અને તુષિત દેવોમાં સાત દેવો મુખ્ય છે અને તે સિવાયના સાત હજાર બીજા દેવો છે. ॥ સૂ ૩૮ ॥

"सणंकुमारे कप्पे उक्कोसेणं देवाणं" ઇત્યાદિ—(સૂ ૩૭)

ટીકાર્થ—સનત્કુમાર કલ્પમાં દેવોની ઉત્કૃષ્ટ સ્થિતિ સાત સાગરોપમની કહી છે. માહેન્દ્ર કલ્પમાં દેવોની ઉત્કૃષ્ટ સ્થિતિ સાત સાગરોપમ કરતાં થોડી વધારે કહી છે. બ્રહ્મલોક કલ્પમાં દેવોની જઘન્ય સ્થિતિ સાત સાગરોપમની કહી છે.॥સૂ ૩૮॥

छाया—ब्रह्मलोकलान्तकयोः खलु कल्पयोर्विमानानि सप्त योजनशतानि ऊर्ध्वमुच्चत्वेन प्रज्ञप्तानि ॥ सू० ३९ ॥

टीका—'बंभलोयलंतएसु' इत्यादि—

व्याख्या स्पष्टा ॥ सू० ३९ ॥

मूलम्—भवणवासीणं देवाणं भवधारणिज्जा सरीरगा उक्कोसेणं सत्त रयणीओ उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता । एवं वाणमंतराणं एवं जोइसियाणं । सोहम्मीसाणेसु णं कप्पेसु देवाणं भवधारणिज्जगा सरीरगा सत्त रयणीओ उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता ॥सू०४०॥

छाया—भवनवासिनां देवानां भवधारणीयानि शरीरकाणि उत्कर्षेण सप्त रत्नीः ऊर्ध्वमुच्चत्वेन प्रज्ञप्तानि । एवं व्यन्तराणाम्, एवं भवनवासिनाम् । सौधर्मेशानयोः खलु कल्पयोः देवानां भवधारणीयकाणि शरीरकाणि सप्त रत्नीरूर्ध्वमुच्चत्वेन प्रज्ञप्तानि ॥ सू० ४० ॥

टीका—'भवणवासीणं' इत्यादि—

व्याख्या स्पष्टा ॥ सू० ४१ ॥

"बंभलोयलंतएसु णं कप्पेसु" इत्यादि । सूत्र ३९ ।

ब्रह्मलोक एवं लान्तक कल्पों में स्थित विमानों की ऊँचाई सात सौ योजन की कही गई है । सूत्र ३९ ।

"भवणवासीणं देवाणं भवधारणिज्जा" इत्यादि । सूत्र ४० ।

टीकार्थ—भवनवासी देवों के भवधारणीय शरीर उत्कृष्टसे सात हाथ ऊँचे कहे गये हैं । इसी तरह से व्यन्तरों के और ज्योतिष्क देवों के शरीर भी जानना चाहिये, सौधर्म और ईशान इन दो कल्पों में देवों के भव धारणीय शरीर ऊँचाई में सात हाथ के कहे गये हैं । सूत्र ४० ।

"बंभलोयलंतएसु णं कप्पेसु" ઈત્યાદિ—(સૂ. ૩૯)

બ્રહ્મલોક અને લાન્તક કલ્પોના વિમાનોની ઊંચાઈ સાત સો યોજન પ્રમાણ કહી છે ॥ સૂ. ૩૯ ॥

भवणवासीणं देवाण भवधारणिज्जा" ઈત્યાદિ—(સૂ. ૪૦)

ટીકાર્થ—ભવનવાસી દેવોના ભવધારણીય શરીરની ઉત્કૃષ્ટ ઊંચાઈ સાત હાથ પ્રમાણ કહી છે, એજ પ્રકારનું કથન વ્યન્તરો અને જ્યોતિષ્ક દેવોના ભવધારણીય શરીરની ઊંચાઈ વિષે પણ સમજવું સૌધર્મ અને ઈશાન કલ્પોના દેવોના ભવધારણીય શરીરની ઊંચાઈ પણ સાત હાથ પ્રમાણ કહી છે ॥ સૂ. ૪૦ ॥

अनन्तरं देवानामधिकार उक्तः। देवानामावासाश्च द्वीपसमुद्रा इति तान् प्ररूपयति--

मूलम्--णंदिस्सरवरस्स णं दीवस्स अंतो सत्त दीवा पण्णत्ता, तं जहा--जंबुद्दीवे दीवे १, धायइसंडे दीवे २, पोक्खरवरे ३, वरुणवरे ४, खीरवरे ५, घयवरे ६ खोयवरे ७। णंदिस्सरवरस्स णं दीवस्स अंतो सत्त समुद्दा पण्णत्ता, तं जहा-लवणे ॥१॥ १, कालोदे २, पुक्खरोदे ३, वरुणोदे ४ खीरोदे ५, घओदे ६, खोओदे ७ ॥ सू० ४१ ॥

छाया--नन्दीश्वरवरस्य खलु द्वीपस्यान्तः सप्त द्वीपाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-जम्बूद्वीपो द्वीपः १, धातकीषण्डो द्वीपः २, पुष्करवरः ३, वरुणवरः ४, क्षीरवरः ५, घृतवरः ६, क्षोदवरः ७। नन्दीश्वरवरस्य खलु द्वीपस्य अन्तः सप्त समुद्राः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-लवण १, कालोदः २, पुष्करोदः ३, वरुणोदः ४, क्षीरोदः ५, घृतोदः ६, क्षोदोदः ७ ॥ सू० ४१ ॥

टीका--' णंदिस्सरवरस्स ' इत्यादि--

व्याख्या स्पष्टा ॥ सू० ४१ ॥

इस तरह से देवों का अधिकार कह कर अब सूत्रकार देवों के आवासों का एवं द्वीपसमुद्रों का कथन करते हैं--

" णंदिस्सरवरस्सणं दीवस्स अंतो सत्त " इत्यादि। सूत्र ४१।

टीकार्थ-नन्दीश्वर द्वीप के भीतर सात द्वीप कहे गये हैं, जैसे-जम्बूद्वीप नाम का द्वीप १, धातकी षण्ड नाम का द्वीप २ पुष्करवर द्वीप ३ वरुणवर द्वीप ४ क्षीरवर द्वीप ५ घृतवर द्वीप ६, एवं क्षोदवरद्वीप ७, नन्दीश्वर द्वीप के भीतर सात समुद्र कहे गये हैं-जैसे लवण समुद्र

આ પ્રમાણે દેવોનું કથન કરીને હવે સૂત્રકાર દેવોના આવાસોનું અને દ્વીપસમુદ્રોનું કથન કરે છે-

"णंदिस्सरवरस्स णं दीवस्स अंतो सत्त" ઇત્યાદિ--(સૂ ૪૧)

ટીકાર્થ--નંદીશ્વર દ્વીપની અંદર નીચે પ્રમાણે સાત દ્વીપો કહ્યા છે-(૧) જંબૂદ્વીપ નામનો દ્વીપ, (૨) ધાતકીખંડ નામનો દ્વીપ, (૪) વરુણવર દ્વીપ, (૫) ક્ષીરવર દ્વીપ, (૬) ઘૃતવર દ્વીપ અને (૭) ક્ષોદવર દ્વીપ.

एते द्वीपसमुद्रास्तु श्रेण्या व्यवस्थिता इति श्रेणिमाह--

मूलम्-सत्त सेढीओ पण्णत्ताओ, तं जहा--उज्जुआयया १, एगओ वंका २, दुहओ वंका ३ एगओ खहा ४ दुहओ खहा ५, चक्कवाला ६, अद्ध चक्कवाला ७। सू० ४२ ॥

छाया--सप्त श्रेणयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-ऋज्वायता १, एकतो वक्रा २, द्विधातो वक्रा ३, एकतः खा ४ द्विधातः खा ५, चक्रवाला ६, अर्द्धचक्रवाला ७॥ सू० ४२ ॥

टीका--' सत्त सेढीओ ' इत्यादि--

श्रेणयः-जीवपुद्गल संचाराश्रयाः आकाशप्रदेशपङ्क्तयः सप्त प्रज्ञप्ता, तद्यथा-ऋज्वायता-ऋजुश्चासावायता चेति, यया जीवादय ऊर्ध्वलोकादेरधोलोकादौ ऋजुतया यान्ति सा आकाशप्रदेशपङ्क्तिः, यथा (--) इति स्थापना १।

---

१ कालोद समुद्र २ पुष्करोद समुद्र ३ वरुणोद समुद्र ४ क्षीरोद समुद्र ५ घृतोद समुद्र ६ एवंक्षोदोद समुद्र ७ अर्थात् इक्षु समुद्र जिसका जल इक्षु-(सेलडी) जैसा मधुर होता है। सूत्र ४१।

ये द्वीप और समुद्र श्रेणि से व्यवस्थित हैं-अतः अब सूत्रकार श्रेणिका कथन करते हैं--

" सत्त सेढीओ पण्णत्ताओ " इत्यादि । सूत्र ४२।

टीकार्थ-श्रेणियां सात कही गईहैं, जीव और पुद्गलोंका गमन आकाश के प्रदेशों की पङ्क्ति के अनुसार ही होता है, अतः जीव और पुद्गलों के संचार के आश्रय भूत जो आकाश के प्रदेशों की पङ्क्ति है वही श्रेणी है, वे श्रेणियां सात हैं--एक ऋज्वायता १, द्वितीया-एक तो

નંદીશ્વર દ્વીપની અંદર નીચે પ્રમાણે સાત સમુદ્રો છે-(૧) લવણ સમુદ્ર, (૨) કાલોદ સમુદ્ર, (૩) પુષ્કરોદ સમુદ્ર, (૪) વરુણોદ સમુદ્ર, (૫) ક્ષીરોદ સમુદ્ર, (૬) ધૃતોદ સમુદ્ર. ॥ સૂ ૪૧ ॥

ઉપર્યુક્ત દ્વીપો અને સમુદ્રો શ્રેણિમાં વ્યવસ્થિત છે. તેથી હવે સૂત્રકાર શ્રેણિનું કથન કરે છે-" सत्त सेढीओ पण्णत्ताओ " ઇત્યાદિ--(સૂ ૪૨)

ટીકાર્થ-શ્રેણિઓ સાત કહી છે. જીવ અને પુદ્ગલોનું ગમન આકાશના પ્રદેશોની પંક્તિ અનુસાર જ થાય છે તેથી જીવ અને પુદ્ગલોના સંચારના આશ્રયસ્થાન રૂપ જે આકાશના પ્રદેશોની પંક્તિ છે, તેનું જ નામ શ્રેણિ છે. એવી શ્રેણિઓ સાત છે-

एकतो वक्रा-एकतः=एकस्यां दिशि वक्रा=कुटिला, यथा जीवपुद्गला ऋजु गत्वा वक्रीभूय श्रेण्यन्तरेण यान्ति सा प्रदेशपङ्क्तिरिति। आकारश्चायम्-(⌐) २। द्विधातो वक्रा-द्वयो दिशोः कुटिला रेखा। इयं च ऊर्ध्वक्षेत्रादाग्नेयदिशोऽधः क्षेत्रे वायव्यदिशि गत्वा य उत्पद्यते तस्य भवति. तथाहि-प्रथमसमये आग्नेय्यास्तिर्यग् नैर्ऋत्यां याति ततस्तिर्यगेव वायव्यां ततोऽधो वायव्यामेवेति। त्रिसम

वक्रा २, तृतीया-द्विधातो वक्रा ३, चतुर्थी-एकतः खा, पंचमी-द्विधातः खा, षष्ठी-चक्रवाला, और सप्तमी अर्द्धचक्रवाला,

जिससे जीवादिक ऊर्ध्वलोक आदिसे अधोलोक आदिमें सरलतासे आते हैं ऐसी वह आकाश प्रदेश पङ्क्ति ऋज्वायताहै, अर्थात् जो आकाश प्रदेश पङ्क्ति सरल और-लम्बी होतीहै वह ऋज्वायताहै, इसका आकार (—) ऐसा है, जो आकाशप्रदेशपङ्क्ति एकदिशा में कुटिल (बांकी) होती है वह प्रदेश पङ्क्ति एकतोवक्रा है, इस गति से जीव पुद्गल सरलता से जाकर फिर वक्र होकर श्रेण्यन्तर से जाते हैं, इसका आकार (|‾‾‾‾‾‾) इस प्रकार से है, २

जो आकाश प्रदेश पंक्ति दोनों दिशाओं में कुटिल होती है वह द्विधातो वक्राहै यह गति जो ऊर्ध्व क्षेत्र रूप आग्नेय दिशासे अधो क्षेत्र रूप वायव्य दिशा में जाकरके उत्पन्न होताहै उसको होतीहै, जीव प्रथम समय में आग्नेय (अग्निकोण) दिशा से तिरछा नैर्ऋत्य दिशामें जाता

---

(१) ऋजवायता, (२) એકતો વક્રા, (૩) દ્વિધાતો વક્રા, (૪) એકતઃખા, (૫) દ્વિધાતઃખા, (૬) ચક્રવલા. અને (૭) અર્ધચક્રવાલા

જેનાથી જીવો વિગેરે ઉર્ધ્વલોક વિગેરેમાંથી અધોલોક વિગેરેમાં સરલપણાથી આવે જાય છે, એવી તે આકાશપ્રદેશ પંક્તિ ઋજવાયતા છે. અર્થાત્ જે આકાશપ્રદેશ પંક્તિ સરલ અને લાંબી હોય છે તે ઋજવાયતા છે. તેનો આકાર (—) આ પ્રમાણેનો છે.

જે આકાશપ્રદેશ પંક્તિ એક દિશામાં વાંકી હોય છે, તે પ્રદેશપંક્તિ એકતોવક્રા છે. આ ગતિથી જીવ અને પુદ્ગલ સરલપણાથી જઈને પાછો વક્ર થઈને શ્રેણ્યાન્તરથી જાય છે, તેનો આકાર (–) આ રીતે છે. ૨

જે આકાશપ્રદેશ પંક્તિ બન્ને દિશામાં વક્રતાવાળી હોય છે, તેને "દ્વિધાતો વક્રા" કહે છે ઉર્ધ્વક્ષેત્રરૂપ અગ્નિ દિશામાથી અધોક્ષેત્રરૂપ દિવ્ય દિશામાં જઈને ઉત્પન્ન થનારા જીવની ગતિ આ પ્રકારની હોય છે જીવ પ્રથમ સમયમાં અગ્નિકોણમાથી તિરકસ ગતિ કરીને નૈઋત્ય કોણમાં જાય છે, ત્યાર બાદ તિર

येयं त्रसनाड्या मध्ये बहिर्वा भवतीति । आकारश्चायम् (Z) इति ३। एकतः खा–एकस्यां दिशि अङ्कुशाकारा, यया जीवः पुद्गलो वा त्रसनाड्या वामपार्श्वादेस्तां प्रविष्टः, तथैव गत्वा पुनस्तद्वामपार्श्वादावुत्पद्यते सा एकतःखा । स्थापना चेयम्–(⌐) इति ४। द्विधातःखा–उभयस्यां दिशि अङ्कुशाकारा, त्रसनाड्या वामपार्श्वादेर्नाडी प्रविश्य तथैव गत्वा अस्या एव दक्षिणपार्श्वादौ यया उत्पद्यते सा द्विधातः खा, नाडीबहिर्भूतयोर्वामदक्षिणपार्श्वलक्षणयो द्वयोराकाशश्रेण्योः

है, तिरछा ही वायव्य दिशा में जाता है, बाद में नीचे वायव्यदिशा में है, यह गति तीन समयवाली होती है, और यह त्रस नाड़ी के भीतर अथवा बाहर होती है । इसका आकार (Z) इस प्रकार से है । जो गति एक दिशा में अङ्कुश के आकार जैसी होती है वह एकतः खा है, इस गति से जीव अथवा पुद्गल त्रस नाडी के वामपार्श्व आदि से उस त्रसनाडी में प्रविष्ट होता है और उसी से जाकर उसके वाम पार्श्व आदि में उत्पन्न होता है ऐसी वह गति एकतः–खा है, इसकी स्थापना (⌐) इस प्रकार से है द्विधातः खा — जो गति दोनों दिशाओं में अंकुश के आकार जैसी होती है वह द्विधातः खा है । त्रस नाड़ी के पार्श्वभाग से नाड़ी में प्रविष्ट उसी से जाकर इसी के दक्षिणपार्श्व आदि में जिससे उत्पन्न होता है ऐसी वह गति द्विधातः खा है । क्यों कि इस प्रकार की प्रदेशपंक्ति से नाड़ी के बाहर की वामदक्षिण पार्श्वभाग रूप आकाश श्रेणियां स्पृष्ट होती हैं ।

છે વાયવ્ય દિશામાં જાય છે, ત્યાર બાદ નીચે વાયવ્ય દિશામાં જાય છે આ ગતિ ત્રણ સમયવાળી હોય છે, અને તે ત્રસનાડીની અંદર કે બહાર થાય છે આ શ્રેણિનો આકાર (Z) કૌંસમાં બતાવ્યા પ્રમાણે હોય છે, જે ગતિ એક દિશામાં અંકુશના જેવા આકારની હોય છે, તેને ' એકતઃખા ' કહે છે. આ ગતિ વડે જીવ અથવા પુદ્ગલ ત્રસનાડીના વામપાર્શ્વ આદિમાં થઈને તે ત્રસનાડીમાં પ્રવેશ કરે છે અને તેમાંથી જ જઈને તેના વામપાર્શ્વ આદિમાં ઉત્પન્ન થાય છે. એવી તે ગતિનું નામ ' એકતઃખા ' છે, તેનો આકાર (⌐) કૌંસમાં બતાવ્યા પ્રમાણે હોય છે.

દ્વિધાતઃખા–જે ગતિ બન્ને દિશામાં અંકુશના આકાર જેવી હોય છે, તેને ' દ્વિધાતઃખા ' કહે છે જીવ અથવા પુદ્ગલ ત્રસનાડીના વામપાર્શ્વમાંથી દાખલ થઈને અને તેમાંથી જ જઈને તેના દક્ષિણપાર્શ્વ આદિમાં જે ગતિ વડે ઉત્પન્ન થઈ જાય છે તે ગતિનું નામ ' દ્વિધાતઃખા ' છે, કારણ કે આ પ્રકારની પ્રદેશ પંક્તિ વડે નાડીની બહારની વામ દક્ષિણ (ડાબા જમણા) પાર્શ્વભાગ રૂપ શ્રેણિઓ સ્પૃષ્ટ થાય છે. તેનો આકાર (⌐) કૌંસમાં બતાવ્યા પ્રમાણે હોય છે.

स्तया स्पृष्टत्वादिति । स्थापना चेयम्-(ഗ) इति ५। चक्रवाला=वलयाकृतिः प्रदेशपङ्क्तिः। यथा मण्डलेन परिभ्रम्य परमाण्वादिसमुत्पद्यते सेत्यर्थः। आकारश्चायम्-(O) इति ६। अर्धचक्रवाला-चक्रवालार्द्धरूपा। स्थापना चेयम्-(C) इति ७। एकतोवक्राद्यास्तु श्रेणयो लोकपर्यन्तप्रदेशापेक्षया संभावनीया इति॥ सू०४२॥

देवसैन्यानि दर्शितत्वाच्चक्रवालार्धचक्रवालादिना भ्रमणयुक्तानि भवन्तीति तानि प्रतिपादयितुमाह—

सूलम्-चमरस्स णं असुरिंदस्स असुरकुमाररन्नो सत्त आणिया सत्त अणियाहिवई पण्णत्ता, तं जहा-पायत्ताणीए १, पीढाणिए २, कुंजराणिए ३, महिसाणिए ४, रहाणिए ५, नट्टाणिए ६, गंधव्वाणिए ७। दुमे पायत्ताणियाहिवई, एवं जहा पंचमट्ठाणे जाव किन्नरे रहाणियाहिवई रिट्ठे णट्टाणियाहिवई, गीयरई गंधव्वाणियाहिवई। बलिस्स णं वइरोयणिंदस्स वइरोयणरण्णो सत्ताणिया सत्त अणीयाहिवई पण्णत्ता, तं जहा-पायत्ताणिए जाव गंधव्वाणिए। महद्दुमे पायत्ताणियाहिवई

इसकी स्थापना (ഗ) इस प्रकार से है। जो प्रदेशपंक्ति वलय गोल के आकार जैसी होती है वह चक्रवाला श्रेणी है, जिस से मण्डलरूप में परिभ्रमण करके परमाणु आदि उत्पन्न होता है ऐसी वह श्रेणी चक्रवाला श्रेणी है, इसकी स्थापना (O) इस प्रकार से है। जो प्रदेश पंक्ति अर्द्ध चक्रवाल के जैसी होती है वह अर्धचक्रवाला है, इसका आकार (C) इस प्रकार से है। एकतोवक्रा आदि श्रेणियां लोक पर्यन्त प्रदेशों की अपेक्षा से संभावनीय हैं। सूत्र ४२।

જે પ્રદેશોમાં પંક્તિ વલયના જેવા આકારની હોય છે, તેને ચક્રવાલ શ્રેણિ કહે છે. જે ગતિ વડે ગોળાકારમાં પરિભ્રમણ કરીને પરમાણુ આદિ ઉત્પન્ન થાય છે, એવી તે શ્રેણીને ચક્રવાલ શ્રેણી કહે છે તેનો આકાર (O) કૌંસમાં બતાવ્યા પ્રમાણે હોય છે જે પ્રદેશપંક્તિ અર્ધચક્રવાલના જેવી (અર્ધ વર્તુળના જેવી) હોય છે તેને અર્ધચક્રવાલ શ્રેણી કહે છે તેનો આકાર (C) કૌંસમાં બતાવ્યા પ્રમાણે હોય છે. એકતો વક્રા આદિ શ્રેણીઓ લોકપર્યન્તના અંશોની અપેક્ષાએ સંભાવનીય છે. ॥ સૂ. ૪૨ ॥

जाव किंपुरिसे रहाणियाहिवई महारिट्ठे णट्टाणियाहिवई, गीयजसे गंधव्वाणियाहिवई। धरणस्स णं नागकुमारिंदस्स नागकुमाररण्णो सत्त अणिया सत्त अणियाहिवई पण्णत्ता, तं जहा-पायत्ताणिए जाव गंधव्वाणिए। रुद्दसेणे पायत्ताणियाहिवई जाव आणंदे रहाणियाहिवई, नंदणे नट्टाणियाहिवई, तेतली गंधव्वाणियाहिवई। भूताणंदस्स सत्त अणिया सत्त अणियाहिवई पण्णत्ता, तं जहा-पायत्ताणिए जाव गंधव्वाणिए। दक्खे पायत्ताणियाहिवई जाव णंदुत्तरे रहाणियाहिवई, रती णट्टाणियाहिवई, माणसे गंधव्वाणियाहिवई। एवं जाव घोसमहाघोसाणं णेयव्वं। सक्कस्स णं देविंदस्स देवरन्नो सत्त अणिया सत्त अणियाहिवई पण्णत्ता तं जहा--पायत्ताणिए जाव गंधव्वाणिए। हरिणेगमेसी पायत्ताणियाहिवई जाव माढरे रहाणियाहिवई, सेए णट्टाणियाहिवई, तुंबुरू गंधव्वाणियाहिवई। ईसाणस्स णं देविंदस्स देवरन्नो सत्त अणिया सत्त अणियाहिवई पण्णत्ता, तं जहा--पायत्ताणिए जाव गंधव्वाणिए लहुपरक्कमे पायत्ताणियाहिवई जाव महासेए णट्टाणियाहिवई, रए गंधव्वाणियाहिवई, सेसं जहा पंचमट्ठाणे एवं जाव अच्चुयस्स वि णेयव्वं ॥ सू० ४३ ॥

छाया-चमरस्य खलु असुरेन्द्रस्य असुरकुमारराजस्य सप्त अनीकानि सप्त अनीकाधिपतयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-पादातानीकम् १, पीठानीकम् २, कुञ्जरानीकम् ३, महिषानीकम् ४, रथानीकम् ५, नाट्यानीकम् ६, गन्धर्वानीकम् ७। द्रुमः पादातानीकाधिपतिः, एवं यथा पञ्चमस्थाने यावत् किन्नरो रथानीकाधिपतिः, रिष्टो नाट्यानीकाधिपतिः, गीतरतिर्गन्धर्वानीकाधिपति। बलेः खलु वैरोचनेन्द्रस्य वैरोचनराजस्य सप्त अनीकानि सप्तानीकाधिपतयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-पादातानीकं

यावत् गन्धर्वानीकम् । महाद्रुमः पादातानीकाधिपति यावत् किम्पुरुषो रथानीकाधिपतिः, महारिष्टो नाट्यानीकाधिपतिः, गीतयशाः गन्धर्वानीकाधिपतिः । धरणस्य खलु नागकुमारेन्द्रस्य नागकुमारराजस्य सप्त अनीकानि सप्त अनीकाधिपतयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–पादातानीकं यावद् गन्धर्वानीकम् । रुद्रसेनः पादातानीकाधिपतिर्यावत् आनन्दो रथानीकाधिपतिः, नन्दनो नाट्यानीकाधिपतिः, तेतली गन्धर्वानीकाधिपतिः । भूतानन्दस्य सप्त अनीकानि सप्त अनीकाधिपतयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–पादातानीकं यावद् गन्धर्वानीकम् । दक्षः पादातानीकाधिपतिः, यावत् नन्दोत्तरो रथानीकाधिपतिः, रति नाट्यानीकाधिपतिः, मानसो गन्धर्वानीकाधिपतिः । एवं यावद् घोषमहाघोषयोर्ज्ञेयम् । शक्रस्य खलु देवेन्द्रस्य देवराजस्य सप्त अनीकानि सप्त अनीकाधिपतयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–पादातानीक यावद् गन्धर्वानीकम् । हरिणैगमैषी पादातानीकाधिपति यावत् माठरो रथानीकाधिपतिः, श्वेतो नाट्यानीकाधिपतिः, तुम्बुरु गन्धर्वानीकाधिपतिः । ईशानस्य खलु देवेन्द्रस्य देवराजस्य सप्त अनीकानि सप्त अनीकाधिपतयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–पादातानीकं यावद् गन्धर्वानीकम् । लघुपराक्रमः पादातानीकाधिपति यावद् महाश्वेतो नाट्यानीकाधिपतिः, रती गन्धर्वानीकाधिपतिः, शेषं यथा पञ्चमस्थाने । एवं यावत् अच्युतस्यापि नेतव्यम् ॥ सू० ४३ ॥

टीका--' चमरस्स ण ' इत्यादि--

चमरस्य–चमराभिधानस्य खलु असुरेन्द्रस्य असुरकुमार राजस्य दाक्षिणात्यभवनपतीन्द्रविशेषस्य सप्तसंख्यकानि अनीकानि=सैन्यानि सप्त संख्यकाः अनीकाधिपतयः=सेनानायकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–पादातानीकम्=पदातीनां समूहः

दर्पित होने के कारण देवसैन्य चक्रवाल अर्ध चक्रवाल आदि से भ्रमण युक्त होता है, इसी बात को अब सूत्रकार प्रतिपादन करते हैं–

" चमरस्स णं असुरिंदस्स असुरकुमाररन्नो " इत्यादि सू०४३ ॥

टीकार्थ–असुरकुमारराज असुरेन्द्र चमर के सात अनीक सैन्य–और सात ही अनीकाधिपति कहे गये हैं । जैसे–पादातानीक १ पीठानीक २ कुंजरानीक ३ महिषानीक ४ रथानीक ५, नाट्यानीक ६, एवं गन्ध-

---

દર્પિત (અહંકારયુક્ત) થાય ત્યારે દેવસૈન્ય ચક્રવાલ, અર્ધચક્રવાલ આદિ રૂપે ભ્રમણયુક્ત થાય છે. એજ વાતનું હવે સૂત્રકાર પ્રતિપાદન કરે છે–

" चमरस्स णं असुरिंदस्स असुरकुमाररन्नो " ઇત્યાદિ—(સૂ ૪૩)

ટીકાર્થ–અસુરેન્દ્ર અસુરકુમાર રાજ ચમરના સાત અનીકો (સૈન્યો) અને સાત અનીકાધિપતિ (સેનાપતિ) કહ્યા છે. તે સાત અનીકો (સેનાઓ) નીચે

पादातं, तद्रूपम् अनीकं=सैन्यम्-पदातिसैन्यमित्यर्थः । पीठानीकम्=अश्वसैन्यम् । कुञ्जरानीकं=हस्तिसैन्यम् । महिषानीकम्=महिषसैन्यम् । रथानीकम्=रथसैन्यम् । नाट्यानीकम्=नर्तकसमूहः । गन्धर्वानीकं=गन्धर्वसमूहः । एषां सप्तानामनीकानां सप्ताधिपतयः । तेषां नामानि प्ररूपयितुमाह-'दुमे' इत्यादि । तत्र द्रुमः=द्रुमनामको देवः पादातानीकाधिपतिः । पीठानीककुञ्जरानीकमहिषानीकानामधिपतीनां नामानि पञ्चमस्थानाद् विज्ञेयानि । अत एवाह सूत्रकारः-'एवं-जहा पंचमट्ठाणे जाव' इति । तथाहि-सौदामी पीठानीकाधिपतिः, कुन्थुः कुञ्जरानीकाधिपतिः, लोहिताक्षो महिषानीकाधिपतिः । तथा-किन्नरो रथानी-

र्वानीक ७, पैदल चलनेवाली सेना का नाम पदातानीक है, अश्वों पर बैठ कर चलनेवाली सेना का नाम पीठानीक है, हस्तियों पर बैठ कर चलने वाली सेना का नाम कुंजरानीक है, भैंसाओं की सेना-समुदाय-का नाम महिषानीक है, रथों पर बैठ कर चलने वाली सेना का नाम रथानीक है, नर्तकों की सेना-समूह का नाम नाट्यानीक है, गन्धर्वों की सेना का नाम गन्धर्वानीक है । इस सात प्रकार की सेना के जो अधिपति हैं-सेनापति हैं-उनके नाम इस प्रकार से हैं-पादातानीकाधिपति-पैदल चलनेवाली सेना का सेनापति द्रुम नाम का देव हैं, पीठानीक का, कुंजरानीक का, महिषानीक का, कौन २ अधिपति हैं-इस बात को जानने के लिये पंचमस्थान देखना चाहिये, इसी बात को सूचित करने के लिये "एवं जहा पंचमट्ठाणे जाव" ऐसा सूत्र पाठ सूत्रकारने लिखा है । पीठानीक का अधिपति सौदामी है, कुंजरानीक

પ્રમાણે છે-(૧) પાદાતાનીક, (૨) પીઠાનીક (૩) કુંજરાનીક, (૪) મહીષાનીક, (૫) રથાનીક (૬)નાટ્યાનીક અને ગન્ધર્વાનીક પાયદળ સેનાને પાદાતાનીક કહે છે, ઘોડેસ્વાર થઈને જનારી સેનાનું નામ પીઠાનીક છે. હાથીઓ પર આરોહણ કરીને લડવા જનારી સેનાનું નામ કુંજરાનીક છે પાડાઓની સેનાનું નામ મહીષાનીક છે. રથોમાં બેસીને લડવા જનારી સેનાનું નામ રથાનીક છે. નર્તકોના સમૂહનું (સેના સમૂહનું) નામ નાટ્યાનીક છે ગંધર્વોની સેનાનું નામ ગન્ધર્વાનીક છે. આ સાતે સેનાઓના અધિપતિઓનાં નામ હવે પ્રકટ કરવામાં આવે છે-પાદાતાનીક (પાયદળ) સેનાનો સેનાધિપતિ દ્રુમ નામનો દેવ છે પીઠાનીકનો કુંજરાનીકનો, મહિષાનીકનો, કોણ કોણ અધિપતિ છે? એ વાત જાણવા માટે પાંચમું સ્થાનક જોવું જોઈએ એ વાત કહેવા માટે સૂત્રકારે "एवं जहा पंचमट्ठाणे जाव" પીઠા-

काधिपतिः। रिष्टो नाट्यानीकाधिपतिः। गीतरतिर्गन्धर्वानीकाधिपतिरिति। तथा-बलेर्वैरोचनेन्द्रस्य वैरोचनराजस्य औदीच्यभवनपतीन्द्रविशेषस्य सप्त अनीकानि सप्त अनीकाधिपतयः प्रज्ञप्ताः। तत्र-अनीकानि पूर्वोक्तान्येव। अनीकाधिपतयस्त्वेवं विज्ञेयाः, तथाहि-महाद्रुमः पादातानीकाधिपतिः, महासौदामः पीठानीकाधिपतिः, मालङ्कारः कुञ्जरानीकाधिपतिः, महालोहिताक्षो महिषानीकाधिपतिः, किंपुरुषो रथानीकाधिपतिः, महारिष्टो नाट्यानीकाधिपतिः, गीतयशाः गन्धर्वानीकाधिपतिरिति। अत्र पीठानीककुञ्जरानीकमहिषानीकाधिपतीनां नामानि यावत्पदेन संगृहीतानि। एवमग्रेऽपि संग्राह्याणीति। तथा-धरणस्य

का अधिपति कुन्थु है महिषानीक का अधिपति लोहिताक्ष हैं रथानीक का अधिपति किन्नर हैं नाट्यानीक का अधिपति रिष्ट है, गन्धर्वानीक का अधिपति गीतरति है, वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज बलि-उत्तरदिशा के भवनपतियों के इन्द्र-के सात अनीक और सात ही अनीकाधिपति कहे गयेहैं-इनमें अनीकोंके नाम पूर्वोक्त जैसे हीहैं-परन्तु इनके जो अधिपति हैं-उनके नाम इस प्रकार से हैं-पादानीक का अधिपति यहां महाद्रुम नाम का देव है, पीठानीक का अधिपति-महासौदाम है कुञ्जरानीक का अधिपति मालङ्कार हैं, महिषानीक का अधिपति महालोहिताक्ष है, रथानीक का अधिपति किम्पुरुष है, नाट्यानीक का अधिपति महारिष्ट है, गन्धर्वानीक का अधिपति गीतयशस् है, यहां

નીકથી લઈને રથાનીક પર્યન્તની સેનાઓના અધિપતિઓના નામ પાંચમા સ્થાનકમાં આપવામાં આવ્યા છે. પીઠાનીકનો અધિપતિ સૌદામી, કુંજરાનીકનો અધિપતિ કુન્થુ, મહિષાનીકનો અધિપતિ લોહિતાક્ષ અને રથાનીકનો અધિપતિ કિન્નર છે. નાટ્યાનીકનો અધિપતિ રિષ્ટ છે અને ગન્ધર્વાનીકનો અધિપતિ ગીતરતિ છે.

વૈરોચનેન્દ્ર વૈરોચનરાજ બલિ કે જે ઉત્તર દિશાના ભવનપતિ દેવોનો ઇન્દ્ર છે, તેને પણ સાત અનીક અને સાત અનીકાધિપતિઓ છે તેના અનીકો (સેનાઓ)નાં નામ તો ચમરની સેનાઓનાં નામ જેવા જ સમજવા, પરન્તુ તેના અનીકાધિપતિઓના નામ નીચે પ્રમાણે સમજવા-પાદાતાનીકનો અધિપતિ મહાદ્રુમ નામનો દેવ છે, પીઠાનીકનો અધિપતિ મહાસૌદામ છે, કુંજરાનીકનો અધિપતિ માલંકાર છે, મહિષાનીકનો અધિપતિ મહાલોહિતાક્ષ છે, રથાનીકનો અધિપતિ કિમ્પુરુષ છે, નાટ્યાનીકનો અધિપતિ મહારિષ્ટ છે અને ગન્ધર્વાનીકનો અધિપતિ

नागकुमारेन्द्रस्य नागकुमारराजस्य दाक्षिणात्यभवनपतीन्द्रविशेषस्य सप्त अनीकानि सप्तानीकाधिपतयश्च बोध्याः। तत्र रुद्रसेनः पादातानीकाधिपतिः, अस्य क्वचिद् 'भद्रसेनः' इत्यपि नाम, यशोधरः पीठानीकाधिपतिः, सुदर्शनः कुञ्जरानीकाधिपतिः, नीलकण्ठो महिषानीकाधिपतिः, आनन्दो रथानीकाधिपतिः, नन्दनो नाट्यानीकाधिपतिः तेतली गन्धर्वानीकाधिपतिरिति। तथा—भूतानन्दस्य औदीच्यभवनपतीन्द्रविशेषस्य सप्तानीकानि सप्तानीकाधिपतयश्च बोध्याः।

पर पीठानीक के कुञ्जरानीक के और महिषानीक के अधिपतियों के नाम यावत्पद से संगृहीत हुए हैं। इसी प्रकार से आगे भी ग्रहण करलेना चाहिये–तथा–नागकुमारेन्द्र नागकुमार राज धरण के अनीक और अनीकाधिपति इस प्रकार से हैं–अनीक के नाम तो पूर्वोक्त जैसे ही हैं–एवं इन के जो अधिपति हैं–उनके नाम इस प्रकार से हैं–

यहां जो पादातानीक हैं उसके अधिपति का नाम रुद्रसेन है, इसका कहीं २ पर भद्रसेन ऐसा भी नाम लिखा मिलता है। पीठानीक के अधिपति का नाम यशोधर है, कुञ्जरानीक के अधिपति का नाम सुदर्शन है। महिषानीक के अधिपति का नाम नीलकण्ठ है, रथानीक के अधिपति का नाम आनन्द है, नाट्यानीक के अधिपति का नाम नन्दन है, एवं गन्धर्वानीक के अधिपति का नाम तेतली है, उत्तरदिशा के भवनपतियों के इन्द्र जो भूतानन्द हैं उनके भी सात

गीतयशस छे अहीं "यावत्" पदथी पीठानीक, कुंजरानीक अने महिषानीकना अधिपतिओनां नाम ग्रहण कराया छे तेमनां नामो अहीं उपर आपी देवाणुं आव्यां छे.

नागकुमारेन्द्र, नागकुमारराज धरणनी सात सेनाओ अने ते सेनाओना सेनापतिओनां नाम नीचे प्रमाणे छे–

धरणनी सात सेनाओना नाम तो चमरनी सेनाओनां नाम प्रमाणे ज समजवा हवे ते साते सेनाओना सेनाधिपतिओनां नाम प्रकट करवामां आवे छे–

तेनी पादातानीक (पायदळ सेना)ना अधिपतिनुं नाम रुद्रसेन छे, (कोई कोई शास्त्रोमां तेनुं नाम भद्रसेन पण आप्युं छे) पीठानीकनो अधिपति यशोधर छे, कुंजरानीकनो अधिपति सुदर्शन छे, महिषानीकनो अधिपति नीलकंठ छे. रथानीकनो अधिपति आनन्द छे, नाट्यानीकनो अधिपति नन्दन छे. अने गन्धर्वानीकनो अधिपति तेतली छे

उत्तर दिशाना अधिपति भवनपतिओना भूतानन्द नामना इन्द्रने

तत्र-दक्षः पादातानीकाधिपतिः, सुग्रीवः पीठानीकाधिपतिः, सुविक्रमः कुञ्जरानीकाधिपतिः, श्वेतकण्ठो महिषानीकाधिपतिः, नन्दोत्तरो रथानीकाधिपतिः, रतिः नाट्यानीकाधिपतिः, मानसो गन्धर्वानीकाधिपतिरिति। एवं=धरणभूतानन्दवद् यावद् घोषमहाघोषयोरपि सप्तानीकानि सप्तानीकाधिपतयश्च बोध्याः। अयं भावः-यथा धरणस्य तथा वेणुदेवहरिकान्ताग्निशिखपूर्णजलकान्तामितगति-वेलम्बघोषनामकानामष्टानां दाक्षिणात्यभवनपतीन्द्राणां, यथा भूतानन्दस्य तथा वेणुदालि हरिसहाग्निमाणवविशिष्ठजलप्रभामितवाहनप्रभञ्जनमहाघोषनामकानामष्टानाम् औदीच्यभवनपतीन्द्राणां च सप्तानीकाधिपतयश्च बोध्या इति।

अनीक और सात अनीकाधिपति हैं-इनमें ७ अनीकों के नाम तो पूर्वोक्त जैसे ही हैं-परन्तु अनीकाधिपतियों के नाम इस प्रकार से हैं-

पादातानीक के अधिपति का नाम दक्ष है, पीठानीक के अधिपति का नाम सुग्रीव है, कुञ्जरानीक के अधिपति का नाम सुविक्रम है, महिषानीक के अधिपति का नाम श्वेतकण्ठ है, रथानीक के अधिपति का नाम नन्दोत्तर है, नाट्यानीक के अधिपति का नाम रति है, एवं गन्धर्वानीक के अधिपति का नाम मानस है। धरण और भूतानन्दकी तरह यावत् घोष और महाघोष इन्द्रके भी सात २ अनीक और सात २ अनीकाधिपति समझना चाहिये, तात्पर्य ऐसा है-धरण की तरह वेणुदेव के हरिकान्त के अग्निशिख के, पूर्णजलकान्त के अमितगति के वेलम्ब के, और घोष के इन आठ दाक्षिणात्य भवनपति-इन्द्रों के, तथा-भूतानन्द की तरह वेणुदालि के, हरिसह के, अग्निमा-

પણ સાત સેનાઓ અને સાત સેનાધિપતિયો છે તેની સેનાઓનાં નામ ચમરની સેનાઓનાં નામ પ્રમાણે જ સમજવા, પણ સેનાધિપતિઓનાં નામ નીચે પ્રમાણે સમજવા-

પદાતાનીકનો અધિપતિ દક્ષ, પીઠાનીકનો અધિપતિ સુગ્રીવ, કુંજરાનીકનો અધિપતિ સુવિક્રમ, રથાનીકનો અધિપતિ નન્દોત્તર. મહિષાનીકનો અધિપતિ શ્વેતકંઠ, નાટ્યનીકનો અધિપતિ રતિ અને ગન્ધર્વાનીકનો અધિપતિ માનસ છે.

ધરણ અને ભૂતાનન્દના જેવી જ ઘોષ અને મહાઘોષ પર્યન્તના ઇન્દ્રોની સાત સેનાઓ સમજવી અને તે સેનાઓના સાત સેનાનીકો (સેનાધિપતિઓ) સમજવા. આ કથનનું તાત્પર્ય એ છે કે-વેણુદેવ, હરિકાન્ત, અગ્નિશિખ, પૂર્ણ જલકાન્ત, અમિતગતિ, વેલમ્બ અને ઘોષ, આ આઠ દક્ષિણાત્ય ભવનપતિ

इत्थं भवनपतीनां सप्तानीकानि सप्तानीकाधिपतींश्चोक्त्वा सम्प्रति कल्पेन्द्राणामनीकानि अनीकाधिपतींश्च प्ररूपयति–' सक्कस्स ' इत्यादि। शक्रस्य दाक्षिणात्येन्द्रविशेषस्य सप्तानीकानि सप्तानीकाधिपतयश्च बोध्याः। तत्र सप्तानीकानि पूर्ववदेव बोध्यानि। नवरं–महिषानीकस्थाने वृषभानीकं बोध्यम्। तेषामधिपतयश्चैते, तथाहि–हरिणैगमेषी पादातानीकाधिपतिः, वायुः पीठानीकाधिपतिः, ऐरावतकुञ्जरानीकाधिपतिः, दामर्द्धिः वृषभानीकाधिपतिः, माठरो रथानीकाधिपतिः,

णव के, वशिष्ठ के, जलप्रभ के, अमितवाहन के, प्रभञ्जन के एवं महाघोष के इन आठ उत्तर दिशा के भवनपतियों के इन्द्रों के सात २ अनीक और सात २ अनीकाधिपति जानना चाहिये, इस तरह भवनपतियों के सात अनीक और सात अनीकाधिपतियों का कथन करके अब सूत्रकार कल्पेन्द्रों के सात अनीक और सात अनीकाधिपतियों–की प्ररूपणा करते हैं–" सक्कस्स " इत्यादि—

दक्षिण दिशा के इन्द्र विशेष शक्र के सात अनीक और सात अनीकाधिपति कहे गये हैं–इनमें सात अनीकों के नाम तो पूर्वोक्त जैसे ही हैं परन्तु यहां महिषानीक नहीं है–किन्तु उसके स्थान पर वृषभानीक है, इस सात अनीकों के अधिपति इस प्रकार से हैं–पादातानीक का अधिपति हरिणैगमेषी है, पीठानीक का अधिपति वायु है, कुञ्जरानीक का अधिपति ऐरावत है, वृषभानीक का अधिपति

ઈન્દ્રોની સેનાઓ અને સેનાધિપતિઓનાં નામ ધરણુની સેનાઓ અને સેનાધિપતિઓનાં નામ પ્રમાણે જ સમજવા.

વેણુદાલિ, હરિસહ, અગ્નિમાણુવ, વશિષ્ઠ, જલપ્રભ, અમિતવાહન, અને પ્રભંજન અને મહાઘોષ, આ આઠ ઉત્તર દિશાના ભવનપતિઓના ઈન્દ્રોની સેનાઓ અને સેનાધિપતિઓનાં નામ પ્રમાણે સમજવા. આ પ્રકારે ભવનપતિઓના ઈન્દ્રોના સાત અનીકો અને અનીકાધિપતિઓનાં નામ પ્રકટ કરીને હવે સૂત્રકાર કલ્પેન્દ્રોના સાત અનીકો અને સાત અનીકાધિપતિઓનું કથન કરે છે.

", सक्कस्स " ઈત્યાદિ—

દક્ષિણુ દિશાના શક્ર નામના ઇન્દ્રની પાસે સાત અનીકો (સેનાઓ) અને સાત અનીકાધિપતિઓ છે તેની સાત સેનાઓનાં નામ તો ચમરની સેના જેવાં જ છે, પરન્તુ ચોથી સેનાનું મહિષાનીકને બદલે વૃષભાનીક સમજવું. તે સાત સેનાઓનાં નામ આ પ્રમાણે કહ્યાં છે–પદાતાનીકનો અધિપતિ હરિણૈગમેષી દેવ છે, પીઠાનીકનો અધિપતિ વાયુ છે, કુંજરાનીકનો અધિપતિ

श्वेतो नाट्यानीकाधिपति', तुम्बुरुर्गन्धर्वानीकाधिपतिरिति। तथा-ईशानस्य औदीच्येन्द्रविशेषस्यापि सप्तानीकानि सप्तानीकाधिपतयश्च बोध्या'। तत्र-लघुपराक्रमः पादातानीकाधिपतिः महावायुः पीठानीकाधिपतिः, पुष्पदन्तः कुञ्जरानीकाधिपति', महादामर्द्धि र्वृषभानीकाधिपतिः, महामाठरो रथानीकाधिपतिः, महाश्वेतो नाट्यानीकाधिपति-, रति गन्धर्वानीकाधिपतिरिति। एवमेवाच्युतपर्यन्तानां सर्वेषां कल्पेन्द्राणाम् अनीकानि अनीकाधिपतयश्च बोध्याः। तत्र-शक्रवत् सनत्कुमारब्रह्मशुक्राभिधेयानां दाक्षिणात्येन्द्राणाम्, ईशानवच्च माहेन्द्रलान्तक-

दामर्द्धि है, रथानीक का अधिपति माठर है, नाट्यानीक का अधिपति श्वेत है, एवं गन्धर्वानीक का अधिपति तुम्बुरु है,

तथा-उत्तर दिशा के इन्द्र विशेष ईशान के सात अनीक और सात ही अनीकाधिपति कहे गये हैं. इनमें पादातानीक का अधिपति लघुपराक्रम है, पीठानीक का अधिपति महावायु है, कुञ्जरानीक का अधिपति पुष्पदन्त है. वृषभानीक का अधिपति महादामर्द्धि है, रथानीक का अधिपति महामाठर है, नाट्यानीक का अधिपति महाश्वेत है एवं गन्धर्वानीक का अधिपति रति है, इसी तरह से अच्युत पर्यन्त के सब कल्पेन्द्रों के अनीक और अनीकाधिपति समझना चाहिये इनमें शक्र की तरह सनत्कुमार, ब्रह्म, शुक्र, इन दक्षिणात्येन्द्रों के एवं ईशानकी तरह माहेन्द्र, लान्तक,

ઐરાવત, વૃષભાનીકનો અધિપતિ દામર્દ્ધિ, રથાનીકનો અધિપતિ માઠર, નાટ્યાનીકનો અધિપતિ શ્વેત અને ગન્ધર્વાનીકનો અધિપતિ તુમ્બુરુ છે.

ઉત્તર દિશાના ઇશાન નામના ઇન્દ્રની પાસે પણ સાત સેનાઓ અને સાત સેનાધિપતિઓ છે તેની સાત સેનાઓનાં નામ શક્રની સાત સેનાઓનાં નામ પ્રમાણે જ સમજવા. તે સેનાઓના સેનાધિપતિઓનાં નામ નીચે પ્રમાણે સમજવા–

પદાતાનીકનો સેનાધિપતિ લઘુપરાક્રમ છે, પીઠાનીકનો (હયદળનો) અધિપતિ મહાવાયુ છે, વૃષભાનીકનો અધિપતિ મહાદામર્દ્ધિ છે, કુંજરાનીકનો (હસ્તિકદળનો) અધિપતિ પુષ્પદન્ત છે, રથાનીકનો અધિપતિ મહામાઠર છે, નાટ્યાનીકનો અધિપતિ મહાશ્વેત છે અને ગન્ધર્વાનીકનો અધિપતિ રતિ છે.

સનત્કુમાર, બ્રહ્મ, અને શુક્ર આ ત્રણ દાક્ષિણાત્ય ઇન્દ્રોની સાત સેનાઓ અને સાત સેનાધિપતિઓનાં નામ શક્રની સાત સેનાઓ અને સાત અનીકાધિપતિઓનાં નામ પ્રમાણે જ સમજવા.

सहस्रारप्राणताच्युताभिधेयानामौदीच्येन्द्राणाम् अनीकानि अनीकाधिपतयश्च बोध्याः । अमुमेवार्थं सूचयितुमाह—'एवं जाव अच्चुयस्सवि नेयव्वं' इति। आनतारणौ देवलोकौ क्रमेण प्राणताच्युतेन्द्राधीनौ, अत एव चत्वारो दाक्षिणात्येन्द्रा इति ॥ सू० ४३ ॥

सम्प्रति चमरेन्द्राद्यधीनपादातानीकाधिपत्यधीनपादात–श्रेणिसंख्याः प्रतिश्रेणिस्थसैनिकसंख्याश्च प्ररूपयितुमाह—

मूलम्--चमरस्स णं असुरिंदस्स असुरकुमाररन्नो दुमस्स पायत्ताणियाहिवइस्स सत्त कच्छाओ पण्णत्ताओ, तं जहा-- पढमा कच्छा जाव सत्तमा कच्छा । चमरस्स णं असुरिंदस्स असुरकुमाररन्नो दुमस्स पायत्ताणियाहिवइस्स पढमाए कच्छाए चउसट्ठिदेवसहस्सा पण्णत्ता । जावइया पढमा कच्छा तव्विगुणा दोच्चा कच्छा, तव्विगुणा तच्चा कच्छा, तव्विगुणा चउत्थी कच्छा, तव्विगुणा पंचमी कच्छा, तव्विगुणा छट्ठी कच्छा तव्विगुणा सत्तमी कच्छा । एवं बलिस्स वि, णवरं महद्दुमो सट्ठिदेवसाहस्सिओ, सेसं तं चेव । धरणस्स एवं चेव,

सहस्रार, प्राणत, अच्युत, इन उत्तरदिशाके इन्द्रोंके सात२ अनीक और सात २ अनीकाधिपति जानना चाहिये, इसी बात को प्रकट करने के लिये सूत्रकारने " सेसं जहा पंचमट्ठाणे एवं जाव अच्चुयस्स वि नेयव्वं " ऐसा यह सूत्रपाठ कहा है, आनत और आरण ये दो देवलोक क्रमशः प्राणत और अच्युत इन्द्र के आधीन हैं, इसलिये दाक्षिणात्येन्द्र चार कहे गये हैं ॥ सू० ४३ ॥

માહેન્દ્ર, લાન્તક, સહસ્રાર પ્રાણત, અચ્યુત અને ઔદીચ્યેન્દ્રોની સાત સેનાઓ અને સાત સેનાધિપતિઓનાં નામ ઈશાનેન્દ્રની સાત સેનાઓ અને સાત સેનાધિપતિઓનાં નામ પ્રમાણે જ સમજવા. એજ વાત સૂત્રકારે "सेस जहा पंचमट्ठाणे एव जाव अच्चुयास वि नेयव्वं" આ સૂત્રપાઠ દ્વારા પ્રકટ કરી છે.

આનત અને પ્રાણુત, આ બે દેવલોક અનુક્રમે પ્રાણુત અને અચ્યુત ઇન્દ્રોને આધીન છે તેથી જ દાક્ષિણાત્ય ઇન્દ્રો ચાર જ કહેવામાં આવ્યા છે. ॥ સૂ ૪૩ ॥

णवरं अट्ठावीसं देवसहस्सा, सेसं तं चेव। जहा धरणस्स एवं जाव महाघोसस्स। नवरं पायत्ताणियाहिवई अन्ने ते पुव्वभणिया। सक्कस्स णं देविंदस्स देवरन्नो हरिणेगमेसियस्स सत्त कच्छाओ पण्णत्ताओ, तं जहा--पढमा कच्छा, एवं जहा चमरस्स तहा जाव अच्चुयस्स। णाणत्तं पायत्ताणियाहिवईणं, ते पुव्वभणिया देवपरीमाणमिमं—सक्कस्स चउरासीइं देवसहस्साइं। ईसाणस्स असीइं देवसहस्साइं। देवा इमाए गाहाए अणुगंतव्वा—चउरासीइ असीइ, बावत्तरि सत्तरी य सट्ठीया। पन्ना चत्तालीसा, तीसा वीसा दससहस्सा॥ १॥ जाव अच्चुयस्स लहुपरक्कमस्स दसदेवसहस्सा जाव जावइया छट्ठा कच्छा तब्विगुणा सत्तमा कच्छा॥ सू० ४४॥

छाया—चमरस्य खलु असुरेन्द्रस्य असुरकुमारराजस्य द्रुमस्य पादातानीकाधिपतेः सप्त कक्षाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—प्रथमा कक्षा यावत् सप्तमी कक्षा। चमरस्य खलु असुरेन्द्रस्य असुरकुमारराजस्य द्रुमस्य पादातानीकाधिपतेः प्रथमायां कक्षायां चतुष्षष्टिर्देवसहस्राणि प्रज्ञप्तानि। यावती प्रथमाकक्षा तद्द्विगुणा द्वितीया कक्षा, तद्द्विगुणा तृतीया कक्षा, तद्द्विगुणा चतुर्थी कक्षा, तद्द्विगुणा पञ्चमी कक्षा, तद्द्विगुणा षष्ठी कक्षा, तद्द्विगुणा सप्तमी कक्षा। एवं बलेरपि, नवरं महाद्रुमः षष्टि देवसाहस्रिकः, शेषं तदेव। धरणस्यैवमेव, नवरम्—अष्टाविंशतिर्देवसहस्राणि, शेषं तदेव। यथा धरणस्य, एवं यावन्महाघोषस्य। नवरं पादातानीकाधिपतयोऽन्ये ते पूर्वभणिताः। शक्रस्य खलु देवेन्द्रस्य देवराजस्य हरिणैगमैषिणः सप्त कक्षाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—प्रथमा कक्षा एवं यथा चमरस्य तथा यावत् अच्युतस्य। नानात्वं पादातानीकाधिपतीनां, ते पूर्वभणिताः देवपरिमाणमिदं शक्रस्य चतुरशीतिर्देवसहस्राणि। ईशानस्य अशीतिर्देवसहस्राणि। देवा अनया गाथयाऽनुगन्तव्याः—

चतुरशीतिरशीतिर्द्वा सप्ततिः सप्ततिश्च षष्ठिः। पञ्चाशत् चत्वारिंशत् त्रिंशत् विंशतिः दश सहस्राणि॥ १॥ यावत् अच्युतस्य लघुपराक्रमस्य दशदेवसहस्राणि यावत् यावती षष्ठी कक्षा तद्द्विगुणा सप्तमीकक्षा॥ सू० ४४॥

टीका—' चमरस्स णं ' इत्यादि—

चमरनामकदाक्षिणात्यभवनपतीन्द्राधीनद्रुमनामकपादातानीकाधिपतेः सप्त कक्षाः=पदातिसेनापङ्क्तयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-प्रथमा यावत्सप्तमी। तत्र प्रथमायां कक्षायां चतुष्षष्टिसहस्रसैनिकाः द्वितीयायां प्रथमकक्षातो द्विगुणा सैनिकसंख्या बोध्या। अर्थात्-द्वितीयायां कक्षायामष्टाविंशतिसहस्राधिकैकलक्षसंख्यकाः पदातयो बोध्याः। एवमग्रेऽपि पूर्वपूर्वापेक्षयाऽपरापरस्याः कक्षाया द्विगुणत्वं बोध्यम्। तत्र तृतीयकक्षायां षट्पञ्चाशत्सहस्राधिकद्विलक्षसंख्यकाः, चतुर्थ्यां द्वादशसहस्राधिकपञ्चलक्षसंख्यकाः, पञ्चम्यां चतुर्विंशतिसहस्राधिकदश-

---

अब सूत्रकार चमरेन्द्र आदि के अधीन जो पादातानीकाधिपति (पैदल सैन्य के अधिपति) हैं और पादातानीकाधिपति के अधीन जो पादातश्रेणि संख्या है एवं प्रति श्रेणिस्थ सैनिक संख्या है उसकी प्ररूपणा करते हैं-" चमरस्स णं असुरिंदस्स असुरकुमाररन्नो-इत्यादि

टीकार्थ-असुरेन्द्र असुरकुमार राज चमरके अधीन जो द्रुमनामका पादातानीकाधिपति है, उसकी सात कक्षाएँ कही गयी हैं, पदाति सेना की पंक्ति का नाम कक्षा है। जैसे-प्रथमा-कक्षा-यावत् सप्तमी कक्षा इन में से प्रथम कक्षा में ६४ हजार सैनिक होते हैं, द्वितीय कक्षा में प्रथम कक्षा से दूने सैनिक होते हैं, अर्थात् १ लाख २८ हजार सैनिक द्वितीय कक्षा में होते हैं। इसी प्रकार से सातवीं कक्षा तक सैनिकों की द्विगुणता जाननी चाहिये, इस तरह तृतीय कक्षा में २, लाख ५६ हजार सैनिक होते हैं, चतुर्थ कक्षा में ५ लाख १२ हजार सैनिक होते हैं, पांचवीं कक्षा में १० लाख २४ हजार होते हैं, छठी कक्षा में २०

ચમરેન્દ્ર આદિના જે પદાતાનીકાધિપતિ (પાયદળના સેનાધિપતિ) છે, તેને અધીન જે પદાત (પાયદળ) શ્રેણિ સંખ્યાઓ છે તેમનું તથા પ્રત્યેક શ્રેણિસ્થ સૈનિકોની સંખ્યાનું નિરૂપણ હવે સૂત્રકાર નીચેના સૂત્ર દ્વારા કરે છે-

" चमरस्स णं असुरिंदस्स असुरकुमाररन्नो " ઈત્યાદિ—(સૂ. ૪૪)

ટીકાર્થ-અસુરેન્દ્ર અસુરકુમારરાજ ચમરના પદાતાનીકાધિપતિ દ્રુમની સેનાની સાત કક્ષાઓ (શ્રેણીઓ) કહી છે. પદાતિ સેનાની પંક્તિને કક્ષા કહે છે. તે સાત કક્ષાઓ નીચે પ્રમાણે કહી છે-પ્રથમાથી લઈને સપ્તમી પર્યન્તની સાત કક્ષાઓ અહીં સમજી લેવી. પ્રત્યેક કક્ષામાં સૈનિકોની સંખ્યા નીચે પ્રમાણે કહી છે. પહેલી કક્ષામાં ૬૪ હજાર, બીજીમાં ૧ લાખ ૨૮ હજાર, ત્રીજીમાં ૨ લાખ ૫૬ હજાર, ચોથીમાં પાંચ લાખ બાર હજાર પાંચમીમાં ૧૦ લાખ ૨૪ હજાર,

लक्षसंख्यकाः, षष्ठयाम् अष्टचत्वारिंशत्सहस्राधिकविंशतिलक्षसंख्यकाः, सप्तम्यां षण्णवतिसहस्राधिकचत्वारिंशल्लक्षसंख्यका इति । एवं=चमरेन्द्रवत् बलेरपि बलिनामकस्य औदीच्यभवनपतीन्द्रस्यापि विषये बोध्यम् । विशेषस्त्वयम्–बलेः पादातानीकाधिपतिर्महाद्रुमः, स हि षष्टिदेव साहस्रिकः=महाद्रुमस्य प्रथमकक्षायां षष्टिसहस्रदेवाः सन्तीत्यर्थः । 'सेसं तं चेव' इति, शेषं तदेव, अर्थात्–द्वितीयादिषु षट्सु कक्षासु प्रत्येकत्र पूर्वपूर्वकक्षास्थसैनिकापेक्षया उत्तरोत्तरकक्षायां द्विगुणी संख्या विज्ञेयेति । तथा–धरणस्यापि एवमेव विज्ञेयम्–नवरं–तत्पादातानीकाधिपति भद्रसेनापरपर्यायो रुद्रसेनः । तस्य प्रथमकक्षायां तु अष्टाविंशतिसहस्राणि-

लाख ४८ हजार सैनिक होते हैं और सातवीं कक्षा में ४० लाख ९६ हजार सैनिक होते हैं। चमरेन्द्र की तरह उत्तर दिशा के भवनपति के अधिपति बलि नामक इन्द्र के संबन्ध में भी जानना चाहिये, विशेषता यहां ऐसी है–इनके जो पादातानीक के अधिपति महाद्रुम हैं वे ६० हजार देवों के अधिपति हैं, अर्थात् महाद्रुम की प्रथम कक्षा में ६० हजार देव हैं "सेसं तं चेव" द्वितीय कक्षा से लेकर सातवीं कक्षा तक यहां पर भी सैनिक की संख्या द्विगुणित करते जाना चाहिये. इस तरह द्वितीय कक्षामें १ लाख २० हजार सैनिकहैं तृतीय कक्षामें २ लाख ४० हजार सैनिक हैं, चतुर्थ कक्षा में ४ लाख ८० हजार सैनिक हैं, पांचवीं कक्षा में ९ लाख ६० हजार सैनिक हैं, छठी कक्षा में १९ लाख वीस हजार सैनिकहैं और ७ वीं कक्षामें ३८ लाख ४० हजारहैं।

तथा धरण के भी इसी तरह से जानना चाहिये उसके पादाता-

છઠ્ઠીમાં ૨૦ લાખ ૪૮ હજાર અને સાતમીમાં ૪૦ લાખ ૯૬ હજાર સૈનિકો હોય છે, એમ સમજવું

હવે ઉત્તર દિશાના ભવનપતિઓના બલિ નામના ઇન્દ્રનો જે મહાદ્રુમ નામનો પદાતાનીકાધિપતિ છે તેની સેનાની જે સાત કક્ષાઓ છે તેમાંની પ્રત્યેક કક્ષામાં કેટલા સૈનિકો છે તે પ્રકટ કરવામાં આવે છે-મહાદ્રુમની પહેલી કક્ષામાં ૬૦ હજાર દેવો (સૈનિકો) છે. "સેસ તં ચેવ" અહીં પણ આગલી કક્ષા કરતાં પાછલી કક્ષામાં બમણાં બમણાં સૈનિકો કહેવા જોઈએ જેમ કે બીજીમાં ૧ લાખ ૨૦ હજાર, ત્રીજીમાં બે લાખ ૪૦ હજાર, ચોથીમાં ૪ લાખ ૮૦ હજાર, પાંચમીમાં ૯ લાખ ૬૦ હજાર, છઠ્ઠીમાં ૧૯ લાખ ૨૦ હજાર અને સાતમીમાં ૩૮ લાખ ૪૦ હજાર સૈનિકો છે, એમ સમજવું જોઈએ.

ધરણનો જે ભદ્રસેન નામનો પાદાતાનીકાધિપતિ છે તેની પાયદળ સેનાની

देवाः। शेषं तद्वेव=पूर्ववदेव, अर्थात्-पूर्वपूर्वकक्षापेक्षया उत्तरोत्तरकक्षायां सैनिकानां द्विगुणत्वं बोध्यमिति। यथा धरणस्य=दाक्षिणात्यधरणेन्द्राधीनरुद्रसेननामकपादातानीकाधिपतेः सैनिकानां सप्त कक्षाः प्रतिकक्षस्थसैनिकसंख्याश्च, एवम्=अमुना प्रकारेण यावन्महाघोषस्य-यावत्पदसंगृहीतानां भूतानन्द-वेणुदेव-वेणुदालि-हरिकान्त-हरिसहा-ग्निशिखा-ग्निमाणव-पूर्ण-वशिष्ठ - जलकान्तजलप्रभा-मितगत्यमितवाहन-वेलम्ब-प्रभञ्जन-घोषाणां षोडशानां, महाघोषस्य च सर्वेषामपि दाक्षिणात्यौदीच्येन्द्राणां बोध्याः। एतदधीनपादातानीकाधिपतीनां

नीक के अधिपति भद्रसेन हैं-इनका दूसरा नाम रुद्रसेन भी है उसकी प्रथम कक्षा में २८ हजार देव हैं. यह धरण दक्षिणदिशा का अधिपति है, इसके पादातानीक का अधिपति (पैदल सैन्य का अधिपति ' भद्रसेन जिसका दूसरा नाम रुद्रसेन है इसकी भी सात कक्षाएँ हैं, प्रथम कक्षा में २८, हजार देव हैं, द्वितीय कक्षा में ५६ हजार देव हैं। तृतीय कक्षा में १ लाख १२, हजार देव हैं। इसी प्रकार से द्विगुणता सातवीं कक्षा तक जाननी चाहिये, इसी तरह से यावत् महाघोष इन्द्रके भी समझना चाहिये, यहां यावत्पद से भूतानन्द, वेणुदेव वेणुदालि, हरिकान्त, हरिषह, अग्निशिख, अग्निमाणव, पूर्ण, वशिष्ठ, जलकान्त, जलप्रभ, अमितगति, अमितवाहन, वेलम्ब, प्रभञ्जन, और घोष इन १६ इन्द्रों का ग्रहण हुआहै, इन में ८ दक्षिणार्धके पति और ८, उत्तरार्धके अधिपतिहैं-जैसे-असुर कुमारोंमें चमर औरबलि ये

પણ સાત કક્ષાઓ કહી છે. ભદ્રસેનનું બીજું નામ રુદ્રસેન છે ધરણ દક્ષિણ દિશાનો ઇન્દ્ર છે ભદ્રસેનના પાયદળની પહેલી કક્ષામાં ૨૮ હજાર દેવો છે, બીજીમાં ૫૬ હજાર દેવો છે, ત્રીજીમાં ૧ લાખ ૨૮ હજાર દેવો છે એજ પ્રમાણે સાતમી કક્ષા સુધીની કક્ષાઓના સૈનિકોની સંખ્યા કહેવી જોઈએ પ્રત્યેક કક્ષામાં આગલી કક્ષા કરતાં બમણા સૈનિકો સમજવા એજ પ્રકારનું કથન મહાઘોષ પર્યન્તના ઇન્દ્રોના પદાતાનીકાધિપતિઓની સેનાઓની કક્ષાઓ વિષે પણ સમજવું એટલે કે ભૂતાનન્દ, વેણુદેવ, વેણુદાલિ, હરિકાન્ત, હરિષહ, અગ્નિશિખ, અગ્નિમાણવ, પૂર્ણ, વશિષ્ઠ, જલકાન્ત, જલપ્રભ, અમિતગતિ, અમિતવાહન, વેલમ્બ, પ્રભંજન, ઘોષ અને મહાઘોષ આ ૧૬ ઇન્દ્રોના પાદાતાનીકાધિપતિઓની સેનાઓની સાત સાત કક્ષાઓ છે અને પ્રત્યેક કક્ષામાં આગલી કક્ષા કરતાં બમણા સૈનિકો છે એમ સમજવું.

सैनिककक्षाः, प्रथमकक्षायाम् अष्टाविंशतिसहस्रसैनिकाः द्वितीयादिषु पूर्वपूर्वापेक्षया द्विगुणा द्विगुणाश्च सैनिकसंख्याः पूर्ववद् विज्ञेया इति भावः । पादातानीकाधिपतयश्चैषां पृथक्पृथगेव, तेषां नामानि च पूर्वं भणितानि । तत्र-भूतानन्दस्य पादातानीकाधिपतिर्दक्षः । एतन्नामका एव पादातानीकाधिपतयो वेणुदालिक – हरिपहाग्निमाणवत्रशिष्ठजलप्रभामितवाहनप्रभञ्जनमहाघोषाणामौदीच्येन्द्राणां विज्ञेयाः । धरणस्य तु पादातानीकाधिपती रुद्रसेनः । एतन्नामान एव पादातानीकाधिपतयो वेणुदेवहरिकान्ताग्निशिखपूर्णजलकान्तामितगतिवेलम्बघोषाणां सर्वेषां दाक्षिणात्येन्द्राणां बोध्या इति ।

अथ शक्रेन्द्राधीनपादातानीकाधिपति सप्तकक्षासु प्रतिकक्षास्थितसैनिकसंख्यां निर्देष्टुमाह–'सक्कस्स णं' इत्यादि । देवेन्द्रस्य देवराजस्य शक्रस्याज्ञायां वर्त्तमानस्य हरिणैगमैषिणो देवस्य सप्त कक्षाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा – प्रथमकक्षा, एवमेव क्रमेण चमरवत् द्वितीयादि सप्तम्यन्ताः कक्षा, तत्रस्थितसैनिकसंख्याश्च वक्तव्याः । चमरवद् वक्तव्यता तु–

दो इन्द्र हैं इनमें चमर दक्षिणार्धका अधिपतिहै और बलि उत्तरार्द्धका अधिपतिहै, नागकुमारोंके इन्द्र धरण और भूतानन्दहैं, इनमें धरण दक्षिणार्धका अधिपतिहै और भूतानन्द उत्तरार्धपतिहै । इसी प्रकारसे अन्यत्र भी समझ लेना चाहिये इन सब के पादातानीकाधिपति की सात कक्षाओं में से प्रत्येक कक्षा में स्थित जो सैनिक हैं उनकी संख्या प्रकट करने के लिये "सक्कस्स णं" इत्यादि सूत्र पाठ कहते हैं-देवेन्द्र देवराज शक्र की आज्ञा में वर्तमान जो हरिणैगमेषी देव है उसकी सात कक्षाएँ हैं–उनके नाम प्रथम कक्षा, द्वितीय कक्षा, तृतीय कक्षा इत्यादि हैं – जैसी कक्षाएँ चमर की वक्तव्यता में प्रकट

ઉપર જે ૧૬ ઇન્દ્રોની વાત કરી તેમાંથી ૮ દક્ષિણાધિપતિ છે અને ૮ ઉત્તરાધિપતિ છે. જેમ કે અસુરકુમારોના ચમર અને બલિ નામના બે ઇન્દ્રો છે. તેમાંથી ચમર દક્ષિણાધિપતિ છે અને બલિ ઉત્તરાર્ધાધિપતિ છે નાગકુમારોના ઇન્દ્રોનાં નામ ધરણ અને ભૂતાનન્દ છે તેમાંથી ધરણ દક્ષિણાર્ધાપતિ છે અને ભૂતાનન્દ ઉત્તરાર્ધાધિપતિ છે એજ પ્રમાણે આગળ પણ સમજી લેવું. આ સોળે ઇન્દ્રોના પાદાતાનીકાધિપતિની જે સાત સાત કક્ષાઓ છે, તે પ્રત્યેક કક્ષામાં કેટલા કેટલા સૈનિકો છે તે "सक्कस्स णं" ઇત્યાદિ સૂત્રપાઠ દ્વારા સૂત્રકારે પ્રકટ કર્યું છે દેવેન્દ્ર દેવરાજ શક્રનો જે પાદાતાનીકાધિપતિ છે તેનું નામ હરિણૈગમેષી દેવ છે. તેની પાદાતાનીક (પાયદળ) સેનાની સાત કક્ષાઓ છે. તે કક્ષાઓનાં નામ પહેલી કક્ષા, બીજી કક્ષા, ત્રીજી કક્ષા, ઇત્યાદિ સમજવા ચમરની

ईशानाद्यच्युतपर्यन्तानामपि बोध्या। अमुमेवार्थमाह–सूत्रकारः–'एवं जहा चमरस्स तहा जाव अच्चुयस्स' इति। एतेषां पादातानीकाधिपतयस्तु भिन्ना एव ते च पूर्वं भणिताः तदुक्तं मूले–'णाणत्तं पायत्ताणियाहिवईणं ते पुव्वभणिया' इति। एतेषां शक्राद्यच्युतान्तानां दशानामपीन्द्राणामाज्ञायां स्थितानां पादातानीकाधिपतीनां प्रथमकक्षायां सैनिकदेवपरिमाणमिदम्, तथाहि–शक्रेन्द्राधीनहरिणैगमैषि पादातानीकाधिपतेः प्रथमकक्षायां चतुरशीति सहस्रसंख्यका देवाः, ईशानेन्द्राधीनलघुपराक्रमनामकपादातानीकाधिपतेः प्रथमकक्षायाम् अशीतिसहस्रसंख्यका देवाः, एवं तत्तदिन्द्राधीनतत्तत्पादातानीकाधिपतीनां प्रथमकक्षायां देवसंख्याऽनया गाथयाऽनुगन्तव्या, सा तु 'चउरासीई' इत्यादि। तत्र–चतु·

की गई है – वैसी ही ये यहां जाननी चाहिये – तथा – इन में सैनिकों की संख्या भी वैसी ही जाननी चाहिये, यही बात सूत्रकार ने "एव जहा चमरस्स तहा जाव अच्चुयस्स" इस सूत्रपाठ द्वारा प्रकट की है, परन्तु इनके पादातानीकाधिपति तो भिन्न २ नामवाले हैं, जैसा कि पहिले प्रकट किया जा चुका है–यही बात–"णाणत्तं पायत्ताणियाहिवईणं ते पुव्वभणिया" इस सूत्रपाठ द्वारा सूत्रकारने समझाई है, शक्र से लेकर अच्युत तक के १० इन्द्रोंकी आज्ञा में वर्तमान पादातानीकाधिपतियों की प्रथम कक्षा में सैनिक देवों का परिमाण इस प्रकार से है–"सक्कस्स चउरासीइं" इत्यादि–शक्रेन्द्र के अधीन जो हरिणैगमैषी पादातानीकाधिपति है उसकी प्रथम कक्षा में ८४ हजार देव हैं, ईशानेन्द्र के अधीन जो लघुपराक्रम नाम का

વક્તવ્યતામાં જેવી કક્ષાઓ પ્રકટ કરવામાં આવી છે એવી જ કક્ષાઓ અહીં પણ સમજવી જોઈએ. પ્રત્યેક કક્ષામાં સૈનિકોની સંખ્યા પણ એ જ પ્રમાણે સમજવી એ જ વાત સૂત્રકારે "एवं जहा चमरस्स तहा जाव अच्चुयस्स" આ સૂત્રપાઠ દ્વારા પ્રકટ કરી છે. પરન્તુ તેમના પાદાતાનીકાધિપતિઓનાં નામ જુદાં જુદાં છે તે નામો આગલા સૂત્રમાં પ્રકટ કરવામાં આવ્યા છે. એ જ વાત સૂત્રકારે "णाणत्तं पायत्ताणियाहिवईणं ते पुव्वभणिया" આ સૂત્રપાઠ દ્વારા પ્રકટ કરી છે શક્રથી લઈને અચ્યુત પર્યન્તના ૧૦ ઇન્દ્રોના પાદાતાનીકાધિપતિની સેનાની પ્રથમ કક્ષામાં કેટલા સૈનિકો છે તે "सक्कस्स चउरासीइं" ઇત્યાદિ સૂત્રપાઠ દ્વારા પ્રકટ કરવામાં આવ્યું છે. શક્રના પાદાતાનીકાધિપતિ હરિણૈગમેષી દેવની સેનાની પ્રથમ કક્ષામાં ૮૪ હજાર દેવો (સૈનિક દેવો) છે, ઈશાનના લઘુપરાક્રમ નામના પાદાતાનીકાધિપતિની સેનાની પ્રથમ કક્ષામાં ૮૦

रशीतिः सहस्राणि, अशीतिः सहस्राणि चेति क्रमेण शक्रेशानयोर्योज्यम् । एवं द्वासप्तत्यादयोऽपि क्रमेण सनत्कुमारादिषु योज्याः । सर्वत्र पूर्वपूर्वकक्षापेक्षयाऽपरापरस्यां कक्षायां सैनिकसंख्या द्विगुणा बोध्या । अमुमेवार्थं मनसि कृत्याह— ' जाव अच्चुयस्स लहुपरक्कमस्स दस देवसहस्सा जाव जावइया छट्ठा कच्छा तब्बिगुणा सत्तमा कच्छा । " इति ॥ सू० ४४ ॥

पूर्वोक्तं समस्तमपीदं वचनेन ज्ञायते इति वचनभेदानाह—

मूलम्--सत्तविहे वयणविकप्पे पण्णत्ते, तं जहा--आलावे १, अणालावे २, उल्लावे ३, अणुल्लावे ४, संलावे ५, पलावे ६ विप्पलावे ८ ॥ सू० ४५ ॥

छाया—सप्तविधो वचनविकल्पः, प्रज्ञप्तः तद्यथा–आलापः १ अनालापः २, उल्लापः ३, अनुल्लापः ४, संलापः ५, प्रलापः ७ ॥ सू० ४५ ॥

पादातानीकाधिपति है उसकी प्रथम कक्षा में ८० हजार देव हैं। इसी तरह से सनत्कुमार अच्युत तक अनीकाधिपतियों की प्रथम कक्षा में देवों का प्रमाण क्रमशः ७२, ७०, ६०, ५०, ४०, ३०, २०, और १०, हजार जानना चाहिये, यह परिमाण शक्रेन्द्र से लेकर अच्युत तक के देवों के अनीकाधिपतियों की प्रथम कक्षा के देवों का है, द्वितीयादि-कक्षा के देवों का परिमाण अपनी २ प्रथमादि कक्षा से दूना २ यावत् सातवीं कक्षा तक कर लेना चाहिये, ॥ सूत्र ४४ ॥

यह सब कथन वचन से ही समझाया जाता है–अतः अब सूत्रकार वचन के भेदों का कथन करते हैं—

હજાર દેવો છે, એજ પ્રમાણે સનત્કુમારથી લઈને અચ્યુત પર્યન્તના ઇન્દ્રોની પાદાતાનીકાધિપતિની સેનાની પ્રથમ કક્ષામાં અનુક્રમે ૭૨, ૭૦, ૬૦, ૫૦, ૪૦, ૩૦, ૨૦ અને ૧૦ હજાર સૈનિકો છે. દરેકની બીજી કક્ષામાં પહેલી કક્ષા કરતાં બમણી સૈનિકસંખ્યા સમજવી. એજ પ્રમાણે સાતમી કક્ષા સુધીની કક્ષાઓમાં આગલી કક્ષા કરતાં બમણી સંખ્યા સમજવી. બીજી કરતાં ત્રીજીમાં બમણી, ત્રીજી કરતાં ચોથીમાં બમણી, ચોથી કરતાં પાંચમીમાં બમણી, પાંચમી કરતાં છટ્ઠીમાં બમણી અને છટ્ઠી કરતાં સાતમી કક્ષામાં બમણી સૈનિકસંખ્યા સમજવી. ॥ સૂ. ૪૪ ॥

આ બધું કથન વચન વડે જ સમજાવી શકાય છે, તેથી હવે સૂત્રકાર વચનના ભેદોનું નિરૂપણ કરે છે–" सत्तविहे वयणविकप्पे पण्णत्ते " ઇત્યાદિ—

टीका—' सत्तविहे ' इत्यादि—

वचनविकल्पः-वचनम्-भाषणं, तस्य विकल्पो भेदः सप्तविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-आलापः-आङ्ईषदर्थत्वात् ईषल्लपनम्-अल्पभाषणमित्यर्थः १। अनालापः, नञः कुत्सार्थत्वम् अल्पार्थत्वं च, ततश्च-अनालापः=कुत्सितभाषणमल्पभाषणं चेत्यर्थः २। उल्लापः=काक्वा वर्णनम्, तदुक्तम्-" काक्वा वर्णनमुल्लापः " इति ३। अनुलापः=मुहुर्भाषणम्, तदुक्तम्-' अनुलापो मुहुर्भाषा ' इति ४। संलापः-अन्योन्यभाषणम्, तदुक्तम्-" संलापो भाषणं मिथः ' इति ५। प्रलापोऽनर्थकभाषणम्, तदुक्तम्-" प्रलापोऽनर्थकं वचः " इति ६। स एव विविधोऽनेकप्रकारकः सन् विप्रलाप इत्युच्यते इति ७ ॥ सू० ४५ ॥

" सत्तविहे वयणविकप्पे पण्णत्ते-इत्यादि । सूत्र ॥ ४५ ॥

टीकार्थ-सात प्रकारका वचन-विकल्प-भेद कहा गयाहै जैसे-आलाप १, अनालाप २ उल्लाप ३, अनुल्लाप ४, संलाप ५, प्रलाप ६ और विलाप ७, इन में अल्प भाषण का नाम आलाप है, कुत्सितभाषण करना या अल्पभाषण करना यह अनालाप है। यहाँ नञ् कुत्सित अर्थ में या अल्पार्थ में प्रयुक्त हुआहै । १काकुसे वर्णन करना इसका नाम उल्लाप है। बार बार भाषण करना इसका नाम २ अनुल्लापहै। परस्पर में भाषण करना इसका नाम ३ संलापहै, अनर्थक भाषण करना इसका नाम प्रलाप है, ४ प्रलाप ही जब अनेक प्रकार का होना है तब वह विप्रलाप कहलाता है ॥ सूत्र ४५ ॥

વચનવિકલ્પ (વચનના પ્રકારો) સાત કહ્યા છે-(૧) આલાપ, (૨) અનાલાપ, (૩) ઉલ્લાપ, (૪) અનુલ્લાપ, (૫) સંલાપ, (૬) પ્રલાપ અને (૭) વિલાપ અલ્પ ભાષણને આલાપ કહે છે. કુત્સિત ભાષણ કરવું તેનું નામ અનાલાપ છે અહીં ' अन् ' ઉપસર્ગ કુત્સિત અર્થમાં અથવા અલ્પાર્થમાં વપરાયો છે.

" काक्वा वर्णनमुल्लापः " કાકુ પૂર્વક (ઠાકલૂદી પૂર્વક) વર્ણન કરવું તેનું નામ ઉલ્લાપ છે.

" अनुलापो मुहुर्भाषाः " વારંવાર બોલ્યા કરવું તેનું નામ અનુલાપ છે.

" संलापो भाषणं मिथः " પરસ્પરની સાથે વાતચીત કરવી તેનું નામ સંલાપ છે. અનર્થક વાત કરવી તેનું નામ પ્રલાપ છે-કહ્યુ પણ છે કે " प्रलापोऽनर्थभाषणम् " પ્રલાપ જ જ્યારે અનેક પ્રકારનો હોય છે, ત્યારે તેનું નામ વિલાપ અથવા વિપ્રલાપ થઈ જાય છે. ॥ સૂત્ર ૪૫ ॥

१. काक्वा वर्णनमुल्लापः, २ अनुलापो मुहुर्भाषाः ३ संलापो भाषणं मिथः ४ प्रलापोऽनर्थ भाषणम्.

पूर्वोक्तेषु वचनभेदेषु केचिद् वचनभेदाः विनयार्थमपि प्रयुज्यन्ते इति तद्भेदप्रदर्शनाय प्राह—

मूलम्--सत्तविहे विणए पण्णत्ते, तं जहा--णाणविणए १, दंसणविणए २, चरित्तविणए ३, मणविणए ४, वइविणए ५, कायविणए ६ लोगोवयारविणए ७। पसत्थमणविणए सत्तविहे पण्णत्ते, तं जहा--अपावए १, असावज्जे २, अकिरिए ३, निरुवक्केसे ४ अणण्हयकरे ५, अच्छविकरे ६, अभूताभिसंकमणे ७। अप्पसत्थमणविणए सत्तविहे पण्णत्ते, तं जहा--पावए १ सावज्जे २ सकिरिए ३ सउवक्केसे ४ अण्हयकरे ५ छविकरे ६ भूताभिसंकमणे ७। पसत्थवइविणए सत्तविहे पण्णत्ते, तं जहा--अपावए १ असावज्जे २ जाव अभूयाभिसंकमणे ७। अप्पसत्थवइविणए सत्तविहे पण्णत्ते, तं जहा--पावए १ जाव भूयाभिसंकमणे ७। पसत्थकायविणए सत्तविहे पण्णत्ते, तं जहा--आउत्तं गमणं १, आउत्तं ठाणं २ आउत्तं निसीयणं ३ आउत्तं तुयट्टणं ४ आउत्तं उल्लंघणं ५, आउत्तं पल्लंघणं ६, आउत्तं सव्विंदियजोगजुंजणया ७। अप्पसत्थकायविणए सत्तविहे पण्णत्ते, तं जहा—अणाउत्तं गमणं १ जाव अणाउत्तं सव्विंदियजोगजुंजणया ७। लोगोवयारविणए सत्तविहे पण्णत्ते, तं जहा—अब्भासवत्तियं १, परच्छंदाणुवत्तियं २, कज्जहेउं ३ कयपडिकिइया ४ अत्तगवेसणया ५, देसकालण्णुया ६, सव्वत्थेसु या पडिलोमया ७ ॥ सू० ४६ ॥

छाया—सप्तविधो विनयः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–ज्ञानविनयः १, दर्शनविनयः २, चारित्रविनयः ३, मनोविनयः ४, वाग्विनयः ५, कायविनयः ६, लोकोपचारविनयः ७। प्रशस्तमनोविनयः सप्तविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–अपापकः १, असावद्यः २, अक्रियः ३, निरुपक्लेशः ४, अनास्रवकरः ५, अक्षपिकरः ६, अभूताभिसंक्रमणः ७। अप्रशस्तमनोविनयः सप्तविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–पापकः १ सावद्यः २ सक्रियः ३ सोपक्लेशः ४, आस्रवकरः ५, क्षपिकरो ६, भूताभिसंक्रमणः ७। प्रशस्तवाग्विनयः सप्तविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–अपापकः १, असावद्यो २, यावत् अभूताभिसंक्रमणः ७। अप्रशस्तवाग्विनयः सप्तविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–पापको १ यावद् भूताभिसंक्रमणः। प्रशस्तकायविनयः सप्तविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–आयुक्तं गमनम् १, आयुक्तं स्थानम् २, आयुक्तं निषदनम् ३, आयुक्तं त्वग्वर्त्तनम् ४, आयुक्तम् उल्लङ्घनम् ५, आयुक्तं प्रलङ्घनम् ६, आयुक्तं सर्वेन्द्रिययोगयोजनता ७। अप्रशस्तकायविनयः सप्तविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–अनायुक्तं गमनं १ यावत् अनायुक्तं सर्वेन्द्रिययोगयोजनता ॥ ७ ॥ लोकोपचारविनयः सप्तविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–अभ्यासवर्त्तित्वं १ परच्छन्दानुवर्त्तित्वं २, कार्यहेतुः ३, कृतप्रतिकृतिता ४, आत्मगवेषणता ५, देशकालज्ञता ६, सर्वार्थेषु चाप्रतिलोमता ७ ॥ सू० ४६ ॥

टीका—' सत्तविहे ' इत्यादि—

विनयः–विनीयते=दूरीक्रियते आत्मसंलग्नमष्टप्रकारकं कर्म येन स विनयः, स सप्तविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–' ज्ञानविनय ' इत्यादि। तत्र–ज्ञानविनयः–ज्ञानम्=

पूर्वोक्त वचन भेदों में कितनेक वचन भेद विनय के निमित्त भी प्रयोग में लाये जाते हैं इसलिये अब सूत्रकार विनय के भेद दिखाने के लिये सूत्र का कथन करते हैं—" सत्तविहे विणए " इत्यादि ॥

टीकार्थ–विनय सात प्रकारका कहा गयाहै, आत्माके साथ संलग्न आठ प्रकार का कर्म जिसके द्वारा दूर किया जाता है वह विनय है, यह

આગલા સૂત્રમાં વચનના ભેદો પ્રકટ કરવામાં આવ્યા તેમાથી કેટલાક વચન ભેદોનો વિનયને નિમિત્તે પણ પ્રયોગ થતો હોય છે. તેથી હવે સૂત્રકાર વિનયના ભેદનું કથન કરે છે-" सत्तविहे विणए " ઇત્યાદિ—(સૂ ૪૬)

વિનય સાત પ્રકારનો કહ્યો છે. આત્માને વળગેલાં આઠ પ્રકારના કર્મોનો જેના દ્વારા નાશ કરવામાં આવે છે, તેનું નામ વિનય છે તે વિનયના નીચે પ્રમાણે સાત પ્રકાર કહ્યા છે-

आभिनिबोधिकादिकं पञ्चविधं, तदेव विनयः । यद्वा-ज्ञानस्य विनयो=भक्तिबहुमानादिकरणं तदुक्तम्—

" भत्ती बहुमाणो तह, तद्दिट्ठत्थाण सम्मभावणया ।
विहिगहणब्भासो वि य, एसो विणओ जिणाभिहिओ ॥ १ ॥ "

छाया—भक्तिबहुमानस्तथातद् दृष्टार्थानां सम्यग्भावनता ।
विधिग्रहणम् अभ्यासोऽपि च, एष विनयो जिनाभिहितः ॥ १ ॥

तथा—दर्शनविनयः-दर्शनं=सम्यक्त्वम् , तदेव विनयः, अथवा-दर्शनदर्शनिनोरभेदाद् दर्शनस्य=दर्शनगुणाधिकपुरुषस्य विनयः-शुश्रूषणाऽनाशातनारूप-इति । तदुक्तम्—

विनय ज्ञानविनय, दर्शनविनय, चारित्रविनय, मनोविनय, वचनविनय, काय विनय, और लोकोपचार विनय के भेद से सात प्रकारका कहा गया है, इनमें पांच प्रकार का जो ज्ञानहैं-आभिनिबोधिक ज्ञान, (मतिज्ञान)श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान-सो ज्ञान विनय इन्हीं रूप होता है-अथवा इन पांच प्रकार के ज्ञानों का जो विनय करना है-भक्ति बहुमान आदि करना है-वह ज्ञानविनय है-कहा भी है—" भत्ती तह बहुमाणे इत्यादि ।

दर्शन नाम सम्यक्त्व का है, इस सम्यक्त्व का होना ही सम्यक्त्व विनय अथवा दर्शन विनयहै, अथवा-दर्शन और दर्शनवाले में अभेद करने से दर्शन का-दर्शन गुणाधिक पुरुष का-विनय करना-शुश्रूषणा (सेवा)करना, उनकी आशातना नहीं करना यह दर्शन विनयहै कहा भीहै-

---

(૧) જ્ઞાનવિનય, (૨) દર્શનવિનય, (૩) ચારિત્રવિનય, (૪) મનોવિનય, (૫) વાગ્વિનય, (૬) કાયવિનય, અને (૭) લોકોપચારવિનય.

જ્ઞાનવિનય પાંચ પ્રકારના જ્ઞાનરૂપ-એટલે કે આભિનિબોધિકજ્ઞાન, શ્રુતજ્ઞાન, અવધિજ્ઞાન, મનઃપર્યયજ્ઞાન અને કેવળજ્ઞાન રૂપ-હોય છે. અથવા આ પાંચ પ્રકારના જ્ઞાનોનો વિનય કરવો-તેમના પ્રત્યે બહુમાન, ભક્તિભાવ આદિ રાખવા તેનું નામ જ્ઞાનવિનય છે. કહ્યું છે કે-

" ભત્તી તહ બહુમાણો " ઇત્યાદિ.

દર્શન એટલે સમ્યક્ત્વ. આ સમ્યક્ત્વનો સદ્ભાવ હોવો તેનું નામ જ સમ્યક્ત્વ વિનય અથવા દર્શનવિનય છે અથવા દર્શન અને દર્શનવાળામાં અભેદ માનીને દર્શનગુણાધિક પુરુષનો વિનય કરવો-તેની શુશ્રૂષા કરવી, તેની અશાતના ન કરવી તેનું નામ પણ દર્શનવિનય છે. કહ્યુ પણ છે કે-

" सुस्सूसणा अणासायणा य विणओ उ दंसणे दुविहो ।
दंसणगुणाहिएसुं, कज्जइ सुस्सूसणाविणओ ॥ १ ॥
सक्कारब्भुट्ठाणे, सम्माणासणअभिग्गहो तह य ।
आसणमणुप्पयाणं, किइकम्मं अंजलिग्गहो य ॥ २ ॥
इंतस्साऽणुगग्गमणं ठियस्स तह पज्जुवासणा भणिया ।
गच्छंताणुव्वयणं, एसो सुस्सूसणाविणओ ॥ ३ ॥ "

छाया—शुश्रूषणा अनाशातना च विनयस्तु दर्शने द्विविधः ।
दर्शनगुणाधिकेषु क्रियते शुश्रूषणाविनयः ॥ १ ॥
सत्कारोऽभ्युत्थानं सम्मानाऽऽसनाभिग्रहस्तथा च ।
आसनानुप्रदानं, कृतिकर्म अञ्जलिग्रहश्च ॥ २ ॥
अयतो-(आगच्छतो)ऽनुगमनं, स्थितस्य तथा पर्युपासना भणिता ।
गच्छतोऽनुव्रजनम् , एष शुश्रूषणाविनयः ॥ ३ ॥ इति ।

अयं भावः—दर्शनविषयो विनयः शुश्रूषणाऽनाशातना भेदेनद्विविधः । द्विविधोऽप्येष विनयो दर्शनगुणाधिकेषु क्रियते । तत्र शुश्रूषणाविनयो दशविधः, तथाहि-सत्कारः=स्तवनवन्दनादिरूपः १, अभ्युत्थानम्=विनययोग्ये दृष्टिपथमापतिते सहसा आसनं परित्यज्य ऊर्ध्वीभवनम् २, सम्मानः=वस्त्रपात्रादीनां समर्पणम् ३, आसनाभिग्रहः=तिष्ठत एव गुरोरादरेणासनम् आनीय ' अत्रोप-

---

" सुस्सूसणा अणासायणा " इत्यादि ।

दर्शन विषयक विनय शुश्रूषणा और अनाशातना (आशातना नहीं करना के भेद से दो प्रकार का कहा गया है-यह दोनों प्रकार का विनय दर्शन गुणाधिकों में किया जाता है । इनमें शुश्रूषणा विनय दश प्रकार का होता है जैसे-स्तवन वन्दना रूप सत्कार विनय १ विनय करने के योग्य साधु के दिखने पर-सामने आने पर आसन छोड़ खड़े हो जाने रूप अभ्युत्थान विनय २, वस्त्रपात्र आदि कों का समर्पण करने रूप सम्मान विनय ३, जब गुरुजन बैठने लगे तब आदरपूर्वक उनके

" सुस्सूसणा अणासायणा " ઇત્યાદિ.

દર્શનવિષયક વિનયના શુશ્રૂષણુ અને અનાશાતના નામના બે ભેદ કહ્યા છે. દર્શનગુણસંપન્ન પુરુષોનો આ બન્ને-પ્રકારે વિનય કરવામાં આવે છે. તેમાંથી શુશ્રૂષણા વિનયના દસ પ્રકાર કહ્યા છે.—(૧) સ્તવન વંદનારૂપ સત્કાર વિનય (૨) અભ્યુત્થાન વિનય કરવા યોગ્ય સાધુને જોઈને અથવા તે સાધુ સમીપમાં આવે ત્યારે આસન પરથી ઊભા થવા રૂપ વિનયનું નામ અભ્યુત્થાન વિનય છે. (૩) સમ્માન વિનય-સાધુઓને વસ્ત્રપાત્ર દિકનું સમર્પણુ કરવું તેનું નામ સમ્માન વિનય

विशन्तु भवन्तः ' इति कथनम् ४, आसनानुप्रदानम्=आसनस्य स्थानात् स्थानान्तरं संचारणम् ५, कृतिकर्म=द्वादशावर्त्तवन्दनकम् ६, अञ्जलिप्रग्रहः=करसम्पुटीकरणम् ७, आगच्छतोऽनुव्रजनम्=आगच्छन्तं दर्शनाधिकं दृष्ट्वा तत्संमुखे गमनम् ८, स्थितस्य पर्युपासना ९, गच्छतोऽनुव्रजन १० चेति दशविधः शुश्रूषणाविनयः इति । अनुचितक्रियाविनिवृत्तिरूपोऽनाशातनाविनयस्तु पञ्चदशविधः, तथाहि—

" तित्थगर धम्म आयरियवायणे थेर कुलगणे संघे ।
संभोगिय किरियाए, मइनाणाईण य तहेव ॥ १ ॥ "

छाया—तीर्थंकर धर्माचार्यवाचके स्थविरकुलगणे संघे ।
सांभोगिके क्रियायां, मतिज्ञानादीनां च तथैव ॥ १ ॥ इति ।

अयं भावः-तीर्थंकरविषयो विनयः १, तत्प्ररूपितधर्तविषयो विनयः २,

---

लिये आसन बिछा देना और ऐसा कहना कि आप यहां विराजमान हो जावे ४, जब गुरुजन उठ कर चलने लगे तो उनके लिये आसन को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना ५, द्वादश आवर्त्तक पूर्वक वन्दना करना ६, हाथों को जोड़ना ७ आते हुए, गुरुजनों के समक्ष जाना ८-अर्थात् आते हुए दर्शनाधिकको देख कर उनके संमुख जाना, दर्शनाधिक के बैठ जाने पर उनकी पर्युपासना करना ९ एवं दर्शनाधिक के चलने पर उनके पीछे २ चलना १०, इस तरह से यह १० प्रकार का शुश्रूषणा विनय हैं अनुचित क्रिया से अलग रहने रूप जो अनाशातना विनय है वह १५ प्रकार का है-जैसे—

" तित्थगरधम्मआयरिय " इत्यादि ।

तीर्थंकर का विनय १ तीर्थंकर प्ररूपित धर्म का विनय २,

છે. (૪) ગુરુજનને બેસવાને માટે આદરપૂર્વક આસન બિછાવીને તેમને કહેવું કે " આપ અહીં બિરાજો." (૫) જ્યારે ગુરુજન ઊઠીને ચાલવા માંડે ત્યારે તેમને માટે એક સ્થાનેથી બીજે સ્થાને આસન લઈ જવુ (૬) બાર આવર્ત્તક પૂર્વક વંદણા કરવી. (૭) બન્ને હાથ જોડવા, (૮) ગુરુજનને આવતાં જોઈને તેમની સમક્ષ જવું એટલે કે દર્શન સપન્ન ગુરુને આવતાં જોઈને તેમની સામે જવું, (૯) દર્શનાધિક (સમકિતથી મોટા) બેસી જાય ત્યારે તેમની પર્યુંપાસના કવી અને (૧૦) દર્શનાધિક જ્યારે ગમન કરે ત્યારે તેમની પાછળ પાછળ ચાલવું આ પ્રકારે શુશ્રૂષણા વિનય છે અનુચિત ક્રિયા કરવાથી દૂર રહેવા રૂપ અનાશાતના વિનયના નીચે પ્રમાણે ૧૫ પ્રકારના કહ્યા છે-

" तित्थगरधम्मआयरिय " ઇત્યાદિ—

(૧) તીર્થંકરનો વિનય, (૨) તીર્થંકર પ્રરૂપિત ધર્મનો વિનય, (૩)

आचार्यविषयो विनयः ३, वाचकः=उपाध्यायः, तद्विषयो विनयः ४, स्थविर ५, कुल ६, गण ७, संघ ८, सांभोगिक ९, क्रिया १० विषयश्च विनयः, मतिज्ञानादि ११ पञ्चज्ञानविषयश्च विनय इति पञ्चदशविधोऽनाशातनाविनयः। अत्र= तीर्थकराणामनाशातनायां वर्तितव्यम्, तीर्थकरप्रज्ञप्तस्य धर्मस्यानाशातनायां वर्त्तितव्यम्—इत्येवंरूपेण अनाशातनाविनयस्य स्वरूपं विज्ञेयम्। तीर्थकरधर्मादि शब्दा अवगतार्थाः। नवरं—सांभोगिकाः=समानसामाचारीकाः। क्रिया=आस्तिकता। एतेषामेव पञ्चदशानामा नाशातनावत् भक्तिबहुमानकरणम् १५, वर्णवाद कर[ण] १५, इति द्वयमपि अनाशातनारूपमेवेति अनाशातनाविनयः पञ्चचत्वारिंशद्विधो बोध्यः, उक्तं च—

आचार्य का विनय ३ उपाध्याय का विनय ४, स्थविर का विनय ५, कुलका विनय ६ गण का विनय ७ संघ का विनय ८, सांभोगिक का विनय ९ क्रिया विनय १० मतिज्ञान आदि पांच ज्ञानका विनय १५, इस प्रकार से अनाशातना विनय १५ प्रकार का कहाहै तीर्थंकर की अनाशातना में एवं तीर्थंकर प्रतिपादित धर्म की अनाशातना में जीव को प्रवृत्त रहना चाहिये ऐसा विचार कर जो जीव तीर्थंकर एवं तीर्थंकर कथित धर्म की अनाशातना करने में लीन रहता है वह तीर्थंकर अनाशातना विनय एवं तीर्थंकर प्रतिपादित धर्म अनाशातना विनय है, इसी प्रकार से अन्यत्र भी समझना चाहिये, तीर्थंकर धर्म आदि शब्दों का अर्थ सुगम है। समान समाचारी वाले जो साधुजन होते हैं वे सांभोगिक साधु हैं। आस्तिकता का नाम क्रिया है। इन्हीं पन्द्रहों का अनाशातना की तरह भक्ति बहुमान भक्तिरूप प्रशंसा बहुमान करना १५, वर्णवाद—१५ ये दोनों भी अनाशातना रूप होने

આચાર્યનો વિનય, (૪) ઉપાધ્યાયનો વિનય, (૫) સ્થવિરનો વિનય, (૬) કુલનો વિનય, (૭) ગણુનો વિનય, (૮) સંઘનો વિનય, (૯) સાંભોગિકનો વિનય, (૧૦) ક્રિયા વિનય, (૧૧ થી ૧૫) મતિજ્ઞાન માટે આદિ પાંચ જ્ઞાનનો વિનય.

તીર્થંકરની અશાતના ન કરવી જોઇએ, અને તીર્થંકર પ્રરૂપિત ધર્મની અશાતના પણ કરવી જોઇએ નહીં, આ પ્રકારનો વિચાર કરીને જે જીવ તીર્થંકરની અનાશાતનામાં અને તીર્થંકરની પ્રતિપાદિત ધર્મની અનાશાતનામાં પ્રવૃત્ત રહે છે, એવા જીવને તીર્થંકર અનાશાતના વિનય સંપન્ન કહે છે એજ પ્રમાણે બાકીના ૧૩ પ્રકારો વિષે પણ સમજવું. તીર્થંકર, ધર્મ આદિ શબ્દોનો અર્થ સુગમ છે સમાન સમાચારીવાળા જે સાધુઓ હોય છે. તેમને સાભોગિક સાધુઓ કહે છે. આસ્તિકતાનું નામ ક્રિયા છે.-આ પંદર પ્રકારની અનાશાતનાની જેમ ભક્તિબહુમાન, એટલે કે ભક્તિ રૂપ બહુમાન કરવું તે

" कायव्वो पुण भत्ती–बहुमाणो तहय वन्नवाओ य ।
अरहंतमाइयाणं, केवलनाणावसाणाणं ॥ १ ॥ "

छाया—कर्तव्यः पुनर्भक्ति–बहुमानस्तथा वर्णवादश्च ।
अर्हदादिकानां केवलज्ञानावसानाननाम् ॥ १ ॥ इति ॥ २ ॥

भक्तिरूपो बहुमानः भक्तिबहुमानः ।

वर्णवादः=प्रशंसा । तथा–चारित्रविनयः–चारित्रं=चरणं–क्रिया, तदेव विनयः, तस्य वा विनयः=श्रद्धानादिरूपः । अयं भावः–सामायिकादिक्रियाणां श्रद्धानं, कायेन स्पर्शनं, भव्यप्राणिनां पुरतः प्ररूपणं चेति चारित्रविनय इति । तदुक्तम्—

" सामाइयाइ चरणस्स सद्दहणया १, तहेव काएणं ।
संफासणं २ परूवण ३ मह पुरओ भव्वसत्ताणं ॥ १ ॥ "

छाया—सामायिकादिचरणस्य श्रद्धानं १, तथैव कायेन ।
संस्पर्शनं २ प्ररूपणमथ पुरतो भव्यसत्त्वानाम् ॥ १ ॥ इति ॥ ३ ॥

से अनाशातनाविनय पेंतालीस ४५ प्रकारका हो जाताहै । कहा भी है–
" कायव्वा पुण भत्ती " इत्यादि ।

इसका अर्थ स्पष्ट है–भक्ति पूर्वक बहुमान–भक्ति बहुमान है प्रशंसा का नाम वर्णवाद है २ चारित्र विनय ३–चारित्र–क्रिया–रूप जो विनय हैं वह अथवा चारित्र का जो श्रद्धान आदि रूप विनय है वह चारित्र विनय है, तात्पर्य यह है–सामायिक आदि क्रियाओं का श्रद्धान करना, काय के द्वारा उनका स्पर्शन करना, एवं भव्य प्राणियों के समक्ष उनका प्ररूपण करना यह चारित्र का

---

૧૫ પંદર પ્રકારનું છે. તથા વર્ણવાદ અર્થાત્ પ્રશંસા કરવી તે ૧૫ પંદર એ બન્ને અનાશાતના રૂપ હોવાથી અનાશાતના વિના કુલ ૪૫ પ્રકાર થાય છે કહ્યુ પણ છે કે–" कायव्वा पुण भत्ती " ઇત્યાદિ.

આ ગાથાનો અર્થ સ્પષ્ટ છે પ્રશંસા કરવી તેનું નામ વર્ણવાદ છે હવે ચારિત્ર વિનયનું સ્પષ્ટીકરણ કરવામાં આવે છે.

ચારિત્ર–ક્રિયા–રૂપ જે વિનય છે તેને અથવા ચારિત્ર પ્રત્યે શ્રદ્ધા આદિ રૂપ જે વિનય છે તેનું નામ ચારિત્રવિનય છે. એટલે કે સામાયિક આદિ ક્રિયાઓ પ્રત્યે શ્રદ્ધા રાખવી, કાયા દ્વારા તેમની આરાધના કરવી, અને ભવ્ય જીવોની સમક્ષ તેનું પ્રતિપાદન કરવું તેનુ નામ ચારિત્રવિનય છે કહ્યું પણ છે કે–

" सामाइयाइचरणस्स " ઇત્યાદિ. આ ગાથાનો અર્થ ઉપરના કથનમાં જ સ્પષ્ટ થઈ ગયો છે.

तथा—मनोविनयः=विनयार्हेषु कुशलस्य मनसः प्रवर्त्तनम्, अकुशलस्य च निवर्त्तनम् ४, एवं वाग्विनयः ५, कायविनयश्च ६ बोध्यः । तथा-लोकोपचार-विनयः-लोकानाम् उपचारो=व्यवहारस्तेन तद्रूपो वा विनयः—लोकव्यवहारहेतुको लोकव्यवहाररूपो वा विनय इत्यर्थः। इत्थं सप्तविधान् विनयान् प्रदर्श्य सम्प्रति तद्घटकमनोवाक्कायविनयान् प्रशस्ताप्रशस्तभेदमधिकृत्य प्रत्येकं सप्तभेदत्वेन प्ररूपयितु-माह-'पसत्थमणोविणए' इत्यादि । तथाहि-प्रशस्तमनोविनयः-प्रशस्तः=कुशल-विचारणात्मको मनोविनयः सप्तविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-अपापकः=शुभचिन्तारूपः, असावद्यः-सावद्यम्=अदत्तादानादिरूपं जुगुप्सितं कर्म, तन्नास्ति आश्रयणीयत्वेन

विनय है, कहा भी है—"सामाइयाइचरणस्स" इत्यादि ।

इस गाथा का अर्थ पूर्वोक्त जैसा ही है ३।

मनो विनय ४-विनय के योग्य साधुजनो में अच्छा मन रखना-सुन्दर सात्त्विक विचार करना-और खोटे विचारों का परित्याग करना यह मनोविनय है. इसी प्रकार से वचनविनय और कायविनय समझना चाहिये, लोकोपचार विनय ७-लोकव्यवहार का हेतु रूप अथवा -लोकव्यवहार रूप जो विनय है वह लोकोपचार विनय है,

अब सूत्रकार मन, वचन और काय के प्रशस्त और अप्रशस्त भेदों को लेकर उनमें सप्त प्रकारता का कथन करते हैं—"पसत्थमणो विणए" इत्यादि—सुन्दर सद्विचारात्मक जो मनोविनय है वह सात प्रकार का है-जैसे आपापक १ असावद्य २, अक्रिय ३ निरूपक्लेश ४, अनास्रवकर ५, अक्षपिकर ६ और अभूताभिसंक्रमण ७, इनमें से शुभ विचार रूप मानसिक विकल्प है वह अपापक मनोविनय है, अदत्तादानादि रूप जो जुगुप्सित कर्म है वह सावद्य है, यह सावद्य

---

(૪) મનોવિનય-વિનયને યોગ્ય સાધુઓ પ્રત્યે મનમા સદ્‌ભાવ રાખવો, સુંદર અને સાત્વિક વિચાર કરવા અને ખરાબ વિચારોનો પરિત્યાગ કરવો તેનુ નામ મનોવિનય છે.

એજ પ્રમાણે વાગ્‌વિનય વિષે પણ સમજવું. (૭) લોકવ્યવહારના હેતુરૂપ અથવા લોકવ્યવહાર રૂપ જે વિનય છે તેનું નામ લોકોપચારવિનય છે.

હવે સૂત્રકાર મન, વચન અને કાયના પ્રશસ્ત અને અપ્રશસ્ત ભેદોના સાત-સાત પ્રકારોનું કથન કરે છે-"પસત્થમણોવિણએ" ઇત્યાદિ—

સુંદર વિચારાત્મક અથવા સદ્વિચારાત્મક જે મનોવિનય છે તેના નીચે પ્રમાણે સાત પ્રકાર કહ્યા છે-(૧) અપાપક (૨) અસાવદ્ય, અક્રિય, (૪) નિરુપકલેશ, (૫) અનાસવકર, (૬) અક્ષપિકર અને (૭) અભૂતાભિસંક્રમણ.

यस्य स तथा, चौर्यादिगर्हितकर्मालम्बनवर्जित इत्यर्थः २, अक्रियः-क्रिया=कायिक्यादिरूपा सा नास्ति यस्य स तथा, साधुजनानर्हकायिक्यादिक्रियावर्जित इत्यर्थः ३ निरुपक्लेशः-उपक्लिश्यते=विबाध्यते जनोऽनेनेति उपक्लेशः=शोकादिः, तेन निर्गतो निरुपक्लेशः, शोकादिक्लेशरहित इत्यर्थः । ४ । अनास्रवकरः-आस्रवणं=क्षरणम्-जीवरूपतडागे कर्मरूपजलस्यागमनं कर्मबन्धनमिति यावत्, तस्य करः-आस्रवकरः, न तथा-अनास्रवकरः=प्राणातिपाताद्यास्रववर्जित

जिस मानसिक विचार धारा का आलम्बन नहीं होता है वह असावद्य मानसिक विनय है यह असावद्य मानसिक विनय चौर्यादि निंदित कर्मों के आलम्बन से रहित होता है, जिस मानसिक विचार धारा का विषय कायिकी क्रिया आदि क्रियाएँ नहीं होती है वह अक्रिय मनो विनय है, यह अक्रियमनोविनय साधु जनके अयोग्य कायिकी क्रिया आदि क्रियाओं से वर्जित होता है, निरुपक्लेश मनोविनय-मनुष्य जिस से विशेष रूप में बाधित होता है ऐसा वह शोकादि उपक्लेश है, इस उपक्लेश से जो रहित होता है वह निरुपक्लेश है, शोकादिक्लेश से रहित जो मानसिक विचार है वह निरुपक्लेश मनोविनय है, जो विचारधारा जीव रूप तडाग में कर्मरूप जल के आगमन के कारण होती है-कर्मबन्ध का निमित्त होती है-वह आस्रवकर है-ऐसे आस्रव की करनेवाली जो विचार धारा नहीं होती

-શુભવિચાર રૂપ જે માનસિક વિકલ્પ છે, તેને અપાપક મનોવિનય કહે છે. અદત્તાદાન આદિ રૂપ જે જુગુપ્સિત કર્મ છે, તેને સાવદ્ય ગણવામાં આવે છે. જે માનસિક વિચારધારામાં આ સાવદ્યનો આધાર લેવામાં આવતો નથી, તે પ્રકારની વિચારધારાને અસાવદ્ય વિનય રૂપ માનવામાં આવે છે. આ અસાવદ્ય માનસિક વિનય ચોરી આદિ ગર્હિત કર્મોના અવલંબનથી રહિત હોય છે. જે માનસિક વિચારધારાનો વિષય કાયિકી ક્રિયા આદિ ક્રિયાઓ હોતો નથી, તે મનોવિનય સાધુજનોને માટે કહે છે. આ અક્રિય મનોવિનય સાધુજનોને માટે અયોગ્ય એવી કાયિકી આદિ ક્રિયાઓથી વર્જિત હોય છે.

નિરુપકલેશમનોવિનય-જેના દ્વારા મનુષ્યનું ચિત્ત ડામાડોળ થઈ જાય છે એવાં શોકાદિને ઉપકલેશ કહે છે જેનું ચિત્ત આ પ્રકારના ઉપકલેશથી રહિત હોય છે તેને નિરુપકલેશ કહે છે. શોકાદિ કલેશથી રહિત જે માનસિક વિચાર છે તેનું નામ નિરુપકલેશ મનોવિનય છે.

જે વિચારધારા જીવ રૂપ તળાવમાં કર્મરૂપ જલના આગમનના કારણ રૂપ હોય છે. કર્મબન્ધના નિમિત્ત રૂપ હોય છે, તેને આસ્રવકર કહે છે. એવી

इत्यर्थः ॥ ५ ॥ अक्षपिकरः-क्षपिः=स्वपरयोरायासः, तस्य करः-क्षपिकरः, न तथा अक्षपिकरः, स्वपराऽऽयथाजनक इत्यर्थः ॥ ६ ॥ तथा – अभूतसंक्रमणः-भूतानि=प्राणिनः संक्रम्यन्ते=उपमर्द्यन्ते येन सः, भूतसंक्रमणे, न तथा-अभूतसंक्रमणः-भूतोपमर्दनवर्जित इत्यर्थः ॥ ७ ॥ इति तथा-अप्रशस्तमनोविनयः= अकुशलचिन्तनरूपमनोविनय सप्तविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-सावद्य इत्यादि ।

है वह अनास्रवकर है ऐसी अनास्रव कर विचार धारा प्राणातिपात आदि रूप आस्रव से वर्जित होती है, अतः ऐसी अनास्रवकर विचार धारा अनास्रवकर मनोविनय है, स्व और पर को कष्ट पहुंचाने वाली जो विचारधारा है वह क्षपिकर विचारधारा है, ऐसी जो विचार धारा नहीं है वह अक्षपिकर मनोविनय है। अर्थात् ऐसी विचारधारा से शून्य जो मन है वही अक्षपिकर मनोविनय है। अभूताभिसंक्रमण-जिस विचारधारा से प्राणियों का उपमर्दन किया जाता है ऐसी वह विचारधारा भूताभिसंक्रमण है, जिस विचारधारा में ऐसा भूताभिसंक्रमण नहीं होता है ऐसी वह विचारधारा अभूतसंक्रण रूप मनोविनय है ॥ ७ ॥

अप्रशस्त मनोविनय इस प्रकार से सात भेदों वाला है-जैसे-पापक १, सावद्य २, सक्रिय ३, सोपक्लेश ४, आस्रवकर ५, क्षपिकर ६, और भूताभिसंक्रमण ७, अप्रशस्तमनोविनय अकुशल चिन्तन

આસ્રવ કરનારી જે વિચારધારા હોતી નથી તે વિચારધારાને અનાસ્રવકર કહે છે. એવી અનાસ્રવકર વિચારધારા પ્રાણાતિપાત આદિ રૂપ આસ્રવથી રહિત હોય છે. તેથી એવી અનાસ્રવકર વિચારધારાને અનાસ્રવકર મનોવિનય કહે છે.

સ્વ અને પરને કષ્ટ પહોંચાડનારી જે વિચારધારા છે તેને ક્ષપિકર વિચાર ધારા કહે છે જે વિચારધારા એવી હોતી નથી તેને અક્ષપિકર કહે છે. તેથી સ્વ અને પરને પીડા પહોંચાડવાથી રહિત એવી વિચારધારા છે તે અક્ષપિકર મનોવિનયરૂપ છે

અભૂતાભિસંક્રમણ-જે વિચારધારાવડે પ્રાણીઓનું ઉપમર્દન કરાય છે તે વિચારધારાને ભૂતાભિસંક્રમણ કહે છે. જે વિચારધારામાં એવું ભૂતાભિસંક્રમણ થતું નથી, તે વિચારધારાને અભૂતાભિસંક્રમણ રૂપ મનોવિનય કહે છે.

પ્રશસ્ત મનોવિનયના નીચે પ્રમાણે સાત ભેદ કહ્યા છે-

(૧) પાપક, (૨) સાવદ્ય, (૩) સક્રિય, (૪) સોપક્લેશ, (૫) આસ્રવકર, (૬) ક્ષપિકર અને ભૂતાભિસંક્રમણ.

पूर्वोक्त एवार्थो नञर्थरहितत्वेनात्र योज्यः यथा 'अपापक' इतिस्थाने 'पापक' इत्यादियोजना कर्त्तव्या एवं प्रशस्ताप्रशस्तभेदभिन्नो वाग्विनयोऽपि बोध्यः। तथा-प्रशस्तकायविनयः=कुशलात्मककायविनयः सप्तविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा आयुक्तं-गमनम्-आयुक्तम्=सोपयोगं यथास्यात्तथा गमनम्, यद्वा-आयुक्तगमनमित्येकं पदं, तेन आयुक्तस्य-उपयुक्तस्य=प्रतिसंलीनयोगस्य यद् गमनं तदित्यर्थः ॥१॥

रूप होता है, यहां पापक आदि का पूर्वोक्त रूप से विपरीत रूप में-विचार कर लेना चाहिये। यही बात यहां टीकाकारने "पूर्वोक्त-एवार्थो-नञर्थरहितत्वेनात्र योज्यः" इस पंक्ति द्वारा प्रकट की है।

इसी तरह से प्रशस्त अप्रशस्त भेद से वाग् विनय (वचन विनय) भी सात प्रकार का है, जैसे-अपापक वाग्विनय, १ असावद्यवाग् विनय २, इत्यादि ३ इसी प्रकार से अप्रशस्त वाग्विनय भी पापक-वाग्विनय १ असावद्यवाग्विनय २ इत्यादि,

इसी तरह से प्रशस्तकाय विनय भी सात प्रकार का है-जैसे-आयुक्त गमन रूप काय विनय (उपयोगसहित चलना) १ आयुक्त स्थान रूप काय विनय २, आयुक्त निषद रूप काय विनय ३, आयुक्तत्वग्वर्तन रूप कायविनय ४, आयुक्त उल्लंघन रूप कायविनय ५, आयुक्त प्रलंघन रूप कायविनय ६ और आयुक्त सर्वेन्द्रिययोग योज-

અપ્રશસ્ત મનોવિનય અકુશલચિન્તન રૂપ હોય છે.

અપાપક મનોવિનય આદિ સાત પ્રકારના પ્રશસ્ત મનોવિનય કરતા આ સાત અપ્રશસ્ત મનોવિનયનું વિપરીત સ્વરૂપ સમજવું. એજ વાત અહીં ટીકાકારે નીચેના સૂત્રપાઠ દ્વારા પ્રકટ કરી છે-"पूर्वोक्तएवार्थो नञर्थरहितत्वेनात्र योज्यः"

એજ પ્રમાણે વાગ્વિનયના પણ અપ્રશસ્ત અને પ્રશસ્ત નામના બે ભેદ પડે છે. પ્રશસ્ત વાગ્વિનયના નીચે પ્રમાણે સાત ભેદ પડે છે-(૧) અપાપક વાગ્વિનય, (૨) અસાવદ્ય વાગ્વિનય, (૩) સાવદ્ય વાગ્વિનય એજ પ્રમાણે પ્રશસ્ત મનોવિનયના વાગ્વિનયના પણ પાપક વાગ્વિનય, સાવદ્ય વાગ્વિનય આદિ સાત ભેદો સમજવા.

પ્રશસ્ત કાયવિનયના નીચે પ્રમાણે સાત પ્રકાર પડે છે-

(૧) આયુક્ત ગમનરૂપ કાયવિનય (ઉપયોગ સહિત ચાલવું તે) (૨) આયુક્ત સ્થાનરૂપ કાયવિનય, (૩) આયુક્ત નિષદરૂપ કાયવિનય, (૪) આયુક્ત ત્વગ્વર્તનરૂપ કાયવિનય, (૫) આયુક્ત ઉલ્લંઘનરૂપ કાયવિનય (૬) આયુક્ત પ્રલંઘનરૂપ કાયવિનય, અને, (૭) આયુક્ત સર્વેન્દ્રિયયોગયોજનતા.

एवमग्रेऽपि, नवरं-स्थानम्=ऊर्ध्वस्थानं कायोत्सर्गादि, निषदनम्=उपवेशनम्, त्वग्वर्त्तनम्=पार्श्वपरिवर्त्तनं-शयनमित्यर्थः, उल्लङ्घनम्=कर्दमादेः सकृदतिक्रमणम्, प्रलङ्घनं=तस्यैव पौनःपुन्येनातिक्रमणम्, सर्वेन्द्रिययोगयोजनता-सर्वाणिच तानीन्द्रियाणि चेति सर्वेन्द्रियाणि, तेषां योगाः=व्यापाराः, यद्वा-इन्द्रियाणां योगाः=व्यापारा इन्द्रिययोगाः, सर्वेच ते इन्द्रिययोगाः सर्वेन्द्रिययोगाः, तेषां योजनता=करणम्=सर्वेन्द्रियाणां शुभव्यापार इत्यर्थः। एवमप्रशस्त-कायविनय भेदा अपि अनायुक्तविशेषणवत्तया व्याख्येया इति। उक्तश्च प्रशस्तमनोवाक्काय-विनयविषये—

नता ७, इन में से उपयोगपूर्वक गमन करना यह आयुक्त गमनरूप कायविनय है, अथवा-" आयुक्तगमन " यह एक पद है, इसका अर्थ है। प्रतिसंलीनयोग वाले (इन्द्रियों को गुप्त करनेवाले का जो गमन है वह आयुक्त गमन है, १ इसी तरह से आगे भी आयुक्त शब्द का अर्थ समझ लेना चाहिये, स्थान शब्द का अर्थ है कायोत्सर्ग आदि करना-निषदन शब्द का अर्थ है बैठना त्वग्वर्तन शब्द का अर्थ है करवट बदलना-सोना, उल्लंघन शब्द का अर्थ है-कर्दम आदि का एक बार उल्लंघन करना, प्रलंघन-शब्द का अर्थ है-कर्दम आदि का बारंबार उल्लंन करना-तथा समस्त इन्द्रियों को शुभव्यापार में लगाना, यह लगाना, यह सर्वेन्द्रिय योग योजनता है, अप्रशस्त कायविनय के भेद भी अनायुक्त विशेषण लगाकर इसी तरह से व्याख्यात कर लेना चाहिये, प्रशस्त मन, वचन, एवं काय के विनय के विषय में ऐसा कहा गया है—" पसत्थकायविणओ " इत्यादि

ઉપયોગપૂર્વક ગમન કરવું તેનું નામ આયુક્ત ગમન રૂપ કાયવિનય છે. અથવા "आयुक्तगमन "(આ એક પદ છે. તેનો અર્થ આ પ્રમાણે થાય છે- પ્રતિસંલીન યોગવાળાનું (ઇન્દ્રિયોને ગુપ્ત કરનારનું) જે ગમન છે તેનું નામ આયુક્તગમન છે એજ પ્રમાણે બીજા ભેદોના અર્થ પણ સમજી લેવા. અહીં સ્થાન પદ કાર્યોત્સર્ગનું વાચક છે, નિષદન એટલે બેસવું 'ત્વગ્વર્તન' એટલે પડખું બદલવું અથવા સૂવું, 'ઉલ્લંઘન' એટલે કર્દમ આદિને એક વખત ઓળંગવો, "પ્રલંઘન" એટલે કર્દમ આદિને વારંવાર ઓળંગવા, 'સર્વેન્દ્રિય યોગ યોજનતા' એટલે સમસ્ત ઇન્દ્રિયોને શુભ વ્યાપારમાં પ્રવૃત્ત કરવી.

અપ્રશસ્ત કાયયોગના પણ સાત ભેદ પડે છે. અહીં અનાયુક્ત વિશેષણ લગાડીને અનાયુક્ત ગમનરૂપ કાયવિનય આદિ ઉપર્યુક્ત સાત ભેદો સમજવા. પ્રશસ્ત મન, વચન અને કાયના વિનય વિષે એવું કહ્યું છે કે-

"मणवइकायविणओ, आयरियाईणसव्वकालम्मि ।
अकुसलाणनिरोहो, कुसलाणमुईरणं तहय ॥१॥"

छाया—मनोवाक्कायविनय आचार्यादीनां सर्वकालमपि ।
अकुशलानां निरोधः कुशलानामुदीरणं तथा च ॥१॥" इति ।

अयं भावः—आचार्यादीनां विषये सर्वदा अकुशलानां मनोवाक्कायानां निरोधः कुशलानां च उदीरणं प्रशस्तमनोवाक्कायविनया बोध्याः । अप्रशस्तमनोवाक्काय-विनया इतोवैपरीत्येन भावनीया इति । इत्थं प्रशस्ताप्रशस्तभेदेन मनोवाक्काय-विनयान् सप्तभेदतयोपदर्श्य सम्प्रति लोकोपचारविनय-सप्तभेदत्वेनोपदर्शयति –' लोगोवयारविणए ' इत्यादि । लोकोपचार-विनयोऽपि सप्तविधो बोध्यः, तथाहि–अभ्याशवर्त्तित्वम्–अभ्याशे=आचार्यादीनां

तात्पर्य यह है–कि आचार्य आदिकों के विषय में सर्वदा अकुशल मन वचन एवं काय का निरोध करना और कुशल मन, वचन कायका उदीरण करना–यह प्रशस्त मन वचन कायका विनय है, तथा अप्रशस्त मन वचन काय सम्बन्धी विनय इनसे विपरीत है, इस तरह प्रशस्त और अप्रशस्तके भेदसे मन वचन काय संबन्धी विनयके भेदों को दिखला कर अब सूत्रकार लोकोपचार विनय के सात भेदों को प्रदर्शित करते हैं–" लोकोवयारविणए " " इत्यादि लोकोपचार विनय के सात भेद इस प्रकारसेहैं–अभ्यास वर्तित्व १, परच्छन्दानुवर्तित्व २, कार्य हेतु ३कृत प्रतिकृतिता ४,आत्मगवेषणता ५, देशकालज्ञता ६,और सर्वअर्थोंमें सबप्रयोजनोंमें अप्रतिलोमता ७, आचार्य आदि के पास में

"मणवइकायविणओ" ઈત્યાદિ—

આ કથનનો ભાવાર્થ આ પ્રમાણે છે–આચાર્ય આદિના વિષયમાં સર્વદા અકુશલ મન, વચન અને કાયનો નિરોધ કરવો અને કુશલ મન, વચન અને કાયનું ઉદીરણ કરવું, તે પ્રશસ્ત મન. વચન અને કાયનો વિનય છે, તથા અપ્રશસ્ત મન, વચન અને કાયનો વિનય તેના કરતાં વિપરીત સ્વરૂપવાળો હોય છે આ રીતે મન, વચન અને કાયના પ્રશસ્ત ભેદો અને અપ્રશસ્ત ભેદોનું નિરૂપણ કરીને હવે સૂત્રકાર લોકોપચાર વિનયના સાત ભેદો પ્રકટ કરે છે–

"लोकोवयारविणए" ઈત્યાદિ—

લોકોપચાર વિનયના નીચે પ્રમાણે સાત ભેદ કહ્યા છે–

(૧) અભ્યાસ વર્તિત્વ, (૨) પરચ્છન્દાનુવર્તિત્વ, (૩) કાર્ય હેતુ, (૪) કૃતપ્રતિકૃતિતા, (૫) આત્મ ગવેષણતા, (૬) દેશકાલજ્ઞતા, અને (૭) સર્વાર્થોમાં અપ્રતિલોમતા.

શ્રુતાધ્યયન કરવાની અભિલાષાવાળા શિષ્યનું આચાર્યાદિની પાસે જે રહેવાનું થાય છે તેનું નામ જ અભ્યાસવર્તિત્વ છે આચાર્યાદિના અભિપ્રાય

समीपे वर्त्तितुं शीलमस्येति-अभ्याशवर्ती=आचार्यादिसमीपे निवसनशीलः, तस्य भावस्तत्त्वम्, श्रुताद्यध्ययनार्थिना आचार्यादीनां समीपे स्थातव्यमिति भावः ।१। परच्छन्दानुवर्त्तित्वम् आचार्याद्यभिप्रायानुकूलत्वम् ।२। कार्यहेतुः-कार्यं=श्रुताध्ययनादिकं, तद् हेतुः=कारणं यस्मिन् सः । अयं भावः-अनेनाहं श्रुतमध्यापितः, अतो मयाऽस्मिन् विशेषतो विनययुक्तेन भाव्यमिति मनसि संधाय श्रुताध्यापयितरि यो विनयः स कार्य हेतुरिति ।३। कृतप्रतिकृतिता कृते=भक्तादि प्रदानेन सुश्रूषणे कृते सति सुप्रसन्ना गुरवः श्रुतप्रदानादिना प्रतिकृतिं=प्रत्युपकारं करिष्यन्तीति गुरुषु भक्तादिप्रदानरूपो यो विनयः स कृतप्रतिकृतितेति । ४। आत्मगवेषणता-आत्मना-परप्रेरणामन्तरेण स्वयमेव साधुसमुदाये सुस्थदुःस्थ-

जिसका रहने का स्वभाव है ऐसा वह शिष्य अभ्यासवर्ती है-श्रुताध्ययन के अभिलाषी शिष्य को आचार्यादि के पास में रहना-यही अभ्यासवर्त्तित्व है। आचार्य आदि के अभिप्रायानुसार अपनी प्रवृत्ति करना यह परच्छन्दानुवर्त्तित्व है, इसने मुझे श्रुत का अध्ययन कराया है, इसलिये मुझे इनके समीप बहुत ही विनय के साथ रहना चाहिये ऐसा मन में विचार करके जो श्रुत अध्येता के पास विनय पूर्वक रहता है वह कार्य हेतु लोकोपचारविनय है, भक्त आदि लाकर के देने से सेवा युक्त किये गये ये गुरुजन मेरे ऊपर सुप्रसन्न हो जावेंगे तो वे मुझे श्रुतप्रदान कर मेरा प्रत्युपकार कर देंगे इस अभिप्राय से गुरुजनों के विषय में भक्तादि प्रदान रूप जो विनय है वह कृतप्रतिकृति रूप लोकोपचार विनय है। विना प्रेरणा किये-अपने आप ही-साधु समुदाय में सुख एवं दुःख की गवेषणा करना वह आत्मगवेषणता रूप लोकोपचार विनय है, अथवा-" आत्मगवेषणता "

પ્રમાણે જ પોતાની પ્રવૃત્તિ રાખવી તેનું નામ પરચ્છન્દાનુવર્તિત્વ છે. "તેમણે મને શ્રુતનું અધ્યયન કરાવ્યું છે, તેથી મારે તેમની પાસે ઘણા જ વિનયપૂર્વક રહેવું જોઈએ" આ પ્રકારનો મનમાં વિચાર કરીને જે શિષ્ય શ્રુતનો અભ્યાસ કરાવનારની સાથે વિનયપૂર્વક રહે છે, તે પ્રકારે રહેવા રૂપ કાર્યહેતુ લોકોપચાર વિનય સમજવો. "આહાર આદિ લાવી દેવા રૂપ સેવા કરવાથી ગુરુ મારા ઉપર સુપ્રસન્ન રહેશે અને મને શ્રુત પ્રદાન કરીને મારા ઉપર પ્રત્યુપકાર કરશે," આ પ્રકારની ભાવનાથી ગુરુજનોને માટે આહારાદિ લાવી આપવા રૂપ જે વિનય છે તેને કૃતપ્રતિકૃતિતા રૂપ લોકોપચાર વિનય કહે છે.

કોઈના દ્વારા પ્રેરિત કરાયા વિના-આપ મેળે જ સાધુ સમુદાયમાં સુખ અને દુઃખની ગવેષણા કરવી તેનું નામ આત્મગવેષણતા રૂપ લોકોપચાર

योर्यद् गवेषणम्=अन्वेषण तदेव । "आप्तगवेषणता" इतिच्छायापक्षे-आप्तः= स्वकीयो भूत्वा यत् साधु समुदाये सुस्थ दुःस्थयोः गवेषणं तदेव। "आर्त्तगवेषणता" इतिच्छायापक्षे तु-आर्त्तानां=रोगादिपीडितानां कृते औषधादेर्यद् गवेषण तदेव।५। देशकालज्ञता=अवसरोचितार्थ संपादनाभिज्ञता।६। तथा सर्वार्थेषु=गुर्वादीनां सकलप्रयोजनेषु अप्रतिलोमता=अविरुद्धता-अनुकूलतेति यावत् सू० ४६॥

अनन्तरं विनय उक्तः, विनयाच्च कर्मघातो भवति, कर्मघातश्च समुद्घाते विशिष्टतर इति समुद्धातप्ररूपणाय प्राह—

मूलम्—सत्त समुग्घाया पण्णत्ता, तं जहा—वेयणासमुग्घाए १, कसायसमुग्घाए २ मारणंतियसमुग्घाए ३, वेउव्वियसमुग्घाए ४ तेजससमुग्घाए ५, आहारगसमुग्घाए ६ केवलिसमुग्घाए ७। मणुस्साणं सत्त समुग्घाया पण्णत्ता, एवं चेव ॥सू०४७॥

इस छाया पक्ष में आप्त हो कर के-स्वकीय हो करके-ये अपने ही हैं-इस प्रकार का विचार करके-जो साधु समुदाय में सुस्थ दुःस्थ की गवेषणा है वह आप्तगवेषणता है, अथवा-"आर्त्त गवेषणता" इस पक्ष में ऐसा अर्थ होता है कि रोगादि से पीडित साधुजनों के लिये औषधादि की गवेषणा करना वह आर्त्तगवेषणता है, देशकाल ज्ञता ६-अवसर के लायक जो अर्थ के संपादन की अभिज्ञता है वह देश कालज्ञता है। एवं गुरु आदिकों के समस्त प्रयोजनों में अनुकूल हो कर जो वर्तन है वह सर्वार्थों में अप्रतिलोमता है॥ सूत्र ४६ ॥

विनय अथवा-"आप्तगवेषणता" आ प्रकारनी संस्कृत छाया अहीं लेवामां आवे, तो आ पदनो आ प्रमाणे अर्थ थाय छे-आप्तजन तरीके ज तेओ मारा आप्तजनो छे, आ प्रकारनो विचार करीने साधु समुदायमां सुस्थ दुःस्थनी गवेषणा करवी तेनुं नाम आप्तगवेषणता छे. अथवा ते पदनी संस्कृत छाया "आर्त्तगवेषणता" लेवामां आवे, तो अहीं एवो अर्थ थाय छे के-रोगादिथी पीडाता साधुओने माटे औषधादिनी गवेषणता छे.

(६) देशकालज्ञता—अवसरने लायक अर्थने (पदार्थने) संपादन करवानी जे अभिज्ञता छे, तेनुं नाम देशकालज्ञता छे.

(७) समस्त प्रयोजनोमां गुरु आदिकोने अनुकूव थई जनारुं जे वर्तन छे, तेनुं नाम सर्वार्थोमां अप्रतिलोमता छे. ॥ सू. ४६ ॥

छाया—सप्त समुद्घाताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—वेदनासमुद्घातः १, कषाय-समुद्घातः २, मारणान्तिकसमुद्घातः ३, वैक्रियसमुद्घातः ४, तैजससमुद्घातः ५, आहारकसमुद्घातः ६, केवलिसमुद्घातः ७। मनुष्याणां सप्त समुद्घाताः प्रज्ञप्ता एवमेव ॥ सू० ४७ ॥

टीका—'सत्त समुग्घाया' इत्यादि—

समुद्घाताः-यथास्वभावस्थितानामात्मप्रदेशानां वेदनादिभिः सप्तभिः कारणैः समन्तादुद्घातनं-स्वभावादन्यभावेन परिणमनं समुद्घातः, अयं भावः-यदाऽऽत्मा वेदनादि समुद्घातगतो भवति तदा वेदनाद्यनुभवज्ञानपरिणत एव

ऊपर के सूत्र में विनय के विषयमें कहा गया है-इस विनय से कर्म का घात होता है, तथा-समुद्घात अवस्था में कर्मघात विशिष्टतर होता है-अतः अब सूत्रकार समुद्घात की प्ररूपणा करने के लिये-४७ वां सूत्र कहते हैं—"सत्त समुग्घाया पण्णत्ता" इत्यादि ।सूत्र४७॥
टीकार्थ-समुद्घात सात कहे गयेहैं-जैसे-वेदना समुद्घात१ कषाय समुद्घात२, मारणान्तिक समुद्घात३. वैक्रिय समुद्घात४ तैजस समुद्घात ५, आहारक समुद्घात ६. केवलि समुद्घात७, मनुष्योंके सातही समुद्घात कहे गये हैं।

यथा स्वभावस्थित आत्मप्रदेशों का वेदना आदि सात कारणों को लेकर जो स्वभाव से परिणमन होता है-वह समुद्घात है, तात्पर्य ऐसा है-जब आत्मा वेदनादि समुद्घात गत होता है

ઉપરના સૂત્રમાં વિનયનું પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યું છે. આ વિનય વડે કર્મોનો ઘાત થાય છે, તથા સમુદ્ઘાતાવસ્થામાં કર્મઘાત વિશિષ્ટતર થાય છે. તેથી હવે સૂત્રકાર સમુદ્ઘાતની પ્રરૂપણા કરે છે—

"સત્ત સમુગ્ઘાયા પણ્ણત્તા" ઈત્યાદિ—(સૂ ૪૭)

ટીકાર્થ-નીચે પ્રમાણે સાત સમુદ્ઘાત કહ્યા છે—(૧) વેદના સમુદ્ઘાત, (૧) કષાય સમુદ્ઘાત, (૩) મારણાન્તિક સમુદ્ઘાત, (૪) વૈક્રિય સમુદ્ઘાત, (૫) તૈજસ સમુદ્ઘાત, (૬) આહારક સમુદ્ઘાત અને (૭) કેવલિસમુદ્ઘાત.

યથા સ્વભાવસ્થિત આત્મપ્રદેશોનું વેદના આદિ સાત કારણોને લીધે સ્વભાવમાંથી જે પરિણમન થાય છે તેનું નામ સમુદ્ઘાત છે. આ કથનનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે—

જ્યારે આત્મા વેદનાદિ સમુદ્ઘાતગત હોય છે, ત્યારે તે વેદનાદિ સમુદ્ઘાત ગત હોય છે, ત્યારે તે વેદના આદિના અનુભવરૂપ જ્ઞાનથી પરિણત જ

भवति नान्यज्ञानपरिणतः आत्मप्रदेशैः सह संश्लिष्टानां कालान्तरानुभवयोग्यानां वेदनीयादि कर्मप्रकृतीनामुदीरणयाऽऽकर्षणेन उदयावलिकायां प्रक्षेपेण निर्जरणमिति। समुद्घातशब्दस्य बहुत्वविवक्षया समुद्घातः। ते वेदनादिभेदेन सप्तसंख्यकाः प्रज्ञप्ताः, तानेवाह-तद्यथा-वेदनासमुद्घात इत्यादि। तत्र-वेदनासमुद्घातः-वेदनया=कालान्तरानुभवनीयासातकर्माण्युदयावलिकायां प्रक्षिप्यानुभवनेन समुद्घातः=तेषां कर्मणां निर्जरणम्। अयं भावः-वेदनासमुद्घातगत-आत्मा असातवेदनीयकर्मपुद्गलपरिशातं करोति, तथाहि-वेदनापीडितो जीवः स्वप्रदेशान् अनन्तानन्तकर्मस्कन्धवेष्टितान् शरीराद् बहिरपि प्रक्षिपति,

---

तब वह वेदना आदि के अनुभव रूप ज्ञान से परिणत ही होता है, अन्य ज्ञान से परिणत नहीं होता है, समुद्घात में रहा हुआ आत्मा-आत्मप्रदेशों के साथ संश्लिष्ट वेदनीयादि कर्मप्रकृतियों को जो कि कालान्तर में अनुभव करने के योग्य होती हैं उदीरणाकरण द्वारा खींचकर उदयावलिका में प्रक्षिप्त करता है-इस से उनकी निर्जरा होती है। समुद्घात शब्द में जो बहुवचन का प्रयोग किया गया है वह समुद्घात की अनेकता को लेकर किया गया है। वेदना आदि के भेद से जो समुद्घात ७ प्रकार के कहे गये हैं-सो उनका तात्पर्य ऐसा है-वेदना समुद्घात-कालान्तर में भोगने योग्य जो असातवेदनीय कर्म पुद्गल हैं उन्हें वेदना से उदयावलिका में खींचकर जो उनकी निर्जरा करना है वह वेदना समुद्घात है, समुद्घात शब्द का अर्थ निर्जरा करना है। आत्मा जब वेदना समुद्घात गत होता है-तब वह असात वेदनीय कर्म पुद्गलों की निर्जरा करता है। वेदना से पीडित

હોય છે-અન્ય જ્ઞાનથી પરિણુત હોતો નથી. સમુદ્ઘાતમાં રહેલો આત્મા, આત્મપ્રદેશોની સાથે સંશ્લિષ્ટ વેદનીય વેદનીય આદિ કર્મપ્રકૃતિઓ કે જેનું કાલાન્તરે વેદન કરવાનું હોય છે તેમને ઉદીરણાકરણ દ્વારા ખેંચીને ઉદયાવલિકામાં પ્રક્ષિપ્ત કરે છે, તેને લીધે તેમની નિર્જરા થાય છે. સમુદ્ઘાત શબ્દમાં જે બહુવચનનો પ્રયોગ થયો છે તે સમુદ્ઘાતની અનેકતાને કારણે થયો છે વેદના આદિના ભેદથી સમુદ્ઘાતમાં જે સપ્તવિધતા પ્રકટ કરવામાં આવી છે. તેનું સ્પષ્ટીકરણ નીચે પ્રમાણે છે—

વેદના સમુદ્ઘાત—કાલાન્તરે ભોગવવાને યોગ્ય જે અસાતાવેદનીય કર્મ-પુદ્ગલો છે તેમને ઉદીરણાકરણ દ્વારા ઉદયાવલિકામાં ખેંચીને તેમની જે નિર્જરા કરવામાં આવે છે, તેનું નામ વેદનાસમુદ્ઘાત છે. સમુદ્ઘાત એટલે નિર્જરા કરવી તે આત્મા જ્યારે વેદના સમુદ્ઘાતગત હોય છે, ત્યારે તે અસાતાવેદનીય કર્મપુદ્ગલોની નિર્જરા કરે છે. વેદનાથી પીડિત એવો જીવ

स्तैश्च प्रदेशैर्वदनजठरादि रन्ध्राणि कर्मस्कन्धाद्यपान्तरालानि चाऽऽपूर्य आयामतो विस्तरतश्च शरीरमात्रं क्षेत्रमभिव्याप्यान्तर्मुहूर्तं यावत्तत्र तिष्ठते, तस्मिंश्चान्तर्मुहूर्ते प्रभूतासातावेदनीयकर्मपुद्गलपरिशातं करोतीति ॥१॥ कषायसमुद्घातः-कषायैः=क्रोधादिभिर्हेतुभूतैः समुद्घातः कषायसमुद्घातः-कषायाख्यचारित्र-मोहनीयकर्माश्रयः समुद्घातविशेष इत्यर्थः। अयं भावः-तीव्रकषायोदयाकुलो जीवः स्वप्रदेशान् बहिर्विक्षिपति, तैः प्रदेशैर्वदनोदरादि रन्ध्राणि कर्णस्कन्धाद्यपा-

---

हुआ जीव अनन्तानन्त कर्मस्कन्धों से वेष्टित हुए आत्मप्रदेशों को शरीर से बाहर भी निकालता है-सो निकालकर उन प्रदेशों से वदन, जठर, आदिके खाली स्थानोंको एवं कर्णस्कन्ध आदिके अपान्तरालों(छिद्रो) को भर देता है, भरकर वह आयाम-लंबाई और विस्तार की अपेक्षा शरीर मात्र क्षेत्र को व्याप्तकर अन्तर्मुहूर्त तक वहीं पर रहता है इस अन्तर्मुहूर्त्तकाल में वह बहुत ही अधिक वेदनीय कर्म पुद्गलोंकी निर्जरा कर देता है, १ कषाय समुद्घात-क्रोधादिकषायों के वश होकर जो समुद्घात किया जाता है वह कषाय समुद्घात है, यह कषाय समुद्घात कषाय नामक चारित्र मोहनीय कर्म के आश्रय वाला होता है। जब जीव के तीव्र कषाय के उदय से आकुलता आजाती है तब तीव्र कषाय के उदय से आकुल हुआ वह जीव अपने प्रदेशों को बाहर निकालता है, बाहर निकाले गये उन प्रदेशों से वह वदन, उदर आदि के छिद्रों को एवं कर्ण स्कन्ध आदि के अपान्तरालों को भर देता

અનન્તાનન્ત કર્મસ્કન્ધોથી વીંટળાયેલા આત્મપ્રદેશોને શરીરની બહાર પણ કાઢે છે અને શરીરની બહાર કાઢેલા તે આત્મપ્રદેશો વડે વદન, જઠર આદિના ખાલી સ્થાનોને અને કર્ણ સ્કન્ધ આદિના અપાન્તરાલોને ભરી દે છે, અને એ પ્રમાણે ભરી દઈને તે આયામ (લંબાઈ) અને વિસ્તારની અપેક્ષાએ શરીર પ્રમાણ ક્ષેત્રને વ્યાપ્ત કરીને અન્તર્મુહૂર્ત પ્રમાણ કાળમાં તે ઘણાં જ વધારે અસાતાવેદનીય પુદ્ગલોની નિર્જરા કરી નાખે છે

(૨) કષાય સમુદ્ઘાત—ક્રોધાદિ કષાયોને વશ થઈને જે સમુદ્ઘાત કરવામાં આવે છે તેને કષાય સમુદ્ઘાત કહે છે. તે કષાય સમુદ્ઘાત કષાય નામના ચારિત્ર મોહનીય કર્મના આશ્રયવાળો હોય છે જ્યારે તીવ્ર કષાયના ઉદયથી જીવમાં આકુળતા આવી જાય છે, ત્યારે તીવ્ર કષાયના ઉદયથી આકુળ થયેલો જીવ પોતાના પ્રદેશોને બહાર કાઢે છે. બહાર કાઢવામાં આવેલા તે પ્રદેશો વડે તે વદન, ઉદર આદિના છિદ્રોને અને કર્ણ સ્કન્ધ આદિના અપાન્તરાલોને ભરી

न्तरालानि चापूर्य आयामतो विस्तरतश्च देहमात्रक्षेत्रमभिव्याप्य तिष्ठति, तथाभूतश्च प्रभूतान् कषायकर्मपुद्गलान् परिशातयतीति । २। मारणान्तिकसमुद्घातः– मरणमेव प्राणिनामन्तकारित्वात् अन्तोमरणान्तः, तत्र भवो मारणान्तिकः, स चासौ समुद्घातश्चेति । अन्तर्मुहूर्त्तशेषायुष्ककर्माश्रय इत्यर्थः । अयं भावः–मारणान्तिकसमुद्घातगतो विक्षिप्तस्वप्रदेशो जीवो वदनोदरादि रन्ध्राणि स्कन्धाद्यपान्तरालानि चापूर्य विष्कम्भबाहल्याभ्यां स्वशरीरप्रमाणम्, आयामतः स्वशरीरातिरेकतो जघन्यतोऽङ्गुलासंख्येयभागम्, उत्कर्षतोऽसंख्येयानि योजनान्येकदिशि क्षेत्रमभिव्याप्य तिष्ठति, तथाभूतश्चायुष्कर्मपुद्गलान् शातयतीति नाश-

है, भरकर वह आयाम और विस्तार की अपेक्षा देहमात्र क्षेत्र को व्याप्त कर अन्तर्मुहूर्त्त तक वहीं पर रहता है, वहां उतने समय तक रहकर वह बहुत अधिक कषाय कर्म पुद्गलों की निर्जरा कर देता है। २

मारणान्तिक समुद्घात--मरण के समय में जो समुद्घात होता है-वह मारणान्तिक समुद्घात है, यह समुद्घात जब अन्तर्मुहूर्त्त शेष आयु रहती है तब होता है, मारणान्तिक समुद्घात वाला जीव अपने आत्मप्रदेशों को शरीर से बाहर निकालता है, और उनसे वदन, उदर आदि के रन्ध्रों को (छिद्रों को) एवं स्कन्ध आदि के अन्तरालों को भर देता है, भर कर फिर वह विष्कम्भ एवं बाहल्य से-चौड़ाई और मोटाई से-अपने शरीर के प्रमाण एवं आयाम से-लंबाई से-अपने शरीर से अधिक-कम से कम अंगुल के संख्यातवें भाग प्रमाण और अधिक से अधिक असंख्यात योजन प्रमाण क्षेत्र को

દે છે. ત્યારબાદ તે આયામ અને વિસ્તારની અપેક્ષાએ દેહમાત્ર ક્ષેત્રને વ્યાપ્ત કરી દઈને અન્તમુહૂર્ત સુધી ત્યાંજ રહે છે' ત્યાં એટલા સમય સુધી રહીને તે ઘણાં જ અધિક કષાય કર્મ પુદ્ગલોની નિર્જરા કરી નાખે છે.

મારણાન્તિક સમુદ્ઘાત–મરણને સમયે જે સમુદ્ઘાત થાય છે તેનું નામ મારણાન્તિક સમુદ્ઘાત છે જ્યારે અન્તમુહૂર્ત પ્રમાણ આયુ બાકી રહે છે, ત્યારે આ સમુદ્ઘાત થાય છે. મારણાન્તિક સમુદ્ઘાતવાળો જીવ પોતાના આત્મ પ્રદેશોને શરીરમાંથી બહાર કાઢે છે અને બહાર કાઢવામાં આવેલા તે આત્મ પ્રદેશો વડે વદન, ઉદર આદિના છિદ્રોને અને સ્કન્ધાદિ અપાન્તરાલોને ભરી દે છે. ત્યાર બાદ તે વિષ્કંભ અને બાહલ્ય (પહોળાઈ અને જાડાઈ)ની અપેક્ષાએ પોતાના શરીર પ્રમાણથી અધિક ઓછામાં ઓછા આંગળના અસંખ્યાત ભાગ પ્રમાણ અને વધારેમાં વધારે અસંખ્યાત યોજન પ્રમાણ ક્ષેત્રને એક દિશામાં

यतीत्यर्थः॥३॥ वैक्रियसमुद्घातः—वैक्रिये प्रारभ्यमाणे समुद्घातः—वैक्रियलब्धिमतो वैक्रियोत्पादनायाऽऽत्मप्रदेशानां बहिर्निष्काशनमित्यर्थः। अयं भावः—वैक्रियसमुद्घातगतः पुनर्जीवः स्वप्रदेशान् शरीराद् बहिर्निष्काश्य शरीरविष्कम्भबाहल्यमानमायामतः संख्येययोजनप्रमाणं दण्डं निसृजति, निसृज्य च यथा स्थूलान वैक्रियशरीरनामकर्मपुद्गलान् प्रागबद्धान् शाटयति इति। तदुक्तम्—

"वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहणइ, समोहणित्ता संखेज्जाइं जोयणाइं दंडं निसिरइ, निसिरित्ता अहाबायरे पुग्गले परिसाडेइ।"

छाया—वैक्रियसमुद्घातेन समवहन्ति, समवहत्य सख्येयानि योजनानि दण्डं निसृजति, निसृज्य प्रागबद्धान यथाबादरान् पुद्गलान परिशाटयति इति॥४॥

तैजससमुद्घातः—तेजसि विषये भवस्तैजसः, स चासौ समुद्घातश्चेति, तेजोलेश्याविनिर्गमकालभावी तैजसशरीरनामकर्माश्रयः समुद्घातविशेष

एक दिशा में व्याप्त कर एक अन्तर्मुहूर्त्त तक वहां रहता है, इतने समय तक वहां रहा हुआ वह जीव आयुष्क कर्म पुद्गलोंकी निर्जरा कर देता है। वैक्रियसमुद्घात वैक्रिय लब्धिवाले का वैक्रिय-उत्पादन के लिये जो आत्मप्रदेशों का बाहर निकालना है वह वैक्रियसमुद्घात है-तात्पर्य यह-है-कि वैक्रियसमुद्घात गत जीव अपने आत्म प्रदेशों को शरीर से बाहर निकालकर शरीर के विष्कम्भ और बाहल्य प्रमाण एवं आयाम की अपेक्षा संख्यात योजन प्रमाण दण्डाकार रूप से बनाता है, बनाकर पहिले के बद्ध यथा बादर पुद्गलों की निर्जरा करता है-कहा भी है--"वेउव्वियसमुग्घाएणं" इत्यादि।

तैजससमुद्घात--जो समुद्घात तेजोलेश्या के निकलने के समय में होता है और तैजस नामकर्म जिसका आश्रय है ऐसा जो

વ્યાપ્ત કરીને એક અન્તર્મુહૂર્ત સુધી ત્યાં રહે છે. એટલા સમય સુધી ત્યાં રહેલા તે જીવ આયુષ્ક કર્મ પુદ્ગલોની નિર્જરા કરી નાખે છે

(૪) વૈક્રિય સમુદ્ઘાત—વૈક્રિય લબ્ધિવાળાનુ વૈક્રિય-ઉત્પાદનને માટે જે આત્મપ્રદેશોને બહાર કાઢવાનું થાય છે, તેનું નામ વૈક્રિયસમુદ્ઘાત છે. આ કથનનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે—

વૈક્રિય સમુદ્ઘાત યુક્ત જીવ પોતાના આત્મપ્રદેશોને શરીરની બહાર કાઢીને શરીરના વિષ્કંભ (પહોળાઈ) અને બાહલ્ય (જાડઈ) પ્રમાણ અને આયામની (લંબાઈની) અપેક્ષાએ સંખ્યાત યોજન પ્રમણુ દંડાકાર રૂપે બનાવે છે, અને બનાવીને પહેલાંના બદ્ધ એવાં યથા બાદર પુદ્ગલોની નિર્જરા કરે છે. કહ્યું પણુ છે કે—"વેઉવ્વિયસમુગ્ઘાએણં" ઇત્યાદિ—

इत्यर्थः। अयमाशयः-तेजोनिसर्गलब्धिमान् क्रुद्धः साध्वादिः सप्ताष्टौ पदानि गत्वा विष्कम्भबाहल्याभ्यां शरीरमानम्, आयामतस्तु संख्येययोजनप्रमाणं जीवप्रदेशदण्डं शरीराद् बहिः प्रक्षिप्य क्रोधविषयीकृतं मनुष्यादिकं निर्दहति, तत्र निर्दहने च स प्रभूतांस्तैजसशरीरनामकर्मपुद्गलान् शाटयतीति ॥ ५ ॥ आहारकसमुद्घातः-प्राणिदया-ऋद्धिदर्शन-छद्मस्थोपग्रहणसंशयव्युच्छेदार्थं जिनपादमूले गमनाय विशिष्टलब्धिवशाच्चतुर्दशपूर्वविदा यदाह्रियते=निर्वर्त्यते तत् आहारकम्,

समुद्घात विशेष है वह तैजस समुद्घात है तात्पर्य इसका ऐसाहै-तेजो निसर्ग लब्धिवाला साधु जब किसी कारण को लेकर क्रुद्ध हो जाता है, तो वह सात आठ पैर-डग-आगे जाकर विष्कम्भ और बाहल्य से शरीर प्रमाण एवं आयाम से संख्यात योजन प्रमाण अपने आत्मप्रदेशों को दण्डके आकार में शरीर से बाहर निकालना है-और फिर-जिसके ऊपर वह साधु क्रोधित हुआ है उसको वह दग्ध (भस्म) कर देना है, इस तरह दग्ध करके वह उस क्रिया से बहुत अधिक तैजस शरीर नामकर्म के पुद्गलों की निर्जरा करता है. ५

आहारक समुद्घात--प्राणिदया के निमित्त ऋद्धिदर्शन के निमित्त छद्मस्थोपग्रहणके निमित्त एवं संशयको दूर करनेके निमित्त-जिन भगवानके समीप में जाने के निमित्त लिये लब्धिके वशसे चतुर्दश

(५) તૈજસ સમુદ્દ્ઘાત—જે સમુદ્દ્ઘાત તેજોલેશ્યા નીકળવાને સમય થાય છે અને જે સમુદ્દ્ઘાત તૈજસ સમુદ્દ્ઘાત તૈજસ નામકર્મના આશ્રયવાળો હોય છે, તે સમુદ્ઘાતનું નામ તૈજસ સમુદ્દ્ઘાત છે. આ કથનનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે-તેજો નિસર્ગ લબ્ધિવાળો સાધુ જ્યારે કોઇ કારણને લીધે ક્રોધાયમાન થાય છે, ત્યારે તે સાત આઠ ડગલા આગળ જઈને વિષ્કંભ અને બાહલ્યની અપેક્ષાએ શરીર પ્રમાણુ અને આયામની અપેક્ષાએ સંખ્યાત યોજન પ્રમાણુ પોતાના આત્મપ્રદેશોને દંડના આકારે શરીરમાંથી બહાર કાઢે છે અને જેના ઉપર તે સાધુ ક્રોધાયમાન થયો હોય છે તેને બાળીને ભસ્મ કરી નાખે છે આ પ્રમાણે દગ્ધ કરીને તે સાધુ તે ક્રિયા વડે ઘણાં જ અધિક તૈજસ શરીરના નામકર્મના પુદ્ગલોની નિર્જરા કરે છે.

(૬) આહારક સમુદ્દ્ઘાત—પ્રાણીદયાને નિમિત્તે, ઋદ્ધિનું દર્શન કરાવવાને નિમિત્તે, છદ્મસ્થોપગ્રહણુને નિમિત્તે અને સંશયના નિવારણુને માટે અર્થાત્ જિનેશ્વરની સમીપે જવાને નિમિત્તે, વિશિષ્ટ લબ્ધિના પ્રભાવે કરીને ચૌદ પૂર્વધારીના દ્વારા જે શરીરનું નિર્માણુ થાય છે, તે શરીરને આહા-

तस्मिन् प्रारभ्यमाणे समुद्घातः—आहारकसमुद्घातः। अयं भावः—आहारकसमुद्घातगतो मुनिर्जीवप्रदेशान् शरीराद्बहिर्निष्कास्य शरीरविष्कम्भबाहल्यमात्रमायामतश्च संख्येयानि योजनानि दण्डं निसृजति निसृज्य च यथा बादराऽऽहारकशरीरनामकर्मपुद्गलान् शाटयतीति ॥ ६ ॥ तथा—केवलिसमुद्घातः—अन्तर्मुहूर्त्तभाविनि परमपदे केवलिनाऽवशिष्टानां वेदनीयायुर्नामगोत्रकर्मांशानां क्षपणाय यः समुद्घातः क्रियते स केवलिसमुद्घातः। एतेन समुद्घतेनः केवली अवशिष्टान् वेदनीयादि कर्मपुद्गलान् शाटयतीति बोध्यम् ॥ ७ ॥ एषु सप्तविध-

पूर्व धारी के द्वारा जो बनाया जाता है वह आहारक है, इसके प्रारम्भ होने पर जो समुद्घात होता है वह आहारक समुद्घात है। तात्पर्य यह है—आहारक समुद्घातगत मुनि जीवप्रदेशों को शरीर से बाहर निकाल कर उन्हें शरीर के विष्कम्भ एवं बाहल्य के बराबर दण्डाकार रूप से परिणमाता है, आयाम की अपेक्षा यह दण्डाकार रूप परिणमन संख्यात योजन प्रमाण का होता है। इस प्रकार से करके फिर वह यथाबादर आहारक शरीर नाम कर्मके पुद्गलोंकी निर्जरा करताहै—

केवलिसमुद्घात—अन्तर्मुहूर्तमात्र काल—जिनका परम पद (मोक्ष) की प्राप्ति में बाकी रहा है ऐसे केवली के द्वारा अवशिष्ट वेदनीय, आयु, नाम, गोत्र, इन कर्मांशों को नाश करने के लिये जो समुद्घात किया जाता है वह केवलिसमुद्घात है—इस समुद्घात द्वारा केवली अवशिष्ट वेदनीय आदि कर्मपुद्गलों की निर्जरा करता है ऐसा

રક શરીર કહે છે. તેના પ્રારંભને નિમિત્તે જે સમુદ્ઘાત થાય છે તેને આહારક સમુદ્ઘાત કહે છે, આહારક સમુદ્ઘાતથી યુક્ત થયેલો મુનિ જીવપ્રદેશોને શરીરમાંથી બહાર કાઢીને તેમને શરીરના વિષ્કંભ અને બાહલ્યની બરાબર દંડાકાર રૂપે પરિણમાવે છે. આયામની અપેક્ષાએ આ દંડાકારરૂપ પરિણમન સંખ્યાત યોજનપ્રમાણવાળું હોય છે. આ પ્રમાણે કરીને તે યથા બાદર આહારક શરીર નામકર્મના પુદ્ગલોની નિર્જરા કરે છે.

કેવલિ સમુદ્ઘાત—જેને મોક્ષની પ્રાપ્તિ થવાને માત્ર અન્તર્મુહૂર્ત પ્રમાણ કાળ જ બાકી રહ્યો છે એવા કેવલી દ્વારા બાકીના વેદનીય, આયુ, નામ અને ગોત્ર, આ કર્માશોનો નાશ કરવાને માટે જે સમુદ્ઘાત કરવામાં આવે છે, તે સમુદ્ઘાતને કેવલિ સમુદ્ઘાત કહે છે. આ સમુદ્ઘાત વડે કેવલી બાકીનાં વેદનીય આદિ કર્મપુદ્ગલોની નિર્જરા કરે છે, એમ સમજવું.

समुद्घातेषु षट् असंख्यातसामयिकाः, अन्त्यकेवलिसमुद्घातस्त्वष्टसामयिक इति । एते सप्ताऽपि समुद्घाताश्चतुर्विंशतिदण्डकेषु मनुष्याणामेव भवन्तीत्याह— "मनुस्साणं सत्त" इत्यादि ॥ सू० ४७ ॥

पूर्वोक्तं समुद्घातादिकं वस्तु जिनैरभिहितम्, जिनाभिहितवस्तुनोऽन्यथा-प्ररूपणे च प्रवचनबाह्यता समापतति, प्रवचनबाह्यानां मुख्याश्च निह्नवा इति तद्वक्तव्यतामाह—

मूलम्—समणस्स णं भगवओ महावीरस्स तित्थंसि सत्त पवयणनिण्हगा पण्णत्ता, तं जहा—बहुरया १ जीवपएसिया २ अवत्तिया ३ सामुच्छेइया ४ दोकिरिया ५ तेरासिया ६ अवद्धिया ७। एएसि णं सत्तण्हं पवयणनिण्हगाणं सत्त धम्मायरिया पण्णत्ता, तं जहा—जमाली १, तीसगुत्ते २ आसाढे ३ आसमित्ते ४ गंगे ५ छउलुए ६ गोट्ठामाहिल्ले ७। एएसि णं सत्ताण्हं पवयणनिण्हगाणं सत्त उप्पत्तिनगरा पण्णत्ता, तं जहा—सावत्थी १ उसभपुरं २ सेयविया ३ मिहिल ४ उल्लगातीरं ५। पुरिमंताल ६ दसपुर ७ णिण्हगउप्पत्तिनगराइं ॥सू०४८॥

जानना चाहिये । इन सात समुद्घातों में से छह समुद्घात असंख्यात समय के होते हैं । और केवलि समुद्घात आठ समय का होता है । ये सातों ही समुद्घात चतुर्विंशति दण्डकों में से केवल मनुष्योंके ही होतेहैं । इसी कारण "मनुस्सा णं सत्त" ऐसा कहाहै।सूत्र४७॥

ये समुद्घात आदि वस्तुएँ केवली जिन भगवान्ने कही हैं अतः— जो जिनेन्द्र प्रतिपादित वस्तुओं की प्ररूपणा अन्यथा रूप से करते हैं वे प्रवचन से बाह्य हैं । इन प्रवचन से बाह्य रहे हुए मनुष्यों में मुख्य

આ સાત સમુદ્ઘાતોમાંના પહેલા ૬ સમુદ્ઘાત અસંખ્યાત સમયના હોય છે, પરન્તુ કેવલિ સમુદ્ઘાત આઠ સમયનો હોય છે. ૨૪ દંડકના જીવોમાંથી માત્ર મનુષ્યોમાં જ આ સાતે સાત સમુદ્ઘાતોનો સદ્ભાવ હોય છે. તેથી જ સૂત્રકારે "મનુસ્સાણં સત્ત" આ પ્રકારનો સૂત્રપાઠ અહીં કહ્યો છે ।।સૂ.૪૭।।

આ સમુદ્ઘાત આદિ વસ્તુઓની કેવલિ ભગવાને પ્રરૂપણા કરી છે જે મનુષ્યો જિનેન્દ્ર પ્રતિપાદિત વસ્તુઓની પ્રરૂપણા અન્યથા રૂપે કરે છે તેઓ

छाया—श्रमणस्य खलु भगवतो महावीरस्य तीर्थे सप्त प्रवचननिह्नवाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-बहुरताः १, जीवप्रदेशिकाः २, अव्यक्तिकाः ३, सामुच्छेदिकाः ४, द्वैक्रियाः ५, त्रैराशिकाः ६ अबद्धिकाः ७। एतेषां खलु सप्तानां प्रवचननिह्नवानां सप्त धर्माचार्याः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-जमालिः १, तिष्यगुप्तः २, आषाढः ३, अश्वमित्रः ४, गङ्गः ५, षडुलूकः ६, गोष्ठामाहिलः ७। एतेषां खलु सप्तानां प्रवचननिह्नवानां सप्तोत्पत्तिनगराणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-श्रावस्ती १ ऋषभपुरं २ श्वेतविका ३ मिथिला ४ उल्लुकातीरम् ५। पुरिमताल ६ दशपुरं ७ निह्नवोत्पत्तिनगराणि ॥ सू० ४८ ॥

टीका—' समणस्स ' इत्यादि—

प्रवचननिह्नवाः-प्रवचनं=जिनोक्तमागमं निह्नवते=अपलपन्ति विपरीततया प्ररूपयन्ति ये ते यथा-आगमस्यापलापकाः सप्त प्रज्ञप्ताः=कथिताः, तद्यथा-बहुरताः-बहुषु समयेषु वस्तूत्पत्तिर्नतु क्रियाध्यासिते एकस्मिन् समये इति सिद्धान्ते-रताः=पक्ताः-बहुरताः, बहुभिरेव समयैः कार्यं निष्पद्यते नत्वेकेन समयेनेति

निह्ववजन है अतः अब सूत्रकार इनके विषय की वक्तव्यता का कथन करते हैं-" समणस्स णं भगवओ महावीरस्स-इत्यादि । सूत्र ४८ ॥

टीकार्थ-श्रमण भगवान् महावीर के तीर्थ में सात प्रवचन निह्नव कहे गये हैं-जैसे-बहुरत १ जीव प्रदेशिक २ अवक्ताव्यिक ३ सामुच्छेदिक ४ द्वैक्रिय ५, त्रैराशिक ६ और अबद्धिक ७, जिनोक्त आगम का जो अपलाप करते हैं-उसकी विपरीत रूप से प्ररूपणा करते हैं-ऐसे वे अर्थात् आगमापलापी जन निह्नव हैं, इनमें जो ऐसा मानते हैं कि बहुत समयों में ही कार्य निष्पन्न होता है एक समय में नहीं होता है इस तरह से कहने वाले जो जमालिमतानुसारी हैं-वे बहुरत हैं । जीव का

પ્રવચનથી બાહ્ય ગણાય છે એવાં પ્રવચનબાહ્ય મનુષ્યોમાં નિહ્નવોની પ્રરૂપણા કરે છે—" समणस्स णं भगवओ महावीरस्स " ઇત્યાદિ—(સૂ ૪૮)

ટીકાર્થ-શ્રમણ ભગવાન મહાવીરના તીર્થમાં નીચે પ્રમાણે સાત પ્રવચન કહ્યા છે—(૧) બહુરત (૨) જીવપ્રદેશિક, (૩) અવ્યક્તિક, (૪) સામુચ્છેદિક, (૫) દ્વૈક્રિય, (૬) ત્રૈરાશિક અને (૭) અબદ્ધિક. જિનોક્ત આગમનો જેઓ અપલાપ કરે છે-તેની વિપરીત રૂપે પ્રરૂપણા કરે છે, એવા આગમાપલાપી જીવોને નિહ્નવો કહે છે.

(૧) બહુરત નિહ્નવ—જેઓ એવું માને છે કે ઘણા સમયોમાં કાર્ય નિષ્પન્ન થાય છે-એક સમયમાં કાર્ય નિષ્પન્ન થતું નથી, આ પ્રકારની માન્યતા ધરાવનારા જમાલિના અનુયાયીઓને બહુરત નિહ્નવ કહે છે.

वादिनो जमालिमतानुसारिणः ॥ १ ॥ जीवप्रदेशिकाः–जीवस्य प्रदेशः–चरमः प्रदेशो जीवत्वेनास्ति येषां ते जीवप्रदेशिकाः, एकेनापि प्रदेशेन न्यूनो जीवो न भवति, अतो येनैकेन प्रदेशेन पूर्णः स जीवो भवति, स एवैकः प्रदेशो जीवो भवतीति चरमप्रदेशो जीवत्वप्ररूपिणस्तिष्यगुप्ताचार्यमतानुसारिणः ॥ २ ॥ अव्यक्तिकाः–' न ज्ञायतेऽत्र कः संयतः को वाऽसंयतः इति–अव्यक्तम्–अस्फुटमेव विद्यते सर्वमभ्युपगमतो येषां ते तथा, संयतादिपरिज्ञाने सन्दिग्धबुद्धय आषाढशिष्याः ॥ ३ ॥ सामुच्छेदिकाः–उत्पत्त्यनन्तरं वस्तुनः सामस्त्येन प्रकर्षेण च छेदः–समुच्छेदो=विनाश', तं ब्रुवन्तीति सामुच्छेदिकाः । सर्वं वस्तु क्षणिकमिति वादि

चरम प्रदेश ही जीव है ऐसी जिनकी मान्यता है वे चरम प्रदेश को जीव मानने वाले जीवप्रदेशिक हैं। इनकी ऐसी मान्यता है कि एक भी प्रदेश से न्यून जीव जीव नहीं होता है, इसलिये जिस एक प्रदेशसे पूर्ण हुआ जीव जीव होता है, इस तरह चरमप्रदेश में जीवत्व की प्ररूपणा करने वाले तिष्य गुप्ताचार्य के मतानुयायी हैं। अव्यक्तिक –यहां यह कैसे जाना जासकता है कि यह संयत है और यह असंयत है, इसलिये यह सब अव्यक्त है, ऐसी संदिग्धशील मान्यता संयतादि के परिज्ञान में जिनकी हैं वे संदिग्धबुद्धिवाले आषाढाचार्य के मतानुयायी हैं। उत्पत्ति के अनन्तर ही वस्तु का विनाश सम्पूर्ण रूप से हो जाता है ऐसी जिनकी मान्यता है वे सामुच्छेदिक है अर्थात्

(૨) જીવપ્રદેશિક નિહ્નવ—જીવનો ચરમપ્રદેશ જ જીવ છે, એવી જેમની માન્યતા છે એવા ચરમપ્રદેશને જ જીવ માનનારા લોકોને જીવપ્રદેશિક નિહ્નવ કહે છે આ મતવાદીઓની એવી માન્યતા છે કે એક પણ પ્રદેશથી ન્યૂન જીવ જીવરૂપ હોતો નથી. તેથી એકે એક પ્રદેશોથી પૂર્ણ હોય એવા જીવને જીવરૂપ કહી શકાય છે આ પ્રકારે ચરણુપ્રદેશમાં ચરમપ્રદેશમાં જીવત્વની પ્રરૂપણા કરનારા તિષ્યગુપ્તાચાર્યના મતને અનુસરનારાઓને જીવપ્રદેશિક નિહ્નવ કહે છે.

(૩) અવ્યક્તિક—"અહીં એ વાત કેવી રીતે જાણી શકાય કે આ સંયત છે અને આ અસંયત છે, તેથી આ બધું અવ્યક્ત છે" સંયતાદિના પરિજ્ઞાનના વિષયમાં, આ પ્રકારની સંદિગ્ધ માન્યતા જેઓ ધરાવે છે તેમને અવ્યક્તિક કહે છે આષાઢાચાર્યના મતને માનનારા લોકો આ પ્રકારની સંદિગ્ધ મનોદશાવાળા છે.

(૪) સામુચ્છેદિક—જે વસ્તુની ઉત્પત્તિ થાય છે, તેના સંપૂર્ણ રૂપે વિનાશ પણ થાય છે, એટલે કે સમસ્ત વસ્તુઓ ક્ષણિક છે, આ પ્રકારની

नोऽश्वमित्रानुयायिन इति ॥ ४ ॥ द्वैक्रियाः-एकस्मिन् समये क्रियाद्वयस्यानुभवो भवतीतिवादिनो गङ्गाचार्यानुयायिनः ॥ ५ ॥ त्रैराशिकाः-त्रयश्च ते राशयश्चेति त्रिराशयः=जीवाजीवरूपाः, तान् अभ्युपगच्छन्ति ये ते त्रैराशिकाः, जीवाजीव नो जीवेति राशित्रयवादिनः षडुलूकापरनामकरोहगुप्तमतानुसारिणः ॥ ६ ॥ तथा-अबद्धिकाः-स्पृष्टं जीवेन कर्म न स्कन्धबन्धवद्बद्धमित्यबद्धं तदस्ति अभ्युपगम्यत्वेन येषां ते-अबद्धिकाः, स्पृष्टकर्मविपाकप्ररूपका गोष्ठामाहिलमतानुसारिण इति ॥ ७ ॥ एषां प्रवचननिह्नवानां धर्माचार्या जमालिप्रभृतयो यथासंख्यमुन्नेयाः । एषां सप्तानां प्रवचननिह्नवानां=प्रवचनापलापकानामु-

समस्त वस्तु क्षणिक हैं-ऐसा कहने वाले जो हैं वे अश्वमित्रानुयायी हैं।

द्वैक्रिय--एक समय में क्रिया द्वय का अनुभव होता है ऐसा कहने वाले गङ्गाचार्य के अनुयायी हैं।

त्रैराशिक--जीव, अजीव, और नो जीव नो अजीव इस प्रकार से तीन राशियाँ हैं, इन तीन राशियों को जो मानते हैं वे त्रैराशिक हैं। ये त्रैराशिक षडुलूक कि जिसका दूसरा नाम रोहगुप्त है के मतने अनुयायी हैं।

अबद्धिक--जीव से स्पृष्ट हुआ कर्म स्कन्ध की तरह बद्ध नहीं होता है ऐसी उनकी मान्यता है वे अबद्धिक हैं। ये स्पृष्ट कर्म के विपाक के प्ररूपक होते हैं, और गोष्ठामाहिल के मत के अनुयायी होते हैं, इन प्रवचन निह्नवों के क्रमशः धर्माचार्य जमालि१, तिष्यगुप्त२, आषाढाचार्य ३ अश्वमित्र ४ गङ्गाचार्य ५, षडुलूक-रोहगुप्त६ गोष्ठामाहिल७ हैं।

માન્યતા ધરાવનારા અશ્વમિત્રના અનુયાયીઓને સામુચ્છેદિક નિહ્નવ કહે છે.

(૫) દ્વૈક્રિય નિહ્નવ—એક સમયમાં બે ક્રિયાનો અનુભવ થાય છે, આ પ્રકારની માન્યતા ધરાવનારા ગંગાચાર્યના અનુયાયીઓને દ્વૈક્રિય નિહ્નવ કહે છે.

(૬) ત્રૈરાશિક—જીવ, અજીવ, અને નોજીવ નોઅજીવ આ પ્રકારની ત્રણ રાશિઓ છે, એવું માનનારા ષડુલૂકનું બીજું નામ રોહગુપ્ત પણ આપવામાં આવ્યું છે.

અબદ્ધિક—" જીવ વડે સ્પૃષ્ટ થયેલું કર્મ સ્કન્ધની જેમ બદ્ધ હોતું નથી," આ પ્રકારની જેમની માન્યતા છે તેમને અબદ્ધિક કહે છે. તેઓ સ્પૃષ્ટ કર્મના વિપાકના પ્રરૂપકો હોય છે. ગોષ્ઠામાહિલના અનુયાયીઓ આ પ્રકારનો મત ધરાવે છે.

આ સાતે પ્રવચન નિહ્નવોના ધર્માચાર્યોનાં નામ અનુક્રમે આ પ્રમાણે છે-(૧) જમાલિ, (૨) તિષ્યગુપ્ત, (૩) આષાઢાચાર્ય, (૪) અશ્વમિત્ર, (૫)

त्पत्तिस्थानानि मेण श्रावस्त्यादीनि विज्ञेयानीति । एषां सप्त निह्नवानां विषये विशेषजिज्ञासुभिरुत्तराध्ययनस्य तृतीयेऽध्ययने मत्कृतायां प्रियदर्शिन्यां व्याख्यायां द्रष्टव्यमिति ॥ सू० ४८ ॥

एते निह्नवाः संसारे पर्यटन्तः सातासातभोगिनो भविष्यन्तीति सातासातस्वरूपमाह—

मूलम्—सायावेयणिज्जस्स णं कम्मस्स सत्तविहे अणुभावे पण्णत्ते, तं जहा—मणुन्ना सद्दा १, मणुन्ना रूवा २, जाव मणुन्ना फासा ५ मणोसुहया ६ वइसुहया ७। असायावेयणिज्जस्स णं कम्मस्स सत्तविहे अणुभावे पण्णत्ते, तं जहा—अमणुन्ना सद्दा १ जाव वइदुहया ७ ॥ सू० ४९ ॥

छाया—सातावेदनीयस्य खलु कर्मणः सप्तविधोऽनुभावः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—मनोज्ञाः शब्दाः, मनोज्ञानि रूपाणि, यावत् मनोज्ञाः स्पर्शाः मनः सुखता वाक्सु-

---

इनकी नगरी का नाम इस प्रकार से है जमालि श्रावस्ती के, तिष्यगुप्त रिषभपुरके, आषाढाचार्य—श्वेताम्बिकानगरी के, अश्वमित्र—मिथिलानगरी के, गङ्गाचार्य—उलुकातीर नगरी के, षडूलुक—रोहगुप्त—अंतरंजिका नगरीके गोष्ठामाहिल—दशपुर के निवासी हैं। इन सात निह्नवों के विषय में विशेष जिज्ञासुओं को उत्तराध्ययन के तृतीय अध्ययन पर जो मेरे द्वारा प्रियदर्शिनी टीका लिखी गईहै वह देखनी चाहिये॥सूत्र४८॥

ये निह्नव चतुर्गतिक संसार में परिभ्रमण करते हुए सातासात को भोगने वाले होंगे—इसलिये अब सूत्रकार सातासात के स्वरूप

ગંગાચાર્ય, (૬) ષડુલૂક (રોહગુપ્ત) અને (૭) ગોષ્ઠામાહિલ. આ ધર્માચાર્યોની નગરીઓનાં નામ નીચે પ્રમાણે સમજવા – જમાલિ શ્રાવસ્તીમાં, તિષ્યગુપ્ત રિષભપુરમાં, આષાઢાચાર્ય શ્વેતામ્બિકા નગરીમાં, અશ્વમિત્ર મિથિલા નગરીમાં, ગંગાચાર્ય ઉલુકાતીર નગરીમાં, ષડુલુક-રોહગુપ્ત અંતરંજીકા નગરીમાં અને ગોષ્ઠામાહિલ દશપુર નગરમાં થઇ ગયા હતા. આ સાતે નિહ્નવો વિષે વધુ માહિતી મેળવવાની ઇચ્છાવાળા પાઠકોએ ઉત્તરાધ્યયન સૂત્રના ત્રીજા અધ્યયન પર મારા દ્વારા લખાયેલી પ્રિયદર્શિની ટીકા વાંચી જવી. ॥ સૂ ૪૮ ॥

ઉપર્યુક્ત નિહ્નવો ચતુર્ગતિક સંસારમાં પરિભ્રમણ કરતાં થકાસાતાસાતને ભોગવશે, તે કારણે હવે સૂત્રકાર સાતાસાતના સ્વરૂપની પ્રરૂપણા કરે છે—

खता । असातवेदनीयस्य खलु कर्मणः सप्तविधोऽनुभावः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-अमनोज्ञाः शब्दा यावद् वाग्दुःखता ॥ सू० ४९ ॥

टीका—' सायावेयणिज्जस्स ' इत्यादि—

सातावेदनीयस्य=सुखकारणभूतस्य कर्मणः सप्तप्रकारकः अनुभावः=विपाकउदयो रस इति यावत् प्रज्ञप्तः=प्ररूपितः, तद्यथा-मनोज्ञाः शब्दा इत्यादि । मनोज्ञत्वविशिष्टाः शब्दरूपरसगन्धस्पर्शा इति पञ्च । मनःसुखता=मनसः सुखरूपत्वं, वाक्सुखता=वाचः सुखरूपत्वं चेति द्वौ, इति सप्त सातानुभावाः । ' सुहया ' इत्यस्य ' शुभता ' इतिच्छायापक्षे-मनसः शुभरूपत्वं वाचःशुभरूपत्वमिति । एतत्पक्षे सातानुभावकारणत्वात् सातानुभावत्वं बोध्यमिति । एतद्विपरीत्येन असातावेदनीयकर्मणोऽपि सप्तप्रकारो विवरणीय इति ॥ सू० ४९ ॥

का कथन करते हैं-" सायावेयणिज्जस्स णं कम्मस्स-इत्यादि । सूत्र४९॥

टीकार्थ-साता वेदनीय कर्म का अनुभाव सात प्रकार का कहा गया है-अर्थात् सुख के कारण भूत कर्म का विपाक-उदयरस-सात प्रकार का कहा गया है, जैसे-मनोज्ञ शब्द यावत्-मनोज्ञ रूप, मनोज्ञ रस, मनोज्ञ गन्ध, और मनोज्ञ स्पर्श, एवं मनकी सुखरूपता और वचन की सुखरूपता " सुहया " की संस्कृतच्छाया " शुभता " ऐसी भी होती है-इस पक्ष में " मन की शुभरूपता और वचन की शुभरूपता ऐसा अर्थ होता है । इस पक्ष में साता का अनुभाव का कारण होने से शुभता में सातानुभावता जाननी चाहिये, इससे विपरीत जो असातावेदनीय कर्म है उसका अनुभाव (कर्मों का फल भोगने की शक्ति) भी सात प्रकार का है, और वह सस प्रकारता पूर्वोक्त रूप से विपरीत रूप में कथित कर लेनी चाहिये ॥ सू० ४९ ॥

" सायावेयणिज्जस्स णं कम्मस्स " ઇત્યાદિ—(સૂ ૪૯)

ટીકાર્થ-સાતાવેદનીય કર્મનો અનુભાવ સાત પ્રકારનો કહ્યો છે. એટલે કે સુખના કારણભૂત કર્મનો વિપાક-ઉદયરસ-સાત પ્રકારનો કહ્યો છે—(૧) મનોજ્ઞ શબ્દ, (૨) મનોજ્ઞ રૂપ, (૩) મનોજ્ઞ રસ, (૪) મનોજ્ઞ ગન્ધ, (૫) મનોજ્ઞ સ્પર્શ, (૬) મનની સુખરૂપતા અને (૭) વચનની સુખરૂપતા. " सुहया "ની સંસ્કૃત છાયા " शुभता " પણ થાય છે. આ સંસ્કૃત છાયાની અપેક્ષાએ છટ્ઠો અને સાતમો પ્રકાર મનની શુભરૂપતા અને વચનની શુભરૂપતા થાય છે આ પ્રકારના અર્થની દૃષ્ટિએ સાતાના અનુભાવમાં કારણભૂત હોવાથી શુભતામાં સાતાનુભાવતા સમજવી. સાતાવેદનીય કર્મ કરતાં વિપરીત એવું જે અસાતાવેદનીય કર્મ છે તેનો અનુભવ (કર્મોનું ફલ ભોગવવાની શક્તિ) પણ સાત પ્રકારનો સમજવો—(૧) અમનોજ્ઞ શબ્દ, આદિ સાત પ્રકારો પૂર્વોક્ત પ્રકારો કરતાં વિપરીત રૂપે અહીં કહેવા જોઈએ ॥ સૂ ૪૯ ॥

अनन्तरं सातासातानुभावौ प्ररूपितौ। सातासातवन्तश्च देवा इति तद्विशेषान् ज्योतिष्कान् प्ररूपयति—

मूलम्—महाणक्खत्ते सत्ततारे पण्णत्ते। अभिईयाइया सत्त नक्खत्ता पुव्वदारिया पण्णत्ता, तं जहा—अभिई १ सवणो २ धणिट्ठा ३ सयभिसया ४ पुव्वाभद्दवया ५ उत्तराभद्दवया ६ रेवई ७। अस्सिणियाइया णं सत्त णक्खत्ता दाहिणदारिया पण्णत्ता, तं जहा—अस्सिणी १ भरणी २ कित्तिया ३ रोहिणी ४ मिगसिरे ५ अद्दा ६ पुणव्वसू ७। पुस्साइया णं सत्त णक्खत्ता अवरदारिया पण्णत्ता, तं जहा—पुस्सो १ असिलेसा २ मघा ३ पुव्वाफग्गुणी ४ उत्तराफग्गुणी ५ हत्थो ६ चित्ता ७। साइयाइया णं सत्त णक्खत्ता उत्तरदारिया पण्णत्ता, तं जहा—साई १ विसाहा २ अणुराहा ३ जेट्ठा ४ मूलो ५ पुव्वासाढा ६ उत्तरासाढा ७॥ सू० ५०॥

छाया—मघानक्षत्रं सप्ततारं प्रज्ञप्तम्। अभिजिदादिकानि सप्त नक्षत्राणि पूर्वद्वारिकाणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—अभिजित् १, श्रवणः २ धनिष्ठा ३ शतभिषक्

साता और असातावाले देव होते हैं, अतः अब सूत्रकार उन देवों के बीच में से ज्योतिष्क देवों की प्ररूपणा करते हैं—

"महा णक्खत्ते सत्ततारे पण्णत्ते—इत्यादि॥ सूत्र ५०॥

सूत्रार्थ—मघा नक्षत्र सात तारों वाला कहा गया है, अभिजित् आदि सात नक्षत्र पूर्व द्वारिक कहे गये हैं, वे अभिजित् आदि सात नक्षत्र इस प्रकार से हैं—अभिजित् १ श्रवण २ धनिष्ठा ३ शतभिषक् ४

સાતા અને અસાતાવાળા દેવો હોય છે, તેથી હવે સૂત્રકાર તે દેવોના એક પ્રકાર રૂપ જે જ્યોતિષ્કદેવો છે, તેમની પ્રરૂપણા કરે છે—

"મહાણક્ખત્તે સત્તત્તારે પણ્ણત્તે" ઇત્યાદિ—(સૂ ૫૦)

સૂત્રાર્થ—મઘા નક્ષત્ર સાત તારાંવાળું છે અભિજિત આદિ સાત નક્ષત્રોને પૂર્વ દ્વારિક કહ્યા છે. તે સાત નક્ષત્રોનાં નામ નીચે પ્રમાણે છે—(૧) અભિજિત, (૨) શ્રવણ, (૩) ધનિષ્ઠા, (૪) શતભિષક, (૫) પૂર્વ ભાદ્રપદા, (૬) ઉત્તર ભાદ્રપદા, (૭) રેવતી.

४ पूर्वभाद्रपदा ५ उत्तरभाद्रपदा ६ रेवती ७। अश्विन्यादिकानि सप्त नक्षत्राणि दक्षिणद्वारिकाणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-अश्विनी १ भरणी २ कृत्तिका ३ रोहिणी ४ मृगशिराः ५ आर्द्रा ६ पुनर्वसु ७। पुष्यादिकानि खलु सप्त नक्षत्राणि अपरद्वारिकाणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-पुष्यः १ अश्लेषा २ मघा ३ पूर्वाफाल्गुनी ४ उत्तराफाल्गुनी ५ हस्तः ६ चित्रा ७। स्वात्यादिकानि खलु सप्त नक्षत्राणि उत्तरद्वारिकाणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-स्वातिः १ विशाखा २ अनुराधा ३ ज्येष्ठा ४ मूलं ५ पूर्वाषाढा ६ उत्तराषाढा ७ ॥ सू० ५० ॥

टीका--' महाणक्खत्ते ' इत्यादि--

व्याख्या स्पष्टा। नवरं-पूर्वद्वारिकाणि-पूर्वं च तद्द्वारं पूर्वद्वारं, तदस्ति येषां तानि तथोक्तानि। पूर्वस्यां दिशि येषु सत्सु गच्छतः शुभं भवतीति। एवं दक्षिणद्वारिकाणि अपरद्वारिकाणि=पश्चिमद्वारिकाणि च बोध्यानि। अत्र पञ्च

पूर्वभाद्रपदा ५, उत्तर भाद्रपदा ६ और रेवती ७, अश्विनी आदि सात नक्षत्र दक्षिण द्वारिक कहे गये हैं, वे इस प्रकार से हैं-अश्विनी १ भरणी २ कृत्तिका ३ रोहिणी ४ मृगशिरा ५, आर्द्रा ६ और पुनर्वसु ७, पुष्यादिक सात नक्षत्र अपर (पश्चिम) द्वारिक कहे गये हैं-जैसे-पुष्य १, आश्लेषा २ मघा ३ पूर्वाफाल्गुनी ४ उत्तराफाल्गुनी ५ हस्त ६ और चित्रा ७. स्वात्यादिक सात नक्षत्र उत्तर द्वारिक कहे गये हैं-जैसे-स्वाति १, विशाखा २, अनुराधा ३, ज्येष्ठा ४ मूल ५ पूर्वाषाढा ६-और उत्तराषाढा ७, पूर्व-पूर्वदिशा-रूप द्वार हैं जिनका वे पूर्वद्वारिक हैं। जब ये अभिजित् आदि सात नक्षत्र पूर्व दिशा में होते हैं तब उस समय में जाने वाले को लाभ की प्राप्ति होती है, इसी प्रकार

નીચેના સાત નક્ષત્રોને દક્ષિણ દ્વારિક કહ્યા છે—(૧) અશ્વિની, (૨) ભરણી (૩) કૃત્તિકા, (૪) રોહિણી, (૫) મૃગશીર્ષ, (૬) આર્દ્રા, અને (૭) પુનર્વસુ. નીચેના સાત નક્ષત્રોને પશ્ચિમ દ્વારિક કહ્યા છે-(૧) પુષ્ય, (૨) અશ્લેષા, (૩) મઘા, (૪) પૂર્વા ફાલ્ગુની, (૫) ઉત્તરા ફાલ્ગુની, (૬) હસ્ત અને (૭) ચિત્રા.

નીચેના સાત નક્ષત્રોને ઉત્તર દ્વારિક કહ્યા છે-(૧) સ્વાતિ, (૨) વિશાખા, (૩) અનુરાધા, (૪) જયેષ્ઠ, (૫) મૂલ, (૬) પૂર્વાષાઢા અને (૭) ઉત્તરાષાઢા. પૂર્વ દિશા રૂપ જેમનું દ્વાર છે, એવાં નક્ષત્રોને પૂર્વદ્વારિક કહે છે જયારે આ અભિજિત્ આદિ સાત નક્ષત્રો પૂર્વ દિશામાં હોય છે, ત્યારે જનારને લાભની પ્રાપ્તિ થાય છે. એજ પ્રમાણે દક્ષિણ દ્વારિક, પશ્ચિમ દ્વારિક અને ઉત્તર દ્વારિક નક્ષત્રોના વિષે પણ સમજવું

मतानि सन्ति । तदुक्तम्--" तत्थ खलु इमाओ पंच पडिवत्तीओ पण्णत्ताओ ।--
--तत्थेगे एवमाहंसु-कत्तियाइया सत्त णक्खत्ता पुव्वदारिया पण्णत्ता १। एगे पुण एवमाहंसु-महादिया सत्त णक्खत्ता पुव्वदारिया पण्णत्ता २। एगे पुण एवमाहंसु-धणिट्ठाइया सत्त णक्खत्ता पुव्वदारिया पण्णत्ता ३। एगे पुण एवमाहंसु-अस्सिणाइया सत्त नक्खत्ता पुव्वदारिया पण्णत्ता ४। एगे पुण एवमाहंसु-भरणीआइया सत्त णक्खत्ता पुव्वदारिया पण्णत्ता ५। वयं पुण एवं वयामो-अभिइयाइयाणं सत्त णक्खत्ता पुव्वदारिया पण्णत्ता ६ ॥ "

छाया--तत्र खलु इमाः पञ्च प्रतिपत्तयः प्रज्ञप्ताः । तत्रैके पुनरेवमाहुः-कृत्तिकादिकानि सप्त नक्षत्राणि पूर्वद्वारिकाणि प्रज्ञप्तानि १। एके पुनरेवमाहुः-मघादिकानि सप्त नक्षत्राणि पूर्वद्वारिकाणि प्रज्ञप्तानि । एके पुनरेवमाहुः-धनिष्ठादिकानि सप्त नक्षत्राणि पूर्वद्वारिकाणि प्रज्ञप्तानि ३। एके पुनरेवमाहुः-अश्विन्यादीनि सप्त नक्षत्राणि पूर्वद्वारिकाणि प्रज्ञप्तानि ४। एके पुनरेवमाहुः-भरण्यादिकानि सप्त नक्षत्राणि पूर्वद्वारिकाणि प्रज्ञप्तानि ५। वयं पुनरेवं वदामः-अभिजिदादिकानि सप्त नक्षत्राणि पूर्वद्वारिकाणि प्रज्ञप्तानि ६ ॥ इति ।

से दक्षिण द्वारिक, अपर द्वारिक-पश्चिम द्वारिक-और उत्तर द्वारिक नक्षत्रों के सम्बन्धमें भी जानना चाहिये यहाँ पांच मतहैं-कहा भी है--

" तत्थ खलु इमाओ पंच पडिवत्तीओ पण्णत्ताओ " इत्यादि । कोई एक ऐसा कहते हैं-कृत्तिका आदि सात नक्षत्र पूर्वद्वारिक कहे गये है ? कोई एक ऐसा कहते हैं-मघा आदिक सात नक्षत्र पूर्व द्वारिक गये हैं २ कितनेक ऐसा कहते हैं-धनिष्ठा आदि सात नक्षत्र पूर्व द्वारिक हैं ३ कितनेक ऐसा कहते हैं-अश्विनी आदि सात नक्षत्र पूर्वद्वारिक हैं ४ ।

कितनेक ऐसा कहते हैं-भरणी आदि सात नक्षत्र पूर्वद्वारिक कहे गये हैं । परन्तु हम ऐसा कहते हैं कि अभिजित् आदि सात नक्षत्र पूर्वद्वारिक है "

આ નક્ષત્રોના વિષયમાં જુદા જુદા પાંચ મત પ્રચલિત છે. કહ્યું પણ છે કે--" तत्थ खलु इमाओ पंच पडिवत्तीओ पण्णत्ताओ " ઇત્યાદિ--એક માન્યતા પ્રમાણે કૃત્તિકા આદિ સાત નક્ષત્રોને પૂર્વદ્વારિક કહ્યા છે બીજી માન્યતા પ્રમાણે મઘા આદિ સાત નક્ષત્રોને પૂર્વદ્વારિક કહ્યા છે. ત્રીજી માન્યતા પ્રમાણે ધનિષ્ઠા આદિ સાત નક્ષત્રોને પૂર્વદ્વારિક કહ્યા છે ચોથી માન્યતા પ્રમાણે અશ્વિની આદિ સાત નક્ષત્રોને પૂર્વદ્વારિક કહ્યા છે. પાંચમી માન્યતા પ્રમાણે ભરણી આદિ સાત નક્ષત્રોને પૂર્વદ્વારિક કહ્યા છે.

सर्वेष्वपि पक्षेषु पूर्वद्वारिकानक्षत्रानन्तरं सप्त सप्त कृत्वा दक्षिणद्वारिकादीनि नक्षत्राण्यपि बोध्यानि। अत्र तु षष्ठं मतमाश्रित्य सूत्राणि बोध्यानि। लोके तु प्रथममतमाश्रित्यैतदुच्यते, तथाहि—

"दहनाद्य (कृत्तिकाद्य) मृक्ष (नक्षत्र) सप्तकमैन्द्र्यां (पूर्वस्यां) तु मघादिकं च याम्यायाम् (दक्षिणस्याम्)

अपरस्यां (पश्चिमायां) मैत्रादिकं (अनुराधादिकं) मथसौम्यां (उत्तरस्यां) दिशि धनिष्ठादि ॥ १ ॥

भवति गमने नराणामभिमुखमुपसर्पतां शुभप्राप्तिः।

अथ पू.मृक्षसप्तकमुद्दिष्टं मध्यनमुदीच्याम् (उत्तरस्याम्) ॥ २ ॥

समस्त भी पक्षोंमें पूर्वद्वारिक नक्षत्रोंके अनन्तर सात २ करके दक्षिण द्वारिक आदि नक्षत्र भी जानना चहिये।

यहां तो छठे मतको आश्रित करके ये सूत्र कहे गये हैं, लोकमें प्रथम मतको आश्रित करके ऐसा कहा जाता है-जैसे—

"दहनाद्य (कृत्तिकाद्य) मृक्ष" इत्यादि।

(दहनाद्यमृक्षसप्तकं) = कृत्तिकादि सात नक्षत्र (ऐन्द्र्यां) पूर्व दिशाके हैं, और मघादि सात नक्षत्र (याम्यायां) दक्षिण दिशाके हैं, (अपरस्यां) पश्चिम दिशामें (मैत्र्यादिकं) अनुराधादि सात नक्षत्र हैं, तथा (सौम्यां दिशि) उत्तर दिशामें धनिष्ठादि सात नक्षत्र हैं इस प्रकार अभिजित् सहित २८ नक्षत्रोंको कहकर आग्नेय कोणसे वायव्यकोण तक एक लकीर खींच देना उसी रेखाको परिघदण्ड कहते हैं। (नराणामभिमुखमुपसर्पतां) सामने वाले नक्षत्रोंमें जानेवाले मनुष्य की (गमने) यात्रामें शुभ फल प्राप्ति होती है॥

પરન્તુ અમે એવું કહીએ છીએ કે "અભિજિત્ આદિ સાત નક્ષત્રો પૂર્વદ્વારિક છે"

બધા પક્ષોની માન્યતા પ્રમાણે પૂર્વદ્વારિક નક્ષત્રો પછી દક્ષિણદ્વારિક આદિ સાત સાત નક્ષત્રોનું કથન પણ અહીં કરવું જોઈએ. હવે છટ્ઠા મતનો આશ્રય લઈને નીચેનાં સૂત્રોનું કથન કરવામાં આવે છે—

લોકમાં પ્રથમ મતને આધારે એવું કહેવામાં આવે છે કે—

"दहनाद्य (कृत्तिकाद्य) मृक्ष" ઈત્યાદિ—

(દહનાદ્યમૃક્ષ સપ્તક) = કૃત્તિકાદિ સાત નક્ષત્ર (ऐन्द्र्यां) પૂર્વ દિશાના છે, મઘાદિ સાત નક્ષત્રો (याम्यायां) દક્ષિણ દિશાના છે, અનુરાધાદિ સાત નક્ષત્રો (अपरस्यां) પશ્ચિમ દિશાના છે અને ધનિષ્ઠાદિ સાત નક્ષત્રો (सौम्यां दिशि) ઉત્તર દિશાના આ પ્રમાણે અભિજિત્ આદિ ૨૮ નક્ષત્રોનું અહીં કથન કરવામાં આવ્યું છે. હવે અગ્નિ કોણથી શરૂ કરીને વાયવ્ય કોણ સુધી જો એક રેખા દોરવામાં આવે, તો તે રેખાને 'પરિઘદંડ' કહે છે. (नराणामभिमुखमुपसर्पतां)

पूर्वीयामौदीच्यां-प्रातीच्यां (पश्चिमायां) दक्षिणाभिधानायाम् ।
याम्यां (दाक्षिणस्यां) तु भवति मध्यममपरस्यां (पश्चिमायां) यातुराशायाम्॥३॥
येऽतीत्य यान्ति मूढाः परिघाख्यामनिलदहनदिग्रेखाम् ।
निपतन्ति तेऽचिरादपि दुर्व्यसने निष्फलारम्भाः ॥ ४ ॥" इति ॥सू०५१॥

अब मध्यम फलके प्रकार कहते हैं, (पूर्वमृक्षसप्तकं) पूर्व दिशामें जो सात नक्षत्र कहे गये हैं वे नक्षत्र (उदीच्यां मध्यमम्) उत्तर दिशाकी यात्रामें मध्यम हैं । इसी प्रकार (पूर्वायामौदीच्यां) उत्तर दिशावाले नक्षत्रों में पूर्व तरफ जाना मध्यम है । तथा दक्षिण दिशावाले नक्षत्र पश्चिम दिशाके लिए और पश्चिम दिशावाले नक्षत्र दक्षिण दिशाके लिये मध्यम होते हैं (येऽनीत्य यान्ति मूढा .. परिघाख्याम्-अनिलदहनदिग्रेखां) जो मूर्ख वायव्यकोणसे आग्नेयकोण तक गई हुई परिघ नामकी रेखाको लांघकर यात्रा करते हैं वे (अचिरादपि) शीघ्र ही दुर्व्यसन (कष्ट) में पडते हैं और जिस कार्यके लिए जाते हैं उनको उस कार्यमें निष्फलता मिलती है । स्पष्टताके लिये टीका में दिया हुआ चक्र देखिए—

इसका सारांश संस्कृतश्लोक ऐसा है—

पूर्वादिषु चतुर्दिक्षु सप्तसप्तानलक्षेतः ।
वायव्याऽग्नेयदिक् संस्थं परिघं नैव लङ्घयेत् ॥

સામેના નક્ષત્રોમાં જનારા મનુષ્યોની (ગમને) યાત્રામાં શુભફલની પ્રાપ્તિ થાય છે. હવે મધ્યમ ફલના પ્રકારો કહેવામાં આવે છે—(पूर्वमृक्षसप्तकं)(૧) પૂર્વ-દિશામાં જે સાત નક્ષત્રો કહ્યાં છે, તેઓ (उदीच्यां मध्यमम्) ઉત્તર દિશાની યાત્રામા મધ્યમ છે એજ પ્રમાણે (पूर्वायामौदीच्यां) (૨) ઉત્તર દિશાવાળા નક્ષત્રોમાં પૂર્વ તરફનું ગમન મધ્યમ ફલદાયી છે (૩) દક્ષિણ દિશાનાં નક્ષત્રો પશ્ચિમ દિશા માટે અને પશ્ચિમ દિશાનાં નક્ષત્રો દક્ષિણ માટે મધ્યમ છે (येऽनीत्ययान्ति मूढा ....परिघाख्याम्-अनिलदहनदिग्रेखां) જે મૂર્ખ વાયવ્ય કોણમાથી અગ્નિકોણ સુધી દોરેલી પરિઘ નામની રેખાને ઓળંગીને મુસાફરી કરે છે, તેઓ (अचिरादपि) તુરત જ મુશ્કેલીમાં આવી પડે છે તેઓ જે કાર્યને માટે જતાં હોય છે તે કાર્યમાં નિષ્ફળતા જ પ્રાપ્ત કરે છે

આ કથનની સ્પષ્ટતાને માટે સંસ્કૃત ટીકામાં આકૃતિ આપવામાં આવી છે—

આ આકૃતિનો ભાવાર્થ બતાવતો સંસ્કૃત શ્લોક આ પ્રમાણે છે—

" पूर्वादिपु चतुर्दिक्षु सप्तसप्तानलक्षतः ।
वायव्याग्नेय दिक् संस्थ परिघं नैवलङ्घयेत् "

देवाधिकारात्सम्प्रति देवनिवासभूतान् कूटान् प्ररूपयति—

मूलम्—जंबुद्दीवे दीवे सोमणसे वक्खारपव्वए सत्त कूडा पण्णत्ता, तं जहा–सिद्धे १ सोमणसे २ तह बोद्धव्वे मंगलावईकूडे ३। देवकुरु ४ विमल ५ कंचण ६ विसिट्ठकूडे ८ य बोद्धव्वे ॥ १ ॥ जंबुद्दीवे दीवे गंधमायणे वक्खारपव्वए सत्तकूडा पण्णत्ता, तं जहा–सिद्धे य गंधमायण, बोद्धव्वे गंधिलावईकूडे। उत्तरकुरू फलिहे, लोहियक्ख आणंदणे चेव ।१॥सू०५१।

छाया—जम्बूद्वीपे द्वीपे सौमनसे वक्षस्कार पर्वते सप्त कूटानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा–सिद्धं सौमनसं तथा बोद्धव्यं मङ्गलावतीकूटम्। देवकुरु विमलं काञ्चनं विशिष्टकूटं च बोद्धव्यम् ॥ १ ॥ जम्बूद्वीपे द्वीपे गन्धमादने वक्षस्कारपर्वते सप्त कूटानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा–सिद्धं च गन्धमादनं बोद्धव्यं गन्धिलावतीकूटम्। उत्तर कुरु स्फाटिकं लोहिताक्षम् आनन्दन चैव ॥ १ ॥ सू० ५१ ॥

टीका—'जंबुद्दीवे दीवे' इत्यादि—

जम्बूद्वीपाभिधद्वीपस्थे देवकुरूणामपेक्षया पूर्वदिग्वर्तिनि सौमनसे गजदन्ता-

---

अर्थात् कृत्तिकादि सात सात नक्षत्र क्रमसे पूर्वादि चारों दिशाओंमें लिखकर आग्नेय कोणसे वायव्य कोण तक रेखा खींच देनी उसे परिघदण्ड समझ कर अपने अपने भागवाले १४, १४ नक्षत्रोंमें उसी उसी भागमें फिरना दण्डको लांघकर कभी भी यात्रा नहीं करना ॥सूत्र५०॥

देवाधिकारको लेकर अब सूत्रकार देव निवासभूत कूटोंकी प्ररूपणा करते हैं–जंबुद्दीवे दीवे सोमणसे वक्खारपव्वए–इत्यादि ॥सू०५१॥

जम्बूद्वीप नामके द्वीपमें स्थित देवकुरुओंकी अपेक्षा पूर्व दिग्वर्ती

કૃતિકાદિ સાત સાત નક્ષત્રો અનુક્રમે ચારે દિશાઓમાં લખવા જોઇએ. ત્યારબાદ અગ્નિકોણુથી વાયવ્ય કોણુ સુધી એક રેખા દોરવી તે રેખાને પરિઘદંડ સમજવો. આ પરિઘદંડથી આકૃતિના બે ભાગ પડી જાય છે. તે દરેક ભાગમાં ૧૪–૧૪ નક્ષત્રો છે. આ ૧૪ નક્ષત્રવાળા ભાગમાં ફરવામાં વાંધો નથી પણુ પરિઘદંડને ઓળંગીને કદી પણુ મુસાફરી કરવી નહીં. ॥ સૂ. ૫૦ ॥

દેવાધિકારની પ્રરૂપણા ચાલી રહી છે, તેથી હવે સૂત્રકાર દેવનિવાસ–ભૂત કૂટોની પ્રરૂપણા કરે છે– 'जंबुद्दीवे दीवे सोमणसे वक्खारपव्वए" ઈત્યાદિ—(સૂ. ૫૧)

જંબૂદ્વીપ નામના દ્વીપમાં આવેલા દેવકુરુઓની અપેક્ષાએ પૂર્વ દિશાના

कारे वक्षस्कारपर्वते सप्त कूटानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा–सिद्धं–सिद्धानां देवविशेषाणां निवासोपलक्षितं मेरुप्रत्यासन्नं कूटम् १। सौमनसं–सौमनसनामकतदधिष्ठातृदेवभवनोपलक्षितं कूटम् २। मङ्गलावतीकूटम्–मङ्गलावती विजयनामकदेवाधिष्ठितं कूटम् ३। देवकुरु–देवकुरुनामक देवाधिष्ठितं कूटम् ४। विमलं=वत्सा देवीनिवासोपलक्षितं कूटम् ५। काञ्चनं=वत्समित्रादेवी निवासोपलक्षितं कूटम् ६। विशिष्टकूटम्–विशिष्टः=द्वीपकुमाराणामुत्तरदिगिन्द्रः, तन्निवासोपलक्षितं कूटम् ७ इति। तथा–जम्बूद्वीपस्थे उत्तरकुरूणामपेक्षया पश्चिमदिशिस्थिते गन्धमादनना-

---

सौमनस वनमें स्थित गजदन्ताकार वक्षस्कार पर्वत पर सात कूट कहे गये हैं। जैसे–सिद्ध कूट १।

यह कूट मेरु पर्वतके समीप है, और देवविशेषरूप सिद्धोंका निवास स्थान है। सौमनस कूट २–इस कूटका अधिष्ठाता सौमनस नामका देव है; और के इस पर भवन बने हुए हैं–इसी कारण इसका नाम सौमनस कूट है, मङ्गलावती कूट ३ यह कूट मङ्गलावती विजय नामक देवसे अधिष्ठित है–इस कारण इसका नाम मङ्गलावती कूट हुआ है। देवकुरु नामक देवसे अधिष्ठित जो कूट है वह देवकुरु कूट है ४ वत्सादेवी के निवाससे उपलक्षित जो कूट है वह विमलकूट है ५ काञ्चन कूट–यह वत्समित्रा देवीके निवाससे युक्त है ६ द्वीप कुमारोंके उत्तर दिशाका जो इन्द्र है, उसका नाम विशिष्ट है इसके निवाससे उपलक्षित जो कूट है वह विशिष्ट कूट है ७।

तथा जम्बूद्वीपमें स्थित जो देवकुरु है उन देवकुरुओंकी अपेक्षा पश्चिम दिशामें स्थित जो गन्धमादन पर्वत है उस पर्वत पर गजदन्तके

સૌમનસ વનમાં જે ગજદન્તાકાર વક્ષસ્કાર પર્વત છે, તે પર્વત પર સાત કૂટ છે. તેમનાં નામ—(૧) સિદ્ધકૂટ–આ કૂટ મેરુ પર્વતની પાસે છે, અને દેવ વિશેષ રૂપ સિદ્ધોનું નિવાસસ્થાન છે (૨) સૌમનસકૂટ–આ કૂટનો અધિષ્ઠાતા સૌમનસ નામનો દેવ છે, અને આ કૂટ પર તેના ભવનો છે (૩) મંગલાવતી કૂટ-મંગલાવતી વિજય નામનો દેવ આ કૂટનો અધિષ્ઠાતા હોવાથી, તેનું નામ મંગલાવતી કૂટ પડયું છે. (૪) દેવકુરુ કૂટ–દેવકુરુ–દેવકુરુ નામના દેવથી અધિષ્ઠિત જે કૂટ છે તેને દેવકુરુ કૂટ કહે છે (૫) વત્સાદેવી જે કૂટમાં નિવાસ કરે છે, તે કૂટનું નામ વિમલકૂટ છે (૬) વત્સમિત્રા દેવી જ્યાં નિવાસ કરે છે તે કૂટને કાંચનકૂટ કહે છે. (૭) દ્વીપકુમારોના ઉત્તર દિશાનો જે વિશિષ્ટ નામનો ઇન્દ્ર છે તેનું નિવાસસ્થાન જે કૂટમાં છે, તે કૂટનું નામ વિશિષ્ટ કૂટ છે.

તથા જંબૂદ્વીપમાં જે દેવકુરુ છે, તે દેવકુરુઓની પશ્ચિમ દિશામાં જે ગન્ધમાદન પર્વત છે, તે પર્વતની ઉપર જે ગજદન્તના આકારનો એક વક્ષ-

मके गजदन्ताकारकवक्षस्कारपर्वते सप्त कूटानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-सिद्धं=सिद्धदेवाधिष्ठितं मेरु प्रत्यासन्नं कूटम् १। गन्धमादनं=गन्धमादनदेवनिवासभूतं कूटम् २। गन्धिलावतीकूटम्=गन्धिलावतीविजयनामकदेवाधिष्ठितं कूटम् ३। उत्तरकुरु=उत्तरकुरुनामक देवाधिष्ठितं कूटम् ४। स्फाटिकम्=अधोलोकनिवासि भोगङ्करानामकदिक्कुमारीनिवासयुक्तं कूटम् ५। लोहिताक्षम्=अधोलोकनिवासि भोगवतीनामक दिक्कुमारी निवासयुक्त कूटम् ६। आनन्दनम्=आनन्दननामक देवाधिष्ठितं कूटम् ७। इति ॥ सू० ५१ ॥

कूटस्थितपुष्करिणी जले द्वीन्द्रिया अपि भवन्तीति द्वीन्द्रियसूत्रमाह--

मूलम्--बेइंदियाणं सत्त जाइकुलकोडि जोणीपमुहसयसहस्सा पन्नत्ता ॥ सू० ५२ ॥

आकारका एक वक्षस्कार पर्वत है उस पर्वत पर सात कूट कहे गये हैं-जैसे-सिद्ध कूट यह कूट मेरुके निकट है, और सिद्ध देवसे अधिष्ठित है गन्धमादक २-यह कूट गन्धमादन देवका निवासभूत है।

गन्धिलावती कूट ३-यह कूट गन्धिलावती विजय नामके देवसे अधिष्ठित है उत्तरकुरु कूट ४. यह कूट उत्तर कुरु नामक देवसे अधिष्ठित है, स्फटिक कूट ५ अधोलोकमें रहनेवाली जो भोगङ्करा नामकी दिक्कुमारी है, उसके निवाससे युक्त यह कूट है, लोहिताक्ष कूट ६ अधोलोकमें रहनेवाली जो भोगवती नामकी दिक्कुमारी है, उसके निवाससे युक्त यह कूट है आनन्दन कूट ७ यह कूट आनन्दन नामके देवसे अधिष्ठित हैं ७ ॥ सूत्र ५१ ॥

સ્કાર પર્વત છે, તે પર્વત પર સાત કૂટ કહ્યા છે તેમનાં નામ નીચે પ્રમાણે છે—

(૧) સિદ્ધકૂટ-આ કૂટ મેરુની સમીપે છે અને સિદ્ધ દેવ વડે અધિષ્ઠિત છે. (૨) ગન્ધમાદન-આ કૂટમાં ગન્ધમાદન દેવનું નિવાસ સ્થાન છે. (૩) ગન્ધિલાવતી કૂટ-આ કૂટ ગન્ધિલાવતી વિજય નામના દેવ વડે અધિષ્ઠિત છે. (૪) ઉત્તરકુરુ કૂટ આ કૂટ ઉત્તરકુરુ નામના દેવ વડે અધિષ્ઠિત છે (૫) સ્ફટિક કૂટ-અધોલોકમાં રહેનારી જે ભોગંકરા નામની દિક્કુમારી છે, તેમનું નિવાસસ્થાન સ્ફટિક કૂટ છે. (૬) લોહિતાક્ષ કૂટ-અધોલોકમાં રહેનારી ભોગવતી નામની દિક્કુમારીના નિવાસથી આ કૂટ યુક્ત છે,

(૭) આનન્દ કૂટ-આ કૂટ આનન્દ નામના દેવના નિવાસસ્થાનથી યુક્ત છે. ॥ સૂ ૫૧ ॥

छाया--द्वीन्द्रियाणां सप्त जातिकुलकोटि योनि प्रमुख शतसहस्राणि प्रज्ञप्तानि ॥ सू० ५२ ॥

टीका--' वेइंदियाणं ' इत्यादि--

द्वीन्द्रियाणां जीवानां सप्त संख्यकानि जाति योनिप्रमुखकुलकोटिशतसहस्राणि-जातौ=द्वीन्द्रियजातौ या योनिप्रमुखाः=द्विलक्षसंख्यकद्वीन्द्रियोत्पत्ति-स्थानद्वाररूपाः कुलकोटयस्तासां शतसहस्राणि=लक्षाणि प्रज्ञप्तानि=प्ररूपितानि । अयं भावः-द्वीन्द्रियजातौ या योनयः=द्विलक्षसंख्यकानि उत्पत्तिस्थानानि तत्प्रभवा याः कुलकोटयस्ताः सप्तलक्षसंख्यका बोध्या इति । एकस्यामपि योनौ अनेककुलानि संभवन्ति, यथा-गोमयरूपायामेकस्यां योनौ विचित्राकाराः कृम्यादय उत्पद्यन्ते । अतः सप्तलक्षसंख्यकाः कुलकोटयो भवन्तीति । ' जोणिपमुह ' इति विशेषणस्य परनिपातः प्राकृतत्वादिति ॥ सू० ५२ ॥

द्वीन्द्रियाश्च कर्मपुद्गलचयादिसत्त्वे एव भवन्तीति चयादीनाह--

मूलम्--जीवा णं सत्तट्ठाणनिव्वात्तिए पोग्गले पावकम्मत्ताए चिणिंसु वा चिणंति वा चिणिस्संति वा, तं जहा--नेरइयनिव्वत्तिए जाव देवनिव्वत्तिए । एवं चिणजाव निज्जरा चेव ।

कूटस्थित पुष्करिणीके जलमें द्वीन्द्रिय भी होते हैं, अतः अब सूत्रकार द्वीन्द्रिय सूत्रका कथन करते हैं—

टीकार्थ-' वेइंदियाणं सत्त जाइ कुलकोडि जोणी ' इत्यादि । सूत्र५२ ॥

टीकार्थ-दो इन्द्रिय जीवोंकी जो दो लाख योनियां कही गई हैं, उनसे उत्पन्न हुई कुलकोटियां उनकी सात लाख कही गईहैं । क्योंकि एकही योनिमें अनेक कुल होतेहैं । जैसे गोमयरूप(गोबर)एकही योनिमें उत्पत्ति स्थानमें विचित्र आकारवाले कृमि आदि उत्पन्न हो जाते हैं । इसलिये दो इन्द्रिय जीवोंकी योनियोंमें कुलकोटि सात लाख कही गई हैं ॥सूत्र ५२

" वेइंदियाणं सत्त जाइ कुल कोडिजोणी " ઇત્યાદિ—(સૂ ૫૨)

ટીકાર્થ-દ્વીન્દ્રિય જીવોની જે બે લાખ યોનીઓ કહી છે, તેમાંથી ઉત્પન્ન થયેલી તેમની કુલ-કોટિઓ સાત લાખ કહી છે, કારણ કે એક જ યોનીમાં અનેક કુલ હોય છે જેમ કે ગોમય રૂપ એક જ યોનીમાં-ઉત્પત્તિ સ્થાનમાં-વિચિત્ર આકારવાળા કૃમિ આદિ ઉત્પન્ન થઈ જાય છે તેથી દ્વીન્દ્રિય જીવોની યોનીઓમાં કુલકોટિ સાત લાખ કહી છે. ॥ સૂ ૫૨ ॥

सत्तपएसिया खंधा अणंता पण्णत्ता । सत्तपएसोगाढा पोग्गला जाव सत्तगुणलुक्खा पोग्गला अणंता पण्णत्ता ॥ सू० ५३ ॥

॥ सत्तमं-ठाणं समत्तं ॥

छाया--जीवा खलु सप्तस्थाननिर्वर्त्तितान् पुद्गलान् पापकर्मतया अचिन्वन् वा, चिन्वन्ति वा चेष्यन्ति वा, तद्यथा-नैरयिकनिर्वर्त्तितान् यावद् देवनिर्वर्त्तितान्। एवं चयो यावन्निर्जरा चैव। सप्तप्रदेशिकाः स्कन्धाः-अनन्ताः प्रज्ञप्ताः सप्त प्रदेशावगाढाः पुद्गला यावत् सप्त गुण रूक्षाः पुद्गला अनन्ताः प्रज्ञप्ताः॥ सू०५३ ॥

जीव द्वीन्द्रियादिक पर्यायवाले कर्मपुद्गल चयादि होने पर ही होते हैं अतः अब सूत्रकार चयादिका "जीवाणं सत्तट्ठाणं" इत्यादि सूत्र द्वारा कथन करते हैं—

जीवोंने सात स्थानोंसे निर्वर्तित पुद्गलोंका पापकर्म रूपसे चय किया है, चय करते हैं और चय करेंगे-जैसे-नैरयिक रूप स्थानसे निर्वर्तित हुए यावत् देवस्थानसे निर्वर्तित हुए पुद्गलोंका उन्होंने पापकर्म रूपसे चय किया है, वर्तमानमें वे उनका उस रूपसे चय करते हैं, और आगे भी वे उनका इस रूपसे चय करेंगे चयकी तरह यावत् निर्जराका भी त्रिकाल रूपसे कथन कर लेना चाहिये।

सात प्रदेशोंवाले स्कन्ध अनन्त कहे गये हैं, सात प्रदेशोंमें अवगाढ हुए पुद्गल यावत् सात स्थान इस प्रकारसे हैं—

કર્મપુદ્ગલોનો ચયાદિક થાય ત્યારે જ જીવ દ્વીન્દ્રિયાદિક પર્યાયવાળો થાય છે તેથી હવે સૂત્રકાર "जीवाणं सत्तट्ठाणं" ઇત્યાદિ સૂત્ર દ્વારા ચયાદિકનું કથન કરે છે—"जीवाणं सत्तट्ठाणं" ઇત્યાદિ—(સૂ ૫૩)

જીવોએ સાત સ્થાનોમાંથી નિર્વર્તિત પુદ્ગલોનો પાપકર્મ રૂપે ચય કર્યો છે, ચય કરે છે અને ચય કરશે જેમ કે નૈરયિક રૂપ સ્થાનમાથી નિર્વર્તિત થયેલા પુદ્ગલોનો તેમણે દેવસ્થાન પર્યન્તના સ્થાનોમાં નિર્વર્તિત થયેલા પુદ્ગલોનો તેમણે પાપકર્મ રૂપે ભૂતકાળમાં ચય કર્યો છે. વર્તમાન કાળે તેઓ તેમનો તે રૂપે ચય કરશે ચયની જેમ જ નિર્જરા પર્યન્તના વિષયોનું પણ ત્રણ કાળની અપેક્ષાએ ઉપર પ્રમાણે જ કથન કરવું જોઇએ.

સાત પ્રદેશોવાળા સ્કન્ધ અનંત કહ્યા છે. સાત સ્થાનમાં અવગાહિત થયેલાં પુદ્ગલો અનંત છે. તે સ્થાન નીચે પ્રમાણે છે—(૧) નારક, (૨)

टीका--' जीवाणं ' इत्यादि--

व्याख्या पूर्ववद् बोध्या । नवरं-सप्तस्थाननिर्वर्त्तितान्-सप्तसु स्थानेषु-नारक-तिर्यक्-तिरश्ची-मनुष्य-मानुषी-देव-देवी रूपेषु मिथ्यात्वादिभिर्ये निर्वर्त्तिताः-सामान्येनोपार्जिता वक्ष्यमाणस्थानषट्कयोग्यीकृताः, तान्, यद्वा-सप्तसु पूर्वोक्तेषु स्थानेषु निवृत्तिर्येषां ते तथा तान् सप्तस्थाननिवृत्तिकान्, इति ॥ सू० ५३ ॥

इति श्री-विश्वविख्यात-जगद्वल्लभ-प्रसिद्धवाचक-पञ्चदशभाषा-कलितललितकलापालापक प्रविशुद्धगद्यपद्यनैकग्रन्थनिर्मापक-वादिमानमर्दक श्री शाहू छत्रपति-कोल्हापुरराजप्रदत्त-जैनशास्त्राचार्य-पदभूषित-कोल्हापुर राजगुरु-बालब्रह्मचारि-जैनाचार्य -जैनधर्मदिवाकर-पूज्य श्री घासीलालव्रति-विरचितायां स्थानाङ्गसूत्रस्य सुधाख्यायां व्याख्यायां सप्तमं स्थानं सम्पूर्णम् ॥ ७ ॥

नारक १, तिर्यञ्च २, तिरश्ची ३, मनुष्य ४, मानुषी ५, देव ६, एवं देवी ७, इन स्थानोंमें जीवोंने रहकर मिथ्यात्व आदि द्वारा जिन कर्म पुद्गलोंका सामान्य रूपसे उपार्जन किया है-वक्ष्यमाण स्थानषट्कके योग्य किया है-यद्वा-इन उक्त सात स्थानोंमें जिनकी निवृत्ति हुई है, ऐसे उन कर्मपुद्गलोंका जीवोंने पाप कर्म रूपसे त्रिकाल संबन्धी चयादि कियाहै । इस सूत्रकी व्याख्या पूर्वके समान जाननी चाहिये ॥सू०५३॥

श्री जैनाचार्य जैनधर्मदिवाकर पूज्यश्री घासीलालजी महाराज कृत " स्थानाङ्ग सूत्र " की सुधा नामकी व्याख्या के सातवां स्थान समाप्त ॥ ७ ॥

તિર્યંચ, (૩) તિર્યંચણી, (૪) મનુષ્ય (૫) મનુષ્ય જાતિની સ્ત્રી, (૬) દેવ અને (૭) દેવી. આ સ્થાનોમાં રહીને જીવોએ મિથ્યાત્વ આદિ દ્વારા જે કર્મપુદ્ગલોનું સામાન્ય રીતે ઉપાર્જન કર્યું છે-ચય, ઉપચય આદિ નિર્જરા પર્યન્તના ૬ સ્થાનને યોગ્ય કરેલ છે અથવા—ઉપયુક્ત સાત સ્થાનમાં જેમની નિવૃત્તિ થઇ છે એવાં તે કર્મપુદ્ગલોનો જીવોએ પાપકર્મ રૂપે ત્રિકાળ સંબંધી ચયાદિ કર્યો છે. આ સૂત્રની વ્યાખ્યા પૂર્વ સ્થાનમાં આપ્યા પ્રમાણે સમજવી. ॥ સૂ. ૫૩ ॥

શ્રી જૈનાચાર્ય-જૈનધર્મ દિવાકર પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ કૃત "સ્થાનાંગ સૂત્ર" ની સુધા નામની વ્યાખ્યાનું સાતમું સ્થાન સમાપ્ત ॥ ૭ ॥